विज्ञान

भाग ६०] [संख्या ४
२०२३ वि०, पौष १८८८ शाके जनवरी १९६७

इस अंक में

रसायन अङ्क

सम्पादक—डा० शिवगोपाल मिश्र

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानं जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तै० उ० ।३।५।

भाग ९०	२०१६ विक्र०; पौष १८८१ शाकाब्द; जनवरी १९६०	संख्या ४

रुद्रयामल तन्त्र और रसायन

डा० सत्यप्रकाश

नागार्जुन की परम्परा में रसायन का इस देश में विकास हुआ और समय-समय पर अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। रस रत्नाकर, रसार्णव, रस प्रदीप, रस चिन्तामणि और रस रत्न समुच्चय ग्रन्थों ने अच्छी ख्याति प्राप्ति की। इस साहित्य की रचना नागार्जुन के समय से लेकर १७ वीं शती ईसवी तक बराबर होती रही। दो सहस्र वर्षों के इस साहित्य में पूर्ववर्त्ती साहित्य की बहुत कुछ पुनरावृत्ति ही हुई, पर फिर भी कुछ आचार्यों ने सर्वदा ही अपने अनुभूत नये प्रयोगों को भी अपने ग्रन्थों में समाविष्ट किया। हम इस निबन्ध में "रुद्रयामल तन्त्रान्तर्गत सप्तधातु निरूपणम्" नामक ग्रन्थ का कुछ परिचय देंगे। आचार्य्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने मुद्रयामल तन्त्र का उल्लेख कई स्थलों पर अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "हिन्दू-केमिस्ट्री" में किया है। कहा जाता है कि ईसा की सोलहवीं शती में भैरवानन्द नामक कोई तान्त्रिक योगी था जिसने उमा महेश्वर संवाद के रूप में रुद्रयामल नामक एक बृहद्-ग्रन्थ रचा। इस ग्रन्थ की बौद्धभिक्षुओं में रस-ग्रन्थ के रूप में अच्छी प्रतिष्ठा थी। रसायन-वाद का यह प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता रहा है। कुछ विचारकों की दृष्टि में रुद्रयामल तन्त्र प्राचीन रसायन-वाद का अन्तिम ग्रन्थ है।

सम्पूर्ण रुद्रयामल तन्त्र तो हमें देखने को नहीं मिला। उस ग्रन्थ के अन्तर्गत "सप्तधातु निरूपणम्" नामक एक ग्रन्थ है, जिसका प्रकाशन जनता के लाभार्थ हमारे मित्र और पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी के अध्यक्ष श्री हरिशरणानन्द स्वामी ने अभी हाल में किया है। इसकी एक हस्त-लिखित प्रति महाराष्ट्र राज्यान्तर्गत संखेड़ा ग्राम के निवासी विनायक राव सदाशिव जी दस्तूर के पास थी, जिसकी नकल यादव जी त्रिक्रम जी महोदय ने की (१९५५ संवत्सर, १८३१ शाके,

ज्येष्ठ १०)। जो हस्तलिपि प्राप्त हुई, उसका पाठ अनेक स्थलों पर भ्रष्ट था और उस लेख से यह भी प्रकट होता था कि प्रतिलिपिकार को संस्कृत का अधिक ज्ञान नहीं है। यह हस्तलिखित प्रति अपूर्ण भी थी। सौभाग्यवश स्वामी हरिशरणानन्द जी को इस ग्रन्थ की एक अन्य प्रति पं० कृष्णगोपाल महोदय के पास मिली जो काशीवास्तव्य पं० हरिदास लिखित थी। इन दोनों प्रतियों और उन उद्धरणों की सहायता से जो आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने अपने ग्रन्थ के अन्त में दिये हैं, स्वामी हरिशरणानन्द जी ने इस "रुद्रयामल तन्त्रसप्तधातु निरूपणम्" का संपादन किया है। इस १२६ पृष्ठ के ग्रन्थ में १७६५ के लगभग श्लोक हैं (प्रस्तुत ग्रन्थ में श्लोकों की जो क्रम संख्या दी गयी है, वह कई स्थलों पर त्रुटिपूर्ण हो गयी है।)

प्रस्तुत ग्रन्थ अध्याय अथवा प्रकरणों में विभाजित नहीं है। पर बीच-बीच में कुछ इति-वाक्य पाये जाते हैं—

(क) पृ० ४३ पर श्लोक सं० ६०४ के बाद —"...इति श्री रुद्रयामले उमा-महेश्वर संवादे लोह विधान सम्पूर्णम्"

(ख) पृ० ५४ पर श्लोक सं० ७५१ के याद— "...जासत्व विधानं समाप्तम्"

(ग) पृ० ५६ पर श्लोक सं० ८१७ के बाद— "...नाग विधानं समाप्तम्"

(घ) पृ० ६२ पर श्लोक सं० ८६५ के बाद— "...वंग विधानं समाप्तम्"

(ङ) पृ० ६८ पर श्लोक सं० ९४१ के बाद— "...हरिताल विधानं समाप्तम्"
इसके बाद "अथ स्वर्ण विधानम्"

(च) पृ० ९१ पर ३१६ श्लोकों के बाद— "इति श्री रुद्रयामले उमामहेश्वर संवादे अष्टविंशतिताँ पटले पीत शुल्व विधानम्" ॥६॥

(छ) पृ० १२३ पर—"इति श्री रुद्रयामले उमा-महेश्वर संवादे धातुकल्पे ताम्र विधानं समाप्तम्"

(ज) पृ० १२८ पर—"इति श्री रुद्रयामले उमा-महेश्वर संवादे रजतक्रिया समाप्तम"

(झ) ग्रन्थ के अन्त में पृ० १२६ पर "इति श्री रुद्रयामले उमामहेश्वर संवादे स्वर्णादिविधि समाप्तम्। इति शिव पार्वती सम्वादे सप्तधातु निरूपणम्"

इस प्रकार विभिन्न प्रकरणों में इस ग्रन्थ में लोह, जासत्व (जस्ता या यशद), नाग (सीसा), वंग (टिन या रांगा), हरिताल, पीत शुल्व (सोना), ताम्र (ताँबा) और रजत (चाँदी) का विवरण है। इनमें वस्तुतः सात धातुयें तो लोहा, जस्ता, सीसा, वंग, सोना, ताँबा और चाँदी है। हरिताल कोई धातु नहीं है। पारे को रसराज अवश्य माना गया है, पर रसायन शास्त्र की आधुनिक भावनाओं के अनुसार धातु नहीं माना गया।

ग्रन्थारम्भ—प्रस्तुत ग्रन्थ का आरम्भ "पार्वत्युवाच" से होता है, जिसमें पार्वती शिवजी से धातु-शोधन सम्बन्धी ज्ञानोपदेश का आग्रह करती हैं। प्रश्न के उत्तर में महादेव धातुओं के चार वर्गों का वर्णन करते हैं—सात्विक धातु, राजसी धातु, तामसी धातु, और निरामय धातु। शिव जी आगे कहते हैं कि पृथ्वी के गर्भ में तो अनेक धातुयें हैं, जिनके विविध गुण लक्षण हैं, जो मुझे इस समय याद भी नहीं हैं, तो हे पार्वती, ये सब तुझे मैं कैसे कहूँ।

*पृथिव्या गर्भे मध्येतु अनेक धातुस्तिष्ठति । त्रिस्तृतः कियत्कालेन धातुर्नानाविधोरितः, गुरुलक्षण संयुक्तां साम्प्रतं न स्मरामिह । कथं ते कथयिष्यामि वद ब्रह्माण्ड वासिनि !"

आगे आग्रह करने पर महादेव कहते हैं, कि यों तो धातुयें अनेक हैं, पर मुख्य ये हैं— सारंग (सुवर्ण), लोह,ताम्रक, रजत, इनके अतिरिक्त सत्वज धातु (जो सत्व से उत्पन्न हुई हैं) मध्यम हैं, एवं त्रपु (वंग) और सीस ये दो नीच धातु हैं । धातुओं के संयोग से उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार की मिश्रधातुयें प्राप्त होती हैं । ताम्र और सत्वज के योग से एक नारी-धातु (पीतल) उत्पन्न होती है । यह अपने गुण धर्मानुसार मध्यमोत्तमा कहलाती है । त्रपु और ताम्र के योग से काँसा बनता है । प्रत्येक धातु की अपनी-अपनी विशेषतायें हैं । धातुओं की विशिष्ठतायें उनके मारण, जारण, सारण, चारण, जोटन, पातन, द्रावण, गोपन, लेखन, मेलन आदि की दृष्टि से भी हैं ।

इसके अनन्तर ग्रन्थकार ने सोना, चाँदी (रूप्य), ताम्र, जस्ता, त्रपु (कथिल), सीस, अयस् (लोहा), पित्तल, कांस्य, रसक, हरिताल, मनःशिला, अभ्रक, मल्ल (सोमल या विष), मौक्तिक, प्रवाल, कच्छ् पृष्ठ (कूर्मक), शंख शिपी (सीपी, शुक्तिका), हस्ती दन्त (हाथी दाँत), मयूर पिन्छ (मोर पंखी), नख और केश के पर्य्यावाची एवं गुणवाची नाम दिये हैं ।

इस विवरण के अनन्तर महादेव कहते हैं कि सोना आदि कल्प में केवल मेरु में ही पाया जाता था, मर्त्य लोक में नहीं । फिर जम्बूद्वीप में भी मिलने लगा । बाद को लंका में भी पहुंचा । पर भय के कारण मनुष्य लंका से सोना प्राप्त नहीं कर पाते थे । इसी प्रसंग में महादेव जी कहते हैं, कि कलियुग में मनुष्यों में बुद्धि और चतुरता का उदय होगा, और वे पारे और गन्धक के योग से अन्य धातुओं से भी सोना बनाने में समर्थ हो जायंगे ।

महादेव ने ताम्र प्राप्ति के स्थल ये बताये—नेपाल, कामरूप, बंगाल, मदनेश्वर, गंगाद्वार, मलाद्रि, म्लेच्छ देश, पावकाद्रि, दुर्ग, रूम, फिरंगी देश आदि । जस्ता (यशद) प्राप्ति के स्थान ये हैं—कुंभकाद्रि, कंबोज, रूम । नेपाल में जस्ता, वंग और सीस तीनों ही मिलते हैं । लोहा लोहाद्रि, गयाद्रि, गोतमाद्रि, विंध्य प्रदेश और समुद्र तट के प्रदेश में पाया जाता है ।

इस विवरण के अनन्तर लेखक ने रजत, ताम्र, लोह आदि धातुओं की उत्पत्ति बतायी है । प्रकरणानुसार आगे चल कर सोनामाखी (सुवर्ण माक्षिक) का विवरण प्रारम्भ होता है ।

धातु-विधान—रुद्रयामल तन्त्र के अन्तर्गत जो स्वर्ण-विधान दिया है, वह उल्लेखनीय है । स्वर्ण-साधन में पारद और गन्धक की महिमा बहुत है । जो प्रयोग स्थान-स्थान पर इस नकली सोने के बनाने के सम्बन्ध में, अथवा असली सोने के शोधन के सम्बन्ध में दिए हैं, वे अनेक स्थलों पर दूरूह और अस्पष्ट अवश्य हैं । उत्तम शुल्ब बनाने की एक क्रिया नीचे दी जाती है जिससे इस बात का अनुमान हो जायगा कि किस प्रकार की आयोजनायें इस सम्बन्ध में की जाती थीं—

स्थान-स्थान मृदांदिव्यामा नयेद्यत्नतः सुधीः ।।
कोष्ठं भूखातजं दिव्यं स्कंध मात्रं पुत्रांस्य च ।
तत्तले भस्तया युग्मं त्वग्रे नीच मुखं शुभम् ।

तत्कोष्ठं पूरयेद दिव्यं वह्न्युच्छिष्ठेन सांप्रतम् ।
त्रिभागं पूरयेद् दिव्यं स्थानस्थे मृदशोभनम् ।।
साद्धं भागं परं पूर्यं कठिनांगार कोत्तमैः ।
वह्निस्थापनकं कृत्वा भस्त्रा मुख मुखेन वा ।।
धम्यते प्रबला तच्च यामयुग्मम खंडितः ।
जायते वह्निवत्सत्वं कोष्ठ स्थानं च जायते ।।
अंगारैस्तु पुनः पूर्यं मुख मुद्धांतु मुद्धरेत् ।
पुनर्द्धमनकं घोरं यामसाद्धंमखंडितः ।।
पश्चात्तच्चरसं दिव्यं जायते रवि सन्निभम् ।
लोहदण्ड मुखे वक्त्र तन्मुखोद्घाटयेद् ध्रुवम् ।।
आलबालं कृतं पूर्वं तदते रस निःस्रुतिः ।
कांजिकैः सेचनं कृत्वा जायते निर्मल शुभम् ।।
अनेनैव प्रकारेण जायते शुल्बमुत्तमम्" । (पृष्ठ ७०)

इस प्रकरण से स्पष्ट है कि उत्तम शुल्ब बनाने के लिए अनेक स्थानों की दिव्य मिट्टी का संग्रह करे । एक गहरा गड्ढा या कोष्ठ खोदे (आदमी के कन्धे बराबर गहरा) । उसमें नीचे कोयला भर दे और तिहाई भाग दिव्य मिट्टी भरे, और कठिनांगार या दृढ़ कोयला भरे । नीचे एक भस्त्रा या धौंकनी लगा दे, जिससे जोरों से आग धौंके । ऐसा करने पर आग के समान जाज्वल्यमान सत्व प्राप्त होगा । इसके ऊपर फिर कोयला पूर दे, और जोरों से धौंके । अब सूर्य की आभा वाला रस मिलेगा । लोहे के दण्डे से मुख को खोल दे, और चारों ओर आलबाल (पानी से भरी खायी) बना दे । इस प्रकार जो रसस्राव प्राप्त हो, उसे कांजी (खटाई) से अभिषिक्त करे । ऐसा करने से उत्तम शुल्ब प्राप्त होता है ।

शुल्ब बनाने के इसी प्रकार के कई विस्तार दिये हुए है । तरह-तरह से कोष्ठों को बनाना, उन पर मिट्टी लेपना, उसमें उपयुक्त काष्ठ (जैसे खदिर काष्ठ, आदि) रखना, फिर खदिर का प्रयोग, आलवाल का उचित रूप से बनाना आदि विस्तारों द्वारा नाग और ताम्र दोनों का शोधन बताया है । इन विधियों से यदि अशुद्ध धातु मिले तो उसे फिर नरमूत्र, दूध, औषधियों के रस आदि में अभिसिञ्चित करने की विधियों का उल्लेख है । कुक्कुट के अंडे का रस, और नीबू के रस, आदि का उल्लेख भी किया गया है । इस सम्बन्ध में बालुका यत्र, धूप में सुखाना, छाया में सुखाना, और नीले कांच की बनी शीशी का भी प्रयोग बताया है—

कुक्कुटांड रसे भाव्यं दिनत्रयम खंडितः ।
पश्चान्निम्बु रसे भाव्यं त्रियामं छायाशोषितम् ।
नील काचोद्भवे शीश्यां दापयेद्यत्नपूर्वकम् ।
बालुका यंत्र मध्ये तु दापयेत् शीशिका शुभा ।
मंदाग्निना हठ पर्यन्तां यामयुग्मं प्रतापयेत् ।
स्वांगशीतेन सोत्तार्य उर्ध्वगं संग्रहेच्छुभम् ।

पुनः खल्वे प्रदातव्यं अष्ठांशे मल्लं दापयेत् ।
पुनरंड रसैर्भाव्यं याममात्तम खंडितः ।
छाया शुष्कं च तत्सर्वं काचकुप्यां विनिक्षिपेत् ।

इस प्रकार का विस्तार रजत आदि के सम्बन्ध में दिया गया है। पारा, मनः शिला, अभ्रक, सर्जिका क्षार, खुर, तिल की लकड़ी का भस्म, कुम्हड़े का रस, कुमारी रस, सिंहिका-रस, गुड़, खदिर, चूर्ण, खड़िया, गोमय (गोबर), अरना-कंडों की भस्म, फिटकरी (स्फटिका) का चूर्ण, सोमल, आदि अनेक का प्रयोग धातुओं के शोधन में किया जाता था। रूप्यशिद्धि या राजतीसिद्धि (चाँदी का शोधन) का यह विवरण इस ग्रन्थ में पठनीय है (पृ० ७६-७७)।

आगे चल कर स्वर्ण शोधन का विस्तृत विधान है। इस सम्बन्ध में भी पारे, गन्धक, वालुकायंत्र, कांच की शीशी, खल्व, घी-कुआर का रस, अंडे का रस, खर्पर आदि का उपयोग यथा-स्थान बताया गया है। सुहागे के साथ गलाना, पारे, शंख, मनःशिला, ताल, फिटकरी का सत्व, और इस सम्बन्ध की कोष्ठिका का भी विवरण है (पृ० ८८)। कोष्ठी के अतिरिक्त चुल्ली (चूल्हा) का वर्णन भी उल्लेखनीय है। चंद्रोदय रस बनाने का विस्तार भी इस ग्रन्थ में है (पृ० ८३-८४)। जस्ता और ताँबे के मिश्रण से पीली धातु तैयार कर लेने के कई योग भी दिए गये हैं। स्पष्टतः उद्देश्य यह था कि किसी प्रकार से सोने के समान कान्ति की कोई धातु तैयार हो जावे। यह धातु वस्तुतः पीतल प्रतीत होता है (पीतल का एक पर्याय नारी या नारीक का भी इस ग्रन्थ में प्रयोग हुआ है)।

अनेका स्वर्णजा सिद्धिर्नार्यं मध्ये च जायते ।
... ...
गलिते जायते नारी क्रियाकर्म शुभप्रदा ।
शृणु देवि ! प्रयत्नेन नारी निर्मलगा क्रिया ।
... ...
एता दृशी शुभानारी गालयेन्मृद भांडके ।
... ...
अक्षया जायते नारी तदोत्थान् पत्रं कारयेत् ॥
आनयेच्च शुभा नारी शुद्ध जासत्व शुल्वजा ।
स एव काञ्चनं दिव्यं जायते नात्र संशयः ॥ (पृ० ८४-८५)

इस पीतल या नारी को शुद्ध करने का भी विवरण है, जिसके उपयोग से सोने के तुल्य नारी प्राप्त हो जाती है।

आगे चल कर एक स्थल पर अच्छी मिट्टी और उपयोगी खर्पर का उल्लेखनीय वर्णन है (पृ० १००), बाफाग्नि का प्रयोग ताम्र के संबंध में बताया गया है। ताम्र तीन प्रकार के बताये हैं—(१) तुत्थोत्थ ताम्र (तूतिये से बना), (२) गन्धोद्भव ताम्र, (३) दोनों ताम्रों का मिश्री। आयुर्वेद की दृष्टि से गन्धकोद्भव ताम्र ही सर्वोत्तम है। गान्ध-ताम्रकरी क्रिया (अर्थात् ताम्र और गन्धक के विविध प्रयोगों का ज्ञान) को विशेष महत्व दिया गया है :

श्रृणु भद्रे प्रवक्ष्यामि गन्धताम्रकरी क्रिया।
येन विज्ञान मात्रेण साधयेत्सकला गतिः ॥

इसी प्रकार रस-ताम्रकरी क्रिया (पारद और ताम्र के योग का ज्ञान) भी महत्वपूर्ण है (पृ० ११२-११३)।

रुद्रयामल तंत्र में रत्न-बंध का भी उल्लेख है। बिल्लौरी पत्थर का विशेष विवरण है—

हीनानेककरं रत्नं हीन मौल्येकरं कलौ।
यत्नेन कारयेच्चूर्णं विल्लौराख्यो महामणिः।
गालयेद्यत्न पूर्वेण पुराप्रोक्ता विशारदा
पाषाणद्राविणीविद्या कथिता लोहकृत् क्रिया ॥ (पृ० ११४)

रुद्रयामल तंत्र के अन्तिम भाग में पारे और चाँदी से सम्बन्ध रखने वाले प्रयोगों का भी उल्लेख है। इस सम्बन्ध में क्षार, कांजिक-रस, गन्ध तैल, अन्धमूषा, टंकण, सूची वेध, खल्व, तालज रस, काचपात्र, बालुका यंत्र, डमरुक यंत्र, काचकूपी, दूर्वारस आदि का व्यवहार बताया गया है (पृ० १२४-१२६)।

रजत क्रिया के अनन्तर सुवर्ण का विवरण है। सुवर्ण के बिना तो कोई भी धातु गुणकारी नहीं होती। सुवर्ण की तुलना तो ब्रह्म से की गयी है—

सौवर्णस्य बिना धातोः कार्यं कर्तुं न शक्यते।
यथा ब्रह्म प्रकृत्येन विलीने कर्म साधयेत् ॥
ब्रह्मणैव विनाकृत्या कर्म नैवान, साधयेत्।
तस्मात्ते च सुवर्णं हि ब्रह्म कैवल्य शोभनम् ॥ (पृ० १२८)

इस प्रकार संक्षेप से हमने इस लेख में पाठकों को "रुद्रयामल तन्त्रान्तर्गत सप्तधातु निरूपणम्" का परिचय कराया है। आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय की "हिन्दू केमिस्ट्री" में कहा गया है कि "रुद्रयामल तन्त्र" का एक भाग रस-कल्प भी है। पुस्तक परिशिष्ट में "धातु क्रिया" या "धातु-मञ्जरी" के जो श्लोक उद्धृत हैं, वे ही "सप्त-धातु- निरूपणम्" के हैं। इस ग्रन्थ में फिरंगी, रूम, आदि शब्दों का प्रयोग है, अतः यह १६ वीं शती से पूर्व का तो हो ही नहीं सकता, ऐसा अनुमान है। इसमें दाह-जल (सलफ्यूरिक अम्ल) का उल्लेख है जिससे अभिक्रिया करके ताँबा तूतिया बन जाता है—

ताम्रदाहजलैर्योगे जायते तुत्थकं शुभम्
(प्रफुल्ल चन्द्र राय)।

यदि रुद्रयामल तंत्र पूर्ण प्राप्त होकर प्रकाशित हो सके, तो अच्छा होगा।

———

पृथ्वी पर जीव की उत्पत्ति की रासायनिक विवेचना

डा० कृष्ण बहादुर, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

अनुमान है कि हमारी पृथ्वी की सतह की आयु ५०० या ५५० करोड़ वर्ष है। वैज्ञानिकों की धारणा है कि पृथ्वी की सतह उस समय ठंढ़ी हो गई थी और स्थान-स्थान पर जल के एकत्र हो जाने के कारण बड़े-बड़े जलाशयों अर्थात् समुद्रों का भी निर्माण हो गया था। यह तो हुई ५००-५५० वर्ष पूर्व की स्थिति, परन्तु इस पृथ्वी पर जीव की उत्पत्ति वास्तविक रूप में १००--१५० करोड़ वर्ष पूर्व ही हुई। पृथ्वी पर जीव की उत्पत्ति किसी आकस्मिक घटना से नहीं हुई वरन् इसके निर्माण की प्रक्रिया पृथ्वी की सतह के ठंढ़ी होने तथा उस पर समुद्रों के निर्माण हो जाने के साथ ही प्रारम्भ हो गई थी। तात्पर्य यह है कि पृथ्वी पर ४०० करोड़ वर्षों तक होने वाली विभिन्न रासायनिक प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप जीव की उत्पत्ति हुई। ४०० करोड़ वर्ष की इस दीर्घ अवधि में रासायनिक प्रतिक्रियाएं हुईं और उन प्रतिक्रियाओं में ही लक्ष-लक्ष करोड़ो वर्षों तक अणुओं का विकास होता रहा और इससे उत्पत्ति हुई एक ऐसे संयुक्त पदार्थ की जो प्रोटोप्लाज्म की भाँति था। इसमें जीव के सभी गुण विद्यमान थे।

४०० करोड़ वर्षों में होने वाली विभिन्न रासायनिक प्रतिक्रियाओं एवं आणविक विकास के विषय में आजकल विशेष रूप से खोज कार्य हो रहा है। इन विभिन्न क्रियाओं एवं विकसनशीलता के रहस्य की जानकारी से न केवल जीव की उत्पत्ति के विषय में सही अनुमान लगाया जा सकेगा बल्कि उन प्रतिक्रियाओं का ज्ञान हो जाने पर उन्हें कृत्रिम रूप देकर संभवतः जीवन के संश्लेषित करने का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया जा सकेगा।

यह सर्वमान्य है कि पृथ्वी पर सर्वप्रथम कार्बनिक यौगिकों का संश्लेषण आरंभ हुआ। निस्सन्देह ५०० करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी के वायुमण्डल का संयोजन आज की भाँति नहीं था। उस समय के वायुमण्डल में मीथेन, कार्बन मोनाक्साइड, कार्बन डाइआक्साइड, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन गैसें वर्त्तमान थीं। पृथ्वी पर जल होने के कारण वायुमण्डल में पानी की वाष्प भी थी। १९५५ ई० में अमेरीका के वैज्ञानिक मीलर ने उक्त गैसों को एक फ्लास्क में लेकर इस मिश्रण से विद्युत विसर्जन द्वारा कई अम्लों का संश्लेषण किया। पानी और कार्बन डाइआक्साइड के मिश्रण में पारबैंगनी किरणों द्वारा फार्मलडिहाइड और शर्करा का संश्लेषण किया जा सकता है। ५०० करोड़ वर्ष पूर्व सूर्य से पृथ्वी की सतह पर पहुँचने वाले पारबैंगनी प्रकाश का परिमाण अधिक था क्योंकि उस समय वायु का घनत्व और आवरण उतना नहीं था जितना कि आज है। अतः यह स्वाभाविक है कि पृथ्वी पर उस समय अनेक कार्बनिक यौगिकों का निर्माण हुआ होगा और उन पर प्रकाश तथा पारबैंगनी किरणों के प्रभाव से अनेक नये कार्बनिक यौगिक बने होंगे। इन संश्लेषित यौगिकों में एमिनो अम्लें भी थीं।

प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायन-विभाग में किये गये प्रयोगों से स्पष्ट होता है कि एमिनो अम्लों का संश्लेषण उस काल में भी संभव था जब पृथ्वी के वायुमण्डल का संयोजन प्राय: आज की भाँति हो गया था और इस संश्लेषण के लिये केवल प्रकाश द्वारा प्राप्त ऊर्जा पर्याप्त है। प्रयोग द्वारा ज्ञात हुआ है कि यदि पैरा फार्मेल्डीहाइड, पोटैशियम नाइट्रेट, फेरिक क्लोराइड और पानी के निर्बीजित मिश्रण पर साधारण प्रकाश डाला जाय तो कुछ समय उपरान्त इसमें कुछ एमिनो अम्ल संश्लेषित हो जाते हैं। इस प्रकार एमिनों अम्लों की प्रकृति मिश्रण के संयोजन, हाइड्रोजन आयन सान्द्रण, उत्प्रेरक और प्रकाश डालने के काल और प्रकाश के तरंग-दैर्ध्य पर निर्भर है। यह एक महत्वपूर्ण खोज है क्योंकि इसमें एमिनो अम्लों के संश्लेषण के लिये वायुमण्डल में होने वाले विद्युत-विसर्जन की आवश्यकता नहीं पड़ती और समस्त पृथ्वी के सतह पर जहाँ पानी और अन्य पदार्थ उपस्थित हैं, इन एमिनो अलो के संश्लेषण की कल्पना की जा सकती है।

उक्त प्रतिक्रिया के अनुसार जो एमिनो अम्ल संश्लेषित होते हैं, जीवाणुओं द्वारा शीघ्र विघटित हो जाते हैं परन्तु पूर्वजीव-काल में जब पृथ्वी पर एक भी जीव नहीं था, पृथ्वी पर संश्लिष्ट एमिनो और अन्य कार्बनिक-यौगिक परस्पर क्रियावान रहे और फलस्वरूप नये नयें नाइट्रोजन युक्त कार्बनिक यौगिक बने। इनमें से जो पृथ्वी की भौतिक-रासायनिक प्रतिक्रियाओं के समक्ष स्थायी थे वे तो रहे और आगे की प्रतिक्रियाएं कीं परन्तु जो अस्थायी थे वे विघटित हो गयें और उनके विघटन से बने पदार्थों ने पृथ्वी के अन्य कार्बनिक यौगिकों से पुन: प्रतिक्रिया की। इस प्रकार असंख्य कार्बनिक यौगिकों का निर्माण और विघटन होने लगा। इन प्रतिक्रियाओं में प्रकाश और पारबैंगनी किरणों ने विशेष प्रभाव डाला।

पृथ्वी के पूर्वजीव-काल के इन असंख्य संश्लेषित कार्बनिक यौगिकों में एमिनो अम्लो ने जीव-उत्पत्ति में विशेष भाग लिया। अमरीका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक फाक्स ने ज्ञात किया है कि एमिनो अम्लों को एक विशेष ताप पर (२०० से ३०० से०) गरम करने पर बहुत से पेपटाइड बन जाते हैं। उनका मत है कि ज्वालामुखी पर्वतों के पास जहाँ ताप अधिक था ऐसी ही क्रिया हुई। निर्मित पेपटाइड से बड़े-बड़े पेपटाइड और प्रोटीन संश्लेषित हुये। पेपटाइड संश्लेषण में ऊर्जा लगती है इसलिए इनका पानी की उपस्थिति में संश्लेषण करना कठिन है। प्रयाग विश्वविद्यालय में किये गये प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि यदि एमिनो अम्लों के जल विलयन में अन्य कार्बनिक यौगिक मिला हो तो उचित उत्प्रेरक की उपस्थित में पारबैंगनी किरणों द्वारा इस विलयन में पेपटाइड संश्लेषित होते हैं। पूर्वजीव काल में पृथ्वी पर अधिक पारबैंगनी किरणें आती थीं, उस समय के पानी में मिश्रित एमिनो अम्ल, कार्बनिक यौगिक और अकार्बनिक उत्प्रेरकों के मिश्रण में पेपटाइड और प्रोटीन का संश्लेषण हुआ।

जीवित कोष (सेल), प्रोटीन और प्रोटोप्लाज्म-संश्लेषण में पानी के अणुओं का विशेष महत्व है। आकार्बनिक आयन इस प्रतिक्रिया में विशेष प्रभाव डालते हैं। प्रोटोप्लाज्म में, विरल तत्वों को छोड कर कैसियम, मैगनीसियम, पोटैशियम, सोडियम, फासफोरस, कार्बन और नाइट्रोजन प्रमुख तत्व वर्तमान हैं। यहाँ की प्रयोगशाला में किये गये प्रयोगों से यह प्रगट हुआ है कि जब

कल्चर-माध्यम में इनका सान्द्रण इस प्रकार संतुलित किया जाता है कि सर्वश्रेष्ठ कोष वृद्धि हो तो इस स्थिति में बने प्रोटोप्लाज्म में इन तत्वों के नहीं वरन् हाइड्रोजन और आक्सीजन के अणु अधिक होते हैं ,अर्थात् प्रोटोप्लाज्म का अधिकतम संश्लेषण उस अवस्था में होता है जिसमें प्रोटो-प्लाज्म पदार्थ का अत्यधिक जलीकरण सम्भव हो।

ऊपर वर्णित विधि द्वारा न केवल एमिनो अम्लों और पेपटाइडों का ही संश्लेषण हुआ वरन् एडिनोसिन फासफेटों और न्यूकलिक अम्लों के आकार के यौगिक भी बने। एडिनोसिन फासफेटों में फासफेट आयनों के मुक्त होने पर ऊर्जा मुक्त होती और न्यूकलिक अम्लों में अनुकूल दशा में प्रतिलिपिता (Duplication) का गुण था। परन्तु जब तक ये अणु अलग-अलग रहे न तो एडिनोसिन फासफेटों से मुक्त ऊर्जा का कोई विशेष लाभ था न अलग रह कर न्यूकलिक अम्ल ही प्रतिलिपि कर पाता था। पृथ्वी पर बने इन प्रोटीन, एडिनोसिन फासफेट और न्यूकलिक अम्ल के अणु कभी-कभी पास-पास आकर संयोग भी करने लगे। इस मिलन से प्रो-प्रोटोप्लाज्म बना जिससे आगे चल कर वर्तमान प्रोटोप्लाज्म विकसित हुआ। यह प्रो-प्रोटोप्लाज्म एक वृहत अणु था जिसमें एडिनोसिन फासफेट होने के कारण आसपास की रासायनिक क्रिया द्वारा प्रकट होने वाली ऊर्जा को संचित करने का गुण था। इस क्रिया में एडिनोसिन मोनोफासफेट, फासफेट-मूलक से संयोग कर द्वि- और त्रि-फासफेट बन जाता था। वृहत अणु में न्यूकलिक अम्ल उपस्थित होने के कारण प्रतिलिपिता का भी गुण था। स्वयं ऊर्जा प्रगट कर सकने का गुण होने के कारण ये वृहत अणु अन्य अणुओं से कुछ अधिक अच्छी स्थिति में थे और इनका अनुकूल वातावरण में जब आसपास इन अणुओं को बनाने वाले पदार्थ उपस्थित हुये तो इनकी प्रतिलिपिता भी हुई। इस प्रकार के असंख्य वृहत अणुओं का जन्म हुआ। इनमें से कुछ अणु इस प्रकार रहे जो वाह्य भौतिक-रासायनिक स्थिति के मन्द परिवर्तन के प्रभाव में अपने कुछ बन्धनों को बदल कर संतुलित कर लेने योग्य थे। इन वृहत अणुओं के प्रतिलिपन से ऐसे अणु बने जो वाह्य स्थिति के मन्द परिवर्तन से नष्ट नहीं होते थे वरन् इससे उनके आन्तरिक बंधनों में ही परिवर्तन होता था।

उक्त वर्णित वृहत अणु पृथ्वी का सर्वप्रथम प्रो-प्रोटोप्लाज्म था जो प्रारम्भ में कोष में न होकर स्वतन्त्र रूप से था। इन वृहत् अणुओं ने कोजर्वेट का रूप धारण किया। इन कोजर्वेट में विशिष्ट शोषण का गुण होता है। पदार्थ के कोजर्वेट अवस्था का विशेष अध्ययन रूस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक ओपिरिन कर रहे हैं। इन कोजर्वेट स्थित में उपस्थित वृहत अणुओं ने उचित अका-र्बनिक आयनों की विशेष सान्द्रता पर तीव्र गति से प्रतिलिपन किया और शीघ्रता से प्रो-प्रोटोप्लाज्म संश्लेषित होने लगा।

प्रो-प्रोटोप्लाज्म ने आगे विकास करके प्रोटोप्लाज्म का रूप ग्रहण किया। इसमें प्रो-प्रोटोप्लाज्म के सभी गुण थे, साथ ही साथ यह अधिक सुसंगठित था और बिना कोजर्वेट-स्थिति के भी स्वतन्त्र रूप से रह सकता था।

इस तरह लगभग १०० से १५० करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी पर जीवन के गुणों से परिपूर्ण प्रथम पदार्थ संश्लेषित हुआ। इस पदार्थ के विकास से वर्तमान काल के बैक्टीरिया, एमीबा तथा

यीस्ट की तरह के एक सेल वाले जीव बने। ५० करोड़ वर्ष पूर्व तक ये जीव केवल पानी में ही रहे और इनसे बहुकोषीय जीव, जैसे एल्गी, स्पंज, एनेलिड, सीनोडरमेटा, ट्रीलोबिट तथा अन्य अपृष्ट बंशी जीव विकसित हुये। सर्वप्रथम पृष्ठबंशीय जीव, मछली, (४० करोड़ वर्ष पूर्व) बनी, इससे लगभग १५ करोड़ वर्ष बाद, कार्बोनिफेरस काल में पृथ्वी पर विशाल फर्न, हॉर्सटेल और लाइकोपोड वृक्षों की उत्पत्ति हुई और पृथ्वी इनके बड़े-बड़े जंगलों से ढक गई। इसी काल में एम्फीबियन की उत्पत्ति हुई। लगभग ६ से ७ करोड़ वर्ष पूर्व रेप्टाइल (सरीसृप) प्रगट हुये। जुरेसिक और क्रिटेशियस काल में इन्होंने विशेष प्रगति की।

पृथ्वी पर मेमल (स्तनपेयों) की उत्पत्ति लगभग साढ़े तीन करोड़ वर्ष पूर्व हुई। ये आदि मेमल, वर्तमान काल के मेमल से बहुत भिन्न थे। इन्हें आजकल के मेमल का रूप ग्रहण किये केवल ४०-५० लाख वर्ष हुये हैं। केवल १० लाख वर्ष पूर्व ही पिथेकैन्थोपस नामक बन्दर की जाति बनी जिसके विकास से मनुष्य बना। पिथेकैन्थोपस से मनुष्य बनने में कई लाख वर्ष लगे। लगभग ३-४ लाख वर्ष पूर्व आदि-मानव भी वर्तमान काल के मनुष्य की भाँति बहुत प्रगतिशील नहीं था परन्तु एक बार मनुष्य का शरीर प्राप्त करने के बाद फिर उसकी प्रगति तीव्र गति से हुई।

मनुष्य का इतिहास बतलाता है कि मनुष्य लगभग १०,००० वर्ष पूर्व सभ्य हो चुका था। पिछले २००० वर्षों में और विशेषकर पिछले २०० वर्षों में मनुष्य ने भौतिक जगत में विज्ञान द्वारा विशेष प्रगवि की और पिछले २० वर्षों में प्रगति के विभिन्न साधनों पर विशेष अधिकार प्राप्त किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि अणु-विकास में लगभग ४०० करोड़ वर्ष लगे, जिससे निर्जीव अणुओं से जीवित प्रोटोप्लाज्म बना, इस प्रथम बने एक-कोषीय जीवों से पिथेकैन्थोपस बन्दर बनने में केवल ५-६-७ लाख वर्ष ही लगे। निर्जीव अणु से मनुष्य बनने के इस इतिहास देखने पर विदित होता है कि इस विकास की गति पहिले बहुत मन्द थी परन्तु अब यह विकास बड़ी तीव्र गति से हो रहा है। मनुष्य की विशेष प्रगति उसके सामाजिक सहयोग से हुई। मनुष्य व्यक्तिगत रूप से ही प्रकृति से सङ्घर्ष नहीं करता वरन् वह इस सङ्घर्ष में एक दूसरे की समझ और सहयोग का भी उपयोग करता है।

उक्त वर्णित आणविक विकास के सिद्धान्त से यह प्रगट होता है कि न केवल जीव-निर्माण के उपरान्त ही विकास क्रिया में जीव वातावरण की भौतिक-रासयनिक स्थतियों से सङ्घर्ष करते रहे और जो जीव उन स्थितियों में अच्छी तरह रह सके उन्होंने विकास पथ पर आगे का कदम रक्खा, वरन् पूर्वजीव काल में भी जब पृथ्वी पर प्रोटोप्लाज्म नहीं बना था, अणु भी इसी प्रकार के सङ्घर्ष में भाग लेते रहे और पृथ्वी के उस समय की भौतिक-रासायनिक स्थिति में जो वृहत अणु अधिक स्थायी रह सके उन्होंने आगे विकास किया एवं इसी अणु-विकास से प्रोटो-प्लाज्म नामक द्रव्य संश्लेषित हुआ। अतः प्रोटोप्लाज्म ग्रह के निरन्तर भौतिक-रासायनिक स्थि-तिओं के परिवर्तन में सतत संतुलित एक ऐसा द्रव्य है जिसमें स्वयं शक्ति प्रगट करने का, प्रति-

(शेष ११२ वें पृष्ठ पर)

मूलभूत कण

डा० रमेश चन्द्र कपूर, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

उन्नीसवीं शताब्दि में वैज्ञानिकों का विचार था कि तत्व अविनाशी हैं और एक दूसरे में परिणत नहीं किये जा सकते। परन्तु इस शताब्दि के अंत में एक बड़ी महत्वपूर्ण खोज हुई जिससे तत्वों के तत्वांतरण (transmutation) का सर्वप्रथम पता लगा। यह खोज रेडिय-धर्मिता की थी जिसमें कुछ भारी तत्वों के परमाणुओं का विखण्डन होता था।

इन खोजों के पश्चात परमाणु रचना पर बड़ी सरगर्मी से कार्य हुआ। इस कार्य में थामसन (Thompson), रदरफोर्ड (Rutherford) एवं बोर (Bohr) ने सराहनीय कार्य किया। इस कार्य के बीच कुछ मूलभूत कणों की भी खोज हुई। इनमें से कुछ कण परमाणु के अंदर विद्यमान हैं, इन्हें हम स्थायी कह सकते हैं। दूसरे ऐसे कण हैं जो अस्थायी हैं और थोड़े समय के लिये कुछ क्रियाओं के बीच उत्पन्न होते हैं।

अब यह ज्ञात है कोई भी कण पूर्णतया स्थायी नहीं वरन् विशेष क्रियाओं द्वारा एक दूसरे में बदला जा सकता है।

निम्नलिखित सारिणी में ऐसे कणों का वर्णन है जिनकी अब तक खोज हो चुकी है। इनमें कुछ साधारण तथा स्थायी हैं और कुछ अस्थायी। कुछ कणों पर विद्युत का आवेश है (धन या ऋण) और कुछ आवेश-रहित हैं। इन कणों को हम परमाणु रचना और समस्त द्रव्यों की ईंटें कह सकते हैं।

धन आवेश युक्त	ऋण आवेश युक्त	आवेश रहित
१. प्रोटान भार १·००७५८ स्थिर खोज लगभग १९०० ई०	१. प्रति-प्रोटान भार १ अस्थिर खोज १९५५ ई०	(१) न्यूट्रान भार १·००८९७ अर्ध जीवनकाल १५ मिनट प्रोटान में परिणत खोज १९३२ ई०
		(२) प्रति-लैम्बड़ा अथवा प्रति-द्रव्य भार अनिश्चित अस्थिर, शीघ्र प्रति-प्रोटान में परिणत, खोज १९५८ ई०

२. पाजीट्रान

$$भार = \frac{१}{१८३७}$$

स्थिर

खोज १९३२ ई०

३. धन म्यू (μ) मेसान

$$भार = \frac{१}{९.७७}$$

अर्ध जीवनकाल २×१०^{-६} से०

खोज १९३६ ई०

४. धन आवेश युक्त

धन पाई (π) मेसान

$$भार = \frac{१}{६.६८}$$

अर्ध जीवनकाल १ $^{-८}$ से०

खोज १९४७ ई०

५. धन V कण

भार लगभग १·२

अर्ध जीवनकाल $१०^{-१०}$ से०

खोज १९४७ ई०

२. इलेक्ट्रान

$$भार = \frac{१}{१८३६}$$

स्थिर

खोज १८९६ ई०

३. ऋण म्यू (μ) मेसान

$$भार = \frac{१}{९.७७}$$

अर्ध जीवनकाल २×१०^{-६} से.

खोज १९३६ ई०

४. ऋण पाई (π) मेसान

$$भार = \frac{१}{६·६८}$$

अर्ध जीवनकाल $१०^{-८}$ से०

खोज १९४७ ई०

५. ऋण V कण

भार लगभग १·२

अर्ध जीवनकाल $१०^{-१०}$ से०

खोज १९४७ ई०

३. उदासीन पाई मेसान

$$भार = \frac{१}{६·६८}$$

अर्ध जीवन काल $१०^{-१४}$ से०

खोज १९५० ई०

४. उदासीन V कण

भार १·१९

अर्ध जीवनकाल २×१०^{-१०} से०

खोज १९४७ ई०

५. न्यूट्रिनो

भार शून्य

स्थिर

खोंज १९५५ ई०

इलेक्ट्रान (Electron):

सर्व प्रथम जे० जे० थामसन ने विद्युत-विसर्जन से प्रयोगों द्वारा दिखाया कि ऋण विद्युदग्र (negative electrode) से सीधी रेखा में कुछ किरणें निकलती हैं। इन किरणों पर विद्युत का **ऋण**-आवेश रहता है। वास्तव में यह किरणें ऋण-विद्युत के कणों से बनी हैं और इनमें प्रतिदीप्ति का गुण होता है। इस कण को इलेक्ट्रान कहते हैं।

थामसन ने इन किरणों का वेग तथा इनके आवेश और संमात्रा का अनुपात ($\frac{e}{m}$) प्रयोगों द्वारा निकाला। $\frac{e}{m}$ अनुपात सर्वदा स्थिर निकला। अमेरिकन वैज्ञानिक मलिकन (Mullikan) ने शिकागो विश्वविद्यालय में इस कण का परम आवेश (absolute charge) ज्ञात किया जो

४.८×१०^{-१०} स्थि० वै० मा० (स्थिर वैद्युत मात्रक) निकला। इस कण का द्रव्यमान (mass) ८.१×१०^{-२८} ग्राम है। इस प्रकार इलेक्ट्रान का भार हाइड्रोजन परमाणु का १/१८३६ भागहै।

हर परमाणु में इलेक्ट्रान विभिन्न संख्या में रहते हैं। परन्तु सारे इलेक्ट्रान एक से होते हैं चाहे वह हाइड्रोजन ऐसे हल्के तत्व के हों अथवा युरेनियम जैसे भारी तत्व के। तुलना के हेतु इले-क्ट्रान का आवेश १ माना गया है। हाइड्रोजन परमाणु में कक्षा में एक इलेक्ट्रान परिक्रमा करता है। युरेनियम में ६२ इलेक्ट्रान परिक्रमा करते हैं।

इलेक्ट्रान परमाणु के वह अंग हैं जो रासायनिक क्रियाएं एवं परिवर्तन करते हैं। मनुष्य की सारी दैनिक क्रियाएं इलेक्ट्रान द्वारा संचालित होती हैं। विद्युत रूपी ऊर्जा का प्रवाह इलेक्ट्रानों के घूमने से होता है। बिजली के लैम्प के अन्दर तन्तु (filament) में इलेक्ट्रान का प्रवाह होने से वह दहकता है और हमें प्रकाश देता है। हमारे नित्य प्रति जीवन में इलेक्ट्रान बड़े उपयोगी हैं।

इलेक्ट्रान स्थिर कण है, वह किसी दूसरे कण से क्रिया द्वारा ही नष्ट हो सकता है।

प्रोट्रान (Proton):

प्रोटान हाइड्रोजन परमाणु का नाभिक है। सन् १८८६ में जर्मन वैज्ञानिक गोल्डन्सटीन ने विसर्गनली में धन-विद्युत की किरणें देखी थीं। सन् १८९८ में जर्मन भौतिक शास्त्री वियन (Wien) ने इसकी भली प्रकार जाँच की। इस कार्य को और सूक्ष्मता से एस्टन (Aston) ने किया। इन अनुसंधानों से मालूम हुआ कि हाइड्रोजन का आवेशयुक्त परमाणु धन आवेश का सबसे छोटा कण है। इसके पश्चात रदरफोर्ड को कृत्रिम तत्वांतरण-प्रयोगों के समय हाइड्रोजन का घनावेश युक्त परमाणु ज्ञात हुआ।

इन क्रियाओं के बाद रदरफोर्ड ने १९२० में बताया कि धनावेशयुक्त हाइड्रोजन परमाणु एक मूलभूत कण है जो हर परमाणु में उपस्थित है। उन्होंने इसका नाम प्रोटान (Proton) प्रस्तावित किया जिसे विज्ञान-संसार ने शीघ्र स्वीकार किया। प्रोटान, परमाणु की रचना की एक आव-श्यक ईंट है। प्रोटान एक स्थायी कण है।

न्यूट्रान (Neutron):

न्यूट्रान की खोज अंग्रेजी भौतिक शास्त्री जेम्स चेदविक ने १९३२ में की। यह आश्चर्य का विषय है कि न्यूट्रान की खोज के बहुत पहले तीन वैज्ञानिकों ने उसकी विद्यमानता के विषय में भविष्यवाणी की थी। अमेरिका में हारकिंस, आस्ट्रेलिया में मेसन और इंगलैंड में रदरफोर्ड ने यह सुझाव रखा कि एक ऐसा मूलभूत कण होना आवश्यक है जिस पर कोई विद्युत-आवेश न हो और भार में लगभग हाइड्रोजन परमाणु के समान हो। हारकिंस ने इस कण का नामकरण उसकी खोज से पहले ही कर दिया था।

न्यूट्रान की खोज को सफलीभूत करने में दो प्रयोगों का महत्वपूर्ण स्थान है। एक प्रयोग जर्मनी में बोथे एवं बेकर (Bothe and Becker) ने १९३० में किया। दूसरा प्रयोग १९३२ में

फ्रांस में जोलियट-क्यूरी द्वारा किया गया। उस समय इन दोनों निरीक्षणों का सही उत्तर न मिला। उसी समय रदरफोर्ड के शिष्य चेदविक ने दोनों प्रयोगों के बारे में अपना विचार प्रकट किया। उनके अनुसार इन प्रयोगों में ऐसा कण निकलता है जिसका भार हाइड्रोजन के बराबर है परन्तु वह आवेशहीन है।

न्यूट्रान की खोज होते ही उसको एक मूलभूत कण मान लिया गया। खोज के पश्चात बहुतेरी अनुसंधानशालाओं में पहचाना जा चुका है। न्यूट्रान अनेक नाभिकों के साथ क्रिया करता है। यह स्वतंत्र अवस्था में अस्थायी कण है और स्वतः निम्नलिखित रीति से नष्ट हो जाता है :

$$n \rightarrow p^{+} + e^{-}$$

न्यूट्रान प्रोटान इलेक्ट्रान
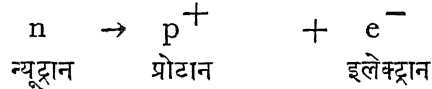
पाजीट्रान (Positron):

पाजीट्रान की खोज अमेरिका के कार्ल अंडरसन (Carl Anderson) ने १९३२ में की। इसकी खोज के पूर्व इंगलैंड में डिरेक (Dirac) ने १९३० में तर्क रखा कि इलेक्ट्रान की भाँति एक धन-आवेश वाला कण प्राप्त होना चाहिये। इसका भार इलेक्ट्रान के समान होना चाहिये और आवेश समान किन्तु विलोम (अर्थात धन) होना चाहिये।

बहुतेरे प्रयोगों के पश्चात पाजीट्रान बड़ी कठिनाई से मिला। अंतरिक्ष किरणों (Cosmic-rays) के द्रव्य पर क्रिया करने से कुछ कणों का जन्म होता है। इन कणों में पाजीट्रान भी पाये गये। इलेक्ट्रान के विपरीत यह द्रव्य में विद्यमान नहीं रहता है। प्रयोगशालाओं में निरीक्षण काल के समय पाजीट्रान की जीवन-अवधि बहुत क्षणिक होती है। कारण यह है कि हमारी पृथ्वी पर इलेक्ट्रान बड़ी मात्रा में उपस्थित रहते हैं। ज्योंही इसका उद्भव होता है अल्प समय पश्चात यह इलेक्ट्रान से मिल कर नष्ट हो जाता है और इस क्रिया द्वारा ऊर्जा या फोटान की उत्पत्ति होती है। इस कारण पाजीट्रान अधिक समय तक स्वतंत्र अवस्था में नहीं रह सकता। फिर भी पाजीट्रान एक स्थायी कण माना जाता है क्योंकि यह स्वयं नष्ट नहीं होता।

मेसान (Mesons) परिवार :

मेसान वह कण है जिनका भार इलेक्ट्रान व प्रोटान के मध्य होता है। अभी तक ५ प्रकार के मेसान की खोज हो चुकी है परन्तु हो सकता है कि भविष्य में और मेसान की भी खोज हो।

धन म्यू (μ) मेसान तथा ऋण म्यू मेसानः

अंतरिक्ष किरणों के द्रव्य पर क्रिया से ये उत्पन्न होते हैं। इन पर आवेश की मात्रा पाजीट्रान व इलेक्ट्रान के बराबर होती है यद्यपि इलेक्ट्रान या पाजीट्रान से २१० गुना भारी होते हैं। ये अस्थिर कण है जिनका अर्ध जीवन काल २×१०^{-६} से० है। धन (μ) मेसान इस क्रिया द्वारा एक पाजीट्रान तथा दो न्यूट्रिनों देता है। इसी प्रकार ऋण म्यू मेसान एक इलेक्ट्रान एवं दो न्यूट्रिनो उत्पन्न करता है।

इनकी खोज १६३६ में एंडरसन तथा नेदर मेयर ने की थी।

धन पाई (π) मेसान एवं ऋण पाई (π) मेसानः

यह मेसान भी अंतरिक्ष किरणों द्वारा द्रव्य पर क्रिया स्वरूप उत्पन्न होते हैं। इनकी खोज १६४७ में इंगलैंड के पौवेल (Powell) ने की थी। इन पर आवेश की मात्रा म्यू (μ) मेसान के समान होती है परन्तु यह उनसे कुछ भारी होते हैं। पाई मेसान इलेक्ट्रान से २७५ गुना भारी होते हैं।

पाई (π) मेसान भी अस्थिर कण है और शीघ्र ही म्यू (μ) मेसान में परिणित हो जाते हैं। इसका अर्ध जीवन काल $१०^{-८}$ से० है।

$$\pi^{+} \rightarrow \mu^{+} + \text{न्यूट्रिनो}$$
$$\pi^{-} \rightarrow \mu^{-} + \text{न्यूट्रिनो}$$
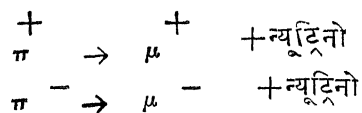
सर्वप्रथम पाई मेसान की कल्पना जापानी भौतिक शास्त्री युकावा (Yukawa) ने की थी। उन्होंने नाभिक की स्थिरता को समझाने के लिए इस कण की उपस्थिति का सुझाव रखा।

उदासीन पाई (π) मेसानः

इसकी खोज १६४० में हुई। यह इलेक्ट्रान ने २६३ गुना भारी है। इस प्रकार यह धन एवं ऋण पाई (π) मेसानों से थोड़ा हल्का है। इसका अर्ध जीवनकाल अत्यन्त सूक्ष्म है ($१०^{-१४}$से०)। यह स्वतः दो फोटान में परिणित हो जाता है।

$$\mu^{\circ} \rightarrow \text{फोटान} + \text{फोटान}$$

वी (V) कणः

यह अंतरिक्ष किरणों के निरीक्षण द्वारा देखे गये। ये प्रोटान से अधिक भारी होते हैं। इनका भार इलेक्ट्रान से २,२०० गुना होता है। वी (V) कण धन आवेश युक्त, ऋण आवेश युक्त एवं उदासीन अवस्था में पाये गये हैं। यह अत्यन्त अस्थिर कण है। यह संभव है। कि अभी कुछ और वी (V) कणों की खोज हो।

न्यूट्रिनो (Neutrino):

इस कण की कल्पना स्वीटजरलैंड के वैज्ञानिक पाउली (Pauli) ने की। इस कण को आवेश रहित और इसका भार इलेक्ट्रान से भी बहुत न्यून समझा गया। प्रायः रेडिय-धर्मी तत्वों के रूपान्तर द्वारा इलेक्ट्रान एवं पाजीट्रान उत्पन्न होते हैं। इस क्रिया को समझाने के हेतु न्यूट्रिनों की कल्पना की गई थी। सन् १६५५ में केलीफोर्निया, अमेरिका में इस खोज की पुष्टि निरीक्षण द्वारा सम्भव हो सकी।

प्रति-प्रोटान (Anti-Proton):

पाजीट्रान अथवा धन इलेक्ट्रान की खोज के पश्चात् वैज्ञानिक ऐसा कण ढूढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे जो प्रोटान का संभारी हो परन्तु उसमें समान ऋण आवेश हो। १६५५ में केलीफोर्निया में

सेग्रे (**Segre**) एवं चेम्बरलेन (Chamberlaine) इस कण की खोज में सफल हुए। इसका नाम ऐंटी प्रोटान (Anti Proton) या प्रति प्रोटान रखा गया। इन दोनो वैज्ञानिकों को १६५६ का भौतिकी नोबेल पुरस्कार इसी खोज पर प्रदान किया गया है।

प्रति लेम्बडा (Anti Lambda) **अथवा प्रति-द्रव्य** (Anti-matter):

सन् १६५८ में इस कण की खोज की गई। सर्वप्रथम यह कण केलीफोर्निया विश्वविद्यालय लारेंस विकिरण अनुसंधान शाला (Lawrence Radiation Laboratory) में लिये गये निरीक्षण चित्र में देखा गया। इसके गुण न्यूट्रान के विपरीत हैं। इसी कारण इसका नाम प्रति-द्रव्य या प्रति-लैम्बडा रखा गया। १६५६ में फिर यह दूसरी बार देखा गया।

प्रति-लैम्बड़ा अस्थिर कण है और शीघ्र ही प्रति-प्रोटान में परिणित हो जाता है। ||

उपरोक्त कणों की खोज हमारे समक्ष है। परन्तु अभी क्या मालूम कितने कण और खोजे जायँ। न जाने भविष्य में और क्या क्या शोधें हों।

(१०६ वें पेज का शेष)

लिपिता का और वाह्य वातावरण में मन्द गति से होने वाले भौतिक-रासायनिक परिवर्तन से समंजित होने का गुण है। इन गुणों से परिपूर्ण द्रव्य के संश्लेषण की कल्पना ऐसे सब ग्रहों की सतह पर की जा सकती है जिन पर पानी की भांति का कोई द्रव हो जिसके माध्यम से विभिन्न अणुओं को पास-पास आने का अवसर मिले, पास में सूर्य की भाँति का ऊर्जा-स्रोत हो जहां से पारबैंगनी विद्युत-चुम्बकीय तरंगों के रूप में ऊर्जा प्राप्त हो, जिसके वातावरण की भौतिक-रासायनिक स्थितिओं में परिवर्तन मन्द गति से होता हो और अणु-विकास के लिये लगभग ४००—५०० करोड़ वर्ष मिलें। हाँ, इन विभिन्न ग्रहों पर संश्लेषित प्रोटोप्लाज्म का रासायनिक संयोजन और उससे विकसित जीवों की आकृति पृथ्वी के प्रोटोप्लाज्म और यहाँ के जीवों के अवश्य भिन्न होगी।

कृषि-रसायन—एक झाँकी

डा० शिवगोपाल मिश्र

सभ्यता के आदिकाल से कृषि कर्म होता आया है और अनेक ऐसे सिद्धान्त एवं कारण ढूँढ निकाले गये हैं जिनके द्वारा अधिकाधिक उपयोगी अन्नों का उत्पादन होता रहा है। सम्भवतः मानव जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना कृषि है। उसके न करने पर सम्पूर्ण विश्व क्षुधा की अग्नि से स्वयमेव भस्म हो सकता है।

प्राचीन इतिहास के पृष्ठों में कृषि का बड़ा ही मनोहारी उल्लेख मिलता है। रोम में ईसा की तीसरी शती से ईसा की प्रथम शती तक पाँच प्रसिद्ध कृषि-वैज्ञानिक, कैटो, वैरो, वर्जिल, कालुमेला तथा प्लिनी हुये जिन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं जो यूरप के विभिन्न देशों में सोलहवीं शती तक अनूदित हो-होकर कृषि क्षेत्र में पथ-प्रदर्शन करती रहीं। भारत में कृषि का विकास ईसा की कई शताब्दियों पूर्व से हर्ष के काल तक होता रहा। फिर मुगलकाल में उसे वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की गई। प्राचीन कृतियों में पराशर मुनि द्वारा रचित कृषि-पाराशर हमारे देश का प्रमुख कृषि-ग्रन्थ है। किन्तु अन्य पाश्चात्य देशों की ही भाँति भारत में भी वास्तविक वैज्ञानिक कृषि का विकास नहीं हो पाया था। जिस प्रक र देश-विदेशों के कीमियगार लोहे को सोने में परिवर्तित करने के प्रयासों में शतियों उलझे रहे उसी प्रकार कृषि-क्षेत्र में भी विचारकों का अधिकांश ध्यान भूमि उर्वरता के लिये विभिन्न खादों के प्रयोग तक ही सीमित रहा।

किन्तु दोनों ही श्रेणियों के वैज्ञानिकों को "रसायन शास्त्र" के माध्यम से सफलता मिली। कृषि, जिसका विस्तार अनन्त है, सर्वप्रथम रासायनिक दृष्टिकोण से कृषि-विज्ञान के रूप में पल्लवित हुई। आज तो कृषि-विज्ञान की अनेक प्रशाखायें हो गई हैं और कृषि-रसायन अंगमात्र बन गया है किन्तु फिर भी वह अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग के रूप में प्रतिष्ठित एवं मान्य है। रसायन वेत्ताओं के ही अथक प्रयासों से कृषि में उर्वरकों को प्राथमिकता प्राप्त हुई है और विश्व में उर्वरकों के स्रोतों की खोजें हुई हैं। आज विश्व के अग्रणी राष्ट्र इन्हीं उर्वरकों का उत्पादन करना गौरव की बात समझते हैं। रसायन शास्त्रियों ने ही सूक्ष्म तत्वों की महत्ता को कृषि-पद्धति में स्वीकृत दिलाई। उन्होंने ही फार्म पर पैदा होने वाली कृषि सामाग्रियों के उचित उपयोग के लिये "फार्म केमर्जी" या "फार्म-विज्ञान" की नींव डाली। भूमि-सुधार के कार्य में भी वे अग्रणी रहे हैं और जीव-रसायन शास्त्रियों ने तो मानों कृषि को नई दिशा ही प्रदान की हो। अब सम्पूर्ण विश्व में विज्ञान की नवीन खोजों को कृषि में सर्वप्रथम प्रयुक्त करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार जहाँ पहले रसायन शास्त्र ही कृषि का पोषण करता, अब विज्ञान के सभी अंग उसे लाभ पहुँचाने लगे हैं। कृषि में "परमाणु शक्ति" का प्रयोग प्रायः इसी दिशा में प्रथम एवं सफल प्रयास कहा जा सकता है। सारांश यह कि कृषि शास्त्र का अध्ययन अत्यन्त विस्तृत हो चुका है।

कृषि-रसायन का प्रारम्भ बेकन (१५६१-१६२६ ई०) के सूक्ष्म निरीक्षण एवं तथ्यों के विवेचन पर जोर देने की प्रक्रिया से होता है। सन् १६५६ के लगभग दो विचार धारायें थीं—

(१) नवीन कृषि का विकास तथा (२) पौदों के भोजन की व्यवस्थित खोज। ये दोनों धारायें सन् १८४० तक पृथक-पृथक बहती रहीं। लीबिग ने अन्ततः वैज्ञानिक कृषि की नींव डाली।

नवीन कृषि के अन्तर्गत पाश्चात्य देशों में पर्ती-प्रथा का अन्त करके तिसाली खेती में हरी फसलों को स्थान दिया गया। पैलिसी ने १५६३ ई० में एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त—लवण सिद्धान्त, की स्थापना की जिसके अनुसार फसलें मिट्टी से लवण ग्रहीत करती हैं और डंठलों को मिट्टी में जोत देने से 'लवण' की पुनर्स्थापना होती है। इसके विपरीत फ्रांसिस बेकन का विश्वास था कि पानी ही पौदों का प्रमुख खाद्य पदार्थ है। मिट्टी तो उन्हें शीत या ताप से बचाती भर है। वान हेलमाण्ट (१५७७-१६४४ ई०) ने भी पानी को पौदों का एकमात्र खाद्यपदार्थ स्वीकृत किया। इसके कुछ वर्षों बाद ग्लाबर ने एक नवीन सिद्धान्त निकाला जिसके अनुसार "शोरा" ही वनस्पतियों के लिये आवश्यक तत्व था। उसने तर्क प्रस्तुत किया कि यह शोरा पशुओं के मल तथा मूत्र में पाया जाता है अतः यह पौदों में अवश्य वर्तमान रहा होगा क्योंकि पशु चारे पर निर्भर रहते हैं। उसने घोषणा की कि शोरे के प्रयोग से अन्नोत्पादन में वृद्धि आती है। सन् १६९९ में जान वुडवर्ड ने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि तरकारियाँ पानी से नहीं वरन् पृथ्वी से उत्पन्न हैं। सन् १७५५ ई० में इंगलैंड में स्थापित "एडिनबरा सोसाइटी" ने फ्रांसिस होम को इस हेतु नियुक्त किया कि वह यह देखें कि रसायन शास्त्र के माध्यम से कृषि सिद्धान्त कहां तक प्रतिपादित होते हैं। सचमुच कृषि-रसायन की यह प्रथम नींव थी। अपने अन्वेषणों से होम ने उर्वर मिट्टियों में "तैल" की कल्पना की और पौदों के लिये छः उपयोगी कारण बताये – वायु, जल पृथ्वी, लवण, तैल तथा अग्नि। सन् १७६१ में स्वीडेन के प्राध्यापक वैलेरियस ने पौदों का रासायनिक विश्लेषण किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि पौदों का खाद्य स्रोत "ह्यूमस" है। इसके पश्चात पौदों में "क्षार" की उपस्थिति सर्वमान्य हुई। इसके निराकरण के लिये सन् १८०४ ई० में जेनेवा के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक थेयोडोर सासरे ने यह सिद्ध किया कि ह्यूमस में भी वही क्षार होते हैं जो पौदों में वर्तमान हैं परन्तु प्राप्त राख का भार मिट्टी तथा पौदे की उम्र पर निर्भर करता है।

सन् १८३४ ई० में जे० बी० बोसिंगाल्ट ने, जो दक्षिणी अमेरिका का एक साहसिक पर्यटक था, अपने खेतों में प्रयोग प्रारम्भ किये। उसने सर्वप्रथम वैज्ञानिक विधियों को क्षेत्रीय प्रयोगों में व्यवहृत किया और महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त किये। परन्तु इस शताब्दी की सबसे आश्चर्यजनक एवं क्रान्तिकारी घटना थी जर्मनी के सुप्रसिद्ध कार्बनिक रसायनज्ञ लीबिग की घोषणा, जिसमें उसने बड़े ही मार्मिक शब्दों में समकालीन वनस्पति शास्त्रियों की आलोचना करते हुये 'ह्यूमस सिद्धान्त' पर बज्रपात किया। उसने कहा, "रसायन शास्त्रियों के समस्त विवेचन निष्फल तथा वृथा हैं क्योंकि बड़े से बड़े वनस्पति शास्त्रियों को भी कार्बोनिक अम्ल, अमोनिया, अम्ल तथा क्षार शब्द ऐसी ध्वनियाँ प्रतीत होती हैं जैसे उनके कोई अर्थ ही न हों और ऐसी भाषाओं के शब्द लगते हैं जिनके कोई भाव न हों।" उसने दलील रखी कि पौदों के पास कार्बोनिक अम्ल का अक्षय भण्डार है किन्तु यदि पौदों के उगते समय मिट्टी में ही वह उत्पन्न होती रहे तो समय की बचत होती है। ह्यूमस का वास्तविक कार्य है कार्बन डाइआक्साइड पैदा करना जो मिट्टी के अविलेय पदार्थों को विलेय करती है। अमोनिया के रूप में पौदे नाइट्रोजन ग्रहण करते हैं जो खादों से अथवा वायुमण्डल से ग्रहीत है। पृथ्वी को उर्वर रखने के लिये यह आवश्यक है कि नाइट्रोजन तथा अन्य

खनिज पदार्थ जो पृथ्वी से अपहरित हो चुके हैं, खाद के रूप में मिट्टी में मिला दिये जायं। यही "लीबिग का खनिज-सिद्धान्त" है जिसके अनुसार खेतों की फसलों में वृद्धि या कमी खाद के रूप में डाले गये खनिजों की प्रचुरता या न्यूनता पर निर्भर है।

लीबिग की इस घोषणा से कृषि में उर्वरकों एवं खादों को अत्यधिक प्रश्रय मिला। परन्तु इस घोषणा में कुछ त्रुटियाँ थीं जिनकी ओर लाज तथा गिलबर्ट ने संकेत किये। सन् १८५० ई० में 'वे' महोदय ने खनिजों की विलेयता को आवश्यक बताया। बाद में 'नाप' ने जलीय प्रयोगों से यह निश्चित किया कि पौदों के जीवन के लिये नाइट्रोजन, फासफोरस तथा पोटैशियम के अतिरिक्त कैलशियम, मैगनीशियम, लौह, गंधक, कार्बन, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन की आवश्यकता होती है। फिर माजे, वारिंगटन, राउलिन, सामर-लिपमान तथा आर्नन ने अनेक सूक्ष्म तत्वों को पौदों के उचित विकास के लिये आवश्यक बताया।

यह भली-भाँति ज्ञात हो चुका है कि पौदों के लिये आवश्यक तत्व तीन स्रोतों से प्राप्य हैं। प्रथम वायुमण्डल से, द्वितीय जल तथा तृतीय मिट्टी से। पौदों का ९०%प्रकाश संश्लेषण से निर्मित पदार्थ से बना होता है। १०% मिट्टी के तत्वों से निर्मित होता है। परन्तु मिट्टी के तत्व बड़े ही प्रभावकारी होते हैं और उनमें तनिक भी अन्तर आने पर उपज में भारी कमी आती है। यही कारण है कि वर्तमान काल में मिट्टी में वर्तमान तत्वों पर अत्यधिक बल दिया जाता है।

मिट्टी में तत्वों की परीक्षा के लिये रसायन शास्त्र की विश्लेषणात्मक पद्धति का अनुसरण किया जाता है। ऐसे विश्लेषणों से भूमि में वर्तमान समस्त तत्वों की मात्रायें ज्ञात की जाती हैं। फिर उपलब्ध तत्वों की जाँच होती हैं। भूमि से पैदावार की प्राप्ति इन्हीं उपलब्ध तत्वों पर निर्भर करती है। विशेषतः उन तत्वों को जिन्हें सूक्ष्म-तत्वों की संज्ञा प्रदान की जाती है बड़े महत्व के हैं। उनकी अधिकता, न्यूनता अथवा उपलब्धि के फलस्वरूप फसलों में नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं जिनसे अन्नोत्पादन में भारी कमी आ जाती है। बोरन, मैंगनीज, मालिब्डनम, लौह तथा ताम्र कुछ ऐसे ही तत्व हैं। इन तत्वों की पूर्ति के लिये या तो इनके खनिज या लवणों की अत्यल्प मात्रा अन्य उर्वरकों के साथ डाली जाती है अथवा घोल के रूप में पत्तियों में इनका छिड़काव किया जाता है।

कृषि-रसायन ने आवश्यक तत्वों की खोज के ही सिलसिले में उर्वरक-उद्योग को अत्यन्त प्रशस्त किया है। प्रायः सभी राष्ट्रों के पास संश्लिष्ट नाइट्रोजन निर्मित करने के बड़े-बड़े कारखाने हैं। हमारे देश में सिंदरी के अतिरिक्त अन्य कारखाने भी बन रहे हैं। फासफेट उर्बरकों के लिये चट्टानीय फासफेटों को प्रयुक्त किया जाता है। हड्डी के चूरे की ओर भी सबों की दृष्टि गई है। इन उर्वरकों के उत्पादन से कृषि-रसायन उतना सम्बद्ध नहीं जितना उनके भूमि में डाले जाने की विधियों तथा मिट्टियों और फसलों में उनकी प्रतिक्रिया से सम्बद्ध है। कृषि-रसायन का यह प्रमुख कार्य है कि वह प्रति एकड़ में डाली जानी वाली उर्वरक-मात्रा का निश्चय करे, भूमि तथा जलवायु के अनुसार उर्वरक निर्धारित करे और अन्ततः विभिन्न उर्वरकों की उपयोगिता का परीक्षण करे। इसी सम्बन्ध में सूक्ष्म तत्वों को उर्वरकों के रूप में डाले जाने की सम्भाव्यताओं पर भी खोज की जाती है।

भूमि-निर्माण या मिट्टियों के विकास की प्रक्रिया भी कृषि-रसायन का महत्वपूर्ण अङ्ग है। इस दिशा में रूस, अमेरिका तथा इङ्गलैंड में प्रचुर कार्य हुआ है। भारतीय मिट्टियों का वर्गीकरण इसी प्रकार की विकास-प्रक्रिया के अध्ययन द्वारा किया जा रहा है। भूमि-वर्गीकरण तथा मानचित्र निर्माण भी इसी दिशा के अंग हैं। भारत भर में अनेक भूमि-परीक्षण प्रयोग-शलायें स्थापित की गई हैं जहाँ मिट्टियों की रासायनिक, भौतिक तथा जीव-रासायनिक परीक्षायें की जाती हैं।

जीव-रसायन कृषि रसायन की ही एक शाखा है। मिट्टियों में नाइट्रेट का निर्माण विविध जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा सम्पन्न होता है। इन जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं का अध्ययन विविध संवर्धाशों के माध्यम से किया जाता है। हरी फसलों में द्विदलीय फसलों की जड़ों में ग्रंथियाँ होती हैं जिनमें वायुमण्डल का नाट्रोजन स्थिर होता रहता है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण अन्य जीवाणुओं यथा एजोटोबैक्टर एवं पैस्टोरियम द्वारा भी स्वत: सम्पादित होता है। कृषि-रसायन में इस प्रकार की प्रक्रिया का अध्ययन होता है।

फसलों के रोगों तथा हानिकारक कीट-पतंगों को नष्ट करने के लिये कृषि-रसायन नवीन रासायनिक उपकरण प्रदान करता है। अनेक कीटमारक रासायनिक यौगिकों का निर्माण किया जा चुका है जिसके उपयोग से फसलों की रक्षा की जा सकती है। शस्यों के अनेक रोगों का पता लगाकर उनका रासायनिक उपचार किया जाने लगा है। हानिकारक घासों का विनास भी इसी प्रकार से किया जाता है।

कृषि-रसायन के द्वारा भूमि-संरक्षण एवं सुधार का अनुपम कार्य किया जाता है। ऊसरों के उर्वरीकरण में जिप्सम, गंधक तथा अन्य प्रकार के रासायनिक पदार्थों का प्रयोग होता है। भूमि-संरक्षण में ह्यूमस की वृद्धि के लिये नवीन साधन ढूँढ़े गये हैं। रेगिस्तानों एवं रेतीली मिट्टियों के सुधार तथा ऊसरों के लिये भी बहुसंश्लिष्ट प्रभावक (सिन्थेटिक पॉलीएलेक्ट्रोइलाइट या सॉइल कण्डीशनरों) की नवीन खोज की गई है। भूमि के कणों के परस्पर बद्ध रखने वाले और अनेक पदार्थ खोजे गये हैं।

कृषि से प्राप्त विभिन्न पदार्थ विशेषतया सेल्यूलोस, तेल अथवा स्टार्च का बृहद् मात्रा में निर्माण एवं उद्योगों में उनकी प्रयुक्ति के लिये "फार्म केमर्जी" अथवा फार्म-रसायन का विकास किया गया है।

कृषि रसायन की इसी महत्ता को ध्यान में रखकर हमारे देश में १६०० ई० के आसपास वैज्ञानिक कृषि का सूत्रपात हुआ। सर्व प्रथम जानवोयेल्कर, फिर लेदर तथा रायल कमीशन और अन्त में अपनी राष्ट्रीय सरकार के सुझावों से कृषि प्रारम्भ की गई। पहले पूसा (बिहार) में कृषि प्रायोगिक क्षेत्र की स्थापना की गई। बाद में भूचाल से प्रभावित होने पर दिल्ली स्थित पूसा में वही कार्य आगे बढ़ा। अब तो भारतीय कृषि अनुसन्धान विद्यालय के रूप में वह अत्यन्त विस्तृत हो चुका है और न केवल कृषि-रसायन वरन् कृषि-विज्ञान के अन्य अंगों पर उच्चस्तरीय अनुसन्धान कार्य होता है।

उच्च बहुलक या हाई पालीमर

डा० रामदास तिवारी

ऐतिहासिक

वायरस ऐसे पदार्थ हैं जो जड़ पदार्थों के समान व्यवहार करते हैं और चेतन पदार्थों की भाँति जीवित प्राणियों के समान भी क्रियायें करते हैं। इन्हें वास्तव में जड़ और चेतन के बीच की कड़ी समझा जा सकता है। अब यह सम्भव हो गया है कि इन पदार्थों को केलासित रूप में प्राप्त कर लिया जाय या फिर इच्छानुसार जीवित अवस्था में निर्मित कर लिया जाय। इस वैज्ञानिक सफलता के परिणामस्वरूप जीवन प्रक्रम के सम्बन्ध की उलझी हुई गुत्थी कुछ सुलझती दृष्टि-गोचर होती है। अभी तक जीवित वस्तुओं के सृजन के हेतु एक ऐसी शक्ति की कल्पना की जाती थी जो मानव सामर्थ्य से परे की वस्तु थी किन्तु इस क्षेत्र में जो शोधकार्य हुआ है उससे यह आशा बंध गई है कि मानव जीवन के भेद के रहस्य का उद्घाटन कर सकेगा। इस प्रकार बहुलक-विज्ञान का महत्व बढ़ गया है।

जर्मनी के ईमिल फिशर आधुनिक बहुलक-रसायन के जनक कहे जाते हैं।। सन् १६१४-ई० में उन्होंने पालीपेप्टाइड का निर्माण किया। इसी क्षेत्र में लगभग इसी समय रूस के लेवडेव ने ब्यूटाडाइन का निर्माण किया और उसे संयोजन विधि से रबर में परिवर्तित किया। हाल ही में विगनीन ने संयोजन-विधि से एक अष्टसदस्यीय वलय के पालीपेप्टाइड का निर्माण किया जिसका नाम आक्सीटोसीन है। यह जीवन की प्रक्रियाओं पर माईक्रोग्राम सान्द्रण में भी प्रभावी सिद्ध हुई है। इस खोज के लिये इन्हें सन् १६५५ ई० में इन्हें नोबिल पुरस्कार भी प्रदान किया गया। सन् १६५३ में बहुलक सम्बन्धी गवेषणाओं पर स्टैनडिंगर को सन् १६५७ ई० में न्यूक्लिइक अम्लों की संरचना पर प्रकाश डालने के लिये सर अलेक्जेण्डर टाड को और इनसुलीन के अणु की पूर्ण संरचना ज्ञात करने के लिये सैंगर को नोबिल पुरस्कार मिले। सैंगर का कार्य कठिन था क्योंकि इनसुलीन के एक अणु में ७७७ परमाणु होते हैं और उन परमाणुओं की स्थिति का औचित्य ज्ञात करना एक दुरूह कार्य था।

औद्योगिक क्षेत्र में अनेकों महत्वपूर्ण बहुलकों पर कार्य हुआ है। इनमें से प्लास्टिक, रेजिन, रबर, बेकलाइट, यूरिया, मेलामीनें, एल्कालाइडें, एपोक्सी रेजिनें, पोलीस्टाइरीनें, पोली-मीथिल मीथाक्रिलेटें इत्यादि हैं। इन सब सफल प्रयोगों के बाद भी सन् १६३० तक बहुलकों के सम्बन्ध में प्राथमिक और सबसे महत्वपूर्ण तथ्य अज्ञात ही रहे। प्रारम्भिक कालिल-वैज्ञानिकों ने बहुलकों का संयोजन-कलिलों के वर्ग में रखा किन्तु स्टैनडिंगर ने बताया कि ये यौगिक सहयोजनीय हैं जिनका अणुभार अत्यधिक है। मायर और मार्क ने एक्स-रे सबंधी अध्ययन से स्टैनडिंगर के कथन की पुष्टि की। परिणामस्वरूप कलिल-वैज्ञानिकों की धारणा निमूल सिद्ध हुई और कार्बनिक

विज्ञान में संरचना सम्बन्धी खोजों की सहायता से बहुलको की रासायनिक क्षेत्र में प्रतिष्ठा हुई।

बहुलकों का निर्माण:

बहुलक निर्माण क्रिया दो विधियों से होती है, पहली क्रिया में कई अणु परस्पर के संयोग से एक बृहत अणु का निर्माण करते हैं जिसे **बहुसंघनन** (Polymerisation) कहते हैं। दूसरी क्रिथा में एक अणु में दूसरा अणु मिलता है फिर इन दो से तीसरा और इन तीन से चौथा और इसी प्रकार क्रिया चलती रहती है और एक बृहत अणु का निर्माण हो जाता है। इस क्रिया को योगशील बहुलकीकरण कहते हैं। पहली क्रिया से निर्मित बहुलकों में नाइलोन एक पॉली एमाइड और टेरिलीन (एक पॉली एस्टर) है और दूसरी क्रिया से पॉलीस्टिरीन और पॉली वीनाइल क्लोराइड-एसीटेट के बहुलक हैं।

बहुसंघनन की क्रिया से बहुलकों के निर्माण की क्रिया सरलता से समझी जा सकती है। विशेष रूप से निम्नलिखित तीन विषयों के सम्बन्ध में प्रयोगों से सारा पता लग जाता है। ये तीन विषय हैं

(१) **बहुसंघनन गतिज विज्ञान** (२) आयाम वाले बहुलकों का **श्लिषीकरण** और (३) अणुभार का विभाजन, जिसमें में यह मान लिया जाता है कि **बहुसंघनन** की क्रिया क्रमबद्ध प्रक्रिया है और दिये गये भाग लेने वाले समूहों में होने वाली आन्तरिक रासायनिक प्रक्रिया अणु के आकार पर निर्भर नहीं है। इन तीनों विषयों पर सन्तोषजनक कार्य किया गया है। प्रयोगों से सभी सैद्धान्तिक परिणामों की पुष्टि होती है।

योगशील बहुलकीकरण क्रिया के विषय में जानने के लिये विनाइल बहुलक क्रिया पर अधिक काम हुआ है। सन् १९३० के लगभग यह निश्चित हो गया कि यह श्रृंखलवद्ध प्रक्रिया है। यह बहुलक क्रिया निम्न तीन क्रमों में सम्पन्न होती है।

(१) प्रारम्भिक $M \rightarrow M^{*}$

(२) प्रसरित $M^{*}_{n} + M \rightarrow M^{*}_{n+1}$

(३) अन्तिम $M^{*}_{m} + M^{*}_{n} \rightarrow M_{m+n}$ अथवा $M_{m} + M_{n}$
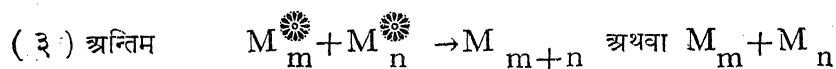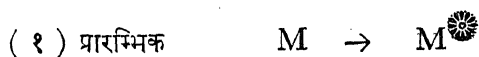
प्रारम्भिक :

प्रारम्भ ऊष्मा, प्रकाश रसायन या मुक्त मूलक विधि में से किसी से भी हो सकता है। उत्प्रेरक के बिना ऊष्मा द्वारा अथवा प्रकाश द्वारा प्रारम्भ की गई क्रियाओं के द्वारा प्रायोगिक तथ्य प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई होती है। इस कारण से सिद्धान्त स्थापन में भी बाधा पड़ जाती है।

वीनाइल बहुलक क्रिया में अनेकों ऐसे पदार्थों का पता लगा है जो ऐसे मुक्त मूलकों के सृजन में समर्थ है जो शक्तिशाली उत्प्रेरक सिद्ध हुये हैं। इनमें बेंजॉयल परऑक्साइड और एजो-

क्सि आइसो ब्यूटिरोनाइट्राइल प्रमुख हैं। यदि अनुनादन (रेजोरेन्स) द्वारा मुक्त मूलकों को प्रतिस्थापित कर दिया जाय तो वे उत्प्रेरण में सफल नहीं हो सकते। उदाहरणार्थ ट्राइफीनाइल मीथिल मूलकों द्वारा वीनाइल या एलाइल एसीटेटों के बहुलक नहीं बन पाते। बेंजाइल परआक्साइड में O—O बंधन टूट जाता है और $C_6\ H_5\ C\ O\ O$ के दो मूलक बनते हैं जो बाद में दो फीनाइल मूलकों को जन्म देते हैं। इन दोनों मूलकों से बहुलक बनने में सहायता मिलती है। एजो बिस-आइसो ब्यूटिरोनाइट्राइल में दोनों C – N के बन्धन टूट जाते हैं और दो

$$\begin{matrix} H_3C \\ H_3C \end{matrix} > \begin{matrix} C+ \\ | \\ CN \end{matrix}$$

मूलक बन जाते हैं जो बहुलक बनाने में सहायक होते हैं।
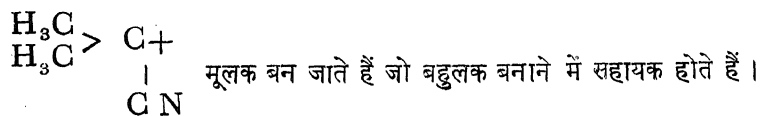
प्रसरित :

सक्रिय केन्द्र के विकास की क्रिया पर प्रयोग किये गये हैं। प्रकाश-रसायन की विधि से चरम प्रसरण गति ज्ञात कर ली जाती है। साधारण मोनोमरों के लिये आवृति मूलक १०६ और सक्रियकरण ऊर्जा लगभग ५ किलो केलरी होती है।

ताप के सिद्धान्त के अनुसार मोनोमरों के बहुलक में परिवर्तित होने पर मुक्त ऊर्जा का ह्रास होता हैं। △ H का मान ऋणात्मक होता है अर्थात् बहुलकीकरण की क्रिया में ताप उत्पन्न होता है। मोनोमर में सभी प्रकार की स्वतन्त्र्य संख्या रहती है किन्तु बहुलकों में सब प्रकार के स्वातन्त्र्य नष्ट हो जाते हैं, केवल कुछ शिथिल रूप में दोनों प्रकार के आन्तरिक घूर्णन स्वातन्त्र्य संख्या और कम्पन संख्या स्वातन्त्र्य ही रह जाते हैं। इस प्रकार बहुलकीकरण से एनट्रापी का ह्रास हो जाता है और मुक्त ऊर्जा समीकरण $\triangle F = \triangle H - T \triangle S$ में एनट्रापी और एनथेलपी विपरीत दिशाओं में होते हैं। सम्भव हो सकता है कि किसी ताप पर एक इनमें से एक दूसरे से सबल सिद्ध हो। ऐसे ताप पर बहुलक मोनोमर से निर्बल होगा और बहुलक फिर से मोनोमरों में विभाजित हो जावेगा। इस ताप के समीप के क्षेत्र में प्रयोग करके बहुलकीकरण का ताप और एनट्रापी ज्ञात की सकती है।

अन्तिम :

आयनों द्वारा किये गये बहुलकीकरण में अन्तिम क्रम एक-आणुक होता है। मुक्त मूलकों द्वारा उत्प्रेरित बहुलकीकरण द्वि-आणुक होता है जहाँ उत्प्रेरक निर्भरता गति उत्प्रेरक के सान्द्रण के बर्गमूल के अनुपात में होती है। अन्तिम क्रिया संयोजन से होती है या असमानुपातिक से, इस विषय में मतभेद है।

श्रंखलाबद्ध स्थानान्तरण:

विकसमान मुक्त मूलक कभी-कभी और बढ़ने की अपेक्षा अपने समीप के किसी अणु से प्रतिकृत होता है और एक "मृत बहुलक" और एक नवीन मुक्त मूलक को जन्म देता है। यह मुक्त मूलक बहुलक के विकास के लिये नवीन सक्रिय केन्द्र बन जाता है यथा :—

$\dot{M}n + CCl_4 \geqslant Mn\ Cl + \dot{C}Cl_3$*

इस समीकरण में Mn विकास क्रम में मुक्त मूलक है, MnCl मृत बहुलक है और $C\ Cl_3$ एक नवीन सक्रिय मुक्त मूलक है। जब ऐसी स्थित उत्पन्न होती है तब बहुलकीकरण की गति और गत्यात्मक श्रंखला-दूरी तो अपरिवर्तित रहती हैं किन्तु आणविक भार घट जाता है।

बहुलक निर्माण में नवीन प्रगति

हाल ही में बहुलक विज्ञान के कुछ विभिन्न क्षेत्रों मे विशेष प्रगति हुई है। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है :

(१) शिल्प बहुलक (ग्रैफ्ट पालीमर) तथा रुद्ध बहुलक(ब्लाक पालीमर)

शिल्प बहुलक निर्माण के लिये एक बहुलक श्रंखला समूह को लेकर उसे किसी दूसरे प्रकार के एकलक पर विकसित किया जाता है। ऐसी स्थिति में एक बहुलक से दूसरे बहुलक का इस प्रकार से मिलन होता है कि पहला दूररे से शाखा के रूप में संलग्न हो जाता है। इस प्रकार अलग-अलग शाखायें अलग-अलग एकलकों की होती हैं। इस विधि से पॉलीस्टाइरीन की श्रंखला पर मेथिल मीथाक्रिलेट की शाखाओं वाले एक शिल्प बहुलक का निर्माण किया जा सकता है।

रुद्ध-बहुलक के निर्माण के लिये किसी केश नलिका से होकर एकलक दूसरे एकलक में तीव्र गति से प्रविष्ट किया जाता है। केश नलिका के किसी उपयुक्त स्थान पर बहुलकीकरण प्रारम्भ होता है। इस कार्य के हेतु एक अन्य विधि को साधारणतः काम में लाते हैं। इसके लिये पूर्वनिर्मित सीमावर्ती समूह रासायनिक क्रिया से एक दूसरे से सम्बद्ध हो जाते हैं और एक नियंत्रित बहुलक बना देते हैं। इस विधि से टेरीलीन और पॉलीइथिलीन आक्साइड के संयोग से बहुलक बनाये गये हैं। इस प्रकार निर्मित बहुलक लगभग टेरीलीन के समान ही केलासित होता है किन्तु उसमें लचीलापन, आर्द्रता की पुनर्प्राप्ति और रंगों के साथ व्यवहार का गुण अधिक होता है।

(२) रेडियो-समावयवों का प्रयोग

उच्च बहुलक रसायन की समस्याओं पर प्रकाश डालने के लिये C^{14} और S^{35} का विशेष प्रयोग किया गया है। इन प्रयोगों से प्रारम्भ की चरम गति और क्षमता, अम्ल की प्रक्रिया की प्रकृति और मृत बहुलक के साथ श्रंखला के स्थानान्तरण की प्रकृति आदि का मापन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ बेंजोइल पर ऑक्साइड से उत्प्रेरित पॉलीस्टियरीन उत्प्रेरण के स्थान से असम्बद्ध है, उत्प्रेरण चाहे बेंजीन बलय पर हो चाहे कार्बोनिल कार्बन पर। इससे सिद्ध होता है कि $C_6\ H_5$ COO और $C_6\ H_5$ दोनों ही बहुलकीकरण उत्प्रेरण करते हैं।

(३) बद्ध (ट्रैप्ड) मुक्त-मूलक

जब रासायनिक क्रिया से दीर्घजीवी मुक्त मूलकों का सृजन होता है तब अन्तिम गति क्षीण हो जाती है। इस प्रकार बंधन में पड़े मुक्त मूलकों का अस्तित्व भौतिक और रासायनिक विधियों

से ज्ञात किया जा सकता है। बन्धक मुक्त मूलकों के प्राप्त करने के लिये किसी एकलक पायस पर उच्च शक्ति विकीर्ण करते हैं। इस विधि से प्राप्त मुक्त मूलकों का सदुपयोग, स्थानान्तरण ऐसे प्रयोगों के लिये विशेष सुविधाजनक है। और उसके पायस में जिसमें मुक्त मूलक हों, दूसरे एकलक के उपयोग से रुद्ध बहुलक का निर्माण किया जा सकता है।

(४) विशिष्ट विन्यासमय बहुलक

सन् १६५५ ई० में बहुलक रसायन के क्षेत्र में विशेष कार्य विन्यास के बहुलकों पर हुआ। इटैली के बान नाटा और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के जीगलर ने विशिष्ट विन्यासमय बहुलकों का संश्लेषण किया। सभी प्राकृतिक उच्च बहुलकों के अणुओं का विन्यास अद्भुत प्रकार का होता है। लगभग एक शताब्दी तक संश्लेषण में रत रसायनज्ञों के सामने यह एक समस्या के रूप में रहा। प्राकृतिक रबर में केवल 'सिस' और प्रोटीन में केवल 'लीवो' रूप ही हैं किन्तु संश्लेषण विधि से प्राप्त पॉली आइसोप्रीन अणु में 'सिस' और 'ट्रान्स' दोनों रूप बिना किसी क्रम के होते हैं और यही अवस्था साधारण पॉलीस्टियरीन में 'डेक्स्ट्रो' और 'लेवो' रूपों की है। समूहों के विन्यास की इस क्रमहीनता के कारण केलासन जाल में यह बहुलक श्रंखलाये ठीक नहीं बैठतीं और फलस्वरूप इन पदार्थों के केलासन और यांत्रिक गुणों पर बुरा प्रभाव डालती हैं।

सन् १६५५ में जीगलर ने एल्यूमीनियम ट्राईएल्काइल और टाइटैनियम हैलाइड की प्रक्रिया द्वारा उत्प्रेरक का सृजन किया जिसकी सहायता से साधारण ताप और कम दाब पर इथिलीन के बहुलक निर्मित किये गये। इस पोली इथिलीन में विशेष गुण पाये गये यथा उच्च केलासन, उच्च घनत्व, उच्च गलनांक आदि। इसी प्रकार के उत्प्रेरकों की सहायता से पॉली स्टाइरीन आदि प्राप्त की गई। विषमावयवीय उत्प्रेरकों की सहायता से प्राकृतिक रबर का संश्लेषण किया गया जो पॉली आइसोप्रीन है। जीगलर के उत्प्रेरकों पर अधिक कार्य किया गया है क्यों कि यह औद्योगिक महत्व का है।

प्रोटीन सादृश्य यौगिकों का संश्लेषण

पॉलीन्यूक्लियोटाइटो और प्रोटीन सदृश्य यौगिकों के संश्लेषण में आजकल विशेष रुचि ली जा रही है। इन बहुलकों में एक विशेषता यह है कि अन्य विशाल अणुओं की भाँति ये सर्पिल रूप धारण करने की प्रवृत्ति दिखाते है और क्रमहीन रूप धारण नहीं करते बहुलकों के गुणों को समझने के लिये ये सर्पित संरचनायें विशेष महत्व की हैं।

कुछ विलक्षण बहुलक

आजकल कुछ विचित्र बहुलकों का निर्माण किया जा रहा है। पॉली बिनाइल फ्लोराइड की फिल्म पर बाहरी प्रकाश का बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। पॉली कार्बोनेटों का निर्माण किया जा रहा है जिसकी रेखासूची को लकड़ी के मोटे तख्ते में जड़ा जा सकता है। संश्लेषित ऊन का सल्फर क्लोराइड से निर्माण किया जा रहा है। यह भौतिक गुणों में प्राकृतिक ऊन के समान है। अत्यन्त उच्च गलनांक के कार्बनिक यौगिक निर्मित हो रहे हैं। पॉली स्टियरीन के एक समजातीय का गलनांक २६०° सेण्टीग्रेड है।

(शेष १२५ वें पृष्ठ पर)

एशिया में परमाणु अनुसंधान

दक्षिण और दक्षिण-पूर्वी एशिया के बहुत से देश परमाणु के शांतिपूर्ण उपयोग के लिए प्रयोग कर रहे हैं। इन देशों में भारत, बर्मा, लंका, पाकिस्तान और फिलिपाइन प्रमुख हैं। इन देशों में परमाणु शक्ति के विकास के लिए समितियाँ नियुक्त की गयी हैं। कोलम्बो योजना के उन्नत सदस्य देश, इन देशों के वैज्ञानिकों और शिल्पिको को ट्रेनिंग देने के अतिरिक्त अनुसंधान के लिए आवश्यक सामान की भी सहायता देते हैं।

बर्मा का परमाणु शक्ति केन्द्र :

तीन साल पहले बर्मा सरकार ने अपने यहाँ परमाणु शक्ति केन्द्र स्थापित करने का निश्चय किया था। बर्मा अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु शक्ति संस्था का सदस्य है। बर्मा का परमाणुशक्ति केन्द्र १०० एकड़ जमीन पर बनाया जाएगा। इस समय केन्द्र और प्रयोगशाला की इमारतें बनायी जा रही हैं। इस केन्द्र की प्रयोगशाला बर्मा में रेडियो आइसोटोप अनुसंधान करने वाली प्रमुख प्रयोग-शाला होगी। यहाँ पर खेती, चिकित्सा और उद्योगों में उपयोग के लिए आइसोटोपों पर अनुसंधान किए जाएंगे। प्रयोगशाला में ट्रेनिंग की भी व्यवस्था रहेगी। इसके अतिरिक्त यहाँ परमाणु भट्टी सम्बन्धी अध्ययन भी होगा।

केन्द्र में बहुत से भूगर्भ-वैज्ञानिकों को भी रखा गया है और बर्मा में खनिज यूरेनियम की खोज का काम शुरू किया गया है। हवाई जहाज से विशेष यंत्रों द्वारा चुने हुए क्षेत्रों की पड़ताल की गयी है। बर्मी वैज्ञानिकों ने यूरेनियम के विश्लेषण का काम शुरू कर दिया है। यूरेनियम की परीक्षा के लिए एक बड़ी प्रयोगशाला खोलने के लिए भी योजना है।

पाकिस्तान :

पाकिस्तान सरकार ने भी परमाणु शक्ति संस्था की स्थापना और परमाणुशक्ति के विकास की योजना बनाने के लिए परमाणुशक्ति समिति नियुक्त की है।

भारत :

कनाडा इस समय भारत में ७॥ करोड़ रु० की लागत का एक परमाणु-भट्टी लगा रहा है। यह वैज्ञानिक और शिल्पिक सहयोग का बहुत बड़ा उदाहरण है। यह भट्टी चालू हो जाने पर संसार की आइसोटोप तैयार करने वाली सर्वोत्तम भट्टियों में होगी। भट्टी अगले वर्ष चालू हो जाएगी इस भट्टी में हर प्रकार के आइसोटोप तैयार किए जा सकेंगे। यह भट्टी कनाडा की चाक-रिवर, आनटेरिओं में बनी एन० आर० एक्स० परमाणु-भट्टी के नमूने पर बनायी जा रही है। पर इसमें कुछ परिवर्तन और सुधार भी किए गए हैं। इस परमाणुभट्टी पर कोलम्बो योजना के अन्तर्गत कनाडा

७५ लाख डालर खर्च करेगा। परमाणुभट्टी के लिए लगभग २० टन भारी पानी (हैवी वाटर) की आवश्यकता पड़ेगी, जिसे भारत ने अमरीका के परमाणुशक्ति आयोग से खरीद लिया है। इस परमाणुभट्टी का बनाना प्रारम्भ होने से अब तक भारत के परमाणुशक्ति विभाग के २७ इंजीनियर और शिल्पिक चाक-रिवर, आनटेरिओ की ४० हजार किलोवाट की परमाणुभट्टी में ट्रेनिंग पा चुके हैं।

आइसोटोपों की उपयोगिता :

इस परमाणुभट्टी के बन जाने पर उच्च अनुसंधान की सुविधा बहुत बढ़ जाएगी। यह भट्टी परमाणुशक्ति से सम्बन्धित भौतिक, रासायनिक, जीवविज्ञान और धातुकर्म के मौलिक अनुसंधानों के लिए बनायी जा रही है। इस भट्टी में चिकित्सा, खेती और उद्योग में उपयोग के लिए तथा रेडिय-सक्रियता की विधि से रासायनिक, जीव-विज्ञान और चिकित्सा सम्बन्धी अनुसंधान करने के लिए आइसोटोप तैयार किए जाएंगे।

परमाणुशक्ति संस्थान :

ट्राम्बे (बम्बई के पास) का परमाणुशक्ति संस्थान भारत का परमाणुशक्ति अनुसंधान और विकास केन्द्र है। दो वर्ष पहले इसका उद्घाटन हुआ था। यह संस्थान २,४०० एकड़ जमीन पर बना है और यहीं पर भारतीय परमाणुशक्ति आयोग के कार्यक्रमों के अनुसार नए-नए अनुसंधान होते हैं, जिनका बाद में उद्योगों में उपयोग किया जा सकता है।

इस समय संस्थान में ८०० भारतीय वैज्ञानिक और शिल्पिक कार्य कर रहे हैं। भारत में प्रशिक्षित परमाणु वैज्ञानिक तैयार करने के लिए इस संस्थान ने दो वर्ष पूर्व प्रशिक्षण प्रारम्भ किया। इसमें प्रति वर्ष २५० युवक इंजीनियरों और विज्ञान स्नातकों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

पारमाणविक अनुसंधान के लिए जिन यंत्रों और उपकरणों की आवश्यकता होती है, वे सब यहीं पर बनाए जा रहे हैं, जिससे देश विज्ञान के इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो गया है। साथ ही बहुत सी विदेशी मुद्रा की बचत हुई है। ट्राम्बे में भारत की पहली परमाणुभट्टी अप्सरा, रेडियो-रसायन प्रयोगशाला और थोरियम साफ करने का यंत्र है। इनके अतिरिक्त कनाडा-भारतीय परमाणुभट्टी-जरलीना, यूरेनियम धातु यंत्र और फुएल एलिमेंट बनाने के यंत्र शीघ्र ही बनकर तैयार हो जाएँगे।

अप्सरा :

भारत की पहली परमाणुभट्टी अप्सरा अगस्त १९५६ में चालू हो गयी थी। रूस के बाद एशिया में चालू होने वाली यह पहली भट्टी है। ईंधन के काम आने वाले फुएल एलिमेंटों के अतिरिक्त इस भट्टी को पूरा भारतीय वैज्ञानिकों और इंजीनियरों ने ही बनाया है। इसका मानचित्र भी इन्होंने ही तैयार किया और आवश्यक मशीनें और उपकरण भारतीय कारखानों में बनाए गए। भारत को फुएल एलिमेंट (अलुमिनियम के डिब्बों में बन्द यूरेनियम और एल्युमिनियम की

मिश्र धातु की उन्नतोदर प्लेट) इंग्लैंड के परमाणुशक्ति विभाग ने कोलम्बो योजना के अन्तर्गत दिए। नकशा तैयार होने के एक साल बाद ही यह परमाणुभट्टी बनकर तैयार हो गयी थी।

इस भट्टी पर ३५ लाख रु० लागत आयी। यहाँ पर तैयार होने वाले आइसोटोप कृषि, चिकित्सा और उद्योगो में काम आ रहे हैं। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों के अनुसंधान कार्यों में भी इनका उपयोग हो रहा है। यहाँ पर परमाणुभट्टी-शिल्प भी सिखाया जाता है। भौतिकी, इंजीनियरी और जीवविज्ञान के उन अनुसंधानों की भी सुविधा है, जिनमें न्यूटोनों की तेज धारा की आवश्यकता होती है।

जरलीना :

इस समय दूसरी परमाणुभट्टी-जरलीना बनायी जा रही है। यह भट्टी नयी परमाणुभट्टियों की प्रणालियों के अध्ययन और मानचित्र तैवार करने में सहायक होगी।

रेडियो-रसायन प्रयोगशाला :

रेडियो-रसायन प्रयोगशाला में रसायनज्ञों को अत्यन्त रेडियो सक्रिय पदार्थों के प्रयोग का ट्रेनिंग दी जाती है। परमाणुशक्ति संस्था की सब शाखाओं में अनुसंधान के लिए रेडियों सक्रिय पदार्थों के प्रयोग में भी प्रयोगशाला मदद करती है। इंग्लैंड के वैज्ञानिक डा० वेल्श इस प्रयोग-शाला के संगठन और संचालन में सहायता कर रहे हैं। डा० वेल्श की सेवायें कोलम्बों योजना के अन्तर्गत प्राप्त हुई हैं। प्रयोगशाला की स्थापना इंग्लैंड के एक और वैज्ञानिक श्री जी० आर० हाल की देखरेख में हुई। हारवेल के परमाणुशक्ति अनुसंधान संस्थान ने श्री हाल को इस काम के लिए भारत भेजा था।

थोरियमयन्त्र :

थोरियम यंत्र चार वर्ष पूर्व चालू हुआ था। इस समय इसकी उत्पादन-क्षमता ६ गुनी बढ़ गयी है। इस यंत्र से परमाणुशक्ति के उत्पादन के लिए आवश्यक थोरियम और यूरेनियम को शुद्ध करके, परमाणुभट्टी में इस्तेमाल के योग्य बनाया जाता है। इस यंत्र को भी पूरी तरह से भारतीय वैज्ञानिकों और इंजीनियरों ने ही बनायाँ है और यह दुनिया के सबसे बड़े थोरियम नाइट्रेट यंत्रों में हैं। एशिया भर में गैस की लालटेनों के मेंटल बनाने के लिए जितने थोरियम नाइट्रेट की आवश्यकता पड़ती है, वह प्राय: सब का सब यहीं से भेजा जाता है। इसके अतिरिक्त अमरीका और यूरोप के बजारों को भी थोरियम नाइट्रट भेजा जाता है। भविष्य में देश की आवश्यकताओं के लिए कुछ थोरियम नाइट्रेट सुरक्षित रखा जाता है।

यूरेनियम-धातु यंत्र :

परमाणुशक्ति में आत्मनिर्भर होने के लिए पर्याप्त यूरेनियम मिलना सबसे जरूरी है। इसलिए यूरेनियम को साफ करके परमाणुभट्टियों और अनुसंधान-कार्यों में प्रयोग के योग्य बनाने के लिए ट्राम्बे में यंत्र लगाया गया। इस यंत्र के लगाए जाने से भारतीय वैज्ञानिकों और इंजीनियरों को भविष्य में ऐसे यंत्रों का मानचित्र तैयार करने और इन्हें बनाने का काफी अनुभव हो गया है।

फ़्यूल एलिमेंट बनाने का यंत्र :

जिस रूप में ईंधन को परमाणुभट्टी में रखा जाता है, उसे फ़्यूल-एलिमेंट कहते हैं साधारणतया यह मैगनिशियम या अलुमिनियम की मिश्र धातु के डिब्बे में बन्द यूरेनियय धातु की छड़ होती है। यूरेनियम धातु यंत्र में तैयार की हुई यूरेनियम धातु से यहाँ पर उपयुक्त आकार की छड़ें बनेंगी जो फ़्यूल-एलिमेंट के रूप में भारत की परमाणुभट्टियों में काम आएँगी।

अमरीका की सहायता :

अमरीका ने कोलम्बो योजना के अन्तर्गत-सदस्य देशों के वैज्ञानिकों के प्रशिक्षण पर १९५८-५९ में २ लाख ५० हजार डालर खर्च करने की योजना बनायी थी।

परमाणुशक्ति के शान्तिपूर्ण उपयोग के लिए फिलिपाइन और थाईलैंड में मध्यम आकार की दो परमाणुभट्टी बनाने के लिए भी अनुदान स्वीकृत किए गए। फिलिपाइन में चिकित्सा, रसायनशास्त्र और जीव-विज्ञान सम्बन्धी अनुसंधान करने और ट्रेनिंग देने के लिए आइसोटोप बनाने की १ मेगावाट की परमाणुभट्टी बैंकाक में बनायी जाएगी। यह परमाणुभट्टी अनुसंधान कार्य के लिए बनायी जा रही है। इनके अतिरिक्त पशार भिंग्गू, इंदोनेशिया, में प्रयोगशाला की इमारत बनाने में एक अमरीकन सलाहकार सहायता दे रहा है। दो विशेषज्ञ पाकिस्तान में प्रयोग-शालाएँ बनाने में सहायता दे रहे हैं।

बर्मा के रेडियो-आइसोटोप केन्द्र को भी अमरीका आर्थिक सहायता दे रहा है। बर्मा के वैज्ञानिकों की ट्रेनिंग का भी अमरीका ने प्रबन्ध किया है। इसके अतिरिक्त अमरीका ने इन्दोनेशिया और फिलिपाइन को भी अनुसंधान के लिए आवश्यक यंत्र दिए हैं और उनके वैज्ञानिकों की ट्रेनिंग का प्रबन्ध किया है।

(१२१ वें पृष्ठ का शेष)

उच्च बहुलकों ने विज्ञान में अपना एक सुनिश्चित स्थान बना लिया हैं। उनकी उपा-देयता और औद्योगिक जगत में उनका उपयोग बड़े महत्व का है। संसार की औद्योगिक समस्याओं के समाधान का एक मार्ग इस विज्ञान द्वारा खुल गया है। अद्भुत विन्यास के उच्च बहुलकों के संश्लेषण द्वारा जैब जगत की उन समस्याओं को सुलझने का मार्ग दिखाई पड़ने लगा है जिनका नियंत्रण अभी तक दैवी शक्तियों द्वारा ही मान लेना पड़ता था। बहुलक (पॉलीमर) विज्ञान का भविष्य उज्जवल है और इस विज्ञान की वृद्धि के साथ ही मानव जीवन के विकास के सूत्र जुड़े दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

विटैमिन

हनुमान प्रसाद तिवारी, एम० एस-सी०

विटैमिनों का मानव जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान है। हमारे भोज्य पदार्थों के ज्ञान की वृद्धि के साथ हमें यह ज्ञात हुआ कि हमारे भोजन में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा कुछ खनिजों का होना आवश्यक है। परन्तु कुछ समय बाद यह पता लगा कि इन उपर्युक्त वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ ऐसे पदार्थ भी हैं जिनका होना पौष्टिक भोजन के लिए अति आवश्यक है। यह पदार्थ बहुत ही कम मात्रा में आवश्यक होते हैं तथा इनकी अनुपस्थिति में भोज्य पदार्थों की पोषणशक्ति क्षीण हो जाती है और विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं। वे केवल इन्हीं पदार्थों के द्वारा ही ठीक की जा सकती हैं। इन अति आवश्यक पदार्थों को विटैमिन कहते हैं।

विटैमिनों के गुण आपस में बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। इनकी बहुत ही न्यून मात्रा की आवश्यकता होती है। भिन्न-भिन्न विटैमिन भिन्न-भिन्न बीमारियों से सम्बन्धित हैं। विटैमिन के अभाव में जो रोग होता है वह उसी विटैमिन के द्वारा ही ठीक हो सकता है। विटैमिनों की खोज के समय किसी विशेष नाम की अनुपयुक्तता के कारण उनका नामकरण अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षरों के आधार पर किया गया। बाद में जब इन यौगिकों के रचना-सूत्र ज्ञात हो गये, तब इनका नामकरण इनके सूत्र के नाम के आधार पर किया गया परन्तु अभी भी इनके पुराने नाम ही प्रचलित हैं। कुछ विटैमिन जल में विलेय है उदाहरणार्थ विटैमिन बी तथा विटैमिन सी। अन्य विटैमिन जैसे विटैमिन-ए, विटैमिन-डी, विटैमिन-के तथा विटैमिन-ई आदि केवल वसा में ही विलेय हैं। विभिन्न विटैमिनों के अभाव में होने वाले रोगों तथा इनके प्राप्ति के साधनों की समीक्षा निम्नलिखित है:—

विटैमिन-ए

विटैमिन-ए का सम्बन्ध शारीरिक वृद्धि तथा त्वचा के वाह्य-तन्तुओं को ठीक रखने से है। यह शरीर के विभिन्न रोगों से बचने की शक्ति प्रदान करता है। इस अभाव में बहुधा नेत्र सम्बन्धी रोग जैसे आँखों का लाल होना, रतौंधी आदि हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त शरीर की वृद्धि रुक जाती है।

विटैमिन-ए अधिकांश रूप में पशुओं की चर्बी, दूध, दही, शुद्ध घी, मछली तथा अण्डे के पीले भाग में पाया जाता है। काड मछली के यकृत के तेल में यह सबसे अधिक होता है। कुछ शाकाहार पदार्थों से, जिनमें कैरोटीन नामक रङ्ग अधिकांश रूप में पाया जाता है, इसकी कमी पूरी की जा सकती है। कुछ पत्तेदार तरकारियाँ जैसे पालक, लाल चौलाई, सलाद, धनियाँ, बन्द गोभी तथा कुछ पके फल जैसे आम, पपीता, टमाटर, सन्तरा इत्यादि कैरोटीन द्वारा शरीर में विटैमिन-ए की मात्रा पूरी कर सकते हैं। गाजर में भी कैरोटिन काफी मात्रा में पाया जाता है।

हमारे भोजन में प्रतिदिन कम से कम ३,००० ई० यू० (अन्तर्राष्टीय इकाई) विटेमिन-ए की होनी चाहिये। मांसाहारियों को इतना विटेमिन-ए एक चम्मच काड मछली के यकृत के तेल से या दो अण्डों से मिल सकता है। शाकाहारियों को यह दूध, घी इत्यादि से मिलता है। परन्तु जो लोग दूध, घी इत्यादि नहीं खा सकते उनको इतना विटेमिन-ए १½ छटाक लाल चौलाई से, २½ छटाँक करमकल्ला से, १ छटाँक सलाद से, एक छटाँक मेथी के साग से, १ छटाँक चने के साग से या १ छटाँक गाजर से मिल सकता है।

विटेमिन-ए गरम करने पर जल्दी नष्ट नहीं होता। यह १२० ° से० तक आसानी से गरम किया जा सकता है। इससे ऊपर के ताप पर यह नष्ट होने लगता है। मक्खन से घी बनाने में एक चौथाई विटेमिन-ए नष्ट हो जाता है और यदि घी को खूब छनकाया जाय तो यह और भी नष्ट हो जाता है। पानी में पकाई गई तरकारियों का विटेमिन-ए नष्ट नहीं होता परन्तु घी में खूब भूनने पर नष्ट हो जाता है। रोशनी में बहुत दिनों तक रक्खे रहने पर भी विटैमिन-ए नष्ट हो जाता है। सुखाए हुये साग में हरे साग की अपेक्षा कम विटैमिन होता है।

विटैमिन-बीः

विटेमिन-बी, जल-विलेय विटैमिनों का एक समूह है, जो कि प्रायः एक साथही पाये जाते हैं, तथा इनके कुछ गुणों में भी समानता होती है। इस समूह में लगभग ११ विभिन्न विटेमिन संम्मिलित हैं जिनके नाम निम्न हैं:

(१) थायेमिन या अन्यूरिन या विटैमिन-बी $_१$; (२) रिबोफ्लेवीन या विटैमिन-बी$_२$; (३) निकोटिनिक अम्ल; (४) पाइरी डाक्सीन या अडरमिन या विटेमिन-बी$_६$; (५) पैण्टोथेनिक अम्ल; (६) बायोटीन; (७)आइनसिटोल; (८) पैरा-अमीनो-बेन्जोइक अम्ल; (९) चोलीन; (१०) फोलिक अम्ल; तथा (११) विटैमिन-बी $_{१२}$

विटेमिन-बी $_१$ की कमी से मनुष्यों में बेरी-बेरी नामक रोग हो जाता है। इस रोग से पैरों में भारीपन चलने में पैरों का लड़खड़ाना, श्वास फूलना, लकवा लगना, हाथों पैरों में सूजन आदि हो जाती है। पशुओं में इस रोग को पॉली न्यूराइटिस कहते हैं।

विटैमिन बी $_१$ अधिकांश रूप में खमीर, गेहूँ व चावल के छिलके में पाया जाता है। माँस, मछली, अण्डा, साग, फल व दूध में यह कम मात्रा में होता है। मशीन द्वारा कुटे चावलों में यह विटेमिन नष्ट हो जाता है। परन्तु यदि चावल का छिलका हाथ से कूट कर निकाला जाय तो विटैमिन बी $_१$ नष्ट नहीं होता। यदि छिलका निकालने से पहले धान को थोड़ा उबाल लिया जाय तो भी उसमें विटैमिन नष्ट नहीं होता।

साधारणतः मनुष्यों को प्रतिदिन कम से कम ३०० ई० यू० विटैमिन बी $_१$ की चाहिए। परन्तु अधिक परिश्रम करने वालों को तथा गर्भिणी या प्रसूता को इसकी अधिक आवश्यकता होती है। लगभग १२०°से०तक गरम करने पर विटैमिन बी$_१$नष्टहो जाता है। गरम करने में अगर ताप ११०° से० से ऊपर न जाय तो थायैमिन भी नष्ट नहीं होता। अतः पानी के साथ पकाए जाने पर विटैमिन बी $_१$ नष्ट नहीं होगा। परन्तु घी में तलने या खूब भूनने में यह अवश्य नष्ट हो जायगा। विटैमिन बी $_१$ खटाई की विद्यमानता में अधिक स्थाई है। खटाई डाल कर पकाई गई

चीजों में यह शीघ्र नष्ट नहीं होता। प्रतिदिन की आवश्यकता भर के लिए विटैमिन बी १ ५ छटाँक बाजरा, ३ छटाँक जो, २ छटाँक मक्का, २ छटाँक गेहूँ का दलिया, ५ छटाँक चना, ६ छटाँक गोभी, २½ छटाँक कुम्हड़ा, १½ मूगफली या २½ सेर दूध से मिल सकता है।

विटैमिन-बी २ के अभाव में ओंठ सूज जाते हैं। युवकों का बढ़ना रुक जाता है तथा प्रौढ़ों में असमय ही बुढ़ापे के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। दलिया तथा दालों में विटैमिस बी२ का काफी अंश होता है। महीन पिसे आटे फलों या तरकारियों में यह नहीं होता। पत्तेदार हरे शाक में इसका कुछ अंश मिलता है। दूध, मक्खन निकला दूध, दही, खमीर, गोश्त, अण्डों में यह बहुतायत से मिलता है। साधारण मनुष्य को को प्रतिदिन २ या ३ मिलीग्राम रिबोफ्लेवीन की आवश्यकता होती है जो कि ½ छटाक खमीर, ½ सेर दूध, या २,३ अण्डे खाने से मिल जाता है।

निकोटिनिक अम्ल के अभाव में पेल्लाग्रा नामक रोग हो जाता है। यह रोग प्रायः मक्का खाए जाने वाले प्रदेशों जैसे इटली उत्तरी अमेरिका आदि में विशेष रूप से मिलता है। इस रोग में शरीर में मुँह, हाथ, नाक, गरदन पर लाल लाल चकत्ते हो जाते हैं, जिनमें पीड़ा होती है। कभी कभी नाखून मैले खाकी रङ्ग के हो जाते हैं। निकोटिनिक अम्ल तथा उसका एमाइड अधिकांश रुप में खमीर में पाया जाता है। गेहूं तथा सोयाबीन में भी इसकी काफी मात्रा होती है। यकृत में भी यह काफी मात्रा में होता है।

विटैमिन बी १२ के अभाव में शरीर में खून की कमी हो जाती है और एनिमिया नामक रोग हो जाता है। यह विटामिन यकृत निष्कर्ष (LIVER EXTRACT) में पाया जाता है। इसमें कोबाल्ट तथा फासफोरस भी मिले होते हैं। विटैमिन बी समूह के अन्य विटैमिनों का मानव जीवन से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। परन्तु साधारण स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक हैं कि इन सभी विटैमिनों की थोड़ी मात्रा हमारे भोजन में अवश्य रहे।

विटैमिन-सीः

विटैमिन-सी के अभाव में स्कर्वी नामक रोग हो जाता है। इसी कारण इस विटामिन का नाम भी एस्कार्बिक अम्ल पड़ा। स्कर्वी विशेष रूप से लम्बी लम्बी सामुद्रिक यात्राओं के यात्रियों को होती है। इस रोग के प्राथमिक लक्षण सुस्ती, अंगों तथा जोड़ों का ढीलापन तथा सांस लेने में कठिनाई हैं। पैरों में रोंगटों के आस पास लाली आ जाती है। शरीर के अन्य भागों में भी ऐसे ही लक्षण पाए जाते हैं। कभी कभी दाँत गिर भी जाते हैं। स्कर्वी की आगे की अवस्था में हृदय में विशेष प्रकार की धड़कन और सांस लेने में कठिनाई होने लगती है। रोगी कभी कभी मूर्छित भी हो जाता है। बार बार दस्त होते हैं तथा मल के साथ कभी कभी रक्त भी आता है।

विटैमिन-सी विशेष प्रकार से ताजे फलों तथा तरकारियों में पाया जाता है। साधारण तरकारियों की अपेक्षा यह पत्तेदार हरी तरकारियों में अधिक होता है। साधारण अनाजों में यह नहीं होता परन्तु जब इनमें अंकुर निकल आते हैं तब इनमें यह विटैमिन भी पैदा हो जाता है। खट्टे फलों में भी यह विटैमिन पाया जाता है। नीबू तथा आँवले में यह अधिक मात्रा में मिलता है।

सुखाने या गर्म करने से यह विटैमिन नष्ट हो जाता है। एक साधारण स्वस्थ्य पुरुष के लिए प्रतिदिन कम से कम ५० मिलीग्राम एस्कार्बिक अम्ल की आवश्यकता होती है। इतना विटैमिन हमें ½ छटाँक कच्ची चौलाई, ½ छटाँक कच्ची बन्द गोभी, २ तोले सहजन, २ आँवले या २ टमाटरों से मिल सकता है।

साधारण रीति से पकाने या सुखाने पर भी विटैमिन सी जल्दी नष्ट हो जाता है जैसा कि पहले बताया जा चुका है विटैमिन सी की सबसे अधिक मात्रा भारत वर्ष में पाये जाने वाले एक ऐसे फल में होती है जो सबसे सस्ता भी है वह है आँवला इसके रस में संतरे के रस का २० गुना विटैमिन सी होता है। एक आँवले की विटैमिन सी की मात्रा लगभग दो सन्तरे के विटैमिन सी की मात्रा के बराबर होती है। यद्यपि गरम करने पर विटेमिन-सी नष्ट हो जाता है परन्तु आँवले में एक अम्ल होता है जो विटैमिन को नष्ट होने से काफी बचा लेता है। अतः आँवले को सुरक्षित रखने की दो विधियाँ हैं। पीसकर रखने के लिए उसे काटकर जल्दी से धूप में सुखा दिया जाता है और फिर चूर्ण बना कर रख लेते हैं। पर अधिक दिन रखने पर कुछ विटेमिन निकल जाता है। दूसरी विधि उनको नमक के विलयन में रखने की है। पहले सरसों को गर्म पानी में डाल देते हैं फिर कुछ मिनट बाद निकालकर उन्हें नमक के विलयन में डालकर रख लिया जाता है। विलयन में नमक की मात्रा काफी होनी चाहिए।

बिटेमिन—डी:

इस विटैमिन के अभाव से रिकेटस या सूखारोग हो जाता है। यह एक हड्डियों का रोग है जो विशेषकर कम उम्र वाले बच्चों को हो जाता है। इस रोग से हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं और साथ ही साथ और भी पक्वाशय संबंधी विकार आरम्भ हो जाते हैं, दांत देर में निकलते हैं। पौदों की इस बीमारी को आस्टियो मेलेशिया कहते हैं। कम आयु की गर्भवत माताओं में यह रोग विशेष रूप में पाया जाता है।

विटैसिन डी मुख्यतः मक्खन, घी, क्रीम दूध आदि में पाया जाता है। काड मछली के यकृत के तेल में तथा अण्डो में भी यह पाया जाता है। परन्तु यह विटैमिन उन्ही जानवरों के दूध या घी में होता है टो हरी घास के मैदानो में चरते हैं तथा तेज धूप के प्रकाश में घूमते फिरते हैं। मनुष्य की त्वचा के ऊपर सूर्य के प्रकाश के प्रभाव से यह बन जाता है हमारे शरीर में एर्गोस्टीरोल नामक एक पदार्थ होता है जो सूर्य के प्रकाश के प्रभाव से विटैमिन डी मे परिवर्तन हो जाता है।

रिकिटस का रोग जो इस विटैमिन की न्यूनता के कारण होता है अधिकांश अँधेरे घरों में रहने वाले बच्चों को होता है जिनको सूर्य का प्रकाश बहुत कम मिलता है। सूर्य स्नान करने से इस प्रकार के रोगियों को बहुत लाभ होगा।

शरीर में इसकी अधिकता होने से दाँत मजबूत होते हैं। गर्भिणी स्त्रियों को इसकी बहुत आवश्यकता होती है जिससे होने वाले बच्चे तथा माँ दोनों का स्वास्य ठीक रहता है।

एक ग्राम काड मछली के यकृत के तेल में जितना विटैमिन डी० होता है उसे १०० इ० यू० (अन्तरराष्ट्रीय इकाई) माना जाता। गरम करने पर यह नष्ट नहीं होता है। बच्चों को इसकी ८००

से १००० इ० यू० प्रति दिन मिलना चाहिए परन्तु प्रौढ़ों के लिए २५०० इ० यू० ही पर्याप्त है। इतना विटैमिन लगभग आधा चम्मच काड-यकृत-तेल के प्रयोग से या आधा घंटा प्रति दिन वस्त्र रहित होकर सूर्य स्नान करके प्राप्त हो सकता है।

विटैमिन—ई:

इस विटैमिन के अभाव से मनुष्य की प्रजनन शक्ति नष्ट हो जाती है। इसके अलावा साधारण स्वास्थ्य के लिए भी इसकी बड़ी आवश्यकता होती है।

यह अधिकांश रूप में हरे पत्तीदार शाकों में तथा मोटे चावल आदि अनाजों में पाया जाता है। बिनौले के तेल में भी इसकी पर्याप्त मात्रा होती है। यह इतना गुणकारी होता है कि इसका थोड़ा सा हिस्सा भी हमारी प्रतिदिन की आवश्यकता के लिए पर्याप्त है। सबसे पहले १९२२ में ईवान्स तथा विशप ने सन्तानोत्पादक क्षमता का सम्बन्ध इस नये विटैमिन से किया था और फिर १९२६ में अंकुरित गेहूँ के तेल से इसे पृथक करके इसका नाम एल्फा-टोकोफेरोल रक्खा जो इसका शुद्ध रूप है।

विटैमिन—एफ:

यह देखा गया कि कुछ विशेष प्रकार के चर्मरोग कुछ असंतृप्त वसीय अम्लों के प्रयोग से अच्छे हो गये। बाद में पता चला कि इस प्रकार के रोग विटैमिन—एफ की न्यूनता से होते हैं और यह असंतृप्त वसीय अम्ल विटैमिन एफ का काम करते हैं। यह अधिकांश तेलों में विशेषकर रेंडी के तेल में पाया जाता है और बालों को स्वस्थ रखने में इसका विशेष महत्व है।

विटैमिन—के:

इस विटैमिन का सम्बन्ध रक्त के स्कंधन की क्रिया से है और इसकी खोज सन् १९३०-३५ में डैम ने की थी। इसके अभाव में खून के जमने के समय में वृद्धि हो जाती हैं तथा खून का बहना नहीं बन्द होता। विटैमिन के० के द्वारा इस कमी को पूरा किया जा सकता है। यह विटैमिन मुख्यतः हरी पत्तेदार तरकारियों में तथा अँकुरों में पाया जाता है। पालक गोभी करमकल्ला आदि में विटैमिन के० काफी मात्रा में होता है। रसायनज्ञों ने इसका रचना-सूत्र मालूम करके इसे रासायनिक क्रियाओं द्वारा बना लिया है अतः अधिकांश रूपों में जो विटैमिन के वाली औषधियाँ हम बाजार में देखते हैं वह कृत्रिम ही होती हैं।

विटैमिनों के सम्बन्ध में ऊपर लिखे विवरण से यह स्पष्ट है कि यह हमारे स्वास्थ्य के लिए विशेष उपयोगी हैं। यह भी स्पष्ट है कि हम अपनी विटैमिन सम्बन्धी अधिकांश आवश्यकतायें हरी पत्तेदार तरकारियों, आम, पपीता, गाजर, टमाटर, आँवला, हाथ का कुटा चावल, गेहूँ, दाल, दूध, घी, मक्खन, दलिया, अंकुरित चने आदि तथा सूर्य के प्रकाश द्वारा पूरी कर सकते हैं। ईश्वर ने विटैमिन जैसी अमूल्य आवश्यक वस्तु पैदा करते समय इस बात का ध्यान रखा कि वह उन्हें उन पदार्थों में पैदा करे जो धनी तथा निर्धन सभी को समान रूप से प्राप्त हों।

नवजात तत्व

डा० बी० बी० एल० सक्सेना

विध्वंस की वीभत्सता का दोष वैज्ञानिकों के माथे पर कलंक के टीके के समान लगा दिया जाता है परन्तु जिन्होंने उनके रचनात्मक कार्य कलापों का अध्ययन किया है वे आश्चर्यचकित रह जाते हैं। विगत २० वर्षों में वैज्ञानिकों ने लगभग १० नव-जात तत्वों का निर्माण करके हमारे स्वर्णिम स्वप्नों को सत्य उतारा है।

परम्परा से माने गए ६२ तत्वों में वृद्धि होने लगी। साथ-साथ उनके अद्भुत गुणों से आश्चर्यजनक ज्ञान लाभ हुआ। इनमें से काफी पहले बनने वाले तत्वों के विषय में तो बहुत अधिक जानकारी हुई। नेप्चूनियम के समस्थानिक (Isotope) दीर्घ आयु के थे जिनको लेकर प्रयोग-शालाओं में साधारण सावधानी बरतने से भिन्न-भिन्न प्रयोग किये जा सके। इसी भाँति प्लूटोनियम तथा क्यूरियम नाम के दीर्घ आयु वाले तत्व निर्मित हुए। प्लूटोनियम की उत्पत्ति द्वितीय महायुद्ध में बड़े गोपनीय ढँग से हुई।

[नागासकी (जापान) पर छोड़े गये प्रथम अणु-बम के विस्फोट वा विध्वंस ने प्लूटोनियम के जन्म की घोषणा की।]

तत्वांतरण (Transmutation) द्वारा उत्पन्न किये गये तत्वों में प्लूटोनियम ही सर्वप्रथम तत्व था जिसका अधिक मात्रा में उत्पादन किया जा सका तथा आँख से स्पष्ट देखा जा सका। इस तत्व के कुछ गुण बड़े ही अद्भुत मिले। इसके खंडनीय—समस्थानिक $Pu^{२३९}$ एल्फा-रेडिय-धर्मिता व प्राणि शरीर पर बुरा प्रभाव डालने के कारण यह अत्यन्त भयंकर विषैला पदार्थ सिद्ध हुआ।

१९३४ में फर्मी व उनके सहकारियों ने यूरोपियम को मन्द गामी न्यूटान से विध्वंस(Bom-bard) करके अनेक कृत्रिम रेडियधर्मी पदार्थ प्राप्त किये और प्रति वर्ष उनकी संख्या बढ़ने लगी जिससे ट्रांस-यूरैनियम (Transuranium) तत्वों की उत्पत्ति का भ्रम हुआ। किन्तु सावधानी से किये सूक्ष्म-प्रयोगों द्वारा सिद्ध हुआ कि वे पदार्थ ट्रांसयूरैनियम तत्व न होकर केवल यूरेनियम के खंडनीय पदार्थ मात्र थे। सर्व प्रथम ट्रांसयूरैनियम तत्व का वास्तविक निर्माण उसके ६ वर्ष उपरान्त हुआ जब कि १९४० ई० में एम० मेकमिलन व पी० एच० एब्रिलसन ने नेप्चूनियम (९३) तत्व का निर्माण किया। उसके उपरान्त प्लूटोनियम (९४), अमरीकियम (९५), क्यूरियम (९६), बर्के-लियम (९७), केलीफोर्नियम (९८), आइन्सटायनियम (९९), फर्मियम (१००), मेंण्डेलेवियम (१०१), तथा अन्य तत्व (१०२) का निर्माण हुआ। ये समस्त नव-जात तत्व यूरेनियम को लेकर तत्वांतरण द्वारा निर्मित किये गये। ये प्रकृति में नहीं मिलते। इनमें से अधिकांश का तो अस्तित्व मात्र ही ज्ञात हो पाता है क्योंकि उनकी मात्रा इतनी कम होती है कि सबसे संवेदनशील तुला पर

भी उनके भार का पता नहीं चल सकता। इतनी कम मात्रा तथा भयंकर दुष्परिणाम के भय से इन तत्वों के साथ प्रयोग करने में भी बड़ी विशिष्ठ विधियाँ व सावधानी करनी पड़ती हैं।

इन तत्वों के निर्माण व संख्या में वृद्धि के साथ-साथ आवर्त्त-सारणी में इनको समुचित स्थान पर बैठाने के लिये भी बड़ी उथल-पुथल मचती रही। सिबोर्ग के १६४४ के प्रयोगों व निष्कर्षों के फलस्वरूप इस प्रकार के ज्ञात व अज्ञात तत्वों को अब एक्टीनाइड (Actinide) श्रेणी के नाम से, लैन्थनाइड (Lanthanide) श्रेणी के आधार पर, एक ही श्रेणी में रख दिया गया है।

नेप्चूनियम (Np):

प्रथम नवजात ट्रान्सयूरैनिम (Transuranium) तत्व नेप्चूनियम (Np) का जन्म मेकमिलन द्वारा किये प्रयोगों के परिणामस्वरूप हुआ। उन्होंने यूरेनियम पर न्यूट्रान की प्रतिक्रिया के परिणाम से हुये खंडन द्वारा मिले विभाजित दो मुख्य भागों का अध्ययन किया जिससे ज्ञात हुआ कि एक भिन्न रेडियधर्मी पदार्थ बना। रासायनिक विश्लेषण द्वारा एबिलसन व मेकमिलन इस नवजात तत्व को $Np^{२३९}$ (६३) का समस्थानिक सिद्ध कर सके। Np के गुणों के सम्बन्ध में प्रारम्भ में थोड़ा मतभेद रहा। एक विचार था कि उसके गुण रेनियम के समान होंगे किन्तु सूक्ष्म निरीक्षण से ज्ञात हुआ कि उसके गुण रेनियम की अपेक्षा यूरेनियम से अधिक मिलते-जुलते थे। इतना सूक्ष्म अध्ययन संकेतन विधि द्वारा संभव हो सका क्योंकि इससे अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा ($१०^{-१०}$ ग्राम) में उपलब्ध पदार्थ का भी ठीक २ विश्लेषण हो सकता है। इस विधि द्वारा तत्व की रेडियधर्मिता के कारण ही उसके गुणों का अध्ययन किया जाता है।

प्लूटोनियम (Pu):

नैप्चूनियम के उपरान्त प्लूटोनियम (Pu) का जन्म हुआ। १६४० में मेकमिलन, जे० डब्लू० केनेडी, ए० सी० व्हाल, तथा जी० टी० सिबोर्ग ने यूरेनियम को ड्यूट्रान द्वारा विध्वंसित करके नैप्चूनियम का एक नया समस्थानिक $Np^{२३८}$ प्राप्त किया जो विनाश होने पर $Pu^{२३८}$ में परिवर्तित हो गया। इस प्रारम्भिक सफलता से उत्साहित होकर १६४१ में केनेडी, ई० सर्ज, व्हाल व सिबोर्ग ने प्लूटोनियम का अत्यावश्यक समस्थानिक $Pu^{२३९}$ ढूँढ निकाला और यह सिद्ध किया कि $Pu^{२३९}$ का मन्द गति के न्यूट्रान द्वारा खंडन हो सकता है। साइक्लोट्रान नामक यन्त्र की सहायता से अगस्त् १६४२ तक बी० बी० कनिंघम, एल० बी० वर्नर, ने काफी मात्रा में $Pu^{२३९}$ बना लिया। प्लूटोनियम ही एकमात्र ऐसा संश्लेषित तत्व है जो बड़ी मात्रा में बनाया जा सका।

अमरीकियम (Am) तथा क्यूरियम (Cm):

प्लूटोनियम निर्माण के उपरान्त अमरीकियम व क्यूरियम का निर्माण शीघ्र ही हो सका। प्लूटोनियम को हीलियम आयन से विध्वंसित करके आर० ए० जेम्स, एल० ओ० मार्गन, ए० घिओर्सो तथा सिबोर्ग ने $Cm^{२४२}$ का निर्माण किया। इन्हीं वैज्ञानिकों ने $Pu^{२४१}$ बनाकर बीटा-

किरण सक्रियता (Beta-ray activity) द्वारा $Am^{२४१}$ बनाया । इनके गुणों का विश्लेषण आयनपरिवर्तन-विधि (Ion Exchange Technique) द्वारा संभव हो सका ।

बर्केलियम (Bk) तथा केलीफोर्नियम (Cf) :

१९४९ ई० के अन्त तथा १९५० के प्रारम्भ में किये प्रयोगों द्वारा Bk (९७) तथा Cf (९८) का निर्माण हुआ। एस० जी० टॉमसन, घिओर्सो, तथा सिबोर्ग ने दिसम्बर १९४९ में पर्याप्त मात्रा में Am को He+ द्वारा विध्वंसित करके $Bk^{२४८}$ का निर्माण किया। इन्हीं वैज्ञानिकों ने फरवरी १९५० में Cm को He+ से विध्वंसित करके $Cf^{२४५}$ का निर्माण किया।

आइन्सटाइनियम (E) तथा फर्मियम (Fm):

नवम्बर १९५२ में प्रशान्त महासागर में किये विस्फोट के ढेर में E (९९) तथा Fm (१००) का जन्म हुआ। इन दोनों तत्वों का अध्ययन अमरीका की तीन प्रयोगशालाओं में घिओर्सो व उनके साथियों ने किया। इनका निर्माण अनेकों विधियों से किया जा सकता है किन्तु बहुधा Pu को न्यूट्रान से विध्वंसित करते हैं।

मेण्डेलेवियम (Mv):

बड़ी कठिन व विशिष्ठ विधियों द्वारा किये प्रयोगों द्वारा घिओर्सो, बी० जी० हार्वी, जी० आर० चोपिन, एस० जी० टॉमसन व सिबोर्ग ने Mv (१०१) का निर्माण किया। उसके निर्माण व गुणों के अध्ययन की कठिनाइयों का अनुमान इससे किया जा सकता है कि $१०^{९}$ परमाणुओं में से मात्र १ परमाणु को पृथक कर शीघ्रतम ही अध्ययन करना आवश्यक था।

तत्व १०२:

हार्वेल की परमाणु ऊर्जा प्रयोगशाला व अन्य अन्य प्रयोगशालाओं के वैज्ञानिकों ने १९५७ में एक और नवजात तत्व (१०२) के निर्माण की घोषणा की। अप्रैल १९५८ में घिओर्सो, टी० सिकलेण्ड, जे० आर० वालटन, व सिबोर्ग ने भी $Cm^{२४६}$ को $C^{१२}$ आयन द्वारा विध्वंसित करके $१०२^{२५४}$ समस्थानिक उपलब्ध किया। यह तत्व एल्फा-किरण सक्रियता (Alpha-ray-activity) प्रदर्शित करता है तथा इसका अर्ध-जीवन काल ३ सेकण्ड है।

एक्टीनाइड तथा लैंथनाइड श्रेणियों के तत्वों की समानता से एक्टीनाइड श्रेणी में १४ तत्वों [५ f कक्षा में १४ इलेक्ट्रॉन] का स्थान हो सकता है। इस कारण थोरियम से प्रारम्भ होने वाली श्रेणी, तत्व १०३ पर समाप्त हो जावेगी। इस सम्भावना की पुष्टि अनेक भौतिक व रासायनिक प्रयोगों के अध्यन से होती है।

इनके अतिरिक्त अन्य ट्रान्सयूरैनियम (Transuranium) तत्वों के निर्माण की सम्भावना की जा सकती है। उन अज्ञात भावी तत्वों के गुणों के सम्बन्ध में भी काफी सही भविष्यवाणी की

जा सकती है। सम्भवतः ७-८ और तत्व बनेंगे जो बड़ी कठिनाई से पृथक किये जा सकेंगे जो क्षणभंगुर होंगे। जे० ए० व्हीलर ने हिसाब लगा कर कहा है कि पारमाणवीय संरचना के आधार पर १३७ के ऊपर की परमाणवीय-संख्या के भी तत्व स्थायी रूप से बन सकते हैं। इस क्रिया में न्यूट्रान का गहन घनत्व (Fluxes) [$१०^{३१}$ प्रति वर्ग सें० प्रति सेकण्ड] चाहिये जो तारिकाओं (Stars) में मिलता है। इतने दुष्प्राप्य तत्व का पृथ्वी पर भी बन सकना बड़ा दुर्गम लगता है। इसी से लगता है कि ७-८ ही तत्व और बन सकेंगे। १०३ तत्व पर एक्टीनाइड—श्रेणी सम्पूर्ण होकर १०४ वें तत्व में व उनके आगे इलेक्ट्रान ६ d कक्षा में बैठेगा और आवर्त्त-सारणी में उनका स्थान क्रम से हैफनियम, टैण्टालम, टङ्गस्टन आदि वाले वर्गों में होगा। इस कक्षा के भर जाने पर इलेक्ट्रान ७ p कक्षा में बैठेगा और ११८ वाँ तत्व विरल गैस संरचना प्राप्त कर लेने पर समाप्त हो जावेगा। १०३ वाँ तत्व त्रिसंयोजक आक्सीकरण स्थिति, १०४ वाँ तत्व अपने वर्ग के हैफनिनम की भाँति चतुः संयोजक आक्सीकरण स्थिति, १०५ वाँ अपने वर्ग के न्योबियम तथा टैण्टालम की भाँति पंच-संयोजक आक्सीकरण स्थिति तथा १०६ वाँ तत्व टङ्गस्टन, मालिब्डनम तथा क्रोमियम की तरह षट-संयोजक आक्सीकरण स्थिति के होंगे। इसी प्रकार १०७, १०८, १०९ व ११० वें तत्व क्रम से रेनियम, ऑसमियम, इरिडिनम तथा प्लैटिनम के समगुणी होंगे। सम्भवतः इनके निर्माण में यूरेनियम आदि गुरु-तत्वों को भारी आयनों, जैसे कार्बन आयन, नाइट्रोजन आयन, आक्सीजन आयन, आदि द्वारा विध्वंस करा कर बनाया जा सकेगा।

रासायनिक गतिकी (Kinetics) और रासायनिक प्रक्रिया का रूप

डा० बालकृष्ण, प्राध्यापक, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

रासायनिक प्रक्रिया के रूप के स्पष्टीकरण के हेतु रासायनिक गतिकी का अध्ययन महत्वपूर्ण है। रासायनिक गतिकी के लिये प्रक्रिया की गति का सविस्तार अध्ययन आवश्यक है और विशेष करके इस गति पर प्रक्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों के सान्द्रण और प्रक्रिया के ताप का प्रभाव। यदि इन दोनों प्रभावों का अर्थात् प्रक्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों के सान्द्रण और प्रक्रिया के ताप पर रासायनिक गतिकी की निर्भरता का पूर्ण अध्ययन कर लिया जाय तो किसी भी रासायनिक क्रिया के रूप का स्पष्टीकरण हो जाता है। सान्द्रण और ताप के अतिरिक्त अन्य प्रभाव भी रासायनिक क्रिया की गति पर असर डालते हैं और इसके विस्तारपूर्ण अध्ययन से प्रक्रिया-रूप के निर्णय करने में सुविधा होती है। ये प्रभाव हैं, उत्प्रेरक की उपस्थिति, प्रतिकृत होने वाले पदार्थों पर स्थिति आवेश, माध्यम का पारविद्युद्स्थिरांक। उपयुक्त स्थानों पर इनमें से कुछ पर विचार किया जावेगा।

उदाहरणार्थ हम क्षारीय माध्यम में एसीटोन पर ब्रोमीन का प्रभाव देखेंगे। क्षार की उपस्थिति में ब्रोमीन हाइपोब्रोमाइट आयन बनाता है। यह आयन एसीटोन से प्रतिकृत होकर ब्रोमोफार्म बनाता है। पूरी क्रिया नीचे लिखे रूप में दी जा सकती है :—

$$CH_3 . CO. CH_3 + 3 OBr^- = CH_3 COO^- + CH Br_3 + 2 OH^- \quad (१)$$
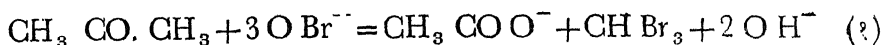
किन्तु ऊपर की प्रतिक्रिया गणनात्मक योजना के अनुसार केवल अन्तिम विधि का ही स्पष्टीकरण करती है। बीच में क्रम से जो प्रक्रियायें होती हैं उनके विषय में कुछ भी संकेत नहीं करती। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार से किया जा सकता है। उपरोक्त समीकरण के अनुसार हाइपोब्रोमाइट आयन का सान्द्रण एसीटोन के सीधे समानुपात में होता है किन्तु फिर भी उपरोक्त प्रक्रिया की गति हाइपोब्रोमाइट के सान्द्रण पर निर्भर नहीं है। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात हुआ है कि हाइड्रॉक्सिल आयन इस प्राक्रिया का उत्प्रेरण करते हैं। वास्तव में गति को नीचे लिखे समीकरण से व्यक्त किया जा सकता है :—

$$v = k [A] [OH^-] \quad (२)$$

यहाँ A एसीटोन को और [A] [OH] अम्ल तथा क्षारीय आयनों के सान्द्रण को व्यक्त करते हैं। v प्रक्रिया की गति है और k समानुपातिक स्थिरांक है। प्रक्रिया की गति हाइप्रोब्रोमाइट के सान्द्रण पर निर्भर नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि हाइपोब्रोमाइट आयन या ब्रोमीन किसी ऐसी क्रमानुसार प्रक्रिया में भाग लेते हैं जो अत्यन्त तीव्र है। फिर उपरोक्त प्रक्रिया की गति हाइड्रोक्सिल आयनों के सान्द्रण के समानुपातिक है। इससे ज्ञात होता है कि पहले हाइड्रॉक्सिल आयन एसीटोन पर आक्रमण करता है, जैसा नीचे के समीकरण में दिया गया है :—

$$CH_3 CO CH_3 + OH^- = CH_3 . CO. CH_2^- + H_2O \quad (३)$$

अन्य क्रमानुसार प्रक्रियाओं में इस प्रकार से निर्मित ऋणायन तीव्र गति से प्रतिकृत होता है और एसीटेट आयन और ब्रोमोफार्म बनाता है।

उपरोक्त कल्पित प्रक्रिया के स्वरूप को इस तथ्य से बल मिलता है कि ब्रोमोनीकरण और आयडीकरण की गतियाँ समान हैं। इसका अभिप्राय है कि दोनों स्थितियों में गति निश्चित करने वाली प्रक्रिया समीकरण (३) है। प्रक्रिया (३) के पक्ष में अन्य प्रमाण भी उपस्थित किये गये हैं किन्तु हम इस स्थान पर उनका विशेष विवरण उपस्थित नहीं करेंगे।

एक अन्य प्रतिक्रिया का भी विस्तार पूर्वक अध्ययन किया गया है। मैंने भी इस प्रतिक्रिया पर प्रयोग किये हैं। यह प्रतिक्रिया फेरिक क्लोराइड और स्टैनस क्लोराइड के बीच में होती है। अन्तिम प्रतिक्रिया को नीचे लिखे रूप में दिया जा सकता है :—

$$Sn\,Cl_2 + 2\,Fe\,Cl_3 = Sn\,Cl_4 + 2\,Fe\,Cl_2 \qquad (४)$$
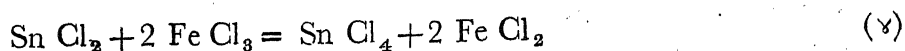
ऊपर की प्रतिक्रिया के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसकी गति निम्नलिखित समीकरण से प्रकट की जा सकती है :—

$$v = k\left[Fe^{+++}\right]\left[Sn\,Cl_2\right]\left[Cl^-\right]^2 \qquad (५)$$

इससे ज्ञात होता है कि इस प्रक्रिया की गति क्लोराइड आयनों के सान्द्रण के वर्ग के समानुपातिक है जब कि वह फेरिक आयनों और स्टैनस क्लोराइड आयनों के गुणनफल के समानुपातिक है। उपरोक्त प्रकार से तर्क करने पर यह दिखाया गया है कि इस क्रिया के पूर्ण होने में नीचे लिखी हुई प्रतिक्रियायें क्रमानुसार होती हैं :—

$$Sn\,Cl_2 + 2Cl^- = Sn\,Cl_4^{=} \qquad (६)$$

$$Sn\,Cl_4^{=} + Fe^{+++} = Fe^{++} + Sn\,Cl_4^{-} \qquad (७)$$

$$Sn\,Cl_4^{-} + Fe^{+++} = Fe^{++} + Sn\,Cl_4 \qquad (८)$$
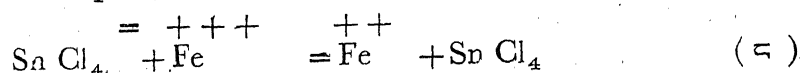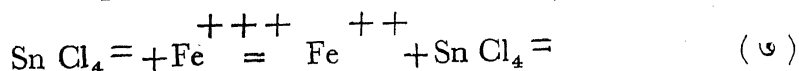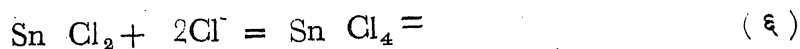
ऊपर की प्रक्रियाओंमें (६) और (८) प्रक्रियायें अत्यन्त गतिवान हैं किन्तु ७ वीं क्रिया मन्द गति से होती है। इसलिये यही पूर्ण प्रतिक्रिया की गति को निश्चित करती है।

सक्रियमाण ऊर्जा

प्रक्रिया की गति की ताप पर निर्भरता के सम्बध में जो अध्ययन किया गया है उससे हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि साधारणतः वे ही अणु प्रतिकृत हो सकते हैं जिनमें ऊर्जा की उच्च मात्रा रहती है। वे अणु जिनमें औसत मात्रा में ऊर्जा होती है तब तक प्रतिक्रिया में भाग नहीं ले पाते जब तक वह कुछ अतिरिक्त ऊर्जा संग्रह नहीं कर लेते। औसत ऊर्जा वाले अणुओं में इस प्रकार की ऊर्जा-वृद्धि, सक्रियमाण ऊर्जा कहलाता है। सक्रिय ऊर्जा के इस विचार ने अनेकों नवीन विचारों को जन्म दिया। सैद्धान्तिक और प्रायोगिक दोनों रूपों से यह दिखाया जा सकता है कि किसी भी प्रतिक्रिया का समानुपातिक स्थिरांक नीचे लिखे समीकरण से दिया जा सकता है :—

$$k = A e^{-E/RT} \qquad (६)$$

जहाँ A नियतांक है, E प्रतिक्रिया की सक्रियमाण ऊर्जा है, T चरम ताप है जिस पर प्रतिक्रिया चलती है और R, गैस-स्थिरांक है। k का मान प्रयोगों से ज्ञात हो सकता है। फिर दो या अधिक ताप पर प्रयोग करके E का मान सरलता पूर्वक निकाला जा सकता है। E का मान ज्ञात हो जाने पर एक अणु के विभिन्न बन्धनों की प्रतिक्रिया की तुलना की जा सकती है। उदाहरण-स्वरूप जब सोडियम वाष्प मीथिल क्लोइड, ब्रोमाइड या आयोडाइड से प्रतिकृत होती है तब नीचे लिखी प्रतिक्रियायें होती हैं:—

(क) $CH_3Cl + Na = NaCl + CH_3^+$

(ख) $CH_3Br + Na = NaBr + CH_3^+$

ग) $CH_3I + Na = NaI + CH_3^+$
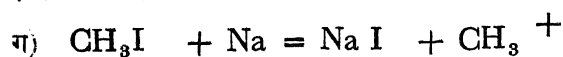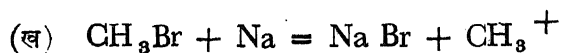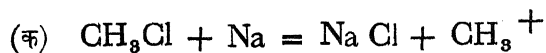
प्रक्रिया (क) में सक्रियमाण ऊर्जा लगभग ६००० कैलोरी है, प्रक्रिया (ख) में लगभग ३००० कैलोरी है जबकि प्रक्रिया (ग) में वह लगभग शून्य है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि C–Cl बन्धन C–Br बन्धन से दृढ है और यह दोनों ही बन्धन C–I बन्धन से दृढ हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि बान्धव ऊर्जा सक्रियमाण ऊर्जा के समान हैं यद्यपि उसका मान निश्चित रूप से सक्रियमाण ऊर्जा पर निर्भर है। सक्रियमाण ऊर्जा के आधार पर गणित के सिद्धान्तों के अनुसार बान्धव-ऊर्जा की यथार्थ गणना अधिक कठिन है।

———

स्वामी हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार की घोषणा

सन् १९५९ का स्वामी हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार श्री हीरेन्द्र नाथ बोस को उनकी मौलिक कृति "मृत्तिका उद्योग" पर प्रदान किया गया है।

"मृत्तिका उद्योग" हिन्दी समिति ग्रंथमाला का बीसवाँ पुष्प है जिसे सूचना विभाग उत्तर प्रदेश ने सन् १९५८ में प्रकाशित किया है। यह एक वृहद् ग्रंथ है जिसमें ४८७ पृष्ठ हैं। इसका मूल्य केवल ८ रुपये है। हिन्दी में औद्योगिक विज्ञान सम्बन्धी यह एक प्रामाणिक कृति है।

इस कृति में १५ अध्याय हैं जिनमें क्रमशः मिट्टी की विभिन्न सामाग्रियाँ, मिट्टियाँ तथा खनिज पदार्थ, पात्रों का निर्माण, सुखाना तथा पकाना, चिकन प्रलेप तथा रंजक, धातवीय चमक तथा रंजन विधियाँ, पोरसिलेन, कड़े मिट्टी पात्र, प्रलेपित मृत्पात्र, टेराकोटा, दुर्गल वस्तुयें, ईंधन, भट्ठियाँ तथा चूल्हे, उत्ताप मापन, मृद् उद्योग की गणनायें, उद्योग परिकल्पना, तथा कारखाने की व्यवस्था-प्रबंध का विस्तृत वर्णन है। अन्त में परिशिष्ट है जिसमें अनेक उपयोगी आँकड़ों के साथ ही पारिभाषिक शब्दावली दे दी गई है।

लेखक का मृत्तिका-उद्योग से ३० वर्षों का सम्बन्ध रहा है। यही कारण है कि मृत्तिका उद्योग सम्बन्धी समस्त सूचनाओं को उसने बड़ी ही तत्परता से संकलित करके प्रस्तुत किया है। हिन्दी के माध्यम से 'मृत्तिका उद्योग' की गतिविधियों से परिचित होने का पाठकों के लिये यह प्रथम अवसर है। अभी तक हिन्दी में इस प्रकार का प्रामाणिक ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ था। हाँ, लेखक ने बहुत पहले विज्ञान परिषद् से "पोर्सलीन उद्योग" नामक पुस्तिका प्रकाशित की थी।

"मृत्तिका उद्योग" की सबसे बड़ी विशेषता है, उसमें समाविष्ट भारतीय मृत्तिका उद्योग सम्बन्धी नवीन एवं विस्तृत सूचना। लेखक ने कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली "इण्डियन सिरेमिक्स" नामस पत्रिका से नवीनतम खोजों का परिचय प्राप्त कर अपनी पुस्तक में उसका उपयोग किया है। पुस्तक भर में चित्रों, सारणियों तथा रेखा-चित्रों के माध्यम से विषय को अत्यन्त सुबोध एवं प्रामाणिक बनाने का यत्न हुआ है।

इतने बड़े ग्रंथ के लेखन में लेखक को अनेक अंग्रेजी शब्द मिले हैं जिनके हिन्दी पर्याय अभी तक नहीं निर्मित हो पाये। अतः लेखक ने, चाहे जिन स्रोतों से ये पर्याय प्राप्त किये हों, प्रयुक्त हिन्दी शब्दों के अंग्रेजी पर्याय दे दिये हैं। शेष शब्द स्वीकृत शब्दावली के हैं। हाँ,

Polymerisation (अणु एकत्रीकरण), Dispersion (आकीर्णन), (Acid value). (एसिड वैल्यू) Enamel (काँच कलई), Essential oil (गन्ध तेल), Solution (घोल), Chart (निर्देश) Automisation (बौछारीकरण), Composition (संगठन) Space Capacity (समाई) आदि पर्यायों पर पुनः विचार करके लेखक महोदय अगले संस्करण में उचित सुधार करेंगे तो अच्छा होगा। चित्रों में निर्देश के लिये जहाँ अंग्रेजी अक्षर प्रयुक्त हैं, इन्हें भी हिन्दी में करके एक रूपता लाने की आवश्यकता है। मूल स्रोतों को संकेतित करने के लिये अगले संस्करण में प्रत्येक अध्याय के पश्चात् संदर्भ-ग्रन्थों की सूची समाविष्ट करने से पुस्तक की उपयोगिता और बढ़ जावेगी।

स्वामी हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार में जिन लेखकों की कृतियाँ आई थीं वे निम्न प्रकार हैं—

वैश्लेषिक रसायन (कृष्ण बहादुर), माध्यमिक रेखागणित, ठोस ज्यामिति (बृज मोहन), अशोक, नीमः बकायन (रामेशवेदी), घरेलू बिजली (भगवती प्रसाद श्रीवास्तव), ईख और चीनी, पेट्रोलियम तथा कोयला (फूलदेव सहाय वर्मा), भौतिक रसायन की रूपरेखा (रामचरण मेहरोत्रा) आयुर्वेदिक सफल सूची-वेध (वैद्य प्रकाशचन्द्र जैन), प्रकाश विज्ञान (निहाल करण सेठी), माडर्न मेडिकल ट्रीटमेंट (डा० एम० एल० गुजराती), द्रवस्थिति विज्ञान (डा० बी० एन० प्रसाद), जीव जगत (सुरेश सिंह), अभिनव विकृत विज्ञान (रघुबीर प्रसाद त्रिवेदी) तथा रेल इंजन परिचय और संचालन (ओंकारनाथ शर्मा)।

१. यह विशेषांक

विगत पचास वर्षों में वैज्ञानिक क्षेत्र में रासायनिक शोधों ने क्रान्ति ला दी है। प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में रसायन शास्त्र का उपयोग हुआ है और सर्वत्र उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुये हैं। उसमें केवल सीमित एवं संकुचित परिधि में गहनतम अध्ययन नहीं हुआ वरन् भौतिकी, कृषि शास्त्र के क्षेत्रों में भी अन्तदृष्टि प्राप्त की गई है। एक समय लौह तथा अन्य निम्न धातुओं को स्वर्ण में परिवर्तित करने के स्वप्न को पूरा करना ही रसायन का मात्र उद्देश्य था। धीरे-धीरे इस कल्पना को त्याग कर रासायनिक प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया गया और इस क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता भी मिली। कालान्तर में अनेक नये तत्व खोज निकाले गये और उनके यौगिकों का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत हुआ।

रसायन शास्त्र ने और डग मरे। कलिल-रसायन के सूत्रपात द्वारा व्यवहारिक क्षेत्र में रसायन का बोलबाला हो गया। औषधियों के निर्माण एवं उनके सुरक्षित रखने में इस नवीन ज्ञान का प्रचुर प्रयोग हुआ। साथ-साथ विद्युद्रसायन भी विकसित हुआ। उसके द्वारा पूर्व-परिचित सभी प्रतिक्रियाओं का नये दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया। तत्वों की संयोजकता के सम्बन्ध में नवीन सिद्धान्त प्रतिपादित हुये।

फिर प्रतिकियाओं का गतिज अध्ययन प्रारम्भ हुआ। प्रकाश रसायन की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान पहिले ही आकृष्ट हो चुका था। इस सम्बन्ध में आधुनिक युग में नवीन खोजें हुईं। प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया का नवीन दृष्टिकोण से अध्ययन हुआ।

विकिरण-रसायन ने तो एक नये युग का सूत्रपात ही कर दिया जिसे हम "परमाणु युग" या विकिरण का युग कह सकते हैं। इस क्षेत्र में रसायन शास्त्र ने भौतिक शास्त्र की सीमाओं के भीतर प्रवेश करके विशदता का परिचय दिया।

कृषि की ओर रसायन की दृष्टि १००' पूर्व गई परन्तु पिछले कुछ वर्षों में एक नवीन शाखा कृषि-रसायन का ही विकास हो गया है। पौधों के विकास एवं अन्नोत्पादन में सूक्ष्म तत्वों के अध्ययन के हेतु अत्यन्त विकसित पद्धतियों का सहारा लिया जाने लगा है। कृषि में विकिरणों का भी उपयोग होने लगा है। अनेक ऐसे रासायनिक पदार्थों के निर्माण एवं प्रयोग हुये हैं जिनके माध्यम से कृषि में आमूल परिवर्तन आ गया है। ऊसरों के उर्वरीकरण, फसल-सुरक्षा तथा मृत्तिका-खनिजों की दिशा में रसायन शास्त्र अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है।

जीवन का उद्गम एवं विकास आदि-काल से मनीषियों एवं विचारकों के लिये चर्चा का विषय बनता रहा है। इस युग में रसायन शास्त्रियों ने जीवन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रयोगात्मक शोधें

की हैं जिनके अनुसार एक-सेल वाले अमीबा की कोष रचना एवं उसके अवयवों के सम्बन्ध में निश्चित मान्यतायें प्रस्तुत हो सकी हैं। जीव-रसायन की यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

हमारे नित्य प्रति के जीवन में भोज्य पदार्थों में स्थित पोषक तत्वों—विटैमिनों का सर्वाधिक महत्व है। इनकी न्यूनता से अनेक प्रकार के रोग होने की सम्भावना रहती है। भारतीय भोज्य पदार्थों में उनकी विद्यमानता के सम्बन्ध में विशेष कार्य हुये हैं और बंगलोर की भोज्यपदार्थ अनुसंधानशाला इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।

आज के दैनिक जीवन में रबर, नाइलोन तथा प्लास्टिक का विशेष प्रचलन देखा जाता है। आधी शती पूर्व लोग इनसे परिचित तक न थे। इस दिशा में उच्च बहुलक (पालीमर) शोधों ने महत्वपूर्ण योग दिया है।

तात्पर्य यह कि आधुनिक मानव को सभ्यता की ओर द्रुतगति से अग्रसर करने में रसायन शास्त्र के विविध अंगों पर हुई शोधों ने अकथनीय योग दिया है। "विज्ञान" का रसायन अंक पाठकों को रसायन की प्रगति का सिंहावलोकन कराने के उद्देश्य से ही प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है वह उन्हें रुचिकर प्रतीत होगा। यदि वे अपने सुझावों द्वारा हमें प्रोत्साहित कर सके, तो भविष्य में "विज्ञान" के विविध विषयों पर ऐसे ही विशेषांक प्रस्तुत करते हुये हमें हर्ष का अनुभव होगा।

२. ४७ वाँ भारतीय विज्ञान कांग्रेस अधिवेशन

भारतीय विज्ञान कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन १५ से १७ जनवरी १९१४ में कलकत्ता में हुआ था। इस अधिवेशन का सभापतित्व प्रमुख शिक्षा तथा विज्ञान प्रेमी श्री आशुतोष मुखोपाध्याय जी ने किया। इस अधिवेशन में छः शाखायें थीं और ३५ शोध पत्र प्रस्तुत किये गये। उपस्थित वैज्ञानिकों की संख्या १०५ थी इसके पश्चात प्रति वर्ष जनवरी में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन भारत के प्रमुख शिक्षा केन्द्रों में होता रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात कांग्रेस की उत्तरोत्तर उन्नति होती रही है।

इस वर्ष का अधिवेशन बम्बई विश्वविद्यालय के आमन्त्रण से बम्बई नगर के विश्वविद्यालय से संलग्न ओवल उद्यान में ३ से ९ जनवरी तक हुआ। इसमें केवल भारत के ही नहीं वरन् अनेक विदेशी वैज्ञानिक भी उपस्थित थे। कांग्रेस में १३ शाखाओं में बैठकें हुईं और इनमें १६०० से अधिक संख्या मे शोध पत्र प्रस्तुत किए गये। इस अधिवेशन के प्रधान सभापति उत्कल विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० पी० पारिजा थे।

रविवार ३ जनवरी को उद्घाटन समारोह हुआ। प्रशस्त प्रेक्षागृह में प्रायः चार सहस्र वैज्ञानिक तथा विज्ञान प्रेमी आसीन थे। बम्बई के राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश जी ने सदस्यों का स्वागत किया। तदुपरान्त भारत के प्रधान मन्त्री पंडित जवाहर लाल नेहरू जी ने अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए विज्ञान के उपयोग तथा दुरुपयोग की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए वैज्ञानिक विधियों पर बल दिया। प्रधान सभापति डा० पारिजा के भाषण का विषय था "विज्ञान पर समाज का प्रभाव।"

४ से ६ जनवरी तक विभिन्न शाखाओं में वैज्ञानिक अपने शोध कार्यों की विवेचना करते रहे। विभिन्न शाखाओं के सभापति निम्नलिखित थे :

गणित : प्रोफेसर वी० जी० अय्यर, प्रधान गणित विभाग, अन्नमलाय विश्वविद्यालय।

सांख्यकी : डा० सी० आर० राव, प्रधान सैद्धान्तिक शोधकार्य तथा प्रशिक्षण विभाग, भारतीय सांख्यिकीय विद्यालय, कलकत्ता।

भौतिकी : डा० एस० पार्थसारथि, ध्वनि विभाग, राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, दिल्ली।

रसायन : डा० अवनी कुमार भट्टाचार्य्य, प्रधान, रसायन विभाग, आगरा कालेज, आगरा।

भूगर्भशास्त्र तथा भूगोल : डा० वी० एस० दुबे, प्रधान, आर्थिक भूगोल विभाग, काशी हिन्दू विश्व विद्यालय।

वनस्पति शास्त्र : डा० एस० के० पाण्डे, प्रधान, वनस्पति शास्त्र विभाग, सागर विश्वविद्यालय।

जीव विज्ञान : डा० एच० डी० श्रीवास्तव, प्रधान, परजीवीविज्ञान विभाग, भारतीय पशुविज्ञान गवेषणागार, इजत नगर।

नृतत्व शास्त्र तथा पुरातत्व : डा० एम० एल० चक्रवर्त्ती, मेडिकल कालेज, कलकत्ता।

चिकित्सा तथा पशु शास्त्र : डा० ए० आर० नटराजन, रासायनिक परीक्षक, मद्रास राज्य।

कृषि विज्ञान : डा० बी० एन० सिंह, सहायक संचालक, केन्द्रीय औषधि गवेषणागार, लखनऊ।

दैहिकी : डा० ए० राय, उत्तर प्रदेश पशु विज्ञान तथा पशुपालन कालेज, मथुरा।

मनोविज्ञान तथा शिक्षा शास्त्र : डा० डी० गंगोली, मनोविज्ञान विभाग, कलकत्ता, विश्वविद्यालय।

इंजीनियरी तथा धातुकर्म : प्रोफेसर एन० एन० सेन, अवकाश प्राप्त प्रधान, बंगाल इंजिनीयरिंग कालेज, कलकता।

शाखाओं के अधिवेशनों में जो शोध पत्र प्रस्तुत किये गये, उनकी संख्या इस प्रकार है :

शाखा	संख्या	शाखा	संख्या
गणित	२८	नृतत्व शास्त्र तथा पुरातत्व	२६
सांख्यकी	६६	चिकित्सा तथा पशु विज्ञान	३५
भौतिकी	१६५	कृषि विज्ञान	११६
रसायन	४५१	दैहिकी	५३
भूगर्भशास्त्र तथा भूगोल	१६१	मनोविज्ञान तथा शिक्षा शास्त्र	८१
वनस्पति शास्त्र	२४२	इंजीनियरी तथा धातु कर्म	२६
जन्तु शास्त्र	१६८		

प्रत्येक शाखा में आधुनिक शोध कार्य सम्बन्धी विशेष समस्याओं पर विचार-विमर्ष तथा व्याख्यान भी हुए।

इनके अतिरिक्त सन्ध्या के समय विशेष भाषण हुये और कई विशिष्ट विदेशी तथा भारतीय वैज्ञानिकों ने उपयोगी और लोक प्रिय वैज्ञानिक विषयों पर भाषण दिये। कांग्रेस के विदेश से

आए हुये सदस्यों ने अपने व्याख्यान, विचार तथा उपस्थिति द्वारा अधिवेशन को लाभ पहुँचाया। निम्न विदेशी वैज्ञानिक सम्मिलित हुये :

आस्ट्रेलिया : डा० आर० बी० डिग्ले, प्रो० जी० लीपर, डा० बी० एफ० मैकफरलेन तथा डा० आर्नोल्ड एल० राइमान।

बुल्गेरिया प्रो० क्रीस्टो क्रिष्टोव।

कैनाडा : डा० एच० ई० डकवर्थ तथा डा० जी० ए० लेढिंघम।

सीलोन : डा० डब्लू० आर० सी० पौल तथा डा० डी० डब्लू० आर० काहाविटा।

चीन गणतन्त्र : प्रो० चाओ चिउ-चैंग तथा प्रो० चाउ पी-यूयान।

जेकोस्लोवाकिया : प्रो० बाफहलेबा तथा डा० व्लाडिमी लाराडा।

डेनमार्क : प्रो० नील्स बोहर्।

फ्रांस : प्रो० द्राश तथा प्रो० हेनरी मार्सल काउसेन।

जर्मनी (पश्चिमी) : प्रो० एच० लेटर् तथा श्रीमती लेटर् , प्रो० थाउयर तथा डा० फर्डिनराउ ट्रेन्डलेन वर्ग।

जर्मनी (पूर्वी) : प्रो० जी० हावमान, डा० एरिख थीलो तथा डा० हान्स विटब्रोडट्।

घाना : श्री के० त्वाम-बरीमा तथा डा० जे० ऐ० के० क्वार्टे।

ग्रेट ब्रिटेन : सर हवार्ड फ्लोरी, सर वाल्टर पकी, सर एवर्ट स्मिथ, प्रो० ए० सलाम, डा० टमास बालो, प्रो० एल० एफ० बेटस, डा० जान एफ० कोल्स, डा० हेन कान्सटैन्ट, प्रो० जे० ग्रेग तथा श्री सोलोमन एलडर।

हंगरी : अकादेमिशियन जीओर्जी हैजोस तथा अकादेमिशियन जीओर्जी जोगेटी।

जापान : डा० यासू आकी-जाकी, डा० डेन जाबुरो मियाची, डा० एम० टी० ओकूनो तथा डा० मासा योशी टागाया।

पोलैंड : प्रो० मिचल कालेकी तथा प्रो० जरजी कोनोर्सकी।

रूमानिया : अकादेमिशियन नोरिया हुलूबेई तथा अकादेमिशियन एमिल पाप।

स्वीडेन : प्रो० फालके कार्ल जी० ओडक्विस्ट।

स्विटजरलैंड : प्रो० जे० बूयशी।

संयुक्तअरब गणतन्त्र : डा० हसन हमदी तथा डा० महमूद मुख्तार।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका : प्रो० टी० डोबजेनस्की, प्रो० जार्ज गैमो, प्रो० एडवर्ड सैबेल, श्री जे०-एच० डेविडसन, श्री जेम्स सी० रीड तथा श्री मारिस जे० सालोमन।

रूसी गणतन्त्र : अकादेमिशियन लेबेडेव, अकादेमिशियन शेरबाकोव, प्रो० आरलोव, प्रो० मालोव, प्रो० उल्यानोवस्की, प्रो० कारी नियाजोव उक्सबेक तथा श्रीमती पेटरोवा।

यूगोस्लाकिया : डा० पीटर मार्टिनोविक।

अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ : श्री के० ए० बेनेट तथा डा० पी० वी० सुखात्मे (खाद्य तथा कृषि प्रतिष्ठान), श्री विलियम जे० एलिस (यूनेस्को), डा० गिलिस कार्ल हेरलाइट (विश्व स्वास्थ्य प्रतिष्ठान), डा० एस० बसु (विश्व जलवायु संगठन)।

भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अवसर पर भारत के अनेक वैज्ञानिकों को एकत्र होने का संयोग प्राप्त होता है और अधिकतर वैज्ञानिक संस्थाएँ इस समय अपने वार्षिक अधिवेशन की योजना करती हैं। इस वर्ष भी बम्बई में इस प्रकार की लगभग २५ संस्थाओं का वार्षिक अधिवेशन हुआ।

इस अवसर पर ३ जनवरी को विज्ञान परिषद् प्रयाग "विज्ञान अनुसंधान गोष्ठी" का आयोजन किया गया जिसका सभापतित्व बनारस विश्वविद्यालय के गणित विभाग के अध्यक्ष डा० वी० पी० नालिकर ने किया। उनके अध्यक्षपदीय भाषण के अतिरिक्त विविध वैज्ञानिक विषयों पर कई शोध निबन्ध पढ़े गये।

३. विज्ञान अनुसन्धान गोष्ठी

साइंस कांग्रेस अधिवेशन, बम्बई के अन्तर्गत विज्ञान परिषद्, प्रयाग द्वारा "विज्ञान अनुसन्धान गोष्ठी" का सफल आयोजन न केवल देश के वैज्ञानिक साहित्य वरन् विश्व के वैज्ञानिक साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। विज्ञान की सार्वभौमिकता, विज्ञान की निरन्तर सबल होती हुई मानवी शक्तियों की विलक्षणता ने वैज्ञानिक ज्ञान को आज के जन-जीवन के लिये परम आवश्यक बना दिया है। जन-साधारण तक विज्ञान का सन्देश पहुँचाने के लिये देश-विदेश की राष्ट्रभाषा का माध्यम ही अत्यन्त उपयुक्त है, यह कहने की आवश्यकता नहीं; इस पृष्ठभूमि में भारतीय जनता के लिये वैज्ञानिक ज्ञान सुगम व सुलभ कराने हेतु हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन का क्या महत्व है, यह अनुमान लगाना कठिन नहीं!

विज्ञान परिषद्, प्रयाग अपने जन्म से (सन् १९१४) ही इस महत्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति में रत है। मासिक "विज्ञान" के प्रकाशन के साथ-साथ अब दो वर्षों से हमारी संस्था ने त्रैमासिक "विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका" के प्रकाशन का सत्कार्य हाथ में लिया है। हर्ष एवं गौरव का विषय है कि उक्त त्रैमासिक अनुसन्धान पत्रिका (जिसमें केवल शोध निबन्ध ही प्रकाशित होते हैं) की सामग्री को "केमिकल ऐब्सट्रेक्ट" (Chemical Abstract) ने सन् १९५८ से ही संक्षिप्तीकरण के लिये अपनी सूची में सम्मिलित कर लिया है तथा अन्य "ऐब्सट्रेक्स" (Abtract) प्रकाशन तत्सम्बन्धी सामग्री प्रकाशित करना अनिवार्य समझने लगे हैं।

यों तो लोकप्रिय व सरल वैज्ञानिक साहित्य के सृजन की ओर हिन्दी में कुछ समय से "विज्ञान" के सिवा अन्य प्रयास भी हो रहे हैं किन्तु मौलिक वैज्ञानिक चिन्तन को हिन्दी के माध्यम द्वारा व्यक्त करने का प्रयास अनुसन्धान पत्रिका में प्रस्तुत सामग्री के रूप में देश में प्रथम प्रयास है। विशेष रुचिकर बात तो यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक जगत हिन्दी के प्रति सहिष्णु हो चला है, प्रमाणस्वरूप अंग्रेजी त्रैमासिक सुविख्यात पत्रिका एन्डेवर (Endeavour) तथा केमिकल एजुकेशन (Chemical Education) में निकटभूत में ही प्रकाशित सम्पादकीय टिप्पणियाँ हैं जिनमें वैज्ञानिक भाषाओं की सूची में एशिया की कुछ भाषाओं के महत्वपूर्ण स्थान पाने की आशा प्रकट की गई है, इनमें हिन्दी प्रमुख है।

हिन्दी में मौलिक वैज्ञानिक चिन्तन को प्रोत्साहन देने के लिये उक्त अनुसन्धान पत्रिका के प्रकाशन के साथ-साथ परिषद् ने एक वार्षिक अनुसन्धान गोष्ठी का आयोजन भी अपने कार्यक्रम में रखा है, गोष्ठी का अवसर देश की सर्वप्रमुख वैज्ञानिक संस्था "इण्डियन साइन्स कांग्रेस" के वार्षिक अधिवेशन के समय पर रखा गया है। तदनुसार परिषद् की प्रथम गोष्ठी जनवरी सन् १९५९ में दिल्ली में हुई, द्वितीय अनुसन्धान गोष्ठी ३ जनवरी, सन् १९६० को बम्बई में आयोजित की गई।

वैज्ञनिक साहित्य के सृजन में हिन्दी के अधिकाधिक महत्वपूर्ण स्थान पाने की भूमिका में बम्बई में आयोजित सफल गोष्ठी का संक्षिप्त विवरण अपेक्षित है।

गोष्ठी के प्रारम्भ में डा० सत्य प्रकाश (प्रयाग विश्व विद्यालय) ने माननीय अतिथि का स्वागत करते हुए परिषद का संक्षिप्त इतिहास बताया। गोष्ठी का उद्घाटन बम्बई राज्य के स्वास्थ्य उपमंत्री डा० एन० एन० कैलाश ने किया। अपने भाषण में डा० कैलाश ने वैज्ञानिकों को आज की परमावश्यकता-भारतीय जनता में वैज्ञानिक शिक्षा का प्रसार-के प्रति जागरूक होने का आदेश करते हुए यह मत प्रकट किया कि शीघ्रातिशीघ्र स्नातक तथा आचार्य-स्तर तक की मौलिक पुस्तकों या अनुवाद का हिन्दी में प्रकाशन किया जाय। इसके लिये, उन्होने एक प्रभावशाली तथा सक्रिय अन्तर्प्रान्तीय समिति के निर्माण करने की सलाह दी। गोष्ठी के अध्यक्ष, प्रो० वी० वी० नारलीकर (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) ने अपने अध्यक्षपदीय भाषण में विज्ञान के वर्तमान रूप की गणितीय व्याख्या बड़े पाण्डित्य पूर्ण ढँग से दी। गोष्ठी में कई शोध निबन्ध पढ़े गये, निबन्ध पाठ के बाद उन पर महत्वपूर्ण विवाद व विचार-विमर्ष हुआ। गोष्ठी में देश के कोने-कोने से आये निम्न वैज्ञानिकों ने भाग लिया—वाराणसी के प्रो० वी० वी० नारलीकर, विद्या सागर दुबे, अजीत राम वर्मा, सहदेव प्रसाद पाठक, नन्दलाल सिंह, उमा शंकर, हरीनाथ राय, रमा शंकर सिंह, तथा ह० जी० आरणीकर, कलकत्ता के डा० आत्माराम, पुरी के डा० जी० एस० घोष, गोरखपुर के प्रो० रामचरण मेहरोत्रा तथा देवेन्द्र शर्मा, आगरा के प्रो० अवनीकुमार भट्टाचार्य डा० नरेन्द्र नाथ घटक गिरिराज किशोर चतुर्वेदी तथा ताराचन्द्र गुप्त, पूना के डा० गो० रा० पराँजपे, भूपाल के प्रो० हरप्रसाद अग्रवाल, जबलपुर के डा० सूरजभान सिंह, कानपुर के जनार्दन प्रसाद शुक्ल तथा न०-अ० रामप्या, नैनीताल के प्रो० ओंकारनाथ पर्ती, दया प्रसाद खाण्डेलवाल, देवीदत्त पन्त, युगुलकिशोर गुप्त, सत्य प्रकाश श्रीवास्तव तथा देवीराम गुप्त, बम्बई के चन्द्र शेखर कनेकर, रुद्रपाल सिंह, सुखदेव पाल, चिन्तामणि पाण्डे, दि० स० अगाशे, श्री भुवनचन्द्र पाण्डे, गिरजेश गोविल, करणसिंह, तथा विपिन मुख्यान वाला, लखनऊ के प्रो० प्रेमनाथ शर्मा तथा मुकुन्द बिहारी लाल, कराई कुडीके डा० प्रेम विहारी माथुर, दिल्ली के श्री मुल्कराज वर्मा, कोमल चरण अग्रवाल, डाक्टर बालकिशोर नायर तथा ए० वी० जैन, सागर के डा० सतगुर शरण निगम, रायपुर के श्री नन्दलाल जैन, प्रयाग के डा० श्रीमती रत्नकुमारी, अरुण कुमार दे, हीरालाल निगम, कृष्ण गोपाल, डा० प्रेम स्वरूप, उमाचरण शुक्ल, सुमत प्रकाश गर्ग, वीरेन्द्र कुमार माथुर, शिव प्रकाश, कृष्ण स्वरूप श्रीवास्तव, कृष्णमुरारी लाल, असीम घोष, रा० प्र० अग्रवाल, शिवकुमार तिवारी, के० सी० तिवारी, के० एन० उपाध्याय तथा कुमारी पूर्णिमा दबे।

अन्त में प्रो० रामचरण मेहरोत्रा (गोरखपुर विश्वविद्यालय) ने कृतज्ञता प्रकाशन किया जिसमें हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के उज्ज्वल भविष्य की आशा प्रकट की गई। हमें विश्वास है कि गोष्ठी की सर्वप्रियता, सफलता और उपयोगिता वस्तुतः इस क्षेत्र में काम करने वालों को बल प्रदान करेगी !

३. सं० २०१४ का मंगला प्रसाद पुरस्कार

३ जनवरी १९६० को हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने सम्बत् २०१४ का मंगलाप्रसाद पुरस्कार श्री फूलदेव सहाय वर्मा को उनकी कृति "ईख और चीनी" पर प्रदान किया है। यह पुरस्कार औद्योगिक विज्ञान की सर्वश्रेष्ठ कृति पर घोषित किया गया है। ज्ञात हो कि केन्द्रीय सरकार "ईख और चीनी" को पहले ही पुरस्कृत कर चुकी है।

श्री वर्मा ने मंगला प्रसाद पुरस्कार की निधि से सहर्ष १०००) विज्ञान परिषद को दान स्वरूप दिया है।

४. भारतीय गणित परिषद् का पचीसवाँ अधिवेशन

पं० जवाहर लाल नेहरू ने २५ दिसम्बर १९५९ को प्रयाग विश्वविद्यालय के सीनेट हाल में भारतीय गणित परिषद के पचीसवें अधिवेशन का उद्घाटन करते हुये गणित के क्षेत्र में अधिकाधिक शोध कार्य करने की राय दी। विगत ५१ वर्षों के जीवन-काल में गणित परिषद् का यह अधिवेशन प्रयाग में विशेष महत्व रखता है। प्रयाग विश्वविद्यालय के गणित विभाग ने उक्त अधिवेशन को सफल बनाने के लिये अथक प्रयास किये; परन्तु खेद है कि उसमें स्थानीय व्यक्तियों, अध्यापकों तथा शोध छात्रों को न तो आमन्त्रित किया गया और न उनके प्रवेश की कोई व्यवस्था ही की गई।

५. विश्व कृषि मेला एवं प्रदर्शिनी

नई दिल्ली में कृषि प्रदर्शनी का उद्घाटन गत ११ दिसम्बर को हमारे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। भारतीय कृषक समाज द्वारा आयोजित यह प्रदर्शिनी अपने प्रकार की सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शिनी है जिसमें विश्व के ११ अग्रणी राष्ट्र भाग ले रहे हैं। इनमें अमेरिका, रूस तथा चीन द्वारा निर्मित मण्डप दर्शकों का ध्यान सर्वाधिक आकृष्ट करते हैं। इस प्रदर्शिनी का महत्व इस दृष्टि से और भी अधिक है कि उद्घाटन के समय अमेरिका के राष्ट्रपति आइसनहोवर भी उपस्थित थे। इस विश्व कृषि मेले का भारतीय कृषकों के लिये सर्वाधिक महत्व है। विभिन्न राष्ट्रों में होने वाली कृषि की वैज्ञानिक प्रगति हमारे कृषकों को स्फूर्ति प्रदान करेगी। हमारे राष्ट्रपति ने उद्घाटन करते हुये कहा कि भारतीय कृषक अपनी पुरानी कृषि प्रणाली पर ही, यद्यपि वह मूल्यवान है, निर्भर न रहकर देश की आवश्यकता और साधनों के अनुसार नवीनतम वैज्ञानिक कृषि प्रणालियों को अपनावें।

राष्ट्रपति आइसनहोवर ने इस अवसर पर भाषण करते हुये कहा, "यह ठीक हुआ कि यह मेला भारत में आयोजित किया गया क्योंकि यह देश कृषि को मानव का मौलिक पेशा समझता है तथा अपने नागरिकों की अच्छी निर्वाह-व्यवस्था के लिये मुख्यतया इसी पर निर्भर है।"

पं० नेहरू ने भी अपने भाषण में कहा "विश्व कृषि मेला भारत के मूल उद्योग का प्रतिनिधित्व करता है। कृषि से भारतीय की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति होगी।

सोवियत के प्रधान मंत्री निकिता-ख्रुश्चेव ने अपने संदेश में लिख भेजा है कि :

"दिल्ली में विश्व कृषि प्रदर्शिनी का संगठन भारतीय जनता के लिये एक उल्लेखनीय घटना है, और यह केवल भारत के लिये ही उल्लेखनीय घटना नहीं है, यह घटना अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाने, राज्यों के मध्य सौहार्द तथा पारस्परिक सद्‌भाव को आगे बढ़ाने के भारतीय जनता के हार्दिक प्रयास का प्रमाण है। सोवियत संघ की जनता की कामना है कि सारे संसार के खेतों में फसलें पैदा हों, बाग बगीचे फूलें-फूलें, किसानों का काम उन्हें सुख प्रदान करे, उनके शान्तिपूर्ण श्रम में नये युद्ध के खतरे से विघ्न उपस्थित न हों।"

———

साइको आयताकार जल ऊष्मक

माडल आर डब्ल्यू बी
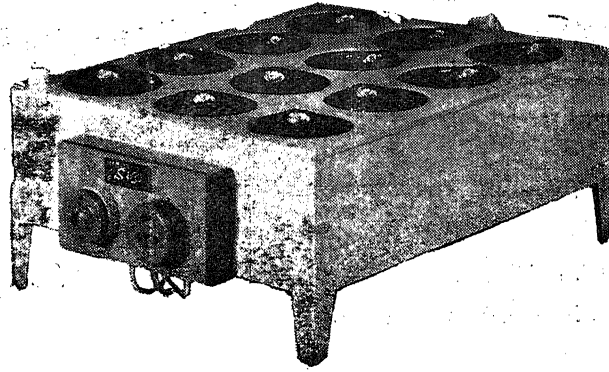
इसे तांबे की चादरों से बनाया गया है। इसमें ३ इञ्च व्यास के छेद हैं जिनमें एक केन्द्रीय, वृत्ताकार, एक दूसरे से संलग्न वलय लगे हैं जिनमें विभिन्न आकारों के फ्लास्क रखे जा सकते हैं। ऊष्मक में जल का तल स्थिर रखने के हेतु ऐसी व्यवस्था रखी गई है कि जल का तल ऐच्छिक तल पर रखा जा सकता है। ऊष्मा देने के हेतु बिजली के इलीमेन्ट लगाये गये हैं जिन्हें सुविधापूर्वक बदला जा सकता है। ऊष्मक को ए सी / डी सी बिजली के द्वारा २३० वोल्ट पर काम में लाया जाता है। यन्त्र के साथ बिजली का तार और प्लग दिया जाता है, थर्मामीटर नहीं।

विशेष विवरण

माडल	आन्तरिक प्रसार	छेदों की संख्या
आर डब्ल्यू बी-४	२४० मि० मी० × २४० मि० मी० × ८५मि०मी० ६½ " × ६½ " × ३½ "	४
आर डब्ल्यू बी-६	३५० मि० मी० × २४० मि० मी० × १००मि०मी० १४ " × ६½ " × ४ "	
आर डबल्यू बी-१२	४५० मि० मी० × ३५० मि०मी० + १००मि०मी० १८½ " × १४ " × ४ "	

दी साइंटिफिक इन्स्ट्रूमेन्ट कम्पनी लिमिटेड

२४० डा० दादाभाई नौरोजी रोड
बम्बई—१

११ एस्प्लेनेड ईस्ट
कलकत्ता—१

६ तेज बहादुर सप्रू रोड
इलाहाबाद १

१३० माउण्ट रोड
मद्रास—२

बी—७ अजमेरी गेट एक्स्टेन्शन
नई दिल्ली—१

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिगराम भार्गव	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगा शंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रमेश वेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकरराव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर	२ रुपया
१०—कलम पैबन्द—श्री शंकरराव जोशी	२ रुपया
११—जिल्द साजी—श्री सत्य जीवन वर्मा एम० ए०	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०	१ रुपय
१३—वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०, वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० न० पै०
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपया
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपय
१९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
२०—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रु० ५० नये पैसे
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकर राव जोशी	३ रु० ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनिया—श्री रामेश वेदी	४ रुपया
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्र नाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान-शालायें	२ रुपया
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
२६—रेल इंजन, परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ९० | २०१६ विक्र०; फाल्गुन १८८१ शाकाब्द; मार्च १९६० | संख्या ६

ट्रांसिस्टर के बारह वर्ष

कुलदीप चड्ढा

जी नहीं—ट्रांसिस्टर अभी पूरे १२ वर्ष का नहीं हुआ। इसके जन्म की घोषणा ३० जून १९४८ को हुई थी। इसके आविष्कार का श्रेय, अमेरिका के प्रख्यात विज्ञान-संस्थान, 'बेल टेलीफोन लेबॉरेटरीज' के दो अनुसन्धानकर्ताओं, बारडीन और ब्राट्टेन को मिला।

११-१२ वर्ष का यह बालक, अब किशोरावस्था की ओर अग्रसर है। उसकी क्षमता बढ़ रही है और चर्चा का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। पर देखने में वह बढ़ा नहीं—आकार में, परिमाण में अथवा भार में। इस दृष्टि से तो वह कुछ छोटा ही हुआ होगा।

पर, बढ़ कर उसे लाभ भी क्या? उसका सम्मान तो उसके छोटे आकार के कारण ही है। ११-१२ वर्ष की आयु पाकर भी वह छोटा ही है—अत्यन्त छोटा।

······अब आपके धैर्य की परीक्षा करने के स्थान पर, आइए आपको यह बतलाएँ कि यह ट्रांसिस्टर है क्या वस्तु? हो सकता है आप में से कुछ इसके नाम से भी परिचित न हों।

आपने शायद कभी अपने रेडियो को खोल कर, उसके आन्तरिक ढाँचे पर दृष्टि डाली हो—और नहीं तो केवल कौतूहल वश ही। या फिर सम्भवतः किसी रेडियो की

दुकान पर खुला हुआ रेडियो सेट ही देखा हो। यदि आपने यह व्यापार कुछ रुचि लेकर किया था, तो आपको याद होगा कि इस विचित्र से ढांचे में ५-७ नलिकाएँ सी थीं, शीशे की अथवा लोहे के आवरण की। इन्हें प्रदीप या रेडियो की बत्ती कहा जाता है। ये ही पदार्थ रेडियो का हृदय हैं। सैकड़ों अथवा हजारों मीलों की यात्रा करके आने वाली क्षीण रेडियो तरंगों का संवर्धन करना—और अन्य तत्सम व्यापार, जिनके द्वारा अन्त में आप मधुर संगीत अथवा ज्ञानवर्धक सामग्री आदि स्पष्ट सुन पाते हैं—इन्हीं प्रदीपों द्वारा साध्य है।

पर इनका प्रयोग केवल आपके रेडियो तक ही सीमित हो, ऐसी बात नहीं। ये तो सैकड़ों-हजारों वैज्ञानिक, औद्योगिक और चिकित्सा संबन्धी कार्यों में भी प्रयुक्त होते हैं।

१२ बरस का अल्पवय ट्रांसिस्टर, इसी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न, प्रौढ़ वय के प्रदीप को, स्थानान्तरित करने की धृष्टता लेकर पैदा हुआ है। पर भला किस बल-बूते पर? सो भी सुन लीजिए।

लगभग सभी प्रदीपों में बिजली के लट्टू के प्राज्ज्वलनीय तंतु की भाँति ही, एक छोटा सा तंतु (filament) होता है; जिस समय आप अपना रेडियो चलाते हैं—अथवा दूसरे उपकरणों में, ज्यों ही आप विद्युत का संचार करते हैं—यह तंतु भी, बिजली के लट्टू की तरह प्रकाश देता है। पर इसके साथ ही, इलेक्ट्रान (electrons) नामक अत्यन्त क्षुद्र कणों को भी उगलता है। शीशे के आवरण में से आप प्रकाश का तो प्रायः आभास पा सकते हैं, पर इलेक्ट्रान अत्यन्त लघु आकार के होने के कारण देखे भी नहीं जा सकते। ये ऋणाणु ही, विशेष नियंत्रण द्वारा, प्रदीपों से साध्य, सभी व्यापारों का आधार होते हैं। ट्रांसिस्टर में भी, इस प्रकार के व्यापार, इक्लेट्रान द्वारा होते हैं। पर यहाँ उन्हें उत्पन्न करने के लिए किसी तंतु को प्रज्ज्वलित करने की आवश्यकता नहीं।

जिस प्रकार आपके घर में, बिजली का बल्व, पंखा, कपड़े प्रेस करने की इस्त्री आदि, विद्युत शक्ति का व्यय करते हैं, उसी प्रकार आपका रेडियो भी करता है। रेडियो के प्रदीपों द्वारा व्यय की जाने वाली विद्युत का मुख्य अंश, उक्त तंतुओं को जलाने में उपयुक्त होता है। अतः प्रदीपों के स्थान पर ट्रांसिस्टर के प्रयोग से, इस मात्रा का विद्युत व्यय बचाया जा सकता है। अधिक क्षमता (efficiency) के कारण शेष बिजली का भी व्यय, ट्रांसिस्टर वाले उपकरणों में कम होता है। इस प्रकार, एक ही प्रकार के उपकरणों, और उनसे समान क्षमता प्राप्त करने के लिए, ट्रांसिस्टर वाले उपकरण से केवल आधी अथवा तिहाई विद्युत ही व्यय होगी। ट्रांसिस्टर से इस गुण का लाभ ऐसे स्थलों अथवा स्थानों पर, और भी उपयोगी सिद्ध होता है, जहाँ हम बैटरी का प्रयोग करने पर बाधित हों।

नगरों में विद्युत शक्ति का मूल्य कम होता है। इसलिए बिजली के खर्च में बचत केवल भीमकाय मशीनों आदि में ही चिन्त्य है। पर बैटरी के उपकरणों का प्रयोग करने वाले जानते हैं कि उन्हें बैटरी की विद्युत प्रयोग करने का क्या मूल्य देना पड़ता है।

यही नहीं, ट्रांसिस्टर के लिए प्राय: बहुत कम विभव (voltage) की बैटरी चाहिए—बहुधा ६ वोल्ट से ही काम चल जाता है। अत: विशेष प्रकार की और महँगी बैटरी के स्थान पर, टार्च में इस्तेमाल होने वाले डेढ़ वोल्ट के चार सैल ही काफी होते हैं। जरा तुलना करिए, बैटरी के रेडियो के साथ प्रयुक्त होने वाली बैटरी से? और फिर ट्रांसिस्टर का आकार? जितना घनफल आपके रेडियो का एक प्रदीप घेरता है, उसमें तो २-३ सौ ट्रांसिस्टर समा जावें। क्या यह कम कौतुक नहीं?

लघु आकार, कम विभव और कम शक्ति की आवश्यकता, ये तीन गुण जिस पदार्थ में एक साथ हों, उसके आविष्कार की उपयोगिता में संदेह को स्थान कहाँ? प्रत्युत इन गुणों से ही उसकी लोक-प्रियता, दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ रही है। प्रत्यक्षे किम् प्रमाणम्? लीजिए उसके समर्थन में कुछ आँकड़े प्रस्तुत हैं:—

एक अनुमान के अनुसार, सन् १९५५ ई० में लगभग १ करोड़ ३० लाख ट्रांसिस्टर निर्मित किए गए। दो साल बाद, १९५७ में यह संख्या, दोगुनी से भी बढ़ कर २ करोड़ ६० लाख हो गयी। अगले वर्ष, १९५८ में ट्रांसिस्टर के उत्पादन का अनुमान है साढ़े सात करोड़।

—ट्रांसिस्टर आविष्कार के केवल दस साल बाद!

न केवल उत्पादन संख्या में, प्रत्युत प्रयोग की विविधता में भी ट्रांसिस्टर ने आशातीत उन्नति की। इस सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि प्रारम्भ में ट्रांसिस्टरों का प्रयोग निम्न आवृतियों (low frequencies) तक ही सीमित था—श्रव्य (audio) आवृतियों तक। अर्थात् वे मुख्यतया केवल ध्वनि संवर्धन (amplification) के व्यापार के लिए ही प्रयुक्त हो सकते थे। इस क्षेत्र में भी, वे अधिक से अधिक कुछ मिली-वॉट (शक्ति की इकाई, वॉट का हजारवाँ भाग) श्रव्य-शक्ति ही उपलब्ध करा सकते थे। पर अब क्रमशः उन्नति करके ट्रांसिस्टर के कुछ प्रकार ३००० मेगासाइकल (अर्थात् ३००,००,००,००० स्पन्दन प्रति सैकेंड) तक की आवृतियों पर प्रयुक्त हो सकते हैं। स्मरण रहे कि श्रव्य-आवृतियाँ प्राय: १०-१५ हजार स्पन्दन प्रति सैकेंड तक सीमित हैं। इस प्रकार, जहाँ तक उच्च-आवृतियों पर प्रयोग की क्षमता का सम्बन्ध है, ट्रांसिस्टर ने दो लाख गुनी प्रगति की है। इसके साथ ही उसकी शक्ति की सीमाएँ भी बढ़ी हैं और कुछ सौ वॉट शक्ति देने वाले उपकरण असंभव नहीं।

प्रयोग की इस विविधता के अनुरूप, ट्रांसिस्टर के प्रकार भी बढ़ते जा रहे हैं। उदाहरणार्थ १९५६ में लगभग ढाई-तीन सौ प्रकार के ट्रांसिस्टर बनते थे। अगले वर्ष १९५७ में यह विविधता बढ़कर सात आठ सौ हो गयी। और अब तो, हजार क्या हजारों प्रकार के ट्रांसिस्टर बन रहे हैं। यह आँकड़े अमेरिकन सूचनाओं पर आधारित हैं। पर आजकल इस क्षेत्र में अमेरिका के अतिरिक्त रूस, जर्मनी, हालैंड, जापान, चैकोस्लोवाकिया, इंगलैंड आदि देश भी प्रवेश कर चुके हैं।

अमेरिका की भाँति रूस की प्रगति का गणनाओं में उल्लेख तो संभव नहीं। पर इस संबन्ध में कुछ चर्चा करना रोचक होगा। राकेट प्रक्षेपण और अन्तरिक्ष विहार में अपनी महत्वपूर्ण उपलब्धियों के द्वारा, रूस ने इस क्षेत्र में अपने नेतृत्व की धाक जमा दी है। ट्रांसिस्टर, राकेट और तत्सम व्योम विहारियों की काया की आवश्यक नस-नाड़ियों का एक प्रमुख अंग है। इसका कारण भी स्पष्ट है। राकेट आदि के भार में विशेष वृद्धि किए बिना, रेडियो संबंधी यन्त्र स्थापित कर पाना, इन छोटे-छोटे ट्रांसिस्टरों के प्रयोग द्वारा ही संभव हो सका। तथात्र, गतिशील और प्रकंपित वाहनों में, रेडियो की बत्तियों का खराब हो जाना असम्भव नहीं। पर ट्रांसिस्टर इस प्रकार की धक्का-मुक्की को सहज ही झेल लेता है। हजारों मील प्रति सैकेंड की गति से दौड़ने वाले आयोजनों में, ट्रांसिस्टर के इस गुण ने, वैज्ञानिकों की बड़ी सहायता की है। प्रदीप वाले उपकरणों की अपेक्षा ट्रांसिस्टर वाले उपकरणों में विद्युत शक्ति का प्रबन्ध भी नितांन्त सरल है। छोटे-छोटे टार्च-सैल ही पर्याप्त होते हैं। और व्योमविहारियों में तो इनकी भी इतनी आवश्यकता नहीं। इनमें आजकल सौर (solar) बैटरियाँ प्रयोग की जाती हैं, जो सूर्य की धूप को विद्युत शक्ति में परिवर्तित कर सब प्रकार के काम चलाती हैं। राकेट विज्ञान के विकास में सर्वोच्च स्थान पाने वाला रूस, ट्रांसिस्टर के क्षेत्र में भी अमेरिका से बाजी ले चुका हो, यह असम्भव नहीं।

जिन तत्वों का ट्रांसिस्टर के निर्माण में प्रयोग किया जाता है, उन्हें वैज्ञानिक भाषा में अर्धचालक (Semi-conductor) कहा जाता है। इनका विद्युत-स्वभाव, चालक (conductors) और पृथक्कारी (Insulators) के बीच का होता है। आधुनिक विचारों के अनुसार, विद्युत्-धारा (current), इलेक्ट्रान का प्रवाह मात्र है। अपने विशेष स्वभाव के कारण, अर्ध चालकों में विद्युत-धारा क्षीण सी होती है और इसका सहज ही नियंत्रण हो सकता है। इसी नियम को, ट्रांसिस्टर का आधार बनाया गया है।

ट्रांसिस्टर के निर्माण में, मुख्यतया जर्मेनियम और सिलिकन नामक तत्वों का प्रयोग होता है। इन तत्वों में अन्य तत्वों की अत्यल्प मात्रा मिला देने से उपर्युक्त अवस्था उत्पन्न की जाती है। इस अल्पता की परिभाषा सम्भवत: रोचक हो। जर्मेनियम या सिलिकन के परमाणुओं (Atoms) में विजातीय तत्वों का परिमाण औसतन एक करोड़ में एक का होता है। इसके लिए पहिले, मूल तत्वों को इतना शुद्ध किया जाता है उनके एक अरब (१,००,००,००,०००) अणुओं में, विजातीय तत्वों का एक अणु भी नहीं रहने पाता। इस शोधन के लिए जोन रिफाइनिंग (Zone Refining) नामक प्रक्रिया का १९५४ में आविष्कार किया गया।

विशेष प्रकार की मिलावटों से, अर्ध-चालकों के P—प्रकार और N—प्रकार बनाये जाते हैं। दो विरोधी पदार्थों के टुकड़े परस्पर मिला देने से ऋजुकर (Rectifier) नामी उपकरण बन जाता है। विशेष रीति से एक टुकड़ा P या N का और जोड़ देने से N—P—N या P—N—P प्रकार का ट्रांसिस्टर बन जाता है। इन ट्रांसिस्टरों की

बीच वाली परत प्राय: बहुत पतली होती है। उच्च आवृत्तियों में प्रयोग के लिए यह परत जितनी पतली हो उतना ही उत्तम होगा। आजकल विशेष प्रणालियों द्वारा इस परत को इंच के लाखवें भाग तक का परिमाण दिया गया है।

प्रारंभ में जिस ट्रांसिस्टर का आविष्कार हुआ था, उसकी संरचना के कारण उसे विंदु संपर्क ट्रांसिस्टर (Point Contact) की संज्ञा मिली। पर १९५१ में शाँकले ने संयुज ट्रांसिस्टर का आविष्कार किया, जिसकी रचना पूर्ववर्ती उपकरण की अपेक्षा अधिक सरल है। अब अपने विशेष गुणों के कारण, कुछ सीमित प्रयोगों को छोड़ कर, आजकल प्राय: संयुज ट्रांसिस्टर ही अधिक इस्तेमाल होते हैं। इनके सम्बन्ध में यह तथ्य मनोरंजक है कि इनके आविष्कार से ३ वर्ष पूर्व स्वयं शाँकले ने ही, गणितीय आधार पर उस आविष्कार की भविष्यवाणी की थी।

ट्रांसिस्टर के विकास का इतिहास रोचक है। अर्ध चालकों की विद्यमानता का आभास, विख्यात वैज्ञानिक फैराडे को सिलवर सलफाइड पर परीक्षण करते समय, सन् १८३३ में ही मिल गया था। १८५५ तक तो ऐसे पदार्थों के अनेक लक्षण प्रकट हो चुके थे। २० वीं शती के प्रारम्भ में इनका ऋजुकरण (Rectification) के लिए प्रयोग किया जाने लगा—विशेष रूप में उच्च आवृतियों पर। गत महायुद्ध में, ऐसे ऋजुकरों की बड़ी आवश्यकता पड़ी और उन पर काम करने के बीच ही, ट्रांसिस्टर की संभावना का आभास मिलने लग गया था।

प्रारम्भ में ट्रांसिस्टर के निर्माण में इतनी अनिश्चितता थी कि लगभग तीन चौथाई इकाइयाँ रद्द करनी पड़ती थीं। पर उत्पादन के साधनों में शोध और परिष्कार के परिणाम-स्वरूप, वर्तमान स्थिति बहुत सुधर चुकी है। अपने छोटे आकार तथा कम विभव पर प्रयुक्त होने की क्षमता के कारण, ट्रांसिस्टरों का राकेटों और व्योमयानों में अवश्य ही प्रयोग होता है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि ट्रांसिस्टर केवल अन्तरिक्ष में ही लटक रहे हैं। नीचे धरती पर भी उनकी उपयोगिता की घनी छाया पड़ रही है।

उदाहरणार्थ अमेरिका, यूरोप तथा जापान में ऐसे रेडियो सैटों की आज कमी नहीं जो केवल ट्रांसिस्टरों का प्रयोग करते हैं। कहना न होगा कि ये रेडियो अत्यन्त छोटे और हल्के होते हैं। ट्रांसिस्टर के कारण "जेबी रेडियो" लोकप्रिय हो रहे हैं, और भारत के बाजारों में भी प्रकट हो रहे हैं। अनेक रेडियो तो आकार में इतने छोटे बने हैं कि दियासलाई की डिबिया में समा सकते हैं। अमेरिका, जापान और रूस में, टेलीविजन के सैटों को भी ट्रांसिस्टरों से बनाने के यत्न हो रहे हैं। जिन लोगों को सुनाई कम देता है, उनके लिए विज्ञान ने (श्रवण-साधन) हियरिंग एड का आयोजन कर रखा है। ट्रांसिस्टर द्वारा आजकल ये साधन, ऐनकों की कमानी में ही फिट किए जा सकते हैं।

[शेष पृष्ठ २०३ पर]

सर्पगन्धा

श्री रामेश वेदी, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

सर्पगन्धा के नाम

संस्कृत में सर्प गन्धा, चन्द्रिका; हिन्दी में छोटी चांद, धवल वरुवा, सचाँद भरुवा, धनभरवा; हरिद्वार में सेत बड़वा; उड़िया में सानो चादो; बंगाली में चाँदड़, चन्द्रा; आसामी में अरचोन-तीता; मराठी में अडकई, करकई, हरकाई; कन्नड़ में गरुड़ पतुला, शिवनाभि; मलयालम में चुवन्न-एविलपोरी; तामिल में चिषान, अम्पेलपोदी, सोषन्ना मिल बोरी; तेलगू में पाताल गन्धी और लैटिन में राँउल्फिया सर्पेण्टाइना (Rauwolfia Serpentina Benth ex Kurz).

सोलहवीं शती के जर्मन चिकित्सक और पर्यटक राँवुल्फ के नाम पर इस पौदे का यह नाम पड़ा है।

परिचय

सर्प गन्धा का बहु वर्षी क्षुप सीधा, झाड़ीदार छः से अठारह इंच तक ऊँचा होता है। कहीं-कहीं दो से तीन फीट तक ऊँचा देखने में आता है। इसका काण्ड स्वात्रयी है। लाल रंग के पुष्प दण्डों पर सफेद फूल खिलते हैं। धीरे-धीरे फूलों का रंग लाल हो जाता है। दो-दो फल इकट्ठे जुड़े हुए पकने पर चमकीले काले रंग में परिणत हो जाते हैं। फल चौथाई इंच व्यास का होता है। फल के अन्दर एक या दो बीज होते हैं।

पत्ते तीन से सात इंच लम्बे, डेढ़ से ढाई इंच चौड़े, भाले की सी नोक वाले और चिकने होते हैं। इनके ऊपर का पृष्ठ चमकीला हरा तथा नीचे का पीला सा होता है। बगीचों में लगाये जाने वाले चाँदनी फूल के पत्तों के सदृश इसके पत्ते दीखते हैं। शाखा पर एक ही स्थान पर तीन-चार पत्ते गोलाई में लगते हैं। कभी-कभी पत्ते एक दूसरे के सम्मुख भी लगते हैं।

प्राप्ति स्थान

हिमालय की तलहटी में चार हजार फीट की ऊँचाई तक सर्पगन्धा का क्षुप मिलता है। पंजाब में यह हिमालय की तलहटी में सतलज से लेकर यमुना तक गरम और नम स्थानों में पाया जाता है। उत्तर प्रदेश में देहरादून से लेकर गोरखपुर तक ठंडे और छायादार स्थानों में, विशेष कर साल जंगलों में तथा देहरादून, शिवालक पर्वत श्रेणी और

रुहेलखण्ड के सब-हिमालयन भागों में उगता है। इन स्थानों में यह चार हजार फीट की ऊँचाई तक पहुँच गया है। पटना तथा भागलपुर इसके प्राप्ति स्थान कहे जाते हैं परन्तु प्रतीत होता है कि नेपाल की तराई से यह जड़ी इन स्थानों में जाती थी। सर्पगन्धा की जड़ों की ये मंडियाँ थीं और यहाँ से यह हमारे देश में फैल जाती थी। इसी से व्यापार में इसका स्रोत पटना और भागलपुर समझे जाते रहे। उड़ीसा में यह पौदा पुरी में पाया गया है। विलासपुर में कहीं-कहीं मिला है। बंगाल के उत्तरी भाग में जड़ें इकट्ठी की गई हैं। आसाम में यह कामरूप, नौगाँव, उत्तरी कछार, गोला पाड़ा, खासी तथा जयन्तिया पार्वत्य अंचल में और गारो पहाड़ में पाया गया है। पेगू और तेनास्सेरिम में ४००० फीट की ऊँचाई तक मिलता है। मद्रास में पश्चिमी घाट के प्रायः सारे जिलों में और आन्ध्र राज्य में जहाँ छाया और नमी है यह पौदा तीन हजार फीट तक पाया जाता है। बम्बई में कोकण, दक्षिण महाराष्ट्र देश और कनाडा के नमी वाले जंगलों में पाया जाता है। भारत के बाहर पाकिस्तान, अण्डमान, लंका, ब्रह्मा, स्याम, थाइलैण्ड, जावा तथा मलय प्रायद्वीप, कोचीन-चीन, फिलिपाइन द्वीपपुंज तक इस पौदे का विस्तार है।

इतने व्यापक क्षेत्र में फैला हुआ होने पर भी यह पौदा कहीं भी साधारण नहीं है और यह केवल असामूहिक रूप में उगता है। इसकी उत्पत्ति बहुत कम है। किसी भी स्थान से यह इतने परिमाण में नहीं मिलता कि व्यापारियों की माँग की पूर्ति कर सके। इसकी बढ़ती हुई माँग को ध्यान में रखते हुए इसकी खेती करना लाभदायक है।

लाभदायक धन्धा

अनुमान है कि एक एकड़ भूमि में दो हजार पौंड जड़ें प्राप्त की जा सकती हैं। प्रति पौंड तीन रुपये के हिसाब से इस उपज का दाम छह हजार रुपये बैठता है। किसानों और बाग बगीचे वालों के लिये सर्पगन्धा की खेती का धन्धा बहुत लाभदायक सिद्ध होगा। अमेरिका तथा दूसरे देशों में इसकी बढ़ती हुई माँग को देखकर कहा जा सकता है कि अभी बीसों वर्षों तक चाहे जितनी पैदावार हो सब अच्छे दामों में खपती रहेगी। उत्पादकों को अपनी उपज को बेचने के लिये मण्डियों की खोज में जरा भी कठिनाई नहीं होगी।

पहिचान

बाजार में मिलने वाली सर्पगन्धा की जड़ें दो से छः इंच लम्बी और प्रायः एक इंच मोटी होती हैं। रंग मटमैला पीला सा भूरा। ऊपर की छाल कार्क की तरह नरम होती है जिस पर लम्बाई के रुख सीधी दरारें पड़ी रहती हैं। तोड़ने से जड़ छोटे-छोटे टुकड़ों में टूटती है। अन्दर की सफेद लकड़ी में स्पंज की तरह बहुत छिद्र दीखते हैं। गंध कोई नहीं होती। स्वाद कड़वा है।

खेती

सर्पगन्धा की खेती के लिये नमीदार गरम स्थान अच्छा है। उत्तर भारत में हिमालय की तलहटी में और दक्षिण में नमी वाले गरम प्रदेशों में यह क्षुप अच्छा पनप

सकता है ।।मूली के लिये जिस तरह भूमि तैयार की जाती है उसी प्रकार इसकी खेती के लिये भूमि बनानी चाहिये। सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध हो तो मार्च में बीज बो देना चाहिए। सिंचाई की सन्तोषजनक व्यवस्था न होने पर पहली बार वर्षा होने पर ही नरसरियों में बीज डाल देने चाहिए। पन्द्रह दिन में बीज उग आते हैं। एक एकड़ के लिए चार पौंड बीजों की आवश्यकता होती है। सारे बीज उग आयें तो चार पौंड में अड़तीस हजार चार सौ पौधे निकल आयेंगे। बीस दिन में पौधों पर चार-चार पत्ते निकल आते हैं। स्थानान्तरित करने का ठीक समय यही है। पौधे लगाने से पहले अच्छी तरह जुताई करके खेत की मिट्टी भुरभुरी बना लेनी चाहिये। शाखाओं की कर्तनों से भी यह पौधा उग आता है। ताजी जड़ों के दो-तीन इंच लम्बे टुकड़े करके बो देने से भी पौधे जम जाते हैं। इसलिए, यदि बीज सुलभ न हों तो जड़ों और शाखाओं से उत्पत्ति की जा सकती है। बन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून के गौण वन सम्पत्ति उद्यान में पौधों को बन्नों पर और समतल भूमि में उगा कर देखा गया। परीक्षणात्मक खेती में दो साल के बाद पौदों को खोद लिया गया। श्री एस० वी० पुलाम्बेकर ने इनके विभिन्न भागों की तौल में अन्तर इस प्रकार पाया है।

पौदे के भागों की उपज (ग्राम में भार)

	पत्ते	मुख्य तना	शाखाएँ	जड़ें	योग
बन्ने पर उगाया हुआ पौधा	४.५	३.५	३.२	६.०	२०.२
समतल जमीन में उगाया पौधा	३.५	३.७	१.५	१४.०	२२.७

इस परीक्षण में यह देखा गया कि समतल जमीन पर उगाये गये पौधे की जड़ की अपेक्षा बन्ने पर उगाये पौधे की जड़ पचास प्रतिशत अधिक बैठी, यद्यपि पौधे का कुल भार दोनों उदाहरणों में लगभग एक समान है। चिकित्सा की दृष्टि से जड़ का विशेष महत्व है। इसलिये अधिक उपज प्राप्त करने के लिये हमारी सम्मति में बन्नों पर बोना अधिक अच्छा रहेगा। अधिक वर्षा वाले प्रदेशों में जोर की वर्षा बन्ने की मिट्टी को बहा कर भूमि को समतल कर देती हैं और जड़ें नंगी कर देती है। इसमें पौधे को हानि से बचाने के लिए मिट्टी को बार-बार जड़ों के चारों ओर चढ़ा देना चाहिए। हमारी सम्मति में, पैदावार अधिक उन्नत और प्रचुर प्राप्त करने के लिये इस्तेमाल किये गये खेती के विविध तरीकों का बहुत महत्व है। इसलिये बन्ने पर और समतल पर बोने के परीक्षणों को अधिक बड़े पैमाने पर किया जाना चाहिए। पौधे लगाने के बाद खेत को सींचना चाहिए। पहले साल ऋतु में तीन निलाइयों की आवश्यकता होगी। दूसरे बरस पौधे संभल जाते हैं और निलाई तथा सिंचाई की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती। सूखे मौसम में सींचना अत्यावश्यक होता है। भूमि अच्छी हो और सार संभाल ठीक हो तो दो वर्ष में जड़ें खोदने योग्य हो जाती हैं। बरसात की समाप्ति पर खोदना अच्छा रहता है। सर्दियों के सूखे मौसम आने से पूर्व भूमि में जब तक वर्षा की नमी विद्यमान हो तभी जड़ें खोद लेनी चाहिए क्योंकि तब नरम भूमि को खोदना सरल होता

है। बाजार में यद्यपि मोटी जड़ों की माँग है परन्तु बारीक जड़ों को भी इकट्ठा कर लेना चाहिए क्योंकि उनमें भी क्रियाशील तत्व विद्यमान होते हैं।

वन-अनुसन्धान-शाला में किये गये बाद के परीक्षण बताते हैं कि पत्तों में तथा पौधे की डंडियों में भी क्रियाशील तत्व विद्यमान हैं। इसलिए खेती में ये भी सम्भावनाएँ हैं कि जड़ें खोदने के स्थान पर पत्ते और टहनियों को समय-समय पर औषध प्रयोजन के काट लिया जाय। इस प्रकार सम्भवतः अधिक पैदावार प्राप्त की जा सके।

इतिहास

चिकित्सा की भारतीय पद्धति के ग्रंथों में सम्भवतः केवल सुश्रुत संहिता में एक स्थान पर सर्पगंधा का उल्लेख मिलता है। अमानुषोपसर्गाध्याय में मानसिक रोगों को दूर करने वाले अपराजित गण में सुश्रुत ने इसे पढ़ा है। बनारस, बिहार और बङ्गाल के साधारण लोग प्राचीन काल से उन्माद और अनिद्रा में यद्यपि इसका उपयोग करते रहे हैं परन्तु प्रतीत होता है कि आयुर्वेद के विद्वान लेखकों का ध्यान इसने आकर्षित नहीं किया क्योंकि चिकित्सा साहित्य में यह प्रवेश नहीं पा सकी।

विषैले सरीसृपों के दंश और कीड़ों के डंक, ज्वर, पेचिश और आँतों के दूसरे वेदनामय रोगों में भी सर्पगंधा का भारत और मलय प्रायद्वीप में प्राचीन समय से बहुत उपयोग होता रहा है। १५६३ में गार्सिया दा आर्टा ने इसे भारत की अग्रणी और प्रशंसनीय औषधि लिखा था। दीपक रूप वह इसकी संतुति करता है। वह बताता है कि सर्पदंश में यह विशेष उपयोगी है और इस प्रयोजन के लिए यह यूरोप को ले जाई जाती है।

सर्पदंश में प्रयुक्त होने वाली जड़ियों में सर्पगन्धा यद्यपि भारत की पुरानी जड़ी है और इसके अतिरिक्त भी यह अनेक रोगों में उपयुक्त होती थी। परन्तु प्रतीत होता है कि पुर्तगालियों के व्यापार में यह यूरोप नहीं पहुंची थी, यद्यपि वे इसे उन बहुत से स्थानों से प्राप्त कर सकते थे जहाँ उनका व्यापार था। बाद में, डच लोग इसे मलक्का ले गये और यह रम्फियस की "मस्तिलो की जड़ी" बन गई। रम्फियस कहता है कि उसके समय में यह भारत और जावा में प्रत्येक प्रकार के विष के उपचार हेतु दी जाती थी। अन्तः और वाह्य दोनों दोनों तरह से इसका प्रयोग होता था। जड़ का काढ़ा बना कर भीतरी प्रयोग में और जड़ का तथा ताजे पत्तों का लेप बना कर बाहरी प्रयोगों में पैरों के तलवों पर लगाया जाता था। वह कहता है कि साँपों के विषों के लिए यह उपयोगी है और यहाँ तक कि यह आश्चर्यजनक जड़ी पिलाने से फनियर के दंश को भी विष रहित कर देती है। उसने कहा है कि ज्वरों में, हैजे और पेचिश में इस दवा का व्यापी रूप से अन्तः प्रयोग किया जाता है। फूले की औषधि के रूप में पत्तों का रस आँखों में डाला जाता था।

बर्मन ने अपने थिजौरस जिलेनिकस में सर्पगंधा का विवरण दिया है। द बौन्द (De Bondt) बताता है कि वह बुखारों को उतारती है।

सोलहवीं-सत्रहवीं शती के युरोपियनों ने सर्पदंश में इसकी जो ख्याति सुनी थी वह धीरे-धीरे लुप्त होती गई। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भी यद्यपि हमारे देश के वैद्य इसका उपयोग जानते थे परन्तु सर्वथा भिन्न रूप में। पागल की जड़ी के नाम से इसने उनमें अच्छी प्रसिद्धि पा ली थी और उन्माद में इसका प्रयोग जो जान गये थे उन्होंने इसे गोपनीय रखा। बिहार और उत्तर प्रदेश में यह "पागल की दवा" के नाम से बिकती थी और पन्सारियों तथा देशी चिकित्सकों में इसका व्यवहार साधारण बात थी। १६३१ में इंडियन मेडिकल वर्ल्ड (जुलाई, जिल्द २, अंक ५) में कलकत्ते के प्रसिद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सक डा० गणनाथ सेन और डा० कार्तिकचन्द्र बोस के नाम से एक लेख छपा था जिसमें डा० सेन ने उस रहस्यपूर्ण जड़ी के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण बातें का उद्घाटन करते हुए बताया था कि कठिनाई से उन्होंने इसका रहस्य जाना था। यह जड़ जिस पौधे से प्राप्त की जाती थी उसे उन्होंने कई वर्ष पूर्व ठीक ठीक पहिचान लिया था। तभी से वे उसे अपने रोगियों पर उल्लेखनीय सफलता के साथ खूब प्रयोग करते रहे। अत्यन्त कड़वी होने के कारण वे उसे गोली या टिकिया के रूप में देते थे। उसका नाम उन्होंने महेश्वर चक्रिका रखा हुआ था। रक्त दबाव की इस मूल्यवान और सुरक्षित दवा को ढूँढने में मालूम होता है कि डा० सेन को सब से पहले सफलता मिली। यह ध्यान देने योग्य है कि पूर्व या पश्चिम की किसी भी दवा से इस रोग में लाभ नहीं होता। डा० सेन के निर्देश पर डा० बोस ने अपने सहयोगिओं के साथ उस दवा के द्रव्यगुण सम्बन्धी कार्यों का अध्ययन प्रारम्भ किया। इस प्रकार पाश्चात्य चिकित्सा में सर्पगन्धा को समाविष्ट करने का श्रेय डा० गणनाथ सेन और डा० कार्तिक चन्द्रबोस को मिलता है। बाद में कर्नल रामनाथ चोपड़ा, डा० मुकर्जी आदि ने भी इस पर गवेषणा की और सभी ने जड़ को उच्च दबाव के लिए उपयोगी स्वीकार किया।

उपयोगी भाग

चिकित्सा में मुख्यतया मूल काम आती है परन्तु पत्ते तथा शाखाएँ भी काम में लायी जा सकती हैं। मात्रा मूल-रक्त का दबाव कम करने के लिए दो से पाँच रत्ती, नींद लाने के लिए आठ से पन्द्रह रत्ती, पागलपन के लिए डेढ़ से तीन माशा है। पत्ते और शाखाओं में क्रियाशील तत्व जड़ों की तुलना में लगभग आधे परिमाण में होता है। इस लिये उन्हें जड़ से दुगुने परिमाण में देना चाहिए।

रासायनिक संरचना

आशुतोष दत्त, जे० सी० गुप्त, सुधामयी घोष और बी० एस० कोहली (इण्डि०, जर्न० फार्म०, जि० ६, अंक २, १६४७, पृ० ५४-५७) ने कलकत्ता के स्कूल आफ ट्रापिकल मेडिसन में की गई परीक्षाओं के आधार पर विश्लेषण के तुलनात्मक अध्ययन में दिखाया है कि आसाम से प्राप्त सर्पगन्धा में एलकोहल में विलेय निस्सार उच्चतम थे और बंगाल

के नमूने में निम्नतम। एलकोहलीय निस्सारों के जलीय विलेय निस्सारितों में सब एल्कॉलाइड विद्यमान थे और जलीय अविलेय भाग में तैलोद्यास (ओलियोरेजिन्स) थे। जलीय निस्सारण में से एल्कॉलाइड और उद्यास (रैजिन्स) पृथक कर लिए जाने पर यह औषधीय गुणों से शून्य हो जाता है। तैलोद्यासों (ओलियोरेजिन्स) को फिर पेट्रोलियम ईथर की सहायता से उद्यासमय (रेजिन्स) और तैलीय खण्डों में अलग किया गया। तैलीय खण्ड में कुछ क्षोभक गुण देखे गये जब कि उद्यास (रेजिन्स) खण्ड ने औषध का अपना प्रारूपिक (टिपिकल) शामक और निन्द्राजनक कार्य दिखाया। उद्यास (रैजिन) खण्ड फिर दो खण्डों में विभक्त किया गया।

सिद्दीकी और सिद्दीकी (जर्नल इण्डि० केमि० सोसा०, १६३१ जि० ८, पृ० ६६७) ने रासायनिक विश्लेषण से सूखी जड़ में पाँच मणिभीय एल्कॉलाइड प्राप्त किये जिनका दो समूहों में श्रेणीकरण किया। इन अन्वेषकों ने इन को विशिष्ट नाम भी दे दिये। पहला अजमलीन समूह है जिसमें तीन सफेद मणिभीय निर्बल भस्में थीं। उस समूह के तीनों एल्कॉलाइड के भौतिक गुण इस प्रकार हैं:—

१. अजमलीन—१५८-°६०° पर पिघलता है। यह ०.१ प्रतिशतक पाया गया है।

२. अजमलिनीन—१७०°-८१° पर पिघलता है। ०.०५ प्रतिशतक पाया गया।

३. अजमलिसीन—इसका गलनांक २५०°-५२° है। यह ०.०२ प्रतिशतक मिला।

दूसरा सर्पेण्टाइन समूह है जिसमें दो चमकीली पीली मणिभीय तीव्रतर भस्में थीं। इनके भौतिक गुण ये हैं:—

१. सर्पेण्टाइन -१५३°-५४° पर पिघलता है। ०.०८ प्रतिशतक प्राप्त किया गया।

२. सर्पेण्टाइनीन—२६३°-२६५° पर पिघलता है और विबद्ध हो जाता है। यह भी ०.०८ प्रतिशतक मिला।

इनके साथ ही निम्नलिखित संघटक भी ज्ञात किये गये—(क) एक तरुसान्द्रव (Phytosterol) (ख) अम्लिक अम्ल। (oleic acid)

कार्नल रा० ना० चोपड़ा के अनुसार एल्कालाइडों के अतिरिक्त जड़ में उद्यास (Resin) का काफी परिमाण और निशास्ता होते हैं। राख लगभग आठ प्रतिशतक प्राप्त होती है जिसके मुख्य घटक पोटासियम कार्बोनेट, फासफेट, सिलीकेट और अत्यल्प लौह तथा मैंगनीज हैं। बाद के अन्वेषकों ने बताया है कि अजमलीन और सर्पेण्टाइन समूहों में उपर्युक्त एल्कालाइडों के अतिरिक्त कुछ और भी एल्कालाइड विद्यमान हैं। अमेरिका तथा दुनियाँ की अन्य अनेक प्रयोगशालाओं में अभी बड़े परिमाण में शोध कार्य हो रहा है।

स्विस प्रयोगशाला में १६४७ से १६५२ तक जड़ पर शोध करते हुए डॉक्टर इ० एम० श्लिटलर और उनके सहयोगियों ने रिसर्पीन नाम का एक नया एल्कालाइड पृथक किया है। यह मणिभीय है। इसका विश्लेषण एक पेचीदी प्रक्रिया है। प्राप्त दवा जड़ की अपेक्षा एक हजार गुणा अधिक क्रियाशील है। रक्त दबाव को नीचे लाने में रिसर्पीन का प्रभाव यद्यपि मन्द है परन्तु इसका कोई विषैला प्रभाव नहीं होता।

सिद्दिकी और सिद्दिकी (जर्नल ऑफ इण्डिकेमि सोसा०, ८, १६३१) ने सूखी जड़ों में एल्कलॉइडों का कुल परिमाण ०.५ प्रतिशत प्राप्त किया था। दत्त और दूसरों (इण्ड० ज० आफ फार्मेसी, जि० ६, १६४७, पृ० ५५) के अनुसार १·२१ से १·३६ प्रतिशतक तक भिन्न-भिन्न होता है। बम्बई (१६४८-४६) में औषधि के एल्कलाइडों पर कार्य किया गया। अलग-अलग किये गये तीन परीक्षणों में एल्कलाइडों का कुल परिमाण १. ४५ प्रतिशत, १·५ प्रविशत और १·४ प्रतिशत पाया गया। बिहार के प्राप्त जड़ों में एल्कलाइडों का कुल परिमाण १·४ से १·५ प्रतिशतक पाया गया और देहरादून से प्राप्त जड़ों में परिमाण १·६ प्रतिशतक था। संपूर्ण जड़ की अपेक्षा जड़ की छाल में एल्कलायड सामान्यतया आठ से दस गुना अधिक होता है।

विश्लेषणों की इन रिपोर्टों में जड़ों का प्राप्ति स्थान दिया है वह सम्भवत: उनके व्यापारिक स्रोत का सूचक है और इससे यह ज्ञात नहीं होता है कि परीक्ष्य जड़ें किस किस स्थान पर उगे हुए पौधों से ली गई थीं। सम्भव है कि स्थान भेद से एल्कलॉयडों की प्रतिशतकता में अन्तर पड़ जाय। देहरादून की वन अनुसन्धानशाला (१६५०) ने अपनी वाटिका में उगाई दो वर्ष की आयु की जड़ों को सुखा कर विश्लेषण किया था जिसमें एल्कलॉयडों का कुल परिमाण ०.३६ प्रतिशत ही निकला था। प्रतिशतत्व में इस कमी का कारण सम्भवत यह था कि ये जड़ें बहुत पतली थीं व्यास में केवल १/८ इच, जब कि बाज़ार में सामान्यता एक इंच व्यास की मिलती हैं।

कार्य तथा भाव-प्रयोगशालाओं के परीक्षण

दवा के क्रियाशील पदार्थों के द्रव्यगुण सम्बन्धी कार्य अब तक सन्तोषजनक रूप से नहीं जाने जा सके हैं। सिद्दिकी के अनुसार जड़ों से पृथक प्राप्त किये गये सफेद और पीले क्रियाशील तत्वों के शरीर पर कार्य करने की दृष्टि से दो भिन्न-भिन्न समूह बनते हैं। पहला अजमलीन समूह हृदय, श्वसन और चेताओं पर सामान्य अवसादक का कार्य करता है। दूसरा सर्पेण्टाइन समूह श्वसन को स्तम्भित (पैरालाइज) करता है और चेताओं को अवसन्न करता है परन्तु हृदय को उद्दीप्त करता है। ये पर्यवेक्षण मेंढकों पर हुए परीक्षणों से प्राप्त किये गये हैं और इसलिये उच्चतर प्राणियों पर ये परिणाम उसी रूप में पूर्णतया लागू नहीं हो सकते। सर्पेण्टाइन समूह के एल्कलायडों की घातक मात्रा वही पाई गई जो अजमलीन समूह की थी। यह मात्रा मेंढक के प्रति किलोग्राम भार के लिये थी। चूहों के लिये घातक मात्रा चार गुना अधिक थी। सेन और बोस (इण्डि० मेडि० वर्ल्ड, १६३१, जि० २, पृ १६४) ने दवा के भैषजिकीय प्रभाव का बिल्ली

जैसे बड़े प्राणियों पर अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि सम्पूर्ण औषधि का जलीय निस्सार जब प्राणियों की शिरा के अन्दर सुई द्वारा डाला गया तो कोई विशेष प्रभाव नहीं पैदा हुआ। उद्यास (रेजिन्स) को भी अकेले दिया गया परन्तु गर्भाशय की मांस पेशियों को हलका सा उद्दीपन देने के अतिरिक्त इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं देखा गया। उनके द्वारा पृथक किये एल्कलाइडों ने बहुत सुनिश्चित परिणाम दिखाये। रक्त दबाव कुछ गिर गया, श्वसन कुछ तेज हो गया, हृदय की मांसपेशी अवसन्न हो गई और छोटी आँतों को तथा गर्भाशय की मांसपेशियों जैसी सरल मांसपेशियाँ शिथिल हो गई। मुख द्वारा लेने पर या अन्तस्त्वक् और अन्तर्मांस सूचीवेधों द्वारा शरीर में डालने पर दवा क्षोभक नहीं है। राय (पटना ज० ऑफ मेडि०, १६३१, अक्टूबर) ने पाया कि दवा की साधारण मात्राओं से प्रतिक्षेपों (रिफलेक्सेज) पर वेदना की अनुभूति पर कोई प्रभाव नहीं होता। यदि मात्रा बड़ी है तो इससे गहरी नींद आती है। प्रतिक्षेपों तथा वेदना की अनुभूति कम हो जाती है और श्वास-केन्द्र के स्तम्भ के कारण श्वासावरोध से मृत्यु हो जाती है। श्वसन के बन्द होने के बाद भी कुछ समय तक हृदय धड़कता रहता है।

अजमलीन, सर्पेण्टीन और सर्पेण्टाइन एल्कलाइडों के भेषजिकीय कार्य का तुलनात्मक अध्ययन चौपड़ा और घोष ने किया। इन के द्वारा प्राप्त हुए परिणाम महत्वपूर्ण हैं। रासायनिक रचना में अजमलीन जैसे सर्पेण्टाइन सादृश्य रखती है भेषजिकीय कार्य में भी वैसी ही है। केन्द्रीय चेता-संहिति पर दोनों का अवसादक कार्य होता है और ये रक्त दबाव को गिराते हैं, जब कि सर्पेण्टनाइन बढ़ाता है। विशेष रूप के बनाये गये एक प्रदोललिख (औसिलोग्राफ) से किये गये परीक्षण दिखाते हैं कि चेता की प्रेरणा की बारम्बारता के निर्मोचन को अजमलीन कम करती है।

बिल्लियों को खिलाने के परीक्षण दिखाते हैं कि पृथक-पृथक किसी एक एल्कलाइड की अपेक्षा संकलित एल्कलाइडों का निद्राकर प्रभाव अधिक स्पष्ट है।

नींद लाने वाली दवा

उन्माद, रक्तचाप और बहम की दवा के रूप में इस पौदे ने महत्व प्राप्त कर लिया है। उन्माद की रामबाण दवा के रूप में जनसाधारण में इस की लोकप्रियता यह बताती है कि इस में शामक गुण पर्याप्त है। प्रतीत होता है कि बिहार के लोगों को इस दवा का निद्राकर प्रभाव ज्ञात था। कहते हैं कि शिशुओं को नींद लाने के लिये इस दवा को देने की प्रथा अब भी उस प्रदेश में कई स्थानों पर है। अमेरिका में जहाँ रक्त का उच्च दबाव किसी भी देश की तुलना में अधिक है सर्पगन्धा का प्रयोग अत्यन्त लाभदायक पाया गया है।

रक्त के उच्च दबाव में

तीव्र मतिविभ्रम लक्षणों के उन्माद और उच्च दबाव के रोगियों पर सैन और बोस ने इसकी परीक्षा की। जड़ के चूर्ण की बीस से तीस ग्रेन की मात्राएँ दिन में दो बार देने

से न केवल शामक प्रभाव देखा गया परन्तु रक्त दबाव भी घट गया था। एक सप्ताह में ही रोगी की संज्ञाएँ फिर पहले की भाँति साधारण अवस्था में आ जाती हैं यद्यपि किसी-किसी उदाहरण में चिकित्सा अधिक दीर्घ काल तक करनी होती है। उच्च दबाव के रोगियों में इस दवा को सेन-बोस ने बहुत सन्तोषजनक पाया और उनका कहना है कि इस के प्रयोग में वाहिनियों के अन्दर परिवर्तन भी नहीं देखे गये।

चिकित्सा सम्बन्धी गुणों में सर्पगन्धा की प्रतिनिधि सर्पीना टिकियें डाक्टर आर० डब्ल्यू० विल्केन्स और डा० डब्ल्यु० ई० जइसन ने उच्च तनाव के सौ से अधिक रोगियों को खिलाईं। इन की रिपोर्ट आठ जनवरी १९५३ के न्यू इंलैंड जर्नल आफ मेडिसिन में प्रकाशित हुई है। रिपोर्ट सूचित करती है कि टिकिएँ रायन पैदा करती है और नींद को सुखद बनाती हैं। यह देखा गया कि इन के प्रयोग में कभी-कभी दुःस्वप्न हो जाते हैं। प्रतीत होता है कि टिकियें सुचारू रूप से सहन हो जाती हैं। दवा के स्थायी प्रभाव छह सप्ताह से कम समय में पूर्णतया नहीं प्रगट होते। प्रगट रूप में यह ऐसी दवा नहीं है कि सेवन की आदत पड़ जाय। उच्च तनाव की अधिक शक्तिशाली दवाओं के सहायक के रूप में भी इसे दे सकते हैं। इसके सेवन काल में अन्य किसी प्रकार के भी गम्भीर प्रभाव उत्पन्न होते हुए रिपोर्ट नहीं किये गये, यद्यपि इन अन्वेषकों ने पाया कि यह दिल की धड़कन और नाक में अधिरक्तता (congestion) पैदा कर देती है, भार बढ़ाती है और आँतों का कार्य जरा सा बढ़ा देती है।

पागलपन के कैसे रोगियों को दें?

उन्माद से सब रोगियों को सर्पगन्धा से लाभ नहीं होता। खूब उत्तेजित और बलवान रोगी पर उसका प्रयोग करना चाहिए। दुर्बल, निस्तेज और मनोवसादग्रस्त रोगी पर सावधानी से इसका प्रयोग करना चाहिए। इन रोगियों के रक्त के दबाव की परीक्षा पहले करनी चाहिए। दबाव यदि अधिक हो तभी सर्पगन्धा देनी चाहिए। जिन उन्माद रोगियों का रक्त दबाव कम हो उनको इससे लाभ नहीं होता।

अब तक प्राप्त विवरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि उन्माद में और केन्द्रीय वात-संस्थान की विक्षुब्ध अवस्थाओं में दिये जाने वाली शामक दवाओं की सूची में यह मूल्यवान सिद्ध होगी। दवा की उपयोगिता को पूर्णतया स्थापित करने से पूर्व इसका द्रव्य गुण सम्बन्धी तथा प्रयोगशाला सम्बन्धी अध्ययन बड़े परिमाण में करना आवश्यक है।

बुखार, गर्भाशय के रोग

ज्वरहर के रूप में यह बहुत से स्थानों पर दी जाती है। बुखार और पैत्तिक विकारों में पानी के साथ दी जाती है। प्रबल ज्वर में देने से बैचैनी और मोह दूर होते हैं, अच्छी नींद आती है, प्रलाप दूर होता है, आँखों का वर्ण स्वाभाविक होता है और साथ ही ज्वर का वेग भी कम होता है। यह भी कहा जाता है कि गर्भाशयिक संकोचों को यह बढ़ाती है

और गर्भ को निकालने में सहायता करती है। बुखारों में और प्रसवोत्तरकालीन अवस्थाओं में इसकी उपयोगिता के दावों की पूर्णतया पुष्टि नहीं हुई। इस दवा को और अधिक बड़े पैमाने पर परीक्षा करना उपयोगी होगा।

पेट के रोग

जावा में यह पुतेपन्द्क के नाम से बेची जाती है। यहाँ पर उसे पान में रख कर पेट के दर्द और अन्य कष्टों में चबाते हैं। यह उदर क्रमिहर समझी जाती है।

बिषों में

पैमल (ए मैनुअल आफ पायजनस प्लाण्ट्स, १९११) ने मत्स्याविष के लिए इस पौधे के प्रयोग का उल्लेख किया है परन्तु चोपड़ा और दूसरे लेखकों ने भारत में इस औषधि को इस प्रयोजन के लिए व्यवहार करते हुए नहीं पाया। कहते हैं कि सर्पगन्धा को खाकर नेवला अपने को साँप से युद्ध में प्रतिरक्षित बना लेता है।

त्वचा के रोगों में यह अनेक तरह से बरती जाती है।

(शेष पृष्ठ १९३ का)

गणित के जटिल प्रश्नों आदि के उत्तर प्राप्ति के निमित्त बने कम्प्यूटरों में, आधुनिक वायु परिवहन संबंधी यंत्रों और सैनिक उपयोग के अनेक उपकरणों में भी ट्रांसिस्टरों का बहुलता से प्रयोग हो रहा है। स्मरण रहे कि ट्रांसिस्टर रेडियो की बत्तियों की अपेक्षा महँगे हैं।

पर उधर ट्रांसिस्टर के निर्माण के क्षेत्र में, यांत्रिक साधनों के समावेश के कारण, कुछ ही वर्षों में, प्रदीपों से भी सस्ते ट्रांसिस्टरों की उपलब्धि नितान्त प्रत्याशित है।

भास्कराचार्य और लीलावती

विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री एम० एस-सी०, साहित्यरत्न, साहित्य सुधाकर

आजकल के प्रगतिशील वैज्ञानिक युग में भी बड़े बूढ़े अक्सर यह कहते हुये हुये पाये जाते हैं कि "बेटा लीलावती पढ़ लो तो न केवल पेड़ों की पत्तियाँ वरन् आकाश के तारे और सर के बाल तक गिन सकते हो। यदि भृगुसंहिता पढ़ लो तो भूत के और भविष्य के सात-सात जन्मों तक का हाल जान सकते हो। जो लोग ये दोनों ग्रन्थ पढ़ लेते हैं वे मानों सर्वज्ञ ही हो जाते हैं।" इन शब्दों से इन ग्रन्थों के प्रति भारतीय जनता की श्रद्धा एवं आदर की भावना आंकी जा सकती है। वस्तुतः मेधावी आचार्य भास्कर ने अपने ज्ञान एवं प्रतिभापूर्ण व्यक्तित्व एवं पांडित्यपूर्ण अपूर्व ग्रन्थों के सृजन द्वारा भारतीय जनता के हृदय पर श्रद्धा एवं विश्वास की ऐसी धाक जमा दी थी कि ये ग्रन्थ सात शताब्दियों तक अर्थात् अंग्रेजों के आने तक अनवरत रूप से जन-मानस पर ज्योतिष एवं गणित के क्षेत्र में एकछत्र शासन करते रहे। परवर्ती पंडितों द्वारा इनके ग्रन्थ के कई भाष्य किये गये एवं संसार की विभिन्न भाषाओं में उनके अनुवाद भी हुये। विशेषतः लीलावती की जितनी टीकाएं एवं अनुवाद हुए उतने सम्भवतः किसी भी अन्य भारतीय ज्योतिष ग्रन्थ के नहीं हुये। इन ग्रन्थ में भास्कराचार्य द्वारा अत्यंत कुशलतापूर्वक प्रस्थापित सूत्रों एवं सिद्धान्तों का लोग अन्धानुकरण करने लगे एवं उनके समस्त सिद्धान्त असंशोधनीय माने जाने लगे। डा० गोरख प्रसाद के मतानुसार एक समय ऐसा भी आया जब कि "गणित में उन्नति करना ही पाप माना जाने लगा।" यही कारण है कि भास्कराचार्य के पश्चात् भारतीय गणित के क्षेत्र में कोई भी नवीन आविष्कार नहीं हुआ और हम लोग पाश्चात्य विज्ञान से कोसों दूर पिछड़ गये। प्रश्न है कि क्या वास्तव में "लीलावती" एवं अन्य ग्रन्थ इतने सम्मान, श्रद्धा एवं विश्वास के पात्र हैं? आखिर इसमें क्या विशेषता है? तो, आइये हम इस प्रश्न का समालोचनात्मक हल खोजें।

लीलावती का विषयवस्तु एवं आधुनिक दृष्टिकोण से इसकी समालोचनाः—

आजकल गणित ही क्या, विज्ञान के सभी क्षेत्रों में कल्पनातीत उन्नति हो जाने से प्राचीन ग्रन्थों की कई बातें हमें उपेक्षणीय एवं महत्वहीन प्रतीत होती हैं। लीलावती भी अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ है, वह दशवीं शताब्दी में उस समय लिखा गया था जब कि गणित अपने शैशवकाल में था। अतएव लीलावती के महत्व का यदि अनुभव करना हो तो हमें अपने आपको दसवीं शताब्दी के एक पाठक या विद्यार्थी के रूप में रखना

होगा। इस कल्पना के संदर्भ में ही हम इस ग्रन्थ में आये वाक्यों, सिद्धान्त एवं सूत्रों तक पहुँचनेकी की गई अपने महर्षियों एवं स्वयं भास्कराचार्य की कठिन साधना एवं अध्यवासाय का आधुनिक दृष्टिकोण से समन्वयात्मक मूल्यांकन कर सकेंगे। उस समय,जबकि विश्व के अन्य भागों में गणित एवं अन्य विषय शैशव अवस्था में थे, भास्कराचार्य ने गणित के पूर्वसंचित उत्कृष्ट भारतीय ज्ञान को अपनी प्रतिभा से गौरवान्वित कर एवं लीलावती आदि ग्रन्थों में इसे श्रेष्ट रूप में प्रस्तुत कर ऐतिहासिक दृष्टि से वास्तव में अद्वितीय कार्य किया है। इतना ही नहीं, गणित के उन कई सिद्धांतों को एवं अध्यायों को जिन्हें साधारण जनता एवं विद्यार्थीगण आधुनिक समझते हैं, भास्कराचार्य दसवीं शताब्दी में ही या तो स्पष्ट एवं विस्तृत रूप में अथवा बीजात्मक एवं सांकेतिक रूप में अपने अमर ग्रन्थों में अभिव्यक्त कर चुके थे। आइये, हम इस तथ्य का दिग्दर्शन करें।

साधारण विद्यार्थी समझते हैं कि क्रमचय-उपचय (Permutations, Combinations), अंकगणितात्मक एवं ज्यामितीय श्रेढ़ियाँ (Progression), ठोस ज्यामितीय पदार्थों के आयतनों एवं क्षेत्रफलों का आनयन (Mensuration of Solids) आदि विषय या तो आधुनिक हैं या पाश्चात्य विद्वानों द्वारा ही हमें प्राप्त हुए हैं। लेकिन यह सत्य नहीं है।

निम्नलिखित मनोरंजक उदाहरण भास्कराचार्य की प्रभावशाली कवित्वपूर्ण शैली का तो परिचय देता ही है किन्तु उनके क्रमचय-उपचय विषयक ठोस ज्ञान को भी प्रदर्शित करता है।

पाशांकुशाहि डमरूककपालशूलैः
खट्वाङ्गशक्तिशरचापयुतैर्भवन्ति।
अन्योन्य हस्त कलितैः कतिमूर्ति भेदाः
शंभोर्हरेरिव गदारि सरोज शंखैः ॥१३५ उदाहरण॥

अर्थात् महादेवजी की मूर्ति की दस भुजाएँ हैं। इन भुजाओं में पाश, अंकुश, सर्प, डमरू, कपाल, त्रिशूल, खट्वाँग, शक्ति, वाण एवं चाप, ये दस शस्त्र हैं। यदि मूर्ति इन शस्त्रों को भिन्न प्रकार के उलटपलट कर विभिन्न हाथों में धारण करे तो कुल कितने भेद होंगे। इसी प्रकार चतुर्भुज विष्णु के शंख, चक्र, गदा एवं पद्म के परिवर्तन से मूर्ति के कितने संभाव्य भेद होंगे।"

उत्तर प्राप्त करने के लिये भास्कराचार्य ने सूत्र दिया है। इस प्रणाली का अनुगमन करने पर उत्तर क्रमशः शिवजी की मूर्तियां ३६२८८०० एवं विष्णुजी जी की २४ मूर्तियां आती हैं।

आगे चल कर भास्कराचार्य ने उपचय के प्रश्नों में संशोधनात्मक सूत्र दिया है जिसमें दो या अधिक समान वस्तुओं अथवा समान अक्षरों एवं संख्याओं की उपस्थिति से होने वाली अशुद्धि को हटा दिया गया है। यह सूत्र उनकी तीक्ष्ण बुद्धि की गहराई का प्रतीक है तथा ये प्रश्न आधुनिक प्रश्नों से किसी भी दशा में हीन नहीं हैं। इस संबन्ध में और कई मनोरंजक प्रश्न दिये गये हैं। पाठकगण मूल ग्रन्थ में इन्हें पा सकते हैं।

श्रेढ़ियाँ (Progressions)

अंकगणितात्मक एवं ज्योतिषीय श्रेढ़ियों पर सूत्र दिये गये हैं। इन सूत्रों की सहायता से प्रश्नों के उत्तर ठीक निकलते हैं। हाँ, इनके आधार पर की गई गणना कुछ क्लिष्ट और आज के सूत्रों की अपेक्षा अधिक लम्बी है। उदाहरणार्थ, ज्यामितिक श्रेणी पर किये गये एक प्रश्न का अनुवाद देखिये।

"किसी दाता ने प्रथम दिन दो कौड़ी देकर यह प्रतिज्ञा की कि बीस दिन तक प्रतिदिन दूना धन दूँगा तो बताओ उसने कुल कितना धन दिया।"

भास्कराचार्य ने स्वयं इसका लम्बा चौड़ा हल प्रस्तुत किया है। सूत्र की उपपत्ति नहीं दी है। इस प्रश्न का उत्तर २१४७४८३६४६ कौड़ियां हैं। अथवा यदि कौड़ियों को तत्कालीन वित्त इकाइयों में परिवर्तित किया जाय तो १०४८५७ निष्क, ६ द्रम्भ, ६ पण २ काकिणी एवं ६ कौड़ी यह उत्तर हुआ। इसी प्रकार अन्य प्रश्न भी हैं।

पायथागोरस का प्रमेय तथा सापेक्ष गति

गणित के इतिहास के प्रसिद्ध लेखक श्री केजोरी (Cajori) ने एक स्थल पर लिखा है कि भास्कराचार्य ने दो स्थानों पर पायथागोरस के समकोण त्रिभुज के प्रमेय पर स्वयं की पूर्णतया मौलिक किन्तु केवल रचनात्मक उपपत्तियां दी हैं। बाद में चलकर उन्होंने अपने इस कथन पर शंका भी प्रगट की है किन्तु जहाँ तक लीलावती ग्रंथ का प्रश्न है, इसमें इस प्रयोग विशेष से सम्बन्धित बहुत से प्रश्न दिये गये हैं। उपपत्तियां तो लीलावती में नहीं हैं लेकिन प्रश्नों की प्रचुर संख्या भास्कराचार्य की मौलिकता को प्रतिपादित करती हैं। इन प्रश्नों में से दो मनोरंजक एवं आपेक्षिक रूप से कठिन प्रश्नों को देखिये।

"एक, सौ हाथ ऊँचा ताड़ का वृक्ष था। उस पर दो बन्दर बैठे हुए थे। उस वृक्ष की जड़ से २०० हाथ दूरी पर एक बावड़ी थी। बन्दरों को प्यास लगी। उनमें से एक बन्दर तो वृक्ष से उतर कर सीधा बावड़ी को गया और दूसरा बन्दर ऊपर उछला और कर्णगति से बावड़ी से कूद पड़ा। दोनों बन्दरों को यदि समान दूरी पार करनी पड़ी तो बताओ (दूसरा) बन्दर कितना ऊपर उछला था और उसके कर्णात्मक मार्ग की लम्बाई क्या है ? उत्तर (१) ५० हाथ उछला (२) कर्ण की लम्बाई २५० हाथ। इससे भी अधिक मनोरंजक सवाल है सांप एवं मोर का।

"नौ हाथ ऊँचे एक स्तम्भ पर एक मयूर बैठा था। उसी स्तंभ के ठीक नीचे एक एक सर्प का बिल था। सत्ताईस हाथ की दूरी पर बिल की ओर आते हुए सर्प को मोर ने देखा और एकदम कर्णगति से उस पर टूट पड़ा। दोनों की गति समान थी। बताओ मोर ने बिल से कितनी दूरी पर सर्प को पकड़ लिया।

उत्तर :—बिल से १२ हाथ की दूरी पर।

यदि समान गति वाले तथ्य की जानकारी न हो तो प्रश्न का हल नहीं हो सकता। निश्चय ही प्रश्न की रचना के पूर्व भास्कराचार्य ने सापेक्ष गति की इस समस्या पर सम्यक विचार किया होगा। प्रसिद्ध विद्वान श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने लिखा है "परन्तु मोर का गमन मार्ग वृत्त परिधि से भिन्न एक वक्र रेखा होती है। ऐसे महत्व का विचार अन्य किसी गणित ग्रंथ में नहीं है। भास्कराचार्य के मस्तिष्क में यह आया था। वह ध्यान देने योग्य है।"

इसी प्रकार के अन्तर्गत केवल छाया मात्र देख कर दीपक की ऊँचाई प्राप्त करना, कमल नाल की तालाब में गहराई का पता चलाना आदि विषय दिये गये हैं।

शून्य के गुण धर्म (Indeterminants) अज्ञेय का ज्ञान

शून्य को किसी राशि में जोड़ने-घटाने से कोई अन्तर नहीं होता। शून्य के वर्ग-घन-मूलादिक शून्य ही होते हैं। शून्य का किसी राशि में भाग देने से वह खहर (Infinite) अनन्त होती है। "खभाजितो राशी खहरः स्यात्"। शून्य से गुणा करके पुनः शून्य से भाग देने पर राशि में कोई अन्तर नहीं होता। अर्थात् $\frac{अ \times 0}{0} = अ$। यह निर्णय भास्कराचार्य का $\frac{0}{0}$ के अज्ञेय होने के ज्ञान का प्रतीक है।

क्षेत्र व्यवहार

इस प्रकार के अंतर्गत भास्कराचार्य ने बहुभुज, त्रिभुज, वृत एवं अन्य आकृतियों के क्षेत्रफलों से संबंधित विभिन्न समस्याएं और उनके हल प्रस्तुत किये हैं। त्रिभुज के क्षेत्र फल प्राप्त करने की विधि निम्नलिखित श्लोक में विवद्ध है।

त्रिभुजे भुजयोर्योग..............
लम्ब गुणं भूम्यर्द्धं स्पष्टं त्रिभुजं फलं भवति ॥७६॥

इसकी प्रथम तीन पंक्तियों में त्रिभुज की यदि तीनों भुजाओं की लम्बाई दी हो तो शीर्ष से आधार पर डाले गये लम्ब को जानने का प्रकार दिया गया है। अन्तिम पंक्ति में स्पष्ट तथा आज के प्रसिद्ध सूत्र को वाक्यों में प्रस्तुत किया है। त्रिभुज का क्षेत्रफल $= \frac{1}{2} \times$ आधार $\times$ लम्ब (भूम्यर्ध $= \frac{\text{आधार}}{2}$, लम्ब गुणं = लम्ब से गुणित किया जाय)।

यह स्पष्ट है कि भास्कराचार्य ने आज के त्रिकोणमिति अथवा बीजगणित के जैसे सरल एवं संक्षिप्त सूत्र नहीं दिये हैं लेकिन अविकसित ज्ञान के युग में किये गये उनके ये प्रयास कम सराहनीय नहीं माने जा सकते।

अब एक दूसरा उदाहरण देखिये। यह उदाहरण इसलिये विशेष ध्यान देने योग्य है कि इसके द्वारा भास्कराचार्य द्वारा बड़ी संख्याओं का विशिष्ट प्रणाली द्वारा नामकरण करने की शैली का पता चलता है। तत्कालीन एवं बाद के भी सभी ग्रन्थों में इसी प्रकार की प्रणाली का अनुगमन किया गया है।

"व्यासे भनन्दाग्नि हते विभक्ते
ख बाणसूर्यैः परिधिस्तु सूक्ष्मः।
द्वाविंशतिघ्ने विहृतेऽथ शैलैः
स्थूलोऽथवा स्याद्व्यवहारयोग्यः ॥६८॥

अर्थात् वृत्त के व्यास को भनन्दाग्नि (३९२७) भ = नक्षत्र = २७, नन्द = नौ नन्द = ९, अग्नि = तीन अग्नि = ३ इन्हें क्रमशः दाहिनी ओर से लिखा तो भनन्दाग्नि = ३९२७) से गुणा किया और खबाण सूर्य (ख = आकाश = ०, बाण = कामदेव के बाण = ५, सूर्य = द्वादश मासों के द्वादश सूर्य = १२, इन्हें दाहिनी ओर से लिखा तो ख बाण सूर्य = १२५०) अर्थात् १२५० से भाग दिया तो सूक्ष्म परिधि ज्ञात होती है अर्थात् सूक्ष्म परिधि = व्यास $\times \frac{३७२७}{१२५०}$

यदि स्थूल परिधि लाना हो तो $\frac{२२}{७}$ [शैल = पर्वत = ७] से व्यास का गुणा करना चाहिए।

आर्यभट्ट ने तो अंक संख्या व्यक्त करने की उक्त प्रणाला को अत्यधिक अपनाया है।

दूसरा महत्पूर्ण तथ्य है, भास्कराचार्य द्वारा $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}$ (जिसे आज कल "π" द्वारा प्रदर्शित करते हैं) का सूक्ष्म एवं स्थूल दोनों प्रकार का मान बताया जाना।

प्रकीर्ण विषय

अभी तक समस्त ग्रन्थों में आये हुए विशेष ध्यान देने योग्य स्थलों का हमने सिंहावलोकन किया है। इसके अतिरिक्त और भी महत्वपूर्ण सामग्री इसमें हैं।

खात व्यवहार, चिति व्यवहार एवं क्रकय व्यवहार पर किये गये प्रश्नोत्तर भास्कराचार्य के ठोसाकृतियों के आयतन एवं क्षेत्रफलों के आनयन सम्बन्धी उन्नत ज्ञान के प्रतीक हैं। इनमें खाद भरने के गढ़ों, होम कुंडों, अनाज की कोठियों एवं ढेरियों आदि पर प्रश्न हैं। लकड़ी चीरने पर उसके संभावित टुकड़ों एवं टुकड़ों के आयतनों पर भी प्रश्नोत्तर हैं।

उन्होंने घनमूल एवं वर्गमूल निकालने के स्वयं के कई प्रकार बतलाये हैं। निस्संदेह ये विधियां आधुनिक दृष्टिकोण से कठिन हैं। उन्होंने आजकल के बीज-गणित के प्रसिद्ध सूत्र $अ^२ - ब^२ = (अ + ब)\ (अ - ब)$ का रूप परिवर्तन करके निम्नलिखित प्रयोगात्मक एवं अंकगणितात्मक सूत्र दिया है।

"वर्गान्तरम् राशि वियोग भक्त ।
यौगस्ततः प्रोक्तवदेव राशिः ॥२६॥

पाठकों को इस तथ्य का ज्ञान प्राप्त हो जाये कि किस प्रकार बिना मूल कारण को सोचे समझे लोग इन सूत्रों का तोते के समान उपयोग किया करते थे। इसका अर्थ होता है :—

"राशियों के वर्गों के अन्तर में राशि के अन्तर का भाग देने से राशियों का योग आता है।"

इसी प्रकार के कई अन्य सूत्र हैं।

विलोम पद्धति के अध्याय में भास्कराचार्य की कवित्व शक्ति विशेष रूप से मुखरित हुई है। इतिहासज्ञों ने इस प्रणाली को भारत की विशेषता माना है। इस पद्धति से सम्बन्धित कई मनोरंजक प्रश्न लीलावती में हैं।

भास्कराचार्य का व्यक्तित्व, उनकी रसिकता, कवित्व एवं शैली

भास्कराचार्य के ग्रन्थों में उनका अन्तर्व्यक्तित्व मिलता है। अंदर से तो वे निस्संदेह महान थे ही, उनका वाह्य व्यक्तित्व भी अत्यन्त प्रभावशाली रहा होगा, तभी वे साधारण जनता को अत्याधिक प्रभावित करने में समर्थ हुए होंगे। श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित उनके सम्बन्ध में लिखते हैं, "भास्कराचार्य के ग्रन्थों का प्रचार भारत के कोने कोने तक है। इतना ही नहीं विदेशी भाषाओं मे भी इनके अनुवाद हो चुके हैं, परन्तु इतने बड़े कल्पक ने आधुनिक यूरोपीय अन्वेषकों सरीखा कोई प्रभाशाली अन्वेषण नहीं किया और न हीं किसी आविष्कार की नींव ही डाली, यह हमारे देश का दुर्भाग्य है। भास्कर ने शोध सम्बन्धी प्रयत्न कुछ भी नहीं किया। इन्होंने अपनी सम्पूर्ण बुद्धि विवेचन में ही लगा दी जो कि केवल एक टीकाकार का कार्य है। मुझे स्वकीय अत्यल्प अनुभव से ज्ञात होता है कि वे यदि इस कार्य को छोड़कर अनुसन्धान करते तो इनका झुकाव नवीन आविष्कार की ओर अवश्य हुआ होता। नवीन विशेषताओं का सर्वथा अभाव होते हुये भी उपपत्ति में सम्पूर्ण बुद्धि लगा देने के कारण इनके ग्रन्थ में वेध-साध्यता तो नही, केवल विचार साध्य कुछ नवीन बातें आई हैं।

भास्कराचार्य में एक गणितज्ञ और एक कवि दोनों का ही अपूर्व संगम था। प्रसाद एवं माधुर्य गुणमयी श्लोक श्रृंखलाओं में उन्होंने गणित के कई मौलिक सूत्रों को इस प्रकार बांधा है कि अध्ययनकर्ता के पास से वे कभी भी छूट कर नहीं जा सकते। इन सूत्रों के प्रयोगार्थ जो प्रश्न उन्होंने दिये हैं वे तो सूत्रों से भी अधिक बढ़-चढ़ कर हैं। रसिकता एवं मनोरंजनपूर्ण कठिन प्रश्नों को भी हल करने में एक विशेष आनन्द मिलता है। श्रृङ्गार-क्रीड़ा-रत-कामिनी के मोतियों के हार के टूटने के कारण बिखरे हुए

मोतियों पर, भंवरों एवं हाथियों के भंवरियों एवं हथिनियों के साथ केलिरत समूहों इत्यादि पर प्रश्न करके निस्संदेह गणित जैसे शुष्क विषय को उन्होंने अत्यन्त आकर्षक बना दिया है। कुछ अन्य मनोरंजक प्रश्न देखिये। श्लोकों का केवल भावानुवाद है :

जातिचतुष्टय नामक अध्याय से लिये गये इस उदाहरण में एक भिखारी एक अत्यंत कृपण पुरुष से भी दान मांग रहा है। भिखारी कंजूस से कहता है—हे महानुभाव "आप मुझे एक द्रम्म दें अथवा इतना नहीं दे सकें तो द्रम्म का आधा ही दें। आधा नहीं तो $\frac{२}{३}$ ही दे दीजिये। कुछ।नहीं तो इस हिस्से का $\frac{३}{४}$ ही दो। कम से कम इस $\frac{३}{४}$ का $\frac{१}{५}$ तो दे ही दीजिये। अच्छा इतना भी नहीं तो $\frac{१}{५}$ का $\frac{१}{१६}$ और इस $\frac{१}{१६}$ का चौथाई हिस्सा तो दो। बताओ भिखारी को कितना दान मिला ?

उत्तर एक कौड़ी। {क्योंकि $\frac{१}{१}$ का $\frac{१}{२}$ का $\frac{२}{३}$ का $\frac{३}{४}$ का $\frac{१}{५}$ का $\frac{१}{१६}$ का $\frac{१}{४}$ = $\frac{१}{१२८०}$ = द्रम्म एक कौड़ी ∵ १२८० कौड़ी = एक द्रम्म}

देखिये भिन्न के इस प्रश्न को कितने मनोवैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसे कोष्ठक में दिये गये आधुनिक तरीके से भी प्रस्तुत किया जा सकता था। लेकिन क्या तब वह इतना आकर्षक रह पाता ?

अब आप दूसरा प्रश्न देखिये। विलोम पद्धति पर किये गये इस उदाहरण स्वरूप प्रश्न में मानों कुरुक्षेत्र के युद्ध का चित्र आखों के सामने आ जाता है। अर्जुन एवं कर्ण का युद्ध हो रहा है।

पार्थः कर्ण वधाय मार्गणगणं......यानर्जुनः सन्दधे ॥२६॥

"अर्जुन अत्यंत क्रोधित होकर कर्ण को मारने के लिये तत्पर हुआ। उसने अपने कुल बाणों के आधे बाणों से तो कर्ण के बाणों को रोका। चौथाई बाणों से उसने घोड़ो को रोक कर कर्ण के रथ को आगे नहीं बढ़ने दिया। कर्ण के सारथी शल्य को दो बाणों से आच्छादित कर दिया और तीन बाणों से एक-एक करके उसने कर्ण के धनुष, छत्र और ध्वज को नष्ट कर दिया। अब केवल एक ही बाण बचा। इस बाण से उसने, कर्ण का सर काट डाला। बताओ अर्जुन के पास कितने बाण थे ? भास्कराचार्य ने स्वयं इस प्रश्न का हल प्रस्तुत किया है। उनके सूत्रों का अनुगमन करने पर उत्तर = १०० बाण आता है।

तीसरा प्रश्न कुछ कठिन और विचारणीय है। लेकिन उसे भी मनोरंजन के कवच में प्रस्तुत किया गया है।

"चार जौहरी थे। वे परस्पर परम मित्र थे। उनमें से एक के पास ८ मणि, दूसरे के पास १० नीलम, तीसरे के पास १०० मोती तथा चौथे के पास ५ हीरे थे। प्रेम के आवेश में आकर प्रत्येक व्यापारी ने अपने-अपने पास का एक-एक रत्न अपने मित्रों को दे दिया। ऐसा करने पर प्रत्येक के पास समान मूल्य के रत्न हो गये। बताओ रत्नों का अलग-अलग मूल्य क्या था जिससे कि पारस्परिक आदान-प्रदान से वे समधन हो गये ?" (श्लोक ४७ का अनुवाद)

अब आपके सामने भास्कराचार्य का स्वयं का किया हुआ हल प्रस्तुत करता हूँ ताकि आपको उनकी प्रणाली का आभास प्राप्त हो जाये।

न्यास :—। मा० ८। नी० १०। मु० १००। व० ५। नरा: ४ नरगुणित दानेन ४ रत्न संख्या सूनितासु..........जातान्यभिन्नावि ५७६। ३८४। २४। २३०४। तेषामेते द्रम्मा: संभाव्यन्ते ५५९२।"

भावानुवाद :—न्यास :—दी हुई संख्या निम्नानुसार है। मा० ८। नीलम १० मुक्ता १००। हीरे ५। कुल मनुष्य ४। मनुष्यों की कुल संख्या चार है। प्रत्येक व्यापारी ने एक-एक रत्न दिया है। अतएव प्रदत्त रत्न की संख्या को मनुष्यों की संख्या से गुणा करने पर ४×१=४ आया। इस '४' को रत्नों की पूर्व संख्या में से घटाने पर क्रमशः मा० ४। नी० ६। मु० ९६। ही० १। आया। इन शेष अंकों का इष्ट संख्या में भाग देने पर प्रत्येक रत्न का मूल्य आयगा। परन्तु मनमानी इष्ट संख्या कलित नहीं कर सकते क्योंकि भिन्न मूल्य आयेंगे। अत: सर्वोच्च संख्या ९६ को इष्ट माना। इस '९६' में उपर्युक्त शेषांकों का अलग-अलग भाग देने पर प्रत्येक रत्न का मूल्य प्राप्त हो जायेगा। भाग देने पर मा० २४। नी० १६। मु० १ और ही० ९६। यह मूल्य आये। अतएव समधन=२४+१६+१+९६=२३३।

अथवा—४। ६। ९६। १ ये जो शेष रहे हैं इनके गुणनफल को अर्थात् २३०४ को इष्ट मान कर इसमें उपर्युक्त शेषांकों का भाग दिया तो क्रमशः उत्तर मा० ५७६। नी० ३८४। मो० २४ और ही २३०४। यह सिद्ध हुआ। अतएव दूसरा संभाव्य उत्तर समधन=५५९२ द्रम्म है।"

यह हल भास्कराचार्य ने अपने पूर्व लिखित सूत्र श्लोक (४२) के आधार पर प्रस्तुत किया है। सूत्र श्लोक में 'ऐसा क्यों किया?' इसके लिये कोई तर्क या उपपत्ति नहीं दी गई है। बस इसी प्रकार की प्रणाली लीलावती ही क्या अन्य ग्रन्थों में भी सर्वत्र पाई जाती है।

गणित की शुष्क एवं कठिन समस्याओं और सिद्धांतों को भास्कराचार्य ने न केवल आकर्षक एवं मनोरंजक ही बनाया है, वरन् भाषा को भी सरस तथा ललित पदावली युक्त श्लोकों के द्वारा अलंकृत किया है। भास्कराचार्य एक गणितज्ञ-कवि थे। निम्नलिखित पदांशों को देखिये—

"लीला गललुलल्लोल कालव्याल विलासिने"

(स्वेच्छा से कण्ठ में लोटते हुए सांपों से विलसित)

"वाले बाल कुरंग लोल नयने लीलावती प्रोच्यतां"

बाल-मृग के विशाल चंचल नेत्रों के समान नेत्रों वाली किशोरी वाले लीलावती!"

वाले-बाल मृणाल शालिनि जले केलि क्रिया लालसं"
द्रष्टं हंस-युग त्रयं च सकलां यूथस्य संख्यां वद" ॥

"हे बाल ! आकाश के मेघाच्छादित हो जाने पर कुछ हंस तालाब से उड़ कर मानसरोवर चले गये, कुछ हंस स्थलकमलिनी के वन को चले गये और बाकी बचे तीन जोड़े उसी तालाब में केलि करते पाये गये तो बताओ कुल कितने हंस थे।"

कई उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिसमें शब्द और अर्थालंकारों का बाहुल्य तो है ही, साथ ही उच्च कवियों की टक्कर का रसोद्रेक भी हुआ है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि भास्कराचार्य एवं उनके ग्रन्थ अपने आप में अद्वितीय थे किन्तु उनके ग्रंथों में कुछ न्यूनताएँ भी पाई जा सकती हैं।

लीलावती की नामकरण प्रणाली एक विशिष्टता लिये हुए है। भनन्दाग्नि=३६३७ वाले उदाहरण से यह स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त सिद्धांतों को सूत्र रूप में प्रगट करने की रीति भी साधारण जनों के लिये ग्राह्य नहीं है। बिना विशेष अर्थों के जाने एक संस्कृत साहित्य का विद्वान भी प्रश्नों को एवं उनके हलों को नहीं समझ सकता। फिर बेचारे साधारण विद्यार्थियों की क्या बात। इसके अतिरिक्त एक ही मूल सिद्धांत पर आधारित प्रश्नों की समस्याओं के हल के लिये उन्होंने अलग-अलग अंकगणितात्मक सूत्र प्रस्तुत किये हैं। एक अन्धानुयायी छात्र के लिये इस प्रकार लीलावती का अध्ययन कठिन हो जाता है। अलग-अलग सूत्रों के स्थान पर भास्कराचार्य मूल सिद्धांत भी दे सकते थे। इतना ही नहीं, भास्कराचार्य ने कहीं भी अपने सूत्रों के लिये उपपत्तियां नहीं दी हैं। सूत्रों के पक्ष में तर्क एवं गणितात्मक प्रमाण भी नहीं दिये हैं। श्रद्धालु लोग इसकी ओर ध्यान ही नहीं देते थे। भास्कराचार्य ने जो कुछ लिखा वह ईश्वर वाक्य; यह प्रवृत्ति जो चल पड़ी थी। किन्तु चंद्रमा के धब्बे उसके शीतल प्रकाश की तुलना में नगण्य हैं। यही हाल भास्कराचार्य के ग्रंथों का भी है।

आइये, अब हम लीलावती का एक पूर्णतया नवीन प्रकार से संक्षिप्त सिंहावलोकन करते हैं। मेरे विचार से निम्नलिखित दृष्टिकोण से शायद अभी तक किसी भी विद्वान् ने भास्कराचार्य के ग्रंथों का ऊहापोह नहीं किया है।

लीलावती का सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

"साहित्य समाज का दर्पण होता है," इस उक्ति के प्रकाश में लीलावती के द्वार हम दसवीं शताब्दि के भारतीय समाज एवं संस्कृति के सम्बन्ध में पर्याप्त तथ्य एकत्र कर सकते हैं।

जहां तक माप तौल की इकाइयों का प्रश्न है, उस समय द्रम्म-पण, कुडव, अंगुल आदि इकाइयां व्यवहृत थीं। वस्तु विनिमय के विषय पर काफी प्रश्न दिये गये हैं जिससे विदित होता है कि उस समय वस्तु विनिमय की प्रथा प्रचलित थी। रुपयों का आज

जैसा महत्व एवं चलन नहीं था। एक स्थल पर दिये गये प्रश्न से दास एवं दासी प्रथा के प्रचलन का संकेत मिलता है।

"प्राप्नोति चेत् षोढ़षा वत्सरा स्त्री
द्वात्रिंशतं विंशति वत्सरा किंम"......॥३२॥

अर्थात १६ वर्ष की स्त्री ३२ निष्क में मिलती है तो २० वर्ष की स्त्री कितने में मिलेगी ?" इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय स्त्रियों का व्यापार होता था।

उस समय व्याज पर रुपये दिये जाते थे किन्तु चक्रवृद्धि ब्याज का चलन नहीं था। सुनार लोग सोने में झूठी मिलावट करते थे। चन्द्रगुप्त का समय बहुत पीछे बीत चुका था। मोती, हीरक आदि रत्नों एवं उत्तम धातुओं का बड़े पैमाने में व्यापार होता था।

भास्कराचार्य के समय में समाज में कुट्टक प्रश्नों एवं कठिन समस्याओं को प्रस्तुत करने का प्रचलन था। इन समस्याओं का हल करने वाला यश-सम्मान एवं उच्च स्थान का भागी होता था। इस तथ्य का आभास देने वाले कई श्लोक लीलावती में उपस्थित हैं। ये श्लोक भारतवर्ष की तत्कालीन उच्च समाजिक सुरुचि के भी परिचायक हैं।

दशवीं शताब्दि में भारतीयों का ज्ञान गणित विषय में अन्य देशों की तुलना में काफी बढ़ा चढ़ा और गहरा था। हमें $(१०^{१७})$ तक की संख्याओं के नाम मालूम थे। इसे भी ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय विशेषता माना जाता है।

इसी प्रकार अन्य कई तथ्य को हम इस ग्रन्थ में खोज सकते हैं। वस्तुतः भास्कराचार्य के समस्त ग्रन्थों का आधुनिक दृष्टिकोणों से उहापोह होना चाहिए एवं इस सम्बन्ध में अनुसन्धान की दिशा में भारतीय विद्यार्थियों की प्रवृत्ति होना चाहिए। श्री गिरजाप्रसाद द्विवेदी ने लिखा "अत्रेदं सूक्ष्म दृष्ट्या सुधिभीखेवधातुं..........तेषां प्रतिपादन कौशलं त्रिकोणमिति (Trigonom Dietry). शंकुच्छेदं (Conic section) चलगणितान्तं (Calculus-fferential) धावति।"—

अर्थात लीलावती आदि ग्रन्थों में भास्कराचार्य द्वारा प्रतिपादित विषयों में त्रिकोणमिति, शंकुच्छेद एवं चलनकलन आदि के उच्च सिद्धांतों के बीज उपस्थित हैं। श्रीकृष्ण वल्लभ द्विवेदी ने तो एक स्थल पर स्पष्ट लिखा है कि भास्कराचार्य ने चलन-कलन का बीज रूप से आविष्कार किया था।

विभक्ति दृष्टिकोणों से लीलावती एवं भास्कराचार्य के अन्य ग्रन्थों का विस्तृत अध्ययन नितान्त अपेक्षित है।

आणविक शक्ति का स्वर्ण युग

आणविक विखण्डन के विकास ने अणुशक्ति के शान्तिकालीन उपयोगों का मार्ग प्रशस्त किया, जिनके फलस्वरूप आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी एवं आश्चर्य-जनक प्रभाव उत्पन्न हो रहे हैं। शान्तिकालीन विकास दो प्रकार के हैं : औषधि अनुसन्धान और उद्योग के क्षेत्रों में रेडियो-सक्रिय आइसोटोपों का उपयोग और आणविक बिजली का उत्पादन।

अधिकांश रासायनिक तत्वों का आविर्भाव अनेक भिन्न-भिन्न रूपों में, जिन्हें आइसोटोप कहते हैं, हो सकता है; ये आइसोटोप रासायनिक दृष्टि से एक दूसरे के समान होते हैं, किन्तु इनके अणुभार भिन्न-भिन्न होते हैं। सिलिकान में ३, चांदी में ७ और टिन में १० आइसोटोप होते हैं। इसका आशय यह है कि इन तत्वों के अणुओं के ३ या ७, या १० भिन्न-भिन्न प्रकार होते हैं, जिनमें रासायनिक दृष्टि से तो सादृश्य होता है, किन्तु जिनके अणुभार भिन्न-भिन्न होते हैं। इनमें से कुछ का उद्भव स्वभावत:—प्राकृतिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप—हो जाता है : उदाहरण के लिए, साधारण पारद भिन्न-भिन्न प्रकार के ४ आइसोटोपों का मिश्रण होता है।

कई वर्ष हुए, भौतिकशास्त्रियों ने देखा कि साइक्लोट्रानों और ऐटमबस्टरों में रूपान्तरण करके अत्यन्त न्यून मात्राओं में आइसोटोपों का उत्पादन हो सकता है। किन्तु, अब आणविक भट्ठियों में, जो यूरेनियम को प्लूटोनियम में परिणत कर देती हैं, आइ-सोटोपों का उत्पादन इतने विविध रूपों और मात्राओं में हो सकता है, जितना पहले सम्भव नहीं था। अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन के पास ही अनेक तत्वों वाले लगभग ३०० किस्मों के आइसोटोप उपलब्ध हैं।

आइसोटोपों से विकिरण का प्रादुर्भाव होता है, जिसका उपयोग अनेक प्रकार से हो सकता है। १९५४ में अमेरिकी कृषि विभाग ने एक टन ऐसा उर्वरक तैयार किया, जिसमें सामान्य फास्फोरस के कुछ अंश के स्थान पर रेडिय-सक्रिय आइसोटोप का प्रयोग किया गया। जब उस उर्वरक को मिट्टी में छोड़ा गया. तो देखा गया कि पौधों ने रेडिय-सक्रिय फास्फोरस को आत्मसात कर लिया। थोड़े ही समय में 'गीगर' गणक-यन्त्रों की सहायता से विकिरण का पता लगाना और इस बात का निर्धारण करना सम्भव हो गया

कि पौधों में रेडिय-सक्रिय अणु कहाँ पहुँच गये थे, और उनका वितरण किस प्रकार हुआ। अन्य शब्दों में, यह जाना जा सका कि फास्फोरस से पौधों को भोजन किस प्रकार प्राप्त होता है और अधिक प्रभावकारी ढंग पर उर्वरक का उपयोग करने की विधि क्या हो सकती है। इस नवीन ज्ञान के व्यवहार से वर्जिनिया के तम्बाकू बोने वाले किसानों को अब प्रति वर्ष कम से कम १० लाख डालर की बचत होने लगी है।

कुछ रेडिय-सक्रिय आइसोटोप विकिरण के बहुत ही सशक्त स्रोत होते हैं। यदि किसी आइसोटोप-स्रोत के सामने से अनाज की राशि को भेजा जाये तो उस अनाज में पड़े हुए सभी कीड़े मर सकते हैं। बीजों पर विकिरण का प्रयोग करने से उनका कुछ रूपान्तर सा हो सकता है, जिसके कारण पौधों की जाति में कुछ भिन्नता उत्पन्न हो सकती है।

विकिरण के ऐसे प्रयोग के फलस्वरूप नये किस्म के आड़ू उत्पन्न किये गये हैं, जो साधारण किस्म के आड़ू की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से पक जाते हैं। गेहूँ, जई, पटुआ और ऐसे जौ के रोग-निरोधक बीज विकसित किये गये हैं, जो अधिक शीघ्रता से पक जाते हैं और छोटे फसली मौसम वाले जलवायु के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं। आलू और प्याज पर विकिरण का प्रयोग करने से उनके पौधे बहुत फैलनेनहीं पाते। कृषि सम्बन्धी इन विकासों के फलस्वरूप करोड़ों डालर का लाभ हुआ है।

चिकित्सा के क्षेत्र में

चिकित्सा और औषधि के क्षेत्र में विकिरण के उपयोग की प्रगति बहुत सन्तोषजनक रही है। आणविक भट्टी के भीतर अधिक देर तक विकिरण-सक्रिय होने के बाद कोबाल्ट अत्यधिक रेडिय-सक्रिय हो उठता है। मुट्ठी में रखा जा सकने वाला नन्हा सा पिण्ड भी १० लाख वोल्ट की एक्सरे मशीन जितना शक्तिशाली विकिरण उत्पन्न कर सकता है। अब शारीरिक विकारों के गहरे उपचार में एक्सरे या रेडियम के स्थान पर इन छोटे विकिरण उत्पादक-यन्त्रों का व्यापक रूप से प्रयोग होने लगा है। इन्हें उपचार के लिए प्रयुक्त करते समय 'थेराट्रोन' नामक संरक्षक-होल्डरों पर चढ़ा लिया जाता है।

मस्तिष्क में फास्फोरस के रेडियो-सक्रिय आइसोटोपों की सुई देने पर वे एक गिल्टी में एकत्र हो जाते हैं, जिसके कारण विकिरण-अन्वेषक यन्त्र द्वारा गिल्टी की जगह का ठीक ठीक पता लगा लेना सम्भव होता है। ऐसी स्थिति में उसका आपरेशन अधिक आसान हो जाता है, और उसमें अधिक भय भी नहीं रहता। कुछ अन्य आइसोटोपों का प्रयोग रक्त की मात्रा और रक्त-संचार का माप करने तथा गुर्दे की क्रियाशीलता का निर्धारण करने के लिए किया जाता है। आज तो स्थिति यह हो गयी है कि यदि किसी चिकित्सक को उपचार में आइसोटोपों के उपयोग का ज्ञान न हो तो उसे पूर्ण प्रशिक्षित नहीं समझा जाता। इसी प्रकार, यदि आधुनिक अस्पताल में आइसोटोपों के उपयोग की सुविधा उपलब्ध न हो तो उसे पूर्ण रूप से सुसज्जित नहीं समझा जाता।

उद्योगों में आइसोटोपों के उपयोग के आर्थिक लाभ बहुत ही अधिक हैं। उद्योगों में आइसोटोपों का उपयोग करने वाले ८५० अमेरिकी उद्योगपतियों ने १९५४ में अमेरिकी

अणुशक्ति संस्थान को सूचित किया था कि ऐसा करने से उन्हें प्रतिवर्ष कम से कम १० करोड़ डालर की बचत हो रही है। १६५७ तक उद्योगों में आइसोटोपों का उपयोग करने वालों की संख्या दूनी हो गयी। उनके अनुमान के अनुसार, ऐसा करने से उन्हें प्रतिवर्ष ५० करोड़ डालर की बचत हुई। संस्थान का पूर्वानुमान यह है कि १६६२ तक उद्योगों और कृषि में आइसोटोपों के उपयोग से प्रतिवर्ष ५ अरब डालर की बचत होने लगेगी।

विभिन्न रेडिय-सक्रिय अणुओं से उत्पन्न विकिरणों की शक्ति और पदार्थ में प्रविष्ट हो सकने की क्षमताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। इससे पदार्थ की पतली पट्टियों की मोटाई नापने की विधि का पता चल जाता है। इस प्रकार, उसी आइसटोप को चुना जा सकता है, जिसका विकिरण ठीक-ठीक वांछित मोटाई तक ही प्रविष्ट हो सकता है। जब पट्टी रेडिय-सक्रिय स्रोत के ऊपर से हो कर जाने लगती है, तो 'गीगर' गणक-यन्त्र उसके बीच से होकर आ रही विकिरण की मात्रा को नाप लेता है; यह मात्रा ठीक मोटाई के अनुपात से ही परिवर्तित होती रहती है।

'दि यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कार्पोरेशन' ने इस्पात की पट्टियों को चीरने वाले अपने नवीनतम कारखाने में इस्पात की चद्दरों की मोटाई को नापने और नियंत्रित करने के लिए रेडिया-सक्रिय मापक-यन्त्रों का उपयोग किया है। कागज, टायर आदि की मोटाई को नापने और नियंत्रित करने के लिए भी इसी प्रकार के मापक यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। अमेरिका के ५००-से अधिक कारखानों में रेडिय-सक्रिय मोटाई-मापक-यन्त्रों का उपयोग हो रहा है। ऐसा करने से उन्हें प्रति वर्ण लगभग १० करोड़ डालर से अधिक की बचत हो रही है।

धातुओं को जोड़ने, ढालने आदि की प्रक्रिया के अन्तर्गत अनियमितता या दोष की जांच करने के लिए रेडिय-चित्र लेने में एक्स-रे के स्थान पर विकिरण के पदार्थों में प्रविष्ट हो सकने के गुण का उपयोग होने लगा है। जिस पदार्थ की परीक्षा करनी हो, उसके पीछे थोड़ी मात्रा में रेडिय-सक्रिय आइसोटोप रखने और दूसरी ओर फोटोग्राफी का प्लेट लगा देने से अत्यन्त शीघ्रता और सरलता के साथ रेडियोग्राम उपलब्ध हो जाते हैं। अब विकिरण द्वारा मशीन के पुर्जों, धातु के जोड़ों, सीमेन्ट की ढलाई तथा अन्य वस्तुओं की जांच उनके स्थान पर ही हो सकती है।

अमेरिका में इस प्रकार के रेडियो-चित्रण के लिए ५५० से अधिक फर्मों को लाइसेंस दिये जा चुके हैं। पेट्रोलियम उद्योग में आइसोटोपों का व्यापक रूप से उपयोग होने लगा है। इस उद्योग का अनुमान है कि इस प्रकार उसे प्रति वर्ष लगभग २० करोड़ डालर की बचत हो रही है।

नया ईंधन

आणविक भट्ठी में यूरेनियम-अणुओं के विखण्डन से अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न होती है। वस्तुतः २५,००,००० पौण्ड कोयला जलाने से जितना ऊर्जा उत्पन्न होती

है, उतना एक ही पौण्ड यूरेनियम के सभी अणुओं का विखण्डन कर देने पर उत्पन्न हो जाती है। यूरेनियम एक ऐसा ईंधन है जो लगभग भारहीन होता है। इस कारण कोयले और खनिज तेल की तुलना में उसके यातायात का व्यय नगण्य होता है। अतः, संसार के किसी भी भाग में हम असीम मात्रा में ईंधन प्राप्त कर सकते हैं। जब अणुशक्ति से उत्पन्न बिजली, कोयले या पानी से उत्पन्न बिजली जैसी सस्ती हो जायगी, तो संसार के सभी भागों में लगभग एक सी ही सस्ती दर पर बिजली मिलने लगेगी।

इस समय अमेरिका में प्रति व्यक्ति ८ टन से अधिक कोयले के वार्षिक ईंधन के बराबर, अथवा ६२,००० किलोवाट-घण्टे बिजली उपलब्ध है। अफ्रीका और एशिया के कुछ देशों में तो प्रति व्यक्ति केवल .०२ टन कोयले के वार्षिक ईंधन के बराबर ही बिजली उपलब्ध है। विभिन्न देशों के बीच इस प्रकार की असमानता का एक प्रमुख कारण यह है कि अनेक क्षेत्रों में कोयले के ईंधन या जल-विद्युत का अभाव है। बर्मा, अधिकांश अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका के एक बहुत बड़े भाग और इसरायल में शक्ति के बहुत ही कम स्रोत उपलब्ध हैं। अनुमान है कि स्वीडन, जापान और इटली १० वर्ष के भीतर अपने जल विद्युत और ईंधन के साधनों की चरम सीमा तक पहुँच जायेंगे। इंग्लैंड में कोयला उत्तरोतर अधिक दुर्लभ होता जा रहा है और उसे खानों से खोद कर निकालने में अधिक व्यय हो रहा है। यद्यपि अमेरिका में कोयले, खनिज तेल और गैस से अन्य देशों की अपेक्षा अधिक सस्ती दर पर बिजली सुलभ है, किन्तु उसके इन ठोस ईंधनों का साधन असीम नहीं है। एक ही पीढ़ी के भीतर अमेरिका को आणविक बिजली का उपयोग करना पड़ेगा, और उसने ऐसा करना प्रारम्भ भी कर दिया है।

अमेरिका की प्रारम्भिक आणविक भट्टियों को सुरक्षा और सुविधा की दृष्टि से निम्न तापों के अन्तर्गत संचालित किया गया। उन्हें ठंढा करते समय बहुत बड़ी मात्रा में ऊष्मा को हटाना पड़ा। यह सारी ऊष्मा व्यर्थ चली गयी। फिर, द्वितीय महायुद्ध के बाद अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन ने ऐसी आणविक भट्ठियों को विकसित करना प्रारम्भ किया जिन्हें भाप उत्पन्न करके बिजली तैयार करने के लिए पर्याप्त ताप के अन्तर्गत संचाचित करना सम्भव हो। इस प्रकार, बिजली उत्पन्न करने वाली प्रथम आणविक भट्टी १९५३ में आर्को (इडाहो) नामक स्थान पर संचालित हुई। यह आणविक शक्ति से संचालित 'नौटिलस' नामक पनडुब्बी के लिए बिजली तैयार करने वाले पूरे आकार के विद्युत कारखाने का नमूना थी। इस पनडुब्बी का जलावतरण जनवरी, १९५४, में हुआ। पुरानी पनडुब्बियों के विपरीत यह पनडुब्बी पुनः ईंधन लिए बिना, पानी के नीचे असीमित काल तक अत्यन्त वेग से चल सकती है। जहां पुरानी पनडुब्बियां बहुत ही मन्द गति से अपनी बैटरियों के बल पर अधिक से अधिक २०० या ३०० मील ही पानी के भीतर चल सकती हैं, और फिर उन्हें पुनः ईंधन लेने के लिए पानी के ऊपर आना अनिवार्य होता है, वहां 'नौटिलस' बहुत ही तीव्र-गति से एक बार के ईंधन पर ७० हजार मील की दौड़ कर सकती है।

इस समय अमेरिकी नौ-सेना के पास अणुशक्ति संचालित तीन और पनडुब्बियां हैं, जिनका जलावतरण हो चुका है। इनके अतिरिक्त, उसके तत्वावधान में अणुशक्ति द्वारा संचालित होने वाली १६ अन्य पनडुब्बियों, एक क्रूजर तथा एक विमान का भी निर्माण हो रहा है। जब आणविक बिजली तैयार करने की लागत घट कर वर्तमान तैल संचालित विद्युत कारखानों की लागत के बराबर हो जाएगी तो महासागरों में भेजने के लिए अणुशक्ति-संचालित सामान्य जहाजों का निर्माण किया जाएगा। पनडुब्बियों के सम्बन्ध में उनके संचालन की लागत उतनी महत्वपूर्ण नहीं, जितनी तीव्र-गति से दूर तक दौड़ सकने की उनकी क्षमता।

आणविक बिजली के कारखाने

अमेरिका में आणविक बिजली तैयार करने वाला प्रथम विशाल कारखाना पेन्सिल्वेनिया राज्य के शिपिंगपोर्ट नामक स्थान पर १९५७ में संचालित हुआ। यह स्थान पिट्सवर्ग के निकट स्थित है। इस कारखाने की बिजली की विनियोजित पूँजी इस समय पिट्सवर्ग के पुराने प्रकार के बिजली के कारखानों की बिजली की लागत से १० गुनी है। किन्तु इसे संचालित करने से इस दिशा में महत्वपूर्ण अनुभव प्राप्त हो रहे हैं। आशा है कि अगले १० या १५ वर्षों के भीतर जो आणविक बिजली के कारखाने स्थापित होंगे, उनकी बिजली सस्ती होगी।

नये विकासोन्मुख तथा शक्ति-साधन विहीन राष्ट्रों के लिए भी आणविक बिजली तैयार करने वाले कारखानों का महत्व बहुत ही अधिक है। किन्तु आणविक भट्टी सम्बन्धी प्राविधिक जानकारी और यूरेनियम की पूर्ति कुछ देशों-मुख्यतः अमेरिका, ब्रिटेन और सोवियत रूस—तक ही सीमित है। अमेरिका स्वतन्त्र संसार के राष्ट्रों को यूरेनियम, प्राविधिक सहायता तथा अंशतः अनुसन्धान सम्बन्धी आणविक भट्टियों की लागत प्रदान करके अणुशक्ति के शान्तिकालीन उपयोग के विकास में सहायता करना चाहता है। इस सम्बन्ध में ४३ देशों के साथ अमेरिका ने द्विपक्षीय समझौते कर रखे हैं। इस प्रकार के १५ समझौतों के अन्तर्गत अमेरिका आणविक बिजली के कारखानों के नमूने तैयार करने और उनकी स्थापना में सहायता देने के लिए वचनबद्ध है। अन्य समझौतों का सम्बन्ध अनुसन्धान सम्बन्धी आणविक भट्टियों और अनुसन्धान-कार्यक्रमों से है।

प्रेसिडेण्ट आइजनहौवर ने आणविक अनुसन्धान और अणुशक्ति के विकास सम्बन्धी सभी पदों में विश्वव्यापी सहयोग और विकास को बढ़ावा देने के उद्देश्य से एक अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति एजेंसी की स्थापना का भी सुझाव दिया था। इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श और पत्र-व्यवहार हुए। अन्त में, सितम्बर-अक्तूबर, १९५६ में न्यूयार्क में तत्सम्बन्धी एक सम्मेलन हुआ, जिसमें ८० देशों ने एजेंसी की नियमावली के मसविदे पर हस्ताक्षर कर दिये। इस नियमावली के स्वीकृत हो जाने पर अब यह एजेंसी चालू हो चुकी है। अमेरिकी कांग्रेस ने १९५७ में एक कानून स्वीकृत करके अमेरिका को इस

(शेष पृष्ठ २२५ पर)

पुस्तक समीक्षा

१. **विज्ञान प्रगति :** पौष १८८१, दिसम्बर १९५९ जनवरी १९६०। कौंसिल आफ साइण्टिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली। मूल्य ५०न० पै०।

प्रतिमास प्रकाशित इस सरकारी पत्रिका के इस अंक में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण लेख "भारत में घरेलू ईंधन का उपयोग" प्रकाशित हुआ है। इसमें उपलब्ध आँकड़ों से ज्ञात होता है कि भारत में देहाती क्षेत्रों में प्रतिवर्ष ९९,५१,४०,००० टन गोबर पशुओं से प्राप्त होता है जिसमें से ५०% गोबर उपलों के रूप में जला दिया जाता है। इसके द्वारा जो अपार क्षति होती है उसे रोकने के लिये लकड़ी का कोयला, साफ्ट कोक, बिजली, मिट्टी का तेल तथा कृषि के अवशेषों को प्रयुक्त करने की सलाह दी गई है। उपलों के द्वारा प्रायः ५०% ईंधन की पूर्ति की जाती है। शहरी क्षेत्रों में कुल ईंधन का ६९% लकड़ी के रूप में प्रयोग किया जाता है। किसानों को चाहिये कि इन आँकड़ों को ध्यान में रखते हुये उपलों का प्रयोग जलाने के लिये न करके खाद के निर्माण के लिये करें। पत्रिका में प्रस्तुत अन्य सामग्री भी महत्वपूर्ण है।

भाषा के सम्बन्ध में हमें विशेष रूप से कुछ कहना है। "कृषि और पौधाई व्यर्थ (पृ० ४१२)", जल सहनीयता (पृ०४२५)" जादूई (पृ० ४२६), "जीवों में प्रतिक्रिया की एक जंजीर चल निकलेगी" (पृ०४२९), केतली (पृ० ४·४), पौधाई प्रसार (पृ०४३६), "पौधों की वृद्धि के लिये निलाई" (पृ०४४१) आदि शब्द या वाक्य विचारणीय हैं। "पौधाई व्यर्थ से लेखक का तात्पर्य कृषि के वानस्पतिक अवशेष से है। इसके लिये पौधाई व्यर्थ बिल्कुल गलत प्रयोग होगा। "जल सहनीयता" के स्थान पर "जल प्रतिरोधिता" "प्रतिक्रिया की जंजीर के स्थान पर" प्रतिक्रिया श्रृंखला, निलाई के स्थान पर निराई होना चाहिये। केतली वास्तव में अंग्रेजी शब्द केटल का हिन्दी रूपान्तर है परन्तु यह उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। आशा है अगले अंकों में सम्पादक इस प्रकार की त्रुटियों के प्रति सतर्क रहेंगे।

२. Provisional list of Technical terms in Hindi—Meteorology II, Ministry of Education, Government of India, 1959.

मौसम विज्ञान सम्बन्धी यह दूसरी शब्दावली है जिसमें १०११ पारिभाषिक शब्दों के हिन्दी पर्या दिये गये हैं। इसमें प्रयुक्त निम्न हिन्दी पर्याय या तो वास्तविक अर्थ नहीं

वहन करते, या अन्य विषयों की स्वीकृत शब्दावली से भिन्न हैं अथवा क्लिष्ट या अत्यन्त सरल पर्यायों को इंगित करते हैं।

noise (शोर), Collision (टक्कर), anamoly (विसंगति) Polarisation (ध्रुवण), line (लाइन), flash (दमक), Inferior (अवर), standard time (मानक समय) distribution (बण्टन), concentration (जमाव), degree (संख्या), interval (अंतराल), range (परास), moisture (नमी,) technical (तकनीकी), Soil Chemistry (मृद् रसायन), neutral (उदासीन), Phase (अवस्था)।

इनके लिये, क्रमशः कोलाहल, संघात, असंगति, ध्रुवीयणता, रेखा, दीप्ति, इतर, प्रामाणिक समय, विभाजन, सान्द्रण, अंश, अवकाश, परिधि, आर्द्रता, प्राविधिक, मृत्तिकारसायन, निरपेक्ष तथा कला प्रस्तावित किये जाते हैं। इनमें से सान्द्रण, आर्द्रता, निरपेक्ष तथा कला तो रसायन की शब्दावली में इनके इन्हीं अंग्रेजी पार्यायों के लिये स्वीकृत भी हैं। पता नहीं प्रस्तुत सूची में उनके स्थान पर दूसरे शब्द क्यों गढ़े गये जो सर्वथा अनुपयुक्त भी हैं।

३. Provisional list of Technical terms in Hindi—Physics II वही।

भौतिकी की इस द्वितीय सूची में यांत्रिकी और द्रव्य के गुणधर्म सम्बन्धी शब्द दिये गये हैं। ज्ञात हो कि प्रथम सूची के ४ वर्ष बाद यह सूची प्रकाशित हुई है। इसमें निम्न शब्दों के हिन्दी पर्याय रसायन में प्रयुक्त उन्हीं अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी पर्यायों से न जाने क्यों बदल दिये गये हैं।

Dialysis पार विश्लेषण, efficiency दक्षता, neutral उदासीन। उनके लिये रसायन में अपोहन, क्षमता तथा निरपेक्ष स्वीकृत किये जा चुके हैं।

प्रस्तुत शब्दावली के निम्न हिन्दी पर्याय अत्यन्त संस्कृतनिष्ठ होने के साथ ही वे पाठकों के लिये सहजगम्य नहीं।

falling plate पतन्त पट्टिका rolling लुठन, लुठन्त, rim प्रधि, spin भ्रमि अथवा Applied Science अनुप्रयुक्त विज्ञान, Asttophysics तारा भौतिकी meniscus नवचन्द्रक, system संघ, insensitive मन्द्रग्राही, forced प्रणोदित, rectifying दिष्टकारी, standard मानक आदि। rate के लिये "दर", Collision के लिये "टक्कर" या Cup के लिये "कप" अत्यन्त सरलीकरण की ओर ले जाते हैं। एकाध स्थान पर छापे की भूलें हैं यथा दाब के लिये दब तथा भंगुरता के लिये भंगुगता। हमें विश्वास है कि उक्त पर सम्बन्धित अधिकारी ध्यान देंगे।

४. Provisional test of Technical terms in Hindi-Advanced Economic theory and Thought 1959.

अर्थशास्त्र की यह सातवीं सूची है जिसमें ५१४ शब्द हैं। इसके प्राक्कथन में यह व्यक्त किया गया है कि हिन्दी की चालू शब्दावली का विशेष उपयोग इसलिये नहीं किया

जा सका क्योंकि आर्थिक विचार धारा का जो विकसित रूप आज हमारे सामने है उसका उद्भव मूल रूप से पाश्चात्य देशों में हुआ। इन आर्थिक विचारों को व्यक्त करने वाले प्रचलित शब्द बहुत थोड़े हैं। यदि इस तथ्य को स्वीकार भी कर लिया जाय तो एक विशिष्टता जो इस सूची में देखने को मिलती है वह यह है कि अंग्रेजी में पारिभाषिक शब्दों की विवेचना तो दी गई है परन्तु हिन्दी में केवल पर्याय पारिभाषिक शब्द रखकर हिन्दी में विवेचना नहीं की गई है। जानबूझ कर उर्दू के ऐसे शब्दों को रखा गया है, जिनके प्रयोगों को सरलता से हिन्दी शब्दों द्वारा पूरा किया जा सकता था। अर्थशास्त्र में भाषा विषयक यह मनोवृत्ति राष्ट्रभाषा हिन्दी के पक्ष में नहीं है। उदाहरणार्थ Venture Capital (जोखिम पूँजी), profit (मुनाफा), forced (जबरी), thrift (किफायत), middle price (दरम्यानी कीमत) recession (सुस्ती) produce net (बेशी उपज) आदि। आश्चर्य तो यह है कि पृष्ठ ३६ पर profit के लिये लाभ भी दिया गया है जब कि अन्यत्र 'मुनाफा' स्वीकृत है। pooling के लिये "पूलन" जैसे शब्द का निर्माण भ्रामक होगा। अर्थशास्त्र विशेषज्ञ की समिति में डा० दीनदयालु गुप्त के होते हुये भी इस प्रकार की त्रुटियाँ शोभा नहीं देतीं।

५. काला सोना—कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली।

भारत में कोयले के अनेक भंडार हैं। इस्पात के कारखानों के खुल जाने से कोयले की उत्तम कोटियों की खोज, उनका वर्गीकरण तथा निम्नकोटियों से उपयोगी पदार्थों के निर्माण की ओर हमारी राष्ट्रीय सरकार का ध्यान जाना आवश्यक ही है। कोयले पर विशेष प्रकार से अनुसन्धान करने के लिये जियलगोरा स्थित केन्द्रीय ईंधन अनुसन्धान-शाला खोली गई है जिसने इस अल्पावधि में ही विभिन्न दिशाओं में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। 'लिगनाइट' तथा पीट का सदुपयोग, कोयले से पेट्रोल जैसा तरल ईंधन, तारकोल से रंगीन पदार्थ एवं कोयले को आक्सीकृत करके नाइट्रोजन-प्रचुर ह्यूमस के निर्माण इस शाला के प्रमुख कार्य हैं।

कोयले से सम्बन्धित समस्त जानकारी 'काला सोना' नामक इस पुस्तिका में उपलब्ध है। जनसाधारण में कोयले के महत्व को समझाने में यह पुस्तिका अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होगी।

६. अच्छी सड़कों की ओर—वही। किसी भी देश के यातायात को सुलभ बनाने में सड़कों का बड़ा महत्व है। भारत में अभी भी तमाम सड़कों के बनाये जाने की नितान्त आवश्यकता है। किन्तु सड़कों के बनाने के लिये जिन सामग्रियों की आवश्यकता पड़ती है, वे यहां सहज उपलब्ध नहीं। यही कारण है कि कुछ नवीन सामग्रियों को खोज निकाला गया है और नवीन पदार्थों से सड़कों का निर्माण किया जा रहा है।

वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान समिति, नई दिल्ली के द्वारा प्रकाशित "अच्छी सड़कों की ओर" नामक आकर्षक पुस्तिका देश में सड़कों के निर्माण की विविध

समस्याओं का विशद चित्रण करती हैं। सस्ती बारहमासी सड़कों के निर्माण की मेहरा-विधि सचमुच ही देहाती क्षेत्रों के लिये अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होगी।

प्रस्तुत पुस्तिका जन-साधारण को सड़कों के निर्माण, उनकी सुरक्षा, सड़कों पर चलते समय सतर्कता आदि विषयों पर पूरी-पूरी जानकारी देती है। ऐसे प्रकाशनों से जनता में वैज्ञानिक विषयों के प्रति श्रद्धा एवं जिज्ञासा बढ़ेगी।

७. The Bulletin of the Allahabad Mathematical Association, 25 th Conference of the Indian Mathematical Society' Allahabad Session 1959 : पृष्ठ सं० २८, मूल्य केवल पांच रुपये डाक खर्च-अधिक

२५ दिसम्बर १९५९ को प्रयाग विश्वविद्यालय में भारतीय गणित परिषद् के पचीसवें अधिवेशन का उद्घाटन भारत के प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल,नेहरू ने किया। इस अवसर पर गणित विभाग के डा० श्रीराम सिनहा ने श्री डी० जी० दीक्षित तथा कुमारी सरला शर्मा के सहयोग से २८ पृष्ठों की एक सचित्र पत्रिका प्रकाशित की है। वे इलाहाबाद मैथमेटिकल एसोशियन के मंत्री भी हैं। अधिवेशन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों के स्वागत में यह पत्रिका प्रकाशित की गई है और भविष्य में भी प्रतिवर्ष जनवरी मास में प्रकाशित होती रहेगी (जैसा कि अन्यत्र दी गई सूचना से विदित होता है)। जैसा कि सम्पादकीय में बताया गया है प्रयाग विश्वविद्यालय के लिये यह अभूतपूर्व घटना है कि ५१ वर्षों के बाद प्रयाग को गणित परिषद् के अधिवेशन को यहां सम्पन्न देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। प्रयाग विश्वविद्यालय का गणित विभाग भारतवर्ष भर में सबसे बड़ा विभाग माना जाता है।

पत्रिका के प्रथम भाग में सन् १८९२ से १९५९ तक के गणित विभाग की प्रगति का इतिहास, विभाग द्वारा बनाये गये डाक्टरों की सूची, अध्यापक मंडल, तथा शोध छात्रों का विस्तृत एवं अतिरंजित वर्णन है। दूसरे भाग में प्रयाग विश्वविद्यालय गणित एसोशिएशन (१९२४-१९५९) की गतिविधि का वर्णन एवं अन्त में श्रीराम सिन्हा द्वारा लिखित इलाहाबाद गणित परिषद् की स्थापना से सम्बद्ध एक विस्तृत लेख भी है। पत्रिका में विश्व-विद्यालय सम्बन्धी ४ चित्र भी हैं।

सम्पूर्ण पत्रिका को ध्यान पूर्वक पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पादक ने तथ्यों के प्रस्तुत करने में अतिशयोक्ति का आश्रय किया है और व्यक्ति विशेष की श्लाघा एवं सराहना की है। प्रयाग में ही दो प्रकार की गणित परिषदों का एक साथ कार्य करना साधारण पाठक को भ्रम में डाल देता है।

अच्छा हो, यदि इस अल्पकाय पुस्तिका का मूल्य पाँच रुपये से घटाकर कम कर दिया जाय।

———

विज्ञान वार्ता

सत्यानासिन-असाधारण गुण वाला पौधा

सत्यानासिन का पौधा, जो सड़कों और नालों के किनारे बेहद उगा रहता है, क्षारीय भूमियों को सुधारने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। सत्यानासिन को उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में भड़भाड़ भी कहते हैं। वैसे खाद के रूप में इसका कुछ प्रयोग किसान जानते थे, पर इसका असली गुण अभी तक छिपा ही था। वास्तव में इसकी अंधाधुन्ध पैदावार के कारण इसे किसी ने विशेष महत्व नहीं दिया और इसका सही उपयोग नहीं हो सका।

लखनऊ के राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान की प्रयोगशाला में हुए परीक्षणों से पता चला है कि सत्यानासिन से भूमि की क्षारीयता को समाप्त किया जा सकता है। क्षार के कारण देश की कृषि योग भूमि का एक बहुत बड़ा भाग बेकार पड़ा है। अतः सत्यानासिन का महत्व बहुत बढ़ जाता है, क्योंकि इससे लाखों एकड़ ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाया जा सकेगा।

सत्यानासिन को खाद के रूप में प्रयुक्त करने की विधि अत्यन्त सरल है। पहले सत्यानसिन के पौधों को सुखाया जाता है, फिर इन्हें पीस या कूटकर सिंचाई के पानी में मिलाकर खेतों में डाला जाता है।

लखनऊ के राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान की एक टोली ने बनथरा में अपने खेत में इसका परीक्षण किया और लगभग ६५० एकड़ ऊसरों को खेती के योग्य बनाने में सफल हुई। इस भूमि में धान की पैदावार बहुत अच्छी हुई। यहां पर एक एकड़ जमीन में लगभग १५ मन धान हुआ, जबकि ऊसर में धान की औसत उपज १० मन एकड़ है। बनथरा में अभी इस पौधे पर काम समाप्त नहीं हुआ। वहां अभी भी सत्यानासिन पर परीक्षण जारी हैं।

सस्ती पवन-चक्की

बंगलौर की राष्ट्रीय हवाई प्रयोगशाला (नेशनल एरोनाटिकल लैबोरेटरी) ने छोटी सिंचाई और घरेलू काम के लिए पानी निकालने की सस्ती पवन-चक्की का

नमूना बनाया है। यह पवन-चक्की देशी सामान से ही बनाई गई है। इस पवन-चक्की का नमूना बनाते समय देश के अधिकांक भागों में चलने वाली हवाओं को ध्यान में रखा गया है। यह भी ध्यान रखा गया है कि कम हवा में भी यह पवन-चक्की अच्छी तरह से काम कर सके। पवन-चक्की का डिजाइन सीधासाधा है। इसे आसानी से बनाया जा सकता है। इसकी मरम्मत में भी कठिनाई नहीं पड़ती। अनुमान है कि पूरी चक्की पर लगभग २॥ हजार रु० लागत जाएगी। पहले-पहल २०० पवन-चक्की बनाकर देश के विभिन्न भागों में इस्तेमाल करने का प्रस्ताव है।

घासपात की रोकथाम की दवा

नई दिल्ली की भारतीय कृषि अनुसंधानशाला में हाल ही में किये गये अनुसंधानों से पता चला है कि रबी की फसलों के साथ पैदा होने वाली घासपात को २, ४—डाइक्लोरोफिनोक्सी-एसीटिक अम्ल के प्रयोग से नष्ट दिया जा सकता है। घासपात को नष्ट करने का यह तरीका बहुत सस्ता भी है। सामान्यतः अनाज की फसलों के साथ उगने वाली घासें, बाथू, पियाजी, हिरनखुरी, पौहली और कृष्णा नील हैं। घासपात से अनाज की पैदावार ५ प्रतिशत से ४० प्रतिशत तक कम हो सकती है। यदि इस हानि को १० प्रतिशत भी लगाएँ तो सिर्फ गेहूँ की फसल में ही ८ लाख टन अनाज की हानि होती हैं। इस प्रकार लगभग ३१ करोड़ ३० लाख रु० वार्षिक की क्षति होती है।

स्लैग से सीमेंट

लोहा और इस्पात बनाते समय वमन-भट्टियों से जो 'स्लैग' निकलता है, अब उससे सीमेंट बनाया जा सकेगा। सीमेंट बनाने का यह तरीका रुड़की की केन्द्रीय इमारत अनुसंधान संस्था ने निकाला है। एक टन लोहे के ढोके बनाने में आधा टन 'स्लैग' निकलता है।

सीमेंट तैयार करने के लिए 'स्लैग' पर पानी छिड़का जाता है, जिससे दानेदार पदार्थ मिलता है। इस पदार्थ को गीला ही पीस लिया जाता है। इसमें उचित मात्रा में चूना और रेत मिलाकर इसे सीमेंट के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। १ भाग चूना, २ भाग स्लैग और ६ भाग रेत के मिश्रण को ७ दिन तक साधारण ताप और १०० प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर रहने से १,२०० पौंड प्रति वर्ग इंच शक्ति का सीमेंट प्राप्त होता है।

यह सीमेंट चिनाई के गारे और पलस्तर के काम में लाया जा सकता है।

साबुन बनाने की नयी विधि

न्यूयार्क में साबुन बनाने की एक नयी, सस्ती और अच्छी विधि निकाली गयी है। साबुन बनाने की इस विधि में सब क्रिया बन्द यंत्रों द्वारा ही नियंत्रित होती है। इस विधि की सबसे बड़ी अच्छाई यह है कि इसमें साबुन बनाते समय हवा के सम्पर्क

में नहीं आता, जिससे आक्सीकरण नहीं हो पाता। इस विधि से बढ़िया और घटिया दोनों प्रकार के साबुन बनाये जा सकते हैं। साथ ही इस विधि से साबुन बनाने में लागत भी कम आती है और बढ़िया माल बनता है।

कश्मीर में जिप्सम के भंडार

भारतीय भूगर्भ सर्वे ने कश्मीर में जिप्सम के बहुत बड़े भंडारों का पता लगाया है। ये भंडार बारामूला जिले में झेलम नदी के उत्तरी किनारे पर हैं। सौ फुट गहराई पर लगभग २ करोड़ ५५ लाख टन जिप्सम का भंडार है, जिसमें से लगभग १ करोड़ ५३ लाख टन जिप्सम निकाला जाएगा।

जिप्सम, सीमेंट और प्लास्टर-आफ-पेरिस बनाने में काम आता है।

(पृष्ठ २१८ का शेष)

एजेंसी में सम्मिलित होने की अनुमति दे दी। इस कानून में यह व्यवस्था भी की गयी है कि अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति एजेंसी को आणविक भट्टी के ईंधन के लिए पर्याप्त मात्रा में यूरेनियम प्रदान कर सकता है। यह एजेंसी अन्य विकसित देशों में अणुशक्ति सम्बन्धी अनुसन्धान, प्रशिक्षण, अध्ययन आदि के कार्यक्रम चालू कर रही है। इसके अतिरिक्त जिन देशों में आणविक भट्ठियों के लिए यूरेनियम उपलब्ध नहीं है, उन्हें यह यूरेनियम भी बांटती है। वस्तुतः, विश्व भर में आणविक बिजली और अणुशक्ति के विकास को प्रोत्साहित करना इस-एजेंसी का एक प्रमुख कार्य है। अब अणु युग की क्रांतिकारी प्रगतियों से कोई भी देश अछूता नहीं रह सकता।

१. सहारा का परमाणवीय विस्फोट

१३ फरवरी को फ्रांस ने सहारा मरुस्थल में अपने प्रथम परमाणवीय परीक्षण को सफल देखकर जो हर्षातिरेक व्यक्त किया है वह किसी भी प्रकार युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। उल्लास का जो मूल कारण बताया जाता है वह "परमाणवीय वर्ग" में फ्रांस के सदस्य बनने की बात है। अब संयुक्त राष्ट अमेरिका, रूस तथा ब्रिटेन की ही पंक्ति में फ्रांस भी अपने को आसीन देखकर प्रसन्न है। परन्तु क्या यह सच नहीं कि इस प्रकार से वर्ग में सम्मिलित होने की कामना करने वाले राष्ट्रों का अभाव नहीं ? वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अब भविष्य में जितने भी परमाणवीय परीक्षण किये जावेंगे वे मानव मात्र के लिये अहितकर ही होंगे। न तो उनके द्वारा नवीन वैज्ञानिक तथ्य सामने आने की आशा है और न उनके उत्पादन में व्यय अपार धन राशि की पूर्ति ही सम्भव है। यह भी बहुत तर्क संगत नहीं प्रतीत होता कि परमाणवीय ऊर्जा के भविष्य में शान्तिपूर्ण उपयोगों के लिये ऐसे अनेक प्रयोग नितान्त आवश्यक होते हैं।

ऐसे विस्फोटों के फलस्वरूप वायुमण्डल में रेडियसक्रियता जिस परिमाण में परिव्याप्त होकर मनुष्यों, पशुओं एवं वनस्पतियों को प्रभावित करती है उससे अब सभी परिचित हैं। एक स्थान पर हुये विस्फोट का प्रभाव विश्व भर में विशिष्ट यंन्त्रों द्वारा अनुभव किया जाता है। सैहारा के विस्फोट का प्रभाव जापान में देखा गया गया। कहा जाता है कि साहारा के विस्फोट के बादल धीरे-धीरे पूर्व की ओर अग्रसर हो रहे हैं अत: यह स्वाभाविक है कि भारत चिन्तित हो। परन्तु प्रधान मन्त्री नेहरू ने संसद में एक प्रश्न के उत्तर में यह विश्वास दिलाया है कि सहारा का विस्फोट किसी भी प्रकार भारतीय भूमि को हानिकारक सिद्ध न होगा। ठीक है, यह कोई नहीं चाहेगा कि वह या उसका देश इन कुप्रभावकारी विकिरणों का शिकार हो परन्तु इसका यह भी अर्थ नहीं कि हम शान्त हो रहें। ऐसे विस्फोटों के विरुद्ध आवाज उठाना प्राणीमात्र का धर्म है। यही कारण है कि इंगलैंड के महान दर्शनिक तथा अफ्रीका के समस्त नागरिकों ने इस विस्फोट के विरुद्ध प्रदर्शन किये हैं।

मानव कल्याण के लिये आवश्यक है कि ऐसे परीक्षण बन्द हों और भविष्य में वे फिर दुहराये न जायँ। उनके परीक्षण पर गहरा प्रतिबन्ध हो। जो इस सीमा का उल्लंघन करे उसकी अन्तर्राष्ट्रीय भर्त्सना हो।

२. प्रतिभा का दमन

भारतीय कृषि अनुसंधान महाविद्यालय दिल्ली के वैज्ञानिक डा० जोसेफ की दुखद मृत्यु की गहरी छाया ने समस्त भारतीय वैज्ञानिकों को प्रभावित कर दिया है। सबों ने न केवल एक स्वर से उनके प्रति किये गये सरकारी कुव्यवहार की निन्दा की है वरन् वे अपने प्रति भी सतर्क हो उठे हैं। आज जिस प्रकार से वैज्ञानिक प्रतिभा को राजनीतिक अंकुशों से दमित किया जा रहा है उससे त्रस्त हो अनेक प्रतिभासम्पन्न मूर्धन्य वैज्ञानिक भारत में न रह कर विदेशों में जीवन यापन कर रहे हैं। यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि अपनी प्रतिभाओं का आदर स्वदेश में नहीं हो रहा। इस मर्म से सभी राजनीतिज्ञ परिचित हैं और यदाकदा वे इस ओर संकेत भी करते रहते हैं परन्तु क्या यह नहीं कहा जा सकता कि वे ही इसके उत्तरदायी हैं ?

हमारा देश वैज्ञानिक प्रगति में कितना पीछे है यह सर्वविदित है। जो अपने रक्त से सींचकर प्रगति के उद्यान को उर्वर बनाना चाहते हैं, यदि उनके मार्ग में अवरोध आयें तो हतोत्साहित होना स्वाभाविक है क्योंकि सब कुछ करने पर भी परिवार के भरण-पोषण की भी चिन्ता साथ-साथ लगी हुई है। यही कारण है कि उच्च शिक्षासम्पन्न एवं प्रतिभावान वैज्ञानिक अधिक अर्थ की कामना करते हैं। विदेशों में ये ही लोग मनोनुकूल अर्थ प्राप्त करते हुये सुखद जीवन बिताते हैं जब कि स्वदेश लौटने पर उन्हें हताश होना पड़ता है। सभी अग्रणी राष्ट्र अपने वैज्ञानिकों का सर्वाधिक आदर करते हैं, उनकी ओर ही सबों की आँखें लगी रहती हैं परन्तु हमारे देश में बिल्कुल उल्टी रीति है।

डा० जोसेफ ने जीवन से ऊब कर ही आत्मघात किया है। उन्होंने जो अन्तिम पत्र लिखा है उसके द्वारा उनके अन्तर्द्वन्द्वों का पता चलता है। श्री एस० के० पाटिल ने स्वयं स्वीकार किया है कि यदि वह पत्र उन्हें जोसेफ की मृत्यु के पूर्व मिला होता तो वे अवश्य ही उन्हें सान्त्वना देते। अब उन्होंने डा० जोसेफ के परिवार के लिये कई सहस्र की राशि संचित की है। जनता में भी इस वैज्ञानिक के लिये अपार स्नेह लक्षित होता है। परन्तु क्या उनके परिवार के पोषण की व्यवस्था कर देने मात्र से हमारे कर्तव्यों की इतिश्री हो जाती है ? कदापि नहीं ! अब यह हमारा परम कर्तव्य है कि हम अपने देश की प्रतिभाओं का समादर करें, उन्हें उचित आर्थिक सहायता प्रदान करें और उनको प्रोत्साहित करते रहने के लिये सभी यत्न करें। सरकार का यह प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों के लिये समस्त सुविधायें प्रदान करे और एक ही अंकुश से चराचरों का दमन न करे।

आशा है हमारे सम्पूर्ण देशवासी इस गम्भीर स्थिति को दूर रखने के लिये व्यवस्थित योजना बनायेंगे। यह दमन केवल एक जोसेफ का नहीं, उन तमाम वैज्ञानिकों की समस्या है जो या तो सरकारी क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं या भविष्य में करेंगे। जिस देश में प्रतिभा का सम्मान नहीं होता उसका कल्याण नहीं हो सकता।

———

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिगराम भार्गव	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगा शंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रमेश वेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकरराव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर	२ रुपया
१०—कलम पैबन्द—श्री शंकरराव जोशी	२ रुपया
११—जिल्द साजी—श्री सत्य जीवन वर्मा एम० ए०	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०	१ रुपया
१३—वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०, वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० न० पै०
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपया
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपया
१९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
२०—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रु० ५० नये पैसे
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकर राव जोशी	३ रु० ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनिया—श्री रामेश वेदी	४ रुपया
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्र नाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान-शालायें	२ रुपया
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
२६—रेल इंजन, परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ९१ | २०१६ विक्र०; चैत्र १८८१ शाकाब्द; अप्रैल १९६० | संख्या १

एकमेवाद्वितीयम्--विज्ञान दर्शन का एकत्ववाद

डा० सत्यप्रकाश

बहुत पुराने समय से एक कथा चली आ रही है—आरुणि मुनि का एक पुत्र श्वेतकेतु था। उसने अपने गुरु के पास रह कर बड़ी श्रद्धा से वेदों का अध्ययन किया। गुरुकुल से लौटकर जब वह घर आया, तो उसे अपने ज्ञान का अभिमान था। पिता ने उससे पूछा—हे श्वेतकेतु, क्या तूने अपने गुरु के पास वह रहस्य भी सीखा है जिसके जान लेने पर न सुना हुआ पदार्थ भी सब सुना हुआ हो जाता है और न जाना हुआ पदार्थ भी जाना हुआ हो जाता है। श्वेतकेतु ने आचार्य से सब कुछ सीखा था, पर यह रहस्य नहीं सीखा था। अपनी शिक्षा का अभिमान जब इस प्रकार स्खलित होते देखा, तो उसने अपने पिता आरुणि से इस रहस्य के सम्बन्ध में उपदेश चाहा। उसके पिता ने उस समय उससे यह अमर वाक्य कहे —

"स देव सोम्य ! इदमग्र आसीद्-एकमेवाद्वितीयम्।
तद्वैक आहुः असद् एव इदमग्र आसीद्-एकमेवाद्वितीयम्॥"

अर्थात् हे सोम्य श्वेतकेतु ! इस दृश्यमान जगत् से पूर्व ब्रह्म सत्-असद् रूप एकमेव अद्वितीय था। निश्चयपूर्वक वह एकमेव अद्वितीय था। ब्रह्म में बाद में इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं प्रजवान बनूँ, एक से अनेक बनूँ। छान्दोग्य उपनिषद के इस कथानक का यह वाक्यांश "एकमेवाद्वितीयम्" वेदान्त का एक महावाक्य बन गया। इस बहुत्वमयी सृष्टि में तत्त्ववेत्ताओं ने एकत्व का अनुशीलन करना चाहा। उपनिषदों ने एकत्व की

अनुभूति को बहुत महत्व दिया। जिसे एकत्व का भान हो जाता है, उसके लिये कहाँ शोक और कहाँ मोह—

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।

सृष्टि के पूर्व में जब कुछ न था, तो आत्मा ही था, ब्रह्म ही था। ब्रह्म वा इदमग्र आसीद्। इस समय भी नानात्व नहीं है, वस्तुतः सब कुछ एक ही है—नेहनानास्ति किञ्चन। जो कुछ भी सत्य है, वह हिरण्मय पुरुष एक हंस है—हिरण्मयः पुरुषः एक हंसः—वही अन्तर्यामी ब्रह्म है। उपनिषद्कारों के ये वचन दार्शनिकों की गम्भीर गवेषणाओं के प्राण बने। बहुत्व अथवा नानात्व को कल्पना द्वारा एकत्व में परिणत कर देना सापेक्षतः सरल था, पर वस्तुतः इस बहुत्व-एकत्व सम्बन्ध को साक्षात् अनुभव में लाना कठिन प्रतीत होने लगा। एक अखंड तत्व से बहुत्व की उत्पत्ति क्या केवल मायावी है, अथवा सचमुच एक से बहुत्व की रचना की जा सकती है? यह जीता-जागता एक प्रश्न है। यदि एकत्व से बहुत्व किसी भी समय बन सकता था, तो वह किस प्रकार बना, यह जानना आवश्यक हो जाता है। और यदि इस रहस्य का पता चल जाय तब तो हम भी इस रहस्य को जानकर मन चाहे बहुत्व की रचना कर सकते हैं। दार्शनिक अद्वैतवाद ने तत्ववेत्ताओं को दृश्यमान् जगत् के प्रति और उदासीनता एवं उपेक्षा प्रदान की। वैज्ञानिकों ने इस अद्वैत-भावना में व्यावहारिक रहस्य का भी स्रोत पाया है, और उन्होंने विचारशील मानव को नयी शक्ति, नयी स्फूर्ति और नया बल प्रदान किया।

वैज्ञानिक अद्वैतवाद अपनी कल्पनाओं को साकार अमूर्त्तमान रूप देकर सन्तुष्ट होता है। प्रत्येक विचारशील व्यक्ति यह मानता है कि न्यूनतम कारणों से जगत् का नानात्व उत्पन्न होना चाहिये। यह तो हमारे प्रतिदिन के अनुभव की बात है। खेत में डाली हुई खाद अनेक रूपों में परिवर्तित होकर हमारे सामने आती है, उसी से रंग, तरह-तरह के स्वादिष्ट फल-फूल, विविध गन्धों के अनेकानेक पदार्थ बनते हैं। हम इसी प्रकार नित्य प्रति अनुभव करते हैं, कि साधारण भोजन जो करते हैं, वह हमारे शरीर का अंग बन जाने पर विविध प्रकार से रूपान्तरित हो जाता है। कहीं हड्डी बनता है, कहीं मज्जा, कहीं रुधिर और कहीं पर विविध प्रकार के ग्रंथियों के रस। न्यूनतम कारणों से बहुत्व की उत्पत्ति का साक्षात्कार कार्बनिक रसायन के अनुशीलकों ने बड़ी सुन्दरता से किया। कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, और नाइट्रोजन के संयोग से बने हुए लाखों प्रकार के यौगिक न केवल प्राकृतिक अवस्था में ही पाये जाते हैं, वरन् इस बीसवीं शती के इतिहास ने इन यौगिकों का संश्लेषण करके इस युग में प्रकृति से होड़ लेना आरम्भ कर दिया है। आज तो बाजार में ऐसे कपड़ों की भरमार है जो कपास और रेशम से नहीं बनाये गये, पर लगते वैसे ही हैं। धातु और कांच के बर्त्तनों के स्थान पर प्लास्टिक की वस्तुओं के विविध उपयोग भी इसी प्रकार की होड़ के परिणाम हैं। न्यूनतम पदार्थों के संयोग से विविधत्व उत्पन्न करने की कला का नाम ही तो रसायन विज्ञान है। गत तीन सौ वर्षों की गवेषणा के परिणाम स्वरूप रसायनज्ञ ने दृश्यमान् जगत् के नानात्व को पहले दो वर्गों में विभाजित किया—द्रव्य और ऊर्जा। वैज्ञानिकों ने घोषित किया कि द्रव्य अविनाशी है और ऊर्जा भी अविनाशी। मानों

ये ही ब्रह्म हों। भौतिक वैज्ञानिकों ने ऊर्जा की उपासना की और रसायनज्ञों ने द्रव्य की। दोनों अपने-अपने ब्रह्म को अविनाशी और अनन्त एवं अनादि मानते रहे। उपनिषद् के शब्दों में भौतिकवेत्ता मानों यह कह रहे हों कि "य एवासौ विद्युति पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति" अर्थात् जो यह विद्युत् अथवा अग्नि में पुरुष है, मैं तो उसी का ब्रह्म मानूँगा, उसी की उपासना करूँगा इसी प्रकार रसायनज्ञों ने भी घोषित किया कि "य एवायं वायौ पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति। य एवायमप्सु पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति", अर्थात् जो जल और वायु में पुरुष हैं, हम तो उसे ही ब्रह्म मानेंगे, और उसी की उपासना करेंगे। द्रव्य को रसायनज्ञों ने ९२ तत्त्वों में विभाजित पाया और भौतिक वेत्ताओं ने ऊर्जा के विविध रूपों का भी अनुभव किया—उष्मा, प्रकाश, विद्युत् आदि। दोनों ने ही नानात्व को अल्प-संख्या में परिणत करने का प्रयत्न किया।

दो सौ वर्ष तक तो रसायनज्ञ और भौतिकवेत्ता अलग-अलग क्षेत्रों में अपने-अपने ब्रह्म की उपासना करते रहे—द्रव्य-ब्रह्म की और ऊर्जा-ब्रह्म की। उन्नीसवीं शती के अन्त में कुछ ऐसी घटनाएँ हुई जिनके कारण यह पता चलने लगा कि दोनों के उपास्य ब्रह्म इतने अलग-अलग नहीं हैं जितने कि अब तक समझे जाते थे। तत्वों की संख्या में डाल्टन के समय से जो बहुत्व स्थापित किया गया था, उसमें सन्देह उत्पन्न होने लगा, रेडियम आदि के समान सक्रिय तत्व प्रकृति में टूटते पाये जाने लगे, परमाणु अखण्ड और अविनाशी न रह गया। बीसवीं शती में परमाणु के खण्ड-खण्ड किये जाने लगे। उसके नानात्व में जो सन्देह था वह और दृढ़ हो गया। सब तत्व भिन्न-भिन्न होकर केवल इलक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान के संयोगान्तर ही रह गये। मानों कि नानात्व अब केवल धन और ऋण विद्युत कणों में ही अन्तर्निहित हो गया हो। हाइड्रोजन से लेकर यूरेनियम तक के तत्त्व यदि कुछ कणों से ही मिलकर बने हैं, तो क्या मनुष्य भी प्रकृति में पाये जाने वाले तत्त्वों के अतिरिक्त और कोई तत्त्व नहीं बना सकता। वैज्ञानिक तो ऐसे अद्वैत मूल सूत्र को जानना चाहते थे, जिसके जान लेने पर कुछ अज्ञात बचता ही नहीं। उपनिषद् में काप्य पतंचल से भी तो यही प्रश्न पूछा गया था कि काप्य! क्या तुम वह सूत्र जानते हो जिससे कि लोक परलोक के समस्त भूत संग्रथित हो रहे हैं—"वेत्थ नु त्वं काप्य! तत्सूत्रं येनायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि भवन्तीति"। रसायनज्ञों और भौतिकज्ञों ने इस शती में इसी सूत्र का कुछ-कुछ पता लगाया जिसको जानकर न केवल उन्होंने लोक में स्थित तत्त्वों के निर्माण का रहस्य समझा, वरन् उन्होंने ऐसे भी तत्त्व बनाये जो हमारे इस मर्त्यलोक में अब तक नहीं पाये जाते थे। जैसे विश्वामित्र ने नयी सृष्टि रची थी, इन वैज्ञानिकों ने ब्रह्म की होड़ में यूरेनियम से आगे वाले १० तत्त्व अपने कौशल से बनाये।

अभी हमने कहा था कि रसायनज्ञों का ब्रह्म द्रव्य था, और भौतिकज्ञों का ऊर्जा, पर वर्तमान शती में यह भेद भी मिट गया। आइन्स्टाइन ने आज से पचास वर्ष पूर्व यह कल्पना प्रस्तुत की थी कि द्रव्य ऊर्जा में और ऊर्जा द्रव्य में परिणत किये जा सकते हैं।

लार्ड रदरफोर्ड ने जबसे तत्त्वों के नाभिकों पर कार्य प्रारम्भ किया, इस सत्य की व्यावहारिक अनुभूति होने लगी। ऊर्जा और द्रव्य के बीच में कालान्तर में जो नानात्व चला आ रहा था, वह मानों अब समाप्त हो गया। कितने द्रव्य के तिरोभाव से कितनी ऊर्जा प्राप्त हो सकती है, इसका सूत्र आइन्स्टाइन ने बता ही दिया था। गत महायुद्ध के समय इस कल्पना को मूर्त्तमान किया गया और फलस्वरूप परमाणु विस्फोट हमारे समक्ष उपस्थित हुए। मनुष्य ने एक नयी शक्ति प्राप्त की। उपनिषद् ने कहा है कि ब्रह्म के दो रूप हैं—मूर्त्त और अमूर्त्त। "द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तञ्चैवामूर्त्तञ्च"। जब तक ब्रह्म का रूप अमूर्त्त था, व्यवहार में जब तक उसका प्रत्यक्ष न था, तब तक तो उसका इस व्यवहार जगत् के प्राणी के हेतु कोई मूल्य न था, पर जब यह रूप मूर्त्तमान हुआ, तो उसका साक्षात् परिणाम हमारे समक्ष आया। युद्ध में इस मूर्त्तमान् रूप ने ऐसा विध्वंस किया, कि आज भी हम उससे त्रस्त हैं। वैज्ञानिकों ने इस मूर्त्तमान रूप का उपयोग जनकल्याण के लिये भी करना प्रारम्भ कर दिया है।

इस प्रकार इस बीसवीं शती में द्रव्य और ऊर्जा का नानात्व भी एकत्व में परिणत हो गया है। इस समय भी चेतन और जड़ का नानात्व हमारे समक्ष पूर्ववत् ही उपस्थित है। एमिल फिशर नामक रसायनज्ञ ने प्रोटीनों के संश्लेषण पर युग परिवर्त्ती कार्य प्रारम्भ किया था। मनुष्य का यह स्वप्न था कि यदि हम जटिल प्रोटीनों को बना डालेंगे, तो सम्भवतः उनमें कोई ऐसा प्रोटीन भी मिल जाय, जिसमें चेतनता के लक्षण प्रतीत हों—जो स्वतः अपना प्रजनन कर सके। जड़, अल्पचेतन, चेतन और अतिचेतन के बीच में इतना कम अन्तराल है, कि मनुष्य को अब भी यह विश्वास है कि हम चेतन को भी वश में कर सकेंगे। सन्ततियों में मन-चाहे लक्षण एवं गुण धर्म उत्पन्न करना कठिन नहीं रह गया है। वाइरस और क्रोमोसोम इन पर की गयी विवेचनायें नयी आशा बँधाती रहती हैं। वैज्ञानिक अपनी किसी कल्पना का तब तक कोई अर्थ नहीं समझता है, जब तक कि उसे व्यवहार में परिणत न कर ले। जड़ जगत् में उसने बुद्धिमान यंत्रों का आविष्कार किया है। ये यन्त्र गणित के दुरूह प्रश्न साधारण गणितज्ञों की अपेक्षा अधिक त्रुटिहीन निकालने में समथ हैं। पर फिर भी आज भी चेतन चेतन है और जड़ जड़ ही है। यह देखना है कि भविष्य में "एकमेवाद्वितीयम्" की धारणा हमें कितना आगे ले जाती है। ऋचा के शब्दों में हमें आज भी सन्देह है कि हम रहस्य की अन्तिमता को समझ पाये हैं या नहीं—"वेद यदि वा न वेद", अथवा हमें यह कहना ही पड़ेगा कि "स एष नेतिनेत्यात्मा"।

(आकाशवाणी, इलाहाबाद के सौजन्य से)

———

पेट्रोलियम की कहानी

कौस्तुभ आनन्द पन्त

पेट्रोलियम आधुनिक सभ्यता का स्रोत है। इसका तरल सौन्दर्य, सुख, सम्पन्नता सुन्दरता और सुघड़पने की सृष्टि करता है। शक्ति का साधन तो यह है ही, यंत्रों के प्रचलन, प्रसरण और और पोषण के लिए इसकी प्रथम आवश्यकता है।

पेट्रोलियम या खनिज तेल पृथ्वी में प्राकृतिक सोतों के रूप में अनेक स्थानों पर मिलता है। आज से २००० वर्ष पूर्व भी चीन और जापान में इसका उपयोग होता था। पेट्रोलियम की तलछट या एस्फाल्ट (Asphalt) पूर्व तथा उत्तर पाषाण काल में भी मनुष्य कार्य में लाता था। अग्निपूजक पारसी अपने मंदिर तेल के सोतों के ऊपर ही बनाते थे। पंजाब का ज्वालामुखी का मंदिर धरती के उदर से निकलने वाली गैस की ज्वालाओं पर बना है। ईराक, फारस और बर्मा के लोग पिच या एस्फाल्ट (pitch or asphalt) के लिये कुँए खोदते थे। योरप की कुछ कोयले की खानों में पिछली शताब्दी में भी अल्पमात्रा में पेट्रोलियम निकलता था।

तेल की कहानी आरम्भ होती है पेन्सिलवेनियाँ के आइल क्रीक के तेल के सोते से। यह सन् १७५५ में पाया गया। सन् १८५६ में जार्ज एच० बिसेल ने यहीं पहला कुँआ तेल के लिये खोदा। एडविन एल० ड्रेक ने अगस्त १८५६ में दो महीने की खुदाई के बाद ६६३ फीट गहरे कुँऐं से पहले पहल व्यापारिक मात्रा में तेल निकाला। लोग उसी का अनुकरण कर ६६ फीट तक खोदकर ही तेल पाना चाहते थे अतः इनको कम ही सफलता मिली। पहले वहीं तेल खोजा जाता था जहाँ उसके होने के कुछ प्रत्यक्ष चिन्ह मिलते थे, पर आजकल विज्ञान के बढ़ते हुए प्रकाश में मनुष्य उन जगहों पर भी तेल पाने में सफल हो सका है जहाँ पर ऊपर से देखने में कुछ भी पता नहीं लगता। अब तो पेट्रोलियम टेकनालाजी इसी तेल की खोजबीन पर आधारित है।

तेल उत्पत्ति के सिद्धान्त

तेल की उत्पत्ति के पहले दो सिद्धान्त माने गये। पहला जैव सिद्धान्त और दूसरा अजैव सिद्धान्त। अब केवल जैव सिद्धान्त को ही सही माना जाता है।

जैव सिद्धान्त :—इस सिद्धान्त के अनुसार पेट्रोलियम बनने की रासायनिक क्रियाओं में जीवित पदार्थों का ही हाथ रहा और तेल बनस्पति तथा जन्तुओं के मृत शरीरों

पर जीवाणु की क्रिया से बना। वनस्पति और जन्तु दोनों से या इनमें से किसी एक से ही तेल बन सकता है। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि एस्फाल्ट वाले तेल जन्तुओं के शरीरों से बने और पैराफीनों वाले तेल पौदों से बने। सम्भवतः दोनों से ही तेल बना।

जैव सिद्धान्त के भी दो प्रभेद हैं—पहला जन्तु सिद्धान्त, दूसरा वनस्पति सिद्धान्त।

जन्तु सिद्धान्त :—तेल जन्तुओं के शरीरों के गलने सड़ने से बना। मछली, घोंघे, मूँगा, रेडियो लेरिया और फेरामिनी फेरा समुद्रों में विशाल परिमाण में मिलते हैं। मछली से तेल बनने का सिद्धान्त सम्भव नहीं लगता क्योंकि ऐसा होनेपर मछलियों का सामूहिक विनाश होता पर भूतत्वज्ञों को इसका एक भी प्रमाण अभी तक नहीं मिला। अधिकांश समुद्री जीवों का शारीरिक संगठन तेल बनाने के योग्य है।

वनस्पति सिद्धान्तः- इसके और भी उपसिद्धान्त हैं :—

(अ) सेवार सिद्धान्त :—इसके अनुसार तेल समुद्री सेवार से बना। आज भी अन्ध महासागर के सारगासो समुद्र में सरगासो नाम की सेवार समुद्र का सारा कलेवर ढके हुए है। चिर भूतकाल में भी ऐसी सेवार विशाल मात्रा में उगती थी और यह तेल बनाने के उपयुक्त भी है।

(ब) स्थल वनस्पति सिद्धान्त :— इसके अनुसार पृथ्वी के स्थल भागों में उगने वाली वनस्पति के दलदलों में गलने से तेल बना। कोयला भी इसी तरह बना।

(स) डाइएटम सिद्धान्त :—यह सिद्धान्त विशेष रूप से केलिफोर्निया (अमेरिका) के भूतत्वज्ञों द्वारा प्रतिपादित किया गया है। डाइएटम समुद्रों में पाये जाने वाले बहुत ही सूक्ष्म जीवित पदार्थ हैं। तेल के बनाने में इनका बहुत महत्त्व है। बिटुमिनस कोयले तथा तेल के ऊपर के शेलों (oil shales) में इनके अवशेष मिलते हैं।

(द) कोयला सिद्धान्तः--बिटुमिनस और लिगनाइट कोयलों का आसवन करने पर उन सभी शर्कराओं को प्राप्त किया जा सकता है। तैल क्षेत्रों के निकट कोयले का होना इसकी पुष्टि भी करता है।

तेल कैसे बना

सर्वमान्य सिद्धान्त के अनुसार तेल जन्तुओं और पौदों से बना। ऑक्सिजन की अनुपस्थिन में मृत पौदों जन्तुओं के शरीर सामूहिक रूप में गलित हुए और उन पर अनेक रासायनिक क्रियाओं का प्रभाव पड़ा। विश्वास किया जाता है कि तेल के बनाने में पौदों का अधिक हाथ रहा होगा।

सबसे नये तेल क्षेत्र लगभग एक करोड़ वर्ष पूर्व बने थे और सबसे पुराना तेल कदाचित् आज से ४४ करोड़ वर्ष पहले बना था। इस विकासमान युग में पृथ्वी के जीवन में अनेक परिवर्तन आये। साधारण रूप से स्थिर दिखने वाली पृथ्वी की पपड़ी वास्तव में अति मन्द गति से सतत चलायमान है और समुद्र के पानी की सतह की तुलना में

ऊपर या नीचे जाती है। इस तरह स्थल भाग पानी के नीचे चले जाते हैं। या पानी से बाहर निकल पड़ते हैं। पानी द्वारा स्थल भागों के आवरण और अनावरण का यह खेल चलता आया है और चलता रहेगा।

सागरों में अनेक जीव और असंख्य जीवाणु पनपे। इनका भोजन समुद्री पौदे था। इन जीवों के मरने पर इनके शरीर सागर तल में एकत्र होते गये और गलते हुए पौदों के साथ मिल गये। इस तरह जैव पदार्थों का एक विशाल संकलन बन गया। नदियों के द्वारा लाई गई मिट्टी के द्वारा यह धीरे-धीरे आच्छादित परतों के नीचे दब गया। जैव पदार्थों का यह संकलन ही तेल बनने के लिये कच्चा माल या मातृ-द्रव्य था। इसी से तेल बना। ताप और दाब के कारण तेल बना। किन्तु अब यह सिद्धान्त मिथ्या सिद्ध हो चुका है।

सम्भवतः उथले समुद्रों में पाये जाने वाले जीवाणुवों के द्वारा इस मातृ-द्रव्य में परिवर्तन आया। इस पर जीवाणु- क्रिया से आक्सिजन एवं नाइट्रोजन अलग हो गये। और अन्य रासायनिक परिवर्तन भी आये। फलस्वरूप मातृ-द्रव्य से तेल की नन्हीं बूँदें स्रवित होकर निकली। अभी तक यह ज्ञात नहीं हो सका कि वे बूँदें मातृ-द्रव्य के अवसादित मिट्टी द्वारा गहरे दबा दिए जाने के बाद बनीं या पहले ही बन गई थीं। अवसादों के द्वारा गहरे दबा दिए जाने पर सम्भवतः तेल में कुछ अज्ञात रासायनिक परिवर्तन आ जाते हैं।

इसके बाद तेल मातृद्रव्य से निकलकर रन्ध्र-मय अवसादित चट्टानों के रन्ध्रों में भरने लगता है। इसे तेल का परिव्राजन (migration) कहते हैं। तेल में परिव्राजन के बाद भी कुछ परिवर्तन आते हैं। कदाचित मातृ-द्रव्य के ऊपर के अवसादों के दाब का भी कुछ प्रभाव इस क्रिया पर पड़ता है। तेल बनने की क्रिया में ताप १४०° से ३००° से० तक ही रहता है। अतः ताप का महत्त्व कम है। तेल बनने की क्रिया के साथ प्राकृतिक गैसें भी बनती हैं।

तेल के बनने के साथ नदियों द्वारा अवसादन का क्रम भी चलता रहा। सूक्ष्मक अवसाद समुद्र की तली में जमा होते रहे। अवसादन चलता रहा और अवसादों के परिमाण के बढ़ने के साथ इसका भार भी बढ़ा और दाब के कारण नीचे की अवसादितर तहें चट्टान के स्तरों में बदल गईं। तेल की बूँदें और गैस के बुलबुले मातृ-द्रव्य से निकलक ऊपर उठने लगे और निकटतम चट्टानों के रन्ध्रों में भर गये। गैसें और तेल पानी से हल्के होते हैं अतः उनका ऊपर उठना स्वाभाविक था।

उन करोड़ों वर्षों के बीच जब यह सब हो रहा था, पृथ्वी में अनेक परिवर्तन आए। इसका रूप बदलता रहा। पृथ्वी की पपड़ी पृथ्वी पर काम करने वाली शक्तियों के कारण सिकुड़ती और फैलती रही। पपड़ी के इस तरह सिकुड़ने और फैलने से पहाड़ बने और पहाड़ बनकर फैले, मुड़े, टूटे और घिस पिसकर लुप्त हो गये। चट्टानों की परतों में विभग और मोड़ आ गये, परतें धँस धँसकर नीचे बैठ गईं और जो गह्वर बने

उसमें पानी भर गया। जब तक इन गह्वरों में समुद्र का आधिपत्य रहा, नदियों के अवसादन-चक्र द्वारा नये अवसादों का जन्म हुआ और इन्हीं अवसादों के उदर में समुद्र की गोद में सभी तैल क्षेत्रों ने जन्म लिया।

धरती का रूप आज भी बदल रहा है। इसको पृथ्वी की आयु की तुलना में क्षणभंगुर अपने इस जीवन में हम नहीं देख पाते। यह परिवर्तन शनैः शनैः अबाध गति से चलता है। अपने जीवन काल में हम धरती के कुछ ही परिवर्तनों को देखते हैं जैसे पहाड़ों का घिसना, क्षरण या अपरदन, नदी की बाढ़, नदी का मार्ग परिवर्तन, नदी का सर्पण, समुद्री लहरों की चट्टानों पर भीषण मार, भूकम्प और ज्वालामुखी का आविर्भाव आदि।

यदि हम काल यंत्र की शक्ति से भूत काल में जा सकते तो देख पाते कि पृथ्वी में कितने परिवर्तन आए थे। तब स्थल का पानी में छिप जाना, पहाड़ों का बनना, मिटना, नये पहाड़ों का जन्म, समुद्र के गर्भ से धरा का उत्कर्ष, सागरों की जगह मरु प्रदेशों का जन्म, प्रलय की वर्षा, जंगल, दलदल, सरीसृपों का ताण्डव, जीवों का क्रमिक विकास, सभी दिख जाता। धरा के इन परिवर्तनों के कारण ही तेल के भण्डार जो कभी समुद्रों के भीतर बने थे आज समुद्रों से बहुत दूर चले गये हैं। मरु प्रदेशों के नीचे भी तेल मिलता है और फ्रांस की सरकार सहारा मरु में एक ऐसे ही तेल भण्डार की खोज में व्यस्त है।

तेल के बनने और एकत्र होने के लिये कुछ आवश्यक दशायें हैं :—

१ मातृ-द्रव्य का एकत्र होना—समुद्रों के तल-प्रदेश में विशाल मात्रा में जैव संकलन आवश्यक है साथ ही इसका चिरकाल तक संरक्षण भी।

२ चट्टानों की तन्तुमयता (capillarit y of rocks)—तेल के संरक्षण में चटटानों की तन्तुमयता विशेष रूप से भाग लेती है। यदि तेल से गीला शेल (शेल एक अवसादित चट्टान है) पानी और बालू-पत्थर पृष्ठ साथ साथ हों तो पानी के तनाव द्वारा सारा तेल शेल में से निकलकर बलुआ पत्थर के रन्ध्रों में भर जायगा इस से तेल के परिव्राजन में सहायता मिलती है।

३. द्रवों का उछाल (Buoyancy)—तेल पानी से हल्का होता है और इसका उछाल पानी से कम होता है। इसी कारण तेल पानी के ऊपर तैरने लगता है और तेल के कुओं में सदा पानी के ऊपर ही तेल पाया जाता है। अपने इसी गुण के कारण तेल मातृ-द्रव्य से निकलकर ऊपर की ओर उठता है और चट्टानों के भीतर रन्ध्रों में भरने लगता है।

४. गुरुत्वाकर्षण :—तेल पानी से हल्का होने के कारण, पानी पर तैर जाता है। यदि किसी चट्टान के रन्ध्रों में पानी और तेल दोनों भरे हों तो पानी नीचे होगा और तेल ऊपर।

५. धारायें:—पपड़ी के नीचे की धारायें पानी के साथ साथ तेल को भी ले जाती है और तेल से प्रव्रजन में सहायक होती हैं। तेल का एकत्रीकरण छिद्रमय और भेदनीय चट्टानों के भीतर हो जाता है।

६. तेल की टोपी :—तेल बनकर किसी रन्ध्रमय चट्टान के भीतर एकत्र भी हो जाय पर जब तक इस रंध्रमय चट्टान के ऊपर एक अरन्ध्रमय और अभेद्य चट्टान न हो, तेल भाग कर ऊपर की ओर चल देगा तथा कालान्तर में धरती की सतह पर आकर स्वंय नष्ट हो जायगा इसीलिये तेल वाली चट्टान के ऊपर एक अभेद्य स्तर का होना आवश्यक है। यह स्तर तेल को भागने और स्वतः नष्ट होने से बचा लेता है। इसे तेल की टोपी या कैप राक कहते हैं।

७. आइल ट्रेप—तेल के धारक स्तरों की विशिष्ट बनावटें होती हैं जिनको आइल ट्रेप (Oil traps) कहते हैं। मुड़ी हुई चट्टानों के शीर्षों में अधिकांश तेल रहता है। स्तरीभवन और चट्टानों की बनावट दोनों से ही ट्रेप्स बन सकते हैं।

पानी की तरह तेल भी चट्टानों के रन्ध्रों में भरा रहता है। चट्टानों की सन्धियों, सिकुड़न से बनी दरारों, और अन्य रिक्त स्थानों में भी तेल रहता है। ये रन्ध्र और रिक्त स्थान बहुत छोटे होते हैं।

यह विचार कि धरती के भीतर तेल के तालाब होते होंगे, भ्रामक है। तेल केवल चट्टानों के रन्ध्रों में ही भरा रहता है १० या १५ प्रतिशत रन्ध्रता वाली चट्टान में प्रति घन फुट एक गैलन तेल समा जाता है। पर यह सारा तेल निकाला नहीं जा सकता। एक तेल भण्डार से कुल कितना तेल निकल सकता है यह तेल के दाब, चट्टान की रन्ध्रता और तेल की तरलता पर अवलम्बित है। तेल की सबसे अच्छी धारक चट्टान मोटा बलुआ पत्थर है। मोटी बालू, चूना पत्थर, डोलोमाइट आदि भी तेल के धारक बन सकते हैं।

कुयें से निकाला गया तेल साधारण ताप पर गाढ़ा, गहरे हरे रंग का तरल पदार्थ होता है। यह तेल कार्बन और हाइड्रोजन के यौगिकों, कुछ ठोस कुछ तरल तथा कुछ वायव्य द्रव्यों का मिश्रण है। शोधन के बाद इससे अनेक शर्करायें, गैसोलीन, केरोसिन, स्निग्ध तेल, पैराफिन मोम निकलते हैं।

अलग-अलग कुओं से निकलने वाले तेलों की रचना कुछ भिन्न होती है। कुओं से पानी की तरह तरल और कुछ से बहुत ही गाढ़ा तेल निकलता है। गाढ़े तेल अपने बहुत से उड़न शील पदार्थ खो चुकने के कारण गाढ़े होते हैं। द्रव्यों की इस उड़नशीलता के कारण किन्हीं किन्हीं क्षेत्रों का सारा तेल उड़ चुका है और केवल तलछट या गाढा डामर बच रहा है। यह डामर सड़कों और मकान की छतों को बनाने के काम में आता है।

तेल की खोज

तेल की खोज करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है :

१. साधारण तेल आग्नेय चट्टानों में, परिवर्तित चट्टानों, बहुत पुरानी केम्बिय युग से पहले बनी चट्टानों में, सूखी धरती पर जमा हुए चट्टान समूहों में नहीं मिलता।

२. यह समुद्री अवसादों, मुड़े हुए स्तरों में, अनवसादित चट्टानों के जैव पदार्थों में मिल सकता है।

तेल क्षेत्रों को, खोज निकालने के लिये भूभौतिक और रासायनिक सिद्धान्तों को काम में लाया जाता है। गुरुतामापक भिन्नतामापक (Variome'cr), भूकम्प लेख।चित्र, विद्युतरोधमापक एवं चुम्बकत्व मापक आदि यंत्रों की सहायता से पृथ्वी की पपड़ी की आन्तरिक रचना और स्तरों के भौतिक तथा रासायनिक गुण जान लिये जाते है। इन यंत्रों से प्राप्त सूचना के अनुसार सम्भावित तेल क्षेत्रों में तेल के कुएँ खोदे जाते हैं। ये कुएँ ऊर्ध्व छिद्र के रूप में होते है जिनका व्यास गहराई के अनुपात में बढ़ता जाता है। २ इंच से १२ या १४इंच तक व्यास हो सकता है। वेधन यंत्रों के द्वारा पृथ्वी में हजारों फीट गहरे छेद किये जाते हैं। वेधन दो विधियों से होता है। पीडन विधि (Percussive) और चक्रित (Rotary Driling)—द्वितीय विधि से अब ९० प्रतिशत कुँएँ खुदते हैं। इन दोनों के मेल से अब एक तीसरी पीडन चक्रित (Percussive rotary) विधि बनी है। मशीनों की सहायता से छेद वाली छड़ों की जुड़ी हुई पंक्ति बर्मों की तरह घूमती है और इसके निचले छड़ के सिरे पर काटने का यंत्र या बिट लगा रहता है। यह बिट इस्पात का होता है और इस पर हीरे की कनियां जड़ी रहती हैं, जिनसे कठोर से कठोर चट्टान भी कट जाती हैं। छेद जब तेल तक पहुँच जाता है तो स्वयं दाब के कारण तेल ऊपर आने लगता है।

तेल की खोज का व्यय

तेल क्षेत्रों की खोज बहुत व्ययसाध्य है। एक गहरे कुये की खुदाई में ६० से ८० लाख रुपये तक लग जाते हैं। यह व्यय गहराई वेधन में पड़ने वाली मुसीबत और तेल तक पहुँच पर आश्रित है। एक तेल कीं छानबीन के लिए २० या २५ कुयें खोदने पड़ेंगे और अनुमानतः ६से १०करोड़ रुपये तक व्यय होंगे। मशीनों, उपकरणों और यन्त्रों का मूल्य और काम करने वालों का वेतन अलग रहा। एक फुट वेधन में ७० रुपये तक लगते हैं। एक २०, ००० फुट गहरे कुएँ में आगे की खुदाई का खर्च रुपये प्रति फुट तक भी लग सकता है।

पिछले ३० वर्षों में भारत की तेल कम्पनियों ने पुराने और नये तैल क्षेत्रों पर लगभग ५० लाख रुपया प्रतिवर्ष व्यय किया है।

संसार का सबसे गहरा तेल का कुआँ अमेरिका के टेक्सास प्रान्त में है। इसकी गहराई है ३५४०० फीट अथवा एवरेस्ट शिखर की ऊँचाई से केवल ४००० फीट कम है।

भारत के नहर कटिया क्षेत्र में पिछले दिनों (नवम्बर १६५६) में एक ६०५० फीट गहरा कुआं ८ दिन १८३ घन्टों में खोदा गया अर्थात एक दिन में १०३२ फीट।

विश्व के तैल-क्षेत्र

१. मेक्सिको की खाड़ी और कैरीबियन सागर के तट प्रदेश इस क्षेत्र में।मेक्सिको संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, मध्य अमेरिका, दक्षिण अमेरिका का उत्तरी पश्चिमी भाग और वेस्ट इंडीज आते हैं।

२. ऐशिया और आस्ट्रेलिया के बीच के द्वीप सुमात्रा, जावा, बोर्नियो आदि।

३. आर्कटिक सागर के निकटवर्ती देश अर्थात् कनाडा, अलास्का, साइबेरिया और रूस के तेल क्षेत्रों के बारे में अभी बहुत कम ज्ञात है।

४. मध्यपूर्व के तैल क्षेत्र और मध्यपूर्व रूस।

५. अन्य कम महत्व के तैल क्षेत्र हैं—भारत, आस्ट्रेलिया, हंगरी, जर्मनी, नेदरलैण्ड, पोलेण्ड, पेरू; अर्जेण्टाइना और लैटिन अमेरिका।

संसार के सबसे बड़े तैल क्षेत्र हैं।केरीबियनप्रदेश, स० रा० अमेरिका, अमेरिका के मध्य और पश्चिमी भाग, मध्यपूर्व रूस, मध्यपूर्व और ईस्ट इंडीज।

भारत के तैल क्षेत्र

१. असाम के नागा क्षेत्र--धरती की शक्तियों के विनाशकारी प्रभाव के कारण बहुत सा तेल नष्ट हो गया।

२. डिगबोई क्षेत्र—१८६७ में खोजा गया था। १६२० तक यहां ३०० बैरल या १२०००गैलन तेल प्रतिदिन निकला। १६३४ से ४५००बैरल या १५०,०००गैलन तेल प्रतिदिन निकाला जा रहा है।

३. नहर कटिया क्षेत्रः— १६५३ से इस क्षेत्र की जांच चल रही है। यह क्षेत्र २१ वर्ग मील का है। १५०७ मील की हवाई उड़ान में इस क्षेत्र के ४५०० माप गुरुतामापक यंत्र द्वारा १६५४ में लिये गये।

नहर कटिया और डिगबोई का कुल उत्पादन ७००० बैरल या २८०, ००० गैलन प्रतिदिन है। इसके उत्पादन में वृद्धि की आशा है

४. अन्यतेल क्षेत्र है कांगड़ा (पंजाब) कच्छ, लुनोज। कैम्बे (बम्बई) में तेल मिला है जिसकी पड़ताल जारी है।

तेल के उपयोग

आधुनिक सभ्यता, सौंदर्य और व्यवसाय को तेल की अत्यधिक आवश्यता है। प्रतिदिन के व्यवहार की वस्तुओं, जूते से लेकर टोपी तक की तथा कई और उपकरणों के उत्पादन में तेल या तज्जनित पदार्थों का हाथ रहता है।

एस्फाल्ट, वाटर प्रूफ रबर, प्लास्टिक, कार्बनपत्र, कोल्ड क्रीम, हाथों का लोशन, मलहम, लिपस्टिक ,, सुगन्धियाँ केश तेल ये सभी तेल की सहायता से बनते हैं।

अन्न, चमड़े और कपड़े के शोधन के लिए पेट्रोलियम से प्राप्त पदार्थ ही काम में लाये जाते हैं।

कपड़ा बुनने, सूत को चिकना करने, सूखी धुलाई वार्निश, छापे की स्याही, इन सबके लिये पेट्रोलियम से प्राप्त वस्तुएँ काम आती है।

स्निग्ध तैल के बिना आज की शतप्रतिशत मशीनें उप हो जायेंगी और इनमें ६० प्रतिशत से भी अधिक पेट्रोलियम से बनते हैं।

प्रकाश ईंधन और भ्रमण सभी की समस्या पेट्रोलियम और तज्जनित पदार्थों से हल होती है। पेट्रोलियम न हो तो आज की सभ्यता मृतप्राय हो जाय।

पाठकीय मंच

अंतरिक्ष-यान के प्रचालन के सिद्धान्त

दिनेश मोहन श्रीवास्तव

अंतरिक्ष सदैव से ही मनुष्य की जिज्ञासा का केन्द्र रहा है, और आज तो युगों की सञ्चित मानव अभिलाषा पूर्ण होने जा रही है। अब वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य अंतरिक्ष-अभियान की चेष्टा में सफल हो जाएगा। 'स्पुतनिक', 'एल्फा', 'पायनियर', 'जुपिटर', 'एक्सप्लोरर', इत्यादि इसी सफलता के द्योतक हैं। इन सफलताओं के सम्बन्ध में तो आप बहुत कुछ पढ़ और सुन चुके होंगे। आइए, हम लोग उन समस्याओं पर विचार करें जिनके कारण अंतरिक्ष-अभियान इतनी सफलताओं के पश्चात् भी भविष्य की आशा बना हुआ है।

चित्र—१

सर्वप्रथम एक ऐसे यंत्र की समस्या है जिसके द्वारा हम अंतरिक्ष-प्रयाण कर सकें। मानव इसके लिए सदैव से प्रयत्नशील रहा है और राइट बन्धुओं के गुब्बारे से लेकर आधुनिकतम वायुयान, इसी प्रयास के परिणाम हैं। पर ये यन्त्र हमारी समस्या के समाधान नहीं हैं। अंतरिक्ष-प्रयाण जिनकी सहायता से सम्भव है, वह यन्त्र है अंतरिक्ष-यान।

राकेट क्या है ?

आइए, आपको कुछ देर अमेरिका की एक प्रयोगशाला में ले चलें। यह मैक्सिको है। देखिए यहाँ राकेट बन रहा है। यह रहा वह पैड जिसके चारों ओर एक इस्पात का ढाँचा जड़ा हुआ है। बीच में एक बड़ा सा गड्ढा है। ढाँचे के ऊपर धातु का एक बेलन लगा हुआ है। इसका ऊपरी सिरा देखिए, एकदम शंक्वाकार है। मानो छूटने को तैयार खड़ा है। पर पूँछ तो नुकीली नहीं है, यह तो धातु की एक पेटी सी दिखाई पड़ रही है, जो चूलों पर सधी हुई है। इसे तो एक आदमी सरलता से उठा सकता है। परन्तु यह सरल सा उपाय साढ़े सात टन के बोझ की
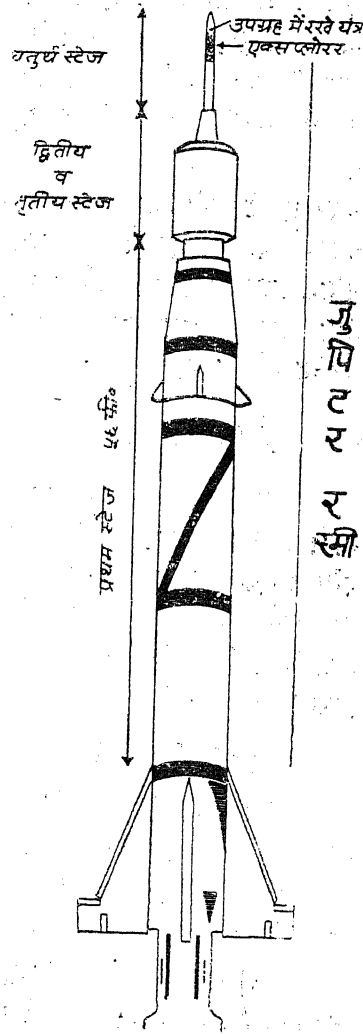
गति को एक मील प्रति सेकेंड से त्वरित कर देगा। यह पृथ्वी से १४४ मील की ऊँचाई पर पहुँच जाएगा।

पर यह क्या, इसमें गति प्रदान करने वाली वस्तु तो है ही नहीं ! न कोई पिस्टन, न घूमते हुए पर, न कोई जोड़, न कोई फ्लाइंगह्वील, न कोई क्रैंक शैंक, न कोई घिर्री, भला यह भी कोई इञ्जिन है। जी हाँ, यही राकेट इञ्जिन है। अजीब तो लगा आपको, क्योंकि अधिकतर इञ्जिन जैसे भाप-इञ्जिन, गैसोलिन इंजिन, टरबाइन आदि, तापशक्ति को यांत्रिक शक्ति में बदलते हैं और अधिकतर तापशक्ति रासायनिक यौगिकों से प्राप्त की जाती है। पर यहाँ गतिशील कुछ है ही नहीं, तो फिर यह सब कैसे होगा ? आखिर राकेट इंजिन चलेगा कैसे ? किन्तु ध्यान से देखिए, क्या राकेट इंजिन में वास्तव में कुछ भी नहीं है ? गैस अणुओं के बारे में आपका क्या विचार है ? क्या यह कुछ भी नहीं हैं ? जो चीज आपको इतनी छुद्र लगी, कि पहली बार आपको उसका ध्यान भी नहीं आया, वह कितनी अधिक शक्तिशाली हो सकती है क्या इसका अनुमान आप कर सकते हैं ? इतनी शक्ति इन अणुओं में छिपी हुई है कि आप पृथ्वी की मध्याकर्षण शक्ति पारकर दूसरे लोकों की ओर प्रयाण कर सकें। पर चलिए, यदि हम गैस अणुओं को विद्यमान मान भी लें तो भी इसमें और कुछ तो गतिशीलता देनी वाला है ही नहीं, आखिर केवल गैस अणु इसे किस प्रकार इतनी तीव्र गति प्रदान करते हैं। कैसे ? इस कैसे का उत्तर प्राप्त करने के लिए हमें 'राकेट-इंजिन' का सिद्धान्त समझना होगा।

राकेट इञ्जिन का सिद्धान्त—

जहाँ तक मूल सिद्धान्त का प्रश्न है, राकेट तथा अंतरिक्ष-यान (Space ship) दोनों का सिद्धान्त एक ही है। राकेट इंजिन गैस का उत्पादन करता है। जब राकेट के प्रक्षेपक एक साथ पास आते हैं तो वह जल जाते हैं और काफी संख्या में गैस अणुओं का निर्माण करते हैं। यह गैस के अणु राकेट इंजिन में दौड़ते रहते हैं और न्यूटन के गति के तृतीय सिद्धान्त के अनुसार प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं। परन्तु यह प्रतिक्रिया किसके विरुद्ध होती है ?

वायु के विरुद्ध ?

"जी नहीं," यह किसी के विरुद्ध नहीं होती। क्या कभी आपने बन्दूक चलायी है ? यदि हाँ तो आपने अनुभव किया होगा कि कि बन्दूक चलाने पर पीछे धक्का लगता है। वह गोली निकलने के कारण लगता है। राकेट भी ठीक इसी तरह चलता है। यहाँ गोलियाँ उच्च वेग से छूटने वाले गैस अणु हैं जो प्रक्षेपक के जलने से उत्पन्न होते हैं।

किन्तु यदि आपका विचार है कि हम इसको इसी प्रकार समझें कि कोई वस्तु किसी के विरुद्ध धक्का दे रही है तो आप मान सकते हैं कि राकेट इंजिन स्वयं उत्पादित गैस अणुओं के विरुद्ध धक्का देता है।

समझने और मानने की भ क्या बात। आइए प्रयोग ही करके क्यों न देख लें। दो गेंद लीजिए जिनके बीच में एक भारी स्प्रिङ्ग दबी हुई हो। इन दोनों गेंदों को एक चिकनी सतह पर रखकर छोड़ दीजिए वे एक दूसरे से दूर हट जाँयेगे। यदि दोनों गेंदों का भार समान है तो वे समान वेग से दूर हटेंगे और यदि एक अधिक भारी है तो हल्की गेंद अधिक वेग से दूर हटेगी।

अब मान लीजिए कि दो के स्थान पर तीन गेंदें हैं जिनके बीच में दो स्प्रिङ्ग लगी हुई हैं। अब दांयी ओर के गेंद को छोड़िए तो शेष दोनों गेंदें विरुद्ध दिशा में चलेंगीं और उनके बीच स्प्रिङ्ग दबी रहेगी।

अब एक बड़ी गेंद लीजिए जिसके साथ स्प्रिङ्ग द्वारा कई एक छोटी-छोटी गेंदें सम्बंधित कर दीजिए। अब यदि छोटी गेंदों को धीरे धीरे एक एक करके छोड़ा जाय तो बड़ी गेंद प्रत्येक बार पहले से अधिक वेग से विपरीत दिशा में बढ़ती रहेगी। इस प्रकार उसका वेग सदैव बढ़ता ही रहेगा।

चित्र—२
अंतरिक्ष-यान (Space-Ship).

यदि बड़ी गेंद को राकेट मान लें तो छोटी गेंद उससे निकलने वाले गैस अणु हैं। और स्प्रिंग ? रासायनिक प्रक्षेपक की शक्ति ही स्प्रिंग है। अतः वास्तव में राकेट अपने ही उत्स्रवन के विरुद्ध धक्का देता है। गेंद और स्प्रिंग सदैव उसी प्रकार क्रिया करेंगे, चाहे माध्यम कुछ भी हो। चाहे वह वायु हो, चाहे जल और चाहे शून्य परन्तु एक बात हमें नहीं भूलनी चाहिए कि यदि माध्यम शून्य नहीं है तो माध्यम के कारण एक विरुद्ध बल अवश्य लगने लगेगा और वह राकेट की शक्ति चुपके चुपके चुराता रहेगा। यहाँ तक कि राकेट की गति क्षीण होते होते एकदम नष्ट हो जाएगी। इसलिए राकेट शून्य में अधिक दक्षता पूर्वक कार्य कर सकता है, जहाँ कुछ भी माध्यम न हो।

अभी कुछ कठिनाई शेष रह गयी हो तो आइए एक और प्रयोग कर डालें। एक बंद बेलनाकार बर्तन ले लीजिए। और इसमें उच्च दाब पर गैस अणु भर दीजिए। मान लीजिए यह राकेट इंजिन में दबाव प्रक्षेपक के जलने से उत्पन्न होता है, इसलिए
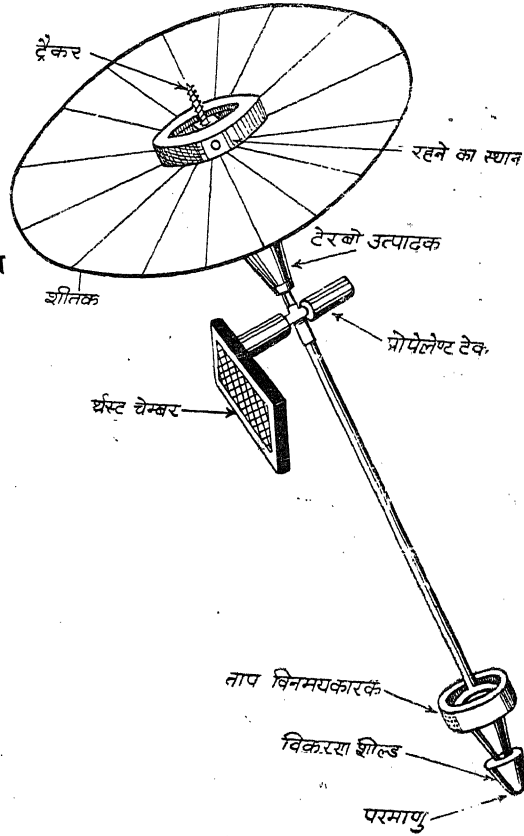
अणु," रिक्त स्थान में अधिक से अधिक भरना चाहते हैं। परन्तु कोई प्रतिक्रिया दृष्टि-गोचर नहीं होती। क्यों ?
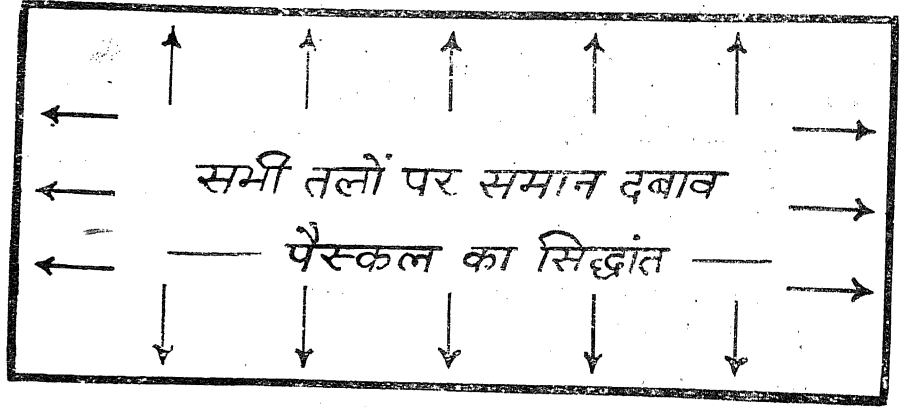
चित्र—३ (अ)

क्योंकि पैस्कल के सिद्धान्त के अनुसार सब ओर समान दबाव पड़ रहा है इस प्रकार साम्य स्थापित हो जाने के कारण कोई गति दृष्टिगोचर नहीं होती।

अब बर्तन के एक सिरे पर एक छेद कर दीजिए। यह आपने क्या किया ? आपने उसकी वह दीवाल तोड़ डाली जिसके विरुद्ध गैस के अणु दबाव डाल रहे थे परन्तु दूसरे
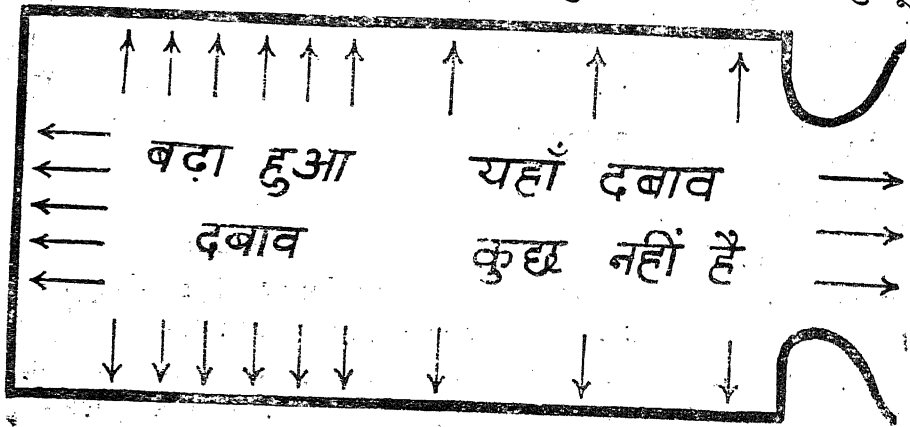
चित्र—३ (ब)

सिरे पर तो अब भी उतना ही दबाव पड़ रहा है। परिणाम क्या होगा ? इस असमानता की स्थिति में आगे लगने वाले बल के कारण बेलन गतिशील हो जाएगा।

इस उदाहरण में भी बेलन पर बाहर से कोई बल नहीं लग रहा है। यदि आप

(शेष पृष्ठ १८ पेज पर)

२. स्वर्णिम काँच

ईसा से ३०० वर्ष पूर्व परतदार सुनहरे कांच के निर्माण की विधि पूर्णतयः परिपक्व हो चुकी थी, किन्तु ईसवी सन् के प्रारंभिक चरण में किसी समय वह लुप्त हो गयी। १५०० वर्षों से लुप्त इस विधि को क्लीवलैण्ड (ओहायो) की कुमारी एडरिस एकहार्ट ने अब पुनः खोज निकाला है।

क्लीवलैण्ड के होवर्ड वाइज कला-कक्षा के अधिकारियों का कहना है कि एडरिस एकहार्ट को न केवल सुनहरे कांच के निर्माण के क्षेत्र में अद्भुत सफलता मिली है, अपितु इस प्रक्रिया से सम्बन्धित प्रयोगों द्वारा उन्होंने इस बात का भी फिर से पता लगा लिया है कि मध्यकालीन यूरोप के गिरजाघरों की चित्तीदार कांच की खिड़कियों के लाल और नीले रंगों की नकल किस प्रकार की जा सकती है। इस प्रकार की खिड़कियों के सबसे प्रसिद्ध उदाहरण चार्ट्रेस के गिरजाघर की खिड़कियां हैं।

इतने दीर्घकाल से लुप्त कला की खोज पुनः जिस प्रकार की गयी, उसकी कहानी लगभग ६ वर्ष पूर्व प्रारम्भ होती है। लगभग ६ वर्ष पूर्व कुमारी एकहार्ट न्यूयार्क नगर का मेट्रोपोलिटन संग्रहालय देखने आयीं। वहां जब वह प्रदर्शनार्थ रखे हुए एक प्राचीन सुनहरे काँच के टुकड़े के सामने आईं, तो अचानक उनका हृदय उसके सौन्दर्य को देख कर पुलकित हो उठा। पूछताछ करने पर उनको बताया गया कि यद्यपि शताब्दियों से इस प्रकार के काँच को पुनः निर्मित करने के अनेक प्रयास होते रहे, फिर भी उस के निर्माण की विधि का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। क्रेफ्ट होराइजन नामक पत्रिका में सिरेमिक्स के विख्यात शिल्पकार डीडो स्मिथ ने लिखा है कि इतने प्रयासों के बाद भी कहीं इस बात का वास्तविक वर्णन नहीं मिलता कि इस कांच का निर्माण किस प्रकार होता था।

कुमारी एकहार्ट निराश नहीं हुईं। उन्होंने इस दिशा में अपने कौशल की परीक्षा करने का निश्चय किया। उस समय तक वह सिरेमिक्स की शिल्प-कला में विख्यात हो चुकी थीं। उन्हें अपनी सिरेमिक्स की कला-कृतियों पर सोने और चांदी की एक सुन्दर पारदर्शी चमक ला देने में सफलता मिल चुकी थी।

क्लीवलैण्ड स्थित अपने घर के निचले तले में बने अपने कला-कक्ष में उन्होंने तत्सम्बन्धी प्रयोग प्रारम्भ किये। उन्होंने इस सम्बन्ध में उन्हीं पदार्थों का उपयोग किया जिनका ज्ञान केवल प्राचीन मिस्री कलाकारों को ही था। उन्होंने कुछ कांच-पुंजों को मिश्रत किया और अपने ढंग पर तैयार नमूनों को आग में तपाया। जब उन्होंने

भट्टी से अपने नमूनों को बाहर निकाला, तो देखा कि नवनिर्मित वस्तु एक लघु किन्तु सर्वथा पूर्ण सुनहरा कांच थी। किन्तु प्रयोग करते समय उन्होंने कहीं इस बात को लिपिबद्ध नहीं किया था कि विभिन्न पदार्थों को उन्होंने किस अनुपात में मिलाया था अथवा कितने ताप में उसने पकाया था। अतः उन्हें नये सिरे से पुनः अपना प्रयोग दुहराना पड़ा। उस समय वह क्लीवलैण्ड के कला-संस्थान और वेस्टर्न रिजर्व विश्व-विद्यालय में अध्यापन-कार्य भी करती थीं। इस कार्य को करने के बाद उन्हें अवकाश का जो भी समय प्राप्त हुआ, उसे उन्होंने अपने सुनहरे कांच सम्बन्धी प्रयोग में ही लगाया। लगभग १ वर्ष के अथक परिश्रम और हजारों प्रयोगों के बाद अन्त में उन्हें पुनः छोटे आकार में किन्तु परतदार सुनहरे कांच के निर्माण में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

किन्तु जहाँ प्राचीन काल में केवल दो परतों वाले सुनहरे कांच के निर्माण की विधि प्रचलित थी, वहां इस आधुनिक कलाकर्त्री ने बहुरंगी कांच की कागज जैसी पतली १७ परतों का नमूना तैयार किया है। इनकी अनेक परतों के बीच अत्यन्त पतली सोने की पत्तियाँ गलाकर एकरूप कर दी गयी हैं। उन्होंने काँच की प्रत्येक परत को न केवल अन्य परतों के साथ पकाकर मिश्रित कर दिया है, अपितु कुछ नई विधियों का समावेश करके कुछ और भी नये सुधार किये हैं। "इस विधि के आधार पर निर्मित कृतियों का सौन्दर्य अपूर्व है, उनमें रंग की एक अलौकिक आभा और गहराई की एक रहस्यपूर्ण भावना व्याप्त है।" यह विचार हावर्ड वाइज कल-कक्षा के समीक्षक ने कुमारी एकहार्ट की कला-कृतियों की एक प्रदर्शिनी के अवसर पर प्रकट किया है। किन्तु कुमारी एकहार्ट की रुचि का सबसे प्रमुख विषय शिल्प-कला है। अतः सुनहरे कांच के निर्माण सम्बन्धी प्रारंभिक प्रयोग के बीच उन्होंने स्वतः खड़े हो सकने वाल ढांचे के निर्माण की दिशा में भी प्रयोग करने प्रारम्भ कर दिये। किसी बड़े पैमाने पर सुनहरे काँच के निर्माण का प्रश्न ही नहीं था, क्योंकि कला या वित्त के दृष्टिकोण से उनके लिए ऐसा करना सम्भव नहीं था। अतः उन्होंने स्वयं अपने नमूने तैयार किए, जिनके अन्तर्गत काँच को बहुत अधिक विस्तृत या संकुचित करने का अवकाश है। एक कला विशेषज्ञ ने यह विश्वास व्यक्त किया है कि एडरिस एकहार्ट द्वारा निर्मित और सुनहरा काँच "इस समय इस क्षेत्र की सर्वश्रेष्ट कृतियों में से एक है।"

वह क्लीवलैंड कला-संस्थान की स्नातिका हैं। उन्हें दो गगेनहीम छात्रवृत्तियाँ मिल चुकी हैं। इन छात्रवृत्तियों की सहायता से उन्हें अमेरिका और यूरोप में कला सम्बन्धी उच्चतर स्तर की शिक्षा प्राप्त करने का सुन्दर अवसर प्राप्त हो गया।

१६५६ में अमेरिका में टेक्नॉलॉजी और विज्ञान की प्रगति

अमेरिका के टेक्नॉलॉजी-विशेषज्ञों और भौतिक वैज्ञानिकों ने १६५६ में मानवीय ज्ञान और कल्याण में विविध प्रकार के योग प्रदान किये। उनकी सफलताओं के अन्तर्गत मटर के आकार वाले रेडियो-सेट के निर्माण से लेकर, शुक्र ग्रह से राडार-सम्पर्क की स्थापना, पदार्थ के एक नये कण की खोज तथा दक्षिणी ध्रुव प्रदेश की एक अज्ञात पर्वत श्रृंखला के स्थान-निर्धारण तक की गतिविधियां सम्मिलित हैं।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के दो भौतिक वैज्ञानिकों, डा० इमिलियो सेग्री और ओवेन चैम्बरलेन, को एक अद्भुत प्रोटान-विरोधी कण की खोज के उपलक्ष में भौतिक शास्त्र का नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

टेक्नॉलॉजी के क्षेत्र में

❁ चीनी की घनाकार टिकिया जैसे नन्हें आकार का रेडियो-सेट निर्मित करने में सफलता प्राप्त की गयी। इतने नन्हें आकार के रेडियो का निर्माण, वस्तुतः सूक्ष्म-ग्रंथि (माइक्रोनोड्यूल) नामक तत्वों का उपयोग करने से सम्भव हुआ है। विन्दु या चित्ती के आकार वाले इन तत्वों द्वारा स्वर-प्रसारण सम्बन्धी वही कार्य सम्पन्न होते हैं, जो इलेक्ट्रॉन-नलिकाओं और ट्रांजिस्टरों द्वारा सम्पन्न होते हैं।

❁ पाइरोग्रैफाइट को पहली बार व्यावहारिक उपयोग में लाने के लिए एक औद्योगिक प्रक्रिया का विकास किया गया। पाइरोग्रैफाइट एक प्रकार का कार्बन है, जो पिछले ५० वर्षों से वैज्ञानिक प्रयोगशाला का कौतुक रहा है। इसकी विशेषता यह है कि यह ६,७०० अंश फारेनहाइट अथवा ३,६७८ अंश सेण्टीग्रेड तक ताप सहन कर सकता है; इस दृष्टि से यह किसी भी अन्य रासायनिक तत्व से श्रेष्ठतर होता है, क्योंकि इसकी ऊपरी सतह तक ही ताप-संचालन होता है। अब राकेटों, आणविक-प्रतिक्रियावाहकों और ऐसे औद्योगिक पदार्थों के निर्माण में इसका प्रयोग किया जा सकता है, जिन्हें अत्यधिक ताप वाली प्रक्रियाओं से काम पड़ता है।

❁प्रति सेकण्ड १० अरब स्पन्दनों वाले आवर्त्तन से युक्त स्वर-लहरियाँ उत्पन्न की गयीं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अभी तक जितनी भी स्वर-लहरियाँ उत्पन्न की जा सकी हैं, उनमें इन स्वर-लहरियों की ऊँचाई सबसे अधिक है; ये स्वर-लहरियां उस अधिकतम ऊँचाई वाली ध्वनि से भी लगभग ५ लाख गुना अधिक ऊँची हैं, जिन्हें मनुष्य के कान सुन सकने में समर्थ हैं।

❁एक ऐसा राडार विकसित किया गया, जो इतना सम्वेदनशील है कि १५ मील दूर अन्धेरे में चलते हुए पुरुष और स्त्री की पग-ध्वनियों का अन्तर बतला सकता है। राडार-चालक को इस प्रकार की गति की सूचना एक दृष्टव्य राडारस्कोप तथा एक लाउडस्पीकर से निकलने वाली विशेष प्रकार की ध्वनियों दोनों ही से प्राप्त हो जाती है।

❁दृढ़तम मोलिब्डेनम (लोहे जैसे धातु) की ढलाई की गयी। इसके पूर्व इस धातु को ढालने के जितने भी प्रयास किये गये,उनमें से प्रत्येक में मोलिब्डेनम के गलने से पूर्व ही वह बर्तन गल गया, जिसमें रख कर इसे गलाने का प्रयत्न किया गया था। इस धातु का द्रव-विन्दु ४,७४८ अंश फारेनहाइट है।

❁टेलिस्कोपों में एक ऐसे यन्त्र का सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया,जो विद्युदाणविक प्रक्रिया द्वारा प्रकाश की तीव्रता बढ़ा देता है। इसकी सहायता से एक छोटे टेलिस्कोप की प्रकाश-ग्रहण करने की क्षमता उसके दस गुने आकार के टेलिस्कोप की क्षमता के समान हो जाती है। मंगल ग्रह का चित्र खींचने के लिए साधारणतया जितने अनावरण की आवश्यकता होती है उसके दशांश से ही एक परीक्षण में इस प्रकार के टेलिस्कोप द्वारा इसका चित्र खींच लिया गया था।

वायुयान और उड्डयन

❁अमेरिकी वायुसेना के एक जेट विमान ने १,०३,३९६ फुट की ऊँचाई पर उड़ान करके विश्व में ऊँची उड़ान का एक नया रिकार्ड स्थापित किया। उसने गुब्बारे की उड़ान के लगभग २००० फुट ऊँचे वर्तमान चरम-विन्दु को भी पार कर लिया।

वायुसेना के एक अन्य जेट विमान ने एक बन्द वृत्ताकार पथ पर १,२१६ मील प्रति घन्टे की चाल से उड़ कर विश्व में विमान की गति का एक नया रिकार्ड स्थापित किया।

❁अन्तरिक्ष-अभियान संबन्धी जीवन-रक्षक उपकरण का परीक्षण करने के संबन्ध में एक उड़ाका ७६,४०० फुट की ऊँचाई पर एक गुब्बारे से कूद पड़ा। १२,००० फुट की ऊँचाई पर, जहां उसकी छतरी खुली, पहुँचने के पहले उसकी गति ४५० मील प्रति घंटे हो गयी थी।

खगोल विज्ञान सम्बन्धी सफलताएँ

❁गुब्बारे द्वारा दो उड़ाके १६ इंच व्यास का एक टेलिस्कोप ८१,००० फुट की ऊँचाई पर ले गये, जहां से उन्होंने उस जलयुक्त भाप के विशाल बादल का पहली बार

पर्यवेक्षण किया जो शुक्र ग्रह को चारों ओर से ढके हैं। इस खोज के फलस्वरूप, शुक्र ग्रह पर प्राणधारियों के अस्तित्व की सम्भावना के संबन्ध में अटकलबाजियां होने लगीं।

❁शुक्र ग्रह को ही एक राडार-रश्मि का भी लक्ष्य बनाया गया। यह पहला अवसर था, जब शुक्र ग्रह से टकरा कर यह रश्मि पुनः पृथ्वी पर लौट आयी। ५,६०,००,००० मील की यह वापसी यात्रा लगभग ५ मिनट में सम्पन्न हुई। यह परीक्षण १९५८ में किया गया, किन्तु इसकी घोषणा १९५९ में, इसके परिणामों की व्याख्या हो जाने के बाद की गयी।

❁८० गुब्बारों को एक साथ उडाने के फलस्वरूप ऐसी जानकारियां प्राप्त की गयीं, जिनसे यह सिद्ध हो गया कि रहस्यमय ब्रह्माण्ड-किरणों का उद्गम स्थान सूर्य नहीं, बल्कि विस्फोट करने वाले नक्षत्र और दूरस्थ अन्तरिक्ष की विशाल आकाशगंगाएँ हैं।

एक दूरस्थ आकाश-गंगा में विस्फोट करने वाले नक्षत्र की खोज की गयी। विस्फोट के कारण इस नक्षत्र की सामान्य चमक करोड़ों लाख गुनी बढ़ गयी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि आकाश-गंगाओं में, जिनके अन्तर्गत पृथक-पृथक १०,००,००,००,००० नक्षत्र हैं, प्रायः प्रत्येक ३०० से ५०० वर्ष के बाद इस प्रकार का ब्रह्माण्ड-विस्फोट होता है।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय ने १२० इंच व्यास का जो नया टेलिस्कोप लगवाया है, उससे पहली बार पर्यवेक्षण करने से यह रहस्योद्घाटन हुआ कि आकाश-गंगा का घना आन्तरिक भाग बाह्य भागों की अपेक्षा १०० गुनी तीव्रतर गति से चक्कर काटता है। यह पर्यवेक्षक एक नवीन विद्युदाणविक प्रकाश-विस्तार यन्त्र की सहायता से सम्भव हुआ।

एक क्षीणतर आभा वाले बादल से आवृत, विशाल प्रकाश-खण्डों की खोज की गयी, जिससे यह संकेत प्राप्त हुआ कि वहां या तो एक नवीन स्वर्गंगा का निर्माण हो रहा है,अथवा दो स्वर्गंगाओं की टकराहट के फलस्वरूप उनके कुछ अंश टूट कर बिखर गये हैं।

❁वैज्ञानिक अनुसन्धानों से यह पता चला कि सूर्य के चुम्बकीय क्षेत्र की स्थिति उल्टी हो गयी है; उसके उत्तरी चुम्बकीय सिरे का स्थान दक्षिणी चुम्बकीय सिरे ने और दक्षिणी चुम्बकीय सिरे का स्थान उत्तरी चुम्बकीय सिरे ने ले लिया है।

❁पृथ्वी से १२३ मील की ऊँचाई पर एक राकेट-कैमरा द्वारा अत्यधिक आवर्त्तनयुक्त अति-नील प्रकाश में सूर्य के समूचे अग्र भाग का पहली बार चित्र खींचा गया। इस प्रकाश को पृथ्वी का वायुमंडल आत्मसात् कर लेता है, जिससे यह कभी भी पृथ्वी के धरातल पर नहीं पहुँच पाता। इस चित्र में सूर्य बहुत ही तूफान की स्थिति में और इसका आकार दृश्य प्रकाश में देखे गये इसके आकार से दूना दिखलायी पड़ता है।

एक अन्य राकेट-कैमरा ३०० मील की ऊँचाई तक भेजा गया, जहां से उसने पहली बार एक ऐसा चित्र लिया, जिसमें सूर्य और पृथ्वी का आकार वर्तुल दिखलायी पड़ता है।

भौतिक विज्ञान की प्रगति

❁अमेरिकी वैज्ञानिकों ने एक शक्तिशाली अणु-विखंडक यन्त्र का उपयोग करके ११ शून्य (इलेविन-जीरो) नामक एक अद्भुत आणविक कण के गतिशील अस्तित्व की खोज की। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह साधारण पदार्थ का अन्तिम अज्ञात कण था, जो अणु के आन्तरिक मूलाधार में मौजूद है।

❁वैज्ञानिक अनुसन्धानों में एक इससे भी अधिक अद्भुत कण की खोज की गयी, जिसे प्रति-लैमडा (ऐण्टी लैमडा) कहते हैं। अब तक कितने ही और प्रति प्रकृति वाले कणों की खोज की जा चुकी है। इस नये कण की खोज से इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि साधारण सृष्टि के साथ-साथ ही एक विपरीत-सृष्टि का भी अस्तित्व है। जब किसी साधारण पदार्थ में विपरीत कण साधारण कणों को स्पर्श करते हैं, तो वे एक दूसरे को उन्मूलित कर देते हैं। उन्मूलन की इस प्रक्रिया में अत्यधिक शक्ति का सृजन होता है।

❁एक अपूर्व वैज्ञानिक प्रयोग के फलस्वरूप एक निकटवर्ती शून्याकाश में १० लाख मील प्रति घन्टे की गति से युक्त प्रत्याघाती लहर उत्पन्न हुई। यह पहली प्रत्याघाती लहर थी, जो स्वयं अणुओं की टकराहट से न होकर उनके अणुओं के चुम्बकीय क्षेत्रों की टकराहट के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई थी।

❁एक प्रयोगशाला में एक ऐसी विधि का पुनः प्रयोग किया गया, जिससे सूर्य रेडियो-लहरों को विस्तृत करता है। इस प्रयोग के अन्तर्गत रेडियो-लहरों को एक बारीक गैस के बीच से, जो सूर्य के प्रभा-मंडल की गैस जैसी ही थी, संचालित करके उनके आकार को १००० गुना बड़ा करने में सफलता प्राप्त की गयी।

❁एक नवीन अभ्र-कक्ष (क्लाउड-चैम्बर) प्रविधि को विकसित किया गया, जिसके द्वारा भौतिक वैज्ञानिक पहली बार अत्यधिक तीव्र शक्तियों से युक्त कणों के बीच भेद कर पाने में समर्थ हुए। इस विधि द्वारा आशा है कि पृथ्वी के वायुमंडल पर निरन्तर विस्फोट करने वाली ब्रह्माण्ड-किरणों के रहस्यपूर्ण मूल स्रोत के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त होगी।

ऋतु-विज्ञान सम्बन्धी खोज

❁आलोच्य वर्ष के प्रारम्भिक चरण में अमेरिका के प्रथम संयुक्त राकेट-कैमरा ने झंझावर्तों तथा जलवायु संबन्धी गतिविधियों से संयुक्त बादलों के निर्माण के चित्र खींचे थे। इस प्रसंग में अतलान्तक महासागर के ऊपर फैले ७५० मील के क्षेत्र के ५ चित्र खींचे गये थे।

❁यह खोज की गयी कि सिल्वर-आक्साइड के कणों से युक्त बादल उन बादलों की अपेक्षा ११ गुनी अधिक बिजली उत्पन्न करते हैं, जो इन कणों से विहीन होते हैं।

❁अमेरिका के एक्सप्लोरर-षष्टम नामक भू-उपग्रह में लगे एक टेलिविजन यन्त्र द्वारा १७,००० मील की ऊँचाई से लिए गये पृथ्वी के बादलों के चित्र प्रेषित किये गये।

भौमिक एवं महासागरीय विज्ञान

❁महासागरीय अनुसन्धानकर्त्ताओं ने उत्तरी ध्रुव सागर में डूबे हुए एक द्वीप पर पर्याप्त जीवधारियों के अस्तित्व की खोज की। इसके सम्बन्ध में पहले यह धारणा थी कि इस पर किसी भी जीवधारी का अस्तित्व नहीं। इस खोज में कितने ही अज्ञात प्राणधारी पाये गये, जिनमें आँसू की बूँद के आकार का एक २ इंच का जीव भी प्राप्त हुआ, जिसकी आँखें विशाल और नीले रंग की थीं।

❁दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश की एक लुप्तप्राय पर्वत-शृंखला का सर्वेक्षण किया गया। इस पर्वत-शृंखला की खोज पहली बार आज से लगभग ३० वर्ष पूर्व की गयी थी। सर्वेक्षण में इसके स्थान का ठीक-ठीक निर्धारण किया गया। इसकी सबसे ऊँची चोटी सागरतल से १४,००० फुट और सबसे निचली चोटी से लगभग दूनी ऊँची है।

रसायन विज्ञान के क्षेत्र में

❁६ वर्ष के अथक प्रयासों के फलस्वरूप एक प्रयोगशाला में मानव-निर्मित, प्रोटीन-जैसे, सबसे बड़े परमाणु को संश्लेषित किया गया। यह शरीर की भीतरी ग्रंथियों से निकलने वाला एक रासायनिक तत्व–हार्मोन था, जो मनुष्य और पशुओं के चर्म को सांवला कर देता है।

❁पहली बार कृत्रिम पेन्सिलिन का निर्माण किया गया। इसका उत्पादन अब व्यापारिक पैमाने पर होने लगा है। इसके निर्माताओं का कहना है कि यह प्राकृतिक पेन्सिलिन की अपेक्षा अधिक सुरक्षित एवं लाभप्रद है।

❁अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर टूटकर गिरने वाले उल्का-पिण्डों में जीवाणुओं के अस्तित्व का दृष्टान्त पहली बार प्राप्त हुआ। इस खोज से यह संकेत मिलता है कि सम्भवतः सृष्टि में अन्यत्र भी जीवित प्राणियों का विकास हो रहा है।

नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन

❁इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया कि जलवायु और ब्रह्माण्ड किरणों में घनिष्ट सम्बन्ध है। इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्रह्माण्ड-विकिरण के स्तर निरन्तर घटते और बढ़ते रहते हैं। जब ब्रह्माण्ड विकिरण के स्तरों में ह्रास होता है, तो ऊपरी वायुमंडल का विद्युतीकरण कम हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि निचले वायु मंडल में विद्युतीय क्षेत्र निर्मित हो जाते हैं, जो अधिक तूफानी बादलों को जन्म देते हैं।

❁प्रशान्त महासागर के तल के ऊपर और नीचे स्वच्छ श्वेत राख की परत की खोज के आधार पर यह सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ कि पिछले १,००,००० वर्षों के बीच पृथ्वी किसी पुच्छल तारे से टकरा गयी थी। किन्तु यह टकराहट विनाशक नहीं रही होगी, क्योंकि अनुमानतः पुच्छलतारों का पिण्ड कमजोर और कोमल होता है।

❁यह सिद्धान्त भी निर्धारित किया गया कि गहरे अन्तरिक्ष में मानव प्राणी एक क्षण मात्र में शीत से जम जायेगा, किन्तु उस क्षेत्र में पाये जाने वाले हाइड्रोजन अणुओं का ताप १०,००, ००,००० अंश है। यदि अणु एक-दूसरे के अति निकट हो जायें तो अन्तरिक्ष एक विशाल भट्टी बन जायेगी।

❁एक गणितीय अनुसन्धान से इस सिद्धान्त की पुष्टि हुई कि मानव प्राणी रंग के पूर्ण विस्तार को उसी दशा में देख सकता है, जबकि केवल एक ही रंग उसकी आँख तक पहुँचता हो। प्रयोगों से यह पहले ही देखा जा चुका है कि पीले रंग के दो शेडों में देखने पर संसार में उन सभी रंगों का अस्तित्व मिलता है, जो सामान्यतः दिखलायी पड़ते हैं। दो काले-श्वेत पारदर्शकों के मार्ग से एक पर्दे पर प्रोजेक्ट करने से एक पूरा रंगीन चित्र तैयार हो गया। इससे यह प्राचीन सिद्धान्त निराधार सिद्ध हो गया कि आँख से टकराने वाले लाल, हरे और नीले रंगों के अनुपात पर ही रंग निर्भर करते हैं।

स्पष्ट है कि अमेरिका ने विगत वर्ष में वैज्ञानिक क्षेत्र में जो बहुमुखी प्रगति दिखलाई वह अन्य राष्ट्रों के लिये अनुकरणीय और मानव मात्र के लिये हितकारी है।

———

(शेष १६ पेज का)

चाहें तो इस प्रकार समझ सकते हैं कि राकेट इञ्जिन आगे के इस बल के विरुद्ध धक्का देता है। उपर्युक्त गेंदों का उदाहरण भी इसी बात की पुष्टि करता है।

राकेट, तापशक्ति का इतना सरल और सीधा उपयोग करता है कि कभी कभी तो आश्चर्य होने लगता है कि इससे पहले कभी राकेट का प्रयोग क्यों नहीं किया गया। ऐसी बात नहीं कि राकेट का उपयोग अभी प्रारंभ हुआ है। यह बात दूसरी है कि पहले राकेट इस रूप में प्रचलित नहीं था, पर इसका आविष्कार बहुत पहले हो चुका था।

———

ऐतिहासिक लेख माला-पुष्प २

पूर्व बुद्धकालीन विश्व में व्यवहृत कुछ रासायनिक क्रियाएँ

डा० रमाशंकर राय

रसायन शास्त्र के इतिहास का शुभारम्भ वास्तव में उस समय होता है, जब मिश्र देश में स्वर्ण धातु को लाल रंग में रंगने के लिए उसे लौह की सूक्ष्म मात्रा के साथ गरम किया जाने लगा। इस प्रकार धातु के वर्ण परिवर्तन की कला विकसित होने लगी। कालान्तर में इन्हीं प्रयोगों ने अलकेमी (Alchemy) को जन्म दिया तथा यही प्रयोग सुव्यस्थित होकर रसायन की आधारशिला बने। रंग परिवर्तन की यह कला धातुओं तक ही सीमित न रही किन्तु मूल्यवान रत्नों तथा खनिज-पदार्थों के रंग भी परिवर्तित किए गए। खनिज पदार्थों तथा रत्नों का वर्ण परिवर्तन सर्वप्रथम मेसोपोटामिया में किया गया। निनेवे नामक स्थान पर काले रंग की सीपों का संग्रह उपलब्ध हुआ है। इतिहास-कार प्लिनी ने भी अपनी पुस्तक में विभिन्न रंगों में रंगे गए कृत्रिम रत्नों तथा पाषाणों का विवरण दिया है। मिश्र देश में बनाए गए अनेक भित्तिका चित्रों में जिलेटिन, सरेश, गोंद तथा अल्बूमिन का उपयोग किया गया था। इस कथन की प्रामाणिकता प्लिनी के लेखों से भी सिद्ध होती है।

मनुष्य ने प्रारम्भ में अकार्बनिक रंगों का उपयोग किया। किन्तु इस प्रकार के रंग वस्त्रों का सौन्दर्य न बढ़ा सके अतएव खनिज पदार्थों से बने रंगों को छोड़ कर उन्हें वानस्पतिक तथा जान्तव उद्गमों पर निर्भर होना पड़ा। आर्मीनिया प्रदेश में उगने वाले शाह बलूत के वृक्षों तथा अरारात की घाटी में उगने वाली कतिपय घासों के ऊपर जीवन यापन करने वाले कीट विशिष्ट के शरीर के कतिपय अवयवों से Chochineal नामक रंग बनाया जाता था। इस रंग में कार्मिनिक अम्ल पाया जाता है जो ऐन्थोक्यूनोन से बनाया जाता है। ११०० ई० पू० में टिगलत पिलेसर प्रथम (Tiglath-pilesar—I) के राज्य काल में शाहबलूत के वृक्ष असीरिया में लाए गए। सरगों द्वितीय ने ७१८ ई० में अराराव प्रदेश पर आक्रमण किया। आक्रमण के द्वारा प्राप्त वैभव तथा विलास की विपुल वस्तुओं में अरारात तथा कर्की के लाल रंग का भी उल्लेख है। यहूदियों की धार्मिक पुस्तकों तथा बाइबिल के पूर्वार्द्ध ग्रंथों में ऐसे विवरण मिलते हैं जिनसे यह पता चलता है कि धामिक अवसरों पर यहूदी लोग गहरे लाल रंग का उपयोग करते थे। बाइबिल के अनुसार इस लाल रंग का आयात पर्वतीय प्रदेशों से होता था। यह पर्वतीय प्रदेश वास्तव में आर्मीनिया का पठार है। मिश्र देश में लिचेन नामक पदार्थ से एक अन्य लाल रंग भी बनाया जाता था। इस रंग द्वारा लिनेन के वस्त्र तथा चमडे को रंगा जाता था। सीरिया, मिश्र तथा भारत में मंजिष्ठा की जड़ से रंग निकाला जाता था। सिन्ध घाटी की सभ्यता में

पाए गए (३५०० ई० पू०) रंगीन वस्त्रों के रंगने में मंजिष्ठामूल के रस का उपयोग किया गया था। मेंहदी के पत्तों द्वारा हाथ तथा शरीर के अन्य भाग रंगे जाते थे।

कुसुम, केशर तथा हल्दी को उबाल कर पीला रंग निकाला जाता था। मेसोपोटामिया की सभ्यता के प्रारम्भिक चरण में पाए गए पाषाण पात्रों में कुसुम रखा जाता था। मिश्र देश में लगभग २००० ई० पू० में निर्मित थीब्स (Thebes) के मकबरों में कुसुम के बीज पाए गये हैं। यह संग्रह इस बात का परिचायक है कि कुसुम का उपयोग रंग बनाने तथा लिनेन को रंगने में किया जाता था। इस प्रकार रंगे गए पीले वस्त्रों में शव लपेटे जाते थे। केशर का उपयोग क्रीट में विशेष रूप से होता था। कुछ ऐसे लेख भी पाए गए हैं जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि फिनीशिया निवासियों ने केशर द्वारा रंजित वस्तुओं को उपहार के रूप में असीरियन सम्राट् अशुर नसीर पाल को दिया था। प्राचीन मसोपोटामिया की उर कालीन सभ्यता के तृतीय चरण में अनार के छिलकों को कूटकर तथा पानी में उबालकर पीला रंग बनाने का प्रचलन था। १५०० ई० पू० के लगभग मिश्र में भी यह कार्य प्रारम्भ हो गया था। इस प्रकार के पीले रंग में रंगे गए कपड़े मिश्र के मकबरों में पाए गये हैं। अनार के छिलकों का उपयोग फिलिस्तीन में रंग तथा स्याही बनाने के लिए किया जाता था।

नील के पौधे से रंग निकाल कर वस्त्रों को रंगा जाता। एक रंगा वस्त्र पाँचवें राज्य वंश के समय का मिला है। अधिक समय तक जन साधारण इस प्रकार के वस्त्रों का उपयोग नहीं करता था। लगभग ३०० ई० पू० में नील के रंग में रंगे गए वस्त्रों का उपयोग जन साधारण में होने लगा। नील के पौधे मिश्र तथा सीरिया में लगाए जाते थे। Dioscotides तथा प्लिनी उसके वास्तविक उद्गम से अनभिज्ञ थे। उन्होंने लिखा है कि नील एक खनिज रंग है, जो भारतवर्ष से आता है। मिश्र तथा मेसोपोटामिया में ३०० ई० पू० के लगभग woab नामक वृक्ष से नीला रङ्ग निकाला जाता था। यह नीला रंग इंडिगोटिन से निकाला जाता है।

पूर्वी भूमध्य सागर के टायर तथा हैफा नामक नगरों के बीच में सामुद्रिक घोंघों से टिरियन परपुल नामक रंग निकाला जाता था। यह रंग रोम के सम्राटों का प्रश्रय प्राप्त कर चुका था। सीरिया के समुद्र तट पर स्थित रास शामरा नामक स्थान पर पाए गए एक लेख से पता चला है कि १५०० ई० पू० ऊन को रङ्गने के लिए इस रङ्ग का उपयोग किया जाता था। असीरिया के सम्राट अशुर नसीर पाल को उपहार रूप में इस रङ्ग में रंगे गए काले बैंगनी तथा लाल मखमली रङ्ग के ऊन के वस्त्र मिले थे। मिनोअन कालीन सभ्यता में सीपों तथा घोंघों का एक संग्रह मिला है जिससे पता चलता है कि यह रंग निकाला जाता था। हीरोडोटस ने क्रीट के व्यापारियों का उल्लेख किया है। यह लोग इस रंग का आयात-निर्यात किया करते थे। विशिष्ट प्रकार के घोंघों के शरीर के कतिपय अवयव निकाल लिए जाते थे और अधिकांश भाग फेंक दिया जाता था। निकाले गए अवयव को एक प्रतिशत नमक के घोल में तीन दिन उबाला जाता था। इस प्रकार बनाए गए रंगों के विक्रय तथा निर्माण का पूर्ण एकाधिपत्य टायर के निवासियों को प्राप्त था। यह लोग विभिन्न प्रकार के रंगों के मिश्रण के रहस्य तथा उसके परिक्षण से भी अवगत थे।

मिश्र में स्याही बनाने का माध्यम कज्जल था। शनैः शनैः ओक के फलों का रस प्रयुक्त होने लगा। ओक के फलों से काला रस निकाला जाता था। इस द्रव से श्वेत केश रंगने की प्रथा निकट पूर्व में पाई जाती थी।

नील घाटी की सभ्यता के प्रारम्भिक काल में बनाये गए चित्रों को देखने से ज्ञात होता है कि लाल, पीले तथा हरे रंग के धारीदार वस्त्र बनाए जाते थे। मिश्र में १५०० ई० पू० के लगभग से ही लाल, नीले, तथा हरी धारीवाले वस्त्रों का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था। इस देश में बने लिनेन के वस्त्र उच्च कोटि के समझे जाते थे। इस कला का ज्ञान २००० ई० पू० में प्राप्त हुआ किन्तु समान्य बाजार में वस्त्रों के रंगने का कार्य नहीं होता था। इस प्रकार के केन्द्र मिश्र के देवालयों में पाए जाते थे। कालांतर में देवालयों तथा मन्दिरों के इस उद्योग पर राज्य का एकाधिपत्य हो गया और राजकीय नियंत्रण में व्यक्तिगत रूप से भी लाइसेंस मिलने लगे। मिश्र में पाए गए लेखों में रंगने की अनेक विधियाँ दी गई हैं लेकिन खेद के साथ कहना पड़ता है कि इनका अधिकांश अंश अब उपलब्ध नहीं है। किन्तु कतिपय लेख इस बात की पुष्टि करते हैं कि इनके रंगने में कुसुम, केशर, तथा मंजिष्ठा से प्राप्त रंगों का उपयोग किया जाता था। रंग को स्थायी बनाने के लिए फिटकरी, लौह तथा ताँबे के लवण, अकार्बनिक तथा खनिज पदार्थों से रंजक का काम लिया जाता था। कतिपय अकार्बनिक पदार्थ अम्लीय गुणकारक होते थे। इस कारण रंग सरलता से घुल जाते थे। नील के पौधे को टुकड़ों में काटकर किण्व किया जाता था। इस क्रिया द्वारा इंडाकिल पदार्थ मिलता था। वायु के आक्सीजन के संसर्ग में आने पर यह नील में बदल जाता था। २००० ई० पू० में लिखे गए मिश्र के एक लेख से यह पता चला है कि नील के रंग में मूत्र मिलाकर ऊनी वस्त्र रंगे जाते थे फिर धोकर इसे मंजिष्ठा से रंगा जाता था। इस प्रकार उसका रंग बैंगनी हो जाता था। इसके अतिरिक्त रंगने की अन्य विधियाँ भी प्रचलित थीं। नील से रंगे गए वस्त्रों पर राख छिड़की जाती थी। भलीभाँति धोने के उपरान्त इसे मिट्टी तथा फिटकरी के घोल में रखा जाता था। फिर इसे कुछ बीजों के चूर्ण तथा मंजिष्ठा के घोल में रंगा जाता था। लाल रंग लाने के लिए फिटकरी तथा मंजिष्ठा का घोल तथा काला रंग लाने के लिए लोहे अथवा ताँबे के लवण डाले जाते थे।

पेट्रोल के सदृश तरल तथा सरलता से जलने वाले पदार्थों का ज्ञान मिश्र, सीरिया फिलिस्तीन, तथा मेसोपोटामिया के निवासियों को था। यह पदार्थ भूमि के धरातल पर पाए जाते थे। सम्राट तुकूलती निनूरता के ८८६ ई० पू० के लेख में इस बात का उल्लेख मिलता है कि उसने फरात के तट पर स्थित हिट नगर के किनारे विश्राम किया। इस स्थान पर पाताल लोक से देववाणियाँ चट्टानों को तोड़ कर निकल रही थीं। वास्तव में भूतल पर भूगर्भ में छिपी गैसें निकल रही थीं। इन प्राकृतिक गैसों के उत्सर्जन से इन चट्टानों में से विचित्र प्रकार की ध्वनियाँ होती थीं। इतिहासवेत्ता प्लिनी खनिज तैल को नेपथा के नाम से जानते थे। वह इसके शीघ्र भस्म होने वाले गुणों से भी परिचित थे। उन्हें यह भी ज्ञात था कि इसका प्रयोग जलाने तथा प्रकाश प्राप्त करने में भी हो सकता था। नेप्तू शब्द बेबीलन भाषा का है जो २००० ई० पू० में प्रचलित था। इस शब्द से अभिप्राय

शीघ्र लौ पकड़ लेने वाले पदार्थ से होता था। आगे चल कर नेप्त शब्द यूनानी भाषा में नेफ्था हो गया। इस प्रकार भूमि से निकलने वाले तथा निम्न ताप पर जलने वाले तेल का ज्ञान आज से चार सहस्राब्द पूर्व हो चुका था। खनिज तेल की भाँति ही मेसोपोटामिया में बिटुमेन नामक पदार्थ विशेष रूप से प्रचलित था। इसके गुण सुमेर सभ्यता काल में ज्ञात हो चुके थे। भूमि पर पाए जाने वाले गन्धक की ही भाँति इसे भी शुद्ध किया जाता था। रन्ध्रमय पेंदे वाले पात्रों में रखकर इसे गरम किया जाता था। द्रवित होकर इन छिद्रों से शुद्ध पदार्थ उपलब्ध होता था।

अति प्राचीन काल से ही साधारण नमक का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था। उपादेयता के कारण इसके निर्यात के मार्ग भूमध्यसागरीय देशों तथा एशिया के विशाल भूखण्ड में दूर-दूर तक विख्यात थे। इन मार्गों का पता इसके किनारे पाए जाने वाले साधारण नमक के ढेलों से लगता है। यूरोप में उत्तरीय सागर तथा अन्ध महासागर के तट पर समुद्र के जल से प्राप्य तथा चट्टानों से उत्खनित नमक का निर्माण तथा निर्यात होता था। नमक निकालने के लिए खारे पानी के स्रोतों का जल तथा समुद्र के जल को वाष्पीकृत किया जाता था। स्ट्राबो का लेख इस बात की पुष्टि करता है कि ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व सियरा नेवादा (स्पेन) की चट्टानों से नमक निकाला जाता था। इस नमक को औषधियों में डाला जाता था। यह नमक स्पेन से यूनान तथा अन्य भूमध्य सागरीय देशों को भेजा जाता था। लिबिया के रेगिस्तान तथा पालमिरा के नखलिस्तान में भी नमक बनता था। मिश्र में झीलों के पानी तथा समुद्र के जल को सुखाकर नमक निकाला जाता था। टालमी-कालीन मिश्र में पेल्यूसियम नामक स्थान नमक के लिए ही विख्यात था। हीरोडोटस ने लिखा है कि मिश्र में राजसत्ता द्वारा नियन्त्रित नमक का व्यापार होता था। प्लिनी ने भी इस कथन की पुष्टि की है। खाद्य सामग्रियों में डालने तथा मत्स्य-संरक्षण में नमक का उपयोग होता था। स्वर्ण धातु को शुद्ध करने, पात्रों पर चमकदार आवरण लाने तथा औषधियों में मिलाने के लिए नमक प्रयुक्त होता था। प्रकाश को पीला बनाने के लिए, दीपकों में जलने वाले तेलों में भी नमक मिलाया जाता था। मिश्र में २२०० ई० पू० के नमक के अत्यन्त शुद्ध ढेले पाए गए। असीरिया निवासी देवताओं की पूजा करने के निमित्त नमक का उपयोग करते थे। नमक द्वारा मछलियाँ सुरक्षित करने का प्रारम्भ २३०० ई० पू० में हो गया था। इसे 'रक्त प्रस्तर' की भी संज्ञा दी जाती थी। बाइबिल में अनेक स्थानों पर नमक का उल्लेख इस बात का सूचक है कि यहूदियों के धार्मिक कृत्यों में नमक का महत्व था।

साधारण नमक की ही भाँति प्राकृतिक रूप में सोडियम कार्बोनेट भी मिलता था। मिश्र में भूमि पर सोडियम कार्बोनेट तथा सोडियम बाई-कार्बोनेट का मिश्रण पाया जाता था। उक्त मिश्रण में साधारण नमक तथा सोडियम सलफेट भी मिला होता था। प्लिनी तथा स्ट्राबो की सूचना के आधार पर इसके तीन केन्द्र निश्चित किए जा सकते हैं। नाइट्रोन की उत्पत्ति के कारण पश्चिमी मिश्र के रेगिस्तान की घाटी का नाम 'वादी नतरून' पड़ गया था। उत्पत्ति का द्वितीय केन्द्र नील नदी के डेल्टा में नौक्रातीस का बन्दरगाह था। तृतीय उत्पादन केन्द्र ऊपरी मिश्र के अलकाब स्थान पर स्थित था।

टालमी के समय में इसका व्यापार भी राज्य-नियन्त्रित होता था। मिश्री भाषा में नतर शब्द से ईश्वर का बोध होता था। नाइट्रोजन तथा नाइट्रान शब्द का मूल यही नतर शब्द है। काँच बनाने, धार्मिक कृत्यों, चमकदार आवरण लाने तथा रंगों में डालने के काम आता था। इसके अतिरिक्त औषधियों में मिलाने, तरकारियों को स्वादिष्ट करने, लिनेन को साफ करने तथा मिट्टी के साथ मिलाकर साबुन के रूप में यह प्रयुक्त होता था।

अलकली अरबी भाषा का शब्द है, इसका तात्पर्य राख से होता है। वृक्षों को काटकर उनकी राख तयार की जाती थी। इसका उपयोग क्षार की भाँति होता था। मेसोपोटामिया निवासी वृक्षों की राख को कलती कहते थे। मिश्र में उपलब्ध कतिपय औषधि सम्बन्धी लेखों से ज्ञात हुआ है कि क्षारीय पदार्थ को तेल में मिलाकर क्वाथ किया जाता था। किन्तु किसी भी प्रकार के साबुन का उल्लेख कहीं पर भी नहीं पाया जाता। हिटाइट लोग हाथ धोने के लिए वृक्षों की राख को पानी में घोलते थे। साबुन का प्राचीनतम उपयोग सुमेर कालीन मेसोपोटामिया में होता था। इस देश में तेल तथा क्षार को उबाल कर साबुन बनाया जाता था। तेलों में रेंड़ी का तेल तथा नारियल का तेल और क्षारों में पोटाश, सोडा, रेजिन तथा नमक मिलाकर गरम किया जाता था। वस्त्रों को धोने के लिए, सोडा वृक्षों का क्षार तथा फिटकरी व्यवहृत होती थी। अजर्बेजान तथा ईरान में पोटैशियम नाइट्रेट मिलता था। यही कारण है कि मेसोपोटामिया के निवासियों को अति प्राचीन काल से इसका पता लग चुका था। रवे बनाकर नमक तथा शोरे के मिश्रण से प्रत्येक को पृथक किया जाता था। वर्ण के अनुसार अक्काद निवासी इसे श्वेत, श्याम तथा अन्य कई भागों में विभाजित करते थे।

वर्तमान काल में किए अन्वेषणों से यह पता चला है कि फिटकरी का निर्माण प्लिनी के समय से कई सौ वर्ष पूर्व में भी होता था। प्लिनी ने लिखा है कि मिश्र में उत्तम कोटि की फिटकरी बनती थी। रोमन तथा यूनानी सभ्यता के समय में भी फिटकरी का निर्माण मिश्र में होता था। हैरोडोटस ने लिखा है कि मिश्र के सम्राट एमौसिस द्वितीय ने ५८४ ई० पू० में डेल्फी के देवालय को नष्ट किया तथा वहाँ के निवासियों को सत्तरह टन फिटकरी वितरित किया। असीसियन सभ्यता के अन्तिम कालीन लेखों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि मिश्र से फिटकरी का निर्यात होता था। औषधियों में डालने तथा रंगों को पक्का करने में फिटकरी का उपयोग किया जाता था।

आँख के ऊपर लगाने तथा आँख की बीमारियों में गैलीना (PbS) का उपयोग किया जाता था। सौन्दर्य प्रसाधन के लिए मिश्र में आँख की ऊपरी पलकों को काले रंग (galena) द्वारा तथा निम्न भाग को हरे रंग से रँगा जाता था। चार सहस्र ई० पू० में यह दोनों पदार्थ उपयोगी सिद्ध हुए। मेसोपोटामिया में अंजन को गुहल कहते थे।

ओष्ठों तथा कपोलों पर लाल गैरिक मलने की प्रथा मिश्र देश में प्रचलित थी। सुमेर कालीन सभ्यता में पीत गैरिक को पूर्ण कपोलों पर पाउडर के स्थान पर मला जाता था।

———

: सूचना :

हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी के अध्यक्ष, लब्धप्रतिष्ठ वैद्य श्री हरिशरणानन्द जी का विज्ञान परिषद् पर पुराना अनुग्रह है। उन्हें विज्ञान, वैज्ञानिक साहित्य तथा वैज्ञानिक पद्धति में अतीव निष्ठा है। आपने विज्ञान परिषद् को इस कार्य के निमित्त एक निधि दी है, जिससे हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन करने वालों को गौरवान्वित किया जा सकेगा। विज्ञान परिषद्, प्रयाग श्री हरिशरणानन्द जी के नाम के साथ सम्बद्ध तीन पुरस्कारों की स्थापना करने में अपना गौरव अनुभव करता है, क्योंकि इन पुरस्कारों से वह हिन्दी वैज्ञानिक-साहित्य के उच्चतम साहित्यकों को सम्मानित कर सकेगा।

नियमावली

१— पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी के अध्यक्ष श्री हरिशरणानन्द जी की निधि से संचालित एवं विज्ञान परिषद्, प्रयाग द्वारा प्रदत्त इन पुरस्कारों के नाम निम्न होंगे :—

(क) हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार :

यह पुरस्कार दो सहस्र रुपये का होगा। यह पुरस्कार उच्च स्तर की सर्वश्रेष्ट वैज्ञानिक रचना पर प्रदान किया जायेगा।

(ख) हरिशरणानन्द जनोपयोगी विज्ञान पुरस्कार :

यह पुरस्कार एक सहस्र रुपये का होगा और सामान्यत:जनोपयोगी वैज्ञानिक साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना पर दिया जावेगा।

(ग) हरिशरणानन्द बालोपयोगी विज्ञान पुरस्कार :

यह पुरस्कार पाँच सौ रुपये का होगा और सामान्यत: बालोपयोगी वैज्ञानिक साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना पर दिया जायेगा।

२—इस पुरस्कारों का संचालन विज्ञान परिषद्, प्रयाग द्वारा होगा, जो प्रतिवर्ष इस कार्य की सुविधा के निमित्त पाँच सदस्यों की एक "हरिशरणानन्द पुरस्कार समिति" बनाया करेगा। समिति के सदस्य निम्न होंगे :—

(ख) श्री हरिशरणानन्द जी, आजीवन सदस्य

(ख) विज्ञान परिषद्, प्रयाग के सभापति अथवा कार्यवाहक सभापति पदेन

(ग) परिषद् के मंत्रियों में से कोई एक

(घ) दो अन्य सदस्य, जिनकी संस्तुति विज्ञान परिषद, प्रयाग की कार्यकारिणी समिति किया करेगी।

श्री हरिशरणानन्द जी के जीवन के अन्तर, यदि उनका आदेश होगा, उनके उत्तराधिकारी को भी उनके स्थान पर सदस्य बनाया जा सकेगा पर इस सम्बन्ध में उसकी

सदस्यता एवं सदस्यता-काल के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय विज्ञान परिषद् की कार्यकारिणी समिति का ही मान्य होगा।

३—प्रतिवर्ष अक्तूबर मास के निकट परिषद् की ओर से पुरस्कार-निमित्त पुस्तकें आमंत्रित की जावेंगी, और इस सम्बन्ध में समयानुसार विज्ञप्तियां समाचार पत्रों में प्रकाशित होंगी। इन विज्ञप्तियों में पुस्तक भेजने की अन्तिम तिथि की घोषणा होगी।

४—ये पुरस्कार "विज्ञान" सम्बन्धी विषयों की किसी भी रचना पर दिये जा सकेंगे। अनुवाद-ग्रन्थों और एक से अधिक व्यक्तियों के सहयोग से लिखे गये ग्रन्थों पर विचार नहीं किया जा सकेगा।

५—यदि किसी वर्ष कोई ऐसी पुस्तक न आई जिसमें समिति जनोपयोगी या बालोपयोगी पुरस्कार देने की संस्तुति कर सके तो ऐसी स्थिति में ये पुरस्कार उच्चस्तर के वैज्ञानिक साहित्य के ग्रन्थों पर क्रमशः द्वितीय अथवा तृतीय पुरस्कारों के रूप में दिये जा सकेंगे।

इसी प्रकार यदि किसी वर्ष समिति किसी पुस्तक को बालोपयोगी वर्ग में पुरस्कार के योग्य न समझे तो वह यह संस्तुति कर सकती है कि यह जनोपयोगी साहित्य के लिये द्वितीय पुरस्कार के रूप में दे दिया जाय।

ऐसी स्थिति में पुरस्कारों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकेगा :—

	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
उच्चतर साहित्य	२०००)	१०००)	५००)
जनोपयोगी साहित्य	१०००)	५००)	
बालोपयोगी साहित्य	५००)		

६—पुरस्कारों के निमित "पुरस्कार समिति' को यह अधिकार होगा कि आमंत्रित पुस्तकों के अतिरिक्त अपनी ओर से भी पुस्तकें विचारार्थ रखे।

७—लेखकों अथवा प्रकाशकों के लिए यह आवश्यक होगा कि विचारार्थ पुस्तक की आठ प्रतियां घोषित तिथि के भीतर परिषद् के पास भेजें।

८—पुरस्कार का निर्णय निम्न प्रकार होगा :—

(क) पुरस्कार समिति पुस्तकों को तीन विशेषज्ञ-निर्णायकों के पास भेजेगी। निर्णायकों की नामावली समिति गोपनीय रक्खेगी। निर्णायक पुस्तकों की उपयोगिता, मौलिकता, भाषा आदिके सम्बन्ध में अपनी लिखित सम्मति देंगे, जिनके आधार पर पुरस्कार-समिति पुरस्कारों का निर्णय करेगी। निर्णायकों को निर्देश करना आवश्यक होगा कि उनके विचारानुसार कौन सी रचना प्रथम, द्वितीय अथवा तृतीय है।

(ख) पुरस्कार समिति इस बात पर बाध्य न होगी, कि प्रतिवर्ष पुरस्कार दिये ही जांय। योग्य पुस्तकों के न आने पर किसी भी वर्ष के पुरस्कार स्थगित किये जा सकते हैं। स्थगित पुरस्कारों का रुपया पुरस्कार की स्थायी निधि में जमा कर दिया जायगा, जिसके उपयोग के सम्बन्ध में पुस्कार समिति आवश्यक निर्णय करेगी।

(ग) पुरस्कार-निर्णय के सम्बन्ध में पुरस्कार समिति का निर्णय अन्तिम और मान्य होगा।

(घ) कोई भी व्यक्ति एक से अधिक बार एक वर्ग के जिस विषय पर पुरस्कृत हो चुका होगा, उसी विषय के उसके लिखे ग्रंथ पर पुरस्कार प्राप्त न कर सकेगा। और न एक बार पुरस्कृत पुस्तक दुबारा किसी अन्य वर्ग के लिये विचारार्थ स्वीकृत की जायगी।

(घ) यदि किसी पुस्तक पर पुरस्कार न मिल सका हो, तो वह अधिक से अधिक तीन बार तक विचारार्थ प्रस्तुत की जा सकती है।

(च) पुरस्कार समिति विज्ञप्तियों द्वारा इस बात की घोषणा करेगी, कि अमुक वर्ष विज्ञान सम्बन्धी किस विषय की पुस्तकें आमंत्रित की जायेंगी और किस अवधि के भीतर प्रकाशित पुस्तकों पर विचार होगा। इस सम्बन्ध में पुरस्कार समिति समय समय पर अपनी सुविधा के लिए नियम बना सकती है। इन नियमों की पुष्टि विज्ञान परिषद् की कार्यसमिति से करा लेना अवश्यक होगा। कार्य समिति द्वारा व्यक्त मतवैभिन्य पर पुरस्कार समिति फिर विचार करेगी पर पुरस्कार समिति का निर्णय अन्तिम और मान्य समझा जावेगा।

(छ) पुरस्कार समिति के सदस्यों और निर्णायकों जी रचना पर पुरस्कारार्थ विचार न हो सकेगा। यदि उनकी रचना विचारार्थ आयी हो, तो उन्हें समिति से और निर्णायकों की सूची से उस वर्ष अलग रहना होगा।

९— (क) दो सहस्र रुपये के पुरस्कृत व्यक्ति को "हरिशरणानन्द विज्ञान परिषद् स्वर्ण पदक," एक सहस्र रुपये के पुरस्कार के साथ "हरिशरणानन्द विज्ञान परिषद् रजत पदक" और पांच सौ रुपये के पुरस्कार के साथ "हरिशरणानन्द विज्ञान परिषद् कांस्य पदक" भेंट किये जायेंगे।

(ख) पुरस्कारों और पदकों का वितरण साधारणतः विज्ञान परिषद्, प्रयाग के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर विशेष समारोह के साथ हुआ करेगा। यदि किसी कारण से वार्षिक अधिवेशन के साथ प्रबन्ध की सुविधा न हुई, तो परिषद् की कार्य समिति अन्य प्रबन्ध भी कर सकती है। उसे यह अधिकार होगा कि यह समारोह प्रयाग में करे अथवा अन्यत्र।

१०—पुरस्कार सम्बन्धी इन नियमों में आवश्यक परिवर्तन पुरस्कार समिति की संस्तुति पर यथा-समय कार्य समिति कर सकती है। नियमों में समय समय पर जो भी परिवर्तन होंगे, उनकी सूचना श्री हरिशरणानन्द जी को भी अनिवार्यतः दी जावेगी और सुझावों पर कार्य समिति आवश्यक विचार करेगी।

पृथ्वी साढ़े चार अरब वर्ष पुरानी—सोवियत वैज्ञानिकों की खोज

लेनिनग्राद के वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी साढ़े चार अरब वर्ष पुरानी है। इन वैज्ञानिकों ने बाल्टिक शील्ड (कोला प्रायद्वीप, करेलिया, फिनलैण्ड, स्वीडन और नार्वे) का निर्माण करने वाली चट्टानों के भूतत्वीय इतिहास का पूर्णरूप से तिथि-अंकन करने के लिए एक पैमाना बनाया है। सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी की प्राक्-केम्ब्रियन प्रयोगशाला में विभिन्न चट्टानों की उम्र के सम्बन्ध में ५५० नाप किये गये। यह समस्त कार्य अकादमिशियन अलेकजाण्डर पोल्कानोव के नेतृत्व में आर्गोन पद्धति के अनुसार किया गया। इस पद्धति के अनुसार चट्टानों में कुल अभ्रक निकाला जाता है और उसे गलाकर आर्गोन अलग कर दिया जाता है। इसके साथ ही रासायनिक पद्धति द्वारा अभ्रक में पोटैशियम तत्व निर्धारित किया जाता है। पोटैशियम और आर्गोन के अनुपात के आधार पर चट्टान की आयु पूर्णतया निर्धारित करना सम्भव है।

यह स्थापित किया गया है कि प्राक्-केम्ब्रियन खनिज भण्डार की आयु (पृथ्वी की परत के भूतत्वीय इतिहास में सबसे पुराना) उपग्रह के रूप में पृथ्वी के निर्माण के समय तक पचास करोड़ वर्ष थी।

बाल्टिक शील्ड के प्राक्-केम्ब्रियन गठनों के परतों के रूप में वर्गीकरण की नई पद्धति जिसे अकादमिशियन पोल्कानोव और प्रो० एरिक गेलिर्ग ने प्रस्तावित किया है, तथा इस प्रकार उपलब्ध तथ्य पृथ्वी की परत के प्राचीनतम भूतत्वीय इतिहास पर नया प्रकाश डालते हैं। अब सोवियत वैज्ञानिक इस स्थापना को महत्व नहीं देते कि चट्टान के निर्माण में प्राक्-केम्ब्रियन व्यवधान दीर्घकालीन था।

लेनिनग्राद के वैज्ञानिकों का कार्य प्राक्-केम्ब्रियन परतों के भीतर लोहा, ताँबा, निकेल, अभ्रक तथा अन्य खनिज भण्डारों का पता लगाने के लिए नये अवसर उन्मुक्त करता है। और भी स्पष्ट रूप में यह कह सकते हैं कि उन्होंने निम्न आर्कीयन खनिज भण्डारों की आयु निश्चित की है। इस प्रकार यह स्थापित किया जा चुका है कि कोला प्रायद्वीप में आलनेगोर्स्क के लौह खनिज की आयु तथा सोवियत संघ के यूरोपीय भाग में कुर्स्क चुम्बकीय क्षेत्र की आयु २३००,०००,००० वर्ष है।

मंगल ग्रह की नहरें

मंगल ग्रह की रहस्यमयी नहरें उसकी अधिकांश सतह पर छाई बर्फ में गहरी दरारों के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। स्टेर्नबर्ग ज्योतिर्विज्ञान संस्थान के विज्ञान-सचिव वी० दावीदोव इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। वी० दावीदोव कौमसोमेल्सकाया प्रावदा में लिखते हैं कि उनकी गणना के अनुसार मंगल ग्रह में उनमुक्त अवस्था में जल का परिमाण पृथ्वी के बराबर या उससे भी कुछ अधिक है। चूँकि मंगल ग्रह सूर्य की अपेक्षा पृथ्वी से अधिक दूर है इसलिए ग्रह के ग्रीष्म कटिबन्धीय क्षेत्रों में सतह का औसत वार्षिक ताप शून्य से दश-बीस सेंटीग्रेड नीचे है। सोवियत वैज्ञानिक लिखता है कि मंगल ग्रह की सतह के भीतर उसी तरह ऊष्मा पैदा होता है जिस तरह पृथ्वी की सतह के अन्दर होता है। फलतः सतह के लगभग आध किलोमीटर नीचे इतना ताप है जो बर्फ को पिघला देता है। सतह के भीतर हर किलोमीटर पर लगभग ३० अंश ताप बढ़ जाता है। भूकम्पों के कारण बर्फ की सतह टूट जाती है और दरारें पड़ जाती हैं। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि दरार वाले क्षेत्रों का ताप अपेक्षाकृत मृदुल होना चाहिए। दावीदेव इंगित करते हैं कि इन परिस्थितियों में दरारों के किनारे-किनारे वनस्पति उग सकती है। चूँकि बर्फ पर पड़ी दरारें नियमित ढंग की हैं इसलिए वनस्पति-आच्छादित भाग दूर से नहरें जैसे दिखते हैं। दावीदोव का कहना है कि मंगलग्रह की ये रहस्यमयी नहरें बुद्धि-सम्पन्न व्यक्तियों के हाथ की बनाई नहीं हैं, उनका अस्तित्व मात्र इस ग्रह के बड़े भाग में वनस्पति की सम्भावना इंगित करता है।

अन्तरिक्ष के लिए अमेरिकी आणविक घड़ी

एक अमेरिकी उपग्रह में रख कर अन्तरिक्ष में भेजने के लिए एक आणविक घड़ी तैयार की जा रही है। यह घड़ी बिल्कुल सही समय देगी और १ हजार वर्ष में एक सेकेण्ड भी आगे-पीछे नहीं होगी। पृथ्वी के गिर्द घूमते हुए यह टाइमपीस एक सेकेण्ड में २४ अरब बार "टिकिंग" का शब्द करेगा। अन्तरिक्ष में समय की गति का भूमि पर के समय की गति से तुलना करने के लिए इस घड़ी का प्रयोग किया जाएगा। अपनी ३ सप्ताह की उड़ान में यह घड़ी रेखागणित के अनुसार पृथ्वी के आकार को तथा प्रकाश की गति अथवा रेडियो-तरंगों के वेग को भी मापेगी। यह इस बात का निश्चय करने में भी सहायता करेगी कि क्या अन्तरिक्ष पृथ्वी के सभी ओर समान है ?

इस घड़ी को तैयार करने का मुख्य उद्देश्य स्वर्गीय एल्बर्ट आइन्स्टाइन के सापेक्षवाद के विशेष सिद्धान्त की पूरी तरह से जाँच करना है। अमेरिकी वैज्ञानिकों का विश्वास है कि अन्तरिक्ष के आकर्षणयुक्त क्षेत्रों में समय बड़े नक्षत्रों के आसपास के आकर्षणयुक्त क्षेत्रों की तुलना में विभिन्न गति से व्यतीत होता है। उन्होंने दो जुड़वाँ भाइयों का उदाहरण देकर इस सिद्धान्त पर प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि यदि जुड़वां भाइयों में से एक अन्तरिक्ष में तेज गति से यात्रा करे, तो वह पृथ्वी पर लौटने पर अपने भाई

से आयु में छोटा हो जाएगा। यदि लगभग प्रकाश की गति से अन्तरिक्ष में २४ वर्ष तक यात्रा होती रहे तो उसे पृथ्वी पर लौटने पर पृथ्वी लाखों वर्ष पुरानी प्रतीत होगी। यह क्रान्तिकारी सिद्धान्त सामान्यत: वैज्ञानिकों द्वारा स्वीकार कर लिया गया है, किन्तु उपयुक्त उपकरणों के अभाव में यह सिद्धान्त कभी सिद्ध नहीं हुआ है। यदि यह आणविक घड़ी इस सिद्धान्त को सिद्ध कर देती है, तो यह अमेरिकी योजना वैज्ञानिक विचारधारा का रूप बदल सकती है और इसके परिणामस्वरूप मनुष्य के लिए बड़े महत्वपूर्ण रहस्य मालूम हो सकेंगे।

आणविक घड़ी एक फुट लम्बी बेलनाकार विद्युदणु नली है, जिसके भीतर अमोनिया कण हैं, जो निरन्तर कम्पायमान रहते हैं। प्रत्येक प्रकम्पन से घड़ी में टिक की ध्वनि होती है। प्रकम्पन की गति भूमि की अपेक्षा अन्तरिक्ष में अधिक तेज होती है। इस बात को सिद्ध करने के लिए आणविक घड़ी सम्भवत: पृथ्वी से ८,००० मील ऊपर कक्षा में स्थापित की जाएगी। एक वैसी ही घड़ी पृथ्वी पर रखी जाएगी। जैसे ही भू-उपग्रह में रखी हुई आणविक घड़ी १८,००० मील प्रति घण्टा की गति से पृथ्वी की परिक्रमा करेगी, उसके प्रकम्पन अथवा टिक-टिक की ध्वनियां रेडियो द्वारा पृथ्वी पर भेजी जाएँगी। दोनों घड़ियों में प्रकम्पनों को माप कर तथा उनकी तुलना करके वैज्ञानिक लोग अन्तरिक्ष में और भूमि पर समय की गति के अन्तर को निश्चय कर सकेंगे।

वैज्ञानिकों द्वारा शरीर के रक्षक रासायनिक द्रव्यों के चित्र

मनुष्य के शरीर में विद्यमान वे उल्लेखनीय रासायनिक कण पहली बार नेत्रों द्वारा देखे गये हैं, जो रोगाणुओं से शरीर की रक्षा करते हैं।

एक 'इलेक्ट्रो-माइक्रोस्कोप' की किरणों के अन्तर्गत उनके आकार को एक लाख गुणा बढ़ाकर उनके चित्र लिए गये। मेसाचूसेट्स इंस्टिट्यूट आफ टेक्नालॉजी' के वैज्ञानिकों द्वारा रक्षात्मक रासायनिक द्रव्यों, जो "एण्टिबाडीज" के नाम से प्रसिद्ध है, के प्रथम चित्रों की घोषणा की गई है। चित्रों में स्पष्ट दिखाई देता है कि प्रत्येक 'एण्टीबाडी मोलेक्यूल' लाल रंग का है और उसकी चौड़ाई लगभग ०'०००००३८ सेण्टीमीटर है। वे लम्बाई में अपनी चौड़ाई के तिगुने से १० गुना तक हैं।

टिकट के आकार के सस्ते विद्युदणु गणक-यन्त्रों का निर्माण

अमेरिका के ५ वैज्ञानिकों ने २ वर्ष तक एक साथ अनुसन्धान कर एक ऐसी विधि की खोज की है, जिसके द्वारा टिकट के आकार के विद्युदणु प्रवाहकों' का निर्माण करना सम्भव हो गया है। इस नई विधि के उपयोग से विशालकाय विद्युदणु गणक यंत्रों के आकार इतने छोटे किये जा सकेंगे कि आवश्यकता पड़ने पर वे जेब में भी रख लिए जायँ और उनके निर्माण पर इस समय की तुलना में खर्च भी बहुत कम होगा।

उक्त वैज्ञानिकों ने १६५७ में वाशिंगटन स्थित 'आर्डिनेन्स फ्यूज लेबोरेटरीज' नामक कम्पनी की ओर से यह अनुसन्धान-कार्य प्रारम्भ किया था।

उन्होंने जिस विधि का आविष्कार किया है, उसमें तारों और खोल इत्यादि की आवश्यकता न पड़ेगी।

भारतीय भाषाओं में विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों के प्रकाशन पर पुरस्कार

भारतीय भाषाओं में उच्च श्रेणी की विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों के प्रकाशन को प्रोत्साहन देने के लिए केन्द्रीय वैज्ञानिक अनुसंधान और संस्कृति मंत्रालय ने प्रतिवर्ष १०, ००० रुपया का पुरस्कार देने की घोषणा की है। यह पुरस्कार इसी साल से किसी एक प्रकाशन को दिया जायगा।

यह पुरस्कार उस प्रकाशन को दिया जायगा जो एक साल में किसी भी भारतीय भाषा में विज्ञान सम्बन्धी सर्वोत्तम पुस्तकों की सिरीज प्रकाशित करेगा। सिरीज में कम से कम ५ पुस्तकें होनी अनिवार्य हैं। यह पुरस्कार किसी लेखक को नहीं दिया जाएगा। ये पुस्तकें काफी उच्च स्तर की, साधारण लोगों के पढ़ने के लिए या पाठ्य पुस्तकों के रूप में प्रकाशित होनी चाहिए। पाठ्य पुस्तकें स्नातक-स्तर से कम की नहीं होनी चाहिए। १६६० में जो पुस्तकें प्रकाशित होंगी उन पर भी विचार किया जायगा।

बहुत समय से यह अनुभव किया जा रहा है कि भारतीय भाषाओं में विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों की काफी कमी है और ऐसी बढ़िया पुस्तकों की बहुत आवश्यकता है। आशा है विज्ञान सम्बन्धी अच्छी पुस्तकें छपने से विज्ञान को प्रोत्साहन मिलेगा।

व्यवहारिक विज्ञान पर उत्तर प्रदेशीय साइंटिफिक रिसर्च कमेटी द्वारा पुरस्कार प्रदत्त

सन् १६५६-६० का उत्तर प्रदेशीय साइंटिफिक रिसर्च कमेटी द्वारा प्रदत्त १०००) का पुरस्कार डा० आत्मा राम को प्रदान किया गया है। डा० आत्माराम इस समय केन्द्रीय काँच और मृत्तिका अनुसंधान विद्यालय, जादवपुर के निर्देशक हैं। उन्होंने भारतीय सिलिकेट प्राविधि में महत्वपूर्ण मौलिक योग दान दिया है। उनके द्वारा प्रकाशीय काँच-उद्योग को बड़ा लाभ पहुँचा है। यह पुरस्कार उनको उनकी अमूल्य सेवाओं के अनुरूप है। वे सभी की बधाई के पात्र हैं।

———

१. अन्तरिक्ष-अनुसन्धान के क्षेत्र में विचित्र सफलता

अमेरिका का नया कृत्रिम ग्रह पायोनियर—५, जो ११ मार्च को अन्तरिक्ष में स्थापित किया गया है, न केवल अन्तरिक्ष की गहराइयों में प्रवेश करने के क्षेत्र में नया रिकार्ड स्थापित करता है, वरन् यह पहला अवसर है, जब मानवनिर्मित ग्रह अनन्त दूरी से पृथ्वी को सतत समाचार प्रेषित करने में समर्थ हुआ है।

अमेरिका द्वारा छोड़ा गया यह दूसरा कृत्रिम ग्रह है, जो सूर्य की परिक्रमा करेगा। इसकी कक्षा शुक्र ग्रह की कक्षा के निकट एक ऐसे स्थान पर रहेगी, पृथ्वी से जिस तक पहुँचने में ५ महीने का समय लगेगा। यदि कोई गड़बड़ी या बाधा न पड़ी, तो यह कृत्रिम ग्रह न केवल सूर्य की परिक्रमा करते समय बल्कि इसके उपरान्त भी, हर कुछ वर्ष बाद,र जब वह इतनी दूरी पर होगा कि पृथ्वी से उसके रेडियो-संकेत सुने जा सकें, रुक-रुक क रेडियो-सन्देश प्रेषित करता रहेगा। पृथ्वी पर ५ करोड़ मील की दूरी तक से आने वाले रेडियो संकेत सुने जा सकेंगे।

इस समय तक कृत्रिम ग्रह में रखे उपकरण ठीक प्रकार कार्य कर रहे हैं। ग्रह के 'पैडल-ह्वील' के चार पंखों में फिट सौर-बैटरियां निर्धारित योजना के अनुसार ट्रांसमिटरों को पुनः शक्ति प्रदान कर रही हैं। दो ट्रांसमिटरों में छोटा वाला ट्रांसमिटर बराबर संकेत प्रेषित कर रहा है और आदेश प्राप्त होने पर ताप विकिरण, चुम्बकीय क्षेत्र, रेडियधर्मी अणुओं से युक्त बादलों तथा सूक्ष्म उल्काकणों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी भी प्रेषित करता है।

पृथ्वी से ५० लाख मील की दूरी तय कर लेने पर पायोनियर—५ को एक नए परीक्षण से गुजरना पड़ेगा। इसी दूरी को तय करते ही बड़ा ट्रांसमिटर कार्य करने लगेगा। पायोनियर—५ सूर्य के जितने ही निकट पहुँचता जाएगा, सौर-बैटरियां उतनी ही अधिक शक्ति का सृजन करेंगी। यह आशा है कि १५० वाट की शक्ति सुलभ होने पर ५ करोड़ मील दूर तक के रेडियो-संकेत सुने जा सकेंगे। वैज्ञानिकों के अनुमान के अनुसार सूर्य से पायोनियर—५ की निकटतम दूरी ७ करोड़ ४५ लाख मील होगी। १७ मार्च तक यह १० लाख मील की दूरी तय कर चुका है।

निर्धारित ऊँचाई पर सूर्य की कक्षा में पायोनियर—५ को स्थापित करने के लिए राकेट को पृथ्वी की कक्षा से विपरीत दिशा में छोड़ा गया था। ऐसा इसलिए किया गया ताकि ग्रह की गति घट जाए और कक्षा में स्थापित होने से पूर्व अधिक से अधिक निकट पहुँच जाए। यह ३१० दिन में सूर्य की परिक्रमा पूरी करेगा।

कृत्रिम ग्रहों को अन्तरिक्ष में स्थापित करते समय वैज्ञानिकों को दूरी का कितनी सावधानी से हिसाब करने की आवश्यकता रहती है, इसका पता इस बात से भली प्रकार चल जाता है कि गणना में मामूली सी त्रुटि हो जाने पर पायोनियर—५ के ग्रह-पथ में ७५ लाख मील का अन्तर पड़ गया। वैज्ञानिकों ने पायोनियर—५ को ५,६७० मील प्रति घण्टे के वेग से छोड़ने का निश्चय किया था, परन्तु उसकी वास्तविक गति में १५० मील की कमी हो गई। परिणाम यह हुआ कि ग्रह की कक्षा ७५ लाख मील अधिक बड़ी हो गई।

पायोनियर—४ और मेचटा :कृत्रिम ग्रहों की तरह पायोनियर—५ भी सूर्य की परिक्रमा करेगा। उक्त दोनों कृत्रिम ग्रहों के ट्रांसमिटर बेकार हो गए हैं और इस प्रकार अब उनकी कोई व्यवहारिक उपयोगिता नहीं रह गई है। लेकिन पायोनियर—५ में ऐसा ट्रांसमिटर फिट है, जो अनिश्चित काल तक काम करता रहेगा और अनेक वर्षों तक पृथ्वी और चन्द्रमा से भी आगे की परिस्थितियों के बारे में सूचनाएँ प्रेषित करता रहेगा।

बाह्य अन्तरिक्ष से कितनी अवधि तक रेडियो संकेत प्राप्त किए जा सकते हैं, इसका एक बहुत उत्तम उदाहरण अमेरिका द्वारा छोड़ा गया वेनगार्ड—१ उपग्रह प्रस्तुत करता है। २ वर्ष पूर्व, १७ मार्च को यह उपग्रह अन्तरिक्ष में छोड़ा गया था और तब से लेकर इस समय तक यह पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए अन्तरिक्ष में विद्यमान परिस्थितियों के बारे में ८ हजार बार महत्वपूर्ण रेडियो संकेत प्रेषित कर चुका है। वैज्ञानिक खोजों और आविष्कारों की दृष्टि से जो महत्व इस छोटे से उपग्रह ने प्राप्त कर लिया है, वह अन्य बड़े-बड़े उपग्रहों को भी प्राप्त नहीं हो सका क्योंकि १—यह प्रथम कृत्रिम उपग्रह था, जिसमें सौर-बैटरियों से ट्रांसमिटर को शक्ति प्रदान करने की व्यस्था की गई थी; २—इसी उपग्रह ने यह खोज की कि पृथ्वी का आकार नासपाती जैसा है; ३—इसने यह भी सूचित किया कि विषुवत रेखा पर पृथ्वी में उतना उभार नहीं, जितना कि वैज्ञानिकों ने अभी तक अनुमान लगा रखा था; ४—इसने यह खोज भी की कि सौर-विकिरण के परिमाण में कमी-वेशी का पृथ्वी के बाहरी वायुमण्डल के घनत्व पर प्रभाव पड़ता है; ५—इस ने पृथ्वी के चारों ओर विद्यमान चुम्बकीय क्षेत्र में बहने वाली विद्युत्-धाराओं के बारे में उल्लेखनीय सूचनाएं सुलभ कीं।

कोई यह ठीक-ठीक नहीं कह सकता कि यह उपग्रह अन्तरिक्ष में कब तक विद्यमान रहेगा लेकिन पिछले २ वर्षों के अनुभव के आधार पर वैज्ञानिकों को यह आशा है कि यह कम से कम २०० वर्षों तक तो अवश्य अस्तित्व में रहेगा।

२. डा० मित्रा का निधन

२१ मार्च को प्रयाग विश्वविद्यालय के कृषि के रसायन प्राध्यापक डा० सत्यप्रिय मित्र का देहान्त अमेरिका में हो गया। वे १३ वर्ष पूर्व इंगलैंड के सुप्रसिद्ध कृषि-अनुसन्धान-केन्द्र रोथैम्स्टेड में शोध कार्य करने के लिये भारत से गये थे। उन्हें नफील्ड छात्रवृत्ति प्रदत्त हुई थी। वहाँ कार्य पूरा करके वे विस्कान्सिन विश्वविद्यालय, अमेरिका गये जहाँ अस्वस्थ हो जाने के कारण कुछ दिनों की भीषण बीमारी के उपरान्त अकस्मात देहांत हो गया।

उनकी मृत्यु से प्रयाग विश्वविद्यालय के एक कर्मठ वैज्ञानिक एवं निपुण प्रशासक की महान क्षति हुई है, ईश्वर उनकी मृत आत्मा को शांति प्रदान करे और उनके परिवार वालों को धैर्य दे।

३. पिपरी में एल्युमिनियम-फैक्टरी का शिलान्यास

मिर्जापुर के पास पिपरी नामक स्थान में बिड़ला द्वारा संस्थापित एल्युमिनियम फैक्टरी का शिलान्यास प्रदेश के मुख्य मंत्री डा० सम्पूर्णानन्द द्वारा मार्च मास में हुआ। इसके लिये आवश्यक विद्युत् शक्ति रिहंद बाँध योजना से प्राप्त होगी। इस फैक्टरी से प्रति वर्ष २० हजार टन एल्युमिनियम का निर्माण होगा और भविष्य में इसका उत्पादन ५० हजार टन तक बढ़ाया जा सकेगा। इस उद्योग के सूत्रपात से प्रदेश में ही नहीं वरन् देश में एल्युमिनियम का नितप्रति की आवश्यकताओं में प्रयोग होगा और हमारे देश के अनेक कर्मचारियों को कार्य-कुशलता प्राप्त हो सकेगी।

हरिशरणानन्द वैज्ञानिक पुरस्कार

सूचना

बड़े हर्ष के साथ विज्ञान परिषद्, प्रयाग सूचित कर रहा है कि इस वर्ष हरिशरणानन्द जी के नाम पर तीन वैज्ञानिक पुरस्कार वैज्ञानिक हिन्दी ग्रन्थों पर दिये जायगें। ये पुरस्कार तीन श्रेणी के होंगे :

प्रथमः हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार—यह पुरस्कार दो सहस्र रुपये का होगा। यह पुरस्कार उच्च स्तर की सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक रचना पर प्रदान किया जावेगा।

द्वितीय: यह पुरस्कार एक सहस्र रुपये का होगा और सामान्यतः जनोपयोगी वैज्ञानिक साहित्य की सर्वश्रेष्ट रचना पर दिया जायगा।

तृतीय: हरिशरणानन्द बालोपयोगी विज्ञान पुरस्कार-यह पाँच सौ रुपये का होगा।

उक्त विज्ञप्ति के द्वारा विज्ञान परिषद्, प्रयाग पुरस्कार के लिये प्रत्येक वर्ग की वैज्ञानिक विषय की पुस्तकें आमन्त्रित करता है।

१—प्रत्येक वर्ग की पुस्तकों की ८ प्रतियां १ अक्टूबर १९६० तक विज्ञान परिषद्, प्रयाग के कार्यालय में आ जानी चाहिये।

२—पुस्तकें शुद्ध हिन्दी भाषा में प्रकाशित हुई हों।

३—अनुवाद के ग्रन्थों पर विचार नहीं किया जायगा।

४—इन प्रकाशित पुस्तकों में विज्ञान परिषद्, प्रयाग, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग अथवा भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय द्वारा स्वीकृत में से कोई भी वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली यदि व्यवहृत हुई हो तो मान्य होगी।

ग्रन्थ-लेखकों को पुरस्कार सम्बन्धी नियमावली अन्यत्र दी जा रही है।

मंत्री,
विज्ञान परिषद्,
प्रयाग

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिगराम भार्गव	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगा शंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रमेश वेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकरराव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर	२ रुपया
१०—कलम पैबन्द—श्री शंकरराव जोशी	२ रुपया
११—जिल्द साजी—श्री सत्य जीवन वर्मा एम० ए०	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०	१ रुपया
१३—वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०, वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० न० पै०
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपया
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपया
१९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
२०—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा०गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रु० ५० नयेपैसे
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकर राव जोशी	३ रु० ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनिया—श्री रामेश वेदी	४ रुपया
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्र नाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान-शालायें	२ रुपया
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
२६—रेल इंजन, परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ९२ | २०१६ विक्र०; वैशाख-ज्येष्ठ १८८१ शाकाब्द; मई-जून १९६० | संख्या २-३

भूमि सर्वेक्षण और उसके लाभ

डा० एस० पी० रायचौधरी तथा एस० पी० गुप्ता

> भूमि की उचित व्यवस्था में भूमि सर्वेक्षण का प्रमुख हाथ होता है। किसी भी राष्ट्र की भूमि उवरता सर्वेक्षण की सफलता पर निर्भर है। प्रमुख भूमि सर्वेक्षण अधिकारी डा० एस० पी० रायचौधरी द्वारा प्रस्तुत लिखित लेख भारत में भूमि सर्वेक्षण की प्रगति पर प्रकाश डालता है।

जन-नीतियों को सुचारु रूप से चलाने के लिये हमारे राष्ट्र को भूमि सर्वेक्षण की नितान्त आवश्यकता है। जिन किसानों के पास आधुनिकतम भूमि-मान चित्र हैं वे बड़ी ही सरलता से यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि अमुक वर्ष कितना उत्पादन होगा अथवा कोई विशिष्ट प्रकार की फसल उपयुक्त होगी या नहीं। भूमि सर्वेक्षण का उपयोग आयोजना तथा व्यवस्था प्रणालियों के लिये, जिनमें दीर्घकालीन भूमि-उर्वरता तथा कृषि सम्मिलित हैं, होता है। नवीन भूमियों की सिंचाई अथवा जुताई, ऊसरों के उर्वरीकरण तथा जल निकासी समस्याओं के लिये भूमि सर्वेक्षण आधार-स्वरूप है।

भूमि सर्वेक्षण के अत्यन्त नवीन उपयोगों में कर-निर्धारण में सुधार, जंगलों के लिये उपयुक्त भूमि निर्धारण तथा सड़कों और वायुयान स्थलों के निर्माण एवं निर्धारण हैं। भूमि-वर्गीकरण में भी भूमि सर्वेक्षण का प्रयोग होने लगा है।

अब भूमि सर्वेक्षण की विधियों में बहुत अन्तर आ गया है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रथम भूमि सर्वेक्षक ने एक कोरे कागज पर ही भूमि-सीमाओं का अंकन प्रारम्भ किया

था; परन्तु आज तो अधिकांश देशों तथा भारत में भी वायुयान द्वारा लिये गये फोटो-ग्राफों को ही आधार-मानचित्र के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। वास्तविक निरीक्षण और विवेचना तो क्षेत्रों में ही जाकर की जाती है। यह जानने के लिये कि मिट्टी है क्या! वैज्ञानिक मातृ-पदार्थ को गहराई तक खोदते हैं। उसमें भूमिक्षरण की प्रवृत्तियों को देखा जाता है और क्षरण रोकने के लिये विधियों की विवेचना करते हुये प्रत्येक मिट्टी की उत्पादन-शक्ति पर भविष्यवाणी की जाती है।

इस प्रकार की मूल सूचनाओं से युक्त होकर ही मिट्टी का यथासम्भव उपयोग एवं व्यवस्था की जा सकती है। किसानों के अनुभवों तथा परीक्षणकेन्द्रों में की गई शोधों के परिणामों का भी लाभ उठाया जाता है।

भूमि सर्वेक्षण रिपोर्ट के साथ उस क्षेत्र का एक विस्तृत भूमि मानचित्र भी रहता है। इस मानचित्र के द्वारा किसान अपने खेतों को ढूँढ सकते हैं और खेतों की मिट्टियों के प्रकार को भी जान सकते हैं। यही नहीं, उन्हें मिटि्टयों के पूर्ण विवरण के साथ-साथ शस्य-व्यवस्था की भविष्यवाणी, भूमि तथा जलवायु के सम्बन्ध तथा अन्य आँकड़े भी प्राप्त होते हैं।

भूमि सर्वेक्षण का मूलभूत उपयोग भूमि तथा जन-समुदाय के मध्य स्थित कृषि सन्तुलन की जानकारी है। आज के परिवर्तनशील संसार में भूमि सर्वेक्षण के द्वारा भूमि तथा मनुष्यों के बीच स्थायी तथा आवश्यक सुधार किये जा सकते हैं।

भूमि सर्वेक्षण की पद्धति

भूमि सर्वेक्षण पद्धति मुख्यतः सर्वेक्षण के चरम उद्देश्य पर अवलम्बित है। सर्वेक्षण के महत्वपूर्ण उद्देश्य निम्न हैं :

१. पोषकीय भविष्यवाणी :—भारत के कुछ भागों में आवश्यक तत्वों की इतनी अल्प मात्रा भूमि में वर्तमान है कि उसका प्रभाव उपज पर पड़ता है। अन्यत्र कुछ तत्व इतनी अधिक मात्रा में वर्तमान हैं कि उपज में कमी आ गई है। जहाँ इस प्रकार की सूचनायें उपलब्ध हैं. उनके द्वारा भूमि प्रयोग तथा फार्म-व्यवस्था में प्रचुर यगो मिलता है।

२. इंजीनियरी में सहायता :—सड़कों के निर्माण तथा हवाई अड्डों की स्थापना करते समय विस्तृत भूमि-मानचित्र अत्यन्त सहायक होते हैं। यही नही, कभी-कभी इन मान चित्रों के द्वारा बालू, बजरी अथवा पत्थरों का पता चल जाता है जो निर्माण-कार्य के लिये आवश्यक सामग्रियाँ हैं। यदि पहले से ऐसे मानचित्र उपलब्ध नहीं होते तो सड़कों या हवाई अड्डों के निर्माण करते समय मृत्तिका परीक्षण कार्य आवश्यक हो जाता है जिसमें अपार धन व्यय होता है।

३. सिंचाई के लिये भूमि-वर्गीकरण :—जिन भागों में सिंचाई की योजना बनाई जाती है पहले पहल उनका भूमि सर्वेक्षण आवश्यक होता है। सर्वेक्षण के पश्चात् सिंचाई की उपयुक्तता के अनुसार भूमि वर्गीकरण किया जाता है।

४. जल निकासी के लिये भूमि वर्गीकरण :—एक आधुनिक भूमि मानचित्र के द्वारा जलनिकासी योजना के सम्बन्ध में भी पूर्व सूचना प्राप्त होती है। प्रत्येक जलनिकासी प्रणाली के लिये वहिर्द्वार की आवश्यकता होती है, जो एक भूमि मानचित्र द्वारा उपलब्ध हो सकती है।

५. भूमि सर्वेक्षण के अन्य उपयोगः—भूमि सर्वेक्षण का उपयोग जल आवाह योजना, नवीन भूमि व्यवस्था तथा कर-निर्धारण के लिये भी किया जाता है। विभिन्न भागों में शोध द्वारा प्राप्त परिणामों को व्यवहार में लाने के लिये भूमि मानचित्र तथा रिपोर्टें आवश्यक हैं।

अखिल भारतीय मिट्टी तथा भूमि उपयोग सर्वेक्षण

इस सर्वेक्षण का मुख्य उद्देश्य विभिन्न प्रकार की मिट्टियों का वर्गीकरण करके उनको मानचित्रों के रूप में प्राप्त करके भूमि की उचित व्यवस्था तथा उन्हें उपयोग में लाने की योजना बनाना है। साथ ही शोध द्वारा प्राप्त परिणामों को अलग अलग क्षेत्रों में व्यवहृत करना है। इस उद्देश्य से सन् १९५५ में अखिल भारतीय मिट्टी तथा भूमि उपयोग सर्वेक्षण योजना प्रारम्भ की गई।

भारत में चार मुख्य वर्ग की मिट्टियों के क्षेत्रों के चार क्षेत्रीय केन्द्र बनाये गये।

(१) जलोढ़ भूभाग का केन्द्र दिल्ली में

(२) काली मिट्टी का केन्द्र नागपुर में

(३) लाल तथा लेटराइट के भाग का प्रथम केन्द्र कलकत्ता में

(४) लाल तथा लेटराइट मिट्टी के भाग का दूसरा केन्द्र बंगलोर में इस योजना में १" = १ मील पैमाने पर वृहद मानचित्र का निर्माण होगा।

१ मार्च १९५९ से अखिल भारतीय भूमि सर्वेक्षण योजना तथा केन्द्रीय भूमि संरक्षण परिषद भूमि उपयोग सर्वेक्षण तथा आयोजना के सम्मिलित कर दिये जाने से समस्त भूमि सर्वेक्षण का कार्य एक केन्द्रीय संस्था द्वारा संचालित होने लगा है। इस परिवर्तन के कारण कार्यविधि में बड़ा अन्तर आ गया है। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन क्षेत्र का परिवर्तन है जो भूमि के आधार पर न होकर भौगोलिक आधार पर निश्चित होगा। भूमि सर्वेक्षण में विस्तृत मानचित्र का प्रयोग होगा जो १६" = १ मील अथवा ८" = १ मील के पैमाने पर होगा। भूमि के प्रकार अथवा भूमि उपकोटि के निर्धारण में १" = १ मील के मानचित्र का यदाकदा उपयोग किया जावेगा।

अखिल भारतीय मिट्टी तथा भूमि उपयोग सर्वेक्षण योजना के प्रमुख्य उद्देश्य आधारभूत तथा व्यावहारिक दोनों ही हैं। भूमि सर्वेक्षण द्वारा विभिन्न प्रकार की मिट्टियों

के अन्तर समझने तथा प्रामाणिक शब्दावली, नामकरण आदि की व्यवस्था करने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार की मिट्टियों को वर्गीकृत करके मानचित्र तैयार किये जावेंगे। भूमि सर्वेक्षण का व्यावहारिक पक्ष भूमि संरक्षण सर्वेक्षण, सिंचाई सर्वेक्षण तथा अन्य भूमि उपयोग योजनाओं को सफल बनाना है। इसमें राष्ट्रीय नीति का निर्धारण तथा भूमि सर्वेक्षण को कार्यान्वित करना, भूमि सर्वेक्षण की विश्लेषणा करना, भूमि वर्गीकरण तथा सामञ्जस्य प्रदर्शित करना, भूमि सर्वेक्षण सम्बन्धी शोध करना तथा अन्य गतिविधियों के प्रमाणीकरण भी सम्मिलित हैं।

इस योजना का विशिष्ट व्यावहारिक उद्देश्य शीघ्र ही भूमि संरक्षण-सर्वेक्षण करना है जिससे छः नदी घाटी योजनाओं के ७८००० वर्गमील क्षेत्र में भूमि उपयोग सम्बन्धी कार्य प्रारम्भ किया जा सके। ये नदी घाटी योजनायें कोसी, दामोदर चम्बल, भाखरा, हीराकुण्ड तथा मुचकुण्ड से सम्बन्धित हैं। प्रतिवर्ष १५००,००० एकड़ भूमि का सर्वेक्षण करके मान चित्रों का निर्माण इसका लक्ष्य है। इस योजना को केन्द्रीय भूमि संरक्षण परिषद द्वारा आर्थिक सहाय्य प्राप्त होता है और इसका प्रधान केन्द्र भारतीय कृषि अनुसन्धान विद्यालय, नई दिल्ली में है। साथ ही मुख्य भूमि सर्वेक्षण अधिकारी के निरीक्षण में चार भूमि-सह-सम्बन्ध केन्द्र बनाये गये हैं :—

१. जलोढ़ भूभाग—भारतीय कृषि अनुसन्धान विद्यालय, नई दिल्ली
२. काली मिट्टी का भाग—नागपुर
३. लाल तथा लैटराइट मिट्टी का भाग (१)—खड्गपुर (अधुना कलकत्ता में)
४. ,, ,, (२)—बंगलोर

कार्य की प्रगति

योजना के प्रारम्भ काल से मुचकुण्ड, हीराकुण्ड, चम्बल तथा भाखरा नंगल के आवाह क्षेत्रों का विस्तृत सर्वेक्षण किया जा चुका है। साथ ही केरल, मद्रास, मैसूर, बम्बई, पश्चिमी बंगाल, आसाम, दिल्ली, तथा नेफा राज्य में भूमि सर्वेक्षण का कार्य प्रारम्भ हो चुका है। अब तक ४२,५०,००० एकड़ में भूमि सर्वेक्षण तथा ६४८००० एकड़ में विस्तृत भूमि सर्वेक्षण का कार्य हो चुका है जिसमें से १५६३०० एकड़ भाखरानंगल में, ५८३००० एकड़ चम्बल में, ३१०२००० एकड़ हीराकुण्ड में, तथा ५७७०० एकड़ मुचकुण्ड में हुये सर्वेक्षण सम्मिलित हैं।

मिट्टी तथा भूमि सर्वेक्षण की प्राथमिकता

१. वे क्षेत्र जहाँ भूमि संरक्षण का कार्य हो रहा है परन्तु भूमि सर्वेक्षण का कार्य प्रारम्भ नहीं हुआ

२. वे क्षेत्र जहाँ भूमि संरक्षण का कार्य होना है

३. नदी घाटी योजनाओं के अन्तर्गत सिंचाई वाले क्षेत्रों में

४. नदी घाटी योजनाओं के आवाह क्षेत्रों में

५. राष्ट्रीय विस्तार खण्डों अथवा कम्यूनिटी प्रोजेक्टों में जो कृषियोग्य क्षेत्र अभी तक सम्मिलित नहीं हुये हैं भूमि सर्वेक्षण को प्राथमिकता दी जावेगी।

कृषिकर्म में खरपतवारों का महत्वपूर्ण स्थान

शालिगराम शर्मा

कृषिकार्य में निकाई का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। निकाई को निराई कहा जाता है। खेत की घासों को छीलकर निकाल देना ही 'निराई' कहलाती है। निराने को किसान निराउब कहता है। निराने के काम को जिसे 'निराई' कहा जाता है निरवई भी कहते हैं। 'निराई' करने के लिए मजदूरों को जो मजदूरी दी जाती है उसे निरौनी कह कर पुकारा जाता है। जो किसान स्वयं अपना खेत निरा लेते हैं उन्हें निरौनी नहीं देनी पड़ती।

भूमि उर्वरता का बहुलांश अनावश्यक खरपतवारों की उत्पत्ति एवं खेतों में उनकी वृद्धि के कारण प्रतिवर्ष अपहरित होता रहता है। इन खरपतवारोंके विनाश के पूर्व उनके पूर्ण परिचय की आवश्यकता है। आज कल हिन्दी के शोधछात्र बोलियों में पाई जाने वाली विविध शब्दावलियों का वैज्ञानिक अध्ययन करने की ओर उन्मुख हैं। प्रस्तुत खरपतवारों की सूची ऐसे ही प्रयास का प्रतिफल है। यदि इस विवरण में विवेचना के लिये चित्रों की सहायता ली गई होती तो यह अत्यन्त उपादेय हो जाता।

घास को खरपतवार या खरकतवार भी कहते हैं। घासें अनेक प्रकार की पाई जाती हैं; उनके सैकड़ों नाम और रूप हैं। कुछ घास ज्वार और बाजरे में ही विशेष रूप से उगती हैं तो कुछ धान की फसल में ही पाई जाती हैं। घास को किसान यदि जल्दी निरा देते हैं तो उन्हें विशेष लाभ होता है। घासों के बढ़ जाने पर 'निराई' करने से कृषकों को श्रम अधिक करना पड़ता है और लाभ कम मिलता है।

घासों के नाम लुप्तप्राय हो रहे हैं। हिन्दी प्रेमियों को चाहिए कि वे इन घासों के नाम उनके लक्षणों सहित जनता से खोज निकालें। नीचे इलाहाबाद जिले कीकुछ घासों का विवरण दिया जा रहा है:—

धमकी—इसकी जड़ें सफेद मुलायम और साधारण कड़ी होती हैं। ये जड़ें कुछ कुछ रेशेदार भी होती हैं। इसकी पत्तियाँ अरहर की सी लम्बी होती हैं। इसके फूल पीले और छोटे होते हैं। इसका बीज बहुत महीन और लाल रंग का होता है जो कत्थई रंग की छीमियों में फलता है। इसकी छीमी या बीजकोष तने पर ही लगता है। ज्वार,बाजरे और चौमास खेत में भी यह पाई जाती है। इसका तना कुछ कत्थई बानी पर होता है। यह हाथों लम्बी होती है। इसकी पत्तियों के राँग को लोग दाद पर लगाते हैं।

बँभनी—इसकी पत्ती देखने में सरपत सी किन्तु लम्बाई में बहुत छोटी होती है। इसका तना बहुत छोटा होता है। इसकी जड़ साधारण और फूल सफेद होते हैं। यह मेंड़, ईख के खेत और परेठ (बिना फसल के मैदान) में पाई जाती है।

केना—इसकी जड़ों में जाले होते हैं। इसकी जड़ पानी में ही रहती है। यह प्रायः ताल और गड्ढों में पाई जाती है। इसके खाने से भैंसें दूध अधिक देती हैं। इसका फूल आसमानी रंग का होता है। इसकी पत्ती छोटी होती है।

निरुई—इसका डंठल हरे रंग का तथा बीच में खोखला होता है। इसमें पत्तियाँ नहीं होतीं। इसकी जड़ पानी में धान की तरह होती है। पानी के अनुसार इसके पौदे की लम्बाई होती है।

सेंवार—इसकी पत्तियाँ छोटी-छोटी होती हैं। इसकी जड़ में आलू की तरह एक गाँठ पड़ती है जिसे लड़के भूनकर खाते हैं। यह नदी और ताल में मिलती है।

गदहपुन्ना—इसकी जड़ नीचे मूसलाकंद सी होती है। इसकी पत्ती महुआ की पत्ती से छोटी तथा उसी प्रकार की होती है। यह भीटे पर होती है। इसकी जड़ को लोग दवा के रूप में पीते हैं।

तलखुखुड़ी—इसकी पत्तियाँ छोटी-छोटी बबूल की सी होती हैं। यह ताल या सौगहा (अगहनी धान का खेत) में होती है। जड़ मामूली जालेदार होती है। जोते-बोये खेत में यह कम होती है। इसे पशु नहीं खाते। औरतें कान में इसे पहनती हैं।

चिलबिल—इसे 'बड़का चिचिढ़ा' कह सकते हैं। यह चार-पाँच हाथ तक लम्बा होता है। इसकी फलियाँ चकवड़ की सी होती हैं। इसकी पत्तियाँ इमली की पत्तियों से कुछ मिलती-जुलती हैं। इसे सड़ाने से इसके तनों से सन भी निकल सकता है।

तलकनरी—इसकी पत्ती लहसुन की-सी होती है। इसकी जड़ में प्याज की सी पूती पड़ती है। यह अधिकतर भीटे पर होती है। यह जोते खेतों में भी कहीं-कहीं मिलती है।

अमिरती—यह एक प्रकार की लता है। इसकी पत्तियाँ २-३ अंगुल लम्बी होती हैं। यह कटहर, सनई, सब्जी के लिए गाड़े हुये झाँखर और ढेरा आदि पर चढ़ जाती है। इसके फल झरबेरी के आकार के हरे रंग के होते हैं किन्तु पकने पर जामुन की तरह काले हो जाते हैं। इसकी जड़ में आलू की तरह एक ग्रंथि निकलती है जो जहर का काम करती है।

जलकुम्भी—इसकी पत्ती बड़ी और कुछ गोलाकार होती है। वह गाँव की गड़ही (बड़ा गड्ढा) ताल और तलैया (छोटा तालाब) में होती है। इसे कुछ लोग गड्ढा भाँठने (स०क्रि० भाँठब=पाटना) के लिए लगाते हैं। इसका फूल आसमानी रंग का होता है।

चेंच—यह ताल और सूखी जगह दोनों में होती है। यह बजरिहा और चौमस दोनों में पाई जाती है। इसकी पत्ती पेढुआ की तरह होती है। इसे पशु खाते हैं।

गिनिनी—इसकी पत्ती लम्बी और पतली होती है। यह ताल के किनारे और जड़हन के खेत में पाई जाती है।

मकोइ या खरपोटना—इसकी पत्तियाँ टमाटर की पत्तियों से कुछ साम्य रखती हैं। इसका पौदा हाथ डेढ़ हाथ तक ऊँचा होता है। इसमें ५-६ शाखाएँ होती हैं। इसके

फर के ऊपर एक झिल्ली सा आवरण होता है । इसी आवरण में झरबेरी सा इसका पीले रंग का फल रहता है जिसे लोग खाते हैं। यह परती, चौमस, बाग और भीटों में पाई जाती है। यह जाड़े में फलती है। इसे कहीं-कहीं खरपोटना भी कहते हैं।

नरई—यह ताल में पाई जाने वाली घास है। इसका तना खोखला होता है। इसमें गाँसा होता है। यह नहर में भी मिलती है। इसकी पत्तियाँ लम्बी और छोटी होती हैं। इसके फूल सफेद होते हैं। यह जमीन से चिपटी रहती हैं। इसमें गाँठें होती हैं। यह धान को अधिक हानि पहुँचाती है।

करतिल—यह वास्तव में घास नहीं है किन्तु घास की ही तरह खरीफ के पौदों को हानि करती है। एक साल की झड़ी हुई तिल्ली जब दूसरे साल अपने आप उग आती है तो उसे 'करतिल' कहते हैं। यदि इसे उखाड़ न डाला जाय तो यह अन्य पौदों की खूराक खींच कर बढती है और फिर फल कर शीघ्र खेत में झड़ जाती है।

चमरदुबिया—यह दूब की जाति की ही घास है। अन्तर केवल यह होता है कि इसकी पत्तियाँ बहुत अधिक सफेद होती हैं। यह परती के अतिरिक्त रबी और खरीफ दोनों प्रकार की फसलों में पाई जाती है। इसकी भी लता होती है जो जमीन पर फैलती चली जाती है। इसे 'चंवरदुबिया' भी कहते हैं।

तिनगोड़िया—इसमें तीन चेंपा (साखें) लगे रहते हैं। यह प्रायः कमजोर जमीन पर पाई जाती है। यह चारागाह के अतिरिक्त चौमस, ज्वार और बाजरे में भी मिलती हैं।

जनकरा—इसकी लता बहुत लम्बी होती हैं। यह कुएँ में होती है। कुएँ के अतिरिक्त चारागाह, भीटा, बाग और खेतों में भी होती है।

पतालनीम—इसकी पत्ती नीम की तरह होती है। यह कुएँ में लटकी रहती है। इसकी लम्बाई अक्सर एक बालिश्त से दो बालिश्त तक होती है। कभी-कभी यह खेतों में भी उग जाती है।

गुहैया—इसके बँवर (लता) बड़े बड़े होते हैं। यह प्रायः भीटा पर पाई जाती है। यह खेतों में भी मिलती है किन्तु बहुत कम। इसकी जड़ में आम की गुठली की तरह एक ग्रन्थि पड़ती है।

बन पियाजि—इसकी पत्ती छोटी तथा पतली होती है जो कुछ-कुछ लहसुन की पत्तियों से मिलती जुलती है। जड़ के नीचे इसमें भी प्याज की तरह गाँठ या पूती पड़ती है। यों तो यह भीटा पर अधिक होती है किन्तु खेतों में भी देखने में आती है।

देवमंजनी—इसके तने की ऊँचाई केवल एक या दो अंगुल होती है। यह पंचोलिया-सी कल्लियाती (मू० क्रि० कल्लियाब-कल्ले फोड़ना) है। इसकी पत्तियाँ पंचोलिया से कुछ बड़ी होती हैं। यह भीटा, बाग, मेंड़ और खेतों में पाई जाती है।

औंधी—इसकी पत्ती छोटी, लम्बी और कुछ पीले रंग की होती है। इसके पौदे भी छोटे-छोटे होते हैं। यह चौमस में मिलती है। फाल्गुन और चैत में यह बहुत देखने में आती है।

मोंथैला—यह मोंथा की ही जाति की घास होते हुये भी उससे काफी भिन्न है। इसका पूँजा या थान साधारण मोंथा से कहीं अधिक विस्तार का होता है। यह ताल और नदी के किनारे, बाग तथा खेतों में होता है। हंडिया तहसील के सैदाबाद बींदा आदि स्थानों में यह बहुत अधिक मिलता है।

गिंड़िनी—इसकी डाँड़ी (तना) सुर्ख होती है। इसकी पत्तियाँ हरी और छोटी होती हैं। यह खरीफ और रबी दोनों फसलों में पाई जाती है।

कुखुड़ी—यह ताल, गड्ढों और पानी लगे हुए खेत में होती है। इसकी जड़ में पूती पड़ती है जिसे मुसहरिन (मुसहर जाति की स्त्री) खोद और भूनकर खाती हैं।

बोहा—इसकी पत्ती लम्बी और खड़ी होती है। यह ताल, बाग और खेत में पाई जाती है। इसे पशु चरते हैं। यह गंधाती है। यह हँडिया तहसील के केवाई परगने में विशेष रूप से होती है।

चोर्रा—इसकी पत्ती मोंथे की तरह लम्बी होती है। इसका तना पतला, डेढ़-दो बालिश्त लम्बा और छतनार होता है। यह चौमस में पाई जाती है। ऊपरी सतह के खेतों में यह विशेष रूप से होती है। इसे भी पशु चरते हैं। यह भी पूँजादार घास होती है जिसमें ८-१० तने निकलते हैं। यह केवाई परगने के उपरदहा आदि गाँवों में अधिक मिलती है।

गलफुलना—यह पूँजादार होती है। इसकी पत्तियाँ धान की सी होती हैं। इसका फल डँवर के फल से कुछ-कुछ मिलता-जुलता है। यह धान, चौमस और खरीफ के खेतों में होती है।

मुरेम—इसमें गेहूँ की तरह बाल निकलती है। यह अधिकतर धान के खेत में होती है। यह चौमस में भी पाई जाती है।

डमरा—इसकी बाल सावां की बाल की तरह होती है। यह कुँआरी धान में अधिक उगता है। कभी-कभी जड़हन में भी होता है। यह सेहुँड़ा आदि गाँवों की बारा परगने की घास है।

समई—डमरा की तरह इसके भी पौदे कुछ लाल रंग के होते हैं। यह सावन के महीने में धान में अधिक पाई जाती है।

भुंडा—इसका तना डेढ़-दो हाथ से लेकर तीन-चार हाथ तक होता है। इसके पोढ़ (गाँठ) एक-एक बालिश्त पर होते हैं। इन पोढ़ों पर थोड़ी सी पत्तियाँ लगती हैं। इसकी बाल भी बीता भर की पतली और लाल होती है जो पकने पर सफेद हो जाती है। यह धान को बहुत हानि पहुंचाता है। इसे मवेशी भी खाते हैं। यह भी करछना तहसील के

बारा परगने की घास है। इसके विषय में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—"धान बेचारा आउर बाउर, भुंडा के दुइ-दुइ चाउर" अर्थात् "खेत में धान तो बावला रह गया उसमें कुछ न हुआ। लेकिन भुंडा के पौदे में दो दो चावल जरूर पैदा हो गये।"

गेंड़हर—इसका तना भीतर से खोखला होता है। यह मनुष्य की उँगली के इतना मोटा होता है। इसकी जड़ जालेदार होती है। इसकी पत्ती भुंडा की पत्ती से चौड़ी होती है। यह आदमी के सिर के बराबर बड़ा होता है। इसके दाने गेहूँ के आकार के होते हैं जो पकने पर काले हो जाते हैं। यह बुड़ारो खेत (जिसमें अधिक पानी लगता हो) और चौमस में अधिक होता है। धान में भी होता है किन्तु कम। यह भी करछना तहसील की घास है।

बदउर—इसका पौदा लाल होता है। यह अधिक से अधिक एक हाथ ऊँचा होता है। इसके बीज काले और लाल रंग के होते हैं। यह धान में बहुत होता हैं। यहाँ तक कि इसके होने से धान का बीज तक नहीं होने पाता। इसकी पत्तियाँ बहुत महीन और मोथे की तरह होती हैं। इसमें बहुत से कनखा लगते हैं। इसे पशु भी नहीं खाते। इससे दुर्गन्ध निकलती है। यह भी करछना तहसील की घास है।

रसहुला—इसकी पत्ती कुछ-कुछ भुंडा की तरह होती है। जेठ में भी इसकी जड़ कलपती हैं। इसकी जड़ और पत्ती गाँडर की तरह भी रहती है। इससे बढ़नी (झाड़ू) बनती है। यह धान में होती है और उसे बहुत नुकसान पहुँचाती है। यह भी सेहुँड़ा गाँव की तरफ बारा परगने में पाई जाती है।

टनकौवा—इसकी पत्तियों के बीच में फल लगते हैं। इसके बीज छोटे, काले और गेहूँ के आकर के होते हैं। यह दूब सी चर बाँध कर, फैलने वाली घास है। यह धान में अधिक होती है और उसे बहुत दबा देती है। यह भी करछना तहसील की घास है।

बेलंदा—इसका पौदा हाथ-डेढ़ हाथ ऊँचा होता है। इसकी पत्ती एक अंगुल चौड़ी और एक बालिश्त लम्बी होती है। इसका फूल सफेद होता है। इसके बीज इतने छोटे होते हैं कि उनका पता तक नहीं चलता। यह धान के खेत में होता है और उसे अधिक नुकसान करता है। यह भी सेंहुँड़ा गाँव के तरफ की घास है।

करता—यह दूब की तरह फैलता है किन्तु इसकी गाँठ-गाँठ में जड़ नहीं होती। यह कई हाथों का होता है। इसकी पत्तियाँ बहुत कम चौड़ी और बीता भर तक लम्बी होती हैं। इसके पाँच-छः अंगुल पर गाँठें होती हैं। यह अधिकतर ज्वार में होता है। चौमस से जुताई करके निकाल दिया जाता है। इसे पशु खूब खाते हैं। यह भी करछना तहसील की घास है।

मुसेर—इसका तना सीधा और हाथ-डेढ़ हाथ तक लम्बा होता है। इसके बीज का सूक्ष्मता के कारण पता ही नहीं चलता। यह ज्वार-बाजरे और चौमस में अधिक

होता है। यह चरागाह में भी मिलता है। इसे जानवर खूब खाते हैं। यह भी सेंहुँड़ा गाँव (बारा परगना) की तरफ की घास है।

जोबा—इसकी भी लम्बाई मुसेर की तरह होती है। इसकी पत्ती लम्बी किन्तु कम चौड़ी होती है। यह दूब की तरह छछड़ता है। इसकी गाँठों में जड़ नहीं होती। यह चौमस और धान में अधिक पाई जाती है। इसे पशु खाते हैं।

चपरैला—यह जमीन पर दूब की तरह फैलता है। यह आषाढ़ में उगता है। क्वाँर में पक कर यह सूख जाता है। इसकी पत्ती दूब से चौड़ी होती है। यह डाँड़ी (ऊँचाखेत), ज्वार और बाजरे में अधिक होता है। धान में यह कम पाया जाता है।

घमिरा—इसकी पत्ती एक अंगुल चौड़ी और दो-तीन अंगुल लम्बी होती है। इससे दुर्गन्ध निकलती है। एक बालिश्त से दो बालिश्त तक इसका तना होता है जो खड़ा रहता है। यह प्रायः धान में पाई जाती है। इसे पशु नहीं खाते। उँगली सड़ने पर इसका राँग लगाया जाता है।

कनकुकुही– इसके फूल सफेद होते हैं। यह ताल में होती है। अरुई की तरह इसकी जड़ में गांठें पड़ती हैं। इसकी पत्तियाँ एक अंगुल चौड़ी और चार अंगुल लम्बी होती हैं। यह पानी पर तैरती सी रहती है। यह अधिकतर जड़हन धान में पाई जाती है। कुँआरी धान में यह कम होती है। इसे भी पशु नहीं खाते।

लापा—इसका पौदा एक बालिश्त से तीन हाथ तक का खड़े तने का होता है। इसकी पत्ती ३-४ अंगुल लम्बी और पतली होती है। यह घास ऊँची भूमि के खेतों में पाई जाती है। यह पहाड़ पर भी होती है। यह वर्षा ऋतु में उगती है और क्वाँर तक सूख जाती है। इसे पशु चरते हैं। यह प्रायः करछना और मेजा तहसील में मिलती है। यह घास चायल तहसील में भी पाई जाती है। वहाँ इसे 'लाँपा' कहते हैं। यह परेठ और खरीफ की फसल में भी होती है।

बउरी—इसका पौदा, केवल चार अंगुल का, बहुत छोटा होता है। इसकी पत्तियाँ एक या दो अंगुली की लम्बी और सुई की तरह पतली होती हैं। यह पहाड़ियों पर अधिक पाई जाती है। इसे पशु चरते हैं। इसके चावल को गरीब लोग खाते हैं। यह भी जमुना पार की ही घास है।

गँठजोर—इस घास की ऊँचाई एक फुट होती है। इसका तना खड़ा और कनखेदार होता है। इसके कनखे नरई की तरह पोले पोले हैं। इसकी गाँठ तोड़ कर जोड़ी जा सकती है और मालूम नहीं होती। यह बात दूसरी है कि टूटी हुई गाँठ का ऊपरी भाग सूख जाता है। भादों-क्वार से अगहन-पूस तक यह घास होती है। यह ससुर खदेरी नदी (अन्तर्वेद में स्थित यमुना की सहायक नदी) में विशेष रूप से पाई जाती है। यह तराई में जौ बोते समय जोत दी जाती है। इसे पशु खाते हैं।

गुड़भेलवा—इसकी पत्तियाँ गुड़ की भेली (बड़ी डली) की तरह गोली एवं घुँपादार होती हैं। इसकी ऊँचाई तीन इंच तक ही होने से इसका तना नहीं के बराबर मालूम पड़ता है। चैत के महीने में इसमें फल लगते हैं। इसके बीज राई या रामदाने से भी छोटे तथा लाल रंग के होते हैं। पशु इसको खाते हैं। यह भी ससुर खद्देरी नदी में अधिक पाई जाती है।

नाई—यह तालाबों में होती है। इसकी पत्ती इमली की सी होती है। यह लतादार होती है। इससे सफेद फूल निकलते हैं। यह धान को हानि पहुँचाती है। इसे पशु नहीं खाते। शरीर पर हुये फोड़े को शीघ्र फूटने के लिए लोग इसकी पत्तियों को पीस कर उस पर रख देते हैं।

मछेछी—यह तालाब की तराई में पानी सूख जाने पर उगती है। इसकी भी लता होती है। इसकी पत्तियाँ गोल और छोटी होती हैं। इसके जमने के समय क्वाँर-कार्तिक हैं। यह चैत तक रहती है। यह चने के पौदों को हानि पहुँचाती हैं। इसे मवेशी खाते हैं।

कँवरबँडेरवा—लतादार होने के कारण यह ज्वार-बाजरे पर चढ़ जाती है। इसके फूल सफेद और फल गोल होते हैं। इसकी पत्तियाँ अरहर की तरह लम्बी होती हैं। यह खरीफ की फसल को हानि पहुँचाती है।

चेना—इसका तना नाम मात्र का होता है। इसमें बीसों कनखे निकलते हैं। इसकी पत्तियाँ कुछ-कुछ चकवँड़ से मिलती-जुलती हैं। यह पहली वर्षा के बाद ही उग जाती है। यह खरीफ को हानि करती है। इसको जानवर भी खाते हैं। यह हंडिया तहसील के सेवाई परगने में विशेष रूप से पाई जाती है।

कनकौवा—इसकी पत्ती थोड़ी-सी चौड़ी और पाँच-छः अंगुल लम्बी होती है। इसका तना एक बालिश्त का होता है। यह धान और चौमस दोनों में पाई जाती है।

तालमखारा—इसका तना हाथ-डेढ हाथ लम्बा होता है। इसके तनों पर गाँठें होती हैं। इसके फूल बैंजनी रंग के होते हैं। पेटुवा (पटसन) की सी बड़ी इसकी पत्तियाँ होती हैं। यह तालाब में अधिक होती है। इसे बकरी तथा अन्य पशु भी खाते हैं। यह सिराथू तहसील में अधिक मिलती है।

बिलरा— इसकी पत्तियाँ तीन अंगुल तक लम्बी और आगे कुछ नोकदार होती हैं। ये पत्तियाँ चौड़ाई में बहुत कम होती हैं। यह घास लतादार होती है। यह छछड़ती अधिक है। यह चौमस में विशेष पाई जाती है। इसके फूल कुछ हरे रंग के होते हैं। यह करछना तहसील के अरैल परगने में अधिक होती है।

कसौंजी—इसके पौदे तीन-चार हाथ लम्बे होते हैं। इसकी पत्तियाँ चकवँड़ की सी होती हैं। यह खरीफ और रबी दोनों में होती है। इसे बकरियाँ खाती हैं।

(शेष पृष्ठ ५८ पर)

खेती और उर्वरक

रमेश चन्द्र तिवारी

जनसंख्या के आधिक्य एवं खाद्यान्न की न्यूनता के अगाध समुद्र में गोते लगाने को भारत उद्यत हो रहा है। ऐसी संकटापन्न परिस्थित के जबड़ों में जकड़े जाने के पूर्व ही इसके निवारणार्थ प्रयत्न करना प्रत्येक नागरिक का परम कर्तव्य है। ये प्रयत्न दो प्रकार के होंगे :—

१. जनसंख्या-वृद्धि की रोकथाम तथा
२. खाद्यान्नों का अधिकतम उत्पादन।

जनसंख्या की रोकथाम उतनी ही कठिन है जितना कि अत्यन्त कटीली झाड़ियों के बन को किसी अनियंत्रित यन्त्र से काटना। अतः खाद्यान्नों का अधिकतम उत्पादन ही भारत को उन्नत कर सकता है, जिसके दो उपाय हैं :—

> जनसंख्या की वृद्धि के साथ ही अधिक अन्नोत्पादन की आवश्यकता हमारे देश की मुख समस्या है। इसको हल करने के लिए कृत्रिम खादों या उर्वरकों का देश में ही निर्माण करके उनका खेतों में उपचार कर उर्वरता को स्थिर करते हुए प्रतिवर्ष अधिक अन्न उपजाना हमारी राष्ट्रीय सरकार का प्रधान लक्ष्य है।

१. सघन खेती तथा
२. उन्नत खेती।

हमारे देश में अब कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल अपने चरम पर है इसलिए उन्नत खेती ही मात्र उपाय रह जाता है जिसका उद्देश्य कृषि साधनों को सुलभ बनाकर पैदावार बढ़ाना है। इसके निम्न उपाय हैं :—

१. स्वस्थ तथा उन्नतशील बीजों का उपयोग
२. कृषकों को कृषि विज्ञान से परिचित कराना
३. सिंचाई के साधनों को उपलब्ध करना
४. उन्नत कृषि-यन्त्रों का उपयोग
५. खादों एवं रासायनिक उर्वरकों का समुचित उपयोग।

उपरोक्त उपायों से पैदावार में ७५ प्रतिशत वृद्धि की जा सकती है। किन्तु इसमें भूमि को उपजाऊ बनाना ही मुख्य रास्ता है।

रासायनिक उर्वरक :—वे रासायनिक "कृत्रिम" पदार्थ जिनमें पौधों के भोजन के प्रमुख तत्व विद्यमान रहते हैं उर्वरक कहलाते हैं, चाहे वे अलग-अलग हों या मिश्रित हों। वे भिन्न-भिन्न रासायनिक और भौतिक क्रियायों से निर्मित किये जाते हैं।

रासायनिक उर्वरक भूमि में तमाम रासायनिक एवं भौतिक क्रियायों के थपेड़ों से टूटकर छोटे-छोटे घी से परिपूर्ण रोटी के टुकड़ों की तरह पौधों के लिये स्वादिष्ट पचनशील और पौष्टिक बन कर उनके भोजन के रूप में प्रयुक्त होते हैं। वे भूमि के अन्य तत्वों के साथ मिलकर जीवाणुओं द्वारा परिष्कृत हो घोल के रूप में, जड़ों के मूलरोम से स्पर्श और शोषित होकर पौधों के उपयुक्त तत्वों के रूप में काम आते हैं।

रासायनिक उर्वरकों का चुनाव :—किसी भी में भूमि में किसी उर्वरक को देने के पूर्व निम्न बातें ध्यान में रखनी आवश्यक हैं :

१. भूमि की दशा तथा उसका रासायनिक संगठनः—यदि किसी भूमि में पोधों के द्वारा ग्राह्य प्रमुख तत्व वर्तमान हों तो उसमें उर्वरकों की आवश्यकता नहीं होती किन्तु जो तत्व अनुपस्थित होते हैं उनको देना आवश्यक है। साथ ही साथ भूमि, नमी की मात्रा, वायु का उचित संचार, भूमि की अम्लीयता तथा क्षारीयता पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

२. जलवायुः—सूखे क्षेत्रों में उर्वरक देने से कुछ उर्वरक हानि पहुँचाते हैं। अधिक गरम भागों में पोटाश उर्वरकों के डालने से फसलों के पकने का समय बढ़ जाता है।

३. फसल के प्रकार :—विभिन्न प्रकार की फसलों के लिये विभिन्न उर्वरक लाभप्रद होते हैं।

४. आर्थिक गुण :—उर्वरक का मूल्य पैदावार के लाभ से कम होना चाहिये।

५. उर्वरकों के गुण :—उर्वरकों के गुण निम्न बातों पर निर्भर करते हैं :—
अ—उर्वरक में प्रमुख तत्व की मात्रा
आ—उर्वरक को भूमि में डालने पर उसके उपयुक्त बनने की गति
इ—उनका भूमि की अम्लीयता तथा क्षारीयता पर प्रभाव
ई—उनमें मिश्रित सुधारकों की मात्रा
उ—उनसे प्राप्त तत्वों की भूमि में उपयुक्तता तथा विलेयता।

जब तक उपरोक्त बातों का ज्ञान ठीक से न होगा एवं उनका उचित ढंग एवं उचित मात्रा में प्रयोग न होगा, उर्वरकों से समुचित लाभ नहीं प्राप्त हो सकता।

उर्वरकों के प्रकार :—रासायनिक उर्वरक मुख्यत: तीन प्रकार के हैं :—
१—नाइट्रोजनीय, २—फासफेटीय, ३—पोटैसीय।

इन तीनों प्रकारों के अतिरिक्त जैव उर्वरक अथवा सूक्ष्म तत्वों से युक्त उर्वरक भी कृषि में प्रयुक्त होवे हैं।

उपरोक्त तीनों में पोटैसिक उर्वरक हमारे देश में अधिक प्रयोग में नहीं लाया जाता क्योंकि भारतीय मिट्टियों में इस तत्व की प्रचुर मात्रा पहले से ही है। किन्तु अन्य दो अधिक मात्रा में उपयोग में लाये जाते हैं।

भारतवर्ष में नाइट्रोजनीय उर्वरक निम्नलिखित स्थानों से प्राप्त हो रहे हैं :

स्थान	उर्वरक की मात्रा १० लाख टनों में
१९५८ तक सिन्दरी से	०.०८६
१९६१ तक	०.११८
नंगल	०.०४६
राउरकेला	०.०७६
अन्य	०.०५५

कुल मिलाकर २.८५ लाख टन नाइट्रोजनीय उर्वरक तैयार किया जायगा। जिससे २.८७ लाख टन अन्न में बृद्धि होगी।

नाइट्रोजनीय उर्वरक :—निम्नलिखित तालिका में मुख्य नाइट्रोजनीय उर्वरकों के नाम एवं उनसे प्राप्त नाइट्रोजन को मात्रा तथा मिट्टी में उनके रासायनिक प्रभाव अंकित हैं :—

उर्वरक	नाइट्रोजन की मात्रा%	रासायनिक प्रभाव
शुष्क अमोनिया	८२	अम्लता
अमोनियम सलफेट	२१	”
अमोनियम नाइट्रेट	३५	”
मूत्र की खाद	४६	”
अमोनियम क्लोराइड	२६	”
कैलसियम सायनामाइड	२२	क्षारीयता
सोडियम नाइट्रेट	१६	”
अमोनियम फासफेट	११	अम्लता
सूखे खून की खाद	१०	”

भूमि में डालने पर नाइट्रोजन उर्वरक ५० प्रतिशत पौधों के काम में आते हैं और शेष नाइट्रोजन भूमि के जीवाणुओं द्वारा प्रयुक्त होता है। साथ ही साथ संचय भी हो जाता है।

नाइट्रोजन की कमी के मुख्य लक्षण :—

अ—पौधों का मन्द मन्द बढ़ना और पत्तियों का पीला पड़ना
ब—फसल पकने से पहले पत्तियों का गिर जाना
स—पौधों की निचली पत्तियों का झुलस जाना
द—दानों का उचित संगठन न होना।

फासफेटिक उर्वरक :- भूमि में नाइट्रोजन उर्वरकों के साथ साथ फासफेट युक्त उर्वरक भी आवश्यक हैं। सुपरफासफेट, हड्डी का चूरा तथा अमोनियम फासफेट ऐसे प्रमुख उर्वरक हैं जिनमें वर्तमान फासफोरिकाम्ल का प्रतिशतत्व इस प्रकार है :

सुपर फासफेट	३०-३२
हड्डी का चूरा	२०-२१
अमोनियम फासफेट	१८-२०

हमारे देश में नाइट्रोजन उर्वरकों से भी कम मात्रा में फासफेटिक उर्वरक तैयार किये जाते हैं।

भूमि में फासफोरस की कमी के लक्षण :--

(अ) पौधों की निचली पत्तियों पर सफेद दाग
(ब) पत्तियों का भूरा रंग तथा उनका मुड़ जाना
(स) बालों में अप्रौढ़ दाने एवं उनका देर से पकना

खेतों मे उर्वरक देने की विधियां :-- उर्वरक डालने की विधि फसल के प्रकार, मौसम, उर्वरक की प्रवृति आदि बातों पर निर्भर करती है .

१--कुंडों और नालियों में उर्वरक देना
२--जड़ों के चारों ओर उर्वरक देना
३--उर्वरक डालने वाले विशेष यंत्रों का प्रयोग।

भूमि में रासायनिक उर्वरक देने के साथ-साथ कार्बनिक खादें देना लाभदायक है। ये कार्बनिक खादें भूमि के जीवाणुओं को भोज्य पदार्थ देकर उनकी रासायनिक प्रतिक्रियाओं को प्रोत्साहित करके पौधों के लिये तत्व उपलब्ध बनाती हैं। भूमि में नमी की रोकथाम, उचित हवा का संचार , भूमि तत्वों का च्यावन आदि क्रियाओं को प्रभावित कर कार्बनिक खादें भूमि को उपजाऊ बनाती हैं। सूक्ष्म तत्वों की कमी से फसलों में नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं अतः अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में तांबा, जस्ता,लोहा तथा मालिब्डनम डालकर उर्वरक की शक्ति को और बढ़ाया जा सकता है।

किसी ने लिखा है भारतीय खेती मानसूनी जुआ है जिसका फल हम सबके सामने है। सब कुछ उपलब्ध होते हुये भी यदि कहीं असिंचित क्षेत्रों में उर्वरक डालने पर वृष्टि न हुई तो कृषकों की आशा पर पानी फिर जाता है और कृषक उर्वरकों का देना सदा के लिए बन्द कर देते हैं। उर्वरकों का प्रयोग वहाँ करना चाहिये जहाँ सब साधन उपलब्ध हों तथा उनका उचित ढंग से उपयोग हो। रासायनिक खादों का अनुचित एवं अन्धाधुन्ध उपयोग करने से कृषकों को लाभ की जगह हानि होगी। उनके उचित उपयोग में ही कृषकों का कल्याण निहित है।

———

जापानी ढंग से धान की खेती

एन० के० दास

गत कई वर्षों से हमारे प्रदेश में जापानी ढंग से धान की खेती का प्रचार हो रहा है। जिन जिलों की मुख्य फसल धान है, वहाँ के किसान इस ढंग से भली भाँति परिचित हैं। जापानी ढंग की खेती के मुख्य अंग उन्नत बीज, प्रचुर मात्रा में खाद और कीड़े व बीमारी की रोकथाम हैं। इसके अलावा कतारों में बोना, गुड़ाई व निकाई का भी बड़ा महत्व है। जापानी ढंग की खेती में ऐसी कोई बात नहीं है जिसके बारे में लोगों को जानकारी न हो। इसी बिचार से हीं हमारे कृषि मंत्री जी ने पिछले साल किसान लोगों को यह बताया था कि जापानी ढंग से धान की खेती कुशल किसान के ढंग हैं। इस ढंग में जो भी नई बातें बताई गई हैं वह किसी न किसी फसल का उन्नत ढंग या रीति मानी गई है।

> अधिक धान पैदा करने के लिये जापानी ढंग से खेती करना अब सामान्य पद्धति बन चुकी है। प्रस्तुत लेख इस पद्धति के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को उपस्थित करता है।

जापानी किसान बेड़ बोने के लिये बीज को पहले ही छाँट लेते हैं। ऐसा बीज चुन लेते हैं जिसमें किसी प्रकार की बीमारी न हो और दाने मोटे हों। बीज नमक के घोल में डाल दिया जाता है। इसमें हल्का बीज पानी में ऊपर तैरता रह जाता है और उसे अलग कर दिया जाता है। स्वस्थ बीज नीचे बैठ जाते हैं। जापान में अच्छा बीज छांटने के लिये इसी रीति को प्रयोग में लाया जाता है। धान की खेती हो या किसी और फसल की लेकिन बीज बढ़िया होना चाहिये। यदि अपने बीज पर आपको विश्वास हो तो नमक के घोल में डालने की कोई आवश्यकता नहीं है। उचित तो यह होगा कि जो बीज बोने के लिये अलग रक्खा गया हो, उसे थोड़े नमक के घोल में जांच लिया जाय कि बीज अच्छे हैं या नहीं।

जापानी किसान बीस फुट लम्बी और चार फुट चौड़ी क्यारी में बेड़ लगाते हैं। इसका वैज्ञानिक कारण यह है कि पौधा शुरू की अवस्था में ज्यादा पानी सहन नहीं कर सकता है। जापान में धान की बेड़ ठीक उसी प्रकार तैयार की जाती है जैसे किसान सब्जी की छोटी छोटी क्यारियाँ तैयार करते हैं। इससे लाभ यह होता है कि पौधे जल्दी बढ़ जाते हैं और रोपने के योग्य हो जाते हैं। यह मानी हुई बात है कि धान की फसल को पानी प्रचुर मात्रा में चाहिये और पानी अधिक होने से खेत में धान खूब बढ़ता है; पर कुशल किसान यह भी जानते हैं कि बीज बोने के बाद खेत में ज्यादा पानी होने से पौधों की बाढ़ मारी जाती है।

किसी भी फसल की निकाई, गुड़ाई करने से उसके पौधे स्वस्थ और सबल होते हैं। जापानी ढंग की खेती की यह रीति कोई नई नहीं हैं। सभी किसान यह जानकारी

रखते हैं। अब रही खेत की लम्बाई चौड़ाई की बात । जापानी ढंग में २५ फीट लम्बे और ४ फीट चौड़े खेत तैयार किये जाते हैं। खेत की लम्बाई चौड़ाई पर सिंचाई और निकाई-गुड़ाई की सुविधा निर्भर है। सिंचाई के साथ यह भी आवश्यकता है कि पानी का निकास बराबर होता रहे और खेतों में पानी जमा न रहे । इसी सुविधा को ध्यान में रखते हुये जापान में धान की बेड़ २० फुट से २५ फुट लम्बे खेतों में तैयार की जाती है। यह रीति जापान की सिंचाई के साधन के अनुकूल है। यह तो सभी जानते हैं कि चार फुट से ज्यादा चौड़े खेतों की निकाई-गुड़ाई में कठिनाई होती है।

चित्र—जापानी ढंग से धान की रोपाई

जापानी किसान पौधे को १०-११ इंच पर कतारों में खेतों में लगाते हैं और एक दो से अधिक पौधे नहीं रोपते। हमारे यहाँ के किसान एक ही साथ ५-५ या ७-७ पौधे लगा देते हैं और उनके बीच की दूरी का कोई ध्यान नहीं रखते। इसका परिणाम यह होता है कि बहुत सी पौद सूख जाती हैं व निकाई, गुड़ाई और खाद देने में असुविधा होती है। कतार में पौधे लगाने का उद्देश्य यही है कि निकाई, गुड़ाई में आसानी हो । प्रयोग शाला में यह सिद्ध हुआ है कि एक एकड़ के लिये ६ से ८ सेर तक बीज की पौद प्रर्याप्त होगी और एक स्थान पर दो से अधिक पौदे लगाने में कोई विशेष लाभ नहीं होगा। जापानियों की यह रीति प्रदेश के अनुसंधानकर्ताओं ने उचित मानी है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कतार में बोना कुशल किसान का ढंग है, अतः इसको जापानी ढंग की खेती का एक अंग कहना ठीक न होगा।

इसके बाद खाद के प्रयोग का प्रश्न है। खाद दो प्रकार की होती है—वानस्पतिक व रासायनिक। धान की अच्छी पैदावार के लिये दोनों ही आवश्यक हैं। यह जापानियों का मत है और इससे अपने देश के अनुसंधानकर्ता भी सहमत हैं लेकिन जापानी किसान जिस मात्रा में खाद देते हैं उससे हमारे अनुसंधानकर्ता समहत नहीं हैं। इसके तीन कारण हैं:—

१—जापान में धान की जातियों को खाद प्रचुर मात्रा में चाहिए।

२—जापान में धान यहां की अपेक्षा पकने में अधिक समय लेता है।

३—अपने देश में धान की जातियां उतनी खाद सहन नहीं कर पातीं जितनी कि जापान में दी जाती है।

इसीलिये हमारे अनुसंधान कार्य करने वालों ने यह विचार प्रकट किया है कि धान के लिये सवा मन से अधिक सल्फेट आफ् अमोनिया की खाद देने की आवश्यकता नहीं है और सुपरफासफेट व हड्डी का चूरा डेढ़ मन से अधिक न प्रयोग किया जाय। धान की पौद बैठाने के पहिले डेढ़ मन सुपरफासफेट देकर ढैंचा की हरी खाद बो दी जाय और खड़ी फसल में डेढ़ मन सल्फेट आफ अमोनियम देना उचित होगा। इतनी खाद से औसत पैदावार में ३० प्रतिशत वृद्धि की आशा है।

धान के मुख्य शत्रु गंधी से बचाव के लिये गेमैक्सीन नामक एक दवा का प्रयोग लाभदायक पाया गया है। गंधी से हमारे प्रदेश में धान की फसल को बड़ी हानि होती है। गैमेक्सीन के प्रयोग में खर्च बहुत कम पड़ता है और लाभ खर्च का चौगुना होता है।

प्रदेशीय सरकार ने कुछ साल से प्रतियोगिता की एक योजना चलाई है और इसके लिये बजट में व्यवस्था की जाती है। जिन तीन जिलों में जापानी ढंग से धान की खेती का क्षेत्र सबसे अधिक होगा उन्हें क्रमशः १२,०००, १०,००० तथा ८,००० रु० का पुरस्कार दिया जायगा। यह धन जिले के उन तीन ग्रामों को मिलेगा जिनमें जापानी धान का क्षेत्र सबसे अधिक होगा। किस प्रकार व किन कार्यों पर यह धन खर्च किया जायगा, इसका ग्रामवासी स्वयं निर्णय करेंगे। एक वर्ष वाराणसी, फैजाबाद और बस्ती—प्रथम, द्वितीय और तृतीय घोषित हुये थे। प्रथम पुरस्कार का धन वाराणसी जिले के तीन ग्रामों-घाटमपुर, मवैया और सोन्हौला में खर्च किया गया। ऐसे ही फैजाबाद जिले के तीन ग्रामों-चांदपुर कैल, अमौना और तेंदुआ माफी में द्वितीय पुरस्कार का धन खर्च हुआ और बस्ती जिले के सोहना, मनकापुर और सिकौठा में तृतीय पुरस्कार का धन लगाया गया।

—कृषि और पशुपालन के सौजन्य से

कृषि कर्म में खर-पतवारों का महत्व

(पृष्ठ ५१ का शेष)

मुसेल—इसकी पत्ती लम्बी और पतली होती है जो कुछ-कुछ धान की पत्तियों से मिलती जुलती है। यह ४-५ हाथ तक ऊँची होती है। यह आषाढ़ में उगती है। यह चौमस और बजरिहा दोनों प्रकार के खेतों में पाई जाती है।

मुसेली—इसके सब लक्षण लगभग मुसल की ही तरह हैं। अन्तर केवल यह है कि यह गमकती है जब कि मुसेल से गमक नहीं निकलती।

पौधों और पशु-जीवन पर प्रकाश का प्रभाव

(संकलित)

अमेरिका कृषि विज्ञान एवं अनुसंधान पर अत्यधिक निर्भर है। पौधों और पशुओं के विकास पर प्रकाश के प्रभावों का अध्ययन करने वाले अमेरिकी वैज्ञानिकों ने ऐसी फसलें, जो एक वर्ष में दो या अधिक बार उत्पन्न की जा सकती हैं और ऐसी मुर्गियाँ, जो अपेक्षाकृत अधिक अण्डे दे सकती हैं, विकसित की हैं।

अमेरिका के कृषि विभाग के वैज्ञानिकों को ३२ वर्ष या उससे भी कुछ समय पूर्व से यह ज्ञात है कि मिट्टी और जलवायु की ही भाँति दिन की लम्बाई भी पौधों को किसी विशेष क्षेत्र के अनुकूल बनाने में योग देती है। इस प्राकृतिक नियम की खोज १९२० में तम्बाकू के पौधों के विकास के सम्बन्ध में की गई। विज्ञान और अनुसन्धान वर्षों से अमेरिकी किसानों की सहायता करते आ रहे हैं इसी का यह परिणाम है कि आज अमेरिकी किसान का उत्पादन १८७० के उत्पादन के लगभग ७-गुने के बराबर हो गया है।

तम्बाकू के पौधे पर प्रयोग

उस समय अनुसन्धान के फलस्वरूप इस बात का पता चला कि जखीरे में लगाये गये तम्बाकू के पौधों में जाड़े भर अच्छी तरह फूल आये, किन्तु पतझड़ आते ही वे फूल न देने की अवस्था में पहुँच गये। धैर्यपूर्वक अध्ययन करने पर पता चला कि तम्बाकू के पौधे में इस परिवर्तन का सम्बन्ध मिट्टी और ताप से नहीं था। फिर, ऐसे परीक्षण किये गये जिनमें पौधों को आठ घण्टे दिन का प्रकाश और १६ घण्टे अंधेरा दिया गया। इन परीक्षणों के फलस्वरूप यह पता चला कि इस दिशा में नियन्त्रणकारी तत्व दिन-रात का चक्र है। इस खोज को चित्राविधि-सिद्धांत—फोटोपीरियाडिज्म—कहा जाता है। इस समय संसार के कितने ही अन्य भागों में उसका अध्ययन हो रहा है। जर्मनी के वैज्ञानिक इस का अध्ययन कर रहे हैं कि चुकन्दर के विकास पर प्रकाश का क्या प्रभाव पड़ता है। जापान में चित्रावधि सिद्धांत का प्रयोग धान के विकास पर तथा पोर्टोरिको और हवाई में गन्ने के विकास पर हो रहा है। इसी प्रकार के प्रयोग इंगलैण्ड और नीदरलण्ड में भी चल रहे हैं।

कृत्रिम प्रकाश का उपयोग करने के फलस्वरूप, पौध उत्पादक ऐसी फसलें विकसित करने में सफल हुए हैं, जो वर्ष में दो बार उत्पादित की जा सकती हैं। इसका

एक उदाहरण डैलिस घास है, जो अमेरिका के दक्षिणी भाग की एक महत्वपूर्ण ग्रीष्म कालीन घास है। नियंत्रित प्रकाश का उपयोग करके वैज्ञानिकों ने ऐसी वर्णसंकर फसलें तैयार कीं, जिनके बीजों पर गेरुई रोग का प्रभाव नहीं पड़ता। इस रोग के कारण अमेरिका में प्रयोग में लाने योग्य बीजों का उत्पादन करना सर्वथा असम्भव हो गया था। ऐसी दशा में अमेरिका में बोने के लिये डैलिस घास के बीज महँगे भाव पर आस्ट्रेलिया से मँगाने पड़ रहे थे। किन्तु अब, वर्णसंकर कलमें विकसित करके अमेरिका घास की ऐसी किस्में पैदा कर सकता है, जिन पर गेरुई रोग का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। यह सब नियन्त्रित प्रकाश के उपयोग का परिणाम है।

फार्मों पर कितने ही वर्षों से अण्डा-उत्पादन में वृद्धि करने के उद्देश्य से जाड़े में सामान्य मुर्गी के दरबों में कृत्रिम प्रकाश की व्यवस्था की जाती है। किसानों का विश्वास था कि प्रकाश में अधिक घण्टों तक अधिक चारा खाने से ही मुर्गियां अधिक अण्डे देती हैं। किन्तु, अब इस रहस्य का उद्घाटन हो चुका है कि प्रकाश से कुछ ऐसे अन्य तत्वों का उद्भव होता है, जो प्रजनन और अण्डा देने की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

मुर्गियों सम्बन्धी विशेष परीक्षण

लगभग दो वर्ष पूर्व अमेरिका में इस बात के वैज्ञानिक-परीक्षण किये गये कि मुर्गियों के अण्डा देने वाले दरबों में अति-लाल कीटाणुनाशक लैम्पों का उपयोग करने से क्या प्रभाव पड़ता है? लगभग ५ वर्ष की अवधि में सम्पन्न अनेक परीक्षणों की अवधि में मुर्गियों को सूर्य की रोशनी से अलग हटा कर कृत्रिम प्रकाशयुक्त कक्षों में लगातार अति-लाल विकिरण के प्रभाव के अन्तर्गत रखा गया। इन परीक्षणों के परिणाम-स्वरूप यह पता चला कि ये मुर्गियां उन्हीं परिस्थितियों में अति-लाल प्रकाश से विहीन कक्षों में रखी गयी मुर्गियों की अपेक्षा १० से १६ प्रतिशत अधिक अण्डे देती हैं। इसके पूर्व केवल इतना ही ज्ञात था कि अति-लाल प्रकाश के प्रभाव के अन्तर्गत मुर्गियों में विटामिन-डी की वृद्धि होती है। किन्तु अति-लाल किरणों के प्रभाव के सम्बन्ध में नवीन जानकारी यह है कि चूज़ों को अपने चारों से अधिक मात्रा में विटामिन-डी प्राप्त होता है।

अमेरिका में ये अध्ययन बड़ी सावधानी से किये जाते हैं। इसके लिए भूमि के नीचे एक विशेष प्रकार का कक्ष बनाया गया है। इस कक्ष के वातावरण को नियन्त्रित अवस्था में लाने के उद्देश्य से उसे वातानुकूलित कर रखा गया है। समूचे कक्ष को अत्याधिक चमकते हुये श्वेत रंग से रंग दिया गया है। उसमें प्रतिबिम्ब उत्पादन करने के लिए किसी अन्य साधन की व्यवस्था नहीं की गयी है। इसमें विद्युत् लैम्पों से इतना प्रकाश भर दिया जाता है, जो लगभग २,००० फुट की मोमबत्ती के प्रकाश के बराबर होता है। यह अपनी कोटि की सर्वप्रथम प्रयोग शाला है। यहां के वैज्ञानिक

उपर्युक्त प्रकार के प्रकाश-उपकरण प्राप्त करने के लिए विद्युत-प्रकाश उद्योग से निकट सम्पर्क बनाये रखते हैं।

चित्रावधि-सिद्धांत, की जानकारी के फलस्वरूप, पौध-वैज्ञानिक परिस्थितियों के अनुकूल फसलों के पौधे विकसित करने में समर्थ हुए हैं और विशेष स्थानों के लिए विशेष प्रकार के पौधे तैयार किये गये हैं। उन्होंने अमेरिका के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पन्न करने के लिए सोयाबीन की उपयुक्त किस्में विकसित की हैं। उन्होंने यह खोज की है कि स्वीट स्पेनिश और साउथपोर्ट ग्लोब किस्म की प्याजें दक्षिण के राज्यों में नहीं उत्पन्न हो सकतीं, क्योंकि यहां दिन इतने छोटे होते हैं कि प्याज का आकार बढ़ नहीं सकता।

तम्बाकू और कहवा की कुछ किस्मों पर प्रकाश की तीव्रता का तत्काल प्रभाव पड़ता है। फलस्वरूप, कुछ क्षेत्रों में जहाँ इन किस्मों का उत्पादन होता है, तम्बाकू और कहवा के खेतों को कपड़ों या अन्य प्रकार की चद्दरों से ढक दिया जाता है। जखीरे चलाने वाले किसान कृत्रिम प्रकाश और अंधेरे का उपयोग कर के हर दूसरे सप्ताह बाजार के लिए गुलदाउदी का फूल तैयार कर सकते हैं। कुछ उत्पादक प्रकाश को नियन्त्रित करके विशेष राष्ट्रीय छुट्टियों के लिए इन फूलों को तैयार कर लेते हैं।

पशु-पालन और अन्य क्षेत्रों में कार्य

यद्यपि पशुओं के विकास पर प्रभाव के सम्बन्ध में बहुत ही कम अनुसन्धान हुआ है, फिर भी यह ज्ञात हो चुका है कि दूध देने वाले पशुओं की प्रजनन-शक्ति और उत्पादन-क्षमता पर प्रकाश-विकिरण का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। बिजली के लैम्पों का प्रयोग हाट-व्यवस्था जैसे कृषि के कितने ही अन्य क्षेत्रों में भी उत्तरोतर अधिक महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत कर रहा है। इस क्षेत्र में तम्बाकू, कपास तथा उन दूसरी वस्तुओं के श्रेणीकरण के लिए, जिनमें रंग का विशेष महत्व होता है, बिजली के लैम्पों के प्रकाश की तीव्रता और रंग के सम्बन्ध में अध्ययन हो रहा है। अण्डों की टिकियाँ तैयार करने में प्रयुक्त करने के लिए विशेष प्रकार के लैम्पों को विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है। अभी इस कार्य के लिए लैम्प का कोई विशेष प्रतिमान तैयार नहीं हो सका है। उन प्रक्रियाओं में प्रकाश की मात्रा और तीव्रता का विशेष महत्व है, जो किस्म की जाँच करने के लिए टिकिया तैयार करने वाली मशीन से देखने पर रंग के स्वरूप पर निर्भर करती हैं।

कृषि सम्बन्धी अनुसन्धान का एक विशेष उद्देश्य अच्छे और सुधरे किस्म के खाद्य-पदार्थ और वस्त्र तैयार करना है। अत: ये प्रयोग होते रहेंगे। पौधों और पशुओं के विकास और जीवन पर प्रकाश के प्रभावों की जानकारी जैसे-जैसे बढ़ती जाएगी, वैसे ही व्यवहार में लाने योग्य नयी रीतियां विकसित होती जायेंगी।

———

किसानों के लिए समृद्धि का नया स्रोत–अणुशक्ति

(संकलित)

अणु-विकिरण आज चिकित्सा-विज्ञान, औषधि-विज्ञान, उद्योग एवं व्यवसाय के क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि कृषि के क्षेत्र में भी जिस क्रान्ति का सूत्रपात कर रहा है, उसकी झांकी नई दिल्ली स्थित विश्व-कृषि प्रदर्शनी में स्थित अमेरिकी मेले के अणुशक्ति कक्ष में बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की गई थी। इस कक्ष का निरीक्षण करने से इस बात का भली प्रकार आभास होता था कि कम लागत पर अधिकाधिक खाद्य-पदार्थ तैयार करने में अणु-विकिरण किसानों की कितनी सहायता कर रहा है। कम लागत पर अधिक अन्न उत्पन्न करने के लिए अणुशक्ति ने किसानों को जो नवीन उपकरण सुलभ किया है, वह आज समस्त संसार में 'रेडियो-आइसोटोप' की खोज २० वीं सदी की एक सब से बड़ी और महत्वपूर्ण खोज है।

पौधों की नस्ल में सुधार

अमेरिका में वैज्ञानिक किसानों के हितार्थ पौधों की नस्ल और कोटि में सुधार करने के लिए अणु-विकिरण का उपयोग कर रहे हैं। इस दिशा में अब तक जो परिणाम प्राप्त हुए हैं, उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि अणु-विकिरण की सहायता से अनेक पौधों की नस्ल और कोटि में इतना अधिक सुधार किया जा सकता है, जिसे सामान्य ढंग से करने के लिए सैकड़ों वर्षों की आवश्यकता होगी। अब यह सिद्ध हो गया है कि अणु-विकिरण की सहायता से पौधों की नई, मजबूत, रोग-प्रतिरोधक तथा अधिक उत्पादनशील नस्लों का विकास किया जा सकता है। वैसे तो पौधों की नस्ल और कोटि में स्वाभाविक रूप से परिवर्तन की प्रक्रिया होती रहती है, परन्तु यह प्रक्रिया इतनी मन्द होती है कि इसे पूरा होने में सैकड़ों वर्ष लग जाते हैं। अणु-विकिरण की सहायता से इस प्रक्रिया को अल्प काल में ही पूर्णता प्रदान करना सम्भव हो गया है।

रेडियो-आइसोटोप के आविष्कार के पूर्व इस कार्य के लिए वैज्ञानिक रेडियो और एक्स-रे का उपयोग करते थे, लेकिन यह कार्य बहुत सीमित पैमाने पर किया जाता था। रेडियो-आइसोटोप का निर्माण प्रारम्भ होने के बाद से यह शोध-कार्य बहुत बड़े पैमाने पर हो रहा है।

यह अध्ययन और अनुसन्धान दो उद्देश्यों से किया जा रहा है: विकिरण प्रभावित प्रजनन प्रक्रिया और प्रजनन-विज्ञान के बारे में और अधिक जान कारी प्राप्त करना, कृषि

समस्याओं के समाधान के लिए विकिरण शक्ति के उपयोग की व्यावहारिक जानकारी संग्रह करना।

पशुओं की नस्ल में सुधार

अमेरिका के कई दक्षिणी राज्यों में अच्छी नस्ल के पशु नहीं पनपने पाते, क्योंकि वहां की गर्म और नम जलवायु उनके अनुकूल नहीं पड़ती। अतएव वहां ऐसी नस्ल के पशुओं का विकास करने पर अमेरिकी वैज्ञानिक विशेष बल दे रहे हैं, जो उस प्रकार के जलवायु को झेलने में समर्थ हों। रेडियो-आइसोटोप की खोज के पूर्व यह ज्ञात करने की लिए वैज्ञानिकों के पास कोई साधन न था कि कोई पशु कितने अधिकतम ताप को सह सकता है। अब वैज्ञानिकों ने रेडियो-आइसोटोप की सहायता से इसका एक अच्छा उपाय खोज निकाला है। पशुओं को विभिन्न तापों में रखा जाता है और उनके शरीर में रेडिय-सक्रिय आयोडीन इंजेक्शन के द्वारा प्रविष्ट कर दिया जाता है। इसके उपरान्त एक गणक-यन्त्र द्वारा गल-ग्रन्थि में पहुचने वाले रेडियो-सक्रिय आयोडीन को माप लिया जाता है। इस प्रकार की विधि द्वारा ऐसे पशुओं का पता लगाना सरल हो गया है, जो अधिक ताप सहने की क्षमता रखते हैं। इसके बाद अधिक ताप सह्य नस्ल का विकास करने के लिए इस प्रकार चुने गए पशुओं का उपयोग किया जाता है।

पोषक चारे की खोज

किसानों के समक्ष एक बड़ी समस्या यह भी थी कि पशुओं के लिए किस प्रकार का चारा पोषण की दृष्टि से सर्वोत्तम है तथा किस प्रकार के पशु के लिए कौन सा चारा सर्वोत्तम होगा। अमेरिकी वैज्ञानिकों ने रेडियो-आइसोटोप का सहारा लेकर उनकी इस समस्या को भी सुलझाने का भरसक प्रयास किया है। टेनेसी के वैज्ञानिक शरीर जनित और चारा-जनित कैलशियम और फासफोरस की पहिचान करने में समर्थ हो गए हैं। अण्डों तथा दूध इत्यादि पर भी इसी प्रकार के परीक्षण किए गए है। इन परीक्षणों से यह पता लगाया गया है कि इनके निर्माण में पशु के शरीर और चारे का कितना आनुपातिक योग रहता है। इस प्रकार के अध्ययन से पोषण की महत्पूर्ण प्रक्रिया के बारे में स्पष्ट जानकारी प्राप्त हुई है। रेडियो-अंनुसूचक की सहायता से यह पता लगा है कि भेड़ों को जो एल्फाएल्फा घास खिलाई जाती है, उसमें विद्यमान फासफोरस का ६० प्रतिशत तक भेड़ें आत्मसात कर लेती हैं। पहले यह अनुमान केवल २० प्रतिशत का था। इसी प्रकार अन्य बहुत से चारों की पोषक शक्ति का सही पता लगाया गया है और इन तथ्यों को दृष्टि में रख कर पशुओं के चारे में आवश्यक परिवर्तन किए गए हैं। इन परिवर्तनों से प्राप्त परिणाम अत्यधिक उत्साहवर्धक हैं। न केवल पशुओं के स्वास्थय में सुधार हुआ है, वरन् वे अधिक उत्तम कोटि का और अधिक उत्पादन करने में समर्थ हुए हैं।

कीटमार औषधियों के निर्माण में

कीटमार औषधियों के प्रभाव और उपयोगिता सम्बन्धी अध्ययन में रेडियो सक्रिय कीटमार औषधियाँ महत्वपूर्ण योग दे रही हैं। रेडिय-सक्रिय कीटमार औषधियों का पौधों

पर उपयोग कर इस सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त की जा रही है कि कितने परिमाण में कीटमार औषधि का उपयोग होना चाहिए तथा उसका प्रभाव कितने समय तक चलता रहता है और विभिन्न कीड़ों में वह कितनी मात्रा में आत्मसात होती है

इस प्रकार के अनुसन्धान-कार्य के लिए आजकल कार्बन-१४, आयोडीन-१३१, गंधक ३५ इत्यादि का उपयोग किया जा रहा है। रोग सहनशीलता रखने वाले तथा इस क्षमता से शून्य पौधों द्वारा आत्मसात किए गए परिमाण की तुलना कर सहनशीलता के कारणों की खोज कर ली गई है। मक्खी इत्यादि अनेक कीडों की गतिविधियों और रोग फैलाने के तरीकों की भी अनुसूचक विधि की सहायता से पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर ली गई है। रोग फैलाने वाले अनेक अन्य कीड़ों पर रेडियो-फासफोरस छिड़क कर यह पता लगाया गया है कि वे किस प्रकार घरों के अन्दर प्रविष्ट हो जाते हैं। यही नहीं, मधु-मक्खियों के मधु संग्रह करने की विधि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए भी रेडियो-आइसोटोप बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

शरीर रचना में

अमेरिका में पशुओं की शरीर रचना के अध्ययन के लिए भी रेडियो-आइसोटोप का व्यापक पैमाने पर उपयोग होने लगा है। गाय की शरीर रचना और दूध उत्पादन प्रक्रिय का अध्ययन करने पर अमेरिकी वैज्ञानिकों ने अपना ध्यान विशेष रूप से केन्द्रित किया है। उन्होंने यह पता लगाने का भी प्रयत्न किया है कि किस प्रकार का चारा खिलाने से गायें अधिक दूध दे सकती हैं। इस अध्ययन के लिए रेडियो-सक्रिय कार्बन का विशेष रूप से उपयोग किया गया है। यही नहीं, वैज्ञानिक यह भी पता लगा रहे हैं कि दूध निर्माण की प्रक्रिया में गाय के शरीर के अन्दर निर्मित होने वाले तत्व किस मार्ग का अनुसरण करते हैं और परिवर्तन की यह प्रक्रिया किस प्रकार पूर्ण होती है।

पशु शरीर पर विकिरण के दुष्प्रभाव

अमेरिकी वैज्ञानिक इस सम्बन्ध में भी अध्ययन कर रहे हैं कि उग्र विकिरण का पशुओं के शरीर पर क्या दुष्प्रभाव पड़ सकता है। इस से मनुष्य के शरीर पर विकिरण के सम्भावित दुष्प्रभावों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के अतिरिक्त यह भी जानकारी प्राप्त की जा रही है कि विकिरण से ग्रस्त होने वाले पशु कितनी अवधि तक जीवित रह सकते हैं, उनके शरीर में किस प्रकार की रासायनिक प्रक्रियाएं प्रारम्भ हो जाती हैं, क्या वे काम कर सकते हैं और क्या उनका मांस खाने योग्य रहता है? साथ ही विकिरण का प्रजनन-क्षमता पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस सम्बन्ध में भी पर्याप्त जानकारी प्राप्त की जा रही है।

इस प्रकार के परीक्षणों से जो जानकारी प्राप्त हो रही है, उससे महत्वपूर्ण आणविक समस्याओं का समाधान खोजने के साथ अधिक अच्छी नस्ल के और रोग सह्य पशुओं का विकास करने में भी सहायता मिलेगी। अण्डों की कोटि और उत्पादन में सुधार करने
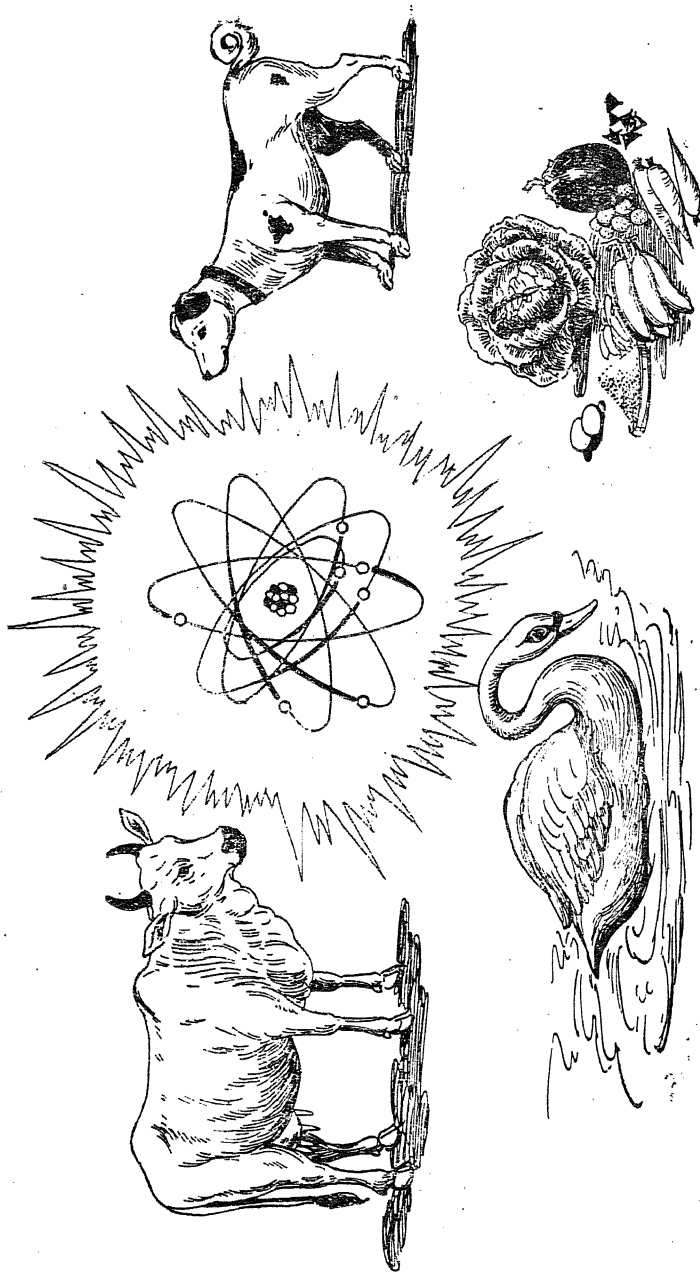
चित्र—रेडियो सक्रियता का प्राणि जगत पर प्रभाव

के लिए मुर्गियों पर विकिरण का उपयोग किया जा रहा है। अमेरिकी वैज्ञानिकों के अनुमान के अनुसार अकेले अमेरिका में कीड़े-मकोड़ों से ३ अरब डालर मूल्य से भी अधिक की कृषि सामग्री नाष्ट हो जाती है। अमेरिकी वैज्ञानिक इस दिशा में प्रयत्नशील हैं कि रेडियो-आइसोटोप की सहायता से वे हानिकारक कीड़ों पर नियन्त्रण प्राप्त कर इस राष्ट्रीय हानि को बचा लें।

(शेष पृष्ठ ७३ में)

संश्लिष्ट मृत्तिका-अनुकूलक

डा० माधुरी मोहन राय

अच्छी उपज और भूमि की उर्बरता को सुविधा पूर्वक नियमित रखने के हेतु भूमि की संरचना और जुताई का विशेष महत्व है। वास्तव में आर्द्रता और वायु का उचित अनुपात भूमि की संरचना पर निर्भर है। यदि भूमि की संरचना अच्छी न हुई तो अंकुरण, श्वास-प्रश्वास,जड़ों के दृढीकरण और जीवाणुओं की क्रियायें निर्बाध रूप से नहीं चल पातीं। फिर अमोनिया निर्माण, नाइट्रेट निर्माण, नाइट्रोजन की स्थापना तथा अप्राप्य पोषक तत्त्वों की प्राप्ति की विभिन्न क्रियायें जीवाणुओं द्वारा सम्पन्न होती हैं। भूमि में पोषक तत्वों की उपस्थिति मात्र से काय नहीं चलता। उनकी उपलब्धि के हेतु भूमि के ऊपरी भाग को उचित संरचना का बनाये रखना आवश्यक होता है। रसेल ने सन् १९५२ में एक वक्तव्य देते हुए कहा था कि जिस भूमि की संरचना ठीक नहीं रखी जात वह स्थायी रूप से व्यवहार के योग्य नहीं रह पाती। इस सिद्धान्त की अवहेलना करने के कारण ही कुछ कृषि-व्यवस्थायें असफल रहीं हैं।

यह भली भाँति ज्ञात है कि अधिकतम उपज की प्राप्ति और भूमि की उर्वरता को स्थिर रखने के लिये किसान भूमि में बहुत से कार्बनिक पदार्थ मिलाते हैं। कार्बनिक पदार्थ, गोबर, कम्पोस्ट और फसल की कटाई के पश्चात् बचे पौधों के भाग भूमि में मिला दिये जाते हैं जिससे भूमि की संरचना सुधर जाय। उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में ताप अधिक रहता है और वर्षा भी प्रर्याप्त मात्रा में होती है। इससे कार्बनिक पदार्थों का आक्सीकरण और विघटन तीव्रता से होता है। फलस्वरूप भूमि का उर्बरता को स्थायी रखने के लिये कार्बनिक पदार्थों को बराबर मिलाना पड़ता है। राथैमस्टेड में सन् १९४७ ई० में क्वाण्टसेल और वेह्ली ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि भूसा, पीट निष्कर्ष, सेलूलोज एसीटेट, बहुल शर्करायें आदि जिनकी संरचना श्रृंखलाबद्ध या रेशेदार होती है विशेष उपयोगी होते हैं। इनके मिट्टी में मिला देने से मिट्टी की संरचना सुधर जाती है। हो सकता है कि इन पदार्थों के कारण मिट्टी के कणों का संगठन होता हो। अन्य अन्वेषकों ने बताया कि कार्बनिक पदार्थों के मिलाने से गहरे काले रंग का ह्यूमस नामक पदार्थ बनता है जो मिट्टी के कणों को बाँध देता है। कार्बनिक पदार्थ को मिट्टी में मिलाने पर मिट्टी और ह्यूमस द्वारा बने इस संकीर्ण के कारण ही मिट्टी की संरचना सुधरती है।

कार्बनिक पदार्थ मिलाने से सम्पन्न भूमि की संरचना सुधार की विधि कोई भी हो, यह निश्चित है कि यह प्रभाव विशेष स्थायी नहीं होता क्योंकि सूक्ष्म जीवाणु शीघ्रता से

कार्बनिक पदार्थों को विघटित कर देते हैं। यह क्रिया उष्ण प्रदेशों में विशेष रूप से होती है। इससे भूमि की उर्वरता को स्थायी रखने के लिये निश्चित कालान्तर के पश्चात् कार्बनिक पदार्थों की वृहत मात्रा मिट्टी में मिलानी पड़ती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये संश्लिष्ट मृत्तिका-अनुकूलकों का उपयोग किया जाता है। इन पदार्थों का आविष्कार पिछले दशाब्द में किये गये अनुसंधानों का परिणाम है। ये संश्लिष्ट मृत्तिका अनुकूलक बहु विद्युत् विश्लेष्य रेजिने हैं जिन्हें विभिन्न व्यावसायिक संस्थाओं ने तैयार किया है। ये रेजिनें भूमि की उर्वरता को स्थायित्व देने के लिये कार्बनिक पदार्थों के स्थान पर उपयुक्त होंगी। इन संश्लिष्ट मृत्तिका-अनुकूलकों में से कुछ हैं—विनाइल एसीटिक मेलिक एसिड, जल विच्छेदित बहु एक्राइल नाइट्राइल, आइसो बूटाइलीन मेलीइक एसिड, डाइ मीथिल डाइक्लोर सिलेन और मीथिल ट्राइक्लोर सिलेन का मिश्रण। इन पदार्थों के साधारण नाम हैं—क्रिलियम, लीमियम, फ्लूफियम, इअरोटिल, पौलियाक, एग्रीलन, सेलाइफ इत्यादि।

रासायनिक यौगिकों का मृत्तिका-अनुकूलक पदार्थों के रूप में उपयोग करने का पहला प्रयास वान बावल ने सन् १९५० ई० में किया। उसका विचार था कि कार्बनिक यौगिकों का उपयोग संगठित कणों के जल के स्थायित्व के लिये प्रभावी रूप में किया जा सकता है। किन्तु उन्होंने जिन रासायनिक पदार्थों का उपयोग किया वे इतने अधिक मूल्यवान थे कि खेतों में लाभ की दृष्टि से उनका उपयोग लाभदायक न था। उन्होंने डाइमीथिल डाइक्लोर सिलैन और मीथिल ट्राइक्लोर सिलेन के मिश्रण का उपयोग किया। ये वाष्पशील द्रव हैं और इनसे प्राप्त गैस संगठित मृत्तिका कणों में जल को स्थायित्व प्रदान करती है।

सन् १९५२ ई० में सेण्ट लुइस की मेन्सेण्ट केमिकल कम्पनी ने एक मृत्तिका अनुकूलक के सफल निर्माण की घोषणा की। इस पदार्थ को क्रिलियम का नाम दिया गया। इस पदार्थ द्वारा किये गये प्रारम्भिक प्रयोगों से भारी चिकनी मिट्टी अच्छी भूमि में परिवर्तित हो गई। यह प्रभाव अधिक स्थायी पाया गया। अब और भी बहुत से यौगिक-अनुकूलक प्राप्त हैं। इनमें से कुछ तो क्रिलियम ही हैं और विभिन्न व्यावसायिक नामों से बाजार में बिकते हैं। रासायनिक मृत्तिका-अनुकूलकों के स्वभाव से परिचय प्राप्त करने के लिये क्रिलियम के सम्बन्ध में विवरण प्रस्तुत किया जाता है :—

यह यौगिक जल विश्लेषित बहु एक्रिलो नाइट्राइल का सोडियम लवण है। एक्रिलो-नाइट्राइल का सूत्र निम्नलिखित है :—

```
H   H
|   |
C = C
|   |
H   C
    |||
    N
```
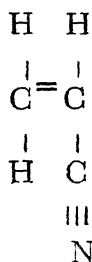
बहुलीकरण में दो कार्बन परमाणुओं के बीच का द्विबंधक टूट जाता है और एक शृंखलाबद्ध यौगिक बनता है जिसे बहु-एक्रिलोनाइट्राइल कहते हैं :—

$$\left[\begin{array}{cc} H & H \\ | & | \\ -C- & C- \\ | & | \\ H & C \\ & ||| \\ & N \end{array}\right] \quad \left[\begin{array}{cc} H & H \\ | & | \\ -C- & C- \\ | & | \\ H & C \\ & ||| \\ & N \end{array}\right]$$
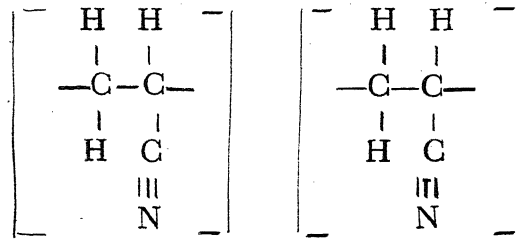
जल विश्लेषित करने पर प्रत्येक बहु-एक्रिलोनाइट्राइल इकाई में जल के दो अणु संलग्न हो जाते हैं और अमोनियम एक्रिलेट या जल विश्लेषित बहु एक्रिलोनाइट्राइल का सोडियम लवण बन जाता है। जब हाइड्रोजन अमोनियम मूलक को स्थानान्तरित कर देता है तो यौगिक बहु एक्रिलिक अम्ल में परिवर्तित हो जाता है :—

$$\left[\begin{array}{cc} H & H \\ | & | \\ -C- & C- \\ | & | \\ H & C=O \\ & | \\ & OH \end{array}\right] \quad \left[\begin{array}{cc} H & H \\ | & | \\ -C- & C- \\ | & | \\ H & C=O \\ & | \\ & OH \end{array}\right]$$
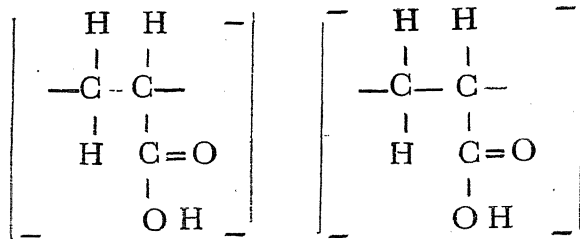
COOH मूलक कार्बोक्सिलिक समूह है। इस मूलक का हाइड्रोजन विनिमेय है। इसी कारण इसे अम्ल कहा जाता है। जब सोडियम, हाइड्रोजन का स्थानान्तरण करता है तब जलविश्लेषित बहु-एक्रिलोनाइट्राइल का सोडियम लवण बन जाता है। इसे एच० पी० ए० एन० (HPAN) कहते हैं जो वास्तव में क्रिलियम है। सोडियम मूलक इससे दूर चला जाता है इससे यह पदार्थ ऋण आवेशित रहता है। यह यौगिक निम्नलिखित विधियों से एक से अधिक प्रकार से चिकनी मिट्टी के कणों को जोड़ सकता है :

(१) कार्बनिक यौगिक की ऋण स्थितियाँ मिट्टी की धन स्थितियों से संलग्न हो जावें।

(२) यौगिक हाइड्रोजन बन्धुता या धन बन्धुता से मिटटी के कणों को संलग्न कर ले।

ये संश्लिष्ट मृत्तिका-अनुकूलक कण-समूहों के स्थायित्व में विशेष प्रभावी होते हैं। सूक्ष्म जीवाणुओं के प्रति प्रतिरोध शक्ति रखने के कारण इसका प्रभाव अधिक स्थायी होता है। वर्षा में जल की पारगम्यता बढ़ जाती है और क्षरण अत्यन्त कम हो जाता है। प्रभाव की दृष्टि से ये संश्लिष्ट मृत्तिका-अनुकूलक उन प्राकृतिक बहु-शर्कराओं या बहुलीकृत रेजिनो के स्थानापन्न समझे जा सकते हैं जो ह्यूमस में उपस्थित होती हैं। कार्बनिकपदार्थों की तुलना में जीवाणुओं के प्रति ये पदार्थ दस गुना प्रतिरोध रखते हैं।

मोन्सान्ट केमिकल कम्पनी के डा० हाशवाल्ट के अनुसार क्रिलियम का एक पौंड मिट्टी की संरचना पर वही प्रभाव डालता है जो २०० पौंड पीट या ५०० पौंड व्यावसायिक कम्पोस्ट। इस प्रकार से ये संश्लिष्ट मृत्तिका-अनुकूलक भूमि की संरचना में सुधार करके भूमि में उपस्थित पोषक तत्त्वों को उपयोग में लाने में सहायता देते हैं। यद्यपि इनमें पोषक तत्त्वों की उपस्थिति नगण्य है फिर भी भूमि संरचना के सुधार में इनकी क्षमता इन्हें महत्वपूर्ण बना देती है।

ये अनुकूलक मिट्टी द्वारा जल बन्धकता की क्षमता को बढ़ा देते हैं और वाष्पीकरण द्वारा जल की हानि की क्रिया शिथिल कर देते हैं। छोटी और बड़ी दरारें जिनके कारण से साधारणतः जलवाष्प अधिक निकल जाती हैं इन अनुकूलकों की उपस्थिति में नहीं बनतीं। प्रयोगों द्वारा पता चला है कि जिस मिट्टी में इन अनुकूलकों का प्रयोग किया गया था उसमें की अर्ध आर्द्रता-नाश का समय समान स्थितियों में उसी प्रकार की ऐसी मिट्टी की अपेक्षा दूना था जिसमें कोई अनुकूलक नहीं मिलाया गया था।

ये अनुकूलक मिट्टी के जल की केवल रक्षा ही नहीं करते वरन् सिंचाई क्षेत्रों की मिट्टियों में हानिकारक जलविलेय लवणों के संग्रहण को भी रोकते हैं और साथ ही ऊसर भूमि और लवणयुक्त भूमि को उर्वर बनाने के लिये उपयुक्त होने की आशा दिलाते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के कृषि विभाग के कार्यकर्ताओं के प्रतिवेदन के अनुसार लवण और क्षारयुक्त मिट्टी में क्रिलियम के उपयोग से कैलिफोर्निया में प्रतिशत अंकुरण और अनाज की खड़ी फसल में भी आशातीत वृद्धि हुई।

साधारण मिट्टी और चिकनी मिट्टी में भी जब क्रिलियम या कोई इसी प्रकार का अन्य अनुकूलक मिलाया जाता है, भूमि की जुताई अधिक आर्द्रता स्तर की मिट्टियों में भी सरलतापूर्वक की जा सकती है। इस प्रकार जिस भूमि में अनुकूलकों का प्रयोग होता है उसकी व्यवस्था अपेक्षाकृत सरल हो जाती है।

अनुकूलकों की मात्रा और उपचार विधि

साधारण रूप से मिट्टी में भार के हिसाब से ०.०१ प्रतिशत से ०.१ प्रतिशत तक अनुकूलक मिला दिया जाता है। इस प्रकार से प्रति एकड़ १००० पौंड अनुकूलक का प्रयाग करना चाहिये। ये अनुकूल शुष्क अवस्था में मिट्टी के तल पर फैला दिये जाते हैं और डिस्क रोटरी टिलर या अन्य हाथ के यन्त्रों द्वारा आपेक्षित गहराई तक मिट्टी में भली भाँति मिला दिये जाते हैं। अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये मिट्टी को उस गहराई तक भिगो दिया जाता है जिस गहराई तक अनुकूलकों को मिलाया जाता है। सिंचाई के पूर्व या वर्षा प्रारम्भ होने के पहले खेतो में अनुकूलकों को मिला दिया जाता है।

ढालों पर इनका प्रयोग क्षरण रोकने के लिए किया जाता है और विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जब घास रोपी जा रही हो। घास के उगाने, उसमें वृद्धि करने और इस प्रकार से क्षरण रोकने के लिये स्थायी प्रबन्ध करने में भी ये अनुकूलक प्रयुक्त होते हैं।

उपज पर प्रभाव

जिस भूमि पर इन अनुकूलकों का प्रयोग किया जाता है उसकी उपज उस भूमि से जिस पर अनुकूलकों का प्रयोग नहीं किया गया था, अधिक पाई गई है। ओहियो की कृषि प्रयोगशाला में उर्वरकों की पर्याप्त मात्रा मिलाकर ये प्रयोग नहीं किये गये। भूमि के एक भाग में अनुकूलकों का प्रयोग नहीं किया गया। दूसरे भाग में अनुकूलकों की उचित मात्रा डाली गई। दोनों भूखंडों में प्रयोग करने पर ज्ञात हुआ कि जिस भूखंड में अनुकूलक का प्रयोग किया गया था उसमें १५ बुशल अन्न अधिक उत्पन्न हुआ। अनुकूलक युक्त मिट्टी में उगाई गई। गाजरों की उपज में २१ प्रतिशत वृद्धि हुई। आलू तथा चुकन्दर जैसी फसल सरलता से और सफाई से खोद ली गई। अनाज अधिक अच्छा उगा और शीघ्र पक गया।

अनुसंधान कार्य में उपयोग

भूमि पर कार्बनिक पदार्थों के कारण उर्बरता-वृद्धि सम्बन्धी अनुसंधानों में मृत्तिका अनुकूलकों का प्रयोग किया जाता है। अनुकूलकों के आविष्कार के पूर्व यह निश्चित रूप से कहना सम्भव न था कि मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों के मिश्रण से उर्वरता में जो वृद्धि होती है वह मिट्टी की संरचना में सुधार के कारण है अथवा पोषक तत्वों की लभ्यता से विभिन्न मिट्टियों पर कार्बनिक पदार्थों के प्रभाव का अध्ययन करने के लिये एक शोधकर्ता उर्वरक के साथ और बिना उर्वरकों के मृत्तिका-अनुकूलकों का प्रयोग कर सकता है। ये भूमि के संरचना-निर्माण की विधि ज्ञात करने में भी सहायता देते हैं।

यद्यपि मृत्तिका अनुकूलकों की प्रयुक्त मात्रा अत्यन्त कम होती है फिर भी ये पदार्थ इतने मूल्यवान हैं कि कृषि में इनका उपयोग सम्भव नहीं। अनुकूलकों का मूल्य १० रुपया प्रति पौंड होता है और एक एकड़ के लिये १००० पौंड अनुकूलक चाहिये जिसका मूल्य १०००० रुपये होगा। फिर भी रूस में तथा अन्य देशों में ह्यूमिक अम्ल, क्षारीय ह्यूमेट आदि अनुकूलकों के बनाने के प्रयत्न चल रहे हैं जो कम मूल्य पर पीट, लिगनाइट, कार्बोनीफेरस पदार्थों से प्राकृतिक अवस्था में प्राप्त किये जा सकते हैं। धान की भूसी, बुरादा, इमली के बीजों का चूर्ण तथा इसी प्रकार के अन्य पदार्थों पर प्रयोग हो रहे हैं जिनका सस्ते अनुकूलकों के निर्माण करने में प्रयोग हो सके। आशा है कि वैज्ञानिक शीघ्र ही सस्ते मृत्तिका-अनुकूलक बना सकेंगे जिनकी सहायता से विश्व की खाद्य समस्या के समाधान की ओर एक ठोस कदम उठाया जा सकेगा।

कृषि-विज्ञान द्वारा मानवता की सेवा

(संकलित)

कृषि विज्ञान के अंतर्गत अपनी सीमाओं को तोड़ कर आगे बढ़ जाने की अपार क्षमता है। कृषि-अनुसन्धान के सीमित क्षेत्र में की गई खोजों का आश्रय लेकर आज अमेरिका मानवीय रोगों को चुनौती देने लगा है। जो वैज्ञानिक यह समझते हैं कि उनके जीवन का उद्देश्य केवल किसानों के हितार्थ पौधों और पशुओं के प्रकृति की रहस्यों का उद्घाटन करना है, वे अन्त में यह देख कर आश्चर्य-चकित हुए बिना नहीं रह सकते कि उनकी खोजों के फलस्वरूप केवल किसानों का ही नहीं, बल्कि समस्त मानवता का कल्याण हो रहा है। इस प्रकार, कृषि-अनुसन्धान जैसे अत्यधिक विशिष्ट विज्ञान का सीमा-क्षेत्र उत्तरोत्तर विस्तृत होता जा रहा।

कृषि-विज्ञान के सीमा-क्षेत्र के इस प्रकार विस्तृत होने का एक ज्वलन्त दृष्टान्त लगभग ७० वष पूर्व प्रस्तुत हुआ, जब अमेरिकी सरकार की कृषि परिषद् का एक नवयुवक वैज्ञानिक वाशिंगटन से टेक्सास राज्य में पशुओं के बुखार के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने के लिये गया। थियोबोल्ड स्मिथ नामक एक युवक वैज्ञानिक का कार्य सरल न था। किसी को इस बात का पता न था कि इस रोग का कारण क्या है ? स्मिथ ने सोचा कि हो सकता है कि किलनी ही इस रोग की जड़ हो और एक से दूसरे पशु में उसे पहुँचाती हो। इतिहास में स्मिथ ही वह पहला व्यक्ति था जिसने आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के इस आधारभूत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि कीड़ों द्वारा एक प्राणी से रोग का प्रसार हो सकता है। पशुओं के बुखार पर नियंत्रण के उपाय निर्देश करने के बाद स्मिथ ने अपने अनुसन्धान के परिणाम की रिपोर्ट अपने अधिकारियों और अन्य वैज्ञानिकों को दी। उसकी रिपोट का शीर्षक था : टेक्सास या दक्षिणी अमेरिका के पशुओं के बुखार की प्रकृति, कारण और निदान की खोज।

इस रिपोर्ट को कुछ लोगों ने पढ़ा। उनमें वाल्टर रीड नामक एक वैज्ञानिक भी थे, जिन्होंने पनामा में फैली महामारी—पीले बुखार—के उन्मूलन के लिए अचूक औषधि तैयार की। रीड ने यह सिद्ध कर दिया कि टेक्सास के पशुओं में मच्छरों ने बुखार फैलाया। उस समय से डाक्टरों ने इस आधार को हमेशा दृष्टिगत रखा है कि कीड़े-मकोड़े भी रोगों को फैलाने में योग देते हैं।

यह एक युगान्तकारी घटना थी। किन्तु बहुत से दूसरे वैज्ञानिक भी थे, जिनके साहस और सूझबूझ के फलस्वरूप मानव कल्याण को अत्याधिक बढ़ावा मिला। इनमें अमेरिकी

कृषि विभाग के डा० मौरिस सी० हाल का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने यह खोज की कि कार्बन-टेट्राक्लोराइड तथा तत्सम्बन्धी अन्य रसायन पशुओं में 'हुकवर्म' का नाश करने के लिए अचूक सिद्ध होते हैं। डा० हाल ने उस खोज को मनुष्य पर लागू किया और 'हुकवर्म' को विनष्ट करने की विधि ढूंढ़ निकाली। इसके लिए परीक्षण करने में उन्होंने अद्भुत शौर्य और साहस का परिचय दिया। उन्होंने रासायनिक औषधियों का प्रभाव जानने के लिए उन्हें स्वयं निगल लिया, यद्यपि वह जानते थे कि ऐसा करना उनके लिये घातक सिद्ध हो सकता है किन्तु इसके परिणामस्वरूप 'हुकवर्म' से संसार के लाखों व्यक्तियों की प्राण-रक्षा हुई है।

अमेरिकी कृषि विभाग के एक वैज्ञानिक, अर्विन एफ० स्मिथ ने पौधों और पशुओं की गांठों और गिल्टियों के अध्ययन में पूरा जीवन ही व्यतीत कर दिया। उनके कार्य को चिकित्साशास्त्रियों ने इतना महत्वपूर्ण माना कि अमेरिकन मेडिकल एसोसियेशन ने अधिकृत रूप से उनको सम्मानित किया। १९२५ में, मृत्यु होने के एक वर्ष पूर्व, वह कैंसर अनुसन्धान सम्बन्धी अमेरिकी एसोसियेशन के अध्यक्ष चुने गये।

ये कृषि और मानवीय स्वास्थ्य के बीच घनिष्ट सम्बन्ध के आधुनिक दृष्टान्त हैं। किन्तु, दोनों के बीच इतिहास के आदि काल से ही घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। प्राचीन काल में मनुष्य अच्छी तरह जानते थे कि बहुत से पौधों और जड़ी-बूटियों द्वारा रोगों का उपचार हो सकता है। हजारों वर्ष पूर्व मिश्रियों, यूनानियों, रोमनों, अरबों और भारतीयों ने सैकड़ों जड़ी-बूटियों के चिकित्सा सम्बन्धी गुणों की खोज की थी। दक्षिण-अमेरिका के रेड इण्डियन कुनैन की खोज से बहुत पूर्व सिनकोना के गुणों से परिचित हो चुके थे। और ये पेड़-पौधे, जड़ी-बूटियां रोगों के उपचार के लिये उपयोगी तत्वों से सम्पन्न होती हैं। आज रोगों का रामबाण-एण्टी बोयोटिक--प्रायः पौधों में पाया जाता है। सैकड़ों वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में प्रतिदिन वैज्ञानिक यह खोज कर रहे हैं कि टमाटर, अरवी आदि के पौधों से ये रोग-निरोधक औषधियां कैसे तैयार की जा सकती हैं। इस प्रकार की औषधियों में सबसे अधिक विख्यात पेनिसलिन है, और इसकी खोज १९२८ में लन्दन के कीटाणुशास्त्री, अलेक्जैण्डर फ्लेमिंग ने की। किन्तु इस खोज को भुलाया जाने लगा था, क्योंकि जब तक बड़े पैमाने पर इसके उत्पादन की व्यवस्था न हो, तब तक इससे लाभ ही क्या किन्तु, अन्त में अमेरिकी कृषि विभाग के वैज्ञानिकों ने इस साचे को ढूंढ निकाला, जिसके फलस्वरूप आज इतनी अधिक मात्रा पैंसिलिन उपलब्ध होने लगी है।

पैंसिलिन के अतिरिक्त, दूसरी भी रोग-निरोधक औषधियों की खोज की जा चुकी है। इनमें स्ट्रेप्टोमाइसिन, एरोमाइसिन और टेरामाइसिन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सबकी खोज मिटी के कीटाणुओं से सम्बन्ध अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों द्वारा न्यूजर्सी के कृषि प्रयोग-केन्द्र पर किये गये अनुसन्धानों से हुई।

अमेरिका के कृषि-वैज्ञानिक प्रायः प्रतिदिन ऐसी औषधियों की खोज कर रहे हैं, जो अभी बहुत विख्यात नहीं हुई हैं। इनमें से एक का नाम 'रुटिन' है, जिसे मोथी (बकह्वीट)

के पत्तों और फूलों से रस सींच कर तैयार किया जाता है। यह औषधि रक्तस्राव को रोकने में बहुत ही सहायक सिद्ध होती है।

डी० डी० टी० के उपयोग से सभी लोग परिचित हैं। मक्खियों, मच्छरों, जुओं आदि के विनाश मे यह बहुत ही उपयोगी समझी जाती है। अनुमान लगाया गया है कि इसने लाखों को प्राण-रक्षा की है और १० करोड़ लोगों को रोग से बचाया है। इसकी खोज ८० वर्ष पूर्व यूरोप में की गयी थी, किन्तु अमेरिकी कृषि विभाग के एक वैज्ञानिक को ही इसे बड़े पैमाने पर उत्पन्न और लागू करने की विधि ढूंढ निकालने का श्रेय है।

अमेरिकी कृषि विभाग के पशु-चिकित्सकों ने 'स्ट्रेन-१९' नामक टीके की खोज की, जो बछड़ों को 'ब्रुसेलोसिस' रोग से बचाती है। ऐसा करने की प्रक्रिया में उन्होंने बुखार की एक ऐसी किस्म की भी खोज की, जो उन व्यक्तियों को दी जाती है, 'ब्रुसेलोसिस' रोग वाली गाय का कच्चा दूध पीते हैं।

इसके विपरीत, कभी-कभी चिकित्सा विज्ञान सम्बन्धी खोज कृषि के विकास में योग देती है। जर्मन प्राणिशास्त्री रावर्ट कोच ने १८८२ में ट्यूबर्किल वैसिलिया' नामक पदार्थ को पृथक करके मनुष्यों के ही नहीं, बल्कि पशुओं के क्षय को भी नियंत्रित करने का मार्ग प्रशस्त किया।

कृषि वैज्ञानिक ने स्वास्थ्यप्रद और-पोषक खाद्य-पदार्थों की व्यवस्था करके मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा में महत्वपूर्ण योग प्रदान किया। मनुष्य के स्वास्थ्य पर कृषि सम्बन्धी अनुसन्धान करने के प्रभाव ऐसे ही रहे हैं। कृषि के एक सीमित क्षेत्र में अनुसन्धान करने वाले इन वैज्ञानिकों के प्रयास का एकमात्र उद्देश्य मानव प्राणियों के कल्याण में वृद्धि करना रहा है। उनके ही प्रयासों का परिणाम यह है कि हम आज जीवित हैं।

(६५ पृष्ठ का शेष)

संक्षेप में, अणु विज्ञान ने कृषि के क्षेत्र में एक नवीन क्रान्ति का सूत्रपात्र कर दिया है। नवीन कृषि जानकारी और उत्पादन विधियों से युक्त हो कर किसानों ने अपनी बाधाओं और सीमाओं के विरुद्ध धावा बोल दिया है। कृषि-विज्ञान और भूमि की उत्पादनशीलता की पुरानी सीमाएं एक एक कर ढहती जा रही हैं और यह आशा प्रबलतर होती जा रही है कि मनुष्य संसार की बढ़ती हुई जन-संख्या को पर्याप्त भोजन सुलभ करने और अपनी आर्थिक दशा सुधारने में सफल हो सकेगा।

——

१. दिल्ली का गामा-बाग

भारतीय कृषि अनुसंधानशाला आजकल इस अनुसंधान में लगी है कि रेडियो विकिरण का पौधों पर क क्या प्रभाव पड़ता है। अभी हाल ही में अनुसंधानशाला में २०० फुट व्यास की गोलाकार जमीन के चारों ओर ३ फुट मोटी और १२ फुट ऊँची दीवार बनायी गयी है।

कृषि अनुसंधानशाला के कर्मचारियों ने इस अहाते का नाम 'गामा-बाग' रखा है, क्योंकि इसके बीचोबीच सीसे के भारी डिब्बे में २०० क्यूरी का कोबाल्ट रखा हुआ है। कोबाल्ट से गामा-किरणें निकलती हैं, अतः इन्हीं किरणों पर इसका नामकरण कर दिया गया है। यंत्रों की सहायता से ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि अहाते के दरवाजे के बाहर बने हुए केबिन में बैठा हुआ व्यक्ति बटन दबाकर कोबाल्ट ६० को डिब्बे से बाहर निकाल सकता है और फिर उसी में बन्द भी कर सकता है।

किसी छोटी-मोटी गढ़ी जैसी गामाबाग की चाहरदीवारी धोखे से बाग में चले आने-वाले व्यक्ति को गामा किरणों के प्रभाव से बचाने के लिए बनायी गयी है। अहाते के दरवाजे का किवाड़ ऐसा बनाया गया है कि ज्योंही कोबाल्ट ६० को सीसे के डिब्बे से बाहर निकालने के लिए बटन दबाया जाता है, वैसे ही इस्पात की दुहरी चादर का किवाड़ अपने आप बंद हो जाता है। फिर इस अहाते के अंदर कोई नहीं जा सकता।

गामाबाग में ही देश में पहली बार फसल सुधारने के लिए अणुशक्ति का प्रयोग किया जा रहा है। यहाँ इस बात का अध्ययन किया जाएगा कि रेडियो-विकिरण की कितनी मात्रा का पौधों पर क्या असर होता है।

बाग की जमीन को कई हिस्सों में बाँट दिया गया है। प्रत्येक भाग में अलग अलग किस्म के अनाजों के पौधे या फलों के पेड़ लगाए जाएँगे। दिल्ली से बाहर के कृषि अनुसंधान केन्द्रों से भी कुछ गमलों में लगाए जाने वाले पौधे आयेंगे। इन पर गामा किरण डालने के बाद इन्हें इनके केन्द्रों की प्रयोगशालाओं में परीक्षण के लिए भेज दिया जाएगा।

रेडियम-धर्मिता

पिछली शताब्दी के अंत में यूरेनियम नामक रेडियधर्मी तत्व का पता चला था। तब से वैज्ञानिक रेडिय-धर्मिता के सम्बन्ध में अनेकानेक अनुसंधान कर रहे हैं। १६४२ में एक नयी खोज हुई। इससे कृत्रिम रेडियम धर्मी तत्व बनाना सम्भव हुआ। कुछ समय बाद बहुत से प्राकृतिक तत्वों-जैसे रासायनिक गुणों वाले आइसोटोप भी बनाए जाने लगे। इन आइसोटोपों में इन प्राकृतिक तत्वों के रासायनिक गुण होने के साथ-साथ किरण उत्सृजन की भी क्षमता होती है। तत्व की किरण उत्सृजन की क्षमता को रेडिय-धर्मिता कहते हैं।

इस नए ज्ञान के द्वारा संसार का हित और अहित दोनों सम्भव हैं। अणु बमों के आविष्कार से यह स्पष्ट हो गया है कि अणुशक्ति का दुरुपयोग कितना विनाशकारी हो सकता है। पर अणुशक्ति में विनाश के समान निर्माण की क्षमता भी है। हम इसे मनुष्य की भलाई के कामों में भी लगा सकते हैं। आज हर आदमी अणुशक्ति को मनुष्य की भलाई के कामों में लगा देखने को आतुर है। अनाज की पैदावार बढ़ाने में अणुशक्ति का उपयोग बहुत प्रसन्नता का विषय है।

कृषि अनुसंधानशाला के कुछ और परीक्षण

भारतीय अनुसंधानशाला में १६४६ में ही रेडियो आइसोटोपों द्वारा पौधों की नस्ल सुधारने पर खोज शुरू हो गयी थी। पहले यह धारणा थी कि रेडियो-आइसोटोपों के प्रभाव से पौधे जल्दी बढ़ते हैं। परन्तु विदेशों में और इन अनुसंधानशाला में जो परीक्षण हुए, उनसे पता चला कि ऐसा नहीं है। रेडियमिधता के विशेष गुण के कारण पौधों के रेशों और मिट्टी पर इसकी क्रिया का पता चल जाता है। यदि हम किसी विशेष लाभ या प्रभाव की बात न सोचें तो ये और जीवन-विज्ञान सम्बन्धी प्रयोग बड़े महत्व के हैं, क्योंकि इनसे हमें अनाज की पैदावार की भौतिक, रासायनिक जटिल क्रियाओं का पता चलता है। इस काम के लिए अनुसंधानशाला में एक बहुत अच्छी प्रयोगशाला है।

प्रयोगशाला में कुछ और भी महत्वपूर्ण खोजें की गयी हैं। धान की फसल में फासफेटीय उर्वरक देने के सम्बन्ध में जो प्रयोग हुए उनसे पता चला है कि फासफेट को ऊपर से बुरकने से ज्यादा लाभ होता है। दूसरी महत्वपूर्ण खोज यह है कि फासफोरस मिट्टी में अधिक से अधिक दो इंच नीचे तक असर कर सकता है। इसके परिणामस्वरूप यह विचार करने की आवश्यकता हुई है कि खाद देने का कौन सा तरीका अच्छा है। मिट्टी में फासफोरस की मात्रा का पता लगाने की विधि भी निश्चित कर दी गयी है।

गामा-बाग

१६५५ में अनुसंधानशाला की दूसरी पंचवर्षीय योजना में रेडियो-विकरण द्वारा पौधों की नस्ल बदलने के बारे में अध्ययन प्रारम्भ हुये।

प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया है कि रेडियो विकिरण का वनस्पतियों से अधिक प्राणियों पर प्रभाव पड़ा है। अधिकांश पौधे काफी रेडियो विकिरण सहन कर सकते हैं। रेडियो-विकिरण से पौधों की नस्ल भी बदली जा सकती है। इस प्रकार अनाज आदि की किस्म सुधारी जा सकती है। अच्छे किस्म के पौधे उगाने के लिए उपयुक्त किस्म की पौध छांटनी होती है। यदि हम ऐसे किस्म का गेहूँ पैदा करना चाहें, जिसमें रतुआ न लगे तो हमें इसके लिए गेहूँ को उस नस्ल का पौधा लेना होगा, जिसमें रतुआ रोकने की शक्ति हो।

अनुसंधानशाला की वनस्पति शाखा में इस प्रकार पौधों की जातियां बदलने के सफल प्रयोग किए जा चुके हैं। गेहूँ की किस्म को उन्नत करने में विशेष सफलता मिली है। रेडियो विकिरण द्वारा सुधरी हुई किस्म के गेहूँ को फिर से बोकर उसकी प्रगति देखी जा रही है। यह गेहूँ किसानों को भी बीज के लिए दिया जाएगा।

रेडियो विकरण से संकर पौधे तैयार करने का भी काम किया जा रहा है।
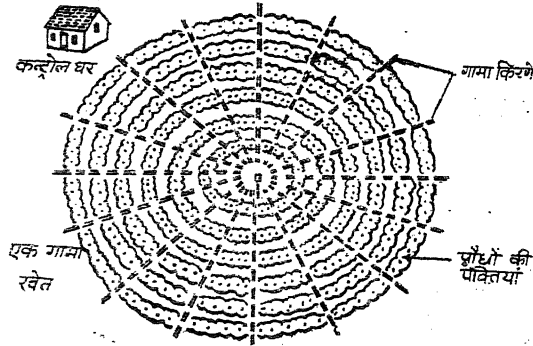
चित्र—गामा बाग

गामा बाग बनाने में कृषि अनुसंधानशाला को अणुशक्ति आयोग से शिल्पिक सहयोग मिला है। कोबाल्ट ६० को दूर से ही जस्ते के डिब्बे में बन्द करने और बाहर निकालने का यंत्र ट्राम्बे के अणुशक्ति संस्थान में बनाया गया है। विकिरण के लिए जो कोबाल्ट ६० यहाँ काम में लाया जा रहा है, वह कनाडा के चाकरीवर रिएक्टर (अणु भट्टी) में तैयार किया गया है। एक ऐसी ही अणुभट्टी भारत और कनाडा के अणुशक्ति आयोगों के पारस्परिक सहायता कार्यक्रम के अंतर्गत बम्बई में बनायी जा रही है।

पौधों की नस्ल में अपने आप भी परिवर्तन होता है, पर उसमें बड़ा समय लगता है। रेडियो विकिरण की सहायता से यह परिवर्तन शीघ्रता से किया जा सकता है। नस्ल में सुधार होने से अनाज की अधिक उपज होगी और निरन्तर बढ़ती हुई आबादी के कारण जो खाद्य समस्या उत्पन्न हो रही है, उसे सुलझाने में विज्ञान की यह नई खोज सहायक होगी।

२. छिड़काव सिंचाई

सिंचाई की साधारण रीति में पानी को खेत में बहा दिया जाता है। यह पानी धरती में सीझता है और जड़ों को प्राप्त होता है। फसलों के पौधों की जड़ें बहुत अधिक गहरी नहीं जातीं। यदि खेत में पानी अधिक भर दिया जाता है और वह जड़ों से भी नीचे चला जाता है तो वह जड़ों की पहुँच से बाहर हो जाता है। ऐसा पानी व्यर्थ जाता है। यदि सिंचाई की किसी ऐसी रीति का उपयोग किया जाए, जिसमें पानी इस प्रकार व्यर्थ न जा सके, तो उतने ही पानी से अधिक पौधों को नमी पहुँचाई जा सकती है और अधिक फसल पैदा की जा सकती है। इस प्रकार की सिंचाई की रीति को नियन्त्रित सिंचाई कहा जा सकता है।

नियन्त्रित सिंचाई दो मुख्य विधियों से की जा सकती है। एक विधि में ऊपर से पानी बरसाया जाता है और दूसरी में वह धरती पर दिया जाता है। ऊपर से छिड़काव की विधि ऐसे खेतों में विशेष उपयोगी होती है, जहाँ पानी की आवश्यकता कम होती है और जहाँ धरती के हल्की और रिसनी होने के कारण पानी के बह जाने से हानि की सम्भावना अधिक होती है। धरती पर पानी देने की विधि उन फसलों के लिए विशेषतया लाभकारी होती है, जिन्हें अधिक पानी चाहिए और जो भारी मिट्टी में बोई जाती हैं।

छिड़काव विधि

पिछले १० वर्षों में संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया और कनाडा में छिड़काव सिंचाई का खेती में प्रचार हुआ है। वहाँ खेत बहुत बड़े-बड़े हैं और पानी कम मिलता है। पिछले दो वर्षों में भारत में भी इस विधि को काफी बड़े पैमाने पर परखा गया है। इस विधि से गेहूँ, गन्ना, काफी, चाय, पैराघास, लूसर्न, सवाई घास और चिकोरी जैसी बिविध फसलों की सिंचाई की गयी है। इस विधि की सहायता से धरती में फसलों के लिए आवश्यक पानी की बिल्कुल उचित मात्रा रखना सम्भव हो सका है। इससे न खेत में पानी फसल की आवश्यकता से अधिक होता है, न फसल की आवश्यकता से कम।

छिड़काव के लिए एक मुख्य नल होता है, छिड़कने के लिए शाला होती है और पानी को दबाव के साथ छिड़काऊ सिरों में पहुँचाने के लिए एक उच्च दाबी-पम्प होता है। छिड़ाकाऊ सिरे नियमित अन्तरों पर नल की शाखा से जुड़े होते हैं। नलों और छिड़काऊ सिरों को जोड़ने के लिये खटके (पुश लाक) प्रकार के जोड़ अच्छे होते हैं। इस प्रकार के जोड़ कभी खराब नहीं होते। पहले इस काम के लिए जो नल लगाये जाते थे वे भारी और लोहे के होते थे। आजकल अलमुनियम के हलके नल काम में लाये जाते हैं। अलमुनियम के नल मजबूत होते हैं और उनमें मुर्चा नहीं लगता।

छिड़काऊ सिरे

छिड़काऊ सिरे कई प्रकार के होते हैं। इनमें से अधिकतर घूमने वाले होते हैं। इस छिड़काव के लिए ३० से १५० पौंड प्रति वर्ग इंच तक दाब आवश्यक है। इस दाब के लिये

जो पम्प इस्तेमाल किया जाता है उसे डीजल इंजिन अथवा बिजली की मोटर से चलाया जा सकता है। सिंचाई के लिए प्रति मिनिट जितने गैलन पानी की आवश्यकता होती है, उसी के अनुसार छोटा बड़ा पम्प और इंजिन अथवा मोटर लगाई जा सकती है। सामान्यतः हमारे देश में जो पम्प काम में लाये जाते हैं जिनको स्प्लिट केस सैंट्रीफ्यूगल पम्प कहते हैं। इनको ५ से ६० अश्वशक्ति तक के इंजिनों अथवा मोटरों से चलाया जा सकता है। इन पम्पों से साधारणतया पानी के स्तर से लगभग १५ फुट की ऊँचाई तक फुहार फेंकी जा सकती है। ३५० फुट तक की गहराई से पानी निकालने के लिये विशेष टरबाइन पम्पों की आवश्यकता पड़ती है।

लाभ और सुविधाएँ

पुरानी विधि से सिंचाई से कई हानियाँ हो सकती हैं, जैसे धरती में पानी का भर जाना, लवण इकट्ठा हो जाना और बीजों का कम उगना। जिन खेतों में पानी भर गया हो, या लवण इकट्ठा हो गया हो वहां छिड़काव विधि और जल निकासी से लवण को धोकर बहाया जा सकता है और थोड़े ही समय में धरती को उपयोगी बनाया जा सकता है।

इस विधि से जल के स्रोत से ऊँची जमीन में भी पानी पहुँचाया जा सकता है। धरती की सतह को समतल बनाने की आवश्यकता नहीं होती और ढलवां धरतियों की सिंचाई में ऊपर की मिट्टी बह जाने का कोई भय नहीं होता। ढलवां खेतव को कटने से रोका जा सकता है। खेत में नालियां खोदने की बिल्कुल जरूरत नहीं होती, इससे धरती की बचत होती है। पानी की हानि भी सीझने और उड़ने से कम होती है। धरती में नमी की मात्रा आसानी से नियंत्रित की जा सकती है। खेत के ऊपर पपड़ी नहीं बनती। धरती के भीतर के पानी के स्तर से सम्पर्क नहीं रहता। खेत में उर्वरक एक प्रकार से दिये जा सकते हैं। साफ और ऊँची-नीची धरतियों पर खेती के पहले वर्ष में ही पूरी फसल ली जा सकती है। छिड़काव विधि के लिए विशेष दक्षता या कारीगरी की आवश्यकता नहीं होती। पर छिड़काव योजना में फसल, धरती और जलवायु के अनुसार परिवर्तन किये जाने चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो दूसरी सिंचाई विधियों के समान इस वधि में भी पानी व्यर्थ जा सकता है और फसल को हानि पहुँच सकती है।

साधारण सिंचाई की विधि में जब खेत को पानी से भर दिया जाता है तो ऐसी दशाएँ पैदा हो जाती हैं, जिनसे बीज सड़ने लगता है। इससे बीज नष्ट हो जाते हैं और अच्छी तरह नहीं उगते। इसके विपरीत छिड़काव सिंचाई में पानी की पतली फुहार पौधों पर गिरती है। उससे धरती को नमी की उचित मात्रा प्राप्त होती है, जिससे अधिक बीजों को उगने का अवसर मिलता है।

अभी तक जो अनुभव हुआ है, उससे यही ज्ञात होता है कि छिड़काव सिंचाई की विधि सबसे बढ़िया विधि है। आरम्भ में इस पर खर्च अधिक आता है पर इससे जो

बचत होती है और जो लाभ पहुँचता है, उससे यह खर्च अपने आप पूरा हो जाता। विदेशों के समान भारत में भी इस से सिंचाई-विधि का तेजी से प्रसार हो रहा है।

३. अन्न की सुरक्षा

देश में अनाज सुरक्षित रखने के लिए अच्छी खत्तियां की कमी के कारण काफी अनाज बरबाद हो जाता है। इसके अलावा चूहे तथा कीड़े भी उसे खा जाते हैं। इस प्रकार अनुमान है कि देश में हर साल ७ करोड़ मन से भी अधिक अनाज बरबाद होता है। यदि किसी प्रकार यह अनाज बरबाद होने से बचाया जा सके, तो यह सारे देश के लोगों को १५ दिन का भोजन दे सकता है। अतः यह आवश्यक है कि गल्ले को सुरक्षित रखने के लिए देश में अच्छी खत्तियां या कोठार बनाए जांय।

सरकार देश में भी अनाज खरीदती है तथा विदेशों से भी मंगाती है। इसे वह खत्तियों में रखती है, ताकि वह वक्त-जरूरत काम आए। इसे सुरक्षित रखने के लिए सरकार अच्छी खत्तियां बना रही है। इनमें जो अनाज रखा जाता है, उसका केवल ०·१ प्रतिशत ही खराब होता है। परन्तु किसान और व्यापारी, जो अनाज अपने गोलों में रखते हैं, वह काफी मात्रा में बरबाद होता है। अनुमान है कि व्यापारी कुल उपज का लगभग ४० प्रतिशत गल्ला खरीदते-बेचते हैं और उसे कोठारों में रखते हैं, जिनमें लगभग ५ से १० प्रतिशत तक गल्ला बरबाद हो जाता है। किसान भी अपनी कुल उपज का लगभग ५० प्रतिशत गल्ला अपने कोठारों में रखते हैं जहाँ अधिकांश बरबाद हो जाता है।

बरबादी का कारण

कोठारों में गल्ले के नुकसान के तीन मुख्य कारण हैं:—कीड़े, चूहे और सीलन। सीलन से गोदाम कुछ गरम हो जाता है, जिससे अनाज में गर्मी आ जाती है और उस पर मकड़ी या फफुंद लग जाती है। सीलन के कारण गोदाम में कीड़े, घुन आदि भी तेजी से लगते हैं। कुछ ऐसे जीवाणु होते हैं जिनके कारण अनाज मनुष्य या पशु के खाने योग्य नहीं रह जाता। इसलिए गोदाम में अनाज को सीलन से बचाने के लिए जरूरी है कि वहां हवा और रोशनी पहुँच सके तथा उसकी दीवालें ऐसी हों, जिनमें सीलन या नमी का असर न हो। बरसात में गोदामों की अधिक देखभाल जरूरी है। यदि कहीं से पानी या सीलन आ रही हो तो, उस स्थान की फौरन ही मरम्मत कर देनी चाहिए। यदि छत से पानी टपकता या रिसता हो तो तिरपाल लगाना चाहिए।

अनाज को फर्श की नमी से बचाने का भी प्रबन्ध किया जाना चाहिए। यदि अनाज बोरों में बन्द है, तो उनके नीचे भूसा, बांस की चटाई, पुआल, रेत या ईंट और यदि अनाज बोरे में बन्द नहीं है तो उनके नीचे पुआल बिछायी जा सकती है। अनाज रखने के लिए पौलिथीन की चादरें या जालीदार तख्ते भी इस्तेमाल किए जा सकते हैं, परन्तु ये महँगे पड़ते हैं। जिस दिन धूप निकली हो, उस दिन गोदाम खोल देने चाहिए ताकि वहां तक हवा पहुँच सके और वर्षा के दिन गोदाम बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए। गोदाम में जब भी गर्मी हो, तभी बोरों के मुंह खोल देने चाहिए और

वहां खूब हवा जाने देना चाहिये। यदि अनाज में सीलन आ गयी हो तो उसे जल्दी इस्तेमाल कर दिया जाना चाहिए।

कीड़ों से बचाव

गोदाम में अनाज में घुन, गुबरैले आदि लग जाते हैं। इन्हें रोकने के लिए अनेक प्रकार हैं। लोगों में यह आम धारणा है कि ये कीड़े अनाज में अपने आप पैदा हो जाते हैं। वास्तव में यह सही है। जब तक वहां ये कीड़े अंडे आदि न दें तब तक उनकी संख्या नहीं बढ़ सकती। इसलिये उनकी वृद्धि रोकने के लिए उपाय किए जा सकते हैं।

गोदाम की सफाई के लिए वहां साल में कम से कम एक बार पुताई होनी चाहिए। खाली गोदाम में बी-एच-सी का धुंवा देना चाहिये या उसका चूरा छिड़क देना चाहिये। छेदों और दरारों को पलस्तर से भर दिया जाना चाहिये बोरा-बन्द अनाजके ऊपर-नीचे भी बी-एच-सी को चूरा डाल दिया जाना चाहिये। यह आरम्भिक कार्य है। इसके बाद भी यदि गोदाम में कीड़े आदि लगने का डर हो तो फौरन ही उनसे छुटकारा पाने का उपाय किया जाना चाहिये। बोरे-बन्द अनाज कोगेमिक्सीन का धुंआ देना लाभदायक सिद्ध हुआ है।

गोदाम में अनाज को सुरक्षित रखने के लिए भारत सरकार के खाद्य विभाग ने मिथाइल ब्रोमाइड, एथिलीन डाइब्रोमाइड और एथिलीन डाइक्लोराइड, कार्बन ट्रेटा क्लोराइड मिश्रण का धुंवा देने का सुझाव दिया है। परन्तु इनका धुंवा जहरीला होता है, इसलिए जो लोग धुंवा देते हैं, उन्हें गैस मास्क (नकाब) पहन लेना चाहिये। जिन लोगों को इसकी ट्रेनिंग नहीं मिली है, उन्हें धुवाँ नहीं करना चाहिए।

चूहों से बचाव

खत्तियों में चूहे काफी अनाज खा जाते है। एक चूहा साल में लगभग २७ किलोग्राम अनाज खा जाता है। चूहे बढ़ते भी बहुत तेजी से हैं। चूहे के एक जोड़े से साल भर में औसतन ८०० चूहे पैदा हो जाते हैं।

खत्ती का फर्श यदि सीमेंट, कंकरीट या पत्थर का हो तो उसमें चूहे नहीं घुस सकते, परन्तु यदि फर्श कच्चा हो तो ऐसे तरीके इस्तेमाल किए जा सकते हैं, जिससे वहाँ कम से चूहे घुस सकें। खत्ती में अगर पानी न जाए तो चूहे कम पैदा होंगे। चूहे लकड़ी कुतर डालते हैं, इसलिये खत्तियों के दरवाजों के निचले भाग में टीन की पत्तियां लगानी चाहिये और द्वारों के बीच छेद नहीं होना चाहिए।

चूहेदानी में, गर्मियों में जहर मिली सब्जी या फल और जाड़ों में पका खाना रखना चाहिए। चूहेदानी में जब एक चूहा मर गया हो, तब चूहेदानी को फिर खूब अच्छी तरह से धो लेना चाहिये। उन्हें मारने के लिए जिंक-फास्फेट सबसे अच्छा जहर है। यह देखा गया है कि इस जहर के लगभग १५ दिन में खत्ती के सभी चूहे मर जाते हैं। परन्तु यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि जिंक फास्फेट बहुत तेज जहर है, इसलिये इसको काफी सतर्कता से प्रयोग होना चाहिये।

चूहों के बिलों में गैस डालने से भी चूहे मर जाते हैं। परन्तु यह काम केवल उन्ही को करना चाहिए, जिन्हें गैस डालने की ट्रेनिंग मिली हो।

केन्द्रीय खाद्य और कृषि मंत्रालय ने हापुड़ में गल्ले की खत्तियों की देख-भाल की ट्रेनिंग का प्रबन्ध किया है। वहां हाल में, अमेरिका के शिल्प-सहयोग मिशन के कार्यक्रम के अन्तर्गत गल्ले की विशाल खत्ती (एलिवेटर-कम-गोडाउन) बनायी गयी है।

४. पूसा का बढ़िया गेहूँ

देश में चावल के बाद गेहूँ ही सबसे अधिक खाया जाता है। इस लिए गेहूँ की पैदावार बढ़ाने के लिए जरूरी है कि उसके बीज की किस्म सुधारी जाए। गेहूँ की बढ़िया किस्म तैयार करने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधानशाला प्रमुख केन्द्र है। १६३६ में नई दिल्ली में आने से पहले जब यह अनुसंधानशाला बिहार के पूसा गाँव में थी, तब भी वहाँ गेहूँ की किस्म सुधारने के लिए बराबर प्रयत्न किया जाता था इसीलिए अब यहां दिल्ली आने के बाद भी इस अनुसंधानशाला को प्राय: पूस इंस्टिट्यूट कह दिया जाता है। यहां जो नये और अच्छे किस्म के गेहूँ तथा अन्य अनाज तैयार किये जाते हैं उन्हें "न्यू पूसा" या "एन० पी०" किस्म का अनाज कहते हैं।

पूसा का पहला गेहूँ

इस शताब्दी के आरंभ में देश में जो गेहूँ होता था, उसका दाना छोटा होता था और खेत में गेहूँ की पैदावार भी बहुत कम होती थी। पूसा में सर अलबर्ट हावर्ड ने अपने अथक परिश्रम से बढ़िया गेहूँ तैयार किया, जिसे पूसा-४ (अब न्यू पूसा-४ या एन० पी०-४ नाम दिया गया। यह देश में पहला बढ़िया किस्म का गेहूँ था जो बिहार, उत्तर प्रदेश मध्य प्रदेश और बम्बई में खूब प्रचलित हुआ। यही नहीं, बल्कि यह आस्ट्रेलिया और दक्षिण रोडेशियम में भी खूब बोया गया और उससे संकर गेहूँ पैदा किया गया।

इस सफलता को देख कर अनुसंधानशाला में और भी संकर गेहूँ तैयार किए गए, यथा,-एन० पी० ५२, एन० पी० ८०-५, एन० पी० १११, एन० पी० ११४ एन० पी० १२५ और एन० पी० १२६। ये सभी गेहुँ बहुत प्रचलित हुए।

बीमारी से बचाव

अनुसंधानशाला में पहले जो गेहूँ तैयार किए गए, उनसे फसल काफी अधिक होती थी और दाना भी खूब बड़ा होता था, परन्तु अधिकांश गेहूँ की फसल पर रोग लग जाता था। वास्तव में तब तक कोई ऐसी किस्म तैयार नहीं की गयी थी, जिसकी फसल पर रोग न लग सके।

फसल पर पाय: रतुआ, और गंठा रोग लगता है। रतुआ-काला, भूरा या पीला— अधिकतर लगता है। अत: फसल को इन रोगों से बचाने के लिए यही एकमात्र सस्ता तरीका है कि बीज की ऐसी किस्म तैयार की जाए, जिसकी फसल पर ये रोग न लगें। यह काम बहुत कठिन था, परन्तु असम्भव नहीं। ऐसी किस्म निकालने के लिए काफी श्रम, मेहनत और खोज की जरूरत थी।

अनुसंधानकर्ता को पहले अनाज की बीमारियों और उनके कारणों का पता लगाना पड़ता है और फिर देखना होता है कि ये बीमारियां किन परिस्थितियों में होती हैं। उसे यह भी देखना होता है कि कौन सी किस्में ऐसी हैं, जिन पर रोग नहीं लगते। तब वह उस किस्म और बढ़िया किस्म के अनाज के संकरण से नयी किस्म तैयार करता है। इस प्रकार के प्रयोग बरने में उसे वर्षों लग जाते हैं तब कहीं वह ऐसी किस्म तैयार कर पाता है, जिससे फसल अच्छी हो, दाने मोटे हों और जिस पर रोग न लग सके।

गेहूँ के रतुआ रोग के बारे में सबसे पहले आगरा विश्वविद्यालय के सी० मेहता ने जानकारी दी। इसके तुरन्त बाद १६३५ में, इस अनुसंधानशाला के अधीन शिमला में एक, केन्द्र खोला गया, जहां गेहूँ की ऐसी किस्म तैयार करने का प्रयत्न किया जाने लगा, जिस पर रतुआ या अन्य रोग न लगे। इसके बाद १६४६ में नयी दिल्ली, पूसा (बिहार) भुवाली (उत्तर प्रदेश), इन्दौर (मध्य प्रदेश) और विलिंगटन (नीलगिरि पहाड़ी) में भी ऐसे ही केन्द्र खोले गए।

अनुसंधान के लिए गेहूँ की ७,००० देशी और विदेशी किस्में एकत्र की गयीं और उनसे संकर प्रणाली से नयी किस्में तैयार की गयीं। तब गेहूँ की ऐसी किस्में तैयार की गयी जिन पर रतुआ और कंडुआ नहीं लगता। इनमें एन० पी० ७१०, एन० पी० ७१८, एन० पी० ७६१ और एन० पी० ७७० काफी प्रचलित हुईं और देश में इन्हे काफी मात्रा में बोया जाने लगा।

इसके बाद ऐसा गेहूँ तैयार करने का प्रयत्न किया गया जिस पर किसी भी प्रकार का रतुआ न लगे। फलतः एन० पी०७६७, ७६८ और ७६६ तैयार हुए। इन पर काला और भूरा रतुआ नहीं लगता और पीला रतुआ भी जल्दी नहीं लग पाता। इनमें से पहली किस्म बंगाल में और बाकी दो बिहार में खूब बोयी जाती हैं।

अनुसंधानशाला ने इसके बाद भी अपने प्रयोग जारी रखे और गेहूँ की नयी किस्म निकाली, जिन पर रोग नहीं लगता। इनमें से एन० पी० ८०६ गेहूँ किसानों को बोने के लिए दिया जाने लगा है और बाकी पर अभी अनेक केन्द्र में और प्रयोग हो रहे हैं। एन० पी० ८०६ उत्तर भारत के पहाड़ी क्षेत्रों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस पर किसी प्रकार का रतुआ नहीं लगता और कँडुआ भी जल्दी नहीं लग पाता। उत्तर भारत के मैदानों के लिए एन० पी० ८२४ बहुत उपयोगी होगा।

अनुसंधानशाला में इस समय गेहूँ की किस्म को तेजी से सुधारने के लिए एक्स-रे और रेडियो-सक्रिय आइसोटोप का प्रयोग भी किया जा रहा है। साथ ही इसका भी प्रयत्न किया जा रहा है कि ऐसी किस्मे तैयार हों जिन पर रोग न लगे और साथ ही जिनमे पौष्टिक तत्व भी काफी मात्रा में हों। इसके लिए अनुसंधानशाला में केन्द्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला स्थापित की जा रही है।

देश में किसान एन० पी० गेहूँ का खूब प्रयोग कर रहे हैं। अनुसंधानशाला उनके तथा देश के हित के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है।

सूचना

हरिशरणानन्द वैज्ञानिक पुरस्कार

बड़े हर्ष के साथ विज्ञान परिषद्, प्रयाग सूचित कर रहा है कि इस वर्ष हरिशरणानन्द जी के नाम पर तीन वैज्ञानिक पुरस्कार वैज्ञानिक हिन्दी ग्रन्थों पर दिये जायँगे। ये पुरस्कार तीन श्रेणी के होंगे :

प्रथमः हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार—यह पुरस्कार दो सहस्र रुपये का होगा। यह पुरस्कार उच्च स्तर को सर्वश्रेष्ट वैज्ञानिक रचना पर प्रदान किया जावेगा।

द्वितीयः यह पुरस्कार एक सहस्र रुपये का होगा और सामान्यतयः जनोपयोगी वैज्ञानिक साहित्य की सर्वश्रेष्ट रचना पर दिया जायगा।

तृतीयः हरिशरणानन्द बालोपयोगी विज्ञान पुरस्कार—यह पाँच सौ रुपये का होगा।

उक्त विज्ञप्ति के द्वारा विज्ञान परिषद्, प्रयाग पुरस्कार के लिए प्रत्येक वर्ग की वैज्ञानिक विषय की पुस्तकें आमन्त्रित करता है।

१—प्रत्येक वर्ग की पुस्तकों की ८ प्रतियां १ अक्तूबर १९६० तक विज्ञान परिषद्, प्रयाग के कार्यालय में आ जानी चाहिए।

२—पुस्तकें शुद्ध हिन्दी भाषा में प्रकाशित हुई हों।

३—अनुवाद ग्रन्थों पर विचार नहीं किया जायगा।

४—इन प्रकाशित पुस्तकों में विज्ञान परिषद्, प्रयाग, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग अथवा भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय द्वारा स्वीकृत में से कोई भी वैज्ञानिक परिभाषिक शब्दावली यदि व्यवहृत हुई हो तो मान्य होगी।

ग्रन्थ-लेखकों को पुरस्कार सम्बन्धी नियमावली कार्यालय से मँगानी चाहिए।

मन्त्री,
विज्ञानपरिषद्
प्रयाग

चावल की भूसी से तेल

धान को छांटने के बाद जो चावल निकलता है, उस पर लाल रंग की परत या भूसी बनी रहती है। इस लाल भूसी को भी छांटकर सफेद चमकदार या पालिशदार चावल तैयार किया जाता है। देश में हर साल २ करोड़ ८० लाख टन चावल मिलों से छंटकर तैयार होता है। इससे लगभग ३० लाख टन लाल भूसी निकलती है। यह स्वाद में मीठी और महकदार होती है। इसमें औसत १५ प्रतिशत तेल निकले तो हर साल मिल में छटे चावल की भूसी से ३ लाख टन तेल मिल सकता है। यदि इसका निर्यात हो तो इससे हर साल लगभग ४० करोड़ रु० मिलेगा।

चावल की यह लाल भूसी प्रोटीन और विटामिन युक्त होती है और पशुओं के लिए लाभकारी होती है। पर अधिक दिन तक रहने से इसमें वसा अम्ल (फैटी एसिड्स) पैदा हो जाते हैं अतः पुरानी भूसी खाने से पशुओं का पेट खराब हो जाता है।

चावल की भूसी में १० से २२ प्रतिशत तेल का अंश होता है। तेल की चक्कियाँ चावल की मिलों के पास बननी चाहिये। अनुमान है कि चावल की दस मिलों से जो भूसी निकलेगी उससे तेल की एक चक्की बहुत अच्छी तरह चल सकती है।

मैसूर की केन्द्रीय खाद्यशाला ने अलकोहल में भूसी का घोल तैयार करके तेल निकालने की विधि निकाली है। चीनी कारखानों के शीरे से देश में अलकोहल बनाया जाता है। परीक्षा के तौर पर इस विधि से तेल निकाला गया है। यह तेल भी खाने में बरता जा सकता है और इससे वनस्पति भी बन सकता है। यह साबुन बनाने में भी काम आ सकता है।

तेल निकलने के बाद भी भूसी की खली में १ या २ प्रतिशत तेल रह जाता है। इसे जानवरों को खिलाया जा सकता है। खली को पावरोटी और बिस्कुटों आदि में भी मिलाया जा सकता है।

चावल की भूसी का तेल बादामी रंग का होता है। क्लोरोफिल होने के कारण इसमें कभी-कभी हल्का हरापन भी हो जाता है। इसका स्वाद और गंध अच्छी होती है। नारियल के तेल की तरह यह जम भी जाता है।

चावल की भूसी से शक्कर भी निकाली जाती है। शक्कर का रंग लाल होता है। इसमें अधिकांश भाग सूक्रोज और ग्लूकोज का होता है।

तेल को ठंडा करने के बाद एक या दो दिन तक रखने पर बर्तन की तली में एक प्रकार का मोम जम जाता है। मोम का रंग हल्का लाल होता है और यह पालिश, चिकनाई आदि बनाने के काम आता है।

सिरका बनाने का घरेलू धंधा

मैसूर की केन्द्रीय खाद्य अनुसंधानशाला ने घरेलू ढंग पर सिरका बनाने की सरल विधि निकाली है। अनुसंधानशाला में सिरका बनाने की सस्ती और बहुत अच्छी मशीन बनाई गई है। दो या तीन मशीनों को लगाकर मुनाफे में घरेलू धंधा चलाया जा सकता है। सिरका बनाने के लिए गन्ने का रस और फल के रस देश में बहुतायत से उपलब्ध हैं। पुराना सिरका खाने में अच्छा होता है। पीपों या टंकियों को लबालब भरकर, उनका मुँह मूँद दिया जाता है, जिससे आक्सीकरण के द्वारा सिरके के जीवाणु इसके अम्ल को नष्ट न कर दें। जब सिरके की तेज गंध धीमी पड़ जाती है, तो यह खाने के योग्य हो जाता है। इस तरह रखने से यह साफ भी हो जाता है।

हरे काजूफल से पेय

हरे काजूफल से उसका जो कोया निकाला जाता है, वही खाने के काम आता है और उसी को हम काजू कहते हैं। अनुमान है कि देश में प्रति वर्ष २ लाख ५० हजार टन हरा कजूफल होता है। काजू का कोया निकालने के बाद बाकी गूदा बेकार जाता है क्योंकि इसका स्वाद बड़ा कसैला होता है। इस गूदे से कुछ लोग शराब भी बनाते हैं।

मैसूर की खाद्य अनुसंधानशाला में हरे काजूफल का कसैलापन दूर करने की विधि निकाली गई है। इसके रस को नीबू, अनन्नास, अंगूर और सेव के रस में मिलाकर बढ़िया कार्बनी पेय (झागदार) बनाये जा सकते हैं। १८ भाग हरे काजूफल का रस, २ भाग चीनी और २५ भाग पानी मिलाने से बढ़िया कार्बनी शर्बत तैयार होता है। शून्य में ५० से ५५ सेंटीग्रेड ताप पर गाढ़ा करके इस रस को झागदार (एयरेटेड) पेय बनाने के काम लाया जा सकता है।

एक उपयोगी धूनी

मैसूर की खाद्य अनुसंधानशाला की खोजों से पता चला है कि कीड़े-मकोड़े आदि मारने के लिए इथिलीन-डाइ-ब्रोमाइड की धूनी अपने देश की जलवायु में बहुत अच्छी रहेगी। इथिलीन डाइब्रोमाइड लगभग १३१ डिग्री सेंटीग्रेड पर उबलता है। इससे क्लोरोफार्म जैसी तेज गंध निकलती है। इसमें आग भी नहीं लगती और इसके एक गैलन भार का वजन १८ पौंड होता है।

द्रव और गैस दोनों रूपों में इथिलीन डाइब्रोमाइड मनुष्यों और पशुओं के लिए जहरीला होता है इसलिए इसे इस्पात के बंद पीपों में संभालकर खाने-पीने की चीजों से दूर रखना चाहिए। इसे जस्तेदार लोहे के पीपों, कांच और पालिसदार मिट्टी के मर्तबानों में भी रखा जा सकता है।

गोदामों में इसकी धूनी कुशल कारीगर से दिलानी चाहिए, जिससे किसी व्यक्ति या अनाज को हानि न पहुँचे। आटा, सूजी और ऐसे खाद्य पदार्थों को, जिनमें घी या तेल की अधिक मात्रा हो, इथिलीन डाइब्रोमाइड की धूनी नहीं देनी चाहिए।

सभी राज्यों में भरपूर खेती योजना

देश में सात राज्यों में एक-एक जिले में भरपूर खेती का जो कार्यक्रम (पैकेज प्रोग्राम) चलाने का निश्चय हुआ था, वह अब अन्य राज्यों में भी चलाया जाएगा।

केन्द्रीय कृषि मंत्रालय ने आसाम, बम्बई, जम्मू-काश्मीर, मैसूर, प० बंगाल, केरल और उड़ीसा से कहा है कि अपने यहाँ यह कार्यक्रम चलाने की ठोस योजना बनाकर भेजें। मद्रास राज्य में १३ अप्रैल को यह कार्यक्रम चालू कर दिया गया और बाकी राज्यों से भी तैयारी करने को कहा गया है। यह कार्यक्रम फोर्ड फाउण्डेशन की सहायता से चलाया जाएगा। पर यह सहायता केवल पूर्व निश्चित राज्यों के लिए ही मिलेगी।

यह कार्यक्रम उन जिलों में चलाया जाएगा जहां सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध है और जहां ग्राम-पंचायतें और सहकारी संस्थाएं स्थापित हैं। यह कार्यक्रम पांच वर्षों में पूरा होगा। आशा है पहले इसमें २० प्रतिशत किसान सम्मिलित होंगे और अन्त में ६५ प्रतिशत हो जाएँगे।

नए राज्यों में इस कार्यक्रम को चलाने का खर्च राज्य और केन्द्र में किस प्रकार बांटा जाय यह योजना आयोग की सलाह से तय किया जाएगा।

२२२ नवीन पूर्व-विस्तार खण्ड

केन्द्रीय सामुदायिक विकास और सहकार मंत्रालय ने ११ राज्यों और केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों में अप्रैल, १९६० में २२२ पूर्व-विस्तार खंड खोलने की अनुमति दी है। इनका राज्यवार ब्यौरा इस प्रकार है: आंध्र प्रदेश-२२; बिहार-२६; बम्बई-३३; मध्य प्रदेश-१८; मद्रास-१६; पंजाब-९; उड़ीसा-१६; उत्तर प्रदेश-४६; मैसूर-१२; राजस्थान-१०; केरल-७; मणिपुर-१; और नेफा-२।

राज्य सरकारें इन खंडों के लिए क्षेत्रों का चुनाव करते समय इस बात पर ध्यान रखेंगी कि वहां के रहने वाले आत्मनिर्भर और सहयोगी हों, गांवों में सफाई हो और पंचायतें तथा सहकारी समितियाँ काम करती हों।

राज्य सरकारों से कहा गया है कि नये खंड अन्न-उत्पादन बढ़ाने के दृष्टिकोण से खोले जाएं। उन स्थानों को प्राथमिकता दी जाए जहां गेहूँ और धान की खेती होती हो, सिंचाई की सुविधा हो या काफी वर्षा होती हो।

राज्य सरकारों को यह भी सुझाव दिया गया है कि ग्रामदान में दिये गये गांवों और ऐसे गांवों में जहां पिछड़ी हुई जातियों के लोग अधिक हों, खंड खोलने में प्राथमिकता दी जाए। किन्तु यह प्रयत्न किया जाय कि विकास खंडों के अन्तर्गत प्रायः सभी जिले आ जाएं। पूर्व-विस्तार खंड पुराने विकास खंडों के पड़ोस में खोले जाएं। यह भी प्रयत्न किया जाए कि ये खंड कृषि या पशु-विज्ञान विद्यालयों अथवा विस्तार खंड शिक्षण केन्द्रों के आसपास हों।

कीचड़ से दवा

इस्तोनिया के वैज्ञानिकों ने सागर के कीचड़ से "हुमीसोल" नामक दवा तैयार की है जिसमें जैव उत्तेजक उपादान है। सपारदर्शी तरल पदार्थ का मांसपेशी में इंजेक्शन देने से इसका सूजन विरोधी प्रभाव होता है अतः स्राव पर इस दवा का अच्छा प्रभाव पड़ता है। जोड़ों की पुरानी बीमारी में भी यही दवा गुणकारी होती है। अस्पतालों और स्वास्थ्यशालाओं, दोनों जगह इसका व्यवहार समान सुविधा के साथ किया जा सकता है। जिन मामलों में प्रचलित मृत्तिका उपचार वर्जित होता है, उनमें भी इससे उपचार किया जा सकता है।

इस्तोनिया के तट पर और द्वीपों में औषधीय सागर कीचड़ प्राप्त करने के ५० से अधिक प्रकृतिक साधन स्रोत हैं। बाल्टिक क्षेत्र का यह बहुत ही अधिक मूल्यवान कीचड़ स्वास्थ्यशालाओं में पूरे साल काम में लाया जाता है।

भारत में पटसन का उत्पादन

१. जनवरी से सितम्बर १९५९ की अवधि में इंडियन जूट मिल्स एसोसिएसन की सदस्य मिलों ने पटसन का ७,८२,००० टन माल तैयार किया।

२. इसी अवधि में ५,७५,३९९ टन माल विदेशों को भेजा गया। इससे ८४ करोड़ ९७ लाख रु० की विदेशी-मुद्रा कमायी गयी। १९५८ की इसी अवधि में ६,१४,३३७ टन माल के निर्यात से लगभग ८० करोड़ रु० की विदेशी-मुद्रा प्राप्त हुई थी।

३. पटसन का माल खरीदने वाले देशों में प्रचार करने के लिए भारत सरकार ने इंडियन जूट मिल्स एसोसिएसन को १९५९-६० में १.२५ लाख रु० की सहायता दी।

४. भारत, पटसन की फसल के जुलाई १९५८ से जून १९५९ के साल में पहली बार कच्चे पटसन की पैदावार में आत्मनिर्भर हुआ। इस अवधि में पैदावार ६७ लाख ५९ हजार गांठ हुई, जबकि पटसन उद्योग की आवश्यकता ६५ लाख गांठ की थी।

५. जुलाई-जून १९५८-५९ में पाकिस्तान से केवल ३,३०,२०० गाठें कच्चा पाट मगाया गया, जब कि इसी अवधि में ६,७५,००० टन पाट का आयात हुआ था।

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का १९५९-६० का कार्य-विवरण

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का यह वर्ष पिछले दो तीन वर्षों की अपेक्षा विशेष रूप से संतोषजनक रहा। कई वर्षों से परिषद् के सभ्यों तथा ग्राहकों की संख्या घटती जा रही थी और अधिकतर सभ्यों तथा ग्राहकों पर कई वर्षों के शुल्क बाकी थे। इन परिस्थितियों के ऊपर कार्यकारिणी ने विचार किया जिसमें कुछ सुझाव रक्खे गए। इन सुझावों को कार्यान्वित करने पर परिषद् की स्थिति में सुधार ज्ञात हो रहा है।

ग्राहकों तथा सभ्यों से कुछ वर्षों से शुल्क वसूल नहीं किये गये थे। इस वर्ष इसको वसूल करने का विशेष प्रयत्न किया गया जिसमें कुछ सफलता मिली। जिनसे शुल्क नहीं प्राप्त हुआ उनके नाम सभ्य तथा ग्राहकों की सूची से काटने पड़े।

स्वामी हरिशरणानन्द जी ने १९५९ में एक प्रचारक रखने के लिये निधि प्रदान की जिसका उल्लेख पिछले कार्य-विवरण में किया जा चुका है। इस पद पर इस समय श्री पुरुषोत्तम दास दुबे जी कार्य कर रहे हैं। छः माह की अवधि में प्रचारक ने मध्य प्रदेश, पूर्वी उत्तर प्रदेश, उत्तरी उत्तर प्रदेश तथा प्रयाग के आसपास के स्थानों में विज्ञान के ग्राहक बनाने एवं परिषद् के प्रकाशनों के विक्रय का कार्य किया। फलतः विज्ञान के ग्राहकों में १०० की अभिवृद्धि हुई।

गतवर्ष वी० पी० पी० द्वारा पुस्तकें नहीं भेजी जा रही थीं किन्तु इस वर्ष वी० पी० पी० द्वारा पुस्तकों के भेजे जाने का पुनः प्रबन्ध किया गया। इससे भी परिषद् की आय में कुछ वृद्धि हुई।

इस वर्ष परिषद् के निम्नलिखित आजीवन सभ्य तथा सभ्य बने :—

१—डा० शिवगोपाल मिश्र, २—डा० वी० वी० नार्लीकर, ३—प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा, ४—डा० दिव्य दर्शन पन्त, ५—डा० धर्मेन्द्र नाथ वर्मा, तथा ६—डा० बलदेव विहारी लाल सक्सेना।

सभ्य :—डा० राजेन्द्र प्रसाद अग्रवाल, २—डा० मथुरा प्रसाद सिंह, ३—डा० पूरन चन्द्र गुप्त, ४—डा० भुवन चन्द्र जोशी, ५—डा० कन्हैयालाल यादव ६—डा० मुरली मनोहर जोशी, ७—श्री राजेन्द्र सिंह, ८—श्री उमा चरण शुक्ल तथा ९—डा० राधिका चरण खरे।

इस वर्ष के अन्त में आजीवन सभ्यों, सभ्यों तथा ग्राहकों की संख्या निम्न रही:—

आजीवन सभ्य ६८, सभ्य ७० तथा ग्राहक ३६५।

विज्ञान परिषद् द्वारा प्रदत्त दो सहस्त्र रुपये का १९५९ का हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार श्री हीरेन्द्र नाथ बोस को उनकी कृति "मृत्तिका उद्योग" पर घोषित किया गया। इस पुरस्कार के साथ एक स्वर्ण पदक प्रदान किया जायगा।

हमें यह बताते हुए हर्ष होता है कि इस वर्ष से स्वामी हरिशरणानन्द जी ने प्रतिवर्ष तीन पुरस्कार (दो सहस्त्र, एक सहस्त्र तथा पाँच सौ रुपये) की निधि विज्ञान परिषद् को देने का निश्चय किया है। इस वर्ष विज्ञान परिषद् ने तीनों पुरस्कारों की घोषणा की है जो क्रमशः विशिष्ठ साहित्य, जनोपयोगी साहित्य तथा बालोपयोगी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों पर दिये जायेंगे।

परिषद् ने डा० शिव गोपाल मिश्र द्वारा लिखित एक नवीन पुस्तक "भारतीय कृषि का विकास" का प्रकाशन प्रारम्भ किया जो समाप्तप्राय है। उत्तर प्रदेशीय सरकार से इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ १,५००) भी एक निधि भी प्रदान की है।

जनवरी, १९६० से विज्ञान पत्रिका में ३२ पृष्ठ के स्थान पर ४० पृष्ठ कर दिये गये हैं। विज्ञान के लेखकों को उचित पारिश्रमिक की भी व्यवस्था की गई है। विज्ञान के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये स्वामी हरिशरणानन्द जी ने इस वर्ष १,५००) की राशि प्रदान की है।

विज्ञान के सम्पादक डा० शिवगोपाल मिश्र जी ने परिषद् को एक डुप्लीकेटर प्रदान किया है जिसके लिये परिषद् उनका आभारी है।

विज्ञान परिषद् ने ३ जनवरी, १९६० को बम्बई में होने वाले साइंस कांग्रेस के अवसर पर द्वितीय अनुसन्धान गोष्ठी का आयोजन किया। प्रथम गोष्ठी का आयोजन सन् १९५९ में दिल्ली में हुआ था। द्वितीय गोष्ठी की अध्यक्षता काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के गणित विभाग के अध्यक्ष प्रो० वी० वी० नार्लीकर जी ने की। गोष्ठी के प्रारम्भ में डा० सत्यप्रकाश ने माननीय अतिथि का स्वागत करते हुये परिषद् का संक्षिप्त इतिहास बताया। गोष्ठी का उद्घाटन बम्बई राज्य के स्वास्थ्य उपमन्त्री, डा० एन० एन० कैलाश ने किया। अपने भाषण में डा० कैलाश ने वैज्ञानिकों को भारतीय जनता में वैज्ञानिक शिक्षा के प्रसार के प्रति जागरूक होने का आदेश करते हुये यह मत प्रकट किया कि शीघ्रातिशीघ्र स्नातक तथा आचार्य-स्तर तक की मौलिक पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित किया जाय। इसके लिये उन्होंने एक प्रभावशाली तथा सक्रिय अन्तर्प्रान्तीय समिति के निर्माण करने की सलाह दी। गोष्ठी के अध्यक्ष प्रो० नार्लीकर ने अपने अध्यक्षपदीय भाषण में विज्ञान के वर्तमान रूप की गणितीय व्याख्या बड़े पाण्डित्य पूर्ण ढंग से की। गोष्ठी में कई शोध निबन्ध पढ़े गए। निबन्ध पाठ के बाद उन पर महत्वपूर्ण विवाद एवं विचार-विमर्ष हुये।

परिषद् द्वारा "विज्ञान अनुसन्धान गोष्ठी" का सफल आयोजन न केवल देश के वैज्ञानिक साहित्य वरन् विश्व के वैज्ञानिक साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है।

"विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका" का प्रकाशन-कार्य अनवरतरूप से होता रहा। हर्ष एवं गौरव का विषय है कि इस त्रैमासिक पत्रिका की सामग्री को "कैमिकल ऐबस्ट्रैक्ट" ने सन् १९५८ से ही संक्षिप्तीकरण के लिये अपनी सूची में सम्मिलित कर लिया है तथा अन्य "ऐबस्ट्रैक्ट" प्रकाशन तत्सम्बन्धी सामग्री प्रकाशित करना अनिवार्य समझने लगे हैं।

अनुसन्धान पत्रिका को केन्द्रीय सरकार के वैज्ञानिक अनुसन्धान तथा सांस्कृतिक मन्त्रालय की ओर से २८००) का अनावर्त्तक अनुदान प्राप्त हुआ। उत्तर प्रदेशीय साइंटिफिक रिसर्च कमेटी से भी पाँच सहस्र रुपये का अनावर्तक अनुदान प्राप्त हुआ। हमें आशा है कि कमेटी अपना उदारतापूर्ण व्यवहार बनाये रहेगी और परिषद् को अनुसन्धान पत्रिका के लिये उचित अनुदान देती रहेगी। हम उत्तर प्रदेशीय सरकार से प्रार्थना करेंगे कि वह पत्रिका के प्रकाशन हेतु और अधिक आवर्तक अनुदान दे जिससे पत्रिका का प्रकाशन सुचारु रूप से चलता रहे।

इस वर्ष हमें उत्तर प्रदेशीय सरकार से "विज्ञान" के प्रकाशन के लिये किसी प्रकार का अनावर्तक अनुदान नहीं प्राप्त हो सका। विज्ञान के प्रकाशन का व्यय, सभ्यों से आय तथा सरकार के आवर्तक अनुदान (२,००० रु०) से नहीं चल पाता। इस को हम पुस्तकों की आय तथा सरकार के अनावर्तक अनुदान से पूरा करते रहे हैं। सरकार से हमारी प्रार्थना है कि विज्ञान के प्रकाशनार्थ आवर्तक अनुदान पांच सहस्र रुपये वार्षिक कर दें जिससे हम अपने प्रकाशनों को सुचारु रूप से चला सकें।

धनाभाव के कारण हमें अपने भवन-निर्माण का कार्य रोक देना पड़ा है। छत के दो कमरे, जमीन का फर्श तथा जीने अधूरे पड़े हैं। इस अधूरे कार्य को पूर्ण करने के लिये हमें बीस सहस्र रुपये की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त भवन के हाल के निर्माण हेतु लगभग एक लाख रुपये की आवश्यकता है।

हमें यह बताते हुए हर्ष होता है कि विज्ञान परिषद् के भूतपूर्व सभापति प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा जी ने एक सहस्र रुपये का अनुदान भवन-निर्माण के हेतु दिया है। विज्ञान प्रेमियों से हमारा निवेदन है कि वे यथाशक्ति हमें आर्थिक सहायता देकर इस सदुद्देश्य में हमारी सहायता करें। हम सरकार से भी निवेदन करते हैं कि वह हमें अनावर्तक अनुदान देकर भवन-निर्माण में हमारी सहायता करे।

'विज्ञान' पत्रिका के परिवर्तन में निम्न हिन्दी पत्र-पत्रिकायें प्राप्त होती हैं:—

१. विज्ञान प्रगति २. हिन्दी प्रचारक ३. आयुर्वेद विज्ञान ४. संजीवनी ५. आर्यवर्त ६. आयुर्वेद महोत्सव ७. भारत सेवक समाज ८. खाद्य विज्ञान ९. आज का चीन १०. साहित्य सन्देश ११. द्युलोक १२. मध्य प्रदेश सन्देश १३. सोवियत भूमि १४. आज १५. विहार राष्ट्रभाषा परिषद् पत्रिका १६. ग्राम सुधार

अनुसंधान पत्रिका के परिवर्तन में निम्न अनुसन्धान पत्रिकायें देश-विदेश से प्राप्त होती रहती है :

1. The Indian Journal of Pharmacy.
2. Agra Universiy of Journal of Research.
3. Hindi Anusheelan of Bhartiya Hindi Parishad.
4. Glass and Ceramic 5. Vigyan Pragati.
6. Insdoc List. 7. Food Science.
8. Journal of University of Saugar.
9. Journal of Banaras Hindu University.
10. The Philippine Journal of Science.
11. Chalmers Tenkinsa Hogskoles Handlingar.
12. Miltiger Berichte Uber, Atherisch Ole Riechtoffe.
13. Annual Report of the Board 'Smithsonian Institution'.
14. Journal of the Asiatic Society of Bombay.
15. Scientific Reports of the Indian Agricultural Research Insitute.
16. New Publication of the Geological Survey.
17. Roezniki Chemii of Polska Akademia Nauk.
18. Anales—Madrid.
19. Berichte Des Ohara Institutes, Okyama Universitat.
20. Scientia Sinica, Academia Sinica.
21. Bulletin De E Instituto National.
22. Acta Physica.
23. Archives Nederlandaises De Zoologie.
24. The Nuffield Foundation Report.
25. C. S. I. R. O. Abstract-Melbourne.
26. Scentific Papers of University of Tokyo.
27. Journal of the Kyushu University.
28. Lloydia-Ohio.
29. Revista De La Faculted De Ciencias.
30. Academie Surbe Des Sciences.
31. The Allahabad Farmer, The Allahabad Agriculture Institute
32. Arkiv for Kemi.
33. Roezniki Chemii, Warsza.

34. Zoologie Lee.
35. Annual Report of Scientific Works, Osaka University.
36. Wissenschaftliche Abhamdlungen Der Physiskalisch Technisechies.
37. Elektrotechniski Vestnik.
38. Zeszyty Naukowe Politechniki Lodzkiez.
39. Science Museum.
40. Universities of Colorado Studies.
41. Bulletin Des Societes Chemiues Belges.
42. Latnijas P. S. R. Zinatu, Akademiyas.VESIIS.
43. Memoirs of the Queen Land Museun,
44. Publication De Institute Mathematique.
45. Brown University Library Rhode Island, U. S. A.
46. AEini Dad, Barcelona.
47. Analele Stintifice De Universite De Lassy, Romania.
48. Hungarian Technical Abstracts Budapest.
49. Doklady of the Academy of Sciences of the U. S. S. R.
50. Gazzetta Chimmiea, Italian.
51. Memoirs De La Real Academia Le Ciencias X Artes De Barcelona.
52. The Journal of the Madras Institute of Technology.

१—यह अंक

किसी भी राष्ट्र के समक्ष खाद्य-समस्या ज्वलन्त रूप में उपस्थित रहती है और उसके हल के बिना किसी भी प्रकार के सुख-समृद्धि की कामना नहीं की जा सकती। हमारे देश ने विगत १३ वर्षों से अन्नोत्पादन में वृद्धि लाने के लिये जो शतत प्रयास किये हैं वे हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि के उन्नयन में व्यय की जाने वाली अपार धनराशि से परिलक्षित हैं। परन्तु अभी तक हम पूर्णतया आत्मनिर्भर नहीं हो पाये। हमारे केन्द्रीय खाद्य मन्त्री ने कुछ ही दिन पूर्व अमेरिका के साथ खाद्य सम्बन्धी जो समझौते किये हैं उनसे विदित होता है कि तृतीय पंचवर्षीय योजना काल में अमेरिका भारत को १ करोड़ ७० लाख टन गेहूँ तथा चावल प्रदान करता रहेगा। ऐसी आशा की जाती है कि तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक हमारा देश ११ करोड़ टन अन्नोत्पादन करने लगेगा जो राष्ट्र की आवश्यकताओं से अधिक होगा।

खेद है कि अन्न की समस्या का हल अभी तक राजनीतिक पचड़ों के कारण नहीं हो पाया। हमारे देश में अन्नोत्पादन के वैज्ञानिक तरीकों पर देर से विचार प्रारम्भ हुआ है। पश्चिमी राष्ट्रों में कृषि का वैज्ञानिक अध्ययन प्रायः १०० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ जब कि हमारे देश में केवल ५० वर्षों से। यही नहीं, इन पचास वर्षों में प्रायः चार दशक तो बिना किसी विशिष्ट सफलता के व्यतीत हुये हैं। पंचम दशक में वैज्ञानिकों तथा समान्य लोगों की आँखे खुली हैं। वे देश की खाद्य समस्या को सर्वोपरि महत्व प्रदान करते हुये आत्मनिर्भर बनने के लिये नवीनतम शोधों को कृषि के उन्नयन में प्रयुक्त करने को उद्यत हैं।

किसी भी राष्ट्र की खाद्य समस्या रातोंरात नहीं सुलझाई जा सकती। उसके लिये सुसंबद्ध प्रयोगों एवं वैज्ञानिक पूर्वयोजनाओं की आवश्यकता होती है। हमारे देश में राष्ट्रीय विकास खण्डों की स्थापना के द्वारा ऐसे कार्यक्रम की पूर्वपीठिका तो बन चुकी है परन्तु उनमें अभी वैज्ञानिक प्रणाली से कार्य प्रारम्भ नहीं हो पाया। इसके मुख्य दो कारण हैं—एक तो देश में कृषि-विज्ञान की समुचित शिक्षा का अभाव, दूसरे शिक्षित नवयुवकों का कृषि के प्रति न्यून आकर्षण। कृषि विज्ञान की शिक्षा के लिये आवश्यक है कि प्रारम्भ से ही कृषि को आवश्यक विषय बनाकर शिक्षा प्रारम्भ

हो। फिर विश्वविद्यालय तक आते आते विद्यार्थियों को इतना व्यवहारिक ज्ञान प्रदान किया जाय कि वे स्वतन्त्र रूप से फार्म की स्थापना एवं उसका संचालन कर सकें। इन शिक्षितों में कृषि के प्रति आदर का भाव भरना आवश्यक है।

भारतवर्ष एक ऐसा देश है यहाँ प्रचीन काल से कृषि को सर्वोत्तम माना जाता रहा है। अन्न को ब्रह्म मानकर उपासना की जाती थी। आर्थिक प्रलोभनों में आकर आज का किसान अपनी धरती छोड़ कर शहरों की ओर दौड़ रहा है। जो वहाँ हैं भी वे मुकदमों एवं प्रपञ्चों में इतने लिप्त हैं कि उन्हे खेती करने का अवसर ही नहीं मिलता। इस प्रकार से राष्ट्र का एक महत्वपूर्ण उद्योग—कृषि कर्म—उपेक्षित है जिसके कारण खाद्य समस्या का समुचित हल नहीं मिल पाता। समय आ गया है जब दूसरे राष्ट्रों की शोधों तथा अपने पूर्व अनुभवों से लाभ उठाकर हम कृषि को उन्नत बनावे।

कृषि की उन्नति अनेक साधनों पर निर्भर करती है जिनमें भूमि सर्वेक्षण, भूमि संरक्षण, खेतों की जुताई, खरपतवारों का विनाश, समुचित उर्वरकों का प्रयोग, नवीन कृषि पद्धतियों का प्रयोग, शस्यों के उत्पादन में विभिन्न, अभिक्रियाओं का अध्ययन उन्नत कृषि यन्त्रों का प्रयोग, कृषि अर्थशास्त्र आदि प्रमुख हैं। विज्ञान का यह अंक कृषि के क्षेत्र में होने वाली चतुर्दिक उन्नति की एक झाँकी मात्र प्रस्तुत करता है।

हमें विश्वास है कि इससे पाठकों की रुचि परिष्कृत होगी। फिर उन्हें कृषि क्षेत्र में होने वाली आधुनिक शोधों से परिचित कराया जा सकेगा।

२—रूस द्वारा एक नवीन प्रयोग

शिखर सम्मेलन की चर्चा राजनीतिक क्षेत्रों में पूर्व कल्पनाओं का विषय बन रही थी और रूस के प्रधान मन्त्री निकिता ख्रुश्चेव पेरिस में वार्ता के लिये पदार्पण कर ही रहे थे कि १५ मई को रूसी वैज्ञानिकों ने अपनी नवीन उपलब्धियों का परिचय एक अन्तरिक्ष यान छोड़ कर दिया। पुनः एक बार सम्पूर्ण विश्व ने इस अपूर्व घटना को एक स्वर से स्वीकार किया। कुछ लोगों का मत है कि ऐसी घटनायें महत्वपूर्ण तो है परन्तु उनके प्रकाशन की विधि ठीक नही है। पिछली बार जब ख्रुश्चेव ने अमेरिका की यात्रा की थी तो स्पुतनिक द्वारा चन्द्रमा में ध्वजारोहण की घोषणा की गई थी। इस बार भी शिखर-समेलन के पूर्व की यह घटना अपने समस्त कौशल एवं वैचित्र्य के होते हुये भी रूसी धमकी का आभास देती हैं। जो भी हो, इतना तो स्पष्ट है कि रूसी वैज्ञानिकों ने इस अन्तरिक्ष यान की स्थापना द्वारा वैज्ञानिक सफलताओं में एक नया अध्याय जोड़ा है। अब यह आशा बँधने लगी है कि निकट भविष्य में ऐसे यान अन्तरिक्ष में छोड़े जा सकेंगे जिनमें जीविष पुरुष यात्रा कर सकेंगे।

रूस द्वारा यह अन्तरिक्ष यान ऐसी सम्भावनाओं का पूर्व-प्रयोग मात्र है। इस यान का भार ४ $\frac{1}{2}$ टन है और २०० मील की ऊचाई पर पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है।

गणना द्वारा यह ज्ञात किया गया है कि प्रति ६१ मिनट में यह पृथ्वी का चक्कर लगा लेता है। यह यान अनेक प्रकार के उपकरणों से सुसज्जित है जिसमें प्रधानतः एक छोटा प्रकोष्ठ है जिसमें बैठ कर भविष्य में मनुष्य अन्तरिक्ष-यात्रा करने में समर्थ हो सकेंगे। इस प्रकोष्ठ में सभी आवश्यक सामग्रियाँ रखी हुई हैं और इनका कुल भार ४२५० पौंड है। निश्चित योजना के अनुसार यह प्रकोष्ठ यान से पृथक तो हुआ परन्तु फिर उसी गति से नीचे नहीं उतरा, जितनी गति से ऊपर गया था वरन् ऊपर ही चढ़ता गया।

इस प्रकार से विशालकाय यानों की अन्तरिक्ष में स्थापना एवं उन पर नियन्त्रण प्राप्त करके एक अभूत पूर्व सफलता प्राप्त की जावेगी। रूसी वैज्ञानिक अन्तरिक्ष यात्रा में अग्रणी होंगे, यह निर्विवाद है।

रफी अहमद किदवई स्मारक पुरस्कार

कृषि,पशुपालन और सम्बन्धित विषयों में अनुसंधान कार्य को प्रोत्साहन देने और खोजों तथा आविष्कारों को उचित मान्यता देने के उद्देश्य से भारतीय कृषि अनुसधान परिषद् ने पांच पांच हजार रुपए के ११ पुरस्कार स्थापित किए हैं। ये पुरस्कार रफी अहमद किदवई स्मारक कृषि अनुसधान पुरस्कार के नाम से जाने जाएंगे और दो वर्ष में एक बार नीचे लिखे क्षेत्रों मे की गई महत्वपूर्ण खोजों पर दिए जाएंगे:

(१) सस्य विज्ञान (एग्रोनोमी), (२) कृषि इंजीनियरी (३) कृषि रसायन ,(४) कृषि वनस्पति शास्त्र,(५) कृषि प्राणि शास्त्र, (मत्स्य)विज्ञान सहित, (६) बागवानी, (७) पशु उत्पादन, (८)पशु पोषण (शरीर क्रिया शास्त्र और जीव रसायन शास्त्र सहित (९)पशुओं के रोग ,(१०) दुग्ध उद्योग, और(११)कृषि तथा पशुपालन अर्थशास्त्र और सांख्यकी।

पुरस्कार स्वर्ण पदक अथवा नकद या दोनों के रूप में हो सकते हैं ! प्रथम बार ये पुरस्कार उन वैज्ञानिकों को दिये जाएंगे जिन्होंने १ जनवरी १९५८ से ३१ दिसम्बर १९५९ तक की अवधि में व्यक्तिगत रूप से या सहयोगियों के साथ मिल कर देश के भीतर उपर्युक्त विषयों में से किसी एक पर महत्वपूर्ण अनुसंधान या आविष्कार किए है ! पुरस्कारों का निर्णय करते समय इस बात का ध्यान रक्खा जायेगा कि इन अनुसंधानों के प्रकाशित अथवा अप्रकाशित नतीजों के फलस्वरूपविषय विशेष के ज्ञान में असाधारण प्रगति संभव होसकी है ? प्रतियोगिता का निर्णय भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा नियत की हुई प्रसिद्ध वैज्ञानिकों की समिति करेगी। देश के भीतर कृषि,पशुपालन और संबंधि विज्ञानों में काम करने वाले सभी असनुधानकर्मी इस प्रतियोगिता में भाग ले सकते है। रुचिवान व्यक्ति आवश्यक फार्म तथा जानकरी सेक्रेटरी , इण्डियन कौंसिल आफ एग्रीकल्चरल रिसर्च,डा० राजेन्द्र प्रसाद रोड ,नई दिल्ली-१ से निःशुल्क प्राप्त कर सकते है। फार्म आवश्यक पूर्ति के बाद, उपर्युक्त कार्यालय में ३० जून १९६० तक पहुँच जाने चाहिए।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिगराम भार्गव	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगा शंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रमेश वेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकरराव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर	२ रुपया
१०—कलम पैवन्द—श्री शंकरराव जोशी	२ रुपया
११—जिल्द साजी—श्री सत्य जीवन वर्मा एम० ए०	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०	१ रुपया
१३—वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०, वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० न० पै०
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपया
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपया
१९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
२०—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रु० ५० नये पैसे
२१—फ़सल के शत्रु—श्री शंकर राव जोशी	३ रु० ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनिया—श्री रामेश वेदी	४ रुपया
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्र नाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान-शालायें	२ रुपया
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
२६—रेल इंजन, परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जानेताति जीवन्तिविज्ञान प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ०।३।५।

भाग ९१ | २०१६ विक्र०; आषाढ़ १८८१ शाकाब्द; जुलाई १९६० | संख्या ४

मानव विकास में कर्णातीत तरंगों का उपयोग

सतीश चन्द्र श्रीवास्तव, रसायन विभाग, मास्को स्टेट यूनीवर्सिटी

अनन्त काल से मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त कर उसकी शक्तियों का उपयोग जीवन को सुगम और सुखी बनाने के लक्ष्य से करता रहा है। विद्युत, प्रकाश, ध्वनि, चुम्बकीय आकर्षण, ताप तथा गुरुत्वाकर्षण शक्ति इत्यादि का उपयोग आजकल के साधारण मानव जीवन का एक अंग है। प्रकृति ने प्रत्येक जीव की शक्तियों की एक सीमा रखी है। उदाहरणत: साधारण मनुष्य केवल उस प्रकार का प्रकाश देख सकता है जिसकी तरंग दैर्ध्य ४०००×१०^{-८} से ८०००×१०^{-८} के बीच का हो। इससे छोटी लहरों को अल्ट्रा-वायलेट लहरें कहते हैं और बड़ी लहरों के इन्फ्रारेड कहते हैं। इन दोनों ही प्रकार की तरंगो को हम देख तो नहीं सकते फिर भी विभिन्न प्रकार के उपयोगों में लाते हैं, जैसे चिकित्सा इत्यादि। इसी प्रकार यदि एक जलता हुआ लकड़ी का टुकड़ा तेजी से घुमाया जाये तो एक आग का वृत्त सा प्रतीत होता है और आकाश से टूटने वाला तारा एक लम्बी रेखा के समान दिखाई देता है। यह इसलिये कि यदि प्रकाशित पदार्थ जैसे लकड़ी का टुकड़ा १६५ पूरे चक्कर एक सेकन्ड में लगा ले तो वह नेत्रों को एक वृत्त दिखाई देगा। रजत-पट मनोरंजन इसी सिद्धान्त पर निर्धारित है। इसी प्रकार मनुष्य के कान उसी ध्वनि को सुन सकते हैं जिसकी आवृत्ति ३० से अधिक और २०,००० से कम हो। इससे अधिक आवृति वाली ध्वनि को कर्णातीत तरंगें कहते हैं, ३० से कम आवृति वाली ध्वनि को इन्फ्रासोनिक्स कहा जा सकता है परन्तु यह साधारण उपयोग में नहीं आतीं और वैज्ञानिकों ने इस ओर ध्यान देना उचित नहीं समझा।

वह ध्वनि जिसे हमारे कान सुन सकते हैं, संगीत और व्याख्यान के रूप में सदैव ही हमारे मनोरंजन की साधन रही हैं। हाल में वैज्ञानिकों ने इस रासायनिक क्रिया खेती अथवा चिकित्सा के क्षेत्र में भी उपयोग करने का निश्चय किया है। हमारे देश में ही प्रोफेसर टी० सी० एन० सिंह, अनामलाय विश्वविद्यालय में, ध्वनि का प्रयोग पेड़ पौदों को अधिक बढ़ाने में कर रहे हैं। इस प्रकार की ध्वनि का, जिसे हम सुन सकते हैं, उत्पादन सरल अवश्य है, प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक वस्तु ऐसी ध्वनि पैदा कर सकती है परन्तु वैज्ञानिक उपयोग के दृष्टिकोण से एक मुख्य दोष इसमें है कि इसका तरंग-दैर्ध्य कई मीटर के माप का होता है और किसी भी धरातल से यह तरंग अधिकतर परावर्तित हो जायेगी। इससे बहुत ठीक प्रतिबिम्ब भी नहीं बन सकती और इससे किसी छोटे पात्र में प्रयोग भी नहीं कर सकते। इसके विपरीत, कर्णातीत लहरों की तरंग का दैर्ध्य मिलीमीटर के माप का होता है और इसे साधारण ध्वनि की अपेक्षा अधिक सरलता से उपयोग में लाया जा सकता है। परन्तु इसके पहले कि हम इसके उपयोगों का वर्णन करें, यह समझ लेना आवश्यक है कि कर्णातीत तरंगें भी ऊँची आवृति की ध्वनियाँ हैं जिन्हें हम सुन नहीं सकते और इनकी विशेषतायें और प्रकार की लहरों जैसी हैं जो पदार्थों के लचीलेपन की सहायता से उत्पादित होती हैं जैसे आघात तरंगें इत्यादि और यह अन्य प्रकार की विद्युत चुम्बकीय तरंगों जैसे प्रकाश किरण, रेडियो लहरें, से बिल्कुल भिन्न हैं।

कर्णातीत तरंगों का उत्पादन

कर्णातीत तरंगों के उत्पादन के दो मुख्य साधन हैं :

(१) पीजोएलेक्ट्रिक (Piejoelectric) साधन

यह विधि इस सिद्धान्त पर निर्भर है कि जब कुछ केलासों पर दबाव डाला जाता है तो उसमें बिजली पैदा होती है जिसे पीजो-विद्युत कहते हैं और उन केलासों को पीजो विद्युत-केलास कहते हैं। यदि यही कार्य उलट दिया जाये यानी एक पीजो केलास पर विद्युत डाली जाये तो वह फैलता और सिकुड़ता है और पास की हवा या द्रव पदार्थ पर दबाव डालता है। इस प्रकार यदि ऐसे केलासों की एक प्लेट अधिक आवृति वाली विद्युत तरंग [रेडियो तरंग] के बीच रखें तो वह दाब की एक लहर, ध्वनि के समान पैदा करेगा। इस निकलने वाली ध्वनि की आवृति वही होगी जो रेडियो तरंग की है (२० किलो साइकिल से १०० मेगा साइकिल या अधिक) और हमें सुनाई नहीं देगी। परन्तु इस केलास के सम्पर्क का द्रव हिलता हुआ प्रतीत होता है। यदि केलास प्लेट की मोटाई ऐसी चुन ली जाये कि केलास की प्राकृतिक आवृति वही हो जो रेडियो तरंग की है तो देखा जायेगा कि उत्पादित लहरें बहुत शक्तिशाली हैं और केलास के सम्पर्क के द्रव में २ या ३ इंच ऊँचा फव्वारा निकलने लगेगा। इस प्रकार एक पीजो प्लेट और रेडियो तरंग की सहायता से कर्णातीत तरंगे उत्पादित हो सकती हैं। दोलक की शक्ति के अनुपात में ही कर्णातीत लहरों की भी शक्ति होगी।

(२) मैगनेटोस्ट्रीक्टिव विधि (Magnetostrictive method)

यह विधि पहली की भाँति इस सिद्धान्त पर निर्भर है कि यदि निकेल या अन्य किसी धातु के छड़ को एक आल्टरनेटिंग चुम्बकीय फील्ड में रखा जाये तो वह लम्बाई में बढ़ता और घटता है। इस प्रकार यदि प्रत्यावती चुम्बकीय क्षेत्र की आवृति २० हजार साइकिल से अधिक हो तो छड़ के एक सिरे के सम्पर्क के पदार्थ में उसी आवृति की एक लहर पैदा होगी जिसे हम सुन नहीं सकेंगे परन्तु विभिन्न कार्यों में उपयोग कर सकते हैं। इस विधि से अधिक शक्तिशाली कर्णातीत लहरें पैदा की जा सकती हैं परन्तु उसकी आवृत्ति पीजो साधन की अपेक्षा कम होगी।

कर्णातीत लहरों का भौतिक व रासायनिक उपयोग

साधारण जीवन में हम बहुत सी भौतिक व रासायनिक क्रियाओं का उपयोग करते हैं जैसे पहनने के वस्त्र, भोजन के पात्रों इत्यादि का साफ करना, दूध या अन्य खाद्य पदार्थों को सड़ने या खराब होने से बचाना, दही जमाना, सिर्का बनाना, इत्यादि। किसी वस्तु की सफाई भौतिक तथा रासायनिक क्रियाओं की सहायता से करते हैं। साफ करने वाली वस्तु को उसमें लगी हुई गन्दगी के अनुसार घोलक और परिष्कारक के साथ रगड़ते हैं, जिससे गन्दगी घोलक में घुल जाती है (भौतिक क्रिया) या परिष्कारक के साथ रासायनिक क्रिया करके एक घुलनशील पदार्थ बनाती है जो पानी या अन्य द्रव में घुल जाता है। यह दोनों ही क्रियायें सुगमता से हो सकती हैं यदि घोलक या परिष्कारक का नवीन तल बराबर गन्दे धरातल के सम्पर्क में आये। ऐसा करने के लिये हम उसे तेजी से रगड़ते हैं या पटकते और पीटते हैं। यह कार्य हाथ से उतनी तेजी से नहीं किया जा सकता जितना कर्णातीत तरंगों द्वारा। मनुष्य अधिक से अधिक अपना हाथ १० या १५ बार प्रति सेकेन्ड हिला सकता है जब कि कर्णातीत लहरें १० लाख या उससे अधिक बार प्रति सेकेन्ड घोलक को हिला सकती हैं और उनमें शक्ति भी अधिक होती है (१०० पौंड प्रति वर्ग इंच से भी अधिक)। इस प्रकार यह तरंगे सफाई के काम में मानव शक्ति से क़ई हजार गुना प्रभावशाली हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित प्रयोग अति प्रचलित हैं।

घड़ी, कीमती गहने या अन्य मूल्यवान पदार्थों का साफ करना

ऐसी वस्तुओं की सफाई बहुत ही सावधानी के साथ करनी पड़ती है। एक मिस्त्री अणुवीक्षण यंत्र या नग्न आंखों द्वारा ही प्रत्येक गन्दे भाग को धीरे-धीरे ब्रश से घोलक के साथ रगड़-रगड़ कर सावधानी से साफ करता है जिसमें बहुत समय लगता है और बहुत से भागों तक ब्रश नहीं पहुँचता। ऐसे कार्यों के लिये कर्णातीत तरंगे उपयोगी हैं। यह लहरें लोहा, सोना या अन्य धातुओं से होकर भी जा सकती हैं। इस प्रकार एक बड़े पात्र में कई बहुमूल्य वस्तुयें एक साथ घोलक या परिष्कारक के साथ रख कर नीचे से कर्णातीत तरंगों को प्रवाहित करने से पलक मारते सब पदार्थ साफ चमकने लगेंगे, समय भी बचेगा, मानव शक्ति भी, और खर्च भी कम होगा। प्रसन्नता की बात यह है कि ऐसी मशीनें भारत

वर्ष में मिलने लगी हैं और कुछ जौहरी व घड़ी बनाने वाले उनका प्रयोग कर रहे हैं। इन मशीनों का दाम १०००) से २७०००) तक शक्ति और उपयोगिता के अनुसार से है। ऐसी मशीनें भारतवर्ष में भी तैयार की जा सकती हैं जिसके लिये केवल २ या ३ भाग बाहर से मगाने पड़ेंगे। जब भारतवर्ष में विद्युत नलिकायें बनने लगेंगी, यह मशीनें बहुत सस्ते दामों में देश ही तैयार हो सकेंगी और ऐसी स्थिति में यह केवल जौहरी और घड़ीसाजों के ही काम में नहीं वरन् साधारण घरों में भी रेडियो व रिफ्रीजिरेटर की भांति रखी जा सकेंगी जिसकी सहायता से घरेलू पदार्थों की सफाई में आसानी हो जायेगी।

इस प्रकार की सफाई का उपयोग बड़े बड़े कारखानों में होता है। मोर्चा लगे लोहे तथा अन्य धातुओं की चादरों के लिये यह साधन मुख्यत: उपयोगी है। इसके अतिरिक्त यह लहरें बहुत से रासायनिक पदार्थों व दवाओं के बनाने के काम में आती हैं।

दूध तथा अन्य खाद्य पदार्थों को खराब होने से बचाना

कुछ वर्ष पूर्व जापान के वैज्ञानिकों ने ज्ञात किया कि कर्णातीत तरंग-प्रवाहित दूध एक साल से अधिक खराब नहीं होता। पिछले वर्ष ब्रिटेन की कुछ दुग्धशालाओं ने यह देखा कि यदि दूध में १० लाख साइकिल प्रति सेकेन्ड की कर्णातीत तरंगें प्रवाहित की जायें और शीघ्र ही उसे ८° फ० तक ठण्डा कर दिया जाये तो वह १८ मास तक खराब नहीं होगा। यह दूध समस्त विश्व में ताजे दूध की स्थिति में भेजा जा सकता है यदि उसका ताप ८° फ० रखा जा सके। आशा है कि इस क्षेत्र में अधिक कार्य हो जाने पर ताजा दूध डिब्बों में उसी भाँति मिल सकेगा जिस प्रकार मक्खन, रोटी या अन्य पदार्थ मिलते हैं। यह बहुत अंशों तक बड़े बड़े नगरों की दूध की समस्या हल कर सकेगा। इसी प्रकार अन्य खाद्य पदार्थों पर भी प्रयोग चल रहा है और उनको सड़ने या खराब होने से बचाने के साधनों की खोज हो रही है जिससे बिना उनके स्वाद में अन्तर आये उन्हें अधिक समय तक रखा जा सके और आवश्यकतानुसार उन्हें एक जगह से दूसरी जगह भेजा जा सके।

उद्योग में कर्णातीत तरंगों की सहायता

उद्योग में इन तरंगो का उपयोग और उपयोगों से पुराना है परन्तु गत १० वर्षों में बहुत ही अधिक और भिन्न प्रकार के कार्यों में इनका उपयोग होने लगा है। कुछ मुख्य उपयोगों का उल्लेख निम्नलिखित है:

धातुओं या अन्य वस्तुओं में दोषों का पता लगाना

यह उपयोग सबसे पुराना है और अति प्रचलित है। जिस वस्तु में दोष पता लगाना होता है उसमें कर्णातीत लहरें प्रवाहित करते हैं और वस्तु के भिन्न-भिन्न भागों से परावर्तित तरंगों को एक दोलन-लेखी पर उतारते हैं। यदि उस वस्तु में दोष है तो चित्र भिन्न होगा और उसकी सहायता से दोष का असली रूप व स्थान

निर्धारित किया जा सकेगा। यह उपयोग उसी सिद्धान्त पर निर्धारित है जिससे रेडियो लहरों की सहायता से राडार विमान की स्थिति ज्ञात करता है। इसे कर्णातीत-प्रतिध्वनि विधि कहते हैं। इसकी सहायता से किसी भी धातु की चादर, या मकानों अथवा पुलों के बनाने के गर्डरों में चटाख का पता लग सकता है जिसे एक्स-किरण या अन्य साधनों से नहीं ज्ञात कर सकते। इस प्रकार दोष रहित सामानों के उपयोग से बड़ी दुर्घटनायें सुगमता से बचाई जा सकती हैं। इसका उपयोग भिन्न प्रकार की छोटी व बड़ी मशीनों में दोष पता लगाने के लिये करते हैं।

सूराख करना

जब किसी धातु या अन्य पदार्थ में छेद करना होता है तो एक वृत्ताकार छेदक का सहारा लेते हैं। इस साधन से केवल वृत्ताकार छेद ही बनाये जा सकते हैं। किसी और आकार का जैसे वर्गाकार, त्रिभुजाकार, छेद करने के लिये बहुत ही शक्तिशाली मशीनों की आवश्यकता होती है जो सीधी चाल से धातुओं में छेद कर सके। ऐसी मशीनें अधिक दाम की होती हैं और प्रत्येक उद्योग-गृह में लगाना सम्भव नही है। परन्तु कर्णातीत लहरों द्वारा यह कार्य आसानी से हो सकता है। मैगनेटोस्ट्रक्टिव सिद्धान्त पर निर्भर उत्पादन के छड़ के सिरे पर आवश्यक आकार का एक मुख्य धातुसंकर का बना हुआ चाकू लगाते हैं। इस प्रकार के कर्णातीत छेदक चाकू के सम्पर्क में वस्तु को रखकर चाकू को धीरे-धीरे नीचे लाने से सूराख हो जाता है। कम खर्च, कम स्थान लेने वाला अधिक शक्तिशाली यह यन्त्र अब बहुत से कारखानों में काम में लाया जाता है। दूसरी सुविधा यह है कि कड़े से कड़े पदार्थ में जो विमान इत्यादि में उपयोग में आते हैं, सरलता के साथ छेद किया जा सकता है जहां साधारण छेदक जवाब दे देते हैं।

टाँका लगाना

यह देखा गया है कि बहुत भी धातुओं को गर्म टांके से जोड़ते समय मुख्यतः एलुमिनियम में उन धातुओं से हवा के आक्सीजन के साथ मिलकर आक्साइड बन जाता है जो टांका लगाने में कठिनाई पैदा करता है। इस प्रकार का टांका कमजोर भी होता है। इससे छुटकारा पाने के लिये तप्त छेदक के साथ कर्णातीत लहरें प्रवाहित करते हैं जो तल पर आक्साइड बनने से रोकती हैं। इस प्रकार जोड़ने में सुविधा होती है और जोड़ मजबूत होता है।

चिकित्सा और कर्णातीत तरंगे

धन उपार्जन और मृत्यु पर विजय पाना मानव जाति का आरम्भ से ही लक्ष्य रहा है। १४-१५ वीं शताब्दी में तो वैज्ञानिक पारस और अमृत की खोज में पागल ही हो गये थे। हम चिकित्सा का विकास भी रोगों का पता लगाने और उनसे मुक्ति पाने के लक्ष्य से ही करते हैं। मृत्यु पर यदि विजय न पा सकें तो कम से कम जितने दिन हम जीवित रहें, नीरोग रहें, यह अभिलाषा है। आज के चिकित्सक की इस लक्ष्य की पूर्ति कुछ अंशों तक कर्णातीत तरंगे भी कर रही है।

रोगों का पता लगाना

धातुओं में दोषों के पता लगाने का उल्लेख हो चुका है, उसी सिद्धान्त पर शरीर के दोषों का भी पता लगाया जा सकता है। मुख्यतः शरीर के ऐसे भाग जहां एक्सकिरण के घातक प्रभाव का डर है जैसे आंख, मस्तिष्क इत्यादि, में रोगों का पता लगाने के लिये कर्णातीत तरंगों का उपयोग भली भांति हो सकता है। इसके अतिरिक्त मांस के नर्म टुकड़े जिनका एक्स-किरणों द्वारा भली भांति चित्र नहीं बनाया जा सकता इसकी सहायता से सरलता से प्राप्त हो सकता है। गत १० वर्षों में वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है।

कर्णातीत टोमोग्राफी

जापान के कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि प्रतिध्वनि विधि से केन्सर की प्रारम्भिक स्थिति का ज्ञान हो सकता है जब कि एक्स-किरण या और विधियां कोई लक्षण स्पष्ट नहीं करतीं। इस तरीके से शरीर के भीतरी भागों का चित्र चिकित्सा के और तरीकों से अच्छी तरह लिया जा सकता है। १० लाख से १०० लाख साइकिल प्रति सेकेन्ड वाली कर्णातीत लहरों को शरीर में प्रवाहित करते हैं और भिन्न प्रकार के भागों से परवर्तित तरंगों को दोलक चित्रपट पर उतारते हैं। इस प्रकार बने हुई चित्र से रोगी भाग की ठीक स्थिति का ज्ञान हो सकता है। इस साधन से मस्तिष्क ट्यूमर, वक्ष ट्यूमर, पेट और बड़ी आंतों के सिकुड़ने का ज्ञान हो सकता है।

कर्णातीत छाया चित्र केमरा

फरवरी १९५९ में लन्दन के विश्वविद्यालय चिकित्सालय के डा० सी० एन० स्माइथ और उनके सहयोगी ने एक टेलीवीजन केमरे के अविष्कार का उल्लेख किया जो कर्णातीत तरंग चित्र खींच सकता है। यह ऊपर दिये सिद्धान्त पर ही आधारित हैं। केवल दोलनलेखनी के स्थान पर टेलीवीजन के तरीके का उपयोग किया है जिससे चित्र का ठीक चित्र कैमरा-पट पर आ जाता है। उनका मत है कि यदि इस प्रकार के बड़े केमरे बनाने में सफलता प्राप्त हुई तो अवश्य ही रोगों की छानबीन में सरलता हो जायेगी। इस स्थान पर यह कहना अनुचित न होगा कि विकास की यह गति देखते हुये कहा जा सकता है कि शीघ्र ही वह दिन आयेगा जब किसी छोटे नगर में बैठे हुये इस प्रकार के कैमरे की सहायता से विश्व के किसी भी रोग विशेषज्ञ की राय ली जा सकेगी। रोगी की सही हालत डाक्टर तक पहुँचाई जा सकेगी, न डाक्टर रोगी के पास जायेगा न रोगी को डाक्टर के पास जाना होगा।

रोगों के उपचार में

कर्णातीत तरंगे मालिश का कार्य भली भांति कर सकती हैं और वह रोग दूर किये जा सकते हैं जहां मालिश की आवश्यकता है। केन्सर और बहुत से बड़े

रोगों में भी इसकी सहायता ली जा सकती है। इस क्षेत्र में पूरी सफलता मिलने पर रेडियो-थेरापी की भांति सोनो-थेरापी भी आरोग्य बनाने में सहायक होगी। परन्तु अभी इस क्षेत्र में बहुत कुछ अज्ञात है। अधिक शक्तिवाली तरंगे शरीर के लिये घातक हैं इसलिये इनके उपयोग के लिये सावधानी के साथ प्रयोगों की आवश्यकता है।

दवाओं के बनाने में इसका प्रयोग हो सकता है, इसका उल्लेख हो चुका है जैसे कपूर को रक्त में मिलाने के पहले इसका एक इमल्शन बनाना इत्यादि।

कर्णातीत तरंग और वनस्पति-जगत

पेड़-पौदों पर ध्वनि के प्रभाव का उल्लेख हो चुका है। साधारणतः यह विचार होता है कि कर्णातीत लहरें जीवों के लिए हानिकारक होंगी और पेड़-पौदों या उनके बीज के बढ़ने में बाधा डालेंगी। परन्तु यह विचार ठीक नहीं प्रतीत होता क्योंकि १९५७ में रूस के कुछ वैज्ञानिकों ने देखा खमीर-निर्माण में कर्णातीत लहरें सहायक होती हैं। इसी प्रकार के प्रयोग प्रयाग विश्वविद्यालय में किये गये और उनमें सफलता प्राप्त हुई। इससे यह प्रतीत होता है कि कर्णातीत तरंगों का जीवजन्तुओं पर अच्छा प्रभाव भी हो सकता है। १९५५ में रूस के वैज्ञानिकों ने यह भी देखा कि कर्णातीत तरंगे प्रवाहित करने से चावल, जौ, अलफाअलफा के बीजों में एमाइलेज, केटालेज, परआक्सीडेज काफी मात्रा में बढ़ते हैं। अंकुरण क्रिया भी तीव्र होती है और जड़ काफी मजबूत निकलती है। इस प्रकार के प्रयोग कई स्थानों पर चल रहे हैं और आशा की जाती है कि कर्णातीत तरंगे शीघ्र ही खेती के कार्यों में मुख्यतः अच्छे बीज तैयार करने में काम में लाई जाने लगेंगी।

कर्णातीत तरंगों पर प्रयोगों से वैज्ञानिकों को एक नया दृष्टिकोण और एक नई आशा मिली है। नवीन प्रयोगों और नवीन विधियों के विकास से मानव के हाथ में एक नवीन शक्ति आवेगी जिसकी सहायता से जीवन अधिक सुखकर होगा और आवश्यकताओं की पूर्ति अधिक सरलता से सम्भव हो सकेगी।

मानव-विकास की पहेली

स्वामी हरिशरणानन्द

हम भारतीय मानते चले आये हैं कि पृथ्वी पर प्राणियों का एक एक जोड़ा प्रकट हुआ और उससे सृष्टि का क्रम चला। इस सिद्धान्त पर बड़ी आपत्ति यह उठती थी कि यदि ईश्वर ने 'यथापूर्वमकल्पयत्' के अनुसार नये कल्प में प्रत्येक प्राणियों का एक-एक जोड़ा बनाया था तो उन जोड़ों के वैसे ही प्राणी सृष्टि में रहने चाहिये थे। आदि से लेकर अन्त तक उन प्राणियों का वंश बना रहना चाहिये था, पर ऐसा दिखाई नहीं देता। भूगर्भ से जो प्राक् प्राणियों के अस्थि पंजर प्राप्त हुये हैं उनकी आकृति के इस समय एक प्राणी दिखाई नहीं देते। प्राक्कालीन अश्व, गाय, भैंस, हिरन आदि प्राणियों के ऐसे अस्थि-पंजर प्राप्त हुये हैं जिनके हाथों-पैरों में पांच-पांच अंगुलियाँ हैं। किन्तु इस समय के इन जन्तुओं के पैरों में अंगुलियों के स्थान पर अब खुर हैं। उक्त प्राणियों के ऐसे भी अस्थि-पंजर प्राप्त हुये हैं जिनमें अंगुलियों की संख्या घट गई है। इन घटी हुई अंगुलियों के उनमें चिन्ह विद्यमान हैं। कुछ भीमकाम ऐसे प्राणियों के भी अस्थिपंजर मिले हैं जिनके वंश लुप्त हो चुके हैं। यदि ईश्वर ने इन समस्त प्राणियों की रचना एक-एक जोड़े से की थी और "यथा पूर्वमकल्पयत्" के अनुसार सृष्टि बनाई थी तो यह हजारों जातियाँ क्यों लुप्त हो गईं? और यह नई सृष्टि बीच में कैसे बन गई? इसका समाधान वे नहीं कर सके। इसका उनके पास एक ही नपा-तुला उत्तर है कि ईश्वर के कृत्यों को हम नहीं जान सकते। किन्तु इस समय का संसार इस तरह के समाधान से संतुष्ट नहीं होता वह तो युक्ति-युक्त कारण को जानना चाहता है।

सबसे पूर्व, युक्तियुक्त कारणों को चार्ल्स डार्विन ने ढूंढा था; उन्होंने अनेकों प्रमाणों से यह सिद्ध किया कि संसार में किसी भी प्राणी का आरम्भ में एक-एक जोड़ा नहीं बना था प्रत्युत जब सजीव सृष्टि का आरम्भ हुआ था उस समय ऐसे सूक्ष्म सजीव प्राणी प्रादुर्भूत हुये थे जो महान सूक्ष्म शरीर धारी थे। काल पाकर इन्हीं एक कोषमय जैवों से जब सृष्टि का विकास होने लगा तो उन्हीं में से एक कोषाओं ने परस्पर मिलकर बहु कोषाओं का रूप धारण किया। उन बहुकोषाओं के परस्पर मिलकर एक रूपत्व को प्राप्त होने से उनमें अंगों का विकास हुआ। आज जितने भी संसार में स्थावर-जंगम वर्ग के प्राणि दिखाई देते हैं सबों के शरीर की रचना अनेक कोषाओं के मेल से हुई है। इसीसे कोई भी प्राणी एकात्मा वाला नहीं प्रत्युत असंख्य आत्माओं का समूह प्राणियों का शरीर होता है। ऐसा ही मनुष्य भी है। मनुष्य भी एक कोषा से विकसित होकर इस रूप तक पहुँचा है जिसको विकसित होने में लाखों नहीं करोड़ों वर्ष लगे; तब जाकर इस स्थिति तक पहुँच पाया है। आज से कोई १० लाख वर्ष पहले आस्ट्रेलोपिथेक्स और पिथेकेन्थो-

पस के रूपों में आने के पूर्व यह बानर श्रेणी में था। उससे जब वह आस्ट्रेलोपिथेकस की श्रेणी में परिणत होने वाला था इस पर कोई भारी दैवी विपत्ति आई।

यह वानर से नर के रूप में कैसे विकसित हुआ? इसकी खोज आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्राणि शास्त्र विशेषज्ञ सर एलिस्टर हार्डी ने ३० वर्ष के अनुन्धान के पश्चात् प्रकट किया।

वे वानर कौन से थे जिनसे मानव प्राणी का विकास हुआ?

हार्डी ने इस अर्से में इस विषय की जो प्रामाणिक सामग्री एकत्र की है उस पर फिर कभी प्रकाश डालूँगा। इस छोटे से लेख में इतना ही बताना चाहता हूँ कि वे वानर थलचर वानर नहीं थे, वरन् जलचर वानर थे। आप आश्चर्य करेंगे कि इस समय तो कोई भी वानर की ऐसी जाति समुद्र में निवास करती देखी नहीं जाती, यह घटना कैसे घटी? एलस्टर हार्डी ने ही सर्वप्रथम प्रामाणिक सामग्री प्राणि-शास्त्रियों के सामने रखी।

आपका कहना है कि आज से १०-१२ लाख वर्ष पहले पृथ्वी पर रहने वाले वानरों पर कोई ऐसी विपत्ति आई थी कि उन्हें खाद्याभाव के संकट-काल में अपना गुजारा पृथ्वी पर करना कठिन हो गया, तब उन्हें जल वासी जीवों पर गुजर करना पड़ा। पहले वह समुद्र के उथले जल में अपने आहार को ढूँढते, खाते, जीवन-यापन करते रहे, धीरे-धीरे वे जल में तैरने के अभ्यासी बन गये और गोता लगाने लगे। लाखों वर्ष जल में रहने के कारण ही इनके शरीर के बाल उसी तरह विलुप्त हो गये जैसे ह्वेल मछली के यह बानर जल में निवास करते समय प्रायः श्वास लेने के लिये गर्दन तक के भाग को अधिकतर जल से बाहर रखते थे, इसीसे इनके सिर, मूँछ और दाढ़ी के बाल विलुप्त होने से बच गये।

चतुष्पादी से द्विपादी भी जल में ही बना

जल में निवास करते हुए तैरना एक आवश्यक बात होती है, तैरते समय जल को हाथों और पैर से चप्पूवत् काटना पड़ता है। जल को काटने के लिये पैरों को सीधे करके पीछे की ओर ले जाना आवश्यक होता है। इस तैरने की आदत ने मेरुदंड और लातों को सीधा ही नहीं किया प्रत्युत पैरों से जल को काटते रहने के कारण उन्हें अधिक बलवान और लम्बा भी कर दिया। उथले जल में खड़ा होने के समय सीधे खड़े होने में सुविधा रहती है। ऐसे ही कारणों ने इस चतुष्पाद प्राणी को जल ने द्विपादी बना दिया।

हाथों से भी समुद्र तल में से सीप, घोंघा, समुद्रीघास आदि को पकड़ने, उठाने, तोड़ने, फोड़ने आदि के अनेकों काम लेता रहा, इसी से इनकी अँगुलियों में धीरे-धीरे सूक्ष्म ग्राह्यता बढ़ती गई और हाथों से अधिक काम लेते रहने के कारण वह अधिक दृढ़

(शेष पृष्ठ ११२ पर)

जुआ

बैलों के गले को जुए में डालकर ही हलवाहा हल चलाता है। जुए में चार-पाँच लकड़ियाँ लगती हैं। जुए को जुआ, जूआ या जुआठ भी कहते हैं। 'जूआ' दो प्रकार की होती है—तरठही या तराठी जूआ और और धरमजुइया। 'तरहठी जूआ' में तराठ (जुए के नीचे की लकड़ी) लगी रहती है किन्तु 'धरमजुइया' में 'तराठ' नहीं रहती। 'तराठ' के स्थान पर 'धरमजुइया' में एक रस्सी लगाई जाती है जिसे गेतार, गेताड या गेताढ़ि कहते हैं। 'गेतार' बैलों को भागने से रोकने के लिए एक फन्दे का काम करती है। 'धरमजुइया' का प्रयोग केवल हल में ही होता है किन्तु 'तराठी जूआ' हल और पुरवट दोनों में काम आती है। जूआ की लकड़ियों और उसके अंगों का परिचय नीचे दिया जाता है—

उपरंगा—जुए का ऊपरी भाग 'उपरंगा' कहलाता है। कुछ लोग केवल इसी भाग को ही 'जुआ, जूआ' या 'जुआठ कहते हैं। यह बबूल, चिलबिल और बेर की लकड़ी की बनायी जाती है। बेर का उपरंगा सर्वोत्तम माना जाता है। यह ढाई-तीन हाथ लम्बी लकड़ी की गढ़ी जाती हैं। 'उपरंगा' का जो भाग बैलों की गर्दन के ऊपर रहता है उसे काँधी, काँध, कंधा, कान्हीं, कन्हावरि या तिथा कहते हैं। 'काँधी' का ऊपरी भाग कुछ उठा रहता है। 'जुआठ' के बीचोबीच जो हिस्सा थोड़ा सा उभड़ा रहता है और जिस पर नाधा नामक रस्सी लगाई जाती है उसे बोंड़र या बोंड़री कहते हैं। 'बोंड़र' के बीच के निचले भाग को खड़िया या खढ़िया कहा जाता है। पुरवट में 'नार' (तीस-चालीस हाथ की एक लम्बी और मोटी रस्सी) इसी पर रहता है। 'उपरंगा' और उसके नीचे की लकड़ी 'तराठ' में दोनों ओर 'सैला' (हाथ भर की एक लकड़ी) डालने के लिये छेद होते हैं जिन्हें छेड़, छेड़ान, छेद या छेदान कहते हैं।

तराठ—'तराठ' बाँस की बनाई जाती है। लम्बाई में यह 'उपरंगा' के बिल्कुल बराबर होती है। यह 'जुआठ' या 'उपरंगा' के नीचे लगाई जाती है। इसे तराठ, तरायठ, तरायँठ या तरौंठी कहते हैं।

पचाइ—यह डेढ़-दो बालिश्त की लकड़ी होती है। इनकी संख्या दो होती है। यह बाँस और लकड़ी दोनों की बनती है। 'उपरंगा' और 'तराठ' को यही दोनों लकड़ियाँ सम्बन्धित करती हैं। 'जुआठ' और 'तराठ' में जो समानान्तर छेद होते हैं उन्हीं में 'पचाइ' के सिरे ठोंके रहते हैं। 'पचाई' को 'पचाइ' और 'पचासि' भी कहते हैं। 'पचाइ' को कसने वाली रस्सी को जेवरी या जोधनि कहा जाता है।

सैला—'उपरंगा' या 'जुआठ' के दोनों सिरों पर छेद होते हैं। इसी छेद में 'सैला' लगाकर 'तराठ' के छेद में डाला रहता है। सैले भी दो लगते हैं। सैले के ऊपरी भाग का सिरा कुछ अधिक मोटा या कनखीदार होता है ताकि वह 'जुआठ' के छेद में अंड़ (रुक) सके। बैलों की गर्दन 'पचाइ' और सैले के बीच में रहती है। 'सैला' लगा देने से बैल भाग नहीं सकते। 'सैले' एक हाथ तक की बाँस की 'कैनी' लकड़ी या लोहे

के बनाये जाते हैं। लोहे के सैले को लोहिया सैला कहते हैं। 'बरमजुइया' के सैले एक बालिश्त के ही होते हैं। 'सैला' को कहीं-कहीं सैल भी कहा जाता है।

नाधा

यह मनुष्य की कनिष्ठिका उँगली के समान मोटी और आठ-नौ हाथ की लम्बी रस्सी होती है। इसे प्रायः छः पर्त का करके जुए के 'बोंड़र' के दोनों ओर तीन-तीन पर्त का लगा देते हैं। ऐसा करने से दोनों बैलों के ऊपर बराबर-बराबर बल पड़ता तथा हल का संतुलन भी बाना रहता है। चार छः अंगुल लम्बी और पतली रस्सी से बाँधकर 'हरैली' को हल चलाने के पूर्व 'हरिस' के छेद में डाल दिया जाता है। नाधे का प्रयोग केवल हल में होता है,पुरवट में नहीं होता। नाधे के छः पर्त जब 'बोंड़र' के एक ही तरफ कर दिये जाते हैं तो उसे एकनध या एकनधा जोतब कहा जाता है। ऐसा करने से एक ही बैल पर जोर पड़ता है और हल का संतुलन ठीक नहीं रहता।

पैना

हलवाहा हल चलाते समय बैलों को हांकने के लिए एक हाथ में हाथ-डेढ़ हाथ का डंडा रखता है जिसे 'पैना' कहते हैं। पैना प्रायः बाँस का होता है। इस डंडे के सिरे पर चमड़े या रस्सी के गुहे हुए चार-पांच टुकड़े कम से कम एक बालिश्त के लगे रहते हैं। इन्हीं की चोट बैलों पर पड़ती है। पैने को पटकन, छोर, चपटा, चपटी, औगा, औगी, सांटा या साँटी कहते हैं। जिस पैने के सिरे पर रस्सी के साथ लोहे का कीला लगा रहता है, उसे अरई कहा जाता है।

हलवाहे की साँकेतिक शब्दावली

हल चलाते समय हलवाहा बैलों को हाँकने में आवश्यकतानुसार कुछ साँकेतिक शब्दों का व्यवहार करता है। इन शब्दों को सुनकर बैल अपने चलने की गति में परिवर्तन कर देते हैं। इन शब्दों का विस्तार नीचे दिया जाता है:—

बैलों को जोन्नी (दो बैलों को जोड़ने की लम्बी रस्सी जिसके दोनों ओर फंदे लगे रहते हैं) में जोड़ने के लिए 'जुट जुट' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'जोन्नी' को जोर जोराही, जोरहाई, गड़ावरि, गेंडावरि और गँड़ेवर भी कहते हैं।

बैलों को चलते समय रोकने के लिए 'जुहिरहु' या 'हिउँ' शब्दों का व्यवहार होता है।

अभीष्ट स्थान पर ही बैलों को मुड़ जाने के लिए 'नौ ठावैं', नौ दरहीं, नौ दरे पै, या नाँ दरे शब्द बोले जाते हैं।

खेत के कोनों को जोतने के लिए साधारण ढंग से कोनी लेब (कोनों को जोत लेना) कहा जाता है जो सांकेतिक शब्द नहीं है। हलवाहा जब कोना (खेत का कोण)

को जोतने के लिए बैलों को बढ़ाना चाहता है तो कोनि-कोनि शब्द का उच्चारण करता हैं।

दाईं ओर चलने वाले बैल को दहिनवां या दाहिन बैल कहते हैं। इसलिए जब दायें बैल को मोड़ना होता हैं तो हलवाहे को ना दाहिन या नौ दाहिन कहना पड़ता है। दायें बैल को सीधा और सचेत होकर चलने के लिए दाँ, दाँहिन या दाँहिन-दाँहिन कहा जाता है। दांये बैल को अधिक भीतर दबकर चलने के लिए भीतर दाहिन कहते हैं।

बायें बैल को बाउँ, बवैया या बँवैयवा बैल कहा जाता है। अत: बायें बैल को बा मोर शब्द का प्रयोग करके मुड़ने की आज्ञा दी जाती है। बायें बैल को सावधान होकर चलने के लिए बाँ, बाँ-बाँ, बाँउ, बाउँ-बाउँ मोर शब्दों का व्यवहार किया जाता है।

दायें और बायें दोनों बैलों को हल में सावधानी से सीधे चलने के लिए हरै-हरै, हरा-हरा या हरे-हराई शब्दों का प्रयोग हलवाहा करता है। सीधे चलने के लिए कहीं-कहीं डहर-डहर शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

बैलों को केवल मोड़ने के लिए नाँ, नाँ-नाँ, नौ या नौ-नौ शब्दों का प्रयोग होता है।

बैल जब लक्ष्य स्थान के कुछ दूर पूर्व ही मुड़ने लगते हैं तो हलवाहा उन्हें आगे बढ़ने के लिए चढ़िके या चढ़ै शब्दों को कह कर उन्हें सावधान कर देता है।

जुताई की कुछ विशेष बातें

जोतने के लिए हलवाहा खेत को कुछ बड़े-बड़े भागों में बाँट लेता है। इन भागों को हराई कहते हैं। हराई प्रारम्भ करने को हराई फानब कहा जाता है। हलके फाल से भूमि पर जो गहरी रेखा खिंचती जाती है उसे कुँड़, कुँड़ा, कूँड़ या कूँड़ा कहते हैं। बहुत गहरे कूँड़ को खानि कहा जाता है। जोतते समय खेत में जो मिट्टी के पिण्ड निकलते हैं उन्हें ढेला, भींसा, चेका, चीका या चाका कहते हैं। छोटे ढेले को रोरा या ढोंका कहते हैं।

जोतते समय कभी-कभी बैल जब किसी कारणवश चौंक जाते हैं तो उसे बैल भड़कब कहा जाता है। बैल के भड़कने से 'सैला' टूट जाने का डर रहता है। बैल जब भड़क कर हल खींचते समय उल्टी दिशा में घूम जाते हैं तो इस क्रिया को बिलारी फानब कहते हैं। कुछ लोग बिलारी फानने के काम को बिलरहवा भी कहा करते हैं। बैलों की इस शरारत से हल चलाने में बाधा उत्पन्न होती है।

हल जोतते समय कूँडों के बीच में बिना जोती हुई जो जमीन शेष रह जाती है उसे ठेहरी कहते हैं। एक-एक बालिश्त का व्यवधान देकर जब 'कूँड़' बनाये जाते हैं तो ऐसी जुताई को भरकुँड़ा, भरचौही, हरे आँतर या सैला आँतर की जुताई कहा जाता है। कुछ लोग इस प्रकार की जुताई को बाँउ होइ जाब भी कहते हैं। गहरे 'कूँड़' की जुताई

को आँकर जोताई और उभड़े हुए एवं कम गहरे कूँड़ की जोताई को सेव जोतब कहा जाता है। बहुत हलकी जुताई को खेत चीरब कहते हैं।

कूँड़ों को एक दूसरे से खूब सटाकर जोतने को घन कै जोतब या छानि के जोतब कहते हैं। आषाढ़ के महीने में पहले दिन खेत जोतने को हरायँठ करब कहा जाता है। जोतने से खेत की मिट्टी भरहरी (भुरभुरी) हो जाती है। खेत जब समय पर नहीं जोता जाता तो उसकी मिट्टी कड़ी पड़ जाती है। इस तरह खेत सूखने को खेत अकरास जाब या खेत ठनकब कहते हैं। खेत जोत कर उसे कुछ दिनों के लिए पानी खाने को छोड़ दिया जाता है। इस तरह से खेत के पानी खाने को ओठार खाब कहा जाता है। पानी बरसने पर जब खेत जोतने योग्य नहीं रहता तो उसे खेत कच्चा होइ जाब कहते हैं। खेत जोतने योग्य होने को खेत पाकब या खेत पाकि जाब कहा जाता है।

खेत की एक बार की जुताई को बाह, दो बार की जुताई को दुबही, तीन बार की जुताई को तिबही और चार बार की जुताई को चौबही कहते हैं। बिना जोते हुए खेत को अफार या अबाह कहा जाता है।

खेत के चारों ओर दूसरे खेतों से उसको पृथक् करने के लिए मिट्टी को ऊंचा करके उसकी सीमा बनाई जाती है। इस सीमा को खेत का मेंड़ या डाँड़ कहते हैं। कुछ किसान अनैतिकता पूर्वक फावड़े से मेंड़ काट कर या हल से जोत कर अपने खेत का विस्तार बढ़ाते हैं। ऐसे किसान को मेंड़कटा या मेंड़जोता कहते हैं।

हल चलाने के लिए हल, जुआ और बैलों को जब एक दूसरे से सम्बन्धित किया जाता है तो इस क्रिया को हर नाधब कहते हैं। इसी तरह हल चलाने के बाद जब हल, बैल और जुए को एक दूसरे से विच्छिन्न कर दिया जाता है तो इस काम को हर ढीलब कहा जाता है। बीच बीच में यदि किसी कार्यवश नधे हुए बैल खेत में कुछ समय के लिए खड़े कर दिये जाते हैं तो इसे हर खड़ा करब कहते हैं। हल जब नाध दिया जाता है तो उसके संतुलन और ऊंचाई को नेति कहा जाता है। 'नेति' ठीक रहने से ही हल अच्छी तरह चलता है।

'हरिस' के अगले छेद में 'हरैली' डाल कर जोतने को अगिली देब कहते हैं। 'अगिली' देने से हल 'आँकर' चलता है और बैलों को कष्ट होता है। इस बैलों के कष्ट होने को अखरब कहते हैं। इसके विपरीत 'पछिली' देने से हल 'सेव' चलता है किन्तु बैलों को आराम रहता है। 'हरिस' के पिछले छेद में 'हरैली' डाल कर जोतने को पछिली देब कहा जाता है।

हल जोतते समय कूँड़ों के बीच-बीच में सूखी हुई और जालीदार घासें उभड़ आती है उन्हें चीखुर या चेखुरी कहा जाता है। इन 'चीखुरों' को बीन बटोर कर खेत के बाहर फेंक दिया जाता है। हाथों से 'चीखुर' चुनने को चीखुर बिनब कहते हैं। यदि 'चीखुर' बीनकर खेत के बाहर नहीं फेंकी जाती तो वह फसल को हानि पहुँचाती है।

खेत में स्थित दूब (दूर्वा) नामक घास के बँधे हुये समूह को दुबचौरि कहा जाता है। अच्छी जुताई करने से 'दुबचौरी' नष्ट हो जाती है। 'दुबचौरी' नष्ट न होने पर किसी भी फसल का विकास समुचित ढंग से नहीं हो पाता।

इस तरह जुताई के काम के ऊपर अच्छी फसल की सारी नींव निर्भर है। अतः जुताई करने में किसान बड़ी सावधानी रखते हैं।

(१०५ पृष्ठ का शेष)

हो गये। समुद्री जीव सीप, घोंघा आदि को पत्थरों से तोड़ने के समय जो हाथों का उपयोग होता था उसने हाथों की दृढ़ता को खूब बढ़ाया। सर एलस्टर हार्डी का अनुमान है कि वे बानर जल में कोई ५ लाख वर्ष रहे। इस अर्से में ही वे बानर से नरों के रूप में परिणत हो गये। फिर भूमि की परिस्थिति अनुकूल हो गई वह धीरे-धीरे जल को छोड़कर फिर भूमि पर आ गया और शुष्क भूमि पर आकर इसने फिर पत्थर के शस्त्र और लकड़ी को दंड के समान उपयोग में लाने लगा। जब से इसने लाठी सँभाली उस लाठी ने इसे खड़ा होकर चलने में पूरी सहायता की। इससे भिन्न लाठी ने इसकी शत्रु को परास्त करने में भी पूरी सहायता की और बचाव में भी साधक रही इसी से आगे शस्त्रों के विकास का मार्ग खुला। इसके बाद ही नियण्डेर्थल मानव के रूप में यह परिवर्तित हो प्रकट हुआ।

मस्तिष्क की अद्भुत बैटरी

जटाशंकर द्विवेदी

मनुष्य कैसे सोचते हैं ? वर्षों पूर्व के देखे हुये स्थानों के दृश्यों को हम मस्तिष्क में कैसे स्मरण रखते हैं ? वह कौन सी विधि है जो हमें विचार करने की क्षमता प्रदान करती है ? ये प्रश्न जन साधारण के मस्तिष्कों में आने स्वाभाविक है।

इन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिये अनेक देशों में प्रयोगशालाओं में कुछ उल्लेखनीय कार्य किया गया है। यह ज्ञात हुआ है कि भौतिक विधि जिसके द्वारा ये असाधारण कार्य सम्पन्न होते हैं, वास्तव में वैद्युतिक है।

मनुष्य के नाड़ी संस्थान (nervous system), मस्तिष्क, सुषुम्ना और वातनाडी के मध्य एक गीली बैटरी रहती है जिसमें एक वोल्ट के दशवें भाग के विद्युत भार की बिजली पैदा होती है। साधारण बैटरी के एक सेल का विद्युत भार इसका लगभग १२ गुना होता हैं। शरीर में स्थित सोडियम और पौटैसियम द्वारा विद्युत का सृजन होता है जो नाड़ियों से होकर बहती है। ये नाड़ियाँ एक द्रव में दबी रहती हैं जिसमें मुख्यत: जल रहता है। नाड़ी के प्रत्येक भाग में प्रतिक्रिया उत्पन्न कर देती है और इस प्रकार से संवेदन नाड़ियों से मस्तिष्क को और मस्तिष्क से नाड़ियों की ओर अग्रसर हो जाते हैं।

मस्तिष्क और सुषुम्ना नाड़ी में क्या व्यापार चल रहा है इसका कुछ आभास पाने के लिये हम किसी टेलीफोन प्रणाली को लें जिसमें लगभग १००० स्विचबोर्ड हों जिनमें से प्रत्येक स्विचबोर्ड की इतनी क्षमता हो कि वह विश्व के बड़े से बड़े नगर की टेलीफोन प्रणाली का सुविधापूर्वक संचालन कर सके। अब प्रश्न है कि मस्तिष्क यह सब कैसे कर पाता है ? मस्तिष्क का प्रत्येक कोष दो लघु आकार के तन्तुओं को प्रस्तुत करने की क्षमता रखता है। ये तन्तु समीप के दो तन्तुओं से सम्पर्क स्थापित कर लेते हैं। इस प्रकार से प्रथम दो तन्तु अनेक रूपों में अगणित प्रकार से सम्बंधित किये जा सकते हैं जैसा कि किसी टेलीफोन-प्रणाली में होता है। इस प्रकार सेकंड के एक छोटे से भाग में अत्यन्त कुशलतापूर्वक हजारों परिपथ बन जाते हैं। प्रत्येक परिपथ एक विचार या स्मृति का द्योतक होता है। ये सब परिपथ मस्तिष्क के बड़े परिपथ से सम्बंधित हो जाते हैं जहाँ प्राप्त सूचनाओं के आधार पर विचार किया जाता है और उचित निर्णय किया जाता है।

वैज्ञानिकों का विश्वास है कि हमारे जीवन का प्रत्येक प्रयोग इन वैद्युतिक परिपथों के रूप में अंकित हो जाता है और सुरक्षित रहता है। वहाँ जीवन की

ऐसी लाखों घटनायें भी अंकित रहती हैं जिन्हें हम भूल जाते हैं। रोगियों पर प्रयोग करते हुये मनोवैज्ञानिकों ने यह देखा है कि प्रारम्भ में रोगी कहता है कि उसे किसी विशेष घटना के सम्बन्ध में कुछ भी स्मरण नहीं है किन्तु उकसाने पर वह धीरे-धीरे अपने बाल्यकाल की उस घटना को भी स्मरण कर लेता है जिसे वह बिलकुल भूल गया था। इस प्रकार के उदाहरणों से इस विचार को पुष्टि मिलती है कि घटनाओं अथवा विचारों का संग्रहण किसी न किसी रूप में होता ही है। और जब इन घटनाओं या विचारों का प्रेषण मस्तिष्क को वैद्युतिक परिपथों द्वारा होता है तब यह विचार आना अस्वाभाविक नहीं कि उन्हें सुरक्षित रखने वाले साधन ये परिपथ ही हैं जो स्वयम् सुरक्षित रहते हैं। एक सिद्धान्त यह भी है कि प्रत्येक स्मृति एक वैद्युतिक सम्वेदन का रूप ले लेती है। एक बन्द परिपथ के रूप में ये संवेदन मस्तिष्क में कोषों के एक समूह में स्थित रहते हैं। हमारे जीवन के अन्त तक सोडियम-पोटैसियम विधि से ये परिपथ जीवित रहते हैं और इस प्रकार से जीवन के अन्त तक सारी स्मृतियों का अंकन सम्भव हो जाता है।

हमारी इन्द्रियाँ प्रत्येक क्षण स्वयंचालित रूप में बिना विश्राम लिये जो कुछ भी हम देखते हैं, छूते हैं, सुनते हैं, सूंघते है या चखते हैं मस्तिष्क को सूचित करती रहती हैं। यदि इन सभी संवेदनों का मस्तिष्क तक संचार हो तो बड़ी असुविधा हो जाय। इस गड़बड़ी का रोकने के लिये नाड़ी प्रणाली में छोटे-छोटे रिक्त स्थान रहते हैं, ये रिक्त स्थान ऐसे लाखों छोटे-छोटे संवादों को बीच में रोक लेते हैं जिनका कोई विशेष महत्त्व नहीं है जैसे कि तापक्रम का १° बढ़ जाना। एक ही वैद्युतिक संवेदन इन रिक्त स्थानों को पार करने में सक्षम नहीं है किन्तु जब बहुत से स्थानों से ऐसे संवेदन प्रवाहित होने लगते हैं तो छोटे-मोटे रिक्त स्थानों को कूदते हुये वे मस्तिष्क तक पहुँच जाते हैं। इस संरक्षण विधि के लिये आँख की रेटिना में लगभग १० करोड़ संवेदनशील कोष रहते है जो देखी हुई वस्तु के सम्बन्ध में मस्तिष्क को सूचना देने की क्षमता रखते हैं। किन्तु इन संवेदनों को मस्तिष्क तक पहुँचाने के लिये केवल १० लाख तन्तुओं की ही व्यवस्था है। इस प्रकार से किसी भी संवेदन को मस्तिष्क तक पहुँचाने के लिये उसे कम से कम सौ कोषों को प्रभावित करना चाहिये।

मस्तिष्क में तीन प्रमुख संवाद केन्द्र हैं। प्रत्येक केन्द्र जिस प्रकार की कार्य-प्रणाली के अनुरूप सज्जित है उसी के अनुरूप संकेत ग्रहण करता और कार्य करता है। ये तीन केन्द्र निम्न है :—

मेडुला आवलाँगाटाः—इसके द्वारा स्वयम्चालित क्रियायें सम्पन्न होती हैं यथा श्वास-प्रश्वास की क्रिया तथा रक्त संचालन।

सेरीब्रमः—यह और इसके ऊपर का भूरे रंग का आवरण चैतन्यता, स्मृति, विचार अथवा यों कहें कि व्यक्तित्व का स्थान है।

सेरेबेलमः—इसके द्वारा माँस पेशियों पर ऐच्छिक नियंत्रण किया जाता है। यह कभी कभी सेरेब्रम से आज्ञा प्राप्त होने पर भी होता है। किसी वस्तु के छू जाने पर पैर

का हट जाना औ इसी प्रकार की क्रियायें केवल सुषुम्ना के द्वारा भी सम्पन्न हो जाती हैं।

नियंत्रण क्षमता के अनुसार शरीर के विभिन्न भाग मस्तिष्क के क्षेत्रफल के आकारों का उपयोग करते हैं। यदि किसी अंग की नियंत्रण क्षमता अधिक होती है तो वह मस्तिष्क के बड़े आकार का क्षेत्रफल काम में लाता है। जैसे कि हाथ और उंगलियाँ जिनकी नियंत्रण क्षमता पैरों से अधिक है, पैरों की अपेक्षा अधिक बड़ा क्षेत्रफल काम में लाती हैं। इसी प्रकार जिह्वा और होंठ को भी मस्तिष्क का एक बड़ा भाग मिला हुआ है।

प्रकाश, ध्वनि, ताप आदि किस प्रकार से देखे, सुने या अनुभव किये जा सकते हैं? इस सम्बन्ध में हमें केवल इतना ही ज्ञात है कि हमारी इन्द्रियाँ कुछ भौतिक परिस्थितियों द्वारा प्रभावित होकर मस्तिष्क के उपयुक्त भाग में कुछ वैद्युतिक सन्देश प्रवाहित कर देती हैं। इन सन्देशों द्वारा सम्वेदनों का जो चित्र मस्तिष्क में बनता है उसी के अनुसार हम विभिन्न प्रकार के अनुभव करते हैं।

मस्तिष्क की शल्यक्रिया के समय नाड़ी संस्थान के उस भाग में जहाँ दृश्यों और संवादों का अंकन होता है यदि एक लघु विद्युत आवेश लगाया जाय तो रोगी को प्रकाश की क्षणिक दीप्ति, भनभनाहट या ठोकर का अनुभव होता है। श्रवणकेन्द्र को उभाड़ने पर व्यक्ति बच्चों की भाँति चिल्लाने लगता है। हाँ, अच्छा भाषण देने की ओर प्रवृत्त नहीं होता। चेतन अवस्था में व्यक्तियों पर प्रयोग करने पर पता लगा कि उन्हें ऐसा नहीं होता कि कोई वाह्यशक्ति उन्हें बच्चों के समान चिल्लाने को बाध्य कर रही हो। इसके विपरीत वे अनुभव करते हैं कि आन्तरिक विवशता के कारण ही वे चिल्लाने लगते हैं।

साधारणरूप से सन्देश वातसंस्थान के चारों प्रमुख भागों को साथ साथ ही जाते हैं। ये चारों केन्द्र सदैव ही सहयोग की भावना से कार्य नहीं करते। सेरेबेलम की आज्ञानुसार एक ठंडी रात्रि में हम रजाई के अन्दर घुस जाते हैं। साथ ही सेरेब्रम की आज्ञा से हम ठंडे प्रदेशों का स्वप्न भी देख सकते हैं किन्तु ये सन्देश प्रमुख नहीं होते। ऐसे सन्देश प्रमुख होते हैं जैसे धुयें की महक। ये सभी केन्द्रों को सावधान कर देते हैं, विद्युत परिपथों को भयंकर गति प्रदान कर देते हैं और सावधानी से उचित कार्य करने की प्रेरणा देते हैं।

अनेक कार्य जब पहली बार किये जाते हैं, विशेष ध्यान आकर्षित करते हैं किन्तु बाद में मस्तिष्क उनके लिये विशेष सावधान नहीं रहता। जैसे साइकिल चलाने, तैरने और इसी प्रकार के अनेकों कार्यों में मस्तिष्क पहले विशेष सम्वेदनशील रहता है किन्तु बाद में ये क्रियायें साधारणरूप से ही मस्तिष्क को प्रभावित करती हैं। एक नगर निवासी गाड़ियों के आने-जाने के शोरगुल में भी नगर में सोता रहता है किन्तु देहात में जाने पर वह दूर स्थान से आती हुई मुर्गे की बाँग सुनकर जग पड़ता है।

अब प्रश्न है कि हम कब इतने बुड्ढे हो जाते हैं कि कुछ भी सीखने में असमर्थ हो जाते हैं? ऐसा कभी नहीं होता। मस्तिष्क में प्रतिबिम्बित होते हुये नये वैद्युतिक

परिपथों का सृजन ही ज्ञान लाभ है। जब तक हममें ऐसे नये परिपथ बनाने की क्षमता रहती है, हम ज्ञान और कौशल प्राप्त करते जाते हैं। पागलपन या मस्तिष्क की क्षीणता मस्तिष्क-कोषों या वैद्युतिक विधियों की क्षति के कारण होते हैं।

अत्यधिक चिन्ता, असहनीय क्रोध और मस्तिष्क के इसी प्रकार के अनुचित व्यवहार उन वैद्युतिक परिपथों के कारण उत्पन्न होते है जो नियन्त्रण से बाहर हो जाते हैं। मस्तिष्क के कुछ रोगों का कारण होता है, प्रतिबिम्बित होने वाले अनेकानेक विद्युत परिपथों का सम्पर्क न हो पाना। जैसे एक व्यक्ति अपने को राणा प्रताप समझता है। वे परिपथ जो यह बताते हैं कि राणा प्रताप एक राजा था, वह अत्यन्त वीर था, आदि उसके मस्तिष्क में मिल जाते हैं। किन्तु वह परिपथ जो यह बताता है कि राणा प्रताप मर गया है राणा प्रताप सम्बन्धी अन्य परिपथों से सम्पर्क नहीं स्थापित कर पाता।

मेधावी व्यक्तियों में इन वैद्युतिक परिपथों में समन्वय स्थापित करने की विशेष क्षमता रहती है। हम जितना अधिक सीखते हैं उतनी ही अधिक स्मृतियों का लाभ हम उठा सकेंगे। हम जितने अधिक परिपथों को और बड़ी संख्या वाले परिपथों से सम्बन्धित कर सकेंगे उतना ही यह कार्य हमारे लिये सरल होता जावेगा और ये परिपथ और भी अधिक विशाल बन सकेंगे। इस प्रकार से हमारा ज्ञान भण्डार विकसित होता जावेगा। मेधावी व्यक्ति साधारण व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक सुविधापूर्वक इस कार्य को कर सकेंगे।

सर चार्ल्स शेरिंगटन, जो मस्तिष्क सम्बन्धी विषयों पर अधिकारपूर्वक कह सकते हैं, बताते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क का भार उसके शरीर के भार के अनुपात में होता है; सभी पशुओं की अपेक्षा मनुष्य का मस्तिष्क बड़ा होता है तथा उसका विकास अभी हो रहा है। मनुष्य जाति के लिये इससे बड़ी देन क्या हो सकती है?

कीट विनाशक पदार्थ

जगदीश प्रसाद तिवारी

खाद्य समस्या

भारत कृषि प्रधान देश है किन्तु भारतवर्ष की खाद्य स्थित शोचनीय है। खाद्य समस्या को सुलझाने के लिए वर्तमान कांग्रेस-सरकार ने अथक परिश्रम किया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में खेती को प्रमुख स्थान दिया गया और इसके अन्तर्गत सिंचाई पर विशेष ध्यान दिया गया था। "अधिक अन्न उपजाओ" का प्रचार किया गया, फसल प्रतियोगितायें भी चल रही हैं किन्तु खाद्य स्थिति सँभल नहीं पाई है यो तो इस समस्या को सुलझाने के लिए बहुमुखी प्रयत्न हो रहे हैं।

अन्न की हानि

भारतीय किसानों की असावधानी से फसल में कीट, कीटाणु और पतंगों से तथा गोदामों में घुन, चूहों, और फफूंदी से अन्न की बहुत हानि होती है। सरकारी आँकड़ों से ज्ञात होता है कि इस प्रकार से फसलों में १० प्रतिशत अन्न की हानि और गोदामों में ७ प्रतिशत तक की हानि होती है। कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी, भूतपूर्व राज्य-पाल,उत्तर प्रदेश और केन्द्रीय खाद्य मन्त्री के अनुसार यदि अन्न की रक्षा हम कीट,कीटाणु और पतिंगों से कर सकें तो भारत अन्न की कमी को बहुत ही शीघ्र पूर्ण कर सकता है (पायनियर २६-१२-५६)। टिड्डियों से अकाल पड़ जाते हैं। इण्डियन काउन्सिल आफ एग्रीकलचर की विज्ञप्ति के अनुसार दस करोड़ रुपयों की लागत का धान केवल एक कीट, स्टेम बोरर, के कारण प्रति वर्ष नष्ट होता है।

कीट, कीटाणु, फफूंदी, और पतिंगों को नष्ट करने के साधनों का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से होता रहा है। हमारे किसान राख और हुक्के का पानी प्रयोग में लाते हैं। रासायनिक खाद का प्रयोग तो वे अवश्य करने लगे हैं किन्तु कीट, कीटाणु और फफूँदी के नष्ट करने की वैज्ञानिक विधियों का और रासायनिक पदार्थों का प्रयोग नहीं के बराबर करते हैं, जब कि अन्य उन्नतशील देशों में। जैसे अमेरिका तथा रूस में इस ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। यों तो डी० डी० टी० का प्रयोग मच्छड़ों को नष्ट करने में सरकार ने किया है और अधिकतर किसान इस नाम से परिचित भी हो गये हैं किन्तु कीट, कीटाणु को नष्ट करने में अभी इसका प्रयोग नहीं करते हैं। इसका प्रयोग सरकारी फारमों और और कुछ बड़े फारमों तक ही सीमित है। सरकार के कीट-विनाशक विभाग तथा पौधा रक्षक विभाग (इण्टोमालोजिस्ट प्लाण्ट प्रोटेक्शन विभाग) भी हैं और वह

कार्य भी अच्छा कर रहा है किन्तु उसका प्रचार केवल पढ़े-लिखे थोड़े से व्यक्तियों तथा स्थानों में हो पाता है और साधारण कृषक न तो उस विभाग को जानता है न उससे लाभ ही उठा पाता है। अतएव हमारे किसानों के बीच में वैज्ञानिक विधियों के और कीट विनाशक रासायनिक पदार्थों के प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है।

रासायनिक कीट विनाशक पदार्थ

वैज्ञानिकों का झुकाव डी० डी० टी० के गुणों को देखकर कीट-विनाशक रासायनिक पदार्थों की ओर अधिक आकर्षित हुआ फलतः अनेकानेक कीट विनाशक पदार्थों की रचना की गई है और हो रही है। इस प्रकार डी० डी० टी० के अतिरिक्त गैमेक्सीन (बी० एच० सी०), फालीडाल, गन्धक का धुआँ (सलफर डाई आक्साइड) इत्यादि निर्मित हुये हैं किन्तु डी० डी० टी० का प्रयोग ही अधिक हो रहा है।

डी० डी० टी० का इतिहास और उत्पादन

डी० डी० टी० का निर्माण स्वीडेन के रासायनिज्ञ ने जिसका नाम जेडलर था सन् १८७४ ई० में किया था। किन्तु १९३९ में इसके कीट-विनाशक गुण का पता मुलर और मार्टिन नामक वैज्ञानिकों ने लगाया। इसका प्रयोग जुए और मक्खियों के मारने और टाइफस नामक कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए द्वितीय महायुद्ध में सेना में उपयोग किया गया। खेतों को हानि पहुँचाने वाले कीट और कीटाणुओं को नष्ट करने में इस रासायनिक पदार्थ का प्रयोग व्यापक रूप में होने लगा है। डी० डी० टी० का उत्पादन भारत में भी होने लगा है। दिल्ली में हिन्दुस्तान इन्सेक्टीसाइड और टाटा फिसन नामक फैक्ट्रियाँ डी० डी० टी० का उत्पादन करती हैं।

प्रयोग की विधियाँ

डी० डी० टी० के प्रयोग करने की अनेक विधियाँ हैं :—

१. पाउडर रूप में हाथ व मशीन द्वारा छिड़कना।
२. पानी में घोलकर मशीन द्वारा छिड़कना।
३. किसी विलायक में घोल बनाकर छिड़कना।

लाभ तथा हानियाँ

डी० डी० टी० का प्रयोग अत्यन्त लाभदायक है। इसके प्रयोग से पौदों के अनेक प्रकार के कीटाणु और कीट नष्ट हो जाते हैं। इससे सस्ता और लाभप्रद दूसरा कीट विनाशक पदार्थ अभी तक व्यापारिक रूप में उत्पन्न नहीं किया जा सका है। किन्तु फिर भी इसके प्रयोग में कुछ हानियाँ होती हैं अतएव प्रयोग करते समय तीन बातों का ध्यान रखना चाहिए :

(शेष पृष्ठ १२१ पर)

बादल

अरुण कुमार सक्सेना

नीले आकाश में कभी काले, चमकीले तथा रुई के समान यह बादल जी को लुभा देते हैं। इनके खींचे हुये चित्रों की शोभा अनुपम होती है जो कवि को लिखने के लिये विवश कर देती है और कवि कल्पनाओं के सागर में खो जाता है। इनमें इतना आकर्षण होता है कि यह चित्रकार को उसकी तूलिकाओं से अपनी नकल उतारने को बाध्य कर देते हैं और वह उसी में रम सा जाता है। किन्तु जब ये सुन्दर बादल रुष्ट हो जाते हैं तो प्रलय का सा वातावरण उपस्थित कर देते हैं और चारों ओर हाहाकार मचा देते हैं।

अगर ध्यान पूर्वक इनका अवलोकन किया जाये और इनके रूप तथा बनावट को बारीकी के साथ देखा जाये तो कोई भी आने वाले मौसम की भविष्यवाणी कर सकता है।

किन्तु ये बादल हैं क्या?

वास्तव में ये जलवाष्प हैं। जलवाष्प युक्त वायु सूखी हवा की अपेक्षा हल्की होने के कारण ऊपर की ओर उठती है और जैसे-जैसे यह ऊपर की ओर जाती है, और जब यह ठण्डे प्रदेश में पहुचती है, तो दबाव की न्यूनता होने के कारण स्वयं भी फैल कर यह ठण्डी हो जाती है। इसी कारण यह शीघ्र ही संयुक्त हो जाती है और अधिक ठण्डी होने पर यह जलवाष्प छोटी छोटी बूँदों के रूप में परिणत हो जाती है। इन छोटी-छोटी बूँदों के समूह हम सबको बादल के रूप में दिखाई देने लगते हैं। ये बादल हवा की धाराओं के साथ दूर-दूर तक पहुँच जाते हैं।

बादल अनेक प्रकार के होते हैं। इनको रूप तथा बनावट की दृष्टि से अनेक भागों विभाजित किया गया है पर मुख्य निम्नलिखित हैं—

१. सिरस (Cirrus) :—ये सबसे सफेद होते हैं तथा सबसे अधिक ऊँचाई पर पाये जाते हैं। अनुमान है कि इनकी ऊँचाई लगभग ४६००० फीट होती है। ये छोटे छोटे बर्फ के कणों के बने होते है। जैसे-जैसे ये ऊपर उठते जाते हैं, दबाव की न्यूनता के कारण इनका फैलाव होता जाता है और इससे इनका ताप कम होता जाता है। ये बूँदें बर्फ की शक्ल धारण कर लेती हैं।

२. क्यूमूलस (Cummulus) :—इनका रूप रुई की ढेरी के समान होता

है। यह एक मील की ऊँचाई तक पाये जाते हैं और देखने में बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं। ये स्ट्रेटस (Stratus) बादल की सतह पर बनते हैं।

३. स्ट्रेटस (Stratus) :—यह सबसे कम ऊँचाई अर्थात् ४००० फीट ऊँचाई तक पाये जाते हैं। इनका रूप कुहरे के सामान होता है। ये शान्त सन्ध्या या रात्रि में बनते हैं।

४. निम्बस (Nimbus) :—यह डरावने तथा घने काले रंग के सामान होते हैं। ये ही अधिकतर पानी बरसाते हैं। इनके आकार टेढ़े-मेढ़े होते हैं। पानी और तूफान के साथ इनकी ही अधिकता रहती है।

बादल प्रायः मिश्रित जाति के भी पाये जाते हैं। आकाश में अकसर दिखाई देने वाले बादल मिश्रित श्रेणी के होते हैं।। जैसे, उनमें सिरस और स्ट्रेटस दोनों के गुणों की प्रधानता होगी तब हम उसको 'सिरो स्ट्रेटस' के नाम से पुकारेंगे। इन बादलों के भी नाम अलग अलग हैं।

(१) सिरो क्यूमूलस (Cirro-Cumulus) :—यह गर्म तथा सूखे मौसम में तथा गर्मी की वर्षा के बाद पाये जाते हैं। यह श्वेत तथा गोल-गोल रुई के समान होते हैं और इनके बीच से नीला आकाश धब्बों के रूप में दिखाई पड़ता है। जब यह आकाश में दिखाई पड़ते हैं तो ये गर्मी की अधिकता की भविष्यवाणी करते है। जब कभी इनका आकार भारी तथा गोल-गोल होता है और ये पास-पास होते हैं और साथ में सिरो स्ट्रेटस की अधिकता रहती हैं तो यह तूफान और बिजली के कड़कने की भविष्यवाणी करते हैं।

(२) सिरो-स्ट्रेटस (Cirro-Stratus)—इनको गर्वीले बादल (Vane Clouds) भी कहते हैं। यह लहरों के सामान सिरे रखते हैं और लम्बे तथा महीन दिखाई पड़ते हैं। जब कभी ये आकाश में दिखाई पड़े तो समझ लीजिये की चक्रवात आने वाला है और पानी की भी अधिकता रहेगी अर्थात् वर्षा भी होगी। ये बहुत घने नहीं होते हैं और अधिक ऊँचाई पर होने के कारण सूर्य तथा चाँद के पास मंडल का रूप धारण किये जैसे प्रतीत होते हैं यद्यपि सूर्य तथा चाँद पृथ्वी से करोड़ों मील की दूरी पर होते है।

(३) क्यूमूलो-स्ट्रेटस (Cumulo-Stratus)—ये सिरो-स्ट्रेटस तथा क्यूमूलस के मिश्रण के बने होते हैं। इनका आकार रुई की ढेरी के सामान, जिसका पेंदा चौड़ा और ऊपर का भाग पहाड़ों तथा चट्टानों के सामान होता हैं। ये क्यूमूलस से भी बहुत भारी होते हैं इनकी चोटियाँ बहुत ऊँची होती हैं। ये पहाड़ों के दृश्यों की शोभा में चार चाँद लगा देते हैं। यह प्रायः रात में सूखी हवा वाले मौसम में पाये जाते हैं। ये निम्बस में बदल जाते हैं और पानी बरसाते हैं।

परन्तु यह बादल वास्तव में क्या चमकीले, धुंधले और गहरे काले होते हैं ?

जब बादल कई तहों का होता है तो उसमें से छन कर सूर्य की किरणें हमारी आँखों तक नहीं आ पाती हैं और बादल घना तथा काले या भूरे रंग का दिखाई देता है।

बादलों की तहें जब मोटी नहीं होती हैं तो उनमें से सूर्य का प्रकाश छन छन कर आता है और ये धुधले दिखाई पड़ते हैं।

यह हम सब जानते ही हैं कि बादल बर्फ के कणों तथा पानी की छोटी छोटी बूँदों के बने होते हैं। सूर्य का प्रकाश इन पर इस प्रकार पड़ता है कि वह प्रत्यावर्त्तित होकर हम लोगों की आँखों से टकराता है तो ये बादल चाँदी के समान चमकीले दिखने लगते हैं। इनसे ८२ प्रतिशत सूर्य का प्रकाश प्रत्यावर्तित हो जाता है।

हैलो तथा रंगीन वृत्त:—सूर्य या चाँद कभी बादलों में छुप जाता है और यदि बादल बहुत घना न हुआ तो सूर्य या चाँद एक प्रकार के रंगीन वृत्त से घिरा हुआ दिखलाई पड़ता है जिसका केन्द्र सूर्य तथा चाँद के मध्य विन्दु पर होता है। जब इस बादल में पानी की नन्ही-नन्ही बूँदे वर्तमान रहती हैं तो इन्द्रधनुष के सात रंग दिखाई देते हैं किन्तु जब बर्फ के कणों की प्रधानता रहती है तो एक सफेद रंग का वृत्त दिखाई देता है। इसको हैलो अथवा मंडल कहते हैं।

———

(११८ पृष्ठ का शेष)

१. फसल में दाना पड़ने के फसल काटने से तीन सप्ताह पहले से इसका प्रयोग बन्द कर देना चाहिए।

२. जहां दूध देने वाले पशु बांधे जाते हों वहां भी इसका प्रयोग वर्जित है क्योंकि यह उनके दूध से मक्खन में घुल जाता है और सब प्रकार के रासायनिक कीट-विनाशक पदार्थ जहरीले होते हैं अतएव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं।

३. इसका प्रयोग अधिक नहीं करना चाहिए क्योंकि फिर कीटाणु जो इसके प्रभाव से बच जाते हैं उनपर कोई असर नहीं होता है जैसे घरेलू मच्छड़ तथा मक्खियां।

सुझाव

भारतीय कृषकों को चाहिए कि ग्राम पंचायत द्वारा धान की फसलों में लगे गंधी नामक कीटों, सरसों में लसी (मांडू) नामक कीटों को तथा अन्य प्रकार के कीट को नष्ट करने के अपने जिले के कीट विनाशक तथा पौदा रक्षा विभाग की सेवाओं को प्राप्त कर तथा कीट विनाशक पदार्थों की ओर ध्यान देकर अन्न की रक्षा कर देश की अन्न कमी को पूरा करने का प्रयत्न करें।

[क्रमशः]

———

१—भारत और खाद्य तथा कृषि संगठन

खाद्य तथा कृषि संगठन की स्थापना, दूसरे महायुद्ध के बाद, विशेषतया पिछड़े हुए देशों के अन्न के अभाव से मुक्ति दिलाने के लिए की गयी थी। अमेरिका के स्व० राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने १९४३ में विश्वव्यापी भुखमरी के दैत्य का मिलकर मुकाबला करने के लिए गरीब और अमीर तथा छोटे-बड़े देशों का हाट स्प्रिंग्स में एक सम्मेलन बुलाया। इसमें भारत और ४१ अन्य देशों ने भाग लिया और अब ७७ देश इसमें सम्मिलित हैं।

कुछ लोगों का विचार है कि ऐसा अंतर्राष्ट्रीय संगठन जिसको कानून बनाने या कानून का पालन कराने का कोई अधिकार न हो, कोई काम कैसे कर सकता है। उनका यह विचार ठीक है और अकाल आदि में सहायता के लिए अनाज का भंडार बनाने जैसे प्रस्तावों को इसी के कारण आवश्यक समर्थन नहीं मिला। लेकिन फिर भी इस संगठन ने बहुत काम किया है।

दूसरे महायुद्ध के बाद बहुत से देशों में अन्न की कमी थी, लेकिन इधर कुछ वर्षों में कई देशों में स्थिति सुधरी है और वहाँ आवश्यकता से अधिक अनाज पैदा होने लगा है। पश्चिम के उन्नत देशों में ही अनाज की पैदावार बढ़ी है और पिछड़े देश प्रायः पहले जैसे ही हैं या यह कहा जाय कि अन्नबहुल देशों और अन्नाभाव वाले देशों का अन्तर और बढ़ गया है।

ऐसी विषम परिस्थिति में खाद्य तथा कृषि संगठन आगे आया और उसने ऐसी स्थिति की पुनरावृत्ति नहीं होने दी कि कहीं मूल्यों को रोकने के लिए हजारों मन अनाज नष्ट किया जाय और कहीं लोग दाने-दाने को तरसते रहें। १९३०-४० में संसार के कई भागों में ऐसा ही हुआ था। खाद्य तथा कृषि संगठन ने अपने सदस्य देशों को अन्न नष्ट करने से रोका और उन्हें न केवल अधिक अनाज भूखे देशों को देने को ही, बल्कि उनको उन्नति के लिए अनाज की पूंजी की तरह प्रयोग करने को भी तैयार किया।

सबसे पहले खाद्य तथा कृषि संगठन ने १९५५ में, भारत में ही यह पड़ताल की कि अनाज से किसी देश की आर्थिक उन्नति कैसे हो सकती है। कुछ विशेषज्ञों ने जाँच-पड़ताल करके यह राय दी कि मुफ्त या उधार या रिआयती दाम पर अनाज

देने से किन्हीं वर्गों के लोगों के शरीर में जान आयेगी और वे अधिक काम कर सकेंगे, जिससे समूचे देश की अर्थ-व्यवस्था में सुधार होगा। संगठन ने फालतू अनाज को बांटने के ऐसे नियम बनाये, जिससे अनाज के निर्यात व्यापार को धक्का न लगे। अनाज के बंटवारे के लिए संगठन की एक स्थायी समिति है। इस समिति ने अगस्त, १९५६ में भारत को अमेरिका से फालतू अनाज, मुख्यत: गेहूँ, दिलाने का करार कराने में बहुत मदद की।

खाद्य तथा कृषि संगठन का वास्तविक में लाभ भारत को १९५१ में तब पहुँचा जब सं० रा० संघ के विस्तृत शिल्प सहायता कार्यक्रम का श्रीगणेश हुआ। उसी साल उत्तर प्रदेश सरकार ने, गांवों में अच्छी किस्म का चमड़ा तैयार करने के लिए संगठन की सहायता के एक डच विशेषज्ञ की सेवाएँ प्राप्त कीं। उत्तर प्रदेश में दुधारू पशुओं का का वध बंद है, इसलिए वहां वार्षिक ६ करोड़ रु० की खालों में से ९५ प्रतिशत मरे हुए प्रशुओं की और शेष बासी होती हैं। उनसे अच्छा-अच्छा चमड़ा तैयार करना बड़ी समस्या थी। डच विशेषज्ञ के बताए हुए तरीकों और यंत्रों से उत्तर प्रदेश के चमारों को बड़ा लाभ हुआ है और अब उन्हें इन खालों का पहले से १५ प्रतिशत से भी अधिक दाम मिलता है। उत्तर प्रदेश में इस काम की सफलता को देखकर भारत सरकार देश भर में ऐसी योजना प्रारम्भ कर रही है।

भारत को इस संगठन ने एक और विदेशी विशेषज्ञ दिया। उसने एक केन्द्र में मछुओं को इस कुशलता से मछली पकड़ने के उन्नत तरीकों की शिक्षा दी कि दोनों के एक-दूसरे की भाषा को बिल्कुल न समझने से भी काम सीखने या सिखाने में बाधा नहीं पड़ी। उसने हर काम को स्वयं करके दिखाया और बोलने या समझने की जरूरत ही नहीं रखी। विशेषज्ञ की इस कुशलता और सफलता को देखकर उससे कोचीन और तुतुकुडि में भी इसी तरह के केन्द्र चलाने का अनुरोध किया गया। उसके प्रयत्न स्वरूप कई मछुओं को काम सिखाने की एक प्रणाली स्थापित हो गयी है।

एशिया के अनेक देशों में पालतू पशुओं को खूनी दस्तों की बीमारी बहुत होती है। इस महामारी की रोकथाम के लिए खाद्य तथा कृषि संगठन का काम उल्लेखनीय है और आजकल भारत में पशुओं को टीके लगाने का जो देशव्यापी उद्योग चल रहा है, वह इसी की देन है। साथ ही संगठन पड़ोसी देश पाकिस्तान और नेपाल में भी इस रोग को रोकने के लिए प्रयत्नशील है।

सभी जानते हैं कि टिड्डी मानव जाति की कितनी बड़ी शत्रु है। कहना चाहिए कि यह अकाल की जननी है। इधर कुछ दिनों से भारत की ओर इसके जो आक्रमण नहीं हुये, वह खाद्य तथा कृषि संगठन के ही कारण है। पश्चिमी एशिया में जहां टिड्डी पैदा होती हैं, वहां संगठन ने उसके विनाश की समुचित व्यवस्था मर रखी है।

यह नहीं समझना चाहिए कि भारत संगठन से सहायता ही लेता है। वह देता भी है और वह संगठन को सबसे अधिक चंदा देने वाले ६ देशों में है। इसके अलावा

कटक की केन्द्रीय चावल गवेषणाशाला ने ऐसा चावल निकाला है, जो दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में खूब बोया जाने लगा है। इस चावल सम्बन्धी अनुसंधान में संगठन ने काफी सहायता की।

संगठन और इसके सम्मेलनों में भारतीय प्रतिनिधियों ने सराहनीय कार्य किया है। १९५५ के सम्मेलन में भारत के प्रयत्नों से ही संगठन के विधायक में ऐसा संशोधन किया गया, जिसके अनुसार अब परतंत्र देश भी संगठन के सदस्य बन सकते हैं। संगठन की प्रायः सब बड़ी-बड़ी समितियों में भारत के प्रतिनिधि हैं। इतना ही नहीं, एक भारतीय ही अब इस महान संगठन का अध्यक्ष है।

यह ठीक है कि संगठन अभी तक भुखमरी के दानव को पछाड़ नहीं सका है, लेकिन इसने धन-धान्य पूर्ण देशों को आगाह अवश्य कर दिया है कि संसार में कुछ लोग भूखों भी मरते हैं और उनके प्रति तुम्हारी भी कुछ जिम्मेदारी है। इस बारे में जो कुछ जागृति और विविध देशों में सहयोग की जो भावना दिखाई देती है, वह खाद्य तथा कृषि संगठन के ही अथक प्रयत्नों का फल है।

२—भूमि-सुधार

भूमि-सुधार के समर्थन या विरोध के विभिन्न कारण हैं। कुछ लोग नैतिक कारणों से इसका समर्थन या विरोध करते हैं, कुछ सामाजिक या राजनैतिक कारणों से। नैतिक दृष्टि से इसका समर्थन करनेवालों की दलील यह होती है कि भूमि तो ईश्वर की देन है, इसलिये उसे निजी संपत्ति के कानूनों या रीति-रिवाजों से जकड़ना उचित नहीं। सामाजिक दृष्टि से इसका समर्थन करने वालों का कहना है कि भूमि पर जायदाद के अधिकार लागू कराने से सामाजिक विषमता बढ़ती है और यदि सुधार न किये गये तो राजनैतिक उथल-पुथल की संभावना होगी। लोग केवल आर्थिक दृष्टि से इसका समर्थन करते हैं। ये सब दलीलें परस्पर विरोधी होने पर भी ठोस और महत्वपूर्ण हैं। इनमें से किसको कितना महत्व दिया जाय यह केवल अपनी-अपनी समझ की बात है।

कृषि-प्रधान देशों में भूमि के वितरण और उस पर अधिकार का उनके सर्वसाधारण जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव केवल राजनैतिक या आर्थिक क्षेत्रों में ही नहीं बल्कि समाज और देश की नैतिक तथा दार्शनिक विचारधारा पर भी पड़ता है। भूमि पर अधिकार का साधार जीवन पर प्रभाव पड़ने का प्रमुख कारण यह है कि श्रम के अलावा भूमि ही उत्पादन का मुख्य साधन है। इतना ही नहीं, उपजाऊ भूमि बहुत कम है। बंजर भूमि को खेती के योग्य बनाने से उपजाऊ भूमि कुछ हद तक बढ़ायी जा सकती है, लेकिन इतने पर भी उसका क्षेत्र सीमित ही रहेगा। यह सीमित भूमि आय का साधन है और यही कारण है कि भूमि पर अधिकार का कृषि देश में संपत्ति के वितरण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सम्पति के वितरण का देश की राजनीति, सामाजिक रचना आदि पर प्रभाव पड़ता है।

कृषि प्रधान देशों की अर्थव्यवथा पुराने ढर्रे की और अपरिवर्तनशील होती है। वहां का खेती का ढंग भी पुराना, सदियों से चलता आया होता है। आबादी बढ़ने पर भी उसमें परिवर्तन नहीं होता। भूमि के सीमित क्षेत्र और असमान बंटवारे का यह प्रतिफल होता है कि भूमि सुधार के लिये लोग उतने उत्सुक नहीं रहते। अनाज की पैदावार और वितरण उसी पुराने ढंग से चालू रहता है। कभी समझौते से, कभी जबरदस्ती से लगान वसूल किया जाता है। लगान देने वाले और लेने वाले दोनों ही इस पद्धति के आदी हो जाते हैं। इस पद्धति की सामाजिक मान्यता भी प्राप्त होती है। सारांश यह कि जबतक यह अर्थव्यवस्था कायम रहती है तब तक उसमें परिवर्तन करने का किसी को ध्यान नहीं होता।

इस व्यवस्था को तभी धक्का लगता है जब कोई बाहरी शक्ति इसमें दखल देती है। भारत में अँगरेजी राज्य होने के बाद उसके कायदे कानून लागू होने लगे। ये कानून इंगलैंड की विचारधारा के अनुकूल थे। इन्होंने भारत में भूमि की निजी संपति नहीं माना जाता था। भूमि पर अधिकार के साथ ही उसे बेचने या गिरवी रखने का अधिकार प्राप्त किया गया। इससे पहले भूमि पर राजा का या समाज का अधिकार रहता था। भूमि न तो बेची जा सकती थी, न ही गिरवी रखी जा सकती थी। परंतु कानूनों के बदलने और अर्थव्यवस्था में धन का मनत्व बढ़ने के बाद हमारी सदियों पुरान कृषि-व्यवस्था का ढाँचा लड़खड़ाने लगा। जब फसल नष्ट हो जाती और धन का अभाव रहता, किसान भूमि को बेचता या गिरवी रखता। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ समय के बाद किसान भूमि का मालिक नहीं रहा। आबादी बढ़ने से अधिक अनाज की जरूरत हुई, जिससे भूमि की कीमत भी बढ़ने लगी। बड़ी संख्या में किसान बेदखल होने लगे। भूमि ऐसे लोगों के हाथों में गयी जिनका खेती से कोई संबंध नहीं था। इससे इन दो वर्गों में तनाव पैदा हुआ और इस तनाव से सामाजिक जीवन को खतरा पैदा हुआ। एक ऐसी स्थिति पैदा हो गयी जिससे लोग भूमि-सुधार चाहने लगे।

भूमि सुधार का हेतु यदि केवल किसानों की सहायता ही है तो लगान की वसूली में निर्दयता, कुड़की, बेदखली आदि को कानून की सहायता से रोका जा सकता है। यदि बहुत बड़ी संख्या में किसान भूमिहीन हो गये हों और इसके कारण सामायिक या राजनैतिक तनाव पैदा हो गया हो तो जोत की भूमि का अधिकतम क्षेत्र तय कर देने से काम चल जाएगा। परन्तु बढ़ती हुई आबादी और औद्योगीकरण के प्रयास के कारण भूमि पर बोझ बढ़ता जा रहा है। ऐसी अवस्था में आर्थिक परिस्थिति को ध्यान में रखकर ही भूमिसुधार के बारे में सोचना पड़ेगा। इस समय जबकि देश का औद्योगिक विकास हो रहा है, भूमि-सुधार ऐसे होने चाहिये जिनसे किसानों को पैदावार बढ़ाने को प्रोत्साहन मिले। किसान को अपनी मेहनत का पूरा-पूरा लाभ मिलना चाहिये। प्राय: यह देखा गया है कि किसान को उसको मेहनत का पूरा फल नहीं मिलता। देश में कृषि की उपज का लगभग पांचवा हिस्सा अर्थात् सालाना ६००-८०० करोड़ रुपये बिचवई

के लगान या महाजन को सूद के रूप में किसान के हाथ से निकल जाते हैं। यह राशि विकास कार्यों के लिये उपलब्ध नहीं होती। भूमि-सुधार द्वारा इस राशि का कुछ हिस्सा विकास कार्यों के लिये हासिल किया जाना चाहिये। मैसूर के भूदान सम्मेलन से स्पष्ट हो गया है कि भूमि सुधार के संबंध में अब देश में एक राय हो गयी है। देश का आर्थिक विकास होना चाहिये, इसे भी अब सब मानते हैं।

इस समय हमारे देश के सामने अनाज की कमी की बड़ी विकट समस्या है। सरकार इस कठिन स्थिति का सामना करने के लिए हरेक उपाय कर रही है। अनाज की उपज बढ़ाने के लिए सबसे आवश्यक भूमि व्यवस्था में सुधार करना है। भूमि सुधार में बहुत सी बातें आ जाती हैं, जैसे बिचवानियाँ या जमीदारों को हटाना, जिनका काम केवल पोत वसूल करना होता है और वे खेती की उन्नति से कोई मतलब नहीं रखते। भूमि सुधार का दूसरा अंग किसान को अपनी जोत में अधिकार देना और बेद-खली से बचाना है। इसीसे उसे खेती की उन्नति करने और उसमें अधिक पूंजी लगाने की प्रेरणा मिलेगी। जब तक किसान दूसरों का खेत जोता बोया करता है, तब तक उसका उस खेत के साथ कोई लगाव नहीं होता, चाहे वह उसे आजीवन जोतता रहे।

भमि सुधार में एक बात यह भी तै करने की है कि एक आदमी के पास अधिक से अधिक कितनी जमीन रहनी चाहिए। जिस देश में आदमी अधिक और भूमि कम है, वहाँ तो यह नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार अधिकतम सीमा के ऊपर जितनी भूमि होगी, उसे सरकार भूमिहीन या कम भूमि वाले किसानों को दे देगी।

अनेक देशों में भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों की चकबन्दी करने की भी आवश्यकता है। इससे खेती की उपज बढ़ती है तथा खर्च कम होता है। कई देशों ने अपने यहाँ भूमि सुधार की ओर ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया है और इसके लिए अनेक तरीके अपनाये हैं और उन्हें सफलता भी मिली है। कुछ देशों में भूमि सुधार के प्रयत्नों पर नीचे एक विहंगम दृष्टि डाली जावेगी। इनमें से कुछ तरीके हम अपने देश में अपना सकते हैं और कुछ के दोषों से हम शिक्षा भी ले सकते हैं।

रूस में

रूस ने अपने यहाँ १६२० और १६३० में अपनी दो पंचवर्षीय आयोजनाओं में भूमि सुधार का सबसे वृहत कार्यक्रम अपनाया था। इस कार्यक्रम के अनुसार खेती करने के पुराने घिसे-पिटे तरीकों को समूल मिटाकर उन्नत तरीके चलाये गये। किसानों के निजी खेतों के स्थान पर सरकारी खेती (कलेक्टिव फार्मिंग) चलायी गयी।

निजी खेती से सरकारी खेती में परिवर्तन के समय रूसी सरकार ने बहुत कड़ाई से काम लिया जिसके परिणामस्वरूप जनता और राष्ट्र दोनों को ही अधिक आर्थिक हानि पहुँची। सरकार की कड़ाइयों की प्रतिक्रिया रूसी किसानों पर यह हुई कि उन्होंने जी जान

से सरकार का विरोध किया। फसलों को जलाकर, पैदावार को छिपाकर तथा अपने ढोरों को मारकर उन्होंने सरकार के भूमि सुधार को विफल बनाने की कोशिश की। इस उथल पुथल के बाद भी सरकारी खेती से रूसी सरकार को आशा के अनुरूप सफलता नहीं मिली, क्योंकि सरकारी संस्था के नियम बड़े ही कठोर थे। सरकारी खेतों पर तो बहुत खर्च बैठता ही था, साथ ही उन खेतों के प्रबन्ध और निरीक्षण करने में उससे भी अधिक खर्च पड़ता था। दूसरी ओर खर्च के अनुपात से खेती की उपज नहीं बढ़ी। किन्तु यह मानना पड़ेगा कि इन आंशिक विफलताओं के होते हुये इस कार्यक्रम से रूस में गाँवों की काया पलट हो गयी और गाँव वालों को भी बहुत लाभ पहुँचा।

इस प्रकार रूस में जो भूमि-सुधार किये गये, उनका लोगों ने बहुत विरोध किया तथा इसके लिए उनका बड़ी कठोरता से दमन किया गया। रूस के भूमि सुधार कार्यक्रमों को देखकर हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि वहाँ के तरीके यहाँ लागू नहीं किये जा सकते तथा कोई भी कार्यक्रम जोर जबरदस्ती से नहीं चलाया जाना चाहिए। इनसे हमें यही शिक्षा मिलती है कि भूमि सुधार कार्यक्रमों में किसानों का हार्दिक सहयोग होना चाहिए तथा उसे इस बात का पूरा विश्वास होना चाहिए कि उससे भूमि छीनी नहीं जाएगी तथा उसकी मेहनत का पूरा-पूरा लाभ उसे मिलेगा। हम देश में सहकारी खेती चलाते समय जबरदस्ती न करें, बल्कि किसानों को राजी करें तथा इस बात का पूरा ध्यान रखें कि किसान का उत्साह नष्ट न होने पाये।

चीन में

चीन के भूमि सुधार बहुत ही महत्वपूर्ण हैं और उनसे हम बहुत कुछ ग्रहण कर सकते हैं। चीन में भी वही कठिनाइयाँ थीं, जिनका सामना अब भारत को करना पड़ा है, जैसे, घनी आबादी, कम जमीन, भूमि का छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटना तथा कम उपज। चीन में भूमि का बटवारा बहुत ही दोषपूर्ण एवं अन्यायपूर्ण था। भूमि पर अधिकार एक खास वर्ग का था, जो उन्हें गरीब काश्तकारों को जोतने को देते थे तथा उसने बहुत अधिक लगान बदले में लेते थे। माऊ-त्से-तुंग की सरकार ने इन बुराइयों को जड़ से उखाड़ने का प्रयत्न किया। उसने खेती न करने वाले जमीदारों से उनकी सारी जमीन, खेती के जानवर, फालतू अनाज आदि छीन कर गरीब किसानों को बांट दी। जमीदार के पास उनके निर्वाह योग्य थोड़ी सी जमीन छोड़ दी गयी और उन्हें कोई भी मुआवजा नहीं दिया गया। इस तरह हरेक किसान परिवार के पास अपनी कुछ जमीन हो गयी। चीन में यह भी नियम बना दिया कि एक किसान नियत मात्रा से अधिक भूमि नहीं रख सकेगा।

चीन में भूमि सुधार का काम भूमि के उचित बटवारे से ही समाप्त नहीं हो गया। उन्होंने उसके बाद किसानों की टोलियाँ बनायीं, जो मिलजुल कर खेती करें और बाद में इन टोलियों को सहकारी खेती का रूप दिया गया। पहले सहकारिता साधारण रूप में

प्रारम्भ हुई। बाद में इसे यह रूप दे दिया गया, जिसमें मेहनत करने पर हिस्सा मिलता था न कि भूमि के स्वामित्व पर। सहकारी खेती के विकास के साथ-साथ केन्द्रीय सरकार ने उपज बढ़ाने के लिए बीज, खाद, खेती के औजार आदि भी दिये। अब तो 'लोक कम्यूनों' की स्थापना से चीन की खेती में आमूल परिवर्तन आ गये हैं।

पूर्वी यूरोप

दूसरे महायुद्ध के बाद पूर्वी यूरोप के देशों में भी व्यापक भूमि सुधार किये गये। यहाँ भी जमींदारी मिटायी गयी, भूमि काश्तकारों को दी गयी, अधिकतम जोत बाँधी गयी तथा किसानों को समझा बुझाकर या दबाकर सहकारी खेती के लिए राजी किया गया। यहाँ भी कठिनाइयाँ आयीं और खेती की उपज में आशानुरूप वृद्धि नहीं हुई।

सहकारी और सामूहिक ढंग से खेती करने में अब भी कई त्रुटियां हैं और कभी-कभी इनमें निजी खेतों से बहुत कम उपज होती है। सरकारी हस्तक्षेप और नौकरशाही कामकाज की खराबियां हटाने के ढंग पर इस समय काफी सोच-विचार और आत्म-निरीक्षण चल रहा है। पर सहकारी पद्धति की अच्छाई के बारे में किसी को सन्देह नहीं है।

---

१. नई प्रकार की विद्युच्चालित कारें

निकट भविष्य में ऐसी मोटर गाड़ियाँ बनने लगेंगी, जो पेट्रोल के बजाय बिजली से चला करेंगी। वे चलते समय शब्द नहीं करेंगी और न ही उनके गियर बदलने की आवश्यकता रहेगी। इन कारों की संचालन-व्यवस्था बिल्कुल ही नई प्रकार की होगी।

जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी की अनुसन्धान प्रयोगशाला के डा० हरमेन लीमाफस्की का कथन है कि ५ वर्षों में बिजली की कारें चलनी प्रारम्भ हो जायेंगी। कुछ वर्ष पूर्व ऐसी बिजली की कारें प्रयोग में आती थीं, जिनका स्टोरेज बैटरियों से संचालन होता था, किन्तु अब वैसी कारें नहीं रही हैं। इसका कारण यह था कि उन बैटरियों को बारबार चार्ज कराना पड़ता था।

क्राइस्लर कार्पोरेशन ने सेला-१ नामक एक ऐसी कार बनाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया है, जो बिजली द्वारा चला करेगी। कम्पनी का कथन है कि यह एक ऐसी कार है जिसका इञ्जिनियरी के उन्नत सिद्धांतों पर विकास किया जा रहा है। इस नयी कार का फ्यूल सैल द्वारा संचालन होगा, जो प्रत्येक पहिये पर लगी मोटरों को बिजली उपलब्ध करेगा। फ्यूल सैल एक क्रान्तिकारी यन्त्र है, जो आज के उत्तम बिजलीघरों की तुलना में अधिक कुशलता से रासायनिक द्रव्यों से सीधे बिजली उत्पन्न करता है। जब तक फ्यूल सैल को मूल रासायनिक द्रव्य उपलब्ध होते रहते हैं, वह चुपचाप कुशलता के साथ बिलजी उत्पन्न करता है। आजकल मोटर गाड़ियों में प्रयुक्त होने वाली बैटरियों के समान फ्यूल सेल को पुनः चार्ज कराने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

कुछ बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ कुछ समय से इनका प्रयोग तथा जाँच कर रही हैं। एलिस चालमेस कम्पनी द्वारा तैयार किये गये परीक्षात्मक ट्रेक्टरों, फोर्क-लिफ्ट ट्रकों, बिजली के आरों तथा वेल्डिंग के उपकरणों को बिजली उपलब्ध करने के लिये लिये उनका प्रयोग किया जा रहा है। आजकल कम से कम २० अमेरिकी कम्पनियाँ मोटरों, मोटर से चलने वाली नौकाओं तथा भू-उपग्रहों में प्रयोग के लिये फ्यूल सेलों का विकास कर रहीं हैं।

वास्तव में यह फ्यूल सैल क्या है ?

फ्यूल सल देखने में बैटरी के समान होता है, किन्तु यह एक भिन्न सिद्धान्त पर कार्य करता है। इसके दो विद्युदग्र होते हैं, जो विद्युद्विश्लेष्य नामक एक तरल पदार्थ में डुबो दिये जाते हैं। यह तरल पदार्थ विद्युत तरंगें उत्पन्न करता है। जब एक विद्युदग्र में हाइड्रोजन तथा दूसरे में अक्सीजन पहुँचा दिया जाता है, तब एक विशेष प्रकार की रासायनिक प्रतिक्रिया होती है। जब हाइड्रोजन तथा आक्सीजन मिलते हैं तब वे जल के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। किन्तु इस प्रक्रिया में ऋण-विद्युत आवेश हाइड्रोजन विद्युदग्र पर एकत्र हो जाता है।

यदि फ्यूल सैल को किसी इलैक्ट्रिक मोटर से जोड़ दिया जाये तो हाइड्रोजन विद्युदग्र से मोटर के माध्यम से बिजली की तरंग बहने लगेगी। यदि पर्याप्त संख्या में सैलों को जोड़ दिया जाये, तो मोटर के संचालन के लिये पर्याप्त बिजली उत्पन्न की जा सकती है। जब तक आक्सीजन तथा हाइड्रोजन गैस उपलब्ध होती रहेगी तब तक विद्युत शक्ति उत्पन्न होती जाएगी।

हाइड्रोजन के स्थान पर अन्य रासायनिक द्रव्यों का प्रयोग किया जा सकता है। अमेरिका में इस सम्बन्ध में काफी अनुसन्धान कार्य हो रहा है।

मोटरों में फ्यूल सैल का प्रयोग करने से अनेक लाभ हो सकेंगे। उनको चलाने में किसी प्रकार का शब्द न होगा। बिजली उत्पन्न करने में कम लागत आयेगी और यातायात अधिकारी के संकेत पर अथवा यातायात के ठप हो जाने पर जब कोई कार रुकेगी तब ईंधन खर्च नहीं होगा।

२. सोनामाखी से गन्धक का उत्पादन

राष्ट्रीय उद्योग विकास निगम ने बिहार के अमजोर क्षेत्र के सोना माखी (पायराइट्स) के भंडारों से गंधक, गंधक का तेजाब और अन्य चीजें बनाने के लिए एक कम्पनी बनाई है। दि पायराइस एण्ड केमिकल्स डेवेलपमेंट कम्पनी लिमिटेड की अधिकृत पूंजी ५ करोड़ रु० होगी। पूरी पूंजी राष्ट्रीय उद्योग विकास निगम लगाएगा।

निगम ने बिहार के सोनामाखी के के भंडारों की पड़ताल करने और इससे गंधक बनाने के बारे में सुझाव देने के लिए नार्वे के एक विशेषता नियुक्त किया था। विशेषज्ञ की सलाह पर ही यह काम शुरू किया जा रहा है। इस योजना पर ६ से ७ करोड़ रु० का खर्च आने का अनुमान है। इस योजना के अन्तर्गत प्रतिदिन २०० से ३०० टन तक गंधक तैयार की जा सकेगी। पर बाद में में उत्पादन को और भी बढ़ाने का प्रस्ताव है। इस समय हर साल देश में १ लाख २० हजार टन गंधक बाहर से मंगाई जाती है। गंधक बहुत सी रसायन बनाने में काम आती है। देश गंधक के उत्पादन से काफी विदेशी मुद्रा की बचत होगी।

३. कांच के समान नया पारदर्शी पदार्थ

अमेरिका में एक ऐसा नया पदार्थ तैयार किया गया है जो काँच के समान पारदर्शी है और अधिक से अधिक ताप को सहन कर सकता है। यह पदार्थ बड़ा ही मजबूत है और इसे इच्छानुसार किसी भी आकार में बदला जा सकता है। एक धातु तथा मिट्टी के मेल से विशेष प्रक्रिया द्वारा यह नया पदार्थ तैयार किया गया है। लुकालौक्स नामक यह नया पदार्थ एक ऐसी महत्वपूर्ण सफलता है जिससे कठिन वैज्ञानिक समस्याओं के हल होने की सम्भावना की जा सकती है। अधिक ताप सहन न कर सकने वाले बिल्लौर के स्थान पर लुकालोक्स का प्रयोग कर के हाई इण्टेन्सिटी इन्केण्डेसेण्ट तथा डिस्चार्ज लैम्पों के ताप को दुगना किया जा सकता है। इसी प्रकार लुकालोक्स ऐसे लैम्पों की शक्ति बढ़ा सकता है, जिनका अनेक प्रकार के उपकरणों, जिनमें प्रक्षेपणास्त्रों के अग्रिम भाग तथा अन्तरिक्ष सम्बन्धी यानों के अन्य भाग सम्मिलित हैं, की जांच करने के लिये प्रयोग किया जाता है।

पहले ऐसे द्रव्य का निर्माण असम्भव समझा जाता था। जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी के वैज्ञानिकों ने यह नया द्रव्य तैयार कर के बड़ी ही महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है।

४. शुक्र ग्रह पर जलीय वाष्प

उन अमेरिकी वैज्ञानिकों ने, जिन के गुब्बारे द्वारा ऊपर ले जाये गये दूरवीक्षण यन्त्र ने गत नवम्बर में शुक्र ग्रह के ऊपर वायुमण्डल में जलीय वाष्प का पता लगाया था, हाल में बताया कि यदि वाष्प को नापा जाये, तो उसका परत एक इंच के २,१००० अंश के बराबर मोटा होगा। उन्होंने बताया कि बादलों के ऊपर और शुक्र ग्रह के आस-पास जलीय वाष्प की यह मात्रा लगभग उतनी ही है, जितनी कि पृथ्वी से ऊपर ऊंचे बादलों के ऊपरी वायुमण्डल में होती है। यह सम्भावना की जा सकती है कि बादलों के नीचे जलीय वाष्प की अधिक मात्रा विद्यमान हो सकती है। गुब्बारा योजना के अधिकारी ने कहा है कि ऐसा प्रतीत होता है कि उस उड़ान के परिणामों तथा शुक्र ग्रह के सम्बन्ध में हाल में ज्ञात किये गये तथ्यों के फलस्वरूप उत्तरों की तुलना में अधिक प्रश्न उत्पन्न हो जाएँगे। उन्होंने बताया कि हम शुक्र के सम्बन्ध में अपनी जलीय वाष्प विषयक खोजों की अन्य तरीकों से पुष्टि करने का प्रयत्न कर रहे हैं और हम पुरानी तथा नई समस्याओं के उत्तर ज्ञात करने का कार्य जारी रखना चाहते हैं।

५. दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र में आहार का संचयन

अमेरिका के वैज्ञानिकों का विश्वास है कि दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र एक ऐसे प्राकृतिक हिम क्षेत्र के रूप में काम दे सकता है, जहां आवश्यकता से अधिक आहार को सुरक्षित रखा जा सकता है। अभी हाल में उन ४ वैज्ञानिकों ने उन सम्भावनाओं के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए इसका उल्लेख किया है, जो दक्षिण ध्रुव के सम्बन्ध में

अमेरिका द्वारा क्रियान्वित की जा रही अनुसन्धान योजना के परिणामस्वरूप हो सकती है।

जब एक बार इस बात का निश्चय हो गया कि हिम की ऊपरी परत किस गति से समुद्र की ओर सरकती रहती है, तब इस विषय में भविष्यवाणी की जा सकेगी कि जलवायु के परिवर्तन का दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

६. टाइरोस-१ के रहस्योद्घाटन

अभी हाल में अमेरिका द्वारा पृथ्वी की परिक्रमा के लिए कक्षा में स्थापित ऋतु-उपग्रह, 'टाइरोस-१', ने पृथवी के ऊपर बादलों की प्रणालियों के सम्बन्ध में अभूतपूर्व रहस्योद्घाटन किया है। दो दूर-दर्शक कैमरों से सुसज्जित यह उपग्रह प्रक्षिप्त किया गया था। तब से लेकर अब तक, उसके कैमरों ने अगणित मेघ-क्षेत्र के लगभग ७,००० चित्र खींचे हैं। इसके कैमरों द्वारा मेघ-क्षेत्रों के जो चित्र लिये गये हैं, उनसे बादलों के सम्बन्ध में कितने ही महत्वपूर्ण रहस्यों का उद्घाटन हुआ है। इसके द्वारा सम्पन्न तत्सम्बन्धी खोजों में उल्लेखनीय खोज चक्राकार मेघ-समूहों के विषय में है, जो भयंकर तूफानों से सम्बद्ध होते हैं। उनमें से कुछ का व्यास तो १,५०० मील से भी अधिक होता है।

अमेरिका 'ऋतु'-परिषद्' के अध्यक्ष श्री एच० डब्ल्यू० रीचेल्डर्फर, ने बताया कि इन चित्रों से पहली बार यह पता चला है कि अयन-वृत्तों के बाहर वाले क्षेत्रों में जो तूफान आते हैं वे सुसम्बद्ध चक्राकर बवण्डरों जैसे होते हैं। इसके पूर्व, सामान्य धारणा यही थी कि अयन-वृत्तों—कर्क और मकर रेखाओं—के भीतरी क्षेत्रों में उठने वाले तूफान और झंझावात ही चक्राकार बवण्डरों का रूप धारण करते हैं।

इन बवण्डर-युक्त मेघ समूहों से अन्तर्गत, तूफान के मध्य भाग में भीतर की ओर, चक्कर काटते हुए बादल उठते और स्थान को खाली करते रहते हैं। इस प्रकार के बवण्डरों की चौड़ाई कुछ मीलों से लेकर सौ मील तक होती है।

७. अणु शक्ति से बिजली बनाने के काम में प्रगति

केन्द्रीय सरकार ने १९५८ में अणु शक्ति आयोग स्थापित किया था और इसे देश में अणु शक्ति के विकास के लिए प्रबन्ध और वित्त सम्बन्धी पूरे अधिकार और स्वतन्त्रता दी गई है।

१९५९-६० की सबसे महत्वपूर्ण घटना खनिज यूरेनियम से ईंधन तत्व तैयार करना है।

ट्राम्बे के यूरेनियम धातु यन्त्र और फ्यूअल एलीमेंट फैब्रीकेशन फैसिलिटी में इतना ईंधन तत्व बन सकता है, जो भारत-कनाडा अणु भट्टी और प्राकृतिक यूरेनियम का इस्तेमाल करने वाली अन्य भट्टियों की जरूरत पूरी कर सके। ये भट्टियाँ इस वर्ष चालू हो जाएँगी और इन्हें इतना बढ़ाया जा सकता है कि आगे चलकर ये २५० मेगा वाट बिजली बनाने वाले बिजलीघर को अणु शक्ति से चला सकें।

देश में अणु शक्ति से चलने वाला पहला बिजलीघर बनाने के लिए आरम्भिक काम शुरू हो चुका है। बिहार में यूरेनियम खोदने की व्यवस्था की गई है और यहाँ से जो खनिज यूरेनियम मिलेगा वह इस बिजलीघर को चलाने के लिए काफी होगा।

इस खान के खनिज यूरेनियम की शुद्ध करने के लिए ट्राम्बे में एक यन्त्र बनाया जा रहा है, जो खान के पास ही लगाया जाएगा।

भारत की अपनी तेजी से बढ़ती हुई अर्थ-व्यवस्था के लिए बहुत अधिक बिजली की आवश्यकता होगी। अनुमान है कि इस समय की देश की ६० लाख किलोवाट बिजली बनाने की क्षमता के मुकाबले २५ वर्ष बाद हमारी जरूरत ५ करोड़ किलोवाट की हो जाएगी।

हिमालय और दूसरे इलाकों की नदियों आदि को मिलाकर भारत में करीब ४ करोड़ ३० लाख किलोवाट बिजली तैयार की जा सकती है। अगले २५ वर्षों में इसमें से लगभग आधी का उपयोग हो सकेगा। दूसरे भारत में कोयले का भण्डार भी सीमित है और वह भी देश के पूर्वी भागों में ही पाया जाता है। इसलिए कोयले से अधिक बिजली नहीं बनाई जा सकती। कल-कारखानों के लिए भी काफी कोयले की जरूरत है और बढ़ेगी। इसी प्रकार तेल से भी हमारे देश में बिजलीघर नहीं चलाये है कि बिजली तैयार करने के लिए हमें अणु शक्ति का अधिकाधिक उपयोग करना होगा।

८. आयोनाईट रेजिन द्वारा समुद्र-जल का परिष्कार

जल बिजलीघरों के लिए पानी को हलका बनाने से आरम्भ कर निम्नकोटि की खनिजधातुओं से यूरेनियम निकालने जैसे विविध क्षेत्रों में आयोनाईट रेज़िनों के औद्योगिक उपयोग में ऐसी उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त हुई हैं कि सोवियत कल-कारखाने और अन्य संस्थान इन "आश्चर्यजनक रेज़िनों" की अधिकाधिक माँग कर रहे हैं।

घोलों से धातु तथा अन्य तत्वों को रेज़िन पकड़ लेते हैं और जब वे घोलों में से होकर गुजरते हैं तो शुद्ध और घनीभूत हो जाते हैं। इसका यह अर्थ है कि सामान्य "नवीकरण" पद्धति द्वारा रेजिनों का बार-बार उपयोग किया जा सकता है। इन रेजिनों के बने फिल्टर में समुद्र के पानी को डालकर उसे भी पेय बनाया जा सकता है।

सोना निकालते समय तत्सम्बन्धी संयन्त्रों में जो चीजें नष्ट हो जाती हैं उनसे सोना, फोटोग्राफिक प्रक्रिया में नष्ट हुई वस्तु से चाँदी, तथा अर्द्ध परिवाहकों में प्रयुक्त विरल तत्व और भी शुद्ध रूप में रेजिनों के प्रयोग द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा चुकन्दर से चीनी निकालने का अनुपात $\frac{१}{१०}$ के बजाय $\frac{१}{८}$ हो जाता है। विटामिनों, ऐण्टीबायोटिकों तथा अन्य दवाओं के शुद्धीकरण में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।

भूख के विरुद्ध मोर्चा

डा० राजेन्द्र प्रसाद ने संयुक्त राष्ट्र खाद्य तथा कृषि संस्था की ओर से विश्वभर में प्रारम्भ होने वाले "भूख से विमोचन" आन्दोलन का समारम्भ करते हुये अपने रेडियो भाषण में अत्यन्त सारगर्भित वचन कहे हैं :

'अनाजों की पैदावार को उच्चतम प्राथमिकता देने के सम्बन्ध में सरकार आज जितनी जागरूक है उतनी पहले कभी नहीं थी। हमारी तीसरी योजना में खेत सम्बन्धी कार्यक्रमों के लिये ६०० करोड़ रुपये सिंचाई के लिये ६५० करोड़ रुपये, सहकारिता तथा सामुदायिक विकास के लिये और ४०० करोड़ रुपये रासायनिक खाद के कारखानों के लिये २४० करोड़ रुपये की व्यवस्था की जा रही है। ये सब योजनायें पैदावार बढ़ाने के उद्देश्य से किसानों की मदद करने के लिये बनायी गयी हैं।"

उक्त कथन में तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कृषि में होने वाले व्यय तथा अन्नोत्पादन बढ़ाने के लक्ष्य के ही संकेत हैं। अभी हाल ही में तृतीय योजना का प्रारूप प्रकाशित हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि इस योजना पर द्वितीय पंचवर्षीय योजना से अधिक व्यय होगा और कृषि पर विशेष बल दिया जायगा। जिस गति से देश की जनसंख्या में वृद्ध हो रही है उसके अनुसार अन्नोत्पादन में वृद्धि नितान्त आवश्यक है। इस उद्देय की पूर्ति कृषि के विविध अंगों पर समुचित व्यय करके ही की जा सकती है। तृतीय पंचवर्षीय योजना १ अप्रैल १९६१ से चालू हो जायगी और इसमें १०२०० करोड़ रुपये खर्च होंगे। फलतः वर्तमान उत्पादन ७.५ करोड़ टन से बढ़कर १०—१०.५ करोड़ टन होने की सम्भावना है। सिंचाई का कुल-क्षेत्रफल ७ करोड़ एकड़ से बढ़ाकर ९.५ करोड एकड कर दिया जायगा। ६.७ करोड एकड़ में भूमि संरक्षण का कार्य सम्पन्न होगा। नये ब्लाक खुलेंगे जिनमें २१०० ब्लाक प्रारम्भिक अवस्था में तथा २०० द्वितीय अवस्था में होंगे।

ऐसी योजनायें सभी राष्ट्रों के लिये हितकर सिद्ध हुई हैं। चीन तथा रूस में भी ऐसी योजनायें कार्य करती हैं परन्तु इन राष्ट्रों में इन योजनाओं के द्वारा विशिष्ट सफलतायें अल्पकाल में ही प्राप्त की गई हैं जब कि हमारे देश में द्वितीय पंचवर्षीय

योजना के समाप्तप्राय होने पर भी कोई आश्चर्यजनक प्रतिफल नहीं प्राप्त हुये। यह बड़े ही दुर्भाग्य का विषय है। इन योजनाओं में राष्ट्र की अपार धन राशि व्यय की जाती है, जनता पर नाना प्रकार के कर लगाये जाते हैं और अन्य कार्यों को प्राथमिकता नहीं प्रदान की जाती। इतना होने पर भी कार्यकर्ता एवं सम्बद्ध कर्मचारी इन योजनाओं के महत्व को नहीं समझ पाते। वे तनिक भी सचेष्ट नहीं होते। जैसे एक पंचवर्षीय योजना काल उनके लिये कोई सामान्य घटना हो।

जिस गति से अन्य राष्ट्र उन्नति कर रहे हैं, उनकी होड़ करने के लिए आवश्यक है कि हमारा देश पहले आत्मनिर्भर हो। अमेरिका से आखिर कब तक गेहूँ प्राप्त किया जा सकेगा? न तो हमें खाद्य के लिये अन्य राष्ट्रों पर निर्भर रहना चाहिये और न उनके लिये हाथ ही पसारना चाहिये। हमें अपने देश में नियत काल के अन्तर्गत ही पर्याप्त खाद्य सामग्री उत्पन्न करना होगा। हर्ष की बात है कि योजना निर्मायकों ने तृतीय योजना के अन्त तक राष्ट्र को आत्मनिर्भर बनाने की पूर्वकल्पना की है। यदि हम सचमुच सफल हुये तो हमारे देश के लिये नई बात होगी। कार्यकर्त्ताओं को इसी भावना से कार्य करना चाहिये और तृतीय पंचवर्षीय योजना को सफल बनाने में कुछ भी कसर न उठा रखनी चाहिये। कृषि की उन्नति पर अन्य उद्योग निर्भर हैं अतः उसकी उन्नति से सभी प्रकार के उद्योगों का मार्ग प्रशस्त होगा।

उत्तर प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय का समारम्भ

७ जुलाई को उत्तर प्रदेश में तराई स्थित रुद्रपुर नामक स्थान पर कृषि विश्वविद्यालय ने अपना सत्र प्रारम्भ कर दिया। यह प्रथम ग्रामीण विश्वविद्यालय है जिसमें कृषि के विविध अंगों पर शिक्षा दी जावेगी। शिक्षा की प्रणाली अमेरिकीय लैंड कालेज प्रणाली के अनुसार होगी जहाँ वर्ष भर के उत्तम कार्य पर विशेष अंक प्रदान करके विद्यार्थियों को उत्तीर्ण किया जावेगा। सत्र के प्रारम्भ के साथ ही विश्वविद्यालय के उपकुलपति ने विद्यार्थियों को शिक्षा के क्रम तथा विश्वविद्यालय की महत्ता से परिचित कराकर एक अच्छा कदम उठाया है। कृषि विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों का पुनीत कर्त्तव्य है कि वे राष्ट्र की खाद्य स्थिति को ध्यान में रखते हुए अपनी शिक्षा से देश को लाभान्वित करें। तराई क्षेत्र में स्थित यह विश्वविद्यालय अपनी कोटि का प्रथम विश्वविद्यालय है।

———

शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार द्वारा स्वीकृत संशोधित हिन्दी वर्णमाला

स्वर

अ आ इ ई उ ऊ ऋ लृ ए
ऐ ओ औ अं अः

मात्राएँ

ा ि ी ु ू ृ े ै ो ौ ं :

व्यञ्जन

क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ ण त थ द ध न
प फ ब भ म य र ल व
श ष स ह क्ष ज्ञ श्र ड़ ढ़ ळ

अङ्क

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०

अन्य निश्चय जो १९५३ में हुए थे वे ही कायम रहेंगे। यथा :

(१) शिरोरेखा का प्रयोग प्रचलित रहेगा।

(२) (क) फुलस्टाप को छोड़ कर शेष विराम आदि चिह्न वही ग्रहण कर लिये जाएँ जो अंग्रेजी में प्रचलित हैं। यथा :

(- — , ; । ? ! :)

(विसर्ग के चिह्न को ही कोलन का चिह्न मान लिया जाए)

(ख) पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई (।) का प्रयोग किया जाए।

(ग) जहाँ तक सम्भव हो टाइपराइटर के मुद्रीपटल में निम्नलिखित चिह्नों को सम्मिलित कर लिया जाए :

(् ॰ . % “ ” ( ) + × ÷ * = ‿)

(३) अनुस्वार और अनुनासिक दोनों (ं ँ) प्रचलित रहेंगे।

———

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ९१ | २०१६ विक्र०; श्रावण १८८१ शाकाब्द; अगस्त १९६० | संख्या ५

गणित और देवनागरी

डाक्टर गोरख प्रसाद

देवनागरी लिपि में गणित की छपाई में कुछ विशेष कठिनाइयाँ पड़ती हैं जिन पर विचार करना लाभदायक होगा। पहली कठिनाई तो यह है कि देवनागरी में एक ही नाप के कई प्रकार के टाइप नहीं मिलते। अँग्रेजी में कैपिटल और छोटे (लोअर केस) टाइप तो बराबर ही प्रयुक्त होते हैं, साथ ही कैपिटल और छोटे तिरछे (इटैलिक) टाइप, कैपिटल, और छोटे काले (ऐंटीक) टाइप और "स्मॉल कैपिटल्स" प्रायः सभी प्रेसों में रहते हैं। इस प्रकार अँग्रेजी में प्रत्येक अक्षर सात रूपों में मिलता है। उच्च गणित में इन्हीं अक्षरों का पुराना जरमन रूप भी कभी-कभी प्रयुक्त होता है। देवनागरी में साधारण और काले, बस ये ही दो प्रकार के अक्षर रहते हैं; काले अक्षर का अर्थ है वैसा अक्षर जो साधारण अक्षर के ही बराबर हो, परन्तु मानो मोटी लेखनी से लिखा गया हो। कई प्रेसों में तो काले अक्षर भी नहीं रहते। जब आवश्यकता पड़ती है तो बड़े नाप का अक्षर लगा कर काम चलाते हैं, परन्तु उससे कम्पोजिंग में कठिनाई पड़ती है। देवनागरी में तिरछे अक्षर अवश्य बने हैं, परन्तु उनका प्रचलन कम है और साधारण अक्षरों से वे इतने भिन्न नहीं होते कि उनकी पहचान तुरन्त हो सके। अँग्रेजी में इटैलिक अक्षर केवल तिरछे ही नहीं होते, साधारणतः उनका रूप भी विभिन्न होता है। मौनोटाइप मशीन के लिए दो ही प्रकार के अक्षर बने हैं, सादा और काला; तिरछे अक्षर नहीं बने। मैंने अभी तक कहीं भी ऐसी देवनागरी छपाई नहीं देखी है जिसमें मोनोटाइप के साधारण अक्षरों के बराबर तिरछे अक्षर हों; जितने भी तिरछे अक्षर अभी तक बने हैं सब बड़े हैं। इस प्रकार वर्तमान

समय में हमें देवनागरी में गणित की छपाई के लिए दो ही प्रकार के अक्षरों से संतोष करना पड़ता है।

स्वभावतः प्रश्न उठता है कि इस परिस्थिति में क्या किया जाय? गणित की छपाई रुकी तो रहेगी नहीं। इन्टरमीडियेट कक्षा तक की गणित-पुस्तकें बराबर बिक रही हैं। लोगों ने कुछ उपाय किया है। यहाँ इस पर विचार करना है कि सर्वोत्तम रीति क्या है, और उच्च गणित के लिए अन्य कौन उपाय हो सकते हैं?

कुछ लोगों का मत है कि अँग्रेजी अक्षरों का ही प्रयोग क्यों न किया जाय? अँग्रेजी की गणित-पुस्तकों में ग्रीक अक्षरों का प्रयोग होता ही है: हम भी हिन्दी पुस्तकों में अँग्रेजी अक्षरों का प्रयोग उसी प्रकार कर सकते हैं, परन्तु इसमें दोष यह है कि प्रारंभिक गणित की हिन्दी पुस्तकों में अँग्रेजी अक्षरों का प्रयोग अवांछनीय है। यदि प्रथम पाठ में ही रेखा क ख के बदले रेखा AB आयेगी तो छोटे बच्चों को कठिनाई अवश्य पड़ेगी। यदि आरंभ से ही गणित में सब गणितीय राशियाँ अँग्रेजी अक्षरों में रहें तो लोगों में यह भावना उत्पन्न होगी कि अँग्रेजी अक्षरों का जानना अनिवार्य है। साक्षर कहलाने के लिए लोगों को देवनागरी वर्णमाला के साथ ही अँग्रेजी के अक्षरों को भी सीखना पड़ेगा, जो बहुत ही अवांछनीय है। इसलिए एक सीमा तक तो देवनागरी अक्षरों द्वारा ही गणित की शिक्षा देनी पड़ेगी। हिन्दी मिडिल परीक्षा के लिए आज से पचास वर्ष पहले भी देवनागरी अक्षरों द्वारा ज्यामिति और बीजगणित का अध्ययन बड़ी सफलता से होता था। इसलिए भारत सरकार के बोर्ड ऑव सायंटिफिक टर्मिनॉलोजी का यह निश्चय कि गणित तथा विज्ञान की अन्य शाखाओं पर लिखी गयी हिंदी पुस्तकों में रोमन वर्णमाला के अक्षरों का प्रयोग होना चाहिए, खटकता है।

यदि बच्चे देवनागरी अक्षरों से बीजगणित और ज्यामिति पढ़ना आरम्भ करते हैं तो आगे चल कर अँग्रेजी अक्षरों का प्रयोग उन्हें खटकेगा। एक सीमा तक उन्हें देवनागरी अक्षरों में गणित पढ़ने देना उचित होगा। यह सीमा बी० ए० और बी० एस-सी० के स्तर तक पहुँचे तो अनुचित न होगा। भविष्य में एम०ए० और एम० एस-सी० तक देवनागरी अक्षर चल सकते हैं।

देवनागरी अक्षरों पर मात्राएँ लगाकर उनकी बहुरूपता की कमी को पूरा किया जा सकता है। अँग्रेजी में चलन यह है कि बिन्दुओं को कैपिटल अक्षरों से, बीजीय राशियों को छोटे अक्षरों से, तथा सदिशों (वेक्टर्स) को काले अक्षरों से सूचित किया जाय। यदि हिंदी लेखक सहमत हों तो बीजीय राशियों को क, ख, ग,आदि से, बिंदुओं को का, खा, गा, आदि से, बलों को कु, खु, गु, आदि से (अथवा किसी अन्य मात्रायुक्त अक्षरों से), सदिशों को के, खे, गे, आदि से (अथवा किसी अन्य मात्रायुक्त अक्षरों से) सूचित किया जा सकता है। यह अवश्य सत्य है कि छापते समय मात्राएँ कभी-कभी टूट जाती हैं। इसलिए ऐसी मात्राओं को चुनना चाहिए जो न टूटती हों या कम टूटती हों। न टूटने वाली मात्राएँ । और : हैं। अखंड टाइप-पद्धति में ु ृ े ै ये चार मात्राएँ भी नहीं

टूटतीं, परन्तु मोनोटाइप में ये मात्राएँ साधारणतः अलग से जोड़ी जाती हैं और कभी-कभी वे टूट जाती हैं, विशेष कर यदि टाइप की धातु अच्छी न हो। कुछ सुविधा संयुक्त-अक्षरों से भी हो सकती है। उदाहरणतः,—(—१) को अ् से सूचित किया जा सकता है।

गणित की छपाई में उच्च (सुपीरियर) और निम्न (इनफीरियर) अक्षरों की भी बराबर आवश्यकता पड़ती है। उदाहरणतः, गणित छापने वाले प्रेसों में टाइप के मुख पर छोटे आकार का a कुछ ऊपर हट कर ढला रहता है। ऐसे ही टाइपों को उच्च (सुपीरियर) टाइप कहते हैं। यदि प्रेस को $^{x}{}_{A}$ छापना होगा तो वे a की बगल में सुपीरियर x लगा देंगे। देवनागरी में भी यही प्रबंध हो सकता है। परन्तु बहुत कम प्रेसों में सुपीरियर अथवा इनफीरियर देवनागरी टाइप मिलेंगे। एक कारण यह है कि अनेक प्रकार के टाइप रखने में प्रेस वालों को बहुत बड़ी पूँजी लगानी पड़ती है, जिससे गणित की छपाई बहुत मँहगी हो जाती है; दूसरा कारण यह है कि देवनागरी के पर्याप्त छोटे टाइप का साँचा बहुत कम टाइप ढालने वालों के पास रहता है।

सुपीरियर या इनफीरियर अक्षरों के अभाव में साधारण टाइप को ऊपर या नीचे खसका कर काम चलाया जाता है, परंतु ऐसी छपाई भद्दी लगती है और अधिक स्थान छेंकती है। अवश्य ही, जैसे-जैसे अधिक गणित-पुस्तकें हिन्दी में छपेंगी वैसे-वैसे इस प्रकार के टाइप भी सुलभ होते जावेंगे।

इसमें भी मतैक्य होना चाहिये कि रेखा क ख लिखने में क तथा ख के बीच स्थान (स्पेस) छोड़ा जाय या नहीं और यदि क तथा ख बीजीय राशियाँ हैं तो क तथा ख के गुणनफल लिखने में इन अक्षरों के बीच स्थान छोड़ा जाय या नहीं ? मेरी निजी सम्मति है कि रेखा क ख में स्थान छोड़ा जाय, परन्तु गुणनफल लिखने में नहीं।

कुछ लोग आज भी पैराग्राफों की गिनती अ, ब, स, द, से करते हैं और त्रिभुज अ ब स, द इ फ लिखते हैं। यह अनुचित है। क, ख, ग, आदि अक्षरों का प्रयोग होना चाहिये।

प्रारम्भिक गणित की हिन्दी पुस्तकों में भी ग्रीक अक्षर π का प्रयोग हो तो बुरा नहीं है, परन्तु अन्य विदेशी अक्षरों का प्रयोग नहीं होना चाहिये। उच्च गणित में कुछ अन्य ग्रीक अथवा अँग्रेजी अक्षरों का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे गामा या डेल्टा का। तब इस प्रकार के व्यंजक भी आ सकते हैं, जैसे

२ y स्प ३ x ;

यह पहले भद्दा अवश्य लगता है, परन्तु समय बीतने पर यह उसी प्रकार नहीं खटकेगा जैसे ग्रीक और अँग्रेजी मिश्रित व्यंजक।

मेरी राय में भारत सरकार की वैज्ञानिक शब्दावली समिति को बिंदुओं और गणितीय राशियों को भारतीय लिपियों में लिखना भी स्वीकृत करना चाहिये, और सारे भारत के लिए यह निर्धारित कर देना चाहिए कि किन राशियों के लिए साधारणतः किन अक्षरों का प्रयोग किया जाय।

भास्कराचार्य और बीजगणित

विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री

गत तीन दशाब्दियों में विज्ञान ने जितनी तीव्र गति से उन्नति की है उतनी शायद कभी नहीं की। अब तो चंद्रमा तक स्पुतनिक पहुचने लगे हैं। ध्वनि के वेग से भी अधिक वेग वाले वायुयान बनने लगे हैं। परमाणु शक्ति से चालित पनडुब्बियां लाखों मील तक अनवरत रूप से पानी के अन्दर ही अन्दर चला करती हैं। ये एवंइन्ही के समान कल्पनातीत उन्नवि के अन्य कई प्रमाण प्रस्तुत कर विज्ञान ने आज के साधारण मानव को ही नहीं वरन् स्वयं उनके रचयिता वैज्ञानिकों तक को आश्चर्य-चकित कर दिया है। इस संबंध में हम किसी साधारण व्यक्ति से यदि यह कहें कि यह सब कुछ गणित की ही देन है तो वह इस तथ्य को एकदम मानने को तय्यार नहीं होगा। उसे यह कथन भले ही विचित्र लगे लेकिन सत्य तो इसी में निहित है। अपनी सहस्रों प्रशाखाओं से युक्त गणित ही वह अस्त्र रहा जिसके उपयोग से विज्ञान उन्नति के आज के सोपान पर अवस्थित है। गणित की उक्त सहस्रों प्रशाखाओं में भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण शाखा संभवतः बीजगणित या अव्यक्त गणित है। इस प्रशाखा का परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से न केवल गणित की ही वरन् विज्ञान की प्राय. समस्त शाखाओं से संबंध रहा है।

जिस बीजगणित का इतना अधिक महत्व है उसका उद्भव एवं उसकी प्रारम्भिक उन्नति भारतवर्ष में ही हुई थी, यह हम भारतीयों के लिये अत्यन्त गौरव की बात है। हयारे ही पूर्वज इस 'अव्यक्त गणित' के अविष्कर्त्ता थे इस तथ्य के प्रमाण अत्यन्त प्राचीन आर्ष ग्रन्थ सूर्य सिद्धान्त आदि में पाये जा सकते हैं जहाँ अव्यक्त मूलक सैद्धान्तिक प्रश्नों का हल बीजगणित की रीतियों से किया गया है। मुग्ध होकर गणित इतिहास के लेखक श्री केजोरी नें अपने ग्रन्थ में निम्न लिखित भावनाएँ व्यक्त की हैं।

"यह ध्यान देने योग्य है कि किस सीमा तक भारतीय, आधुनिक विज्ञान को देन दे सका है। आधुनिक अंकगणित एवं बीजगणित दोनों के ही स्वरूप एवं आत्मा तलत: भारतीय हैं। जरा सोचिये हमारी अंक लेखन प्रणाली के सम्बन्ध में जिसे हिन्दुओं ने ही पूर्णता को पहुँचाया था। जरा सोचिये प्राचीन भारतीय अंकगणितात्मक प्रक्रियाओं के बारे में जो उतनी ही पूर्ण हैं जितनी कि हमारी आज की प्रक्रियाएं हैं। जरा ध्यान दीजिये उनकी प्रतिभापूर्ण बीजगणित की आविष्कृतियों पर और फिर न्याय कीजिये की क्या गंगा के तीर के निवासी ब्राह्मण सम्मान के पात्र नहीं है? दुर्भाग्य वश ही कहिये कि हिन्दुओं के अज्ञेय विश्लेषण के कुछ सिद्धान्त यूरोप में देर से पहुँचे अतः वे वह प्रभाव नहीं डाल सके जो वे तीन शताब्दियों पूर्व पहुँचाने पर डाल सकते थे।"

(A History of Mathematics पृष्ठ ६७) । प्रसिद्ध विद्वान हेंकल ने भी स्पष्ट लिखा है " वास्तव में यदि कोई व्यक्ति अंकगणित की संश्लिष्ट, करणीय या अकरणीय-संख्याओं सम्बन्धी समस्याओं का हल बीजगणित की सहायता से कर सकता है तो उसे निश्चय पूर्वक यह मानना चाहिये कि हिन्दुस्तान के विद्वान ब्राह्मण ही बीजगणित के वास्तविक अविष्कर्त्ता हैं ।" यद्यपि यह स्पष्ट है कि बीजगणित की उत्पत्ति भारतवर्ष में ही हुई तथापि इसके उद्भव एवं विकास का क्रमिक इतिहास उपलब्ध करना आज भी अत्यंत कठिन कार्य है। हमारे कई प्रचीन ग्रन्थ लुप्त हो चुके हैं। हमारे पूर्वज, नाम प्रकाशन एवं स्वप्रशंसा को हेय समझते थे अतः कई प्राचीन ग्रन्थों के लेखकों के नाम तक नहीं ज्ञात, यद्यपि वे ग्रंथ प्राप्त हैं। कई मध्यकालीन विद्वानों ने अपनी व्यक्तिगत आविष्कृतियों को पुराने ग्रंथों में बिना स्वयं के काल एवं नामों का उल्लेख किये युक्त कर दी हैं इस कारण भी कभी कभी ग्रन्थ के काल-निर्णय की समस्या उपस्थित हो जाती है। ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त के अन्तर्गत जो ब्रह्मगुप्त का बीजगणित आया है वह अत्यंत संक्षिप्त एवं कठिन है। ज्ञानराज दैवज्ञ का भी एक बीजगणित है लेकिन वह भी बहुत छोटा है। यही हाल नारायण के बीजगणित का भी है। आजकल तो भास्करीय बीजगणित का ही सर्वत्र पठन-पाठन होता है क्योंकि प्रथम आर्यभट्ट (श० ४२१) के बाद के प्रायः सभी ग्रन्थ लुप्तप्राय हो चुके हैं। हम यहाँ १२ वीं शताब्दी के महान् गणितज्ञ भास्कराचार्य एवं उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं प्रचलित कृति अव्यक्त गणित या बीजगणित का संक्षिप्त परिचय देते हैं ।

भास्कराचार्य और बीजगणित

भास्कराचार्य कौन थे एवं कहां के निवासी थे इस परिचयात्मक विषय पर मेरे पूर्व प्रकाशित निबंधों "भास्कराचार्य और लीलावती" (दिसम्बर एवं मार्च अंक) में पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है। ऐतिहासिक निर्णयों में रुचि रखने वाले विद्वान् पाठक-गण उक्त निबन्ध के अतिरिक्त श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित के "भारतीय ज्योतिष" ग्रन्थ में पृष्ट ३४२-४५ पर विस्तृत विवरण पा सकते हैं। इन पृष्ठों में भास्कराचार्य सम्बन्धी महत्वपूर्ण शिलालेख भी उद्धृत किया गया है। इसी प्रकार अन्य एक और ताम्रलेख का उद्धरण श्री पं० रामस्वरूप शास्त्री मुरादाबाद वाले द्वारा सम्पादित एवं टीकाकृत लीलावती ग्रन्थ की भूमिका में देखा जा सकता है। संक्षेपतः यही कहा जा सकता है कि भास्कराचार्य का जन्म शक १०३६ (सन् १११४) में विज्जलविड़ ग्राम में प्रसिद्ध विद्वान् श्री महेश्वर के यहां हुआ था ।

जहां तक बीजगणित के रचनाकाल का सम्बन्ध है, कोई स्पष्ट निर्णय नहीं दिया जा सकता। जैसा कि डा० गोरखप्रसाद की मान्यता है, यदि बीजगणित को एक स्वतन्त्र ग्रन्थ मान कर चला जाय तो इसका रचनाकाल शक १०६७ के लगभग होना चाहिये क्योंकि यह ग्रन्थ "सिद्धान्त शिरोमणि" के पूर्व पठनीय एवं उसकी भूमिका के समान है—एवं यह निश्चित है कि सिद्धान्त शिरोमणि शक १०७२ में रची गई थी। स्वाभाविक ही है कि बीजगणित सिद्धान्त शिरोमणि के पूर्व ही लिखा गया हो। लेकिन

श्री शंकर दीक्षित एवं अन्य विद्वानों के अनुसार बीजगणित सिद्धान्त शिरोमणि का एक अध्याय मात्र है। यदि यह सही है तो इसका रचना काल १०७२ के आस-पास होना चाहिये। प्रसिद्ध विद्वान् श्री सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित एवं टिप्पणीकृत भास्करीय बीजगणितम् द्वारा भी यही मान्यता पुष्ट होती है। अपने ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए भास्कराचार्य ने आलोचनात्मक एवं परिचयात्मक कुछ श्लोक लिखे हैं। इस प्रकरण में प्रारंभिक दो श्लोक लिखने के पश्चात् वे लिखते हैं :

यथोक्तं यंत्राध्याये—
जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तु शक्तितः॥
तथा, गोले मयोक्तम्...उल्ल सदल मतीनाम्...

अर्थात्..."जैसा कि मैंने इसी वृहद् ग्रन्थ सिद्धान्त शिरोमणि के यंत्राध्याय में कहा है। ..जैसा कि गोलाध्याय में कहा है...। इत्यादि।"

अतः सिद्धान्त शिरोमणि के अध्यायों के उद्धरणों की इस शैली से स्पष्ट है कि भास्कराचार्य स्वयं भी बीजगणित को सिद्धान्त शिरोमणि का "दूसरा अध्याय" मात्र मानते थे। प्रायः सभी टीकाओं के अन्त में यह वाक्य मिलता है :

"इति श्री भास्करीये सिद्धान्त शिरोमणौ बीजगणिताध्यायः समाप्त"

यह उपसंहार भी उक्त कथन की पूर्ण पुष्टि करता है। अतः सिद्ध होता है कि बीजगणित ग्रन्थ सिद्धान्त शिरोमणि का द्वितीयाध्याय है एवं इसका रचनाकाल लगभग शक १०७२ है।

भास्कराचार्य द्वारा ग्रन्थ परिचय :

भास्कराचार्य ने ग्रन्थ समाप्ति के पश्चात् अपना स्वयं का एवं ग्रन्थ का परिचय देते हुए इसकी रचना का उद्देश्य बतलाया है एवं संक्षिप्त समालोचना भी प्रस्तुत की है। इस सम्बन्ध में कुल दस श्लोक हैं। विस्तृत परिचय के लिये उनका संक्षिप्त भावार्थ प्रस्तुत करना उचित होगा। उक्त प्रकरण को प्रारम्भ करते हुए उन्होंने लिखा है :

"आसीत् महेश्वर इति प्रथितः पृथिव्यामाचार्यवर्यपदवीं विदुषां प्रयातः।
लब्धावबोध कलिकां तत एव चक्रे तज्जेन बीजगणितं लघु भास्करेण॥...इत्यादि॥

अर्थात् इस पृथ्वी पर 'आचार्य श्रेष्ठ' पदवी प्राप्त महेश्वर नामक विद्वान् थे। उनसे ज्ञान प्राप्त कर उन्हीं के पुत्र भास्कर ने इस बीजगणित की रचना की है।

आगे चलकर अत्यन्त नम्रतापूर्वक अपने पूर्वगामी विद्वानों का आभार मानते हुए एवं उनकी आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा है—"मुझसे भी पूर्व ब्रह्म गुप्त, पद्मनाभ, श्रीधर प्रभृति विद्वान् बीजगणित लिख चुके हैं किन्तु वे अत्यन्त विस्तृत थे अतएव उनका सारमात्र

लेकर, अपने स्वयं के तर्कों एवं उपपत्तियों से युक्त करके, शिष्यों के सन्तोषार्थ यह ग्रन्थ लिखता हूँ। यहां मैंने केवल १००० अनुष्टुप छन्द एवं सूत्र आदि लिखे हैं। कहीं पर सूत्रों का अर्थ बतलाने एवं कहीं पर विषय का विस्तार करने का भी प्रयत्न किया है। कहीं पर मेरी स्वयं की कल्पना से प्रसूत उदाहरण हैं, तो कहीं मौलिक तर्क भी हैं। उदाहरणों का तो वैसे कोई अन्त नहीं अतएव यह ग्रन्थ संक्षिप्त ही लिखा है, क्योंकि छोटे और मोटे दिमाग वालों के लिये तो अत्यंत विस्तृत रूप से समझाकर लिखा गया शास्त्र भी पुस्तक होता है तथा बुद्धिमानों के लिये तो विस्तार का प्रश्न ही नहीं है। बुद्धिमान लोग तो स्वयं ही शास्त्र के संकेतात्मक उपदेश का विस्तार कर लिया करते हैं। जैसा कि मैंने यंत्राध्याय में कहा है 'जिस प्रकार जल में तैलविन्दु, दुष्ट के द्वारा गुह्य वार्ता एवं सुपात्र को प्रदत्त दान स्वयं बढ़ते हैं उसी प्रकार बुद्धिमान मस्तिष्क द्वारा भी संक्षिप्त शास्त्र विशाल हो जाते हैं। इसी प्रकार गोलाध्याय में भी मैंने त्रैराशिक, पाटी गणित एवं बीजगणित के बारे में लिखते हुए संक्षेपीकरण की प्रशंसा की है।" अन्त में उपसंहार करते हुए उन्होने स्वग्रन्थ प्रशंसा की है। "हे गणक! रम्य शब्दावलियों एवं कल्पनाओं सहित अत्यंत शीघ्रता पूर्वक बोधगम्य, कई गुणों से युक्त एवं दोषों से विहीन सम्पूर्ण गणित के सार रूप इस ग्रन्थ को मैंनें रचना की है। यह अत्यंत संक्षिप्त है। इसे बुद्धि वर्द्धन के लिये अवश्य पढ़ो ताकि तुम विद्वान कहलाओ।" ग्रन्थारम्भ करते हुए दूसरे श्लोक में भी उन्होंनें इसकी रचना का उद्देश्य बतलाया है। इसका भावार्थ है "लीलावती' अर्थात पाटीगणित ग्रन्थ की रचना तो मैंनें की किन्तु उन कठिन प्रश्नों के हल के लिये जिन्हे बिना अव्यक्त बीज की कल्पना के हल नहीं किया जा सकता, इस ग्रन्थ की रचना की है। मेरे सामने मन्दबुद्धि वाले विद्यार्थियों के लिये उपादेयता का भी प्रश्न था क्योंकि वे अंकगणित की साधारण समस्याओं का हल भी पाटीगणित की रीति से नहीं कर सकते, ऐसे अवसरों पर बीजगणित उनका सहायक हो सकता है।"

बीजगणित की टीकाएँ

गत एक हजार वर्षों में भास्कराचार्य के प्रायः सभी ग्रन्थों की बहुत सी टीकाएं हो चुकी हैं। टीकाओं के दृष्टिकोण से लीलावती का प्रथम एवं बीजगणित का द्वितीय स्थान आता है। प्राप्त जनकारियों के आधार पर भिन्न समयों पर विभिन्न विद्वानों द्वारा की गई टीकाओं की निम्न लिखित सूची प्रस्तुत की जा सकती है :—

सर्वप्रथम टीका सूर्य दैवज्ञ (१४६०) की बीजभाष्य है। प्रायः इन्ही के समकालीन भैरवात्मज रघुनाथानुज गोपीनाथ की सिद्धान्त सूर्योदय, ग्रहलाघवकार, गणेश दैवज्ञ के प्रपौत्र गणेश (१५००) की शिरोमनि प्रकाश, जहांगीर बादशाह के आश्रित कृष्ण दैवज्ञ (१५२४) की सर्वाधिक विस्तृत एवं प्रसिद्ध टीका "बीज नवाङ्कुर" जिसे 'बीजपल्लव' या बीज कल्पलतावतार' भी कहते हैं प्राप्य हैं। इसके अतिरिक्त लक्ष्मणसुत मुनीश्वर शिष्य रामकृष्ण दैवण की बीज प्रबोध (१५७०) तथा परमसुख की बीज-विवृत्ति-कल्पलता तथा कृपाराम कृत "उदाहरण" ये टीकाएँ भी उपलब्ध हैं। शक १५०७ में इसका फारसी अनुवाद भी हुआ था। सन् १८१७ में का कोलबुक साहब ने इसका टिप्पणीयुक्त अंग्रेजी

अनुवाद किया। अधुनिक काल में श्रीसुधाकर द्विवेदी, श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी आदि की टीकाएं प्राप्त हैं।

इस ग्रन्थ में लगभग कुल २१५ पद्य हैं। इनमें सूत्रात्मक श्लोक, स्वरचित प्रश्नों के श्लोक एवं पूर्ववर्ती विद्वानों के उद्धरण भी सम्मिलित हैं। विशेष स्पष्टीकरण के लिये यत्र-तत्र गद्यात्मक उपपत्तियां, विश्लेषण एवं तर्क इत्यादि भी दिये गये हैं। बीजगणित का प्रारम्भ तीन अर्थों वाले श्लेषात्मक श्लोक से किया गया है जो कि भास्कराचार्य की कवित्व प्रतिभा एवं उनके प्रकाण्ड भाषा-पाण्डित्य का भी प्रतीक है।

> उत्पादकं यत् प्रवदन्ति बुद्धेरधीष्ठितं सत्पुरुषेण सांख्याः।
> व्यक्तस्य कृत्स्नय तदेक बीजम् अव्यक्तमीशं गणितं च वन्दे ॥१॥

गणितशास्त्र सम्बन्धी अर्थ—सांख्य (संख्या शास्त्र के जानने वाले—गणितज्ञ) जिसे प्रतिभावान पुरुषों द्वारा पढ़े जाने योग्य एवं बुद्धि का उत्पादक कहते हैं व्यक्त गणित के उस मूलभूत बीजात्मक तत्व अव्यक्त गणित की मैं बन्दना करता हूँ।

सांख्य दर्शन सम्बन्धी अर्थ—सांख्य (सांख्य दार्शनिक) जिसे सत्पुरुषों का आराध्य मानते हैं एवं जिसे बुद्धि (महत् तत्व जिसे सांख्य दर्शन में प्रकृति एवं पुरुष के संयोग से सर्व प्रथम उत्पन्न मान गया है) का उत्पादक कहा जाता है, इस द्रव्य संसार के उस मूल अव्यक्त बीज "प्रकृति" की मैं बन्दना करता हूँ। (सांख्य दर्शन अनीश्वरवादी हैं)

उत्तरमीमांसा (वेदान्त)सम्बन्धी अर्थ—सांख्य (ब्रह्मज्ञानी विचक्षण पुरुष) जिसे ऋषियों द्वारा पूजित मानते हैं एवं जो तत्वज्ञान का उत्पादक है, सम्पूर्ण दृष्ट विश्व के मूल एवं बीजभूत उस अव्यक्त परब्रह्म की मैं बन्दना करता हूँ।

प्रारम्भिक दो श्लोकों के पश्चात् "धनर्णषड्विधम्" नामक प्रकरण दिया गया है। इसमें धनात्मक एवं ऋणात्मक संख्याओं के जोड़, बाकी, गुणा, भाग, वर्ग एवं वर्गमूल इन छह मौलिक प्रक्रियाओं का विवरण दिया गया है। आधुनिक काल में हम केवल चार मौलिक प्रक्रियाएँ ही मानते हैं। संकलन व्यकलन, गुणन एवं,भाजन। भास्कराचार्य ने सर्वत्र वर्ग एवं वर्गमूल को भी इसमें सम्मिलित किया है। इसके पश्चात् "खषड्विधम्" तथा "अव्यक्त षड्विधम्" नामक प्रकरणों में शून्य (ख = शून्य) एवं अव्यक्त संख्याओं की उक्त छह मौलिक प्रक्रियाओं का विवरण दिया गया है। "अनेक वर्ग षड्विधम्" में या, का, नी इत्यादि एक से अधिक अज्ञात संख्याओं की प्रक्रियाएँ लिखी गई हैं। इन प्रारम्भिक विषयों के पश्चात् "करणी षड्विधम्" नामक अध्याय आता है। करणी अर्थात पाश्चात्य "सर्ड्स" (Surds) नामक अध्याय में भास्कराचार्य के ज्ञान गांभीर्य के प्रदर्शक कई उदाहरण हैं। "कुट्टक" नामक अध्याय में महत्तम समापवर्तक निकालने की एवं अन्य प्रकारों के गुणन-खण्ड निकालने की विधियां दी गई हैं। इसके पश्चात् कुछ कठिन "वर्ग प्रकृतिः" एवं "चक्रवाल" नामक अध्याय आते हैं। इनमें वर्गात्मक एवं

अन्य भिन्नात्मक संख्याओं के गुणनखण्ड प्राप्त करने आदि से सम्बन्धित कठिन प्रश्नों के हल एवं तत्सम्बन्धी नियम दिये गये हैं। उपर्युक्त तीन अध्यायों का उपयोग सिद्धान्त शिरोमणि के नक्षत्र ज्योतिष के गणित में भी किया गया है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है "एक वर्ग समीकरणम्", "अनेक वर्ग समीकरणम्" एवं "अनेक वर्ग मध्यमाहरणम्" नामक शीर्षकों के अन्तर्गत एक एवं एक से अधिक वर्णों के अज्ञात होने पर प्राप्त समीकरणों के हल करने की विधियां विवेचित की गई हैं। इनमें वर्ग एवं अधिक घातीय समीकरण भी सम्मिलित हैं। अन्तिम अध्याय "भावितम्" है। इसमें गुणनफल दिया रहे तो दी हुई शर्तों के आधार पर गुणनखण्ड कैसे जाना जाय इसका विवरण है। इसमें वर्गात्मक एवं वर्गमूलात्मक गुणकों एवं गुणितों पर भी प्रश्न हैं। अन्त में भास्कराचार्य में दस श्लोकों में ग्रन्थ का एवं अपना परिचय देते हुए संक्षिप्त समालोचनात्मक उपसंहार कर दिया है।

संकेत चिन्ह इत्यादि की लेखन प्रणाली:

भास्कराचार्य ने अपने ग्रन्थ में ब्रह्मगुप्त प्रभृति पूर्ववर्ती विद्वानों की संकेत प्रणाली अपनाई है। ब्रह्मगुप्त, दी हुई कई अज्ञात राशियों में से प्रथम को 'यावत्-तावत्' (क्वाण्टम-टेन्टम् Quantum Tantum) कहते थे। भास्कराचार्य ने इसका संक्षिप्त स्वरूप, प्रथमाक्षर "या" से प्रदर्शित किया है जोकि आजकल के 'x' के समकक्ष है। अन्य समस्त अज्ञात राशियों को विभिन्न वर्णों के प्रथमाक्षरों से अभिव्यक्त किया गया है। उदाहरणार्थ कालक, नीलक, पीतक, हरित इत्यादि वर्णों के प्रथमाक्षर "का", "नी", "पी", "ह" इत्यादि ग्रहण किये जाते थे। ये आजकल के x, y, z, इत्यादि के समकक्ष हैं। अंकात्मक ज्ञात राशियों के लिये रूप शब्द का प्रयोग किया जाता था एवं इसे 'रू' द्वारा प्रदर्शित किया जाता था। उदाहरणार्थ 'रू ७ और रू५' अर्थात् आधुनिक '७ और ५'।

दो अज्ञात राशियों का संकलन (जोड़) प्रदर्शित करने के लिये उन्हें केवल पास-पास लिख देना मात्र आवश्यक था। उदाहरणार्थ या का रू५ अर्थात् आधुनिक प्रथा के अनुसार या+का+५। व्यकलन अर्थात् घटाने की प्रक्रिया या राशि की ऋणात्मकता प्रदर्शित करने के लिये उसके शिर पर एक स्पष्ट बिन्दु लगा दिया जाता था। उदाहरणार्थ या कां नी पीं रू ५ अर्थात् आधुनिक मतानुसार य−का+नी−पी+५। गुणन फल के लिये 'भावितम्' शब्द का एवं गुणन की क्रिया के लिये 'वधः' शब्द का प्रयोग होता था। गुणन की प्रक्रिया प्रदर्शित करने के लिये या तो गुणक राशि के पश्चात् "भ" लिख दिया जाता था अथवा कई राशियों का कई राशियों से गुणा किये जाने की अवस्था में गुणक पद के पूर्व "गुणकः" (गुणा करने वाला पद) यह शब्द लिख दिया जाता था। उदाहरणार्थ या का भा अर्थात् या×का, या का रू ५ गुणकः या का भा पीं रू ८ अर्थात् (या × का × ५) (या × का − पी × ८)। भाग की प्रक्रिया भाजक राशि को भाज्य के नीचे मात्र लिख देने से प्रदर्शित की जाती थी। उदाहरणार्थ $\frac{\text{या नी भा रू ८}}{\text{या का रू ७}}$ अर्थात् आधुनिक

पद्धति से $\frac{\text{या} \times \text{नी} \times ८}{\text{या} \times \text{का} \times ७}$। उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि जिस विधि से आजकल हम गुणन प्रगट करते हैं उसी विधि से पहले संकलन अभिव्यक्त किया जाता था। आधुनिक $xy = x \times y$ जबकि भास्कराचार्य के मतानुसार इसका अर्थ है $x + y$। भाग के लिये हम अंश को हर से विभाजित करते हैं। अंश ऊपर एवं हर नीचे रहता है। दोनों के बीच एक आड़ी रेखा खींच दी जाती है। भास्कराचार्य के समय रेखा का विधान नहीं था।

वर्गात्मक अथवा द्विघातात्मक राशि को अज्ञात् राशि चिन्ह के आगे "व" लिखने से प्रदर्शित किया जाता था। उदाहरणार्थ या व अर्थात् अधुनिक या^{२}; या का व अर्थात या + का^{२} एवं या व व अर्थात् य^{२२} = या^{४}। वर्गमूल को करणी शब्द के प्रथमाक्षर "क" से अभिव्यक्त किया जाता था। आजकल हम क के स्थान पर $\sqrt{}$ चिन्ह का प्रयोग करते हैं। क २७ अर्थात् आधुनिक $\sqrt{२७}$। अंग्रेजी में करणी का समकक्ष शब्द (Surd) है। वास्तव में करणी वह संख्या होती है जिसका कि पूर्णात्मक वर्गमूल नहीं निकल सकता। उदाहरणार्थ का ४७ अर्थात् $\sqrt{४७}$। भास्कराचार्य के समय में बड़े [ ], मझले { } एवं कनिष्ठ ( ) कोष्ठकों की जैसी उत्तम व्यवस्था नहीं थी, इसी कारण लम्बे पदों वाले प्रश्नों को लिखने एवं उनके हलों को समझने में बड़ी कठिनाई होती थी।

समालोचनात्मक अध्यनः

प्रारम्भिक मंगलाचरण के श्लेषात्मक श्लोक के पश्चात् सर्वप्रथम प्रकरण "धनर्ण षड्विधम्" का है। इसमें धनात्मक एवं ऋणात्मक संख्याओं की मौलिक प्रक्रियाओं संबंधी समस्त नियम आधुनिक नियमों के समान ही स्पष्टता पूर्वक दिये गये हैं। हैं। उदाहरणार्थ ऋणात्मक संख्या में ऋणात्मक संख्या का गुणा करने पर फल हमेशा धनात्मक होता हैं एवं दो असमान चिन्हों की राशियों का गुणनफल सदा ऋणात्मक ही होता है, इत्यादि। वर्गमूल निकालने के लिये जो सूत्र इसी प्रकरण के अंतर्गत दिया गया है इससे भास्कराचार्य की ग्रीस विद्वानों की तुलना में महत्ता स्वयमेव स्पष्ट हो जाती है। मूल सूत्र हैः

'कृतिः स्वर्णयोः स्वं स्वमूले धनर्णे।
न मूलं क्षयस्याति तस्याकृतित्वात्॥

अर्थात् "धनात्मक अथवा ऋणात्मक किसी भी प्रकार की राशिया वर्ग धनात्मक हो होता है अतएव स्पष्ट है कि प्रत्येक धनात्मक राशि के दो मूल होते हैं। एक धनात्मक दूसरा ऋणात्मक। ऋणात्मक राशि का कोई मूल नहीं होता क्योंकि वह किसी भी राशि की कृति अर्थात् वर्ग नहीं है।

भास्कराचार्य के चिन्तन-गांभीर्य के उक्त प्रमाण से स्पष्ट ही है कि उन्हें यह ज्ञात था

कि प्रत्येक धनात्मक राशि के धनात्मक एवं ऋणात्मक दो मूल होते हैं। द्वियुक्त पद समीकरण के दो मूल्य भी प्राप्त कर सकते थे। इस विषय से प्रायः सभी ग्रीस विद्वान् अपरिचित थे। द्वितीय पंक्ति से प्रतीत होता है कि भास्कराचार्य को आज की काल्पनिक संख्याओं का परिचय नहीं था। लेकिन उनके समकालिकों की तुलना में यह पंक्ति उनकी सजगता एवं चतुरता का ही परिचय देती है। इसके पश्चात् "ख" षड्विधम्' विषय आता है। इसके अन्तर्गत "ख" अर्थात् आकाश—शून्य के गुण धर्मों का एवं इसकी छह प्रक्रियाओं का विस्तृत विश्लेषण किया है। इस प्रकरण में निम्नखिलिखत सूत्र श्लोक दर्शनीय है :

"वधादौ वियंत् खस्य खं खेन घाते।
खहारो भवेत् खेन भक्तश्च राशिः॥

अर्थात् "शून्य से गुणा करने पर गुणनफल शून्य ही होता है किन्तु शून्य का भाग देने पर प्रत्येक राशि अनन्त (खहर) एवं अज्ञेय हो जाती है। इस खहर (अनन्त एवं अज्ञेय) राशि में चाहे जो भी जोड़ा या घटाया जाय, फल में कोई अन्तर नहीं आता है

'खषड्विधम्' के पश्चात् "एक वर्ण षड्विधम्" एवं "अनेक वर्ण षडविधम्" नामक अध्याय आते हैं जिनमें एक अथवा एक से अधिक अज्ञात राशियों के बीजगणितात्मक पदों की छहों मूल क्रियाओं का विवेचन किया है। सूत्रादिक सब सरल हैं एवं आज के ही समान हैं। पाठकों के सुपरिचय के लिये स्वयं भास्कराचार्य के दो मूल उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं :

उदाहरण १—('एक वर्ण षड्विधम्' से)

न्यासः—गुण्यः या ५ रू १ गुणकः या ३ रु २

गुणनाज्जात फलम् याव १५ या ७ रू २ं।

[आधुनिक पद्धति से :—गुण्य ५ य—१, गुणक : ३ या + २

अतएव क्रिया करने पर उत्तर $=$ १५ य^{२} $+$ ७ य—२]

उदाहरण २—(अनेक वर्ण षडविधम् से)

वर्गार्थ न्यासः—य ३ं का २ं नी १ रू १। जातो वर्गः याव ९ काव ४ नीव १ या का भा १२ यानीभा ६ं कानीभा ४ं या ६ं का ४ं नी २ रु १।

आधुनिक पदधति से :—

—३ य—२ क $+$ नी $+$ १ इस पद का वर्ग करना है। इस पद को इसी पद से गुणक के क्रमशः एक एक पदांश से गुणा करने पर एवं समस्त फल के समान पदांशों का संकलन एवं व्यकलन करने की आधुनिक रीत के पश्चात उत्तर $=$ ९ य^{२} $+$ ४ क^{२} $+$ नी^{२} $+$ १२ क य —६ नी य—४ क नी—६ य—४ क $+$ २ नी $+$ १।

उपर्युक्त साधारण प्रक्रियाओं के विवरण मात्र से ही पाठकों के समक्ष हमारी प्राचीन पद्धति के कई दोष स्पष्ट होंगे। आजकल की संकेत प्रणाली से हम अत्यंत संक्षिप्त स्थान

में शीघ्रता पूर्वक बीजगणित के लम्बे पदों को लिख सकते हैं। प्राचीन प्रणाली में अस्पष्टता, दुर्बोधगम्यता एवं दीर्घसूत्रता के दोष हैं। भास्कराचार्य के ग्रन्थ में पदच्छेदीकरण (Factorisation) एवं वर्गीकरण (Classification) की विधि नहीं अपनाई गई है। कुछ निश्चित सरल सूत्रों का उपयोग भी नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ (अ+ब) =अ^{२}+२ अ ब + ब^{२} । इस सूत्र का पुनः पुनः प्रयोग कर हम अत्यन्त लम्बे पदों का वर्ग प्राप्त कर सकते हैं जबकि भास्कराचार्य ने सीधे गुणन की विधि ही दी है। अगले अध्यायों में इस सूत्र का संकेत मात्र मिलता है।

लेकिन हमें यह सोचना चाहिये कि विज्ञान की प्रत्येक शाखा विकासशील है। उसमें अहर्निश संशोधन एवं परिवर्धन इत्यादि होते रहते हैं। भास्कराचार्य एक हजार वर्ष पूर्व हुए थे अतः इसी तथ्य के प्रकाश में हमें उनके ग्रन्थ का मूल्यांकन करना होगा। हो सकता है कि आज से एक हजार साल बाद के विद्यार्थी हमारी पद्धतियों को दुरूह एवं पिछड़ी हुई मानें। चीनी पद्धति की भाषाशास्त्रीय दुरूहता तो प्रसिद्ध है ही। बीजगणित में भी उसकी यही दशा है। अरबी पद्धति तो भारत की ही ऋणी रही है। अरब वालों ने हमारा अनुकरण मात्र किया था। अनुकरण के पश्चात् प्रगति नहीं। अनुकरण में कुछ न्यूनता रह ही जाती हैं।

भारतीय ज्योतिष का एक पृष्ठ

काल की नाप

सोहनलाल गुप्त

ज्योतिष आकाश में स्थित ज्योतिर्मय पिण्डों की स्थिति का ज्ञान कराता है। ग्रह (गतिशील पिण्डों) और नक्षत्रों (क्षरित होने वाले अर्थात् स्थिर तारों) की स्थिति काल से अनुसार बदलती रहती हैं। अतः ज्योतिषीय गणना काल पर आश्रित है।

काल नापने की इकाई मनुष्य ने अपनी जीवन-क्रिया से ली। स्वस्थ मनुष्य के एक बार सांस अन्दर लेने और बाहर निकालने का समय 'प्राण' या 'असु' कहलाया जो चार नक्षत्र सेकण्डों के बराबर होता है। दस गुरु अक्षरों के उच्चारण का समय भी एक असु है। छः असुओं का समय एक पल या विनाड़ी कहलाता है जो चौबीस नाक्षत्र सेकण्डों से बराबर है। साठ पलों की एक घटिका, घटी या घड़ी होती है जो चौबीस नाक्षत्र मिनटों के बराबर है। एक गुरु अक्षर का उच्चारण-काल विपल है।

घटिका या घड़ी घट या घड़ा के लघुवाचक हैं अतः उनका अर्थ है छोटा जल का बरतन। समय की नाप के लिए पेंदे में छोटे छेद वाला ऐसा बरतन जल पर रखा जाता था जो अन्दर पानी भरने के कारण भारी होकर साठ पलों में डूब जाता था। इसे घटिका यन्त्र कहते थे। जल घड़ी से आधुनिक दोलन तथा कमानीदार घड़ियों का नामकरण हुआ है।

साठ घटिकाओं का एक नाक्षत्र अहोरात्र (Sidereal day) होता है क्योंकि इतने समय में कोई भी नक्षत्र आकाश मण्डल का ठीक पूरा चक्कर लगा फिर अपने पहले स्थान पर आ जाता है अतः

१ नक्षत्र दिन = ६० घटी = ३६० पल = २१६०० असु = २१६००० विपल

पाश्चात्य घण्टा (hour अवर) शब्द का मूल भारतीय होरा शब्द है जो अहोरात्र के मध्य अक्षरों से बना उसका लघु रूप है। होरा को लग्नार्ध भी कहते हैं। बारह राशियों की बारह लग्नें और चौबीस होरा होने से दिनरात में चौबीस घण्टे किए गए हैं।

एक सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक का काल सावन दिन या कुदिन (Solar day) कहलाता है। संस्कृत के इस सावन शब्द का हिन्दी के सावन शब्द से कोई सम्बंध नहीं। सावन मास श्रावण का बिगड़ा रूप है। श्रावण नाम इस लिए पड़ा है कि उस महीने में पूर्णिमा को चंद्रमा श्रवण नक्षत्र में पड़ता है। कु का अर्थ पृथ्वी है न कि बुरा। नाक्षत्र

दिन पृथ्वी के अक्ष भ्रमण के कारण होता है पर सावन या कुदिन का कारण पृथ्वी का अक्ष भ्रमण और कक्षा भ्रमण दोनों ही हैं। अतः सावन दिन में जो नाक्षत्र दिन से अन्तर पड़ता है वह पृथ्वी की कक्षागति या सूर्य की 'मन्दगति' के कारण है। अतः कुदिन नाम सार्थक है। सावन दिन नाक्षत्र दिन से लगभग दस पल (चार मिनट) बड़ा होता है। यह अन्तर उतना समय है जितना पृथ्वी की एक दिन की कक्षा गति को जो एक अंश है पृथ्वी अपनी अक्ष गति से पूरा करती है।

नाक्षत्र दिन का मान स्थिर है पर सावन दिन का मान बराबर बदलता रहता है क्योंकि एक तो पृथ्वी की कक्षा वृत्तीय न होकर अंडाकार है जिससे उसकी कक्षागति सदैव बदलती रहती है; दूसरे पृथ्वी की धुरी उसके कक्षा तल पर लंब न होकर झुकी हुई है। सावन दिनों के वर्ष भर के मानों का मध्यमान लेते हैं जिसे मध्यम सावन-दिन (mean solar day)कहते हैं। नाक्षत्र काल में इसका मान २४ घंटा ३ मिनट ५६.५५५ सेकंड है। घड़ियाँ इस मध्यम सावन दिन काल से मिलाई जाती हैं। सावन दिनों का मध्यम सावन दिन से कुछ अन्तर होने के कारण घड़ियों में ठीक दोपहर को बारह नहीं बजते। अधिकतम अन्तर सोलह मिनट का हो सकता है। ठीक मध्याह्न देने वाली धूप घड़ी (sun dial) या शंकु है जिसमें उस समय छाया ठीक उत्तर दक्षिण होती है। धूपघड़ी और मध्यम सावन दिन देने वली घड़ियों के अन्तर को काल समीकरण (Equation of time) कहते हैं। १ सावन सेकंड १.००२७४ नाक्षत्र सेकंड के बराबर होता है।

यदि घड़ी की चाल नाक्षत्र दिन से मिलाई जाय तो वह प्रतिदिन चार मिनट तेज जाएगी और महीने भर के बाद दोपहर को दो ब जाएगी। ऐसी घड़ी जहाजों पर काम में लाई जाती है।

तीस सावन दिनों का एक सावन मास होता है और बारह सावन मासों का एक सावन वर्ष। इस प्रकार एक सावन वर्ष में तीन सौ साठ सावन दिन या अहर्गण होते हैं।

एक पूर्णिमा से अगली पूर्णिमा या अमावस्या से अगली अमावस्या का काल अर्थात सूर्य और चंद्रमा की दो युतियों के बीच का समय एक चांद्र मास (synodical या lunar month) कहलाता है। यह २९½ दिन के लगभग होता है। एक चान्द्र मास में तीस तिथियां मानी गई हैं। बारह चांद्र मासों का एक चांद्र वर्ष होता है। इसमें ३५४⅓ दिन के लगभग होते हैं। चांद्र वर्ष में ३६० तिथियां होती हैं।

सूर्य के आकाश मंडल के पूरे चक्कर का काल **सौर वर्ष** कहलाता है और उसके बारहवें भाग अर्थात एक राशि को पार करने का काल **सौर-मास** कहलाता है। सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश संक्रान्ति कहलाता है। दो संक्रान्तियों के बीच का काल सौर-मास है। सौर-मास बराबर नहीं होते क्योंकि सूर्य की गति प्रत्येक राशि में बदलती रहती है। सौर-वर्ष ३६५¼ दिन से कुछ बड़ा है। सौर वर्ष के शुद्ध मान विभिन्न सिद्धान्तों के अनुसार इस प्रकार हैं :

सूर्य सिद्धान्त ३६५ दिन १५ घटी ३० पल ३१.४ विपल, आर्य सिद्धान्त ३६५ दिन १५ घटी ३१ पल१५ विपल, ब्रह्म सिद्धान्त ३६५ दिन १५ घटी ३० पल २२.५ विपल।

पाश्चात्य सौर वर्ष ऋतुओं पर आधारित है। यह ३६५¼ दिन से कुछ छोटा है। इसका मान ३६५·२४२२४०८ दिन है। इस काल में सूर्य बसंत संपात से चल कर फिर वहीं आ जाता है। बसंत संपात स्थिर न होकर उलटी गति से चलता है अतः सूर्य इस काल में आकाश मंडल का पूरा चक्कर नहीं लगा पाता।

चांद्र वर्ष ऋतु वर्ष से ग्यारह दिन के लगभग छोटा है। अतः उस पर आश्रित मुसलमानी त्यौहार प्रतिवर्ष ऋतु के अनुसार ग्यारह दिन पहले और तीन वर्ष बाद एक महीना पहले पड़ते हैं और तैंतीस वर्षों के बाद वे फिर उसी ऋतु में आते हैं।

भारतीय सौर वर्ष ऋतु वर्ष से लगभग एक घटी बड़ा है। अतः भारतीय त्यौहार ७२ वर्षों में ऋतु के एक दिन पीछे हो जाते हैं। वर्तमान में यह अन्तर तेईस दिनों का है और पंचांगों में अंशों से प्रकट किया जाता है जिन्हें अयनांश कहते हैं।

भारतीय सौर वर्ष की गणना विक्रम तथा शक अब्दों (वर्षों) में होती है। विक्रम संवत शकारंभ से १३५ वर्ष पहले का है। ऋतुओं से मेल बनाए रखने के लिए अब भारत के राष्ट्रीय वर्ष का परिमाण ऋतु वर्ष मान लिया गया है।

वर्ष से बड़े काल की गणना युग द्वारा की गई। युग का अर्थ जोड़ा है। अतः युग का आरम्भ दो ग्रहों की युति या मेल से होगा और अन्त भी उनके मेल से। वेदांग ज्योतिष में सूर्य और चंद्रमा की युतियों पर आश्रित पांच वर्षों का युग लिया गया है। (देखो यजुर्वेदीय वेदांग ज्योतिष श्लोक ५, ऋगवेदीय वेदांग ज्यो० श्लो० ३२)

माघ शुक्ल्य प्रवृत्तस्य पौष कृष्ण समापिनः
युगस्य पञ्चवर्षस्य काल ज्ञानं प्रचक्षते।

पितामह सिद्धान्त में भी पंचवर्षीय युग लिया गया है। उससे बड़ा युग साठ वर्ष का लिया गया जो बृहस्पति और शनि की एक राशि में दो युतियों के बीच का काल है। इस युग के साठ भाग किए गए और प्रत्येक भाग संवत्सर कहलाया। सभी सिद्धान्तों के अनुसार मध्यम गति से बृहस्पति का एक राशि का भोग काल संवत्सर कहलाता है। इसका परिमाण ३६१ दिन १ घड़ी ३६ पल ११·७५ विपल है।

सबसे बड़ा युग महायुग है। सूर्य और आर्य सिद्धान्तों का महायुग वह काल है जिसमें सभी ग्रह तथा चंद्रमा के पात और मन्दोच्च एक ही स्थान से एक साथ चलना आरंभ कर फिर उसी स्थान पर एक साथ मिलें। दूसरे शब्दों में महायुग वह छोटे से छोटा समय है जिसमें सभी ग्रहों तथा चंद्रमा के पात और मन्दोच्च के पूरे भगण या चक्कर हों। यह काल तैतालीस लाख बीस हजार सौर वर्षों का है। ब्रह्म सिद्धान्त में भी इतने काल को महायुग माना गया है पर इसमें ग्रहों आदि के पूरे भगण नहीं माने गए।

केवल सूर्य चन्द्र पर आधारित सूर्य सिद्धान्त में वर्णित युग महायुग का चौबीसवां भाग अर्थात् एक लाख अस्सी हजार वर्षों का है।

महायुग को चार भागों में बाँटा गया है जिनके नाम क्रम से सत या कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग हैं। इनके परिमाण आर्य सिद्धान्तानुसार बराबर हैं अर्थात् प्रत्येक युग का परिमाण दस लाख अस्सी हजार सौर वर्ष है। पर सूर्य और ब्रह्म सिद्धान्तों में इनके परिमाण क्रम से चार, तीन, दो और एक के अनुपात में है। अर्थात्

सतयुग = १७२८००० वर्ष, त्रेता = १२९६००० वर्ष
द्वापर = ८६४००० वर्ष, कलियुग = ४३२००० वर्ष

ग्रहों से संबंधित कुछ गतिशील विन्दु पात तथा मन्दोच्च भी हैं जो उनकी भांति ही गति करते हैं पर मन्द गति के कारण महायुग में उनका एक भी पूरा भागण या चक्कर नहीं हो पाता अतः एक और बड़े काल की कल्पना की गई, जिसे संभवतः कल्पना के कारण कल्प नाम मिला, जिसमें सभी गतिशील आकाशीय दृश्य पिण्डों और अदृश्य बिन्दुओं के पूरे-पूरे भगण सभी सिद्धान्तों के अनुसार होते है।

आर्य सिद्धान्त में कल्प का परिमाण १००८ महायुग या ४३५४५६०००० वर्ष है क्योंकि उसके अनुसार १ कल्प में चौदह मनु और एक मनु में बहत्तर महायुग होते हैं।

सूर्य और ब्रह्मसिद्धान्तों के अनुसार इकहत्तर महायुगों का मनु या मन्वन्तर होता है। प्रत्येक मनु के आरंभ और अन्त में सतयुग तुल्य (महायुग का दो पंचमाश) संधिकाल होता है जिसमें पृथ्वी जलमग्न रहती है। ऐसे पन्द्रह संधि कालों सहित चौदह मन्वन्तरों का एक कल्प होता है इस प्रकार

१ कल्प = १४ मनु + १५ संधिकाल
= १४ × ७१ महायुग + १५ × $\frac{२}{५}$ महायुग
= ९९४ + ६ = १००० महायुग

एक कल्प में एक हजार महायुग या चार अरब बत्तीस करोड़ सौर वर्ष होते हैं।

कल्पारम्भ से वर्तमान कलि के आरंभ तक छः मनु सात संधियों सहित व्यतीत हो गए और वर्तमान सातवें वैवस्वत मनु के भी सत्ताइस महायुग बीत गए और वर्तमान अट्ठाइसवें महायुग के तीन युग बीत चुके। इस प्रकार कल्पारंभ से कलि आरम्भ तक गत काल

= ६ × ७१ + ७ × $\frac{२}{५}$ + २७ × ४ + ३ × २ = ४५६$\frac{७}{१०}$ महायुग
= ४५६·७ + ४३२०००० = १९७२९४४००० वर्ष

कलियुगारंभ के ३१७९ वर्ष बाद शक संवत का आरंभ हुआ। वतमान शक संवत् में ३१७९ जोड़ने से वर्तमान कलि संवत् प्राप्त होगा और वर्तमान कलि संवत को

ऊपर प्राप्त वर्षों में जोड़ने से कल्पारम्भ से वर्तमान तक गत वर्ष मिलेंगे। प्राप्तवर्षों से ब्रह्म सिद्धान्त में गणना करनी चाहिए पर सूर्य सिद्धान्त में नहीं। सूर्य सिद्धान्तीय गणना के लिए सृष्टि के आरम्भ से गत वर्ष लेने होंगे। इसके अनुसार सृष्ट्यारम्भ और कल्पारम्भ में अन्तर है।

कल्प के अन्त में महाप्रलय होता है जिसमें सभी स्थावर-जंगम का नाश होता है। अतः ग्रह नक्षत्रों की रचना में ब्रह्मा को सूर्य सिद्धान्तानुसार ३$\frac{१९}{२०}$ महायुग या१७०६४००० सौर वर्ष लगते हैं। प्राप्त कल्पारंभ काल से इस सृजन काल को घटाने से सृष्टि के आरंभ से जब सभी ग्रहादि एक ही स्थान पर थे गतकाल प्राप्त होगा। इससे सूर्य सिद्धान्त में गणना होगी। इस प्रकार सृष्ट्यारंभ तक का समय

=४५६$\frac{७}{१०}$३ − ३$\frac{१९}{२०}$ = ४५२$\frac{३}{४}$ महायुग = १६५५८८०००० वर्ष।

सूर्य तथा आर्ष सिद्धान्तों में चारो युगोंके मान परस्पर मेल नहीं खाते पर दोनों में ही कलियुगारंभ तक पूरे महायुगों के ऊपर तीन चौथाई महायुग ही बीता है जिससे दोनों में ही कलियुगारंभ में ग्रहों की स्थितियां एकसी हैं।

ज्योतिष की किसी भी गणना में कल्पारंभ से पहले के समय का विचार नहीं करना पड़ता फिर भी ज्योतिष ग्रन्थों और पुराणों में और कहीं बड़े काल का वर्णन है। कल्प ब्रह्मा का दिन माना गया है। इतनी ही ब्रह्मा की रात्रि है। इस प्रकार दो कल्पों या दो हजार महायुगों की ब्रह्मा की दिन रात होती है। ऐसे अहोरात्रि के प्रमाण से ब्रह्मा की आयु सौ वर्ष या ७२००० कल्पों या ७ करोड़ २० लाख महायुगों या ३१ नील १० खर्व ४० अर्ब वर्षों की हैं। ब्रह्मा की आधी आयु समाप्त हो चुकी है और शेष आधी आयु का वर्तमान कल्प पहला दिन है। संकल्प मंत्र में काल निश्चित करने वली यह सभी बातें आतीं हैं।

प्रवर्तमानस्याद्य ब्रह्मणो द्वितीय परार्धे श्री श्वेत बाराह कल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशति तमे कलियुगे कलि प्रथम चरणे ॥

काव्य में संख्याएँ

दयाल सिंह कोठरी

पूर्व बहुत पूर्व १२०० ई० पू० वेदांग ज्योतिष के प्रणेता ने गणित को वेदांग ज्योतिष में सर्वोपरि बताते हुए लिखा है :—

यथा शिखा मयूराणाम नागानाम मणयो यथा,
तद्वद् वेदांग शास्त्राणाम गणितं मुर्द्धनि स्थितं ।

अर्थात् मोर के मस्तक पर कलंगी, नाग के फन में मणि की तरह वेदांग ज्योतिष में गणित का सर्वोपरि स्थान है ।

जहाँ 'जीवेम शरद: शतम' व 'सहस्त्रां मे ददतो अष्ट कर्ण्य' से ऋग्वेद के रचना काल के समय जीवन के प्रति स्वस्थ व सजीव दृष्टिकोण अपनाया गया है व हजार गायों के समूह को दान दिए जाने के विषय में जानकारी प्राप्त होती है वहाँ शतम, सहस्र आदि शब्दों का प्रयोग सौ व हजार के लिए होना व गायों पर संख्याएँ लिखने की परम्परा का भी आभास होता है। ऋग्वेद में अन्यत्र वर्ष ऋतु आदि शब्दों का प्रयोग बारह व छ के लिए हुआ है। अर्नेस्ट लायमेन के अनुसार महात्मा महावीर ने २५०० वर्ष पूर्व सर्व प्रथम वृत की परिधि को व्यास वा दस के वर्गमूल के गुणनफल के तुल्य बतलाया व जिसका प्रयोग बाद में सिद्धसेव गणी ने छटी शताब्दी में किया है। सिद्ध होता है भारत को उस समय शून्य व उसका परिगणनीय उपयोग ज्ञात था। हाल ही में बिजनोर स्थित पारसनाथ किले में प्राप्त प्रभु महावीर की प्रतिमा (१०० ई० पू०) पर अंकित संवत १०६ में शून्य व स्थानीय मान का प्रयोग हुआ है। जैन ग्रन्थ अनुयोग द्वार (१०० ई० पू०) में 'अंक स्थानेहि, में स्थान शब्द का विश्व में सर्व प्रथम साहित्यिक प्रयोग हुआ है। सूर्य सिद्धान्त में वसुद्वयअष्टाद्रि रूपाङ्क सप्ताद्रि तिथयो युगे' में अंक शब्द का ९ के लिए प्रयुक्त होना सिद्ध करता है कि नवीन अंक प्रणाली उस समय प्रचलित हो चुकी थीं।

इस प्रकार निर्विवाद स्पष्ट है कि दशमलवीय, आधार, शून्य, स्थानीय मानों पर आधारित नौ अंकों वाली आधुनिक अंक प्रणाली देश में ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व पल्लवित हो चुकी थी परन्तु जन साधारण में इसका प्रचार सर्वत्र नहीं हो पाया था क्योंकि १०० ई० पू० के नानाघाट वा नासिक की गुफाओं में प्रयुक्त अंकों में शून्य स्थान को प्रकट न कर बीस को प्रकट करता है, जैसे नानाघाट के शिलालेखों में To=१०००×२०—२०,००० व नासिक की शिलालेखों में यहीं संख्या १० के द्वारा प्रकट की गई है। इसमें कोई आश्चर्य

की बात नहीं है कि भारत से विशाल देश में नवीन अंक प्रणाली को प्रचारित होने में इतन समय क्यों लगा।

भारत का प्राचीन गणित साहित्य पद्यमय है। पद्य में संख्याओं की अभिव्यक्ति भिन्न भिन्न प्रकार की प्रणालियों द्वारा की गई है। इन प्रणालियों से काव्य में विविधता, चमत्कार, सांक्षेप्य, उच्चारण सुविधा, सहज स्मरणीयता व मात्रिक समायोजन के साथ साथ बड़ी बड़ी संख्याओं की अभिव्यक्ति के ध्येय निहित थे। इन सांख्यिक प्रणालियां व उचित साख्यिक नामावलियों के प्रयोग से साहित्य में बड़ी से बड़ी संख्याओं का प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ शीर्षप्रहेलिका हेमचन्द्रसूरि के अनुसार दशमलवीय आधार पर १९४ स्थल प्रकट करता है।

गणित काव्य में प्रयुक्त संख्याओं को हम मोटे रूप से दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—शब्द व वर्ण प्रणालियाँ। शब्द प्रणाली में संख्याएँ अथवा संख्याओं के समगुणी शब्द व उनके पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त होते थे। जैसा कि ऊपर कहा गया है ऋग्वेद में यत्र-तत्र इसका प्रयोग किया गया है और सूर्यसिद्धान्त, लघु भास्करिया, ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त, त्रिशाटिका, गणित सार संग्रह, सिद्धान्त शिरोमणि व आधुनिक काव्य में भी हुआ है। विभिन्न लेखकों ने भिन्न भिन्न शब्दों का प्रयोग संख्याओं को प्रकट करने के लिए किये है, जैसे :—

० ख, अम्बर, अभ्र, शून्य
१. आदि, विधु, क्षपाकर, इन्दु, अवनि, वसुधा, रवि, क्षमा, आत्मा
२. भुज, कूच, अक्षि, दृष्टि, कर्ण, लोचन
३. राम, गुण, अनल, पावक, दहन, पुर, शिवनेत्र, रत्न
४. संघ, कोष्ट, वर्ण, आश्रम, युग, दिशा, धाम
५. शर, अमृत, पाण्डव, करणीय, रत्न
६. वेदांग, दर्शन, द्रव्य, अरि, मासार्द्ध, ऋतु, तर्क, रस
७. नग, अग, स्वर, तत्व, सिन्धु
८. वसु, मद, प्रहर
९. निधि, रस, अंक, ग्रह
१०. दिशा, अंगुली, अवतार दशानन
११ अक्षौहिणी, १२ मास, १४ लोक, इन्द १५ निधि, १६ श्रंगार, १८ पुराण, २४ अर्हत, जिन २७ नक्षत्र ७२ कला १०० कौरव

भास्कर द्वितीय की लीलावती के निम्नलिखित उदाहरणों पर बिचार कीजिए :—

४ ३ ५ ० ७
१—वैदाग्नि बाण खाश्वे वेद—अग्नि—बाण—ख—अश्व =७०५३४

० ० ० ० ६
२—खखाभ्राभ्ररसे ख—ख—अभ्र—अभ्र—रसे =६०,०००

३—त्रिहीनस्य शतत्रयस्य ३००--३=२९७

प्रथम दो उदाहरण में वेद, अग्नि, बाण, ख, अश्व और ख, ख, अग्नि, अभ्र, रस क्रमशः इकाई, दहाई, सैकड़ा, सहस्त्र, दश सहस्त्र के स्थानों पर स्थित हैं अतः स्थानीय क्रम से लिखने पर उक्त संख्याएँ प्राप्त होगी। अंतिम उदाहरण में व्यवकलन सिद्धान्त का प्रयोग किया गया है व अंकों के शब्द ही काम में लिए गए हैं। महावीर अपने गणित सार संग्रह में १२,३,४,५६,५४,३२१ सी बड़ी संख्या को बड़े सुन्दर ढंग से 'राकादिषड अन्तानि क्रमेणहीनानि' पद्य द्वारा व्यक्त करते हैं।

हिन्दी काव्य साहित्य में भी इस प्रकार के उदाहरणों कमी नहीं जिनमें संख्याओं को व्यक्त किया गया हो। मैथिलीशरण गुप्त ने 'रङ्ग में भंग' काव्य में कथाकाल को इस प्रकार व्यक्त किया है :—

'जिस समय से इस कथा का है यहाँ वर्णन चला'
था अनल निधि गुण अवनि का विक्रमी संवत भला !

इस प्रकार घटना विक्रमी संवत अनल३ निधि९ गुण३ अवनि१ अर्थात् १३९३ की है। तुलसीदास जी के शरीर त्यागने की तिथि को सीधे संख्याओं के शब्दों से ही व्यक्त किया है जैसे

'संवत सोलह सो असी असी गंग के तीर'
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर।'

इस प्रणाली के द्वारा जहाँ घटना क्रम अथवा किसी जटिल गणितीय सत्य को सहज ही स्मरण रखा जा सकता है वहाँ काव्य में चमत्कार लाने की दृष्टि से भी इसका प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ सूरदास जी ने कृष्ण के विरह में गोपियों की दशा का चित्रण करते हुए कहा है :—

'वेद नखन ग्रह जोरि अरध करि सोई अब बनत खात'

अर्थात् (कृष्ण के विरह में अब $\frac{(\text{वेद}+\text{नक्षत्र}+\text{गृह}}{२}=\frac{४+२७+९}{२}=२०$) विष खाने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं। इसी प्रकार चालीस सेर के तुल्य बाट मन को हृदय के लिए प्रयुक्त कर कवि अपनी अभिलाषा प्रकट करता है :—

शिव के नेत्र नक्षत्र गण, लङ्कापति के सीस।
ता पर मोंकू राखिए, यह मांगू बकसीस॥

अर्थात् हे स्वामि ! तेरे मन में (शिव नेत्र+नक्षत्र + लङ्कापति के सीस=३+२७+१०=४० या ४० सेर या मन) मेरे लिए स्थान हो, यही बकसीस माँगता हूँ।

भारतीय साहित्य में जहाँ एक ही संख्या के विविध शब्दों का भंडार भरा है वहाँ

बड़ी-बड़ी संख्याओं के उदाहरण के लिए बड़ी-बड़ी सांख्यिक नामावलियाँ भी प्रचलित थीं। भास्कर द्वितीय (११ वीं शताब्दी) १०२२ तक की संख्या उच्चारण की नामावली प्रयुक्त करते थे :—

एक दश शत सहस्रायुत लक्ष प्रयुत कोटयः क्रमशः
अर्बुदमब्ज खर्व निखर्व महा पद्म शङ्क अवस्तस्मात
जलधिश्चन्त्यं मध्यं परार्द्धमिति दशगुणोत्तराः संज्ञाः।

इतना ही नहीं, नापतोल की अंगुल, बालिश्त, हस्त, दण्ड की अवैज्ञानिक प्रणालियों के साथ-साथ देश में अति सूक्ष्म परिमाणों को प्रकट करने वाली प्रणालियाँ प्रचलित थीं। मुनि मैत्रेय के अनुसार—

२ परमाणु = १ अणु	१५ निमेष = १ कष्ठ
३ अणु = १ थृसरेणु	३० कष्ठ = १ कला
३ थृसरेणु = १ थृति	३० कला = १ मुहूर्त
१०० थृति = १ वेध	३० मुहूर्त = १ दिवारात्रि (२४ घण्टे)
३ वेध = १ लव	
३ लव = १ निमेष	

इस सूक्ष्म प्रणाली का प्रयोग कल्पना मात्र ही नहीं वरन् व्यवहारिक था। प्रोफेसर, आ० वे० जगन्नाथम् ने अपने "प्रकाश की गति क्षिप्रता' नामक लेख में प्रमाणित किया है कि शंकराचार्य्य का निम्नलिखित सूत्र उक्त पद्धति द्वारा प्रकाश का वेग रयोमर (१६७५) से पूर्व बहुत पूर्व १,८७,६७० मील प्रति सेकण्ड प्रकट करता है जो निश्चय ही आश्चर्य-जनक है :—

"योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते च योजने। एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमस्तुते॥

अर्थात् प्रकाश का वेग अर्द्धनिमिष में (द्वे सहस्रे = २,००० द्वे शते = २०० द्वे योजने = २) २२०२ योजन है। १ योजन = ४ कोस, १ कोस = २००० दंड, १ दंड = २ गज]।

शब्द प्रणाली का जहाँ गणित के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में भी प्रचुर प्रयोग हुआ है वहाँ वर्ण पद्धतियाँ गणित ग्रंथों में ही प्रयुक्त हुई हैं। अक्षर पाली, कटपयादि व आर्य भट्टीय वर्ण पद्धतियों में जहाँ काव्य में अर्थालङ्कार उत्पन्न करने की क्षमता नहीं है वहाँ वे बड़ी २ संख्याओं को सरलता से प्रकट करने की क्षमता रखती हैं। अन्य देशों में भी वर्ण प्रणालियाँ प्रयुक्त की गई हैं। यूनान में वर्णमाला के भिन्न-भिन्न वर्ण स्थान व संख्याओं को प्रकट करते थे। यूनान की नकल पर अरबों ने भी वर्णमाला द्वारा संख्या प्रकट की। भारत द्वारा वर्णों से संख्या लेखन विश्व में सबसे प्राचीन है।

वर्णों द्वारा संख्या लेखन के दृष्टान्त के लिए आर्यभट्टीय अक्षर प्रणाली को ही

लीजिए। इस प्रणाली में स्वर स्थान को व व्यञ्जन अंकों को प्रकट करते हैं। व्यञ्जनों में वर्गाक्षर विषम व अवर्गाक्षर सम स्थान को प्रकट करते है। जब दो वर्ण एक ही स्वर से मिले हों तो उन्हें संकलित किया जाता है। वर्गाक्षर क से म तक क्रमशः १ से २५ व अवर्गाक्षर य से ह तक क्रम से ३ से १० तक के अंकों को प्रकट करते हैं। जैसे—

आ		ओ		ऊ		उ		लृ		ऋ		उ		ई		अ	
अ	व	अ	व	अ	व	अ	व	अ	व	अ	व	अ	व	अ	व	अ	व
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

	वर्गाक्षर										अवर्गाक्षर
कवर्ग	क	ख	ग	घ	ङ	१	२	३	४	५	य र ल व श ष स ह
चवर्ग	च	छ	ज	झ	ञ	६	७	८	९	१०	३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
टवर्ग	ट	ठ	ड	ढ	ण	११	१२	१३	१४	१५	
तवर्ग	त	थ	द	ध	न	१६	१७	१८	१९	२०	
पवर्ग	प	फ	ब	भ	म	२१	२२	२३	२४	२५	

इस प्रणाली से आर्यभट्टीयका में 'निशिबुख्लृखृ' पर १५७२००७२०० को प्रकट करता है क्योंकि नि=न+इ=२००। चूंकि वर्गाक्षर न=२० है व उसका स्थान विषम होगा अतः इ के विषम स्थान पर नि=२०० प्रकट करेगी। इसी प्रकार अवर्गाक्षर शि ई के स्थान पर स्थान को प्रकट करते हुए ७,००० के तुल्य होगी। षु उ के स्थान पर सम स्थान को प्रकट करते हुए ८०,००00 के तुल्य होगा। ख्लृ में ण लृ के स्थान पर १५,००,०००,००० को व खशृ में ख, ऋ के विषम पर २०,००,००० को व श, ऋ के सम स्थान पर ७०००००००० को प्रकट करेगी। इस प्रकार उक्त संख्या प्राप्त होगी। नीचे के विवरण से यह और भी स्पष्ट हो जायगा—

इस प्रणाली का मूल दोष यह है कि संख्याओं को प्रकट करने में ऐसे शब्द बन जाते हैं जिनका उच्चारण करना बड़ा कठिन हो जाता है। कटपयादि पद्धति में इस दोष का निवारण किया गया है। यह प्रणाली अन्य प्रणालियों से सरल भी है। इस प्रणाली में ञ, न और सभी स्वर शून्य को तथा क, ट, प, य से आरम्भ होने वाले वर्ण अंकों को प्रकट करते हैं। संयुक्त व्यञ्जन में अन्तिम वर्ण का मान होता है। पद्धति को निम्न प्रकार से प्रकट किया जा सकता है :—

१	को प्रकट करने वाले वर्ण	क, ट, प, य
२	,, ,,	ख, ठ, फ, र

३	,,	,,	ग, ड, ब, ल
४	,,	,,	घ, ढ, भ, व
५	,,	,,	ङ, ण, म, श
६	,,	,,	त ष
७	,,	,,	छ, थ स
८	,,	,,	ज, द ह
९	,,	,,	झ, ध
०	,,	,,	ञ, न

इस प्रणाली में निम्नलिखित उदाहरण उल्लेखनीय हैं :—

			संख्या
महावीर	= ५ ८ ४ २ / म हा वी र	=	२४८५
आदित्य	= ० ८ १ / आ दि त्य	=	१८०
विक्रम	= ४ २ ५ / वि क्र म	=	५२४
रामायण	= २ ५ १ ५ / रा मा य ण	=	५१५२

इस प्रकार काव्य में सफल सांख्यिक प्रणालियों के प्रक्रम से ही बड़ी बड़ी संख्याओं का सफलता से प्रयोग किया गया है। नवीन अंक के आविष्कार का जिस प्रकार सारा विश्व भारत का ऋणी है उसी प्रकार इन प्रणालियों के अविष्कारक के रूप में भी भारत का नाम गणित के इतिहास में अमर रहेगा।

———

गणित का भूत

डा० शिवगोपाल मिश्र

आज का युग विज्ञान का युग है। विज्ञान कहने मात्र से विषय की दुरूहता सामान्य छात्र को कँपा देती है। उसे इतना पता रहता है कि विज्ञान में गणित ही गणित प्रयुक्त होती है और गणित स्वयं अत्यन्त कठिन विषय होता है। अधिकांश विद्यार्थी इसी डर से गणित से जी चुराते हैं। उनके मनों में ऐसे भूत का भय सवार हो जाता है जिसका उन्होंने न तो खुलकर सामना किया है और न अपने भय के कारण पर तनिक भी विचार ही किया है। हाई स्कूल तक के नवयुवकों को गणित उस अगाध समुद्र की भाँति प्रतीत होता है, जिसके विषय में उन्होंने यह सुन रखा है कि उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं आती, चाहे जितना भी पानी भाप बनकर उड़ जाय। वैसे ही गणित के प्रति भावना है। चाहे जितने प्रयास किये जायँ, कमजोर छात्र को गणित में असफलता अवश्य मिलेगी। प्राय: इसी मनोवृत्ति एवं पूर्व-कल्पना से अनेक छात्र जीवन भर गणित के इतने भयभीत रहते हैं कि छोटा से छोटा हिसाब उन्हें भयावह प्रतीत होता रहता है।

आखिर इस भय का कारण क्या है? यदि सचमुच गणित इतना जटिल विषय है तो कुछ विद्यार्थियों के लिये वह वैसा क्यों नहीं प्रतीत होता? और यदि गणित विषय कठिन ही है तो उसके पठन-पाठन पर इतना जोर क्यों दिया जाता है? अन्यथा यदि वह जटिल विषय नहीं तो सबों को सुगम करके क्यों नहीं पढ़ाया जाता?

हमारे देश में गणित की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। भास्कराचार्य की गणित विद्या से सभी लोग परिचित हैं। उन्होंने पद्य में गणित के गूढ़तम प्रश्नों एवं उनके हलों को प्रस्तुत किया है। यही नहीं, साहित्य के क्षेत्र में भी अंकों का प्रचुर प्रयोग होता रहा है। मनोरञ्जन की सामग्री प्रस्तुत करने में गणितीय प्रश्न सहायक होते रहे हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि भारतीय वातावरण गणित के अध्ययन के लिये उपयुक्त है। विद्यार्थियों के भय का कारण सम्भवतया नवीन शिक्षा प्रणाली एवं पाठ्यक्रम ही हो सकते हैं।

कोई भी विषय जटिल नहीं होता। अभ्यास करते रहने से सभी समस्यायें सुगम हो जाती हैं। विषय की जटिलतायें अनभ्यास के कारण प्रतीत होती हैं। यदि सभी विद्यार्थी यह सोच लें कि अमुक विषय उन्हें पढ़ना ही होगा, उससे छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं तो वह उसके प्रति अवश्य ही आकर्षित होगा। प्रत्येक विद्यार्थी को प्रारम्भ से यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि अमुक विषय उसके लिये उसी प्रकार आवश्यक है जैसे जीवन के लिये अन्न और जल। इस भावना के पूरित होने पर प्रत्येक विद्यार्थी जी-

ज्ञान से किसी विषय में परिश्रम करके उसमें पूर्ण दक्षता प्राप्त कर सकता है। परन्तु इतने मात्र से काम नहीं चलने का। विषय की उपयोगिता अथवा व्यवहारिकता भी सबों के समक्ष सुस्पष्ट होनी चाहिये।

आज के युग में शिक्षित युवकों के समक्ष बेकारी की समस्या एक वीभत्स दृश्य उपस्थित किये हुये हैं। कुछ ऐसे विषय हैं जिनके पढ़ने से नौकरी सुरक्षित हो जाती है किन्तु अन्य विषयों के साथ वैसा नहीं होता। गणित ऐसा ही विषय है जिसके पढ़ने वालों को प्राथमिकता मिलती है। यही नहीं, स्पर्धा-परीक्षाओं में भी गणित के विद्यार्थी अच्छे अंक प्राप्त करते हैं। इस प्रकार गणित बहुतों को उच्चपद प्राप्त करने में परम सहायक होता है। फलतः गणित की उपयोगिता स्पष्ट है। इसी कारण अनेकानेक विद्यार्थी विश्व-विद्यालयों में गणित पढ़ते हैं। उनके लिये गणित रुचिपूर्ण विषय होता है।

हमारी शिक्षा प्रणाली में एक बड़ा भारी दोष है। प्रारम्भिक दशा में गणित सभी प्रकार के विद्यार्थियों के लिये आवश्यक विषय न होकर ऐच्छिक बना दिया गया है। इस प्रकार अनेक विद्यार्थी जीवन भर गणित की किसी प्रकार की जानकारी ही नहीं प्राप्त कर पाते। परन्तु यह उनके लिये दुर्भाग्य की बात नहीं। प्रायः सभी प्राणी, शिक्षित एवं अशिक्षित, दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली सामान्य गणित की समस्याओं का हल बचपन में ही सीख लेते हैं। इस प्रकार से अनजाने ही वे थोड़ा बहुत गणित-ज्ञान प्राप्त करते रहते हैं। दैनिक जीवन में जोड़-बाकी, गुणा-भाग की समस्यायें इस प्रकार उपस्थित होती हैं कि उनके सुलझाने में मन लगता है, आनन्द आता है और अन्त में हल मिल जाने पर परम प्रसन्नता होती हैं। बस, किसी विषय के प्रति रुचि उत्पन्न करने की सर्व-श्रेष्ठ विधि यही है।

अतः यह कहा जा सकता है कि कोई भी विषय जटिल नहीं। उसे पढ़ाने या व्यवहार में लाने की विधि रुचिपूर्ण होनी चाहिये। गणित की दुरूहता का मुख्य कारण यह है कि इस विषय को रुचिकर बनाकर बताने का प्रयास नहीं किया जाता और न अब तक ऐसा किया ही गया है। यदि हमारे अध्यापक गणित के प्रत्येक प्रश्न की व्यव-हारिकता अथवा गणित का दैनिक जीवन की समस्याओं में उपयोगिता के आधार पर अध्यापन करें तो निश्चित है कि गणित पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो। आज जितने भी विद्यार्थी गणित को प्रिय विषय बताने में अपना गर्व समझते हैं, वे या तो परम परिश्रमी हैं अथवा महत्वाकांक्षी। परन्तु इतने से इस विषय की उपादेयता सिद्ध नहीं होती।

गणित की समस्याओं को रट रटा कर परीक्षा में उत्तीर्ण होना अथवा उनकी व्यवहारिकता जाने बिना मात्र समस्याओं का हल जानना अधिक लाभप्रद नहीं। तोतों की सी यह रटविद्या किसी प्रकार राष्ट्र के लिये हितप्रद नहीं। जब तक छात्र गणित के किसी सूत्र अथवा हल को किसी वैज्ञानिक शोध में प्रयुक्त करना नहीं जान लेते,

सूत्रों की स्मृति उनके पास उसी प्रकार बेकार है जिस प्रकार किसी कंजूस के पास अनन्त धन राशि। भौतिक शास्त्र में गणित का जितना अधिक व्यवहार होता है, शायद ही कहीं हो अतः उस शास्त्र के विद्यार्थियों का गणित ज्ञान सुदृढ होना चाहिये। जो छात्र केवल विषय की उपयोगिता एवं उसके पश्चात् नौकरी के उद्देश्य से भौतिकी का अध्यन करते हैं वे उत्तीर्ण तो हो लेंगे परन्तु आगे शोध-कार्य में वे असमर्थ होंगे। किसी भी शास्त्र के समुचित ज्ञान के लिए अर्जित ज्ञान को व्यवहार में लाने की अपार क्षमता होना चाहिये। यह क्षमता उचित अध्यापन के द्वारा ही सम्भव है।

आज तक जितने भी अविष्कार हुये हैं अथवा जितनी शोधें हुई हैं वे अविष्कारकों अथवा शोधकों के लिये सरदर्द के रूप में अथवा मानसिक उलझन के रूप में नहीं थीं। उन्होंने अत्यन्त अभिरुचि के साथ तद्विषयक ज्ञान को आगे बढ़ाया है अतः यह सोचना कि अमुक विषय की शोधें मतिष्क को बिगाड़ने वाली है, ठीक नहीं। केवल रट रटा लेना मात्र उद्देश्य न होकर किसी भी समस्या के अंत: तक प्रवेश करके देखने एवं सोचने की आदत डाल लेने पर नीरस से नीरस विषय आनन्दा दायक बन सकते हैं। प्राय: गणित के सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से लागू होती है। जब तक कोई विषय दुरूह लगता है यही समझना चाहिये कि हमारे अध्ययन का ढंग त्रुटिपूर्ण है। त्रुटियों पर ठीक से विचार करके ही सत्यमार्ग की खोज की जाती है। यह वैज्ञानिक प्रणाली है।

प्राय: दर्शन की ही भाँति आज कल अनेक वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन तर्क वितर्क पर आधारित है। बिना चित्र बनाये अथवा समान्य जीवन अथवा व्यवहारिक विज्ञान में उसकी उपयोगिता का ज्ञान कराये बिना सम्पूर्ण विषय पढ़ा दिया जाता है। भला ऐसा करने से छात्रों में उसे विषय के प्रति अनास्था एवं उदासीनता आनी स्वाभाविक नहीं तो और क्या है?

गणित के अध्ययन में कल्पना-शक्ति के साथ-साथ तर्क शक्ति का होना परमावश्यक होता है परन्तु साथ साथ वहिर्जगत् को ध्यान में रखना पड़ता है। जो कुछ अनुभव द्वारा परम्परा से प्राप्त हुआ है उसे ठुकराना कठिन है। उदाहरणार्थ यदि कोई छात्र यह अविश्वास करे कि तीन और तीन मिलाकर छह नहीं होता, तो यह उसकी अज्ञानता होगी। चाहे जितना तर्क किया जाय तर्क के आधार पर हम तीन और तीन के द्वारा न तो पाँच और न सात ही योग के रूप में प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार यह ज्ञात हो जावेगा कि अमुक छात्र ने गणित के प्रारम्भिक नियमों के विषयों में कितना सोचा समझा है। कभी कभी कुछ छात्र ऐसी बातों के विषयों में बातें करते हैं, जिनके विषय में उनको कोई भी ज्ञान नहीं होता। ऐसा करने से सदैव ही त्रुटिपूर्ण एवं भ्रामक फल प्राप्त होते हैं। जबतक किसी विषय की वास्तविक कल्पना अथवा चित्र नहीं बन जाता उसके सम्बन्ध में तर्क करना कठिन हो जाता है। वास्तविक चित्र के बनते ही तर्क प्रारम्भ हो जाता है। उचित अध्यापन के द्वारा सही कल्पना शक्ति जागृति होती है अत: यदि विद्यार्थियों की समझ में गणित नहीं आता तो यह समझना चाहिये कि अध्यापक छात्र की कल्पना स्पर्श करने में असमर्थ रहा।

गणित में ऐसी अनेक संख्यायें प्रयुक्त होतीं है एवं ऐसे तथ्य स्वीकार्य हैं जिनका दैनिक जीवन में कहीं भी व्यवहार नहीं होता। √—१ अथवा ऋण मूलक संख्याएँ ऐसी ही हैं। यूक्लिड का यह कथन कि सरल रेखा में मोटाई नहीं होती अथवा बिन्दु की उपस्थिति मात्र होती है, कोई आकार नहीं होता, दैनिक जीवन में दिखाई पड़ने वाली चीजों से भिन्न चित्र उपस्थित करते हैं। ऐसा नहीं है कि गणित की इन संख्याओं अथवा तथ्यों का सोचे-विचारे बिना प्रयोग हुआ हो। बात यह है कि गणित में इन संख्याओं अथवा तथ्यों द्वारा हम संख्याओं अथवा वस्तुओं के अदृश्य पक्ष को भी जानना चाहते हैं, जिनके प्रति व्यवहारिक जगत सुप्त सा रहता है।

कभी-कभी गणितज्ञ अपने ज्ञान के ऊपर बहुत इतराते हैं। विशुद्ध गणितज्ञों को गर्व है कि उनकी शोधों में उनके नामों की छाप नहीं रहती, वे संसार से दूर रह कर एक कोने में बैठ कर ऐसे हल प्रस्तुत करते हैं जिनका उपयोग बाद में वैज्ञानिक करते हैं और प्रयोगों द्वारा उनकी पुष्टि पाते हैं। उनका कथन है कि आज नहीं तो कुछ समय बाद उनकी शोधों का उपयोग अवश्य होता है। यह कथन यथार्थ है। इसमें सन्देह नहीं कि अनेक वैज्ञानिक इन गणितज्ञों की शोधों से लाभान्वित होंगे। परन्तु यह सोचना भ्रामक होगा कि पृथ्वी पर पहले पहल ऐसे गणितज्ञ उत्पन्न हुये होंगे। पहले पहल तो व्यवहारिक पुरुष हुये जिन्होंने वाह्य जगत का ज्ञान प्राप्त करके ऐसी विधियाँ निकाली जो कार्यान्वित हो सकें। विशुद्ध गणितज्ञ वाह्य जगत का अध्ययन नहीं करते। वे तो किसी एकान्त कक्ष, वाचनालय या पुस्तकालय में बन्द रहकर व्यवहारिक पुरुषों के ग्रंथों का अवलोकन करते हैं। कभी कभी उन्हें ऐसी विधियां प्राप्त हो जाती हैं जिनके द्वारा इन व्यवहारिक पुरुषों के विचार सूत्रवद्ध किये जा सकते हैं।

———

सार संकलन

रेडिय-सक्रिय धूल और सम्भावित दुष्प्रभावों का विशद विश्लेषण

यह बात तो विवाद से परे है कि युद्धकाल में रेडिय-सक्रिय धूल धरती पर सामूहिक विनाश और मृत्यु का ताण्डव उपस्थित कर सकती है। इस प्रकार की स्थिति में बड़ा और शक्तिशाली आणविक विस्फोट होने के कुछ घण्टे बाद ही अत्यधिक रेडिय-सक्रिय धूल धरती पर गिरने लगती है। यह रेडिय सक्रिय धूल और कुछ नहीं, अत्यधिक उग्र रेडिय-सक्रियता से युक्त वे रज-कण होते हैं, जो प्रचण्ड आणविक विस्फोट होने पर वायुमण्डल में काफी ऊँचाई तक पहुँच जाते हैं और फिर धीरे-धीरे हवा के रुख पर धरती पर बरस पड़ते हैं।

एक और प्रकार की रेडिय-सक्रिय धूल भी होती है, जो रेडिय-सक्रियता की दृष्टि से बहुत खतरनाक नहीं होती, क्योंकि यह पहली प्रकार की रेडिय-सक्रिय धूल की तुलना में काफी देर से पृथ्वी पर वापस गिरती है। इसमें रेडिय-सक्रियता की मात्रा अपेक्षाकृत बहुत कम होती है। यह रेडियसक्रिय धूल वे सूक्ष्म रजकण होते हैं, जो पृथ्वी के वाह्य वायु मण्डल में दीर्घ काल तक बने रहते हैं। बड़े आणविक विस्फोटों अथवा उद्जन विस्फोटों से उत्पन्न यह रेडिय-सक्रिय धूल कई वर्षों तक धरातल पर गिरती है। इस प्रकार की रेडिय-सक्रिय धूल से आकस्मिक मृत्यु का भय नहीं रहता। यदि इसका कोई दुष्प्रभाव पड़ता है, तो उसे प्रकट होने में कई दशक और सम्भवतः कई पीढ़ियों का समय लग सकता है। यही दूसरी प्रकार की रेडिय-सक्रिय धूल आज वैज्ञानिकों के लिए विवाद का प्रमुख विषय बन गई है।

रेडिय-सक्रिय पदार्थ की परिभाषा

रेडिय-सक्रिय पदार्थ उन्हें कहते हैं, जिनके अणु अस्थिर या विघटनशील होते हैं तथा जो विखण्डित होने की प्रक्रिया के मध्य अत्यधिक गतिशील कणों अथवा अत्यधिक शक्तिशाली शक्ति-किरणों का निस्सरण करते हैं। रेडिय-तरंगों के समान रेडियसक्रियता भी सामान्य रूप से अनुभव नहीं की जा सकती, यद्यपि अत्यधिक उग्र मात्रा में इसका निस्सरण होने पर ऐसे ताप और प्रकाश की सृष्टि होती है, जैसा हमें नक्षत्रों में दृष्टि-गोचर होता है। इसके फलस्वरूप ऐसे धीमे प्रकाश-पुंज की भी सृष्टि हो सकती है, जैसा प्रकाश-पुंज चट्टानों के विशाल समूह से शुद्ध रेडियम को विलग करते समय मैडम क्यूरी

ने देखा था। अपनी अत्यधिक प्रचंड शक्ति के बल पर रेडियसक्रियता मानव-शरीर के सूक्ष्म कोषों को भेद सकती है और इस प्रक्रिया में उन 'सूक्ष्म कोषों' में रासायनिक परिवर्तनों को जन्म दे सकती है।

रेडिय-सक्रियता का आदि काल से अस्तित्व

रेडिय-सक्रियता का प्रादुर्भाव अणु बम से नहीं हुआ है। यह आदि काल से ही सर्वत्र वर्तमान रही है। चट्टानों में, मिट्टी में, हमारे भोजन में तथा हमारे शरीर में अनेक प्रकृतिजन्य रेडिय-सक्रिय पदार्थ वर्तमान रहते हैं। हमारे शरीर में विद्यमान रेडिय-सक्रिय तत्वों में सबसे अधिक रेडियसक्रिय तत्व पाटैसियम होता है। अन्य रेडिय-सक्रिय तत्व-जैसे रेडिय-सक्रिय कार्बन, यूरेनियम, रेडियम इत्यादि भी समस्त प्राणियों के शरीर में किसी न किसी परिमाण में विद्यमान रहते हैं। इसके अतिरिक्त हमारे शरीरों पर बाहर उत्पन्न होने वाली रेडिय-सक्रियता की भी अनवरत रूप से 'वर्षा' हो रही है। उदाहरणार्थ, अन्तरिक्ष किरणों द्वारा उत्पन्न रेडिय-सक्रियता।

इस रेडिय-सक्रियता की मात्रा में हर स्थान पर अन्तर पाया जाता है। उदाहरणार्थ, ऐसे लोगों पर, जो चूने की अधिकता वाले क्षेत्रों में निवास करते हैं, उन लोगों की अपेक्षा कम रेडिय-सक्रियता होगी, जो ग्रेनाइट प्रधान क्षेत्रों के निकट रहते हैं। क्योंकि यह तथ्य सर्वविदित है कि ग्रेनाइट एक अत्यधिक रेडिय-सक्रिय पदार्थ है। इसी प्रकार समुद्र की सतह से १ मील की ऊँचाई पर स्थित डेनवर (कोलोराडो, अमेरिका) में रहने वाले निवासियों को लौसएंजलैस (कैलिफोर्निया) अथवा बोस्टन (मैसाचूसेट्स) में रहने की अपेक्षा अधिक रेडियसक्रियता शोषित करनी पड़ती है, क्योंकि लौसएंजलेस और बोस्टन में अन्तरिक्ष से आने वाले विकिरण की मात्रा उतनी तीव्र नहीं रहती, जितनी डेनवर में।

मानव निर्मित विकिरण

मानव निर्मित विकिरण का आविष्कार इस सदी के प्रारम्भ में एक्स-रे के आविष्कार और चिकित्सा में रेडियम से उपयोग के साथ हुआ। पिछले ५० वर्षों में मनुष्य द्वारा कृत्रिम साधनों द्वारा उत्पन्न विकिरण का अधिकाधिक उपयोग किया गया है और इस समय तो स्थिति यह है कि अनेक देशों में चिकित्सा के सिलसिले में मनुष्य को विकिरण की इतनी मात्रा शोषित करनी पड़ती है, जितनी वह प्राकृतिक स्रोतों से अन्यथा ग्रहण करता है।

कृत्रिम रेडिय-सक्रियता—रेडियसक्रिय धूल

पिछले दशक में मनुष्य ने कृत्रिम रूप से रेडिय-सक्रियता का निर्माण करने का एक और स्रोत खोज लिया है। यह स्रोत और कुछ नहीं, वह रेडियसक्रिय धूल है, जिसका प्रादुर्भाव आणविक शस्त्रास्त्रों का परीक्षण करने के फलस्वरूप होता है। एक आणविक

विस्फोट के फलस्वरूप रेडियसक्रिय धूल बड़े परिमाण में उड़ती है। इसमें से कुछ रेडिय-सक्रिय धूल तो बहुत दूरी तक पहुँच जाती है और वायुमण्डल से धरातल पर पूरी तरह उतरने में उसे कई वर्ष लग सकते हैं। जब यह धूल धरातल पर उतरती है, तो पौधों की सतह पर जम जाती है और भोजन के साथ हमारे उदर में पहुँच जाती है। यह भी हो सकता है कि यह धूल खेतों में गिर मिट्टी में मिल जाए और इस मिट्टी पर उगने वाले पौधों की जड़ें रेडियस-क्रियता को शोषित कर लें। इन पौधों द्वारा उत्पन्न भोजन-सामग्री मनुष्यों के उपयोग में सकती है और यह भी सम्भव है कि पशु उन्हें खाकर अपने दूध और मांस के माध्यम से मनुष्यों को भी रेडियसक्रियता से प्रभावित कर दे।

संसार में अब तक आणविक विस्फोटों के फलस्वरूप जितनी रेडियसक्रिय धूल उत्पन्न हुई है, उसमें से लगभग उतनी ही रेडिसक्रिय धूल वायुमंडल में विद्यमान है, जितनी उतर कर धरातल पर छा गई है। इस शेष रेडियसक्रिय धूल को धरातल पर गिरने में कम से कम दो या तीन वर्ष लग जाएँगे। यदि भविष्य में और अधिक आणविक परीक्षण न हों, तब भी धरातल पर गिरने वाली रेडियसक्रिय धूल की मात्रा में दुगनी वृद्धि हो जाएगी।

रेडिय-सक्रियता का परिमाण

रेडिय-सक्रियता की बड़ी मात्रा की जीवाणुओं पर होने वाली प्रतिक्रिया के बारे में लोगों को पर्याप्त जानकारी है। आणविक युद्ध की स्थिति में रेडियसक्रियता का शिकार होने पर प्राणी को मृत्यु के मुख में जाने में अधिक देरी नहीं लगती। इससे कुछ कम उग्र रेडियसक्रियता होने पर, उदाहरणार्थ किसी अणुशक्ति कारखाने में कोई दुर्घटना होने पर निःसृत होने वाली रेडियसक्रियता; एक पीढ़ी पूर्व घड़ियों के डायलों पर रेडियम मिश्रित रंग लगाने वाली महिलाओं तथा प्रारम्भ में एक्स-रे यन्त्र के सम्बन्ध में परीक्षण करने वाले कार्यकर्त्ताओं द्वारा ग्रहण की जाने वाली रेडियसक्रियता के भी अनेक हानिकारक प्रभाव पड़ सकते हैं।

उग्र विकरण का शरीर के कुछ विशेष अंगों जैसे नेत्रों, रक्त-कोषों और शुक्राणुओं पर अधिक हानिकारक प्रभाव पड़ सकता है। इन में से एक सबसे अधिक हानिकारक प्रभाव आजकल 'ल्यूकीमिया' (रक्त का कैंसर) के नाम से विख्यात है। यह रोग हड्डियों में वर्तमान उस मज्जा के विकरण प्रभावित होने से होता है, जिसमें नए रक्त कोषों का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त विकिरण प्रभावित होने वालों की हड्डियों में कैंसर, प्रजनन शक्ति की हीनता तथा अन्य प्रकार के भयंकर और असाध्य रोग हो जाते हैं। अणु बम बर्षा के बाद हिरोशिमा और नागासाकी के बचे हुये लोग तथा साइक्लोट्रोन यन्त्र के प्रारंभिक संचालक ऐसे ही रोगों के शिकार हुए थे।

दो अत्यधिक हानिकारक तत्व

रेडिय सक्रिय धूल में पाये जाने वाले तत्वों में दो तत्व विशेष महत्वपूर्ण हैं। इन में से एक स्ट्राँनशियम ६० है, जो रासायनिक दृष्टि से कैलसियम के समान होता है।

यह तत्व शरीर की हड्डियों में एकत्र हो जाता है और अधिक परिमाण में हो जाने पर मनुष्य हड्डियों के कैंसर अथवा 'ल्यूकीमिया' से ग्रस्त हो जाता है। दूसरा तत्व है सीजियम-१३७, जो रासायनिक दृष्टि से पोटैसियम से मिजिलता-जुलता है। इसके तीक्ष्ण विकिरण के फलस्वरूप व्यक्ति के अन्दर विद्यमान वंश-निर्धारित तत्वों में ही मौलिक परिवर्तन हो जाता है और पुनः उन दूषित परिवर्तनों से आने वाली सन्तानें भी प्रभावित होती चली जाती हैं।

स्ट्रोनशियम-९० और सीजियम-१३७ तत्व प्रकृति में नहीं पाये जाते। एक प्रकार से इन दोनों की उत्पत्ति अणु युग के बेकार बच रहने तत्वों के फलस्वरूप होती है। यद्यपि १० वर्ष पूर्व इन तत्वों का पूर्ण अभाव था, परन्तु आज प्रत्येक प्राणी के शरीर में इन की थोड़ी-मात्रा अवश्य विद्यमान रहती है।

विकिरण की तीव्रता में कमी होने पर विकिरण के हानिकारक प्रभाव भी अपेक्षाकृत अधिक देरी में घटित होते हैं। यही बात विषों के सम्बन्ध में भी पूरी तरह से लागू होती है, प्राकृतिक जगत में साधारणतया पायी जाने वाली रेडिय-सक्रियता से अथवा शान्तिकाल में गिरने वाली रेडियसक्रिय धूल उत्पन्न विकरणजनित दुष्प्रभावों का अध्ययन करने के लिए परीक्षण के तौर पर पशुओं के शरीर में प्रविष्ट कराई जाती है।

इसके आगे विकिरण के सम्बन्ध में अभी तक हमें कोई विशेष जानकारी नहीं है। उदाहरणार्थ, हम यह नहीं जानते कि विकिरण जीवित सूक्ष्म कोषों को किस प्रकार हानि पहुँचाता है। इस क्षेत्र में सबसे बड़ा प्रश्न तो यह है कि क्या न्यून विकरण-मात्रा भी जैसे शान्तिकाल में गिरने वाली रेडिय-सक्रिय धूल अथवा चिकित्सा-कार्यों में विकरण शक्ति का उपयोग-मनुष्य के शरीर को हानि पहुँचाते हैं। उदाहरणार्थ कुछ वैज्ञानिकों ने यह दावा किया है कि स्ट्रॉनशियम-९० की न्यूनतम मात्रा भी 'ल्यूकीमिया' रोग उत्पन्न कर सकती है। इस प्रश्न के सही समाधान के लिए अभी हमें देर तक परीक्षा करनी पड़ेगी।

परीक्षणों द्वारा विकिरण के दुष्प्रभावों का अध्ययन

विकिरण के प्रभावों का अध्ययन करने के सम्बन्ध में हम पालतू पशुओं पर किए गए परीक्षणों से प्राप्त परिणामों का उपयोग कर सकते हैं, लेकिन इस प्रकार के परीक्षणों में विकिरण की कुछ अधिक मात्रा का उपयोग किया जाना चाहिए। यह निर्णय करने के लिए कि शान्ति काल में गिरने वाली रेडिय-सक्रिय धूल से अथवा प्रकृति से जो रेडिय सक्रियता निःसृत होती है, उसका भी मानव-शरीर पर क्या दुष्प्रभाव पड़ता है, परीक्षण के लिए बहुत अधिक पालतू पशुओं की आवश्यकता पड़ेगी। व्यय और पशुओं की संख्या, इन दोनों ही दृष्टियों से इस प्रकार के परीक्षण करना समीचीन नहीं होगा।

सामान्य न्यून विकिरण-मात्रा पर विकिरण से दुष्प्रभाव १,००,००० अथवा १०,

१०,००,००० पशुओं में केवल एक बार दृष्टिगोचर होंगे। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह सूक्ष्म परिवर्तन विकिरण के कारण सम्भव हुआ अथवा अन्य कारणों जैसे भोजन, औषधि इत्यादि का उपयोग।

रेडिय-सक्रिय धूल के सम्बन्ध में इस समय जो विवाद चल रहा है, उसके मूल में यही तथ्य निहित है कि विकिरण की न्यून मात्रा के दुष्प्रभावों के बारे में हमें कोई निश्चित और सही जानकारी नहीं है। लेकिन इस सम्बन्ध में भी वैज्ञानिकों में मतभेद उतना अधिक नहीं, जितना कि अधिकांश लोगों को बताया गया है। जनता को इस सम्बन्ध में कुछ तो इस लिए भ्रान्ति है, क्योंकि एक जटिल और गूढ़ विषय होने के कारण समाचारपत्रों में इसके सम्बन्ध में बिल्कुल सही सूचना देना सरल नहीं होता। जब हम सन्तानों के कल्याण के लिए माताओं की व्याकुलता, और आणविक युद्ध के फलस्वरूप विश्वव्यापी विनाश की आशंका जैसे भावपूर्ण उद्गारों की लहर में बह जाते हैं, तो सारा प्रश्न ही घपले में पड़ जाता है।

अधिकतम दुष्प्रभाव

यद्यपि इस सम्बन्ध में अभी कोई एक मत स्थापित नहीं है कि रेडियो-सक्रिय धूल में निहित विकिरण के क्या वास्तविक दुष्प्रभाव पड़ सकते हैं, फिर भी अधिकतम दुष्प्रभावों की सम्भावना के बारे में वैज्ञानिकों में मतैक्य है। उदाहरणार्थ, आणविक विकिरण के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए संयुक्तराष्ट्र-संघ द्वारा १५ राष्ट्रों की समिति नियुक्त की गई थी, उस ने यह अनुमान प्रस्तुत किया है कि १९४८ तक हुए आणविक विस्फोटों के फलस्वरूप निःसृत रेडिय-सक्रिय धूल से ल्यूकीमिया रोग से ग्रस्त रोगियों की संख्या में कितनी वृद्धि होगी। इस समिति में संसार के विख्यात विकरण-विशेषज्ञ थे। इन वैज्ञानिकों के अनुसार प्रति वर्ष २ हजार व्यक्ति इस रोग से ग्रस्त हो सकते हैं। तात्पर्य यह कि संसार की तीन अरब जनसंख्या में से १० लाख पीछे एक व्यक्ति के ल्यूकीमिया रोग से पीड़ित होने की अशंका है।

दो भिन्न मत

वे वैज्ञानिक, जो यह कहते हैं कि विकरण के दुप्रभावों से ग्रस्त व्यक्तियों की संख्या में कोई वृद्धि नहीं होगी, यह मानते हैं कि एक निश्चित मात्रा में विकिरण के ग्रहण करने पर किसी व्यक्ति के लिए ल्यूकीमिया रोग से पीड़ित होने की आशंका रहती है। उनका कहना है कि अभी तक व्यक्ति द्वारा ग्रहण किये जाने वाले विकिरण की मात्रा इस स्तर तक नहीं पहुंची है। लेकिन दूसरी ओर कुछ लोगों का कहना है कि विकिरण की कोई भी मात्रा खतरे से खाली नहीं है। प्रजनन के क्षेत्र में विकरण के फलस्वरूप होने वाले सम्भावित परिवर्तनों के बारे में भी इसी प्रकार की अटकलें लगाई जा रही हैं।

संक्षेप में, यदि विकिरण के फलस्वरूप होने वाली हानियाँ उत्पन्न होने वाला दुष्प्रभाव इतना न्यून है कि उसे मापा नहीं जा सकता, तो किसी व्यक्ति को अपने या

अपने परिवार के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में किसी प्रकार चिन्तित नहीं होना चाहिए। औसत व्यक्ति विकिरण के प्रभावों के बारे में इतना चिन्तित नहीं होगा कि वह अपना घर केवल इस लिए छोड़ दे कि यह ग्रैनाइट की चट्टानों के पास स्थित है।

यदि हम यह मान लें कि एक मात्रा-विशेष तक ही रेडिय-सक्रियता दूषित प्रभाव उत्पन नहीं करती, तो अवस्था यह होगी कि हर नये विस्फोट के साथ खतरे की सम्भावना भी बढ़ती जायगी, क्योंकि वातावरण में रेडिय-सक्रियता की मात्रा बढ़ जायगी। यदि आणविक परीक्षण पृथ्वी के गर्भ में या बाह्य अन्तरिक्ष में किए जायें, तो सम्भावित खतरे बहुत कुछ घट जायेंगे, यद्यपि इसके फलस्वरूप नई समस्यायें उठ खड़ी हो सकती हैं।

वस्तुतः, रेडियसक्रिय धूल का खतरा उस व्यापक और वास्तविक खतरे का एक सूक्ष्मतम प्रतीक मात्र है, जो आज समस्त मानव समाज के समक्ष उपस्थित है —यह खतरा है युद्ध का। रेडिय-सक्रिय धूल का प्रत्येक कण हमें यह याद दिलाता है कि आज अणु-बमों का विशाल भण्डार मौजूद है और यदि युद्ध होने पर इनका उपयोग हुआ, तो लाखों वर्ग मील भूमि से जीवन का पूरी तरह लोप हो जायगा। आणविक युद्ध जनित रेडियसक्रिय धूल का खतरा मानव सभ्यता के समक्ष उपस्थित सबसे बड़ा और भयानक खतरा है।

---

१. अमेरिकी वैज्ञानिकों द्वारा जून मास में प्राप्त की गई कुछ उल्लेखनीय वैज्ञानिक सफलताएँ

वैज्ञानिक गतिविधियों की दृष्टि से जून १६६० एक अत्यन्त उल्लेखनीय महीना रहा है। लेकिन इसका महत्व उस समय और भी बढ़ गया, जब अमेरिकी वैज्ञानिकों को यह आश्चर्यजनक समाचार सुनने को मिला कि एक ऐसे नए सिद्धान्त की खोज की गई है, जिस से एलेक्ट्रोन और प्रोटोन की बनावट का अध्ययन करना पहली बार सम्भव हो गया है।

कोलम्बिया विश्वविद्यालय के प्रख्यात भौतिक शास्त्री श्री लौयड मौज ने इस नवीन सिद्धान्त की खोज की है। उनका कहना है कि स्वर्गीय वैज्ञानिक श्री आइन्स्टीन के सापेक्षवाद के सिद्धान्त में जो कभी रह गई थी, उसे इस सिद्धान्त की खोज ने पूरा कर दिया है। यद्यपि इस नवीन सिद्धान्त का ठीक प्रकार से वर्णन गणित की भाषा द्वारा ही किया जा सकता है, फिर भी श्री मौज के कथनानुसार एलक्ट्रोन और प्रोटोन गुरुत्वाकर्षण शक्ति के पुंज हैं। उनका कहना है कि अभी तक वैज्ञानिकों को इन आधारभूत कणों का कोई ऐसा नमूना सुलभ नहीं था, जो वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित हो। अतएव इस प्रकार के नमूने के अभाव में वे अभी तक इन आधारमूत कणों को विभाहीन विन्दुओं के रूप में मानते थे। लेकिन अब वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित नमूना सुलभ हो जाने के कारण वैज्ञानिकों के लिये वस्तु (मैटर) के आधारभूत स्वरूप की जानकारी प्राप्त करना सम्भव हो जाएगा।

इस नवीन सिद्धान्त के विकास के फलस्वरूप ऐसे अनेक प्रश्नों को हल दिया जा चुका है, जो अब एक जटिल पहेली बने हुए थे। इनमें से एक यह है कि गुरुत्वाकर्षण शक्ति एक प्रकार का सरेस है, जो एलेक्टोनों और प्रोटोनों को खण्ड-खण्ड होकर छितरने से बचाए रहता है यह खोज न्यूटन के ३०० वर्ष पुराने गुरुत्वाकर्षण शक्ति सम्बन्धी सिद्धान्त की प्रमाणिकता को भी सन्देह में डाल देती है, क्योंकि इसके द्वारा इतनी प्रचण्ड गुरुत्वाकर्षण शक्ति से युक्त कणों का अस्तित्व प्रकाश में आया है, जिनके बारे में न्यूटन का सिद्धान्त कोई प्रकाश नहीं डाल पाता।

६ अरब प्रकाश-वर्ष की दूरी पर स्थित नक्षत्र का चित्र

अमेरिका के ज्योतिषशास्त्री पालोमार स्थित वेधशाला में पहली बार ६ अरब प्रकाश-वर्ष की दूरी पर स्थित नक्षत्र का चित्र उतारने में सफल रहे हैं। इसके पूर्व अधिक से अधिक २ अरब प्रकाश-वर्ष की दूरी पर स्थित नक्षत्रों के चित्र ही टेलिस्कोप द्वारा उतारे जा सके थे। इस नए चित्र को खींचने के लिए नक्षत्रों के प्रकाश को ग्रहण करने वाले एक अत्यधिक सूक्ष्म और संवेदनशील नवीन यन्त्र का उपयोग दिया गया, जिसे फोटो मल्टीप्लायर अटेचमेण्ट विधि के नाम से पुकारते हैं।

इस चित्र को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि आज से ६ अरब प्रकाश-वर्ष पूर्व उक्त नक्षत्र प्रकाश की आधी गति से पृथ्वी से दूर भाग रहा था। यह चित्र उसी प्रकाश से तैयार किया गया है, जो ६ अरब प्रकाश-वर्ष पूर्व उक्त नक्षत्र से चला था। ज्योतिषशास्त्रियों का कहना है कि आज तक इतनी अधिक गति वाला और कोई नक्षत्र उन्हें नहीं दृष्टि हुआ है।

इस नक्षत्र का पता सब से पहले कैम्ब्रिज (इंग्लैण्ड) स्थित रेडियो-टेलिस्कोप और कैलिफोर्निया इन्स्टिट्यूट ऑव टैक्नोलॉजी की वेधशाला को लगा था। ऐसा विश्वास किया गया था कि दो आकाशगंगाए आपस में टकरा गई और उन्होंने एक नक्षत्र जैसा रूप धारण कर लिया है। रेडियो उपकरणों की सहायता से प्राप्त जानकारी के आधार पर पलोमार वेधशाला स्थित टेलिस्कोप के संचालक नक्षत्र के स्थान का पता। खगाने और उस का चित्र उतारने में समकर्थ हुए।

नवीन औषधियों और चिकित्सा-उपकरणों की खोज

'अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन' की वार्षिक बैठक में जिन खोजों और आविष्कारों की घोषणा की गई, वे इस प्रकार हैं :—

(१) खून के थक्के पिघलाने वाली औषधिः—अभी तक डाक्टरों को ऐसी औषधियां ही ज्ञात थीं, जो खून में थक्के न पड़ने देने के लिए प्रयुक्त की जाती थीं। रक्त धमनियों में खून के थक्के पड़ जाने से रक्त-प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है और प्रति वर्ष हजारों व्यक्तियों को इस के कारण अपने प्राण गँवाने पड़ते हैं। अब वैज्ञानिकों ने एक ऐसी औषधि तैयार की है, जो खून के थक्कों को पिघला देने की क्षमता रखती है।

(२) आंख की चोट का इलाज करने वाला यन्त्रः—एक ऐसे सूक्ष्म यन्त्र का आविष्कार किया गया है, जिसका उपयोग आंख की गम्भीर चोटों के इलाज के लिए किया जा सकता है। इस यन्त्र से निःसृत होने वाली प्रकाश-किरणों की सहायता से नेत्र चिकित्सक आंखों में हो जाने वाले फोड़ों का आपरेशन करने, पुतलियों में हो जाने वाले छिद्रों को बन्द करने तथा दृष्टि-दोष उत्पन्न करने वाले अन्य अनेक नेत्र-रोगों का इलाज करने में समर्थ हो गए हैं।

(३) ग्लूकोमा नामक असाध्य नेत्र-रोग का निदान करने वाला सूक्ष्म चिकित्सा-उपकरण:—इस उपकरण की सहायता से ग्लूकोमा नाम नामक असाध्य नेत्र-रोग का आरम्भिक अवस्था में ही पता लगाया जा सकता है और इस प्रकार असाध्य होने से पहले ही उस पर नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता है। यह इस कार्य के लिए अब तक प्रयुक्त होने वाले उपकरणों से अधिक उत्तम, सही और सरल है। इसके उपयोग के समय रोगियों को भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। इसका कार्य आंख के अन्दर बढ़ने वाले दबाव को मापना होता है, क्योंकि ग्लूकोमा रोग का पहला लक्षण यही होता है।

(४) रेडियोसक्रिय अनुसूचक यन्त्र:—इस यन्त्र की सहायता से यह भविष्यवाणी की जा सकेगी कि क्या किसी व्यक्ति को हृदय रोग से पीड़ित होने का आसन्न खतरा है। इस यन्त्र में फिट 'रेडियेशन काउण्टर' की सहायता से हृदय-कक्षों में रक्त-प्रवाह को मापा जा सकेगा। इस के पूर्व भी रक्त-प्रवाह की माप करने के लिए कई अन्य विधियों का सहारा लिया गया है, परन्तु हृदय के बाऐं कक्ष में रक्त के प्रवाह का माप करने में उक्त विधि अन्य सभी विधियों से प्रभावशाली और सही सिद्ध हुई है।

(५) इस बात के वैज्ञानिक प्रमाण एकत्र करने में पहली बार सफलता प्राप्त हुई है कि भय और क्रोध के फलस्वरूप मनुष्य मस्तिष्क के पक्षाघात से पीड़ित हो सकता है:—जानवरों पर किए गए परीक्षण से सिद्ध हुआ है कि उत्तेजना होने पर रक्त में एडरेनेलिन नामक हारमोन की अधिकता हो जाती है, जिसके फलस्वरूप रक्त की धमनियां सहसा सिकुड़ जाती हैं। यदि यह सिकुड़न अधिक होती है, तो मस्तिष्क में रक्त का प्रवाह पहुँचना रुक जाता है और फलस्वरूप व्यक्ति मस्तिष्क-पक्षाघात रोग से पीड़ित हो जाता है।

(६) शरीर में प्रजनन शक्ति नाशक पदार्थों की उत्पत्ति:—भारतीय, अमेरिकी और डच वैज्ञानिकों के एक दल ने अनुसन्धान द्वारा इस बात का पता लगाया है कि प्रजनन शक्ति से हीन स्त्री-पुरुषों के शरीर में कुछ ऐसे पदार्थों का निर्माण होता रहता है, जो शुक्राणुओं और रजकणों की प्रजनन क्षमता को नष्ट कर देते हैं।

———

उत्तरदायी कौन ?

आये दिन यह प्रश्न उपस्थि होता रहता है कि भारत के अनेक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक विदेशों में जाकर वहाँ से लौटना क्यों नहीं पसन्द करते ? इसके उत्तर में हमारे लोकप्रिय प्रधान मन्त्री नेहरू का यह कथन है कि सम्भवत: भारत में उन्हें उतने साधन प्राप्त नहीं जिनके वे विदेशों में अभ्यस्त हो चुके हैं। यह दलील कुछ अंशों में ही ठीक है। हमारा देश अभी इतनी उन्नति पर नहीं कि समस्त प्रकार के आधुनिकतम वैज्ञानिक उपकरणों को निर्मित कर सके अथवा उपलब्ध कर सके। इसके मूल में देश की आर्थिक विपन्नता ही है। जब तक राष्ट्र की आर्थिक उन्नति नहीं हो पाती, धनाभाव के कारण पर्याप्त साधन नहीं जुटाये जा सकते। इतने पर भी हमारी सरकार ने अनेक राष्ट्रीय प्रयोगशालायें स्थापित की हैं जिनमें आधुनिकतम उपकरणों का प्रबन्ध है और उनमें कतिपय सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों को नियुक्तियाँ भी की गई हैं। परन्तु क्या ये साधन सबों को उपलब्ध हैं ? नहीं।

आर्थिक दृष्टिकोण से समस्या का यहीं हो जाता। जितने भी वैज्ञानिक विदेशो में हैं वे अधिक वेतन चाहिते हैं, जो उनकी कुशलता एवं योग्यता को दृष्टि में रखते हुये संगत ही कहा जा सकता है। परन्तु कुछेक को छोड़कर अभी तक किसी को सन्तोषजनक वेतन नहीं दिया जा सका, जो सचमुच सबों की आलोचना का विषय बना हुआ है।

परन्तु क्या वेतन और साधनों की उपलब्धि—इन दोनों की पूर्ति कर दी जाय तो भारतीय वैज्ञानिक देश में रहकर निर्विघ्नरीति से कार्य कर सकेंगे ? इस प्रश्न का उत्तर अत्यन्त ही जटिल है। हमारे देश में राजनीति का प्रभाव समस्त क्षेत्रों में प्रवेश पा चुका है। वैज्ञानिक क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं। सबों को विदित है कि दिल्ली के वैज्ञानिक जोसेफ को ऐसी ही नीतियों से ऊब कर प्राणों की आहुति देनी पड़ी है। वैज्ञानिक क्षेत्र में अनुसन्धानों एवं प्रगतिशील शोधों में स्पर्धा तो शोभा पाती है परन्तु जब पद मात्र के लिये कूटनीति का सहारा लिया जाता है तो बहुतों को हानि पहुँचती है। शायद यह मनोवृति विदेशियों तक को विदित हो चुकी है। 'साइंस कांग्रेस' में प्रतिवर्ष जिस प्रकार की संकुचित मनोवृत्तियों का प्रदर्शन होता है उससे प्रभावित होकर इंगलैंड के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक हाल्डेन ने "हिन्दू" पत्र में (७ फरवरी १९६०) एक लेख प्रकाशित किया है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

संक्षेप में, उनका कहना है कि अल्पवयस्क वैज्ञानिकों को कार्य करने का अवसर ही नहीं प्रदान किया जाता। उन्हें ऐसे कार्यों में व्यस्त रखा जाता है जो उनकी रुचि के प्रतिकूल होता है अथवा जिनमें उनकी योग्यता का कोई उपयोग नहीं हो पाता। उदाहरण के रूप में वे एक ऐसे वैज्ञानिक कार्यकर्ता का उल्लेख करते हैं जिसको ४०० रु० प्रतिमास वेतन देकर काम लिया जाता था दर्शकों को प्रयोगशाला के भीतर घुमाने तथा परिचय देने का।

उनका कथन है कि भारत के ख्यातिलब्ध वैज्ञानिक तक नवयुवक वैज्ञानिकों से ईर्ष्या रखते हैं। यदि वे कोई महत्वपूर्ण कार्य भी करते हैं तो उनका नाम न देकर अपने पदों का लाभ उठाने वाले गुरुजन वैज्ञानिक स्वयं यश कमाते हैं। इस प्रसंग में वे एक ऐसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक की ओर संकेत करते हैं जिनकी प्रयोगशाला से एक वर्ष के भीतर ५० शोध निबन्ध प्रकाशित हुये परन्तु उनमें से एक के साथ भी सहयोगियों का नाम नहीं प्रकाशित हुआ। सचमुच यह अत्यन्त शोच्य वस्तुस्थिति है। विश्व के किसी भी भाग में इस प्रकार का अन्याय सह्य नहीं अत: जब किसी विदेशी को ऐसे तथ्य ज्ञात होते हैं तो वह दहल जाता है और ऐसी स्थिति में यदि वह कटु बन जाय तो इसमें बुराई ही क्या है? आखिर कब तक इस प्रकार की अन्धाधुन्धी को प्रश्रय दिया जाता रहेगा?

निश्चित है कि वह समय दूर नहीं जब हमारे प्रगतिशील नवयुवक वैज्ञानिक अपने प्रति हुये अन्यायों एवं अत्याचारों का बदला लेंगे। कुछ हद तक तो यह कहा जा सकता है कि अब भण्डाफोड़ होने लगा है। आखिर कब तक प्रतिभा का दमन किया जावेगा? प्रतिभा में अपार वेग होता है। वह दबाने से और स्पष्ट एवं प्रखर बनती है। नवयुवक वैज्ञानिक जो नूतनतम ज्ञान से युक्त एवं अपने विषय के पारंगत हैं अपने त्रासकों को अवश्य ही मिटते देखेंगे। यदि किसी प्रकार से सरकार भी ऐसे कुकृत्यों एवं कुप्रवृत्तियों में वरेण्यों का साथ देती है तो इतना और निश्चित है कि नवयुवक वैज्ञानिकों को देश छोड़ कर भागने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं।

हमारे देश में वैज्ञानिकों के मध्य में जो मतैक्य एवं विषमता फैली हुई है उसका मूल कारण है एक वर्ग द्वारा अपनी वरेण्यता की घोषणा और दूसरे वर्ग का दमन। अधिकारी चाहे योग्य हो या नहीं वह अपना अधिकार समझता है कि नीचे रहने वाले सभी उसकी प्रशंसा करें और जितना भी कार्य हो वह उसके यश में वृद्धि करे न कि शासित वर्ग के। कोई भी अधिकारी नवीन पीढ़ी को न तो प्रोत्साहन देना पसन्द करता है और न उसकी स्वच्छन्दता को ही देखना चहाता है। वह यही प्रयत्न करता है कि यदि शासित व्यक्ति योग्य है तो उसको ऐसे कार्यों में लगाया जाय जहाँ उसकी योग्यता निष्फल सिद्ध हो। इस प्रकार से न जाने, प्रतिभा का कितना शमन किया जा चुका है। एकबार निराश होने पर सदा के लिये नवयुवक वैज्ञानिक का उत्साह जाता रहता है, उसकी योग्यता निष्फल सिद्ध होती है और वह विक्षिप्त सा हो जाता है। परन्तु सबों के साथ यही होता हो, ऐसी बात नहीं। कतिपय नवयुवकों को उनकी योग्यता से परे प्रत्साहन एवं संवर्द्धन प्राप्त होता है जो पुनः एक नवीन प्रकार का विषाक्त वातावरण उत्पन्न करता है। जो

अधिक योग्य हैं, अथवा अनुभवी है, वे पीछे रह जाते हैं और ईर्ष्या तथा द्वेष के शिकार होते हैं। ऐसी शृंखला सरकारी क्षेत्रों तक ही सीमित न रहकर विश्वविद्यालय जैसी संस्थाओं में चालू हो गई है।

हाल्डेन को साइंस कांग्रेस के अवसर पर कार्यक्रमों में होने वाले परिवर्तन तथा अध्यक्षपदीय भाषण असन्तोषजनक लगे। उनका कथन है कि पूर्व निश्चित कार्यक्रमों में यदि किसी प्रकार का भी परिवर्तन हो तो उसकी सूचना यथासमय सबको दी जाना चाहिये परन्तु ऐसा नहीं हुआ जिसके कारण वे उन अनेक भाषणों या शोध निबन्ध पाठनों को नहीं सुन पाये जिनमें उनकी अभिरुचि थी। जिन कई भाषणों या वादविवादों को उन्होंने सुना भी उनमें उन्हें कोई संगति नही दिखाई दी। निबन्धपाठों का क्रम उलट दिया गया अथवा कोई निबन्ध ही न पढ़ा गया। अध्यक्षपदीय भाषणों में विहंगावलोकन के अतिरिक्त कोई नवीन सामग्री उन्हें हस्तगस्त नहीं हुई, यहाँ तक कि कुछ भाषणों की अपेक्षा अधिक सूचना उन्हें पहले ही से अमुक विषय में थी।

इस प्रकार के स्पष्टीकरण द्वारा हाल्डेन ने यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया है कि विज्ञान की प्रगति के मार्ग पर जो अवरोध दृष्टिगोचर हो रहा है, उसके मूल में सरकारी नीति एवं पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष ही मुख्य हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि हाल्डेन के साथ सभी विचारवान पुरुष हैं। भारत की तरुण पीढ़ी को इसका ज्ञान है और वह इसके प्रति जागरूक है। परन्तु प्रश्न इतना ही है कि आगे कौन बढ़े,? इतना निश्चय है कि हमी में से किसी को अग्रसर होकर यह गुरुतर कार्य करना होगा और वैज्ञानिक धारा को प्रवहमान रखने के लिये भगीरथ प्रयत्न करना पड़ेगा।

— —

सिको का दुहरी दीवाल वाला वायु ऊष्मक SSO
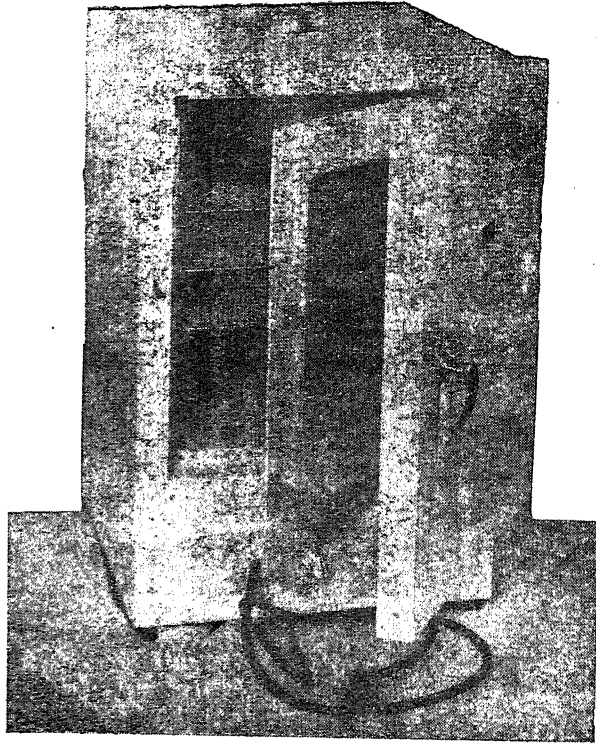
धातु की चादरों से निर्मित इस यन्त्र में वायु के संचारण की सुगम व्यवस्था की गई है। दुहरी दीवारों पर लगे हुये कुचालक पदार्थों और उनके बीच के अवकाश से अच्छा ताप रोधन होता है। दो द्वारों की व्यवस्था है। अन्तर द्वार एसबेस्टाज के ढांचे में कसे हुये शीशे का बनाया गया है जिससे निरीक्षण कार्य में सुविधा रहे। एल्यूमिनियम के अन्तरकोष्टक में विस्थापन योग्य तार-जाल और ग्राहक लगे हैं जिससे कोष्टकों के आकार में परिवर्तन किया जा सकता है। ऊष्मा नियंत्रक को किसी विशेष ताप पर स्थिर करके एक निश्चित परास के अन्तर्गत ताप को उस विन्दु पर स्थायी किया जा सकता है। यंत्र के शीर्ष पर स्थित परिवर्तनशील आकार के तप्त वायु द्वार की सहायता से ताप का सूक्ष्म नियंत्रण सम्भव है। उचित स्थान पर ऊष्मा सृजन करने वाले तार बलय लगे हैं जो अधिक समय तक कार्य देते हैं और आवश्यकता पड़ने पर सरलतापूर्वक बदले जा सकते हैं। शीर्ष पर ताप मापक यंत्र लगाने के छिद्र की व्यवस्था है। ऊष्मक के साथ बिजली का तार तथा प्लग रहता है, ताप मापक नहीं दिया जाता।

विशेष सूचना के लिए निम्न पतों पर लिखें :—

साईंटिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड
२४० दादाभाई भाई नौरोजी रोड
बम्बई—१

साइंटिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड
६ तेज बहादुर सप्रू रोड
इलाहाबाद—१

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जानेताति जीवन्ति विज्ञान प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तै० उ० ।३।५।

भाग ९१ } २०१६ विक्र०, भाद्रपद १८८१ शाकाब्द सितम्बर १९६० { संख्या ६

मूक स्वर के नूतन कार्य क्षेत्र

इरा एम० फ्रीमैन

सागर के गर्भ में डूबी हुई जड़वत् चट्टानों पर २० करोड़ वर्षों से जमी धूल और कणों को, जो इतनी नन्हीं हैं कि उन्हें बिना किसी उपकरण की सहायता के नेत्र-ज्योति के बल पर ही देख पाना सर्वथा असम्भव है, आप किस प्रकार साफ करेंगे ? लोसएंजलेस में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के भूतत्वशास्त्री डा० गैरी लेन के समक्ष यही समस्या थी। इसके अतिरिक्त, एक कठिनाई यह भी थी कि युगों के दौरान धूल और कण कठोर होकर पपड़ीदार पत्थर बन गये थे ।

डा० लेन ने कुछ पपड़ीदार पत्थरों को तोड़कर उन्हें गलाना प्रारम्भ किया। उसके पश्चात् उन्होंने प्रयोगशाला के एक नवीन उपकरण —'**मूक स्वर**' (साइलेण्ट साउण्ड) का आश्रय लिया। उन्होंने पपड़ीदार पत्थर को पानी के छोटे 'जलाशय' में रखकर एक स्विच दबा दी। मूक स्वर ने पानी को अत्यधिक तीव्र गति से मथ दिया। परिणामस्वरूप, अतिसूक्ष्म जड़ीभूत कण बिल्कुल घुल कर साफ हो गये। इस प्रयोग से इस बात की और भी पुष्टि हुई कि कुछ ऐसे भी अत्यन्त रुचिकर, मधुर और उपयोगी स्वर हैं, जिन्हें हम अपनी श्रवणेन्द्रियों से सुन पाने में असमर्थ हैं ।

श्रव्य अथवा अश्रव्य, सभी प्रकार के स्वर आस-पास की हवा अथवा किसी अन्य वस्तु जैसे जल या इस्पात, में आरोहावरोही लहरों के रूप में चलते हैं। यदि आप नियमित क्रम से किसी जलाशय की सतह में किसी छड़ी को डुबाते और बाहर निकालते रहें, तो देखेंगे कि पानी की तरंगें उत्तरोत्तर विस्तारशील वृत्तों के रूप में जलाशय की सतह पर बढ़ती हुई किनारे तक

पहुँच जाएंगी। इसी प्रकार, किसी ऐसे पदार्थ से जो नियमित मध्यान्तर से स्पन्दित होता हो, स्वर तरंगे भी सभी दिशाओं में बाहर की ओर अदृश्य रूप में फैलती रहती हैं। यह स्पन्दित होने वाला पदार्थ वायलिन का तार, या लय निकालने के लिए प्रयुक्त कांटा, अथवा बांसुरी के भीतर हवा की पतली पट्टी —चाहे जो भी हो सकता है। मूल स्रोत जो भी हो किन्तु उसमें निकलकर बाहर की ओर फैलती जाने वाली स्वर लहरियां, समुद्र तल पर १,१०० फुट प्रति सेकण्ड, अथवा ७५० मील प्रति घंटा की गति से दौड़ने लगती हैं।

मूल स्रोत जितनी ही अधिक शीघ्रता के साथ स्पन्दित होगा, स्वर तरंगें एक-दूसरे के उतने ही अधिक निकट होंगी। प्रत्येक पूर्ण स्वर लहरी का एक आरोह या शिखर बिंदु (क्रेष्ट) होता है, जहाँ हवा का घनत्व अधिकतम होता है; उसके बाद उसका अवरोह (ट्रोफ) होता है, जहाँ हवा का घनत्व निम्नतम होता है। इसका अर्थ यह है कि आरोह-विंदुओं पर हवा के सूक्ष्म कण सामान्य हवा की अपेक्षा औसत रूप से एक-दूसरे के अधिक निकट होते हैं, जब कि अवरोहों पर वे कुछ अधिक दूर-दूर होते हैं। हमारी श्रवणेन्द्रियाँ इतनी संवेदनशील होती हैं कि वे ऐसे स्थान पर भी स्वरों को सुन सकती हैं, जहाँ वायु के सूक्ष्म कणों का आरोहावरोहण एक इंच के केवल एक-अरबवें अंश के बराबर ही होता है।

तरंग दैर्घ्य (वेब लेंथ)

दो पार्श्ववर्ती आरोहों (अथवा दो पार्श्ववर्ती अवरोहों) के बीच की दूरी तरंग दैर्घ्य (वेव लेंथ) कहलाती हैं, जबकि किसी मूल स्रोत से प्रति सेकंड निःसृत तरंगों की संख्या को तरंग आवृति (फ्रीक्वेंसी औव वेव्स) कहते हैं। संगीतज्ञ जिसे सुर का 'आरोह' कहता है, उसका तरंग-आवृति से सीधा सम्बन्ध होता है। पियानों के कल-पटल (की बोर्ड) की बायीं ओर के निकट किसी कल (की) आघात करने से जैसा धीमा सुर निकलता है, वैसे धीमे सुर की तरंग-आवृति बहुत ही न्यून होता है। एक ऊँचे चीत्कार वाले, सुर की स्पन्दन-आवृति अत्यन्त ऊँची होती है। स्वर-दैर्घ्य को तरंग आवृति से गुणा कर देने पर जो मात्रा मिलती है, वह सदैव स्वर-तरंग की गति के बराबर होती है।

मनुष्य का कान ऐसी स्वर-लहरियों का पता लगा लेने में समर्थ होता है, जिनकी तरंग-आवृतियाँ प्रति सेकंड २० से लेकर लगभग २०,००० स्पन्दनों तक होते हैं। इस सीमा के बाहर पड़ने वाला वायु-स्पन्दन औसत मनुष्य के कान पर कोई प्रभाव नहीं डालता, किन्तु जानवर उससे कहीं अधिक ऊँचे तरंग आवृतियों को भी सुन सकते हैं। उदाहरण के लिए, चमगादड़ उड़ान भरते समय अपने मार्ग-प्रदर्शन के लिए प्रति सेकण्ड ५०,०००से अधिक स्पन्दनों वाले स्वर उत्पन्न करते हैं।

प्राविधिक उद्देश्यों से १५, ००० स्पन्दनों से ऊपर की तरंग-आवृतियों की सीमा को **स्वरोपरि** (अल्ट्रासोनिक) क्षेत्र कहते हैं। 'अल्ट्रासोनिक' शब्द दो लैटिन मूल धातुओं—अल्ट्रा और सोनिक—के संयोग से बना है। अल्ट्रा का अर्थ है परे या सीमोपरि और सोनिक का अर्थ है स्वर से सम्बद्ध। यह शब्द सुपर-सोनिक शब्द से भिन्न है, जिसका प्रयोग ऐसे विमानों या प्रक्षेपणास्त्रों के सम्बन्ध में किया जाता हैं, जिनकी गति स्वर की गति से भी तेज होती है।

प्रयोग की प्रक्रिया द्वारा ऐसी स्वरोपरि तरंगे (अल्ट्रासोनिक वेव्स) उत्पन्न की जा चुकी हैं, जिनकी तरंग आवृतियों की ऊँचाई १०,००,००,००,००० स्पन्दनों तक होती है। किन्तु, विभिन्न प्रकार के व्यावहारिक कार्यों में जिन स्वरोपरि लहरियों का प्रयोग प्रायः होता है, उनकी तरंग आवृतियाँ २०,००० से लेकर १०,००,००० स्पन्दनों वाली होती हैं। साधारण श्रव्य स्वरों की लहरियों को प्रायः फुट के रूप में नापा जा सकता है, किन्तु स्वरोपरि क्षेत्र की स्वर लहरियों को सम्भवतः एक इंच के सौवें भाग के रूप में नापा जा सकता है। यह एक ऐसा तथ्य है, जिसके कारण दोनों के कार्य-क्षेत्रों के में महान अन्तर उत्पन्न हो जाता है।

अत्यन्त धीमे स्वर

स्वरोपरि क्षेत्र की स्वर लहरियाँ उत्पन्न करने में स्पन्दित तार, आर्गन पाइप अथवा लाउड स्पीकर व्यर्थ सिद्ध होते हैं। इस दृष्टि से वे अत्यधिक धीमे हैं। ऐसी उच्च-आवृति वाली स्वर लहरियाँ उत्पन्न करने के लिए, जो व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए सबल सिद्ध हों, यह अत्यन्त आवश्यक है कि विशेष मूल-स्रोत का निर्माण किया जाय। स्वरोपरि लहरियाँ उत्पन्न करने के लिए इस प्रकार का एक जनित्र (जेनैरेटर) बिल्लौर (क्वार्टज्) के मनके की पतली फांक से निर्मित होता है। बिल्लौर की फांक को धातु की दो प्लेटों के बीच रख दिया जाता है। ये दोनों प्लेटें एक विद्युतीय परिभ्रमण-चक्र (सरकिट) से सम्बद्ध होती हैं। इस सरकिट में विद्युत धारा को उच्च स्पन्दन-आवृति के साथ आगे-पीछे दौड़ाया जा सकता है। जिस समय विद्युत की यह क्रिया सम्पन्न होती है, उस समय मनका क्रमान्तर से फूलता और पिचकता रहता है। उसमें यह उभार या संकुचन शायद एक इंच के हजारवें अंश से भी कम मात्रा में होता है। उसमें यह परिवर्तन सरकिट में विद्युतीय धारा के आवागमन के साथ-साथ ही होता है। इस क्रिया के फलस्वरूप आस-पास की हवा या अन्य पदार्थ में, जिसमें मनके को रखा जाता है, स्वरोपरि लहरियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

साधारण स्वर लहरियाँ अपने मूल-स्रोत से निकल कर चारों ओर फैल जाती हैं, किन्तु इतनी लघुतर होने के कारण स्वरोपरि लहरियों को एक सीधी रश्मि-रेखा के रूप में संचारित किया जा सकता है। उन्हें सर्चलाइट की रश्मि-रेखा की भाँति, दर्पणों और वक्राकार प्रतिबिम्बकों (रिफ्लेक्टर्स) से प्रतिबिम्बित किया जा सकता है। इस कारण, स्वर-शक्ति की बहुत बड़ी मात्रा को एक लहरियाँ में केंद्रित करना सम्भव है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि स्वर लहरियाँ अपने चक्र के वर्ग के अनुपात से ही बिजली या शक्ति का वहन करती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि अन्य परिस्थितियों में कोई परिवर्तन न हो, तो स्वरोपरि-क्षेत्र के १,००,००० स्पन्दनों वाले स्वर में १,००० स्पन्दनों की तरंग-आवृति वाली श्रव्य स्वर की १० हजार गुनी केन्द्रित बिजली या शक्ति होगी।

वास्तविक उपयोग

अमेरिका के वैज्ञानिकों ने १९३० के दशाब्द में स्वरोपरि लहरों के क्षेत्र में अनुसन्धान प्रारम्भ किया। जोन हापकिंस विश्वविद्यालय के प्रतिभासम्पन्न वैज्ञानिक, प्रोफेसर राबर्ट डब्ल्यू० उड, ने बिल्लौर के एक स्पन्दनशील मनके में 'बिल्ली की मूँछ का बाल' बाँध दिया। जब मनके को स्पन्दित किया गया, तो उस बाल पर डाला गया एक बूँद तेल तत्काल कुहरे में परिणत हो गया। उस बाल को छूने पर प्रोफ़ेसर उडकी उंगली में जलन की पीड़ा होने लगी। यदि किसी समुद्री जीवशाला

(अक्वेरियम) में स्पन्दित मनके को डाल दिया जाय, तो उसमें रहने वाली छोटी-छोटी मछलियाँ मर जाएंगी। प्रोफेसर उड के इन प्रयोगों की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट हुआ। किन्तु, वे अधिकांशतः एक प्रकार के कुतूहल ही थे। स्वरोपरि तरंग आवृतियों के वास्तविक उपयोगों की खोज तो आगे चल कर ही की जा सकी।

इस समय, स्वरोपरि लहरों के कुछ सबसे उल्लेखनीय उपयोगों का सम्बन्ध प्रयोगशाला और कारखानों से है। यदि स्वरोपरि जेनरेटर को किसी द्रव पदार्थ से भरे बर्तन में रख दिया जाय, तो स्वरोपरि लहरें उस द्रव पदार्थ को एक सेकण्ड में लाखों बार आगे और पीछे की ओर गतिशील रखेंगी। इसका अर्थ यह है कि इससे स्वयं द्रव पदार्थ और उसमें फैले हुए छोटे-छोटे कण अत्यन्त तीव्र गति से झकझोर उठेंगे। इस विधि से आजकल अनेक ऐसी औद्योगिक प्रक्रियाओं में, जहाँ किसी पदार्थ को शीघ्रता से द्रव पदार्थों में घुलाने या मिश्रित करने की समस्या होती है, स्वरोपरि लहरों का प्रयोग किया जाता है। फोटोग्राफी की फिल्में तैयार करने वाले निर्माताओं को प्रयोग से पता चला है कि स्वर लहरियों का योग करके रसायनों को मिश्रित करने से अधिक संवेदनशील फिल्म तैयार होती है। इसी प्रकार, यंत्र-निर्माता स्वरोपरि लहरों के माध्यम से रंगों को घोलने या मिश्रित करने का कार्य श्रेष्ठतर रूप में सम्पन्न कर सकते हैं।

इस समय बाजार में वस्त्र धोने की एक नवीन सचल मशीन बिक रही है, जो वस्तुतः एक स्वरोपरि लहर-जेनरेटर ही है। इसे गन्दे वस्त्रों वाले बर्तन में भरे साबुन के पानी में डुबोया जाता है। ऐसा करने पर स्वर लहरियाँ वस्त्र के छिद्रों में से साबुन के घोल को इतनी तेजी से आगे-पीछे ले जाती हैं कि थोड़े ही समय में सारा वस्त्र धुल कर साफ हो जाता है। यह भी कहा जाता है कि इस विधि से धुलाई करने पर कपड़ा भी बहुत कम फटता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत वस्त्र के ऊपर बड़े पैमाने पर साबुन नहीं रगड़ना पड़ता। एकइससे भी नवीनतर विधि है, जिसके अन्तर्गत, तश्तरी के पानी में उच्च आवृति वाली स्वर लहरियों का प्रयोग किया जाता है। इसमें स्वर लहरियों द्वारा उत्पन्न स्पन्दनों के फलस्वरूप सूखे से सूखे धब्बे और चकते धुल कर साफ हो जाते हैं।

इस समय एक चश्मा वाली कम्पनी चश्मे के शीशे साफ करने के लिए स्वरोपरि-लहरों की प्रक्रियाओं का प्रयोग कर रही है। इस प्रकार की प्रक्रियाओं के अन्तर्गत केवल एक मशीन एक घंटे में हजारों शीशे साफ कर सकती है, जबकि पुरानी विधियों के अन्तर्गत वही कार्य सम्पन्न करने के लिए दो दर्जन व्यक्तियों को काम पर लगाना पड़ता है। अमेरिका के अणुशक्ति कमीशन ने यह खोज की है कि स्वरोपरि-लहरों द्वारा सफाई करने पर एक मिनट में ही प्रयोगशाला के रेडियो-सक्रिय पुर्जों और हिस्सों को साफ किया जा सकता है। इसके पूर्व इस कार्य को सम्पन्न करने में १५ मिनट लग जाते थे।

द्रवों में

द्रवों के भीतर स्वरोपरि-लहरों की क्रिया द्वारा कणों को इतनी तीव्र गति से गतिशील किया जा सकता है कि समूचा द्रव-पदार्थ छोटे-छोटे छिद्रों का रूप धारण कर लेता है। इस

क्रिया-प्रक्रिया को भौतिकशास्त्री 'छिद्रीकरण' प्रक्रिया कहते हैं । ये छिद्र ज्योंही निर्मित होते हैं, त्योंही द्रव के दबाव के कारण ध्वस्त हो जाते हैं। उनके इस प्रकार, आकस्मिक रूप से, ध्वस्त हो जाने के ही परिणामस्वरूप, द्रव में एक सबल मंथन-क्रिया उत्पन्न हो जाती है। छोटे पैमाने पर, चाय के बर्तन में पानी गर्म करते समय, जब पानी में उबाल आने के पूर्व 'सूँ-सँ' की ध्वनि होती है, तो उसमें ठीक यही बात होती है। यह ध्वनि पानी में भाप के बुलबुलों के फूटने के कारण उत्पन्न होती है।

अपनी छिद्रीकरण क्रिया के कारण स्वरोपरि-लहरें दुग्ध उद्योग में दुहरा कार्य सम्पन्न करने में उपयोगी सिद्ध होती हैं। इसके उपयोग द्वारा दूध में समानता उत्पन्न की जा सकती है, और साथ ही, उसमें हानिकारक जीवाणुओं को नष्ट किया जा सकता है। एक जलीय द्रव पदार्थ में चर्बी या चिकनाई की असंख्य नन्हीं-नन्हीं गोलाकार बूंदें लटकती हैं, और इस प्रकार वे दुध के स्वरूप का निर्माण करती हैं। दूध को अधिक सुपाच्य बनाने के उद्देश्य से, अत्यधिक दबाव के अन्तर्गत समूचे दूध को बहुत ही छोटे-छोटे छिद्रों के रास्ते बहा कर प्रायः इन नन्ही-नन्ही गोलाकार बूंदों को तोड़ दिया जाता है। किन्तु दूध के द्रव से इन गोलाकार बूँदों को पृथक करना बहुत कठिन होता है। नवीन विधि के अन्तर्गत, स्वर लहरियाँ न केवल चिकनाई की गोलाकार बूंदों को तोड़ डालती हैं, बल्कि तीव्र मंथन द्वारा दूध में मिले जीवाणुओं को भी चूर-चूर कर डालती हैं।

स्वरोपरि लहरों का एक अन्य उपयोग भी है, जो इससे कुछ भिन्न है। इस उपयोग के कारण ये लहरें मशीन बनाने वाले कारखानों में अनेक प्रकार की कटाई और छिद्रीकरण सम्बन्धी प्रक्रियाओं में बहुमूल्य सिद्ध हुई हैं। मशीनी औजारों के निर्माण में कटाई और छिद्रीकरण के लिए व्यापक रूप के प्रयुक्त एक उपकरण के अन्तर्गत, स्वरोपरि स्पन्दनों का मूल-स्रोत एक बिल्लौरी मनका नहीं, बल्कि गिलट के गोलाकार पत्रकों का ढेर होता हैं, जो एक गेंडुरी से घिरा होता है। इस गेंडुरी से हो कर प्रेषित बिजली की उच्च-चक्रयुक्त प्रत्यावर्ती धारा गिलट में चुम्बकीय शक्ति का संचार कर देती है; यह शक्ति-संचार पहले एक दिशा में और फिर विपरीत दिशा में होता है। इस धातु की विशेषता यह है कि चुम्बकीय शक्ति का संचार करने पर यह अंशतः संकुचित हो उठती है; अतः पत्रकों के ढेर में तीव्र गति से स्पन्दन उत्पन्न हो जाता है। इस ढेर से सम्बद्ध एक धातु-विन्दु प्रति सेकेंड २७ हजार स्पन्दनों की गति से संचालित होने पर एक इंच के १००० वें अंश तक चक्कर काटने लगता है।

मान लीजिये किसी कांच या धातु की सतह को किसी स्थान पर काटना या खोदना है। ऐसी स्थिति में, उसकी सतह पर 'कार्बोरण्डम' जैसे घर्षणकारी पदार्थ से युक्त लेई बहा दी जाती है। उसके बाद, औजार के स्पन्दित छोर का लेई से स्पर्श करा दिया जाता है। ऐसा करने पर तत्काल लेई में सबल स्वरोपरि लहरें उत्पन्न हो जाती हैं। वे घर्षणकारी पदार्थ को आगे-पीछे संचालित कर देती हैं, जिससे छिल कर घिस जाती है। इस विधि के अन्तर्गत, स्वयं औजार को घर्षण-कार्य नहीं करना पड़ता और बहुत ही कम ताप उत्पन्न होने पाता है। खुदाई, छिद्रीकरण या कटाई वाले कितने ही निर्माण-कार्यों के लिए इस से अच्छी कोई अन्य विधि नहीं। इस विधि का प्रयोग करने पर लागत में भी-कभी-कमी तो ८० प्रतिशत तक-कभी हो जाती है।

ऊपर जिन स्वरोपरि जनित्रों का उल्लेख किया गया है, उन में प्रयुक्त बिल्लौर की पतली फांकों को, कुछ भिन्न प्रकार के औजार का प्रयोग करके इस विधि द्वारा काटा जा सकता है। इस प्रकार की बिल्लौरी फाकें, जिनमें से प्रत्येक की मोटाई एक इंच के हजारवें अं के १२ गुने बराबर हो, बहुत बड़ी संख्या में एकसाथ काटी जा सकती हैं।

समय केअत्यन्त सूक्ष्म मध्यान्तरों को नापने वाले विद्युदाणविक उपकरणों के सहयोग में, स्वरोपरि लहरियों की सहायता से इंजीनियर धात्विक मशीनों के हिस्सों में छिपे दरारों के स्थान का ठीक-ठीक पता लगा सकते हैं। यदि किसी धातु के ढाले गये पिण्ड के भीतर स्वरोपरि लहरियों की रश्मि-रेखा प्रेषित की जाये, तो उस टुकड़े के पीछे से कुछ लहर प्रतिबिम्बित होने लगेंगी। यदि उस पिण्ड के भीतर कोई दरार या दोष होगा, तो वह भी लहरों को प्रतिबिम्बित करेगा। इस विधि द्वारा इस बात की जाँच की जा सकती है कि स्वरोपरि लहरों के पिण्ड के नीचे जाने और वापस आने का समय पिण्ड की पूरी मोटाई के अनुरूप है या नहीं। ऐसा करके वह मशीन न केवल धातु के छिपे दोष को निर्धारित करती है, बल्कि इस बात का भी पता लगा लेती है कि वह दोष कहाँ पर है। स्वरोपरि लहरों की यह विधि 'एक्स-रे' द्वारा निरीक्षण करने की प्रणाली के स्थान पर प्रयुक्त होती है। एक्स-रे की विधि इससे कहीं अधिक खतरनाक और कठिनाइयों के पूर्ण सिद्ध हुई है।

स्वरोपरि लहरों के अन्य उपयोगों की निरन्तर खोज जारी है, और उन्हें विकसित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। स्वर लहरियों की सहायता से धातुओं को जोड़ने की विधियों का पता लगाने के लिए प्रयोग हो रहे हैं। सीमित वायुमंडल में कुहरे, धूल और तुषार को इसी प्रकार की विधियों द्वारा हवा से मिटाया जा सकता है। चिकित्सा के क्षेत्र में भी अनुसन्धानकर्त्ता उच्च चक्र वाली स्वर लहरियों का प्रयोग करके शरीर के भीतरी अंगों में ऊष्मा उत्पन्न करने की सम्भावना की खोज कर रहे हैं।

कीट विनाशक भारतीय वनस्पतियाँ

जगदीश प्रसाद तिवारी

भारत का मुख्य उद्यम कृषि है किन्तु अन्न का अभाव अब भी स्वतंत्र भारत के लिए एक कलङ्क है। अतएव भारत को अपने भावी नागरिकों की उदरपूर्ति के लिए विदेशों का मुँह ताकना पड़ता है। इसके अनेक कारण हैं, उनमें से एक प्रमुख कारण फसलों की हानियाँ हैं। पेड़-पौधों को कीट-कीटाणु, पतंगों और फफूंदी से विशेप रूप से हानि होती है जिससे उपज कम होती है। भारतीय कृषकों का ध्यान अब भी इस ओर नहीं है, कारण कि वे कीटविनाशक पदार्थों का प्रयोग नहीं करते हैं। दुःख की बात तो यह है कि कुछ कीट विनाशक वनस्पतियाँ जो भारत में उत्पन्न होती हैं कीट विनाशक पदार्थ के रूप में विदेशों को निर्यात कर दी जाती हैं। उनका उपयोग कीट विनाशक पदार्थ के रूप में विदेशों में प्रचुर मात्रा में होता है जिससे अधिक अन्न की उपज होती है।

भारत में इस प्रकार की वनस्पतियाँ अधिक मात्रा में पैदा होती है जिनमें तम्बाकू और पाइरेथ्रम मुख्य है किन्तु भारत में इनका उपयोग कीट विनाशक पदार्थ के रूप में नहीं होता है।

कीट विनाशक पौधे—

कीट विनाशक पदार्थों के रूप में पाईरेथ्रम, डेरिस, तम्बाकू, हेलेबोर रयनिया सबाडिला आदि पौधों का उपयोग अन्य देशों में होता है। भारत में तम्बाकू की खेती हर प्रान्त में की जाती है किन्तु उत्तर प्रदेश में इसकी खेती अधिक होती है। पाइरेथ्रम और डेरिस की खेती भी भारत के कुछ प्रान्तों में की जाती है। यहाँ की जलवायु भिन्न प्रकार की होने के कारण वनस्पतियाँ भी प्रचुर मात्रा में होती हैं और भारत अपनी जड़ी-बूटियों के लिए प्रसिद्ध भी है। यदि नियंत्रित रूप से शोधकार्य किया जाय तो ऐसे अनेक पौधों की खोज की जा सकेगी जिनमें उत्तम कीट विनाशक गुण होंगे जिनके उपयोग से फसलों की रक्षा हो सकेगी, तथा अन्य देशों को निर्यात करने से देश को लाभ होगा।

पूर्ण पौधे को सुखा कर चूर्ण करके कीटों पर छिड़क कर उनको नष्ट करने के काम में लाया जाता है या कीट विनाशक पदार्थ पौधे के कुछ भाग विशेष में होने के कारण केवल उन भागों का ही उपयोग होता है जैसे पाइरेथ्रम का केवल फूल ही उपयोग होता है। कुछ पौधों के बीजों में कीट विनाशक गुण होने के कारण केवल बीज या उनके जलीय, मिट्टी के तेल और पेट्रोल निष्कर्ष उपयोग में लाए जाते हैं।

पौधों से प्राप्त तेल—

कीट विनाशक के रूप में वनस्पति तेल (Vegetable oils) का उपयोग फल वाले वृक्षों पर (जब फल पकने वाले होते हैं) होता है क्योंकि उस समय अन्य कीट विनाशक पदार्थ अपना हानिकर प्रभाव फलों पर छोड़ते हैं। **स्टेन लैण्ड** ने १९२६ में काली सरसों (Brassica Campestris)

के तेल का परीक्षण ग्रीष्मऋतु में सेब के पेड़ों पर किया था और उत्साह वर्धक फल प्राप्त हुये थे। भारत के अधितर भागों में काली सरसों की खेती होती है किन्तु तेलों की खपत उनके अधिक मूल्यों के कारण कीटविनाशक पदार्थ के रूप में बहुत कम होती है।

पाइरेथ्रम (Pyrethrum) :—

पाइरेथ्रम का फूल कीट विनाशक पदार्थ के रूप में उन्नीसवीं शताब्दी से प्रयोग में लाया जा रहा है। इस पौधे के अनेक जातियों में मुख्य जाति, सूरज मुखी (Chrysanthemum Cinerariae folium) के फूलों में कीट विनाशक गुण अधिक मात्रा में होने के कारण, इसकी खेती अधिक की जाती है। कीट विनाशक पदार्थ फूल के शिरोभाग में होता है। १९१६ ई० से फूल को मिट्टी के तेल में निष्कर्ष सा छिड़कने के लिए काम में लाया जाता है।

यह पौधा १८ के २४ इंच तक लम्बा होता है। फूल का मुख्य भाग, सिर पीला होता है तथा सफेद पखुंडियों से घिरा होता है। कीट विनाशक पदार्थ फूल के पूर्ण विकसित होने तक बढ़ता रहता है। **बीकले** नामक वैज्ञानिक के अनुसार ३००·२ मिलीग्राम वाले फूल में ३·६३ मिलीग्राम तक कीट विनाशक पदार्थ होता है। **कर्नल चोपड़ा** के अनुसार इसकी खेती काश्मीर, नीलगिरी, हिमालय और भारत के अन्य भागों में की जाती है।

रूजिका के अनुसार पाइरेथ्रम में दो पदार्थ मुख्य होते हैं। जिनको पाइरेथ्रम प्रथम और पाइरेथ्रम द्वितीय कहते हैं जिनमें कीट विनाशक गुण अधिक होते हैं। सिसेमिन के साथ मिला कर प्रयोग करने से कीट विनाशी गुण नष्ट हो जाते हैं। सिसेमिन तिल के तेल से प्राप्त होता है। पाइरेथ्रम का प्रयोग चूने के साथ नहीं करना चाहिए। पाइरेथ्रम का ही चूर्ण अधिक दिनों के उपरान्त खराब हो जाता है इसलिए प्रयोग करने के समय ही चूर्ण बनाना चाहिए। फलीय वृक्षों पर पाइरेथ्रम का एसीटोन, अलकोहल या हाइड्रोकार्बन के घोल का प्रयोग करना उत्तम होता है।

डेरिस (टूरबा) :—

वृक्षों के जलीय घोल को तालाब में डालने से मछलियाँ मर कर पानी की सतह पर आ जाती हैं जो आसानी से उठाई जाती हैं। इस प्रकार मारी गई मछलियाँ खाने में हानिकारक नहीं होती हैं। मछली मारने के लिए इस विधि का प्रयोग बहुत दिनों से होता रहा है। ऐसा वृक्ष डेरिस या उसकी अनेक जातियाँ है। डेरिस में कीट विनाशी गुण होते हैं जो पेड़, पौधे या मनुष्य और जानवरों को हानि नहीं पहुँचाते हैं। डेरिस की अनेक जातियों में डेरिस इलीपटिका (टूरबा) ही उत्तम में होता है।

भारत में डेरिस की खेती कोडाला की पहाड़िया, चिटगाँव, आसाम, कोचीन, ट्रावनकोर, मैसूर, मद्रास और पंजाव में की जाती है। आसाम में दूसरी जाति **अरू** के नाम से प्रचलित है। उत्तर प्रदेश में डेरिस की दूसरी जाति **नवलता** के नाम से विख्यात है। डेरिस की खेती के लिए अधिक वर्षा, नमी और उच्च ताप आवश्यक होने के कारण आसाम प्रान्त में सरकारी स्तर पर खेती की व्यवस्था भी की गई है।

कीट विनाशी पदार्थ, डेरिस की जड़ों से प्राप्त होता है। छोटी जड़ों में यह मात्रा अधिक होती है। बोने के अट्ठारह से सत्ताइस मास के बाद जड़ें खोद कर धूप में सुखाई जाती हैं। एक एकड़ भूमि से अट्ठारह सौ पौंड तक जड़ें पैदा की जा सकती हैं।

रोटिनोन :—

डेरिस की जड़ों से प्राप्त कीटनाशक पदार्थ को रोटिनोन कहते हैं। यह पदार्थ १९०२ में **नगाई** ने जड़ से निकाला था। जड़ों से अन्य कीट विनाशी पदार्थ भी प्राप्त किया जा सकता है।

डेरिस की जड़ों को कूटकर चूर्ण के रूप में कुछ विशेष प्रकार की मिट्टियों के साथ मिला कर छिड़कने से कीटों का विनाश होता है। जड़ों के निष्कर्ष को मिट्टी में डाल कर घोलक को हवा में उड़ा देते हैं। इस प्रकार से प्राप्त मिट्टी का प्रयोग भी की विनाशक पदार्थ के रूप में करते हैं। तीसरी विधि में जलीय मिश्रण का प्रयोग भी किया जाता है।

तम्बाकू :—

तम्बाकू की खेती भारत में बहुतायत से की जाती है। इसे अन्य देशों को भी निर्यात किया जाता है। इस पौधे से निकोटीन नाम का पदार्थ प्राप्त होता है। यह पदार्थ उत्तम कीट विनाशक होता है। तम्बाकू के चूर्ण को चूने के साथ मिलाकर प्रयोग करना चाहिए। यों तो इसका जलीय निष्कर्ष भी लाभदायक है किन्तु क्षारीय पदार्थों की उपस्थित में कीटविनाश पदार्थ की मात्रा अधिक निकलती है।

अन्य भारतीय पौधों से कीट विनाशक पदार्थ प्राप्य किये जा सकते है किन्तु अन्त देशों की तरह भारत में भी शोध कार्य की अत्यन्त आवश्यकता है और तभी यह सम्भव है। अमेरिका में कीट विनाशक पदार्थों का जितना उपयोग होता है अपने देश में उसका शतांश भी नहीं किया जाता है अतएव भारतीय कृषकों के बीच में कीट विनाशक पदार्थों के ज्ञान के प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है। अपने देश की वनस्पतियों से लाभ उठाना भारत के नागरिकों का कर्त्तव्य है। यदि भारतीय कृषक कीट विनाशी पदार्थों का उपयोग करें तो अन्न की हानि को रोककर देश की अन्न-कमी को पूरा कर सकने में समर्थ हो सकते हैं।

विज्ञान की एक अद्भुत देन—हवाई मोटर

तीन वर्ष पूर्व, जब एक अमेरिकी वैज्ञानिक ने यह भविष्यवाणी की थी कि निकट भविष्य में ही ऐसा समय आएगा, जबकि मोटरें और इसी प्रकार के अन्य वाहन वायु की एक पतली सतह का सहारा लेकर समुद्र, दलदल, बालू और बर्फ पर कुछ फुट ऊपर हवा में तेजी के साथ उड़ सकेंगे, तो लोगों ने उसकी इस बात को कोरी कल्पना बताया था। लेकिन आज उसकी यह भविष्यवाणी सत्य होती दीख रही है। अनेकों देशों में न केवल इस प्रकार के वाहनों का विकास किया गया है, बल्कि उनका सफलता पूर्वक परीक्षण भी किया जा चुका है। अब वैज्ञानिकों ने यह स्वीकार कर लिया है कि कम ऊँचाई पर उड़ने के लिए वायु की परतों को एक गद्दे के रूप में इस्तेमाल करने, विषयक सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप दिया जा सकता है। उनका कहना है कि इस सद्धान्त को अपनाने से परिवहन के क्षेत्र में एक क्रांति उपस्थित की जा सकती है।

अमेरिका में इस प्रकार के कई वाहनों का विकास किया गया है, जो भूमि से केवल कुछ फुट की ऊँचाई पर ही सफलतापूर्वक तेज गति से उड़ सकते हैं और इनमें से कई वाहनों का निर्माण भी निकट भविष्य में होने वाला है। एक कम्पनी ने तो ३०० अश्व शक्ति वाली चार सीटों की हवाई-मोटर को बाजार में बेचना प्रारम्भ भी कर दिया है। आकार में यह सामान्य मोटर जैसी ही दिखती है। यह हवाई मोटर भूमि और जल पर केवल कुछ फुट की ऊँचाई पर ६० मील प्रति घंटे की गति से चल सकती है। अन्य कई नमूनों का भी विकास किया जा रहा है। इनमें से एक नमूना छोटे स्कूटर के आकार का है। ऐसे हवाई-मोटरों के नमूनों का भी विकास किया जा रहा है, जो धरती से विभिन्न ऊँचाइयों पर उड़ सकेंगी। यही नहीं, वैज्ञानिक गण ऐसे यात्री और मालवाही जहाजों के विकास की सम्भावना पर गम्भीरता पूर्वक विचार कर रहे हैं, जो समुद्र में जल से कुछ फुट की ऊँचाई पर तेजी से यात्रा कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त को आधार बना कर कम ऊँचाई पर उड़ने वाले हेलीकोप्टरों का विकास करने की दिशा में भी कार्य हो रहा है।

भविष्य के वाहनों के सम्बन्ध में जो कल्पना की गई है, वह एक स्वप्न जैसी प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ, हवाई जहाज की गति से चलने वाली ऐसी रेल गाड़ियाँ बनेंगी, जो पटरियों पर न चल कर उनके ऊपर उड़ेंगी तथा ऐसे तीव्रगामी बहूद्देश्यीय वाहन बनेंगे जो मोटरकार, नौका, ट्रक और हेलिकोप्टर का कार्य कर सकेंगे।

लेकिन हवा को गद्दे के रूप में इस्तेमाल करने का सिद्धान्त क्या है? इसके द्वारा वाहन भूमि के ऊपर तेज गति से यात्रा करने में कैसे समर्थ हो जाता है?

कुछ लोग इसे 'ग्राउंड एफेक्ट' (Ground Effect) सिद्धान्त के नाम से पुकारते हैं। वैज्ञानिक को बहुत वर्ष पूर्व से यह ज्ञात था कि यदि किसी वाहन के तल से शक्तिशाली वायुप्रवाह

ठोस धरातल, जैसे धरती और जल, की ओर छोड़ा जाए, तो एक प्रकार की लचीली वायु परत का सृजन होता है, जो गद्दे के समान लचीली होते हुए स्प्रिंग की तरह वस्तु को ऊपर उठा देने का कार्य भी करती है। वायुयान और हेलिकोप्टर में लगे पंखे उड़ने के पूर्व प्रचण्ड हवा छोड़ कर इसी प्रकार की वायु-परतों का निर्माण करते हैं। यह वायु-परत अधिक ऊँचाई पर उड़ने में कोई सहायता नहीं करती, लेकिन धरातल से कुछ फुट की ऊँचाई पर चलने वाला वाहन उस समय तक हवा में तैरता रहेगा, जब तक अत्यधिक दबावपूर्ण हवा की यह परत उसके तल के नीचे विद्यमान रहेगी। इस प्रकार धरातल की रगड़ से मुक्त होने पर वाहन को तेज गति से चलने के लिए बहुत कम शक्ति की आवश्यकता पड़ती है।

लाभ :—

इसका एक सबसे बड़ा लाभ यह है कि वाहन आसानी से यात्रा कर सकेंगे। उन शहरों में जहाँ, मोटरों, ट्रकों और बसों के कारण मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं, हवाई-मोटरें सड़कों के ऊपर आसानी से उड़ती हुई जा सकती हैं। यही नहीं, उन अनेक क्षेत्रों में, जहाँ राजमार्गों और पुलों का अभाव है, ये हवाई-मोटरें लोगों के लिए बरदान सिद्ध होंगी। किसान अपनी उपज और वस्तु-निर्माता अपने कारखानों की वस्तुएं सीधे मार्ग पर उड़ कर तेजी के साथ गन्तव्य स्थान तक पहुँचा सकेंगे। परिवार की हवाई-मोटरें इच्छा के अनुसार मोटर या नौका के रूप में सैर-सपाटे के लिए इस्तेमाल की जा सकेंगी। ये हवाई मोटरें खेतों के ऊपर उड़ सकेंगी और किसी भी समुद्र तट पर उतर सकेंगी। इसमें यात्रा व्यय भी बहुत कम बैठेगा। हवाई-मोटर में दो इंजन होंगे, एक उसे हवा में उठाने के लिए और दूसरा गति देने के लिए। इन इंजनों को चलाने के लिए बहुत कम शक्ति की आवश्यकता होगी और इन्हें चलाने में चालक को किसी प्रकार की कठिनाई अनुभव नहीं होगी। वायुमण्डल से हवा खींच कर उसे वाहन के तल से नीचे की ओर फेंकने वाली विधि बड़ी सरल है। जब दोनों इंजन एक साथ काम करेंगे तो उससे भी बहुत कम ईंधन की जरूरत पड़ेगी, जो मोटरों और इंजन-चालित नौकाओं में खपता है। इसका कारण यह है कि धरातल की रगड़ पर विजय प्राप्त करने के लिए उन्हें शक्ति की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

वैज्ञानिक यह अनुभव करते हैं कि विशाल संख्या में जन-उपयोग के लिए इन हवाई-मोटरों को सुलभ करने का लक्ष्य व्यापक अनुसन्धान के उपरान्त ही प्राप्त हो सकेगा। अभी भी कई ऐसी समस्याएं हैं, जिनका पूरी तरह समाधान नहीं हो पाया है, क्योंकि वायु की दबावयुक्त परत को लचीले गद्दे के रूप में प्रयुक्त करने वाला सिद्धान्त अभी पूरी तरह से वैज्ञानिकों की समझ में नहीं आया है। यद्यपि ये हवाई-मोटरें उड़ सकती हैं, परन्तु वैज्ञानिक निश्चयपूर्वक यह नहीं बता सकते कि ऐसा क्यों होता है। अतएव इस सम्बन्ध में अभी और अधिक जानकारी प्राप्त की जा रही है।

अमेरिका द्वारा अन्तरिक्ष-अनुसन्धान में गुब्बरों का उपयोग

पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए अन्तरिक्ष के रहस्यों की खोज करने वाले भू- उपग्रहों और निस्सीम गगन के मर्मवेधक प्रक्षेपणास्त्रों के इस युग में भी परम्परागत गुब्बारे का महत्व कम नहीं हो सका है। इस के विपरीत, वह पृथ्वी के वायुमण्डल के ऊपरी क्षेत्रों की स्थितियों का स्पष्टतर चित्र प्राप्त करने में वैज्ञानिकों को महत्वपूर्ण सहायता प्रदान कर रहा है।

नवीन और विकसित प्रकार के विशाल और ऊँची उड़ान भरने वाले गुब्बारे, इस समय अन्तरिक्ष के निचले किनारों की शोध करने और वहाँ से पृथ्वी पर अनेक प्रकार की महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्रेषित करने में अत्यन्त सक्रिय भूमिका अभिनीत कर रहे हैं। पृथ्वी से ऊपर, ऊर्ध्वमुख तैरते हुए अथवा प्रक्षेपणास्त्रों द्वारा अत्यन्त ऊँचाई पर छोड़े गये, ये गुब्बारे शून्य के अज्ञात रहस्यों का उद्घाटन करके प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए मानव द्वारा छेड़े गये अभियान में महत्वपूर्ण योग प्रदान कर रहे हैं।

अन्तरिक्ष-अनुसन्धान में प्रयुक्त गुब्बारों का महत्व, मूलतः इस बात में निहित है कि वे पृथ्वी के घने वायुमण्डल से ऊपर जा सकते हैं और उसके आगे की सृष्टि का स्पष्ट चित्र प्राप्त कर सकते हैं। वे वायुमण्डल के घने भाग के ऊपर कई घण्टे तक ठहर सकते हैं, जब कि उन के यन्त्र-पुंज वहाँ के आसपास की स्थितियों को अंकित कर सकते हैं। यह विशेषता राकेटों में नहीं पायी जाती।

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष, १९५७-५८, में अनुसन्धानकारी गुब्बारों के उपयोग को पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान किया गया था। उस वर्ष के अन्तर्गत पृथ्वी के ऊपरी वायुमण्डल के विषय में अधिक से अधिक सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए सैकड़ों गुब्बारे छोड़े गये थे। तथाकथित सस्वर गुब्बारे, जिनमें से कितने ही ३०० पौण्ड से अधिक वजन वाले यन्त्रपुंज वहन कर रहे थे, पृथ्वी के ऊपर लगभग १,००,००० फुट के या २० मील की ऊँचाई तक उड़ कर पहुँच गये। उन्होंने अपने रेडियो द्वारा पृथ्वी के पर्यवेक्षकों को ऊपरी वायुमण्डल की स्थितियों के विषय में बहुत बड़ी मात्रा में बहुमूल्य सूचनाएँ प्रेषित कीं। गुब्बारों द्वारा प्राप्त इन नई जानकारियों से संसार भर के देशों के वैज्ञानिक, जिन्हें इस प्रकार की खोज में रुचि थी, लाभान्वित हुए।

भू-भौतिक वर्ष में छोड़े गये गुब्बारों की सहायता से वैज्ञानिकों के लिए ऊपरी वायुमण्डल की रासायनिक और भौतिक विशेषताओं, चुम्बकीय क्षेत्र और अन्तरिक्ष किरण सम्बन्धी स्थितियों, ऊँचाई पर वायु की गति, वायुमण्डलीय विद्युत, दृष्टिगोचरता, तथा वायु में घुले-मिले कणों के विषय में सही-सही और सतत पर्यवेक्षण करना सम्भव हो गया।

इस समय जो सबसे रोमांचकारी योजनाएँ कार्यान्वित हो रही हैं, उनमें से एक 'प्रोजेक्ट स्ट्राटोस्कोप' के नाम से विख्यात है। यह योजना १९५७ में प्रारम्भ हुई। इस योजना के अन्तर्गत, २०२

फुट लम्बे प्लास्टिक के गुब्बारों का उपयोग किया जाता है, जो दूरवीक्षक-कैमरा को लगभग ८०, ००० फुट या १६ मील से भी अधिक ऊँचाई तक ले जाते हैं । यह योजना अमेरिकी राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिष्ठान की सहायता से कार्यान्वित है और इसका निर्देशन प्रिंस्टन विश्वविद्यालय के एक खगोलशास्त्री, डा० मार्टिन श्वार्शचाइल्ड, करते हैं।

पृथ्वी के दूरवीक्षण-यन्त्रों को वायुमण्डल में से होकर देखना पड़ता है । अधिकांश समय, हवा में होने वाली हलचलों के कारण दूरवीक्षण-यन्त्र से देखे जाने वाले दृश्य हिलते-डुलते और नाचते से दिखलाई पड़ते हैं। प्रोजेक्ट स्ट्राटोस्कोप के वैज्ञानिक गुब्बारों की सहायता से अपने दूरवीक्षण-यन्त्रों को अधिकांश वायुमण्ल के ऊपर ले जा कर इस प्राचीन कठिनाई पर विजय प्राप्त कर रहे हैं ।

१९५७ में इस योजना के अन्तर्गत जो प्रथम उड़ानें सम्पन्न हुई, उनके अन्तर्गत दूरवीक्षण-केमरों द्वारा सूर्य के धरातल के चित्र लिए गये, जो अब तक लिए गये उसके चित्रों में सबसे अधिक साफ और स्पष्ट थे। इन चित्रों की सहायता से पहली बार सूर्य के गैस-धब्बों के आकार का निर्धारण किया गया, जिसके अनुसार उनका व्यास १८० से लेकर १,००० मील का सिद्ध हुआ । पृथ्वी पर स्थापित सौर-दूरवीक्षणयन्त्रों द्वारा लिए गये चित्रों में सूर्य के लघुतम गैस-धब्बे दिखलायी नहीं पड़ते ।

१९५९ में तीन अतिरिक्त उड़ानें सम्पन्न हुई। इन उड़ानों में दूरवीक्षण-कैमरों द्वारा हजारों चित्र लिए गये, जिनमें सूर्य के धरातल की स्थितियों में होने वाले परिवर्तनों को कालक्रम में प्रदर्शित करने वाले चित्र भी थे। इस प्रकार के चित्र इसके पूर्व कभी भी नहीं लिए जा सके थे। इन चित्रों में सौर-धब्बों के मध्य बिन्दु और उसके निकटवर्ती चुम्बकीय क्षेत्रों का विस्तार से चित्रण हुआ है। इनमें वह विशाल सौर-धब्बे भी सम्मिलित हैं, जिसके कारण अगस्त, १९५९ में पृथ्वी के रेडियो-संचार में गम्भीर बाधा उत्पन्न हो गयी थी।

अमेरिका के राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिष्ठान के अनुसार, इन उड़ानों में पहली बार भूमि से अन्तरिक्ष में उड़ने वाले गुब्बारों के दूरवीक्षण कैमरे को सफलतापूर्वक नियन्त्रित किया गया । एक विशेष टेलिविजन प्रणाली की सहायता से डा० श्वार्शचाइल्ड आसमान में ऊँचाई पर उड़ते हुए गुब्बारे के दूरवीक्षण-यन्त्र के दर्पण पर सूर्य का चित्र देखने में समर्थ रहे। इस प्रकार, वे दूरवीक्षण के मुख सूर्य के उसी धरातल की ओर फेरने में सफल रहे, जिसमें उनकी सबसे अधिक रुचि थी।

अत्यन्त ऊँचाई पर उड़ने वाले गुब्बारे, सूर्य के विषय में सर्वथा नवीन सूचनाएँ प्राप्त करने में सहायक होने के अतिरिक्त, ऐसी सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए भी प्रयुक्त हो रहे हैं, जिनसे मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणी करने में सहायता प्राप्त हो सकती है। ऋतु या मौसम सम्बन्धी गुब्बारे आसमान में बड़ी ऊँचाई तक अनेक यंत्रों को ले जाकर, वायु-मंडल के घनत्व, वायु की दिशा और गति, ताप तथा अन्य बातों के विषय में, जिनसे ऋतु विषयक भविष्यवाणी करने वालों को उनके कार्य में सहायता प्राप्त हो सकती है, नाप-जोख और जाँच पड़ताल सम्पन्न कर रहे हैं।

मौसम सम्बन्धी अनुसंधान करने वाले यंत्र-पुंज वहन करने वाले गुब्बारे सामान्यतः स्ट्राटोस्फियर तक भेजे जाते हैं। इस सम्बन्ध में वे पृथ्वी से २० मील या उससे भी अधिक ऊपर तक जाते हैं। जिस समय गुब्बारा ऊपर जाता है, उसमें लगे यंत्र तापमान, सापेक्ष आर्द्रता और दबाव का माप करते जाते हैं, जबकि गुब्बारे में लगा रेडियो-ट्रांसमिटर उपलब्ध सूचनाओं को पृथ्वी पर स्थित एक सूचना-ग्राहक केन्द्र के पास में भेज देते हैं, जहाँ वे सूचनाएँ अपने-आप अंकित होती जाती हैं।

दिशा-शोधक रेडियो द्वारा गुब्बारों की गतिविधियों का पता लगाकर अत्यन्त ऊँचाई पर हवा की दिशा और गति का निर्धारण करना भी सम्भव होता है। जब मौसम सम्बन्धी गुब्बारा अधिकतम ऊँचाई पर पहुँच जाता है, तो वह फट जाता है और रेडियो सोण्ड नामक उस बक्स को, जिसमें यंत्र-पुंज तथा रेडियो ट्रांसमिटर बन्द होते है, हवाई छतरी द्वारा पृथ्वी पर उतार लिया जाता है।

कभी-कभी मौसम सम्बन्धी छोटे गुब्बारों को राकेट द्वारा अत्यन्त ऊँचाई पर पहुँचा दिया जाता, जहाँ एक स्वयंचालित यन्त्र द्वारा उन्हें उड़ा दिया जाता है। इस प्रकार के जो सबसे पहले प्रमुख प्रयोग किये गये, उनमें से एक, अगस्त १९५९ में अमेरिकी उड्डयन अनुसंधान एवं विकास कमान के तत्वावधान में सम्पन्न हुआ। उस प्रयोग के अन्तर्गत, राकेट द्वारा लगभग ५० मील की ऊँचाई पर गुब्बारे को ले जा कर उन्मुक्त किया गया। यह ऊँचाई उस ऊँचाई की लगभग दूनी थी, जहाँ तक मौसम सम्बन्धी अच्छे-से-अच्छे गुब्बारे अपने आप पहुँच सकते हैं। इस प्रकार प्रयुक्त गुब्बारे को राबिन (राकेट बैलून इन्स्ट्रूमेंट) कहते हैं। यह प्लास्टिक का एक गोला होता है, जिसका व्यास ३९ इंच का होता है। उसमें एक एल्यूमिनियम से परिवेष्ठित प्रतिविम्बक होता है, जिसके कारण पृथ्वी पर स्थित राडार द्वारा इसका पता लगाना सम्भव हो जाता है। जिस समय वह पृथ्वी पर उतरने लगता है, उस समय उसका अनुगमन करके पर्यवेक्षक हवा की गति, हवा की दिशा और वायुमंडलीय घनत्व से विषय में महत्वपूर्ण आँकड़े प्राप्त कर लेते हैं।

गुब्बारों और राकेटों का संयुक्त रूप से उपयोग करने वाली कुछ अन्य अनुसंधान योजनाओं के अन्तर्गत, गुब्बारे द्वारा ही राकेट को ऊँचाई पर ले जाया जाता है, जहाँ से उसे और भी अधिक ऊँचाई तक जाने के लिए लक्षित किया जाता है। इन उड़ानों में प्रयुक्त, यन्त्रवाहक राकेटों को 'राकून' कहते हैं। यह नाम बैलून बोर्न राकेट (गुब्बारे द्वारा ढोया गया राकेट) का संक्षिप्त रूप है।

इस प्रकार की एक सामान्य उड़ान के दौरान प्लास्टिक का एक ९० फुट व्यास वाला गुब्बारा राकेट को पृथ्वी से १३ या १४ मील ऊपर ले जाता है। उसके बाद, राकेट को पृथ्वी पर भेजे गये एक रेडियो-संकेत द्वारा लक्षित किया जाता है, जिसके फलस्वरूप वह राकेट लगभग ६० मील की ऊँचाई तक उड़ जाता है। उस का यन्त्र-पुंज ऊपरी वायुमंडल की दशाओं को

अंकित करता है,, और रेडियो ट्रांसमिटर द्वारा सूचनाओं को पृथ्वी पर प्रेषित कर देता है। राकनों का प्रयोग अधिकांशतः अन्तरिक्ष विकिरण की माप करने के लिए किया गया है।

१९६० के प्रारम्भ में, अमेरिका ने एक पूर्णतया नये प्रकार के गुब्बारे द्वारा ऊपरी वायुमण्डल के महत्वपूर्ण अध्ययन का कार्य प्रारम्भ किया। यह संसार के किसी भी भाग में प्रयुक्त सबसे बड़ा गुब्बारा होता है। इस प्रकार के गुब्बारों को 'स्काई हुक' कहते हैं। उनका आकार ५० मंजिले गगनचुम्वी भवन जैसा विशाल होता है। उन्हें स्काई हुक' इसलिए कहा जाता है कि वे आसमान में वैज्ञानिक यन्त्रों और उपकरणों का एक पुंज प्रतिष्ठित कर देते हैं। अमेरिकी स्काई हुक गुब्बारों का निर्माण ३० मील की ऊँचाई पर अन्तरिक्ष किरणों के विषय में, जो सभी दिशाओं से रात-दिन पृथ्वी पर बरसती रहती हैं, अतिरिक्त सूचनाएँ प्राप्त करने के उद्देश्य से करते हैं।

दो गुब्बारे कैरिबियन सागर के ऊपर २२ मील की ऊँचाई तक उड़ाये गये। उनमें से प्रत्येक गुब्बारे में एक हवा से एक फुलाई हुई नाव थी, जिसमें फोटोग्राफी में प्रयुक्त द्रव भरा था। यह द्रव बाह्य अन्तरिक्ष से बरसने वाली प्राथमिक अन्तरिक्ष धूल के आघात को, वायुमंडल के अधिक घने स्तरों में व्याप्त कणों के साथ उनके टकराने के पूर्व ही अंकित करने के उद्देश्य से भेजा गया था। कई घंटों तक ऊँचाई पर ठहरे रहने के बाद, गुब्बारे धीरे-धीरे नीचे उतरे। जब वे उतर कर १२ मील की ऊँचाई तक आ गये, तो उनकी नावों को विद्युदाणविक संकेत द्वारा उन्मुक्त कर दिया गया और उन्हें प्रतीक्षा करते हुए जहाजों द्वारा उठा लिया गया।

आशा है कि फोटोग्राफी के उन द्रवों का अध्ययन करने पर अत्यन्त शक्तियुक्त अन्तरिक्ष धूलों और रेडियो-खगोलशास्त्र के बीच नवनिर्मित पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में नयी जानकारी प्राप्त होगी। शिकागो विश्वविद्यालय इन द्रवों का विशेष अध्ययन करेगा। इन द्रवों पर पड़ी समस्त छापों के पूर्ण अध्ययन में तो कई वर्ष लग जायँगे। इस अध्ययन में अमेरिका तथा अन्य देशों के विश्वविद्यालय शिकागो विश्वविद्यालय को सहायता प्रदान कर रहे हैं।

गुब्बारों की उड़ान द्वारा हाल में प्राप्त अन्य वैज्ञानिक सफलताएँ इस प्रकार हैं :

(१) अमेरिका नौसेना के दो वैज्ञानिक इस बात का निर्धारण करने के प्रयास में गुब्बारों द्वारा एक आवर्ती बादल के किनारे तक उड़कर गये थे कि बिजली की कड़क के साथ आने वाले तूफानों में पहले बिजली उत्पन्न होती है या वर्षा का पानी निर्मित होता है।

(२) १९५९ के अन्तिम चरण में अत्यन्त ऊँचाई पर उड़ाये गये एक गुब्बारे द्वारा इस बात की खोज की गयी कि शुक्र ग्रह के वायुमंडल में पानी से भरी भाप का अस्तित्व पाया जाता है। पानी से युक्त भाप, कार्बनडाइऑक्साइड तथा सौर विकिरण के अस्तित्व के आधार पर वैज्ञानिक यह कल्पना करने लगे हैं कि शुक्र ग्रह में किसी न किसी रूप में जीवधारियों का अस्तित्व अवश्य है। [शेष पृष्ठ १९४ पर]

फुएल सेलों का विकास

इधर हाल में शक्तिशाली और क्षमतापूर्ण फुएल सेलों के विकास की दिशा में जो तीव्र प्रगतियाँ हुई हैं, उनकी पृष्ठभूमि में यह आशा बलवती हो चली है कि वह दिन दूर नहीं, जब बिजली की रोशनी और शक्ति उत्पन्न करने वाले ऐसे संयंत्रों का निर्माण होने लगेगा, जो बहुत ही छोटे, निःशब्द तथा धूम्रहीन होंगे। इसके अतिरिक्त, वैज्ञानिकों के अनुसार, यह भी सम्भव प्रतीत होता है कि कालान्तर से आटोमोबाइलों के भीतर कम्बशन इंजिनों की जगह फुलए सेलों का ही प्रयोग होने लगेगा। यही नहीं, रेडियो ट्रांसमिटर से लेकर अन्तरिक्ष यान तक विविध प्रकार के यन्त्रों के संचालन के लिए आवश्यक बिजली की पूर्ति भी फुएल सेलों द्वारा की जा सकेगी।

पिछले कुछ वर्षो के भीतर ऐसे पदार्थो और ऐसी विधियों की खोज की जा चुकी है, जिनके कारण फुएल सेल अब कई गुना अधिक शक्तिशाली और क्षमतापूर्ण हो गया है। ठोस अवस्था विषयक भौतिकशास्त्र की प्रगति तथा अति शीघ्रता से रासायनिक प्रतिक्रिया उत्पन्न करने वाले पदार्थों विषयक जानकारी की वृद्धि के फलस्वरूप क्षमतापूर्ण फुएल सेलों के विकास के मार्ग में उत्पन्न अनेक बाधाओं का उन्मूलन किया जा चुका है।

इन प्रगतियों के परिणामस्वरूप, आज, औद्योगिक प्रयोगशालाओं में काम करने वाले वैज्ञानिक फुएल सेलों के विकास सम्बन्धी अनेक सम्भावनाओं का अनुमान लगाने में समर्थ हैं। इनमें एक ऐसी मोटर गाड़ी के निर्माण की सम्भावना भी सम्मिलित है, जिसके सिरे पर फुएल सेलों से युक्त एक बक्स होगा। यह बक्स एक सूटकेस के आकार का होगा, और उसका वजन १०० पौण्ड से कम होगा। इस बक्स से निकल कर बिजली की धारा पहियों को चलाने वाले मोटरों में प्रवाहित होगी। यह बक्स बहुत ही सस्ता होगा, इतना सस्ता कि उसे प्रत्येक १०० मील की यात्रा के बाद बदल कर उसकी जगह नया बक्स लगाया जा सकेगा।

इस प्रकार उत्पन्न विद्युत शक्ति को भार के प्रति पौण्ड पर वाट-घंटों के रूप में नापते हैं। एक उपयुक्त और प्रामाणिक आटोमोबाइल बैटरी प्रति पौण्ड ८ से १० वाट-घंटे बिजली उत्पन्न करती है। किन्तु, इसके विपरीत, कुछ नवीनतर प्रकार के फुएल सेल प्रति पौण्ड २५० से ३०० वाट-घण्टे तक बिजली उत्पन्न करने में समर्थ हैं। फुएल सेलों की यह सम्भाव्य क्षमता इस बात के लिए पर्याप्त है कि इनकी ओर आटोमोबाइल उद्योग आकृष्ट हों और उन्हें भविष्य में बिजली उत्पन्न करने वाले साधन के रूप में प्रयुक्त करने को प्रेरित हों।

फुएल सेलों से निर्माण एवं संचालन की विधियाँ इतनी सरल हैं कि उन पर आश्चर्य होता है। इस प्रकार के सेल में कुछ ही पदार्थ अलग-अलग या संयुक्त रूप से सम्मिलित हैं। ये हैं: दो विद्युदग्र-एक धन और ऋण; एक विद्युद्विश्लेष्य (यह विद्युत-धारा का एक वाहक पदार्थ होता है और दो विद्युदग्रों के बीच सम्बन्ध जोड़ने वाले माध्यम का काम करता है); और दो प्रकार के

फुएल (इर्धन)- एक आक्सीजन से संयुक्त करने वाला और दूसरा काम करने वाला। इन तत्वों के बीच क्रिया-प्रतिक्रिया उत्पन्न को बढ़ावा देने के लिए एक उत्प्रेरक (रासायनिक प्रतिक्रिया उत्पन्न करने वाला पदार्थ) भी होता है।

बिजली उत्पन्न करने के लिए इन पदार्थों के उपयोग की विधियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के सेलों में भिन्न-भिन्न होती हैं। एक प्रकार के सेल में जिनमें जिन दो ईधनों का प्रयोग किया जाता हैं, वे हैं हाइड्रोजन और आक्सीजन। एक विद्युदग्र में हाइड्रोजन का और दूसरे में आक्सीजन का संचार किया जाता है। हाइड्रोजन अपने विद्युदग्र पर पहुँच कर इलेक्ट्रानों और धनात्मक बिजली से युक्त हाइड्रोजन के रूप में विखण्डित हो जाता है। इलेक्ट्रान आगे बढ़ कर दूसरे इलेक्ट्रोड तक पहुँच जाते हैं और इस प्रकार बिजली की धारा (करेण्ट) उत्पन्न कर देते हैं। आक्सीजन अपने विद्युदग्र पर प्रतिक्रिया कर के 'हइड्रोजीलियन' नामक तत्वों का निर्माण करता है, जो धनात्मक बिजली वाले हाइड्रोजन आणुओं से संयुक्त हो जाते हैं। इस क्रिया के फलस्वरूप पानी उत्पन्न होता है। यह पानी ही फुएल सेलों का एक मात्र निरर्थक और व्यर्थ जाने वाला उत्पादित पदार्थ होता है। फुएल सेलों का प्रयोग करने पर आटोमोबाइलों या मोटर गाड़ियों में गैसें नहीं उत्पन्न होंगी, जो अन्यथा होती हैं।

हाल में जो भी प्रगतियाँ हुई हैं, उनमें सुधार का मुख्य कारण श्रेष्ठतर विद्युदग्रों का विकास अथवा विद्युद्रग्रों पर उत्प्रेरक के प्रयोग की नवीन विधियों की खोज ही रही है। अनुसन्धान-कर्त्ताओं ने हाल में यह खोज की है कि एक छिद्रयुक्त पिण्ड से निर्मित विद्युदग्र सबसे अधिक क्षमतापूर्ण सिद्ध हुआ है। गैसयुक्त ईधन इस प्रकार के विद्युदग्र की सतह में प्रविष्ट होने में समर्थ होते हैं, जहाँ उन्हें विद्युत-रासायनिक प्रतिक्रिया उत्पन्न करने के लिए बृहत्तर क्षेत्र प्राप्त हो जाता है।

अनेक वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इस समय जिन विद्युद्विश्लेष्यों का प्रयोग हो रहा है, वे आज उतने ही प्रभावकारी हैं, जितने कभी भी हो सकते हैं। एक विशेष क्षमतापूर्ण के सेल में प्रयुक्त विद्युद्विश्लेष्य वस्तुतः एक छिद्रयुक्त अविद्युतवाहक साँचे के भीतर स्थिरीकृत क्षारीय कार्बोनेटों का मिश्रण है।

इस समय ईधनों के सम्बन्ध में निरन्तर गहन प्रयोग हो रहे हैं। किन्तु इससे भी बढ़ कर उल्लेखनीय बात यह है कि इस समय फुएल सेलों सम्बन्धी अनुसन्धान के अन्तर्गत, इन सभी पदार्थों या तत्वों को एक साथ संयुक्त करने के यथा सम्भव सर्वश्रेष्ठ ढंगों की खोज की जा रही है। अधिकांश अनुसन्धानकर्ता इस बात से सहमत हैं कि इस समय उपलब्ध विद्युद्विश्लेष्यों व विद्युदग्रों के श्रेष्ठतम संयोगों की खोज कर लेने के बाद, विभिन्न उद्देश्यों के लिए निर्धारित सेलों में श्रेष्ठतम ढंग से क्रियाशील होने वाले ईधनों की खोज करने के परिणामस्वरूप और भी अधिक प्रगति होने की आशा है। विभिन्न प्रकार के ईधनों के सम्बन्ध में बड़े पैमाने पर प्रयोग और अनुसन्धान जारी हैं। जैसा कि कहा गया है, फुएल सेल में दो प्रकार के ईधनों की आवश्यकता होती है—एक ऑक्सीजन उत्पन्न करने वाला (ऑक्सीडैण्ट) और दूसरा कम करने वाला (रिडैक्टैण्ट)। ऑक्सीडैण्ट के सूक्ष्माणु किन्हीं दूसरे सूक्ष्माणुओं पर इलेक्ट्रोन प्रक्षिप्त करने को आतुर होते हैं, जबकि

रिडैक्टैंट के सूक्ष्माणु किसी भी उपलब्ध इलेक्ट्रोन को ग्रहण करने को तत्पर होते हैं। एक प्रकार के ईंधन से दूसरे प्रकार के ईंधन तक इलेक्ट्रानों के इस प्रवाह के कारण ही विद्युत-रासायनिक प्रक्रिया सम्भव होती है।

फुएल सेलों में इस समय सामान्यतः जिन ऑक्सीडैण्टों का प्रयोग हो रहा है, वे हैं ऑक्सीजन, हवा और क्लोरीन; जबकि रिडक्टैण्टों में हाइड्रोजन, कार्बन मोनोक्साइड, प्राकृतिक गैस, मीथैन, ईंधन, कोयला, फार्मलडिहाइड, अलकोहल, जस्ता और मैगनेशियम हैं।

विद्युत-उत्पादक साधन के रूप में फुएल सेल अनेक प्रकार से उपयोगी हैं। इन के प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं :

इनमें अधिकांश या सभी घूमने वाले पुर्जे नहीं होते, जिससे मरम्मत या सुरक्षा की आवश्यकता बहुत ही कम रह जाती है। ये परम्परागत ताप और मशीन का उपयोग करने वाले विद्युत-उत्पादक यन्त्रों की अपेक्षा अधिक क्षमतापूर्ण होते हैं। इन की रूप-रेखा और क्रिया-विधि सरल होती है। इन में ताप, धुआँ या आवाज आदि नहीं उत्पन्न होती।

[पृष्ठ १९१ का शेष]

(३) अमेरिका ने १,१६, ००० फुट की ऊँचाई तक एक गुब्बारा उड़ाया। इस उड़ान के फलस्वरूप एक ऐसे हिलियम न्यष्टि-पथ की चित्रांकित छाप प्राप्त हुई, जिसमें फूटने वाले अणु बम के आणुविक कण की अपेक्षा १० गुनी अधिक शक्ति थी।

(४) गुब्बारे की सहायता से एक राकेट को १,००,००० फुट की ऊँचाई तक ले जाया गया, जहाँ से उसे इस प्रकार लक्षित किया गया, जिससे वह अन्तरिक्ष में कम से कम २,७०० मील की उड़ान कर सके।

(५) एक रेडियो ट्रांसमिटर से युक्त अमेरिकी गुब्बारे को तूफान का पथ अंकित करने के लिए एक झंझावात के मध्य छोड़ दिया गया।

सेमीकण्डक्टरों द्वारा विद्युदाणविक उद्योग में क्रान्ति

कुछ समय पूर्व, अत्यन्त तीव्र गति से उड़ने वाला एक अमेरिकी प्रतिरोधक जेट विमान दक्षिणी कैलिफोर्निया के एक हवाई अड्डे से उड़ा। क्षण मात्र में वह प्रशान्त महासार के ऊपर आँख से ओझल हो गया। खड़ी उड़ान करता हुआ, वह स्ट्राटोस्फियर (वायुमण्डल के ऊपरी भाग) में घुसता गया, और फिर चक्कर काट कर अत्यन्त ऊँचाई पर उड़ते हुए एक शत्रु बम-वर्षक पर आक्रमण करने के लिए स्वारोपरि गति से मुड़ा। बम-वर्षक से निकलने वाली नकली सुरक्षात्मक अग्नि से बचने के लिए दायें-बायें और ऊपर-नीचे मुड़ता हुआ, वह प्रतिरोधक जेट अपने लक्ष्य के निकट पहुँच गया, और प्रक्षेपणास्त्रों से तीन चोटें करने के बाद, मुड़कर उस मार्ग पर उड़ चला, जो उसे सीधे उसकेअपने हवाई अड्डे तक ले जाता था। कुछ मिनटों के बाद, उस ने अपनी गति धीमी कर दी और अपनी अभ्यास-यात्रा पूरी कर लेने के बाद नीचे निर्दिष्ट स्थान पर उतर पड़ा।

इस समस्त उड़ान और सैनिक कलाबाजी के दौरान, किसी मनुष्य चालक के हाथों ने जेट के नियन्त्रण-यन्त्रों का स्पर्श नहीं किया था। उसकी समस्त गतिविधियों का निर्देशन एक लघु विद्युदाणविक उपकरण द्वारा सम्पन्न हुआ, जो विमान में छोटे-छोटे और काले धातु के डिब्बों में समाविष्ट था। जेट के नियन्त्रण-यन्त्रों के सहयोग में इन तथाकथित काले डिब्बों ने उसकी गतिविधियों का निर्देशन मानव चालक की अपेक्षा कहीं अधिक सही ढंग पर सम्पन्न किया।

इन उड़ान के बाह्य प्रदर्शन की पृष्ठभूमि में चावल के दाने के आकार का एक नन्हा-सा उपकरण क्रियाशील था। यह उपकरण सेमीकण्डक्टर था। इस प्रकार के हजारों सेमीकण्डक्टरों जो काले डिब्बों में मनुष्य के मस्तिष्क के प्रकोष्ठों की भांति सजा दिये थे, विमान की गतिविधियों को नियन्त्रित और निर्दिष्ट किया।

इन नवीन विद्युदाणविक उपकरणों की सहायता से अनेक ऐसे उपकरणों का निर्माण करना सम्भव हो गया है, जो लगभग १० वर्ष पूर्व बनने वाले उपकरणों की अपेक्षा कहीं अधिक छोटे, हल्के और विश्वसनीय हैं। १९५० में सेमीकण्डक्टरों को वैज्ञानिक प्रयोगशाला की आश्चर्यजनक कृति समझा जाता था किन्तु, आजकल अमेरिकी निर्माता निर्देशित प्रक्षेपणास्त्रों से लेकर कलाई घड़ी के आकार के रेडियो में प्रयुक्त करने के लिए प्रति मास लाखों सेमीकण्डक्टरों का निर्माण कर रहे हैं।

आजकल बहुत से लोग प्रायः पूछ बैठते हैं कि आखिर, ये अद्भुत सेमीकण्डक्टर हैं क्या चीज ? इस प्रश्न का सबसे सरल उत्तर है : सेमीकण्डक्टर एक प्रकार के लघु-उपकरण हैं, जो

लगभग वही कार्य सम्पन्न करते हैं, जो किसी रेडियो रिसीवर या अन्य विद्युदाणविक उपकरण में में वैकूमट्यूब सम्पन्न करते हैं। इस समय तो अनेक प्रकार के विद्युदाणविक उपकरणों में सेमीकण्डक्टर वैकूम ट्यूब का स्थान ग्रहण करते जा रहे हैं।

वैकूम ट्यूब और सेमीकण्डक्टर, दोनों ही का एक मुख्य कार्य बिजली प्रत्यावर्ती धारा (ए-सी) को प्रत्यक्ष धारा (डी-सी) में परिवर्तित करना है। इस परिवर्त्तन-सिद्धान्त के आधार पर ही टेलिविजन सेट से लेकर विद्युदाणविक गणक यन्त्र तक अनेक प्रकार के विद्युदाणविक उपकरणों का निर्माण किया जा रहा है।

किन्तु, सेमीकण्डक्टर बिजली की धारा को वैकूम ट्यूब की अपेक्षा कहीं अधिक प्रत्यक्ष और सरल ढंग पर परिवर्तित करते हैं। इसके अतिरिक्त, वे विद्युत् धारा की न्यूनतर मात्रा पर संचालित हो सकते हैं, अधिकतम ताप और शीत में अच्छी तरह कार्य कर सकते हैं और उन पर स्पन्दनों का, जिन से कुछ ही क्षणों में वैकूम ट्यूब विनष्ट हो सकते हैं, तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता।

सेमीकण्डक्टर का नामकरण उन सामग्रियों के अधार पर हुआ है, जिनका उपयोग उस के निर्माण में किया जाता है। इन सामग्रियों के अन्तर्गत, ऐसे तत्व और घोल सम्मिलित हैं, जो धातु जैसे तो होते हैं, किन्तु धातु की भांति ही विद्युत-संचालन नहीं करते। इसी कारण उन्हें आंशिक या अर्ध विद्युत-संचालक (सेमी कण्डक्टर) कहते हैं। इस प्रकार की एक सामग्री सिलिकौन है। एक अन्य सामग्री जर्मेनियम है, जो रूप-रंग में सीसे या जस्ते जैसी ही होती है।

यदि ये अर्ध-संचालक तत्व पूर्णतया विशुद्ध हों, तो वे किसी भी प्रकार की विद्युत धारा का तनिक भी संचालन नहीं कर सकते। किन्तु यदि उन में तथाकथित अशुद्धता अल्पांश-एक लाखवें अंश-में भी वर्तमान होगी, तो सेमीकण्डक्टर एक ही दिशा में विद्युत धारा का संचालन करेंगे, दूसरी में नहीं। आर्सनिक इसी प्रकार का एक अशुद्ध तत्व है, जिसका उपयोग सेमीकण्डक्टरों के निर्माण में व्यापक रूप से होता है।

प्रतिकूल दिशा में विद्युत धारा के संचालित न होने का यह गुण सेमीकण्डक्टर और वैकूम ट्यूब, दोनों की एक अनिवार्य विशेषता है। अपने सरलतम रूप में, वे मूलतः ऐसे वाल्व हैं, जो बिजली को एक ही दिशा में प्रवाहित होने देते हैं, विपरीत दिशा में नहीं।

सिलिकोन या जर्मेनियम में अशुद्धता समाविष्ट करने का कार्य इतना कठिन है कि उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। क्लाइड होस्टेटर, का कथन है, विशुद्ध जर्मेनियम के १०,००,००० अंशों के साथ आर्सेनिक के एक अंश को मिश्रित करना वैसा ही पेचीदा कार्य है, जैसा एक चम्मच नमक के साथ ६ गाड़ी शोरवे को मिश्रित करना। एक अन्य प्रकार की उपमा देते हुए वे कहते है :

कल्पना कीजिये कि श्वेत इंटों की एक ६ फुट ऊची दीवार सैन फ्रांसिस्को से लोस एंजेल्स तक खड़ी कर दी गयी है। अब एक लाल इंट लीजिये और उसे किसी प्रकार श्वेत इंटों के साथ इस प्रकार मिला दीजिये कि प्रत्येक ईंट का रंग एक सा ही पीला हो जाये। वस्तुतः, सेमीकण्डक्टरों के निर्माता को एक व्यहार के उपयुक्त सेमीकण्डक्टर तैयार करने में कुछ इसी प्रकार का कठिन कार्य सम्पन्न करना पड़ता है।

सेमीकण्डक्टरों के निर्माण में प्रयुक्त होने वाली सामग्रियों को मिश्रित कर लेने के बाद, घोल को नन्हें-नन्हें वर्गाकार टुकड़ों में काट लिया जाता है। इन्हें संयुक्त करके सेमीकण्डक्टर डायोड का निर्माण किया जाता है। बस आप का सेमीकण्डक्टर तैयार हो गया, जो प्रायः वही कार्य सम्पन्न करता है, जो वैकूम ट्यूब सम्पन्न करता है। अब तो डायोड शब्द का उपयोग व्यापक रूप से होने लगा है, किन्तु वैज्ञानिक इसका प्रयोग पिछले कितने ही वर्षों से करते आ रहे हैं। डायोड उस उपकरण को कहते हैं, जो प्रत्यावर्ती विद्युत धारा (ए-सी) को डी-सी में परिवर्तित करता है।

कुछ वर्ष पूर्व जब पहली बार सेमीकण्डक्टर का निर्माण बहुत बड़ी संख्या में किया गया उसके डायोड के अन्तर्गत अर्ध-संचालक सामग्री का एक नन्हा वर्गाकार टुकडा सम्लिलित था, जो एक छोटे से काँच की नलिका में बन्द होता था। इसकी लम्बाई १/४ इंच तथा उसका व्यास एक लकड़ी की माचिस के व्यास के बराबर होता था। उसके बाद नवीन प्रविधियों का उपयोग करके उसके आकार को और भी छोटा कर दिया गया है। आजकल ऐसे नन्हें 'डायोडों' का निर्माण होने लगा है, जिन्हें १,००० से अधिक की संख्या में उन नन्हीं लोहे की टोपियों में भरा जा सकता है, जिन्हें सुई से बचने के लिए दर्जी अपनी अंगुलियों में पहन रखता है।

अब सेमीकण्डक्टरों का उपयोग अनेक दिशाओं में होने लगा है, जिनके कारण विद्युदाणविक क्षेत्र में एक क्रान्ति उत्पन्न हो गयी है। प्रक्षेपणास्त्रों और सामरिक विमानों के नियन्त्रक-उपकरणों में इनके उपयोग की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। किन्तु सेमीकण्डक्टर के विकास से वास्तविक बड़ी क्रान्ति अब प्रारम्भ हो रही है। यह क्रान्ति व्यवसाय और उद्योग के क्षेत्र में उत्पन्न हो रही है, जहाँ वैकूम ट्यूब के स्थान पर सेमीकण्डक्टरों से युक्त डेस्क के आकार के गणक-यन्त्र निर्मित होने लगे हैं। आशा है कि शीघ्र ही, मनुष्य की कनिष्टिका के आकार के सेमीकण्डक्टर उपकरणों द्वारा 'ए-सी' को 'डी-सी' में परिवर्तित करके, बिजली प्रदान करने वाले छोटे-छोटे बिजली के औजार और भोजनालय के उपकरण बनाने लगेंगे। सेमीकण्कडटरों का उपयोग करके बैटरी से चलने वाले टेलिविजन सेट तैयार करने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति हो चुकी है।

अभी हाल में, लोसएंजेल्स में एक स्वतःचालित कारखाने का उद्घाटन हुआ है, जो सेमीकण्डक्टरों का प्रयोग करके बिजली प्रदान करने वाली लघु आकार के परिपथ द्वारा संचालित है। बहुत से लोगों का विश्वास है कि इस प्रकार के ठोस विद्युदाणविक उपकरण आगामी कुछ वर्षों के भीतर 'आटोमेशन' (स्वतः संचालन प्रक्रिया) के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन उत्पन्न कर देंगे। वैज्ञानिकों और इंजिनियरों का कहना है कि उस समय विद्युदाणविक क्षेत्र में सचमुच स्वर्ण युग का उदय होगा।

---

१. पैत्रिक संस्कार का ज्ञान

स्वामी हरिशरणानन्द

गर्भवृद्धि कैसे होती है ?

पिता के वीर्य में शुक्रकीट रहते हैं, माता के रज में डिम्बकीट। गर्भाधान में इन दोनों का मिलाप होता है तब शुक्रकीट डिम्बकीट को अपने अंग से आच्छादित कर लेता है। कुछ ही क्षणों में दोनों मिलकर एक रूप हो जाते हैं और एकत्व को प्राप्त कर सन्तति के रूप में अवस्थित होते हैं, तभी वह वृद्धि करने लगता है। जहाँ वह पूर्ण विवर्धित हुआ एक से दो भागों में विभक्त हो जाता है। कुछ क्षणों में वह दोनों कोषाएं पूर्ण विवर्धित हो दो-दो भागों में विभक्त हो जाते हैं। इस तरह द्विगुणोत्तर वृद्धि के साथ गर्भ की वृद्धि होती चली जाती है।

इस शुक्रकीट और डिम्बकीट के भीतर ऐसी कौन-सी प्रेरणादायक वस्तु विद्यमान होती है जिसके कारण गर्भ की आकृति-प्रकृति वैसी ही बनती चली जाती है जैसे माता-पिता होते हैं ?

इसकी सूक्ष्मता में खोज हुई है; अनुसन्धानों से ज्ञात हुआ है कि शुक्रकीटों और डिम्बकीटों के चिद्रस (प्रोटोप्लाज्म) में निम्न आवश्यक चीजें विद्यमान रहती हैं। (१) चिद्रमींगी (न्यूक्लियस), (२) उसके आसपास संस्कारी मणिकाओं (क्रोमोसोम) की माला (३) उसके बाहर जरा सा रिक्त क्षेत्र। चिद्रस का मध्य क्षेत्र चिद्र मींगी से व्याप्त होता है, उसके आस पास संस्कारी मणियों की माला फैली रहती है। चिद्रमींगी और संस्कारी मणियों की माला यही दोनों चेतना और पैत्रिक सम्पत्ति के आधार होते हैं। चिद्रमींगी जब तक स्वस्थ रहती है उसकी प्रेरणा से चिद्रस और संस्कारी मणिकाओं में रासायनिक क्रियाओं के चलते रहने के कारण द्रव्यों का सात्म्यरूप होता रहता है और उसके प्रत्येक अवयव में वृद्धि होती रहती है। जब वह वृद्धि पूर्णता को प्राप्त होती है तभी अन्तः प्रेरणा से चिद्रमींगी सहित प्रत्येक वस्तुएं दो भागों में विभक्त होने लगती हैं। इस तरह प्रत्येक कोषा (सेल) में विभाजन के साथ पैत्रिकता, उसके गुण-स्वभाव और जीवन के समस्त उपादान साथ साथ बढ़ते चले जाते हैं।

प्राणियों में जो पैत्रिक संस्कारों का गुण विद्यमान रहता है वह उक्त संस्कारी मणियों की माला में निहित रहता है। यह संस्कारी मणियों की माला किस प्राणी में कितने मणिकाओं की होती है? मनुष्यों में इसकी संख्या २० ज्ञात हुई है, अन्य प्राणियों में इससे कम मणिकाएं होती हैं। कोषा वृद्धि के समय यह सभी बढ़ कर द्विगुणित होते हैं और जब विवर्धन पूर्ण होता है तभी वे विभक्त

हो जाते हैं। इन्हीं पैत्रिक मणियों के कारण वंश का गुण, स्वभाव, कर्म, रचना, रूप आगे से आगे विकसित होते चले जाते हैं। जब इस बात का सही ज्ञान हो गया कि इन संस्कार मणियों में ही पैत्रिक गुण निहित रहते हैं तो वैज्ञानिकों को जिज्ञासा हुई कि अन्तः रचना को खोजना और जानना चाहिए। आजकल वैज्ञानिकों के पास इतने सूक्ष्म साधन हाथ आ गये हैं कि कोषा के चिद्रस को भिन्न कर उसकी चिद्रमींगी को भी भिन्न कर लिया है और उसके स्वरूप को भी समझ गये हैं। अब प्रयत्न करके चिद्रमींगी के आसपास संस्कार मणिमाला को भी भिन्न कर लिया गया है। इस समय रसायन शास्त्र इतना समुन्नत हो चुका है कि सूक्ष्म यौगिकों को भी विश्लेषित करके यह समझने में समर्थ हो रहे हैं कि इनकी आन्तरिक रचना किस तरह की है। डाक्टर आर्थर कोनवर्ग आज कई वर्षो से कोषा की आन्तरिक रचना के प्रत्येक भाग को बड़ी सूक्ष्मता के साथ विश्लेपित कर उसके स्वरूप को समझने का प्रत्यन करते आ रहे हैं। उन्होंने संस्कारी मणिकओं की रचना को तो आज दो वर्ष हुए तभी ज्ञात कर लिया था किन्तु वे इस प्रयत्न में लगे थे कि इन मणिकाओं की रचना किन यौगिकों से हुई है? यदि इसका सही ज्ञान हो जाय तो इससे संस्कारों के रहस्य की गुत्थी खुल सकती है।

अभी-अभी सूचना मिली है कि उन्होंने एक ऐसा अम्ल स्वरूप यौगिक निर्मित कर लिया है जो संस्कारमणि काओं के स्वरूप के तद्वत है। इसी के साथ यह भी ज्ञात हुआ कि एक जापानी वैज्ञानिक सीवरे अचोवा ने अपनी विशिष्ट जैव रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा उक्त अम्ल द्रव्य को उत्पन्न कराकर उसे भिन्न करने और उसके स्वरूप को समझने में सफलता प्राप्त की। इस अम्लीय द्रव्य का नाम उन्होंने डेसीवस्त्रिनेन्यूक्लिक एसिड रखा है। हम इसको निःपैत्रिकाम्ल कह सकते हैं। उन्होंने प्रयोगों से ज्ञात किया है कि संस्कार मणिकाओं का गठन बिलकुल निःपैत्रिकाम्ल जैसा ही है। जिसमें प्राणियों की पैत्रिक सम्पति का बीज निहित रहता है। इन दोनों वैज्ञानिकों का विश्वास है कि निःपैत्रिकाम्ल के ज्ञान से पैत्रिक मणिकाओं की रचना को समझने का मार्ग प्रशस्त हो गया है। आशा है इस निःपैत्रिकाम्ल में कुछ रासायनिक हेरफेर कर प्राणियों के पैत्रिक गुण-स्वाभावों के ऊपर नियन्त्रण कर सकेंगे और उन्हें बदल भी सकेंगे।

निः पैत्रिकाम्ल का आविष्कार वैज्ञानिक जगत् में इतना महत्त्वपूर्ण माना गया कि १९५९ का नोबल पुरस्कार इन्हीं दोनों महापुरुषों में बाँटा गया। यह अनुसन्धान वास्तव में इतना महत्वपूर्ण है जिससे जीवन की आरम्भिक गुत्थी के निकट भविष्य में सुलझने की आशा है। इस अनुसन्धान से यह आशा बंध गई है कि वह दिन दूर नहीं जब वैज्ञानिक इस बात को जानने में सफल हो जाँयगे कि आदि काल में जब सजीव सृष्टि का आविर्भाव हुआ था उस निर्जीव द्रव्य द्वारा सजीव का रासायनिक रूप कैसे बन सका और सजीव सृष्टि के विकास में एक वंश के प्राणियों से दूसरे संश के प्राणियों में जो अन्तर आता गया वह कैसे आया? यह सब निःपैत्रिकाम्ल के रासायनिक परिर्वतन से पूरी तरह जाना जा सकेगा।

संस्कार मणिकाओं पर प्रकाश के प्रभाव में होनें वाला ज्ञान काल

कुछ पक्षी सदा एक ही देश में नही रहते, ग्रीष्म काल में कहीं तो शीत काल में कहीं होते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी इसका प्रमाण दिया है। जानि शरद ऋतु खंजन आये। खजन, कड़ाकुल,

कोयल, बड़े चमगादड़ आदि अनेक पक्षी ऋतु का ज्ञान रख कर देशान्तर को चले जाते हैं। कुत्ते, मछलिमाँ, मेंढक, कस्तूरामृग आदि अनेक प्राणी भी ऋतु का ज्ञान रखते हैं और ऋतु के आने पर ही वे गर्भाधान के समय समागम पर उद्यत होते हैं। इन प्राणियों को ऋतु का ज्ञान कैसे होता है ? इसकी खोज कुछ वैज्ञानिक कई वर्षों से कर रहे थे। उन्हें अब आकर ज्ञात हुआ है कि यह ऋतुज्ञान प्राणियों को उनके संस्कारी मणिकाओं पर प्रकाश के प्रभाव से होता है। आप देखते हैं हम तक सूर्य से आनेवाला प्रकाश व गर्मी सारे ऋतुओं में एक सा नहीं पड़ता। गर्मी के साथही प्रकाश के प्रभाव में भी अन्तर आता रहता है। यह जो सूर्य का प्रकाश हमें श्वेत वर्ण का दिखाई देता है यह सात रंग के प्रकाश के मेल से बनता है। वह सात रंग निम्न हैं-पराकासनीय, कासनी, बेंगनी, हरा, पीला, नारंगी और लाल। इन सातों वर्णों का प्रकाश ऋतु के अनुसार घटता बढ़ता रहता है। इन्हीं भिन्न भिन्न प्रकाश वर्णों का न्यूनाधिकता के समय उसका जो प्रभाव संस्कारी मणिकाओं पर पड़ता है उसीसे उनमें उत्तेजना व शिथिलता आदि का प्रभाव होता है, उसीसे सारे शरीर को प्रेरणा मिला करती है। उसीसे उन प्राणियों को ऋतु सम्बन्धी ज्ञान होता रहता है। इन्हीं उत्तेजनाओं से प्रभावित होकर उक्त प्राणी गर्भाधान के लिए प्रेरणा प्राप्त करते हैं और इसीसे वे स्थानान्तरित होते रहते हैं।

भिन्न-भिन्न प्रकाश का इन प्राणियों पर कैसे प्रभाव होता है ?

वर्ण रश्मिलेखी (स्पैक्ट्रो ग्राम) एक ऐसा यन्त्र है जिसके द्वारा इच्छित वर्ण का प्रकाश हम जहाँ चाहें वहाँ डाल सकते हैं। इस वर्णलेखी यन्त्र की सहायता से एक कोषी जलज प्राणी परमेशिया पर प्रयोग करके जाना गया है कि इन प्राणी के संस्कारमणिकाओं पर भिन्न भिन्न वर्णों के प्रकाश का भिन्न भिन्न प्रभाव होता है। जब इस एक कोषी जीव पर लगातार कासनी व पराकासनी वर्ण का प्रकाश डाला जाता है तो इससे इसके अन्दर चलने वाली रासायनिक क्रियाएँ बढ़ जाती हैं और क्षय-पूर्ति के व्यापार बढ़ जाते हैं, साथ ही विभाजन का क्रम भी द्रुत गति से चलने लगता है। और जब लाल वर्ण का प्रकाश अधिक काल तक डालते रहें तो इसके भीतर चलने वाली रासायनिक क्रियाएँ घट जाती हैं। इससे जागरण, प्रजनन, विवर्धन सभी मन्द गति से चलते हैं। इससे ज्ञात हुआ कि इन प्राणियों में ऋतुसम्बन्धी ज्ञान व काल ज्ञान इस विशेष वर्णों के प्रकाश की न्यूनाधिकता के द्वारा उन्हें ज्ञात होता है।

इस भिन्न-भिन्न प्रकाश का प्रभाव सारे कोष को प्रभावित करता है या किसी विशिष्ट स्थान पर पड़ कर वहाँ से प्रेरणा मिलती है, इसकी खोज करने पर यह ज्ञात हुआ कि इस विशेष वर्ण के प्रकाश का प्रभाव संस्कारी कणिकाओं पर जब पड़ता है तो वहाँ से अंगों को उत्तेजना प्राप्त होती है। उसी उत्तेजना के प्रभाव से जीवन सम्बन्धी व प्रजनन संम्बन्धी तथा ऋतुसम्बन्धी प्रत्येक प्रकार के क्रिया-व्यापारों के करने का चक्रबद्ध ज्ञान होता रहता है।

इन अनुसन्धानों से प्राणियों के आचरण, व्यवहार और क्रिया-कलापों पर इतना अधिक प्रकाश पड़ा है कि जो बातें पूर्व काल में ईश्वरीय कृति समझी जाती थीं उनको समझना सरल होता जा रहा है।

२. एक सहस्र वर्ष पूर्व के जमीन में दबे बीज

चीन के मञ्चूरिया प्रान्त में एक ग्राम है पोलाशियन। जिस तरह हमारे यहाँ ग्रामों के बाहर कहीं कहीं कच्चे तालाब होते हैं इसी तरह मञ्चूरिया के ग्रामों में भी जहाँ-तहाँ तालाब पाये जाते हैं। उक्त पोलाशियन ग्राम का वह तालाब पानी की कमी से आज हजारों वर्ष से सूखा पड़ा है और उसपर मिट्टी की कोई १०-१५ फुट तह चढ़ गई है। कुछ जापानी वैज्ञानिक उस तालाब की मिट्टी की तह को जाँचने के लिये उसे खोद रहे थे। जब वे १०-११ फुट तक नीचे गहराई में जा पहुंचे तो उस नीचे की मिट्टी में उन्हें कमलगट्टे मिले। उन्होंने यह जाँचने के लिये कि यह जम भी सकते हैं कि नहीं उन्हें इकट्ठे कर लिये। उस मिट्टी को जो १०-११ फुट नीचे की थी जहाँ कमलगट्टे मिले थे उसे जाँचा तो उन्हें ज्ञात हुआ कि यह तह आज से एक सहस्र-वर्ष पूर्व ऊपर था, उस समय इसमें कमल के पौधे यहाँ लगे होंगे। किसी भारी बाढ़ के आने पर जब इस तालाब में एकाएक मिट्टी की तह दो चार फुट बढ़ गई तो यह बीज अंकुरित होने से रह गये। फिर काल पाकर मिट्टी की और तहें बढ़ती चली गई और वह तालाब मिट्टी से भर जाने पर पानी के संचय के अनुकूल नहीं रहा। इसीसे वह तबसे इसी स्थान में दबे पड़े हैं। उन जापानी वैज्ञानिकों ने इन बीजों में से काफी बीज तो अपने साथ जापान ले गये। उन्होंने कुछ बीज जाँचने के लिये अमेरिका भेजे। किसी को स्वप्न में भी पता न था कि ये बीज अंकुरित होंगे। अमेरिकन कृषि विशेषज्ञों ने उन्हें एक तालाब में रोप दिया। कुछ ही दिनों में उनमें से अंकुर निकल आये और तीन माह में वे कमल सुन्दर फूलों से खिल उठे। वह फूल १६ पंखुड़ियों वाले थे और इतने अधिक सुन्दर थे कि जो देखता था आश्चर्य करता था। यह कमल आज कल वाशिंगटन के प्रसिद्ध बगीचे के केलिनवर्थ की अपूर्व शोभा बढ़ा रहे हैं।

हमारे दार्शनिक विचारधारी पाठक कहेंगे कि यह निश्चय कैसे हुआ कि यह एक सहस्र वर्ष के पुराने थे? भूमि के स्तर पर कितने समय के बाद एक फुट मोटी तह चढ़ती है? इसको वैज्ञानिकों ने जाँचा है। साधारण भूमि पर प्रायः सौ-वर्ष में एक फुट से अधिक ही मिट्टी जम जाती है। इससे भिन्न दूसरी एक नई विधि अभी आविष्कृत हुई है वह निम्न है :—प्राणियों के श्वास से निकली जो वायु हवा में विद्यमान रहती है इसका नाम कार्बन डाइआक्साइड है। इस वायु में जो कार्बन विद्यमान रहता है वह दो प्रकार के कार्बन का मिश्रण होता है—(१) रश्मि विकरण सक्रिय (२) निष्क्रिय। इस सक्रिय कार्बन का नाम है कार्बन-१४। प्रयोगों से जाना गया है कि यह कार्बन का यौगिक सदा ही अपने में विद्यमान रश्मियों को त्यागता रहता है, इसीसे उसकी सक्रियता घटती रहती है। इसकी मात्रा किस हिसाब से कम होती है? इसको जब जाँचा गया तो ज्ञात हुआ कि ६५६० वर्षों में यह घट कर आधी रह जाती है। जिस तरह यह हवा का सक्रिय कार्बन घटता है उसी हिसाब से रश्मिविकीरक यह कार्बन-१४ भी घटता है। जिस तरह कार्बन हवा में होता है इसी तरह समस्त प्राणियों में और वनस्पतियों में भी विद्यमान होता है। उसकी सक्रियता भी इसी हिसाब से घटती रहती है। किसी वस्तु में विद्यमान यह कार्बन-१४ कितना घट गया है इसकी मात्रा को जाँच कर उससे उस वस्तु की आयु को सही रीति से निकाला जा सकता है। भूगर्भ से प्राणियों के प्रस्तरी भूत हुए अस्थिपंजरों में विद्यमान कार्बन-१४ के द्वारा

यह जाना जा सकता है कि यह प्राणी आज से कितने सहस्र वर्ष पूर्व विद्यमान थे। इसी सूक्ष्म विधि, से इन कमलगट्टों की भी जब जाँच हुई तो यह एक सहस्र वर्ष पूर्व के सिद्ध हुए।

इस नव्य पद्धति से अबतक निम्न पुरातन वस्तुओं को जाँचा गया। मिश्र की ममियों में पाये गये गेहूँ के दाने जाँचे गये। उन दानों में विद्यमान कार्बन- १४ की सक्रियता की घटी मात्रा से ज्ञात हुआ कि वे ५२०० वर्ष पुराने हैं। तेल के लिये ईराक में खोदे गये कुओं के भीतर से जो सबसे नीचे कोयले की तह मिली उसके कार्बन की सक्रियता से ज्ञात हुआ कि यह जिन वृक्षों से कोयला बना वह ६६०० वर्ष पूर्व विद्यमान थे। कैलिफोर्निया में एक बहुत प्राचीन लकड़ी का टुकड़ा मिला था, उसे जाँचने पर ज्ञात हुआ है कि १७००० वर्ष पूर्व विद्यमान वृक्ष का है। न्यूबैरी में ज्वालामुखी के लावे में निकले गन्धक और कार्बन मिश्रित खनिज को जाँचा गया। यह २०००० वर्ष पुराना ज्ञात हुआ। मिश्र में किसी भूमिगत हुई नाव का टुकड़ा मिला है जिसको जाँचने से ज्ञात हुआ कि वह ५ सहस्र वर्ष पुराना है।

३. धातुओं के भीतर व्यूहाणुओं की क्रियाशीलता

कितने ही वर्षों के वैज्ञानिक इस बात का पता लगाने का प्रयत्न करते आ रहे हैं कि अत्यधिक ऊँचे वेग से आने वाले पदार्थ से टकराने पर,—जैसे कवच से गोली के, टैंक से बम के, राकेट अथवा अन्तरिक्ष में उड़ने वाले भू-उपग्रह से उल्काओं के टकराने-पर धातु में कौन से परिवर्तन होते हैं?

जान्स हापकिन्स विश्वविद्यालय में मेकैनिकल इंजिनियरिंग के सहायक प्रोफेसर, जेम्स बेल, ने इस दिशा में कुछ महत्वपूर्ण रहस्यों का उद्घाटन किया है। कितने ही लोगों का विश्वास है कि उनकी खोजों में विमान, जलयान, राकेट या पनडुब्बी के निर्माण पर गहरा प्रभाव पड़ेगा। किन्तु स्वयं बेल की रुचि इस बात का पता लगाने में है कि धातुओं के भीतर कौन-सी प्रतिक्रियाएँ होती हैं।

लगभग १० वर्ष पूर्व उनके मन में यह बात सूझी थी कि उपर्युक्त टकराहट की स्थिति में, निमिष मात्र में जो परिवर्तन-प्रक्रिया सम्पन्न होती है, उसे किस प्रकार नापा जा सकता है। एक प्रकाश-विभाजक जाली-जिसकी ऊपरी सतह ठोस हो और जिसके भीतरी भाग में छिद्र कटे हों-प्रकाश की विभिन्न तरंग दैर्घ्यों को एक-दूसरे से पृथक कर देगी, जिनकी लम्बाई को नापा जा सकता है। बेल का विश्वास था कि वह जालियों को धातुओं पर रखने, धातु पर ऊँचे वेग से आघात करने तथा निमिष मात्र में धातु में होने वाले परिवर्तन को नापने के लिये, धातु पर प्रक्षिप्त प्रकाश रश्मियों के कोण में होने परिवर्तनों को माप कर कोई उपाय ढूंढ़ निकालने में सफल होंगे।

उन्होंने एक पुराने और जर्जर खराद-यन्त्र से प्रकाश-विभाजक जाली (संसार भर में इनकी सख्या उन्गलियों पर गिनी जा सकती है) तैयार करने के लिए स्वयं अपनी मशीन बनाना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने अपनी मशीन बनाने में एक वर्ष से अधिक समय लगाया। उसके द्वारा धातु के छड़ों पर प्रति इंच लम्बाई में १४,००० सूराख काट निकालना सम्भव हो गया है। वे पेंच के धागे जैसे दिखलायी देते हैं; किन्तु इतने बारीक होते हैं कि हम उन्हें देख नहीं सकते।

इसके बाद, उनके सामने ऐसी बन्दूकें प्राप्त करने की समस्या थी, जो इन धातु के जालीदार छड़ों पर तीव्र वेग से आघात कर सकें। उनके पास ऐसी बन्दूकें खरीदने के लिए पर्याप्त धन का अभाव था। अतः उन्होंने इसके लिए एक अन्य यन्त्र तैयार किया, जिसके द्वारा छड़ों पर आघात करना सम्भव हो गया। छड़ों पर चमकने के लिए एक हरे प्रकाश का उपयोग किया गया। विभाजित प्रकाशित-रश्मियों को ग्रहण करने के लिए उन्होंने चित्र-विस्तारक नलिकाओं का प्रयोग किया। उसके बाद प्रकाश को विस्तृत करके उसे एक "दोलनलेखी" पर प्रक्षिप्त किया गया। दोलनलेखी पर पड़ने वाले इस चित्र को तब चित्रित किया गया, जो कि निमिष मात्र में धातु में होने वाले आन्तरिक परिवर्तन का स्थायी चित्र था। १२ वर्ष के इस अथक प्रयास के बाद उन्हें सफलता मिली।

बेल की योजना में अमेरिकी स्थल, जल और हवाई सेनाओं की अभिरुचि बढ़ी है और वे अब धन और उपकरण के रूप में उन्हें सहायता प्रदान कर रही हैं। आजकल कितने ही स्नातक-छात्र और अनुसन्धान सहायक बेल को उनके कार्य में सहयोग प्रदान कर रहे हैं। एक ऐसी प्रणाली की खोज कर ली गयी है, जिसके द्वारा अत्यधिक ऊँचे तापमानों पर, लगभग द्रव-बिंदुओं पर, धातुओं का परीक्षण किया जा सकता है।

४. हिमयुग के प्राचीनतम् सजीव अवशेष : लाल वृक्ष

कैलिफोर्निया के 'सिकोया' वृक्ष भूत और वर्तमान, प्राचीन पूर्व और आधुनिक पश्चिम, के बीच सम्बन्ध जोड़ने वाली कड़ी हैं। उनकी छाल का रंग लाल होने के कारण सामान्यतः उन्हे लाल वृक्ष (रेड वुड) कहते हैं। आज के लाल वृक्ष उन वृक्षों के वंशज हैं, जो ५ करोड़ वर्ष से भी अधिक समय पूर्व, जब अमेरिका एक शीतोष्ण प्रदेशीय वन था, कैलिफोर्निया वाले क्षेत्र में उगा करते थे। युगान्तर से भूमि के नीचे दब कर जड़वत् चट्टानों के रूप में परिणत हो जाने वाले अवशेषों से पता चलता है कि लगभग १० करोड़ वर्ष पूर्व एशिया, पश्चिमी यूरोप, साइबेरिया, मंचूरिया तथा बेहरिंग सागर के तटवर्ती अलास्का के अनेक भाग इन वृक्षों के विशाल वनों से आच्छादित थे।

जब पृथ्वी के इतिहास में हिम-प्रवाह युग में यूरोप, एशिया तथा उत्तरी अमेरिका महाद्वीप के अधिकांश भाग बड़े-बड़े हिम-क्षेत्रों से ढक गये, तो ये वृक्ष केवल कैलिफोर्निया और दक्षिणी अरेगौन तट पर स्थित भूमि की एक ४५० मील लम्बी पट्टी पर तथा सियेरानेवादा पर्वतमाला के कुछ छुट-पुट वनों में ही बच रहे। इस वृक्ष का उल्लेख सर्वप्रथम स्पेन के अन्वेषक, डान गैस्पर दि पोटोला, की अन्वेषक टोली के एक सदस्य ने किया था। उसने 'पालो आल्टो' या 'ऊँचे वृक्ष' की चर्चा की थी। इसी शब्द के आधार पर स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के निकटवर्ती नगर, पालो आल्टो, का नामकरण किया गया। सिकोया वृक्ष को इसका वनस्पति-शास्त्रीय नाम स्टीफेन एंडलिचर ने दिया, जो आस्ट्रिया के एक भाषा शास्त्री और वनस्पति-शास्त्री थे। उन्होंने चेरोकी रेड-इण्डियन सरदार सिकोया के नाम इसका नाम सिकोया रखा।

लाल वृक्ष की दो किस्में पायी जाती हैं : एक है, 'सिकोया सेम्परवाइरेन्स' जिसे 'समुद्र तटवर्ती ढाल वृक्ष' (कोस्ट रेड वूड) कहते हैं, और दूसरा है 'सिकोया जाइगेण्टिया', जिसे

'विशाल वृक्ष' (विग ट्री) कहते हैं। 'तटवर्ती लाल वृक्ष' संसार का सबसे ऊँचा तथा 'विशाल वृक्ष संसार का सबसे वृहदाकार वृक्ष है। ये दोनों ही वृक्ष संसार के प्राचीन सजीव पदार्थ हैं, जिनके विषय में मानव की जानकारी है।

तटवर्ती लाल वृक्ष का व्यास औसत रूप से १२ से २० फुट तक तथा ऊँचाई ३०० से ३५० फुट तक होती है। 'बुलक्रीड फ्लैट ग्रोव'' नामक उपवन का एक लाल वृक्ष तो ३६८·७ फुट ऊँचा है। इस सुरम्य उपवन के वृक्ष कोलोन के गिरजा घर से ऊँचे हैं। तटवर्ती लाल वृक्षों की आयु औसत रूप से, ५०० से २,००० वर्ष तक की है, जबकि उनमें से सबसे पुराने लाल वृक्ष की आयु २,२०० वर्ष की है। तटवर्ती लाल वृक्षों के मौलिक और अछूते वनों से आच्छादित भू-पट्टी का दो तिहाई भाग अभी भी सुरक्षित बना हुआ है। इन अछूते बनों की स्थायी पार्कों और संस्मारकों के रूप में परिणत कर दिया गया है।

लाल वृक्षों वाली भू-पट्टी के शेष तिहाई भाग के वनों को पिछली शताब्दी में काट डाला गया। अब उन पुराने वृक्षों की जगह पुनः नये वृक्ष उगा दिये गये हैं। इस क्षेत्र के बनों का उपयोग व्यापारिक कार्यों के लिए किया जाएगा। यह व्यापारिक वन-क्षेत्र कैलिफोर्निया की अर्थ-व्यवस्था का एक स्थाई स्तम्भ बन गया है। तटवर्ती लाल वृक्ष अपने ठूँठे से स्वयं उग आता है। काटने के बाद ठीक तरह से पोषित होने पर उसके वृक्ष बहुत शीघ्रता से बढ़ कर तैयार हो जाते हैं। लाल वृक्ष सम्बन्धी उद्योग को स्थायी रूप प्रदान करने के उद्देश्य से वृक्षों के फार्म स्थापित कर दिये गये हैं।

अमेरिका के राष्ट्रीय पार्क वाले क्षेत्रों में अब २०,००० से कुछ कम ही विशाल वृक्ष शेष रह गये हैं। ये वृक्ष अछूते पेड़ हैं। इन्हें कभी भी काटा नहीं गया है। कुछ वैज्ञानिक प्रयोगों के पश्चात् अब विशाल वृक्षों को उनकी प्राकृतिक सीमाओं के बाहर भी सफलता पूर्वक उगाया जा रहा है। अमेरिका में ७२,००० एकड़ से अधिक भूमि पर लाल वृक्षों के पार्क, उपवन और उद्यान छाये हुए हैं, जो प्रतिवर्ष हजारों पर्यटकों को आकृष्ट करते हैं।

५. एशिया की सबसे बड़ी पशु चिकित्सा संस्था

इज्जतनगर (उत्तर प्रदेश) का भारतीय पशु-चिकित्सा अनुसंधानालय एशिया में सबसे बड़ा है। यहाँ पर ढोर, मुर्गी, बतख आदि के लिए टीके तैयार किये जाते हैं। ये टीके उत्तम और सस्ते होते हैं। यह भारत का सबसे पुराना वैज्ञानिक अनुसंधानालय है। यहाँ की बनी दवाएँ नेपाल, सिक्कम, मलाया, पाकिस्तान, ईराक, अदन, अफगानिस्तान, बर्मा और अन्य देशों को निर्यात की जाती हैं।

इस संस्था में इस समयअनुसंधान के छः विभाग हैं—रोग निदान और रोगाणु, परजीवी, पशु-पोषक आहार, टीके बनाने तथा मुर्गी और पशु-प्रजनन के रोग निदान और जीवाणु विज्ञान विभाग मुक्तेश्वर में है और शेष विभाग इज्जतनगर में।

पशु-चिकित्सकों और पशुपालन विशेषज्ञों की बढ़ती हुई मांग को देखकर, दो साल पहले यहाँ पशु विज्ञान कालेज खोला गया, जिसमें स्नातक कक्षा के आगे की पढ़ाई होती है। पहले भारतीय विद्यार्थियों को इस विषय की उच्च शिक्षा के लिए विदेश जाना पड़ता था।

विश्वविख्यात संस्था

इस संस्था की स्थापना १८८९ में पूना में हुई। उस समय इसका नाम इम्पीरियल बैक्टीरियोलाजिकल लैबोरटरी (जीवाणु-विज्ञान प्रयोगशाला) था। १८८३ में यह संस्था मुक्तेश्वर लायी गयी। यह स्थान पहाड़ में ७,७०० फुट की ऊँचाई पर है। यहाँ की ऋतु पशुओं के छूत के रोग के अनुसंधान के लिए उपयुक्त है। पशु रोगों के टीके बनाने और बचने के लिए १९१३ में इज्जतनगर में एक उपकेन्द्र खोला गया। अपने ७० वर्ष के जीवन में इस संस्था ने पशु-चिकित्सा के क्षेत्र में बड़ा काम किया है। पशु-विज्ञान में स्नातकोत्तर शिक्षण और अनुसंधान के प्रमुख केन्द्र के नाम से यह विश्व में प्रसिद्ध है। इसकी खोजों से देश के पशुधन के संवर्धन में बड़ी सहायता मिली है।

महत्वपूर्ण खोज

संस्था की कई खोज संसार में विख्यात हैं। **रिंडरपेस्ट** या पशुओं के **खूनी दस्त** रोकने का बड़ा प्रभावशाली टीका यहाँ तैयार किया गया है: यह बड़ा मारक रोग है इसके कारण देश को प्रति वर्ष करीब ३० करोड़ रु० की हानि होती है। इस संस्था में जी० टी० वी० नाम का ऐसा टीका तैयार किया है, जिसे एक बार लगाने से यह रोग फिर कभी नहीं होता। इस टीके को तैयार करने में प्रति खूराक २ न० पै० खर्च बैठता है। यह टीका देश और विदेशों में गाय, बैल, भैंस आदि को लगाने में बहुत चलता है। इस टीके से खूनी दस्तों को जड़ से मिटाने में काफी सहायता मिली है।

१९४३ में संस्था ने एक टीका तैयार किया, जिससे मुर्गियों के रानीखेत रोग को मिटाने में सफलता मिली। मुर्गी, बतख आदि को केवल एक टीका लगाने से उसे जीवन भर वह रोग नहीं होता। अब यह टीका विक्री के लिए तैयार होने लगा है। इस पर प्रति खूराक १ न० पै० खर्च बैठता है। पहले यह टीका बर्फ में रखकर आदमियों के हाथ भेजा जाता था, जिसमें काफी खर्च बैठता था। संस्था ने इसे ठंडे में सुखाकर भेजने का तरीका निकाल लिया है।

संस्था ने पक्षियों और मुर्गियों के **टिक फीवर** और पालतू जानवरों की **हैमोरोजिक सेप्टीसीमिया** के रोग के टीके भी तैयार कर लिए हैं। ढोरों के **मस्टाइटिस रोग** का टीका निकालने का प्रयत्न किया जा रहा है।

---

१. दांत के आपरेशन में संगीत द्वारा पीड़ा का निवारण

मैसाचूसेट्स के एक दन्त-चिकित्सक ने सूचित किया है कि दांत के लगभग ५,००० आपरेशनों में हेडफोन धारण कर रखने वाले रोगियों को संगीत और ध्वनियाँ सुनाने से उनकी पीड़ा का निवारण हो गया। उसने कहा कि संगीत से रोगी आराम का अनुभव करता है, और ध्वनि से पीड़ा कम हो जाती है।

इस दन्त चिकित्सक का नाम डा० वैलेस जे० गार्डेनर है। डा० गार्डेनर ने कहा कि यह विधि १,००० ऐसे रोगियों में से ६५ प्रतिशत पर पूर्णतया लाभदायक सिद्ध हुई, जिन्हें इस प्रकार के आपरेशनों में सामान्यतः नाइट्रस-गैस की आवश्यकता होती। २५ प्रतिशत रोगियों के मामले में स्वर के कारण पीड़ा में जो कमी हुई, वह आपरेशन की दृष्टि से पर्याप्त मात्रा से कम थी। कुछ इने-गिने रोगियों ने ही यह शिकायत की कि तीव्र ध्वनि के कारण उन्हें कष्ट हुआ। रोगी ध्वनि की तीव्रता को स्वयं नियंत्रित कर सकता है। यह ध्वनि प्रपात की ध्वनि जैसी ही होती है।

२. अमेरिकी आणविक पनडुब्बी

अमेरिका की यू० एस० एस० सी० ड्रेगन नामक आणविक पनडुब्बी में वैज्ञानिक अनुसंधान के सिलसिले में बर्फ के नीचे-नीचे अटलांटिक से प्रशांत सागर की यात्रा करेगी। इस यात्रा के अन्तर्गत यह पनडुब्बी न्यू लन्दन (कनेटिकट) से उत्तरी ध्रुव क्षेत्र, चुकची, वेरिंग समुद्र और सम्भवतः उत्तरी ध्रुव क्षेत्र में जायेगी। यह पनडुब्बी पोलर आइसकेप के अन्तर्गत वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिये विशेष रूप से आवश्यक साज-समान से सज्जित की गई है। यह ग्रीष्मकाल में उत्तरी ध्रुव क्षेत्र में वर्फ की स्थितियों के सम्बन्ध में वर्तमान जानकारी की वृद्धि करने के लिये समुद्र की स्थिति तथा जल की गहराई आदि के विषय में आंकड़े एकत्र करेगी। इसके पूर्व दो अमेरिकी पनडुब्बियों—नौटलस तथा स्केट—द्वारा इसके विपरीत दिशा में बर्फ के नीचे से हो कर यात्रा की जा चुकी है।

३. कम ताप से बिजली उत्पन्न करने का नया यंत्र

एक अमेरिकी कम्पनी ने एक ऐसे यन्त्र के विकास की घोषणा की है, जो अपेक्षाकृत कम ताप को सीधे बिजली में परिणत कर देता है। १००° सेण्टीग्रेड ताप से काम करने वाले इस यन्त्र ने लगभग १४ प्रतिशत उत्पादन क्षमता से बिजली उत्पन्न की। इससे पूर्व इस प्रकार के अन्य यन्त्रों ने २,०००° सेण्टीग्रेड ताप से बिजली उत्पन्न की। परन्तु उनका निर्माण करना कठिन है। किन्तु यह नया यन्त्र पुराने प्रकार के यन्त्रों से अधिक सरल है और इस पर कम लागत आती है।

४. सुपारी के छिलके से लपेटने का बादामी कागज

इस समय देश में प्रति वर्ष जो १० हजार टन सुपारी का छिलका फेंक दिया जाता है, उससे लपेटने का बादामी कागज बनाया जा सकता है। देहरादून की वन अनुसंधान-शाला की खोजों से यह पता चलता है कि सुपारी के छिलके की सलफेट मिश्रित लुगदी बादामी कागज बनाने के उपयुक्त है। इसमें जूट या बाँस की लुगदी मिलाने से यह कागज और भी मजबूत हो जाता है।

देहरादून की वन अनुसंधानशाला ने लुगदी बनाने के लिए कोजीकोडे की केन्द्रीय सुपारी समिति से मिले सुपारी के छिलके का इस्तेमाल किया। पहले इसी छिलके के चूरे से रासायनिक परीक्षण किए गए।

५. धातुओं का क्षरण से बचाव

कराइकुडी की केन्द्रीय विद्युत-रसायन अनुसंधानशाला की खोजों से पता चला है कि दो सस्ते कार्बनिक रसायन, मेटा-डाइनाइट्रो बेनजीन और बीटा-नेप्थोल धातुओं को छीजन से बचाते हैं। इसके लिए धातुओं को उक्त रसायनों की भाप में रखना होता है।

धातुओं की छीजन से बचाने के इस नए तरीके में धातुओं पर चिकनाई (ग्रीज और तेल) लगाने की आवश्यकता नहीं होती। इन रसायनों के रहने से आसपास का वायु ऐसा हो जाता है कि छीजन नहीं हो पाती। इन रसायनों के इस्तेमाल में सबसे बड़ा लाभ यह है कि इन्हें बहुत कम लागत पर देश में तैयार किया जाता है। इस काम के लिए इस समय प्रयुक्त होने वाले रसायनों में यह बात नहीं है।

६. लकड़ी सिझाने का यंत्र

नयी दिल्ली की हिन्दुस्तान हाउसिंग फैक्टरी का लकड़ी सिझाने का यंत्र सफलतापूर्वक काम कर रहा है। यह यंत्र ७२ हजार रु० की लागत पर लगाया गया है। इसमें लकड़ी को दबा कर सिझाया जाता है। २ घण्टे में १७५ घन फुट लकड़ी सीझ जाती है।

इस यंत्र में लकड़ी सिझाने में तारकोल, क्रियोसोट या भारी क्रियोसोट, पानी में घुलनशील क्यूपरिक क्रोमेट अम्ल, कापर क्रीम, जिंक नैफ्थानेट या डी० डी० टी०, सोडियम फ्लोराइड, बोरिक अम्ल या जस्ता क्लोराइड आदि काम में लाए जाते हैं।

७. हृदय के दौरों का अध्ययन करने में अणुशक्ति का प्रयोग

स्वस्थ दिखलायी देने वाले किसी सामान्य व्यक्ति को देख कर चिकित्सकों के लिए यह ज्ञात करना एक अत्यन्त निराशाजनक कार्य है कि उसे हृदय का दौरा पड़ सकता है अथवा नहीं। यदि यह सम्भव होता, तो भारी संख्या में अचानक मृत्यु का ग्रास बन जाने वाले लोगों की प्राण-रक्षा की जा सकती थी।

दो अमेरिकी अनुसन्धानकर्ताओं ने अणुशक्ति द्वारा इस विषय में अनुसन्धान किया है। उनकी विधि के अनुसार, किसी व्यक्ति में स्वल्प मात्रा में एक रेडियो-सक्रिय पदार्थ प्रविष्ट करके एक विकिरण गणक द्वारा हृदय में से उस पदार्थ के प्रवाह को देखा जाता है। उस प्रवाह की गति से यह पता लग सकता है कि हृदय किस प्रकार कार्य कर रहा है।

चिकित्सकों को पहले से यह पता है कि नाइट्रोग्लेसरीन तथा परटीरे नामक दो औषधियाँ रोगग्रस्त हृदयों के रक्त-प्रवाह को बढ़ा देती हैं। किन्तु इससे पूर्व इसका माप नहीं किया गया था। जान्सन तथा सेवेलियस ने प्रथम बार यह दिखा दिया कि वे रेडियो-सक्रिय रासायनिक द्रव्यों की सहायता से रक्त-प्रवाह का ठीक-ठीक पता लगा सकते हैं।

साधारणतः हृदय में रक्त के प्रवाह का पता लगाने के लिए केवल 'फ्लोमीटर' नामक विधि का प्रयोग किया जाता है। किन्तु यह विधि बड़ी ही कठिन तथा खतरनाक है। इस विधि के अन्तर्गत एक धमनी में से सीधे हृदय तक एक ट्यूब पहुँचायी जाती है। जिन रोगियों का हृदय निर्बल होता है, उनके सम्बन्ध में यथा सम्भव इस विधि का प्रयोग नहीं किया जाता है।

जान्सन तथा सेवेलियस ने जिस विधि का विकास किया है, उसके अनुसार, दीप्ति गणक नामक उपकरण के द्वारा हृदय के कक्षों तथा धमनियों में से रेडियो-सक्रिय पदार्थ के प्रवाह का निरीक्षण किया जाता है।

जान्सन तथा सेवेलियस रोगी के वक्षस्थल पर काउन्टर के लिए उपयुक्त स्थान ज्ञात करने और बायें कोष्ट तथा धमनियों में रक्त-प्रवाह के मापों को पृथक करने के लिए एक गणित का गुर निकालने में सफल हो गये हैं। उन्होंने १११ चिकित्सकों के एक दल पर अपनी विधिकी जाँच करके यह ज्ञात किया कि उनमें ८ हृदय रोग से पीड़ित थे। उन ८ में से ४ को पहले यह ज्ञान नहीं था कि उनके हृदयों की दशा बड़ी खतरनाक थी। उन अनुसन्धानकर्त्ताओं ने यह भी देखा कि यद्यपि स्वस्थ हृदय में से खींचा जाने वाला ५ प्रतिशत रक्त उसकी अपनी धमनियों में जाता है, तथापि रोग ग्रस्त हृदय केवल उसका आधा भाग प्रयोग में लाता है।

८. प्रकाश यंत्र द्वारा नेत्र की रसोलियों का उपचार

एक अमेरिकी वैज्ञानिक ने एक ऐसे उपकरण का विकास किया है, जो नेत्रों की गम्भीर क्षति को ठीक कर सकता है। इस यंत्र के विकास का उद्देश्य शल्य-चिकित्सा सम्बन्धी कुछ विशिष्ट कठिनाइयों का अन्त करना है। यह उपकरण लाइट कोगुलेटर के नाम से प्रसिद्ध है। इस यंत्र से उन बच्चों का उपचार किया गया है, जिनकी आँख के भीतर रसोलियाँ विद्यमान थीं। आँख के भीतर रसोलियों पर प्रकाश की किरणें डालकर उन्हें नष्ट कर दिया जाता है। शक्तिशाली प्रकाश द्वारा रसोलियों को जला दिया जाता है, परन्तु इनसे नेत्र के स्वस्थ भाग को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचती है। रसोलियों को नष्ट करने के अतिरिक्त, इस उपकरण द्वारा नेत्र के अन्य रोगों का भी उपचार किया जाता है।

९. दीर्घकाल तक कार्य करने वाला जेनेरेटर

तीन अमेरिकी इंजिनियरों ने एक ऐसा जेनेरेटर तैयार किया है, जो चिरकाल तक कार्य कर सकता है। उसके मध्य भाग में स्ट्रांशियम-९० होता है। अत्यन्त हानिकारक स्ट्रांशियम-९० एक ऐसे सीलबन्द यंत्र में रखा जाता है, जिस पर किसी प्रकार के आघात का प्रभाव नहीं पड़ता

है। बाल्टिमोर की मार्टिन कम्पनी के आणविक विभाग के जेम्स जे० कीनान, जार्ज पी० डिक्स, तथा सेसिल ओ० रिग्स अमेरिकन न्यूक्लियर ने सोसाइटी की एक बैठक में जेनेरेटर का वर्णन किया।

स्ट्रांशियम जेनरेटर का सिद्धांत यह है:

लगभग १ पौंड स्ट्रांशियम में विद्यमान सामान्य रेडियो सक्रियता द्वारा उत्पन्न ताप फ्यूल-केपसूल के चारों ओर ताप-विद्युत तत्वों के माध्यम से सीधा ५ वाट की विद्युत शक्ति में परिणत हो जायेगा। इन इंजिनियरों ने बताया कि वह जेनरेटर बिना किसी देखभाल किए अथवा बिना ईंधन भरे कई वर्ष तक चलता रहेगा।

निरन्तर कार्य करते रहने वाला ऐसा कम शक्तियुक्त जेनेरेटर जहाजों के मार्ग दर्शक दीपों अथवा दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र में स्थित दूरस्थ क्षेत्रों में मनुष्य रहित वैज्ञानिक केन्द्रों को विद्युत उपलब्ध करने के लिए बड़ा ही उपयोगी सिद्ध होगा। उन इंजिनियरों ने बताया कि इस यंत्र में सुरक्षा सम्बन्धी पर्याप्त उपाय किए गए हैं। उन्होंने बताया कि इस जेनेरेटर को विमान की टक्कर अथवा विस्फोट से किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँच सकती। यंत्र के आस-पास हेस्टलोय-सी नामक एक ऐसी धातु के तीन परत दिए गए हैं, जिस पर सदियों तक समुद्र के जल का प्रभाव नहीं हो सकता।

१०. साठ दिनों के अन्दर टमाटर पका करेंगे

क्रेमलिन प्रासाद में आयोजित कृषि-विशेषज्ञ-सम्मेलन में भाषण करते हुए अखिल संघीय कृषि-भौतिक संस्था के निर्देशक अका० अब्राम इओफ्रे ने कहा कि संस्था के सदस्यों ने फसल उत्पादन तथा पशु-प्रजनन के विविध भौतिकी प्रक्रियाओं के पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण के लिए सैकड़ों मापक-यंत्र-इलेक्ट्रानिक एवं अर्ध-परिवाहक तैयार किये हैं। एक ऐसा भी यंत्र तैयार किया गया है जो वनस्पति के भीतर होने वाली प्रक्रियाओं से प्रभावित हो स्वयंचालित ढंग से कृत्रिम प्रकाश का नियमन करता है।

पौधे के विकाश-काल में पच्चास प्रतिशत से अधिक कमी हो जाती है। टमाटर ६० दिनों में पक कर तैयार हो जाते हैं। उनमें उच्च परिमाण में शर्करा और विटामिन का अंश होता है। साइबेरिया में जहाँ की जलवायु रुक्ष है, जहाँ शीघ्र ही बिलकुल सस्ती बिजली उपलब्ध हो जायगी इस नूतन प्रणाली का भविष्य महान है।

११. सरसों के तेल में नकली गंध की परख

पिछले दिनों पश्चिमी बंगाल की सरकार ने शिकायत की है कि उत्तर प्रदेश से बंगाल को भेजे जाने वाले सरसों के तेल में सरसों की कृत्रिम संश्लेषित गंध मिलाये जाने का संदेह है। यह गंध-पदार्थ स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। सरसों के प्राकृतिक गंध-पदार्थ को संश्लेषित गंध-पदार्थ से अलग पहचानने के लिए हारकोर्ट बटलर प्रौद्योगिक संस्थान में अध्ययन किये गये हैं। इन अध्ययनों का उद्देश्य एक ऐसी विधि का आविष्कार करना था जिसकी सहायता से सरसों के तेल में संश्लेषित गंध की उपस्थिति, उसकी प्राकृतिक गंध से अलग पहचानी जा सके।

सरसों के तेल में उसकी एक तेज लाक्षणिक गंध होती है। इसका कारण ऐलाइल आइसो थायोसायनेट नामक रासायनिक पदार्थ है जो सरसों के बीज में ग्लुकोसाइड सीनीग्रीन के रूप में उपस्थित होता है। ऐलाइलआइसोथायोसायनेट का संश्लेषण कृत्रिम रीति से भी किया जा सकता है। इस पदार्थ को सरसों के स्वाद वाले खाद्यों, चटनियों और औषधियों को स्वादगंध देने के लिए व्यापक रूप से काम में लाया जाता है। यदि यह पदार्थ काफी सान्द्रित रूप में होता है तो इसकी वाष्प श्वास-प्रणाली को हानि पहुँचाती है।

यह मानकर कि सरसों की संश्लेषित गंध में हाइड्रोसायानिक अम्ल उपस्थित होता है प्राकृतिक तेल में इस पदार्थ की उपस्थिति परखने के लिए मिलों तथा बाजार से सरसों के तेल के नमूने लिए गये। परखने के लिए एग्रीकल्चरल मार्केटिंग एडवाइज़र की विधि का उपयोग किया गया। इस विधि से और इस संस्थान की एक परिवर्तित विधि से भी उन तेलों में भी हाइड्रोसायानिक अम्ल की उपस्थिति नहीं पायी जा सकी जिसमें सरसों की संश्लेषित गंध मिली हुई थी। इसलिए हाइड्रोसायानिक अम्ल की मिलावट को ज्ञात करने के लिए एक विधि निकालने का काम हाथ में लिया गया। यह विधि संश्लेषित गंध और सरसों के प्राकृतिक उड़नशील तैल की गंध के भौतिक और रासायनिक गुणों पर आधारित है। इसमें फ्लोरोग्लुसीनोल से परख की जाती है।

फ्लोरोग्लूसीनोल परख के प्रतिकर्मक को तैयार करने के लिये ८० मिलीमिटर मेंथानोल में फ्लोरोग्लूसीनोल दो ग्राम अणु भार का आधा (६३·०५ ग्राम) विलयित किया गया और विलयन का २·५ सामान्य हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिलाकर १०० मिलीलीटर कर लिया गया।

परख के लिए फिल्टर पेपर पर एक बूँद गंध (ऐलाइलआइसोथासायनेट) ली गई और उस पर एक बूंद प्रतिकर्मक की डाली गई। यदि गंध संश्लेषित थी तो प्रतिकर्मक और ऐलाइल-आइसोथायासायनेट का पीला धब्बा धीरे-धीरे लगभग २-३ घंटे में गुलाबी रंग का हो गया, पर जब गंध प्राकृतिक थी तो अधिक समय तक रखने पर भी पीले रंग में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

अस्तु संश्लेषित और प्राकृतिक गंधों के भौतिक लक्षणों और संस्थान में उनके साथ की गई फ्लोरोग्लूसीनोल परख के परिणामों के आधार पर उन दोनों को अलग-अलग पहचाना जा सकता है, और फलतः सरसों के तेल में संश्लेषित गंध की मिलावट को पकड़ने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

---

१. अन्तरिक्ष उड़ान का उज्जवल भविष्य

अगस्त मास में सोवियत रूस के वैज्ञानिकों ने अन्तरिक्ष उड़ान के क्षेत्र में जो नवीन सफलता प्राप्त की है, उसकी समस्त राष्ट्रों ने प्रशंसा की है। सचमुच यह पहला सफल प्रयास है जिसमें दो जीवित कुत्तों को अन्तरिक्ष में प्रेषित कर उन्हें जीवित अवस्था में ही पुर्नप्राप्त किया जा सका है। इसके पूर्व अन्तरिक्ष यात्रा की सुखद कल्पनायें अथवा उसके भयावह परिणाम ही सबों को विभोर अथवा व्यग्र किये थे। परन्तु अब यह विश्वास होने लगा है कि मनुष्य निर्भीकतापूर्वक अन्तरिक्ष की सैर कर सकता है।

अन्तरिक्ष में छोड़े जाने वाला यह दूसरा रूसी स्पुतनिक था जिसने सबों का इतना ध्यान आकर्षित किया है। प्रथम स्पुतनिक के द्वारा स्पुतनिक युग का प्रारम्भ हुआ था। दूसरे स्पुतनिक के द्वारा हम इस युग की ऐसी अवस्था को प्राप्त है जहाँ से छलाँग मारने पर हम दूसरे ग्रहों में मनुष्यों को विचरते हुए देखें-सुनेंगे। इस द्वितीय स्पुतनिक ने न केवल पृथ्वी की परिक्रमा ही की वरन् वह सकुशल पुनः पृथ्वी पर लौट भी आया। रूसी वैज्ञानिकों का कथन है कि निश्चित समय के कुछ ही काल बाद यह अन्तरिक्ष यान पृथ्वी पर वापस आ गया। जब यह यान अठारहवीं बार चक्कर लगा रहा था तभी उतरने के लिये पृथ्वी से संकेत किये गये। पृथ्वी पर उतरने की क्रिया को समस्त यन्त्रों ने ठीक-ठीक किया। एक विमान जो उतरने की क्रिया को देखने के लिये सतर्क था शीघ्र ही घटनास्थल पर पहुँच गया और अन्तरिक्ष यान का दरवाजा खोला। यान में से दोनों कुत्ते उछल कर बाहर निकल आये।

इन कुत्तों के नाम थे बेल्का और स्त्रेल्का। बेल्का का भार ४९०० ग्राम और स्त्रेल्का का ५५०० ग्राम था। इन कुत्तों को ऐसी उड़ान के लिए १ साल तक प्रशिक्षित किया गया था। इनका चुनाव भी बड़ी ही सतर्कता से किया गया था। बेल्का की आयु दो वर्ष से ऊपर और स्त्रेल्का की दो साल से कुछ कम थी।

इन कुत्तों को यान में भोजन के लिये जेली युक्त खाद्य दिया गया, जिसमें समस्त पौष्टिक तत्व थे तथा पानी मिला था। इन्होंने स्वयंचालित ढंग से दिन में दो बार भोजन किया। इन कुत्तों को रबड़ के बने बिब और जाँघिया पहनाये गये थे जिनमें मलमूत्र एकत्रित होता था। उनके शरीर में विशेष प्रकार के गणना यंत्र स्थापित किये गये थे। यही नहीं, कुत्तों के रक्तचाप को नापने का भी प्रबन्ध था। अन्तरिक्ष यान में ये दोनों कुत्ते पास-पास रखे गये थे। उनके बीच में केवल एक पतला जाल ही था। यात्रा के प्रारंभ में वे शान्त थे परन्तु जब यान

कक्ष में पहुँचा तो कुत्ते अस्थिर दिखाई दिये। फिर जब भारहीनता की अवस्था आई तो उनकी भागदौड़ और बढ़ गई, जो स्वाभाविक ही था। ऐसा अवस्था में वे २४ घंटे तक रहे।

इन कुत्तों के साथ ही पींजड़ों में सफेद तथा काले चूहे रखे गये थे जिससे अन्तरिक्ष परिस्थितियों में वंशानुगत परिवर्तनों का अध्ययन किया जा सके। यान में कुछ पौधे भी थे जिससे उनसे कोषों में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जा सके।

यात्रा से लौटे समस्त पदार्थों का परीक्षण किया जा रहा है। आशा है कि प्राप्त परिणाम उत्साह-वर्धक होंगे और उनके द्वारा मानव-यात्रा के लिए नवीन जानकारी प्राप्त होगी।

२. एक सूचना:

अगले मास से मासिक पत्रिका 'विज्ञान' के आकार में परिवर्तन किये जाने की योजना है जिससे वह पुनः अपने एक वर्ष पूर्व के आकार को प्राप्त कर लेगी। पाठकों को विदित है कि विगत जनवरी से विज्ञान की पृष्ठ संख्या ३२ से ४० कर दी गई थी। तब से वह उतने ही पृष्ठों की निकलती रही है। भविष्य में भी यही पृष्ठ संख्या स्थिर बनाये रखन का विचार है परन्तु ऐसा करने के लिये आवश्यक है कि हम विज्ञान के मूल्यों में वृद्धि करें। फलतः पाठकों की जानकारी के लिये यह सूचित किया जाता है कि अक्टूबर के पश्चात जितने भी नवीन ग्राहक बनेंगे, उन्हें वार्षिक चन्दा पाँच रुपये देना पड़ेगा। जिन पूर्व ग्रहकों ने अपना चन्दा अभी तक नहीं भेजा वे अब चार रुपये के स्थान पर पाँच रुपये भेजें। अब प्रति पत्रिका का मासिक मूल्य ५० न० पै० हो जावेगा।

हरिशरणानन्द वैज्ञानिक पुरस्कार

सूचना

बड़े हर्ष के साथ विज्ञान परिषद्, प्रयाग सूचित कर रहा है कि इस वर्ष हरिशरणानन्द जी के नाम पर तीन वैज्ञानिक पुरस्कार वैज्ञानिक हिन्दी ग्रन्थों पर दिये जायेंगे। ये पुरस्कार तीन श्रेणी के होंगे :--

प्रथम : हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार—यह पुरस्कार दो सहस्त्र रुपये का होगा। यह पुरस्कार उच्च स्तर की सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक रचना पर प्रदान किया जायेगा।

द्वितीय : यह पुरस्कार एक सहस्त्र रुपये का होगा और सामान्यतः जनोपयोगी वैज्ञानिक साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना पर दिया जायगा।

तृतीय : हरिशरणानन्द बालपयोगी विज्ञान पुरस्कार—यह पाँच सौ रुपये का होगा।

उक्त विज्ञप्ति के द्वारा विज्ञान परिषद्, प्रयाग पुरस्कार के लिये प्रत्येक वर्ग की वैज्ञानिक विषय की पुस्तकें आमन्त्रित करता है।

१—प्रत्येक वर्ग की पुस्तकों की ८ प्रतियां १ अक्टूबर, १९६० तक विज्ञान परिषद्, प्रयाग के कार्यालय में आ जानी चाहिये।

२—पुस्तकें शुद्ध हिन्दी भाषा में प्रकाशित हुई हों।

३—अनुवाद के ग्रन्थों पर विचार नहीं किया जायगा।

४—इन प्रकाशित पुस्तकों में विज्ञान परिषद्, प्रयाग, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग अथवा भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय द्वारा स्वीकृत में से कोई भी वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली यदि व्यवहृत हुई हो तो मान्य होगी।

पुरस्कार सम्बन्धी नियमावली के लिये नीचे लिखे पते पर लिखें।

मंत्री
विज्ञान परिषद्,
थार्नहिल रोड,
इलाहाबाद—२

नियमावली

हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी के अध्यक्ष, लब्धप्रतिष्ठ वैद्य श्री हरिशरणानन्द जी का विज्ञान परिषद् पर पुराना अनुग्रह है। उन्हें विज्ञान, वैज्ञानिक साहित्य तथा वैज्ञानिक पद्धति में अतीव निष्ठा है। आपने विज्ञान परिषद् को इस कार्य के निमित्त एक निधि दी है, जिससे हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन करने वालों को गौरवान्वित किया जा सकेगा। विज्ञान परिषद्, प्रयाग, श्री हरिशरणानन्द जी के नाम के साथ सम्बद्ध तीन पुरस्कारों की स्थापना करने में अपना गौरव अनुभव करता है, क्योंकि इन पुरस्कारों से वह हिन्दी वैज्ञानिक-साहित्य के उच्चतम साहित्यकों को सम्मानित कर सकेगा।

नियमावली

१—पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी के अध्यक्ष श्री हरिशरणानन्द जी की निधि से संचालित एवं विज्ञान परिषद्, प्रयाग द्वारा प्रदत्त इन पुरस्कारों के नाम निम्न होंगे।

(क) हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार:

यह पुरस्कार दो सहस्र रुपये का होगा। यह पुरस्कार उच्च स्तर की सर्वश्रेष्ट वैज्ञानिक रचना पर प्रदान किया जायेगा।

(ख) हरिशरणानन्द जनोपयोगी विज्ञान पुरस्कार:

यह पुरस्कार एक सहस्र रुपये का होगा और सामान्यतः जानोपयोगी वैज्ञानिक साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना पर दिया जायेगा।

(ग) हरिशरणानन्द बालोपयोगी विज्ञान पुरस्कार:

यह पुरस्कार पाँच सौ रुपये का होगा और सामान्यतः बालोपयोगी वैज्ञानिक साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना पर दिया जायेगा।

२—इस पुरस्कारों का संचालन विज्ञान परिषद्, प्रयाग द्वारा होगा, जो प्रतिवर्ष इस कार्य की सुविधा के निमित्त पाँच सदस्यों की एक "हरिशरणानन्द पुरस्कार समिति" बनाया करेगा। समिति के सदस्य निम्न होंगे:—

(क) श्री हरिशरणानन्द जी, आजीवन सदस्य

(ख) विज्ञान परिषद्, प्रयाग के सभापति अथवा कार्यवाहक सभापति पदेन

(ग) परिषद् के मंत्रियों में से कोई एक

(घ) दो अन्य सदस्य, जिनकी संस्तुति विज्ञान परिषद्, प्रयाग की कार्यकारिणी समिति किया करेगी।

श्री हरिशरणानन्द जी के जीवन के अनन्तर, यदि उनका आदेश होगा, उनके उत्तराधिकारी को भी उनके स्थान पर सदस्य बनाया जा सकेगा पर इस सम्बन्ध में उसकी सदस्यता एवं सदस्यता-काल के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय विज्ञान परिषद् की कार्यकारिणी समिति का ही मान्य होगा।

३—प्रतिवर्ष अक्तूबर मास के निकट परिषद् की ओर से पुरस्कार-निमित्ति पुस्तकें आमंत्रित की जावेंगी, और इस सम्बन्ध में समयानुसार विज्ञप्तियाँ समाचार पत्रों में प्रकाशित होंगी। इन विज्ञप्तियों में पुस्तक भेजने की अन्तिम तिथि की घोषणा होगी।

४—ये पुरस्कार "विज्ञान" सम्बन्धी विषयों की किसी भी रचना पर दिये जा सकेंगे। अनुवाद ग्रन्थों और एक से अधिक व्यक्तियों के सहयोग से लिखे गये ग्रंथों पर विचार नहीं किया जा सकेगा।

५—यदि किसी वर्ष कोई ऐसी पुस्तक न आई जिसमें समिति जनोपयोगी या बालोपयोगी पुरस्कार देने की संस्तुति कर सके तो ऐसी स्थिति में ये पुरस्कार उच्चस्तर के वैज्ञानिक साहित्य के ग्रंथों पर क्रमशः द्वितीय अथवा तृतीय पुरस्कारों के रूप में दिये जा सकेंगे।

इसी प्रकार यदि किसी वर्ष समिति किसी पुस्तक को बालोपयोगी वर्ग में पुरस्कार के योग्य न समझे तो वह यह संस्तुति कर सकती है कि यह जनोपयोगी साहित्य के द्वितीय पुरस्कार के रूप में दिया जाय।

ऐसी स्थिति में पुरस्कारों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकेगा :—

	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
उच्चतर साहित्य	२०००)	१०००)	५००)
जनोपयोगी साहित्य	१०००)	५००)	
बालोपयोगी साहित्य	५००)		

६—पुरस्कारों के निमित्ति "पुरस्कार समिति" को यह अधिकार होगा कि आमंत्रित पुस्तकों के अतिरिक्त अपनी ओर से भी पुस्तकें विचारार्थ रखे।

७—लेखकों अथवा प्रकाशकों के लिए यह आवश्यक होगा कि विचारार्थ पुस्तक की आठ प्रतियाँ घोषित तिथि के भीतर परिषद् के पास भेजें।

८—पुरस्कार का निर्णय निम्न प्रकार होगा :—

(क) पुरस्कार समिति पुस्तकों को तीन विशेषज्ञ-निर्णायकों के पास भेजेगी। निर्णायकों की नियमावली समिति गोपनीय रक्खेगी। निर्णायक पुस्तकों की उपयोगिता, मौलिकता, भाषा आदि के सम्बन्ध में आपनी लिखित सम्मति देंगे, जिनके आधार पर पुरस्कार-समिति पुरस्कारों का निर्णय करेगी। निर्णायकों को निर्देश करना आवश्यक होगा कि उनके विचारानुसार कौन सी रचना प्रथम, द्वितीय अथवा तृतीय है।

(ख) पुरस्कार समिति इस बात पर बाध्य न होगी, कि प्रतिवर्ष पुरस्कार दिये ही जायें। योग्य पुस्तकों के न आने पर किसी भी वर्ष के पुरस्कार स्थगित किये जा सकते हैं। स्थगित पुरस्कारों का रुपया पुरस्कार की स्थायी निधि में जमा कर दिया जायगा, जिसके उपयोग के सम्बन्ध में पुरस्कार समिति आवश्यक निर्णय करेगी।

(ग) पुरस्कार निर्णय के सम्बन्ध में पुरस्कार समिति का निर्णय अन्तिम और मान्य होगा।

(घ) कोई भी व्यक्ति एक से अधिक बार एक वर्ग के जिस विषय पर पुरस्कृत हो चुका होगा, उसी विषय के उसके लिखे ग्रंथ पर पुरस्कार प्राप्त न कर सकेगा। और न एक बार पुरस्कृत पुस्तक दुबारा किसी अन्य वर्ग के लिए विचारार्थ स्वीकृत की जायगी।

(ङ) यदि किसी पुस्तक पर पुरस्कार न मिल सका हो, तो वह अधिक से अधिक तीन बार तक विचारार्थ प्रस्तुत की जा सकती है।

(च) पुरस्कार समिति विज्ञप्तियों द्वारा इस बात की घोषणा करेगी कि अमुक वर्ष विज्ञान सम्बन्धी किस विषय की पुस्तकें आमंत्रित की जांयगी और किस अवधि के भीतर प्रकाशित पुस्तकों पर विचार होगा। इस सम्बन्ध में पुरस्कार समिति समय-समय पर अपनी सुविधा के लिए नियम बना सकती है। इन नियमों की पुष्टि विज्ञान परिषद् की कार्य समिति से करा लेना आवश्यक होगा। कार्य समिति द्वारा व्यक्त मतवैभिन्य पर पुरस्कार समिति फिर विचार करेगी पर पुरस्कार समिति का निर्णय अन्तिम और मान्य समझा जावेगा।

(छ) पुरस्कार समिति के सदस्यों और निर्णायकों जी रचना पर पुरस्कारार्थ विचार न हो सकेगा। यदि उनकी रचना विचारार्थ आयी हो तो उन्हें समिति से और निर्णायकों की सूची से उस वर्ष अलग रहना होगा।

९—(क) दो सहस्र रुपये के पुरस्कृत व्यक्ति को "हरिशरणानन्द विज्ञान परिषद् स्वर्ण पदक," एक सहस्र रुपये के पुरस्कार के साथ "हरिशरणानन्द विज्ञान परिषद रजत पदक" और पाँच सौ रुपये के पुरस्कार के साथ "हरिशरणानन्द विज्ञान परिषद् कांस्य पदक" भेंट किये जायेंगे।

(ख) पुरस्कारों और पदकों का वितरण साधारणतः विज्ञान परिषद् के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर विशेष समारोह के साथ हुआ करेगा। यदि किसी कारण से वार्षिक अधिवेशन के साथ प्रबन्ध की सुविधा न हुई, तो परिषद् की कार्य समिति अन्य प्रबन्ध भी कर सकती है। उसे यह अधिकार होगा कि यह समारोह प्रयाग में करे अथवा अन्यत्र।

१०—पुरस्कार सम्बन्धी इन नियमों में आवश्यक परिवर्तन पुरस्कार समिति की संस्तुति पर यथा-समय कार्य समिति कर सकती है। नियमों में समय समय पर जो परिवर्तन होंगें उनकी सूचना श्री हरिशरणानन्द जी को भी अनिवार्यतः दी जावेगी और उनके सुझावों पर कार्य समिति आवश्यक विचार करेगी।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिगराम भार्गव	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगाशंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रामेश वेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकरराव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर	२ रुपया
१०—कलम पैबन्द—श्री शंकरराव जोशी	२ रुपया
११—जिल्दसाजी—श्री सत्य जीवन वर्मा	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद	१ रुपया
१३—वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० न०पै०
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपया
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपया
१९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
२०—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रु० ५० न०पै०
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकरराव जोशी	३ रु० ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनिया—श्री रामेश वेदी	४ रुपया
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्र नाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान शालायें	२ रुपया
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० यये पैसे
२६—रेल इंजन, परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया
२७—भारतीय कृषि का विकास—डा० शिवगोपाल मिश्र	५ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जातानि जीवन्ति विज्ञान प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ९२ | २०१६ विक्र०, आश्विन १८८१ शाकाब्द अक्टूबर १९६० | संख्या १

पशुओं के रोग

शालिग्राम शर्मा, एम० ए०

पशुओं के रोग को गाँस भी कहते हैं अतः जो पशु प्रायः रोगी हो जाता है उसे **गंसहा** कहा करते हैं। कुछ रोग ऐसे हैं जो सामान्यतः सभी पशुओं को होते हैं किन्तु कुछ ऐसी बीमारियाँ भी हैं जो किसी एक जाति के पशु के ही होती हैं। नीचे पशु-रोगों का विवरण दिया जाता है :—

रेउवाँ—इस रोग में विना किसी प्रहार या चोट के पशु की त्वचा से रक्त बहने लगता है। शरीर के अनेक स्थानों पर स्वतः घाव हो जाते हैं। यदि रक्त-स्राव बन्द न हुआ तो पशु की मृत्यु भी हो सकती है। इस रोग को **रेवाँ, रीवाँ** या **रीमा** भी कहते हैं।

खेवरा या **खौरा**—यह पशुओं के खाज की बीमारी है। यह रोग प्रायः पशु के कंधे के ऊपर आरम्भ होता है। कभी-कभी यह सिर तथा गर्दन से भी शुरू होता है। रोगग्रस्त भाग के वाल उड़ जाते हैं। धीरे-धीरे यह बीमारी सारे शरीर पर फैल जाती है। खुजलाते-खुजलाते पशु के शरीर से खून निकलने लगता है। 'खेवरा' या 'खौरा' हो जाने को **खेवराव** या **खौराव** कहते हैं।

खुरपका—इस रोग को **खुरहा, खुरचहवा, खँगवा, गोड़हवा** या **गमखोरवा** भी कहा जाता है। यह छूत की बीमारी है। मुँह और खुर दोनों में छाले पड़ जाते हैं। इस रोग में कँपकँपी देकर बुखार आता है जिसे **गमखोरव** कहते हैं। पशु लंगड़ाने लगता और खाना बन्द कर देता है। रोगजन्य छालों के फूट जाने पर मवेशी को आराम हो जाता है।

इसमें पशु मरते भी बहुत हैं। इस रोग के आक्रमण से बचने के लिए किसान पशुओं की सींग पर **गेरु** (लाल रंग की एक धातु) का लेप लगाते हैं। कुछ लोग **अर्जुन के** प्रसिद्ध दस नामों को लिखकर पशुशाला की दीवार पर चिपका देते हैं। रोग हो जाने पर **गुनियाँ** (झाड़ फूंक करने वाला) पशुओं को गाँव से बाहर ले जाकर मन्त्र-तन्त्र द्वारा उन्हें आरोग्य करने का ढोंग करता है जिसे **निकारी** कहते हैं।

बिलकी—यह एक प्रकार की झिल्ली होती है जो पशु के तालू के निकट उत्पन्न हो जाती है। इसे **मेंढ़की, मेंडुकी** या **मेघी** भी कहते हैं। इस रोग से जानवरों को चारा खाने में बड़ा कष्ट होता है।

घेघा—इस बीमारी के होने पर गले और जीभ में बहुत सूजन आ जाती है। बुड्ढों की अपेक्षा युवा पशुओं को यह रोग अधिक सताता है। चायल, मंझनपुर और सिराथू तहसीलों में इसे **हाहि** भी कहा जाता है।

गँड़ेरुवा—यह रोग प्रायः उस समय होता है जब जानवर रेसेदार वस्तु या आम की गुठली आदि कड़े चारे को खाते हैं। वास्तव में यह गले के भीतर चारा अटक जाने की बीमारी है। धोखे में चारे के साथ बाल या सुतली की गोली खा जाने से भी यह बीमारी पैदा हो जाती है। इस रोग में भी गले में सूजन आ जाती है किन्तु यह 'घेघा' से भिन्न है।

हूल—इस बीमारी को **हुलनहिया** भी कहते हैं। इस रोग में पशु रह-रह करके एक प्रकार के आन्तरिक शूल का अनुभव करता है जिससे उसकी बेचैनी बढ़ती जाती है।

बादि—वायु के प्रकोप से इस बीमारी में पशु का पेट फूल आता है। इससे पशु चारा खाना बन्द करके तड़फड़ाने लगता है।

हँफरा—पशुओं के पहले मेदे में खूराक ठस जाने अथवा सर्दी लग जाने से यह बीमारी उत्पन्न हो जाती है। यह श्वास का रोग है। इसमें पशु जोर-जोर से हाँफता है। श्वास की गति बहुत तीव्र हो जाती है।

रलही माता—इस रोग में पशु के मुँह से अधिक मात्रा में **राल** या लार टपकती है। यदि शीघ्र रोक-थाम न की गई तो जानवर के मर जाने का भय रहता है।

ताखी—इस रोग के होने पर पशुओं को आँख से दिखाई ही नहीं पड़ता। जानवर की आँखों की पुतलियों पर पर्दा-सा पड़ जाता है। कभी-कभी यह बीमारी केवल एक आँख में ही होती है जिससे पशु दूसरी आँख से देखकर चलने-फिरने का काम उचित ढंग से करता रहता है।

गुरमी—पशु के किसी अंग में जब गोलाकार मांस-पिंड निकल आता है तब उसे 'गुरमी' या **बतौरी** कहते हैं। यह मांस पिंड प्रायः पूँछ और गर्दन में निकलता है।

बहेंगी—करछना तहसील के अरैल परगने में भैंस की पूँछ की 'गुरमी' को **बहेंगी** कहते हैं।

ढाँसा—पशुओं के खाँसने को **ढाँसब** कहते हैं। यही कारण है कि इस बीमारी का यह नाम दिया गया है।

कुकुरखँसिया—यह हलकी खाँसी की बीमारी है। इसमें पशु कुत्ते की तरह रह-रह कर खाँसता रहता है।

सोखवा—यह पशुओं की मंदाग्नि की बीमारी है। इस रोग में पशु चारा खाना बिल्कुल बन्द कर देता है। धीरे-धीरे पशु सूखने अर्थात् दुर्बल होने लगता है। अगर किसी दवा ने काम न किया तो जानवर की मृत्यु हो जाती है।

मतहाई—इस रोग को कहीं-कहीं **मरी** भी कहा जाता है। यह बीमारी वास्तव में ऐसी माता नहीं है जैसे कि मनुष्य को होती है परन्तु इसमें भी कभी-कभी दाने दिखाई पड़ते हैं। यह छूत से लगने वाली बीमारी है। इसमें पहले पशु को बुखार और खाँसी आती हैं, उसके बाद खून के बहुत पतले दस्त होने लगते हैं। दस्त से बदबू निकलती है।

मिँजनी—कुछ स्थानों पर इसे **मिँजुरी** भी कहा जाता है। यह आँख की बीमारी है। इस रोग से पशु की आँख में बड़ा हलका चिह्न पड़ जाता है। यह रोग प्रायः आँख में चोट लग जाने या अधिक गर्मी से आँख आ जाने के कारण उत्पन्न हो जाता है।

सटका—जब पशु की आँख में 'पैने' या 'सुटकुनी' की चोट असावधानी के कारण लग जाती है तब यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोग में आँख से पानी बहता और कीचड़ आता है। इस तरह की हलकी चोट को भी 'सटका' ही कहते हैं। अतः इस रोग का भी नाम चोट के नाम के अनुसार ही पड़ गया है।

तिलबढ़वा—यह पशुओं के पेट फूलने की बीमारी है। इसमें पशु का मल-मूत्र बन्द हो जाता है।

मिरगी—इस रोग में पशु मृगी के दौरे से पीड़ित हो उठता है। मूर्च्छा के अतिरिक्त इस बीमारी में जानवर के मुँह से थूक और लार गिरने लगती है, पशु व्याकुल हो जाता है। मृगी रोग से ग्रस्त पशु को **मिरगीहा** कहते हैं।

फूली—यह बीमारी आँख में होती है। पशु की आँख में सफेद रंग का गोलाकार एक दाग पड़ जाता है। यदि यह दाग ठीक पुतली के ऊपर होता है तो पशु को उस आँख से दिखाई नहीं देता। इसके विपरीत यदि 'फूली' तिल के बगल हुई तो नेत्र की ज्योति पर उसका कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता।

बाघी—यह पेट में फोड़ा होने का रोग है। फोड़े के फूट जाने पर पशु आरोग्य हो जाता है। फोड़ा पेट के भीतर की ओर आँत में होता है। यह रोग कभी-कभी असाध्य हो जाता है।

जीभी—यह रोग प्रायः बैल की जीभ पर होता है। इस रोग के आक्रमण से पशु की जिह्वा पर अनेक खुरदरे दाने उभड़ आते हैं। परिणामस्वरूप पशु चारा खाना बन्द कर देता है। कुछ किसान इसे **चोभा** या **चाभा** भी कहते हैं।

मोखा—यह पशुओं के बाल झड़ने की बीमारी है। यह रोग प्रायः पशु की पूँछ में लगता है जिससे वहाँ के बड़े-बड़े बाल झड़ जाते हैं।

निउरी—कहीं-कहीं इसे **मैनखुरी** भी कहा जाता है। इस रोग में पशु के खुर के **तारू** (तालू या तलवा) में छेद हो जाता है जिससे चलने में उसे कष्ट होता है।

थन्हइल—यह दुधारू पशुओं के स्तन की बीमारी है। इस रोग के होने से स्तन में सूजन आ जाती है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी स्तन पक और फूट कर बहने लगते हैं। इस रोग के होने से दुधारू पशु दूध देना बन्द कर देते हैं।

कुड़कुड़ी—यह रोग विशेषतया लद्दू घोड़े और घोड़ी को होता है। इस रोग में पशु थोड़ी-थोड़ी देर पर गोबर करता है किन्तु उसे खुलासा दस्त नहीं होता।

बगई लागब—अधिक चारा खा लेने या किसी अन्य कारण से पशु के पेट फूल आने को 'बगई लागब' या **बगैयाब** कहते हैं। इस रोग में पशु व्याकुलता का अनुभव करता है।

कुकुरौंछब—पशु के मूर्च्छित हो जाने को कुकुरौंछिब या **कुकुरौंछियाब** कहते हैं। यह वास्तव में मूर्छा की बीमारी है जो **कुकुरौंछी** नामक एक जहरीली मक्खी के शरीर पर बैठ जाने से होती है।

आँकर—यह पशुओं के आँव की बीमारी है। इस रोग में जानवर को जाड़ा देकर ज्वर होता है। वह कष्टपूर्वक थोड़ी-थोड़ी देर में गोबर करता है। इस समय का गोबर कड़ा, पतला और खूनी आँव से युक्त होता है। पशु की **काँचि** (गुदा का माँस पिण्ड) भी कभी-कभी बाहर निकल आती है।

चमरदोखा—किसानों के लिए यह एक रहस्यमय एवं भूत-प्रेत का रोग है। कुछ लोग इसे **डाँड़** भी कहते हैं। इस रोग के लगते ही एकायक पशु भूमि पर गिर पड़ता और सबके देखते-देखते किसी भी चिकित्सा के पूर्व तुरन्त मर जाता है। यह रोग अधिकतर बैलों को होता है। पशु चिकित्सा-विशेषज्ञ इस रोग का नाम 'ऐंन्थेक्स' या 'रेंडरपेस्ट' बतलाते हैं। उनके मतानुसार इसका टीका रोग के पूर्व ही लगवाना चाहिए।

बतास—हड्डी या नस के वातग्रस्त हो जाने पर यह बीमारी होती है। यह रोग यदि पैर में हुआ तो पशु लँगड़ाता हुआ चलता है। लँगड़ाने को **डमकब** कहते हैं।

अंतरिक्ष, कृत्रिम उपग्रह तथा मानव

डा० अरविन्द मोहन

अन्तरिक्ष यात्रा का इतिहास

पिछले दो-तीन वर्षों में अंतरिक्ष अभियान, कृत्रिम ग्रह तथा उपग्रह सम्बन्धी प्रयोगों की इतनी तीव्रगामी सफलता रही है तथा एक के बाद एक इतनी प्रकार के राकेट-यान पृथ्वी से छूटे हैं कि दाँतों तले उँगली दबाना तथा आश्चर्यचकित होना एक दैनिक-चर्या सी बन गई है। इस होड़ में सर्वप्रथम रूस का स्पुतनिक (४ अक्टूबर १९५७) छोड़ा गया था जिसके भीतर लाइका नामक कुतिया थी। रूस ने ही सर्वप्रथम ल्यूनिक नामक उपग्रहों को छोड़ा (एक चन्द्रमा पर सितम्बर '५९ में उतरा तथा द्वितीय अक्टूबर '५९ से चन्द्रमा-पृथ्वी की १५ दिन पर परिक्रमा करता है) तथा गत मई को स्पुतनिक-४ भी छोड़ा गया है। निस्संदेह रूस का प्रयत्न अग्रणी तथा अत्यन्त भारी उपग्रहों को छोड़ने में सफल रहा है। आज तक रूस ने चार पृथ्वी के उपग्रहों तथा तीन सुदूर-अन्तरिक्ष यानों को जन्म दिया है।

इसके उत्तर में संयुक्त राज्य अमेरिका ने आज तक १९ पृथ्वी के उपग्रह तथा दो सुदूर अंतरिक्ष वेध सफल किये हैं। (हाल ही में एक राकेट द्वारा दो उपग्रह साथ छोड़े गये हैं जो उपरोक्त १९ से अलग हैं।) अमेरिका इस अन्तरिक्ष दौड़ में रूस से पिछड़ा था किन्तु आज उसके सम्पूर्ण प्रयास को आँकने पर तथा 'मिडास' उपग्रह (मई १९६०) के छूटने पर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि अन्तरिक्ष ज्ञान में वह सर्वोच्च पद पर है।

उदाहरणतः आज के चालू १२ उपग्रहों में केवल एक रूस का तथा ११ अमेरिका के हैं। अमेरिका के अंतरिक्ष वेध इतने गहन हो गये हैं कि पिछले दो मासों में छूटे "ट्रांसिट-१बी", "टाइरोस" "पायोनियर-५" अथवा १३७ मील ऊपर कैमरों (दूरदर्शी) द्वारा तारों की रश्मि विश्लेषण क्रिया इत्यादि बातें कुछ अनहोनी नहीं प्रतीत होतीं। वास्तव में प्रत्येक सफलता एक महत्त्वपूर्ण तथा अत्यन्त कठिन अध्यवसाय व वैज्ञानिक शोध का प्रत्यक्ष प्रमाण है। निश्चय ही आज की यह अन्तरिक्ष दौड़ किसी विशेष महत्त्वाकांक्षा या निश्चय ध्येय को सामने रखकर ही की जा रही होगी।

इस दौड़ का ध्येय क्या है ?

अध्ययन तथा इन प्रयत्नों के सूक्ष्म मनन द्वारा विदित होता है कि इन योजनाओं के तीन मुख्य अंग हैं जिनकी ओर प्रयास किया जा रहा है:

(क) ऐसे शोध तथा प्रशिक्षण यंत्र बनें जो मनुष्य को अंतरिक्ष के वातावरण, चुम्बकीय क्षेत्रों, अन्तरिक्ष किरणों, सूर्य-पवन तथा सूर्य-पार्थिव सम्बन्धी बातों की जानकारी उपग्रहों द्वारा प्रस्तुत करें।

(ख) ऐसे उपग्रह बनें जो उपयोगिता-प्रधान हों ताकि ऋतु, यात्रा-संकट, युद्ध सम्बन्धी सूचनायें हमें दे सकें।

कृत्रिम उपग्रहों का चित्रण

(परिक्रमा समय 1½ से 2½ घंटे)

अमेरिकन

रूसी

वैंगार्ड-१ — मार्च '५८, २००० वर्ष, ३½ पौंड — रेडियो चालू है

वैंगार्ड-३ — सितम्बर '५९, ३५ वर्ष, ५० पौंड — २५०० मील

वैंगार्ड-२ — फरवरी '५९, २०० वर्ष २१ पौंड — बादल सूचनार्थ

२००० मील

एक्सप्लोरर-३ — मार्च '५८ ३ मास, १८ पौंड

एक्सप्लोरर-१ — जनवरी '५८ ४ वर्ष, १८ पौंड — विकीरण परतों की खोज हुई

एक्सप्लोरर-४ — जुलाई '५८ १५ मास, २६ पौंड — १५०० मील

मई '५८, २ वर्ष २१३४ पौंड — स्पुतनिक-३

स्कोर योजना

नवम्बर '५७ ५ मास ११२० पौंड (लाइका सहित) — स्पुतनिक-२

दिसम्बर '५८ १ मास १५० पौंड (८७५० पौंड एटलस कक्ष में रहा)

१००० मील

एक्सप्लोरर-७ — अक्टूबर '५९, २० वर्ष, २½ पौंड

ट्रॉंसिट-१-बी — अप्रैल '६०, ६ मास २६५ पौंड

अक्टूबर '५७, ३ मास १८४ पौंड — स्पुतनिक-१

टाइरोस-१ — अप्रैल '६०, ७५ वर्ष २७० पौंड

५०० मील

मिडास-२ — मई '६० ३ वर्ष, ३६०० पौंड

मई '६० ८७०० पौंड (डमी सहित) — स्पुतनिक-४

अमेरिका

पृथ्वी

रूस

(ग) मनुष्य को अन्तरिक्ष अभियान में सफलता प्राप्त हो सके।
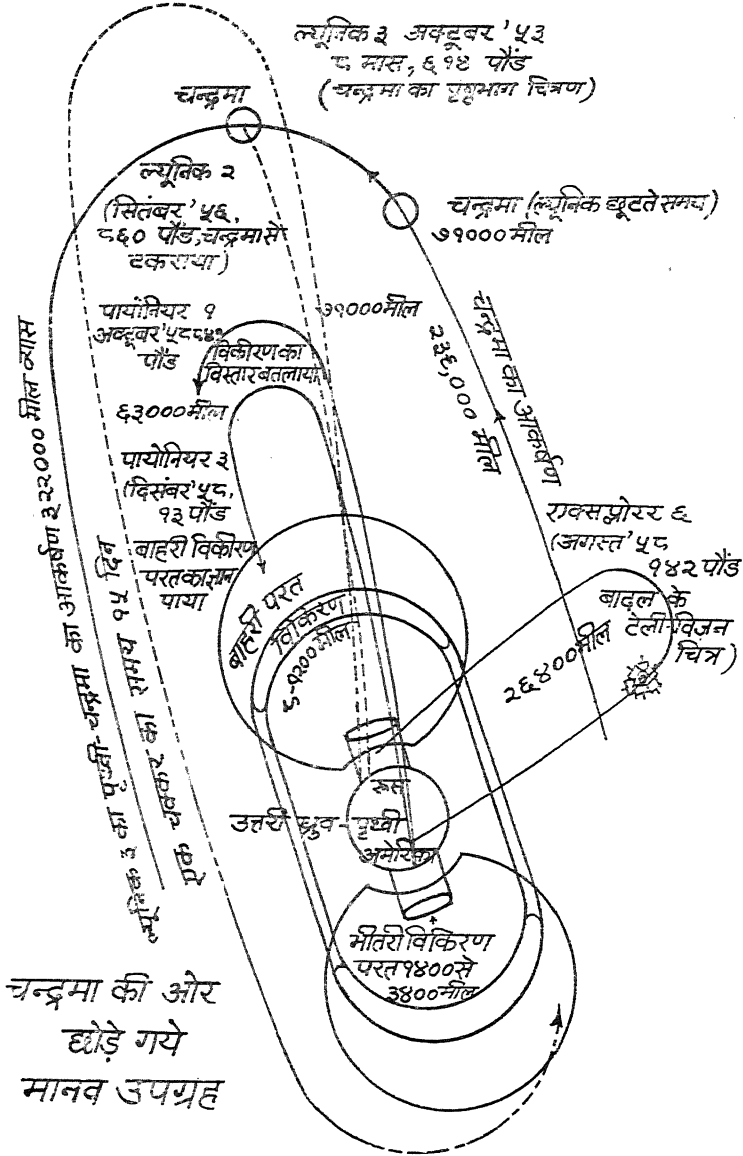
शोध तथा ज्ञान वृद्धि

उपरोक्त बातों के आधार पर "इक्सप्लोरर" तथा "पायोनियर" श्रेणी के क्रमशः सात तथा पाँच उपग्रहों द्वारा अनेक सूक्ष्म गवेषण तथा ज्ञान का भंडार मिला जिनमें विकिरण परतों
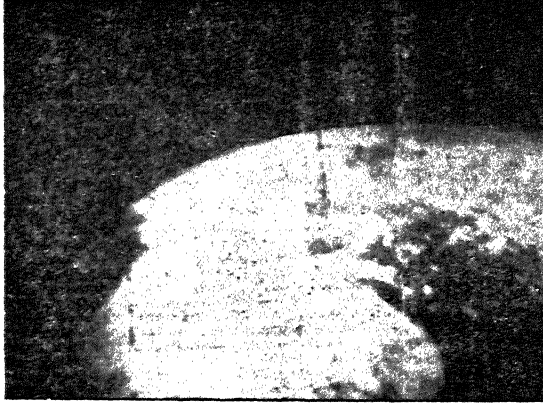
चित्र ३—टाइरोस प्रथम द्वारा अमेरिका की उत्तरी-पूर्वी भूमि का चित्रण जो लगभग ५०० मील ऊपर तीव्रगामी उपग्रह से खींचकर टेलीविजन द्वारा पृथ्वी पर भेजा गया। लघुकोणीय कैमरे द्वारा १०,००० वर्ग मील तथा दीर्घकोणीय कैमरे द्वारा ६,४०,००० वर्ग मील का चित्रण संभव है।
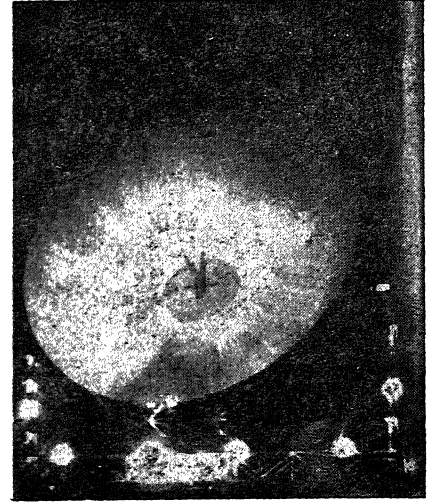
चित्र ४—ब्रिटेन के जाड्रेल बैंक पर स्थित रेडियो दूरदर्शी जिसने पायोनियर पंचम से ५ करोड़ मील दूरी से पहुँचें संदेशों को ग्रहण किया है।
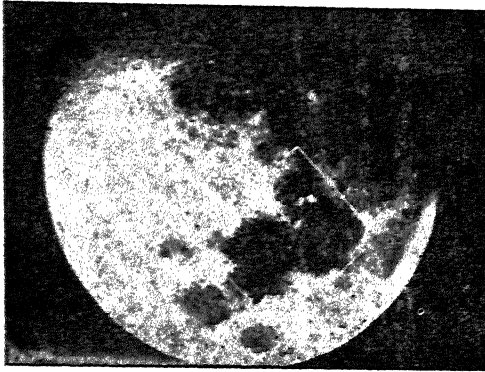
चित्र ५—चद्रमा पर ल्यूनिक २ जा कर टकराया। सुदूर अन्तरिक्ष वेध तथा राकेट द्वारा इस सफलता मे रूसी वैज्ञानिकों ने गत सितम्बर '५९ वैज्ञानिक क्षेत्र में हलचल मचा दी।
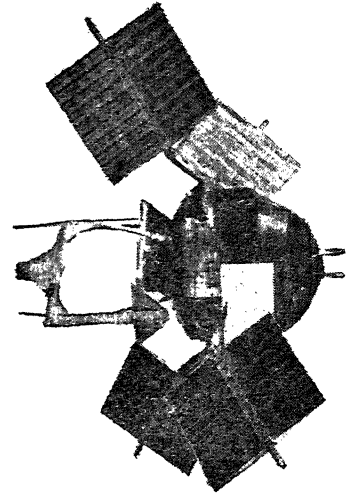
चित्र ६—एक्सप्लोरर ६ जिसमें लगी सिलिकन सूर्य सेल बैटरी को आवेश देती है। उसके द्वारा १५ मुख्य प्रयोगों का पूर्ण ज्ञान पृथ्वी पर भेजा गया है। विकिरण किरणों की भीतरी परतों का ज्ञान इससे मिला।
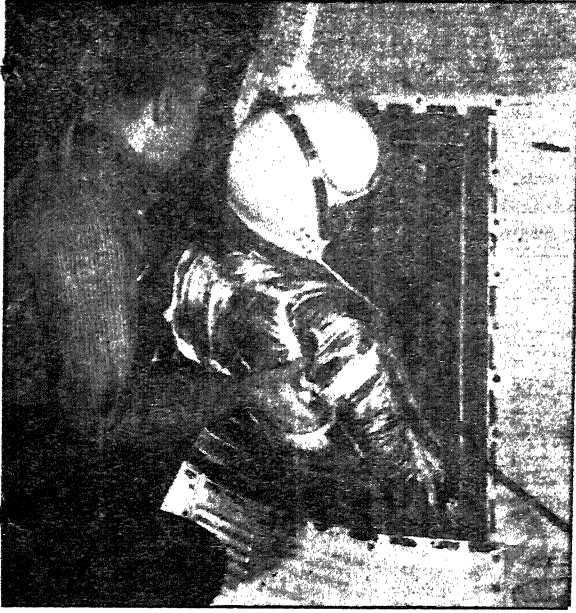
चित्र ७—अन्तरिक्ष यात्रा के हेतु बनाया गया मर्करी योजना का शंकु-जैसा डिब्बा जिसमें लेट कर यात्रा की जावेगी। इसका आकार ऐसा है कि पृथ्वी पर वापस लौटने के हेतु वायु प्रतिरोध द्वारा गति ६ मील प्रति सेकंड से ३० मील प्रति घंटे हो सके।
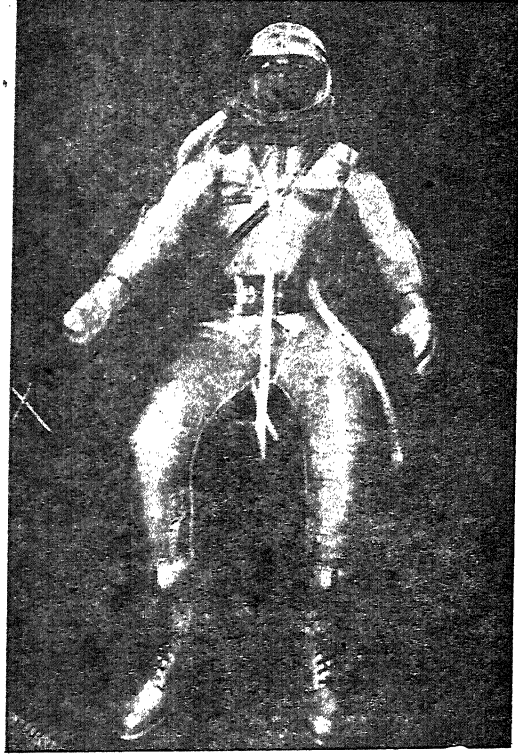
चित्र ८—अन्तरिक्ष में यात्रा के हेतु मानव को विशेष रबर के वायु भरे वस्त्र पहिनने होंगे। इसी मुद्रा में वह यान में लेट कर यात्रा करेगा।

(वेन एलन) तथा सूर्य कलंकों तथा अरोरा सम्बन्धी तथ्य उल्लेखनीय हैं। सूर्य विकिरण द्वारा पृथ्वी पर चुम्बकीय तूफान, रेडियो शब्द, उष्णता की अधिकता (ध्रुवीय प्रदेशों में), वर्षा तथा शीत-हिम (दक्षिणी अमेरिका) की अधिकता पाई गई।

"वैंगार्ड" उपग्रह ने, जो अंगूर के समान छोटा था, पृथ्वी के चित्र लिये तथा हमारे भौगोलिक ज्ञान में सुधार किये। इससे विदित हुआ कि पृथ्वी नारंगी-सी नहीं है बल्कि उत्तरी ध्रुव पर ५० फुट ऊँचा टोलानुमा है तथा भूमध्य रेखा पर इसकी मोटाई धारणा से कम है। पृथ्वी की चक्कर लगाने की दशा उसको बीच में अधिक मोटा दिखलाती है।

उपग्रहों का यही आश्चर्य है कि वे हमारी पृथ्वी से दूर पहुँच कर उसी के बारे में ज्ञान प्रस्तुत करते हैं। उपग्रहों के भीतर इतने सूक्ष्म तथा विविध यंत्रों का समावेश है कि उसका सही अनुमान भी एक महान आश्चर्य का विषय है।

अंतरिक्ष ग्रहों में सबसे आश्चर्यजनक पायोनियर-५ है जिसने बहुत पूर्व एक करोड़ तीस लाख मील (१,३०,००,०००) दूरी से भी निरंतर रेडियो संकेत द्वारा अपने एकत्रित सूचना ज्ञान को पृथ्वी तक भेजा। पृथ्वी से २५,००० मील दूरी पर विद्युत धारा (५० लाख अम्पीयर) की सूचना (जो इक्सप्लोरर-६ से भी मिली थी) तथा ५६००० मील पर पार्थिव चुम्बकीय क्षेत्र की समाप्ति की सूचना (यह वैज्ञानिक धारणा की दुगनी दूरी थी!) इसने प्रस्तुत की है।

यदि विशेषज्ञों की जानकारी बढ़ी तो जनसाधारण इन खोजों से क्यों कर उल्लसित हों?

उपयोगिता प्रधान उपग्रह

मानव उपयोगिता की दृष्टि से "टाइरोस-१" के टेलीविजन कैमरों द्वारा प्रस्तुत जानकारी में हवाई द्वीप पुंज का २००० मील विस्तृत बादल समूह था जिसके द्वारा ऋतु सूचना की ठीक भविष्यवाणी की जा सकी। इसके द्वारा प्रस्तुत सूचनायें कदाचित संसार के सभी वायुयान-चालकों, किसानों तथा अवकाश के क्षणों में खिलाड़ियों के लिये उपयोगी सिद्ध होंगी।

इसी प्रकार संकट या युद्ध सम्बन्धी समाचार दे सकने वाले "मिडास-२" की उपयोगिता स्पष्ट है। लगभग ६० मन भारी (४५ मन यंत्रों के सुसज्जित) इस उपग्रह की 'नाक' धुँआ या अग्नि की छोटी मात्रा को भी सूँघ लेती है तथा जेट यानों की दुम से निकली गैसों का पता पाकर संकट सूचना दे सकती है। 'ट्रांसिट-१ वी' द्वारा नाविकों को हर ऋतु में अपनी स्थिति तथा दिशा-ज्ञान मिलता है।

"डिस्कवरर" (आज तक ११ ऐसे राकेट छोड़े जा चुके हैं) द्वारा उपग्रहों को पृथ्वी पर वापस लाने की समस्यायों पर प्रयोग किये जा रहे हैं। वास्तव में यह एक ऐसी योजना है जिसके द्वारा प्रस्तुत ज्ञान में अगणित उपग्रहों को जन्म मिलेगा।

मानवी अन्तरिक्ष यात्रा

परन्तु उपरोक्त सभी सफलताओं के पश्चात् सदैव यही एक प्रश्न हमारे सम्मुख आता है, कब मनुष्य आकाश में उड़कर अन्य ग्रहों को पहुँचेगा अथवा अंतरिक्ष यात्रा करेगा? मानव अंतरिक्ष अभियान सम्बन्धी यांत्रिक विकास तो लगभग पूर्णरूप से हो चुका है किन्तु अभी इन भारी यांत्रिक तथा सुविधा व्यवस्था (जो मनुष्य को रहने के लिये अति आवश्यक है) युक्त उपग्रह को ऊपर निर्धारित कक्ष में स्थापित कर सकने की क्षमतायुक्त राकेटों का अभाव है।

इस दिशा में अपूर्व प्रशिक्षण द्वारा ("मरकरी" योजना के अन्तर्गत देखें) तैयारी की जा रही है तथा एक "सैटर्न" योजना द्वारा अद्वितीय वेग बल की राकेट-व्यवस्था का भी विकास किया जा रहा है। वेन एलन की धारणा है कि मनुष्य को अंतरिक्ष में भेजने की अपेक्षा यंत्रों द्वारा ज्ञान बढ़ाना सरल, सस्ता तथा कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। फिर भी धारणा है कि मानव यात्री भी अंतरिक्ष में ज्ञान वृद्धि में सहायक सिद्ध होंगे क्योंकि यांत्रिक सूचना को पाकर उसके अर्थ निकाल पाना दिन पर दिन अधिक जटिल होता जा रहा है। और एक 'हाँ' अथवा

'नहीं' का संकेत मार्ग में बाधा होने पर बहुधा दो तीन मिनट में भेजना संभव हो पाने पर उपग्रह से सूचना की अधिक जानकारी पृथ्वी तक पहुँचना दुष्कर हो जाता है। उदाहरणतः हल्ले-गुल्ले में अपने वाक्य को अनेक बार दुहराने पर भी श्रोता तक ठीक अर्थ पहुँचाना कठिन हो जाता है।

व्योम उड्डयन विज्ञान के अग्रदूत कान्स्टैण्टिन त्सियोल्कोव्स्की

वी० अर्जैनिकोव

३ अक्टूबर १९५७ की रात को जब हम अपनी शय्या पर गए तो क्या हम यह कल्पना कर सकते थे कि अगला दिन इतिहास में अन्तरिक्ष पर मानव की विजय-दुन्दुभि बजाने वाला सिद्ध होगा। क्योंकि अगले दिन सोवियत संघ में विश्व का प्रथम कृत्रिम-भू-उपग्रह छोड़ा गया था जिसने मानव जाति के इ हास में एक नए अध्याय की सृष्टि की। मनुष्य ने अपना चिर-पोषित स्वप्न पूरा किया और दूर नक्षत्रों की दुनिया में ले जाने वाले पथ पर कदम रखा। किन्तु इस पथ का मार्गदर्शन बहुत पहले सर्वप्रथम कोन्स्टेण्टिन त्सियोल्कोव्स्की ने किया था जो रूस के छोटे से नगरकालूगा में भौतिक शास्त्र के अध्यापन का काम करते थे।

त्सियोल्कोव्स्की का जीवन कोई फूलों की सेज नहीं था। लाल बुखार के कारण १० वर्ष की आयु में ही वह बधिर हो गये और उन्हें स्कूल छोड़ना पड़ा। उन्हें स्वयं अपने बूते पर पढ़ाई जारी रखनी पड़ी किन्तु इन अड़चनों के बावजूद उन्होंने अनेक विज्ञानों का पाण्डित्य प्राप्त किया और २२ वर्ष की आयु में अध्यापन का कार्य करने लगे।

त्सियोल्कोव्स्की कालूगा के एक स्कूल में पढ़ाते थे और अपना सारा खाली समय उन्होंने विज्ञान और आविष्कारों के लिए अर्पित कर रखा था। तभी राइट भाइयों की उड़ान से ९ वर्ष पूर्व उन्होंने हवाई जहाज का पहला नमूना तैयार किया था। जब उन्हें हवाई जहाज के डैनों पर वायुमण्डल के खिंचाव की मात्रा जानने की आवश्यकता पड़ी तो त्सियोल्कोव्स्की ने एक गतिशील प्लेट पर वायुमंडल के प्रभाव का अंकन करने के लिए विश्व में सर्वप्रथम वायु की गति और उसके प्रभावों पर परीक्षण किए जिसके लिए उन्होंने एक वायु-सुरंग बना ई।

त्सियोल्कोव्स्की के वैज्ञानिक विचार और सिद्धान्त उस युग के लिए इतने असाधारण और क्रान्तिकारी थे कि उनमें से अधिकांश को रूस के प्रामाणिक वैज्ञानिक क्षेत्रों का कोई सहयोग नहीं मिला। फलस्वरूप त्सियोल्कोव्स्की ने अपने सब खोज-कार्य स्वयं ही किए और

अपनी सारी आय वह उन पर खर्च कर देते थे। उनके पास पैसा था भी कहाँ। उनके काम को किसी ने महत्व नहीं दिया और सरकारी क्षेत्र का तो उन्हें कोपभाजन बनना पड़ा। कोई दूसरा होता तो इन परिस्थितियों के आगे घुटने टेक देता। किन्तु त्सियोल्कोव्स्की एक सच्चे वैज्ञानिक थे—साहसी और भविष्य के प्रति आशावान्—जो किसी कठिनाई के कारण विचलित नहीं हुए। लेकिन अक्टूबर क्रान्ति के बाद ही इस महान् वैज्ञानिक और आविष्कारक का सही मूल्यांकन किया गया और उसे प्रचारित किया गया। त्सियोल्कोव्स्की को तभी अपनी योग्यता के अनुसार पूर्णरूप से काम करने का अवसर मिला।

जेट गति का सिद्धान्त

जेट गति का सिद्धान्त ३००० वर्ष पूर्व भी ज्ञात था। चीन में प्राचीन समय में इसका उपयोग आतिशबाजी में किया जाता था। लेकिन भूमंडल के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से निकल कर ब्रह्मांड के अति विस्तृत क्षेत्र में पहुँचने के लिए इस सिद्धान्त के प्रयोग का साहस मनुष्य ३० सदी बाद ही कर सका। किन्तु इसके लिए जेट गति के एक सिद्धान्त की आवश्यकता थी और वह हमें त्सियोल्कोव्स्की ने प्रदान किया। उन्होंने जेट गति के सभी मूलभूत सिद्धान्तों का अध्ययन किया, जिनमें राकेटों की उड़ान का मौलिक प्रश्न भी सम्मिलित था। उन्होंने राकेट की उड़ान का गणित सम्बन्धी अध्ययन एक ऐसी तेज उड़ान के रूप में किया जिसका भार निरन्तर घटता चला जाता हो (जैसे ईंधन जलता जाता है वैसे-वैसे उसका वजन घटता जाता है) और तदनुकूल एक सूत्र निकाला। आज राकेट की उड़ान का पथ गणित के एक निश्चित सूत्र की भाषा में चित्रित किया जाता है और यह उचित ही है कि वह सूत्र त्सियोल्कोव्स्की के नाम पर रखा गया है।

जिस विचार के आधार पर राकेट उड़ान की एक मुख्य समस्या-ईंधन की समस्या-हल की गई वह भी त्सियोल्कोव्स्की का ही है। पहले राकेट के एक ही प्रकार के ईंधन का पता था कि पाउडर होता है। त्सियोल्कोव्स्की ने सिद्ध कर दिया कि द्रव ईंधन अधिक प्रभावशाली है और राकेट की मोटर को द्रव ईंधन से चलाए जाने का विचार प्रस्तुत किया। यह वस्तुतः एक बहुत चामत्कारिक भविष्यवाणी थी क्योंकि आज राकेटों में द्रव ईंधन का उपयोग व्यापक पैमाने पर किया जा रहा है।

बहुखण्डीय राकेट

त्सियोल्कोव्स्की ने हमारे लिए सिद्धान्तों की ही विपुल विरासत नहीं छोड़ी, बल्कि वह एक अच्छे आविष्कारक भी थे। उनके विचारों को आज सभी आधुनिक राकेटों में मूर्तरूप दिया गया है। आधुनिक राकेटों के एक मूलभूत सिद्धान्त-बहुखंडीय राकेटों-के सिद्धान्त-के लिए भी हम त्सियोल्कोव्स्की के ऋणी हैं।

राकेटों की उड़ान का क्षेत्र बढ़ाने के उद्देश्य की पूर्ति के दो उपाय हैं। एक तो अधिक शक्तिशाली ईंधनों का पता लगाना और दूसरा त्सियोल्कोव्स्की के ही शब्दों में राकेट ट्रेनों (राकेटों की श्रृंखला) का निर्माण करना। ईंधन से शक्ति बढ़ाने की सम्भावनाएँ परिमित हैं

क्योंकि ईंधन उससे अधिक शक्ति प्रदान नहीं कर सकते जो प्रकृति ने उन्हें प्रदान की है। यही कारण है कि राकेट का क्षेत्र बढ़ाने के किए दूसरा उपाय 'बहुखंडीय राकेट' अधिक कारगर है।

बहुखंडीय राकेट का सिद्धान्त निम्न है :

१९ वीं सदी में जब राकेटों का उपयोग आतिशबाजी में किया जाता था तो उनमें पाउडर चार्ज के ऊपर एक ऐसी वस्तु रहती थी जो रंगबिरंगी चिनगारियों में फूट पड़ती थी। जबकि मूल इंधन जलकर समाप्त होता था तो उससे एक अतिरिक्त चार्ज जल उठता था और फिर उसमें नई चिनगारियाँ उठती थीं। अब अगर बहुरंगी मिश्रण के स्थान पर अग्र भाग में एक और राकेट रख दिया जाए और पहले राकेट का ईंधन जल चुकने पर उसे प्रज्वलित कर दिया जाए तो दूसरा राकेट पहले राकेट से आगे दुगुनी गति से उड़ता है। इस प्रकार एक राकेट में ऐसे कई खण्ड होते हैं। जब पहले राकेट का ईंधन जल चुकता है तो यह दूसरे राकेट की मोटर को प्रज्वलित कर देता है और अलग हो जाता है। यही क्रम अन्तिम खण्ड तक चलता रहता है जो 'पेलोड' को आवश्यक गति प्रदान करता है। आधुनिक राकेटों से ब्रह्माण्ड में विचरण करने योग्य गति प्राप्त करने का यही तरीका है।

आन्तरिक रेडार

एक और डिजाइन जिसका पहले पहल सुझाव त्सियोल्कोव्स्की ने ही दिया था, आन्तरिक रेडार है जिसका सफलता पूर्वक उपयोग किया जाता है। तापरोधक धातुमिश्रण के बने हुए रेडार नली से निकलती हुई गैस की धारा में रख दिये जाते हैं। गैस की धारा के अनुरूप से रेडार की स्थिति बदल-बदल कर राकेट का संचालन किया जाता है।

राकेट की मोटर में ईंधन के जलने से ३०००° से ४०००° सेंटीग्रेड तक का ताप उत्पन्न होता है। कोई भी धातु इतने ताप को नहीं सह सकती। इसीलिए मोटर की बाह्य परतों के ठण्डा रखने का इतना महत्व है। किन्तु राकेटों में कोई विशेष द्रव्य रखना कठिन है क्योंकि उनमें १ किलोग्राम भार के घटने-बढ़ने से भी बहुत अन्तर पड़ जाता है। त्सियोल्कोव्स्की ने ईंधन को या आक्सिडाइजर को ही शामक के रूप में प्रयुक्त करने का विचार दिया था। ज्वलन कक्ष में प्रवेश करने से पूर्व ईंधन इसके चारों ओर लपेटी हुई नलियों में से गुजरता है और अतिरिक्त ऊष्मा को अवशोषित कर लेता है। ठण्डा रखने की इस विधि का, जिससे राकेट में किसी अतिरिक्त शामक द्रव्य की आवश्यकता नहीं पड़ती, आजकल व्यापक रूप से प्रयोग किया जा रहा है।

द्रव्य ईंधन वाली मोटरों को निरन्तर ईंधन पहुँचाते रहना, राकेटों की उड़ान व उतार, राकेट के चालकों के लिए सुविधाजनक और सुरक्षित स्थान की व्यवस्था करना तथा अन्य अनेक समस्याएँ त्सियोल्कोव्स्की के कार्यों में सम्मिलित हैं

"व्योम द्वीप"

किन्तु त्सियोल्कोव्स्की का कदाचित् सबसे क्रांतिकारी और शानदार विचार "व्योम द्वीप"—कृत्रिम भू-उपग्रहों की सृष्टि करना था। उनका विचार था कि न केवल उड़ती हुई प्रयोगशालाओं

के रूप में अपितु व्योम-यानों के लिए पुनः ईंधन लेने के स्टेशनों के रूप में भी उसका प्रयोग किया जाना चाहिए। आज उनके इस विचार को सर्वत्र स्वीकार किया जाता है।

व्योम-उड़ानों के क्षेत्र में काम करने वाले अधिकांश वैज्ञानिक अन्तर्ग्रहवर्ती यात्राओं की सफलता के लिए इस प्रकार के पुनः ईंधन लेने के स्टेशनों को आवश्यक समझते हैं। कम से कम जिन राकेटों में नव रासायनिक ईंधन का प्रयोग किया जाता है उनके लिए तो ये आवश्यक समझे ही जाते हैं।

व्योम-यान के प्रवर्तक त्सियोल्कोव्स्की का बाह्य अन्तरिक्ष में प्रवेश करने का स्वप्न उनके जीवन में तो पूरा नहीं हुआ किन्तु जो आश्चर्यजनक भविष्यवाणियाँ उन्होंने की थीं वे सत्य सिद्ध हुईं। उनके मौलिक और क्रांतिकारी विचार सोवियत वैज्ञानिकों तथा इंजीनियरों की शानदार सफलताओं में साकार हैं। वे उस प्रथम जेट-विमान में साकार हुए जो १५ मई, १९४२ को सोवियत हवाई अड्डे से उड़ा। वे प्रथम भू-उपग्रह में साकार हैं। वे २ जनवरी १९५९ को संघ से चन्द्रमा की दिशा में भेजे गए पहले अन्तरिक्ष-यान में साकार हैं जो सूर्य का प्रथम कृत्रिम उपग्रह बना।

और यह कृतज्ञ मानव जाति उस महापुरुष तथा वैज्ञानिक को सदा याद रखेगी जिसने उसके समक्ष नक्षत्र पथ को सर्वप्रथम आलोकित किया।

भूकम्प

ओ३म् शंकर द्विवेदी

इस बीसवीं शती में भी जिस प्रकार हमारे देश में आराधना, पूजा और प्रसाद चढ़ाने की प्रथा है उसी प्रकार चीन और इटली में भूकम्पीय पर्वतों की पूजा और आराधना होती है। विज्ञान ने इस युग में आशातीत उन्नति की है। ऋतु विज्ञान सम्बन्धी सूचनायें लगभग छः मास पूर्व ही ज्ञात हो जाती हैं; अन्य क्षेत्रों में भी पूर्व सूचना प्राप्त करने की व्यवस्था आज का विज्ञान कर चुका है। किन्तु भूकम्प—इतनी बड़ी दुर्घटना जो केवल कुछ ही क्षणों में बड़े से बड़े नगरों को ध्वस्त करके केवल मलबे के ढेर में परिवर्तित कर देता है—के सम्बन्ध में निश्चित रूप से पूर्वसूचना देने की व्यवस्था अभी तक विज्ञान नहीं कर सका है। किन्तु प्रश्न यह है, क्या यह स्थिति सदैव ऐसी ही रहेगी? क्या विज्ञान इस सम्बन्ध में कोई निश्चित पग उठाने में समर्थ न हो सकेगा? सीस्मोलाजी द्वारा प्राप्त भू-अन्तर की रचना तथा पृथ्वी सम्बन्धी ज्ञान हमें आशा दिलाते हैं कि भविष्य में सम्भवतः वैज्ञानिक भूकम्प और तत्सम्बन्धित विषयों के सम्बन्ध में निश्चित रूप से पूर्व सूचना देने में समर्थ हो सकेंगे।

किसी भी प्राकृतिक या अप्राकृतिक कारण से भूपृष्ठ के कम्पित होने को भूकम्प कहते हैं। यदि भूकम्प आने के कारणों पर विचार किया जाय तो निम्न प्रकार से उनका वर्गीकरण किया जा सकता है:—
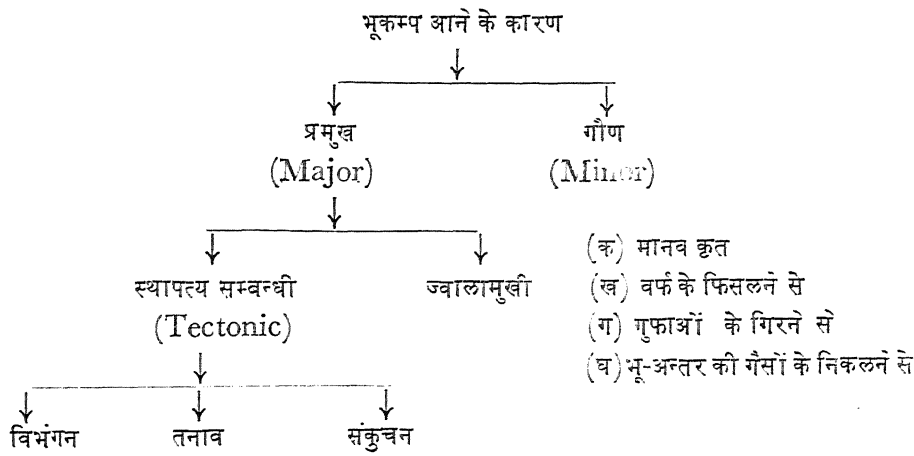
प्रबल भूकम्पों का जन्म प्रमुख कारणों से ही होता है और इनसे जन-धन की हानि भी अधिक मात्रा में होती है। जब कभी भूतल की शिलाओं पर भू-अन्तरीय क्रियाओं द्वारा दवाव पडता है तो वह टूट जाती हैं और उनमें दरारें पड़ जाती हैं। शिला में इस टूटी हुई रेखा की दिशा में गति होने को **विभंगन** कहते हैं। टूटे हुये विशाल खण्ड आपस में रगड़ खाते हैं और कभी-कभी इस रगड़ का वेग इतना अधिक होता है कि पूरे महाद्वीप को हिला देता है। कभी कभी चट्टानों में मोड़ पड़ने से या पृथ्वी में कुछ रासायनिक क्रियाओं के द्वारा संकुचन या विस्तार होने से भी भूकम्प आ जाते हैं। इन भूकम्पों के क्षेत्र वही स्थल होते हैं जहाँ भूपटल में कोई विशेष परिवर्तन हो रहा हो—जैसे, पर्वत और महासागरों के तटवर्ती क्षेत्र।

ज्वालामुखी के उद्गार से सदैव भूकम्प आ जाते हैं। ज्वालामुखी फूटने के पूर्व जब लावा भूपटल को तोड़ने के लिये बल लगाता है तो पृथ्वी काँप जाती है। जब लावा भूपटल को तोड़ कर उसमें नाली बनाता है, भूपृष्ठ की संधियों में लावा भरता है या लावा निकलने वाली नली अधिक लावा के कारण और अधिक चौड़ी होती है तो भी भूकम्प आ जाता है। जब ज्वालामुखी से निकले पदार्थ हवा में दूर तक फेंक दिये जाने पर पुनः पृथ्वी पर गिरते हैं तो भी भूकम्प आ जाता है।

गौण कारणों से आये हुये भूकम्प सदैव ही कम समय तक टिकते हैं और इनसे धन-जन की हानि भी कम होती है। मनुष्य पृथ्वी पर अनेक प्रकार के विस्फोट करता है। बम फटने से, बारूद आदि में आग लग जाने से या अन्य प्रकार के परीक्षणों के प्रतिफल जो भूकम्प आते हैं उन्हें हम मानवकृत भूकम्प की संज्ञा देते हैं। पर्वतों की चोटियों पर लगातार हिम वर्षा होने से वृहत मात्रा में वर्फ जमा हो जाती हैं और जब पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से वह नीचे

गिरती हैं तो भूकम्प आ जाता है। ज्वालामुखी उद्गार होने पर भूअन्तर का बहुत सा पदार्थ लावा के रूप में पृथ्वी पर आ जाता है और अन्तर में बड़ी-बड़ी गुफायें बन जाती हैं। जब उस शून्य के ऊपर या किनारों की चट्टानें नीचे गिरतीं हैं तो भूकम्प आ जाता है। भू-अन्तर में कुछ रासायनिक क्रियायें होने पर या अन्तर की ऊष्मा से ही गैसें या जलवाष्प बनती है। इन गैसों पर दवाव धीरे-धीरे बढ़ता जाता है और एक दशा ऐसी आ जाती है जब ये गैस चट्टानों में से रास्ता बनाती हुई बाहर निकल आती हैं जिससे कि भूकम्प आ जाता है।

गटन वर्ग ने भूकम्पों को उनकी उत्पत्ति-स्थान (Seismic Focus) की गहराई के विचार से वर्गीकृत किया है और इस प्रकार वह सभी भूकम्पों को निम्न तीन भागों में रखते है:—

साधारण भूकम्पः—इन भूकम्पों का उत्पत्ति स्थान भूपृष्ठ के ऊपर से ५० किलोमीटर नीचे तक हो सकता है।

मध्यमान भूकम्पः—इस वर्ग में ५० से लेकर २५० किलोमीटर तक उत्पन्न होने वाले भूकम्प आते हैं।

असाधारण भूकम्पः— वे भूकम्प जो भूपटल के ऊपरी भाग से २५० किलोमीटर के नीचे और ७०० किलोमीटर तक की गहराई में उत्पन्न होते हैं।

वास्तव में भूकम्प भूपृष्ठ में परिवर्तनों के ही कारण आते हैं। वर्षा जल और वर्फ सदा ही भूपृष्ठ को घिसते रहते हैं और इस प्रकार से प्राप्त पदार्थ को वे एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाते हैं। इस प्रकार से एकत्र पदार्थों के संवहन के कारण भू-सन्तुलन नष्ट हो जाता है। भूमि को पुनः संतुलित करने के लिये भूअन्तर में बहुत सी शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं जैसे दवाव, तनाव आदि। इन शक्तियों के कारण पृथ्वी के कुछ भाग ऊपर उठजाते हैं, कुछ नीचे धँस जाते हैं, तो ज्वालामुखी उद्गार होता है जिससे कि भूमि पुनः संतुलित हो सके।

उपरोक्त शक्तियों के कारण ही आज **टिथीस सागर** के स्थान पर हिमालय खड़ा हो गया है। सन् १८७८ के भूचाल के कारण यूनानी द्वीप २७ फीट ऊपर उठ गये। सन् १८९९ में अलास्का में आये भूकम्प के कारण वहाँ के जल के भीतर का भाग ७ फीट ऊपर उठ गया था। गत शताब्दी में वोथनियाँ की खाड़ी ८७ से० मी० उथली हो गई। इधर स्कैण्डिनेविया १से० मी० प्रति वर्ष के हिसाब से ऊपर उठ रहा है उधर हालैण्ड इसी गति से नीचे की ओर बैठ रहा है। जिन शक्तियों ने योरुप में **अल्पस पर्वत** को जन्म दिया उन्हीं शक्तियों ने **आइसलैण्ड द्वीप** को भी पैदा किया। उपरोक्त कारणों से यह स्पष्ट है कि जब पृथ्वी का एक भाग ऊपर या नीचे बनेगा तो वह अवश्य ही पृथ्वी की चट्टानों को प्रभावित करेगा और भूचालों को जन्म देगा।

अधिकांश भूकम्पों का जन्म भूपटल से लगभल ३२ किलोमीटर तक की ही गहराई में होता है, किन्तु कुछ भूकम्प ऐसे भी हैं जो कि भूगर्भ में ३२० किलोमीटर या उससे भी नीचे उत्पन्न हुये थे। उदाहरण के लिये सन् १९५६ में स्पेन में आये हुये भूकम्प की गहराई भूपृष्ठ

से ७२० कि० मी० थी। मार्च सन् १९६० में आये हुये **अगादीर** के भूचाल की गहराई बहुत ही कम थी।

भूगर्भ शास्त्रियों का मत है कि भूअन्तर में रेडियम-सक्रिय पदार्थों की उपस्थिति और विखंडन के कारण ऊष्मा और ऊर्जा उत्पन्न होती है जिससे कि उस भाग की चट्टानों पर बहुत अधिक दबाव पडता है और वह पिघल जाती हैं। यह पिघला हुआ पदार्थ अपने आसपास की चट्टानों को तोड़ता, फोड़ता और इधर उधर हटाता हुआ ऊपर बढ़ता है। इस कारण पृथ्वी में बहुत से स्थानों पर दरारें पड़ जाती हैं और कहीं-कहीं यह ऊपर या नीचे उठ या दब जाती है।

मार्च सन् १९६० में कोलम्बिया विश्वविद्यालय के दो भूगर्भ शास्त्रियों(डा० ईविंग तथा डा० हीजेन) ने पृथ्वी में एक बहुत बड़ी दरार होने की घोषणा की है। यह दरार (घाटी) महासागरीय जल के नीचे पाई गई है और लगातार ७२००० कि० मी० लम्बी-प्रशान्त, हिन्द, उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव सागरों और अन्ध महासागर तक चली गई है। पृथ्वी के दोषों में यह दोष बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस घाटी की गहराई दो से तीन मील तक है और चौड़ाई तल में १ से ५ मील तक तथा ऊपर ४ से २० मील तक है। इस घाटी की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह भूकम्पीय पेटियों के समानान्तर है और जहाँ भी भूकम्पीय पेटियाँ शाखाओं में बँट जाती हैं यह घाटी भी अपनी शाखायें उन्हीं के समानान्तर भेजती है। इस घाटी के ही समानान्तर पृथ्वी के सर्वज्ञात तथा सर्वशक्तिशाली भूचाल आते हैं। इस घाटी के ऊपर अभी अधिक अनुसंधान नहीं हो सका है किन्तु इससे यह अवश्य ही स्पष्ट हो गया है कि इससे भूकम्पों और उनके कारणों के विषय में अत्यन्त उपयुक्त और आवश्यक सामग्री प्राप्त हो सकेगी। सागरों के ऊपर भूपृष्ठ के और भी पतले होने के कारण इस घाटी से हमें भूअन्तर की रचना के विषय में भी महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हो सकेगी, ऐसी आशा है।

पृथ्वी की भूकम्पीय पेटियाँ:—यदि हम पृथ्वी के सभी भूकम्पीय स्थानों पर दृष्टि डालें तो हमें पता लगेगा कि वह सुविधा से तीन प्रमुख भागों में बाँटे जा सकते हैं।

पूर्वी प्रशान्त पेटी:—मानचित्र से पता चलेगा कि यह पेटी कमचटका प्रायद्वीप के उत्तर से आरम्भ होती है और सखालीन, जापान, कोरिया, पूर्वी चीन, फारमोसा, फिलीपीन द्वीपसमूह, पूर्वी द्वीप समूह होती हुई उत्त ी-पूर्वी आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड तक चली गई है।

पश्चिमी प्रशान्त पेटी:—यह पेटी उत्तरी अमरीका के अलास्का से होर्न अन्तरीप तक राकी और एण्डीज पर्वत श्रृंखलाओं के साथ-साथ कनाडा, संयुक्त राज्य, मेक्सिको, मध्य अमरीका, कोलम्बिया, ईक्वेडोर, पेरू तथा चिली में होती हुई चली गई है।

मध्यवर्ती पेटीः—यह पेटी भूखण्ड के लगभग मध्य से होकर पूर्व-पश्चिम दिशा में फैली हुई है। पूर्वी द्वीप समूह से होकर उत्तर भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, मध्यपूर्व, दक्षिणी पश्चिमी
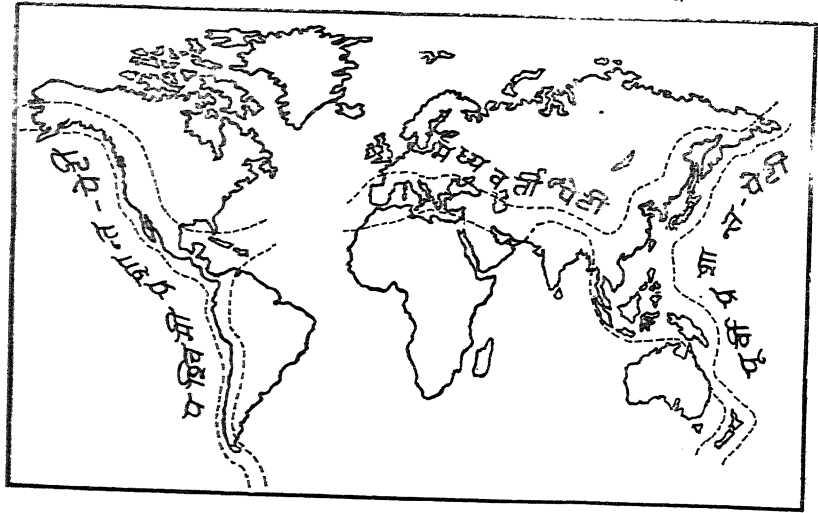
दुनियाँ की भूकम्प पेटियाँ

रूस, यूनान, इटली स्पेन, पुर्तगाल, उत्तरी अफ्रीका, भूमध्य सागरीय द्वीपों में होती हुई पश्चिमी द्वीप समूह तक चली गई है।

भूकम्प की तीव्रता के अनुसार हम भारत को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं।

भारत की भूकम्प पेटियाँ

महत्तम तीव्रता क्षेत्रः—जैसा कि पिछले मानचित्र में दिखलाया गया है इस भाग में गुजरात राज्य का कुछ भाग, पश्चिमी राजस्थान का बहुत थोड़ा भाग, पश्चिमी पंजाब, काश्मीर, उत्तर प्रदेश का सिवालिक भाग, तथा बिहार और बंगाल प्रान्त आते हैं।

मध्यमान तीव्रता क्षेत्रः—इस क्षेत्र में लगभग सम्पूर्ण गुजरात राज्य कुछ महाराष्ट, आधा राजस्थान, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, लगभग सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश, बिहार तथा कुछ भाग उड़ीसा का सम्मिलित है।

न्यूनतम तीव्रता क्षेत्रः—मध्यमान तीव्रता क्षेत्र के दक्षिण में स्थित भारत के अन्य सभी भाग इसी क्षेत्र में आते हैं।

भूकम्प से हानियाँ—यदि भूकम्प से होने वाली हानियों पर विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जावेगा कि इनसे कुछ ही क्षणों में अपार जन-धन की हानि हो सकती है। सन् १९०८ के मेसीना (सिसली) के भूकम्प से १,००,००० लोग काल कवलित हो गये थे। सन् १९२० के चीन के भूकम्प से १,८०,००० लोगों की मृत्यु हुई थी। इसी वर्ष मार्च तथा मई में आये हुये **अगादीर** और चिली के भूकम्पों से दोनों स्थानों में दस-दस हजार लोगों की मृत्युयें हुईं तथा अनेक नगरों का अस्तित्व ही मिट गया। नगर जिनके कि निर्माण में करोड़ों रुपये लगते हैं भूकम्प से कुछ क्षणों में ही मिट्टी के ढ़ेर हो जाते हैं। इससे ही इन भूकम्पों के विकट रूप का पता लगाया जा सकता है।

भूकम्प के ही कारण प्रशान्त महासागर में स्थित **काकाटोआ** द्वीप सदैव के लिये सागर के गर्भ में चला गया। भूकम्प आने से पृथ्वी फट जाती है, सड़कें खंडित हो जाने से, पर्वत पेड़ आदि गिर जाने से यातायात में कठिनाई होती है। रेल की लाइनें उखड़ जाती हैं, टेढ़ी हो जाती हैं, ऊपर या नीचे उठ जाती हैं। नदियों के पुल टूट जाते हैं तथा कभी-कभी नदी की धारा का मार्ग भी बदल जाता है। कहीं सागर का तल ऊपर उठ आता है जिससे कि जलपोत टकरा कर टूट जाते हैं।

सागर तलों में भूकम्प आने से ज्वार की बड़ी-बड़ी लहरें उठतीं हैं जो कि दूर-दूर तक स्थित प्रदेशों में बाढ ले आती हैं। इन हलरों से जलपोत उलट जाते हैं। हाल ही के चिली के भूकम्प के कारण १० से ३० फीट तक ऊंची ज्वार की लहरें उठी थीं और उन्होंने जापान के हुकैडो-क्यूशू से लगाकर न्यूजीलैण्ड तक के प्रदेश को प्रभावित किया और हानि पहुँचाई। भूकम्प से बहुधा आग भी लग जाती है। सन् १९२३ के जापान के भूकम्प से आग लग जाने के कारण १५ लाख डालर की सम्पत्ति की हानि हुई थी।

भूकम्प से लाभ—भूकम्पों से कभी-कभी लाभ भी हो जाते हैं किन्तु हानियों की तुलना में ये नगय हैं। इनसे पृथ्वी के कुछ भाग ऊपर उठ आते हैं जैसे भारत का कच्छ क्षेत्र। भूतल के नीचे धँस जाने से झीलें बन जाती हैं। कभी-कभी नदी के मार्ग का भाग ऊपर उठ जाने के कारण उस पर एक प्राकृतिक बाँध बन जाता है। ज्वालामुखी के फूटने से कभी कभी लावा भूमि पर फैल जाता है और भूमि को अत्यन्त उर्वर बना देता है। भारत का दक्षिणी पठार जिसमें कपास होती है इसी लावा से निर्मित है। लावा के साथ अनेक खनिज पदार्थ भी पृथ्वी पर आ जाते हैं। भूकम्प से जो लहरें उत्पन्न होती हैं उनसे हमें भूअन्तर के विषय में महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है।

धारतौरी

रामेश बेदी

संस्कृत के नाम [१]

संस्कृत में प्रायः सभी नाम इसके विभिन्न अंगों का स्वरूप ज्ञान कराते हैं। कड़वी तथा स्वादुफला दोनों प्रकार की धारतौरी के संस्कृत नामों में पुराने लेखकों ने स्पष्ट अन्तर नहीं दिखाया। दोनों प्रकार के लिए जो नाम एक समान प्रयुक्त हुए हैं उन सबका अर्थ हम यहाँ दे रहे हैं।

मृदंगफल, मृदंगफलिका, मृदंगफलका, मृदंगफलिनी, मृदंगक (मृदंग के आकार जैसे लम्बे फलों वाली बेल), राजिमत्फला (रेखादार फल वाली), स्वादुफला (स्वादिष्ट फल वाली), श्वेतघोषा (सफेद फल वाली तोरी), कृतवेध, कृतवेधनी, कृतवेधसा (पककर सूखने पर फल के ऊपर के सिरे से बृन्त सहित एक टोपी उतर जाती है), कोशातकी, कोशवती (खोलों वाली), सुकोशा (सुन्दर कोशों वाली), घोषा, घोषक (कोषा का विकृत रूप), घोषक (सूखे फलों में बीज बजते हैं, घोष करते हैं), घण्टाली (छोटी घंटिकों की तरह जैसे बीज बजते हैं), जालिनी, जाली (पकी तोरी के अन्दर तन्तुओं का जाल बन जाता है), कृमिच्छिद्रा, कृतच्छिद्रा, शताच्छिद्रा (सूखे फलों के खोल ऐसे लगते हैं जैसे कीड़ों ने सैकड़ों छेद बना रखे हों), पुष्पा (सुन्दर फूलों वाली), पीतपुष्पा (पीले फूलों वाली), ज्योत्स्ना (फीके पीले फूल जैसे सफेदी लिए हुए हों), ककेशच्छदा (खुरदरे पत्तों वाली), कर्ककोटी, घोटाकी।

विविध भाषाओं तथा स्थानों में नाम

चीनी— सिंग-ववा।

जावा— कचूर, ओपांग।

मलय— किटोल, पिटोल सन्दिगं (रक्षक पटोल), पिटोल सगी (कोनों वाला पटोल), पिटोल ट्रतन (जंगली पटोल):

सुण्डानीज— एमीस, किम्पूत।

सुमात्रा— तिम्पूत।

स्याम— मेप लीम।

---

१ कोशातकी स्वादुफला सुपुष्पा कर्कोटकी स्यादपि पीतपुष्पा।
धाराफला दीर्घफला सुकोशा धामार्गवः स्यान्नवसंज्ञकोऽयम्॥
रा० नि०, मूलकादि ७, २८८।
श्वेयघोषा कृमिच्छिद्रा घण्टाली कृतवेधना।
मृदंगकः कोशवती मृदंगफलिका तथा॥ के. दे. नि. औ. व. ५२६।

लैटिन— लूफा एक्यूटैंगुला (Luffa acutangula (Linn.) Roxb.)

घारतोरी का प्राप्ति स्थान

यह सारे संसार में बोई जा रही है। रुम्फ ने इसे जो बंगाल का पटोल लिखा हैं उससे पता चलता है कि मोलक्कास में यह भारत से गया है। घियातोरी की अपेक्षा यह कम बोई जाती है। मलय में घारतोरी असाधारण नहीं है। भारत और मलय द्वीपसमूहों में देशीय विश्वास की जाती हैं।

औद्भिदीय वर्णन

फूल हल्के पीले रंग के, पुंकेसर (स्टेम्स) तीन। अण्डाशय (ओवरी) दृढ़ पशुंका युक्त, फल छह से बारह इंच लम्बा, दस तेज कोणों वाला। बीज आधा इंच लम्बे, १/४ से १/३ इंच चौड़े, काले, सपक्ष नहीं।

रासायनिक संघटन

	जल सहित पदार्थ	जल रहित पदार्थ
जल	९४.९०	... ...
प्रोभ्रजिन (प्रोटीन)	०.६८	१३.३९
वसा	०.२४	४.७०
प्रांगोदीय (कार्बोहाइड्रेट)	१.०३	३९.८४
उच्छिष्ट तन्तु (क्रूड फाइबर)	०.७२	१४.०३
राख	०.४३	८.४३
अनिर्धारित	१.००	१९.६१

एक भारतीय आहारशास्त्री के अनुसार घारतोरी की भोजन सम्बन्धी उपयोगिता यह है—

प्रोभ्रजिन (प्रोटीन)	.३१ माशा	प्रति छटांक
वसा	.०७ ,,	,,
प्रांगोदीय (कार्बोहाइड्रट)	२.१५ ,,	,,
ऊष्मा की कुल इकाइयाँ	१०.५	,,
चूना	.१६८ रत्ती	,,
लौह	.००७६ ,,	,,
खाद्योज ए	३५ अन्तर्राष्ट्रीय इकाइयां प्रति छटाँक	
खाद्योज बी-१	१४ ,,	,,

पूर्णतया सुखाये हुए फल में दक्षु निस्सार (ईथर एक्सट्रैक्ट) २·९८ प्रतिशतक, श्वित्याम (एलब्युमिनोयड्स) ०·८७ प्रतिशतक, घुलनशील प्रांगोदीय (कार्बोहाइड्रेट) ७३·४७ प्रतिशतक, काष्ठीय तन्तु १६·५६ प्रतिशतक और राख ६.१२ प्रतिशतक होती है। श्वित्यामों के इस परिणाम में भूयाति (नाइट्रोजन) ०·१४ प्रतिशतक होती है। राख के परिमाण में ०·१७ प्रति शतक रेत सम्मिलित है।

बीज रहित सूखे फलों में एक कड़वा तत्व होता है जो ऐन्द्रावारुणि (कोलोसिन्थीन) से मिलता है। दूसरे श्लिषवत (जिलेटिनम) अनाकार (Amorphous) कड़वे तत्व को झिंगाकिन (लूफीन) नाम दिया गया है।

बीजों में एक स्थिर तेल, एक स्वफेनि मधुमेय (सैपोनीन ग्लकोसाइड) और एक विकर (एन्ज़ाइम) होता है। सुपव (एल्कोहल) के साथ निस्सारित करने से स्वफेनि मधुमेय बीजों का दो प्रतिशतक निकला। यह अनाकार चूर्ण है। इसका द्रवांक १९०-१९५° है।

बीजों में विलेयकों द्वारा लगभग पचास प्रतिशत तेल प्राप्त किया जा सकता है। इस तरह आहृत तेल हलका हरा होता है। परन्तु दबाव से निपीड़ा हुआ पीला सा होता है। यदि शुद्ध प्राप्त किया जा सके तो यह खाने के काम आ सकता है। गिरी के कड़वे और रेचक गुण खली में चले जाते हैं। खली कड़वी है और विषैली प्रतिक्रिया दिखाती है।

तेल की प्रजलांशन मात्रा (सैपोनिफिकेशन वैल्यू) १९७ है।

गुण

मीठी घारतौरी[१]— स्निग्ध, मधुर, भोजनों में रुचि बढ़ाने वाली, बल तथा वीर्य प्रदान करने वाली, कफ और पित्त के रोगों को नष्ट करने वाली है। वायु को जरा सा बढ़ाती है। रोगों में पथ्य रूप में देने के लिए यह अच्छी है।

तेल[२]— तोरी के बीजों का तेल कटु, विपाक में भी कटु, तीक्ष्ण, लघु उष्णवीर्य, सारक है। वायु, कफ, कृमि, कुष्ठ, प्रमेह और शिरो रोग को दूर करता है।

---

१. घाराकोशातकी स्निग्धा मधुरा कफपित्तनुत्।
ईषद्वातकरी पथ्या रुचिकृद्बलवीर्यदा॥

रा. नि., मूलकादि. ७, २८९।

२. ......कृतवेधन... तैलानि तीक्ष्णानि लघ्न्यूष्णवीर्याणि
कटूनि कटुविपाकानि सराण्य निलकफ कृमिकुष्ठ प्रमेह शिरोरोगापहराणि च।

सु., सू. ४५।

विषालुता

स्वफेनि मधुमुमेय विष है। मेढकों के लिए न्यूनतम घातक मात्रा शारीरिक भार के के प्रति सहस्र धान्य (किलोग्राम) के पीछे ०.२ यव (ग्रेन) है। सिरान्तः चेपण से मधुमेय ने कुत्तों के हृदय की गति को मन्द कर दिया था और रक्त दबाव को ज़रा सा बढ़ा दिया था, परन्तु अंगुल्क (डिजिटैलिस) के सदृश कोई कार्य नहीं किया।

बीजों का सुपव—निस्सार (एल्कोहलिक एक्स्ट्रक्ट) कुत्तों की आँतों की छुब्ध करता है, ऊँची मात्राओं से मौत हो जाती है।

उपयोग

पत्तों का रस कपड़ों को हरा रंगने के लिए काम में लाया जा सकता है।

चिकित्सा में उपयोग

चरक ने घारतोरी के भेषजीय उपयोगों पर एक छोटा सा अध्याय कल्प स्थान में लिखा है। संस्कृत में उसका प्रसिद्ध नाम कृतवेधन है इसलिये चरक ने इस अध्याय का नाम कृतवेधन कल्प रखा है।

अकिल (१९३३) के अनुसार केलण्टान में घारतोरी का रस घृतकुमारी के साथ प्रसव के बाद दिया जाता है। प्रतीत होता है कि यह अपरेचक (aperient) और मूत्रल का काम करता है।

जावा में घारतोरी के पत्तों का काढ़ा रुद्धार्तव (एमनोरिहया) में दिया जाता है।

इण्डोनेशिया में खुजली पर घारतोरी के पत्तों की लुगदी बाँधते हैं।

कम्बोडिया में पत्ते दाद पर लगाते हैं।

वाग्भट्ट ने कुछ द्रव्यों के साथ मिलाकर इसे सर्पविष में वरता है। परन्तु म्हस्कर और कायस ने फलों का अन्तःप्रयोग और पत्तों का स्थानीय प्रयोग सर्पदंश के विष लक्षणों को दूर करने के लिए निष्फल पाया है।

कुत्तों में बीज लाल स्राव को बढ़ाते हैं, उलटियाँ और दस्त लाते हैं।

———

१. आकाश में नीले शिशु

रूस के अकादमीशियन विक्तार अम्बर्तसुम्यान ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि आकाश में हाल में जो अति लघु नीले तारापुंज देखे गये हैं, वे वस्तुतः नये, विकास की बिलकुल प्रारम्भिक अवस्था वाले तारामंडल हैं। यह सिद्धान्त हाल के वर्षों में प्रतिपादित किये गये सबसे कुतूहलजनक सिद्धान्तों में से है।

अकादमीशियन अम्बर्तसुम्यान आर्मीनीया की बुर्याकान वेधशाला के प्रधान हैं। इस वेधशाला के ज्योतिर्वैज्ञानिक कुछ समय से पृथ्वी से करोड़ों प्रकाश वर्ष दूर अवस्थित तारापुंजों में कुछ ऐसी चीजों का होना देख रहे हैं जिन्हें अनित्य घटनाएँ कहते हैं।

उन्होंने बताया है कि वर्तुल तारा गुच्छों का प्रेक्षण करते हुए हमने एक विरल प्रकार का गुच्छ देखा जिसमें ब्रह्माण्डीय पदार्थ की एक धारी है। यह केन्द्र से निकलती हुई चली गई है। कहीं-कहीं इन धारियों के सिरे पर पदार्थ के एक या दो नन्हें गोले से भी थे। और अधिक अध्ययन करने के बाद ज्ञात हुआ कि ये अति लघु तारापुंज हैं जो बड़े वर्तुल तारामण्डलों के बीच केन्द्रों से निकले हैं। सबसे मार्के की बात यह है कि अन्य लाखों ज्ञात तारापुंजों के विपरीत जो प्रायः लाल, पीले या पारभासक पीताभ होते हैं, हमारे इन लघु पुंजों से गहरी नीली रोशनी निकलती है।

"दस वर्ष से कुछ अधिक पूर्व जब हम लोग तारा-संघों के बारे में अनुसन्धान कार्य कर रहे थे, उस समय हमें पता चला था कि नीला प्रकाश प्रारम्भिक प्रकार के तारों से निकलता है। निष्कर्ष यह निकलता है कि हमने जिन नीले तारा पुंजों का पता लगाया हैं उनमें मुख्यतः प्रारम्भिक प्रकार के तारे हैं। मेरे विचार से इस सबसे यह विश्वास करने का पूरा आधार प्रस्तुत होता है कि ये विरल प्रकार के नीले अति लघु तारापुंज शिशु तारामण्डल हैं जो विराट-काय वर्तुल तारागुच्छों के बीजकेन्द्रों से कढ़े पदार्थ से अभी-अभी बने हैं।"

प्रसंगवश बता दें कि ज्योतिर्वैज्ञानिकों की भाषा में अभी-अभी का अर्थ कई करोड़ वर्ष होता है।

अम्बर्तसुम्यान ने यह भी बताया है कि उनकी वैधशाला ने बाद में नीले अति लघु तारापुंजों का पता लगाया जो विराटकाय वर्तुल तारामण्डलों के निकट अवस्थित थे, पर उनसे धारियों द्वारा सन्नद्ध न थे। उन्होंने बताया कि इसका कारण शायद यह हो सकता है कि समय बीतने के साथ धारियाँ छिटक जाती हैं।

"अपने नीले तारा पुंजों की चर्चा करते हुए हम प्रख्यात मैक्सिकन ज्योतिर्वैज्ञानिक आरा द्वारा कुछ वर्ष पहले खोजे और नीले कहे जाने वाले एक और नये प्रकार के तारामण्डल से इनके अन्तर पर जोर देना चाहते हैं। बात यह है कि आरा के तारापुंजों का प्रकाश मूलतः नीला ज्ञात होता है। अतः उन्हें प्रारम्भिक प्रकार के मण्डल नहीं मान सकते। साथ ही उनमें से अतिबैंगनी उत्सर्जन होता है जो मानो इस बात का द्योतक है कि उनमें तारा बनने की एक सक्रिय प्रक्रिया चालू है गोकि यह स्वयं पुंज के काफी विकसित हो चुके होने की अवस्था में हो रही है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, इन धारियों में विरलित गैस है। यह भी सम्भव है कि उनमें किन्हीं अन्य रूपों में तारा पूर्व पदार्थ हो, उदाहरणार्थ घने लिपटे पारमाणविक नाभिक्रों से बनी अति घनी वस्तु हो।

२. ज्वालामुखी भी उपयोगी होते हैं

कंक्रीट प्रदान करते हैं

ज्वालामुखी से उत्पन्न एक नये प्रकार के गृह निर्माण पदार्थ—परलितो कंक्रीट का सोवियत संघ में पहली बार उपयोग किया गया है। पूर्वी साइबेरिया के इर्कुत्स्क नगर के निकट इसी कंक्रीट से एक अलमुनियम कारखाना बनाया गया है। यह कंक्रीट ज्वालामुखीय शीशे से तैयार किया गया जिसे परलाइट शीशा कहा जाता है। इस शीशे को जब गरम किया जाता है तो यह फूल कर पहले के आयतन से १० गुना अधिक हो जाता है। सोवियत विशेषज्ञों ने प्रमाणित कर दिया है कि कंक्रीट की इमारतों में जुड़ाई के लिए परलाइट का कारगर उपयोग हो सकता है। यह पदार्थ इर्कुत्स्क प्रदेश के भंडारों से प्राप्त किया जाता है। अनुमान लगाया गया है कि १० लाख से भी अधिक घन गज में यह पदार्थ भरा हुआ है।

साधारणतः कंक्रीट से बने मकानों की दीवारें जितनी मोटी होती हैं, इस नये पदार्थ से बनी दीवारों की मोटाई को उससे आधा ही रखने की आवश्यकता होती है। इसका भार भी कंक्रीट की दीवारों से एक-चौथाई से कुछ अधिक होता है।

लोहा

पूर्वी साइबेरिया में ब्रात्स्क के निकट सोवियत संघ की एक सबसे बड़ी लौह खान एक बुझे ज्वालामुखी के विवर में बन रही है। लौह मापक भूतल पर प्रारम्भ होकर कम से कम २००० फीट अन्दर तक चला जाता है। अतः सतह के पास खुदाई की प्रणाली द्वारा उसे बाहर निकालना सम्भव है। इस खान को बिजली उस ब्रात्स्क जल-विद्युत स्टेशन प्राप्त होगी जो अंगारा नदी के तट पर निर्माण की अन्तिम मंजिल में है।

विद्युत और ताप

कामचतका ज्वालामुखी के विपुल ताप का उपयोग बिजली तैयार करने और उस इलाके के घरों को गरम करने के लिए उपयोग होने वाला है। इन विद्युत स्टेशनों में से प्रथम का निर्माण आरम्भ भी हो गया है। यह एक ऐसे ऊर्जा-स्रोत का उपयोग करेगा जिसे पहले आमतौर पर केवल विपत्ति का वाहन समझा जाता था। ज्वालामुखी के ढलानों पर गरम झरनों के अध्ययन से यह पता चलता है कि उस स्थान पर भूमिगत प्राकृतिक "ब्यायलर" हैं जो असीमित मात्रा में अति तप्त वाष्प प्रदान कर सकते हैं। एक-तिहाई मील लम्बी गहरी सूराखें बनाकर इस वाष्प को ताप-परिवर्तक नली में लाया जा सकता है ताकि विद्युत् स्टेशनों के टर्बाइनों के लिए स्वच्छ वाष्प निरन्तर मिलती रहे। टर्बाइनों से गुजरने के बाद यह वाष्प जिला-व्यापी ताप व्यस्था के काम आ सकेगी।

द्वीप का निर्माण

कुछ दिन पहले कैस्पियन सागर में एक नया द्वीप प्रकट हुआ जो ज्वालामुखी से उत्पन्न हुआ था। इसके आगमन की घोषणा गर्जन-तर्जन और ऊँची-ऊँची लपटों के साथ हुई। दस मिनट तक उस स्थान पर लपटें उठती रहीं। दूसरे दिन सुबह समुद्र के गर्भ से यह द्वीप बाहर निकल आया। इसका रंग रूप जोते हुए खेत के समान था। इसके मध्य भाग में छोटा सा ज्वालामुखीय विवर था जो पाँच फीट लम्बा-चौड़ा रहा होगा। उसमें से धुँआ निकल रहा था। अपने आगमन के दिन यह द्वीप एक सपाट पठार-सा दिखाई देता था। यह लगभग २२० गज लम्बा और १७५ गज चौड़ा रहा होगा। उस समय वह कीचड़मय दिखाई देता था, किन्तु शीघ्र ही लहरों ने उसे धो दिया।

३. समुद्र गर्भ में विद्यमान अनूठी दुनिया का अध्ययन

समुद्रों के बारे में और अधिक नई जानकारी प्राप्त करने के लिए संसार के वैज्ञानिकों की अधिकाधिक उत्सुकता के फलस्वरूप अमेरिका की 'यू० एस० कोस्ट एण्ड जियोडिटिक सर्वे' नामक सरकारी एजेन्सी और उसके विशेष प्रकार के यन्त्रों और उपकरणों से सुसज्जित अनुसन्धानात्मक जलयानों का कार्य क्षेत्र और अधिक विस्तृत हो गया है। 'यू० एस० कोस्ट एण्ड जियोडिटिक सर्वे' नामक उक्त सरकारी एजेन्सी की स्थापना १८७० में अमेरिका के तात्कालीन प्रेसिडेण्ट श्री टामस जेफर्सन ने अमेरिका के समुद्री तट तथा तट से निकट जहाजरानी के लिए खतरनाक समुद्री-क्षेत्र की जाँच-पड़ताल करने के उद्देश्य से की थी।

एजेन्सी का मुख्य कार्य

स्थापना के बाद से इस एजेन्सी का मुख्य कार्य समुद्री तटों का सूक्ष्मता से निरीक्षण करने, ज्वार-भाटे के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करने, जहाजों का मार्ग दर्शन करने वालों के उपयोगार्थ समुद्री क्षेत्रों के विस्तृत अधिकृत चार्ट तैयार करने, भूकम्पों का पता लगाने और उनके कारणों का विश्लेषण करने तक ही सीमित था। ये कार्य स्वयं इतने अधिक जटिल थे कि एजेन्सी बहुत समय तक

समस्त ध्यान इनसे सम्बन्धित आवश्यक सूचना और जानकारी प्राप्त करने पर ही केन्द्रित रखती रही। लेकिन अब इन कार्यों के अतिरिक्त यह एजेन्सी समुद्रों के बारे में नई और महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए भी सतत रूप से प्रयत्नशील है।

अपने नियमित कार्यों और उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए एजेन्सी के पास समुद्री निरीक्षण और अनुसन्धान-कार्य के लिए विशेष रूप से निर्मित और यन्त्र-सज्जित १५ जहाजों का एक बेड़ा है। अमेरिका-के तटों के पास अपने नियमित कार्यों में संलग्न रहते हुए ये जहाज पर्याप्त उल्लेखनीय जानकारी भी एकत्र करते हैं। अब 'एजेन्सी' अपने कुछ जलयानों को लम्बी अनुसन्धानात्मक समुद्री यात्राओं पर भी भेजने लगी है, ताकि वे आवश्यक जानकारी प्राप्त करने में संसार के अन्य देशों के वैज्ञानिकों की भी सहायता कर सकें।

अनुसन्धानात्मक यात्रा

ऐसी ही एक अनुसन्धानात्मक यात्रा की व्यवस्था अप्रैल, १९६०, में की गई। इस यात्रा पर जाने वाले अमेरिकी जलयान का नाम था 'एक्सप्लोरर'। यह अनुसन्धनात्मक जलयान सियेटल (वाशिंगटन राज्य, उत्तर-पश्चिमी अमेरिका) से रवाना होकर पनामा नहर पहुँचा और इस नहर को पार करके करेबियन सागर की यात्रा करता हुआ अमेरिका के पूर्वी तट पर स्थित नौरफाक बन्दरगाह (वर्जिनिया राज्य) में प्रविष्ट हुआ।

अपनी इसी अनुसन्धानात्मक यात्रा में 'एक्सप्लोरर' जलयान ने चट्टानों, समुद्र में उगने वाले पौधों और वनस्पतियों के अनेक नमूने एकत्र किए और इसके साथ-साथ चुम्बकीय प्रभाव, समुद्रगर्भ में बहने वाली जल-धाराओं, ज्वार-भाटा और मौसम के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी एकत्र की। इस यात्रा में एकत्र की गई समस्त जानकारी का विश्लेषण करने में वैज्ञानिकों को कई महीने लग जाएगें।

समुद्रों के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी

समुद्रों के बारे में वैज्ञानिक अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए इतने अधिक उत्सुक और प्रयत्नशील क्यों हैं, इसका पता अकेले इसी तथ्य से भली प्रकार चल जाता है कि कुल पृथ्वी के ७१ प्रतिशत भाग पर समुद्रों का राज्य है। पृथ्वी के इतने अधिक भाग पर जल का विस्तार होने पर भी वैज्ञानिकों को समुद्रों के बारे में चन्द्रमा से भी कम जानकारी है।

समुद्रीय-विज्ञान के क्षेत्र में जिन विषयों का अध्ययन सम्मिलित है, वे इस प्रकार हैं:

१. समुद्री भौतिक विज्ञान—समुद्र-गर्भ में प्रवाहित होने वाली धाराओं, ताप, घनता तथा समुद्रों के भौतिक स्वरूप को प्रभावित करने वाली अन्य सभी बातें;
२. समुद्री जीव—विज्ञान समुद्र-गर्भ में विद्यमान प्राणिजीवन और वनस्पतियों का अध्ययन;

३. समुद्री रासायनिक-विज्ञान—समुद्र में पाये जाने वाले रासायनिक तत्वों का अध्ययन;

४. समुद्र-गर्भीय रचना—समुद्र तल की बनावट इत्यादि;

५. समुद्री मौसम-विज्ञान—समुद्र और पृथ्वी के वायुमण्डल में होने वाले परिवर्तन का एक दूसरे पर प्रभाव।

समुद्रगर्भ में बहने वाली धाराएँ

वैज्ञानिकों का कथन है कि समुद्र गर्भ में प्रवाहित होने वाली विभिन्न जलधाराओं के बारे में अभी और जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता है और अमेरिकी कोस्ट एण्ड जियोडेटिक सर्वे यह सूचना और जानकारी प्राप्त करने में उनकी महत्वपूर्ण सहायता कर रही है।

यह विदित है कि समुद्र गर्भ में कुछ धाराओं का आविर्भाव इसलिए होता है कि समुद्र की ऊपरी तह का पानी, जब वह उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव क्षेत्रों में प्रविष्ट होता है, ठंडा हो कर नीचे बैठना प्रारम्भ कर देता है। नीचे की ओर जाने वाला यह ठंडा जल कई परतों में विषुवतीय क्षेत्र की ओर प्रवाहित होता है और वहाँ से पुनः ध्रुव-क्षेत्रों को लौटता है। लेकिन यह जानकारी अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है कि ठंडा होकर विषुवतीय क्षेत्र की ओर जाने से और वहाँ से पुनः ध्रुवीय-क्षेत्र में वापस लौटने की यात्रा विशाल धारा कितने समय में पूरी करती है। कुछ वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इस यात्रा के सम्पूर्ण होने में १०० वर्ष लगते हैं, परन्तु कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि १० हजार वर्षों से कम में यह यात्रा पूरी नहीं हो सकती। अभी तक यह कहना कठिन है कि इनमें से कौन-सा मत ठीक है।

अनुसन्धान की आवश्यकता

'स्क्रिप्स इन्स्टीच्यूट आफ ओशिनोग्राफी' के निर्देशक डा० रोजर आर० रेवेली के अनुसार दो कारणों से इस प्रकार की जानकारी प्राप्त करना अब परमावश्यक प्रतीत होता है। पहला कारण यह है कि बहुत सम्भव है कि पृथ्वी के मौसम परिवर्तनों पर समुद्र-गर्भ में बहने वाली धाराओं का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता हो। यदि इस प्रकार की जानकारी प्राप्त हो जाती है, तो मौसमों के सम्बन्ध में अधिक सही भविष्यवाणी करना सम्भव हो सकता है। दूसरा यह है कि समुद्रों से संसार को प्रचुर परिमाण में खाद्य-सामग्री-मछलियाँ इत्यादि-प्राप्त होती है। यदि वैज्ञानिकों को यह पता चल जाये कि समुद्र का जल कितनी बार ऊपर-नीचे होता है, तो इस से वैज्ञानिकगण इस बात का अधिक सही अनुमान लगा सकते हैं कि समुद्रों से संसार को कितनी खाद्य-सामग्री प्राप्त हो सकती है।

समुद्र गर्भ में विद्यमान प्राणि जीवन और वनस्पतियाँ

समुद्रगर्भ में विचरण करने वाले प्राणियों और वहाँ विद्यमान नाना प्रकार की वनस्पतियों के बारे में भी अभी वैज्ञानिकों को बहुत जानकारी प्राप्त करनी है। समुद्र-गर्भ में अरबों ऐसे

अति सूक्ष्म और नाना प्रकार के जीव और वनस्पतियाँ तैरती रहती हैं, जिन पर समुद्रों के अन्दर विद्यमान प्राणि जीवन का अस्तित्व निर्भर करता है। जीवन के इन नाना प्रकार के रूपों के बारे में ऐसे बहुत से तथ्य हैं, जिनकी जानकारी वैज्ञानिकों को नहीं है। इसके अतिरिक्त, समुद्र-गर्भ में विद्यमान वनस्पति और प्राणि जीवन के अध्ययन से यह भी पता चलाया जा सकता है कि क्या समुद्रों से मछलियों के अतिरिक्त और भी किसी प्रकार की खाद्य-सामग्री प्राप्त हो सकती है। अनेक वर्षों से प्रकृति-विज्ञान के विशेषज्ञ इस दिशा में अनुसन्धान कर रहे हैं। उनका विश्वास है कि समुद्रों से प्राप्त होने वाली अन्य प्रकार की खाद्य-सामग्री संसार में खाद्य-पदार्थों की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने मे बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है।

समुद्र तल का अध्ययन

समुद्र तल का अध्ययन करने और उसका सही मानचित्र तैयार करने के सम्बन्ध में भी अभी बहुत कार्य करना शेष है। अभी तक समुद्र-शास्त्रियों को समुद्र तल के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी नहीं है। इस अध्ययन का मूल उद्देश्य समुद्र तल की भूमि की रचना और बनावट तथा चट्टानों का अध्ययन करना एवं वहाँ विद्यमान समुद्रगर्भीय पर्वत-श्रंखलाओं का मानचित्र तैयार करना है। यह तो संसार के अधिकांश निवासियों को ज्ञात ही है कि इस असीम ठण्डी और काली जल-राशि की अतल गहराइयों में समुद्र तल पर एक ऐसी शानदार और विचित्र दुनियाँ बसी है, जिसकी मनुष्य कभी कल्पना नहीं कर सकता।

विचित्र और अनूठी दुनियाँ

समुद्र-गर्भ में नाना प्रकार के दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। कहीं विशालकाय और गगन-चुम्बी पर्वत-शिखर-इन में एक एवरेस्ट पर्वत से भी अधिक ऊँचा है, कहीं ऐसे विशालकाय अत्यधिक गहरे गह्वर-इन में से एक गहवर इतना बड़ा और गहरा है कि जिसमें ग्रैंड कैनयन जैसे सात गह्वर समा सकते हैं और जो १२०० मील लम्बा है, कहीं विशाल चौरस मैदान, कहीं समतल पठार, और गुम्बद, कहीं विशाल नंगी पहाड़ियाँ और कहीं रोमांच और भय उत्पन्न करने वाले गर्त दृष्टिगोचर होते हैं। कहीं-कहीं पर समुद्र तल ७ से ८ मील तक गहरा है।

समुद्र-तल के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना इसलिए भी आवश्यक है कि अनेक स्थानों पर खनिज पदार्थ जैसे लोहा, तांबा, मैंगनीज इत्यादि प्रचुर परिमाण में एकत्र हैं। यदि इन खनिजों को किसी प्रकार कम खर्च पर निकालना सम्भव हो जाए, तो व्यापारिक दृष्टि से इन की उपयोगिता बहुत बढ़ जाएगी। इसके अतिरिक्त, इनका अध्ययन कर यह जानकारी भी प्राप्त की जा सकेगी कि ये खनिज वहाँ किस प्रकार तैयार होते हैं। इन जानकारी की प्राप्ति से समुद्र सम्बन्धी रसायन-विज्ञान के बारे में वैज्ञानिकों की जानकारी में वृद्धि हो सकेगी।

---

१. आग के सहारे कृषि की निराई

खेतों में पांतियों के बीच-बीच में निराई करने पर भी कुछ घास-मोथे बच जाते हैं। आग के सहारे निराई करने से यह लाभ होता है कि सभी घास-मोथे नष्ट हो जाते हैं। इसके लिए वे ही कल्टीवेटर इस्तेमाल किये जाते हैं लेकिन उनमें गैस बर्नर के स्थान में ब्लेड लगे रहते हैं। आग समस्त घास-मोथों और दूसरे हानिकारक कीड़े-मकोड़ों को नष्ट कर देती है। आग से पौधों को बचाने के लिए विशेष प्रकार की ढालों का प्रयोग किया जाता है। वोल्गा-तट स्थित सारातोव नगर के शोध-संस्थान में गैस बर्नर युक्त कल्टीवेटर का निर्माण किया गया है। निकट भविष्य में इस प्रकार के कल्टीवेटरों का बड़े पैमाने पर उत्पादन आरम्भ होने वाला है।

२. दीर्घायु कैसे हों?

खारकोव में प्रोफेसर व्लादीमीर निकितिन की प्रयोगशाला में आप चार साल के चूहे देख सकते हैं जो उतने ही चुस्त हैं जैसे तीन महीने के नन्हें चूहे। चूहे आमतौर से दो साल जीते हैं। प्रो० व्लादीमीर पिछले पाँच साल से इस समस्या के समाधान में लगे हैं कि दीर्घायु कैसे हुआ जाय।

इन चूहों की लम्बी आयु का रहस्य यह है कि १०० दिनों तक खाना खिलाने की एक तालिका बनाई गई जिसमें से ९५ दिन तक उन्हें ऐसा भोजन दिया गया जो स्वादिष्ट तो था, परन्तु भोजन से प्रतिदिन जितनी कैलोरी शक्ति शरीर में पहुँचनी चाहिए उससे कम रहती है। बाकी पाँच दिन उन्हें खूब भोजन दिया जाता है जिसमें औसत से अधिक कैलोरी रहती है।

इस प्रकार भोजन देने का जो परिणाम हुआ है, वह प्रो० व्लादीमीर के इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है कि शरीर के तन्तुओं की टूट-फूट की अतिरिक्त-पूर्ति होनी चाहिए। ९५ दिनों तक कम पौष्टिकता वाला भोजन पाते समय शरीर अपने मृत तन्तुओं से छुटकारा पा जाता है और अतिरिक्त भोजन काल में उनकी जगह नये कोष बन जाते हैं।

यद्यपि इन परिणामों को मानव शरीर पर सीधे लागू नहीं किया जा सकता, फिर भी प्रो० निकितिन का कहना है कि इस तरीके से भोजन देकर तथा रासायनिक उपचार करके मानव शरीर को भी ऐसा बनाया जा सकता है कि वह जीर्ण तन्तुओं को निकाल बाहर करे और नये

तन्तुओं की रचना कर ले। उनकी सलाह है कि महीने में एक दिन उपवास रखा जाय और उस दिन केवल फल खाये जायें। ऐसा करने से और कुछ ऐसी दवाओं के सेवन से जो शारीरिक क्रिया में गतिशीलता लायें, वही फल मिल सकता है जो चूहों को ९५ दिन तक कम भोजन देने से प्राप्त होता है। परन्तु इस पर वह विशेष जोर देते हैं कि मृत कोषों को बाहर करने और नये कोषों के निर्माण के लिए पेशियों की क्रियाशीलता आवश्यक है।

३. आलुओं को ताजा कैसे रखा जाय ?

सावधानी से नियन्त्रित अवस्थों में आलुओं पर तेज सक्रिय किरणों का प्रभाव डालने से उनका स्वाद तीन साल तक बना रहता है। न वे सड़ते हैं और न उनमें अखुए आते हैं और वे तीन साल के बाद खाने में वैसे ही लगते हैं जैसे तीन साल पहले थे। वर्षों से मास्को के जैव रसायन संस्थान में इस सम्बन्ध में अनुसन्धान हो रहे हैं और अब यह घोषणा कर दी गयी है कि यह प्रक्रिया हानि रहित है तथा इसे बड़े पैमाने पर काम में लाया जा सकता है। इस साल मास्को के एक कारखाने में २५००० टन आलुओं को इस प्रकार तेजसक्रिय किरणों से प्रभावित किया जायगा। सारा काम मशीनें करेंगी।

आलू विशेष प्रकार के डिब्बों में भरे रहेंगे और विकिरण स्रोत के सामने से तीन बार ये डिब्बे गुजारे जाएँगे ताकि सब आलुओं पर समान रूप से प्रभाव पड़े। यह सुझाव दिया गया है कि परमाणु उद्योग के व्यर्थ पदार्थ का उपयोग विकिरण स्रोत के लिए किया जाय। आगे चल कर यह प्रक्रिया और भी बड़े पैमाने पर, होगी और इस तरह से पुराने आलू अतीत की चीज हो जाएंगे।

संस्थान की जैव रसायन रोग निरोधक शक्ति प्रयोगशाला के प्रधान प्रो० रुबिन का विचार है कि यह प्रक्रिया दूसरी सब्जियों और फलों के भाण्डारों को सुरक्षित रखने के लिए भी बड़ी प्रभावशाली सिद्ध होगी।

४. जलने के उपचार के लिए बर्फ का पानी सर्वश्रेष्ठ

जलने में प्राथमिक सहायता सम्बन्धी उपचार के लिए बर्फ का पानी सर्वश्रेष्ठ है। यह जलन की पीड़ा को कम कर देता है, माध्यमिक जलन प्रक्रिया को उलट देता है और अधिक शीघ्रता के साथ घाव के भर जाने में सहायक होता है।

यह सूचना लोस एंजेल्स के डा० एलेक्स जी० शुल्मैन ने "जर्नल आफ अमेरिकन मेडिकल एसोसियेशन" के नवीनतम अंक में प्रकाशित अपने लेख में दी है। उन्होंने गत ५ वर्षों में बर्फ के पानी की उपचार-विधि का प्रयोग १५० रोगियों पर किया। उनका कहना है कि इस उपचार के दौरान प्रत्येक रोगी को तत्काल सन्तोषजनक लाभ प्राप्त हुआ। उनका सुझाव है कि किसी भी ऐसे जलने में, जिससे शरीर के २० प्रतिशत तक अंग प्रभावित हों, इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

५. टाइपराइटर के लिए प्लास्टिक का नया फीता

न्यूयार्क की 'इंटर्नेशसनल विजिनेस मशीन्स' नामक कम्पनी ने टाइपराइटर के लिए एक नए प्रकार के प्लास्टिक का फीता (रिबन) विकसित किया है, जो परम्परागत सूती फीते की अपेक्षा अनेक दृष्टियों से श्रेष्ठतर है। फर्म का कहना है कि बहुत अधिक फैला देने पर भी फीते की छाप बिल्कुल सही होती है और टाइप के अक्षर बहुत साफ-साफ उभर आते हैं। कम्पनी के एक अधिकारी ने कहा कि यह फीता देश भर में विक्री के लिए उपलब्ध है। इस के उपयोग से टाइप करने की शैलियों के विषय में अत्यधिक योग प्राप्त होने की सम्भावना है।

नया फीता मजबूत और लचीला है और इसमें ऐसी सिकुड़न नहीं होने पाती जैसी परम्परागत फीते में अँग्रेजी के 'ई' और 'ओ' अक्षरों के कारण उत्पन्न हो जाती है।

६. आलू मौसम का हाल बतायेंगे

वैज्ञानिकों ने आलू से एक नया काम लेने का तरीका खोज निकाला है। अब वे मौसम का हाल बताया करेंगे। रूस के प्राणिशास्त्री एलवर्ट एम्मे ने हाल ही में जो 'प्रारम्भिक निष्कर्ष' निकाले हैं, उनसे पता चलता है कि घर के एक साधारण आलू को इस बात की हमसे अधिक जानकारी होती है कि कल का दिन कैसा रहेगा।

अभी हाल तक यह समझा जाता था कि पौधे के जीवन पर केवल प्रकाश, ताप और आर्द्रता जैसी बाह्य परिस्थितियों का ही प्रभाव पड़ता है। लेकिन इम्मे ने एक अनोखे प्रयोग का विवरण दिया है। एक आलू को एक बर्तन में बन्द कर के नीचे ले जाया गया। वहाँ उसे एक विशेष यंत्र पर रख दिया गया। इस यन्त्र ने आलू की साँस का रिकार्ड लिया।

इस प्रयोग से यह मालूम हुआ कि आलू के साँस लेने की प्रक्रिया में एक विचित्रता है। साँस की इस प्रक्रिया पर वायुचाप, धरती के आयन-विकिरण और अन्तरिक्ष किरणों के चढ़ाव-उतार का बहुत प्रभाव पड़ता है। यह देखा गया कि आलू पर वायुचापों का विशेषतया बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यह मौसम का हाल बताने में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तत्व होता है।

वैज्ञानिकों ने पता लगाया कि आलू की स्वाँस-क्रिया से न केवल हाल के बीते दिनों के वायुचापों का, बल्कि एक या दो दिन आगे के वायुचापों का हाल भी बताया जा सकता है। यह ऐसी बात है जिसे साधारण बैरोमीटर भी नहीं कर पाता।

७. चित्रमय टेलीफोन

पोलीटेक्नीकल म्यूजियम में शीघ्र ही सर्व-साधारण के लिए एक ऐसे टेलीफोन का उद्घाटन होगा जिसके पर्दे पर आप बातचीत करने वाले का चेहरा देख सकेंगे। रूस में इसका आविष्कार इस शताब्दी के चौथे दशक में ही एक सोवियत इंजीनियर आई० जखारोव ने किया था। उस समय ही इसे स्वीकार कर लिया गया था और यह सोचा गया था कि मास्को-लेनिनग्राद के बीच

इस चित्रमय टेलीफोन के द्वारा सम्पर्क स्थापित किया जायगा। लेकिन हाल ही में यह काम सम्पन्न हो पाया, क्योंकि उस समय इन दोनों शहरों के बीच रिले लाइनें नहीं थीं। इस सम्बन्ध में इस समय भी प्रयोग हो रहे हैं और इंजीनियरों का कहना है कि रंगीन चित्रमय टेलीफोन की व्यवस्था भी सम्भव है।

८. सब्जियों का गोश्त

अन्तरिक्ष में विचरण करने वालों को अपने साथ एक अत्यन्त पौष्टिक हरा चूर्ण प्रचुर मात्रा में ले जाने में बहुत प्रसन्नता होगी। यह चूर्ण शैवाल से बनाया जाता है। यह चूर्ण शीघ्र ही अन्तरिक्ष में जाने वालों के लिए भोजन का एक महत्त्वपूर्ण तत्व बन जायगा। इस चूर्ण को अर्द्ध-व्यापारी आधार पर तैयार करने वाले एक कारखाने की रूप-रेखा भी तैयार हो गयी है। इस चूर्ण में नीबू से भी अधिक विटामिन और फ्रांसीसी लगेबिया से भी अधिक प्रोटीन होता है।

शैवाल अपने आप ही जैव पदार्थों का निर्माण कर लेता है। हाँ, उसके लिए केवल पानी की आवश्यकता होती है जिसमें खनिज उर्वरक के रूप में प्रयोग होने वाला नमक थोड़ी मात्रा में मिला होता है। इससे बहुत अधिक मात्रा में तेल तत्व प्राप्त किया जा सकता है और इसका ८० प्रतिशत भाग तेल तत्व में बदल सकता है। यही कारण है कि लोग इसे अक्सर "सब्जी का गोश्त" कहा करते हैं। अन्तरिक्ष के उड़ाकों के लिए इसका दूसरा महत्त्व इस बात में है कि शैवाल एक ओर तो आक्सीजन तैयार करता है और दूसरी ओर कार्बन डाईआक्साइड का शोषण कर लेता है।

९. एक जीवन्त सेल से विद्युत्–प्राप्ति

कीव के वैज्ञानिक प्लातोन कोस्त्युक बिजली के एक बहुत पतले तार का प्रयोग करके एक जीवन्त सेल से अत्यन्त अल्प मात्रा में विद्युत्-धारा प्राप्त करने में सफल हुए हैं। यह तार इतन पतला होता है कि एक इंच के हजारवें भाग में इस तरह के १२५ तार एक साथ आ सकते हैं।

इस तरह का नया पतला तार (मायक्रो.एलेक्ट्रोड) सेल के अन्दर प्रविष्ट हो सकता है। इससे सेल के स्वभाविक कार्य में कोई विघ्न नहीं पड़ता। तार के द्वारा प्राप्त विद्युत्-धारा को एक दोलन-लेखी पर रिकार्ड किया जा सकता है और उससे फिल्म तैयार कर ली जाती है। प्लातोन कोस्त्युक कहते हैं कि हमारे प्रयोग सेल की विद्युतीय सक्रियता पर आधारित हैं।

जीवन्त ऊतकों में किसी भी प्रकार की प्रदीपन प्रक्रिया का प्रभाव विद्युतीय शक्यताओं पर पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि सेलों की सक्रियता प्रणाली का अध्ययन चिकित्सा विज्ञान के लिए सहायक होगा। प्लातोन कोस्त्युक इस समय 'मायक्रो-एलेक्ट्रोनिक विधि' के सम्बन्ध में एक मोनोग्राफ तैयार कर रहे हैं जो ही शीघ्र प्रतकाशि होगा।

१०. मजदूरों और मकानों के बिना ही फैक्टरियां चलेंगी

सोवियत संघ के स्वयंचालन विशेषज्ञ प्रोफेसर एलेक्जाण्डर लेर्नेर ने ऐसी फैक्टरियों के निर्माण की रूपरेखा तैयार की है जो मनुष्य द्वारा चलाये बिना अपने आप चलती रहेंगी और जिनकी मशीनों को खड़ा करने के लिए मकानों की आवश्यकता नहीं होगी। बिना मकानों के फैक्टरी चलाने के विचार को विद्युत्-उद्योग में अभी ही कार्यान्वित किया जा रहा है। इस शाखा में भवनहीन सब-स्टेशन और ईंधन-चालित विद्युत् स्टेशन सफलता से काम कर रहे हैं।

प्रोफेसर लेर्नेर का कहना है कि रसायन, तेल-शोधन, धातु-शोधन और कुछ अन्य उद्योगों में मकानों के बिना काम चलाने की सम्भावना सबसे अधिक है। इन उद्योगों में सम-प्रवाहित उत्पादन प्रक्रिया लागू की जा रही है। अत्यन्त उत्पादनशील, स्वचालित और सम-प्रवाहित औद्योगिक संस्थान खुले आसमान में, जमीन के नीचे या पानी के अन्दर खड़े किये जायेंगे। ये संस्थान दीर्घकाल तक बिना देखभाल के अपना काम करते रहेंगे। सायबरनेटिक मशीनें इनकी सभी प्रक्रियाओं में तालमेल बनाये रखेंगी, विद्युत् और माल की पूर्ति का और विभिन्न कार्यों में प्राथमिकता का नियमन करेंगी।

११. रेलगाड़ी अपने आप रुक जाया करेगी

लेनिनग्राद के भूमिगत रेलवे में एक नया यंत्र लगाया जाने वाला है। यह यंत्र स्वचालित रूप से अपना काम करता है। इस यंत्र में प्रकाश चालित एक दूसरा सूचक कल लगा हुआ है जो आने वाली गाड़ी की गति की गणना करके यह फैसला कर लेगा कि किस जगह से गाड़ी पर ब्रेक लगाया जाय जिससे कि वह सही स्थान पर आकर सुगमता से रुक जाय।

तथ्यता की दृष्टि से यह स्वचालित यंत्र अत्यन्त अनुभवी मनुष्य चालक से कम से कम पाँच गुना अधिक अच्छा प्रमाणित हुआ है। बिना प्लेटफार्म के बनने वाले लेनिनग्राद के नये ट्यूब स्टेशनों के लिए यह लाभदायक होगी।

ऐसे स्टेशनों में मुसाफिर ऐसे हाल में एकत्र रहेंगे जिनका दरवाजा गाड़ी आने पर लाइन के किनारे में एकदम खुल जाया करेगा। गाड़ी इस तरह आकर खड़ी होगी जिससे कि उसके दरवाजे ठीक हाल के दरवाजों के सामने आ जायें। इस प्रकार मुसाफिर हाल से निकल कर सीधे गाड़ी के डिब्बों में प्रवेश किया करेंगे।

१. व्याधिमूल विज्ञान पूर्वार्द्ध)—लेखक स्वामी हरिशरणानन्द जी वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, खारी बावली, दिल्ली-६। पृष्ठ संख्या ४०२, मूल्य १२)।

स्वामी जी आयुर्वेद विज्ञान को आधुनिकतम वैज्ञानिक उपलब्धियों से लाभ उठाने के लिये सदैव प्रेरित करते रहे हैं। परिणाम यह हुआ है कि उन्होंने भौतिक, रसायन तथा जैव रसायन जैसे विषयों का गहन अध्ययन किया है। वे उनकी नूतनतम शोधों से परिचित हैं। इन सबका उपयोग उन्होंने ग्रंथों के प्रणयन में किया है। "विश्व विज्ञान" उनकी एक ऐसी रचना है जिसमें विज्ञान के सुविस्तृत क्षेत्र में से आवश्यक एंव महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा प्रस्तुत की गई है। अब स्वामी जी ने अपने जैवरसायन ज्ञान का उपयोग व्याधिमूल विज्ञान (पूर्वार्द्ध) के लेखन में किया है। सचमुच ही व्याधियों के उचित निदान के लिये शरीर के अन्दर होने वाली जैव रासायनिक प्रक्रियाओं की जानकारी वांछनीय है। वैद्यक शास्त्र में ऐसी प्रक्रियाओं का अध्ययन न करके औषधियों के द्वारा व्याधिओं के उन्मूलन का लक्ष्य बनाया जाता है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र और वैद्यक में मूलतः यही भेद है जिसके कारण प्रथम को प्रधानता प्राप्त है।

स्वामी जी ने व्याधिमूल विज्ञान नामक इस ग्रंथ में व्याधियों के मूल कारणों को समझाने का प्रयास किया है। इसमें कुल आठ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में कतिपय परिभाषाएँ दी गई हैं। दूसरे अध्याय में कज्जलोदेतों का दहन, तीसरे में स्नेह क्षय-पूर्ति विधान, चतुर्थ में अस्त्रजन क्षयपूर्ति, पंचम में खनिज क्षयपूर्ति व क्षाराम्ल सन्तुलन, षष्ठम अध्याय में रक्त का शरीर पोषण व क्षय-पूर्ति से सम्बन्ध, सप्तम में खाद्योजांश (विटामिन) तथा अष्ठम अध्याय में प्रणाली विहीन ग्रंथियों का वर्णन है। प्रत्येक अध्याय के पश्चात् छात्रोपयोगी प्रश्न दिये गये हैं। पुस्तक में प्रयुक्त साहित्य के निर्देश के साथ ही पारिभाषिक शब्दावली भी दे दी गई है। सभी प्रकार से विषय को सुगम एवं सुबोध बनाने का प्रयत्न किया गया है।

पुस्तक में प्रयुक्त शब्दावली के अंग्रेजी समानवाची शब्द इस ध्येय से दिये गये प्रतीत होते हैं कि अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र हिन्दी में लिखित साहित्य के प्रति आकृष्ट हो हिन्दी में लिखने तथा जो कुछ हिन्दी में लिखा जा रहा है उसकी पर्यालोचना करने में समर्थ हों। परन्तु एक बात जो सबों को प्रथम दृष्टि पर खटकेगी, वह है पुस्तक में व्यवहृत अनेक पारिभाषिक शब्द एवं यौगिकों के सूत्र। स्वामी जी ने उन तमाम शब्दों

के स्वीकृत रूपों को इस पुस्तक में स्थान नहीं दिया, जो भारत सरकार के द्वारा निर्मित शब्दावलियों में पाये जाते हैं। आज के स्कूल, कालिजों के विद्यार्थी प्रायः इन्हीं शब्दावलियों से परिचित हैं अतः स्वाभाविक है कि वे प्रस्तुत कृति के अनेक शब्दों को स्वीकार करने के लिये उद्यत न हों। यही बात कार्बनिक यौगिकों के लम्बे-चौड़े सूत्रों के अंकन के सम्बन्ध में है। अभी तक कोई ऐसी पाठ्य पुस्तक नहीं है जिसमें कार्बन, हाइड्रोजन आक्सीजन के संकेतों को हिन्दी में रूपान्तरित करके सूत्रों में प्रयुक्त किया गया हो।

इस दिशा में सचमुच ही, स्वामी जी के द्वारा किया गया प्रयोग सर्वप्रथम तो नहीं कहा जा सकता परन्तु साहसिक अवश्य है। स्वामी जी ने इसके पूर्व भी तत्वों के संकेतों के हिन्दी रूपान्तरण को 'विश्व विज्ञान' में स्थान दिया है। डा० रामचरण मेहरोत्रा ने अपनी पुस्तक भौतिक रसायन की रूपरेखा में ऐसे ही रूपान्तरों का प्रयोग कई वर्ष पूर्व किया था। इसमें सन्देह नहीं कि रसायन शास्त्र की पुस्तकों के लेखन में सबसे बड़ी कठिनाई सूत्रों के लेखन की है। हर्ष का विषय है कि नागरी प्रचारिणी काशी. से प्रकाशित होने वाले विश्वकोष में हिन्दी सूत्रों को स्थान दिया जा रहा है जो स्वामी जी के द्वारा प्रयुक्त संकेतों से अधिक तर्कसम्मत एवं मान्य होंगे। हमारा सुझाव है कि स्वामी जी अगले संस्करण में इस दिशा में आवश्यक संशोधन कर देंगे तो पुस्तक अत्यन्त लाभदायक हो जावेगी।

पुस्तक के लेखन में लेखक ने अंग्रेजी में उपलब्ध जैव रसायन की अनेक पुस्तकों का उपयोग किया है। प्रायः उन्हीं में प्राप्त क्रम के अनुसार शर्करा, वसा, प्रोटीन, खनिज, विटामिन तथा हार्मोन का वर्णन किया गया है। शर्कराओं के नामों को इस प्रकार से मरोड कर रखा गया है कि किन्हीं-किन्हीं स्थलों पर लेखक के आशय को समझना कठिन हो जाता है। प्रोटीन के लिये **अस्त्रजन** तथा एमिनो अम्ल के लिये **पवनाम्ल** अत्यन्त विलक्षण समानार्थी शब्द हैं।

२. **निर्माण-विज्ञान के सिद्धान्त**—लेखक भ० नं० थधाणी, आर० के० शेठ एंड कं०, गोविन्द विल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बई—२। पृष्ठ संख्या ५४३, मूल्य १५)।

हिन्दी में इंजीनियरी शास्त्र पर बहुत कम पुस्तकें उपलब्ध हैं जिसके मूल में तत्सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली का अभाव कहा जा सकता है। परन्तु एक बात और है। अभी तक किसी भी लेखक ने मौलिक रूप से इस दिशा में मनन भी नहीं किया था। अपनी भाषा में सोचना और उसी में लिखना सम्भवतः, सबसे कठिन और सबसे सरल भी होता है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने प्रायः ऐसा ही किया है। उसने अपने अध्यापन, मनन तथा शब्दावली बोर्ड में सदस्य होने के नाते इन सभी सुयोगों को एक रूप देने का सफल प्रयास किया है। अहिन्दी प्रान्त से सम्बन्धित होने के कारण लेखक का प्रयास और भी श्लाघनीय है।

"निर्माण विज्ञान के सिद्धान्त" का अंग्रेजी समानवाची Theory of Structures है। यह वह विज्ञान है जिसमें निर्माणों के विविधि प्रकारों एवं अंगों के अध्ययन में गणितीय

सूत्रों का प्रयोग किया जाता है। इंजीनियरी में निर्माण पर कितना बल दिया जाता है, यह सर्व विदित है। अतः आवश्यक है कि ऐसे शास्त्र को अपनी भाषा के माध्यम से पढ़ाने के लिए प्रामाणिक साहित्य उपलब्ध हो।

पुस्तक १७ अध्यायों में विभक्त है। अन्त में अनेक परिशिष्टियों में हिन्दी-अँग्रेजी पारिभाषिक शब्दावली है। इस शब्दावली के एक शब्द पर विचार करना आवश्यक है और वह है **ताप** जिसका अँग्रेजी समानार्थी temperature दिया हुआ है (पृ० ५३२ (त)) परन्तु आश्चर्य की बात है कि पुस्तक के भीतर पृ० ३३-३४ में **ताप** के स्थान पर सर्वत्र **तापमान** प्रयुक्त हुआ है। स्वीकृत शब्दावली में ताप शब्द ही ठीक है अतः पुस्तक में **तापमान** के स्थान पर **ताप** शब्द होना चाहिए। अगले संस्करण में इसका निराकरण अत्यन्त आवश्यक है।

इसी शब्दावली में दिये गये कुछ और शब्दों की ओर संकेत आवश्यक है: पृष्ठ ५३५ पर **अचर राशि** Variable तथा **चर** को Constant लिखा गया है जो सर्वथा विपरीत है। यदि पुस्तक भर में इनके प्रयोग इसी प्रकार से हुए होंगे तो पुस्तक में मूलभूत त्रुटि होगी। unit के लिए इकाई तथा एकांक दोनों समानार्थी प्रयुक्त मिलते हैं। Empirical के लिए **आनुभाविक** शब्द प्रयुक्त हुआ है जिसके लिए पहले से **काल्पनिक** स्वीकृत है। Beam के लिए **धरन** शब्द उपयुक्त नहीं जान पड़ता।

पुस्तक में दिये गये रेखा-चित्र अत्यन्त स्वच्छ तथा स्पष्ट हैं परन्तु उसमें अंग्रेजी अक्षरों का ही समावेश किया गया है। यदि नागरी अक्षरों का प्रयोग किया जाता तो लेखक को समान सफलता मिली होती। यही बात नागरी अंकों का प्रयोग न करके लेखक ने पुस्तक भर में अँग्रेजी अंकों को स्थान देकर की है। सम्भवतः भूल से ही पृ० १०४व१०५ पर पुस्तक में कई स्थानों पर नागरी अंकों के प्रयोग हुए हैं। अनेक उदाहरणों के द्वारा विषय को सुबोध बनाने का प्रयास हुआ है जो अत्यन्त उपयोगी है।

यद्यपि पुस्तक की छपाई श्रेष्ठ है और त्रुटियाँ नहीं है परन्तु एकाध त्रुटियों का रह जाना कोई बड़ी बात नहीं। पारिभाषिक शब्दावली में अनेक ऐसी अशुद्धियाँ–अँग्रेजी तथा हिन्दी दोनों में–हैं। सम्भवतः दृष्टिभ्रम के कारण **प** के अंतर्गत **मानक** तथा **मानक दशा** जो **म से** आरम्भ होते हैं रह गये हैं क्योंकि **म** के अंतर्गत ये पाये जाते हैं।

पुस्तक छात्रोपयोगी है। इसकी वाह्य सज्जा अत्यन्त आकर्षक है। अगले संस्करण तक जो भी अशुद्धियाँ रह गई हैं उनको ठीक करने का प्रयत्न हुआ तो पुस्तक समादरित होगी, सन्देह नहीं।

४. **बिनौला उद्योग:** कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इन्डस्ट्रियल रिसर्च नई दिल्ली, पृ० संख्या १०३, मूल्य ६)।

बिनौले का प्रयोग पशुओं के खिलाने तथा तेल निकालने के लिए होता आया है किन्तु सर्वसाधारण को उसके वैज्ञानिक तथा प्राविधिक तथ्यों की जानकारी से अधिक परिचय नहीं है। कौंसिल आफ साइंटिफिक एन्ड इन्डस्ट्रियल रिसर्च नई दिल्ली ने उक्त अभाव को दूर करने के लिए सुगम हिन्दी में बिनौला उद्योग सम्बन्धी वैज्ञानिक

जानकारी को पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया है। पुस्तक के लेखन में अंग्रेजी में उपलब्ध समस्त सामग्री का उपयोग किया गया है जिसका उल्लेख अन्त में संदर्भसूची के अन्तर्गत कर दिया गया है।

हिन्दी में सम्भवतः यह पहिली पुस्तिका है जो अत्यन्त प्रामाणिक, सारगर्भित तथा जनोपयोगी है। इसमें ११ अध्याय हैं जिनमें क्रमशः बिनौले का परिचय, उसकी किस्मों, रचना, भंडारन, औद्योगिक उपचार, तेल, खल, उपजात, उत्पादन तथा व्यापार और भविष्य की सम्भावनाओं पर विचार किया गया है। स्थान-स्थान पर दी गई सारणियों से पुस्तिका का महत्व बढ़ गया है। यत्र-तत्र आवश्यक चित्र भी दिये गये हैं।

आद्योपान्त पढ़ जाने पर बिनौला उद्योग के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी होने के साथ ही इस उद्योग में हुई उन्नति तथा भविष्य की सम्भावनाओं के प्रति अभिरुचि उत्पन्न होती है। पुस्तक में सरल हिन्दी अपनाये जाने की बात भूमिका में कही गई है। विषय को सुगम बनाने के लिये यह ठीक है परन्तु भाषा सम्बन्धी सरलीकरण से कभी-कभी वैज्ञानिक तथ्य सम्बन्धी गम्भीरता जाती रहती है। पुस्तक में प्रयुक्त गर्मी शब्द से यह भलीभाँति स्पष्ट है क्योंकि जिसे वैज्ञानिक ऊष्मा कहते हैं वह जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त गर्मी से भिन्न है। हिन्दी में 'समझा जाता है' या 'आगे लिखे' न कहकर 'ऐसा अनुमान है' अथवा 'निम्नलिखित' लिखा जाता है। पुस्तिका में ऐसे वाक्यांशों से अंग्रेजी शैली का अविकल अनुवाद जान पड़ता है।

पुस्तिका में यत्र तत्र स्वीकृत शब्दावली का उपयोग नहीं किया गया। उदाहरणार्थ "कांम्पलैक्स" (पृ० १८), "एमीनो एसिड़ो" (पृ० १८), एंजाइम (पृ० १९), "**फौसफोरस**" "मुक्तचिकनी-अम्लता" आदि को संकीर्ण, एमिनो अम्ल, फासफोरस, मुक्त वसा-अम्लता आदि होना चाहिये था। कुछ ऐसे शब्द भी प्रयुक्त हैं जिनके अर्थ स्पष्ट नहीं होते यथा **कमावक भरत** (पृ० ६८) तथा **फफदावक** (पृ० १६)।

उपरोक्त त्रुटियों या अभावों के होते हुये भी पुस्तिका में बिनौले से प्राप्त उपजातों में से भोज्यपदार्थ के रूप में प्रयुक्त होने की सम्भावना का उल्लेख सर्वसाधारण को भी एक बार बिनौले की उपयोगिता पर विचार करने के लिये बाध्य करेगा। वह नई कपासों के उत्पादन एवं बिनौले के गुणों से परिचित होने का प्रयत्नआवश्य करेगा।

जनोपयोगी पुस्तक माला में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है। सम्पादक एवं प्रकाशक समान रूप से बधाई के पात्र हैं।

५ नये भारत की झाँकी : अमरीकी सूचना सेवा, भारत

भारत में कृषि, औद्यौगिक तथा प्राविधिक क्षेत्रों में जो उन्नति हुई हैं उसमें अमेरिका का सहयोग है। उक्त क्षेत्रों में जो उन्नति हुई है उसकी चित्रमय झाँकी प्रस्तुत पुस्तिका में मिलती है। अनेक रंग-बिरंगे चित्रों तथा उनके सूक्ष्म परिचयों से ही भारतीय उन्नति का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। पुस्तिका अत्यन्त उपयोगी प्रतीत होती है।

१. विचारणीय समस्या :

जैसा कि कई बार लिखा जा चुका है, रसायन शास्त्र के साहित्य को हिन्दी में रूपान्तरित करने में जो प्रमुख कठिनाई दीखती है, वह रासायनिक सूत्रों के अंकन के सम्बन्ध में है। बात ऐसी नहीं है कि रासायनिक सूत्रों को हम अंग्रेजी में ही रहने देना चाहते हैं परन्तु प्रश्न यह है कि क्या हमने अभी तक ऐसी पृष्ठभूमि तैयार कर ली है जिसके बल पर हम एक ही छलांग में यह कार्य सफलतापूर्वक कर सकेंगे? निश्चय ही, हम विगत १३ वर्षों के मनन, चिन्तन, तर्क तथा अन्य प्रकारों से ऐसा नहीं कर पाये। उसके मूल में हमारी कुछ ऐसी मनोवृत्तियाँ कार्य कर रही हैं जिन्हें हम कभी अत्यन्त नर्म एवं उदार कहते हैं और इस प्रकार से अंग्रेजी के संकेतों को अन्तर्राष्ट्रीय कह कर सन्तोष करते हैं। दूसरी ओर कुछ कुत्सित मनोवृत्तियाँ भी हैं जिसका हम न तो खुल कर प्राकट्य करते हैं और न किसी को समझने ही देना चाहते हैं। प्रायः अधिकांश वैज्ञानिकों ने अंग्रेजी के माध्यम से उच्च शिक्षा प्राप्त की है। उनमें हिन्दी के प्रति अनुराग होते हुए भी यही भावना है कि अपने जीवन में क्योंकर अपने ज्ञान को हिन्दी में अक्षरशः रूपान्तरित करें क्योंकि ऐसा करने में असुविधा तो होगी ही। ऐसे ही लोग उन समितियों के सदस्य या अधिकारी हैं, जहाँ इस समस्या पर विचार होना है। फलतः इतनी अवधि के पश्चात् भी सूत्रों एवं संकेतों का रूपान्तरण नहीं हो पाया।

इस दिशा में यदि कोई प्रगति या प्रवृत्ति देखी जाती है तो वह एक दूसरे क्षेत्र के लोगों की है जो छात्रों की समस्याओं, पाठ्य पुस्तकों के लेखन अथवा वैज्ञानिक साहित्य के हिन्दी रूपान्तरण के प्रति जागरूक हैं। इस प्रसंग में आज से ३० वर्ष पूर्व लिखी कुछ पुस्तकों में रासायनिक सूत्रों के हिन्दी रूपों का प्रकाशन है। स्वामी हरिशरणानन्द, डा० रामचरण मेहरोत्रा तथा नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित विश्वकोष के सम्पादक द्वारा ऐसे ही प्रयास हुये हैं। परन्तु इन सभी प्रयासों में मतैक्य नहीं। निश्चित है कि बिना मतैक्य के कोई सर्वस्वीकृत समाधान नहीं हो पावेगा। हमारा सुझाव है कि इस दिशा में यदि सरकारी समिति आगे नहीं आती तो विज्ञान परिषद् ही यह काम उठावे।

सूत्रों के सांकेतिक हल निकाले बिना हिन्दी में रसायन शास्त्र के साहित्य का कोई महत्व नहीं। हिन्दी के बीच अंग्रेजी के अंक तथा संकेत हमारी विचार-पराधीनता के द्योतक होंगे।

२. राजर्षि टण्डन को अभिनन्दन ग्रंथ की भेंट :

२३ अक्टूबर को तीर्थराज प्रयाग में ही राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद द्वारा एक अभिनन्दन ग्रंथ प्रदान किया जायगा। यह ग्रंथ उनकी हिन्दी सेवाओं तथा राजनीतिक कार्यों के साथ ही उनकी दीर्घायु के उपलक्ष में स्मृति स्वरूप होगा। हर्ष का विषय है कि राजर्षि पुरुषोत्तम दास जी टण्डन विज्ञान परिषद् के आजीवन सदस्य हैं। उनकी हिन्दी सेवाओं के लिये समस्त राष्ट्र ऋणी है। इस अवसर पर हम परिषद् की ओर से टण्डन जी के स्वास्थ्य लाभ तथा दीर्घायु की कामना करते हैं।

३. पाठकों के लिये सूचना :

पिछले मास यह सूचित किया गया था कि अक्टूबर से 'विज्ञान' के मूल्य में वृद्धि कर दी जावेगी परन्तु कार्य कारिणी समिति ने यह निश्चय किया है कि पाठकों को पूर्व मूल्य पर ही विज्ञान मिले। अतः अब भविष्य में भी विज्ञान का वार्षिक मूल्य चार रुपये ही रखा जायगा। पृष्ठ संख्या में कोई कमी न करके उसे ४० ही रहने दिया जावेगा। ऐसा करने का मुख्य उद्देश्य है 'विज्ञान' के पाठकों के समक्ष वैज्ञानिक विषयों पर अधिकाधिक सामग्री प्रस्तुत करना।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिगराम भार्गव	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगाशंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रामेश वेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकरराव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर	२ रुपया
१०—कलम पैवन्द—श्री शंकरराव जोशी	२ रुपया
११—जिल्दसाजी—श्री सत्य जीवन वर्मा	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद	१ रुपया
१३—वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० न०पै०
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपया
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपया
१९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
२०—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रु० ५० न०पै०
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकरराव जोशी	३ रु० ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनिया—श्री रामेश वेदी	४ रुपया
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्र नाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान शालायें	२ रुपया
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० यये पैसे
२६—रेल इंजन, परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया
२७—भारतीय कृषि का विकास—डा० शिवगोपाल मिश्र	५ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

““
विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जानेताति जीवन्ति विज्ञान प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ९२	२०१७ विक्र० कार्तिक १८८२ शाकाब्द नवम्बर १९६०	संख्या २

हाइपेरान अथवा विचित्र कण

रमेशचन्द्र कपूर

आधुनिक काल में मूलभूत कणों पर भौतिकशास्त्रियों द्वारा अनुसंधान किये गये हैं। इन अनुसंधानों द्वारा अनेक श्रेणी के कणों की सूचनायें प्राप्त हुई हैं। 'हाइपेरान' श्रेणी के कणों की खोज लगभग पिछले दस वर्षों के काल में हुई है। इन कणों को **'विचित्र कण'** भी कहा जाता है।

सन् १९४९ से अभ्र-कोष्ठक प्रयोगों से कुछ ऐसे कण-पथ मिले जो केवल प्रोटान से भारी कणों द्वारा सम्भव थे। इंगलैंड के वैज्ञानिक **राचेस्टर** एवं **बटलर** ने इनका सर्वप्रथम वर्णन किया था। इन्हीं के द्वारा **'के-मेसान'** श्रेणी के कणों की भी खोज हुई थी। पोलैंड के वैज्ञानिक **डैनिज** एवं न्यूविस्की ने अंतरिक्ष किरणों पर प्रकाश पायस (photo emulsion) विधि से सम्यक रीति के प्रयोगों द्वारा ८५,००० फीट की ऊँचाई पर कण-पथों के चित्र अंकित किये थे। इन पथों के विश्लेषण से पोलैंड के वैज्ञानिकों ने हाइपर खण्डों की उपस्थिति का निष्कर्ष निकाला। ये अनुसन्धान सन् १९५३ में किये गये थे।

इसी प्रकार के अन्य कण-पथ कृत्रिम रूप से अनुसंधानशालाओं में उत्पन्न किये गये हैं। इन कणों को हाइपेरान समूह में रखा गया है।

यह कण अत्यंत अल्पायु है (जीवन अवधि लगभग $१०^{-१०}$ सेकंड)। **क्वांटम** यांत्रिकी के वर्तमान सिद्धान्तों के अनुसार इन्हें और भी अधिक अल्पायु होना चाहिये था (जीवन अवधि

लगभग १०$^{-२३}$ सेकेंड) इस कारण इन कणों को **विचित्र कण** की उपाधि दी गई है। अधिकतर इन कणों के भार इलेक्ट्रान के भार से दो सहस्र गुना से अधिक पाये गये हैं।

इस समूह में अब तक सात कणों की खोज हो चुकी है। इन कणों को तीन उपसमूहों में विभाजित किया गया है (**लैम्बडा, सिगमा** और **ज़ाई**)। सर्वप्रथम लैम्बडा-शून्य (Λ°) कण की खोज की गई। सन् १९५८ में इस उपसमूह में एक दूसरे कण की उपस्थिति का आभास हुआ। यह कण भी निरावेश है परन्तु प्रथम कण का प्रति-कण ज्ञात होता है। इसे **प्रति-लैम्बडा** कहते हैं और इसकी खोज प्रकाश-पायस प्रयोगों द्वारा की गई। सन् १९५९ में इस प्रति-कण की कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय की विकिरण-प्रयोगशाला में **एल्वेरेज** नामक वैज्ञानिक ने देखा। इनके प्रयोग नवनिर्मित **बुदबुद कोष्ठक** (bubble chamber) में किये गये थे।

बुदबुद कोष्ठक एक नया यंत्र है जो **विल्सन** के **अभ्र कोष्ठक** से कहीं अधिक उपयोगी है। इसमें तरल हाइड्रोजन का प्रयोग किया जाता है। जब इस माध्यम से कोई आवेशयुक्त कण यात्रा करता है तो उसके मार्ग में अत्यंत सूक्ष्म हाइड्रोजन वाष्प के बुलबुले बन जाते हैं। इन बुलबुलों को देखा जा सकता है और इनके चित्र भी लिये जा सकते हैं। इस उपकरण द्वारा सरलता से कणों के संकेत-मार्ग अंकित हो जाते हैं।

लैम्बडा शून्य कण तत्वांतरित हो प्रोटान और **ऋण पाई मेसान** की उत्पत्ति करता है। इसके विपरीत प्रति-लैम्बडा कण तत्वांतरण द्वारा **प्रति प्रोटान** और **धन पाई मेसान** बनाता है।

दूसरा उपसमूह **सिग्मा कणों** (Σ) का है। यह कण धन, निरावेश एवं ऋण तीनों अवस्थाओं में पाये गये हैं। इन कणों के तत्वांतरण द्वारा प्रोटान, न्यूट्रान, पाई मेसान, लैम्बडा कण और गामा विकिरण की उत्पत्ति देखी गई है।

तीसरा उपसमूह **ज़ाई हाइपेरान** (Ξ) का है। इस समूह में दो कणों की अभी तक खोज हो चुकी है। इन्हें **प्रपात हाइपेरान** (cascade hyperon) भी कहते हैं। सर्वप्रथम ज़ाई -ऋण कण की खोज सन् १९५२ में मैनचेस्टर विश्वविद्यालय में की गई थी। तत्पश्चात् सन १९५९ में **ज़ाई शून्य** की खोज कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में प्रसिद्ध वैज्ञानिक **एल्वेरेज़** ने की। इन कणों के क्षय द्वारा पाई मेसान और लैम्बडा कण उत्पन्न होते हैं।

ऐसा अनुमान है कि मेसान कणों की नाभिक पर प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हाइपेरान उत्पन्न होते हैं। इनकी उत्पत्ति अंतरिक्ष प्रतिक्रियाओं द्वारा तथा प्रयोगशालाओं में देखी जा चुकी है। इस प्रकार यह कणों की नाभिक प्रतिक्रिया द्वारा उत्पन्न होते हैं। हम इन्हें विशेष प्रकार के उत्तेजित नाभिक भी कह सकते हैं। सामान्य नाभिक उत्तेजित दशा में फोटान मुक्त करते हैं और हाइपेरान, पाई-मेसान मुक्त करते हैं।

आधुनिक विचार-धारा के अनुसार वैज्ञानिकों का अनुमान है कि हाइपेरान की उत्पत्ति के समय बहुधा **के-मेसान** का भी जन्म होता है। यह निम्न उदाहरण से ज्ञात होगा:—

ऋण पाई मेसान + प्रोटान → ऋण सिग्मा हाइपेरान + के-मेसान

$$\pi^- + p^+ \rightarrow \Sigma \quad + k^+$$
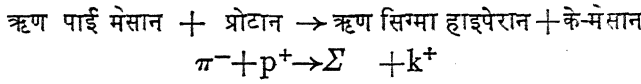
हाइपेरान कणों की भ्रमि (Spin) न्यूट्रान और प्रोटान की भाँति ½ मात्रक होती है। ऐसा विचार है कि प्रत्येक हाइपेरान कण का प्रति-कण होना आवश्यक है। अभी समस्त कणों की खोज नहीं हुई है।

हाइपेरान कणों की कुछ विशेषतायें निम्नांकित हैं। स्थिर इलेक्ट्रान का भार इनके भार का मात्रक माना गया है।

कण का नाम	संकेत	भार	जीवन अवधि (सेकेंड)	क्षय-मार्ग
१. लेम्बडा-शून्य	Λ°	२१८२	३ × १०$^{-१०}$	$p^+ + \pi^-$ और $n + \pi^\circ$
२. प्रति-लैम्बडा	Λ°	—	—	$p^- + \pi^+$
३. ऋण सिग्मा	Σ^-	२३३	१·५ × १०$^{-१०}$	$n + \pi^-$
४. घन सिग्मा	Σ^+	२३४७ २	०·७ × १०$^{-१०}$	$p^+ + \pi^\circ$ और $n + \pi^+$
५. सिग्मा शून्य	Σ°	२३२५	—	$\Lambda^\circ + \gamma$
६. ऋण ज़ाई	Ξ^-	२५८५	२ × १०$^{-१०}$	$\Lambda^\circ + \pi^-$
७. ज़ाई-शून्य	Ξ°	—	१०$^{-१०}$	$\Lambda^\circ + \pi^\circ$

हाइपर खण्ड—जैसा पहले बताया गया है इनकी खोज पोलैंड के दो वैज्ञानिकों **(डेनिज़ एवं न्यूविस्की)** के अनुसंधानों के फलस्वरूप हुई थी। यह मूलभूत कण नहीं है वरन् नवीनतम विचित्र कण है।

ऐसा अनुमान है कि किसी तत्व के सामान्य नाभिक पर लैम्बडा (या अन्य हाइपेरान) कण के संयोग से हाइपर खंड बनते हैं। अभी तक इस रूप के अनेक हाइपर-खंड देखे गये हैं जैसे, हाइड्रोजन-२, ३, ४, हीलियम-४, ५, लीथियम-६, ८, बेरिलियम-७, ८, ९ और कार्बन-११। इन हाइपर खंडों के वास्तविक भार की निकटतम पूर्ण संख्या दी गई है। हाइपर खंड अस्थिर कण है क्योंकि इनमें जुड़े हाइपेरान की बन्धन ऊर्जा (binding energy) न्यूट्रान अथवा प्रोटान की बन्धन ऊर्जा से कम होती है।

हाइपर खंडों का क्षय दो रूपों से हो सकता है। प्रथम मार्ग द्वारा पाई-मेसान और सम्भवतः एक अन्य कण भी मुक्त हो सकता है।

$$He^5 \rightarrow He^4 + p^+ + \pi^-$$
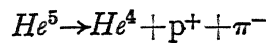
दूसरे मार्ग के अनुसार लैम्बडा कण तथा अन्य स्थिर कण मुक्त होते हैं।

फसल तथा अन्नों के रोग

शालिग्राम शर्मा

फसलों के रोगों का वैज्ञानिक अध्ययन बहुत आगे बढ़ चुका है परन्तु सामान्य कृषक की शब्दावली में उन्हें हम किस रूप में पाते हैं, इसका विवरण प्रस्तुत लेख में है—सम्पादक

मानव जीवन में कृषि का कितना महत्वपूर्ण स्थान है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। कृषि से ही विभिन्न प्रकार के अन्नों का उत्पादन होता है लेकिन कृषि कार्य को सुचारु रूप से सम्पादित करके अच्छी फसल उत्पन्न करना एक टेढ़ी खीर है। इस कार्य में जरा-सी चूक हो जाने पर अनेक प्रकार की मानवीय और दैवी बाधाएँ उत्पन्न होकर इसे असफल बना देती हैं। मानवीय बाधाओं में चोरों और ढोरों का आक्रमण है। इसका निवारण सावधानी के साथ खेत की रखवाली करने से हो जाता है। मानवीय बाधाओं की अपेक्षा दैवी बाधाओं का निवारण अधिक कठिन होता है। दैवी बाधाओं में अतिवृष्टि, अनावृष्टि, पाला, तुषार और अनेक प्रकार के रोगों की गिनती की जा सकती है। साहसी किसान अपने कृषि-अभियान में तत्सम्बन्धी दैवी बाधाओं से भी भरसक लोहा लेता है। उसे इस संघर्ष में पर्याप्त सफलता भी मिलती है। बुद्धिपूर्वक काम लेने से अनेक दैवी बाधाएँ स्वयं सुलझ जाती हैं।

जैसा कि ऊपर बताया गया है कृषि की दैवी बाधाओं में रोगों का मुख्य स्थान है अतः यहाँ फसल के रोगों पर विचार किया जा रहा है। फसल तैयार हो जाने के बाद भी रोगों से पिंड नहीं छूटता। यहाँ तक कि घर में अन्न रख देने पर भी अनेक प्रकार की बीमारियाँ उसे खराब कर देती हैं। परिणाम-स्वरूप घर में रक्खा हुआ अन्न या तो बिलकुल नष्ट हो जाता है या अखाद्य का रूप धारण कर लेता है। इसलिए घर के भीतर अन्न में लगने वाले रोगों पर भी यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है।

सुविधा के लिए कृषि सम्बन्धी रोगों को हम दो भागों में वर्गीकृत कर सकते है:—

[१] फसल के रोग

[२] अन्न के रोग

फसल के रोगों से तात्पर्य उन रोगों से है जो खेत में बीज उगने के पश्चात् खेती कट जाने के योग्य होने तक आक्रमण करते हैं। ये रोग फसल की उपज को आधी, चौथाई या शून्य कर देते हैं। कुछ दूरदर्शी किसान बुआई के पूर्व से ही इनमें से कुछ रोगों के निवारण की भूमिका बाँधते

हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कृषक रोगों के उत्पन्न होते ही उनकी रोक-थाम करने लगते हैं। प्रयत्न करने से फसल की उपज पर रोगों का दुष्प्रभाव कुछ कम पड़ता है।

खेत की खड़ी फसल में निम्नलिखित रोग लगते हैं :—

खैरा—यह धान का रोग है। इस रोग के आक्रमण से धान का पौधा कत्था या खैर की तरह लाल हो जाता है। इससे धान की बालियों में दाने कम पड़ते हैं।

चरको—यह रोग भी धान में ही लगता है। इस रोग का प्रारम्भ प्रायः उस समय होता है जब धान के पौदे में बालियाँ नहीं फूटी रहतीं। इस रोग से ग्रस्त धान की सारी फसल ऐसी मालूम पड़ती है जैसे जानवरों ने उसे चर लिया हो। इससे भी पैदावार मारी जाती है।

माँछी—ये एक तरह की मक्खियाँ होती हैं। ये बहुत बड़ा भुण्ड बाँध कर आतीं और फूटते हुए धान के कच्चे दानों के रस को चूस लेती हैं। जिस वर्ष इनका आक्रमण होता है धान की फसल बिल्कुल बरबाद हो जाती है। इनका प्रकोप ईख पर भी होता है।

टेंड़ी—शुद्ध हिन्दी में इन्हें 'टिड्डी' कहते हैं। ये साधारण बरसाती टिडडिओं से भिन्न होती हैं। ये धान और ईख दोनों पर आक्रमण करती हैं। जिस वर्ष इनका दल इन फसलों पर धावा बोलता है उस वर्ष उपज की बड़ी क्षति होती है। टिडिड़याँ धान और ईख के रस को पी जाती हैं।

पिहिका—यह ईख का रोग है। इस रोग में ईख का डंठल पतला पड़ जाता है। इससे ईख के रस में कमी तो हो ही जाती है, उसके गुड़ में भी विकार उत्पन्न हो जाता है।

कारी—इस रोग से ईख का डंठल काला पड़ जाता है। पौदे का विकास अवरुद्ध हो जाने के कारण रस और गुड़ की उपज कम हो जाती है। खेत में अधिक नमीं होने के कारण यह रोग लगता है।

फनिगा—ये एक तरह के पंखदार कीड़े होते हैं जिन्हें कुछ लोग 'सुग्गा' भी कहते हैं। ये ईख और सनई के पौदों में लगते हैं। इनके लगने से ईख और सनई के पत्ते नष्ट हो जाते हैं और फसल खराब हो जाती है।

लपेटनी—इसके लगने से ईख की पत्तियाँ एक दूसरे से लिपट जाती हैं जिससे डंठल न तो मोटा होता है और न बढ़ता है। पत्तियों में कुछ ऐसा रासायनिक विकार आ जाता है कि उसे पशु भी चाव से नहीं खाते।

उकठा—शुद्ध हिन्दी में इसे 'उखटा' कहते हैं। यह रोग अरहर और ईख के पौदों में विशेष रूप से लगता है। जिस पौदे में यह बीमारी लगती है वह नीचे से ऊपर तक अनायास बिल्कुल सूख जाता है।

बौरहवा—यह रोग मटर की लता में लगता है। इसके लगने से मटर का 'जँगेल' बढ़ता चला जाता है और उसमें फलियाँ बहुत कम लगती हैं। जो किसान मटर के पौदे में बिना फूल आये उसकी सिंचाई कर देते हैं उन्हीं के खेत में इसका आक्रमण होता है। अतः इस रोग से मटर को बचाने का सरल उपाय यह है कि जब उसमें खूब फूल आ जायँ तब उसकी सिंचाई की जाय।

बाँझा—यह रोग अरहर के पौदे में लगता है। इसके लगने से पौदे में कलियाँ नहीं लगतीं। यह अरहर के बन्ध्यापन का रोग है। किसान ऐसे पौदों को काट कर पशुओं को खिला देते हैं। बाँझा रोग से ग्रस्त अरहर के पौदों को 'बकसा' कहते हैं।

गदहिला—यह चने का रोग है। इस रोग के कीड़े चने के पौदे और फलियों के दानों को खा जाते हैं। खेत में अधिक सीलन रहने के कारण इस रोग का प्रकोप होता है। इसीसे यह कहावत भी प्रसिद्ध है:—

'चना में सर्दी अधिक समाई। ताको जान गदहिला खाई॥'

गेरुई—यह रोग गेहूँ के पौदे में लगता हैं। इसके लगने से गेहूँ का पौदा गेरू की तरह लाल हो जाता है। गेहूँ की बालियों के दाने मारे जाते हैं और डंठल निस्तेज सा होकर पतला पड़ जाता है। यह रोग लगातार बदली रहने से होता है। घाघ ने ठीक ही कहा है:—

नीचै सीत, ऊपर बदराई। घाघ कहैं गेरुई अब खाई॥

ढाढ़ा—यह रोग जौ की फसल में लगता है। इसके लगने से जौ की पत्तियाँ झुलस-सी जाती हैं और बालियाँ फूटती ही नहीं। बालियाँ यदि निकलती भी हैं तो उनके दाने सत्व रहित हो जाते हैं।

कंडो—यह जौ और बाजरे की बालियों का रोग है। जिस बाली में यह रोग लगता है उसके बहुत से दाने काले एवं विकृत हो जाते हैं। उन काले दानों को छूने से हाथ की उँगली में एक प्रकार की राख सी लगती है।

बँझइल—यह रोग बाजरे में लगता है। इस रोग से ग्रस्त बाजरे के पौदे में बाली निकल कर एक प्रकार का हाथ भर लम्बा विचित्र गुच्छेदार डंठल निकल आता है। यह भी बाजरे के वंध्यत्व का रोग है।

कीरी—यह ज्वार में लगने वाला रोग है। इस बीमारी के प्रकोप से ज्वार के डंठलों में कीड़े पड़ जाते हैं जिससे न तो उसके तने का पूर्ण विकास होता है और न उसमें बालियाँ ही निकलती हैं। यह रोग अधिक वर्षा से होता है।

जमुनियहँवाँ—यह आलू में लगने वाला रोग है। इससे आलू पकी हुई जामुन की तरह काली पड़ जाती है। यह रोग खेत और घर दोनों जगह लगता है।

लुटुरा—यह रोग आलू, लाल मिर्च और बैंगन के पौदों में लगता है। इसके लगने से इन पौदोंकी पत्तियाँ अनायास मुड़कर सिकुड़ जाती हैं।

सड़ुवा—यह बीमारी खीरे, ककड़ी, करेले तथा कद्दू में लगती है। इससे इन पौदों के फल खेत में स्वतः सड़ने लगते हैं। अरुई में भी यह रोग लग जाता है।

देंवार—हिन्दी में इन्हें 'दीमक' कहते हैं। खेत में अधिक सीलन रहने से इनका आक्रमण होता है। ये अधिकतर ईख के उगते हुए पौदों में लग कर उसे नष्ट कर देते हैं। तीतर से चुगाने पर ये कीड़े कम हो जाते हैं।

झांझा—यह रोग बैंगन और मूली के पत्तों में लगता है। इसके लगने से पत्तों में बड़े-बड़े छेद हो जाते हैं। कंडे की सूखी राख छिड़क देने से इस बीमारी के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

फसल के रोगों की कुछ सामान्य ओषधियाँः—

(क) धुआँ कर देने से खेत के बहुत कीड़े भाग जाते हैं।

(ख) मिट्टी का तेल छिड़कने से भी कीड़े मर जाते हैं किन्तु इससे कुछ पौदों को हानि पहुँचती है।

(ग) सेर भर तम्बाकू दस सेर पानी में चौबीस घंटे तक भिगो रक्खो फिर उसमें पाव सर साबुन मिला दो। तत्पश्चात् पूरे घोल का सात गुना पानी उसमें मिला कर छिड़को। इस छिड़काव से अनेक प्रकार के कीड़े मर जायँगे।

(घ) गोबर का घोल छिड़कने से पौदों को पशु भी नहीं खाते और कुछ जातियों के कीड़ों को खूराक भी नहीं मिलती जिससे वे मर जाते हैं।

अन्नों के रोग

घर में रखने के बाद भी अन्नों में निम्नलिखित रोग लगते हैं:—

घुन या घुना—ये एक प्रकार के बहुत छोटे-छोटे कीड़े होते हैं। ये कीड़े जिस दाने में लगते हैं उसे बिल्कुल बारीक आटे के समान कर देते हैं। ये प्रायः जौ और गेहूँ में अधिक लगते हैं। 'घुन' से अन्न खराब हो जाने को 'घुनना' कहते हैं।

ढोरा या ढोरहा—ये काले रंग के छोटे-छोटे कीड़े होते हैं जो आँखों से साफ-साफ चलते हुए दिखायी पड़ते हैं। इनका काम यह होता है कि ये दानों में छेद करके उनके गूदों को खा जाते हैं। ये उड़द, मूंग और मटर के दानों में अधिकतर लग जाया करते हैं। अन्न के साथ राख मिला कर रखने से ये कम लगते हैं।

पाई या पई—ये कत्थई रंग के पतले, लम्बे और छोटे कीड़े होते हैं। ये कीड़े जौ, गेहूँ और चावल में विशेष रूप से लगते हैं। 'पाई' अन्नों को चाट कर उन्हें सारहीन कर देती हैं।

पाँपा—ये कीड़े छोटे और लाल रंग के होते हैं। ये भी आँखों से स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ते हैं। ये कीड़े छेद करके जौ और गेहूँ के गूँदों को खा जाते हैं।

सुर्रा—ये कीड़े देखने में पतले और सफेद होते हैं। ये घर में रक्खे हुए धान के गूदे को ऐसा खा जाते हैं कि केवल उसका छिलका भर रह जाता है। ये कभी-कभी जौ और गेहूँ में भी लग जाते हैं। इन कीड़ों को कहीं-कहीं 'सुरका' भी कहा जाता है। छोटे सुरकों को कुछ लोग 'सुरकी' कहते हैं।

सूँड़ा—ये कीड़े सफेद, मोटे और छोटे रहते हैं। ये बहुधा ज्वार, बाजरे, धान, अरहर और मटर के दानों में लग कर उनके कुछ भागों को खा जाते हैं। छोटे सूँड़ों को 'सूड़ी' कहा जाता हैं।

भुकुड़ी—इस रोग के कीटाणु आँख से नहीं दिखाई देते किन्तु उन्हीं के प्रभाव से गल्ले में सफेदी और दुर्गन्ध उत्पन्न हो जाती है। 'भुकुड़ी' लगने पर दाने का स्वरूप विकृत हो जाता है और उसके स्वाद में भी कटुता आ जाती है।

पटकहवा—यह रोग घर में रक्खे हुए आलुओं में लगता है। इसके लगने से आलू सड़ने लगती है। उस समय आलू को दबाने से 'पट-पट' की आवाज निकलती है। इसीसे इस रोग को 'पटकहवा' कहते हैं।

अन्नों के रोगों से बचाने के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए:—

[क] अन्न की खूब सफाई करके 'बखार' या 'खत्ती' में रखना चाहिए। 'बखार' ऐसे स्थान पर बनाना चाहिए जहाँ बरसात में ठंडी हवा या सीलन तनिक भी प्रवेश न कर सके।

[ख] 'बखार' में नीचे फर्श पर आम की पत्तियाँ और गल्ले के ऊपर भूसा रखना चाहिए।

[ग] मिट्टी के बने हुए कुठिलों का मुँह 'पिहाना' (कुठिले का ढक्कन) से अच्छी तरह बंद कर देना चाहिए।

[घ] तम्बाकू, मूँग और उड़द को बुवाई वाले बीजों में कंडे की राख मिला कर 'खत्ती' में रखना चाहिए।

[ङ] बीज तथा अन्य गल्लों को भी 'खत्ती' में अँधेरे पखवारे में रखना चाहिए।

[च] सड़ने से बचाने के लिए कमरे की फर्श पर ईख की खोई की राख बिछा देनी चाहिए। आलू ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जहाँ का ताप मनुष्य की देह से कम हो।

अप्राप्य कृतियाँ और उनका परिरक्षण

कुसुमाकर सुकुल

प्राचीन साहित्य किसी भी देश की संस्कृति और उसके उत्कर्षोपकर्ष का द्योतक होता है। किसी काल विशेष के साहित्य से उस समय का सारा इतिहास सहज ही जाना जा सकता है। अतः प्रत्येक राष्ट्र के लिए अपने प्राचीन ग्रन्थों का संकलन और उसकी रक्षा करना अत्यावश्यक हो जाता है। आज से कुछ समय पूर्व हमारे देश के प्राचीन साहित्य और कुछ दुर्लभ ग्रन्थों की बड़ी ही दयनीय दशा थी, जिसका प्रमुख कारण था उनके परीक्षण के बारे में यथोचित ज्ञान का न होना। भारत के स्वतंत्र होने से बाद अपने अतीत इतिहास तथा संस्कृति को शताब्दियों तक अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए दुर्लभ ग्रन्थों की रक्षा करने पर विशेष ध्यान दिया गया और अपनी सरकार पिछले कुछ वर्षों से इस ओर विशेष ध्यान दे रही है। किन्तु अभी भी अप्राप्य पांडुलिपियों, ग्रन्थों और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण कुछ अभिलेखों के परिरक्षण के लिए जितना कार्य करने की आवश्यकता है, उतना कार्य नहीं हो रहा है।

इस प्रकार के ग्रन्थों का एक और महत्त्व यह है कि अनुसंधान और शोध कार्य करने वाले छात्रों को उपयुक्त सामग्री इन्हीं से प्राप्त हो सकती है। यदि इनकी रक्षा न की जाय तो इन पर आधारित विषयों की प्रामाणिकता के बारे में संदेह प्रकट किया जा सकता है। अतः राष्ट्रीय सम्पत्ति के रूप में उसे अक्षुण्ण बनाये रखने के साथ-साथ उसका यह उपयोग शिक्षा की दृष्टि से और भी महत्त्वपूण हो जाता है। यह सुरक्षित सम्पत्ति ही हम अपनो संतानों के लिए के पुस्तों लिए छोड़ जाते हैं जिससे वह अपने देश की संस्कृति, इतिहास और पूर्वजों को जान सकते हैं और उसे कायम रखकर गौरवान्वित हो सकते हैं। यदि इसलिए यह आवश्यक है कि यदि ऐसी पांडुलिपियों की रक्षा हम स्वयं न कर सके तो ऐसी संस्थाओं को अनुदान कर दें, जो उन्हें शताब्दियों तक सुरक्षित रख सकें, तथा उन पर शोध कर सकें। यदि राष्ट्रीय महत्त्व की ऐसी पांडुलिपियाँ को हम व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में किसी संस्था को अनुदान नहीं कर सकते तो कम से कम उनकी माइक्रोफिल्म प्रतियाँ हमें ऐसी संस्था को अवश्य ही दे देनी चाहिए।

अब हमारे सामने दो प्रकार की समस्याएँ हैं। एक तो प्राचीन काल की पांडुलिपियों की रक्षा तथा परिरक्षण, दूसरे अपने वर्तमान प्रलेखों को ऐसा रूप देना, जिससे वह शताब्दियों तक वास्तविक रूप में बने रह सकें। प्रलेखों को ऐसा रूप देने के लिए कि वह वास्तविक रूप में रह सकें, प्रलेख के कागज, स्याही आदि के गुणों पर विचार करना आवश्यक है।

कागज की समस्या

अभिलेखों के परिरक्षण में उनको स्थायित्व प्रदान करना, अथवा अनन्त समय तक उन्हें असली रूप में बनाये रखने का विशेष महत्त्व है। ब्लीचिंग तथा अम्ल के अत्यधिक प्रयोग से कागज खराब हो जाने की सम्भावना रहती है अतः महत्त्वपूर्ण प्रलेखों के लिए ऐसा कागज काम में लाना चाहिए जो रासायनिक दृष्टि से पूर्ण शुद्ध हो। इसके लिए सबसे अच्छा कागज वह होगा जो अम्ल रहित हो। स्थाई प्रलेख के लिए रासायनिक दृष्टिकोण से कागज ऐसा हो जिसका अल्फा सेल्यूलोज का मान ९%, कापर नम्बर एक से कम, तथा पी-एच मान पाँच से अधिक हो। उपरोक्त रासायनिक स्तर का कागज प्रलेखों के लिए सर्वोत्तम होगा।

स्याही की समस्या

अभिलेखों के दीर्घजीवी रहने में स्याही का भी बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि स्याही में अम्ल की मात्रा अधिक होगी, तो वह कागज को भी नष्ट कर देगी इसलिए अम्ल रहित स्याही का प्रयोग किया जाना चाहिए, जिसमें लौह की मात्रा लेशमात्र ही हो। इसके लिए लौह, एमोनिया, गेलिक अम्ल आदि को मिलाकर तैयार की हुई अम्ल रहित स्याही प्रयोग के लिए उत्तम होगी। इस स्याही को डाइ एमोनियम हाइड्रॉक्सी फेरीगलेट कहते हैं। इस सम्बन्ध में एक अमेरिकी वैज्ञानिक के रोचक शब्दों को उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा। उसने कहा था 'मित्र को पत्र लिखने में घोलक के रूप में मदिरा और शत्रु को पत्र लिखने में सिरके का प्रयोग कीजिए'।

कागज और स्याही की समस्या पर विचार कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि स्याही प्रलेख बनाने के लिए रासायनिक रूप से शुद्ध अम्ल रहित कागज तथा अम्ल रहित स्याही का उपयोग करना चाहिए।

प्राचीन पाण्डुलिपियाँ जो हमारे देश में मिलती हैं, वे अधिकतर भोज पत्र, ताल पत्र तथा कागज पर हैं और ये प्रलेख कार्बन स्याही द्वारा लिखे हुए हैं। कहीं-कहीं स्वर्ण, रेजत तथा नील भस्मों से भी पत्रों को विभूषित किया गया है। क्योंकि ये सब पदार्थ कार्बनिक हैं, अतः नाशवान हैं। कागज, स्याही आदि के अतिरिक्त वातावरण, ताप, आर्द्रता आदि भी इसके विनाश के लिए उत्तरदायी हैं।

जैसा कि हम वर्णन कर चुके हैं, स्याही और कागज में अम्ल की मात्रा का अधिक होना विनाशकारी है। परिरक्षण के लिए हमारा उपाय उसको अम्ल रहित बनाना है, इस उपाय के लिए अभिलेखों को यदि उनकी स्याही घुलनशील नहीं है तो क्रमशः १५, १५ मिनट तक १५ प्रतिशत कैलशियम हाइड्राक्साइड तथा कैलशियम बाइकार्बोनेट के घोल में डुबाना चाहिए। इस क्षार के प्रयोग से कागज और स्याही का अम्ल नष्ट हो जाता है और वह ज्यादा नष्ट होने से बच जाता है।

वायुमण्डल का प्रभाव

वायुमण्डल का अधिक शुष्क, आर्द्र तथा गर्म और सर्द होना भी प्रलेख के भौतिक रूप पर प्रभाव डालता है। भारत जैसे देश में जहाँ कि ताप और आर्द्रता अधिक परिवर्तन शील हैं, इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। गर्म और शुष्क वायुमण्डल में, प्रलेख चाहे वह कागज पर हो या ताल तथा भोज पत्र पर, सूख कर भुरभुरे हो जाते हैं और उनमें वास्तविक लचीलापन नहीं रहता। यदि वर्षा ऋतु में कहीं आर्द्रता अधिक बढ़ गई तो कागज नम हो जाता है, उस पर फफूँदी लग जाती है तथा कार्बन स्याही चिपचिपी हो जाती है और फिर आर्द्रता कम हो जाने पर कागज एक दूसरे से चिपक जाते हैं। ताप और आर्द्रता की अधिकता से प्रलेखों में भौतिक तथा रासायनिक परिवर्तन होने के साथ-साथ विनाशकारी कीटाणु (दीमक, रजतभीन, तिलचिले, आसिता) आदि प्रायः पैदा हो जाते हैं। साथ ही औद्योगिक नगरों में वायु अम्लवार्तिक होती है जो कागज को नष्ट करती है और धूल आदि जो प्रलेखों पर जमी होती है कीटाणुओं के बढ़ने के लिए अवसर देती है। यही नहीं, सूर्य किरणों के प्रभाव से भी हमारे प्रलेख वंचित नहीं। अधिक समय तक सूर्य प्रकाश पड़ने से प्रलेख का कागज पीला या भूरे रंग का भुरभुरा हो जाता है।

वायु मण्डल के इस दूषित प्रभाव से बचाने के लिए सर्वोत्तम उपाय तो स्थान का वातानुकूलित होना है जिससे कि सदैव ताप ७०° से ७५° फा० तथा आर्द्रता ५०% से ५५% प्रतिशत तक रखी जावे। परन्तु भारत जैसे देश के लिए ऐसे सभी स्थानों का वातानुकूलित करना एक समस्या है। इसलिए हमें प्रलेखों को ऐसी जगह रखना चाहिए कि जहाँ सूर्य की किरणें सीधी न पहुँच सकें तथा अभिलेखालय औद्योगिक केन्द्र से दूर बनाया जावे, जहाँ अम्लवार्तिक वायु का प्रभाव भी शून्य हो। अलमारियों में जहाँ यह प्रलेख रक्खे जावें, नारंगी, हरे या पीले रंग के शीशे तथा पदार्थों का प्रयोग हो जिससे कि सूर्य-प्रकाश की विनाशकारी आल्ट्रावायलट किरणें प्रलेखों पर न पड़ें। अच्छा तो यह है कि प्रकाश बहुत ही कम पहुँचे। साथ ही खिड़कियाँ और रोशनदान ऐसे और इतने हों, जिससे पर्याप्त शुद्ध वायु प्रलेखों को मिलती रहे और दूषित वायु निकलती रहे। इस अवस्था में कीटाणुओं द्वारा विनाश का भय कम हो जाता है। यदि वे बस्तों या आल्मारियों में बन्द रखे गये हैं, तो उन्हें यदा-कदा खोल कर शुद्ध वायु में रखना चाहिए और उन पर पड़ी धूल आदि साफ कर देनी चाहिए अन्यथा धूल के कारण कागज, चमड़ा और कपड़ा आदि के जीर्ण होने का भय रहता है और साथ ही कीटाणुओं के बढ़ने का भी भय रहता है।

कीटाणुओं से रक्षा

उपरोक्त सावधानियाँ बरतने के बावजूद भी वर्षा ऋतु में वायुमण्डल की आर्द्रता में आसिता (माइल्ड्यू) आदि हो जाने की आशंका रहती है। इसलिए वर्षा ऋतु में प्रलेखों वाले कमरे को आर्द्रता से बचाना चाहिए, और उसे आर्द्रता रहित बनाना चाहिए। इसके लिए सिलिकाजेल नामक रसायन को कमरे में जहाँ-तहाँ रख देना चाहिए जोकि कमरे की नमी को सोख

लेगा। इसे गर्म करके फिर उपयोग में लाया जा सकता है। वर्षा ऋतु से प्रलेखों का निरीक्षण भी बहुत आवश्यक है। यदि प्रलेखों पर हरे या भूरे रंग के धब्बे दिखाई दें जिनसे कागज कुछ चितकबरा सा हो जाता है, तो समझ लेना चाहिए यह आसिता के लक्षण हैं। इसको दूर करने के लिए पहले उन धब्बों को कपड़े, रुई या डबलरोटी से सावधानी पूर्वक रगड़ कर साफ कर लेना चाहिए और फिर थाइमोल के स्प्रिट में १०% घोल को छिड़क धूमित करना उत्तम है। इसके लिए आसिता वाले प्रलेखों को फिर ऊँची जाली के फ्रेम पर फैला लिया जावे और जाली के नीचे थाइमोल को एक खुले बर्तन में रखकर ४० वाट के बिजली के लैम्प द्वारा गर्मी से धूमित किया जावे।

वायुमण्डल की नमी और गर्मी के कारण आसिता के अतिरिक्त तिलचट्टे ओर रजतमीन भी प्राय: पुस्तकालयों और प्रलेख संग्राहलय में हो जाते हैं। इनसे बचने के लिए सावधानी यह बरतनी चाहिए कि ऐसे स्थानों में खाने की कोई चीज न रखी जावे क्योंकि कीड़े खाद्य-पदार्थों की ओर आकृष्ट होते हैं। दूसरे कमरों से अंधकार और सील को दूर कर दिया जावे, साथ ही दीवालों तथा फर्शों के छेद बन्द कर दिये जावें और प्रलेखों तथा पुस्तकों को एक दूसरे से दबाकर न रखा जाय। नेप्थलीन जैसे रसायन की ईंटों को भी जहाँ-तहाँ कमरे में रख देना चाहिए। इसके अतिरिक्त विनाशकारी कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए सफेद नैपाली (आर्सनिक), डी० डी० टी० को पानी के घोल के रूप में छिड़कना चाहिए। रजतमीन से रक्षा करने के लिए १२ भाग तूतिया और १०० भाग आटा मिलाकर तैयार किये पाउडर को छिड़कना चाहिए।

यह सत्य है कि कीटाणुओं को बढ़ने से रोक कर रक्षा करना, ओषधि की सहायता से नष्ट करके रक्षा करने से, उत्तम है। यदि सारी सावधानी के उपरान्त भी कीटाणुओं से रक्षा न हो सके तो उन्हें घातक वर्तियों के धूम्रन द्वारा नष्ट कर देना चाहिए। इसके लिए प्रलेखों को इस्पात की ऐसी इलमारी की छत पर फैलाया जाये, जिसके छत पर छेद हों। फिर नीचे एक शीशे के चौड़े मुँह वाले बर्तन में पैराडाइक्लोरोबेन्जीन के रवे रख दिये जाते हैं। १० घन पाद स्थान के धूम्रन के लिए एक पौण्ड पेराडाइक्लोरोबेन्जीन पर्याप्त है। किल्लोपेटर के प्रयोग में, किल्लोपेटर को आलमारी के सबसे ऊँचे ताक पर रख देते हैं, जो धूमिल होकर नीचे आ जाता है। इसका १४ पौण्ड १००० घनपाद के धूम्रन के लिए पर्याप्त है। ये दोनों रसायन सामान्य-ताप पर भाप बन जाते हैं और जीवित इल्लियों और भृंगों को नष्ट कर देते हैं।

बड़े पैमाने पर धूम्रन करने के लिए प्रलेखों को दोहरी दिवाल वाले वायु निरोधक कक्ष में रखा जाता है और उसे बन्द करके सारी हवा निकाल दी जाती है और फिर कार्बन डाई आक्साइड के साथ मिले हुए इथीलीन आक्साइड से निर्वात धूम्रन करने से हानिकारक कीट समूल नष्ट हो जाते हैं। इस रीति को निर्वात-धूम्रन कहते हैं। परन्तु ऐसा प्रबन्ध न होने पर पैराडाइक्लोरो बैन्जीन, अथवा सरल किल्लोपेटर में कार्बन टेट्राक्लोराइड तथा इथिलिन डाइआक्साइड के मिश्रण से धूम्रन कार्य करना चाहिए।

उपरोक्त वर्णन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पहले तो हम अपने प्रलेखों के सम्बन्ध में ऐसी सावधानी बर्तें कि परिरक्षण की समस्याएँ ही सामने न आवें। प्रलेख असावधानी से,

प्रयोग करने से, अत्यधिक प्रकाश, ताप, आर्द्रता और धूल आदि का प्रभाव होने से जीर्ण हो जाते हैं। इसलिए उन्हें बड़ी सावधानी से उठाया-धरा जावे तथा एक दूसरे से दबाकर न रक्खा जावे। अध्ययन-कक्ष में सूर्य की किरणें सीधी नहीं आनी चाहिए। खिड़की और दरवाजों पर हरे रंग के या पीले रंग के पर्दे लगे होने चाहिए। कक्ष में दरवाजे यदि उत्तर और दक्षिण की दिशा में हों तो सूर्य के प्रकाश और किरणों से बचाव हो सकता है। ऐसे स्थान औद्योगिक केन्द्रों से, पाठशाला आदि से दूर होना चाहिए। आर्द्रता को बचाना चाहिए तथा आवश्यक होने पर सिलिका जेल का प्रयोग करना चाहिए। यदा-कदा प्रलेखों को झाड़-पोंछ कर खुली हवा में रख देना चाहिए। कक्ष के छेदों और दरवाजों को बन्द कर देना चाहिए। दीवाल तथा फर्श के जोड़ों को सीमेंट से गोलाकार कर देने से पुस्तक-कीटों के आने का भय कम हो जाता है। जिन अलमारियों पर प्रलेख रखे जावें वे दीवाल से कुछ दूर रखी जावें तथा उन पर क्रीसोट और कोलतार से पालिश करते रहना चाहिए। साथ ही अलमारी में जहाँ-तहाँ नेप्थलीन की ईंटे रख देनी चाहिए। उपरोक्त सावधानियों के साथ प्रलेखों की झाड़-पोंछ बहुत कुछ हमारी समस्याएँ हल कर देती है और काफी समय तक हम अपने प्रलेख सुरक्षित रख सकते हैं।

भारतीय ज्योतिष—३

खगोल और भगण

सोहनलाल गुप्त

खं का अर्थ आकाश है अतः खगोल का अर्थ हुआ आकाश मंडल या आकाशीय गोला। ग्रह और तारे पृथ्वी से भिन्न-भिन्न दूरियों पर स्थित हैं। यह उनकी स्थिति जानने और प्रकट करने के लिए उन्हें एक गोले के तल पर स्थित और चलता माना गया है जिसका केन्द्र हमारी पृथ्वी है।

ज्योतिर्मय आकाशीय पिंडो में अधिकांश तारे हैं। संस्कृत का तारा, फारसी का सितारा और अँग्रेजी का star सभी एक ही धातु स्था (stay) से बने हैं। अतः तारा का अर्थ है स्थिर रहने वाला। तारे स्थिर होते हुए भी पृथ्वी की दैनिक अक्षगति के कारण पूरब से पश्चिम को दिन रात में पूरा चक्कर लगाते जान पड़ते हैं। सूर्य भी एक तारा है जो औरों क अपेक्षा अधिक निकटता के कारण बड़ा जान पड़ता है। तारों की इस दैनिक गति को शीघ्रगति कहा गया है। सर्वप्रथम आर्यभट्ट ने इस गति का कारण पृथ्वी की अक्षगति कहा (देखो आर्यभट्टीय गीतिका पाद श्लोक ९)

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगंयद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् सम पश्चिमगानि लंकायाम्॥

"जैसे नौका में बैठा मनुष्य किनारे की स्थित वस्तुओं को उलटी ओर चलते देखता है ऐसे ही स्थिर सूर्य नक्षत्र पश्चिम की ओर चलते जान पड़ते हैं।"

सूर्यसिद्धान्त के समान बाइबिल का मत है कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य गतिमान है। यह मत यूरोप में आर्यभट्ट के बाद एक हजार वर्ष से अधिक तक मान्य रहा जब कि कार्पनिकस ने सूर्य के स्थिर होने और पृथ्वी के चलने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

पृथ्वी की एक गति और भी है। वह सूर्य की परिक्रमा एक वर्ष में करती है। यह पृथ्वी की कक्षा गति है। इस कारण सूर्य एक वर्ष में तारों के बीच में धीरे-धीरे पूरब की ओर बढ़ता हुआ आकाश मंडल का पूरा चक्कर लगाता जान पड़ता है। सूर्य की यह मंद गति कही गई है। सूर्य को स्थिर तारों के बीच में चलने के कारण उसे ग्रह, सय्यारह (फारसी में) या planet कहा गया है। सभी शब्दों का अर्थ है चलने वाला।

सूर्य की भाँति मन्द गति के कारण चंद्रमा, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि ग्रह कहलाते हैं। ये वास्तव में गतिशील हैं न कि सूर्य की भाँति स्थिर। इन **सप्त ग्रहों** से वारों को नाम मिले हैं। सबसे धीरे चलने के कारण शनिश्चर (शनैः+चर) या मन्द नाम शनि को मिला। सबसे कम चमकीला होने से इसे असित भी कहा गया है। सबसे चमकीला होने से शुक्र नाम पड़ा। सबसे बड़ा बृहत् वा गुरु होने से गुरु तथा बृहस्पति नाम दिये गए। भारतीय नारियों के मंगल या सौभाग्य विन्दु के रंग का होने के कारण मंगल नामकरण हुआ। पृथ्वी पुत्र माना जाने से इसे भौम या कुज भी कहते हैं।

सूर्य मन्दगति या पृथ्वी की कक्षागति के कारण वर्ष भर में खगोल पर एक वृत्त पूरब पश्चिम दिशा में बनाता है जिसे क्रान्ति वृत्त (ecliptic) कहते हैं। इस वृत्त को ३६० अंशों या भागों से बाँटा गया है क्योंकि वर्ष भर में ३६० दिन होते हैं। इस प्रकार एक अंश पृथ्वी या सूर्य की एक दिन की चाल है। तीस-तीस अंशों के समूह को राशि कहा गया। इस प्रकार क्रान्ति वृत्त बारह राशियों में बँटा हुआ है। इन राशियों को उनमें स्थित तारा पुंजों की आकृतियों से नाम मिले हैं जो पूरब की ओर बढ़ते हुए क्रम से इस प्रकार हैं।

१–मेष, २–वृष, ३–मिथुन, ४–कर्क, ५–सिंह, ६–कन्या, ७–तुला, ८–वृश्चिक ९–धनु, १०–मकर, ११–कुंभ, १२–मीन।

सृष्टि के आरम्भ में तथा कलियुग के आरम्भ में भी सप्तग्रह मेष के आदि बिन्दु पर थे। इस विन्दु से क्रान्ति वृत्त पर अंशों में दूरी भोगांश (latitude) कहलाती है। क्रान्ति वृत्त से उत्तर या दक्षिण दूरी शर या विक्षेप (longitude) कहलाती है।

अन्य ग्रहों के मार्ग क्रान्ति वृत्त से कुछ झुके हुए हैं। किसी ग्रह की कक्षा क्रान्ति वृत्त से जो कोण बनाती है उसे परम विक्षेप कहते हैं। ग्रह क्रान्ति वृत्त के उत्तर या दक्षिण अधिक से अधिक अपने परम विक्षेप के बराबर दूर हो सकता है। परम विक्षेप के मान इस प्रकार हैं:

चन्द्रमा ४½ अंश, मंगल १½ अंश, बुध २°, गुरु १°, शुक्र २°, शनि २°

प्रत्यंक ग्रहकक्षा क्रान्ति वृत्त को दो बिन्दुओं पर काटती है जिन्हें पात (nodes) कहते हैं क्योंकि इन स्थानों पर ग्रह का शर (पतित) शून्य हो जाता है। दोनों पात एक दूसरे से छः राशि या १८० अंश के अन्तर पर होते हैं। जिस पात पर ग्रह दक्षिण शर से उत्तर शर होता है उसे उत्तर पात (ascending node) कहते हैं और दूसरे को जहाँ ग्रह उत्तर शर से दक्षिण शर होता है दक्षिण पात (descending node) कहते हैं। जब ग्रह अपने पातों से तीन राशि या ९०° दूर होता है तो वह क्रान्ति वृत्त से अपने परम शर की दूरी पर होता है।

पात ग्रहों की भाँति चलते हैं पर उलटी दिशा में अर्थात पूरब से पश्चिम की ओर। चन्द्रमा के पात के अतिरिक्त अन्य पातों की गति बहुत धीमी है। उनकी एक अंश गति में दसों हजार वर्ष लगते हैं पर चन्द्रपात की गति ग्रहों की गतियों की श्रेणी की है। यह शनि की गति की ड्योढ़ी है। अतः चन्द्रमा के पातों को भी पर्याप्त गति के कारण ग्रह नाम मिला है। चन्द्र उत्तर पात को राहु और दक्षिण पात को केतु कहते हैं। सूर्य और चन्द्र ग्रहण सूर्य और चन्द्र के चन्द्र पातों पर होने पर ही पड़ते हैं अतः इनका महत्त्व है जबकि सप्त ग्रह पिण्ड और दृश्य हैं, राहु केतु अदृश्य बिन्दु ग्रह हैं।

ग्रहों के मार्ग ठीक गोलाकार न होकर अंडाकार हैं जिन्हे दीर्घवृत्त (ellipse) कहते हैं जिनकी एक नाभि पर जो केन्द्र से हटकर होती है सूर्य स्थित है। उस स्थिति में जब ग्रह सूर्य से अधिकतम दूरी पर होता है उसकी गति मन्दतम होती है। इन दोनों तथ्यों से इस स्थान को मन्दोच्च कहते हैं। मन्दोच्च छः राशि के अन्तर पर ही स्थिति में ग्रह सूर्य से निकटतम होता है। यह ग्रह की **नीच** स्थिति कहलाती है। इस स्थान पर ग्रह की गति अधिकतम होती है। चन्द्रकक्षा की नाभि पर पृथ्वी है। ग्रहों की भाँति मन्दोच्य भी पश्चिम से पूरब को गति करते हैं। मन्दोच्च के अतिरिक्त और ग्रहों के मन्दोच्चों की गति उनके पातों की गति की तरह बहुत धीमी है। एक महायुग में वे एक भी चक्कर नहीं लगा पाते।

सभी ग्रह जिनमें पृथ्वी भी है सूर्य की परिक्रमा करते हैं। ग्रहों की गति हम सूर्य से न देखकर पृथ्वी से देखते हैं अतः सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हुए सूर्य के साथ पृथ्वी की परिक्रमा करते जान पड़ते हैं: इस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा के अतिरिक्त अन्य ग्रहों की दो गतियाँ हैं। एक अपनी गति और दूसरी सूर्य गति। इनमें तेज गति को शीघ्रोच्च गति और मन्द गति ग्रह की मध्यम गति कहलाती है।

दो ग्रह बुध और शुक्र एक तो सूर्य के साथ आकाशमंडल का चक्कर लगाते हैं और दूसरे सूर्य की गति से अधिक शीघ्र गति से वे सूर्य की परिक्रमा करते हैं। सूर्य के चारों ओर बुध शुक्र की परिक्रमा उनकी शीघ्रोच्च गति कहलाती है और सूर्य की गति बुध शुक्र की मध्य गति कहलाती है।

पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से अधिक दूर ग्रह मंगल, वृहस्पति और शनि की सूर्य के चारों ओर परिक्रमा की गति से सूर्य की गति शीघ्र होती हैं अतः सूर्य-गति इन ग्रहों की शीघ्रोच्च गति है और अपनी गति मध्यम गति है।

ग्रह का खगोल में पूरा चक्कर भगण कहलाता है। सूर्य और आर्यसिद्धान्तों के अनुसार महायुग के ग्रहों के पूरे भगण होते हैं। ब्राइन सिद्धान्तानुसार कल्प में ही ग्रहों के पूरे भगण होते हैं। ये इस प्रकार हैं :

ग्रह	सूर्य सिद्धान्त महायुग भगण	आर्य सिद्धान्त महायुग भगण	ब्राइन सिद्धान्त कल्प भगण
सूर्य	४३२००००	४३२००००	४३२००००००
चन्द्र	५७७५३३३६	५७७५३३३६	५७७५३३०० ०००
मंगल	२२९६८३२	२२९६८२४	२२९६८२८५२२
बुध शीघ्रोच्च	१७९३७०६०	१७९३७०२०	१७९३६९९८९८४
गुरु	३६४२२०	३६४२२४	३६४२२६४५५
शुक्र शीघ्रोच्च	७०२२३७६	७०२२३८८	७०२२३८९४९२
शनि	१४६५६८	१४६५६४	१४६५६७२९८
चन्द्र मंदोच्च	४८८२०३	४८८२१९	४८८१०५८५८
चन्द्र पात	२३२२३८	२३२२२६	२३२३११६८

पंचसिद्धान्तिका में वर्णित प्राचीन सूर्यसिद्धान्त के मान मंगल, शुक्र, शनि, चन्द्रमन्दोच्च और चन्द्रपात के लिए यही हैं जो आर्यसिद्धान्त के हैं। गुरु का मान वर्तमान सूर्यसिद्धान्त से मिलता है। बुध के भगण १७९३७००० हैं।

कल्प के आरम्भ में सभी सिद्धान्तों के अनुसार सभी ग्रह उनके उच्च और पात एक ही स्थान—मेषादि—पर थे। सूर्य और आर्यसिद्धान्तानुसार सप्तग्रह कलियुग के आरम्भ में भी एक ही स्थान मेष के आदि बिन्दु पर थे क्योंकि कल्पारम्भ से तब तक पूरे महायुगों के ऊपर तीन चौथाई महायुग व्यतीत हुआ और सातों ग्रहों के महायुग भगण चार से पूरे कट जाते हैं। चन्द्र मन्दोच्च और चन्द्रपात के तीन चौथाई महायुग में पूरे भगणों के ऊपर क्रम से चौथाई और आधे भगण होते हैं। अतः कलि आरम्भ में चन्द्रमन्दोच्च कर्कादि में और चन्द्रपात तुलादि में था।

ब्राइन सिद्धान्त के अनुसार कलियुग के आरम्भ में सूर्य और चन्द्रमा तो मेषादि पर थे पर अन्य ग्रह थोड़े अन्तर पर थे। उनकी कलि आरम्भ की स्थिति उनके कल्प भगणों को कल्पगत युगों ४५६$\frac{७}{१०}$ से गुणा कर कल्पयुगों १००० से भाग देने पर मिलेगी। गत पूरे भगण छोड़ दिये जायगे क्योंकि प्रत्येक पूरा भगण ग्रह को आदि स्थान पर वापस लाता है। शेष भगणों को १२ से गुणा कर गुणनफल को पूर्ववत् भाग देने पर गत राशि मिलेगी। शेष राशियों को ३० से गुणा करने पर गुणनफल को पूर्ववत् भाग देने पर गत अंश मिलेंगे। शेष अंशों को साठ से

गुणा कर गुणनफल को पूर्ववत् भाग देने पर गत कला मिलेगी। शेष कलाओं को ६० से गुणा कर गुणनफल को पूर्ववत् १००० से भाग देने पर गत कला मिलेगी। राहु की स्थिति उसकी उलटी गति के कारण प्राप्त फल को १२ राशि से घटाने पर मिलेगी।

ब्रह्म सिद्धान्तानुसार कलियुगारंभ में ग्रह स्थिति

मंगल	११ राशि	२९ अंश	३ कला	५० विकला
बुध	११	२७	२४	२९
गुरु	११	२९	२७	३६
शुक्र	११	२८	४२	१४
शनि	११	२८	४६	३४
चन्द्रोच्च	४	५	२९	४६
राहु	६	२६	४२	२

मन्दोच्च और पातों का महायुग में एक भी भगण नहीं हो पाता। उनके कल्प में ही पूरे भगण हो पाते हैं।

	मन्दोच्च कल्प भगण		पात कल्प भगण	
	सूर्यसिद्धान्त	ब्रह्मसिद्धान्त	सूर्यसिद्धान्त	ब्रह्मसिद्धान्त
सूर्य	३८७	४८०	×	×
मंगल	२०४	२९२	२१४	२६७
बुध	३६८	३३२	४८८	५२१
गुरु	९००	८५५	१७४	६३
शुक्र	५३५	६५३	९०३	८९३
शनि	३९	४१	६६२	५८४

ब्रह्मसिद्धान्तीय सिद्धान्त शेखर में शनि मन्दोच्च के कल्प भगण ५४ दिये हैं।

सबसे अधिक द्रुतगामी मन्दोच्च या पात को १ अंश चलने में तेरह हजार वर्ष चाहिए इसलिए आर्यसिद्धान्त में मन्दोच्चों और पातों के भगण न दिए जाकर उनके स्थान दे दिये हैं। कलियुगारंभ में उनकी स्थिति निकालने के लिए सूर्य सिद्धान्तीय भगणों को गत महायुगों ४५२ ३/४ गुणा करो और ब्रह्मसिद्धान्तीय भगणों को गत महायुगों ४५६ ७/१० से गुणा करो। प्रत्येक गुणनफल को कल्पयुगों १००० से भाग दो। लब्धि के प्राप्त भगणों को छोड़ शेष के राशि अंश बनाओ। फल मन्दोच्च स्थिति होगी। पात फल को १२ राशि से घटाओ।

पातों व मन्दोच्चों की कलियुगारंभ में स्थिति

	सूर्यसिद्धान्त	ब्रह्मसिद्धान्त	आर्यभट्टीय	खण्डखाद्यक	यंत्रसिद्धान्तक	ग्रहलाघव
सूर्य मन्दोच्च रा०	२/१८ अंश	२/१८	२/१८		२/२०	२/१८
मंगल मन्दोच्च	४/१०	४/८	३/२८	३/२०	३/२०	४/०
बुध मन्दोच्च	७/१०	७/१५	७/०	७/१०	७/१०	७/०

गुरु मन्दोच्च	५/२१	५/२२	६/०	५/१०	५/१०	६/०
शुक्र मन्दोच्च	२/२०	२/२१	३/०	२/२०	२/२०	३/०
शनि मन्दोच्च	७/२७	८/२१	७/२६	८/०	८/०	८/०
मंगलपात	१/१०	०/२२	१/१०			१/१०
बुध पात	०/२०/४०	०/२१	०/२०			०/२०
गुरुपात	२/२०	२/२२	२/२•			२/२०
शुक्रपात	२/०	२/०	२/०			२/०
शनि पात	३/१०	३/१३	३/१०			३/१०

सिद्धान्त शेखर के अनुसार शनिमन्दोच्च का स्थान ७ राशि २८ अंश होगा। मंगलादि पाँच ग्रहों के मन्दोच्चों के सूर्यसिद्धान्त के १० से कम अंश आर्यभट्टीय और गुर लाघव में जोड़ दिये हैं। २० अंश से ऊपर की जगह एक राशि मान ली गई है।

नोबेल पुरस्कार विजेता : डा० जार्ज डब्लू बीडल

डा० बीडल की 'न्यूरोसपोरा' सम्बन्धी सफलता ने इस सत्य का निर्धारण किया कि शरीर के वंश-निर्धारक तत्व 'इञ्जाइम' (एक पाचक तत्व) को नियन्त्रित करते हैं, और 'इञ्जाइम' जीवन की रासायनिक प्रक्रिया को नियन्त्रित करते हैं। उनकी खोज से प्रजनन-शास्त्र के उपकरण के रूप में 'मोल्ड' (एक प्रकार का रोयेंदार पदार्थ) के उपयोग की नवीन विधियाँ ज्ञात हुईं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि अध्यापक का प्रभाव कितना व्यापक हो सकता है। नोबेल पुरस्कार विजेता, डा० जार्ज वेल्स बीडल, भी कितने ही अन्य महान वैज्ञानिकों की भाँति ही अपनी सफलता के लिए अपने माध्यमिक हाई स्कूल की एक अध्यापिका के प्रति हृदय से अत्यन्त ऋणी हैं। अभी हाल में, उन्होंने इसका उल्लेख करते हुए कहा, "मैं समझता था कि मुझे अपने फार्म पर ही वापस लौट जाना पड़ेगा, किन्तु मेरी अध्यापिका मिस बेस मेक्डोनाल्ड में अपने छात्रों को आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करने की अद्भुत क्षमता थी। उन्होंने अपनी बातचीत से मुझे इतना प्रभावित किया कि मैं कालेज की ओर मुड़ चला।"

इनका जन्म १९०३ में वाहू (नेब्रास्का) के निकट एक छोटे से फार्म पर हुआ था। वह ४ वर्ष के थे, तभी उनकी माता का देहान्त हो गया अतः उनका लालन-पालन उनके पिता ने ही किया। उनका स्कूल डेढ़ मील दूर था, जहाँ उन्हें पढ़ने के लिए प्रतिदिन पैदल आना-जाना पड़ता था। कभी-कभी मधुमक्खियाँ पाल कर तथा छछून्दर फँसा कर वह कुछ आमदनी भी कर लेते थे।

लगभग ५० वर्ष पूर्व वाहू शिक्षा का कोई महत्त्वपूर्ण केन्द्र नहीं था, किन्तु उनकी एक अध्यापिका, मिस मैक्डोनाल्ड, ने बालक जार्ज वीडल के हृदय में विज्ञान के लिए उत्साह की अग्नि-शिखा प्रज्वलित कर दी। मिस मैक्डोनाल्ड भौतिक विज्ञान तथा रसायन शास्त्र की अध्यापिका थीं। उन्होंने वीडल को नेब्रास्का विश्वविद्यालय के कृषि कालेज में भर्ती होने के लिए राजी किया। नेब्रास्का विश्वविद्यालय में डा० फ्रेंकलिन डी० कीम की कक्षा में जार्ज वीडल की रुचि प्रजनन-शास्त्र (जेनेटिक्स) में जाग्रत हुई। जार्ज वीडल ने डा० कीम को दोगली नस्ल के गेहूँ संबंधी प्रयोगों में सहायता प्रदान की। जब १९२६ में वीडल ने स्नातक की उपाधि प्राप्त की, तो डा० कीम ने अपने इस प्रतिभाशाली छात्र को कोर्नेल विश्वविद्यालय में सहायक के पद पर नियुक्त होने में सहायता पहुँचाई।

१९२० के दशक में एक विज्ञान के रूप में प्रजनन-शास्त्र अभी अपने शैशव में ही था। उस समय कोलम्बिया विश्वविद्यालय के डा० टामस हण्ट मोर्गन प्रमुख प्रजनन-शास्त्री माने जाते थे। उन्हें चिकित्सा और शरीर-विज्ञान में १९३३ में नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। उन्हें प्रजनन-शास्त्र के 'मक्खी सम्प्रदाय' का संस्थापक माना जाता था। उन्होंने 'ड्रोसफिला मेलानोगेस्टर' नामक मक्खी के विषय में अनुसन्धानात्मक प्रयोग किये। यह बड़ा नाम उस नन्हीं फल-मक्खी का है, जो फलों पर सर्वत्र मंडराती रहती हैं।

प्रयोगशाला में उपयोग की दृष्टि से फल-मक्खियाँ अत्यन्त उपयुक्त थीं। उनका आकार बहुत ही छोटा (लगभग १/१२ इंच लम्बा) था और वे प्रत्येक दो सप्ताह पर नई पीढ़ी को जन्म देती थीं। उन्हें संग्रह करना कठिन नहीं था। उन्हें काँच की छोटी नलिकाओं में, जिनमें धागा या रूई भरी हो, रखा जा सकता था। इस प्रकार का वातावरण उनके विकास और वृद्धि की दृष्टि से उपयुक्त सिद्ध होता था।

डा० मोर्गन ने बड़ी फल-मक्खियों के समुदाय के विषय में जो अध्ययन किया, उससे पता चला कि कुछ ऐसी भी फल-मक्खियाँ हैं, जो सामान्य फल-मक्खियों से भिन्न हैं। यह भिन्नता वंश-निर्धारक तत्व के कारण उत्पन्न हुई थीं। इन परिवर्तनों को 'वंश-विपर्यय' (म्यूटेशन) की संज्ञा दी गई थी। मेण्डेल के वंश परम्परा-सिद्धान्त के अनुसार, ये 'वंश-विपर्यय' ठीक उसी प्रकार पूर्वजों से विरासत के रूप में प्राप्त होते हैं, जिस प्रकार हमारे बाल या आँख का रंग।

डा० मोर्गन के एक छात्र, डा० हरमेन जे० मुलर, ने यह खोज की कि फल-मक्खी अथवा इस दृष्टि से किसी भी जीवित प्राणी को 'एक्स-रे' के प्रभाव के अन्तर्गत रखने से उस में 'वंश-विपर्यय' उत्पन्न किया जा सकता है। एक्स-रे के प्रभाव से शरीर के वंश-निर्धारक तत्व में स्पष्ट परिवर्तन देखा गया। यह भी देखा गया कि एक्स-रे के कारण उत्पन्न परिवर्तन भावी पीढ़ियों में भी जारी रहे। डा० मुलर को भी (जो इस समय इण्डियाना विश्वविद्यालय में हैं) अपने शिक्षक, डा० मोर्गन, की भाँति १९४६ में अपनी खोज के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

१९३१ में श्री वीडल ने डाक्टर की उपाधि प्राप्त कर ली। उन्हें राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद् की अध्ययन-वृत्ति मिल गयी, जिसकी सहायता से वह कैलिफोर्निया के इंस्टिट्यूट औव टैक्नोलॉजी में भर्ती हो गये। उस समय डा० मोर्गन इस इंस्टिट्यूट में प्राणिशास्त्र विभाग के निर्देशक थे।

डा० वीडल ने डा० मोर्गन के कुछ छात्रों के सहयोग में प्रजनन विज्ञान सन्बन्धी कितने ही प्रयोग किये। किन्तु वह जितना ही प्रयोग करते थे, उतना ही उनका यह विश्वास और भी दृढ़ होता जाता था कि प्रजनन विज्ञान सम्बन्धी कितनी ही ऐसी समस्याओं का अध्ययन, जिनका समाधान अभी नहीं हो सका है, जटिल पौधे या पशु के बजाय, किसी सरल किस्म के जीव में होने वाले जैव-रासायनिक परिवर्तनों में से किसी एक समय किसी एक परिवर्तन का सही-सही निरीक्षण करने से अधिक प्रभावकारी ढंग पर सम्पन्न हो सकता है। उनका तर्क यह था कि हो सकता है कि प्राणियों या पौधों की विशेषता—जैसे आकार का ऊँचा या ठिगना होना अनेक रासायनिक परिवर्तनों का परिणाम हो। उन्हें वस्तुतः आवश्यकता एक ऐसे जीव की थी, जिसमें होने वाले परिवर्तन किसी एक ही रासायनिक प्रतिक्रिया के परिणाम हों।

डा० वीडल ने कितने ही वर्षों तक अपने सिद्धान्तों की परीक्षा फल-मक्खियों पर की। अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वे 'रासायनिक प्रजनन-विज्ञान सम्बन्धी प्रयोगों की दृष्टि से श्रेष्ठतम नमूना नहीं थीं। उनकी जगह, डा० वीडल को एक ऐसे नमूने की आवश्यकता थी, जो प्रयोग शाला में अध्ययन करने की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त हो, जो फल-मक्खियों की अपेक्षा अधिक सरल किस्म का जीव हो, जिसके सम्बन्ध में किसी एक समय एक प्रतिक्रिया का निरीक्षण करना सम्भव हो सके। उनकी मान्यता यह भी थी कि इस प्रकार के अध्ययन के लिए उपलब्ध जीव जितना ही अधिक सरल होगा, उतने ही उसके वंश-निर्धारक तत्व और 'क्रोमोसोन' (किसी विशेष जाति के जीव के प्राण-कोषों में पाया जाने वाला एक सूक्ष्म पिण्ड, जिसमें वंश-निर्धारक तत्व कोष-स्फोट के पूर्व घुल जाता है) कम होंगे।

१९३७ में डा० वीडल की नियुक्ति स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर हुई। वहीं पर, डा० एडवर्ड एल० टाटुम नामक एक रसायनशास्त्री के सहयोग में (जो इस समय रौकफैलर संस्थान में हैं), डा० वीडल ने अपने प्रयोग की दृष्टि से 'न्यूरोसपोरा क्रेसा' नामक लाल 'मोल्ड' (मोल्ड एक रोयेंदार पदार्थ होता है, जो विभिन्न सजीव पदार्थों के ऊपर नमी से सड़ते हुए फफूंद के कारण उग आता है, जैसे रोटी के ऊपर पड़े रोयेंदार चकत्ते) को सर्वश्रेष्ठ नमूने के रूप में चुना। 'न्यूरोसपोरा' का उपयोग करने में अनेक लाभ निहित थे। यह दोनों ही विधियों-मैथुन क्रिया और बीजाणु-निर्माण-द्वारा पुनर्जनन करता है; एक ही बीजाणु (स्पोर) समान वंशतत्व वाले 'मोल्ड' की विशाल मात्रा को जन्म देता है। इसके अतिरिक्त, 'न्यूरोसपोरा' के विकास के लिए खनिज लवण, चीनी और 'बायोटीन' नामक केवल एक विटामिन की ही आवश्यकता होती है।

दोनों वैज्ञानिकों ने वंश-विपर्यय उत्पन्न करने के प्रयास में 'मोल्ड' को एक्स-रे द्वारा विकिरण-सक्रिय बनाना प्रारम्भ किया। उनका उद्देश्य 'मोल्ड' की ऐसी किस्में उत्पन्न करना था जो

साधारण रासायनिक प्रक्रिया की दृष्टि से सामान्य 'मोल्ड' से भिन्न हों। एक्स-रे के सामने बीजाणुओं (स्पोर) को खुला छोड़ कर, उन्होंने उन बीजाणुओं को एकत्र कर लिया, जो प्रजनन की मैथुनगत प्रक्रिया के कारण उत्पन्न हुए थे। उन्होंने उन बीजाणुओं को एकत्र करके उन्हें ऐसे पोषक माध्यम में रखा जो प्राकृतिक जंगली मोल्ड़ों के विकास के लिये आवश्यक होता है।

इस प्रयोग की अवधि में कुछ बीजाणु सामान्य रूप से बढ़ते रहे, कुछ मर गये, जबकि कुछ की वृद्धि तो प्रारम्भ हुई, किन्तु अधिक काल तक स्थाई न रह सकी। अनुवीक्षण यन्त्र द्वारा सतर्कतापूर्वक जाँच-पड़ताल करके ऐसे बीजाणुओं को पृथक कर लिया गया, जिनमें विकसित होने की क्षमता तो थी, किन्तु जो किसी कारणवश बढ़ने में असमर्थ रहे। वैज्ञानिकों ने इस कारण को खोज निकाला : बीजाणुओं को ऐमिनो-अम्ल, विटामिन तथा विकास या वृद्धि में सहायक सिद्ध होने वाले अन्य रसायनों को प्रदान करके पोषित किया गया।

२९९ बार परीक्षण करने के बाद डा० बीडल और डा० टाटुम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जिस तत्व की अनुपस्थिति के कारण 'मोल्ड' का विकाश अवरुद्ध हो जाता था, वह था विटामिन बी-६। जब इस वंश या किस्म के 'मोल्ड' को एक सामान्य किस्म के 'मोल्ड' से सहवास कराया गया, तो मैण्डेल के सिद्धान्त के अनुसार, विटामिन बी-६ का अभाव उसकी सन्तानों तक प्रेषित हो गया।

इन दोनों अनुसन्धानकर्त्ता वैज्ञानिकों ने अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया। 'मोल्ड' जिस जिस प्रकार द्वारा साधारण पोषक तत्वों से विटामिन बी-६ तैयार करता है, उसके लिए आवश्यक 'इन्जाइम' (शरीर का एक पाचक तत्व) उत्पन्न करने वाले वंश-निधारक तत्व (जीन) को एक्स-रे द्वारा परिवर्तित कर दिया गया। इस वंश-निधारक तत्व की अनुपस्थिति में, बाहरी सहायता के बिना 'मोल्ड' का विकसित होना सर्वथा असम्भव था। यह स्थिति ठीक वैसी ही थी, जैसे मधु-प्रमेह के रोगी की होती है, जिसके लिए यह आवश्यक होता है कि इन्सुलिन को, जिसे उसका शरीर उत्पन्न करने में असमर्थ होता हैं, प्राप्त करने के लिए वह किसी बाहरी साध्य की सहायता प्राप्त करे।

दोनों अनुसन्धानकर्त्ताओं ने अपने प्रयोग जारी रखे। शीघ्र ही उनके समक्ष अनेक सामान्य 'मोल्ड' आये, जिनमें से प्रत्येक में विकास-प्रक्रिया को प्रेरित करने के लिए अतिरिक्त तत्व की आवश्यकता थी अथवा जो वंश-निर्धारक तत्व द्वारा नियन्त्रित किसी अन्य रासायनिक विकास से ग्रस्त थे।

'न्यूरोसपोरा' के सम्बन्ध में प्राप्त इस सफलता के फलस्वरूप, प्रजनन-शास्त्रियों को प्रजन्न विज्ञान सम्बन्धी प्रयोगों में उपकरण के रूप में 'मोल्ड' या अन्य लघु जीवों को प्रयुक्त करने की नवीन प्रविधि ज्ञात हो गयी। डा० बीडल और डा० टाटुम की खोज ने इस सत्य का निर्धारण किया कि शरीर के वंश-तत्व (जीन) 'इन्जाइम' को निर्धारित करते हैं, और 'इन्जाइम' जीवन की रासायनिक प्रक्रिया को नियन्त्रित करते हैं। १९५८ में डा० बीडल, डा० टाटुम तथा अन्य एक प्रजनन-शास्त्री, डा० जोशुआ लीडरबर्ग, के साथ 'चिकित्सा तथा शरीर-विज्ञान' विषयक नोबेल पुरस्कार में सहभागी बने।

आजकल डा० बीडल कैलिफोर्निया इंस्टिट्यूट और टैक्नोलॉजी के प्राणि-शास्त्र विभाग के निर्देशक हैं। उन्हें १९४६ में डा० मोर्गन के अवकाश ग्रहण करने पर इस पद पर नियुक्त किया गया।

घासपातों पर रासायनिक नियंत्रण

रमेशचन्द्र तिवारी

"कोई भी आवश्यक पौधा निरावन है" यह कृषि-विशेषज्ञों की वाणी है। अतः कोई आर्थिक महत्व का पौधा अवाञ्छित स्थान पर कुसमय में उगने पर खरपतवार की श्रेणी में रखा जाता है। उदाहरणार्थ एक घास का पौधा चरागाह में चारे की फसल है तथा खेल के मैदान में या ज्वार के खेत में वह निरावन वर्ण का सदस्य है।

कृषि क्षेत्र में घासपात अत्यधिक हानिकारक सिद्ध हुए हैं। वे स्थान घेरकर, भूमि से जल शोषित कर तथा पोषक तत्वों का प्रयोग करके बोई हुई फसल की सुसज्जित पुष्पशैया पर काँटों का रूप धारण करते हैं एवं फसलों के जीवन-मरण के प्रश्न के हल के पथ में रोड़े अटकाते रहते हैं। इन दोनों पक्षों की छीना-झपटी कृषक के किये-कराये पर पानी फेर देती है फलतः कृषक को बाध्य होकर इस घासपात के दानव से होने वाली भावी हानि को लाभ में परिणत करने के लिए, तेज हथियार से सज्जित हो, रसायन विज्ञान की देन से प्राप्त घास-पात नाशक बम से भरे झोलों को पीठ पर लाद कर आगे बढ़ना पड़ता है। वह इनको निर्मूल करता है। रासायनिक घास-पात नाशक बम फेंकता है, और घास-पातों के अवशेषों को लाकर जमीन में बनाई गई पक्की कब्र (कम्पोष्ट के गड्ढ़े) में बन्द कर देता है। परन्तु यह क्रिया यहीं समाप्त नहीं होती, कृषक इन कब्रों से कंकालों को निकाल कर उनको खेत में फिर डाल देता है। वे ही हानिकारक दानव अब लाभकारी खादों का काम करते हैं।

घास-पातों से अनाज की पैदावार ५-४२%तक कम हो जाती है। यदि यह हानि १०% तक अनुमानित की जाय तो केवल गेहूँ की फसल में ही ८ लाख टन अनाज की हानि होगी। इस प्रकार प्रति वर्ष कई करोड़ रुपये की हानि होती है।

इस लेख में उन मुख्य रासायनिक तत्वों का वर्णन है जो खर-पतवारों को नष्ट करने में सहायक होते हैं। फ्रीयर महोदय ने ऐसे पदार्थों को दो भागों में विभाजित किया है :—

(१) **विशेष शाकनाशी:**—वे रासायनिक शाक-नाशी जो खेत में देने पर एक विशेष किस्म, जाति, या कुल के पौधों का नाश करते हैं। इसके अतिरिक्त इनका प्रभाव अन्य पौधों पर बिल्कुल नहीं होता है।

(२) **साधारण शाकनाशी**—रासायनिक तत्वों का वह समूह है जो खेत में डालने पर सभी उपस्थित पौधों को नष्ट कर देता है। एक निश्चित सान्द्रता तथा फसल की एक निश्चित अवस्था का ध्यान रखकर एक साधारण शाकनाशी बनाया जा सकता है।

अनेक प्रयोगों के पश्चात् ही शाकनाशियों को फसल में देना चाहिये क्योंकि विभिन्न जलवायु में शाकनाशी भिन्न-भिन्न प्रभाव डालते हैं। इसलिये शाकनाशी पदार्थों का प्रभाव एक छोटे क्षेत्रफल में देखकर फिर आगे बढ़ना चाहिये।

उपरोक्त दो श्रेणियों को रासायनिक अध्ययन के आधार पर दो भागों में विभक्त किया गया है: अकार्बनिक शाकनाशी तथा कार्बनिक शाकनाशी।

(१) **अकार्बनिक शाकनाशी :**

(क) **सायनामाइड, सायनाइड एवं थायोसायनेट** :—कैलशियम सायनामाइड ($Ca\,CN_2$) विशेष तथा साधारण दोनों प्रकार के शाकनाशी का काम करता है। यह भूमि में फसल बोने के पहले **ही** डाला जाता है जो निरावनों के बीजों को नष्ट कर देता है। साथ-साथ यह उगते हुये खरपतवारों को भी जला देता है। इसके कैलशियम तथा नाइट्रोजन दोनों तत्व उर्वरक का भी काम करते हैं। भूमि में पानी के साथ इसका जलविश्लेषण निम्न प्रकार से होता है:

$$Ca\,CN_2+2H_2\,O \rightarrow H_2\,CN_2+Ca\,(OH)_2.$$
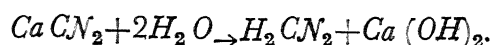
अमोनियम थायोसानेट जो कृत्रिम गैस उद्योग में सहजात के रूप में मिलता है शाकनाशी के रूप में प्रयुक्त होता है। यह पानी के साथ गंधरहित घोल बनाता है जो पौधे के लिये विष है तथा जानवरों के लिये हानिकारक नहीं होता। सोडियम तथा कैलशियम थायोसायनेट भी उसी तरह प्रयुक्त होते हैं और शाकनाशी का काम करते हैं।

(ख) **सल्फोमेट** :—सल्फोमिक एसिड तथा इसके तमाम पदार्थ शाकनाशी का काम करते हैं। ये पानी में घुलनशील हैं। अधिक सान्द्रता पर ये भूमि के जीवाणुओं के नाशक का काम करते हैं।

(ग) **गन्धकाम्ल**:—अन्य अम्लों से इसका मूल्य कम होने के कारण यह अधिक प्रयोग में लाया जाता है। सान्द्रता अधिक होने पर यह खेत में साधारणतः सभी पौधों को नष्ट कर देता है। एक निश्चित स्तर तक सान्द्रता कम करके धान्य फसलों को बिना हानि पहुँचाये उनके खरपतवारों को नष्ट किया जा सकता है। यह पशुधन तथा मनुष्यों को हानिकारक है।

(घ) **बोरन के यौगिक** :—बौरैक्स, सोडियम बोरेट, ($Na_2\,B_4\,O_7.10\,H_2\,O$) (सोहागा) और कोलेमेनाइट ($Ca_2\,B_6\,O_{11}.\;5\,H_2O$) आदि साधारण शाकनाशी के रूप में प्रयुक्त होते हैं। ये अन्य शाकनाशियों के साथ जैसे $NaClO_3$ के साथ, अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं।

(च) आर्सेनिक के योगिकः—बहुत से रसायनों के साथ यह साधारण घासपात नाशी का काम करता है। आर्सेनिक पेण्टा ऑक्साइड का पानी में घोल बनाकर उसे खेतों में छिड़का जाता है तथा सोडियम आर्सेनेट जो कि **सोडियम हाइड्राक्साइड** तथा **आरसेनिक** ट्राईऑक्साइड के संयोग से प्राप्त होता है, खरपतवारों को नष्ट करता है। इसका घोल गाढ़ा तथा मोटा होता है एवं खेत में छिड़कने से समूचे घास-पातों को निर्मूल कर देता है। कम सांद्रता पर विशेष शाकनाशी का काम करता है।

(छ) क्लोरेट :—सोडियम क्लोरेट, जो पानी में अत्यधिक घुलनशील है तथा सभी पौधों को जला देता है, एक अच्छे घासपात नाशी की श्रेणी में आता है। यह मुख्य तथा साधारण शाकनाशी की तरह प्रयुक्त होता है। इसका प्रयोग सावधानी से करना चाहिए, क्योंकि यह एक तेज आक्सीकारक है और कूड़ा करकट को जला देता है।

(ज) अन्य अकार्बनिक घासपात नाशी :—सामान्य लवण की प्रचुर मात्रा अच्छे शाकनाशी का काम करती है। कैलसियम-क्लोराइड तथा ताँबा के यौगिक, दीवालों पर तथा धान्य फसलों में उगे खर-पतवारों को नष्ट करने के काम में लाये जाते हैं। फेरस सलफेट एक विशेष शाक-नाशी का काम करता है। यह चौड़े पत्ती वाले खरपतवारों को नष्ट करता है तथा घोल और चूर्ण दोनों दशाओं में प्रयुक्त होता है। अमोनियम नाइट्रेट तथा पोटैसियम क्लोराइड घासनाशी तथा उर्वरक दोनों की श्रेणी में आते हैं।

(२) कार्बनिक घासपात नाशी

(क) २-४-डी यौगिक—यह चक्रीय कार्बनिक यौगिकों के विभिन्न परिवर्तित रूप हैं। ये विशेष घासपात नाशी का काम करते हैं। २-४-डी अमरीकी कृषि-अन्वेषण की देन है। यह चौड़ी पत्ती वाले तथा घास-कुल के सभी पौधों को समाप्त करता है। रासायनिक अध्ययन के अनुसार यह २-४ डाइक्लोरो फीनाक्सी एसिटिक अम्ल के नाम से जाने जाते हैं। इनकी रासायनिक रचना इस प्रकार है :

२—४—डी०
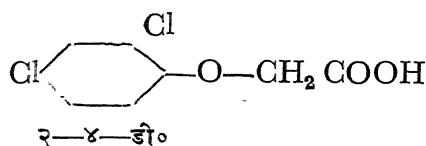
(१) २-४-डी अम्लः—इसका सोडियम कार्बोनेट के संयोग से प्राप्त मिश्रण पानी में घुलकर २-४-डाइक्लोरोफीनॉक्सी एसीटेट बनाता है जो घासपातों को पूर्णतया नष्ट करता है।

(२) २-४-डी सोडियम लवण—यह पानी में कम घुलनशील है तथा यह चूर्ण और घोल दोनों रूपों में प्रयुक्त होता है। ५० से ६० गैलन पतला घोल एक एकड़ के खरपतवारों को नष्ट करने के लिए पर्याप्त होता है।

(३) २–४–डी एमाइन लवणः—मोनो, डाई और ट्राई इथिल एमाइन, मोनो, डाई और ट्राई आइसो प्रोपाइल एमाइन एक दूसरे के साथ मिलकर भिन्न-भिन्न यौगिक देते हैं। ये पानी में घुलनशील हैं तथा इनका सान्द्र घोल २–३ गैलन प्रति एकड़ के हिसाब से खरपतवारों को नष्ट करने के लिए काफी होता है।

(ख) २–४–५ ट्राइक्लोरोफिनॉक्सी एसिटिक अम्ल :—२–४ डी में तीसरे क्लोरीन परमाणु का संयोग इस यौगिक की शाकनाशी शक्ति को बढ़ा देता है। यह झाड़ियों आदि को नष्ट कर देता है। इसका रासायनिक सूत्र इस प्रकार है :

Cl
Cl⟨ ⟩-O-CH_2 COOH
Cl
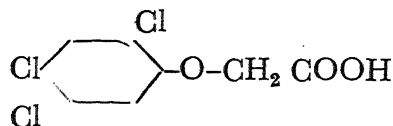
(ग) २–मिथॉक्सी, ४-क्लोरो फिनॉक्सी एसिटिक अम्ल :—यह इंग्लैंड में पहले-पहल बनाया गया था। यह रासायनिक गुणों मे २–४ डी के समान है और एक अच्छा घासपात नाशी है। इसका रसायनिक सूत्र निम्न है :

CH_3
Cl⟨ ⟩-O-CH_2 COOH
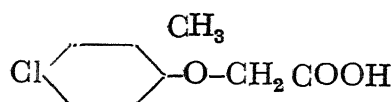
(घ) नाइट्रो यौगिकः—कीटनाशक के साथ इनका सान्द्र घोल घासपात नाशी का भी काम करता है। ४–६–डाइ नाइट्रो क्रियोसोल इसका मुख्य उदाहरण है। यह द्विदल तथा चारे की फसल में उगे घासपातों को नष्ट करता है।

(च) सोडियम-डाइनाइट्रो क्रियोसाइलेट—इसका सान्द्र घोल साधारण तथा तनु घोल विशेष शाकनाशी का काम करता है। २–४ डाइनाइट्रो –७–ब्यूटाइल फिनोल भी एक अच्छे एवं सस्ते श्रेणी का घास नाशक रसायन है।

(छ) तेल—मिट्टी का तेल, पेट्रोलियम आदि अच्छे शाकनाशी के उदाहरण हैं।

(ज) अन्य कार्बनिक घासपात नाशी :—पेण्टाक्लोरोफिनोल Cl_5C_6OH एक सस्ता रसायन है जिसमें ८०% पेण्टाक्लोरो फिनोल अन्य क्लोरीनेट कृत-फिनाल के साथ रहता है। यह तेल तथा पानी में घोलकर छिड़का जाता है।

फिनाइल-मरक्युरिक इथेनाल, अमोनिया-लैक्टेट तथा फिनाइल मरक्युरिक एसिड आदि मरकरी यौगिक हैं जो विशेष घासपात नाशी का काम करते हैं।

हमारे देश में उपरोक्त में से कुछ रासायनिक घासपात नाशी पदार्थों का परीक्षण किया गया है। परीक्षण केन्द्र कृषि अनुसंधानशाला दिल्ली तथा अन्य कृषि कालेजों के परीक्षण के फलों ने २–४-डी को अत्यधिक लाभदायक सिद्ध किया हैं और इनका ही प्रयोग हमारे देश में तेजी से हो रहा है।

१. रहस्यपूर्ण ग्रह का रहस्योद्घाटन

इटली के ज्योतिषविद् गीऔवनी श्चिआपरेली ने सन् १८७७ में **मंगल ग्रह** में सीधी रेखाओं का एक जाल सा देखा था जिसके बारे में उन्होंने बताया कि ये नहरें हैं। उसी समय से इस रक्ताभ ग्रह ने वैज्ञानिकों और कथाकारों का ध्यान आकृष्ट कर रखा है। जनधारणा है कि इस ग्रह की भौतिक अवस्थाएँ हमारी पृथ्वी की अवस्थाओं से निकटतम समानता रखती हैं अतः यह ग्रह मानव जाति के लिये अत्यन्त ही रोचक है। पर पिछले कुछ वर्षों में इस मत के सम्बन्ध में शंकायें उठायी जाने लगीं हैं। लोगों का कहना है कि पृथ्वी जैसी अवस्थायें मंगल में नहीं बल्कि शुक्र ग्रह में मिल सकती हैं। इस विचार का उदय सूर्य से दूरी के क्रम में शुक्र ग्रह सम्बन्धी संग्रहीत सूचनाओं के विश्लेषण से हुआ।

यह ग्रह एक निम्न ग्रह-संयोग है। पृथ्वी से इसकी दूरी चार करोड़ किलोमीटर है। मंगल ग्रह की अपेक्षा पृथ्वी से इसकी दूरी १,३०,००,००० किलोमीटर कम है। फिर भी एक लम्बी अवधि तक सौर-मंडल के सभी अन्य सदस्यों की तुलना में हम इसके बारे में कम जानते थे। इसका सर्वप्रथम कारण यह है कि जिस समय यह पृथ्वी के निकटतम आता है ठीक उसी समय इसका प्रेक्षण सबसे कठिन हो जाता है क्योंकि यह पृथ्वी और सूर्य के बीच में पड़ जाता है और हम इसके अन्धेरे पार्श्व को ही देख सकते हैं। जब उसका आलोकित पक्ष दिखायी देने लगता है तो इसका अर्थ होता है कि ग्रह हमसे दूर जाने लगा है। दूसरे, हमारा यह आकाशीय पड़ोसी अति मेघाच्छन्न रहता है और उस पर पड़ा पर्दा दूरबीनों के लिये इतना घना और अभेद्य होता है कि ज्योतिषविद् इसका धरातल नहीं देख सकते हैं।

परिक्रमा काल

शुक्र के धरातल की विशेषताओं के परदे में छिपे होने के कारण यह अब भी रहस्याच्छादित है कि इस ग्रह की परिक्रमा कैसी है ?

श्चिआपरेली ने यह विचार प्रस्तुत किया था कि यह मेघाच्छन्न ग्रह सूर्य की ओर सदा अपना एक ही पार्श्व रखता है। इसका अर्थ यह होता है कि इसका परिक्रमा काल वही है जो इसके कक्षीय चक्कर का काल है यानी हमारे समय की इकाइयों के अनुसार २२४ दिन १६ घंटा ४८ मिनट के बराबर है। अनेक वैज्ञानिक अब भी यही मानते हैं। लेकिन कुछ अन्य मत

भी प्रस्तुत किये गये हैं। अरिस्तार्ख बेलोपोल्स्की नामक रूसी ज्योतिषविद् ने अपने वर्णावलि अध्ययनों के आधार पर जो उन्होंने १९०३ ई० से १९११ ई० तक पुल्कोवो वैधशाला में किये थे, यह निष्कर्ष निकाला कि शुक्र ग्रह का परिक्रमा काल ३४.५ घंटा है।

यदि शिचआपरेली की बात ठीक है यानी शुक्र ग्रह का एक ही गोलार्द्ध सदा सूर्य के सामने रहता है और दूसरा सदा अन्धेरे में रहता है तो इसका अर्थ यह होगा कि दोनों गोलार्द्धों में ताप का भारी अन्तर है और ग्रह में लगातार भयानक आँधियाँ चलती रहती होंगी। पर ज्योतिष की नवीनतम खोजों से ऐसी बात का पता नहीं चलता। शुक्र ग्रह के रेडियोमीटर द्वारा किये गये अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि वहाँ का दिन का ताप +४०–५० अंश तथा रात्रि का ताप —२३ अंश है। यह अन्तर बहुत बड़ा नहीं है। इसका अर्थ है कि शुक्र का एक ही गोलार्द्ध सूर्य के सामने सदा नहीं रहता।

१९५६ में ओहियो विश्वविद्यालय (अमरीका) के ज्योतिषविद् ज० क्राउस ने सिद्ध किया कि शुक्र ग्रह ११ मीटर तरंग-पट्ट पर शक्तिशाली विकिरण का स्रोत है। विकिरण तीव्रता १३ दिन कम अवधि के अन्दर बदलती रहती है। इस घटना का पृथ्वी के परिक्रमा काल के साथ योग कर देखें तो सम्भवतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि शुक्र ग्रह का परिक्रमा काल लगभग २२ घंटे १७ मिनट है। पर यह पृथ्वी के परिक्रमा काल के प्रायः बराबर है अतः इस सम्बन्ध में शुक्र ग्रह हमारे ग्रह जैसा ही है।

बहुत दिनों से विदित है कि दोनों ग्रह संहति और आयतन में बहुत समान हैं। शुक्र का व्यास केवल १२,६०० किलोमीटर है, यानी पृथ्वी से व्यास के केवल १६० मीटर कम है। उसकी संहति पृथ्वी की संहति का ०·८२ है और घनत्व पृथ्वी के घनत्व का ०·८४ है।

वहाँ गरमी और जाड़ा भी होता है

अमरीकी ज्योतिषविद् डा० क्वीपर ने शुक्र ग्रह के ध्रुवों का पता लगाने में सफलता पायी। इस प्रकार उसने कक्ष के प्रति विषुवत रेखा का झुकाव ज्ञात कर लिया। यह ३२ अंश सिद्ध हुआ। खारकोव वासी ज्योतिषविद् वी० एजेर्स्की ने शुक्र ग्रह के विम्ब पर चमक के पट्टों के वितरण की तुलना की है। पता चला है कि नियमित परिवर्तन होते हैं जिनकी व्याख्या एक मात्र यही कहकर की जा सकती है कि यह मौसम के अन्तर हैं। जब एजेर्स्की विषुवत के झुकाव की गणना करने लगे जिससे कि ऋतुओं के आवर्तन की व्याख्या हो सके, तो वह अन्त में जिस अंक पर पहुँचे वह ठीक वही था जिस पर क्वीपर पहुचे थे। वह ३२ अंश था। हमारी पृथ्वी की विषुवत रेखा का झुकाव ३२·२७ अंश है।

शुक्र ग्रह का अध्ययन करने के सम्बन्ध में जो सबसे रोचक समस्यायें सामने आती हैं, उनमें एक है "समुद्री समस्या"। क्या वहाँ सागर और महासागर भी हैं? हाल तक अनेक ज्योतिषविद् इसे सम्भव नहीं समझते थे। इस मत के पक्ष में शुक्र ग्रह के वायु-मण्डल में कार्बन डाई-ऑक्साइड की बड़ी मात्रा का होना बताया है। यह विश्वास किया जाता था कि यदि इस ग्रह में

खुले विशाल जलागार होते तो कार्बनडाईआक्साइड झट पानी में घुल जाता। तब भौमिकीय दृष्टि से अल्पकाल में ही वायु-मण्डल इस गैस से मुक्त हो जाता। पर वह तो अब भी वहाँ दिखायी देती है। प्रसंगवश कह दें कि शुक्रग्रह में वनस्पतियों की विद्यमानता न होने के पक्ष में भी यही तर्क उपस्थित किया जाता है।

यूक्रेनी ज्योतिषविद् एन० बारावाशेव ने शुक्र ग्रह का फोटोमेट्रिकि अध्ययन करके १९४९ में यह निष्कर्ष निकाला कि यदि इस ग्रह का पूर्ण धरातल ही नहीं तो इसका अधिक भाग तो अवश्य ही महासागरों से ढका हुआ है।

उन्होंने देखा कि ग्रह सौर-दीप्ति फेंका करता है। यह तभी हो सकता है जब उसे अच्छा दित कर रखने वाले बादलों से उनमें पृथ्वी के उच्च कपासी मेघों की ही तरह हिम केलासों के होने के कारण ये सौर दीप्ति पैदा होती हों। या इसलिए पैदा होती हों कि सूर्य-किरणें विशाल जलागारों द्वारा प्रतिविम्बित होती हैं। सम्भवतः दोनों ही कारण हो सकते हैं। १९५५ में अमरीकी ज्योतिषविद् डी० मेंजल और एफ० व्हिपुल ने भी महासागरीय शुक्र ग्रह की बात कही थी। यद्यपि वे अन्य बातों के कारण इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे।

वायुमण्डल

अब हम प्रश्न के अत्यन्त महात्वपूर्ण पहलू पर आते हैं—शुक्र के वायुमण्डल की संरचना क्या है ? पृथ्वी और शुक्र की भौतिक समानताओं सम्बन्धी सारी बहस ही निरर्थक होगी यदि यह पता चले कि शुक्र का वायुमण्डल ऐसा है जिसमें जीवन सम्भव नहीं। अभी तक अधिकतर वैज्ञानिक वर्णावली अध्ययनों के आधार पर यही विश्वास करते थे कि इस ग्रह में ऑक्सीजन नहीं है। जो भी हो, शुक्र के वायुमण्डल के ऊपरी तह (उसका समतापमण्डल) प्रायः सम्पूर्णतया कार्बन डाईआक्साइड का है। इसका आक्सीजन तत्व पृथ्वी के वायुमण्डल के आक्सीजन तत्व का अधिक से अधिक हजारवा अंश है। अधिक दिन नहीं हुए जब निकोलाई कोजीरेव नामक सोवियत ज्योतिषविद् ने हमारे पड़ोसी के वायुमण्डल की वर्णावली में एक अवशोषण-पट्ट देखा जो किसी अज्ञात कार्बनिक अणु की उपस्थित के कारण वहाँ है। यह सिद्ध किया जा चुका है कि यह अणु पृथ्वी के वायुयण्डल में विद्यमान है। इससे क्या शुक्र और पृथ्वी के वायुमण्डलों में कम से कम कुछ समानता नहीं सिद्ध होती ?

बाराबाशेव इसे बहुत सम्भव समझते हैं। वह कहते हैं कि "इसमें कोई आश्चर्य की बात न होगी यदि आँक्सीजन बादलों के नीचे शुक्र के धरातल के समीप ही हो। यह सही है कि कार्बन डाईआक्साइड आक्सीजन से भारी होता है। पर पृथ्वी पर भी गरम हवा की धाराओं के साथ यह अधिक भारी गैस ऊपर चली जाती है और हलकी गैसों से उच्चतर स्तरों पर बनी रहती है।

जहाँ तक शुक्र ग्रह का सवाल है वहाँ सूर्य की गरमी हमारे यहाँ से दुगुनी तीव्रता के साथ पड़ती है। अतः भारी गैस का ऊपर उठ जाना वहाँ और भी प्रबलता के साथ हो सकता

है। इसके अतिरिक्त, शुक्र ग्रह का चुम्बकीय क्षेत्र पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र से लगभग पाँच गुनी तीव्रता रखता है और कार्बन डाईआक्साइड विषम चुम्बकीय होने के कारण एक अंश तक उसके द्वारा प्रतिकृष्ट हो जाता होगा। इससे भी हम उसी निष्कर्ष की ओर अग्रसर होते हैं। जहाँ तक शुक्र पर के तापमान का प्रश्न है, गत वर्ष यह मत व्यक्त किया गया था कि इसमें प्रबल परावर्तक गुण हैं और उसके धरातल का तापमान औसतन लगभग + ११ अंश है।

शुक्र ग्रह का अध्ययन चल रहा है और उसके धरातल पर विद्यमान अवस्थाओं के विषय में किसी अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँचने का अभी समय नहीं आया है पर वैज्ञानिक इस सम्बन्ध में अब जो धारणाएँ निर्द्धारित कर रहे हैं वे हाल तक की धारणाओं से बहुत भिन्न हैं। यदि अवस्थाओं की दृष्टि से शुक्र ग्रह हमारी पृथ्वी का अपना चचेरा भाई ही निकले तो यह अधिक आश्चर्य की बात नहीं होगी।

२. गगन-सोपान

यद्यपि मनुष्य ने सैकड़ों वर्षों तक वायुमण्डल का अध्ययन किया है पर बहुत सी चीजों उसके लिए अब भी पहेली बनी हुई हैं। आधुनिकतम प्राविधिक यंत्र-साधनों की सहायता से सोवियत अनुसन्धानकर्ता वायुमण्डल के सभी स्तरों का गहराई के साथ अध्ययन कर रहे हैं। राकेटों तथा पृथ्वी के मनुष्य-निर्मित उपग्रहों की सहायता से उन्होंने वायुमण्डल के सीमांत क्षेत्रों के बारे में महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये हैं। परन्तु वायुमण्डल के निचले स्तर, जिनका पृथ्वी के साथ सीधा सम्पर्क है, वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

यह जानना महत्वपूर्ण है कि कारखानों का धुंआ, विषैली गैसें आदि किस प्रकार वायुमण्डल के निचले स्तरों में जमा हो जाती हैं। वायु में मिली हुई इन दूषित वस्तुओं की जानकारी होने से इस बात की योजना बहुत उचित ढंग से बनायी जा सकती है कि कारखानों और बस्तियों की स्थापना कहाँ पर की जाये।

भूभौतिकी के सोवियत विद्वानों को विभिन्न प्राविधिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं, जिनमें विशेष ढंग के जहाज, मौसम का हाल मालूम करने वाले राकेट और एयरोस्टैट और ऊँचे पर्वतों पर स्थित प्रयोगशालाएँ सम्मिलित हैं।

वायुमण्डल के निचले स्तरों का अध्ययन करने का एक और साधन हाल ही में शोधकर्ताओं को उपलब्ध किया गया है। यह है मौसम का हाल ज्ञात करने वाली ३१३ मीटर **ऊँची मीनार** जो मास्को के निकट स्थित है।

यह मीनार इस्पात का एक बड़ा सा नल है जिस पर रुपहला रंग किया हुआ है। इसकी तली पचास नलों को शंकु के आकार में जोड़कर, जिनका व्यास लगभग ढाई मीटर है, तैयार की गयी है और मीनार इसी पर टिकी हुई है। 'इन छोटी-छोटी सलाइयों' पर आधारित होने के कारण मीनार विशेष रूप से स्थिर रहती है और भीषण से भीषण तूफान में इस्पात का यह नल हिल नहीं सकता।

इस्पात के नल में एक दरवाजा खुलता है। सीढ़ियों से ऊपर चढ़ कर उस कमरे में पहुँचा जाता है जहाँ लिफ्ट लगा हुआ है। इस लिफ्ट में और दूसरी लिफ्ट में यही अन्तर है कि यह हमें बादलों के पार ले जाती है।

सिगलन मिलते ही लिफ्ट ऊपर उठने लगती है। काँच के दरवाजों में से इमारत की मंजिलें, चक्करदार सीढ़ियों और बिजली की बत्तियां नीचे भागती हुई दिखायी देती हैं। प्रयोगशाला की चोटी तक पहुँचने में तीन मिनट लगते हैं।

विशेष रास्ते से निकलकर प्रयोगशाला के अन्तिम निरीक्षण-मंच पर पहुँचा जाता है जो पृथ्वी के धरातल से ३१३ मीटर ऊँचा है। यदि उसके निकट कहीं ईफेल टावर होता तो उसे बहुत ही नीचे झुक कर देखना पड़ता।

इस मीनार का डिजाइन स्टील स्ट्रक्चर डिजाइनिंग इंस्टीच्यूट ने तैयर किया था। धातु के के ढांचे नीप्रोपेत्रोव्स्की के बाबुश्किन कारखाने ने बनाये थे और इसे स्टील स्ट्रक्चर ट्रस्ट के मजदूरों तथा इंजीनियरों ने बहुत ही थोड़े समय में खड़ा कर दिया था।

इस मीनार के द्वारा वायुमण्डल की निचली तह के बारे में बहुत ही महत्वपूर्ण तथ्य-सामग्री एकत्रित हुई है। जो यंत्र इस्तेमाल किये जाते हैं उन्हें मीनार से लम्बी-लम्बी छड़ों द्वारा बहुत दूर बाहर तक पहुँचा दिया जाता है। इस तरह वे बहुत ऊँचाई पर स्थिर रहने के साथ ही वायुमण्डल के प्राकृतिक परिवेश में स्थित रहते हैं। बहुत से तारों की सहायता से इन यंत्रों द्वारा ज्ञात की गयी बातों की सूचना पृथ्वी पर स्थित प्रयोगशाला में पहुँचा दी जाती है।

यह मीनार संसार के सर्व प्रथम परमाणविक बिजलीघर के पास बनायी गयी है। यहाँ पर किये गये अवलोकनों से यह सिद्ध हो गया है कि परमाणविक बिजलीघर के कारण वायु दूषित नहीं होती और यहाँ प्राप्त की गयी तथ्य-सामग्री को भावी परमाणविक बिजली घरों की योजना तैयार करने में इस्तेमाल किया जायेगा।

———

१. नाभिक प्रतिक्रियावाहकों से बिजली उत्पन्न करने की नवीन विधि

अमेरिका के वेस्टिंगहाउस इलैक्ट्रिक कार्पोरेशन ने प्रयोगात्मक आधार एक ऐसा उपकरण विकसित किया है, जिसका उद्देश्य सीधे आणविक प्रतिक्रियावाहक के भीतर वाले ईधन-तत्वों से ही बिजली उत्पन्न करना है। इस उपकरण का नाम कम्पनी ने थर्मायोनिक-थर्मोइलेक्ट्रिक न्यूक्लियर कनवर्टर रखा है।

उपकरण का परीक्षण करने के सिलसिले में, वेस्टिंगहाउस के इंनजिनियरों ने इसे यूरेनियम से युक्त आणविक ईंधन के छड़ का रूप प्रदान किया। उसके बाद, छड़ को वेस्टिंगहाउस के परीक्षणात्मक प्रतिक्रियावाहक के भीतर प्रविष्ट कर दिया गया और जब प्रतिक्रियावाहक को चालू किया गया, तो उपकरण ने प्रतिक्रियावाहक द्वारा विकसित ऊष्मा को बिजली में परिणत कर दिया।

वेस्टिंगहाउस के अणुशक्ति विभाग के प्राविधिक निर्देशक, डा० डब्ल्यू० ई० शूप ने कहा कि यह पहला अवसर था, जब इस ढंग से अथवा किसी अन्य आणविक ईंधन से विद्युतशक्ति उत्पन्न की गयी। उन्होंने आगे कहा कि ऊष्मा को विद्युत में परिणत करने वाला यह नवीन उपकरण प्रारम्भ में भू-उपग्रहों को संचालित करने के लिए आवश्यक बिजली उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त हो सकता है।

२. वात और गठिया के रोगियों के लिए औषधि

शिकागो के डा० एमिल डी० डब्ल्यू० हौजर ने अमेरिकन मेडिकल एसोसियेशन की पत्रिका में प्रकाशित रिपोर्ट में बताया है कि वात और गठिया के रोगों के उपचार में व्यापक रूप से प्रयुक्त औषधि, 'हाइड्रोकोर्टिसोन' की अपेक्षा "ट्राइमसिनोलोन एसेटोनाइड" नामक एक नवीन अधिक कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। उन्होंने बताया है कि ६७ रोगियों पर इसका परीक्षण किया गया। उनमें से एक को छोड़ कर शेष सभी के मामले में इस नवीन औषधि के प्रयोग से पीड़ा में तत्काल कमी हुई, सूजन कम हो गयी और चलना-फिरना आसान हो गया। बार-बार इस की खुराक का प्रयोग करने पर भी रोगी के शरीर पर कोई अन्य बुरा प्रभाव नहीं पड़ा।

डा० हौजर का कथन है कि यह नवीन औषधि सुई द्वारा जोड़ों के भीतर वाले द्रव में पहुँचा दी जाती है किन्तु छोटी खुराक अधिक लाभदायक सिद्ध होती है।

डा० हौजर ने अपने अध्ययन के लिए १८ पुरुषों और ४९ स्त्रियों को चुना। उनकी आयु १९ से ८५ वर्ष के बीच थी। उपचार के पूर्व उन्हें पर्याप्त पीड़ा थी और उनकी गाँठों में सूजन थी। इससे वे जोड़ों को इधर-उधर घुमा नहीं पाते थे।

३. तीव्र गति वाले ट्रांजिस्टर का निर्माण

अमेरिका की बेल टेलिफोन लैबोरेटरीज ने सूचित किया है कि उस ने ऐसे ट्रांजिस्टरों का निर्माण करने के लिए एक नवीन विधि विकसित की है, जो परम्परागत उपकरणों की अपेक्षा १० गुनी अधिक गति से बिजली की धारा चालू करने में समर्थ हैं। लैबोरेटरीज के इंजिनियरों का कथन है कि 'एपिटैक्सियल डिफ्यूज्ड ट्रांजिस्टर नामक इस नवीन उपकरण में एक लाभ यह भी है कि इसमें प्रयुक्त आधारभूत पदार्थ की विद्युत-निरोधक क्षमता में दस गुनी कमी हो जाती है। बेल लैबोरेटरीज का यह भी कहना है कि विद्युदाणविक उपकरणों के लिए अर्द्ध-विद्युत-संचालक उपकरणों के निर्माण और उपयोग में यह बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

४. वहनीय तैल-शोधक संयन्त्र

अमेरिका में एक लघु तैल-शोधक संयन्त्र विकसित किया गया है जो ऐसे तैल-उत्पादकों के लिए विशेष रूप से सहायक सिद्ध होगा, जिनके तैल-कूप पाइपलाइन, रेल की सड़क या ऐसे साधनों के निकट स्थित नहीं हैं, जिनके द्वारा गन्दे तैल को किसी तैल कारखाने तक पहुँचाया जा सके। इस संयन्त्र को विचिटा, कंसास, की एक इंजिनियरिंग कम्पनी ने विकसित किया है।

यह संयन्त्र इतना छोटा है कि इसे ४० फुट लम्बी ट्रक से ढोया जा सकता है। ज्योंही ट्रक संयन्त्र को किसी तैल-कूप के निकट स्थापित करती है, इससे तैल को साफ करने की क्रिया प्रारम्भ की जा सकती है। इसकी क्षमता प्रतिदिन लगभग २००पीपे तैल को साफ करने की है। इससे गैसोलिन और ईंधन वाले तैल सहित कितने ही तैल-पदार्थ तैयार किये जा सकते हैं। यह संयन्त्र बिजली के मोटर से चालू होता है और इसे ठण्डा करने के लिए पानी की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस का भार १५ टन है।

५. इलक्ट्रोन गन द्वारा अन्तरिक्ष-युगीन धातुओं की जोड़ाई

अमेरिका के रिपब्लिक एवियेशन कार्पोरेशन ने धातु की जोड़ाई की एक नवीन, अति-शक्तियुक्त, 'इलेक्ट्रान गन' नामक प्रक्रिया विकसित की है, जिसका उपयोग अनेक प्रकार के अन्तरिक्ष-वाहनों के निर्माण में किया जा सकता है।

रिपब्लिक कार्पोरेशन के अनुसन्धानकर्त्ता इंजिनियरों ने सूचित किया है कि उन्हें इस प्रक्रिया से ऐसे जोड़ों का निर्माण करने में सफलता मिली है, जो ३,००० अंश फारेनहाइट तक ताप को सह सकते हैं। जिन धातुओं की जोड़ाई इस प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न हुई है, उनमें मोलिब्डेनम का मिश्रण और विशुद्ध टंगस्टेन जैसी धातुएँ भी हैं, जिन्हें अन्तरिक्ष यान के निर्माण की दृष्टि से आदर्श धातु माना गया है, क्योंकि वे अत्यधिक ताप को सह सकती हैं। इस प्रक्रिया

द्वारा जोड़ाई की गति प्रति सेकेण्ड १ इंच तक पहुँच गयी है, जोड़ाई की अन्य प्रक्रियाओं की अपेक्षा यह गति १५० गुनी अधिक तीव्र है।

६. नक्षत्रों व राकेटों से आने वाले संकेतों को सुनने वाला नया यन्त्र

बाह्य अन्तरिक्ष में लाखों मील की दूरी पर, नक्षत्रों एवं राकेटों से आने वाले हलके रेडियो-संकेतों को सुनने के लिए जो विद्युदणु-श्रवण तैयार किया गया है, उसे अमेरिकी सेना की सिगनल कोर द्वारा परीक्षण के रूप में चलाया जा रहा है। इस अति सूक्ष्मग्राही श्रवण-यन्त्र को 'रूबी मेसर एम्प्लीफायर' कहते हैं। आशा है कि इस यन्त्र की सहायता से दूर-दूर के नक्षत्रों, उप-ग्रहों तथा अन्तरिक्षगामी राकेटों की कक्षा का पता लगाने, अन्तरिक्ष में शस्त्रास्त्रों का जल्दी से जल्दी पता लगाने और अन्त में अन्तरिक्षगामी यानों के बीच संचार-व्यवस्था स्थापित करने में मदद मिलेगी।

इस श्रवण-यन्त्र को जब प्रयुक्त किया जाता है तब रूबी जैम को तरल हीलियम द्वारा शून्य फारेनहाइट से भी ४५२° डिग्री नीचे तक ठंडा किया जाता है। इस नीचे ताप-मान पर नकली पत्थर (रूबी) के अणु तथा विद्यदणु मन्द गति से चलते हैं। इस तरह अणु-कणों का शब्द के साथ टकराव कम हो जाता है। इस आणविक टकराव के न होने से रूबी मेसर यन्त्र बहुत ही हल्के संकेतों को सुनने तथा उन्हें प्रसारित करने का काम करता है, जिन्हें सामान्य रेडियों तथा टैलिविजन सैट न सुन सकते हैं और न ही उनकी ध्वनि को प्रसारित कर सकते हैं।

'रूबी मेसर' श्रवण-यन्त्र को आसानी से प्रयुक्त किया जा सकता है। इसका भार केवल २५ पौंड होता है और स्पर्शसूत्र को छोड़ कर उसका आकार इतना छोटा होता है कि इसे हाथ से उठाया जा सकता है। ह्यूज एयरक्राफ्ट कम्पनी ने इस छोटे से यन्त्र को तैयार किया है। इससे पहले इसी काम के लिए जो यन्त्र होता था वह भारी-भरकम होता था।

७. नया दुर्लभ खनिज पदार्थ

सोवियत भूगर्भ-विद्या विदुषी रईसा तिखोनेनकोवा ने कोला प्रायद्वीप में एक नये दुर्लभ खनिज पदार्थ **व्लासोवित** का पता लगाया है। इसमें ३० प्रतिशत से अधिक जिर्कोनियम होता है और देखने में यह पदार्थ मामूली स्फटिक जैसा होता है। इसका नामकरण सोवियत विज्ञान अकादमी के दुर्लभ पदार्थों के खनिज, भू-रसायन और स्फटिक संस्थान के निर्देशक तथा सुप्रसिद्ध भू-रसायनज्ञ कुज्मा व्लासोव के नाम पर किया गया है।

प्रकृति में व्लासोवित पारदर्शी कणों के रूप में पाया जाता है। यह स्थापित किया जा चुका है कि यह खनिज पदार्थ आमतौर से नियोबियम के भण्डारों में रहता है। (नियोबियम भी औद्योगिक दृष्टि से मूल्यवान पदार्थ है।)

८. सूखी जमीन पर धान की खेती

आज जबकि नदियों के संकीर्ण मुहानों से धान उगाने की आवश्यकता अनुभव हो रही है और जलीय साधनों का मितव्ययिता से उपयोग करना पड़ रहा है, सूखी जमीन पर धान की खेती कई दृष्टियों से अनिवार्य बनती जा रही है। इस दिशा में १९२५ में प्रोफेसर पी० ए० विट्टे ने नोवोचरकास्क के निकट शोधकार्य किया और बाद में अन्य वैज्ञानिकों ने भी इस काम को आगे बढ़ाया।

उनके अनुसन्धानों के फलस्वरूप कई तरह की समस्याएँ हल हो गईं और धान की ऐसी कई किस्में तैयार की गईं, जो सूखी जमीन पर पैदा की जा सकती हैं। धान उगाने के इन तरीकों का सामूहिक खेतों में प्रयोग भी किया जा चुका है।

९. सेलीसिल एनीलाइड निर्माण की नयी विधि

श्रीराम औद्योगिक अनुसंधान संस्था, दिल्ली, ने सेलीसिल एनीलाइड तैयार करने की एक नयी विधि निकाली है। सेलीसिल एनीलाइड एक फँफूदनाशक मिश्रण है, जो कपड़ा, चमड़ा, प्लास्टिक और कागज उद्योगों में बहुत काम आता है। सेलीसिल एनीलाइड को सड़न-रोधी मिश्रण के रूप में प्रयोग करने की एक विधि भी इस संस्था ने निकाली है।

सेलीसिल एनीलाइड फँफूद-नाश के लिए जिंक-क्लोराइड से ३०-४० गुना अधिक कारगर होता है। अभी तक यह भारत में तैयार नहीं होता था और विदेशों से ही मंगाया जाता था।

सेलीसिल एनीलाइड तैयार करने के लिए सेलीसिलिक अम्ल, एनीलीन, उत्प्रेरक और सोडियम कार्बोनेट पदार्थ की आवश्यकता पड़ती है। इनमें से एनीलीन को छोड़कर शेष सब पदार्थ भारत में ही उपलब्ध हो सकते हैं।

सम्पादकीय

१. वैज्ञानिक एवं प्राविधिक शब्दावली

दिल्ली में हुई एक बैठक में भाषण करते हुए शिक्षा-मन्त्री श्री कालू लाल श्री माली जी ने ये विचार प्रकट किये हैं कि वैज्ञानिक एवं प्राविधिक शब्दावली में अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का प्रयोग किया जाय और ऐसे शब्दों का निर्माण न किया जाय जो बोलने और समझने में कठिन तथा पाण्डित्यपूर्ण हों। उन्होंने सरल एवं बहुप्रचलित शब्दों के प्रयोग करने की सलाह देते हुए यह भी अभिमत प्रकट किया है कि जहाँ तक सम्भव हो अनेकानेक अंग्रेजी शब्दों को उसी रूप में आत्मसात कर लिया जाय !

सचमुच ही यह सुझाव अत्यन्त रुचिकर प्रतीत होता है। किन्तु क्या इसे कार्य रूप में परिणत करने में कठिनाई नहीं होगी ? क्या इसके अतिरिक्त कोई दूसरा चारा नहीं है ?

जहाँ तक राष्ट्रभाषा के द्वारा वैज्ञानिक शिक्षा का प्रश्न है, यह आवश्यक है कि हिन्दी का अविकार्य क प्रयोग हो। इसके लिए यह अपेक्षित है कि सभी प्रकार से विज्ञान के प्राय: सभी क्षेत्रों में हिन्दी को प्रविष्ट कराया जाय। यह तभी सम्भव है जब हम अंकों तथा शब्दावलियों में समान रूप से हिन्दी का व्यवहार करें। अंक हमारी भाषा के प्राण हैं। उन्हें हम यह कह कर नहीं ठुकरा सकते कि उनका प्रचलन अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में नहीं होता अथवा नहीं किया जा सकता। राष्ट्रभाषा में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के लिए यह कठिन होगा कि वे अंग्रेजी का भी समान रूप से ज्ञान प्राप्त करें।

अंग्रेजी शब्दों के समानार्थी हिन्दी शब्दों का और अधिक सरलीकरण कैसे हो, यह समझ में नहीं आता। यह ठीक है कि शब्द ऐसे बनाये जायँ जो अधिक लोगों की समझमें आ सकें, परन्तु हर शब्द सबकी समझ में नहीं आ सकता और न इतने सरल शब्द ही हमारे पास हैं कि सभी की जिज्ञासा पूरी की जा सके। शब्दों के निर्माण के समय यह ध्यान में रखा जाता है कि उनसे अन्य शब्दों की व्युत्पत्ति हो सके। ऐसा तभी सम्भव है जब हम संस्कृत की किसी धातु को आधार बनाकर शब्द बनाना प्रारंभ करें। यह सर्वविदित है कि संस्कृत का अध्ययन पाश्चात्य राष्ट्रों के लिए पाण्डित्य का विषय रहा है। पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत में उच्च कोटि का ज्ञान प्राप्त करते हुए अंग्रेजी बोलने वाले सभी राष्ट्रों में

संस्कृत की मर्यादा को स्वीकार किया है। फिर भला अपने ही देश में ऊधम मचाने से क्या प्रयोजन ? भारत का प्रत्येक बच्चा संस्कृत-शब्दों से परिचित है। परन्तु यदि जान-बूझ कर संस्कृतनिष्ठ शब्दों के विरुद्ध जिहाद उठाया जाय तो बात दूसरी है। अतः शब्दावली का निर्माण सरलीकरण के दृष्टिकोण से तो होना ही नहीं चाहिए। विभिन्न शब्दों में पृथक-पृथक भावों के वहन करने की शक्ति होती है और यदि किसी शब्द के स्थान पर उससे सरल शब्द रख दिया जाता है तो भाषा का चमत्कार भले न जाय परन्तु भाव की गूढ़ता का समुचित वहन नहीं हो पाता।

हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि हम रासायनिक तत्वों तक के नामों का हिन्दीकरण चाहते हैं। हमारा तो विश्वास है कि हिन्दी अंकों के प्रयोग तथा हिन्दी में तत्वों के संकेतों के लेखन द्वारा रसायन शास्त्र की सबसे बड़ी समस्या—सूत्र-लेखन-समस्या—का समाधान सरलता से प्रस्तुत किया जा सकता है। इसी प्रकार अन्य शाखाओं में कार्य किया जा सकता है।

भारत सरकार ने जो वैज्ञानिक शब्दावली तैयार कराई है, उसमें ऐसे अनेक शब्द हैं जिनको उनके मूलरूप में स्वीकार किया गया है। यथासम्भव नवीन शब्दों का निर्माण होते रहना चाहिए और मूलरूप को वहीं स्वीकृत करना चाहिए, जहाँ कोई दूसरा चारा न हो अन्यथा इस प्रकार की प्रवृत्ति से भी अनेक समस्याओं के उत्पन्न होने की आशंकायें हैं। सम्भव है तब यही कहा जाय कि फिर से अंग्रेजी में क्यों न पढ़ाई हो ?

हमारा सुझाव है कि केन्द्रीय शब्दावली निर्माण समिति में अधिकाधिक विद्वानों का सहयोग प्राप्त किया जाय। ये विद्वान न केवल अपने विषयों में पारंगत हों, वरन् उन्हें भाषा का भी समुचित ज्ञान हो। केवल भाषा या वैज्ञानिक विषयक ज्ञान ही पर्याप्त नहीं। साथ ही केन्द्रीय समिति को विभिन्न वैज्ञानिक संस्थाओं को मान्यता प्रदान करना होगा क्योंकि अनेक संस्थाओं में पारिभाषिक शब्दावली सम्बन्धी प्रचुर कार्य हो रहा है। यही नहीं, सरकार को चाहिए कि ऐसी संस्थाओं को इस दिशा में कार्य करने के लिए प्रेरित एवं आदेशित करे। हमारे राष्ट्र का भविष्य राष्ट्रभाषा की पूर्ण स्थापना पर ही निर्भर करता है क्योंकि शिक्षा के उचित माध्यम के न होने पर छात्रों का भविष्य अन्धकारमय हो जायगा। फिर तो अन्तर्राष्ट्रीय प्रगति के साथ कदम मिलाकर चलने के लिए हमारी भावी पीढ़ी स्वयं सजग प्रहरी का कार्य करेगी।

२. कागज का नवीन कारखाना

३ नवम्बर, '६० को देहरादून की बनअनुसंधान शाला में केन्द्रीय कृषि उपमन्त्री श्री एम० वी० कृष्णप्पा ने कागज के कारखाने का शुभारंभ किया। यह कारखाना ६० लाख रुपये की लागत से बनाया गया है। इसमें लिखने, छापने, बंडल बांधने के काम आने वाले कागजों का निर्माण होगा। इसके अतिरिक्त यहाँ पर ग्रीजप्रूफ, मशीन ग्लेज्ड सैंपुल तथा डूप्लेक्स बोर्ड भी बनाये जायेंगे। इस कारखाने में प्रति दिन ६ टन का उत्पादन होगा। इस कारखाने के निर्माण में जितना व्यय हुआ है उसका तृतीयांश "टेकनिकल कार्पोरेशन मिशन" ने सहयोग के रूप में दिया है।

यद्यपि भारत में हिमालय पर्वत पर कागज बनाने के लिए आवश्यक कच्चा माल बड़ी मात्रा में उपलब्ध है परन्तु यातायात की कठिनाइयों के कारण उसे मैदानों तक लाने में बाधा होती है। अतः वन अनुसंधान शाला ने सन् १९४६ ई० में ही यह निश्चय किया था कि कागज बनाने के लिए मिलीजुली सामग्री का उपयोग किया जाय। इस कारखाने के उद्घाटन से इस उद्देश्य की पूर्ति होती है। इसमें ऐसी सामग्री का उपयोग किया जायगा, जो अभी तक कहीं नहीं प्रयुक्त हुई। इस प्रकार से कागज निर्माण के लिए नवीन कच्चे माल की उपलब्धि के साथ ही देश में कागज-निर्माण की नवीन विधियाँ सामने आवेंगी। कहने की आवश्यकता नहीं कि उन्नत राष्ट्र के लिए कागज कितनी महत्त्वपूर्ण वस्तु है। भारत में इसे नवीन कारखाने के सूत्रपात से कागज उद्योग को एक नयी दिशा मिलेगी।

३. बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् का ग्रन्थ पुरस्कार

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् की ओर से प्रतिवर्ष कई पुरस्कार जिनमें से कुछ अहिन्दी प्रान्तों के लेखकों, कुछ बिहार प्रान्त के लेखकों तथा शेष अखिल भारतीय लेखकों को उनकी मौलिक रचनाओं पर प्रदान किये जाते हैं। इस वर्ष पुरस्कार के लिए निम्न विषयों की पुस्तकों पर विचार किया जायगा:

१. अहिन्दी भाषाभाषी लेखकों के लिए पुरस्कार विषय—हिन्दी मौलिक ग्रंथ।

२. बिहारी लेखकों के लिए पुरस्कार विषय—मनोविज्ञान, भारतीय चित्रकला तथा प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास।

३. अखिल भारतीय स्तर के पुरस्कार विषय— **रसायन शास्त्र** और साहित्यिक शास्त्र।

उपरोक्त पुरस्कार प्रतियोगिता में प्रकाशित पुस्तकों के भेजे जाने की अन्तिम तिथि ५ जनवरी १९६० है। ये पुस्तकें जनवरी १९५० से दिसम्बर १९६० तक की अवधि में प्रकाशित हुई होनी चाहिए। घोषित ६ पुरस्कारों में क्रमशः १,३ तथा २ पुरस्कार उपरोक्त तीन कोटि के पुरस्कार-विषयों पर होंगे। अतः स्पष्ट है कि वैज्ञानिक विषयों में रसायन शास्त्र पर एक पुरस्कार दिये जानें की योजना हैं। यह पुरस्कार अन्य पुरस्कारों की भाँति एक सहस्र रुपये का होगा।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने देश में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन की ओर विशेष ध्यान दिया है और स्वयं कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं। वैज्ञानिक विषयों पर पुरस्कार योजना से लाभ उठाने के लिए तरुण लेखकों के लिए यह अपूर्व योग है। आशा है अधिकाधिक लोग इस प्रतियोगिता में भाग लेकर मौलिक वैज्ञानिक साहित्य के लेखन में हाथ बटायेंगे।

साहित्यिक संस्थाओं में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग भी एक ऐसी ही दूसरी संस्था है जो साहित्यिक विषय के साथ ही क्रम से वैज्ञानिक विषयों पर भी मंगला प्रसाद पारितोषिक प्रदान करती है। यह पुरस्कार २१००) का होता है। वैज्ञानिक संस्थाओं में विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा प्रदत्त हरिशरणानन्द वैज्ञानिक पुरस्कार २०००) का होता है और प्रति वर्ष वैज्ञानिक विषयों की पुस्तकों पर प्रदान किया जाता है।

तरुण लेखकों को ऐसे अवसरों के लिए मौलिक साहित्य का सृजन करते रहना चाहिए तभी देश में वैज्ञानिक साहित्य के अभाव की पूर्ति होगी।

विज्ञान परिषद्, प्रयाग

३१ मार्च, १९६० तक के आय-व्यय का विवरण

आय	धनराशि	धनराशि
प्रारम्भिक रहतिया:—		
स्टेट बैंक, इलाहाबाद के चालू खाते में १-४-५९ को शेष		२,१३६.३३ रु०
बिक्री:—		
विज्ञान पत्रिका के लिए ग्राहकों से वार्षिक शुल्क	१,७१९·११	
प्रकाशन और पुस्तकों से	७९३·३६	२,५१२·४७
अनुदान:—		
उत्तर प्रदेशीय सरकार से आवर्त्तक अनुदान	२,०००·००	
उत्तरप्रदेशीय सरकार से अनावर्त्तक अनुदान पुस्तक हेतु	१,५००·००	३,५००·००
अन्य आय:—		
सदस्य शुल्क	८२८·७३	
विज्ञापन	३०·००	
हरिशरणानन्द प्रचार और पुरस्कार खाते	२४६·००	१,१०४·७३
ऋण:—		
श्री जे० एस० द्विवेदी		२०·२१
कुल योग—		९,२३७·७४

व्यय	धनराशि	धनराशि
वेतन:—		
लेखक	४००·०० रु०	
चपरासी	२९५·००	
एकाउन्टेन्ट	६०·००	
जमादार	६०·४८	८१५·४९
कागज		२,७१८·४८
छपाई		२,५४९·३७
डिजाइन		८०·००
बाइंडिंग		७८·८७
पारिश्रमिक लेखकों को		३२·६०
ब्लाक		२२९·८४
बैंक कमीशन		०·६५
स्टेशनरी		१९·६६
टेलीफोन		३·२७
पोस्टेज		५३१·२२
बिजली		१०३·२२
साइकिल		५·३७
खाद (बाग के लिए)		९·००
किताबों का पार्ट पेमेंन्ट		२००·००
फुटकर खर्च		९५·४४
बैंक और अन्य शेष:—		
स्टेट बैंक इलाहाबाद	१,६२७·४८	
नेशनल सेविंग सर्टीफिकेट	१२५·००	
पोस्टेज हाथ में (सर्टीफाइड सेक्रेटरी)	४८·७८	१,८०१·२६
कुल योग—		९,२७३·७४

स्थान: इलाहाबाद
दिनांक: २१ जून, १९६०

ह० रमेश चन्द्र कपूर
प्रधान मन्त्री।

ह० रामदास तिवारी
कोषाध्यक्ष।

ह० एच० जी० अग्रवाल एण्ड कं०
चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट।

विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका

३१ मार्च, १९६० तक के आय-व्यय का विवरण

आय	धनराशि	धनराशि	व्यय	धनराशि	धनराशि
प्रारम्भिक रहतिया—			**वेतन :—**		
स्टेट बैंक, इलाहाबाद के चालू खाते			क्लर्क	१,०७५·१९	
में १-४-५९ को शेष		३,७४७·६० रु०	चपरासी	४८१·००	१५५६·१९
अनुदान:—			पत्रिका की छपाई		३२२४·४१
साइंटिफिक रिसर्च कमेटी,			भवन का किराया		१३००·००
उत्तर प्रदेश से अनावर्त्तक अनुदान	५,०००·००		प्रबन्ध सम्पादक का पारिश्रमिक		९७५·००
भारत सरकार से अनावर्त्तक अनुदान	२,८००·००	७,८००·००	पोस्टेज		३६२·१५
ग्राहकों से वार्षिक शुल्क		१९४·३५	अनुवाद		२०७·५०
			पत्रिकायें		१६७·५०
			टाइपराइटर की सफाई आदि		६६·००
			जलपान आदि		३५·००
			फर्नीचर		२८·५०
			मार्ग व्यय		२०·००
			बाग के लिए पौधे		२०·००
			ठेला भाड़ा		६·३१
			बाइंडिंग		३·००
			बैंक कमीशन		१·९५
			बैंक तथा अन्य शेष :—		
			पोस्टेज हाथ में (सर्टीफाइड सेक्रेटरी)	८७·८५	
	कुल योग——	११,७४१·९५	स्टेट बैंक इलाहाबाद के चालू खाते में	३,५७३·६९	३६६१·५४
			शेष	कुल योग ——	११७४१·९२

स्थान : इलाहाबाद
दिनांक : १० जून १९६०

ह० रमेशचन्द्र कपूर
प्रधान मन्त्री

ह० रामदास तिवारी
कोषाध्यक्ष

ह० एच० जी० अग्रवाल एण्ड कं०
चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट

विज्ञान परिषद् भवन खाता

३१ मार्च, १९६० तक के आय-व्यय का विवरण

आय	धनराशि	धनराशि	व्यय	धनराशि	धनराशि
१-४-५९ का शेष :—					
हाथ में	८४·७१		भवन सामग्री		६१८·६१
बैंक के चालू खाते में	१,०५०·५२	१३५·२३	सेनेटरी फिटिंग्स		८४३·५०
दान :—			वेतन और मजदूरी		२२६·८६
श्री फूलदेव सहाय वर्मा	१,०००·००		वाटर टैक्स		१२६·६२
श्री हीरा लाल खन्ना	१,०५२·५०		फुटकर खर्च		३७·२५
किराया :—		२,०५२·५०	**३१-३-६० का शेष :—**		
अनुसंधान पत्रिका से १-१-५८ से				८४·७१	
२९-२-६० तक का ५० रु० प्रति			हाथ में	२,५५०·१८	२,६३४·८९
माह की दर से		१,३००·००	बैंक के चालू खाते में		
					४,४८७·७३
कुल योग——		४,४८७·७३			

१९ मई, १९६०
इलाहाबाद।

ह० रमेश चन्द्र कपूर
प्रधान मन्त्री

ह० रामदास तिवारी
कोषाध्यक्ष

ह० एम० अग्रवाल एण्ड कं०
चार्टर्ड एकाउण्टैंन्ट

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ९२ | २०१७ विक्र० अग्रहायण १८८२ शाकाब्द दिसम्बर १९६० | संख्या ३

ब्रह्माण्ड की ईंटें

डा० हीरालाल निगम

आदि काल से ही मनुष्य पदार्थ के सम्पर्क में आया, सम्पन्नता और अमरता प्राप्त करने की प्रेरणा से उसने पदार्थ के अन्तिम सत्य का अध्ययन करने का प्रयास किया। सभ्यता के प्रथम प्रभात में ही हिन्दू दार्शनिकों ने क्षिति, जल, पावक, गगन व समीर नामी पंच तत्वों से पदार्थ को बना बताया। यूनान में ईसा में ५०० वर्ष पूर्व विद्वानों का यह मत था कि पदार्थ-जगत के मूल में अग्नि, जल, वायु और पृथ्वी हैं। इसी मत पर आधारित उनकी तत्वसारिणी से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि रासायनिक प्रतिक्रियाओं से क्या अर्थ है? उदाहरणार्थ, लकड़ी के जलाने से ऊष्मा उत्पन्न होता है यानी लकड़ी की रचना पृथ्वी तथा अग्नि तत्व से हुई है। मिश्र, भारत चीन, यूनान और बैबीलोनिया आदि देशों के प्राचीन इतिहास मानव मस्तिष्क की पदार्थ सम्बन्धी कल्पनाओं से भरे पड़े हैं किन्तु उनमें न उलझकर यह समझ लेना पर्याप्त होगा कि हमारी पृथ्वी की समस्त वस्तुएँ ही नहीं वरन् सारे ब्रह्माण्ड की रचना रासायनिक तत्वों से हुई है। आधुनिक रसायन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि प्राचीन दर्शन की धारणा त्रुटिपूर्ण थी। यदि हम बौद्धिक रूप से क्षिति, जल व समीर को पदार्थ की तीन अवस्थाएँ ठोस, द्रव व वाष्प्य और गगन तत्व को दिक् तथा अग्नि तत्व को शक्ति का पर्याय मान लें तो पदार्थ व ब्रह्माण्ड रचना का रहस्य बुद्धिगम्य हो जाता है किन्तु रासायनिक दृष्टि से तत्वों की परिभाषा भिन्न है। **रासायनिक तत्व से ऐसे विशिष्ट कण का बोध होता है जिसमें केवल एक ही प्रकार के परमाणु** (atoms) **विद्यमान हों।** उदाहरणार्थ सुवर्ण का एक टुकड़ा ले लें—हम काटकर उसके अनेक खंड कर सकते हैं, छील कर बारीक छीजन प्राप्त कर सकते हैं, तेज आँच में गलाकर पानी की तरह बहा सकते हैं और अविक-

तेज आँच में इसे गैसीय रूप दे सकते हैं किन्तु प्रत्येक न्यूनतम खंड में, द्रव की प्रत्येक बूंद में, भाप के प्रत्येक बुलबुले में सुवर्ण परमाणुओं के सिवा और कुछ नहीं होगा। इस प्रकार **परमाणु** किसी तत्व का सूक्ष्म कण है जो सरलता से देखा जा सकता है।

एक ही प्रकार के परमाणु परस्पर संयोग कर अणु (molecule) बनाते हैं, जैसे दो आक्सीजन परमाणु मिलकर ऑक्सीजन अणु बनाते हैं। विभिन्न प्रकार के परमाणु परस्पर प्रतिक्रिया कर यौगिक (compound) बनाते हैं। विशेषता है और कि रासायनिक यौगिक के बनने में प्रतिकृत अणु और परमाणु अपना अस्तित्व खो बैठते हैं। विषाक्त क्लोरीन गैस और उतने ही विषाक्त सोडियम धातु के संयोग से हमारे भोजन की सर्वप्रिय वस्तु **लवण** का निर्माण होता है : कितना मनोरंजक विषय है यह? लवण यानी सोडियम क्लोराइड के एक अणु में एक सोडियम परमाणु व एक क्लोरीन परमाणु होता है। सांकेतिक रूप से सोडियम को *Na*, क्लोरीन को *Cl* और इसीलिए सोडियम क्लोराइड को *NaCl* लिखने की पद्धति है। वस्तुतः हर तत्व का एक **संकेत** है। संकेतों को मिलाकर सूत्र बनता हैं जैसे NaCl। इसी प्रकार नित्यप्रति की आवश्यक वस्तु शर्करा का सूत्र $C_{12}H_{22}O_{11}$ है यानी इसके एक अणु में १२ कार्बन परमाणु, २२ हाइड्रोजन परमाणु और ११ आक्सीजन परमाण हैं। चूने के पत्थर का सूत्र $CaCO_3$ है, यानी इसके एक अणु में एक कैलसियम परमाणु, एक कार्बन परमाणु और तीन ऑक्सीजन परमाणु हैं। गर्म करने पर इसका विभाजन हो जाता है; कार्बन डाई आक्साइड गैस (जिसका सूत्र CO_2 है) निकल जाती है और चूना (जिसका सूत्र CaO है) शेष रह जाता है। इस रासायनिक परिवर्तन को एक **समीकरण** द्वारा संक्षेप में लिखते हैं :—

$$CaCO_3 + \text{ऊष्मा} = CaO + CO_2$$
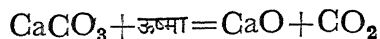
इससे स्पष्ट है कि परमाणु ही रासायनिक परिवर्तन की इकाई है। वस्तुतः परमाणुओं का अस्तित्व, परमाणुओं की अन्तर्रचना का अध्ययन ही पदार्थ के अन्तिम सत्य के अध्ययन का प्रतीक है। जितने प्रकार के तत्व हैं उतने ही प्रकार के परमाणु होंगे इसलिए ब्रह्माण्ड-रचना का रहस्य तत्वों की खोज में निहित है।

रासायनिक तत्व नामी ईंटों से पदार्थ मात्र का निर्माण हुआ है, यह "ईंटें" गणना में अभी तक १०२ हैं जिनमें से ८८ तो प्रकृति में स्थायीरूप से प्राप्य हैं। भार के मापदण्ड से हाइड्रोजन प्रथम तत्व है। यह सबसे हल्का तत्व है और यूरेनियम जिसकी संख्या ९२-वीं हैं, सबसे भारी है। बीच के चार तत्व टेक्नीशियम (तत्व संख्या, ४३) प्रोमीथियम (तत्व संख्या, ६१), ऐस्टेटीन (तत्व संख्या, ८५) और फ्रान्सियम (तत्व संख्या, ८७) हैं। ये चारों बहुत ही अस्थायी हैं। वस्तुतः लगभग ५ अरब वर्ष पूर्व जब हमारी पृथ्वी की सृष्टि हुई थी, ये चारों तत्व भी प्रकृति में प्राप्य रहे होंगे किन्तु रश्मिकारी होने के कारण इनका क्षय हो गया। इन चार तत्वों के सिवा भी कुछ परा-यूरेनियम तत्व हैं किन्तु ये तत्व और भी अधिक अस्थायी हैं और प्रकृति में नहीं पाए जाते। उक्त चार तत्वों की भाँति ये भी मानवनिर्मित हैं। आधुनिक रसायन अभी तक केवल दस (१०) ऐसे तत्वों के संश्लेषण में सफल हुआ है। कठिनाई यह है कि ये बड़े शक्तिमान रश्मिकारी तत्व हैं और इनका क्षय बड़े वेग से होता है। वस्तुतः सीस (लेड, तत्वसंख्या, ८२) व बिस्मथ (तत्व संख्या ८३) से भारी सभी तत्व—पोलोनियम, रैडान, रेडियम, ऐक्टीनियम, थोरियम, प्रोटोऐक्टीनियम और यूरेनियम रश्मिकारी हैं और आश्चर्य की बात नहीं यदि भविष्य में ये सभी तत्व इस धरातल से लुप्त हो जायँ।

तत्त्व सारिणी

हाइड्रोजन को इकाई मानकर तत्व संख्या के क्रमानुसार ब्रह्माण्ड की तथाकथित १०२ ईंटें निम्न सारणी में यथास्थान दिखाई गई हैं

तत्व का संकेत और संख्या भी दी गई है

H (१)																	He (२)
Li (३)	Be (२)											B (५)	C (६)	N (७)	O (८)	F (९)	Ne (१०)
Na (११)	Mg (१२)											Al (१३)	Si (१४)	P (१५)	S (१६)	Cl (१७)	A (१८)
K (१९)	Ca (२०)	Tc (२१)	Ti (२२)	V (२३)	Cr (२४)	Mn (२५)	Fe (२६)	Co (२७)	N (२८)	Cu (२९)	Zn (३०)	Ca (३१)	Ge (३२)	As (३३)	Se (३४)	Br (३५)	Kr (३६)
Rb (३७)	Sr (३८)	Y (३९)	Zr (४०)	Nb (४१)	Mo (४२)	Tc (४३)	Ru (४४)	Rh (४५)	Pd (४६)	Ag (४७)	Cd (४८)	In (४९)	Sn (५०)	Sb (५१)	Te (५२)	I (५३)	Xe (५४)
Cs (५५)	Ba (५६)	La	Hf (७२)	Ta (७३)	W (७४)	Re (७५)	Os (७६)	Ir (७७)	Pt (७८)	Au (७९)	Hg (८०)	Tl (८१)	Pb (८२)	Bi (८३)	Po (८४)	At (८५)	Rn (८६)
Fr (८७)	Ra (८८)	Ac															

La ५७	Ce ५८	Pr ५९	Nd ६०	Pm ६१	Sm ६२	Eu ६३	Gd ६४	Tb ६५	Dy ६६	Ho ६७	Er ६८	Tm ६९	Yb ७०	Lu ७१
Ac (८९)	Th (९०)	Pa ९१	U ९२	Np ९३	Pu ९४	Am ९५	Cm ९६	Bk ९७	Cf ९८	Es ९९	Fm १००	Md १०१	No 102	(103)

उक्त सारिणी से यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल के दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित तत्वों की प्रकृति क्या है ? किसी वस्तु के ऑक्सीजन में जलने से जो ताप व प्रकाश उत्पन्न होता है उसे ही पहले अग्नि तत्व की संज्ञा दी जाती थी, वायु भी ऑक्सीजन, नाइट्रोजन आदि कई तत्वों का मिश्रण है। जल हाइड्रोजन व ऑक्सीजन के विशिष्ट अनुपात से बना एक यौगिक है; क्षिति के गर्भ में तो लगभग ८८ तत्व हैं; आकाश शून्य स्थान है।

तत्वों की इस सारिणी को **आवर्त्त सारिणी** (Periodic Table) कहते हैं क्योंकि इसमें समान गुण वाले तत्व एक के नीचे एक रखे गये हैं।

प्रश्न यह उठता है कि एक तत्व दूसरे तत्व से क्योंकर भिन्न है ? इसका उत्तर आधुनिक रसायन ने ज्ञात कर लिया है और वह यह है कि प्रत्येक तत्व एक ही प्रकार के **मूलभूत** (fundamental) कणों से बना है। केवल उन कणों की संख्या और व्यवस्था भिन्न तत्वों में भिन्न है।

१९ वीं शती के तृतीय चरण में **प्लकर** (Plucker), **हिटार्फ** (Hittorf), **सर विलियम क्रुक्स** (Sir William Crooks) आदि कई वैज्ञानिकों ने यह देखा कि जब किसी गैस में कम दाब पर विद्युत प्रवाहित की जाती है (चित्र १) तो ऋणाग्र से एक प्रकार की किरणें निकलती दिखाई पड़ती हैं। ये किरणें **ऋणाग्र** से धनाग्र की ओर जाती हैं। इन किरणों को **ऋणाणु किरणें** (cathode rays) कहते हैं। इनमें वस्तुतः **ऋणाणु** या **इलेक्ट्रान** होते हैं जिनमें ऋण आवेश होता है। सर **जे० जे० थामसन** ने यह सिद्ध किया कि चाहे जो गैस ली जाय, या जिस भी तत्व के धनाग्र या ऋणाग्र बनाए जाएँ, प्रत्येक दशा में वही किरणें निकलती हैं, यानी इलेक्ट्रॉन सभी परमाणुओं के आवश्यक अंग हैं। चूँकि परमाणु विद्युत-उदासीन होता है, इसलिए इलेक्ट्रान का कोई **प्रति-कण** होना आवश्यक है। इसी प्रकार के प्रयोगों द्वारा अब यह ज्ञात हो गया है कि प्रत्येक तत्व की अन्तर्रचना में मुख्यकर तीन प्रकार के मूलभूत कण हैं:—

(१) **इलेक्ट्रान**—इसका भार हाइड्रोजन परमाणु के भार का $\frac{१}{१८४०}$ है यानी नगण्य है। इसमें ऋणात्मक आवेश है। आवेश की यही मात्रा इकाई मानी जाती है।

(२) **प्रोटान**—इसमें धनात्मक आवेश है। आवेश की मात्रा इलेक्ट्रान के आवेश के बराबर है। प्रोटान का भार हाइड्रोजन के भार के बराबर है।

(३) **न्यूट्रान**—इसका भार प्रोटान के बराबर है किन्तु इसमें विद्युत आवेश नहीं होता।

रश्मिकारी या **रेडिय धर्मी** पदार्थों से कई प्रकार की किरणें निकलती हैं। स्पष्ट है कि इन किरणों का सम्बन्ध उन तत्वों की अन्तर्रचना से है। **मैडम क्यूरी** (१८९५) तथा अन्य वैज्ञानिकों के अनुसन्धान द्वारा तीन प्रकार की मुख्य किरणें पाई गई हैं, जिन्हें **अल्फा किरण** (हाइड्रोजन का चौगुना भार यानी भार संख्या ४ और विद्युत आवेश प्रोटान का दुगना यानी आवेश संख्या +२ है); **बीटा किरण** (इलेक्ट्रान के बराबर आवेश संख्या व भार संख्या) तथा **गामा किरण** (ऊर्जा मात्र) की संज्ञा दी गई है।

सन् १९११ में **लार्ड रदरफोर्ड** ने देखा कि सोने की एक अत्यन्त क्षीण परत पर जब अल्फा किरणें टकराती हैं तो कुछ कण सीधे पार चले जाते हैं किन्तु कुछ परावर्त्तित हो जाते हैं। इससे यह अनुमान लगाया गया कि परमाणु के अन्तर्तम भाग में धन विद्युत है (यानी प्रोटान कण हैं) जिससे प्रतिकर्षित होकर अल्फा कण लौट जाते हैं, अन्य कण केन्द्र के दूरस्थ भाग से गुजरते हैं और जो ऋण आवेश (इलेक्ट्रान कणों के करीब) अन्तर्तम
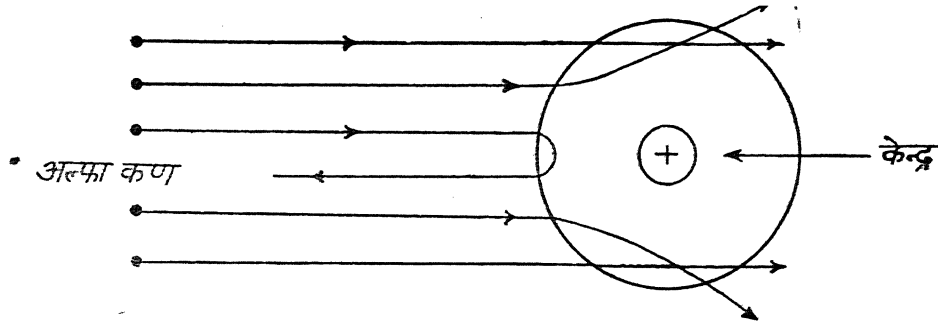
चित्र १

भाग के चारों ओर हैं उससे अप्रभावित रहते हुए सीधे पार हो जाते हैं (**चित्र** १); परमाणु का केन्द्र भारी होगा और शेष धरातल खोखला।

सन् १९१३ में आचार्य **नील बोर** ने परमाणु रचना का विद्युतीय सिद्धान्त प्रतिपादित किया।
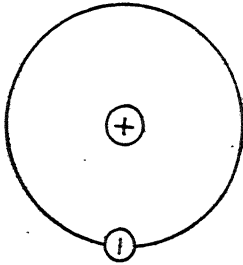
चित्र २

यह समझना सरल है कि प्रत्येक परमाणु के मध्य में एक केन्द्र होगा जिसमें धन आवेश होगा और
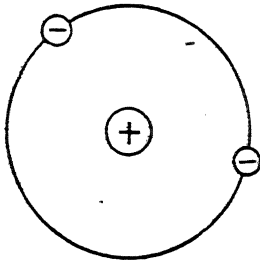
चित्र ३

केन्द्र के चारों ओर ऋणाणु यानी इलेक्ट्रान चक्कर लगाते होगें। इस प्रकार हाइड्रोजन परमाणु में (परमाणु संख्या १) एक प्रोटान केन्द्र में और एक इलेक्ट्रान परिधि में होंगे जिसकी संरचना **चित्र २** की भांति होगी। हीलियम परमाणु में दो प्रोटान केन्द्र में और दो इलेक्ट्रान परिधि में होंगे (**चित्र** ३)। हीलियम परमाणु का भार चार है इसलिए भार पूरा करने के लिए केन्द्र में न्यूट्रान भी होने चाहिए।

वाह्य परिधि में इलेक्ट्रान-व्यवस्था की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अमुक परिधि में एक निश्चित संख्या ही इलेक्ट्रान कणों की रह सकती है। **प्रथम परिधि में २, द्वितीय में ८, तृतीय में १८ और चतुर्थ में ३२ इलेक्ट्रान व्यवस्थित हो सकते हैं।** इसलिए लीथियम परमाणु में
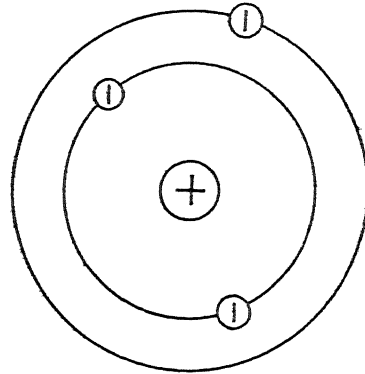
चित्र ४

(परमाणु संख्या ३) तीन प्रोटान केन्द्र में, तो तीन इलेक्ट्रान परिधि में होंगे। स्पष्ट है कि

२ इलेक्ट्रान प्रथम परिधि में होंगे और तीसरा इलेक्ट्रान दूसरी परिधि में (**चित्र ४**) लीथियम का भार ७ है इसलिए भार पूरा करने के लिए ४ न्यूट्रान केन्द्र में होना आवश्यक है। सोडियम परमाणु (परमाणु संख्या ११) में ११ प्रोटान केन्द्र मे तो ११ इलेक्ट्रान परिधियों में होंगे यानी २ प्रथम परिधि में ८ द्वितीय परिधि में और १ तृतीय परिधि में। सोडियम परमाणु का भार २३ है इसलिए भार पूरा करने के लिए १२ न्यूट्रान केन्द्र में होंगे। लीथियम और सोडियम के परमाणु चित्रण से यह स्पष्ट हो जायगा कि इलेक्ट्रान-व्यवस्था समरूप है यानी वाह्य परिधि में १ इलेक्ट्रान है और अन्दर की परिधियाँ इलेक्ट्रान कणों से संतृप्त हैं, इसीलिए लीथियम और सोडियम में इतनी समानता है और आवर्त्त सारिणी मे सोडियम लीथियम के ठीक नीचे आता है।

फ्लोरीन (परमाणु संख्या ९) में ९ प्रोटान केन्द्र में होंगे तो ९ इलेक्ट्रान वाह्य परिधियों में होंगे यानी २ प्रथम परिधि में और ७ द्वितीय परिधि में। प्रत्येक परमाणु यह प्रयत्न करता है कि परिधियों में इलेक्ट्रान संख्या भरपूर रहे, यानी सोडियम परमाणु अपनी तीसरी वाह्यतम परिधि से एक इलेक्ट्रान खो सकता है और फ्लोरीन परमाणु अपनी दूसरी वाह्यतम परिधि में एक और इलेक्ट्रान ले सकता है, तब दोनों अपनी अपनी वाह्यतम परिधियों में इलेक्ट्रान से संतृप्त होंगे। इसीलिए दोनों मिलकर सोडियम फ्लोराइड NaF नामक यौगिक बनाते हैं। रासायनिक संयोग को, ऐसे तर्कों के आधार पर वाह्यतम परिधियों के इलेक्ट्रानों का आदान-प्रदान का प्रतिफल मानते हैं क्योंकि इस आदान-प्रदान के कारण परमाणु में अवशिष्ट विद्युत-आवेश रहता है और उसी के आकर्ष-प्रतिकर्ष से रासायनिक संयोग को वल मिलता है। अवशिष्ट विद्युत आवेश जब परमाणु में होता है तो उसे आयन (Ion) की संज्ञा दी जाती है। केन्द्र में स्थित प्रोटान व न्यूट्रान रासायनिक संयोग से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। मार्के की बात यह है कि यदि केन्द्र में १ प्रोटान बढ़ाया जाय तो परिधि में एक इलेक्ट्रान अवश्य बढ़ाना पड़ेगा। प्रोटान व इलेक्ट्रान की संख्या स्पष्टतः बराबर होनी चाहिए क्योंकि परमाणु अपने स्वतंत्र रूप में विद्युत-उदासीन है। यही संख्या **"परमाणु संख्या"** कहलाती है और उसी क्रम में आवर्त सारिणी में परमाणु-विशेष स्थापित किया गया है (देखिये आवर्त सारिणी पृ० ८३)। न्यूट्रान केवल भार पूर्ति के लिए केन्द्र में रखे जाते हैं। यदि हम हाइड्रोजन परमाणु में एक और न्यूट्रान वढ़ा दें तो केन्द्र का भार दो हो जायगा किन्तु परमाणु संख्या वही रहेगी। हाइड्रोजन का यह रूप "ड्यूटीरियम" कहलाता है और परमाणु संख्या वही होने के कारण हाइड्रोजन के ही साथ आवर्त्त सारिणी में रखा जाता है यानी ड्यूटीरियम हाइड्रोजन का **समस्थानिक** है। प्रकृति में प्राप्त यूरेनियम (परमाणु संख्या ९२) का भार २३८ के लगभग है यानी उसमें ९२ प्रोटान व १४६ न्यूट्रान होंगे। इसे हम U–२३८ कहेंगे किन्तु कुछ अंश U–२३५ का भी है जिसमें प्रोटान तो ९२ ही होंगे किन्तु न्यूट्रान १४३ होंगे, यह यूरेनियम २३८ का एक समस्थानिक (U–२३५) हुआ, इसीको विखण्डित कर सर्वप्रथम **परमाणविक ऊर्जा** का सृजन हुआ। रसायन के इतिहास में यूरेनियम के इस समस्थानिक का अद्वितीय महत्व है। वस्तुतः प्रत्येक परमाणु के एक से अधिक समस्थानिक होते हैं और उन्हीं के भिन्न अनुपात में विद्यमान होने के कारण परमाणु भार पूर्ण संख्या (केन्द्र में स्थिति प्रोटान+न्यूट्रान के भार के बराबर) न होकर भिन्न में होता है।

उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि पदार्थ की अन्तर्रचना में कुछ मूलभूत कण हैं और कणों की संख्या व व्यवस्था के क्रम से ब्रह्माण्ड की अभी तक ज्ञात रासायनिक तत्व नामी इन १०२ ईंटों का निर्माण

हुआ है।

इन्हीं ईंटों को सजाकर विभिन्न परमाणुओं को विभिन्न प्रकार से व्यवस्थित करने से हमें नाना प्रकार के पदार्थों के अणु प्राप्त होते हैं; क्या लोहा, क्या लकड़ी, क्या चमड़ा, क्या कपड़ा, सभी के अणु इन्हीं १०२ प्रकार की ईंटों से बने हैं और इन ईंटों की अन्तर्रचना इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान (वस्तुतः अभी तक १६ मूलभूत कण ज्ञात हैं) आदि विद्युतआवेशित सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणों से हुई है, सृजन शक्ति उक्त आवेशों के आकर्षण-प्रतिकर्षण मात्र में निहित है जिससे "एकोऽहम् बहुस्यामः" पूर्ण रूप से घटित प्रतीत होता है।

रासायनिक तत्वों (जिनको हम ब्रह्माण्ड की ईंटों से सम्बोधित करते हैं) के परमाणु इतने सूक्ष्म हैं कि उन्हें समक्ष देखा नहीं जा सकता है। उनके प्रभावों को देखकर उनके अस्तित्व का अनुमान लगाना कठिन नहीं। उदाहरणार्थ, यदि हाइड्रोजन परमाणु की वाह्य परिधि से एक इलेक्ट्रान निकाल दिया जाय और शेष हाइड्रोजन केन्द्र जो धन विद्युत से आवेशित है, को नम वायु में प्रेषित किया जाय तो अपनी यात्रा में वह भाफ की एक लकीर सी बनायेगा जैसे कोई लघुतम हवाई जहाज उस पथ से जा रहा हो। यह लकीर या पथ-चिन्ह समक्ष देखा जा सकता है या उसका फोटो (**चित्र ५**) लिया जा सकता है। अणु यद्यपि परमाणुओं के संयोग से बनते हैं किन्तु उन्हें भी देखना कठिन है; हाँ, कुछ अणु जो बहुत ही विशाल-काय हैं उनकी झलक "इलेक्ट्रान माइक्रास्कोप" यानी सूक्ष्मवीक्षण यंत्र द्वारा देखी जा सकती है। यंत्र की शक्ति इतनी होनी चाहिए कि अणु विशेष के व्यास को लगभग २ लाख गुना बड़ा बनाकर दिखा सके परन्तु उसमें भी अणु विशेष एक लघुतम विन्दु के बराबर ही दिखाई देगा। इसी सिद्धान्त पर कार्य करते हुए डा० **इरविन मुलर** सन् १९५७ में अपने शक्तिशाली "फील्ड आयन-माइक्रास्कोप" द्वारा सर्वप्रथम टंगस्टन तत्व के परमाणुओं का वैयक्तिक दिग्दर्शन कराने में सफल हुए। उनके यंत्र में इतनी शक्ति

चित्र ५

थी कि वह अनुवीक्षित परमाणु के व्यास को २० लाख गुना बढ़ाकर दिखा सके। ऐसी दशा में भी टंग्सटन का एक परमाणु एक विन्दु ही दिखाई पड़ा, कई परमाणुओं का पुंज एक बड़ा बिन्दु बन कर ही रह गया । आधुनिक खोजों से यह ज्ञात होता है कि परमाणु का दिक्मान (यदि उसे वृत्ताकार मान लिया जाय) यानी उसका व्यास १ सेन्टीमीटर के १ करोड़वें हिस्से के बराबर है और केन्द्र का दिक्मान १ सेन्टीमीटर के १ खरब अंश के बराबर है।

प्रत्येक तत्व के परमाणु में, जिसका लघुरूप मानव मस्तिष्क को हैरान करने वाला है, ब्रह्माण्ड के सृजन की शक्ति निहित है, उन तत्वों का ज्ञान मानव-समाज के लिए कितना महत्त्वपूर्ण है, यहकहने की आवश्यकता नहीं। मानव चिन्तन की जिन प्राचीन एवं नवीन धाराओं के बीच यह ज्ञान हमें प्राप्त हुआ है, जिन विचार-वीथियों में क्रीड़ा कर रसायन विज्ञान प्रकृति-मन्थन से ये एक शत और दो रत्न हस्तामलक कर पाया है, उन्हीं का संक्षेप किन्तु क्रमशः वर्णन यहाँ अभीष्ट है। सुविधा के लिए हम निम्न विभाजन करके तत्वों की खोज का ऐहिासिक अवलोकन कर सकते हैं—

(१) आदिकाल के १६ वीं शताब्दी तक
(२) १७ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध
(३) सन् १७६० से सन् १७९५ तक
(४) सन् १७९६ से सन् १९२५ तक
(५) सन् १९२५ से आगे

प्राचीन भारत में सृष्टि-विद्या

माया प्रसाद त्रिपाठी

अर्वाचीन युग में सृष्टि-उत्पत्ति की भावना और सृष्टि-विद्या साधारणतया भूगोल का ही अंग मानी जाती हैं, क्योंकि भूगोल के नाम से अभिहित की जाने वाली ज्ञान की शाखा विशेष के विशद विवेचन में ब्रह्माण्ड में पृथ्वी की उत्पत्ति और इस प्रकार औत्सर्गिक रूप से ब्रह्माण्ड के भी उद्भव के सबसे आद्य प्रश्न के विषय में पर्यवेक्षण करना स्वभावत: परमावश्यक हो जाता है। भूगोल शास्त्र में पृथ्वी और ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के दोनों प्रश्नों पर विषय-प्रवेश अथवा आमुखीय समस्या के रूप में विचार किया जाता है, तथा इस प्रसंग में आवश्यकता के अनुसार ब्रह्माण्ड का कुछ संक्षिप्त इतिवृत्त भी प्रस्तुत किया जाता है। यह इतिवृत्त सृष्टि-विद्या भी कहलाता है।

मनुष्य की स्वाभाविक जिज्ञासा उसकी सभ्यता तथा तर्कना-शक्ति के प्रारंभ से ही उसे सृष्टि-उत्पत्ति और सृष्टि-विद्या के विविध पक्षों पर सोचने-विचारने के लिए सतत् प्रेरित करती आ रही है। विभिन्न देशों और कालों में सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न स्तरों तथा दशाओं में ज्ञान की इन शाखाओं के सम्बन्ध में मानव-समुदाय सदैव नाना प्रकार की भावनाएँ, विचित्र विश्वास व वैज्ञानिक विचार-परम्पराएँ लेकर चलता रहा है। इस बात का कारण यह था कि प्राकृतिक विज्ञानों के उनके आधुनिक वास्तविक रूप में समुद्भव के पूर्व दर्शन, धर्म, कर्मकाण्ड, मान्यताओं की रूढ़ियाँ, अंधविश्वास अथवा प्रकृत तथ्य सब एक में मिला दिए जाते थे। इस मिश्र विचार-पद्धति में कभी-कभी ऐसा होता था कि वैज्ञानिक अन्वेषण-प्रक्रिया और विवेचन को तिलांजलि सी दे दी जाती थी अथवा उनकी सर्वथा हत्या ही करा दी जाती थी।

इस क्षेत्र में यथार्थता का स्वरूप चाहे जो कुछ भी रहा हो, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि सभी प्राचीन महान सभ्यताओं एवं धर्मों में सृष्टि-उत्पत्ति और सृष्टि-विद्या का बहुत ही उत्कृष्ट वर्णन मिलता है। ग्रीक, बेबीलोनियन एवं मिस्री सभ्यताएँ तथा ख्रीष्ट, यहूदी आदि धर्म इसके जाज्वल्यमान दृष्टान्त हैं। ठीक यही बात भारत की प्राचीन सभ्यता और ब्राह्मणिक वा हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में भी पूर्णतया लागू होती है। यहाँ ब्राह्मणिक वा हिन्दू धर्म के नाम संकीर्तन में उसके सभी सम्प्रदाय तथा बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म भी अभिप्रेत हैं। आगे के विवेचनों से यह पूर्ण स्पष्ट हो जायगा कि प्राचीन भारतीयों ने भूगोल वा खगोल शास्त्र के अन्तर्गत आने वाली ज्ञान की उपर्युक्त दोनों शाखाओं का बहुत ही उत्कृष्ट और मनोरम विकास किया था। इस क्षेत्र में वे बहुत कुछ अनुपम ही नहीं थे, प्रत्युत उनके एतत्संबंधी भावनाओं एवं विचारों ने दूसरे देशवालों को बहुत प्रभावित किया था—दूसरे देशवालों ने उनसे बहुत सी बातें ली थीं।

*लेखक के अनुसंधान प्रबन्ध "Development of Geographic Knowledge in India" के प्रथम अध्याय से।

सृष्टि उत्पत्ति सम्बन्धी भारतीय मान्यता

अभी तक भारतीय इतिहास, पुरातत्व एवं वाङ्मय के सम्बन्ध में जितनी बातें विदित हैं और जितनी खोजें हुई हैं, उनके आधार पर वेदों को ही भारत का सबसे प्राचीन साहित्य माना जाता है। वेदों में भारतीयों की सृष्टि-उत्पत्ति तथा सृष्टि-विद्या की प्राचीनतम भावनाएँ बिखरी हुई हैं। सृष्टि-उत्पत्ति का रहस्य मानव-मस्तिष्क के लिए सदैव एक पहेली रहा है और आज भी वह बहुत-कुछ वैसा ही बना हुआ है। ऋग्वैदिक आर्यों के लिए भी वह एक महान पहेली था। इस रहस्य की जिज्ञासा और निरूपण के सम्बन्ध में ऋग्वेद में[1] बड़ा ही काव्यात्मक वर्णन दिया हुआ है।

सृष्टि-उत्पत्ति के रहस्योद्घाटन के सम्बन्ध में सर्वप्रथम यह कहा गया है कि सृष्टि का निर्माण एक भवन के रूप में हुआ था—जैसे वह किसी अप्रतिम मयशास्त्री (इंजीनियर) की[2] कोई अत्यन्त विस्मयजनक कृति हो। वह किसी अत्यन्त दक्ष बढ़ई की कला का दृष्टान्त है—महान् लाघव से बनाया हुआ कोई यंत्र है। यह भावना उन्नीसवीं-शती के पाश्चात्य वैज्ञानिकों के विचारों से बहुत मेल खाती है। हेल्महोल्ट्ज़, लार्ड केलविन, मैक्सवेल प्रभृति चोटी के विद्वान यांत्रिक भावना के उन्नायक थे।[3]

ऋग्वेद की अन्य विचारधाराओं के अनुसार सृष्टि का उद्भव प्राकृतिक संभूति-पद्धति के परिणाम स्वरूप हुआ था। सृष्टि-उत्पत्ति की ऋग्वैदिक भावना के सम्बन्ध में दशम मंडल के सूक्त ७२, ८२, १२१, १२९ तथा १९० सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। सृष्टि-उत्पत्ति सम्बन्धी दो सूक्तों में कहा गया है कि सृष्टि की उत्पत्ति असत् से सत् के विकास द्वारा हुई थी।[4] सूक्त १९० में कहा गया है कि ताप से ऋत (व्यवस्था क्रम) की उत्पत्ति हुई थी : तदनंतर रात्रि, समुद्र, संवत्सर का प्रादुर्भाव हुआ। (फिर) विधाता ने क्रमशः सूर्य, चन्द्र, द्यौस (आकाश, स्वर्ग) पृथ्वी, वायु तथा आकाशतरंग को उत्पन्न किया।

पूर्वोक्त विकासवादी विचारों में डार्विन के विकासवाद सिद्धान्त का पूर्वाभास स्पष्ट परिलक्षित होता है। तदनंतर ऊष्मादि की जो बातें कही गई हैं वे आधुनिक भौतिक विज्ञान की विचारणाओं एवं भावनाओं से बहुत मिलती हैं। आधुनिक भौतिक विज्ञान समस्त ब्रह्माण्ड को विद्युत का एक माया-जाल सिद्ध करने की चेष्टा करता है—और विद्युत भी ऊष्मा का एक रूपमात्र है।[5]

मंत्र १०।८२।१ तथा १०।१२१।१ के अनुसार सृष्टि का आरम्भ जल तथा हिरण्यगर्भाण्ड (सुवर्ण अण्ड) से हुआ था। यह कथन पृथ्वी के भूतात्विक तथा जैविक विकास परम्परा से पूर्ण मेल रखता प्रतीत होता है—जिसके अनुसार सर्वप्रथम जलयुग आया था। फिर उद्भिद्वत् जन्तुओं (zoophytes) आदिम मत्स्यों, सरीसृपों, अमेरुदण्डधारियों, मेरुदंडधारियों तथा स्तन-पायियों की उत्पत्ति हुई।

एच० डब्ल्यू० वालीं[6] कहते हैं, "अतः लोगों का विचार था कि सृष्टि का उद्भव किसी आदिम

---

१. १०।१२९।६-७; १०।७२।३-४; १०।८१।२-४
२. २।१५।३, और विशेष दे० "The cosmology of the Rgveda" by H.W.Wallis.
३. जेम्स जीन्स–The Mysterious Universe. p. 28.
४. १०।७२।२-३, १०।१२९।४।
५. ज० जीन्स, पृ० ६९।
६. वही, पृ० ५६।

सूर्योदय वा विद्युत झंझा से हुआ था"। इस धारणा में सृष्टि-उत्पत्ति के आधुनिक नीहारिका-वात्याचक्र सिद्धान्त (Nebular storm theory) की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती है।[७]

उपर्युक्त लेखक आगे कहता है, "एक मंत्र में यह सूचित किया गया है कि ब्रह्माण्ड किसी प्राथमिक पदार्थ या एकाई से विकसित हुआ था।[८]

प्राथमिक वायव्य (gaseous) नीहारिका वात्याचक्र तथा आकर्षण एवं विशालकाय तारों का परस्पर टकराना और ब्रह्माण्ड में अनेकानेक पिण्डों के उद्भव की बात को अधोलिखित पंक्तियों में भली भाँति पढ़ा जा सकता है—

"हे देवो! जब आप लोग अनंत अंतराल में एक दूसरे को पकड़े हुए खड़े हुए तो आप लोगों के पावों से, नर्तकों की भांति, घनी धूलराशि उड़कर छा गई।"[९]

"स्पष्टतया, अश्विनीकुमारों की गतियों से धूलि उड़ी, जिससे द्यौः (आकाश) और पृथ्वी का निर्माण हुआ; इससे मारे प्रसन्नता के देवों के हृदय में यह अभिलाषा उत्पन्न हुई कि पृथ्वी और द्यौः दोनो ठोस पिंड का रूप धारण कर ले।"[१०] इस कथन से भी यही ध्वनित होता है कि पृथ्वी प्रभृति पिण्ड किसी परवर्ती युग में ठोस हुए थे।

ऋग्वेद की सृष्टि-उत्पत्ति और सृष्टि विद्या की भावनाओं की प्रशंसा करते हुए वाली महोदय कहते हैं, "बहुधा आधुनिक भावनाओं की एक पूर्ण शृंखला प्राचीन शब्दावलियों, अभिधानों, गुणधर्म के संकीर्तनो वा सूक्तियों में बड़े ही सुन्दर ढंग से पिरोई हुई मिलती है।"[११]

ऋग्वेद की भाँति तैत्तरीय संहिता[१२] (३००० खीष्टाब्द पूर्व) तथा यजुः वाजसनेयी संहिता[१३] में भी ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हिरण्यगर्भ से बताई गई है। वाजसनेयी संहिता धार्मिक और उपाख्यानात्मक स्वर में कहती है कि चतुर्वर्ण, चन्द्र, सूर्य, वायु, आकाश तथा पृथ्वी आदि ब्रह्मा के विभिन्न अंगो से उत्पन्न हुई थी।[१४] किन्तु आगे चलकर इस संहिता के सत्रहवें अध्याय में सृष्टि विद्या-सम्बन्धी कुछ ऐसी बातें दी हुई हैं जिन्हे प्रायः वैज्ञानिक कहा जा सकता है। यहाँ भी आधुनिक नीहारिका सिद्धान्त का उल्लेख इस पंक्ति में स्पष्ट दिखाई पड़ता है—नीहारेण प्रावृता जल्प्या।[१५]

वैदिक मत के अनुसार द्यौस् (आकाश) तथा पृथ्वी अत्यन्त प्राचीन समय में एक थे और कालान्तर में जाकर के उनका पृथक्करण हुआ।[१६] निष्कर्ष रूप में वेदों का यह भी मत है कि आकाश, पृथ्वी तथा काल तीनों का उद्भव हिरण्य-गर्भ से ही हुआ था, अथवा दूसरे शब्दों में, समस्त देश और काल एक ही सत्ता व इकाई के अंग हैं। इस भावना में तथा प्रो० अलबर्ट आइंस्टाइन के सापेक्षवाद सिद्धान्त (theory of Relativity की दिक्काल संततता[१६] की भावनाओं में पर्याप्त सामंजस्य पाया जाता है।

---

७. The Physical Basis of Geography (chap 1) by Wooldridg- and Morgan.
८. १। १६४।६, ४६; १०।८२।६।
९. १०।७२।६।
१०. वि० दे० १०।२४।४-५का निहितार्थ, वाली-पृ० ४३।
११. पृ० ९०।
१२. तै० सं० ४।२। ८।२ (कीथ का आंग्लानुवाद)।
१३. वा० सं० २३।१(ग्रिफिथ का आंग्लानुवाद)।
१४. ३१। ११-१२-१३।
१५. १७।३१ (रामसकल मिश्र संपादित, उवट तथा महीधर भाष्य सहित)।
१६. वही ३४।४५ तथा अन्य।

आध्यात्मिकता तथा धार्मिकता की धारा में चलता हुआ ऐतरेय ब्राह्मण[17क] सृष्टि उत्पत्ति के संबन्ध में अपना मत इस प्रकार अभिव्यक्त करता है—

"प्रजापति ने इच्छा की कि मैं सन्तान उत्पन्न करूँ और अनेक हो जाऊँ। उसने तय किया। उसने तय करके इन लोकों को उत्पन्न किया—पृथ्वी को, अन्तरिक्ष को, द्यौ को। फिर उन लोकों को उत्तापित किया। उस उत्तापन से ज्योतिष्पिण्ड उत्पन्न हुए। पृथ्वी से अग्नि, अन्तरिक्ष से वायु और द्यौ से सूर्य। फिर उन ज्योतियों को उत्तापित किया......।" तैत्तिरीय ब्राह्मण भी यह स्वीकार करता है कि सर्वप्रथम जल उत्पन्न हुआ था, और तदनन्तर पृथ्वी[18]।

शतपथ ब्राह्मण (१००० ई० पू०) की षष्ठ कण्डिका से भी "ब्रह्माण्ड रचना" के संबन्ध में पर्याप्त सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं। इसके अनुसार सर्वप्रथम जल की रचना हुई थी[19]। तत्पश्चात् अण्ड, फेन[20], मृत्तिका, पंक, क्षार-मृत्तिका, सैकत, कंकड़, चट्टानों, अयस्क, स्वर्ण, वनस्पतियों, वृक्षों आदि की सृष्टि हुई थी।[21] आगे वायु, सूर्य के त्रसरेणुओं और पवनों की उत्पत्ति का वर्णन है।[22] ६।१।२।३ में कहा गया है कि, "अण्ड की जो कठोर खोल थी, वह आकाश बन गई।" तदनन्तर सूर्य, चन्द्र, तारों तथा विविध दिशाओं के उद्भव का वर्णन है। किन्तु इस इतिवृत्त में वैज्ञानिक तथ्य बहुत थोड़े हैं।

(क्रमशः)

---

१७. प्राचीन भारतीय यह जानते थे कि देश और काल दोनों सापेक्ष (relative) हैं। उन्हें इस बात की स्पष्ट भावना थी कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में (यथा आधुनिक विज्ञान के फोटोन और फोटोन राकेटों पर) समय की गति मंथर हो जाती है और अन्तोगत्वा वह एकदम गतिशून्य हो जाता है। विष्णुपुराण (४।१।६७–७७) में वर्णित सम्राट् रैवत की कथा बताती है कि जब वे ब्रह्मा के यहाँ गये और वहाँ एक संगीत का आयोजन सुनते हुए प्रतीक्षा करने लगे, तो इसी में न जाने कितने युग बीत गए, जो उन्हें केवल एक क्षण प्रतीत हुए। भारतीय कालमापन में ब्रह्म दिन और रात्रि की भावना भी इस तथ्य को प्रतिपादित करती है।

१७क. कीथ का आंग्लानुवाद—५।३२; पृ० २५६

१८. अष्टक १, अध्याय १, अनुवाक ३।

१९. श० ब्रा० ६।१।१।९।

२०. ६।१।१।१३।

२१. ६।१।१।१३।

२२. ६।१।१।२।

पशुरोगों की कुछ देहाती दवाएँ

सालिग्राम शर्मा

मनुष्यों की तरह पशुओं के शरीर में भी अनेक प्रकार के रोगों का आक्रमण होता है। किसान के पशु उसके लिए कितने उपयोगी होते हैं यह कहने की आवश्यकता नहीं है। कृषक की जीविका उसके पालतू पशु—बैल, गाय, भैंस और भेड़-बकरियों पर निर्भर होती है। देहात में किसान इन पशुओं के रोगों की बड़ी सस्ती दवाएँ जानते हैं। नीचे पशुओं के कुछ रोगों के नाम, उनके लक्षण और औषधियों के नुस्खे दिये जाते हैं:—

१. **मरी, चेचक या मतहाई**—यह एक तरह से पशुओं का प्लेग है। अँग्रेजी में इसे 'रिंडर पेस्ट' कहते हैं। यह बीमारी वास्तव में ऐसी माता नहीं है जैसे मनुष्यों को होती है लेकिन कभी कभी इसमें भी दाने दिखाई पड़ते हैं। यह छूत से लगने वाली बीमारी है। इसमें पहले कँपकँपी देकर बुखार चढ़ता है, तत्पश्चात् मुँह के भीतर सुर्खी होती है। अंततोगत्वा इस बीमारी में खूनी दस्त आने लगते हैं। यदि सावधानी से चिकित्सा न की गई तो पशु मर जाता है।

चिकित्सा—इस रोग के होने के पूर्व ही जिला के सरकारी डाक्टर से टीका लगवा देना चाहिए। टीका लग जाने से छ: महीने तक यह बीमारी पशु को नहीं होती। इसके अतिरिक्त जिस पशु को रोग हो गया हो उसे आधा पाव नमक पानी में घोलकर पिला देना चाहिए जिससे कब्ज दूर हो जाय। बुखार दूर करने के लिए दिन में तीन बार चार-चार माशे 'कुनैन' देनी चाहिए।

२. **खुरपका या खुरहा**—यह बीमारी भी छूत वाली है। इस रोग के आक्रमण से मुँह और खुर दोनों में छाले पड़ जाते हैं। इसमें पहले जाड़ादेकर ज्वर आता है। पशु लँगड़ाने लगता है और जुगाली करना बन्द कर देता है। जब तक छाले नहीं फूटते, तब तक आराम नहीं होता।

चिकित्सा—शोरा १ तोला, कपूर ८ माशा, शराब १ छटाँक और पानी आधा सेर मिला कर दिन में तीन बार देना चाहिए। इससे पशु का बुखार कम हो जायगा। छालों के ऊपर फिटकिरी या सुहागे का पानी लगाना चाहिए।

३. **गठिया**—यह रोग भी संक्रामक है। इसमें प्राय: चमड़े के नीचे सूजन होती है। इस बीमारी के आक्रमण के होते ही पशु घंटे भर में ही अचानक अकड़ जाता है और बिल्कुल हिलडुल नहीं सकता। कभी-कभी तो पशु इतनी जल्दी मर जाता है कि दवा भी नहीं हो पाती। यह बीमारी शरीर के विभिन्न अंगों में हो सकती है।

चिकित्सा—तारपीन का तेल आधी छटाँक और अलसी का तेल दस छटाँक मिला कर रोगी पशु को पिलाना चाहिए। इसके अतिरिक्त इस रोग में तीन सेर पानी में ½ छटाँक फिनाइल पिलाना लाभकारी होता है।

४. **गलसूजन या घेघा**—यह भी छूत का रोग है। इस बीमारी में गले और जीभ में बहुत सूजन आ जाती है। यह रोग बूढ़ों की अपेक्षा युवा पशुओं को अधिक होता है। पशु को पहले बुखार आता है। तत्पश्चात् गले में ऐसी सूजन बढ़ती है मानो किसी ने चारों तरफ से रस्सी बाँध दी हो। मुँह से लार बहती है। साँस लेने और थूक निगलने में बहुत कष्ट होता है।

चिकित्सा—अलसी का तेल एक पाव, आँवला सार गंधक दो छटाँक, सोंठ सवा तोला और चावल का माँड़ आधा सेर। यह एक तेज जुलाब का काम करता है। इसे पिलाने से पशु को अवश्य लाभ होता है। मुँह को फिटकिरी के पानी से धोना चाहिए।

५. **खूनी आँव**—खराब चारा, गन्दा पानी, अधिक गर्मी या दिन में अधिक गर्मी के समय काम करने के कारण पशुओं को यह रोग हो जाता है। इसमें पशु को खूनी आँव आने लगती है। इस बीमारी में भी पहले मवेशी को बुखार आ जाता है।

चिकित्सा—सौंफ, अजवायन, सोंठ, नौसादर सब दो-दो तोले और सबके बराबर नमक मिलाकर चावल के माँड़ के साथ दिन में तीन बार पिलाना चाहिए।

६. **खसरा**—इसे देहात में 'खौरा' या 'खेवरा' भी कहते हैं। यह बीमारी भी छूत की है। इस बीमारी की उपत्ति पशुओं की शारीरिक गंदगी से होती है। यह पशुओं की खुजली का रोग है। सबसे पहले कंधे या गर्दन से यह बीमारी शुरू होती है और बाद में पूरी देह में फैल जाती है। रोगग्रस्त स्थान के बाल तक झड़ जाते हैं और खून निकल कर बहने लगता है।

चिकित्सा—१ सेर गंधक, आधा सेर चूना, दस सेर पानी में खूब मिलाकर पकाये और ठंडा करके बोतल में भर कर रख दे तथा वही पशु को खूब लगावे। इसके अतिरिक्त तम्बाकू का काढ़ा और कंड़े की राख लगाना भी गुणकारी है।

७. **पोंका**—यह दस्त की बीमारी है। इसमें पशु जल्दी-जल्दी पतला गोबर करता है। यदि उसकी दवा न की गई तो जान तक का खतरा रहता है।

चिकित्सा— खरिया मिट्टी आधी छटाँक, कत्था पाव छटाँक, सोंठ पाव छटाँक, अफीम ४ माशा, देशी शराब १ छटाँक—ये दवाइयाँ चावल के माँड में मिला कर सुबह और शाम देनी चाहिए। उपर्युक्त औषधियों के अतिरिक्त बीमार पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए। बीमार पशु को को मारना, डराना, धमकाना और काम में लगाना हानिकारक है।

———

समुद्री बगीचें

कु० ऊषा माथुर

बगीचे का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। हममें से बहुतों को न केवल सुन्दर-सुन्दर बगीचे देखने का शौक है वरन् अपने-अपने घरों में लगाने की अकांक्षा भी है। आप को यह भी ज्ञात होगा कि दुनियाँ के सात आश्चर्यों में से एक आश्चर्य 'हवाई बगीचा' (hanging garden) है और यह अत्यधिक आश्चर्य होगा कि जिस प्रकार भूमि के ऊपर सुन्दर बगीचे देखने में आते हैं ठीक उसी प्रकार समुद्र के गर्भ में भी सुन्दर और अद्भुत बगीचे देखने को मिलते हैं। जिन्हें कभी रामेस्वरं या द्वारकानाथ के समुद्री तटों पर घूमने का अवसर प्राप्त हुआ है वे अवश्य इन बगीचों से परिचित होंगे। यह बगीचे 'समुद्री बगीचे' के नाम से विश्वविख्यात हैं।

सबसे पहले सन् १६३७ में बेन जॉनसन ने लिखा है कि "समुद्र के बगीचे" में प्रायः एक ही किस्म के पौवे—'अल्गी' नामक उद्भिद पाये जाते हैं: इन्हें 'समुद्री घासों' के नाम से भी पुकारते हैं। लांगफैलो ने भी अपनी कविताओं में इनका वर्णन 'सी-वीड्स समुद्री जंगली-घासे' के नाम से किया है। ये 'समुद्री घासें' बहुत सुन्दर, चमकीली चटक रंगों और विभिन्न रूपों में पाई जाती हैं जिससे इनकी छवि अनोखी हो जाती है और नवीन कल्पनायें करने की प्रेरणा मिलती हैं। ये प्राकृतिक "समुद्री बगीचे" अपनी सुन्दरता की बराबरी माली द्वारा सुसज्जित बड़े-बड़े बगीचों से करते हैं। 'अल्गी' उद्भिदों में फूल नहीं खिलते हैं, वरन् इनकी रंग-बिरंगी छटा स्वयं ही फूलों का रूप बना लेती है और जब लहरें हिलोरें लेती हैं, सुहावनी हो जाती है।

समुद्री बगीचों में पाये जाने वाली समुद्री अल्गी उद्भिद का वनस्पति-शास्त्र वेत्ताओं ने उनके विभिन्न रंगों के अनुसार वर्गीकरण किया है। जैसे:—नीली हरी अल्गी, हरी सुनहरी, भूरी, लाल या गुलाबी अल्गी। प्रायः प्रत्येक अल्गी में अन्य पौधों के समान क्लोरोफिल के रंग कण पाये जाते हैं जिसके कारण उद्भिद हरे रंग के होते हैं। अल्गी में इसके अतिरिक्त अन्य कण भी पाये जाते हैं, जिसके फलस्वरूप वह विभिन्न रंगों की प्रतीत होती है और इन्हीं मुख्य कणों से उनका नाम भी रक्खा गया है जैसे:—नीला हरा रंग, फाईकोसियानिन कण (Phycocyanin) होता है अतः इसे सियानोफाइसी या मिक्सोफाइसी अल्गी कहते हैं। हरा रंग क्लोरोफिल ए और बी के कारण है अतः हरे रंग वाली अल्गी को क्लोरोफाइसी अल्गी कहते हैं। पीली हरी अल्गी में ज़ेनथोफ़िल रंग कण की अधिकता के कारण उन्हें ज़ेनथोफ़ाइसी या क्राई-सोफ़ाईसी कहते हैं। समुद्र में भूरी अल्गी बहुतायत से पाई जाती है और इसका भूरा रंग फ़्यूकोज़ेनथिन रंग कणों के कारण है। अतः इन्हें फ़्योफ़ाइसी कहते हैं। समुद्री अल्गी में लाल अल्गी सबसे अधिक सुन्दर होती है। इनका लाल रंग फ़ाईकोएरीथ्रिन रंग कण के कारण होता है। इन्हें रोडोफ़ाईसी भी कहते हैं।

समुद्र में इन अल्गी उद्भिदों को देखकर प्रायः देखने वालों को भ्रम हो जाता है कि

शायद किसी ने बहुत सुन्दर कालीन बिछाया है। सब समुद्रों में अल्गी उद्भिदों का क्रम एक-सा ही पाया जाता है। जैसे-जैसे छिछले थल से गहरे जल की ओर बढ़ते हैं वैसे नीले हरे-हरे, गुलाबी, लाल, बैंगनी, भूरे तत्पश्चात् चटक लाल अल्गी उद्भिद पाये जाते हैं। इस प्रकार नीली हरी अल्गी सबसे उथले जल में और लाल अल्गी बहुत गहरे जल में पाई जाती
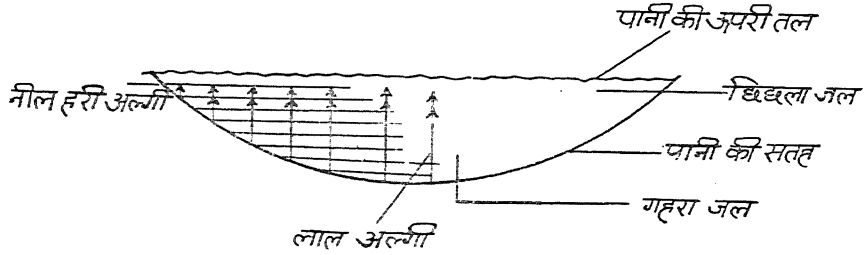
हैं (३०० फीट गहराई तक)। ये उद्भिद विभिन्न ऊँचाई तथा आकार के होते हैं। इनकी ऊँचाई के अनुसार ही इन्हें समुद्री मैदान (Sea meadow) तथा समुद्री जंगल (Sea forest) कहते हैं। नीली-हरी अल्गी जेली या डोरनुमा और हरी, कुछ धागे के समान होती है। कुछ में मैदानी पौधों के समान जड़ व पत्ती होती है, उदाहरणार्थ कालर्पा। कुछ में गुच्छे जो अंगूर के गुच्छे जैसे होते हैं, पाये जाते हैं और उनको समुद्री अंगूर (Sea grapes—Boergesenia) कहते हैं।

कालर्पा (CAULERPA)

समुद्री अंगूर (SEA GRAPES)
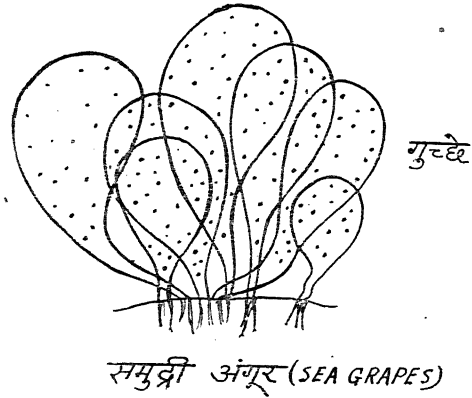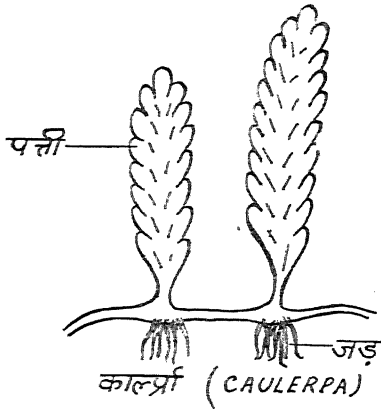
अल्गी उद्भिद ताड के पेड़ के सदृश्य होते हैं अतः उन्हें समुद्री ताड़ (Sea palms–Lessonia; Postelsia) कहते हैं। भूरी अल्गी के पौधे इतने लम्बे फैले और बहुशाखा वाले होते हैं कि लोगों को धोखा हो जाता है कि ये हिमालय के जंगल के ओक, चीड़, देवदार आदि के विशाल वृक्ष हैं। कुछ लोग इन अल्गी उद्भिदों को ईंधन के लिए एकत्र करते हैं। जहाँ इतने विशालकाय अल्गी पौधे पाये जाते हैं, वहीं बहुत छोटे, सरल, सादे पौधे भी होते हैं। उन्हें देखने के लिए अनुवीक्षण यंत्र की आवश्यकता होती है। जैसे वृक्ष बीज से तैयार होता है उसी प्रकार ये अल्गी उद्भिद स्पोर्स से उगते हैं।

समुद्री ताड़ (SEA PALM)
(Postelsia) पोस्टेल्सिया

लेसोनिया (LESSONIA)

एलेरिया (ALARIA)

लेमीनेरिया (LAMINARIA)
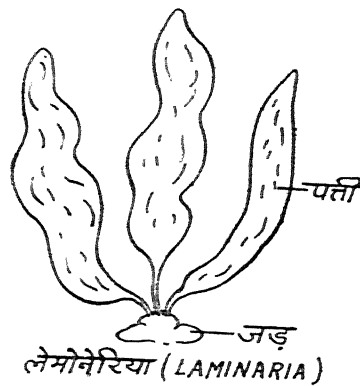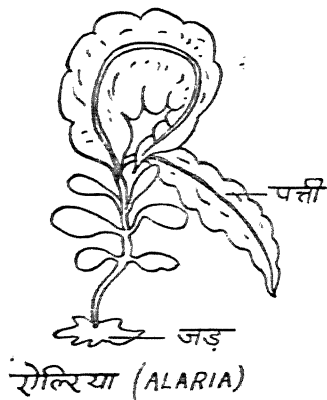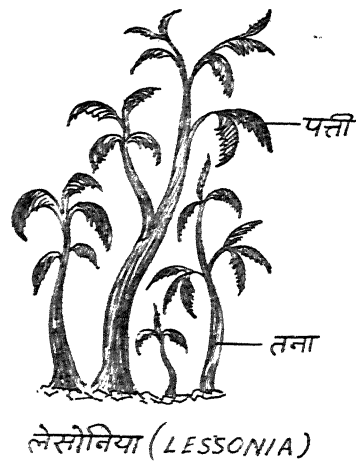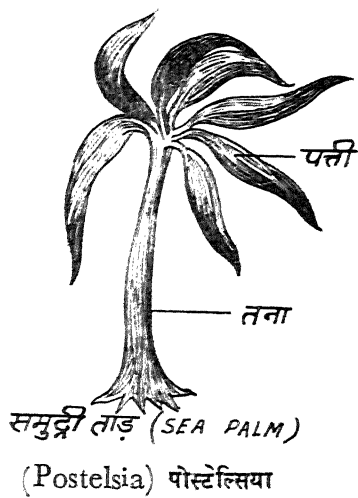
समुद्री अल्गी से लाभ—

समुद्री अल्गी पौधे मनुष्य के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। डायटम (Diatom) नामक अल्गी बहुत ही सुन्दर एवं मोहक होती है। इनसे पेट्रोलियम तैयार किया जाता है। वास्तव में बात यह है कि इसके प्रत्येक कोष में वसा की कुछ मात्रा पाई जाती है। जब यह अल्गी मर जाती है तो वसा पेट्रोलियम में परिवर्तित हो जाती है और जब यह जीवित रहते हैं तब मछलियों के लिए चरागाह तैयार करते हैं। यह अल्गी पौधे न केवल मछलियों के के वरन जानवरों के लिए भी अच्छा चारा है जिससे दूध की मात्रा बढ़ती है। इसी विशेषता के कारण यह दुग्धधारी जानवरों के चारे का मुख्य भाग हो गया है। अल्गी उद्‌भिद में नाइट्रोजन अधिक मात्रा में पाया जाता है अतः इससे खाद तैयार की जाती है। इसकी खाद से धान की पैदावार बढ़ जाती है।

केवल इतना ही नहीं वरन मनुष्य ने इससे खाद्य पदार्थ, दवायें, विटामिन भी तैयार करने आरम्भ कर दिये हैं। श्रीमती **हिरोशी तामिया** ने क्लोरेला

नामक अल्गी से भोज्य पदार्थ तैयार किये थे। अल्वा अल्गी उद्भिद् सलाद के साथ खाया जाता है। जर्मनी और नार्वे में इससे रोटी भी तैयार की जाती है। स्काटलैंड के लोग डल्स अल्गी को दूध के साथ खाते हैं। उत्तरी अमरीका के निवासी अल्गी से जैम और जेली बनाते हैं।
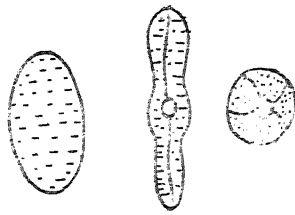
डायेटम (DIATOM)
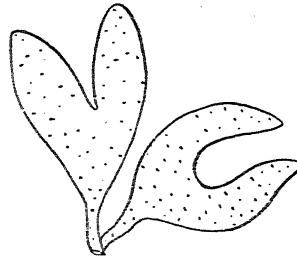
डल्स (DULSE-RHODYMENIA-PALMATA)
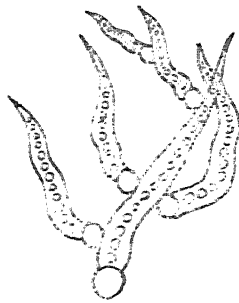
राईव्यूलेरिया (RIVULARIA)
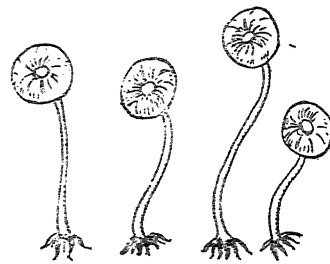
एसीटाब्यूलेरिया (ACETABULARIA)

अल्गी उद्भिद से स्टैंफोर्ड ने १८८३ में ऐल्गिन नामक पदार्थ निकाला था। ऐल्गिन गोंद लेई की जगह प्रयोग में आता है। इससे विभिन्न प्रकार के प्लास्टिक भी तैयार किये जाते हैं। इसका उपयोग कपड़ा रंगने, चमक देने आदि अन्य कार्यों में होता है। इन्हें आइसक्रीम, पनीर और केक के साथ भी खाया व सजाया जाता है।

ऊन और उसकी अशुद्धियाँ

देवी प्रसाद तिवारी

भारतीय पशुधन के अर्न्तगत गाय-भैंस के बाद भेड़ों का ही स्थान है। भेड़ों से मानव समाज को वस्त्र तैयार करने के लिये ऊन और आहार के लिये माँस, दूध आदि पौष्टिक पदार्थ प्राप्त होते हैं। अनुमान लगाया जाता है कि भारतवर्ष में लगभग ४ करोड़ भेड़ें हैं, जिनसे प्रति वर्ष ६ करोड़ ५० लाख पौंड ऊन प्राप्त होती है। इस ऊन का ६०% विदेशों को निर्यात कर दिया जता है, जिससे देश को औसतन प्रति वर्ष ८ करोड़ रुपये विदेशों से प्राप्त होते हैं।

ऊन में अशुद्धियाँ

ऊन में अनेक प्रकार की अशुद्धियाँ होती हैं, जिनको दो भागों में विभाजित किया जा सकता है:

१—प्राकृतिक अशुद्धियाँ

२—अप्राकृतिक अशुद्धियाँ

प्राकृतिक दशा में ऊन अनेक प्रकार की अशुद्धियों से ओतप्रोत होता है। ऊन की अशुद्धियों को रासायनिक तथा भौतिक प्रक्रियाओं द्वारा दूर करने के पश्चात् ही ऊन का प्रयोग वस्त्रादि बनाने में किया जा सकता है।

प्रत्येक भेंड़ से प्राप्त ऊन में, शुद्ध तथा स्वच्छ ऊन केवल २५% से लेकर ७२% तक होता है। ऊन की शुद्धता पर भेड़ों की जाति, चरागाह, जलवायु तथा स्थानीय वातावरण का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

साधारणतया मोटे रेशे की ऊन की अपेक्षाकृत महीन रेशे वाली ऊन में बाहरी अशुद्धियाँ अधिक मात्रा में पाई जाती हैं। इन बाहरी अशुद्धियों की कमी या अधिकता का मूल आधार भेड़ के चर्म से निष्कासित चर्बी या ग्रीज ही होता है जिसका मुख्य कार्य रेशों को मुलायम रखना होता है। यह ग्रीज बालों की जड़ों से चर्म के अन्दर स्थित सैबेशियस (Sabeceous) नामक ग्रन्थि से उत्पन्न होता है। भेड़ के शरीर में महीन रेशे, मोटे रेशों की अपेक्षाकृत कहीं अधिक होते हैं अतएव सैबेशियस (Sabeceous) ग्रन्थि भी महीन रेशे वाली भेड़ों में मोटे रेशों वाली भेड़ों से अधिक होती है। इसी कारणवश महीन रेशे वाली भेड़ों में ग्रीज अधिक मात्रा में उत्पन्न होकर बाहर आती है। इसी प्रकार अधिक ग्रन्थियों के कारण भेड़ों के अधिक पसीना निकलता है।

भेड़ के शरीर से प्राप्त कच्ची ऊन में विशेष प्रकार से निम्न प्राकृतिक पदार्थ होते है :—

१. मौलिक ऊन (Keratin)
२. ऊन की चर्बी या ग्रीज (Woolgrease)
३. पसीना (Suint)
४. धूल
५. खनिज पदार्थ
६. जल या नमी
७. वानस्पतिक पदार्थ

उपरोक्त प्राकृतिक पदार्थों के अतिरिक्त ऊन के भार को बढ़ाने के लिये कुछ अन्य पदार्थ मिला

दिये जाते हैं जिन्हें कृत्रिम अशुद्धियों के नाम से पुकारा जाता है।

१. **मौलिक ऊन अथवा केरेटिन :**—यह एक नाइट्रोजनीय पदार्थ होता है। केरेटिन (Keratin) प्रोटीन के ही समान होता है। इसके साथ-साथ एक अन्य नाइट्रोजनीय पदर्थ, १०.६९%, होता है। इसको **ऊन-जिलेटिन** के नाम से भी पुकारा जाता है। केरेटिन में, अन्य प्रोटीनों की अपेक्षाकृत गंधक की मात्रा प्रचुर होती है। इसमें गंधक की मात्रा ३·१% से लेकर ४% तक पाया जाता है। जिस ऊन के केरेटिन में गंधक की मात्रा जितनी ही अधिक होती है, वह उतनी ही मजबूत होती है जिसके कारण ऊन का धागा वस्त्र बुनाई के समय टूटता नहीं है। यही केरेटिन बालों, पंखों, सींगों, जानवरों के खुरों में भी पाया जाता है।

२. **ऊन की चर्बी या ग्रीज**—चिपचिपा तथा बदामीपन लिये पीले रंग के पदार्थ को ऊन की चर्बी या ग्रीज के नाम से पुकारते हैं। साधारणतया अन्य पशुओं की चर्बी या वसा में ग्लिसरीन तथा उच्चतर वसा तेजाब, स्टियरिक, औलीक तथा पामिटिक अम्ल होते हैं। जब यह वसा तीव्र खार के साथ उबाली जाती है तो एक घुलनशील साबुन बन जाता है। यह साबुन, वसा-तेजाब का खनिज लवण होता है। इस रासायनिक प्रक्रिया में ग्लिसरीन उत्पन्न हो जाता है। वसा तथा क्षार की रासायनिक प्रक्रिया को **सैपोनीफिकेशन** कहते हैं। इस प्रक्रिया का वास्तविक अर्थ साबुन निर्माण होता है। ऊन की वसा, साधारण वसा या चर्बी से भिन्न होती है। वास्तव में ग्लिसरीन से बना यौगिक ग्लिसराइड नहीं है वरन् वसा-तेजाब तथा कोलेस्ट्राल और उसकी तरह एक अन्य पदार्थ आइसोकोलेस्ट्राल का एक यौगिक है। इसके अतिरिक्त कुछ कोलेस्ट्राल, कुछ आइसो कोलेस्ट्राल, तथा कुछ वसा-तेजाब मुक्त या संयुक्त दशा में भी पाये जाते हैं। ऊन का मोम ही सही अर्थ में ऊन की शुद्ध वसा है। यह वसा-तेजाब तथा कोलेस्ट्राल का संतुलित सम्पूर्ण यौगिक होता है। इसमें कोई अन्य रासायनिक पदार्थ स्वतंत्र रूप से नहीं होता है। भेड़ों से प्राप्त वसा कार्बनिक विलायकों में घुलनशील है किन्तु अन्य पशुओं की चर्बी पानी में घुलनशील नहीं होती है। वे पानी के साथ मिलकर पायस (इमलसन) नहीं बनाते। थोड़ी ही देर में पानी और चर्बी या तेल की सतहें पृथक हो जाती हैं। इसके साथ ही साथ यदि ऊन की वसा को पानी के साथ मिलाया जाय तो बहुत सरलता से मिलकर पायस बनाती है जिसमें तेल तथा पानी की सतह अलग-अलग नहीं होती है। लिनोलिन नामक पदार्थ ऊन की वसा तथा पानी का २५% मिश्रण है। ऊनकी चर्बी में काफी मात्रा में पानी सोखने की शक्ति होती है। पानी सोखने पर भी इसके गाढ़ेपन में कोई विशेष अन्तर नहीं आता है। गरम पानी में और क्षारीय घोलों में ऊन की वसा ठंडे पानी की अपेक्षाकृत शीघ्रता से पायस बना लेती है। ऊन की वसा के इस पायस बनाने वाले गुण का बहुत अच्छा सदुपयोग ऊन की धुलाई तथा सफाई करने में हो सकता है क्योंकि हलके क्षारीय घोलों द्वारा निम्न ताप पर वसा का हटाना सरल हो जाता है।

ऊन वसा के अतिरिक्त, एक अन्य वसा भी ऊन के रेशे के आन्तरिक भाग में पाई जाती है। इस वसा को ऊन वसा से पृथक् रखने के लिये इसको ऊन का तेल (Wool oil) कहा जाता है। यह ऊन के रेशे के अन्दर कार्टिकल तथा मेड्यूलरी कोषों के मध्य में होता है। ऊन का तेल ऊन के रेशे की जड़ में स्थित ग्रन्थियों में से निकलता है। ऊन वसा का मुख्य कार्य रेशे की बढ़ोत्तरी में उसको आघात से बचाना है, जबकि ऊन तेल का मुख्य कार्य आन्तरिक शक्ति तथा

चिकनाहट को रेशे के आन्तरिक ढाँचे में देना प्रतीत होता है। साथ ही ऊन के रेशों को कोमलता तथा लचीलापन प्रदान करना मुख्य कार्य है। यदि यह गुण ऊन में न होता तो ऊन का रेशा कताई-बुनाई में बेकार होता।

३. **पसीना**—भेड़ के शरीर पर सूखे हुये पसीने को सूंट (Suint) कहते हैं। पसीने में अनेक वसा तेजाबों के पोटाश लवण होते हैं। वसा-अम्लों या तेजाबों में ओलीक, स्टियरिक और हायनिक (Hyenic) आदि प्रमुख हैं। पसीने के भस्मीकरण के उपरान्त अवशेष में निम्न पदार्थ पाये जाते हैं :—

१. पोटैसियम कार्बोनेट ८६·७८%
२. पोटैसियम सल्फेट ६·१८%
३. पोटैसियम क्लोराइड २·८३%
४. फासफोरस, सिलिका तथा चूना आदि ४·२१%

ऊन में चूने के कई साबुन (Lime Soap) होते हैं। इनको दूर करने के लिये ऊन के रेशों को किसी अम्ल के विलयन में से डाला जाता है परन्तु अधिक अम्ल के प्रयोग करने से, अम्ल का कुछ भाग ऊन में रह जाता है। इसको दूर करने के लिये ऊन को क्षारीय विलयन में डुबोया जाता है।

४. **धूल**—ऊन में धूल का कम या अधिक होना उस स्थान के वायुमंडल तथा चरागाह की भूमि पर निर्भर करता है। इसके प्रतिशत का कोई माप नहीं है क्योंकि कभी कभी ऊन बिक्रेता ऊन के भार को बढ़ाने के लिये अलग से धूल मिला देते हैं। यह धूल ऊन वसा में चिपकी रहती है। ऊन की धुलाई में ग्रीज के हट जाने पर यह ऊन से अलग होकर पानी के साथ बह जाती है।

५. **खनिज पदार्थ**—ऊन में प्राकृतिक खनिज अशुद्धियाँ भी पाई जाती हैं जिनमें से पोटाश, सोडा चूना, एलूमिना, आयरन आक्साइड, सिलिका, सल्फर ट्राई आक्साइड, फासफोरस-पेंटाऑक्साइड और क्लोरीन मुख्य हैं। **बोमैन** के मतानुसार ऊन में खनिज पदार्थों का निम्न प्रतिशत होता है :—

पोटाश	३१·१%
सोडा	८·१%
चूना	१६·९%
एलूमिना+आयरन ऑक्साइड	१२·३%
सिलिका	५·८%
सल्फर ट्राई ऑक्साइड	२०·५%

६ **जल**—ऊन में जल या नमी सोखने की एक विशेष शक्ति होती है। अधिक नमी सोखने के उपरान्त भी ऊन गीला नहीं प्रतीत होता है। ऊन में जल की अशुद्धि का कम या अधिक होना उस स्थान के वायुमंडल में उपस्थित आपेक्षिक नमी तथा ऊन की शुद्धता पर निर्भर रहता है। शुद्ध ऊन अपने भार का १८-२०% तक नमी सोख सकता है किन्तु साधारण सूखे ऊन में कितनी नमी सोखी जा सकती है इसकी कोई निश्चित धारणा नहीं बनाई जा सकती है। ऊन में जल की मात्रा का क्या प्रतिशत है जानने के लिये इण्डियन स्टैण्डर्ड इनस्टीट्यूशन नई दिल्ली ने एक सूत्र निकाला है जो कि सारे देश भर में मान्य होगा।

$$अ = \frac{(भ^{१} - भ^{२})}{भ^{१}} \times १००$$

अ ऊन का नमूना है। $भ^{१}$ = ऊन का भार, $भ^{२}$ = ऊन को १०५° से ११०° पर सुखाने के बाद भार।

७. **वानस्पतिक अशुद्धियां**—ऊन में वानस्पतिक अशुद्धियों का कम या अधिक होना चरागाहों की स्थिति पर निर्भर होता है। यदि चरागाहों में काँटेदार झाड़ियाँ या पौधे अधिक होंगे तो उन चरागाहों की अपेक्षाकृत ऊन में वानस्पतिक अशुद्धियाँ उस चरागाह के ऊन से अधिक होंगी जहाँ पर कांटेदार पौधे या झाड़ियाँ कम हैं क्योंकि भेड़ें चरते समय उनके पास से निकलेंगी और ऊन में काँटे उलझ कर टूट जाते हैं।

ये अशुद्धियाँ कताई, बुनाई, रंगाई की प्रक्रिया में कठिनाइयाँ उपस्थित करती हैं। इन अशुद्धियों को कार्बोनाइजेशन के द्वारा ही दूर किया जा सकता है। कार्बोनाइजेशन में ऊन को निश्चित शक्ति के गंधक के तेजाब में निश्चित समय तक रखते हैं। फिर ऊन को निकाल कर निचोड़ डालते हैं और उसके बाद १००° फा० ताप पर ऊन को सुखा लेते हैं। फिर ताप को १५०°-२१२° तक बढ़ाया जाता है। इस प्रक्रिया से काँटे तथा अन्य वानस्पतिक पदार्थों में वर्तमान सेलूलोज हाइड्रोसेलूलोज में बदल जाता है। इसके बाद ऊन को धो लिया जाता है। यदि तेजाब रह जाय तो ऊन को सोडियम कार्बोनेट के घोल में चलाकर पानी में धोते हैं। इसके उपरान्त ऊन को सुखा लेते हैं। इस प्रकार वानस्पतिक अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं।

कृत्रिम अशुद्धियाँ—

१. **कंकड़**—ऊन का वजन बनाने के लिये ऊनविक्रेता ऊन में छोटे-छोटे कंकड़ मिला देते हैं। इससे खरीदार को बड़ी हानि होती है।

२. **तारकोल**—भेड़ पालक अपनी भेड़ों को पहचानने के लिये अधिकतर तारकोल से चिन्ह बना देते हैं। यह अशुद्धि अधिकतर फिनशिंग की क्रिया के बाद दृष्टिगोचर होती है। यह अशुद्धि केवल ऊन को रासायनिक घोलकों में डालने से दूर हो सकती है।

भारतीय ऊन उद्योग में अभी तक इन अशुद्धियों की ओर कोई प्रगति नहीं की जा सकी जिसके कारण भारतीय ऊन-वस्त्र-उद्योग, कुटीर-उद्योग ही रह पाया है। अतः ऊनी वस्त्रों में सुधार करने के लिये उपरोक्त अशुद्धियों को प्रारम्भ से ही ऊन से पृथक कर देना आवश्यक है।

१. कैंसर-निरोधक औषधियों सम्बन्धी नवीन सम्भावनाएँ—

स्टीवेन एम० स्पेंसर

आजकल कैंसर-निरोधक औषधियों की खोज करने में अनेक विचित्र मार्गों का अनुगमन किया जा रहा है और ये सभी मार्ग प्रयोगशाला से ही प्रारम्भ नहीं होते। उदाहरण के लिए, इस प्रकार के एक प्रयास की कहानी थाईलैण्ड के धूप से तपते गाँव से प्रारम्भ होती है, जहाँ एक अमेरिकी पर्यटक सड़क के किनारे अचानक रुकता है, एक प्लास्टिक का चम्मच हाथ में लेता है, थोड़ी मिट्टी खुरचता है और उसे एक छोटी सी शीशी में भर लेता है। शीशी पर एक पर्ची चिपका कर वह उसे जेब में रखता है, और फिर आगे बढ़ जाता है। सड़क पर आधे मील की दूरी पर एक पेड़ की छाया में वह फिर रुक जाता है, मिट्टी का एक और नमूना खोदता है और उसे भी एक दूसरी शीशी में भर लेता है।

फ्रांसीसी पश्चिमी अफ्रीका में एक मिशनरी डाक्टर, अस्पताल से लौटते समय, मिट्टी का इसी प्रकार संग्रह करता है। भारत में बर्तनों का विक्रय करने वाला एक व्यवसायी, आस्ट्रेलिया में एक पशुपालक, यूनान में छुट्टियाँ बिताने के लिए गया हुआ एक अध्यापक तथा ब्रिटेन में दृश्य-दर्शन के हेतु यात्रा करने वाला एक विद्यार्थी—ये सभी इसी प्रक्रिया का अनुगमन करते हैं।

मेवुड, न्यूजर्सी में चार्ल्स फाइजर एण्ड कम्पनी की एक अनुसन्धान-प्रयोगशाला में प्रति सप्ताह, संसार के कोने-कोने से संग्रहकर्ताओं द्वारा भेजे गये ५०० से अधिक मिट्टी के नमूने पहुँचते हैं। चिकित्सा के इतिहास में चलाये जा रहे इस सब से बड़े अनुसन्धान-अभियान के सिलसिले में, अमेरिका की औषधि-निर्माण करने वाली कितनी ही अन्य फर्में भी मिट्टी के सैकड़ों नमूने मंगा रही हैं। इनमें से कितनों ही के पास शीशियों के बजाय प्लास्टिक की बोरियों में भरे हुए मिट्टी के नमूने आ रहे हैं। यह अनुसन्धान-अभियान ऐसे रसायनों की खोज के लिए चलाया जा रहा है, जो कैंसर के विकास को रोक सकें। कितने ही ऐसे रसायनों की खोज की जा चुकी है, जो कैंसर के विकास को थोड़े समय के लिए रोकने में समर्थ हैं; कुछ प्रभावकारी कैंसर-निरोधक घोलों का निर्माण मिट्टी के सूक्ष्म जीवाणुओं से किया गया, जो विषाणु-नाशक औषधिओं के जन्म देने वाले मिट्टी के सूक्ष्म जीवाणुओं जैसे ही थे।

यह स्मरणीय है कि **फ्लेमिंग** ने पेनिसिलिन का आविष्कार एक फंफूद से किया था, जो प्रयोगशाला में एक प्रकार के कीटाणुओं सम्बन्धी प्रयोग के सिलसिले में उत्पन्न हो गये थे। **ड्यूबोस** ने 'टाइरोथ्राइसिन' की खोज साउथजर्सी से लाई गयी मिट्टी में पाये जाने जीवाणुओं से की थी। **वर्क होल्डर** की 'क्लोराम्फेनिकोल' काराकास, वेन्जुएल, के एक खेत की मिट्टी की उपज थी।

डगर ने 'एरोमाइसिन' की खोज मिसौरी के एक बाड़े की मिट्टी से और **वैक्समैन** ने "स्ट्रेप्टोमाइसिन" की खोज न्यूजर्सी के रुग्ण मुर्गी के बच्चों के आमाशय से की थी।

किन्तु इन सभी प्रयासों के होते हुये भी अभी तक किसी ऐसी औषधि की खोज नहीं की जा सकी है, जो कैंसर का उसी प्रकार समूल नाश कर सके, जिस प्रकार पेनिसिलिन और अन्य विषाणु-नाशक औषधियाँ छूत के रोगों का विनाश करती हैं। किन्तु लक्ष्य इतना महत्वपूर्ण है और मिट्टी के सूक्ष्म जीवाणुओं का क्षेत्र इतना विशाल और विविधतापूर्ण है कि हमारे पैर के नीचे की मिट्टी में प्रति क्षण उत्पन्न होने वाले असंख्य सूक्ष्माणुओं सम्बन्धी व्यापक खोज का महत्व कभी कम नहीं हो सकता।

विशिष्ट लक्ष्य

इस दिशा में किये जा रहे अनुसन्धान-कार्यों के विशेष लक्ष्य कैंसर की वे किस्में हैं, जिनका निरोध शल्य-चिकित्सा और 'एक्स-रे' द्वारा नहीं हो सकता। जब तक नये किस्म की और अपेक्षाकृत अधिक प्रभावकारी औषधियों की खोज नहीं की जाएगी, तब तक हजारों व्यक्तियों को इस व्याधि के कारण मृत्यु के चंगुल से छुड़ा पाना असम्भव है। अमेरिका के **नेशनल कैंसर इन्स्टिट्यूट** के निर्देशक डा० जान आर० हेलर, के अनुसार इन रोगियों के लिए आशा का सबसे बड़ा स्रोत 'केमोथेरापी' है, जिसके अन्तर्गत, कैंसर के रोगियों का उपचार ऐसी औषधियों से किया जाता है जो शरीर के किसी अंग में पहुँच कर कैंसर-ग्रस्त प्राण-कोषों को विनष्ट कर सकते हैं।

इस अनुसन्धान के सिलसिले में, केवल मिट्टी से नमूनों का ही नहीं, बल्कि हजारों कृत्रिम घोलों और हर्मोन औषधियों का परीक्षण किया जा रहा है। यह प्रयास **'नेशनल केमोथेरापी स्क्रीनिंग प्रोग्राम'** (राष्ट्रीय केमोथेरापी परीक्षण कार्यक्रम) के अन्तर्गत किया जा रहा है। यह कार्यक्रम अपने ७ वें वर्ष में है और इसकी वित्तीय व्यवस्था संघ सरकार द्वारा की जा रही है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत, लगभग १,००० वैज्ञानिक और चिकित्सक अमेरिका की प्रयोगशालाओं और अस्पतालों में तथा कुछ विदेशों में भी, अनुसन्धान कर रहे हैं।

विभिन्न प्रकार के ७५,००० से अधिक घोलों का परीक्षण पशुओं के कैंसर रोगों पर किया जा चुका है। इस समय यह परीक्षण प्रतिवर्ष ४०,००० रसायनों की गति से जारी है। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि रसायनों के इस विशाल समूह में अनेक कैंसर-निरोधक औषधियाँ प्राप्त हो जाएं। केमोथेरापी कार्यक्रम के निर्देशक डा० स्टुअर्ट सेसम्स, जिनकी अवस्था केवल ३८ वर्ष है, का कहना है कि १,००१ परीक्षित रसायनों के प्रत्येक समूह में मुश्किल से एक या दो ही रसायन ऐसे मिलते हैं, जिनका परीक्षण कैंसर-ग्रस्त मनुष्यों पर किया जा सकता है। किन्तु यह हतोत्साहित होने का कोई कारण नहीं। उदाहरणार्थ, विषाणुनाशक औषधियों की खोज में, फाइजर कम्पनी के ५५ वैज्ञानिकों ने अनेक वर्ष लगाये और ४०,००,००० डालर से अधिक धन व्यय किया, तब जाकर कहीं **'टेरामाइसिन'** की खोज की जा सकी। किन्तु, उनका कहना है कि यह सफलता समय और धन के इतने व्यय के अनुरूप ही थी।

व्यापक अनुसन्धान-कार्यक्रम

कैंसर कार्यक्रम के अन्तर्गत २० ऐसे रसायनों की खोज की जा चुकी है, जो इस रोग की लगभग ३० किस्मों पर अस्थायी-निरोधक का काम करते हैं। ९० अन्य रसायनों के सम्बन्ध में १५० अस्पतालों में उपचार-परीक्षण चल रहे हैं, जिनके परिणामस्वरूप कैंसरग्रस्त गिल्टियों वाले कुछ रोगी अस्थायी रूप से लेकर पूर्णतया स्वस्थ हो गये। इससे प्रोत्साहित होकर कितने ही अनुसन्धानकर्ता यह विश्वास करने लगे हैं कि इस विशाल परीक्षण

कार्यक्रम के फलस्वरूप, कालान्तर से और भी अधिक प्रभावकारी औषधियों की खोज करने में सफलता मिलेगी।

इस योजना को अमेरिकी कांग्रेस के तीव्र अनुरोध पर प्रारम्भ किया गया। कैंसर केमोथेरापी के क्षेत्र में कुछ मार्ग-प्रदर्शक वैज्ञानिकों ने उसे इस आवश्यकता की ओर ध्यान देने के लिए प्रेरित किया। आधुनिक केमोथेरापी के क्षेत्र में जो वैज्ञानिक अग्रणी हैं, उनमें डा० मुरे जे० शियर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह राष्ट्रीय कैंसर संस्थान में हो रहे अनुसन्धान के एक प्रमुख मार्ग-दर्शक हैं। उन्हें अमेरिकी कैंसर अनुसन्धान असोसियेशन के अध्यक्ष पद के लिए चुना गया है। रसायनों सम्बन्धी परीक्षणों की सम्भाव्यता में उनका अटूट विश्वास है। उनके इसी विश्वास के परिणाम-स्वरूप, इतने विशाल पैमाने पर रसायन-परीक्षण कार्यक्रम संचालित किया गया है।

कभी-कभी कैंसर-निरोधक औषधियों की खोज के लिए किये जा रहे प्रयासों के ठोस परिणाम भी सामने आते रहे, यद्यपि वे परीक्षण-कार्यक्रम के बाहर चलाये जा रहे अनुसन्धानों के परिणाम थे। कुछ गम्भीर प्रकार के कैंसर-रोगियों पर नाइट्रोजन मस्टर्ड नामक एक गैस-घोल बहुत ही उपयोगी निरोधक सिद्ध हुआ। बच्चों के ल्यूकेमिया नामक नेत्ररोग में फौलिक एसिड एण्टागोनिस्ट नामक कुछ पदार्थ बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए। इसी प्रकार की अन्य कितनी ही खोजों ने कैंसर निरोधक औषधियों की खोज को अत्यधिक प्रोत्साहन प्रदान किया। १९४० के दशक में न्यूयार्क में स्लोअन-केट्टरिंग संस्थान की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य, रासायनिक अध्ययन द्वारा कैंसर की कुछ चुनी-चुनाई किस्मों के निदान के लिए ऐसे प्रभावकारी साधनों की खोज करना था, जिनसे शरीर के सामान्य ढाँचा में कोई क्षति न उत्पन्न हो। उसने थोड़े ही समय में प्रतिवर्ष १०,००० रसायनों का परीक्षण प्रारंभ किया, और इस समय इसने अधिक रसायनों का परीक्षण कर रहा है जितने किसी अन्य अकेली प्रयोगशाला में नहीं हो रहे हैं। किन्तु कैंसर-निरोधक अनुसंधान कार्यक्रम को विस्तृत करने की मांग इतनी अत्या-वश्यक समझी गयी, कि अमेरिकी सरकार को अपनी सहयोग योजना के साथ अग्रसर होना पड़ा। इसके लिए कांग्रेस ने कोष की व्यवस्था करना स्वीकार कर लिया।

सम्भाव्य कैंसर-निरोधक औषधियाँ

सिल्वर स्प्रिंग स्थित केमोथेरापी सर्विस सेन्टर सम्भाव्य कैंसर-निरोधक रसायन विभिन्न रंगों के पाउडर, द्रव या मनकों के रूप में भेजे जाते हैं। नाशवान पदार्थों को प्रायः शुष्क बर्फ में जमा कर जहाज द्वारा भेजा जाता है। इसमें से कितने ही रसायनों को विमान द्वारा संसार के भिन्न-भिन्न भागों से यहाँ भेजा जाता है। विदेशों से इस प्रकार लगभग ७०० पदार्थ प्रतिवर्ष यहाँ आते हैं। बहुत से थोल मेवुड की फाइजर प्रयोगशाला जैसे अनुसंधान केन्द्रों के प्रारम्भिक परीक्षणों के परिणाम होते हैं। सिल्वर स्प्रिंग को भेजे जाने वाले रासायनिक पदार्थों के मूल्य कुछएक डालरों से लेकर १२,००० डालर तक होते हैं। यह १२,००० डालर एक नवीन सम्भाव्य रासायनिक औषधि के मनकों का अनुमानित मूल्य है, जिसे ५-फ्लोरो-२ड्योक्सूरि-डिन कहते हैं।

रटगर्स विश्वविद्यालय के जीवाणु शास्त्री, डा० **सेलमैन वाक्समैन** जिन्हें १९५२ में स्ट्रेप्टोमाइसिन पृथक करने के उपलक्ष्य में नोबेल पुरस्कार मिला था, कितने ही हजार पृथक किये गये फफूँदों, कीटा-णुओं और सूक्ष्माणुओं का परीक्षण करने के बाद स्ट्रेप्टोमाइसिन की खोज करने में सफलता मिली थी। लगभग आधे दर्जन प्रथम सम्भाव्य जीवाणुओं में, एक्टीनोमाइसिज नस्ल का फफूँद जैसा एक जीव भी शामिल था। वाक्समैन ने उसका नाम एण्टी-

बायोटिक्स रखा और उससे उत्पन्न रासायनिक पदार्थ को एक्टीनोमाइसिन कहा। दुर्भाग्यवश एण्टीबायोटिक्स उस विषाणुनाशक औषधियों के युग के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ, जिसका सूत्रपात उससे हो रहा था। वह कीटाणुनाशक ही नहीं सिद्ध हुआ, बल्कि जिन चूहों पर उसका प्रयोग किया गया, उसमें उसका विष समा गया। वह इतना विषैला था कि मनुष्य पर उसका प्रयोग करना असम्भव था।

किन्तु, जब एक्टीनोमाइसिन के सम्बन्ध में और अधिक अध्ययन किया गया, तो पता चला कि वह अनेक रासायनिक तत्वों का मिश्रण है। इन रासायनिक तत्वों को पृथक करके उनका नाम एक्टीनोमाइसिन सी, डी और एफ-१ रखा गया। जब उनका परीक्षण पशुओं की गिल्टयों पर किया गया तो उन सभी के प्रभाव कुछ कुछ कैंसर-निरोधक प्रतीत हुए। एक्टीनोमाइसिन डी, मौलिक एक्टीनोमाइसिन जैसा ही विषैला सिद्ध हुआ। किन्तु उसका प्रयोग सावधानी के साथ बच्चों के कितने ही कैंसर रोगों पर किया गया है। बोस्टन शिशु अस्पताल में रोगनिदान शास्त्री, डा० सिडनी फार्बर, ने जिन्होंने १० वर्ष पूर्व एण्टीफोलिक एसिड द्वारा ल्यूकेनिया (एक नेत्र रोग) की एक उपचार विधि को विकसित किया था, १९५९ के पतझड़ में अमेरिकी कैंसर समिति (अमेरिकन कैंसर सोसायटी) की वैज्ञानिक लेखकों की गोष्ठी में एक्टीनोमाइसिन डी सम्बन्धी अपने प्रयोग के विषय में रिपोर्ट प्रस्तुत की। यह गोष्ठी एक्सेलसियर स्प्रिंग, मिसौरी, में आयोजित हुई थी। डा० फार्बर कैंसर केमोथेरापी नेशनल कमेटी के अध्यक्ष हैं। वह कैंसर-निरोधक अनुसंधान कार्यक्रम के प्रमुख संगठनकर्ताओं में से एक रहे हैं।

१९५७ में, जापान में एक अन्य विषाणुनाशक रसायन की खोज की गयी, जिसमें कैंसर-निरोधक गुण पाये गये। इसकी खोज स्ट्रेप्टोमाइसेस केसपिटोटस सम्बन्धी परीक्षण का परिणाम थी। अनेक जापानी चिकित्सा अनुसंधान केन्द्रों से प्राप्त प्रारम्भिक रिपोर्टों में कहा गया कि यह रासायनिक पदार्थ मनुष्य में स्थायी ल्यूकेमिया, अंतड़ी की गिल्टियों आदि भयंकर कैंसर रोगों में उपयोगी सिद्ध हुआ है। अमेरिका और जापान में पशुओं पर किये गये परीक्षणों से पता चला कि इसकी कैंसरग्रस्त गिल्टी नाशक प्रक्रिया के विषय में व्यापक जानकारी है। इसका नाम माइटोमाइसिन-सी रखा गया। स्लोअन-केट्टरिंग संस्थान पर विख्यात केमोथेरापी-अनुसंधानकर्त्ता, डा० कानेमात्सू सूगियरा ने यह पता लगाया कि माइटोमाइसिन-सी पशुओं की गिल्टियों की २६ किस्मों में से १७ पर कुछ अंश तक प्रभावकारी सिद्ध हुई है। किन्तु, जब अमेरिका के तीन अनुसन्धान केन्द्रों—स्लोअन केट्टरिंग संस्थान, बोस्टन के शिशु कैंसर अनुसन्धान अधिष्ठान तथा मियामी विश्वविद्यालय के मेडिकल स्कूल—में कैंसर के १२० रोगियों पर किये गये परीक्षणों से यह पता चला कि 'माइटोमाइसिन-सी' पहले के अनुमान की अपेक्षा कहीं अधिक विषैला था, तो तत्सम्बन्धी उत्साह ढीला पड़ गया।

भारतीय अनुसन्धान-कर्ता

फाइजर प्रयोगशाला में, किसी भी ऐसे विषाणुनाशक रसायन को डा० कोप्पाका वी० राव की प्रयोगशाला में भेज दिया जाता है, जिसमें प्रतिस्थापित गिल्टियों के विकास को रोकने की विशेषता दिखलायी पड़ती है। डा० राव का कार्य रासायनिक घोल में से प्रभावकारी गिल्टी-निरोधक तत्व को ढूँढ कर पृथक करना होता है। ऐसा करने में कभी-कभी उन्हें एक ऐसे मिश्रण में से उस तत्व को निकालना पड़ता है, जो उसकी प्रति १०,००,००० मात्रा में केवल १० अंश ही होता है। ऐसे करने में उनका ६ महीने से साल भर तक का समय लग जाता है। किन्तु यह कठिन परिश्रम भी अपने लक्ष्य के महत्व की दृष्टि से अनुचित नहीं।

अन्त में, परीक्षणों के उपरान्त कुछ ऐसे रसायन मिल जाते हैं, जिनमें कैंसर-निरोधक तत्वों की प्रधानता होती है और जिनके द्वारा कैंसर-निरोधक औषधि के उत्पन्न होने की अधिक सम्भावना होती है, तो उनका परीक्षण कैंसरग्रस्त रोगियों—पुरुषों, महिलाओं और बच्चों—पर किया जाता है। ऐसे अवसर पर तरह-तरह के प्रश्न उठते हैं। क्या इससे पीड़ा कम होगी? क्या यह गिल्टी के विकास को रोकेगा? क्या इसका उपयोग करने से रोगीको कुछ समय तक और जीवित रहने का सौभाग्य प्राप्त होगा? क्या यह कैंसर के लिए रामवाण सिद्ध होगा और उसे सदा के लिए विनष्ट कर देने में सफल होगा?

इस परीक्षण के परिणामों को शीघ्रता से प्राप्त करने के उद्देश्य से—डाक्टरों की इस जानकारी को बढ़ाने के उद्देश्य से कि नवीन औषधि के सम्भाव्य प्रभाव क्या हैं—कैंसर-निरोधक अनुसंधान सम्बन्धी सहयोगी कार्यक्रम में भाग लेने वाले अस्पतालों को १७ वर्गों में विभक्त कर दिया गया है। प्रत्येक वर्ग के सदस्य प्रामाणिक फार्मों का उपयोग करते हैं, जिनमें एक ही प्रकार की विधि का अनुशीलन करते हुए परीक्षणके परिणामों को अंकित किया जाता है। ऐसा इसलिए किया जाता है, ताकि समान आधार पर विभिन्न अस्पतालों के परिणामों की परस्पर तुलना की जा सके। परीक्षण के दौरान प्रायः डाक्टर एक-दूसरे से विचार-विमर्श करते रहते हैं और अपनी जानकारी को टेलिफोन द्वारा दूसरों तक पहुँचाते हैं।

केमोथेरापी के क्षेत्र में होने वाली आंशिक सफलता के समाचार तत्काल चिकित्सा जगत में फैल जाते हैं। सच तो यह है कि कितने ही रोगियों और उनके परिवारों की चिकित्सा विषयक जानकारी इतनी अधिक बढ़ जाती है, कि उस पर आश्चर्य होता है। वे जानते हैं कि वे भी एक ऐसे अनुसन्धान आन्दोलन के अंग हैं, जिसके परिणामों की ओर संसार भर की उत्सुक आंखें लगी हुई हैं।

२. रूस में कैंसर की आधुनिक चिकित्सा

—बी० मिलोनोव

कितनी पीढ़ियों से संसार के वैज्ञानिकगण कैंसर की समस्या को हल करने के लिए माथापच्ची कर रहे थे। सोवियत संघ में भी डाक्टर, प्राणिविज्ञानशास्त्री, रसायनशास्त्री, शरीर विज्ञानशास्त्री और चिकित्साशास्त्री इस क्षेत्र में कठिन मेहनत कर रहे हैं। उनके श्रम ने सोवियत विज्ञान को समृद्ध कर दिया है और इस बात का ज्ञान मेरा दिया है कि कई किस्मों के कैंसर की रोगनिरोधक औषधियाँ हो सकती हैं, कैंसर का सफलता के साथ सामना किया जा सकता है और उसका पृथ्वी से नाम निशान तक मिटाया जा सकता है। वैज्ञानिकों ने (चर्म ओष्ठ, जिह्वा, गर्भाशय, गुदा, पिच्चुका ग्रन्थि, वृहत् आन्त्र आदि के) कैंसर के बहुत से रोगियों का विशेषतः रोग की प्रारम्भिक अवस्था के रोगियों का सफल इलाज कर दिखाया है।

यह ध्यान में रहे कि विभिन्न किस्मों की प्राणाहर्ता रसौलियों की उत्पत्ति का कोई एक कारण नहीं होता है।

सोवियत संघ में राज्य की ओर से कैंसर विरोधी संस्थाओं का जाल बिछा दिया गया है। ये संस्थाएँ कैंसर के बारे में आवश्यक कार्रवाइयाँ करती हैं। वैज्ञानिक अनुसन्धान संस्थाओं तथा क्लिनिकों के अतिरिक्त क्षेत्रीय तथा नगर कैंसर डिस्पेंसरियों और चिकित्सालयों के बाहर के बीमारों का इलाज करने वाले विभागों के कैंसर विज्ञान विभाग भी स्थापित किये हैं।

कैंसर की प्रारम्भिक अवस्था के निदान के लिये ३५ साल की आयु के लोगों की सार्वजनिक निरोधात्मक कैंसर सम्बन्धी डाक्टरी परीक्षा

आवश्यक है। वह परीक्षा इलाज की सफलता की नींव है। निरोधात्मक कार्रवाइयों का यह परिणाम हुआ है कि सोवियत संघ में हाल के वर्षों में कैंसर की बीमारियों की संख्या लगातार कम होती जा रही है। विशेषतः बड़े-बड़े शहरों में गर्भाशय, स्तन ग्रन्थि. जिह्वा, ओष्ठ, चर्म और गुदा के इस प्रकार कैंसर जिन पर विचार नहीं किया गया था इसके कारण अधिक अच्छा इलाज होने लगा है।

अकादमीशियन एल० ए० जिलबेर ने जो अनुसन्धान किये हैं उनसे मनुष्यों तथा पशुओं की ग्रन्थियों (ट्यूमरवाली) में एक विषैले तत्व वाले जटिल एल्बुमन (अण्डे की सफेदी जैसे पदार्थ) का पता चला है जो कैंसर के निदान में और उसके रोग प्रतिरोधशक्ति सम्बन्धी निर्णय में प्रयोग किया जा सकता है।

सोवियत वैज्ञानिकों ने फेफड़े के कैंसर और गले की भोजननलिका तथा हृदय के कैंसर की शल्यचिकित्सा की पद्धतियों में सुधार कर दिया है। विभिन्न अवयवों के कैंसर की चिकित्सा की मिलीजुली पद्धतियों के अध्ययन तथा सुधार के लिए बहुत कुछ कार्य किया जा रहा है।

कैंसर वाली रसौलियों की एक्सरे चिकित्सा की बहुत सी पद्धतियों का विस्तार किया गया है जैसे कि सुपर वोल्ट, रान्टजन चिकित्सा रोटरी, (गले की भोजननलिका के कैंसर), पैण्डुलम (टोमोग्राफी के सिद्धान्त के अनुसार) ट्यूमरों की विविध क्षेत्रवाली रोन्टजन चिकित्सा, रेडियो सक्रिय कोबाल्ट तथा रेडियम सुइयों के प्रयोग के साथ टेलीगामा चिकित्सा (दूर से गामा किरणों का प्रयोग) फेफड़ों, गले की भोजननलिका, गुदा, स्तनग्रन्थि तथा शरीर के अन्य भागों की रसौलियों के कैंसर की स्वतंत्र एक्सरे चिकित्सा या शल्यचिकित्सा के साथ मिलाकर की जानेवाली चिकित्सा में उक्त सब एक्सरे पद्धतियों के कारण पर्याप्त उन्नति हो गयी है।

कैंसर का सामना करने में वैज्ञानिकों ने जो प्रयत्न किये हैं उन्हें हम इन बातों से स्पष्ट रूप में देख सकते हैं। स्तन ग्रन्थियों और शिश्न ग्रन्थियों के कैंसर का कतिपय शारीरिक रसों से तैयार की दवाइयों (टैस्टोस्टोरोनोप्रोपायोनेट), साइनेस्ट्रोल, कोर्टिसोन इत्यादि से इलाज, तथा उन बहुत ही रासायनिक भेषजों से इलाज जिन भेषजों का प्राध्यापक एल० एफ० लारिओनोव के विद्यालय में अध्ययन किया जा रहा है।

पेट के कैंसर के लगभग ३० प्रतिशत बीमार व्यक्ति आपरेशन के बाद भी पाँच-पाँच साल तक जिंदा रहे हैं। यद्यपि यह प्रतिशत अपने आप में कोई बहुत अधिक नहीं है, फिर भी इस बात को देखते हुए यह पर्याप्त है कि भूतकाल में यह प्रतिशतत्व कभी १० प्रतिशत से अधिक नहीं रहा।

---

१. चमत्कारिक द्रव

चमत्कारिक द्रव, **गिबरेलिन** से पौधों और फलों के आकार में कई गुना वृद्धि हो जाती है। वह विकास के लिए शक्तिशाली बलवर्द्धक का काम करता है और फूलों तथा फलों की वृद्धि को तेज करता है। गिबरेलिन इस्तेमाल करने से तम्बाकू के पौधे दो-तल्ले मकान से भी ऊँचे, ६ मीटर तक बढ़ जाते हैं। अंगूर के गुच्छों का वजन दूना हो जाता है और मौसम के अन्त तक चाय की फसल में ७० गुनी वृद्धि हो जाती है।

गिबरेलिन अम्ल तैयार करने के लिए कुर्गान में एक कारखाना बनाया जा रहा है। सोवियत संघ में अभी तक केवल कुछ ही ग्राम गिबरेलिन तैयार किया जा सका है। अगले वर्ष नये कारखाने में २० किलोग्राम गिबरेलिन अम्ल तैयार किया जाएगा। इससे सोवियत कृषि के लिए सुन्दर संभावनाओं का द्वार खुल जाएगा।

२. परम्परागत परिवर्तन

वाशिंगटन राज्य विश्वविद्यालय के अनुसन्धान-कर्ताओं ने पौधों को केमिकल डाइथाइल सल्फेट की सुई देकर, उनमें वंश-परम्परागत परिवर्तन उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त की है। इस खोज के फल-स्वरूप खाद्यान्न फसलों में सुधार करना सम्भव हो गया है। इस सरल और सस्ती विधि द्वारा पौध वंश अनुसन्धान में भी योग मिलने की सम्भावना है। गत कितने ही वर्षों से विकिरण द्वारा पौधों में वंशगत परिवर्तन उत्पन्न करने में जोर दिया जाता रहा है। किन्तु इससे भी उतना परिवर्तन सम्भव नहीं हो सकता है, जितना कि इस नवीन विधि से सम्भव होने की आशा है।

३. बीज कितने समय तक ठीक बने रह सकते हैं?

बीजों में अंखुवाने की क्षमता कब तक बनी रहती है? इस प्रश्न का उत्तर कठिन है, क्योंकि अलग-अलग बीजों की आयु भिन्न-भिन्न है, चाहे वे किसी भी तरह क्यों न रखे जायँ। उदाहरण के लिये, कुछ समय पहले भारतीय कमल के बीज मंचूरिया की एक सूखी झील के पेट में पाये गये थे। पहले वैज्ञानिकों का अनुमान था कि वे वहाँ १६० साल से हैं, परन्तु रेडियो कार्बन विश्लेषण से पता चला कि वे १०४० ±२१० वर्षों के हैं। इतनी उम्र होने पर भी इन बीजों से स्वस्थ और बलिष्ठ अँखुवे निकले।

परन्तु कहवा का बीज फल से निकालने के बाद सिर्फ ३५ साल तक ठीक रहता है। उष्ण कटिबन्ध तथा समशीतोष्ण कटिबन्ध के अधिकांश पौधों के बीज कुछ दिन या अधिक से अधिक कुछ सप्ताह तक ठीक रहते हैं। शाहबलूत, बीच, अखरोट, बादाम, सरपत, चिनार तथा दूसरे समशीतोष्ण जलवायु वाले पौधों के बीच भी जल्द ही अंखुवाने की क्षमता खो बैठते हैं। फिर भी बीजों को ठीक से रखने से उनकी आयु बढ़ाने की दिशा में बहुत कुछ किया जा सकता है।

एक अमरीकी वैज्ञानिक को पता चला कि नीबू (बिटर आरेंज) और सन्तरे की कुछ किस्मों के बीज जो साधारण अवस्थाओं में बहुत जल्द खराब हो जाते हैं, कुछ सुखा लेने और करीब १२०° फोरेनहाइट ताप में रखने से अपनी जीवनीशक्ति बनाये रखते हैं।

चिनार और सरपत सोवियत संघ के सबसे तेजी से बढ़ने वाले और सबसे अधिक सख्त पेड़ होते हैं, इसलिए वन-रक्षा-पंक्ति लगाने के लिये बड़े महत्त्व के होते हैं। परन्तु अभी हाल तक उनकी कलमें लगायी जाती थीं, क्योंकि बीज सिर्फ दो से चार सप्ताह तक ठीक रहते हैं। अनुसन्धान के बादकेन्द्रीय वनस्पति उद्यान के वैज्ञानिकों ने पता लगाया कि इन बीजों को एक विशेष आर्द्रता में २८° फोरेनहाइट ताप में रखा जाय, तो वे दो से तीन साल तक ठीक रह सकते हैं। बाद के प्रयोगों से पता चलता है कि यदि इन बीजों को वायु दाब से मुक्त कर दिया जाय, या इनकी कुछ ऑक्सिजन निकाल ली जाय, तो ये और भी अधिक दिनों तक ठीक रह सकते हैं।

४. बीज शुद्ध करने की नयी दवा

उजबेक वैज्ञानिकों ने खेती के पौधों की सारी बीमारियों से लड़ने की नयी प्रभावशाली विधि निकाली है। यह प्रणाली साधारण आक्सिजन और नाइट्रोजन को नाइट्रोजन डाईआक्साइड में मिलाकर काम में लाने की विधि है। यह सुविदित गैस पौधों के लिए रामवाण औषधि हो सकती है।

एक विशिष्ट कमरे में ३ से ५ मिनट तक बीजों को नाइट्रोजन डाईआक्साइड में रखने से बीज सर्वथा शुद्ध हो जाते हैं। ज्ञात हो कि यह गैस बीजों और आदमियों के लिए हानि रहित होती है। यह गैस कितनी ही अधिक मात्रा में तैयार की जा सकती है और खर्च भी बहुत कम बैठता है।

निकट भविष्य में पौधों की बीमारियों से लड़ने और फसल बढ़ाने के लिए नाइट्रोजन डाईआक्साइड का उपयोग सोवियत संघ में बड़ी मात्रा में किया जाएगा।

५. पटसन के डण्ठलों से लुगदी

देहरादून की वनअनुसंधानशाला पटसन के डण्ठलों से चमकदारऔर मजबूत लुगदी बनाने की विधि निकाली है। इस लुगदी से अखबारी कागज और लपेटने तथा लिखने का कागज तैयार हो सकता है। डण्ठलों से लगभग ७०-८० प्रतिशत लुगदी तैयार हो जाती है। देश में हर साल पटसन के लगभग ३० लाख टन डण्ठल निकलते हैं।

यह विधि पहले अमेरिका में भूसे आदि की लुगदी तैयार करने के लिए निकाली गयी थी। इसके अंतर्गत हवा के सामान्य दबाव और लगभग १०० सेंटीग्रेड ताप में लुगदी तैयार होती है। इस प्रकार थोड़े समय में अधिक लुगदी तैयार हो जाती है और खर्च भी कम पड़ता है। इसमें हवा का अधिक दबाव रखने वाले उपकरणों की आवश्यकता नहीं पड़ती, अतः खतरा भी कम रहता है।

इस विधि में डण्ठलों को १-१ इंच के टुकड़े करके उबलते हुए सोडियम हाइड्रॉक्साइड में डाला जाता है और फिर इसे साफ करके लुगदी तैयार की जाती है। इससे ६० ग्राम वजन का एक वर्ग मीटर कागज बनता है।

६. देशी मुलम्मा

अनेक प्रकार के मुलम्मे (एनेमल) और चीनी मिट्टी का सामान बनाने में टिन आक्साइड को रंग के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। टिन आक्साइड विदेशों से मँगाया जाता है और इसका भाव घटता-बढ़ता रहता है। कभी-कभी यह मिलता भी नहीं है।

अब कलकत्ता की केन्द्रीय कांच और चीनी मिट्टी अनुसन्धानशाला ने इसके स्थान पर अलुमिना इस्तेमाल करने का तरीका निकाला है। प्रयोग करने से पता चला है कि इससे भी मुलम्मों और चीनी मिट्टी के सामान पर उतना ही अच्छा रंग आता है, जितना टिन आक्साइड से। इसमें अलुमिना एलम के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

७. मधुमेह के लिए क्लोरप्रोपेमाइड

लखनऊ की केन्द्रीय औषध अनुसन्धानशाला में १२ रोगियों को क्लोरप्रोपेमाइड दवा देने से पता लगा है कि यह मधुमेह के लिए उपयोगी हो सकती है और इसके सेवन से कोई हानि नहीं होती।

पर कोलम्विया विश्वविद्यालय की लेमोण्ट भूगर्भीय वेधशाला के वैज्ञानिक इसकी जाँच करते रहेंगे। वैज्ञानिकों की योजना इसी प्रकार के दो अन्य यन्त्रों की स्थापना करने की है क्योंकि पृथ्वी के संकुचन और विस्तार का पता लगाने के लिए ऐसे तीन यन्त्र आवश्यक समझे जाते हैं।

८. भूकम्प का अंकन करने के लिए नया 'सीसमोग्राफ'

न्यूयार्क के निकट एक सुरंग में एक अति-संवेदनशील भूचाल-मापक यंत्र (सीसमोग्राफ) लगाया गया है। यह उस योजना को कार्यान्वित करने की दिशा में प्रथम कदम है, जिसका उद्देश्य इस बात का निर्धारण करना है कि पृथ्वी की पपड़ी दीर्घकाल में संकुचित होती है या फैलती है।

यह यन्त्र इतना संवेदनशील है कि यह न्यूयार्क नगर और शिकागो के बीच पृथ्वी की पपड़ी में १ इंच के कुछ अंश तक होने वाले परिवर्तन को भी अंकित कर सकता है; यह हजारों मील दूर के भूकम्पों से उत्पन्न लहरों का पता लगा सकता है। समय-समय

९. लघु इलेक्ट्रोड

एक लघु इलेक्ट्रोड जो सीधे शरीर के ऑक्सीजन की नाप लेता है, जीवन की प्रक्रियाओं के साथ ऑक्सीजन के सम्बन्ध को प्रदर्शित करने में सफल सिद्ध हो सकता है। यह सम्भावना इस यन्त्र का निर्माण करने वाली अमेरिकी कम्पनी वेकमैन इन्स्ट्रूमेण्ट इन्कार्पोरेटेड—के प्रवक्ता ने व्यक्त की है।

इस इलेक्ट्रोड (विजली के तार का पतला छोर) के सिरे पर प्लेटिनम की परत चढ़ाई गयी है। इसका व्यास ·००५ इंच है। ईसे शरीर की रक्तवाहनी धमनियों तथा शरीर के अन्य द्रव पदार्थों का संचय करने वाले कोषों में प्रविष्ट किया जा सकता है। यहाँ तक कि इसे मस्तिष्क में भी प्रविष्ट किया जा सकता है।

इस इलैक्ट्रोड का नाम है 'फिजियोलोजिकल गस एनेलाइजर'। इसका उपयोग हृदय के रोगों के स्थान का पता लगाने, दम के रोगी की ऑक्सीजन सम्बन्धी आवश्यकता का पता लगाने तथा भ्रूण के मस्तिष्क की चोटों का पता लगाने के लिए हो सकता है।

किसी व्यक्ति के शरीर से परीक्षण के लिए रक्त निकालने की सामान्य विधि का प्रयोग करने पर आक्सीजन की क्षति होती है, साथ ही यह विधि पूर्णतया ठीक तरह से कार्य नहीं करती। किन्तु इलेक्ट्रोड ईतना छोटा है कि इसे रक्त का नमूना निकालने के लिए प्रयुक्त होने वाली हुई के भीतर आसानी से बैठाया जा सकता है।

१०. आठ प्रणालियों वाला रेडियोग्राफ

मानव शरीर का गठन बहुत ही जटिल है और कई मामलों में तो आज भी रहस्यमय बना हुआ है। चिकित्सक सदैव यह स्वप्न देखते रहे हैं कि वह घड़ी उपस्थित हो जब वे रक्त संचार और भोजन के पचने तथा पचकर रक्त, तंतु आदि बननेकी क्रिया को 'देखने' का सुयोग पा सकें। ये क्रियाएँ शरीर के भीतर होती रहती हैं और इन्हीं पर शरीर का स्वास्थ्य और मानव का सुख निर्भर करता है। एक आठ प्रणालियों वाला रेडियोग्राफ यह सम्भव कर देगा कि मानव शरीर के भीतर होने वाली इन सबसे अधिक गुप्त प्रक्रियाओं को देखा जा सके।

कोई आदमी बहुत मामूली और सर्वथा अहानिकर मात्रा में गामा किरणों का विकिरण करने वाले रेडियो आइसोटोपों से युक्त चूरन खा लेता है। अनुसन्धानकारी तत्व सारे शरीर में फैल जाते हैं, शरीर के जिस अंग का निरीक्षण करना होता है, उसमें रेडियोग्राफ यंत्र के आठ नियंत्रक लगा दिये जाते हैं। वे डाक्टर को बतलाते हैं कि रक्त संचार में कितनी तीव्रता और गति है। भोजन किस तरह पचता है, इसकी भी सूचना देते हैं। किसी भी प्रकार का व्यतिक्रम तुरन्त अंकित हो जाता है।

११. बाल पक्षाघात की नयी दवा गालान्तोमिन

उजबेक विज्ञान अकादमी के वनस्पति-पदार्थ रसायन संस्थान ने बाल पक्षाघात के उपचार की एक नयी दवा निकाली है। इसका नाम गालान्तोमिन है। यह दवा मध्य एशिया के "काराकावुक" नाम के एक सदाबहार पौधे के फल से तैयार की गयी है। मास्को के अनेक चिकित्सालयों में इस दवा की परीक्षा की जा चुकी है।

१२. रक्तचाप और मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों की दवाएँ

लेनिनग्राद स्थित "फार्माकोन" फैक्टरी में अनेक प्रकार की औषधियों का बड़ी मात्रा में उत्पादन आरम्भ हो गया है। उन औषधियों में एक एप्रसीन है जो उच्च तनाव (हाइपर टेंशन) की अब तक की ज्ञात सर्वाधिक कारगर दवाओं में है। यह काफी समय तक धमनी सम्बन्धी रक्तचाप को कम करती तथा सर-दर्द को आराम देती है जिससे रोगी की सामान्य अवस्था में सुधार होता है।

दियाजिल नामक एक अन्य दवा बहुत ही कारगर है जिसका प्रयोग स्नायु और मस्तिष्क सम्बन्धी अनेक प्रकार की बीमारियों में होता है। मेथासीन नाम की एक नयी दवा है जो चेतनाशून्यता के दौरान अधिक रक्तचाप को कम करती है।

१३. क्या मुर्दे को जिलाया जा सकता है?

जार्जिया के शरीर विज्ञानविद् म्शेद्लिश्विली ने एक खोज की है जो शरीर के फिर से जीवित हो जाने की समस्या का समाधान करने में सहायक होगी।

सोवियत अस्पतालों में हजारों लोगों को डाक्टरी विचार से मृत्यु के तीन-चार मिनट बाद फिर जीवित किया जा चुका है। अब वैज्ञानिक यह प्रयत्न करने में लगे हैं कि डाक्टरी विचार से मृत्यु की अवधि कैसे बढ़ायी जाय, जब हृदय की धड़कन बन्द हो जाती है, परन्तु पाचनक्रिया के बाद रक्त बनने की क्रिया अल्पतम रूप में फिर भी होती रहती है। फिर भी अभी कुछ बातें एसी हैं जिनका समाधान होना शेष है। उदाहरणार्थ शरीर के नष्ट होने के बाद मानव का सबसे अधिक स्पन्दनशील अंग, मस्तिष्क का अगला बड़ा भाग रक्तचाप में ह्रास के कारण तत्काल क्यों नहीं नष्ट हो जाता?

जार्जिया के शरीर विज्ञानविद् ने यह प्रतिपादित कर दिया है कि मस्तिष्क को रक्त पहुँचाने वाली नाड़ियों में एक प्रकार की "तालाबन्दी की व्यवस्था" रहती है जो अन्य नाड़ियों में नहीं होती। जब शरीर का रक्त संचार बन्द हो जाता है, तब यह व्यवस्था शेष नाड़ी प्रणाली से मस्तिष्क की नाड़ियों का सम्बन्ध तोड़ देती है। फलस्वरूप मस्तिष्क में कुछ मिनटों तक रक्तचाप बना रहता है। यदि इस बीच अन्तर्नाड़ी रक्त संचार किया आरम्भ हो जाए, तो शरीर को डाक्टरी विचार से मृत्यु की अवस्था से फिर जीवित किया जा सकता है।

जार्जिया के वैज्ञानिक की यह खोज निश्चय ही डाक्टरी विचार से मृत्यु की अवधि बढ़ाने में और अनेक लोगों को मृत्यु के मुंह से निकाल लाने में सहायक होगी।

४८वें विज्ञान कांग्रेस के सभापति

डा० नीलरत्न धर

जन्म : २ जनवरी १८९२ को बंगाल प्रान्त के जेसोर नामक स्थान में।

शिक्षा : इंटर तक की शिक्षा रिपन कालेज कलकत्ता में और बी० एस-सी० तथा एम० एस-सी० की शिक्षा प्रेसीडेन्सी कालेज कलकत्ता में पाई। बी० एस-सी० (१९११) तथा एम० एस-सी० (भौतिक रसायन १९१३) परीक्षाओं में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुये। १९१६-१९ तक विदेश में अध्ययन करने के लिए स्टेट स्कालर चुने गये।

उपाधियाँ : लन्दन विश्वविद्यालय ने १९१७

में डी० एस-सी० (रसायन) तथा पेरिस विश्व-विद्यालय ने १९१९ में "दाक्तुरे ए स्यॉंस" अथवा डाक्टर आफ साइंस की उपाधि दी ।

अध्यापन-कार्य : सन् १९१९ से १९५३ तक रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय के अध्यक्ष रहे।

सदस्य : केमिकल सोसाइटी, लन्दन के सदस्य (१९१६), रायल इंस्टीट्यूट आफ केमिस्ट्री, लन्दन के सदस्य (१९१९)।

अध्यक्ष: भारती साइंस कांग्रेस, मद्रास (१९२२) में रसायन शाखा के सभापति ; केमिकल सोसाइटी के सभापति (१९३०-३२), नेशनल एकेडमी आफ़ साइंस (भारत) के सभापति (१९३५-३७, १९५२) तथा ४८ वें भारतीय साइंस कांग्रेस के अध्यक्ष (१९६१), विज्ञान परिषद् प्रयाग के सभापति (१९३०-३३) तथा इंडियन सोसाइटी आफ स्वायल साइंस के सभापति (१९६०)।

शोध: भौतिक रसायन तथा कृषि रसायन में प्रभूत शोध कार्य। भारतीय भौतिक रसायन के **'जनक'**। शीलाधर मृतिका गवेषणागार के संस्थापक एवं आजीवन निर्देशक।

आपके निरीक्षण में १५० से अधिक शोध छात्र डी० फिल० तथा डी० एस-सी० के शोध प्रबन्ध दे चुके हैं। आपके ४५० से अधिक शोध-पत्र संसार की प्रमुख शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

कृतियाँ: अंग्रेजी में

१ Chemical Action of Light

२ New Conception in Biochemistry

३ Influence of Light on Some Biochemical Processes

वंगला में

१ आमादेर खाद्य

२ ज़मीर उर्वरता—२ भाग

विदेश यात्रायें : आपने कैम्ब्रिज, एडिन्बरा, लन्दन, पेरिस, गोटिञ्जेन विश्वविद्यालयों तथा उप-साला (स्वीडेन) के कृषि कालेज में भाषण दिये। आप के सुझावों पर स्वीडन में भूमि उर्वरता बढ़ाने पर कुछ प्रयोग भी किये गये। आपने अनेक बार यूरप की यात्रा की। इस वर्ष आप संयुक्त राष्ट्र अमेरिका भी गये थे।

दान : आपने शिक्षा संस्थाओं, विज्ञान तथा सामाजिक कार्यों के लिए, ७½ लाख रुपये दान दिये हैं।

पुस्तक समीक्षा

१. **काँच और सेरामिक**: कौंसिल आफ साइंटिफि एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ संख्या २७।

इस पुस्तिका के द्वारा केन्द्रीय काँच और सेरामिक अनुसन्धानशाला द्वारा काँच और सेरामिक उद्योग के क्षेत्र में हमारे देश में जो उन्नति हुई है उसका सरल भाषा में रोचक वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। कहना न होगा कि देश में काँच की चूड़ियों, बोतलों, आप्टिकल ग्लासों, पोर्सलीन के सामान, सेरामिक के पदार्थों आदि की कितनी आवश्यकता है परन्तु स्वाधीनता प्राप्ति के पूर्व देश का काँच-उद्योग बाहर से प्राप्त सामग्रियों पर ही निर्भर करता था। सन १९५० में कलकत्ता में केन्द्रीय काँच और सेरामिक अनुसन्धानशाला के स्थापित होने से इन सभी समस्याओं का हल निकालने में सफलता प्राप्त हुई है। इस अनुसन्धानशाला ने देश में ही प्राप्त कच्चे माल का उपयोग करते हुए जो उल्लेखनीय कार्य किये हैं उनमें से प्रमुख सिलेनियम रहित लाल काँच का निर्माण, विना सुहागे की तामचीनी, सैगर, काँच की बोतलें और पात्र, सिगनल काँच, पोर्सलीन, रिफ्रैक्टरीज, झगीला काँच, अभ्रक की ईंटे, आप्टीकल काँच हैं।

पुस्तिका में कई आकर्षक चित्र भी हैं। यह पुस्तिका अत्यन्त लोकोपयोगी है। यदि रिफ्रैक्टरीज, आप्टीकल जैसे शब्दों के लिए हिन्दी समानार्थी शब्द प्रयुक्त किये गये होते तो पुस्तिका का उद्देश्य सिद्ध हो जाता। हिंदी का एक शब्द "तामचीनी" ऐसा है जो बहुत कम प्रयुक्त होता है, इसके लिये अँग्रेजी शब्द भी नहीं दिया गया अतः यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि यह किस चीज के लिये प्रयुक्त हुआ है। आशा है अगले संस्करण में इस ओर ध्यान देकर पुस्तिका में आवश्यक संशोधन कर लिये जावेंगे।

२. Provisional list of Technical Terms in Hindi भौतिकी—३। शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, १९६०।

सन १९५५ से अब तक भौतिकी में दो पारिभाषिक शब्दावलियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। यह तीसरी शब्दावली है जिसमें उष्मा और ध्वनि सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द हैं। परिशिष्ट में एक संशोधित शब्दावली भी दी हुई है।

इस शब्दावली के प्रथम भाग के निम्न शब्दों की ओर हम शब्दावली सम्पादकों का ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे :

Ice (बर्फ), calorific value उष्मा उत्पादकता, thermal तापीय thernodyamic उष्मा गतिक।

ज्ञात हो कि रसायन तथा भौतिकी (२) पारिभाषिक शब्दावली में Ice के लिये '**हिम**' प्रयुक्त हो चुका है। प्रस्तुत शब्दावली में भी Cryoscope के लिये **हिमांकमापी** प्रयुक्त हुआ है अतः हमारा सुझाव है कि Ice के लिये **हिम** शब्द पुनः प्रयुक्त हो और Ice calorimeter को **हिम उष्मामापी** रखा जाय। calorific के लिये 'तापीय' स्वीकृत हो सकता है परन्तु उस दशा में thermodynamics के लिये 'ताप गतिक' उपयुक्त होगा, न कि उष्मागतिक। यही बात calorific के लिये है। Calorie के लिये कैलोरी स्वीकृत है अतः calorific के लिये 'कैलोरिकीय' होना चाहिये।

शब्दावली में Calorie के लिय **कलरी**, Entropy के लिय **एन्ट्रापी**, Crystallization

लिये **क्रिस्टलन,** Virial के लिय **वीर्यल** शब्द रखे गये हैं, जबकि उनके लिये पारिभाषिक शब्द मिल सकते हैं।

Temperature scale के लिय सर्वत्र **तापक्रम** रखा गया है जो भ्रामक है क्योंकि बहुत पहले temperature के लिय **तापक्रम** का प्रयोग होता था। Thermal विशेषण के रूप में अंग्रजी में प्रयुक्त होता है। हिन्दी में उसका समानार्थी होगा तापीय या उष्मीय परन्तु एक स्थान पर thermal expansion के लिय **तापज** प्रसार दिया गया है।

शब्दावली के द्वितीय भाग के शब्दों के सम्बन्ध में भी ऐसी ही त्रुटियाँ परिलक्षित होती हैं। उदाहरणार्थ sound शब्द को लीजिये, उसका समानार्थी **'ध्वनि'** है। अँग्रजी का Accoustic शब्द sound से सम्बन्धित है। हिन्दी में उसका रूपान्तर **'ध्वानिकी'** किया गया है। उसीसे **'ध्वानिकता'** भी बनाया गया है। ध्वनि से 'ध्वन्य' और "ध्वन्यता' बनने चाहिये कि ध्वानिक तथा ध्वानिकता। Beat के लिये **विष्पन्दन** ही उपयुक्त है, **डोल** नहीं।

Cavitation के लिये **कोटरीभवन** उपयुक्त नहीं, **अन्तर्गुहा** होना चाहिये। tone के लिये एक स्थान पर **स्वरक** है परन्तु दूसरी जगह **टोन** ही रखा गया है। Diatonic को **डायटोनिक** ही रहने दिया गया है। Energetics के लिय **और्जिकी** उपयुक्त है **ऊर्जावाद** नहीं। Filter cii cuit के लिय **छानन परिपथ** हास्यास्पद है। ऐसे ही falling plate method के लिय **गिरती पट्टिका विधि** दिया गया है। पहले इसके लिये **पतन्ति पट्टिका** विधि स्वीकृत हुआ था। इसे **पट्टिका-पतन विधि** होना चाहिये Humming के लिये **गुंजन** उपयुक्त शब्द होगा, **भिनभिनाना** नहीं। Identical के लिय रसायन शब्दावली में **सर्वसम** स्वीकृत हुआ है परन्तु यहाँ पर **सर्वथासम** दिया गया है। सर्वसम ही अधिक उपयुक्त है।

Musical flame के लिय **गायक ज्वाला** न होकर **गुंजरित ज्वाला** या **स्वरित ज्वाला** उपयुक्त होगा। Mechanism के लिय **यांत्रिकत्व** बिल्कुल ठीक नहीं। रसायन में इसके लिये **प्रक्रम** स्वीकृत है और सर्वसामान्य प्रयोग कि लिये **'यंत्रण'** ठीक होगा।

Organ pipe, pick up, silencer आदि को उसी रूप में स्वीकृत करना ठीक न होगा। इनके लिये शब्द बनाने चाहिये।

यहाँ पर कुछ विशिष्ट शब्दों की ओर भी ध्यान आकर्षित करना संगत होगा। द्वितीय भाग में **'गज'** और **'नैज'** शब्दों का प्रयोग क्रमशः bow तथा natural के लिये हुआ है। पहला शब्द फारसी का है और दूसरा संस्कृत शब्द **निज** से उत्पन्न। कहना न होगा कि **गज** का प्रयोग लम्बाई नापने वाले गज के लिय ही होता है अतः उसके द्वारा सितार बजाने वाली कमानी के लिये बोध सहज नहीं। **नैज** के स्थान पर सरल शब्द **सहज** का प्रयोग होना चाहिये।

शब्दावली में Receiver के लिये **श्रोत्रिका** शब्द दिया गया है। ज्ञात हो कि भौतिकी-१ में इसे **संग्राही** तथा रसायन-४ में इसे **ग्राही** के रूप में स्वीकार किया जाचुका है अतः इसके सुधार आवश्यक है।

Spherical के लिये एक विचित्र विशेषण का प्रयोग हुआ है—**"गोलीय"**। गोला से जो विशेषण सामान्यतया बन सकते हैं वे हैं गोल, गोलाकार तथा गोलाकृति अतः इनका ही प्रयोग तर्कसंगत होगा। Threshold intensity के लिये **तीव्रता की देहली** हास्यास्पद लगता है। हमारा सुझाव है कि शाब्दिक अनुवाद न करके **तीव्रता का प्रवेश या प्रारम्भ** किया जाय।

भौतिक भूगोल शब्दवली-२ में noise के लिये **'शोर'** दिया गया था। उस समय हमने कोलाहल' या 'रव' जैसे शब्द प्रस्तावित किये थे। हर्ष का विषय है कि सम्पादकों ने प्रस्तुत शब्दावली में noise के लिये **राव** शब्द चुना है जो सर्वसम्मान्य होगा।

विश्वविद्यालयों में शिक्षा का निम्न-स्तर:

पिछले मास जबलपुर विश्वविद्यालय के चतुर्थ दीक्षान्त समारोह पर भाषण करते हुए डा० चिन्तामणि देशमुख ने भारतीय विश्वविद्यालयों के निम्नस्तरीय ज्ञान का उल्लेख किया। उन्होंने यह प्रस्ताव रखा कि तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुये विद्यार्थियों को पुनः परीक्षा देने और द्वितीय या प्रथम श्रेणी प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित किया जाय।

भारतीय विश्वविद्यालयों की संख्या २९ है जिनमें सन् १९५९ में कला विभाग में एम०ए० शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या १५००० थी। इसमें से १२००० विद्यार्थी उत्तीर्ण हुये। इस प्रकार प्रति विश्वविद्यालय से ५३३ छात्र परीक्षा में सम्मिलित हुये जिनमें से ४३१ उत्तीर्ण हुये। समस्त उत्तीर्ण विद्यार्थियों में ४% विद्यार्थियों को प्रथम श्रेणी, ३४% को द्वितीय श्रेणी और शेष ६२% को तृतीय श्रेणी मिली।

विज्ञान में परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों की कुल संख्या ४००० प्रतिवर्ष है जो कला विभाग की संख्या का २०% है। इसमें से उत्तीर्ण परीक्षार्थियों की संख्या ३१०० है अथवा कुल छात्रों का ७७.५%। अतः उत्तीर्ण परीक्षार्थियों की संख्या कला विभाग के छात्रों से कम है परन्तु प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण छात्र १५.५%, द्वितीय श्रेणी में ३३.७% तथा तृतीय श्रेणी में ५३.८% है।

उपरोक्त आँकड़ों से स्पष्ट है कि हमारी शिक्षा का अन्तिम परिणाम है देश में तृतीय श्रेणी के छात्रों का उत्पादन। आधे से अधिक छात्र तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण होते हैं अतः जब उनके समक्ष नौकरी का प्रश्न आता है तो हताश होना पड़ता है। प्रायः इन तृतीय श्रेणी-धारियों को न तो शिक्षकों के पद के लिये और न अन्य प्रतिद्वन्दिता-परीक्षाओं में ही चुना जाता है। तो भला ऐसी श्रेणी से क्या लाभ ? अतः निश्चित है कि या तो तृतीय श्रेणी रखी ही न जाय और यदि रखी जाने पर भी उसका लाभ छात्रों को नहीं मिलता तो कोई दूसरा हल निकाला जाय। डा० देशमुख द्वारा प्रस्तावित हल ऐसा ही है। उनका विश्वास है कि तृतीय श्रेणी वाले छात्र अपने विषयों का तृतीयांश ही हस्तगत कर सके हैं अतः वे पुनः पढ़ कर दूसरे वर्ष परीक्षा में सम्मिलित हो प्रथम या द्वितीय श्रेणी प्राप्त कर यह सबूत दें कि उन्होंने अपने ज्ञान में आवश्यक वृद्धि कर ली है। सचमुच ही ऐसा हल विद्यार्थियों को प्रथम दृष्टि पर लाभकारी न प्रतीत हो परन्तु उन विद्यार्थियों के लिये, जो तृतीय श्रेणी के कारण जीवन भर हानि उठाते हैं, लाभान्वित होने की महत्वपूर्ण सीढ़ी है। निम्न श्रेणी में उत्तीर्ण छात्र और अधिक अध्ययन करके उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण होकर यह प्रत्यक्ष प्रमाणित करेंगे कि अब वे योग्य हो गये हैं। ऐसा करने से दो लाभ होंगे—एक तो यह कि विद्यार्थी परीक्षा में बैठने के पूर्व पूरी तय्यारी करेंगे तथा कम छात्र परीक्षा में सम्मिलित हो पावेंगे। राष्ट्र के वास्तविक उत्थान के लिये आवश्यक है कि

हमारे छात्र अपने विषय के पारंगत हों और ज्ञान की शिखा को प्रज्ज्वलित रखें। अधूरे ज्ञान के साथ वे आगे प्रगति नहीं कर सकते।

विश्वविद्यालयों में शिक्षा के निम्न स्तर का एक कारण और बताया जाता है और वह है कम आयु के छात्रों का प्रवेश। नितप्रति विश्वविद्यालयों में कम उम्र वाले छात्रों का बाहुल्य होता जा रहा है। यही नहीं, कुछ छात्र जानबूझ कर अपनी कम उम्र लिखाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वे कम आयु में उच्चतम शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं और नौकरी मिलने के लिये २-४ वर्ष तक बैठे रहते हैं। कम आयु में ही उच्च श्रेणी तक पहुँचने में जो मुख्य दोष है वह यह है कि छात्र का वैयक्तिक विकास पूर्णता को नहीं प्राप्त कर पाता। वह उन अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता जो शिक्षा, अनुसन्धान या नौकरी के क्षेत्र में आवश्यक होती हैं। ऐसे छात्र अध्यापक बनकर भी छात्रों के बीच खो से जाते हैं। उनकी कक्षाओं में अनुशासन भंग होना साधारण सी घटना है। आयु के बढ़ने के साथ ही मानसिक प्रौढ़ता आती है अतः उचित आयु प्राप्त होने पर ही पढ़ाई प्रारम्भ की जानी चाहिये। कुछ राष्ट्रों में विश्व-विद्यालय में प्रवेश करने के लिये आयु-सीमा निर्धारित है। यदि हमारे देश में ऐसी सीमा निर्धारित नहीं होती, तो कम आयु वाले छात्रों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती ही जावेगी। फिर उन्हें जो परिश्रम करनी पड़ेगी और उनके मस्तिष्कों पर जो भार पड़ेगा वह निश्चय ही उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालेगा। फलतः यह प्रथा राष्ट्र के कल्याण अथवा स्वास्थ्य के लिये हितकर नहीं। इसको मिटाने के लिये कलेजों में विद्यार्थियों को एक-दो वर्ष और रोका जाना उचित होगा।

विश्वविद्यालयों में शिक्षा के स्तर को उठाने के लिये यह आवश्यक नहीं कि विश्वविद्यालयों की संख्या में वृद्धि लाई जाय वरन् नितान्त आवश्यकता इस बात की है कि उनमें व्यावहारिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय। कला-पक्ष में विषयों की इतनी भरमार है और इतने प्रकार के विद्यार्थी निकलते हैं कि उनके लिये कार्य मिल पाना कठिन होगा। विज्ञान जिस गति से प्रगति कर रहा है उसकी तुलना में हमारे विश्वविद्यालयों के जो पाठ्यक्रम हैं वे अत्यन्त भोंडे लगते हैं। अतः पाठ्यक्रमों को प्रतिवर्ष संशोधित करते हुये नवीन से नवीनतर उपलब्धियों से विद्या-र्थियों को परिचित कराया जाय। इसके लिये यह आवश्यक होगा कि प्रतिवर्ष नवीन विषयों को सम्मि-लित करके उनमें पारंगत शिक्षकों के भाषणों की व्यवस्था हो। प्रति विश्वविद्यालय के विज्ञान विभाग के उपविभागों में न केवल वृद्धि की जाय वरन् उन्हें सफल बनाने के लिये उपयुक्त प्राध्यापक भी नियुक्त किये जायँ। विशिष्ट विषयों में सिद्धहस्त व्यक्तियों को कुछ काल के लिये अवश्य ही रखा जाय।

भारतीय शिक्षा में भाषा सम्बन्धी प्रश्न पर बड़ा विवाद मचा रहता है। कुछ लोगों का विश्वास है कि अँग्रेजी के बिना ज्ञान का स्रोत ही रुक जायगा, विशेषतः विज्ञान के क्षेत्र में। परन्तु यहाँ यह बता देना प्रासंगिक होगा कि यह लोगों की मात्र कल्पना एवं भय है। अपनी राष्ट्र भाषा के द्वारा जो ज्ञान अर्जित करके जिस क्षमता से प्रकट किया जा सकता है वह विदेशी भाषा के माध्यम से कदापि सम्भव नहीं। आज जब छात्रों को अँग्रेजी का थोड़ा भी सम्यक ज्ञान नहीं, उनसे विभिन्न विषयों में पूर्ण क्षमता की आशा व्यर्थ है। उन्हें राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से ही निपुण एवं कार्यशील बनाया जा सकता है।

२. विज्ञान कांग्रेस, रुड़की में विज्ञान परिषद् गोष्ठी का आयोजन

पिछले वर्ष की भाँति इस बार भी विज्ञान कांग्रेस के ४८वें अधिवेशन के अवसर पर विज्ञान परिषद् ने एक गोष्ठी की आयोजना की है। ज्ञात हो कि विज्ञान कांग्रेस का यह अधिवेशन ३ जनवरी

१९६१ से ९ जनवरी १९६१ तक रुड़की में होगा। इसकेसभापति प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के पूर्व अध्यक्ष डा० **नीलरत्न धर** होंगे। यह हर्ष का विषय है कि डा० धर विज्ञान परिषद् के अध्यक्ष रह चुके हैं।

विज्ञान कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर आयोजित विज्ञान परिषद् गोष्ठी का सभापतित्व डा० **आत्माराम** करेंगे। आप **सेण्ट्रल ग्लास एण्ड सेरामिक रिसर्च इण्स्टीट्यूट, कलकत्ता** के निर्देशक हैं। आपको प्राविधिक क्षेत्र में विशिष्ट कार्य करने के कारण अत्यन्त ख्याति उपलब्ध है। आपको पिछले वर्ष साइंटिफिक रिसर्च कमेटी द्वारा विशेष पुरस्कार प्राप्त हुआ था। यही नहीं, डा० शान्ति स्वरूप भटनागर पदक के भी आप विजेता हैं। ऐसे योग्य वैज्ञानिक के सभापतित्व में आयोजित विज्ञान परिषद् गोष्ठी विशेष महत्त्व की होगी क्योंकि काँच के उद्योग में हुई उन्नति से सम्बन्धित उनके सारगर्भित भाषण के अतिरिक्त विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर शोध-निबन्ध भी पढ़े जावेंगे। इस अवसर पर उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री श्री चन्द्रभान गुप्त विशिष्ट अतिथि होंगे। हिन्दी में रुचि रखने वाले भारत के विभिन्न क्षेत्रों से वैज्ञानिक इस गोष्ठी में विचार विमर्श करेंगे। हिन्दी के द्वारा वैज्ञानिक क्षेत्रों में अधिकाधिक अभिरुचि उत्पन्न करने का यह प्रयास सर्वथा सराहनीय है।

३. सोवियत संघ का तीसरा अन्तरिक्ष यान

१ दिसम्बर को सोवियत संघ ने तीसरा अन्तरिक्ष यान छोड़ा। यह प्रति ८८·६ मिनट में पृथ्वी की परिक्रमा करता रहा। इसका भार ५ टन बताया जाता है। इसमें प्रायोगिक जानवरों के रूप में दो जीवित कुत्ते 'पचेल्का' तथा 'मुश्का' रखे गये थे। साथ में अन्य जानवर, कीटाणु तथा पौदे भी थे। यान सम्बन्धी सूचना रेडियो टेलीविजन यंत्रों तथा टेलीमीट्रिक पद्धतियों द्वारा प्राप्त की गई। स्पूतनिक यान में वैज्ञानिक मापों के लिये जो यंत्र लगाये गये थे उनमें वाह्य अन्तरिक्ष की भौतिकी से सम्बन्धित अनेक खोजों की व्यवस्था की गई थी। दो दिनों तक यान के सारे यन्त्र स्वाभाविक रीति से कार्य करते रहे परन्तु अब एक विज्ञप्ति में यह कहा गया है कि अन्तरिक्ष यान को वापस लाने के प्रयत्न में सारा यान ध्वस्त हो गया जिससे उसके समस्त प्राणी आहत हो गये।

अन्तरिक्ष यान विज्ञान की प्रगति में यह अत्यन्त निराशाजनक घटना है परन्तु रूसी वैज्ञानिक इससे हतोत्साहित न होकर अपने प्रयास जारी रखेंगे, ऐसा विश्वास है। जब तक जीवित मनुष्य अन्तरिक्ष की यात्रा करके नहीं लौट आता, रूसी वैज्ञानिक दम लेने वाले नहीं।

डा० धर की कल्पना साकार हुई
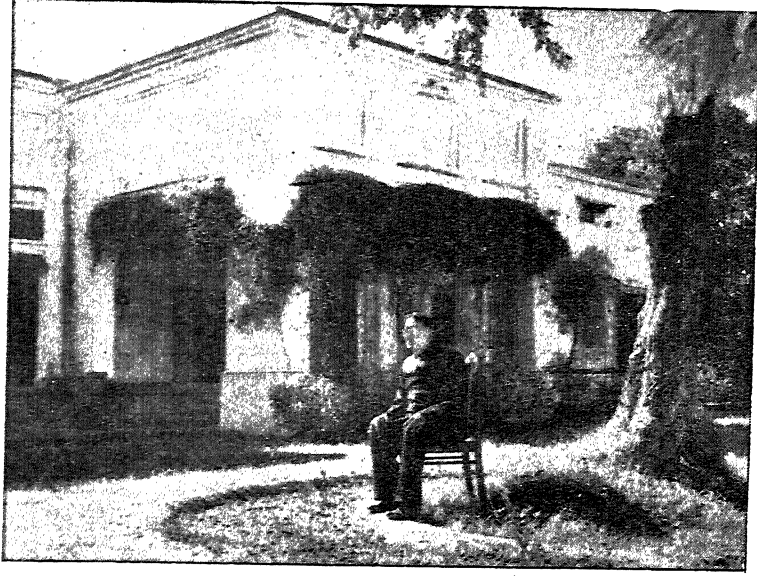
शीलाधर मृत्तिका गवेषणागार (SHEILA DHAR INSTITUTE OF SOIL SCIENCE)

के समक्ष डा० धर आसीन हैं।

डा० धर ने शीलाधर इंस्टीच्यूट का नामकरण सन् १९४९ में अपनी पत्नी शीला की स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये किया। इस स्मारक के रूप में डा० धर ने ४½ लाख रुपये का दान प्रयाग विश्वविद्यालय को किया। डा० धर इस इंस्टीच्यूट के आजीवन निर्देशक हैं। इस समय उनकी देख रेख में भारतवर्ष के विभिन्न भागों के एक दर्जन से अधिक तरुण छात्र डी० फिल० डिग्री के लिये शोध कार्य कर रहे हैं।

शीलाधर मृत्तिका गवेषणागार का प्रमुख उद्देश्य है भूमि उर्वरता को बढ़ाने के लिये मृत्तिका विज्ञान के विविध अंगों पर अनुसंधान करना।

यह गवेषणागार २डी-बेली रोड (इलाहाबाद) पर स्थित है। यह पहले **इंस्टीच्यूट आफ सॉइल साइंस** के नाम से विख्यात था। बाद में अपनी पत्नी शीला की मृत्यु के बाद डा० धर ने इसका नाम बदल दिया।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिगराम भार्गव	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगाशंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रामेश वेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकरराव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण—लेखक एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर	२ रुपया
१०—कलम पैबन्द—श्री शंकरराव जोशी	२ रुपया
११—जिल्दसाजी—श्री सत्य जीवन वर्मा	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद	१ रुपया
१३—वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद, वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० न०पै०
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपया
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपया
१९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
२०—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रु० ५० न०पै०
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकरराव जोशी	३ रु० ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनिया—श्री रामेश वेदी	४ रुपया
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्र नाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान शालायें	२ रुपया
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
२६—रेल इंजन, परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया
२७—भारतीय कृषि का विकास—डा० शिवगोपाल मिश्र	५ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ९२ | २०१७ विक्र० पौष १८८२ शाकाब्द जनवरी १९६१ | संख्या ४

नाइट्रोजन-समस्या—भारतीय साइंस कांग्रेस में अध्यक्षपदीय भाषण

नील रत्न धर

भूमिका

पेरिस में आयोजित छठवें अंतर्राष्ट्रीय मृत्तिका विज्ञान के अधिवेशन में ५१ राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने भूमि-उर्वरता पर विचार प्रकट किये, जिनमें मृत्तिका उर्वरता विद्यालय ग्रोनिन्जेन, हालैंड के निर्देशक **डा० पी० ब्रुइन** ने यह प्रस्ताव रक्खा कि समशीतोष्ण जलवायु वाले प्रदेशों में नाइट्रोजनीय उर्वरकों की अधिक मात्रा छोड़ कर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयोग किये जायँ। इस वाद विवाद का समारम्भ करते हुये मैंने कहा, "मेरे विचार से डाक्टर ब्रुइन का मत न्याय संगत नहीं क्योंकि वे अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की कामना तो करते हैं परन्तु वे इसे समशीतोष्ण प्रदेशों तक ही सीमित रखना चाहते हैं। अतः यहाँ से समशीतोष्ण शब्द हटा लिया जाय, तभी यह न्यायसंगत होगा, क्योंकि एशिया, अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका आदि देशों में, जहाँ अधिकांश जनता निवास करती है, पश्चिमोत्तर यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका के देशों की अपेक्षा वैज्ञानिक प्रयोगों की नितान्त आवश्यकता है। अतएव इस सहयोग में सभी देश आमन्त्रित होने चाहिए। यह योजना समशीतोष्ण प्रदेशों तक ही सीमित न होनी चाहिए। साथ ही, सभी प्रकार की मिट्टियों में कार्बनिक पदार्थ विद्यमान रहता है अतः अकार्बनिक तथा कार्बनिक पदार्थों के मिश्रण के साथ प्रयोग होने चाहिए।" एफ० ए० ओ० के मृत्तिका विज्ञान विशेषज्ञ **डा० वी० इग्नतीफ** ने मेरा समर्थन करते हुये कहा "भारत के **डा० धर** ने भूमि उर्वरता की समस्या का महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया है। उन्होंने शीतोष्ण प्रदेशों के बाहर भी इस सहयोग की आवश्यकता पर बल दिया है क्योंकि इन देशों में ही अधिकांश जनसंख्या निवास करती है।" उन्होंने कहा कि इस सम्बन्ध में मैं इस गोष्ठी का ध्यान एफ० ए० ओ० द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय चावल आयोग के कार्य की ओर आकर्षित करना चाहूँगा।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि हमारे राष्ट्र की उन्नति विज्ञान तथा उसके प्रयोगों पर ही आधारित है और मैं यही उपदेश विगत चालीस वर्षों से देता चला आ रहा हूँ। अतः मैं यह देखने का इच्छुक हूँ कि भारतीय

वैज्ञानिक इस समस्या को अपने कठिन श्रम, धैर्य, त्याग तथा तपस्या के द्वारा हल करें। इस समय मैं आपकी सेवा में भारतीय साइंस कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में उपस्थित हूँ। मैं आप लोगों का कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझे यहाँ पर आमन्त्रित किया।

तत्व के रूप में नाइट्रोजन रंगविहीन, गंधविहीन तथा निष्क्रिय गैस है। जिस वायु में हम साँस लेते हैं उसमें यह ८०% विद्यमान है। प्रति एकड़ भूमि के ऊपर की वायु में ३५००० टन नाइट्रोजन पूरित है।

नाइट्रोजन को पौधों तथा पशुओं के "विकास तत्व' के रूप में स्वीकार किया गया है। यह क्लोरोफिल, प्रोटीन तथा अन्य आवश्यक पदार्थों में, जो पौधों तथा जानवरों के लिये परमावश्यक हैं, वर्तमान है। नाइट्रोजन की उचित मात्रा जीवन के लिए महत्वपूर्ण है। कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, गंधक, फासफोरस के साथ-साथ नाइट्रोजन जीवन के लिए अभिन्न तत्व है। नाइट्रोजन के अभाव में जीवन दुर्लभ हो जायेगा।

मुक्त नाइट्रोजन क्लॉवर, लूसर्न, सनई आदि द्विदालीय पौधों के अतिरिक्त किन्हीं भी अन्य पौधों के द्वारा भोजन के रूप में नहीं प्रयुक्त होता। उर्वरक के रूप में प्रयुक्त होने के लिए इसे संयुक्त दशा में होना चाहिए। नाइट्रीकारक के रूप में प्रयुक्त होने से पहले रंजक, औषधियों तथा अन्य विस्फोटक पदार्थों के बनाने में भी इसे संयुक्त रहना चाहिए। चूँकि नाइट्रोजन-यौगिकों का कृषि तथा अन्य उद्योगों में अधिक उपयोग होता है इसलिए आधुनिक काल में नाइट्रोजन-स्थिरीकरण उद्योग की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि कोयला तथा लौह उद्योग की।

साधारणत: अनुमान किया जाता है कि कृषि में फसलों का उगाया जाना प्राय: १०,०००–१२००० वर्ष पहले प्रारम्भ हुआ था। पशु-खादों का महत्व तभी ज्ञात हुआ जब मनुष्य एक स्थान पर अपने जानवरों के साथ रहने लगा और गोबर आदि का प्रयोग भूमि को उर्वर बनाने के लिए करने लगा। फिर तो मनुष्य ने घासें तथा फसलें उगाकर, जंगली पौधों तथा पत्तियों द्वारा उर्वर बनाई गई भूमि का प्रयोग किया और उर्वरता का विनाश भी प्रारम्भ किया। द्विदालीय पौधे प्राचीन काल से ही भूमि की उर्वरता को बढ़ाने के लिए प्रयुक्त होते। ग्रीस-रोमन काल में ल्यूपिन का प्रयोग भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए किया गया था।

उल्लेखनीय बात है कि प्राचीन काल से ही पौधों के आहार के सम्बन्ध में दो महत्वपूर्ण विचार-धाराएँ प्रस्तुत की गईं। बरनार्ड पैलिसी (१५१०-१५८९), बेकन (१५६१-१६२६), ग्लॉबर (१६०४-१६६८), बॉयल (१६२७-१६९१) तथा मुख्यतः लीबिग (१८०३-१८७३) ने **पैरासेल्सस के सिद्धान्त** का समर्थन किया। पैरासेल्सस ने अपने सिद्धान्त में कहा था कि लवण ही पौधों का वास्तविक आहार है। दूसरी विचारधारा के समर्थकों में होम (१७१९-१८१३), वैलेरियस (१७०९-१७८५), थार (१७५२-१८२८), डि सासरे (१७६७-१८४५), डेवी (१७७८-१८२९), डि कैण्डोल (१७७८-१८४१), बरजीलियस (१७७९-१८४८), मुल्डर (१८०२-१८८४) तथा अन्य प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे जिन्होंने **अरस्तू के मत** का प्रतिपादन किया कि कार्बनिक पदार्थ ही पौधों का आहार है। रसायन शास्त्र के जन्मदाता ए० लैवोजियर (१७४३-१७९४) घास के उगने से भूमि उर्वरता में वृद्धि होने से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने शोरा-स्तरों का अध्ययन उन मिट्टियों में किया जिनमें कार्बनिक पदार्थ अधिक था और जो धीरे-धीरे विघटित होता था।

यह कहा जाता है कि केनेल्म डिगबी ने १६६५ ई० में शोरे के प्रयोग से फसलों के उत्पादन में वृद्धि देखी परन्तु फसलों के लिए उर्वरकों का प्रयोग डि सासरे के अन्वेषण के पश्चात् ही हुआ। उन्होंने पौधों की राख का परीक्षण करके बताया कि उसमें वर्तमान रासायनिक तत्व पौधों द्वारा भूमि से ही शोषित किये जाते हैं। जे० बी० डी० बोसिंगोल्ट (१८०२-१८८७) ने अपने एल्सेस स्थित फार्म में प्रयोगों के

उपरान्त डि सासरे के मत की पुष्टि सन् १८३० में की। बैरन जस्टिस फॉन लीविग को इसका श्रेय इस लिए प्राप्त हुआ कि उन्होंने पौधों की फासफेट तथा पोटाश-आवश्यकताओं की ओर सबों का ध्यान आकर्षित किया। परन्तु वे नाइट्रोजनीय यौगिकों के वास्तविक महत्व को न पहिचान सके। लाज, गिलबर्ट तथा प्यू ने रोथैम्स्टेड में नाइट्रोजन की आवश्यकता सिद्ध की।

इंगलैंड में सत्रहवीं शती से ही १ टन हड्डियाँ प्रति एकड़ में छोड़कर भूमि को उर्वर किया जाता था। इसके सम्बन्ध में लीविग ने लिखा है:

"इंगलैंड अन्य देशों की उर्वरता का अपहरण कर रहा है। उर्वरता की उत्सुकता में उसने लीपज़िग, वाटरलू तथा क्रीमिया के युद्धस्थलों को खोद डाला है और सिसिली की समाधियों से पीढ़ियों पुरानी अस्थियों को निकाल लिया है।"

ग्वानो, जो समुद्री गृद्धों, समुद्री कछुवों तथा समुद्री जन्तुओं की विष्टा है, सर्वाधिक पेरू में पाया जाता है, यद्यपि संसार के अन्य भागों में भी इसके संग्रह हैं। ऐसा अनुमान है कि यूरोप में, कृषि में, ग्वानो का प्रयोग १२वीं शती से होता चला आ रहा है। हड्डियों में कैलसियम फासफेट तथा नाइट्रोजन की बहुलता होती है।

बहुत से स्थानों पर एल्यूमिनियम, अमोनियम, बैरियम, कैलसियम, ताँबा, लौह, मैगनीसियम, पोटैसियम तथा सोडियम के नाइट्रेट प्राकृतिक संग्रह के रूप में पाये जाते हैं परन्तु सोडियम तथा पोटैसियम नाइट्रेट ही व्यवसायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। मिश्र, अर्जेण्टाइना, कोलम्बिया, दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका, मेक्सिको तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में अल्प मात्रा में सोडियम नाइट्रेट मिलता है परन्तु चिली, अटाकामा तथा तारापाका के मरुस्थलों में इसकी बहुतायत है। प्राकृतिक नाइट्रेट-संग्रह की परत जिसे **कोस्ट्रा** कहते हैं तारापाका पठार की ऊपरी सतह पर है। इसमें बालू, जिप्सम तथा अल्प मात्रा में कैलसियम फासफेट भी मिश्रित होता है। संग्रह की दूसरी परत जिसे **कांजेल** कहते हैं मुख्यतः बजरी, मृदा तथा सामान्य लवण की अधिक मात्रा से युक्त होती है। तीसरी परत **कैलिशी** कहलाती है जिसमें नाइट्रेट विद्यमान रहता है। कैलिशी में निम्न अवयव पाये जाते हैं:

सोडियम नाइट्रेट	८-२५%	पोटैसियम नाइट्रेट	२-३%
सामान्य लवण	८-२५%	सोडियम सलफेट	२-१२%
कैलसियम सलफेट	२-६%	मैगनीसियम सलफेट	०-३%
सोडियम द्वि-बोरेट	१-३%,	सोडियम आयोडेट	०.०५-०.१%
सोडियम परक्लोरेट	०.१-०.५%,	अविलेय पदार्थ	२३-३०%

नाइट्रोजन-उद्योग

हेनरी कैवेण्डिश ने १७८१ ई० में वायु में विद्युत्प्रवाह द्वारा नाइट्रिक अम्ल प्राप्त करके नाइट्रोजन-उद्योग की नींव डाली। भौतिक शास्त्रियों ने गणना द्वारा पता लगाया है कि विद्युत-उन्मोच के कारण प्रतिवर्ष पृथ्वी के वायुमण्डल में १००० लाख टन नाइट्रोजन नाइट्रिक अम्ल में परिणित होता है परन्तु समस्त विश्व की कृषि योग ५०००० लाख एकड़ भूमि पर केवल ६०-१०० लाख टन नाइट्रोजन ही पहुँच पाता है। कैवेण्डिश का यह महत्वपूर्ण कार्य १०० वर्षों तक उपेक्षित सा पड़ा रहा परन्तु इसके बाद ही सर विलियम क्रुक्स (१८३२-१९१९) ने ब्रिटिश एसोशिएसन के समक्ष दिये गये अपने अध्यक्षपदीय भाषण में, सन् १८९८ में, नाइट्रोजन-उद्योग की महत्ता पर प्रकाश डाला और यह कहा कि इसके द्वारा बढ़ती हुई जनसंख्या की भुखमरी को सरलता से दूर किया जा सकता है और मानव समाज का बहुत बड़ा कल्याण हो सकता है।

जर्मनी के महान वैज्ञानिक डबलू० ओस्टवाल्ड ने सन् १९०४ ई० में नाइट्रिक अम्ल तैयार करके इस उद्योग को अँग्रेजों से युद्ध करने के लिये प्रयुक्त करने की दिशा प्रदान की। प्रोफेसर ओस्टवाल्ड तथा उनके जामातृ डाक्टर ब्रायर ने कोयले तथा लिगनाइट के अमोनिया के आक्सीकरण द्वारा नाइट्रिक अम्ल प्राप्त किया। इस क्रिया में प्लेटिनम का प्रयोग उत्प्रेरक के रूप में होता था परन्तु ओस्टवाल्ड को ज्ञात हुआ कि कोयले तथा लिगनाइट की अशुद्धियों के द्वारा मूल्यवान प्लेटिनम शीघ्र ही दूषित हो जाता है। फलतः उन्होंने अपने विद्यार्थियों से आह्वान किया कि वे बड़े पैमाने पर अमोनिया का संश्लेषण करें। एम० बर्थेलो (१८२७-१९०७) तथा प्रोफेसर एच० ल शैतलिये (१८५०-१९३६) ने फ्रांस में छोटे पैमाने पर अमोनिया प्राप्त किया। मुझे प्रोफेसर ल शैतलिये के साथ काम करने का अवसर सारबॉन, पेरिस में प्रथम विश्वयुद्ध के समय प्राप्त हुआ था। जब उन्होंने अपने विश्वविद्यालय में दिये जाने वाले व्याख्यान में भारतीय विधियों द्वारा कुतुब मीनार में लगे उच्चकोटि के लोहे का उल्लेख करते हुये कहा था कि भारतीय विधियों की बराबरी शताब्दियों के पश्चात् भी यूरोपीय लोग नहीं कर पाये, तो मुझे बड़े गर्व का अनुभव हुआ था। जर्मनी के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रोफेसर फ्रिट्ज हेबर (१८६८-१९३४) की संरक्षता में भी मुझे सन् १९२६ तथा १९३१ में कार्य करने का सुयोग प्राप्त हुआ था। ओस्टवाल्ड तथा हेबर के विद्यार्थियों ने वर्षों के अथक परिश्रम के पश्चात् अमोनिया-संश्लेषण में सफलता प्राप्त की। इस अभियान में बाडिश एनिलिन सोडा फैब्रिक जैसी संस्था तथा डा० बॉश तथा मिटाश जैसे औद्योगिक रसायनज्ञों ने सहायता पहुँचाई। अब तरल अमोनिया तथा अमोनिया के विलयन फसल उत्पादन के लिए संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा, डेनमार्क, नार्वे तथा अन्य देशों में सफलतापूर्वक अधिक मात्रा में प्रयुक्त होते हैं। अमोनिया प्राप्त करने के लिए हेबर-बॉश अमोनिया-विधि आजकल सर्वत्र अपनाई जा रही है, यद्यपि जी० क्लॉडे, एल० कैसेल तथा जी० फॉसर आदि ने इस विधि में सुधार भी किये हैं। अधुना समस्त विश्व में ७४ लाख टन नाइट्रोजन तैयार होता है जिसमें से ८५% अमोनिया के संश्लेषण से तथा १५% कैलसियम सायनामाइड के रूप में, जिसे जर्मनी के दो रसायनज्ञ ए० फ्रैंक (१८३४-१९१६) तथा एन० कैरो (१८३४-१९१०) ने निर्मित किया था, होता है। उपयोग में आने वाले नाइट्रोजन का ८०% कृत्रिम रूप से स्थिर किये गये नाइट्रोजन, १०% चीली के शोरे तथा १०% कोयले से प्राप्त अमोनिया से उपलब्ध होता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा आदि देशों के पास अमोनिया का प्रभूत संग्रह था जिसका उपयोग वे अमोनिया को हाइड्रोजन में विघटित करके, हाइड्रोजनीकरण-उद्योग में लाने लगे।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में निर्मित २० लाख टन नाइट्रिक अम्ल का ७५% उर्वरकों, १५% विस्फोटक पदार्थों तथा १०% रंजक, रेशे तथा प्लास्टिक के उत्पादन में प्रयुक्त होता है। खानें खोदने के लिए विस्फोटकों के बढ़ते प्रयोगों में अमोनियम नाइट्रेट का इस्तेमाल, फ्यूमिंग नाइट्रिक अम्ल के निर्माण, नाइट्रोजन टेट्रॉक्साइड और राकेट में प्रयुक्त होने वाले टेट्रानाइट्रोमिथेन के निर्माण करने के लिये नाइट्रिक अम्ल की माँग दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। अमोनिया का आक्सीकरण करके नाइट्रिक अम्ल तय्यार करने की विधि में अनेक सुधार किये गये हैं—जैसे वायुमण्डलीय दाब विधि व पूर्ण दाब विधि को उच्च ताप पर आक्सीकरण विधि के साथ मिलाकर **ड्यूपाण्ट की पूर्ण दाब विधि** तथा **माण्टे कैटिनी विधि** विकसित की गई हैं जिनमें क्रमशः, १६५०° तथा १५००° फा० तक के ताप प्रयुक्त होते हैं। जर्मनी की **फोसीर विधि** तथा **बमाग-मेगुइन विधि** से अमोनिया के आक्सीकरण से नाइट्रिक आक्साइड तथा नाइट्रिक परॉक्साइड प्राप्त करके नाइट्रिक अम्ल बनाया जाता है।

विकसित आधुनिक प्रणाली में वायु को **विसकान्सिन विधि** के अनुसार ४०००° फा० पर गर्म करके नाइट्रोजन का स्थिरीकरण किया जाता है। तब मिश्रण को शीघ्रता से ठंडा किया जाता है। इस क्रिया में कंकड-भट्टी प्रयुक्त होती है। उत्पन्न गैसों में नाइट्रिक आक्साइड की मात्रा १·८–१·९% रहती है।

हाल ही में **हार्टेक** तथा **डोण्डेस** की विधि से नाभिक ऊर्जा के प्रयोग से नाइट्रोजन का स्थिरीकरण किया गया है। संपीडित वायु को यूरेनियम–२३५ के विकिरणों से प्रभावित करने पर १०-१५% नाइट्रिक-आक्साइड प्राप्त होता है। हार्टेक ने ५०% क्षमता का अनुमान लगाते हुये गणना की है कि २०% घनीकृत यूरेनियम–२३५ के एक अणु से ७० टन स्थिर नाइट्रोजन अथवा २५८ टन शत प्रति शत विशुद्ध अम्ल प्राप्त हो सकता है। स्थिर नाइट्रोजन का मूल्य १०००० डालर होगा जब कि यूरेनियम–२३५ का मूल्य केवल ६००० डालर।

विद्युत प्रवाह द्वारा नाइट्रिक अम्ल बनाने की **कैवेण्डिश विधि** को सन् १८९३ में लार्ड रैले ने वायु से आर्गन गैस पृथक करते समय विकसित किया परन्तु व्यवसायिक रूप में इसका पूर्ण विकाश नार्वे के वैज्ञानिक बर्कलैण्ड तथा इंजीनियर एस० आइड ने किया। इस विधि में केवल १-२% विद्युत शक्ति ही प्रयुक्त हो पाती अतएव यह विधि लाभदायक न होने के कारण विश्व भर में न अपनाई जा सकी। हैबर-बॉश की विधि की क्षमता भी ८-१०% ही है। फलतः नाइट्रोजन-उर्वरकों के मूल्य पोटाश तथा फासफेट उर्वरकों से दुगुने हैं।

वायु को नाइट्रिक आक्साइड में परिवर्तित करने का प्रयास आघात-नलिका तथा एक संपीडन दाब यन्त्र में किया गया है। प्रत्येक दशा में वायु को तीव्र संपीडित तापन तथा प्रसरणशील शीतलन से प्रभावित किया गया जिसके फलस्वरूप मापव योग्य सान्द्रता में नाइट्रिक आक्साइड जम गई—१६९०° पर ०·३४% तथा १७९०° से० पर ०·६४% प्राप्ति हुई।

नाइट्रोजन उद्योग—मँहगा

यद्यपि संश्लिष्ट नाइट्रोजन के संयंत्र अल्पविकसित देशों यथा ब्राजील, फिलिप्पाइन, कोलम्बिया, मिश्र, फिनलैंड, आइसलैंड, भारत, इज़रायल, मेक्सिको, पाकिस्तान, पेरू, पुर्तगाल, दक्षिणी कोरिया, तैवान, त्रिनिदाद तुर्की, वेनेज़ुएला, युगोस्लाविया में चालू किये गये हैं परन्तु उद्योग के महँगा होने के कारण ये देश पूर्णरूप से पूँजी नहीं लगा सकते। प्रतिदिन १०० टन अमोनिया के उत्पादन के लिए विभिन्न प्रकार के संयन्त्रों में निम्न प्रकार से पूँजी लगानी होगी:

	प्राकृतिक गैस	ईंधन तेल	कोयला	कोयला भट्टी की गैस	उत्प्रेरित रिफार्मर गैस
पूँजी डालर में	३९,५०,०००	४०,९८,०००	४२,४८,०००	३६,२०,०००	२९,८०,०००

अपने एक अर्वाचीन अध्ययन, "Observation on the Planned provision of Nitrogen fertilizer" में नेदरलैंड आर्थिक विद्यालय, राटरडम, के प्रोफेसर तिनबरजेन तथा अन्यों ने यह उल्लेख किया है कि विश्वभर में सन् १९६०-६१ में नाइट्रोजन उर्वरक की माँग ८१ लाख टन आँकी जाती है जिसमें से

३१ लाख टन यूरप से, २४ लाख टन संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से तथा २६ लाख टन अन्य देशों से होगी। उन्होंने इन आँकड़ों से यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रति एकड़ भूमि पर नाइट्रोजन खर्च बढ़ती हुई जनसंख्या के अनुपातिक होगा। नव प्रकाशित Industrial Uses of Nitrogen—१९५७ पुस्तक की एक पंक्ति उद्धरण के योग्य है: "चूँकि विश्व में नाइट्रोजन उत्पादन इस स्तर पर पहुँच चुका है और उर्वरक के रूप में उसका प्रयोग भी अपने चरम पर है अतः समस्त उत्पादक नवीन वहिः स्रोतों की खोज में हैं।" आज प्रति एकड़ जितनी मात्रा में नाइट्रोजन छोड़ा जाता है वह पर्याप्त नहीं। सन् १९३७ में प्रयुक्त नाइट्रोजन (पौंड) प्रति एकड़ निम्न प्रकार था:

बेलजियम २८·५, हालैण्ड २४·८, जर्मनी १५·६, डेनमार्क १०·३, नार्वे ६·०, स्वीडन ५·२४, इटली ४·३, फ्रांस ४·०, यू० के० २·५, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका १·३६, पोलैण्ड ०·७३ तथा हंग्री ०·१५।

वर्तमान काल में अनेक देशों में नाइट्रोजन उर्वरकों का उपयोग बढ़ गया है जैसा कि निम्न आँकड़ों से, जो सन् १९५६-५७ के हैं, प्रत्यक्ष है। ये आँकड़े प्रति हेक्टेयर भूमि में प्रयुक्त किलोग्राम नाइट्रोजन की मात्रा प्रदर्शित करते हैं:

आस्ट्रेलिया ११·५, बेलजियम ५२·५, डेनमार्क २९·६, फ्रांस १४·४, पश्चिमी जर्मनी ३५.१, आइसलैंड ८५·९, आयरलैंड ३·२, इटली १४·७, लक्जेमबर्ग २८·०, नेदरलैण्ड ७९·०, नार्वे ३८·१, पुर्तगाल १०·५, स्वीडन २२.४, स्विटजरलैंड १०·१, तुर्की ०·४, यू० के० २३·५, स्पन, ९·५ तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ४·२।

यद्यपि रूस में उर्वरक निर्माण करने वाले ७१ कारखाने हैं परन्तु बताया जाता है कि वहाँ उर्वरकों की कमी है। निम्न आँकड़े कतिपय पूर्वी यूरोपीय तथा पूर्व प्रदेशों में प्रयुक्त नाइट्रोजन-उर्वरकों की मात्रा किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बताते हैं:

पूर्वी जर्मनी ३१·६, पोलैण्ड १०, जेकोस्लोवेकिया ५, जापान १०९·६, तैवान ८६·७, कोरिया गणराज्य ५४·१, लंका १८·४, फिलिप्पाइन ५·६, चीन २·३, हिन्देशिया २·०, भारत १·०, पाकिस्तान ०·३।

प्राकृतिक विधि द्वारा नाइट्रोजन की कमी को भूमि में कार्बनिक पदार्थों के आक्सीकरण तथा वायुमंडलीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण द्वारा पूरा करना

हम अपने अनुसन्धानों द्वारा जो विगत २५ वर्षों से भूमि में कार्बनिक पदार्थों को मिलाकर वायुमंडल के नाइट्रोजन को स्थिर करने पर किये जा रहे हैं इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इन पदार्थों द्वारा हम भूमि के भौतिक गुणों को ही नहीं सुधारते वरन् मिट्टी के कणों को दानेदार तथा सघन बनाकर पानी के रोकने की शक्ति को बढ़ाते हैं। लेकिन इन जीवांशों पर, जो भूमि में डाले जाते हैं, आक्सीकरण की प्रक्रिया बहुत धीरे-धीरे होती है और इस तरह से जो ऊर्जा प्राप्त होती है वह वायुमंडल के नाइट्रोजन को मिट्टी में स्थिर करने के काम में आती है। इस प्रकार भूमि में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है। इतना ही नहीं, कार्बोहाइड्रेट भूमि में वर्तमान तथा डाले गये नाइट्रोजन पदार्थों को स्थिर रखने में उसी प्रकार सहायक होते हैं जिस प्रकार कार्बोहाइड्रेट तथा वसा प्रोटीन को सुरक्षित करने में। हमारे कुछ नये प्रयोग जो स्वीडन की चिकनी मिट्टी के साथ रायल कालेज आफ एग्रीकल्चर, उपसाला-७ में किये गये थे उनसे प्राप्त फल सारणी १ में दिये जाते हैं। उस मिट्टी में ०·१४३% कुल नाइट्रोज, १·२०७% कार्बन, १·१९% कैलसियम आक्साइड, ३·११४% मैगनीसियम आक्साइड, १·२% पोटैसियम आक्साइड और ०·२२५% फासफोरस था। ०·०८३% फासफोरस १% सिट्रिक अम्ल में विलेय होने के कारण पौधों के द्वारा प्राप्य है।

सारणी २ के फल हाल ही में तश्तरियों में जीवांश तथा मिट्टी को मिलाकर किये गये प्रयोगों से प्राप्त हुये। कुछ तश्तरियों को आठ घंटे प्रतिदिन कृत्रिम प्रकाश में रखकर तथा उन्हीं के समान दूसरी तश्तरियों

को काले कपड़े से ढककर रखा गया जिससे प्रकाश न पहुँचे। उनकी आर्द्रता २०-२५% रखी गयी। इसके लिये आसुत जल को एक दिन छोड़कर दूसरे दिन सदैव डाला गया।

सारिणी १

स्वीडन की मिट्टी में वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण

	खुला रखने की अवधि (दिन)	कार्बन %	सम्पूर्ण नाइट्रोजन %	आक्सीकृत कार्बन %	नाइट्रोजन में वृद्धि %	क्षमता*
प्रकाश	०	२·३५६८	०·१४७०	—	—	—
	१५०	१·४८३३	०·१६५६	०·८७३५	०·०१८६	२१·३
	३००	१·२७२३	०·१६८२	१·०८४५	०·०२६२	२८·३
अंधकार	०	२·३५६८	०·१४७०	—	—	—
	१५०	१·७२४७	०·१५५८	०·६३२१	०·००८४	१३·३
	३००	१·५०३६	०·१५९८	०·८५३२	०·०१२८	१५·०

स्वीडन की मिट्टी + ०·२५% P_2O_5 गपसा चट्टानीय फासफेट + सुक्रोस

	खुला रखने की अवधि (दिन)	कार्बन %	सम्पूर्ण नाइट्रोजन %	आक्सीकृत कार्बन %	नाइट्रोजन में वृद्धि %	क्षमता*
प्रकाश	०	२·३५६८	०·१४७०	—	—	—
	१५०	१·४१३२	०·१८६२	०·९४३६	०·०३९२	४१·५
	३००	१·१५१८	०·१९९२	१·२०५०	०·०५५२	४३·५
अंधकार	०	२·३५६८	०·१४७०	—	—	—
	१५०	१·६७८७	०·१६०८	०·६७८१	०·०१३८	२०·३
	३००	१·४६१२	०·१६५८	०·८९५६	०·०१८८	२१·०

$$*\text{क्षमता} = \frac{\text{स्थिर नाइट्रोजन, मिग्रा०}}{\text{आक्सीकृत कार्बन, ग्राम}}$$

सारिणी २

इलाहाबाद की मिट्टी में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण

मिट्टी + गेहूँ का डंठल

	खुला रखने की अवधि (दिन)	कार्बन %	पूर्ण नाइट्रोजन %	आक्सीकृत कार्बन %	स्थिर-नाइट्रोजन पौ०/एकड़	क्षमता
प्रकाश	०	०·३३५६	०·०४९२	—	—	—
	९०	०·५३५८	०·०५३३	०·१९९८	—	२०·८
	१५०	०·४३६२	०·०५४४	०·२५९४	—	२०·६
	१८०	०·४३३५	०·०५५३	०·२९९१	११७·६	२०·६
अंधकार	०	०·३३५६	०.०४९२	—	—	—
	९०	०·५८३३	०·०५०७	०·१४९०	—	१०·६
	१५०	०·५४१७	०·०५११	०·१९३९	४३·७	१०·१
	१८०	०·५२८१	०·०५१३	०·२११५	—	१०·२

इलाहाबाद की मिट्टी + गेहूँ का डंठल + ०·१% P_2O_5, $Ca_3(PO_4)_2$ के रूप में

	खुला रखने की अवधि (दिन)	कार्बन %	पूर्ण नाइट्रोजन %	आक्सीकृत कार्बन %	स्थिर-नाइट्रोजन पौ०/एकड़	क्षमता
प्रकाश	०	०·३३५६	०·०४९२	—	—	—
	९०	०·४९२४	०·०५६६	०·२४३२	—	३०·९
	१५०	०·४१८१	०·०५८८	०·३१३५	२१५·२	३०·३
	१८०	०·३३४०	०·०६०२	०·३६१६	—	३०·६
अंधकार	०	०·३३५६	०·०४९२	—	—	—
	९०	०·५५१३	०·०५२२	०·१८४३	—	१६·३
	१५०	०·४८५१	०·०५३२	०·२५०५	९०·०	१६·०
	१८०	०·३६५२	०·०५३४	०·२७०४	—	१५·८

जलकुम्भी द्वारा नाइट्रोजन का स्थिरीकरण

यह भली भाँति ज्ञात है कि जलकुम्भी जो भारत तथा दूसरे देशों में प्रचुर मात्रा में पायी जाती है एक हानिकारक पौधा है। लेकिन हमारे निरीक्षणों से पता चला है कि इस पौधे को जिसमें ०·८३% CaO, १% MgO, ५·३२% K_2O, ०·३५३% P_2O_5, ४१·२% C तथा ०·३६% N है जब मिट्टी में बेसिक स्लैग के साथ मिलाया जाता है तो प्रकाश में अंधेरे की अपेक्षा अधिक वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिर होता है। यह पौधा बेसिक स्लैग के साथ खाद के रूप में भारत तथा फ्लोरिडा के विभिन्न भागों में धान की पैदावार बढ़ाने में प्रयुक्त किया जा रहा है। सारणी ४ में नाइट्रोजन स्थिरीकरण के मान दिये गये हैं।

नाइट्रोजन का स्थिरीकरण मोनो-कैलसियम फासफेट की अपेक्षा डाइ-तथा ट्राई-कैलसियम फासफेट की उपस्थिति में अधिक होता है। फेरिक एवं एल्युमिनियम फासफेट नाइट्रोजन की थोड़ी मात्रा ही बढ़ाते हैं। इन सब प्रयोगों में हमने यह देखा कि एजोटोबैक्टर, कुल जीवाणु तथा फफूँद की संख्या प्रकाश में रखे पात्र में कम और अंधेरे में रखे गये पात्र में अधिक हैं यद्यपि नाइट्रोजन की मात्रा प्रकाश में अंधेरे की अपेक्षा अधिक है। इससे स्पष्ट है कि प्रकाश का प्रभाव भूमि में नाइट्रोजन बढ़ाने तथा उसकी उर्वरता बढ़ाने में सहायक है।

उपरोक्त प्रयोगात्मक परिणाम यह दिखाते हैं कि जब कार्बनिक पदार्थ जैसे सुक्रोस, डंठल, गोबर, जलकुम्भी मिट्टी में मिला दिये जाते हैं तो अंधेरे में भी मंद गति से आक्सीकरण की क्रिया होती है। इस मंद गति में ऊर्जा उत्पन्न होती है जो वायु के नाइट्रोजन को मिट्टी में अमोनिया, एमिनो अम्ल तथा दूसरे यौगिक बनाकर स्थिर करने में प्रयुक्त होती है। इस प्रकार इन प्रयोगों में जैसे-जैसे कार्बनिक पदार्थ की मात्रा घटती है वैसे-वैसे सम्पूर्ण नाइट्रोजन बढ़ता है। जब इन पर सूर्य के प्रकाश या कृत्रिम प्रकाश का प्रभाव डाला जाता है तो स्थिर नाइट्रोजन की मात्रा अंधकार की अपेक्षा प्रकाश में अधिक होती है। इन सब प्रयोगों में एजोटोबैक्टर, कुल जीवाणु तथा फफूंद की संख्या प्रकाश में सदैव कम होती है जो उनके लिए हानिकर है, यद्यपि स्थिर नाइट्रोजन की मात्रा प्रति ग्राम आक्सीकृत कार्बन पर प्रकाश में अंधेरे की अपेक्षा अधिक होती है। कैलसियम फासफेट की उपस्थिति में स्थिर नाइट्रोजन की मात्रा और अधिक होती है।

खाद के रूप में गोबर वर्षों से प्रयोग में लाया जा रहा है। हमारे प्रयोगों ने यह स्पष्ट है कि यह न केवल पौधों के आवश्यक तत्वों की ही पूर्ति करता है वरन् यह वायु के नाइट्रोजन को स्थिर करने में सहायक होता है (सारणी-३) और इस प्रकार संसार की सब भूमियों में नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि करता है। अनुमान है कि संसार में १४०००० लाख टन ऐसी खाद पैदा की जाती है और जब इसको भूमि में जोत दिया जाता है तो न केवल ३०-४० लाख टन नाइट्रोजन देती है बल्कि यह उतनी ही मात्रा में वायु के नाइट्रोजन को भूमि में स्थिर कर सकती है और इस तरह भूमि को उपजाऊ बनाती है।

शर्करा तथा विलेय कार्बोहाइड्रेट के साथ किये गये प्रयोगों से पता चलता है कि इसके द्वारा थोड़े ही समय में अमोनिकीय नाइट्रोजन तथा सम्पूर्ण नाइट्रोजन में वृद्धि होती है। लेकिन पुवाल-जैसे सेल्युलोसिक पदार्थ के साथ स्थिर नाइट्रोजन में से अमोनिया की मुक्ति काफी समय के पश्चात् होती है अतः डंठल तथा ऐसे पदार्थ जिनमें सेल्युलोस तथा लिगनिन की मात्रा अधिक होती है फसल के बोने के ३-६ माह पहले खेत में डाल दिये जाने चाहिए। यह अवधि भूमि के ताप पर निर्भर करती है। इन विधियों में बेसिक स्लैग क्षारीय होने के कारण कार्बनिक पदार्थों के विघटन में सहायक होता है जिससे अमोनिया मुक्त होता है तथा नाइट्रेट निर्मित होता रहता है।

सारिणी ३

इलाहाबाद की भूमि में वायु के नाइट्रोजन का स्थिरीकरण

	खुला रखने की अवधि (दिन)	कार्बन %	सम्पूर्ण नाइट्रोजन %	आक्सीकृत कार्बन %	नाइट्रोजन में वृद्धि %	क्षमता
			मिट्टी+गोबर			
प्रकाश	०	१·७२६२	०·०९४२	—	—	—
	६०	१·५०७७	०·०९९०	०·२१८५	०·००४८	२२·४
	१२०	१·३४११	·०१०४४	०·३८५१	०·०१०२	२६·५
	१८०	१·२१२०	०·१०८३	०·५१४२	०·०१४१	२७·५
अंधकार	०	१·७२६२	०·०९४२	—	—	—
	६०	१·५२३०	०·०९३०	०·२०३२	०·००२८	१३·८
	१२०	१·४२४८	०·०९८८	०·३०१४	०·००४६	१५·३
	१८०	१·२६४७	०·१०१५	०·४६१५	०·००७३	१६·०
		मिट्टी+गोबर+०.२५% P_2O_5, टाटा बेसिक स्लैग के रूप में				
प्रकाश	०	१·७१२५	०·०९२५	—	—	—
	६०	१·०३३३	०·१२०८	०·६७५२	०·०२८३	४१·९
	१२०	०·९४८९	०·१२४९	०·७६४१	०·०३२१	४२·०
	१८०	०·९२३२	०·१२७९	०·७८९३	०·०३५४	४४·८
अंधकार	०	१·७१२५	०·०९२५	—	—	—
	६०	१·३७१३	०·०९८४	०·३४१२	०·००५९	१७·५
	१२०	१·२९७४	०·१०१०	०·४१५१	०·००८५	२०·३
	१८०	१·२२७७	०·१०३०	०·४८४८	०·०१०५	२१·७

कैलसियम फासफेट से नाइट्रोजन में वृद्धि

द्विदलीय फसलों द्वारा भमि में साधारणतया ११२ पौ० प्रति एकड़ नाइट्रोजन में वृद्धि होती है लेकिन यह मात्रा प्रायः ४०-६० पौ० प्रति एकड़ ही होती है। सारिणी २ से पता चलता है कि डंठल के रूप में ०·५% कार्बन डालने से कैलसियम फासफेट के द्वारा प्रकाश में प्रति एकड़ २१५ पौ० नाइट्रोजन स्थिर हुआ। अतः यदि डंठल को कैलसियम फासफेट यथा बेसिक स्लैग, नम्र चट्टानीय फासफेट के साथ मिलाकर खेत में जोता जाय तो भूमि को नाइट्रोजन की उतनी ही मात्रा मिलेगी जितनी द्विदालीय पौधों के जोतने से।

इलाहाबाद नगर के कूड़े करकट का बेसिक स्लैग के साथ तथा बिना बेसिक स्लैग के भूमि में मिलाया गया जिसमें ०·५% कार्बन और ०·०४% सम्पूर्ण नाइट्रोजन था। इसके परिणाम एक वर्ष के बाद ज्ञात किये गये जो सारिणी ५ में दिये गये हैं।

इन परिणामों से यह ज्ञात होता है कि इलाहाबाद में जहाँ भूमि की ऊपरी सतह का ताप २६ सें० है, कार्बनिक पदार्थों को डालने से भूमि की उर्वरता में वृद्धि होती है और यह बेसिक स्लैग के डालने से और बढ़ जाती है जिससे अच्छी फसलें पैदा होती हैं। ऐसे ही परिणाम गोबर या गेहूँ के डंठल तथा उत्तरी अफ्रीका से प्राप्त नये चट्टानीय फासफेट और बेसिक स्लैग द्वारा प्राप्त होते हैं। हमारे तथा दूसरों के प्रयोगों से यह सिद्ध होता है कि जिन मिट्टियों में फासफोरस अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है वे नाइट्रोजन में भी पूर्ण होती हैं और उनका कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात साधारणतया १० से भी कम होता है।

सारिणी ४

	खुला रखने की अवधि (दिन)	कार्बन %	सम्पूर्ण नाइट्रोजन %	क्षमता
		मिट्टी+जलकुम्भी (१.५% कार्बन), ताप २५° सें०		
प्रकाश	०	१·७३०५	०·१२७२	—
	६०	१·१३०८	०·१४२४	२५·३
अंधकार	०	१·७३०४	०·१२७२	—
	६०	१·३८४६	०·१३३५	१८·२
		मिट्टी+जलकुम्भी (१·५% कार्बन)+०·५% P_2O_5 (टाटा बेसिक स्लैग)		
प्रकाश	०	१·७१५४	०·१२४४	—
	६०	०·७९८४	०·१५५२	३३·५
अंधकार	०	१·७१५४	०·१२४४	—
	६०	०·९२२६	०·१४१९	२२·१

काँस (सैकरम स्पान्टेनियम) द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण

हाल ही में काँस को मिट्टी में मिलाकर देखा गया है कि नाइट्रोजन का स्थिरीकरण विशेषतः प्रकाश एवं फासफेट की उपस्थिति में काफी होता है। काँस में ४०·५% कार्बन, ०·७% नाइट्रोजन, १% लौह आक्साइड, ०·४३५% फासफोरस पेन्टॉक्साइड, ०·७६% कैलसियम आक्साइड, ०·१४२% मैंगनीसियम आक्साइड तथा ०·८७% पोटैसियम आक्साइड था।

मिट्टी + १·५% कार्बन (काँस), ताप २५° सें०

	खुला रखने की अवधि (दिन)	सम्पूर्ण कार्बन %	सम्पूर्ण नाइट्रोजन %	अमोनिकीय नाइट्रोजन %	नाइट्रेट नाइट्रोजन %	क्षमता	एज़ोटोबैक्टर १० लाख/ग्राम मिट्टी
प्रकाश	०	४·५६५४	०·२५७६	—	—	—	१·३३
	४५	३·८८०६	०·२९०१	०·००५८	०·००८७	४७·४	२·८५
	९०	३·४२४१	०·३१६८	०·००९०८	०·०१३०	५१·८	१४·२
अंधकार	०	४·५६५४	४·२५७६	—	—	—	१·३३
	४५	४·०९१८	०·२६२६	०·००३६६	०·००३१२	२५·७	३·९५
	९०	३·९२६३	०·२३५६	०·००६३६	०·००८७९	२८·१	३५.४०

मिट्टी + १·५% कार्बन (काँस) + ०·५% P_2O_5 (टाटा बेसिक स्लैग)

प्रकाश	०	४·३५५३	०·२४३५	—	—	—	१·३३
	४५	३·१३०७	०·३१०४	०·०१०२	०·००८४	५६·४	२·८८
	९०	२·६१३२	०·३४४५	०·०१३७	०·०१५५	५८·०	८·५५
अंधकार	०	४·३५५३	०·२४३५	—	—	—	१·३३
	४५	३·६२३६	०·२६५१	०·००५८	०·००८४	३४·९	४·३७
	९०	३·३१०१	०·२८१२	०·००६७	०·००९८	३६·१	३६·००

लूसर्न (मेडिकैगो सेटाइवा) के साथ मिट्टी में नाइट्रोजन स्थिरीकरण

मिट्टी + ०·५% कार्बन (लूसर्न)

	खुला रखने की अवधि (दिन)	कार्बन %	सम्पूर्ण नाइट्रोजन %	क्षमता
प्रकाश	०	०·९०१	०·०६४३	—
	९०	०·७२४	०·०७१८	४२·३
	१८०	०·६५८	०·०७६३	४१·२
अंधकार	०	०·९०१	०·०६४४	—
	९०	०·७६८	०·०६७३	२१·७
	१८०	०·७१२	०·०६८२	२०·१

मिट्टी + ०·५% कार्बन (लसर्न) + ०·२५% P_2O_5 (डाइकैलसियम फासफेट)

	खुला रखने की अवधि (दिन)	कार्बन %	सम्पूर्ण नाइट्रोजन %	क्षमता
प्रकाश	०	०·९०२	०·०६४५	—
	९०	०·७०३	०·०७८१	६८·८
	१८०	०·६४०	०·०८२०	६७·१
अंधकार	०	०·९०३	०·०६४६	—
	९०	०·७३२	०·०७०६	३५·०
	१८०	०·६९०	०·०७१८	३३·७

ऐसे ही परिणाम अन्य फासफेटों द्वारा प्राप्त हुये जो नीचे दिये जाते हैं :

	९० दिन पश्चात् क्षमता	
	प्रकाश	अंधकार
फासफेट रहित	४२·३	२१·७
०·२५% मानो कैलसियम फासफेट	५५·१	२८·४
०·२५% डाइ कैलसियम फासफेट	६८·८	३५·०
०·२५% ट्राई „ „	६१·०	३१·४
०·२५% आयरन फासफेट	४५·४	२५·२
०·२५% एल्युमिनियम फासफेट	४४·८	२३·६

सारिणी ५

एक ही क्षेत्र से प्राप्त विभिन्न प्रकार की मिट्टियों का विश्लेषण

उपचार	कार्बन %	सम्पूर्ण नाइट्रोजन %	कार्बन/नाइट्रोजन
स्लैग रहित	१·९०	०·१७२	११·०
टाटा बेसिक स्लैग	१·७७	०·३३१	५·३
„ „ „	२·०१	०·२७०	७·६
„ „ „	१·८९	०·२७९	६·७

कराकर ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में खाद तथा फासफेट को मिश्रित करके नाइट्रोजन स्थिरीकरण में निम्नांकित प्रभाव देखा :

खेत के तीन प्रयोगों का औसत	भूमि में नाइट्रोजन पौ०/एकड़	मक्के की पैदावार बुशेल/एकड़
बिना खाद	१६००	१७
खाद	१७६०	३६
खाद + फासफेट	१९९०	५१

यह अच्छी तरह ज्ञात है कि इंगलैंड के रोथैम्स्टेड क्षेत्र में सन् १८४३ से लगातार १४ टन गोबर की खाद जिसमें नाइट्रोजन की मात्रा २०० पौंड थी, डालकर जोता गया और गेहूँ उगाया गया। तब मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा ०·१२२% थी और अब वह ०·२७४% है। ८६ या १२९ पौंड नाइट्रोजन अमोनियम सलफेट या सोडियम नाइट्रेट के रूप में डालकर गेहूँ उगाया गया तो नाइट्रोजन में कमी ज्ञात हुई जिससे पता चलता है कि भूमि का विनष्टीकरण हुआ होगा। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, डेनमार्क तथा दूसरे देशों में गोबर मिलाने से भूमि की उर्वरता देखी गई परन्तु अमोनियम सलफेट या सोडियम नाइट्रेट छोड़ने से नहीं।

वनस्पति-शास्त्रियों ने यह अनुमान लगाया है कि भूमि में प्रति वर्ष प्रकाश-संश्लेषण द्वारा करीब १३७५०० लाख टन कार्बनिक पदार्थ सेल्यूलोस के रूप में मिलते रहते हैं। यदि यह मान लिया जाय कि प्रकाश-संश्लेषण के द्वारा जो कार्बन भूमि में मिलता है प्रति वर्ष उसका ८०% ही आक्सीकरण होता है और सूर्य के प्रकाश की उपस्थित में प्रति ग्राम कार्बन से केवल २० मि०ग्रा० नाइट्रोजन स्थिर होता है तो संसार की भूमि की ऊपरी सतह पर स्थिर नाइट्रोजन की मात्रा ११०० लाख टन प्रति वर्ष होगी। इसका आधा सूर्य के प्रकाश शोषण द्वारा होगा। इस तरह यह नाइट्रोजन का स्थिरीकरण भूमि के नाइट्रोजन तथा फसल की पैदावार का मुख्य साधन है।

स्थाई कृषि के लिए फासफेट संचय में वृद्धि का महत्व

हमारे प्रयोगों के परिणामस्वरूप ज्ञात होता है कि जब भूमि में कार्बनिक पदार्थों, जैसे गोबर की खाद, डंठल और पौदों के अवशेषों को कैलसियम फासफेट के साथ मिलाकर भूमि में डाला जाता है तो नाइट्रोजन के स्थिरीकरण द्वारा तथा उपलब्ध तत्वों जैसे फासफेट, पोटाश, सूक्ष्म तत्व तथा जीवांश के मिलने से भूमि की स्थाई उर्वरता बढ़ जाती है। इसलिए कई वर्षों से हम इस बात पर बल दे रहे हैं कि सस्ते फासफेटों जैसे थामस स्लैग एवं नर्म चट्टानीय फासफेटों के उपयोग से स्थाई कृषि में फासफोरस संचय को अवश्य बढ़ाना चाहिए। यह संतोष का विषय है कि ये प्रयोग कुछ देशों में किये जा रहे हैं जैसा कि निम्न से प्रकट है:

"डेनमार्क एवं नेदरलैण्ड में काम करने वाले भूमि में फासफोरस को संतोषजनक मात्रा में बनाये रखने पर बल देते हैं जिससे कि फासफोरस की न्यूनता फसल की पैदावार को कम न कर दे। यदि कृत्रिम फासफेटीय खादों को भूमि के फासफोरस-संचय को स्थाई बनाने में प्रयुक्त किया जाता है तो उनका अवशिष्ट प्रभाव उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि उनका तत्कालिक प्रभाव। प्रयुक्त फासफेटीय खादें सस्ती होनी चाहिए और अधिक काल तक मंद गति से क्रियाशील। मन्द गति से क्रिया करनेवाले पदार्थ इसके लिए उपयुक्त होंगे (कूक, १९५६)।"

अब तक मानव ने कार्बनिक पदार्थ तथा फासफेट का पृथक पृथक प्रयोग किया है लेकिन हमारे प्रयोगों से यह निश्चय है कि ये दोनों भूमि की उर्वरता बढ़ाने में काफी उपयोगी हैं। इस निष्कर्ष की पुष्टि निम्न प्रयोगों से, जो अमेरिका में किये गये थे, होती है, (थामसन १९५७):

विभिन्न मिट्टियों में टमाटर की पैदावार पर खाद (१० टन/एकड़) तथा सुपरफासफेट (५०० पौ० ०-२०-०) का प्रभाव

मिट्टी की किस्म	पदार्थों को अलग-अलग डालने पर	प्रत्येक वर्तन में टमाटर की पैदावार ग्रामों में	
		पदार्थों को मिलाकर देने पर	दोनों को देने से पैदावार में वृद्धि
ऊड ब्रिज दोमट	८·३	२९·७	२१·१
वैडेन चिकनी मृदा	१४·१	२३·०	१३·९
वर्दिंगटन दोमट	२९·९	३८·३	८·४
वरजीनीस चिकनी दोमट	४०·४	४७·६	७·२
एडिसन चिकनी दोमट	४७·१	५१·६	४·५
मेरीमैक बलुई दोमट	५४·०	५८·५	४·५

इतना ही नहीं, जब घास के मैदानों को जोतकर फिर से बोया जाता है तो भूमि में जोते हुये कार्बनिक पदार्थों के साथ फासफेट को मिलाने से काफी लाभ होता है क्योंकि ये दोनों पदार्थ वायुमंडल के नाइट्रोजन को स्थिर कर सकते हैं। इस प्रकार पौधों के तत्वों को उपलब्ध करके अधिक घास तथा द्विदालों की पैदावार होती है। यह निम्न निरीक्षणों से स्पष्ट है:—

१५० पौंड २०% सुपरफासफेट को अमेरिका के आयोवा प्रयोगात्मक चारागाह में मिलाकर गोमांस की औसतन वृद्धि प्रति एकड़

उपचार	प्राप्ति, पौंड/ एकड़
अनुपचारित	१०५
चूना डालकर फिर से बोया गया	१४७
चूना तथा फासफेट डालकर फिर बोया गया	१५५

रायल कालेज ऑफ एग्रीकल्चर, स्वीडन के जी० बजालके ने यह देखा कि जब डंठलों को मिट्टी या बालू के साथ मिला दिया जाता है तो प्रकाश की उपस्थिति में अंधेरे की अपेक्षा अधिक नाइट्रोजन-स्थिरीकरण होता है। बजालके का विश्वास है कि प्रकाश-संश्लिष्ट एवं तापज नाइट्रोजन स्थिरीकरण संसार के लिए अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि द्विदालीय फसलों का उगाना कठिन है।

ज्ञात हो कि बहुत से देशों में खाद तथा उर्वरक दिये बिना फसलों का उगाया जाना तथा प्रेयरी भूमि की उर्वरता का संतोषजनक विवेचन हम लोगों द्वारा देखे गये नाइट्रोजन स्थिरीकरण से मिल सकता है। यह स्थिरीकरण पौधों के अवशेषों और घासों के भूमि में आक्सीकरण के फलस्वरूप होता है।

भूमि की सतह पर प्रचुर मात्रा में पौधों के अवयवों का प्रकाश-संश्लेषण होता रहता है अतः कार्बनिक पदार्थों की कमी नहीं है। विश्व भर में ९१,०००,०००,००० टन चट्टानीय फास्फेट के संग्रह हैं। दुनिया के लोहे के कारखाने भी पर्याप्त मात्रा में फास्फेट प्रदान करते रहते हैं। इसलिए हमारी विधि को अपनाने से काफी मात्रा में नाइट्रोजन स्थिरीकरण और भूमि की उर्वरता में वृद्धि संभव है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की मिट्टियों से ह्यूमस की हानि

अमेरिका के जे० एच० स्टैलिंग्स ने (स्वायल यूज एण्ड इम्प्रूवमेंट १९५७) यह अंकित किया है कि अमेरिका की ३५० लाख एकड़ खेती योग्य भूमि में अन्न उत्पन्न नहीं किया जा सकता जिससे वे परती छोड़ दी गई हैं और ९५ लाख एकड़ भूमि में क्षरण होता रहता है। इतना ही नहीं, पश्चिमी-मध्य तथा बड़े-बड़े मैदानों की प्राकृतिक उर्वरता, कार्बनिक पदार्थों की हानि के कारण न्यून होती रही है। इस प्रकार इसमें संदेह नहीं है कि भूमि के स्थायित्व तथा उसकी उर्वरा शक्ति का द्योतक उसकी कार्बनिक पदार्थों की मात्रा है। बहुत से देशों में देखा गया है कि यदि नाइट्रोजन उर्वरकों की मात्रा बढ़ाने के साथ ही डंठलों को डाला जाता है तो पैदावार में अच्छी वृद्धि होती है।

निम्नांकित सारिणी में ओहियो कृषि प्रायोगिक स्टेशन में मक्का की खेती और भूमि के कटाव से पाये जाने वाले सम्बन्ध का एक चित्रण है:

प्रति वर्ष एक फसल	उर्वरकों का प्रयोग	भूमि का ह्रास (इंच) १८९४-१९३५	% कार्बनिक पदार्थ जो भूमि में रह गया, १९३५	औसत उपज (बुशेल में)	
				१८९४-१९३५	१९३१-१९३५
मक्का	कुछ नहीं	१०·३	३७	२६·३	६·५
मक्का	पूर्ण उर्वरक (१०-५-१० का ५०० पौं०/एकड़)	११·१	३५	४८·८	२८·९
मक्का	खाद ५ टन प्रति एकड़	९·५	५३	४३·१	३०·०

खाद भूमि के कटाव को कम करने, ह्यूमस की मात्रा स्थिर रखने में प्रभावशील होती है।

भूमि की उत्पादन शक्ति भूमि की रचना, संघटन, बनावट, जीवाणुवीय जीवन पर निर्भर है और ये सभी कार्बनिक पदार्थों के द्वारा उत्पन्न हैं। अमेरिका की मक्का-पेटी की मिट्टियों का ह्यूमस दिन-प्रति दिन घटता जा रहा है। इसका मुख्य कारण भूमि से कार्बनिक पदार्थों की घटती है जो पैदावार को कम कर रही है। यह उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट है। संसार के विभिन्न भागों में या तो कार्बनिक पदार्थों को भूमि में फिर से लौटाकर नहीं डाला जाता अथवा भूमि को अधिक जोतने तथा नाइट्रोजनीय उर्वरकों की अधिक मात्रा डालने से ह्यूमस के आक्सीकरण में वृद्धि ला दी जाती है। मिट्टी को उसी स्थान पर स्थिर रखने के लिए घासों तथा द्विदालीय फसलों के उगाने के समान कोई अन्य उपयोगी विधि नहीं है।

प्रोफेसर ई० ट्रोग ने अपने एक लेख "हेर फेर में चूना डालने की विधि" में भूमि के तथा उसमें डाले गये फासफेट की उपलब्धि के सम्बन्ध में इस कहावत—

बिना खाद के बार बार चूना डालना कृषक तथा खेत दोनों को गरीब बना देता है,

को उलटकर निम्न प्रकार पढ़ने की सलाह दी है :—

"बिना चूना के खाद और उर्वरकों को भूमि में लगातार देते रहने से कृषक और खेत दोनों नष्ट हो जाते हैं।"

इस भाषण में वर्णित विचारों के फलस्वरूप यह ज्ञात हो जायेगा कि खाद और उर्वरक समशीतोष्ण देशों में भी स्थाई कृषि के लिए लाभदायक हो सकते हैं क्योंकि खाद में काफी कैलसियम कार्बोनेट होने के कारण यह वायुमण्डल के नाइट्रोजन की अधिक मात्रा को स्थिर करता है, साथ ही साथ भूमि के ह्यूमस और संचित नाइट्रोजन की रक्षा भी।

अमेरिका में मक्का पेटी क्षेत्र तथा अन्य भूमि में ह्यूमस की उपस्थिति और अच्छी जलवायु ही उत्पादन के मूलाधार तत्व हैं। विज्ञान और टेकनॉलाजी के प्रयोग ने इस देश के फसल-उत्पादन को बढ़ा दिया है और यही कारण है कि यह देश अपनी कुल पैदावार का १०% का निर्यात करता है। परन्तु यहाँ का सबसे बड़ा प्राकृतिक लाभ है—विस्तृत क्षेत्र में कृषि का अपनाया जाना। यहाँ तक कि आज भी यहाँ प्रति मनुष्य पर तीन एकड़ भूमि आती है (१८०,०००००० जनसंख्या पर ५५०,०००००० एकड़)। अमेरिका में प्रति एकड़ नाइट्रोजन की औसत मात्रा बहुत ही कम है जो केवल ४-५ पौं० प्रति एकड़ है। यदि यह राष्ट्र अपनी भूमि की ह्यूमस पूंजी को सुरक्षित रखने में असमर्थ रहा तो भूमि की उर्वरता अवश्य ही गिरती जायगी।

७वें अंतर्राष्ट्रीय मृत्तिका विज्ञान कांग्रेस के सभापति प्रोफेसर आर० एच० ब्रैडफील्ड ने मेरे कथन "किसी भी राष्ट्र ने मानव के पुराने दुश्मन (भूख) पर पूर्ण रूपेण विजय नहीं प्राप्त की है" का अपवाद किया। मुझे उनको यह संकेत करना पड़ा कि चूँकि जनसंख्या तेजी से बढ़ रही, यह १०% अधिक खाद्य बहुत दिन तक काम न दे सकेगा। साथ ही इस देश के कई भाग अब भी गरीब हैं जैसा कि निम्न से स्पष्ट है— "नवीन इंगलैंड के फसल उत्पादक औपनिवेश-काल से आज तक भोजन के लिए पर्याप्त खाद्य भी बड़ी कठिनता से पैदा करते आ रहे हैं। दक्षिणी अपलेचियन्स अब भी गरीब हैं। भूमि के ढाल, पुरानी प्रथा से खेती करने, पूंजी की कमी तथा पर्याप्त एवं पूर्ण भोजन के अभाव आदि से वहाँ की स्थिति दयनीय है। सम्पूर्ण दक्षिणी भाग में जहाँ कपास और तम्बाकू ने भूमि को नष्ट कर दिया है वहाँ के ग्रामीणों को निश्चित ही

गरीबी ने आ घेरा है। इसके साथ ही साथ दक्षिणी-पश्चिमी टैक्सास के क्षेत्रों में लगातार गरीबी बढ़ रही है। न्यूमैक्सिको एवं ऐरीजोना में, मुख्यतया स्पैनिस तथा भारतीय बड़े गरीब हैं। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व हमें अधिक अपव्ययी बताया जाता था। अन्यत्र किसी भी देश के निवासियों ने इस प्रकार की उपजाऊ भूमि नहीं प्राप्त की थी और न केवल तीन शताब्दियों में उसके अधिकांश को नष्ट करके सदा के लिए बेकार बनाया अथवा शेष को भी नष्ट करने का प्रयत्न किया" (एल० हेम्स्टेड एण्ड जी० सी० फाइट १९५८)। इसी प्रकार ओकलाहामा, वरजीनिया, अलबामा, जिओर्जिया, केनटुकी, उत्तरी और दक्षिणी कैरोलिना के किसान भी समृद्ध नहीं हैं। हाल ही में एक लेख में प्रोफेसर डब्लू० बी० बोलेन ने कहा है कि अमेरिका में ज्यादा से ज्यादा फसलें उगाई जा रही हैं लेकिन भूमि की उर्वरा शक्ति भी कम होती जा रही है।

फसलोत्पादन में नाइट्रोजन

यह प्रायः व्यक्त किया जाता है कि नाइट्रोजन फसल-उत्पादन का एक मुख्य तत्व है। निम्न सारिणी में देशों में १ किलोग्राम पौधों के तत्व डालने से सम्भावित पैदावार का ब्योरा है।

घास और फसलों को १ किलोग्राम पोषक तत्वों के देने से बढ़ी औसत पैदावार

देश	हेर फेर के साथ बोई गई फसलें			स्थाई चरागाह		
	नाइट्रोजन	फासफोरस	पोटाश	नाइट्रोजन	फासफोरस	पोटाश
नार्वे	९	३	५	११	६	४
स्वीडेन	१४	११	७	१४	११	७
डेनमार्क	१८	४	२	१२	५	३
यू० के०	१६	५	५	—	—	—
आयरलैण्ड	२०	८	८	—	—	—
नेदरलैण्ड	१९	६	३	१०	६	४
फ्रांस	१९	५	२·१	—	—	—
जर्मनी	१९	८	४	९	१०	५
स्विटजरलैण्ड	१८	८	४	९	१०	५
ग्रीस	१५	५	३	—	—	—
इटली	११	३	—	१२	४	३
औसत	१६	५	४	११	७	४

इससे यह प्रतीत होता है कि जलवायु और नाइट्रोजन के प्रभाव में घनिष्ट सम्बन्ध है। नाइट्रोजन का सबसे कम प्रभाव नार्वे, स्वीडेन, इटली और ग्रीस में देखा गया है। कम उत्पादन का एक मुख्य कारण पानी की कमी है। पोटाश और फासफोरस का प्रभाव फसलोत्पादन पर नाइट्रोजन की अपेक्षा बहुत ही कम है :

आक्सफोर्ड इकोनामिक एटलस आफ दी वर्ल्ड (आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, १९५९) में बढ़ती पैदावार के निम्न फल अंकित किये गये हैं :

प्रति हेक्टेयर १ किलोग्राम नाइट्रोजन देने पर पैदावार में वृद्धि

	गेहूँ	चावल	आलू	घास (या हे)
किलोग्राम प्रति हेक्टेयर	१७	१७	८४	१७

यह कहा गया है कि पैदावार में वृद्धि तभी संभव है जब प्रयुक्त नाइट्रोजन की मात्रा कम रहती है। एक बिन्दु के बाद उर्बरक की अधिक मात्रा से भी पैदावार में कमी आने लगती है।

"संयुक्त राष्ट्र कोरियन रिकांस्ट्रक्सन एजेन्सी" ने अपनी एक रिपोर्ट "एग्रीकल्चर, फारेस्ट्री एण्ड फिशरीज इन साउथ कोरिया" न्यूयार्क (कोलम्बिया यूनीवर्सिटी प्रेस, १९५४) पृष्ठ संख्या ९९-१०२ में यह बताया है कि दक्षिणी कोरिया में १ कि० ग्रा० नाइट्रोजन (अमोनियम सलफेट के रूप में) १२-१४ कि० ग्रा० भूरा चावल और १४-२८ कि० ग्रा० जौ की पैदावार देता है। इसी प्रकार १ कि० ग्रा० फासफोरस (सुपर फासफेट के रूप में) १४-१८ कि० ग्रा० भूरा चावल और दूसरी जगहों पर ४-५ कि० ग्रा० भूरा चावल दे सकता है।

उर्वरक के अधिकाधिक प्रयुक्त होने की सम्भाव्यताओं का अतिरंजन

बाम, हेडी, पेजेक तथा हिल्ड्रेथ ने अपनी पुस्तक "Economic and Technical Analysis of Fertilizer Innovations and Resource use" १९५७ के पृष्ठ १३९ पर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में उपजों की वृद्धि का निम्न विवरण दिया है :

१५.५% आर्द्रता पर कूटे हुये मक्के की औसत उपज (१९५५)

पौंड/एकड़	पोर्ट्स माउथ मिट्टी के निर्देश				नारफोक मिट्टी के निर्देश			
	५०६	५०७	५०८	५१०	५५३	५५४	५५५	५५८
N ०	४०·९	१०२·४	५६·५	५४·१	३८·६	९·९	२४·८	३२·५
६३	८४·९	१०१·०	८०·२	६९·१	७७·५	३९·७	६६·३	४७·९
१२५	९५·२	९९·२	९२·३	७४·४	९२·९	४३·२	९३·३	५०·१
१८८	९३·३	१०४·६	८६·६	७२·६	९३·३	३५·४	९४·६	४४·८
२५०	९१·२	९६·८	८०·५	७१·९	८७·०	४९·७	८७·८	४०·१
P_2O_5 ०	८५·२	१०७·७	८२·६	६२·५	९६·०	४१·९	८२·४	४४·२
३८	९०·९	१००·७	८२·५	६६·९	८५·९	४०·०	७८·८	४७·१
७५	९५·२	९९·५	९२·३	७४·४	९२·९	४३·२	९३·३	५०·१
११३	८७·५	१०४·८	८४·३	७४·८	८४·८	३५·०	८२·०	४५·७
१५०	७९·०	९४·३	९२·४	८४·१	८९·८	३६·८	९२·०	४३·५
K_2O ०	९३·४	९८·७	५७·६	८४·८	९१·७	३९·९	९१·३	५३·९
३८	९०·८	१०४·३	८२·२	७२·०	८४·१	३८·१	८०·०	४७·९
७५	९५·२	९९·५	९२·३	७४·४	९२·९	४३·२	९३·३	५० १
११३	८७·२	१०१·०	८४·८	६९·७	८७·६	३६·७	७९·९	४४·५
१५०	९०·७	१०२·४	९५·५	७४·२	९२·०	३८·९	८७·९	४४·५

लेखकों ने नाइट्रोजन के प्रति सम्वेदनशीलता पर इस प्रकार का निष्कर्ष दिया है :—नाइट्रोजन देने से दोनों प्रकार की मिट्टियों में बहुत अधिक पैदावार हुई। नारफोक मिट्टी की औसतन पैदावार पोर्ट्स-माउथ की अपेक्षा अधिक थी। प्रति एकड़ १२५ पौंड से अधिक नाइट्रोजन देने पर पैदावार में कोई वृद्धि नहीं

प्राप्त हुई। १८८ तथा २५० पौं० की दर से नाइट्रोजन देने से १२५ पौं० की अपेक्षा ५०८, ५५३ तथा ५५८ निर्देश स्थलों पर पैदावार कम हुई।

फासफोरस के प्रति संवेदनशीलता

फासफोरस और पोटाश उर्बरकों से, नाइट्रोजन के डालने की अपेक्षा, पैदावार पर बहुत कम तथा अस्थिर प्रभाव पड़ा। ५१० निर्देश स्थान पर प्रति ३८ पौ० फासफोरस पेण्टाक्साइड से पैदावार में ५ बुशेल प्रति एकड़ की बढ़ती हुई। ५०६ तथा ५५८ निर्देश स्थलों पर भी फासफोरस देने से पैदावार कुछ बढ़ गई। फासफोरस की अधिकतम दर पर ५०६ तथा ५५४ निर्देश स्थलों पर पैदावार घट गई।

पोटाश के प्रति संवेदनशीलता

निर्देश स्थान ५०८ पर ३८ पौं० पोटाश प्रति एकड़ डालने से २० बुशेल प्रति एकड़ पैदावार हुई परन्तु जैसे जैसे मात्रा बढ़ाई गई पैदावार में अल्प वृद्धि हुई। ५५८ निर्देश स्थान पर पोटाश देने से पैदावार के घटने के चिह्न प्राप्त हुये।

बाम और अर्ल हेडी की पुस्तक "Overall Economic Considerations in Fertilizer use" के द्वितीय भाग के पृ० १२५ में निम्न निष्कर्ष दिया गया है :—

"यदि यह मान लिया जाय कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में उर्बरकों के प्रयोगों से फसलों की पैदावार में २५% वृद्धि हो तो भी यह एक ध्यान देने की बात है कि ऐसे धनी राष्ट्र के भोज्य पदार्थों का अधिकांश उर्बरकों द्वारा ही प्राप्त होता है। इस प्रकार आर्थिक वृद्धि के लिए उर्वरक अति महत्वपूर्ण हैं।"

प्रोफेसर के० ए० बाण्डार्फ, राज्य प्रयोगशाला, डेनमार्क के निर्देशक ने ओ० ई० ई० सी० के प्रकाशन "The effective use of Fertilizers including lime" (१९५७) में पृ० ८७ पर कहा है—

"मैं केवल यही कहूँगा कि लाभ के साथ उर्बरकों का उपभोग ६०% आसानी से बढ़ाया जा सकता है। परन्तु इससे पैदावार में ४% की ही वृद्धि संभव है।

पृ० ८४ तथा ८५ पर उन्होंने यह कहा है कि भूमि में फासफोरिक अम्ल और पोटाश की उचित मात्रा होनी चाहिए अर्थात् पोटाश तथा फासफेट दोनों तत्वों की काफी मात्रा भूमि में उपलब्ध होनी चाहिए जिससे पौधे खर्चीले नाइट्रोजन उर्बरकों का उचित प्रयोग कर सकें। दूसरे शब्दों में, सस्ते फासफोरिक अम्ल तथा पोटाश पोषक तत्वों के आधार पर उत्पादन का अनुमान लगाना तर्कसंगत न होगा। तब हर व्यक्ति को इतना फासफोरिक अम्ल तथा पोटाश देना चाहिए जितना पौधों के लिए पर्याप्त है।

विश्व की तथा कुछ देशों की फसलों की नाइट्रोजन आवश्यकताएँ

सोवियत रूस के अतिरिक्त १९५६ में दुनियां भर की धान्य फसलों का उत्पादन इस प्रकार था :

	१० लाख टनों में
गेहूँ	१५९
राई	२०
जौ	७६
जई	५२
मक्का	१६५
मिलेट और सोर्गम	७१
चावल, धान	२१६
कुल योग	७५९

यह उत्पादन १९५६ में कुछ बढ़ गया क्योंकि १९४८-१९५२ में इनका उत्पादन ६२७० लाख टन था।

यदि सोवियत संघ में धान्य का उत्पादन १६१० लाख टन मान लिया जाय तो संसार का धान्य उत्पादन १०००० लाख टन होगा। अन्य भोज्य पदार्थ जैसे दालें, आलू, गन्ना आदि ७००० लाख टन उत्पादित किये जाते हैं। इस तरह (१७००० को १६ से विभाजित करने पर) करीब-करीब १००० लाख टन नाइट्रोजन संसार भर के भोज्य पदार्थों के उत्पादन के लिए आवश्यक है। परन्तु रासायनिक उद्योग ७० लाख टन और द्विदालीय फसलें ५ लाख टन नाइट्रोजन प्रदान करती हैं।

वर्तमान समय में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में प्राय: १५०० लाख टन धान्य और ८५० लाख टन अन्य भोज्य पदार्थ पैदा किये जाते हैं। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में सम्पूर्ण भोज्य पदार्थों में नाइट्रोजन की मात्रा १५० लाख टन होगी, परन्तु वहाँ ५२०० लाख एकड़ कृष्य भूमि के लिए १५-२० लाख टन रासायनिक नाइट्रोजन, २० लाख टन द्विदालीय नाइट्रोजन, १० लाख टन नाइट्रोजन गोबर की खाद से प्राप्त हो जाती है।

यहाँ स्मरणीय रहे कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के कुल उत्पादित भोजन का १०% दूसरे देशों को निर्यात किया जाता है।

सोवियत संघ में धान्य तथा अन्य पदार्थों के उत्पादन के लिए १४०-१६० लाख टन नाइट्रोजन की आवश्यकता है। कुछ वर्षों में सोवियत संघ के फार्मों में उत्पन्न खाद्य पदार्थ में जो वृद्धि हुई है वह वहाँ खेती के क्षेत्रफल बढ़ाने के कारण है। वहाँ १९५८ में खनिज उर्बरकों की उत्पादित मात्रा १२४ लाख टन थी। रूस में अगले पाँच वर्षों में उर्बरकों में तीन गुना वृद्धि करके उत्पादन को ७०% अधिक बढ़ाने की योजना है। इस प्रकार १९६५ तक ३५० लाख टन खनिज उर्बरकों के उत्पादन की आशा है। परन्तु इसमें से नाइट्रोजन की मात्रा केवल ३० लाख टन होगी। इतने पर भी सोवियत संघ में बढ़े हुए उत्पादन के लिए २०० लख टन नाइट्रोजन की आवश्यकता होगी।

भारतवर्ष में १९५६ में धान्य फसलों का उत्पादन इस प्रकार था:—

	लाख टन
चावल	३१६
मिलेट	१८४
सोर्गम	१६७
गेहूँ	१२३
मक्का	३७
जौ	३४
	८६१ लाख टन

कुल योग ८६१ लाख टन प्रति वर्ष होता है। इस प्रकार प्रति वर्ष ६०-७० लाख टन नाइट्रोजन की माँग होती है परन्तु सन् १९६०-६१ में नाइट्रोजन उत्पादन का अनुमान इस प्रकार है :

	लाख टन
सिन्दरी	१·१८९
दक्षिणी आर्काट (नेबेली)	०·२०३
नंगल	०·४०६
राउरकेला	०·७११
प्राइवेट फर्म	०·३६६

इसका कुल योग २·८७५ लाख टन होता है परन्तु १९५६ में फसल उत्पादन में केवल १·५५ लाख टन नाइट्रोजन प्रयुक्त हुआ।

यह ध्यान देने की बात है कि जापान ने शीघ्र ही १३ लाख टन नाइट्रोजन उत्पादित करने की योजना बनाई है। वर्तमान समय में चीन में नाइट्रोजनीय उर्बरकों की अधिक मात्रा में माँग है और वहाँ रासायनिक उर्बरकों के प्रयोग की मात्रा भी बढ़ रही है।

चीन में कार्बनिक पदार्थों का सर्वाधिक प्रयोग होता है। वहाँ पर उपलब्ध २००० लख टन मल का ७०% इसी रूप में प्रयुक्त होता है। ५% कृष्य भूमि में मलमूत्र तथा कूड़ा करकट की खाद, २०-३०% भूमि में कम्पोस्ट तथा १०%-१५% भूमि में हरी खाद का प्रयोग होता है। गणना की गई है कि चीन में कार्बनिक पदार्थों के रूप में १० लाख टन से अधिक नाइट्रोजन, ५ लाख टन पोटाश और २·५ लाख टन फासफोरस प्रतिवर्ष प्रयुक्त होते हैं। वहाँ का फसल उत्पादन अन्य अनेक देशों से बहुत अधिक है यद्यपि ये भूमियाँ सहस्रों वर्षों से जोती जाती रही हैं। यह सम्भव है क्योंकि चीन में कार्बनिक पदार्थ के रूप में मिट्टी में डाले गये ह्यूमस के साथ मिट्टी में पर्याप्त पोषक तत्व मिला दिये जाते हैं जो व्यवसायिक उर्वरकों की मात्रा से कहीं अधिक होते हैं।

इसी प्रकार जापान में कृत्रिम उर्वरकों के साथ साथ कार्बनिक पदार्थों से ह्यूमस की बड़ी मात्रा उत्पन्न होती है जो फसल-उत्पादन में सहायक होती है। जापान में सामान्यत: पौधों के लिए आवश्यक तत्वों की मात्रा निम्न प्रकार है :

कार्बनिक पदार्थ	३७११ से ४६४० पौंड/एकड़
नाइट्रोजन	१०५ से १३१ ,, ,,
फासफोरस	३५ से ४४ ,, ,,
पोटैसियम	५६ से ७० ,, ,,

वहाँ चावल का उत्पादन ८० बुशल प्रति एकड़ होता है और निम्न मात्रा में खाद दी जाती है :—

		पौंड/एकड		
		नाइट्रोजन	फासफोरस	पोटैसियम
कम्पोस्ट की खाद	५२९१	२६·४	५·९	२७·१
हरी खाद, सोयाबीन	३३०६	१९·२	१·१	१९·६
सोयाबीन की खली	३९७	२७·८	१·७	६·४
सुपरफासफेट	१९८	....	१२·८	—

जौ उगाने के लिए निम्नांकित पोषक तत्वों का व्यवहार किया जाता है :—

कम्पोस्ट की खाद	६६१३	३३	७·४	३३·८
भरभंडे की खली	३३०	१६·७	२·८	३·५
मल	४६३०	२६·४	२·६	१०·२
सुपरफासफेट	१३२	—	९·९	—
वर्ष भर के लिए योग	२०८९७	१४९·५	४४·२	१००·६

सघन कृषि के लिए यह आवश्यक जान पड़ता है कि रासायनिक उर्वरकों की अधिकाधिक मात्रा के साथ ही कार्बनिक पदार्थ की प्रचुर मात्रा छोड़ी जाय। सारे संसार में इस तथ्य का आभास होने लगा है।

हीडेलबर्ग के प्रोफेसर फ्राञ्ज पोपेल ने Collection and Disposal of Town Refuse—Street cleansing, १९५३ पृ० ९७-९८ पर O. E. E. C. सूचना में लिखा है कि ह्यूमस से पूर्ण तथा सूक्ष्म तत्वों से युक्त मिट्टी राष्ट्रीय सम्पदा है। कूड़े करकट को कम्पोस्ट में परिवर्तित करके ह्यूमस की वृद्धि की जा सकती है।

कम मात्रा में उर्वरक प्रयोग करने वाले देशों में फसलोत्पादन में नाइट्रोजन की अधिक क्षमता

निम्न सारिणी में विभिन्न देशों के सम्पूर्ण कृषि क्षेत्रफल, प्रयुक्त नाइट्रोजनीय उर्वरकों की मात्रा (सन् १९५६-५७); प्रति हेक्टेयर में किलोग्राम नाइट्रोजन की प्रयुक्त मात्रा तथा अन्नोत्पादन की मात्राएँ प्रदर्शित की गई हैं :

देश	कृषि क्षेत्रफल १००० हेक्टेयरों में	नाइट्रोजनीय उर्वरक १० लाख टनों में	प्रति हेक्टेयर में व्यवहृत व्यवसायिक नाइट्रोजन किलोग्रामों में	अन्न का उत्पादन १० लाख टनों में	अन्न/नाइट्रोजन
सोवियत संघ	४८६,४००	१·५	३·३	१६०	२१४
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	४४४,२३६	२	४·८	१४०	१४०
चीन	२८६,३५०	०·१२०	०·४	१००	१६८
भारतवर्ष	१६९,४९६	०·१५४	१·०	७२	९३४
तुर्की	५३,८१८	०·००६	०·१२	११·५	३८००
फ्रांस	३३,६६८	०·४०३	१३·०	१९·०	९४
स्पेन	२९,५४९	०·१६९	६·१	७·८	९२
पाकिस्तान	२४,४०४	०·०३१	१·३	१८·३	१२०२
इटली	२०,९३६	०·२६८	१३·२	१३·६	१०२
पोलैंड	२०,४०४	०·१५३	८·०	१२·२	१५८
यू० के०	१९,३६४	०·३११	१७·३	८·३	५४
यूगोस्लाविया	१५,९३३	०·०६७	४·२	५·९	१७६
पश्चिमी जर्मनी	१४,४१६	०·५२७	३९·५	१२·०	५०
ग्रीस	८,७०३	०·०५५	६·३	१·९५	७२
थाईलैंड	७,७९३	०·००३	०·४	८·४	५६००
फिलिप्पाइंस	७,५८८	०·०३३	४·३	४·२६	२८०
जेकोस्लोवाकिया	७,३७७	०·०२१	२·८	५·५	५२०
हंग्री	७,२६६	·०२५	३·४	५·३	४२४
पूर्वी जर्मनी	६,४७४	·२१८	३६·४	५·३	४८
जापान	६,४०४	·५८७	९२·०	१७·१	५८
पुर्तगाल	४,८६८	·०४७	९·५	१·५	६४
आयरलैंड	४,७२६	·०१४५	३·०	१·३	१७६
बुलगैरिया	४,५३७	·०८१	१८·०	३·४५	८४
स्वीडन	४,४३६	·०९	२०·०	३·०	६६
आस्ट्रिया	४,०८८	·०३७	९·०	१·९१	१००
डेनमार्क	३,११७	·०९७८	३१·३	३·८१	७७
फिनलैंड	२,८६९	·०४४	१५·३	१·२७	५६
स्विटजरलैंड	२,७०८	·०११	४·२	०·४४	८०
मिश्र	२,६१८	·१२३	४६·५	५·५	९०
नेदरलैंड	२,३०५	·१८९	८६·४	१·५७	१७
बेलजियम	१,७३०	·०८७	५५·१	१·५८	३८
लंका	१,५२३	·०२१२	१५·०	०·५४	४९
नार्वे	१,०३२	·०४५	४८·६	०·५४	२४
तैवान	९३६	·०८४	९६·८	२·२७	५४
लक्जेमबर्ग	१४१	·००३७	२८·३	०·१११	६०

यदि हम यह मान लें कि उपरोक्त देशों में व्यवहृत नाइट्रोजनीय उर्वरक का ५०% अन्नोत्पादन में प्रयुक्त हो जाता है और उत्पादित अन्न की मात्रा को अन्न के उगाने में काम आने वाले नाइट्रोजन उर्वरक की मात्रा से भाग दें तो अत्यन्त रोचक मान प्राप्त होते हैं जो सारिणी के अन्तिम स्तम्भ में दिये गये हैं। उनसे यह प्रदर्शित होता है कि जिन देशों में क्षेत्रफल की प्रति इकाई में अधिकाधिक मात्रा में नाइट्रोजनीय उर्वरक डाला जाता है वहाँ अन्न-नाइट्रोजन के अनुपात का मान कम है। ये अनुपात विभिन्न देशों के लिए वर्द्धमान क्रम में इस प्रकार हैं : नेदरलैंड १७, नार्वे २४, बेलजियम ३८, पूर्वी जर्मनी ४८, लंका ४९, पश्चिमी जर्मनी ५०, यू० के० तथा तैवान ५४, फिनलैंड ५६, जापान ५८, लक्जेमबर्ग ६०, पुर्तगाल ६४, स्वीडन ६६, ग्रीस ७२, डेनमार्क ७७, स्विटजरलैण्ड ८०, बुल्गेरिया ८४, मिश्र ९०, स्पेन ९२, फ्रांस ९४, आस्ट्रिया १००, इटली १०२, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका १४०, पोलैंड १५८, चीन १६८, आयरलैण्ड, यूगोस्लाविया १७६, सोवियत संघ २१४, फिलिप्पाइन २८०, हंग्री ४२४, जेकोस्लोवैकिया ५२०, भारत ९३४, पाकिस्तान १२०२, तुर्की ३८०० तथा थाईलैण्ड ५६००। दूसरी ओर विभिन्न देशों में प्रति हेक्टेयर में डाली जाने वाली नाइट्रोजनीय खाद की मात्रा किलोग्रामों में ह्रासमान क्रम से इस प्रकार है :

तैवान ९६·८, जापान ९२, नेदरलैण्ड ८६·४, बेलजियम ५५·१, नार्वे ४८·६, मिश्र ४६·५, पश्चिमी जर्मनी ३९·५, पूर्वी जर्मनी ३६·४, डेनमार्क ३१·३, लक्जेमबर्ग २८·३, स्वीडन २०, बुल्गेरिया १८, यू० के० १७·३, फिनलैण्ड १५·३, लंका १५, इटली १३·२, फ्रांस १३, पुर्तगाल ९·५, आस्ट्रिया ९, पोलैण्ड ८, ग्रीस ६·३ स्पेन ६·१, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ४·८, फिलिप्पाइन ४·३, यूगोस्लाविया तथा स्विटजरलैंड ४·२, हंग्री ३·४, सोवियत संघ ३·३, आयरलैंड ३, जेकोस्लोवेकिया २·८, पाकिस्तान १·३, भारत १, चीन, थाईलैंड ०·४ तथा तुर्की ०·१२।

उपरोक्त से यह भलीभाँति स्पष्ट है कि जो देश रासायनिक उर्वरों की अधिक मात्रा नहीं डालते वहाँ अन्नोत्पादन में नाइट्रोजन का प्रभाव पड़ता है। यद्यपि आजकल अधिक मात्रा में उर्वरक डालने की प्रथा के कारण घटते हुये लाभ के नियम की ओर लोगों का ध्यान नहीं जाता परन्तु यह नियम नेदरलैंड, बेलजियम, नार्वे जैसे देशों में घटित हो रहा है। इसके विपरीत जापान, चीन, तैवान आदि देशों में जहाँ कम्पोस्ट, वनस्पति तथा पशु अवशेषों को कृत्रिम उर्वरकों के साथ प्रयुक्त किया जाता है, आज भी फसलों में डाले गये प्रति इकाई नाइट्रोजन से अधिक उत्पादन होता है। यहाँ यह बता देना प्रासंगिक होगा कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के अनेक-प्रयोग क्षेत्रों में फसलचक्र के द्वारा अधिक मात्रा में कार्बनिक पदार्थ उत्पन्न करके गेहूँ और मक्के की उपज प्राप्त की जाती है। यदि फसलों के समस्त अवशेषों का सदुपयोग कर लिया जाय और फसल-चक्र में द्विदालीय फसलें उगाई जायँ तो कार्बनिक पदार्थ के स्तर को स्थायी बनाया जा सकता है। परन्तु शुष्क भागों में द्विदालीय फसलों के स्थान पर घासें उगाकर ही कार्बनिक पदार्थ उत्पन्न करना होगा।

विश्व के घास-मैदानों की नाइट्रोजनीय आवश्यकता

यद्यपि संसार के घास-मैदानों के उत्पादन की परिगणना करना कठिन है परन्तु एक मोटा हिसाब तो लगाया ही जा सकता है। O. E. E. C के एक प्रकाशन "Pasture and Fodder Production in North West Europe" (पेरिस, नवम्बर १९५४) में घास के मैदानों के उत्पादन का हिसाब लाख टन चारे की इकाइयों के रूप में अंकित है, जो इस प्रकार है :—

नार्वे २६·५, डेनमार्क ४३, यू० के० २६३, आयरलैण्ड १०४, नेदरलैण्ड ६३, बेलजियम २९, फ्रांस ३७४, पश्चिमी जर्मनी २०२, आस्ट्रिया ४५। कुल मिलाकर ११४८ लाख टन चारे की इकाइयाँ ८०० लाख टन माँड के तुल्य हैं। इन देशों में अन्न का उत्पादन इस प्रकार है :—

नार्वे ५·४, डेनमार्क ३८·१, यू० के० ८३, आयरलैंड १३, नेदरलैंड १५·७, बेलजियम .५·८, फ्रांस १९०, पश्चिमी जर्मनी १२०, आस्ट्रिया १९।

कुल मिलाकर प्रति वर्ष ५०० लाख टन उत्पादन है। यदि हम यह मान लें कि संसार में घास का उत्पादन अन्नोत्पादन के साथ साथ चलता है तो हम विश्व भर के घास के उत्पादन का अनुमान लगा सकते हैं। यह पहले बताया जा चुका है कि विश्व का अन्नोत्पादन १०००० लाख टन है अत: विश्व में घास का उत्पादन $१००००\times\frac{८०}{५०}=१६०००$ लाख टन होगा। इस घास-उत्पादन के लिए $\frac{१६०००}{११}=१५५०$ लाख टन नाइट्रोजन की आवश्यकता प्रति वर्ष होगी। यह बताया जा चुका है कि संसार भर की मिट्टियों में द्विदालों के द्वारा ५० लाख टन नाइट्रोजन स्थिर होता है अत: १५०० लाख टन से कम नाइट्रोजन प्रकाश रासायनिक क्रिया द्वारा नहीं स्थिर होता जो अंशत: मिट्टियों की सतह पर उगने वाली घासों के कार्बनिक पदार्थ तथा अंशत: भूमि के ह्यूमस के सूर्य के प्रकाश में आक्सीकरण द्वारा होता है। संयक्त राष्ट्र अमेरिका में कृष्य भूमि के ५२०० लाख एकड़ों में से २८०० लाख एकड़ में घास के मैदान तथा चरागाह हैं परन्तु आवश्यक नाइट्रोजन के ३% की ही पूर्ति नाइट्रोजनीय उर्वरकों द्वारा होती है। अत: स्पष्ट है कि अन्न, खाद्य पदार्थ तथा घासों की नाइट्रोजन आवश्यकता की पूर्ति प्रधानत: भूमि के ह्यूमस तथा मिट्टी में डाले गये अथवा उगे कार्बनिक पदार्थों के आक्सीकरण द्वारा स्थिर नाइट्रोजन से होती है।

भूमि उर्वरता में ह्यूमस तथा फासफेट का महत्व

प्रो० बानडार्फ ने कृषि में ह्यूमस की महत्ता पर लिखा है कि उर्वरकों द्वारा भूमि में न तो हम कार्बनिक पदार्थ मिलाते हैं और न ह्यूमस की सृष्टि ही कर सकते हैं अत: जिन भागों में कृत्रिम उर्वरकों का प्रयोग होता है उनके द्वारा ह्यूमस के विनाश की समस्या उपस्थित है। बिना पशुओं के फार्मों में ह्यूमस का ह्रास होता रहता है परन्तु यह क्रिया आर्द्र समशीतोष्ण देशों में अत्यन्त मन्द होती है। एस्काव में १८९४ ई० से प्रारम्भ हुये प्रसिद्ध प्रयोगों में क्लावर तथा घास के चतु:वर्षीय फसल चक्र द्वारा बिना खाद डाले खेत में २० वर्षों में भी ह्यमस की क्षति नगण्य थी अर्थात् २·९५ से घटकर २·६% हो गई। यह निम्न सारणी से स्पष्ट हो जावेगा :

एस्काव प्रयोग क्षेत्र में नाइट्रोजन तथा ह्यूमस

शुष्क मिट्टी में प्रतिशतत्व

			बिना खाद डाले	उर्वरकों के डालने से	गोबर की खाद
नाइट्रोजन	एस्काव दोमट मिट्टी	१९४२ ई०	०·१०६	०·११८	०·१३०
	एस्काव बलुई मिट्टी	१९४२ ई०	०·०६६	०·०७६	०·०८६
ह्यूमस (कार्बन × २)	एस्काव दोमट मिट्टी	१९४२ ई०	२·६०	२·८६	३·०४
	एस्काव बलुई मिट्टी	१९४२ ई०	१·५८	१·९२	२·८१

यह कहा जा सकता है कि प्रयोग के प्रारम्भ में, सन् १८९४ में, जो ह्यमस ३·४५% था, एक शती में १% रह जावेगा।

इसी प्रकार रोथैम्स्टैड के लगातार गेहूँ बोने के प्रयोगों में सन् १८४४ में प्रारम्भिक नाइट्रोजन ०·१२२% था जो १०० वर्षों में बिना खाद डाले खण्डों में ०·०९% तथा उर्वरकों से उपचारित खण्डों में ०·११% रह गया। इसके विपरीत जिन खण्डों में प्रतिवर्ष १४ टन गोबर की खाद प्रति एकड़ डाली जाती रही उनमें नाइट्रोजन स्तर ०·२५% हो गया।

यू० के० में द्वितीय विश्वयुद्ध की अवधि में भूमि के पुनरुत्थान में कार्बनिक पदार्थों तथा फासफेट के महत्व को प्रधानता दी गई। इसका स्पष्टीकरण सर कीथ मरे द्वारा लिखित History of Second World War—Agriculture (१९५५) पृ० १६३, से होता है:

"निम्नकोटि के घास के मैदानों को जोतकर खेती करने के लिए आवश्यक था कि उनमें फासफेट डाला जाय परन्तु फासफेट उर्वरकों की नितान्त कमी थी। सन् १९३८-३९ तथा १९४१-४२ में फासफेटीय उर्वरकों का प्रयोग १७०५०० टन P_2O_5 से बढ़कर २८७४०० टन हो गया। सुपरफासफेट का प्रयोग ४२८००० से बढ़कर ८४१००० टन, बेसिक स्लैग का प्रयोग ३८७००० टन से बढ़कर ५५१००० टन तथा १९४१-४२ में तृतीयक फासफेट का प्रयोग ५९००० टन था।" आगे पृ० २०५-२०६ पर उन्होंने लिखा है, "यह निश्चित नहीं था कि मशीनें तथा उर्वरक, विशेषतः फासफेटीय उर्वरक, जिनकी आवश्यकता अनुर्वर कृष्य भूमि तथा नवीन जोते गये घास के मैदानों के लिये थी, की पूर्ति उसकी मात्रा में वृद्धि करके की जा सकती थी।"

जे० डब्लू राइट (जर्नल साइंस आफ फुड एण्ड टेकनालाजी, दिसम्बर १९५९, भाग १०, पृ० ६४५-५०) ने लिखा है:

मिट्टी तथा बेसिक स्लैग के मिश्रण को गहरी पीट भूमि में वृक्षारोपण के लिए, छिद्रों में डालने की बेलजियम में प्रयुक्त प्रणाली को यू० के० में जंगल आयोग द्वारा प्रयुक्त किया जाता है। सर्वश्रेष्ठ खनिज फासफेट तथा बेसिक स्लैग में १६% P_2O_5 होना चाहिए।

एच० बी० वानडर फोर्ड (Managing Southern Soils, १९५९ पृ० २०५) के अनुसार ८-१०% P_2O_5 वाले बेसिक स्लैग का उपयोग संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के दक्षिणी राज्यों में चूना तथा फासफेट के साधन के रूप में किया गया है। पृष्ठ २६१ में वे लिखते हैं "कार्बनिक पदार्थों से आवश्यक नाइट्रोजन का कुछ अंश प्राप्त करके कृषक उर्वरकों की बचत कर सकता है। समस्त पोषक तत्वों में नाइट्रोजन ही सबसे महँगा है और दक्षिणी मिट्टियों में सर्वाधिक न्यून भी।"

पश्चिमी जर्मनी में उर्वरकों के उपभोग पर २०% की छूट दी जाती है और उनका अधिक मात्रा में तब तक प्रयोग होता रहता है जब तक गोबर की खाद का निर्माण तथा व्यवहार इस छूट द्वारा बुरी तरह से प्रभावित नहीं होता। यह विश्वास किया जाता है कि उर्वरक तथा खादें एक दूसरे की सहायता करते हैं। जर्मनी में गोबर की खाद के निर्माण का सरलीकरण तथा संशोधन कृषि-इंजीनियरों द्वारा हो रहा है।

सस्ता होने के कारण फ्रांस में बेसिक स्लैग का प्रयोग बढ़ रहा है और वह सुपरफासफेट को स्थानान्तरित कर रहा है। जिन प्राकृतिक स्थायी घासों में कभी भी उर्वरक नहीं डाला गया वे मिट्टी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त समझी जाती हैं। परन्तु ऐसा करने से फासफोरस की न्यूनता के कारण उत्पादन कम

हो जाता है। बेसिक स्लैग या चूर्ण फासफेटों के डालने से उत्पादन में दुगुनी वृद्धि होती है क्योंकि प्राप्य नाइट्रोजन तथा फासफेट उपलब्ध हो जाते हैं।

गोटिञ्जेन के प्रोफेसर एफ० शेफर ने अपने निबंध, "The effective use of Fertilizers including lime" (पेरिस १९५९ अप्रैल, पृ० ६९) में बताया है, "परती में उगाई जाने वाली फसलों के प्रचुर उर्वरीकरण के लिए आवश्यक है कि अधिक ह्यूमस तथा फासफेट से उर्वरीकरण किया जाय। फासफोरिक अम्ल न केवल पोषक तत्व की पूर्ति करता है, वरन् ह्यूमस के साथ प्रतिरोधकता में वृद्धि करके भूमि के रासायनिक तथा जैविक गुणधर्मों में सुधार करके भूमि-उर्वरता को बढ़ाता है।"

उष्ण कटिबन्ध की मिट्टियों के लिए ह्यूमस बड़े महत्व का है क्योंकि इसकी उपस्थिति में ही सफल उर्वरक-व्यवहार की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो पाती है। उष्ण कटिबन्ध की मिट्टियों में अधिक प्रतिरोध प्रभाव वाले मृदा पदार्थों की न्यूनता रहती है। साथ ही सेस्क्वीआक्साइड की अधिक मात्रा की उपस्थिति में फासफोरिक अम्ल के नियन्त्रणकारी गुण में व्यवधान आ जाता है।

डेनमार्क के प्रोफेसर स्टीनबर्ग के अनुसार निम्न पी-एच वाली ह्यूमसयुत मिट्टियों में ही बेसिक स्लैग, कच्चा चट्टानीय फासफेट तथा हड्डी-चूर्ण अपना प्रभाव दिखलाते हैं। स्टाकहाम के डा० आल्फ एसलाण्डर की फसल उत्पादन की "आदर्श उर्वरीकरण" विधि में गोबर की खाद की बड़ी मात्रा के साथ कैलसियम नाइट्रेट तथा सुपरफासफेट डालने से ही लाभ होता है। इसमें सन्देह नहीं कि उर्वरकों के साथ मिलाकर डालने से गोबर की खाद लाभकारी हो जाती है।

कार्बोहाइड्रेट द्वारा नाइट्रोजन का स्थिरीकरण तथा संरक्षण

इसमें सन्देह नहीं कि पौधों के शुष्क पदार्थ में वर्तमान कार्बनिक यौगिक—सेल्यूलोस, लिगनिन, असेलूलोसीय बहुशर्करायें, बहुयूरोनिक हेमीसेल्यूलोस, पेक्टिन, गोंद इत्यादि मिट्टी में ह्यूमस के निर्माण में सहायक होते हैं और भूमि के गुण धर्मों में सुधार लाते हैं। परन्तु वे वायुमण्डल के नाइट्रोजन को भी स्थिर करते हैं और भूमि में से होने वाली नाइट्रोजन-क्षति को, जो प्रोटीन, एमिनोअम्ल तथा अन्य नाइट्रोजनीय यौगिकों के नाइट्रीकरण द्वारा होती है, रोकते हैं। यह सर्वविदित तथ्य है कि पशु के शरीर में कर्बोहाइड्रेट तथा वसा प्रोटीन को नष्ट होने से बचाते हैं। मिट्टी में भी, पौदों के अवशेष तथा गोबर में वर्तमान कार्बोहाइड्रेट वायुमण्डल के नाइट्रोजन को स्थिर कर सकते हैं और साथ ही आक्सीकरण में विलोम उत्प्रेरक के रूप में वे मिट्टी के नाइट्रोजन की रक्षा करते हैं क्योंकि आक्सीकरण प्रतिक्रिया के द्वारा ही नाइट्रीकरण होता है। फलतः मिट्टी में नाइट्रोजनीय यौगिकों के स्थायित्व एवं संरक्षण के लिये आवश्यक है कि कार्बोहाइड्रेट उपस्थित हों। अतः डाले गये नाइट्रोजनीय उर्वरकों तथा भूमि उर्वरता की रक्षा के लिए आवश्यक है कि भूमि में पौधों के अवशेषों तथा गोबर की खाद डाली जाय। घासों के द्वारा कार्बनिक पदार्थ की पूर्ति हो सकती है जिससे ह्यूमस निर्माण होगा और वायुमण्डल के नाइट्रोजन-स्थिरीकरण में सहायता मिलेगी।

रसेल ने रोथैम्स्टेड तथा वोबर्न में होने वाले प्रयोगों के फलों की आलोचना करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि भूमि की अवनति न केवल लगातार खेती से होती है परन्तु बिना गोबर की खाद के रासायनिक उर्वरक डाल कर फसल चक्र के पालन करते रहने पर भी। इससे यह स्पष्ट है कि फसल काट लेने के बाद भूमि के अन्दर बची जड़ों एवं तनों से प्राप्त कार्बोहाइड्रेट की मात्रा के द्वारा भूमि के नाइट्रोजनीय यौगिकों की रक्षा नहीं हो

पाती, यद्यपि उर्वरीकृत खेतों में अनुर्वरीकृत खेतों की अपेक्षा जड़ और तनों की अधिक मात्रा प्राप्त होती है। इसके विपरीत जिस भूमि खंड में १४ टन प्रति एकड़ प्रति वर्ष के हिसाब से गोबर की खाद डालकर चतु:वर्षीय फसल चक्र का पालन किया गया, उसकी मिट्टी में किसी प्रकार की अवनति नहीं देखी गई। इस १४ टन गोबर की खाद में २०० पौंड नाइट्रोजन था और इसका कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात २२ : १ अथवा २० : १ था। इस प्रकार से प्राय: ४००० पौंड कार्बन, विभिन्न कार्बानिक पदार्थों के रूप में, मिट्टी को मिलता रहा। इस प्रकार समशीतोष्ण प्रदेशों की मिट्टियों में, जहाँ ताप ८°-१०° से० रहता है, प्रतिवर्ष जड़ों-तनों से प्राप्त कार्बनिक पदार्थ के अतिरिक्त १०००पौंड कार्बन मिलाते रहना चाहिए जिससे भूमि उर्वरता तथा ह्यूमस स्थिर रह सकें। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रति एकड़ में ३½-४ टन गोबर की खाद छोड़नी चाहिए। यदि कम कार्बनिक पदार्थ छोड़ा जायगा तो आक्सीकरण के द्वारा ह्यूमस का विघटन होगा और भूमि उर्वरता में क्रमिक ह्रास होने लगेगा।

सन् १९४९-५० में कतिपय यूरोपीय देशों में जोती गई भूमियों में से खाद और उर्वरकों के डालने के फलस्वरूप पोषक तत्वों की उपलब्धि का अनुमान किय गया जो भूमि के प्रति हेक्टेयर पर किलोग्राम पोषक तत्वों के रूप में प्रदर्शित है:

देशों के नाम	पौधों के भोज्य तत्व		पौधों के भोज्य तत्व का पूर्ण योग	खाद में प्रतिशततत्व
	खाद	कृत्रिम व्यापारिक खाद		
बेनेलक्स	११०	१६३	२७३	४०
जर्मनी	८६	९१	१७७	४९
डेनमार्क	१११	७१	१८२	६१
यू० के०	९०	७५	१६५	५५
आस्ट्रिया	८३	२६	१०९	७६
आयरलैण्ड	८४	१३	९७	८७
स्वीडेन	६३	४५	१०८	५८
फ्रान्स	६०	३५	९५	६३
ग्रीस	५९	११	७०	६४
इटली	४७	१९	६६	७१
पुर्तगाल	४३	१८	६१	७०

उपरोक्त से यह प्रत्यक्ष है कि प्रति हेक्टेयर कार्बन की मात्रा जो खाद के रूप में विभिन्न देशों में दी जाती है वह आवश्यक मात्रा (११९·४ कि० ग्रा०) से कहीं कम है। फलस्वरूप यह निश्चय है कि उक्त कार्बन की मात्रा ह्यूमस और भूमि की उर्बरता के निरन्तर ह्रास को रोकने में अपर्याप्त होगी। उत्तरी पश्चिमी यूरोप में, विशेष रूप से हालैण्ड, बेलजियम, जर्मनी, डेनमार्क, यू० के० तथा नार्वे देशों में, जहाँ कि अधिकाधिक मात्रा में नाइट्रोजनीय खादें प्रयोग में लाई जा रही हैं, ह्यूमस और खाद्य उत्पादन में ह्रास हो जाने का सर्वदा भय है। जब नाइट्रोजनीय यौगिक भूमि में डाले जाते हैं और खेती की जाती है तो भूमि में निम्नलिखित रासायनिक परिवर्तन होते हैं :—

$$\text{प्रोटीन} \longrightarrow \text{एमिनो अम्ल} \xrightarrow{+O_2} \begin{matrix} NH^+_4 \\ NH_3 \end{matrix}$$

$$\text{एमाइन, अमोनियम लवण} \xrightarrow{+O_2} \text{नाइट्राइट} \xrightarrow{+O_2} \text{नाइट्रेट}$$
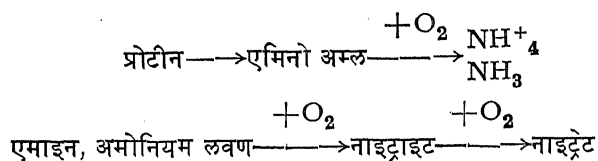
उपरोक्त रासायनिक प्रतिक्रिया से स्पष्ट है कि जब भूमि में नाइट्रीकरण होता है तो रासायनिक प्रतिक्रिया का अन्तिम रूप नाइट्रेट होता है। इस रासायनिक प्रतिक्रिया के आरम्भ होने और नाइट्रेट के बनने के पूर्व ही एक अस्थाई पदार्थ बनता है जिसे अमोनियम नाइट्रेट (NH_4NO_2) कहते हैं। यह पदार्थ अत्यन्त अस्थाई होता है। परिणामस्वरूप यह शीघ्र ही नाइट्रोजन गैस और पानी में विघटित हो जाता है।

$$NH_4NO_2 = N_2 + 2H_2O + 718 \text{ KCal.}$$
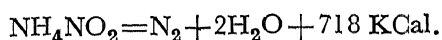
कार्बोहाइड्रेट तथा अन्य कार्बनिक यौगिक नाइट्रीकरण प्रतिक्रिया तथा गैस के रूप में नाइट्रोजन-क्षति को रोकने में सहायक होते हैं। अतः हम देखते हैं कि ह्यूमस जो लिग्नो-फासफो-प्रोटीन होता है, न केवल भूमि को नाइट्रोजन देता है वरन् नाइट्रोजन को भूमि से नष्ट होने से रोकता है। हालैण्ड, बेलजियम जैसे देशों में जहाँ कि गहन कृषि की जाती है और अधिक से अधिक नाइट्रोजनीय उर्वरक खाद के रूप में प्रयुक्त होते हैं, वहाँ भी भूमि में अधिक मात्रा में नाइट्रेट, जो आक्सीकारक होता है, उत्पन्न होता है और ह्यूमस से रासायनिक प्रतिक्रिया करके उसको भिन्न भिन्न पदार्थों में बदल देता है जो कि फसलों के लिए लाभकर नहीं होते। इस प्रकार भूमि की उर्वरता में कमी होती जाती है।

उपर्युक्त प्रकार की हानि आधुनिक प्रयोगों द्वारा राथैम्स्टेड अनुसंधान केन्द्र एवं स्काटलैण्ड में देखी गई है जहाँ कि क्रमशः ८६-१२९ पौ० तथा १०० पौंड नाइट्रोजन का प्रयोग हुआ है। उपरोक्त प्रकार की हानि जो नाइट्रोजनीय उर्वरक देने से होती है कुछ सीमा तक कम्पोस्ट और गोबर की खाद को प्रयोग में लाने से कम की जा सकती है। हालैण्ड में केवल अनाज पैदा करने के लिए १०० पौ० से भी अधिक नाइट्रोजन प्रति एकड़ प्रयोग में लाया जाता है। इस तरह उत्पन्न नाइट्रेट से ह्यूमस की जो हानि होती है उससे बचने के लिए गोबर की खाद और कम्पोस्ट प्रयोग में लाना पड़ेगा। परन्तु समस्या यह कि गोबर की खाद ३ टन प्रति एकड़ ही उपलब्ध है जो ह्यूमस को नष्ट होने से रोकने और उत्पन्न नाइट्रेट से प्रतिक्रिया करने के लिए कहीं कम होगी। अतः कस्बों के मलमूत्र, कूड़ा करकट को भी कम्पोस्ट के रूप में प्रयोग करना होगा जो गोबर की खाद की कमी को पूरा करेगा।

अधिकाधिक उर्वरक के प्रयोग से नाइट्रोजन और ह्यूमस का क्षरण

बहुत से देशों में, विशेष रूप से रोथैम्स्टेड अनुसंधान केन्द्र, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा स्काटलैण्ड में हुए परिमाणात्मक अध्ययनों के फलों से यह विदित होता है कि भूमि में अधिक मात्रा में नाइट्रोजन डालने से ह्यूमस की हानि में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। हाल ने अक्टूबर १८९३ ई० में नाइट्रोजन का मूल्यांकन गेहूँ की भूमि में पौ०/एकड़ में किया है जो निम्न प्रकार है :

क्षेत्र संख्या	५ नाइट्रोजन और खनिज पदार्थ	६ खनिज पदार्थ +४३ पौ० नाइट्रोजन अमोनियम सलफेट के रूप में	७ खनिज पदार्थ +८६ पौ० नाइट्रोजन अमोनियम सलफेट के रूप में	८ खनिज पदार्थ +१२९ पौ० नाइट्रोजन अमोनियम सलफेट के रूप में	१६ खनिज पदार्थ +८६ पौ० नाइट्रोजन सोडियम नाइट्रेट के रूप में
९०″ तक की गहराई तक नाइट्रेट के रूप में	२५·२	५२·६	७४·३	१०७·३	१४४·२
क्षेत्र सं० ५ से नाइट्रेट की अधिकता		२७·४	४९·१	८२·१	११९
फसल में क्षेत्र ५ से नाइट्रोजन की अधिकता		८·७	१२·९	१४·८	११·७
नाइट्रोजन की मात्रा, मिट्टी और फसल में		३६·१	६२·०	९६·९	१३०·७
नाइट्रोजन जो उर्वरक के रूप में दिया गया		४३	८६	१२९	८६

उपरोक्त परिणामों से विदित होता है कि जब क्षेत्र सं० १६ में सोडियम नाइट्रेट के द्वारा ८६ पौ० नाइट्रेट नाइट्रोजन डाला गया तो फसल ने जो नाइट्रोजन नाइट्रेट के रूप में ग्रहीत किया उसकी मात्रा १३०·७ आई। इन परिणामों से यह विदित होता कि ४४ पौ० अधिक नाइट्रोजन भूमि के ह्यूमस से मिला क्योंकि केवल ८६ पौ० नाइट्रोजन सोडियम नाइट्रेट के रूप में रोथैम्स्टेड की भारी भूमि में डाला गया। इस भूमि में प्रारम्भिक नाइट्रोजन ०·१२२% था। इस तरह से नाइट्रेट का मूल्यांकन क्षेत्र १६ में ७२″ की गहराई तक ज्ञात किया गया।

राथैम्स्टेड के प्रयोग से यह विदित होता है कि प्रयोग में लाई गई अमोनियम सलफेट की एक निश्चित मात्रा से जितना नाइट्रोजन मिलना चाहिए, नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि जब अमोनियम सलफेट का नाइट्रीकरण होता है तो एक अस्थाई पदार्थ जिसे अमोनियम नाइट्राइट कहते हैं बनता है जो शीघ्र ही विभिन्न पदार्थों में विघटित हो जाता है। इस प्रकार की नाइट्रोजन की हानि वायुमण्डल में गैस रूप में विलीन हो जाने से होती है। यह स्थिति निम्न प्रतिक्रिया से स्पष्ट की जा सकती है :

$$NH_4NO_2 = N_2 + 2H_2O + 718 \text{ KCal.}$$
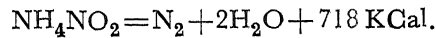
इस प्रकार की नाइट्रोजन क्षति की प्रतिक्रिया का सम्यक अध्ययन डा० धर तथा उनके सहयोगी सन् १९३१ से करते आ रहे हैं।

जे० हेण्डरिक ने भी अपने लाइसीमीटर अध्ययनों के द्वारा ज्ञात किया है कि भूमि से निष्कासित नाइट्रेट की मात्रा उर्वरक से उपचारित भूमि में अनुपचरित भूमि की अपेक्षा अधिक होती है।

१५ मास तक प्रति एकड़ में डाले गये अमोनियम सलफेट की मात्रा निम्न थी :

	खाद रहित	छोड़ा गया अमोनियम सलफेट	अमोनियम सलफेट + सुपर फासफेट	अमोनियम सलफेट + सुपर फासफेट + पोटैसियम क्लोराइड
फसल और जलनिष्कर्ष में सम्पूर्ण नाइट्रेट की मात्रा	१९३	N ७७४ (१७५)	७९२	७७६
उर्वरक के रूप में डाला गया नाइट्रेट	...	N ४७५ (१०७)	४७५	४७५
मिट्टी से प्राप्त नाइट्रेट	१९३	N २९९ (६७·६)	३१७	N ३०१ (६७·८)

उक्त परिणामों से यह विदित होता है कि जब प्रति एकड़ १०० पौ० नाइट्रोजन केवल अमोनियम सलफेट के रूप में या अमोनियम सलफेट + सुपरफासफेट या + पोटैसियम क्लोराइड के रूप में दिया जाता है तो भूमि में ह्यूमस और नाइट्रोजन की कमी होती जाती है। अतः भूमि की उर्वरता में ह्रास होना निश्चित है।

आधुनिक कृषि के तरीकों में अधिकाधिक संख्या में ट्रेक्टरों तथा अन्य मशीनों को प्रयोग में लाने से फार्म पर जानवरों की संख्या कम होती जा रही है जिसके फलस्वरूप गोबर की खाद की मात्रा घटती जा रही है जो नाइट्रोजन-स्थिरीकरण के लिए न तो प्रचुर कार्बोहाइड्रेट उपलब्ध कर सकती है और न मिट्टियों से नाइट्रोजन-क्षति को रोकने में सहायक हो सकती है।

मनुष्य अपने खेतों में उगने वाली घासों तथा जंगलों में उगने वाले पौधों से प्राप्त ह्यूमस का प्रयोग सनातन काल से करता आया है। उसने गोबर को प्रारम्भ से ही लाभदायक जानकर खेतों में प्रयुक्त किया है और वर्तमान युग के प्रारम्भ तक करता आया है। आजकल किसान अपनी भूमि में पहले से कहीं अधिक कृत्रिम उर्वरक का प्रयोग कर रहा है विशेष रूप से हालैण्ड में जहाँ कि १५० पौ० नाइट्रोजन प्रति एकड़ मक्के की फसलों में प्रयुक्त होता है जब कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में मक्के के लिए तथा फ्रान्स में अनाजों के लिए उर्वरक की अधिक मात्रा प्रयुक्त की जाती है। परन्तु हाल ही में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में हुए प्रयोगों से यह विदित होता है कि जब प्रति एकड़ १२५ पौ० नाइट्रोजन से अधिक प्रयोग में लाया

जाता है तो वह हानिकारक होता है। इसी तरह से रोथैम्स्टेड, वोबर्न तथा अन्य प्रायोगिक क्षेत्रों से पता चलता है कि नाइट्रेट की अधिकता से ह्यूमस का आक्सीकरण होता है जिससे उर्वरता का ह्रास होता है। अतः अधिक अन्न उपजाने के लिए तथा भूमि की उर्वरता बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि भूमि में गोबर की खाद, कम्पोस्ट, घासफूस, कूड़ा-करकट तथा पौधों के अवशेषों को प्रयोग में लाया जाय। साथ ही साथ यदि कैलसियम फासफेट भी दिया जावे तो नाइट्रोजन का स्थरीकरण भूमि में अधिक होगा, ह्यूमस बढ़ेगा तथा नाइट्रोजन-क्षति में कमी होगी। आधुनिक कृषि में यदि रासायनिक नाइट्रोजन का प्रयोग करना ही हो तो प्रति एकड़ १०० पौ० नाइट्रोजन से अधिक न डाला जाय और इसके साथ ही गोबर की खाद, कम्पोस्ट, घासफूस, कूड़ा-करकट अवश्य डाला जाय।

भूमि-उर्वरता में चूने का महत्व

समशीतोष्ण जलवायु वाले देशों की मिट्टियों में उपस्थित अविलेय कैलसियम कार्बोनेट विलेय बाइ-कार्बोनेट में बदल कर सरलता से पानी के साथ धुलता रहता है। ऐसी दशा में समशीतोष्ण जलवायु वाले देशों की मिट्टियों में चाक या खरिया मिट्टी, मार्ल तथा चूने का प्रयोग बहुत ही लाभकर सिद्ध हुआ है। यही कारण है कि पिछली शताब्दियों में गोबर और चूना देकर काफी उपज प्राप्त की जाती थी। उक्त लिखित बातों का परिचय अनेक हुए प्रयोगों से मिलता है। सर्व प्रथम सन् १८४३ में जब रोथैम्स्टेड की मिट्टियों का विश्लेषण किया गया तो चूने की मात्रा केवल ५% थी जब कि वोबर्न की हलकी मिट्टियों में सन् १८७६ में रोथैमस्टेड से कहीं कम चूने की प्रतिशतता पाई गई। परन्तु वर्तमान समय में जब उपरोक्त मिट्टियों का विश्लेषण किया गया तो रोथैम्स्टेड की मिट्टियों में चूने की मात्रा केवल ३% और वोबर्न की मिट्टियों में केवल ०·३% पाई गई।

हिलगर्ड के विचारों के अनुसार बलुही तथा भारी चिकनी मिट्टी में अधिकतम उपज तभी प्राप्त की जा सकती है जब कि चूने की कम से कम मात्रा क्रमशः ०·१% और ०·०६% हो। प्रयोगों से विदित होता है कि यदि मिट्टियों में कैलसियम कार्बोनेट की मात्रा २·३% हो तो उपज के लिए वे ठीक होती हैं। कृषक भी इस कहावत में विश्वास करते हैं "जिस देश की मिट्टियों में चूने की पर्याप्त मात्रा हो वह देश धनी है।" जर्मनी तथा अन्य यूरोपीय भागों में यह विश्वास किया जाता कि यदि खाद में चूना न हो तो वह केवल भूमि को ही निर्धन नहीं बनाएगी वरन् कृषक को भी गरीब कर देगी।

चूने एवं कैलसियम कार्बोनेट के मुख्य कार्य निम्न हैं:—

(१) पौधों के आवश्यक तत्व कैलसियम की पूर्ति।

(२) समशीतोष्ण जलवायु वाले प्रदेशों की मिट्टियों की अम्लीयता का निराकरण।

(३) विलेय कैलसियम लवणों की उत्पत्ति, जो ऋणात्मक सिलिसिलिक अम्ल तथा सिलिकेट और ह्यूमस का स्कन्दन करके भूमि की रन्ध्रता तथा रचना में सुधार लाते हैं।

(४) क्षारीय प्रकृति के कारण वे ह्यूमस के आक्सीकरण में योग देते हैं। साथ ही अमोनियम, नाइट्रेट तथा फासफेट आयनों को मुक्त करते हैं।

(५) कार्बोहाइड्रेट के मन्द आक्सीकरण के द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण में योग देते हैं।

(६) एल्यूमिनियम, लौह, टाइटेनियम फासफेटों में से फासफेट आयनों को मुक्त करके कैसलसियम फासफेट बना देते हैं। इस तरह से हम देखते हैं कि चूने के प्रयोग से भूमि की दशा में सुधार होता है, साथ ही साथ पौधों को पोषक तत्व सरलता से प्राप्त होने लगते हैं।

जब चूने की अधिक मात्रा भूमि में डाल दी जाती है तो मिट्टी में उपस्थित ह्यूमस के प्रोटीन का नाइट्रीकरण होने लगता है और अधिक नाइट्रेट बनने के कारण पौधे उसका जल्दी उपयोग नहीं कर पाते जिससे वर्षा जल या सिंचाई के पानी के द्वारा वे बहकर नष्ट हो जाता है। प्राप्य पोटाश तथा सूक्ष्म तत्व गतिहीन हो जाते हैं। उपरोक्त बातों से स्पष्ट है कि किस तरह अधिक मात्रा में चूना हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

घास के मैदानों में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण

ब्रिटिश गवर्नमेण्ट कमेटी ने अनुमान लगाया है कि घास के मैदानों में से प्रति वर्ष एक एकड़ में पौधों की जड़ें, तने इत्यादि दो टन की मात्रा में आक्सीकरण द्वारा नष्ट हो जाया करती हैं। अतः यह प्रत्यक्ष है कि भूमि पर घासपात के उगे रहने से उस भूमि की उर्वरता में वृद्धि हो जाती है। यही नहीं, कार्बनिक पदार्थों के आक्सीकरण से वायुमण्डल के नाइट्रोजन का स्थरीकरण भी होता है। रोथैम्स्टेड तथा कई भागों में जहाँ कई वर्षों तक भूमि की सतह पर घास उगी रही, नाइट्रोजन की मात्रा में काफी वृद्धि देखी गई। उन घास के मैदानों में जहाँ प्रति वर्ष प्रति एकड़ दो टन घास आक्सीकृत हो जाया करती थी, फासफेटीय उर्वरक के डालने से प्रति वर्ष नाइट्रोजन स्थरीकरण में वृद्धि पाई गई। उपर्युक्त दो टन जड़ और तने में कार्बन की मात्रा ०·८ टन थी। यदि प्रति ग्राम कार्बन के आक्सीकरण से २५ मिग्रा० नाइट्रोजन स्थिर हो तो प्रति वर्ष प्रति एकड़ में स्थिर नाइट्रोजन की मात्रा ४० पौ० होगी। परन्तु जब घास के मैदानों में बेसिक स्लैग या चूर्ण फासफेटीय चट्टान छोड़ा गया तो प्रति वर्ष प्रति एकड़ नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ कर ४०-१०० पौ० हो गई। जब घास के मैदानों की जुताई करके फासफेटीय उर्वरक तथा बेसिक स्लैग डाला गया तो सम्भावित स्थिर नाइट्रोजन की मात्रा प्रति एकड़ प्रति वर्ष करीब २०० पौ० थी क्योंकि आक्सीकरण के लिए अधिक मात्रा में कार्बोहाइड्रेट वर्तनमान था। इसी तरह यू० के० के घास के मैदानों की जुताई करके जब फासफेटीय उर्वरक डाला गया तो भूमि-नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ गई। कॉकल पार्क के प्रसिद्ध प्रयोगों में यह देखा गया कि जब घास के मैदानों में बेसिक स्लैग डाला गया तो सफेद क्लोवर में काफी वृद्धि हुई। इतना ही नहीं, घास की जड़ों के आक्सीकरण से इतना नाइट्रोजन स्थिर हो जाता है कि उनकी तुलना द्विदालीय फसलें भी नहीं कर पातीं क्योंकि घास के मैदानों में घास के उगने की अपेक्षा द्विदालीय फसलों का उगाना कठिन है। यही कारण है कि उन जमीनों में जहाँ घास काफी उगी रहती है या उगाई जाती है, नाइट्रोजन की मात्रा अधिक पाई जाती है।

यू० के० के ६३ लाख एकड़ क्षेत्र में घास के अस्थाई मैदान हैं तथा १३५ लाख एकड़ में स्थाई रूप से घासें उगाई जाती हैं। १६८ लाख एकड़ क्षेत्रफल चराई के लिए छोड़ दिया जाता है। यदि दो टन जड़ और तनों के आक्सीकरण से प्रति एकड़ ४० पौ० नाइट्रोजन की कल्पना की जाय तो १३५ लाख एकड़ में कुल स्थिर नाइट्रोजन की मात्रा २·७ लाख टन होगी। इसी प्रकार १६८ लाख एकड़ में जहाँ आंशिक चराई होती है २० पौ० नाइट्रोजन प्रति एकड़ के हिसाब से १·६८ लाख टन नाइट्रोजन उपलब्ध होगा। अस्थाई

घास के मैदानों में जहाँ कि द्विदालीय फसलें भी उगा ली जाती हैं प्रति एकड़ ५० पौ० स्थिर नाइट्रोजन के हिसाब से सम्पूर्ण नाइट्रोजन की मात्रा करीब १·५७५ लाख टन होगी। इस प्रकार यू० के० में ६ लाख टन नाइट्रोजन प्रति वर्ष स्थिर होता है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में घास के मैदानों के क्षेत्र निम्न प्रकार हैं:

लगभग ६६० लाख एकड़ भूमि चरागाह के रूप में प्रयोग में लाई जाती है। ६३३० लाख एकड़ में चरागाह तथा चराई के क्षेत्र हैं और ३०१० लाख एकड़ भूमि में जंगलों से आच्छादित चरागाहें हैं। अतः घास के मैदान का सम्पूर्ण क्षेत्र ९९०० लाख एकड़ है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के ६६० लाख एकड़ चरागाहों में ४० पौ० नाइट्रोजन प्रति एकड़ के हिसाब से १३·२ लाख टन नाइट्रोजन स्थिर होगा। इसी प्रकार २० पौ० प्रति एकड़ के हिसाब से, चरागाह और पशुओं के द्वारा चराए जाने वाले क्षेत्र में जो ६३३० लाख एकड़ हैं, ६३·३ लाख टन नाइट्रोजन स्थिर होगा। जंगली चरागाह मैदान भी, जिनका क्षेत्रफल करीब ३०१० लाख एकड़ है, ३०·१ लाख टन नाइट्रोजन स्थिर कर सकते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण ९९०० लाख एकड़ घास के मैदानों और चारागाहों में १०६६० लाख टन नाइट्रोजन स्थिर हो सकता है परन्तु १०० लाख टन उपलब्ध नाइट्रोजन विभिन्न फसलों जैसे चारा, कपास, तम्बाकू, गेहूँ, मक्का के उगाने में समाप्त हो जाता है। चूँकि उन मिट्टियों में जिनसे फसलें उगाई जाती हैं नाइट्रोजन उपलब्ध रूप में होना चाहिए अतः ऐसी अवस्था में जहाँ उक्त फसलें बोई जाती हैं ऐसी खादों का प्रयोग करना चाहिए जो जल्दी ही नाइट्रोजन दे सकें। इसके लिए अकार्बनिक खादें लाभकर होती हैं। पौधों को नाइट्रोजन मिलने का दूसरा साधन भूमि में उपस्थित नाइट्रोजन है जो द्विदालीय पौधों के द्वारा तथा अन्य पौधों के अवशेषों से पूर्ण किया जा सकता है। परन्तु इस प्रकार से नाइट्रोजन जो पौधों को मिलता है अकार्बनिक पदार्थों की तुलना से कहीं कम उपलब्ध होता है।

कार्बनिक पदार्थ तथा फासफेट—प्राप्य नाइट्रोजन तथा अन्य आवश्यकीय तत्वों के भण्डार

उपसाला (स्वीडेन) के प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि जब मिट्टी का ताप ५° सें० था तो सम्पूर्ण नाइट्रोजन का केवल १/२ प्रतिशत पौधों के लिए उपलब्ध था। सर जॉन रसल के अनुसार रोथैम्स्टेड में औसत ताप ८-९° सें० और उपलब्ध नाइट्रोजन सम्पूर्ण नाइट्रोजन का केवल १-२% है। हमारे देश में जहाँ कि मिट्टियों का औसत ताप २६° सें० रहता है उपलब्ध नाइट्रोजन पूर्ण नाइट्रोजन का ५-८% रहता है, परन्तु बाद में इस नाइट्रोजन की प्रतिशतता बढ़ जाती है। जब कार्बनिक पदार्थ में कार्बन और नाइट्रोजन का अनुपात १० रहता है तो प्रोटीन का आक्सीकरण तथा नाइट्रीकरण होने लगता है और नाइट्रोजन उपलब्ध होने लगता है। परन्तु यह प्रक्रिया ताप पर निर्भर है। इस प्रकार भूमि या कम्पोस्ट में वर्तमान ह्यूमस प्राप्य नाइट्रोजन, फासफोरिक अम्ल तथा पोटाश का मुख्य स्रोत है। बेलफोर महोदया का अनुमान है कि औसत उपज के लिए एक एकड़ में ५ टन कम्पोस्ट पर्याप्त होगी। यदि कम्पोस्ट में ०·५% नाइट्रोजन हो तो इस तरह से ५ टन कम्पोस्ट से प्रति एकड़ ५० पौ० नाइट्रोजन प्राप्त हो सकता है। यह देखा गया है कि इस ५० पौ० नाइट्रोजन में से ३५ पौ० नाइट्रोजन पौधों द्वारा सरलता से ग्रहीत है। इसमें सन्देह नहीं कि भूमि के नाइट्रोजन से ही उपलब्ध नाइट्रोजन ग्रहीत होता है। यदि यह कल्पना की जाय कि भूमि के प्रथम ६-७″ में ०·१% नाइट्रोजन है तो ५०००० लाख एकड़ भूमि में, जिस पर

विश्व भर में खेती होती है ५५००० लाख टन नाइट्रोजन वर्तमान होगा जिसमें से ५५०-११०० लाख टन प्राप्य नाइट्रोजन होगा । यदि भूमि के ह्यूमस में उपलब्ध नाइट्रोजन में वृद्धि कर दी जाय तो अन्य श्रोतों से नाइट्रोजन पूर्ति की आवश्यकता में घटती आ जावेगी ।

बहुत से अमरीकी प्रकाशनों में यह बताया गया है कि भूमि में ह्यूमस की मात्रा बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है परन्तु यह विचार असत्य है । रोथैम्स्टेड की भूमि में जिसमें फसलें उगाई जाती हैं, प्रतिवर्ष १४ टन गोबर की खाद डालने से ह्यूमस की मात्रा में वृद्धि हुई है और साथ ही वह कृत्रिम खादों से उपचारित भूमि से अधिक उत्पादन करती है । इसी प्रकार हेन्डरसन ने भूमि में गोबर की खाद का प्रयोग करके अधिक से अधिक अन्न का उत्पादन किया है और यह बताया है कि रासायनिक खाद की उपयोगिता गोबर की खाद या कम्पोस्ट से कहीं कम है । यही कारण है कि समशीतोष्ण जलवायु वाले देशों में रासायनिक खादों के बदले गोबर की खाद या कम्पोस्ट देना अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है ।

अकस्मात् ही मनुष्य ने गोबर को कम्पोस्ट के रूप में बदल कर खाद की तरह प्रयुक्त करके अच्छी फसलें प्राप्त कीं । इसी प्रकार मछली, रुधिर, गुवानो की खादें लाभदायक सिद्ध हुई हैं । यह पूर्ण रूप से विदित है कि कार्बनिक पदार्थ, जिनका कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात १० से कम होता है, सरलता से आक्सीकरित होकर अमोनियम लवण, फासफेट, नाइट्रेट आदि प्रदान करते हैं । इसी प्रकार कम्पोस्ट, जिसका कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात १०-१५ हो, फसल के उत्पादन में सहायक होती है क्योंकि पौधों के पोषक तत्व जैसे अमोनियम लवण, नाइट्रेट इत्यादि आसानी से पौधों को मिलने लगते हैं । परन्तु कार्बनिक पदार्थ जिसका कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात १५ से अधिक है, फसलों के उत्पादन में लाभकर नहीं होता क्योंकि ऐसा विचार है कि भूमि में उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा घटने लगती है । परन्तु हमने अपने प्रयोगों में देखा है कि यदि कार्बनिक पदार्थों को भूमि में छोड़कर १००-१५० दिन तक इसी प्रकार रहने दें तो ह्यूमस उत्पन्न होगा जिसमें नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होगी । साथ ही हमने यह भी देखा है कि कार्बनिक पदार्थ को सीधे मिट्टी में मिलाने से उसे कम्पोस्ट में परिणत करने की अपेक्षा अधिक नाइट्रोजन स्थिर होता है । इस प्रतिक्रिया में फासफेट बहुत सहायक होते हैं । कार्बनिक पदार्थ, जो सौर प्रकाश के द्वारा उत्पन्न है उसी के प्रयोग द्वारा ही प्रकाश ऊर्जा का उपयोग भूमि उर्वरता में लाभदायक होता है और अनेक देशों में जहाँ उर्वरक नहीं छोड़े जाते, इसी के द्वारा फसलों का उत्पादन स्थाई रह पाया है । अतः सम्पूर्ण विश्व में बेसिक स्लैग के साथ कार्बोहाइड्रेट का खाद के रूप में प्रयुक्त होना अधिकाधिक महत्वपूर्ण है ।

गणना से यह ज्ञात हुआ है कि विश्व भर की फसलों के विकास, चारे तथा रेशों के उत्पादन के लिए २५०० लाख टन नाइट्रोजन की आवश्यकता है । परन्तु इसका केवल ३% कृत्रिम उर्वरकों से, २% द्विदालीय पौधों के द्वारा, २-३% वर्षा द्वारा तथा २% गोबर की खाद से उपलब्ध है । शेष नाइट्रोजन का स्रोत भूमि है । भूमि का यह नाइट्रोजन प्रकाश के द्वारा संश्लिष्ट कार्बोहाइड्रेट के तापज तथा प्रकाश रासायनिक आक्सीकरण से ही प्राप्त होता है । अतः विश्व भर में कार्बोहाइड्रेट के साथ ही कैलसियम फासफेट को खाद के रूप में प्रयुक्त करके फसलों की ९०% नाइट्रोजन-पूर्ति के लिए सम्यक योजना होनी चाहिए ।

हमने ऊसर मिट्टियों के सुधार सम्बन्धी विस्तृत अध्ययनों के फलस्वरूप यह देखा है कि राजस्थान, मैसूर, उत्तर प्रदेश, बिहार इत्यादि जहाँ कि ऊसर काफी क्षेत्र में हैं, हड्डियों के चूर्ण को पयाल के साथ

डालने से अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं। गोबर की खाद, कम्पोस्ट तथा बेसिक स्लैग या चट्टानीय फासफेट को मिलाने से नाइट्रोजन स्थिर होता है। फासफेट रहित तैयार की गई कम्पोस्ट में ०·५-०·८% नाइट्रोजन रहता है जब कि फासफेट युक्त कम्पोस्ट में १-२% तक नाइट्रोजन पाया गया। यही नहीं, उपलब्ध फासफेट तथा नाइट्रोजन की भी मात्रा अधिक रहती है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उन मिट्टियों में जहाँ वानस्पतिक उत्पादन काफी है, प्रकाश और फासफेट के द्वारा भूमि की उर्वरता में सुधार किया जा सकता है। हमारे बहुत से राजकीय फार्मों पर यह देखा गया है कि जब मिट्टी में पुआल के साथ बेसिक स्लैग मिलाकर जोत दिया जाता है तो उत्पादन में २०-३०% की वृद्धि हो जाती है।

सफोक (इंगलैण्ड) में लेडी ईव बेलफोर ने एक एकड़ भूमि में जिसमें कि जौ का पुआल और ९९ पौ० फासफोरिक अम्ल बेसिक स्लैग के रूप में जोता गया था, ३०·४ हण्डरवेट जौ उत्पन्न हुआ जब कि ११२ पौ० नाइट्रोजन (अमोनियम सलफेट के रूप में) प्रति एकड़ डालने से २६·६ हण्डरवेट जौ पैदा हुआ। बिना खाद डाले केवल १४ हण्डरवेट जौ उत्पन्न हुआ। साथ ही, जिस भूमि में पुआल और बेसिक स्लैग दिए गये थे उसमें सम्पूर्ण तथा उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा भी अधिक थी।

स्वीडेन के डा० ओ० आरहीनियस ने अपने प्रयोगों में १ कि०ग्रा० पिसा हुआ चट्टानीय फासफेट डालकर ४·५ घन मीटर इमारती लकड़ी प्राप्त की जबकि नियंत्रित वृक्ष से केवल २·८ घन मीटर लकड़ी प्राप्त हुई।

इस अभिभाषण में मैंने यह दिखलाने का प्रयास किया है कि औद्योगिक नाइट्रोजन विश्व के खाद्य उत्पादन की बराबरी करने में असमर्थ है। किन्तु कैलसियम फासफेट तथा प्रकाश की सहायता से कार्बनिक पदार्थ उक्त परिस्थिति का सामना कर सकता है और भूमि की उर्वरता को स्थाई रूप से बढ़ा सकता है।

प्रयोगात्मकता—योरोपीय वैभव की कुंजी

यह बड़े दुख की बात है कि संसार के अधिकांश प्राणी अब भी निर्धन, अर्धपेट, अर्धनग्न तथा अशिक्षित हैं। भारत, पाकिस्तान, लंका, बर्मा, चीन, जापान, दक्षिणी अमेरिका के अधिकतर भाग, तुर्की, इटली तथा ग्रीस में प्रति दिन प्रति व्यक्ति १६२० से लेकर २५०० कैलारी ऊर्जा ग्रहण करता है और उसे प्रति दिन ६·५-२०·५ ग्राम पशु-प्रोटीन उपलब्ध है जबकि सामान्य दैहिक क्रियाओं के लिए २८०० कैलारी तथा ४० ग्राम पशु-प्रोटीन की आवश्यकता होती है। यहाँ तक कि रूस में भी पशु-प्रोटीन की औसत मात्रा प्रतिमान के नीचे है। जैसा कि आज से एक शताब्दी पूर्व कार्लमार्क्स ने कहा था, आज संसार के अधिकांश देशों का, विशेषकर पूर्व का, अर्थशास्त्र मानवीय दरिद्रता का विज्ञान है। इंगलैण्ड, बेलजियम, हालैण्ड, स्विटजरलैंण्ड इत्यादि जैसे देश अपने लिए आवश्यक खाद्य का उत्पादन करने में असमर्थ हैं। परन्तु उनके पास आयात के प्रचुर साधन हैं। केवल युद्ध काल में ही खाद्य का अभाव होता है।

पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दियों में पेरासेल्सस, बैकन, बॉयल आदि के द्वारा योरोप में धीरे-धीरे वैज्ञानिक प्रयोगात्मक विधि की स्थापना हुई। इनके पश्चात् ब्लैक, शीले, प्रीस्टले, न्यूटन, कैवेण्डिश, बरज़ीलियस, मैण्डलीफ, डार्विन, मेण्डल, फैराडे प्रभृति हुए जिन्होंने वैज्ञानिक प्रयत्नों तथा परीक्षणों के लिए महान त्याग किए। उन्होंने जीवन की सभी समस्याओं में विज्ञान का व्यवहार किया तथा अपने प्राकृतिक साधनों को समृद्धिशाली बनाया तथा साथ ही साथ कृषि की वृद्धि की और योरोप को

समृद्धिशाली बनाया। पाँच सौ वर्ष तक वहाँ विज्ञान और प्राविधिक शिक्षा का आश्चर्यजनक विकास हुआ। प्रत्येक योरोपवासी को प्रयोगों पर निर्भर रहने की शिक्षा दी जाती। वह इन प्रयोगों को सत्यता तथा दृढ़ता के साथ करता। वह ठीक हल निकालकर प्रकृति को वश में लाने में सफल हुआ। आठवीं शताब्दी के पश्चात् हमने अपने देश में कोई प्रयोग नहीं किए और विज्ञान की प्रयोगात्मक विधि को कभी स्वीकार नहीं किया। यही प्रमुख कारण है कि हम इतने पिछड़े हुए हैं तथा अपने प्रयत्नों में उतने ईमानदार नहीं जितने कि योरोप वासी नित्य प्रति के जीवन में ईमानदारी बरत कर हो गए। हम बहुत ही अभागे रहे हैं कि आक्रमणकर्ता फिर फिर हमारी भूमि पर आए और हमको दास बनाते रहे। सत्य का पथ, उन्नति तथा विज्ञान का अनुसरण करने के बजाय हम नैतिक तथा मानसिक दासता के समक्ष झुकते रहे और मुझे यह कहते हुए दुख होता है कि यह मानसिक दासता अब भी विद्यमान है।

भारत में आधुनिक विज्ञान का युग विगत साठ वर्षों से है जबकि उत्तरी पश्चिमी योरोप में वैज्ञानिक पिछले ५०० वर्षों से कठिन श्रम करते आ रहे हैं। अतः हमें धैर्य धारण करते हुए राष्ट्रीय उत्थान के लिए कठिन परिश्रम करनी है। मैं इस भाषण की समाप्ति, अविस्मरणीय वैज्ञानिक लेवोजियर द्वारा लिखित पंक्तियों से कर रहा हूँ जिनको उन्होंने फ्रान्सीसी रिपब्लिकनों के द्वारा शूली पर चढ़ाए जाने के पूर्व लिखा था।

"हम इसे स्मृति संभाषण के साथ समाप्त करेंगे। मानव जाति की भलाई के लिए, देश की बड़ाई के लिए आवश्यक नहीं है कि कोई साम्राज्यों के संगठन तथा पुनरुत्थान से सम्बन्धित कार्य करे। वैज्ञानिक अपनी एकान्त प्रयोगशाला तथा अध्ययन में लगा रहने पर भी देश भक्ति का उदाहरण प्रस्तुत करता है। वह अपने परिश्रम के बल पर मानव जाति को प्रभावित करने वाली बुराइयों को कम करने की आशा कर सकता है और उसके हर्ष तथा उल्लास को बढ़ा सकता है। यदि वह अपने नव अनुसंधानों से मनुष्य की औसत आयु को कुछ वर्षों अथवा कुछ ही दिनों अधिक बढ़ाने में समर्थ हो सकता है तो वह मानव जाति के शुभचिन्तक की पदवी से विभूषित होने की आकांक्षा कर सकता है।"

विज्ञान वार्ता

१. ईंट के भट्टों के लिए लिग्नाइट का चूरा :

दक्षिण भारत में ईंट के भट्टों के लिए धीमी आँच के कोयले की और लकड़ी की बहुत कमी है। अब नेवेली में खोज करने से इस कमी को दूर करने का तरीका निकल आया है। प्रयोग से पता चला है कि इनके स्थान पर लिग्नाइट का चूरा और मोटा लिग्नाइट सस्ता पड़ता है और ईंटें भी उतनी ही बढ़िया बनती हैं। साथ ही यह भी पता चला है कि भट्टे में लिग्नाइट का चूरा कोयले के बराबर ही लगता है और मोटा लिग्नाइट २१·५ प्रतिशत कम।

ये प्रयोग पहले नेवेली के छोटे भट्टे में किए गए थे, बाद में नेवेली से ८ मील दूर सेतियातोप के निकट हाफमैन भट्टे में।

दक्षिण भारत में ईंट के भट्टों को धीमी आँच का कोयला और लकड़ी पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाती। वहाँ कोयले का भाव ७० रु० टन और लकड़ी का भाव ५० से ६० रु० टन है। दूसरी ओर नेवेली लिग्नाइट योजना चलने से पर्याप्त मात्रा में लिग्नाइट का चूरा और मोटा लिग्नाइट मिलने लगेगा।

२. कागजी शहतूत से अखबारी कागज :

देहरादून की बन-अनुसंधानशाला में प्रयोग करने से पता चला है कि जर्मनी की ठण्डा-कास्टिक सोडा प्रणाली से देश में कागजी शहतूत (ब्रोउसोनेटिया पेपिरिफेरा) से अखबारी कागज बनाने की लुगदी तैयार की जा सकती है। इसमें शहतूत के टुकड़ों के बजाय उसका बुरादा या छीलन काम में आता है। इस विधि से ८४ प्रतिशत कागजी लुगदी निकलती है और कागज भी बढ़िया बनता है।

प्रयोग से पता चला है कि इस प्रणाली से लुगदी बनाते समय कास्टिक सोडा जितना अधिक डाला जायगा, लुगदी से उतना ही कम कागज बनेगा, पर वह अधिक मजबूत होगा। इससे कागज की चमक में कोई कमी नहीं आती।

देश में अखबारी कागज बनाने के लिए नुकीले पत्तों वाले पेड़ अधिक नहीं मिलते। यहाँ अखबारी कागज के एकमात्र कारखाने नेपानगर (मध्य प्रदेश) में चौड़े पत्तों वाला पेड़—सलई (बास्वेलिया सेराटा)—इस्तेमाल किया जाता है।

३. तरल चुम्बक :

राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला ने तरल चुम्बक तैयार करने की दो विधियाँ निकाली हैं। इनमें एक विधि अधिक मात्रा में तरल चुम्बक बनाने के लिए उपयुक्त है और दूसरी इतनी सस्ती है कि इससे कम मात्रा में भी तरल चुम्बक बनाया जा सकता है।

अनुमान है कि इसका कारखाना स्थापित करने में ८,००० रु० खर्च होंगे, जहाँ प्रति मास १,००० पौंड तरल चुम्बक बन सकेगा। इसका मूल्य ४ रु० गैलन से अधिक नहीं पड़ेगा, जबकि विदेशों से मंगाने पर इसका छः गुना मूल्य देना पड़ता है।

देश में धातु-शोधन और इंजीनियरी उद्योगों में प्रति वर्ष लगभग ८,००० गैलन तरल चुम्बक खर्च होता है। यह सब विदेशों से मंगाया जाता है।

अनुमान है कि उद्योगों के बढ़ने से तीसरी योजना में हर साल १२,००० गैलन तरल चुम्बक की आवश्यकता होने लगेगी।

तरल चुम्बक, लोहा, इस्पात, निकेल तथा कोबाल्ट मिश्रण की शुद्धता जांचने के लिये काम आता है। इससे धातु की उन दरारों तथा अशुद्धियों का पता चल जाता है, जो सामान्यतः यंत्रों से नहीं दिखाई देतीं। इसलिए लोहा, इस्पात, मशीन और मशीनी औजार, रसायन, मोटर-गाड़ी, साइकिल, विमान, बाल और रालर बियरिंग, मोटरकार और डीजल इंजन, छुरी-कांटा, जहाज और रेलवे उद्योगों में तरल चुम्बक का प्रयोग होता है।

४. इथाइल एसीटेट और एसीटोन प्रणाली से चीनी

कार्बनिक घोलों की सहायता से गन्ने के रस से चीनी तैयार करने की नयी विधि निकाली गयी है। यह विधि बहुत सरल और सस्ती है तथा इससे चीनी के साथ-साथ क्लोरोफिल, गन्ने का मोम और ग्लूकोस का रस भी निकल आता है।

पहले गन्ने के रस को वुटाइल एलकोहल अथवा इथाइल एसीटेट में से प्रविष्ट किया जाता है और फिर एसीटोन से। इससे रस का पूरा सुक्रोज तल पर जमा हो जाता है और शीरा तैयार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

इस प्रणाली में केवल तीन मुख्य क्रियायें करनी पड़ती हैं। १० मिनट में ही रस की अशुद्धियाँ अलग हो जाती हैं और वह साफ तथा शुद्ध हो जाता है। इसके बाद १५-२० मिनट में सुक्रोस तैयार हो जाता है और क्लोरोफिल मोम तथा ग्लूकोस जैसे मूल्यवान पदार्थ निकल आते हैं।

इसमें प्रयुक्त घोल इथाइल एसीटेट, एसीटोन आदि सस्ते और सुलभ होते हैं। चीनी बनाने के बाद इन घोलों को फिर से शुद्ध करके प्रयोग किया जा सकता है।

इस नयी प्रणाली के फलस्वरूप अब चूना, कार्बन डाइ आक्साइड, सलफर डाई आक्साइड, सल्फर, फासफेट, हड्डी का चूरा आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती और वाष्पन-पात्रों तथा निर्वात कड़ोहा की भी आवश्यकता नहीं रहेगी।

५. अपना मूर्तिपट स्वयं देखिए : डा० रमन की नयी खोज :

डा० सी० वी० रमन ने एक ऐसी विधि निकाली है जिससे हरेक व्यक्ति अपनी आँख के पिछले पर्दे, मूर्तिपट (रेटिना), के प्रत्येक भाग को और रंगीन वस्तुएँ देखते समय उनकी गतियों को स्वयं देख सकता है।

इसमें किसी भी प्रकार के यंत्र की आवश्यकता नहीं पड़ती। पहले व्यक्ति को एक तेज प्रकाश वाले कमरे में बैठा दिया जाता है और उनके सामने पर्दा लगा दिया जाता है। फिर वह एक रंगीन कांच (फिल्टर) को आँख से लगाकर देर तक पर्दे पर देखता है। फिर कांच को एकाएक हटा दिया जाता है और तब व्यक्ति पर्दे पर अपने ही मूर्तिपट का बड़ा प्रतिबिम्ब देखने लगता है। इसमें उसे मुख्यतः आँख का प्रतिबिम्ब और उसमें उसे (फोविया) तथा केन्द्र बिन्दु दिखायी देता है।

गर्त, आँख के मूर्तिपट का प्रमुख अंग है। इसका व्यास लगभग एक मिलीमीटर होता है और जब हम कोई वस्तु देखते हैं, तब उसकी प्रतिच्छाया गर्त पर पड़ती है। इसी से हम चीजों की विशेषताएँ देखते हैं और पुरानी देखी हुई वस्तुओं या व्यक्तियों आदि को पहचानते हैं।

इस विधि से पता चला है कि मूर्तिपट में तीन रंजक (पिगमेंट) होते हैं, जिनसे हम बैंगनी से लाल तक सातों रंग देखते हैं। एक रंजक से बैंगनी, नीलरंग (इंडिगो) और नीला, दूसरे से हरा और हरा पीला तथा तीसरे से लाल दिखाई देता है। पर तीसरे से

नारंगी और पीला भी दिखाई देता है और दूसरे रंजक के क्षेत्र के रंग भी ग्रहण कर लेता है।

६. रोशनी से चलने वाली खिलौना-बस :

रूसी वैज्ञानिकों ने एक खिलौना-बस बनाई है, जो बिना किसी ईंधन या बिजली के जमीन पर दौड़ती है। उसका विद्युत् इंजन बिजली से चलता है और यह बिजली उस रोशनी से पैदा होती है, तो बस की छत पर की सपाट चद्दर पर पड़ती है। चद्दर पर पड़ने वाली सूर्य की रोशनी या कृत्रिम रोशनी इतनी बिजली पैदा कर देती है, जो खिलौना-बस, बिजली के एक छोटे पंखे या एक छोटे रेडियो को भी सफलतापूर्वक चला सकती है।

इसमें उन्हीं सौर बैटरियाँ वाला सिद्धान्त प्रयुक्त होता है जो तीसरे स्पुतनिक के यंत्रों को चलाने के काम आता है। ये बैटरियाँ अपने ऊपर पड़ने वाले प्रकाश का ११ प्रतिशत विद्युत् में परिणत कर देती हैं। एक वर्ग गज प्लेट १२० वाट शक्ति उत्पन्न करता है।

७. बैकाल झील की आयु १ करोड़ वर्ष :

साइबेरिया की बैकाल झील संसार में मीठे पानी की सबसे बड़ी झील है और सबसे गहरी भी। इसका तल भाग दिन प्रतिदिन बैठता जा रहा है और इसकी गहराई बढ़ रही है। ३३६ नदियाँ अपना पानी लाकर इस झील में उंडेलती हैं, पर केवल एक नदी बाहर निकलती है—अंगोरा। इस महान झील को साइबेरिया निवासी बहुत पसन्द करते हैं। कवियों ने इसके विषय में सुन्दर और कोमल कविताएँ लिखी हैं। जारों के जमाने में राजनीतिक कैदियों को बैकाल के उस पार ले जाकर छोड़ देते थे, जहाँ से उनका लौट आना असम्भव हो जाता था। वैज्ञानिकों ने बैकाल में १०४० प्रकार के जीव-जंतु और ५०० प्रकार की वनस्पतियों का पता लगाया है। सामान्यतः बड़ी झीलों का जीवन १० से १५ हजार वर्ष का होता है। धीरे-धीरे वे छिछली होती जाती हैं। उनके पेंदे में मिट्टी जमा होती रहती है और दलदल बन जाती हैं या सूख जाती हैं। बैकाल इस बारे में अपवाद है। खोजों से इसकी आयु करीब १ करोड़ वर्ष कूती गई है।

८. यूरोप का सबसे बड़ा "बाइलर"

अजोव सागर के तट पर तगनरोग के एक कारखाने में योरोप के सबसे बड़े बाइलर का निर्माण किया जा रहा है जिसकी क्षमता ९५० टन भाप प्रति घण्टा होगी। यह बाइलर १३ मंजिली इमारत जितना ऊँचा होगा। ऊँची क्षमता होने पर भी यह कम खर्चीला होगा। अन्य बाइलरों की तुलना में यह कम ईंधन फूँकेगा। इस प्रकार के बाइलरों का प्रयोग उन विशाल तापज बिजलीघरों द्वारा किया जाएगा, जो सोवियत संघ में बनाये जा रहे हैं।

९. बिजली और सीमेण्ट का साथ-साथ उत्पादन :

रूसी वैज्ञानिकों ने एक ऐसी प्रक्रिया विकसित की है जिससे शक्ति-बिजली घरों में ज्वलनशील 'शेल' का ईंधन भरते समय बिजली और सीमेंट दोनों पैदा की जा सकें। ('शेल' एक प्रकार का पत्थर होता है जो सहज ही परतों में टूट जाता है।)

आधुनिक विधि से प्रायः एक-तिहाई शेल राख में परिणत हो जाता है; लेकिन नई प्रक्रिया में राख का समस्त खनिज कूड़ा शक्ति-घर में विशेष प्रकार से निर्मित भट्टियों में गला दिया जाएगा, जिससे फिर उच्चकोटि की पोर्टलैण्ड सीमेंट बनाई जा सकती है। किसी भी तापज शक्ति-घर द्वारा यह प्रक्रिया सस्ती सीमेण्ट उत्पादन करने के लिए प्रयुक्त की जा सकती है।

१. विज्ञान का यह अंक :

विज्ञान का प्रस्तुत अंक **साइंस कांग्रेस विशेषांक** के रूप में प्रकाशित हो रहा है। पिछले अंक में हमने साइंस कांग्रेस (१९६१) के अध्यक्ष डा० नील रत्नधर का परिचय पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया था। इस अंक में उनके अध्यक्षपदीय भाषण का हिन्दी रूपान्तर दे रहे हैं। डा० धर विज्ञान परिषद् के सभापति रह चुके हैं और अब भी उनकी कृपा परिषद् पर है। उन्होंने अपने भाषण को हिन्दी में अनूदित किये जाने की जो सहृदयता दिखाई है, उसके लिये हम उनके आभारी हैं। साइंस कांग्रेस के ४८ वर्ष के इतिहास में यह पहला सुअवसर है जब अध्यक्षपदीय भाषण को राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रकाशित करके अधिवेशन के अवसर पर वितरित किया गया। सम्पूर्ण विश्व के प्रतिनिधि-वैज्ञानिकों के समक्ष यह पहला प्रमाण है जिसके द्वारा हम हिन्दी को आधुनिकतम वैज्ञानिक विचारधारा की अभिव्यक्ति में समर्थ पाते हैं।

अध्यक्षपदीय भाषण के अत्यन्त विस्तृत कलेवर के होते हुये भी हमने पाठकों के समक्ष इसे उसी रूप में प्रेषित करने का साहस इसीलिये कर रहे हैं क्योंकि भाषण का विषय, "नाइट्रोजन समस्या", अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं सामयिक है। देश के अन्नोत्पादन बढ़ाने के लिये नाइट्रोजनीय उर्वरकों की विशेष आवश्यकता पड़ती है। सिंदरी के अमोनियम सलफेट कारखाने के द्वारा नाइट्रोजन-आवश्यकता की समस्त पूर्ति नहीं हो पाती। डा० धर नाइट्रोजन-समस्या पर विगत २५ वर्षों से महत्त्वपूर्ण शोध कार्य कर रहे हैं। प्रस्तुत भाषण में उन्होंने नाइट्रोजनीय उर्वरकों के गुण-दोषों का विस्तार से विवेचन किया है और उनके समुचित प्रयोग पर अपने विचार व्यक्त किये हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि 'विज्ञान' के पाठक इस विद्वतापूर्ण भाषण से पूर्णरूपेण लाभान्वित होंगे और इसकी सामग्री का उचित उपयोग करेंगे।

२. डा० थैकर का परिषद् भवन में स्वागत :

गत २४ दिसम्बर को १० बजे प्रातःकाल कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च के प्रबन्ध निर्देशक डा० एम० एस० थैकर ने विज्ञान परिषद भवन में पधारने का कष्ट किया। वे प्रयाग विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में भाषण देने के लिये पधारे थे।

डा० थैकर ने परिषद् भवन में आयोजित पुस्तक प्रदर्शिनी का अवलोकन किया। वे प्रदर्शिनी में रखी हुई उन अनेक विदेशी अनुसन्धान पत्रिकाओं से, जो विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका के विनिमय में प्राप्त होती हैं, अत्यन्त प्रभावित हुये।

जलपान गोष्ठी के उपरान्त अपने विचार व्यक्त करते हुये उन्होंने इस बात पर बल दिया कि परिषद् लोकोपयोगी स्तरीय वैज्ञानिक साहित्य का अधिकाधिक प्रकाशन करे। यहीं नहीं, उन्होंने यह भी सलाह दी कि समय-समय पर वैज्ञानिक विषयों पर विद्वानों द्वारा हिन्दी में भाषण हुआ करें। यदि ये भाषण देहातों में जाकर दिये जायें, तो और भी अच्छा हो। इस प्रसंग में उन्होंने रूस के बालकों में विज्ञान के प्रति बढ़ते अनुराग की चर्चा की और यह प्रस्ताव रखा कि विज्ञान परिषद् ऐसे आयोजनों को प्रोत्साहन प्रदान करे जिसके द्वारा हमारी सन्तानें स्वयमेव कुछ कर दिखाने की क्षमता रखें। अन्त में उन्होंने यह आश्वासन दिया कि वे उपयोगी वैज्ञानिक साहित्य के प्रकाशन में सभी प्रकार से सहयोग देने का प्रयत्न करेंगे।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिगराम भार्गव	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगाशंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रामेश वेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकरराव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण—लेखक एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर	२ रुपया
१०—कलम पैबन्द—श्री शंकरराव जोशी	२ रुपया
११—जिल्दसाजी—श्री सत्य जीवन वर्मा	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद	१ रुपया
१३—वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद, वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० न०पै०
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपया
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम खुगड़ान	३ रुपया
१९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
२०—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रु० ५० न०पै०
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकरराव जोशी	३ रु० ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनिया—श्री रामेश वेदी	४ रुपया
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्र नाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान शालायें	२ रुपया
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
२६—रेल इंजन, परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया
२७—भारतीय कृषि का विकास—डा० शिवगोपाल मिश्र	५ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जानेताति जीवन्ति विज्ञान प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ९२ | २०१७ विक्र० माघ १८८२ शाकाब्द फरवरी १९६१ | संख्या ५

प्राचीन भारतीय सृष्टि-विद्या—२.

—माया प्रसाद त्रिपाठी

पहले यह कहा जा चुका है कि अंडे की खोल से आकाश का निर्माण माना गया है। शतपथ ब्राह्मण एक दूसरे स्थल पर ब्रह्माण्ड को कूर्माकार कहता है। "उस (कूर्म) का अधः कपाल यह संसार है, क्योंकि वह कपाल बहुत सुदृढ़ रूप से प्रस्थापित है, और यह संसार सुदृढ़ रूप से प्रस्थापित है; और वह ऊर्ध्वकपाल अग्रस्थ है, क्योंकि वह औंधा अवस्थित है, और उसी प्रकार यह आकाश भी औंधा है, और जो कुछ मध्य में है वह वायुमंडल है: निस्संदेह वह (कूर्म) ब्रह्माण्ड की आकृति का निरूपण है।"[२४]

यह बड़ी अद्भुत बात है कि ब्रह्मांड तथा आकाश के गोलकाकार या अर्द्धगोलाकार होने की यह कल्पना या भावना सर जेम्स जीन्स के ब्रह्मांड वर्णन से बहुत मिलती है। जीन्स महोदय कहते हैं, "संक्षेप में, सरल और परिचित अभिधानों के प्रयोग द्वारा सापेक्षवाद सिद्धान्त द्वारा द्योतित नवीन ब्रह्मांड के स्वरूप का सर्वोत्कृष्ट वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है कि वह साबुन के एक बुलबुले के सदृश है जिसके तल पर उतार-चढ़ाव तथा वैषम्य हैं। ब्रह्मांड साबुन के बुलबुले का अंतरंग भाग नहीं है, प्रत्युत उसका ऊपरी तल ही ब्रह्मांड है......।"[२५]

छान्दोग्य-उपनिषद् में ब्रह्मांड की आकृति दूसरे प्रकार की बताई गई है, यद्यपि वह सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण है। उसमें ब्रह्मांड को एक पिटारी या संदूक के आकार का बताया गया है, "पिटारी के मध्य भाग में वायुमंडल है, पृथ्वी इसका तलस्थ भाग है। यह पिटारी अनश्वर है। अंतरिक्ष की दिशाएँ उसके कोने हैं तथा आकाश उसका ऊपरी ढक्कन है। वह संपत्ति से भरी हुई है, उसमें ब्रह्मांड की सभी वस्तुएँ भरी हुई हैं।[२६]

अधोलिखित पंक्तियाँ पुनः दिखाती हैं कि पृथ्वी आरंभ में किसी अन्य सत्ता या पिंड का अंग थी—

२४. ७. ५. १. २।
२५. मिस्टीरियस युनिवर्स, पृ० १३९ (१९३८ संस्करण)
२६. ३. १५. १।

"...आरंभ में ये दोनों लोक (दिव या आकाश तथा पृथ्वी) एक थे; और जब दोनों पृथक् हुए तो अंतरालस्थ भाग वायुमंडल (अंतरिक्ष) बन गया; उन्होंने कहा कि मध्य भाग में "इक्ष" (दृश्य वस्तुएँ) आ गईं, इससे अंतरिक्ष (वायुमंडल) उसकी संज्ञा हुई।"[२७]

जल में उत्पन्न होने वाले हिरण्यांड की वैदिक भावना की यहाँ भी पुनरावृत्ति की गई है।[२८] ब्राह्मणों में सबसे पीछे रचे गये गोपक-ब्राह्मण में प्रसंग आया है कि समुद्र की उत्पत्ति ब्रह्मा[२९] से हुई। ब्रह्मा ने सभी लोकों, सभी निवासियों, सभी प्राणियों एवं समस्त आकाशीय पिंडों की रचना की।[३०] सर्वशक्तिमान् ने पृथ्वी, अग्नि, वनस्पति, पूर्व और वसंत ऋतु की भी सृष्टि की।[३१] गोपथ ब्राह्मण (१.१८-१९-२०) में सृष्टि-उत्पत्ति के संबंध में कुछ रहस्यवादी भावनाएँ भी व्यक्त की गई हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद् ने सृष्टि-उत्पत्ति के संबंध में कुछ व्यवस्थित वृत्त प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं[३२]——

"तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात् पुरुषः"

'उससे या उस अग्रस्थ सत्ता से आकाश उत्पन्न हुआ; आकाश से वायु; वायु से अग्नि; अग्नि से जल; जल से पृथ्वी; पृथ्वी से वनस्पति; वनस्पति से अन्न; तथा अन्न से पुरुष।"

प्रश्न-उपनिषद् का कथन है, "यह मूर्तकाल समस्त जीवों का महासागर है। जगद्विधाता सविता इसी में अवस्थित है; उसीसे चन्द्र, तारकों, ग्रहों, संवत्सर तथा अन्य वस्तुओं का जन्म हुआ।"[३३]

शुक्ल-यजुर्वेद के पैंगी उपनिषद् में (बौद्धों से पूर्व) विविध तत्वों से सृष्टि-रचना बताई गई है। यह बात इसी प्रकार के वाङ्मय की परम्परा से सर्वथा भिन्न है। "सृष्टि-रचना की कामना से जगद्धाता ने तमोगुण का आश्रय लेकर सूक्ष्म तत्वों को स्थूल तत्वों में परिणत करने की इच्छा की। सृष्टि के समय मापित तत्वों में से प्रत्येक को दो भागों में विभक्त कर और फिर प्रत्येक (प्रथम समान भाग) को चार समान भागों में विभक्त कर तथा चारों उप-विभक्त समान भागों में से प्रत्येक को (द्वितीय) चारों समान भागों में से प्रत्येक के साथ संयुक्त कर इस प्रकार पंचकों की पाँच राशियाँ बनाईं। फिर इस प्रकार पंचीकृत तत्वों द्वारा उसने कोटि कोटि ब्रह्मांडों, प्रत्येक ब्रह्मांड के लिए उचित चौदह भुवनों एवं प्रत्येक भुवन के लिए उचित गोलकाकार स्थूल पिंडों का निर्माण किया।"[३४]

वेदों और ब्राह्मणों की सृष्टि-उत्पत्ति की भावना का विवेचन करते हुए प्रो० **विंटरनिट्ज** कहते हैं, "सामान्यतया वेदों और ब्राह्मणों के सम्बन्ध में एक अत्यन्त ध्यान देने योग्य बात यह है कि उनमें सृष्टि-उत्पत्ति-सम्बन्धी कोई ऐसा प्रधान उपाख्यान नहीं है जिसे समस्त भारत में औत्सर्गिक प्रतिष्ठा और मान्यता प्राप्त हो, जैसा यूरोप में बाइबिल उपाख्यान को औत्सर्गिक समादर प्राप्त है। वेदों और ब्राह्मणों में सृष्टि-उत्पत्ति के सम्बन्ध में बहुसंख्यक उपाख्यान दिए हुए हैं। इन उपाख्यानों की भावनाओं एवं विचारों में परस्पर बहुत भेद पाया जाता है—उनमें सामञ्जस्य का सर्वथा अभाव दृष्टिगोचर होता है।"[३५]

किन्तु उक्त कथन केवल अंशतः सत्य प्रतीत होता है। जो कुछ पहले निरूपित किया जा चुका है उससे और वैदिक वाङ्मय के और गहन अनुशीलन

२७. ७. १. २. २३।
२८. श० ब्रा० ११. १. ६.१-२-३।
२९. १. ३।
३०. १.१६। ३१. १.१७।
३२. (ब्रह्मवल्ली भाग १) २.१।
३३. ६.१७। ३४. १.७।
३५. ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर, भाग-१, पृ० २२२।

से अन्ततोगत्वा यही दिखाई पड़ता है कि उपर्युक्त मतभेदों में एक विचित्र प्रकार की एकता व्याप्त है। दूसरे शब्दों में—यद्यपि वृत्तान्तों के विशद विस्तार में पर्याप्त अन्तर है किन्तु उनकी तात्विक एकता कहीं उच्छिन्न नहीं होने पाई है। कुछ स्थलों को छोड़कर प्रायः सर्वत्र जल से उत्पन्न हिरण्यगर्भ की भावना का वर्णन आया है। हाँ, यह अवश्य सत्य है कि सुविशाल वैदिक वाङ्मय से सृष्टि-उत्पत्ति एवं सृष्टि-विद्या की भावनाओं में कालानुक्रम के अनुसार विकास बहुत ही कम दृष्टिगत होता है; प्रत्युत कहीं-कहीं तो ह्रासोन्मुखी विकृति स्पष्ट परिलक्षित होती है। इस संबंध में **वाली** महोदय कहते हैं, "अन्य वेदों में, और यहाँ तक कि ब्राह्मणों में भी सृष्टि-विद्या सम्बन्धी जो भावनाएँ गुम्फित मिलती हैं, वे यत्र-तत्र ऋग्वेदमें अभिव्यक्त तत्सम्बन्धी भावनाओं से भी अपरिमार्जित हैं।"[३६]

बाल्मीकि रामायण

द्वितीय और सप्तम कांड में जहाँ सृष्टि-उत्पत्ति के विषय की चर्चा आई है (२-११०-३-४-५) यह कहा गया है, "सर्वत्र जल था, उसमें पृथ्वी का निर्माण हुआ। तदनंतर सभी देवताओं सहित स्वयंभू ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन्होंने सूकर रूप धारण कर पृथ्वी को ऊपर उठाया और अपने आत्म दमनशील पुत्रों सहित अन्य वस्तुओं की सृष्टि की। शाश्वत और अनश्वर ब्रह्मा आकाश से उत्पन्न हुए थे।"[३७] यहाँ भारतीयों की उस धारणा का उल्लेख है जिसके अनुसार सृष्टि-रचना का कार्य जल से आरम्भ हुआ था। यह बात ऋग्वेद में भी कही गई है (१०.८२-१ तथा १०.१२१.१)। सूकर के उपाख्यानात्मक परिनिर्देश का यह अर्थ लगाना उचित ही होगा कि वह पृथ्वी पर प्राणि-जगत् के विकास की ओर किंचित अस्पष्ट इंगित करता है, जिसे अर्वाचीन युग से 'विकासवाद' की संज्ञा दी जाती है। अन्तिम वाक्य घोषित करता है कि सृष्टि रचना का आरम्भ सत् और असत्-शून्य या आकाश से युगपत् हुआ था। इसमें ऋग्वेद के दशम मंडल के ७२, १२९ तथा अन्य सूक्तों की छाया मिलती है।

काण्ड ७·१०४.२-३-४ में सृष्टि-उत्पत्ति के विषय में कुछ और बातें मिलती हैं। सर्वविनाशन काल (समय) राम से कहता है, "आपने अपने पूर्व जन्म में माया के संयोग से मुझे उत्पन्न किया था; मैं सबका विनाश करने वाला काल हूँ। प्रजापति ब्रह्मा ने कहा है कि आपने त्रिलोक की रक्षा का वचन दिया था। पहले जब आप अपनी माया से समस्त प्राणियों का संहार कर समुद्र-जल में सोए हुए थे तो मैं उत्पन्न हुआ था। तत्पश्चात् आपने जल में सर्पराज के रूप में रहने वाले महाकाय अनंत की सृष्टि की।"[३८] इन पंक्तियों से चार बातें परिलक्षित होती हैं—१. सृष्टि का उद्भव और अस्तित्व एक चक्र का अनगमन करता है; २. सब के आरम्भ में जल था; ३. अनन्त की सृष्टि; ४. एक मूर्त पदार्थ वा वस्तु के एक परिणाह (dimension) के रूप में समय वा काल की सृष्टि। ये छंद (२, ३, ४) उपर्युक्त कांड २ के छंदों से कुछ उत्कृष्ट प्रतीत होते हैं। कांड ७·७२ में भी सृष्टि-उत्पत्ति की पृष्ठभूमि के बारे में कुछ चर्चा है। परन्तु सब मिलाकर यह कहा जा सकता है कि बाल्मीकि रामायण में सृष्टि-उत्पत्ति का जो वर्णन दिया हुआ है वह सृष्टि उत्पत्ति के भारतीय इतिवृत्त के पूर्व विकास की परम्परा में अत्यन्त सामान्य श्रेणी का है, उसे केवल चलताऊ कहा जा सकता है। ऋग्वेद में दिया हुआ सृष्टि-उत्पत्ति का वर्णन रामायण से कहीं उत्कृष्ट है।

३६. दो कास्मॉलोजो ऑव दा ऋग्वेदा।
३७. आंग्लानुवाद, मन्मथनाथ दत्त, पृ० ४८१।
३८. मन्मथनाथ दत्त, पृ० १९२१।

महाभारत

सृष्टि-उत्पत्ति और सृष्टि-विद्या के क्षेत्र में महाभारत ऋग्वेदकाल से चली आने वाली परम्परा का ही अनुसरण करता है। महाभारत की सृष्टि-विद्या आवश्यकता से कहीं अधिक संक्षिप्त है तथा उसका निरूपण भी अत्यन्त सामान्य है। आदि पर्व के आरम्भ में ही कहा गया है कि सर्वप्रथम एक महादिव्य महान् अंड की उत्पत्ति हुई थी, उसीसे कालक्रम से चर, अचर, जल, स्थल, देश एवं काल की उत्पत्ति हुई।[३९] महाभारत का पूरकसा अंश तथा पुराण हरिवंश भी हिरण्यगर्भ से ही आकाश, पृथ्वी, दिशाओं, काल, विजली, मेघ, इन्द्रधनुष, पक्षियों, देवों, दानवों, मानवों आदि का उद्भव बतलाता है।[४०]

मनुस्मृति

मनुस्मृति[४१] में सृष्टि-उत्पत्ति का वर्णन कुछ विशद रूप में दिया हुआ है। पहले हिरण्यगर्भ की रचना की चर्चा आती है। हिरण्यगर्भ को "सूर्य के समान समुद्भासित" कहा गया है। कदाचित् यह इस बात की ओर इंगित करता है कि सृष्टि का उद्भव किसी अतिशय भास्वर पिंड से वा उसके साथ हुआ था। तदनन्तर हिरण्यांड दो अर्द्ध भागों में विभक्त हो गया जिससे आकाश तथा पृथ्वी बने। साथ ही मध्य भाग में अंतरिक्ष, आठों दिशाएँ और जल के चिरन्तन आवास की रचना हुई। प्रथम अध्याय के छंद १६ से २० तथा २७ में तत्वों के संयुक्त होने की बात कही गई है, जो पैंगी उपनिषद् के वर्णन से बहुत मिलती है, जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है। तत्पश्चात् अग्नि, वायु तथा सूर्य से काल, काल-खंडों, नक्षत्रों, ग्रहों, नदियों, समुद्रों, पर्वतों, मैदानों, असम भूमियों की उत्पत्ति हुई। इनके पीछे यक्ष, राक्षस, पिशाच, गंधर्व, सर्प, देवताओं, पक्षिदेवों, विद्युत्, मेघ, उल्का, पुच्छल तारों, आकाश-ज्योतियों, बानरों, मछलियों, पक्षियों, पशुओं, मानवों, मांसभक्षी जीवों तथा कीटादि का उद्भव हुआ। इस प्रकार समस्त स्थावरों तथा जंगमों की सृष्टि हुई। इसी अध्याय के १९वें छंद में कहा गया है कि यह संसार अनश्वर से नश्वर के रूप में आविर्भूत हुआ। यह कथन यह प्रतिपादित करता है कि तत्व अनश्वर है।

इस प्रकार यह सर्वथा स्पष्ट है कि मनुस्मृति की सृष्टि उत्पत्ति की भावनाएँ प्राचीन भारत के अपने समसामयिक साहित्य में सर्वोत्कृष्ट कोटि की और सर्वाधिक संतोषजनक हैं। यह यथार्थ है कि उनमें वैदिक परम्परा का पर्याप्त हाथ है।

दर्शन ग्रंथ

वैशेषिक तथा सांख्य दर्शन में भी सृष्टि-उत्पत्ति का किंचित् परिनिर्देश आया है। बौद्धों के पूर्व कणाद का वैशेषिक सूचित करता है कि लोक की उत्पत्ति अणुओं के संयोजन से होती है। अणुओं के संयोग से द्वयणुक तथा द्व्यणुकों के संयोग से त्रसरेणु बनते हैं। और "काल में व्याप्त घटनाओं की श्रृंखला में लोक का अंतरिक्ष में विस्तार होता है। देश और काल केवल भावनाओं में विभक्त किए जा सकते हैं, अणुओं में नहीं।"[४२] कणाद ने सृष्टि-उत्पत्ति का पूरा-पूरा वर्णन नहीं किया है। उनके ग्रंथ के अध्याय दो, चार, पाँच, सात तथा दश के सूत्रों में उसका केवल परिनिर्देश-मात्र मिलता है। ये सूत्र यह भी सिद्ध कर देते हैं कि कणाद ने सृष्टि-उत्पत्ति की औसर्गिक परम्परागत भावनाओं की ही मान्यता प्रदान की थी।

कपिल के **सांख्यसूत्र** (४०० ई० पू०) के सृष्टि-उत्पत्ति-सम्बन्धी परिनिर्देशों में विकासवाद,[४३] पदार्थों की अनश्वरता[४४] तथा सृष्टि की चक्रात्मकता[४५] एवं संततता[४६] की भावना दृष्टिगोचर होती है। 'सांख्य-सूत्र' का काण्ड २ सूचित करता है कि किस प्रकार प्राथमिक तत्व से सृष्टि की अवतारणा होती है। तृतीय

३९. १.१. २९-३७ (मन्मथनाथ दत्त, पृ० २)।
४०. १.१. २९-३२, ३९-४०।
४१. १.८-२५, २७, ३४-४१।
४२. दी क्लासिकल एज (सम्पादक आर० सी० मजूमदार) पृष्ठ ६०।
४३. १.९६। ४४. १.१२१। ४५. २.२। ४६. २.४।

कांड में स्वर्गलोक, नरकलोक, तथा मृत्युलोक[४७] की रचना की चर्चा है। पंचम-कांड का सूत्र १५ कहता है कि सृष्टि का आदि भी है।

पुराण

सृष्टि-उत्पत्ति या सर्ग पुराणों के पंच-लक्षण में आता है। सभी पुराणों में, बृहन्नारदीय और वामन पुराण को छोड़कर, इसका वर्णन पाया जाता है। प्रायः सभी पुराणों में सृष्टि का उद्भव जल तथा हिरण्यगर्भ से बताया गया है। इस प्रसंग में अन्य परम्परागत बातों का भी वर्णन है। औत्सर्गिक रूप से प्रायः सभी पुराणों के सृष्टि-उत्पत्ति के वर्णन प्रायः एक से हैं।

यह कुछ विचित्र बात है कि लिंग-पुराण की सृष्टि-उत्पत्ति की भावनाएँ अत्यन्त प्राचीन और प्रतिष्ठित परम्परागत वृत्तों से बहुत कुछ भिन्न हैं। परन्तु यह भेद बहुत महत्वपूर्ण है। परम्परा में सृष्टि का उद्भव केवल एक हिरण्यांड से बताया गया है। लिंग-पुराण कहता है कि सृष्टि की उत्पत्ति केवल एक हिरण्यांड से नहीं, प्रत्युत वैसे कई हिरण्यांडों से हुई—प्रत्येक हिरण्यांड से चौदह-चौदह भुवनों की अवतारणा हुई—"अण्डेष्वेतेषु सर्वेषु भुवनानि चतुर्दश[४८]।

स्कन्द पुराण के महेश्वर खंड में भी सृष्टि-उत्पत्ति का जो वर्णन है, उसकी भी कुछ अपनी विशेषता है।[४९] उसके अनुसार सृष्टि का आविर्भाव आदितः चौबीस तत्वों से होता है: तीन गुण + पंचभूत + पंच विषय + दशेन्द्रियगण + मन। सर्व प्रथम ये बुदबुदों में रूपान्तरित हुए और उनसे सुन्दर ब्रह्माण्ड का जन्म हुआ। ब्रह्माण्ड से त्रैलोक्य (द्यौर्लोक, पृथ्वी तथा नरक लोक) का उद्भव हुआ। अनुशीलन के दृष्टिकोण से विष्णु, भागवत्, मारकण्डेय, भविष्य, स्कन्द, मत्स्य तथा ब्रह्माण्ड पुराण के सृष्टि-उत्पत्ति के वर्णन अधिक महत्वपूर्ण हैं। ये सामान्यतया औत्सर्गिक विचार-परम्परा को अभिव्यक्त करते हैं।

विष्णु पुराण में सृष्टि-उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार दिया हुआ है:

"महत् (वुद्धि) से आरंभ होने वाले तथा विशेष (नवशाश्वत पदार्थ-आत्मा, काल, स्थान, आकाश तथा पंच अणु-पृथ्वी, जल, प्रकाश, वायु एवं मनस्) में पर्यवसित उपादानों से एक अण्ड की उत्पत्ति हुई। यह अंड जल बुद्-बुद् के सदृश और तत्वमय था। क्रमशः उसमें परिग्गह आया—और उस अंडे में पर्वत, द्वीप, समुद्र, प्रकाश, तथा बहुसंख्यक लोक, देवता, असुर एवं मानव उत्पन्न हुए। फिर वह अंडा, जल, अग्नि, वायु, आकाश तथा भूतादि (तत्वों के उत्पादकों) से दस बार घिरा हुआ था; तथा भूतादि उसी प्रकार महत् (वुद्धि) से घिरा हुआ था। महत् उन सबके सहित अव्यक्त (अरूप पदार्थ) से घिरा हुआ था। जिस प्रकार नारियल विविध प्रकार की खोलों से आवृत रहता है, उसी प्रकार वह अंड अनेक प्राकृतिक आवरणों से आवृत था।"[४९]

इस पुराण के अनुसार आरम्भ में समस्त ब्रह्माण्ड एकार्णवी अवस्था में था।[५०] तब परम देवता ब्रह्मा

---

४७. ३.४८-४९-५०।

४८. ५३-४८। विष्णु पुराण में भी कहा गया गया है कि प्रकृति में अनंत लोकों तथा उपर्युक्त प्रकार के कोटि-कोटि ब्रह्मांडों की सत्ता है (अंश २, अध्याय ७, श्लोक २६-२७)। किन्तु आदि सृष्टि के वर्णन में वह केवल एक और एक हिरण्यगर्भ का उल्लेख करता है (१.२.५४)। १.२-५७ की विष्णुचित्तीय टीका के अनुसार। और दे० "हिरणगर्भो ब्रह्माण्डभूतो ब्रह्मा" अंश ४, अ० १, पद ५।

मन्मथनाथ दत्त ने प्रो० विलसन के आधार पर, उपर्युक्त श्लोक २६ तथा २७ का अनुवाद इस प्रकार किया है "This Prakrti, O Muni, is the source of the endless universe, and of thousands, millions and thousand of millions of mundane eggs."

४९. ३७.६ से १५ तक।

५०. विष्णु पुराण १.२.५४-६०, मन्मथ० पृ० ९-१०। ५१क. १.४.७।

ने सूकर रूप धारण कर पृथ्वी या ऊपर उठाकोऔर उसे विशाल समुद्र से प्रस्थापित किया। पृथ्वी विशाल नौका सी समुद्र पर तिरती रही और अपने विस्तार के कारण डूब न पाई। तदनंतर उस पर स्थल-रूप रेखा का निर्माण हुआ।[५१ख] इस पुराण ने समस्त ब्रह्माण्ड को तीन लोकों (ऊर्ध्व, मध्य और अधः) तथा चौदह भुवनों में विभक्त किया है—पृथ्वी सहित सात भुवन ऊपर तथा सात पाताल नीचे। इनके अतिरिक्त बहुसंख्यक नरकों का भी अस्तित्व बताया गया है।[५१ग]

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार भी हिरण्यगर्भ में ही विश्व की अवस्थिति है। इस सम्बन्ध में इस पुराण की ये पंक्तियां अवलोकनीय हैं :—

"वह अंड समस्त चराचरों सहित त्रैलोक्य को आवृत किए हुए था। मेरु भी उसी से उत्पन्न हुआ, फिर अन्य पर्वतों की उत्पत्ति हुई; ब्रह्मा के अधिवास हिरण्यगर्भ के भीतर जो तरल पदार्थ था वह समुद्र बन गया। उसी अंडे में इस समस्त विश्व, सुर, असुर मानव, महाद्वीप, द्वीप, पर्वत, सागर तथा ज्योतिपुंजों की सत्ता थी।"[५२]

मत्स्य पुराण कहता है, "स्वयंभू ब्रह्मा ने विशाल ब्रह्माण्ड को दो भागों में विभक्त कर द्यौर्लोक, पृथ्वी, आकाश (अंतरिक्ष) तथा दिशाओं की रचना की। ब्रह्माण्ड का ऊर्ध्व भाग द्यौर्लोक तथा निम्न भाग पृथ्वी बन गया।[५३] "तत्पश्चात् मेघ ....विद्युत आदि की सृष्टि हुई।"[५४]

ब्रह्माण्ड पुराण पूर्ण भाग के तृतीय अध्याय में से भी अखिल विश्व, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों, तारों, ग्रहों, पृथ्वी, वायुमंडल तथा अन्यान्य सभी को हिरण्यगर्भ से ही उत्पन्न माना गया है।[५५]

विष्णु-पुराण में मत्स्य, कूर्म, सूकर प्रभृति अवतारों का संकीर्तन आया है।[५६] अन्य पुराणों में भी इन अवतारों का वर्णन है। ये सभी सृष्टि-उत्पत्ति के ढाँचे में प्राणि-जगत् के क्रमिक विकास को परिलक्षित करते हैं।

पुराणों में वर्णित सृष्टि-उत्पत्ति के पर्यालोचन से विदित होता है कि यद्यपि उनमें वैदिक भावनाओं के बीज वर्तमान हैं, किन्तु वे विशद विवेचना में मनुस्मृति के अधिक समीप हैं। उन्होंने परम्परागत भावनाओं में कुछ सुधार करने की भी चेष्टा की है। इस प्रकार एक विकासश्रृंखला के परिणामस्वरूप पुराणों के उक्त वर्णन में कुछ अधिक यथार्थता आ गई है। इन वर्णनों में सांख्य दर्शन की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती है। विकासवाद सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के अतिरिक्त वे यह भी घोषित करते दिखाई देते हैं कि स्थूल तत्वों के संयोग से ब्रह्माण्ड की सृष्टि होती है। और यह ब्रह्माण्ड कैथे के बीजों के समान एक ब्रह्मकटाह से आवृत है—

"एतदण्डकटाहेन तिर्यगूर्ध्वममधस्तथा
कपित्थस्य यथा बीजं सर्वतो वै समावृतम्"।।[५७]
ब्रह्माण्डं संवृतं ह्येतत्कटाहेन समन्ततः
कपित्थस्य यथा बीजं कटाहेन सुसंवृतम्।"[५७क]

५१ख. १.४.४५ से ४९। ५१ग. दे० पृथ्वी, पाताल, ऊर्ध्वलोक तथा नरकों के वर्णन के लिए क्रमशः २.१-४; २.५; २.७ तथा २.६।

५२. ४५.६६-६७। ५३. २३१-३२। ५४. २.३३-३४।

५५. ब्रह्मवैवर्त पुराण में एक पंक्ति इस प्रकार आती है, "उत्ससर्ज च कोपेन ब्रह्माण्डंगोलके जले (प्रकृति खण्ड २.५०)"। यह समस्त ब्रह्माण्ड की किसी उदग्र गति को द्योतित करती है। आधुनिक सृष्टि-उत्पत्ति के वर्णन में भी एक ऐसी भावना पाई जाती है (दे० फिजिकल बेसिस आफ जागरफी-उल्डरिज एन्ड मारगन। कुछ लोगों के मतानुसार यहाँ "अंड" शब्द नीहारिका (Nebula) का वाचक है।

५६. १.४.८। ५७. ब्रह्मपुराण २३.२२। ५७क. स्कन्द पुराण, महेश्वर खंड, अध्याय ३९, श्लोक ४०।

इस सम्बन्ध में यह बड़ी रोचक बात है कि आधुनिक विज्ञान भी यही सिद्ध करता है कि यह समस्त ब्रह्माण्ड एक पूर्ण एकाई है, जिसमें सभी अवयव, दृश्य वस्तुएँ तथा प्रक्रियाएँ अभिरूप से परस्पर सम्बद्ध हैं। प्राचीन भारतीय विचारों तथा आधुनिक विज्ञान की भावनाओं का यह सामञ्जस्य तत्कालीन भारतीयों के लिए सचमुच प्रशंसा की बात है और वह उन लोगों की उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचायक है।

लिंग पुराण में कई हिरण्यांडों तथा कई "चतुर्दश भुवनों" की जो बात कही गई है, वह उक्त पुराण की कोई नई उद्भावना नहीं है। अखिल विश्व में अनेक ब्रह्माण्डों की सत्ता की बात पुराणों से पूर्व पैंगी उपनिषद् में पहले ही दृष्टिगोचर होती है। यह भावना अर्वाचीन ज्योतिष के मत से भी मेल खाती है, जिसके अनुसार अन्तरिक्ष में केवल एक सौर-मंडल नहीं, प्रत्युत कई सौर-मंडल हैं। यह और भी ध्यान देने योग्य है कि सूर्य की अनेकता की बात ऋग्वेद[५८], तैत्तिरीय संहिता[५९] तथा ब्राह्मणों में भी कही गई है। स्कन्द पुराण में बुद्बुदों को ब्रह्माण्ड का जो आद्य कारण बताया गया है, वह अंशतः सृष्टि-उत्पत्ति के आधुनिक ग्रह-लव सिद्धान्त (Planetesimal Theory) तथा अंशतः नीहारिका सिद्धान्त (Nebular Theory) से मिलता है।[६०]

५८. ९.११४.३।

५९. १.५.४.४ तथा ७.३.४.१।

६०. दे० फिजिकल बेसिस आफ जागरफी-उल्डरिज ऐण्ड मारगन।

किलेटीकरण

हरिहर मिश्र

१. किलेटीकरण और किलेट यौगिक

संयोजकता के आधुनिक नियमों के अनुसार किसी भी अणु के परमाणु परस्पर ऋणाणुओं द्वारा बंधे रहते हैं। ऋणाणु वे विद्युत कण हैं जो किसी परमाणु को चारों ओर से घेरे रहते हैं। किसी भी अणु के किन्हीं दो परमाणुओं के मध्य बन्धन दो प्रकार से स्थापित हो सकता है :

१. एक परमाणु के ऋणाणुओं में से एक या अधिक उसमें से स्थानान्तरित होकर दूसरे परमाणु में स्थान ग्रहण कर लें। ऋणाणु या ऋणाणुओं के निकल जाने या आ जाने के कारण परमाण अपनी वैद्युत उदासीनता खो देता है और **आयन** कहलाता है। ऋणाणु जिस परमाणु में कम हो जाते हैं वह **धनायन** कहलाता है और जिसमें उनकी संख्या बढ़ जाती है वह **ऋणायन**। किसी भी अणु में धनायन और ऋणायन अपने विपरीत विद्युत आवेशों के कारण वैद्युत आकर्षण की शक्ति द्वारा बँधे रहते हैं। इस प्रकार के बन्धन को **वैद्युत बन्धन** (electrovalent linkage) कहते हैं और वह यौगिक जिसमें यह बन्धन पाया जाता है **वैद्युतीय यौगिक** कहलाता है, जैसे NaCl, $MgCl_2$, आदि।

२. एक अन्य विधि द्वारा भी किसी अणु के परमाणु एक दूसरे से बँधे रह सकते हैं। दो परमाणु ऋणाणुओं के एक जोड़े को साझे में कर लेते हैं। ऋणाणु अपने स्थान से स्थानान्तरित नहीं होता। इस प्रकार के बन्धन को **सह** संयोजक **बन्धकता** (covalent linkage) कहते हैं। कोई दो परमाणु दो विधियों से ऋणाणुओं के एक जोड़े को साझे में कर सकते हैं:—

(क) दोनों बन्धक परमाणुओं में से प्रत्येक दो बन्धक ऋणाणुओं में से एक दान करता है जैसे हाइड्रोजन के अणु में। इस प्रकार के बन्धन को साधारण सह संयोजक बन्धन कहते हैं। रसायनज्ञ इसे दोनों परमाणुओं के मध्य एक सरल रेखा खींचकर व्यक्त करता है, उदाहरणतः H–H

(ख) एक ही परमाणु जोड़े के दोनों ऋणाणु देता है, दूसरा उन्हें केवल साझे में बँटाता है। इस प्रकार के बन्धन को **दाता बन्धन** या **सवर्ग** बन्धकता (coordinate linkage) कहते हैं। रसायनज्ञ इसे एक तीर द्वारा चित्रित करता है। तीर का अग्र भाग उस परमाणु की ओर रहता है जो दोनों ऋणाणुओं को केवल साझे में लेता है, बन्धन में स्वयं कोई ऋणाणु नहीं देता। इस बन्धन द्वारा बने यौगिक सवर्ग यौगिक कहलाते हैं।

सह-संयोजक यौगिक रसायन शास्त्र और तत्सम्बंधित विज्ञान में विशेष महत्व रखते हैं। उनका विधिवत अध्ययन आज से केवल ७० वर्ष पूर्व **वर्नर** (Werner) के संयोजकता सिद्धान्त के साथ ही प्रारम्भ हुआ था।

जब परमाणुओं का एक समूह आपस में सम्बन्धित होकर एक वलय बनाता है जिसमें कम से कम एक दाता-बन्धन हो, तो उस क्रिया को **किलेटीकरण** कहते हैं और इस प्रकार से बने यौगिक को **किलेट-यौगिक**। इसका अर्थ यह हुआ कि किलेट यौगिक एक विशेष प्रकार के सह-संयोजक यौगिक हैं जिनमें कम से कम एक वलय सह-संयोजक बंधन द्वारा बना हो। यह देखा गया है कि वे परमाणु, जो सह-

संयोजक बन्धन के लिए ऋणाणुओं का एक जोड़ा प्रदान करते हैं, प्रायः S, O, N, P होते हैं और ग्राहक परमाणु प्रायः सदैव ही धातु का आयन होता है। यह कहा जा सकता है कि किलेट-यौगिक संकीर्ण-यौगिक हैं। (वर्नर के अनुसार संकीर्णों में सह संयोजक बन्धन की उपस्थिति आवश्यक है)।

किलेट, वास्तव में, बड़े ही रोचक यौगिक हैं। वे प्रकृति में व्यापक रूप से वितरित हैं और हमारे जीवन को विविध प्रकारों से अधिक सुखमय और उत्तम बनाने में हमारी सहायता करते हैं।

२. किलेट यौगिकों की स्थिरता ?

साधारण सह-संयोजक यौगिकों में एक परमाणु या परमाणुओं का एक समूह जो एक सह बन्धन द्वारा सम्बन्धित रहता है यदि बन्धन एक बार टूट जाय तो सुगमता से अलग हो जायेगा परन्तु विशेष प्रकार के सह-संयोजक यौगिकों में, जिनको हम किलेट कहते हैं वलय के दो बन्धनों में से एक (जिनके द्वारा धातु का आयन अणु के अन्य भाग से जुड़ा रहता है), यदि टूट भी जाय तो बचा हुआ बन्धन अणु को पकड़े रहेगा और टूटे बन्धन को पुनः जुड़ जाने का अवसर प्राप्त हो सकेगा। इसी कारण किलेट अधिक स्थाई होते हैं।

इसी बात को अन्य प्रकार से भी समझाया जा सकता है। यदि धातु के आयन को निम्नलिखित दो व्यापारों में से किसी एक को चुनने का अवसर दिया जाय—

१. एक वलय बनाने वाले अणु में दो दाता परमाणुओं से सम्बन्धित होने, या

२. दो भिन्न-भिन्न अणुओं में जुड़े उन्हीं परमाणुओं से सम्बन्धित होने,

तो धातु का आयन सम्भवतः पहला व्यापार स्वीकार करेगा क्योंकि दो अलग-अलग अणुओं से सम्बन्धित होने के लिए धातु के आयन को उन दोनों के परमाणुओं को अलग-अलग हरण करना पड़ेगा जिसकी सम्भावना अपेक्षाकृत अधिक नहीं है। धातु का आयन वलय बनाने वाले अणु के एक छोर से संलग्न होकर आसानी से दूसरे सिरे से भी जुड़कर वलय बना सकता है। अणु का दूसरा छोर परमाणुओं द्वारा बँधा होने के कारण अधिक दूर नहीं हो सकता।

३. किलेट यौगिकों का महत्व

एक किलेट अणु सदा दो भागों से मिलकर बना होता है—

१. संकीर्ण प्रतिकर्मक या किलेटिंग प्रतिकर्मक जो ऋणाणुदाता परमाणु देता है, और

२. ऋणाणु स्वीकार करने वाली धातु। दोनों ही किलेट की स्थिरता पर अपना प्रभाव रखते हैं।

संकीर्ण प्रतिकर्मक निम्न प्रकार से किलेटीकरण को प्रभावित करता है :—

१. किलेट प्रतिकर्मक में कम से कम दो परमाणु ऐसे होने चाहिए जो स्वयं को धातु के आयन से बन्धन द्वारा सम्बन्धित कर सकें और वलय बना सकें।

२. इस प्रकार बने वलय को तनावमुक्त होना चाहिए अर्थात् वलय बनाने वाले परमाणुओं को इस प्रकार सम्बद्ध होना चाहिए कि उनके संयोजक बन्धन उनके प्राकृतिक कोणों पर हों। चूँकि कार्बन के परमाणु ही अधिकतम किलेटों की संरचना निश्चित करते हैं, अतः उनका परीक्षण अधिक भली प्रकार करना उचित होगा।

कार्बन परमाणु के संयोजकता बन्धनों के मध्य का कोण १०८° है। यही माप पंचभुज के कोण की भी है। अतः पंच सदस्यीय किलेट वलय को सर्वाधिक स्थिर होना चाहिए, कारण कि उनमें सबसे कम तनाव होगा। प्रयोगों द्वारा इस कथन की पुष्टि होती है। यद्यपि ४, ५, ६ और अधिक सदस्यीय किलेटों का अध्ययन हुआ है तो भी ५ सदस्यीय वलय सर्वाधिक सुस्थिर सिद्ध हुए हैं।

ऋणाणु ग्राहक धातु किलेटीकरण को निम्न प्रकार से प्रभावित कर सकती है :——

आवर्त्त सारणी की प्रायः सभी धातुएँ उपयुक्त अवस्थाओं में किलेट-संकीर्ण बनाती हैं। क्रान्तिक धातुएँ (Transition Metals) तो विशेषकर बहुत अधिक किलेट बनाती हैं। यह माना जाता है कि उनमें ऋणाणुदाता परमाणुओं से सम्बन्धित होने की तीव्रतम प्रवृत्ति होती है। वे बातें जो भिन्न-भिन्न धातुओं की ऋणाणुदाताओं से मिलकर संकीर्ण बनाने की सापेक्षिक प्रवृतियों का निर्णय करती हैं, **मारटेल** (Martell) और **काल्विन** (Calvin) के अनुसार निम्नलिखित हैं :—

१. आयनिक शक्तियाँ जो (क) धातु के आयन के विद्युत आवेश, और (ख) धातु के आयन के अर्ध-व्यास से सम्बन्धित हैं।

२. विभिन्न धातुओं की ऋणाणुदाताओं से मिलकर सह-संयोजक यौगिक बनाने की सापेक्षिक प्रवृत्तियाँ। निश्चय ही सर्वाधिक सुस्थिर किलेट तभी बनेंगे जब ऊपर कही गई प्रवृत्तियाँ पूर्ण रूप से दूसरे की पूरक होंगी।

यहाँ पर एक रोचक निरीक्षण का वर्णन करना उचित होगा। यह देखा गया है कि किसी विशेष किलेट में वलयों की संख्या बढ़ा देने से उसकी सुस्थिरता भी बढ़ जाती है। सैलिसिल एल्डमीन किलेटों पर किया गया कार्य इसका एक उदाहरण है। अतः

```
 /‾‾‾‾‾\—A        O—/‾‾‾‾‾\
 \_____/    \Cu/      \_____/
    |          \         |
 CH=N           N=CH
    |           |
   CH₂—————CH₂
```

अधिक स्थाई है

```
 /‾‾‾‾‾\—O        O—/‾‾‾‾‾\
 \_____/    \Cu/      \_____/
    |                    |
 CH=N           N=CH
    |           |
   CH₃         CH₃
```
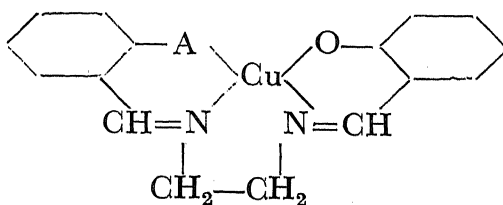
कम स्थाई है।

किलेट यौगिक

किलेटों की उपयोगिता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि यदि कोई धातु का आयन दो या दो से अधिक ऋणाणुदाता वर्गों से सम्बन्धित हो जाय और किलेट बना ले तो धातु अपनी आयनीय विशषताएँ खो देता है। अपने इस नए रूप में धातु बड़ी दृढ़ता से **लिगेन्ड** (ligand) से जुड़ी रहती है। लिगेन्ड संकीर्ण का वह भाग है जिससे मिलकर धातु वलय बनाता है। यदि एक से अधिक वलय बन जाती हैं तो धातु की लिगन्ड से जुड़ने की शक्ति और भी बलवती बन जाती है। फलस्वरूप धातु का आयन रासायनिक क्रियाओं में भाग लेने के सर्वथा अयोग्य हो जाता है, चाहे वह मण्डल में उपस्थित क्यों न हो। अतः धातु की उपस्थिति संवेदनशील रासायनिक परीक्षणों द्वारा भी नहीं जानी जा सकती, यदि उसका किलेटीकरण हो गया हो। किलेटिंग पदार्थों की धातु का 'अपहरण' कर लेने की यह प्रवत्ति अद्वितीय है और यही गुण उनके बहुमुखी उपयोगों का एकमात्र कारण है।

एथिलीन डाईअमीन ट्रेटाएसिटिक एसिड, जिसका नाम संक्षेप में EDTA है, बहुत ही रोचक किलेटिंग प्रतिकर्मक है। ई०डी०टी०ए० के वलय बनाने वाले परमाणु बिल्कुल ठीक दूरियों और कोणों पर स्थित होते हैं और लगभग तनावमुक्त ५ सदस्यीय वलय बनाते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इसके अणु में ६ परमाणु ऐसे हैं जो ऋणाणुदाता का कार्य करने की क्षमता रखते हैं (नाइट्रोजन के दो परमाणु और आक्सीजन के चार परमाणु)। फलस्वरूप यह धातु के आयनों को कसकर शक्ति-पूर्वक जकड़ लेता है। **श्वार्जेनबख** (Schwarzenbach) ने ई० डी० टी० ए० और तत्सम्बन्धित यौगिकों के अध्ययन का श्रीगणेश केवल १५ वर्ष पूर्व किया था परन्तु अब ये सारे यौगिक अत्यन्त महत्वपूर्ण बन रहे हैं।
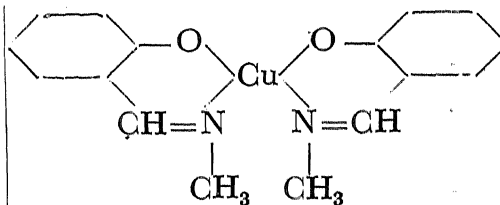
[शेष पृष्ठ १७८ पर]

अहर्गण और मध्यम ग्रह स्थान

सोहनलाल गुप्त

भगणकाल में ग्रह की गति सदैव एक सी नहीं रहती। वह बराबर बदलती रहती है। ग्रह को आकाश मंडल का पूरा चक्कर समगति से लगाता हुआ मानने से किसी भी समय उसका जो स्थान राशि अंशादि में गणना द्वारा प्राप्त हो उसे मध्यम ग्रह स्थान कहते हैं। मध्यम ग्रह स्थान जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि कल्प या कलि के आरंभ से अभीष्ट काल तक कितने सावन दिन (solar days) या अहर्गण बीत चुके। फिर गणना करते हैं कि गत अहर्गणों में ग्रह पूरे भगणों के ऊपर कितने राशि अंशादि चला। यह राश्यादि ग्रह की स्थिति अहर्गण की समाप्ति पर देती है क्योंकि कल्पारंभ या कलियुगारंभ में ग्रहों की स्थिति मेषादि अर्थात् शून्य अंश पर थी और पूरा भगण ग्रह को फिर आदि स्थान पर ही लाता है।

समय की गणना चान्द्र मासों और तिथियों में की जाती रही है क्योंकि त्योहार और व्रत पूजन आदि धार्मिक कृत्य इन पर ही आधारित हैं। चान्द्र मासों में कभी-कभी अधिमास, मलमास या लौंद होते हैं और तिथियों में कुछ क्षय होती हैं। अतः अहर्गण की गणना इनसे प्रभावित होती है और इनका विचार करना पड़ता है। वह महीना जिसमें संक्रान्ति नहीं पड़ती, अधि या अधिक मास होता है। जिस तिथि में सूर्योदय नहीं होता वह क्षय तिथि कहलाती है क्योंकि किसी वार की तिथि वह कही जाती है जो सूर्योदय के समय होती है।

महायुग के चन्द्र भगणों से सूर्य भगण घटाने से महायुग के चांद्रमास मिलते हैं। रवि भगणों के बारह गुने सौरमास होते हैं। चांद्र मासों से सौर मासों को घटाने से अधिमास मिलते हैं। महायुगीय चांद्र-मासों को तीस से गुणा करने पर तिथियाँ मिलती हैं। नक्षत्र भगणों या नाक्षत्र दिनों से सूर्य भगण घटाने पर सावन दिन मिलते हैं। तिथियों से सावन दिन घटाने पर क्षय तिथियाँ मिलती हैं। इस प्रकार

महायुगीय	सूर्य सिद्धान्त	आर्य सिद्धान्त	ब्रह्म सिद्धान्त
चंद्रमास	५३४३३३३६	५३४३३३३६	५३४३३३००
सूर्यमास	५१८४००००	५१८४००००	५१८४००००
अधिमास	१५९३३३६	१५९३३३६	१५९३३००
चांद्र तिथि	१६०३०००००८०	१६०३०००००८०	१६०२९९९०००
नाक्षत्र दिन	१५८२२३७८२८	१५८२२३७५००	१५८२२३६४५०
सावन दिन	१५७७९१७८२८	१५७७९१७५००	१५७७९१६४५०
तिथि क्षय	२५०८२२५२	२५०८२५८०	२५०८२५५०

अहर्गण निकालना—कलियुग के आरंभ से अभीष्ट तिथि तक गत सौर वर्षों को बारह से गुणा करके उनके सौर मास बनाओ। इनमें चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से जितने पूरे मास बीत गए हों उन्हें जोड़ दो।

इस योग को युग के अधिमासों से गुणा करके युग के सौर मासों से भाग दो। भजनफल में अधिमास मिलेंगे। उन्हें सौर मासों में जोड़ने से चांद्रमास मिलेंगे। चांद्रमासों को तीस से गुणा करने पर तिथियाँ मिलेंगी। उनमें वर्तमान मास की शुक्ल प्रतिपदा से लेकर जितनी गत तिथियाँ हों उन्हें जोड़ दो। यह चांद्र अहर्गण होगा। चांद्र अहर्गण को युग की क्षय तिथियों से गुणा कर युग के चांद्र दिनों से भाग दो। भजनफल में प्राप्त क्षय तिथियों को चांद्र अहर्गण से घटाने पर शेष सावन अहर्गण होंगे।

उदाहरण—कृष्ण त्रयोदशी द्वितीय भाद्रपद सं० २०१२ विक्रमी, १८७७ शाके बुधवार कलिगत

सौर वर्ष = ३०४४ + २०१२ = ५०५६

सौरमास = ५०५६ × १२ = ६०६७२

सं० २०१२ के गतमास = ५

कलिगत सौर मास = ६०६७२ + ५ = ६०६७७

अधिमास = ६०६७७ × १५९३३३६ ÷ ५१८४०००० = १८६४

चांद्रमास गण = ६०६७७ + १८६४ = ६२५४१

तिथि = ६२५४१ × ३० = १८७६२३०

वर्तमान मास की गत तिथियां = १५ + १३ = २८

चांद्र अहर्गण = १८७६२३० + २८ = १८७६२५८

क्षयतिथि = १८७६२५८ × २५०८२२५२ ÷ १६०३०००০८० = २९२५७

कलिगत सावन अहगण = १८७६२५८ — २९३५७ = १८४६९०१

इस प्रकार प्राप्त अहर्गण मध्यम अहर्गण है। इसे वार ज्ञान द्वारा शुद्ध या स्पष्ट करते हैं। कल्प या सृष्टि का आरंभ रविवार से हुआ और कलियुग का शुक्रवार से। कलि अहर्गण को सात से भाग देने पर प्राप्त शेष को शुक्रवार में जोड़ देते हैं। इस प्रकार प्राप्त वार अभीष्ट वार होना चाहिए, या दो एक दिन का अन्तर हो सकता है। इस अन्तर के अनुसार मध्यम अहर्गण को शुद्ध करते हैं।

१८४६९०१ ÷ ७ शेष = ० या ७

शुक्रवार से ७वाँ दिन = गुरुवार

अभीष्ट दिन बुधवार है अतः उसका शुद्ध अहर्गण एक कम अर्थात् १८४६९०० होगा।

यद्यपि तीनों सिद्धान्तों में महायुग के सावन दिनों, क्षय तिथियों और अधिमासों की संख्याएँ भिन्न-भिन्न हैं फिर भी उनमें थोड़े अन्तर के कारण प्रत्येक के कलि अहर्गण समान मिलते हैं। कल्पगत अहर्गणों के लिए कलिगत अहर्गणों को कलियुगारंभ तक के अहर्गणों में जोड़ दो, जो महायुग के सावन दिनों को गत महायुगों से गुणा करने पर मिलेंगे।

कल्पारंभ से कलि आरंभ तक के अहर्गण

सूर्य सिद्धान्तीय = ४५२$\frac{३}{४}$ × १५७७९१७८२८ = ७१४४०२२९६६२७

ब्रह्म सिद्धान्तीय = ४५६$\frac{७}{१०}$ × १५७७९१६४५० = ७२०६३४४४२७१५

आर्य सिद्धान्तीय = ४५९$\frac{३}{४}$ × १५७७९१७५०० = ७२५४४७५७०६२५

अहर्गण निकालने की दूसरी सुगम विधि—इसमें पहले इष्ट वर्ष की मेष संक्रान्ति का कलि अहर्गण निकालते हैं। युग के सावन दिनों को युग के सौर वर्षों से भाग देने पर एक वर्ष के अहर्गण मिलते हैं। इनके मान इस प्रकार हैं :

सूर्य सिद्धान्त १ वर्ष = ३६५·२५८७५ अहर्गण
आर्य सिद्धान्त = ३६५·२५८६८ अहर्गण
ब्राह्म सिद्धान्त = ३६५·२५८४४ अहर्गण

वर्ष के अहर्गणों को कलिगत वर्षों से गुणा करने पर इष्ट वर्ष की मध्यम मेष सक्रान्ति के कलि अहर्गण मिलेंगे। मध्यम मेष सक्रान्ति पंचागों में दी स्पष्ट मेष संक्रान्ति के दो दिन बाद पड़ती है। मेष सक्रान्ति से गत सौर मासों और वर्तमान मास के गत दिनों की गणना कर मेष संक्रान्ति के बाद के गत दिनों को मेष संक्रान्ति के कलि अहर्गणों में जोड़ने से इष्ट तिथि के कलि अहर्गण मिलेंगे। वार से अहर्गण शुद्धि

कर लेनी चाहिए। मेष संक्रान्ति १३ अप्रैल या राष्ट्रीय चैत्र २३ को पड़ती है। राष्ट्रीय वैशाख से भाद्रपद तक के पांच महीने इकतीस दिनों के और शेष तीस दिनों के होते हैं। शक वर्ष में ७८ जोड़ने से यदि योग चार से पूरा बट जाए या योग की इकाई तथा दहाई के अंकों में शून्य होने पर वह चार सौ से पूरा बट जाए उस वर्ष में चैत्र इकतीस दिनों का होगा। उसके पहले की फरवरी भी २९ दिनों की होगी।

मध्यम मेष संक्रान्ति × सं० २०१२ वि० कलि अहर्गण

=५०५६×३६५·२५८७५

=१८४६७४८·२४

मध्यम मेष संक्रान्ति राष्ट्रीय चैत्र से भाद्र २३ तक दिन

=५+३१+३१+३१+३१+२३=१५२

मध्यम मेष संक्रान्ति १५ अप्रैल से १४ सितम्बर तक दिन

=१५+३१+३०+३१+३१+१४=१५२

∴ इष्ट कालिक मध्यम कलि अहर्गण

१८४६७४९+१५२=१८४६९०१

इससे वार ज्ञान द्वारा स्पष्ट अहर्गण पहले की भाँति प्राप्त किया जायगा।

मध्यम ग्रह स्थान—इष्ट काल के कलिगत शुद्ध अहर्गण को ग्रह के युग भगणों से गुणा कर युग के सावन दिनों से भजनफल में मध्यम ग्रह के गत भगण मिलेंगे। शेष को बारह (राशि संख्या) से गुणा कर गुणनफल को युग सावन दिनों से भाग देने पर लब्धि में राशि मिलेंगी। शेष को तीस से गुणा कर गुणनफल को युग सावन दिनों से भाग देने पर भागफल में अंश मिलेंगे। शेष को साठ से गुणा कर गुणनफल को सावन दिनों से भाग देने पर लब्धि, भागफल या भजनफल में कला मिलेंगी। शेष को साठ से गुणा कर गुणनफल को युग सावन दिनों से भाग देने पर लब्धि में विकलाएँ मिलेंगी।

जिस सिद्धात के अनुसार ग्रह स्थान निकालना हो उसके महायुगीय भगण और सावन दिन लेना चाहिए। प्राप्त गत भगणों का कोई महत्त्व नहीं है क्योंकि प्रत्येक पूरा भगण ग्रह को आदि स्थान पर ही लाता है। प्राप्त राशि अंशादि तीनों सिद्धान्तों में सूर्य और चंद्रमा के तथा सूर्य और आर्य सिद्धान्तों में मंगलादि पांच ग्रहों के भी मध्यम स्थान इष्ट अहर्गण की समाप्ति पर देंगे क्योंकि इन सब ग्रहों की इन सिद्धान्तों के अनुसार कलि आरंभ की स्थिति शून्य राशि शून्य अंश पर थी। सूर्य और आर्य सिद्धान्तों से चंद्र मदोच्च के प्राप्त राश्यादि को तीन राशि में जोड़ने से और राहु के प्राप्त राश्यादि को छः राशि से घटाने से उनके मध्यम स्थान मिलेंगे। ब्रह्म सिद्धान्तानुसार प्राप्त मंगलादि ग्रहों की राश्यादि कलि आरंभ की उनकी स्थितियों (ध्रुवकों) में जोड़ने से फिर राहु को घटाने से अभीष्ट मध्यम स्थान मिलेंगे। राहु ब्रह्म सिद्धान्त से अधिक शुद्ध मिलता है पर अन्य ग्रह सूर्य सिद्धान्त से अधिक शुद्ध मिलते हैं।

सूर्य सिद्धान्तानुसार कलि अहर्गण १८४६९०० के अर्धरात्रि कालिक मध्यम ग्रह स्थान :

ग्रह	राशि	अंश	कला	विकला
सूर्य	४	२९	३२	३४
चन्द्र	४	४	४६	४६
मंगल	४	११	२३	३६
गुरु	३	२०	३८	५
शनि	६	१९	३	२७

ग्रह	राशि	अंश	कला	विकला
बुध शीघ्रोच्च	८	२२	११	४६
शुक्र शीघ्रोच्च	५	१४	१०	३८
चंद्रोच्च	८	३	५	२०
राहु	८	२	२१	०
राहु (ब्राह्म)	७	२८	१३	१५

सूर्य सिद्धान्तीय मध्यम ग्रह प्राप्ति का सरल ढंग

अहर्गण को तीस लाख से गुणा कर ३०४३८२३ से भाग देने पर मध्यम सूर्य अंशादि में मिलेगा। अंशों

को ३६० से भाग देने पर प्राप्त शेष को १२ से भाग देने पर लब्धि राशि देगा और शेष अंश।

अहर्गण को तीन अरब से गुणा कर २२७६८०६१८ से भाग देने पर चंद्रमा के गत अंशादि मिलेंगे।

अहर्गण को तीस लाख से गुणा कर गुणनफल को ५७२४९७९ से भाग देने पर मध्यम मंगल के अंशादि मिलेंगे।

अहर्गण को एक लाख से गुणा कर १२०३४२२ से भाग देने पर मध्यम वृहस्पति के अंश मिलेंगे।

अहर्गण को चालीस हजार से गुणा कर ११९६१९७ से भाग देने पर मध्यम शनि के गतांश मिलेंगे।

अहर्गण को सत्तर लाख से गुणा कर १७१०५२२ से भाग देने पर बुध शीघ्रोच्च के गतांश मिलेंगे और अहर्गण को चार लाख से गुणा कर २४९६६५ से भाग देने पर शुक्र शीघ्रोच्च के गतांश मिलेंगे।

अहर्गण को एक लाख से गुणा कर ८९७८०४ से भाग देने पर चंद्रोच्च के गतांश मिलेंगे। अहर्गण को तीन सौ से गुणा कर ५६६२ से भाग देने पर चंद्रपात के कलि गतांश मिलेंगे।

करण विधि—इसमें गणना को और भी सरल करने के लिए भाज्य को छोटा बनाया जाता है। इसके लिए किसी निकटस्थ गत अहर्गण के मध्यम स्थान निकाल लिए जाते हैं। इन्हें ग्रहों के ध्रुवक कहते हैं। इष्ट काल के कलिगत अहर्गणों से ध्रुवकीय अहर्गण घटा देते हैं। शेष अहर्गण में उपरोक्त सरल ढंग से ग्रह के गतांश निकालते हैं और इन्हें ग्रह के ध्रुवक में जोड़ देते हैं। इस प्रकार इष्ट अहर्गण का मध्यम ग्रह मिलता है।

पृष्ठ १७४ का शेषांश

यह पता लगाया जा चुका है कि किलेटीकरण उन बहुत ही क्रियाओं में महत्वपूर्ण भाग लेता है जो हमारे जीवन में महत्व रखती हैं। प्रकृति में होने वाली असंख्य क्रियाओं में से बहुतों में किलेटीकरण काम में आता है। उदाहरणतः रक्त का हेमोग्लोबिन (Hemoglobin), पौधों का क्लोरोफिल, इन्स्युलिन (पैंक्रियाज में बनने वाला रस जो हमारे शरीर में कार्बोहाइड्रेट चयापचय को नियंत्रित करता है) यह सब किलेट पदार्थ हैं। जल को मृदु बनाने में किलेटीकरण क्रिया का उपयोग किया जाता है। जल में कठोरता उत्पन्न करने वाली धातुओं को किलेट यौगिक बनाकर उनके आयनिक गुण नष्ट कर दिए जाते हैं और इस प्रकार जल की कठोरता जाती रहती है।

उत्तम प्रकार के साबुन, शेम्पू और परिष्कारक बनाने में, रँगाई उद्योग में, भोजन और खाद्य पदार्थों के संरक्षण में, विद्युल्लेपन (Electroplating) में किलेटीकरण अपना ही महत्त्व रखता है। डाक्टरी में भी किलेटों को विविध प्रकार से उपयोग में लाया जा रहा है, उदाहरणतः गुर्दे की पथरी को गलाने से लेकर विषैले रेडिय-सक्रिय पदार्थों को शरीर से बाहर निकाल फेंकने में और रक्त को शुद्ध बनाए रखने में। कृषि विज्ञान में भी किलेटीकरण के उदारतापूर्वक प्रयोग किए गए हैं; विशेषतः पौधों में लोहे की कमी की बीमारी (Iron chlorosis) को रोकने के लिए।

रसायनशास्त्री भी उनका विविध प्रकार से उपयोग करते हैं। किलेटिंग प्रतिकर्मक उनके हाथों से शक्तिशाली उपकरणों की तरह विश्लेषण और अनुसंधान में उनकी सहायता करते हैं। उदाहरणतः प्लूटोनियम विषाक्त का उपचार किलेटीकरण द्वारा ही हो सकता है। स्मरणीय हो कि अणु शक्ति के उपयोगों में प्लूटोनियम का स्थान अग्रणी है।

पृथ्वी की उत्पत्ति

रामबोध पाण्डेय

आज हम अपने चारों ओर जिन प्राकृतिक तत्वों को देखते हैं, उन सबके मूल में एक गम्भीर रहस्य छिपा हुआ है। चारों तरफ फैली हुई धरती, उसकी छाती पर अडिग रूप से विद्यमान पर्वत, नानाविध घाटियों का निर्माण करने वाली सततवाहिनी नदियाँ, स्थल को चारों ओर घेर कर बैठा हुआ जलमण्डल, ऊपर आकाश में प्रकाशमान सूर्य, चन्द्रमा एवं अनेक ग्रह-उपग्रह—ये सब मानवीय जीवन के लिए कुतूहल के विषय रहे हैं। समय की प्रगति के साथ-साथ मनुष्य की चिन्तनशक्ति भी बढ़ती गई। उसने इन अनेकविध कुतूहलों का समाधान खोजने के लिए अनेक प्रयास किए हैं। हमारे जीवन के एकमात्र स्रोत पृथ्वी की उत्पत्ति कैसे हुई?—इस विषय में विद्वानों ने अपने-अपने सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं। इस विषय में जो प्राचीनतम तथ्य है, वह मूलतः धार्मिक है; किन्तु आज की वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण कसौटी पर इन भ्रममूलक सिद्धान्तों का कोई मूल्य नहीं है। अतएव हमें पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में वैज्ञानिक एवं गवेषणात्मक सिद्धान्तों की ही विवेचना करनी है। पृथ्वी की मुख्य उपपत्तियाँ निम्न हैं :

(१) **काण्ट का वायव्य-राशि सिद्धान्त**—काण्ट महोदय प्रसिया देश के बहुत प्रसिद्ध विद्वान थे, जिन्होंने सन् १७५५ ई० में अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। काण्ट के अनुसार अतीत काल में एक दैवी गैस-राशि शीतल एवं स्थिर अवस्था में थी। इस राशि के परमाणु आकर्षण शक्ति से प्रभावित होने के कारण परस्पर टकराए और इसके परिणामस्वरूप उसमें ऊष्मा और गति उत्पन्न हुई। तप्त गैस-राशि इतनी द्रुत गति से घूमने लगी कि केन्द्रीय वहिर्मुखी शक्ति द्वारा इसके मध्य भाग से अनेक छोटी-छोटी गैस-राशियाँ विलग हो गईं; इनमें से प्रत्येक ने शीतल होने के अनन्तर ग्रहों का रूप धारण कर लिया (**चित्र नं० १**)। पृथ्वी भी
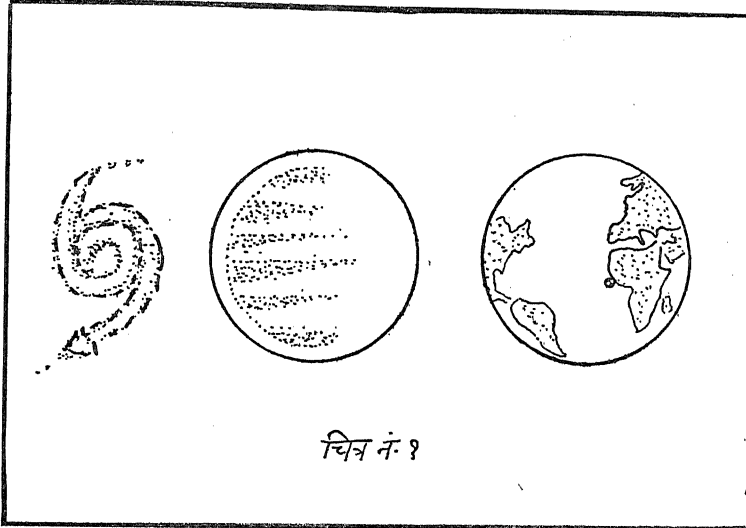
चित्र नं० १

इन्हीं ग्रहों में से एक है। आगे चल कर आलोचकों ने कणों के परस्पर टकराने से 'गति उत्पन्न होने पर' आक्षेप किया और काण्ट महोदय के सिद्धान्त को एक काल्पनिक एवं अवैज्ञानिक तथ्य कह कर अस्वीकार कर दिया।

(२) **लाप्लेस का नीहारिका सिद्धान्त**—लाप्लेस महोदय एक फ्रांसीसी भूतत्वविद् थे। उन्होंने सन् १७९६ के लगभग अपने पूर्ववर्ती काण्ट के दोषों का परिहार करके उनके सिद्धान्त को नए रूप में प्रस्तुत किया। लाप्लेस ने भी एक विशाल गैस राशि की कल्पना की किन्तु उनके सिद्धान्त में एक नई धारणा पाई गई—वह यह कि गैस राशि पहले से ही गर्म और घूमने वाली दशा में थी। लाप्लेस का कहना है कि जब नीहारिका ठंढा होने लगा तो उसमें संकुचन हुआ और परिणामतः गति और तेज हो गई। इसके बाद मध्यवर्त्ती नाभिक बाहर को निकलने लगा। जब गति काफी तेज हो गई तो केन्द्र बहिर्मुखी शक्ति द्वारा एक छल्ला या उपग्रह की आकृति का अंश पृथक हो गया। यह विलग अंश नेबुला का चक्कर लगाने
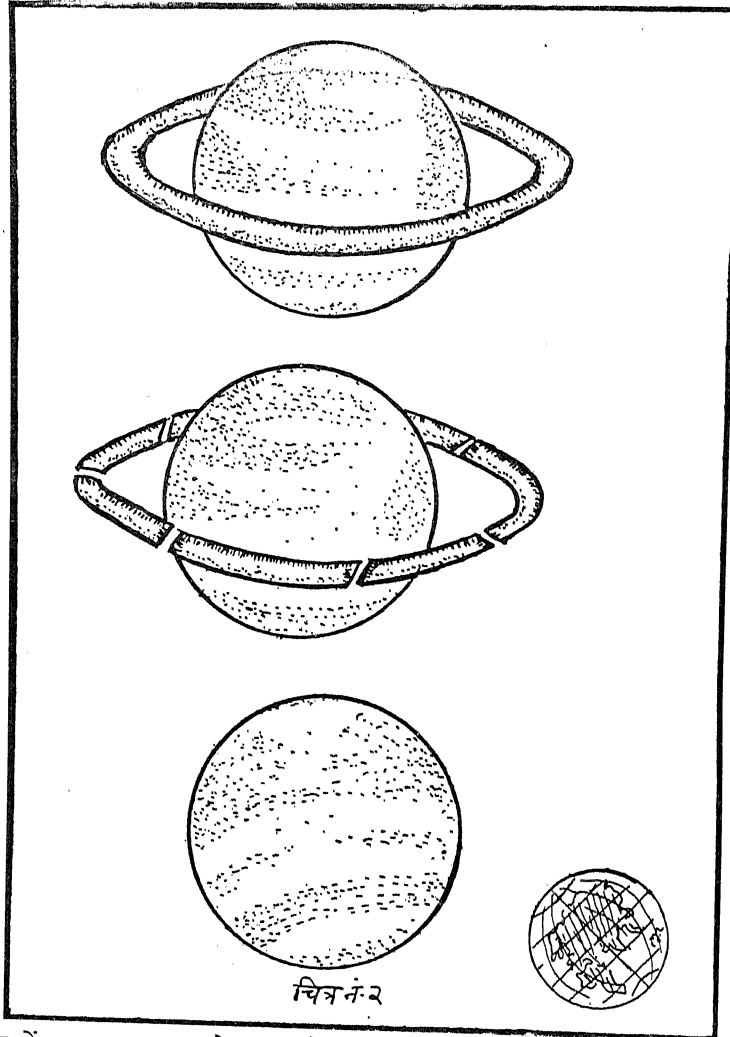
चित्र नं० २

लगा। कालान्तर में वह खण्ड-खण्ड हो गया और केन्द्रीय आकर्षण से एकीकृत होकर इनमें से एक पिण्ड बना जो ग्रह कहलाया। इसी क्रिया की पुनरावृत्ति के फलस्वरूप विविध ग्रह बने **(चित्र नं० २)**।

नेबुला का अवशिष्ट अंश सूर्य है, जो आज भी एक धधकते हुए पिण्ड के रूप में विद्यमान है।

लाप्लेस की उपपत्ति की भी कटु आलोचानाएँ की गई हैं :—(१) छल्ला की आकृति का उपग्रह किस प्रकार विच्छिन्न होने पर एक हुआ और इससे एक ग्रह कैसे बना, जबकि प्रत्येक खण्ड एक-एक ग्रह के उत्तरदायी होने चाहिए ?

(२) नेबुला का एक अंश होने के कारण, पृथ्वी का मध्यवर्ती भाग द्रवित अवस्था में होना चाहिए, किन्तु वास्तविक रूप में यह घनीभूत अवस्था में है।

(३) नेबुला से विच्छिन्न छल्लाकृतियों से केवल ९ ग्रह ही क्यों बने, अधिक क्यों नहीं ?

(४) यदि सूर्य नेबुला का अवशिष्ट अंश है, तो उसके द्रवित होने के कारण मध्य में उठा हुआ भाग होना चाहिए जैसे कि कोई नया छल्ला निकलने वाला हो। किन्तु वास्तविक रूप में ऐसा कोई उभार नहीं मिलता।

(५) नेबुला के बीच से पृथक होने वालों छल्लों का क्रम जारी रहना चाहिए था; बीच में अवकाश का कोई कारण ही नहीं है।

इस प्रकार लाप्लेस के सिद्धान्त की भी आलोचनाएँ हुईं और नवीन दृष्टिकोण सामने आये।

चित्र नं. 3
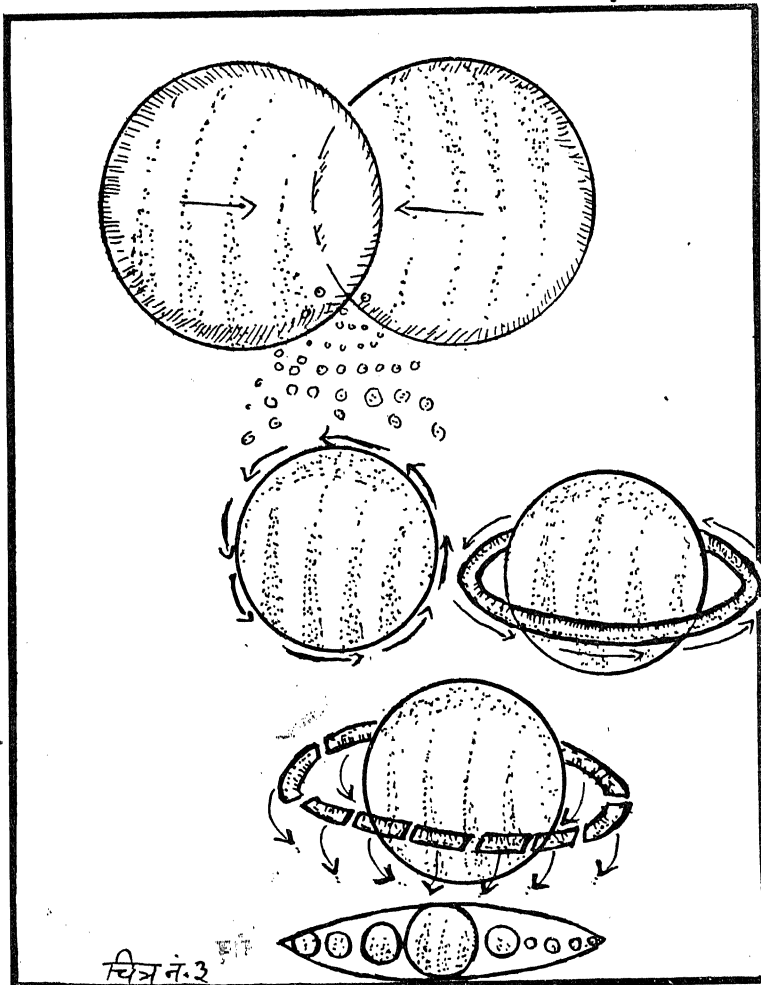
(३) लाकेर का उल्कापिण्ड सिद्धान्त—लाकेर नामक विद्वान ने ग्रहों की उत्पत्ति का नया दृष्टिकोण सामने रक्खा। उसके अनुसार सौर मण्डल के ग्रहों का जन्म उल्कापिण्ड से उत्पन्न नीहारिका से हुआ। लायकर द्वारा कल्पित कुण्डलाकार नेबुला दो महान उल्का-पिण्डों के टकराने के परिणामस्वरूप बना। अतीत में ऐसे दो वृहत् उल्कापिण्ड हुए, जिनके परस्पर टकराने से अधिकतर अंश विच्छिन्न हो गया और संघर्षण के फलस्वरूप अग्नि उत्पन्न हुई, जिससे कुछ अंश पिघल कर तरल हो गये और शेष गैस में बदल गए। इस प्रकार इनका एक समुदाय बन गया, जो कालान्तर में आकर्षण के कारण एक हो गए। यह महान् पिण्ड तीव्र गति से चक्कर लगाता हुआ नीहारिका बन गया, जिसके शीतल हो जाने से गति बढ़ी और छल्ले के आकार के अंश अलग होने लगे। ऐसे नौ अंशों के अलग होने से नौ ग्रह बने, जिनमें पृथ्वी भी एक है। **(चित्र नं० ३)**। लाप्लेस के सिद्धान्त की तमाम आलोचनाएँ यहाँ भी लागू होती हैं।

(४) चेम्बरलेन का सिद्धान्त—इस प्रसिद्ध मत की स्थापना सन् १९०४ में हुई जिसे संयुक्त राज्य अमेरिका के निवासी चेम्बरलेन तथा उनके सहयोगी माल्टन ने सामने रक्खा। इनके मतानुसार सौर मण्डल के ग्रहों का जन्म एक घनीभूत एवं शीतल कुण्डलाकार नेबुला से हुआ जिसके केन्द्र के आस-पास नीहारिका की सम्मुख वक्राकार भुजाएँ गतिशील थीं। इनमें भी केन्द्रीय भाग के अनुरूप लघु एवं ठोस अंश थे जिनके आस-पास छोटे-छोटे कण गतिशील थे। इन कणों के परस्पर आकर्षण और उससे एकीकृत होने पर ग्रहों की उत्पत्ति हुई। इनका केन्द्रीय पिण्ड सूर्य है **(चित्र नं० ४)**। जब सूर्य नक्षत्र—२ की ओर आकृष्ट हुआ,

चित्र नं० ४
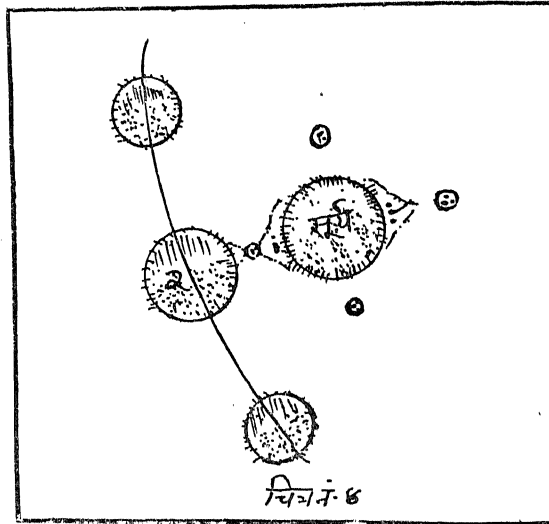
तो उस दिशा में एक अंश बाहर निकल आया, यही दशा विपरीत दिशा में हुई। नौ ग्रहों में से पाँच एक ओर निर्मित हुए और शेष दूसरी ओर। वे छोटे-छोटे कण जो कि पुँजीकृत होने पर ग्रहों के उत्तरदायी हुए, गैस पूर्ण थे और वे गर्म होने के पश्चात् बाहर निकले और केन्द्रीय आकर्षण से ग्रह के चारों ओर ही रहे और वायुमण्डल के रूप में स्थिर रहे। लघुतम एवं निकटतम ग्रह मरकरी तथा वेनस कम आकर्षण के कारण ऐसे वातावरण से रहित हैं।

आलोचना—(१) चेम्बरलेन ने सौर-परिवार की उत्पत्ति एक छोटी कुंडलाकार नीहारिका से कल्पित की है, जबकि आकाश में ऐसी अनेक विशालतम नीहारिकाएँ मौजूद हैं।

(२) ग्रह विच्छिन्न अंशों के पुंजीकृत रूप माने जाते हैं। ऐसी दशा में उनमें सूर्य की ओर कम सघन पदार्थ होने चाहिए और ऐसी अवस्था में ये परमाणु एक ठोस रूप में आने के लिए आकृष्ट नहीं हो सके।

(३) ग्रहों की उत्पत्ति दो नक्षत्रों की अंतर्क्रियाओं पर निर्भर है। किन्तु वास्तविकता कम जान पड़ती है।

(५) जेम्स-जीन्स की ज्वार उपपत्ति—सन् १९१९ में जेम्स जीन्स एवं जेफरीज महोदयों ने सौर परिवार की उत्पत्ति के विषय में अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया। उनके मतानुसार सूर्य पहले गैस का विशाल वृत्त था जिसका विस्तार प्लैटो ग्रह के कक्ष मार्ग तक था। एक अत्यन्त विशाल तारा जब घूमता-घूमता सूर्य के समीप आ गया तो उसके आकर्षण से सूर्य में बहुत बड़ा ज्वार उठा। इस ज्वार की ऊँचाई बराबर उन्नत होती गई। कुछ समय पश्चात् जब तारा अधिक समीप आ गया, तो उभरा हुआ ज्वार भाग सूर्य से पृथक हो गया और तारे की ओर आकृष्ट हुआ, किन्तु इतने में तारा दूर निकल गया था, और यह तन्तु भाग सूर्य के चारों ओर घूमने लगा। धीरे-धीरे ठंढे हो जाने पर संकुचन के कारण खण्ड-खण्ड होने से नौ विविध ग्रह बने **(चित्र नं० ५)**।

चित्र नं-५
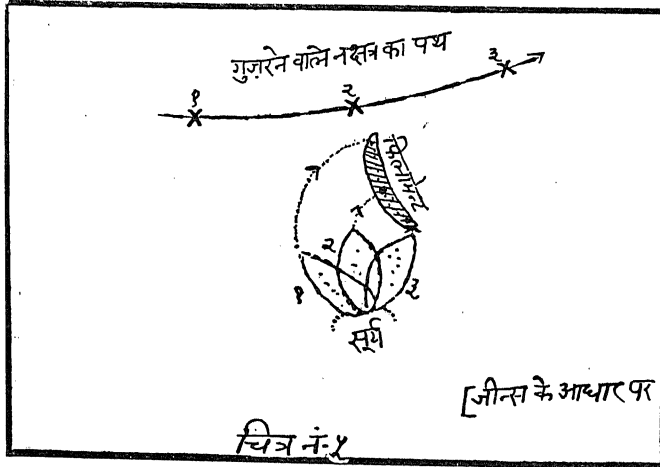
आलोचना—(१) यह सिद्धान्त दो तारों की तुलनात्मक क्रियाओं पर आधारित है। इसके अनुसार दूसरे तारे का मार्ग सूर्य के समीपस्थ तो है किन्तु उसी कक्ष में नहीं। इस आश्चर्यजनक पथ की कोई सतर्क विवेचना नहीं मिलती, अतएव यह सिद्धान्त कपोल-कल्पित मात्र है।

(२) सूर्य एक गैस-राशि है इसलिए विपरीत दशा में भी उभार होने के कारण दो सिगार के आकृति वाले तन्तु पाए जाने चाहिए किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है।

(३) जीन्स के अनुसार सभी ग्रह पश्चिम से पूर्व की ओर घूमते हैं। यदि इनमें से एक तारा अलग हो जाय, तो वह भी उसी दिशा में गतिशील होना चाहिए जैसे कि चलती गाड़ी से कूदा हुआ यात्री उसी दिशा में बढ़कर गिरता है। किन्तु उपग्रहों में ऐसी बात नहीं है। ८वाँ, ९वाँ एवं ११वाँ उपग्रह पूर्व से पश्चिम को घूमता है। यही इस सिद्धान्त की कमी है।

(४) जीन्स के अनुसार तन्तु की उत्पत्ति केवल सूर्य से हुई; उस विशालतर नक्षत्र से नहीं। यदि यह सत्य है तो तात्पर्य यह कि वह एक शीतल राशि है। किन्तु ऐसा होने पर उसका स्वाधीन परिभ्रमण नहीं होना चाहिए। जीन्स ने इसके लिए कोई उपयुक्त निराकरण नहीं दिया।

(६) आटोस्मिट का इण्टर-स्टेलर धूलि तथा अल्फवेन का इण्टरस्टेलर मेघ सिद्धान्त—यह नवीन मत है। रूसी विद्वान आटोस्मिट ने ज्वार प्रक्रिया के

विपरीत ग्रहों की उत्पत्ति इस विशेष धूलि से मानी है। अभी इसकी पर्याप्त व्याख्या नहीं हो पाई है। अल्फवेन ने इंटर-स्टेलर मेघावरण के बीच सूर्य के गुजरने से ग्रहों की उत्पत्ति कल्पित की है। इसके अनुसार मेघ के ऋणात्मक अणु सूर्य की ओर आकृष्ट हुए, जिनके घर्षण से ऊष्मा उत्पन्न हुआ और अत्यन्त सूक्ष्म आयन बन गए। ये सूक्ष्म आयन सूर्य के विद्युत-चुम्बकीय प्रभाव से सूर्य के मध्यवर्ती भाग के आस-पास घूमने लगे। इनके संगठित होने से विविध ग्रह बने।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सौर परिवार सम्बन्धी अनेक मत, जो अब तक प्रकाश में आए हैं, परस्पर विभिन्न हैं, और प्रत्येक की कटु आलोचनाएँ भी हुई हैं। इंग्लैण्ड तथा न्यूयार्क में फिर नए सिद्धान्त जन्म ले रहे हैं। शायद उनके प्रकाश में आने पर कुछ सर्वमान्य तथ्य मिल सके।

इतना हमें स्पष्ट है कि पृथ्वी सौर-परिवार का एक सदस्य है। इस परिवार में पृथ्वी सहित कुल नौ ग्रह हैं। उनके नाम क्रमशः मरकरी, वेनस, पृथ्वी, मार्स, ज्यूपिटर, सेटर्न, यूरेनस, नेपचून एवं प्लुटो हैं। वैज्ञानिक अनुसन्धानों से प्रत्येक का व्यास तथा सूर्य की दूरी भी ज्ञात की गई है [सारणी १]।

जहाँ तक स्वयं सूर्य का प्रश्न है, वह इन सबसे वृहत् है। उसका व्यास ८ लाख ६० हजार मील अर्थात् पृथ्वी के व्यास का १०९ गुना है। इसमें से १३ लाख पृथ्वियों के निर्माण हो सकते हैं। इसका अनुमानित ताप प्रायः १०,०००° फारेनहाइट है।

हमारी पृथ्वी अब भी एक रहस्यपूर्ण वस्तु है, देखना है—हम विज्ञान की दौड़ में कहाँ तक इसका रहस्योद्घाटन कर पाते हैं।

ग्रह	व्यास	सूर्य से दूरी
मरकरी	३,००० मील	३६० लाख मील
वेनस	८,००० ,,	६७० ,, ,,
पृथ्वी	८,००० ,,	९३० ,, ,,
मार्स	४,२६० ,,	१,४१० ,, ,,
ज्यूपिटर	८८,३९२ ,,	४,८३० ,, ,,
सेटर्न	७१,००० ,,	८,६१० ,, ,,
यूरेनस	३३,२५० ,,	१७,८२० ,, ,,
नेपचून	३७,२५० ,,	२७,९१० ,, ,,
प्लुटो	३,६५० ,,	३७,००० ,, ,,

सारणी—१

प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव

डा० सत्यप्रकाश

प्रोफेसर गोपाल स्वरूप भार्गव के निधन का समाचार हम सब लोगों के लिये दुःखद है। विज्ञान परिषद् के पुराने कार्यकर्ता एक-एक करके हमसे अब अलग होते जा रहे हैं। संस्थापकों में से डा० गंगानाथ झा, प्रो० रामदास गौड़ और प्रो० सालिगराम भार्गव नश्वर शरीर का त्याग कर चुके। विज्ञान परिषद् के पुराने प्रधान मंत्री श्री ब्रजराज जी न रहे और श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव जी हम लोगों के देखते-देखते काल-ग्रस्त हो गये। उस पुरानी पीढ़ी के कार्यकर्त्ताओं में से जिन्होंने सन् १९१३-१९१६ के लगभग से वैज्ञानिक साहित्य के सृजन में बराबर सहयोग दिया, प्रो० गोपाल स्वरूप जी भी एक थे।

सन् १९१८ में जब से मैं प्रयाग आया, प्रो० भार्गव के दर्शन का मुझे सौभाग्य मिलता रहा। मैं कायस्थ पाठशाला (स्कूल) में पढ़ता था, और प्रो० गोपाल स्वरूप जी उस समय के डिगरी कालेज में अध्यापन का कार्य करते थे। यों भी मेरे परिवार का प्रयाग के एक भार्गव-परिवार से संबंध बहुत पुराना और घनिष्ठता का है, अतः यदाकदा अनेक पारिवारिक अवसरों पर गोपाल स्वरूप जी से भेंट हो जाती थी। मुझे स्मरण है कि सन् १९२०-२१ के जब मैंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा दी थी, गोपाल स्वरूप जी उस समय सम्मेलन के परीक्षा मंत्री भी थे। प्रो० ब्रजराज जी और गोपाल स्वरूप जी दोनों ही परिषद् में भी काम करते थे, और साहित्य सम्मेलन में भी। कायस्थ पाठशाला कालेज के साइंस विभाग के लेक्चर थियेटर में हम कतिपय परीक्षार्थियों ने प्रथमा और मध्यमा की परीक्षायें दीं, और वहाँ परीक्षा के प्रबन्धक भी गोपाल स्वरूप जी ही थे। ये वे दिन थे, जब सम्मेलन का कार्यालय किराये के मकानों में प्रयाग नगर की गलियों में घूमा करता था, और विज्ञान परिषद् के पास भी अपनी कोई जमीन या इमारत न थी। सन् १९२१ के लगभग प्रयाग नगर में विकास आयोजना के अन्तर्गत जीरो रोड (कामता प्रसाद कक्कड़ रोड) बनी, और तब एक बड़े टुकड़े को हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने क्रास्थवेट रोड और जीरो रोड के संगम पर खरीदा। सम्मेलन के इस टुकड़े से मिला हुआ ही एक प्लाट प्रो० ब्रजराज ने अपने लिए लिया, एक प्लाट आयुर्वेद पंचानन वयोवृद्ध पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल ने लिया, एक बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन ने, और एक महिला विद्यापीठ के प्रवर्त्तक बाबू संगमलाल अग्रवाल ने, और इनके घर के सामने ही क्रास्थवेटरोड पर इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट से नाममात्र की धनराशि देकर विज्ञान परिषद् के लिए भी एक छोटी सी जमीन ली गयी। इस आयोजना में गोपालस्वरूपजी, ब्रजराज जी और सालिग राम भार्गव जी का विशेष हाथ था। गोपाल स्वरूप जी और सालिग राम जी उन दिनों म्योर सेंट्रल कालेज के पास की कटरा की एक गली में रहा करते थे। परिषद् ने अपनी इस जमीन पर दो छोटी सी कोठरियाँ तैयार करायीं, और बहुत दिनों तक परिषद् का स्टाक इन्हीं कोठरियों में रहा। बहुत दिन बाद परिषद् ने यह जमीन कोठरियों सहित अच्छे दाम पर एक ग्राहक को बेच दी; क्योंकि परिषद् के अधिकांश कार्यकर्त्ता शहर से दूर यूनिवर्सिटी के निकट रहने लगे थे, और परिषद् की सम्पत्ति की सुरक्षा उन कोठरियों में संभव न थी।

प्रो० गोपाल स्वरूप जी की प्रेरणा से ही मैंने

"विज्ञान" में लेख लिखना आरंभ किया। मैं बचपन से ही कुछ न कुछ उलटा-सीधा लिखता रहा हूँ। मुझे स्मरण है कि मैट्रिक परीक्षा देने के अनन्तर ग्रीष्मावकाश में मैंने एक छोटी सी पुस्तिका "प्रकाश" विषयक लिखी थी, काशी के ज्ञानमण्डल से मैं पत्र-व्यवहार इसके छापने के संबंध में कर रहा था, प्रकाशक का कहना था कि पुस्तक ४६ पृष्ठ के लगभग छपकर होगी, और वे मुझे ।।) प्रति पृष्ठ पारिश्रमिक देंगे, मैं उनसे एक मुश्त ५०) मांगना चाहता था। ज्ञान मंडल की ओर से श्री जयदेव विद्यालंकार पत्र व्यवहार कर रहे थे। अकस्मात् मैं गोपाल स्वरूप भार्गव के घर गया हुआ था कि जयदेव जी भी वहीं मौजूद थे। भार्गव जी ने जैसे ही मेरा नाम जयदेव जी को बताया, जयदेव जी ने देखा कि "प्रकाश" का लेखक १५-१६ वर्ष की आयु का एक अनुभवहीन व्यक्ति है। उन्होंने मुझसे तो कुछ न कहा, काशी जाकर मेरी पाण्डुलिपि असमर्थता-प्रदर्शन के साथ लौटा दी। मेरी पहली कृति की इस प्रकार की कहानी रही है। मेरी पाण्डुलिपि प्रो० राम दास गौड़ को दिखायी गयी थी, मेरा उनका परिचय न था, पर वे इसे प्रकाशन के योग्य समझते थे, और ज्ञानमण्डल को उन्होंने इसके प्रकाशन की सम्मति दी थी। गोपाल स्वरूप जी भार्गव से जो मेरा नया परिचय हुआ, उसका प्रथम पुरस्कार मुझे यह मिला। "प्रकाश" की वह पाण्डुलिपि मेरे पास नहीं है, मेरे मित्र ठाकुर दत्त जी मिश्र मांग कर ले गये, और वह कहीं लुप्त हो गयी।

प्रो० गोपाल स्वरूप जी ने मुझसे "विज्ञान" के लिए लेख लिखने को कहा। उन्होंने मुझे वाट्स की "कमर्शल प्रौडक्ट्स आव इण्डिया" पुस्तक दी। उसमें से संकलन करके मैंने "कैलसियम" (खटिक) पर एक लेख "विज्ञान" के लिए लिखा। फिर एक-दो लेख मैंने और "विज्ञान" के लिए लिखा। इस प्रकार से मेरा और परिषद् या "विज्ञान" पत्रिका का संबंध प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव द्वारा ही आरंभ हुआ, और बाद को जब मैं बी०एस-सी० और एम० एस-सी० में अध्ययन कर रहा था, तब प्रो० और ब्रजराज के तकाजों ने मुझे "विज्ञान" के निकट ला दिया।

प्रो० गोपाल स्वरूप जी भार्गव के कई लोकप्रिय व्याख्यान मैंने सुने। विज्ञान परिषद् के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर कई दिन सार्वजनिक व्याख्यान हुआ करते थे। इन व्याख्यानों में सबसे पहला व्याख्यान श्रोता के रूप में मैंने गोपाल स्वरूप जी का ही "विज्ञानवाद" संबंध में सुना। भौतिक विभाग के लेक्चर थियेटर में म्योर कालेज में मैंने यह व्याख्यान सुना। म तो उस समय स्कूल का ही विद्यार्थी था। प्रो० गोपालस्वरूप जी की व्याख्यान-शैली बड़ी रोचक और सुगम थी। मुझे बचपन में भी यह व्याख्यान बहुत अच्छा लगा। मैजिक लालटेन द्वारा दिखाये गये चित्रों का मुझे आज भी स्मरण है।

प्रो० गोपाल स्वरूप जी के "विज्ञान" में छपे हुए कुछ लोकप्रिय लेखों का संग्रह ही "मनोरंजक रसायन" नाम से पुस्तकाकार विज्ञान परिषद् से छपा। उनके लिखने की रोचक शैली आज भी हम लोगों के लिए आदर्श है।

प्रो० गोपालस्वरूप जी रसायन के एम० एस-सी० थे। पहले तो वे कायस्थ पाठशाला कालेज में विद्यार्थियों को रसायन और भौतिकी दोनों पढ़ाते थे। वे बड़े सफल अध्यापक थे। बाद को जब वहाँ रसायन और भौतिकी के अलग-अलग विभाग हो गये, गोपाल स्वरूप जी केवल भौतिकी पढ़ाने लगे। उनके छात्र उनसे सदा स्नेह करते थे, और बड़ी निष्ठा से उनके प्रति सद्भावना रखते थे।

विज्ञान परिषद् ने जब अपनी रजत जयंती मनायी, तो उस अवसर पर जो विशेषांक निकला उसमें परिषद् का इतिहास लिखने का भार हम

(शेष पृष्ठ २०३ पर)

१. भूगर्भ स्थित महासागर के कोष

जिन भूगर्भवेत्ताओं ने इस असाधारण घटना का पता लगाया था कि पश्मिी साइबेरिया में जमीन के धरातल के नीचे बहुत बड़ा पानी का विस्तार है वे अपनी इस खोज पर आश्चर्यचकित रह गये क्योंकि उन्हें पता चला कि वह कोई साधारण जल-विस्तार नहीं है बल्कि वह भूगर्भ-स्थित एक विशाल समुद्र है जो साइबेरिया की पूरी निचली भूमि के नीचे उबल रहा है मानो यह भूमि उसके ऊपर एक चँदोवे की तरह तनी हो। यह जल-विस्तार कम से कम तीस लाख वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है और इसमें जल का भण्डार अक्षुण्ण है। इस पानी के ऊष्मा-सम्बन्धी स्रोत पश्चिमी साइबेरिया के अन्य ऊष्मा सम्बन्धी भाण्डारों से कई सौगुने अधिक हैं।

बहुत कम भी आँका जाय तो इसमें हजारों घन किलोमीटर पानी होगा। इस जल-भण्डार में पानी का दबाव इतना अधिक है कि कुएँ खोदने वाली ड्रिलों से निकलने वाले फव्वारे प्रायः पृथ्वी से बहुत ऊपर तक चले जाते हैं। जमीन की जिन तहों में यह पानी है वे **मेशोजोइक** तथा **केनोजोइक** युगों की भुरभुरे पत्थर की चट्टानें हैं और यह पानी यहाँ करोड़ों वर्ष पहले संचित हो गया था। पानी १,००० से ३,००० मीटर तक की गहराई पर पाया जाता है और उसका ताप ४०° से १२०° तक होता है। पश्चिमी साइबेरिया के गर्म पानी में सबसे अधिक अंश थोरियम क्लोराइड का है और दक्षिण में कार्बनयुक्त नमक का जिसमें थोड़ा सा आयोडीन और ब्रोमीन भी मिला होता है।

पश्चिमी साइबेरिया में गर्म पानी की खोज कितना महत्त्व रखती है? इधर कुछ वर्षों से वैज्ञानिक पृथ्वी की प्राकृतिक ऊष्मा का उपयोग करने से सम्बन्धित समस्याओं की ओर अधिक ध्यान देने लगे हैं। इस ऊष्मा का स्रोत भूगर्भ में पाया जाने वाला पानी है जो गर्म होकर बहुत उच्च ताप प्राप्त कर चुका है। यह गर्मी जो ऊर्जा का एक अक्षुण्ण स्रोत है, करोड़ों टन कोयले और तेल के बजाय वहीं पर निकाल कर प्रयुक्त की जा सकती है। भू-ऊष्मा बिजलीघरों के निर्माण पर बहुत कम खर्च आता है क्योंकि उसमें ईंधन, वायलर के कमरों, गोदामों या रेलवे लाइनों की कोई जरूरत नहीं होती। बिजलीघर का स्व-चालित नियंत्रण भी सम्भव हो जाता है। इनमें ईंधन एक जगह से दूसरी जगह ले जाने की भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। दूसरे क्षेत्रों में, विशेष रूप से रसायन उद्योग में प्रयोग करने के लिए कोयला और तेल ज्यादा उपलब्ध होगा। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं है क्योंकि ऊष्मा-जल बड़ी आसानी से कुँओं से निकाला जा सकता है।

पृथ्वी के धरातल के नीचे बहुत बड़े विस्तार में कुनकुने, गर्म और अति गर्म पानी के भण्डार हैं। इटली में ऐसे बिजलीघर हैं जिनमें कई वर्षों से

अनेक कुओं भूगर्भ की भाप काम में लाई जा रही है। आइसलैण्ड की राजधानी रेकजविक में सारी गर्मी भ-गर्भ के पानी से प्राप्त की जाती है। न्यूजीलैण्ड में ऐसे बिजलीघर बनाये जा रहे हैं जिनमें ज्वालामुखी की भाप शक्ति प्रयोग में लाई जावेगी।

प्राकृतिक ऊष्मा-शक्ति का उपयोग करने के उद्देश्य से सोवियत संघ में भी इसी प्रकार का काम किया जा रहा है। कमचटका क्षेत्र में १२,००० किलोवाट वाला सोवियत संघ का प्रथम भू-ऊष्मा बिजलीघर बनाया जा रहा है जिसमें ज्वालामुखी की भाप प्रयुक्त की जायेगी। मखच-कला में कुओं से गर्म पानी निकालकर घरों को गर्म रखने, सार्वजनिक स्नानागार और धुलाईघरों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। यहाँ के निवासी सड़क पर लगे हुए नलों से अपने घर की आवश्यकता के लिए गर्म पानी ले लेते हैं। अनेक स्वास्थ्य-केन्द्रों में गर्मी भू-गर्भ के इसी गर्म पानी से पहुँचायी जाती है। साइबेरिया में इस गर्म पानी को इस्तेमाल करने वाली स्नान-चिकित्सा क्लिनिकें खोली गयी हैं। काकेशस, क्रीमिया, मध्य एशिया, कजाखस्तान और सोवियत संघ के अन्य भागों में गहरे कुओं का गर्म पानी इस्तेमाल होता है।

परन्तु साइबेरिया के भू-गर्भ में प्रकृति द्वारा संचित जल-भण्डारों के उपयोग की दिशा में ये पहले चरण ही हैं। साइबेरिया, जहाँ पहले इने-गिने ही स्वास्थ्य-केन्द्र थे, अब स्नान-चिकित्सा का बहुत बड़ा केन्द्र बनता जा रहा है। पश्चिमी साइबेरिया के बड़े-बड़े शहरों और बस्तियों में स्नान-चिकित्सा की विशेष सुविधा प्रदान करने वाली क्लिनिकें खुल गयी हैं।

चिकित्सा सम्बन्धी उपयोग के अतिरिक्त भू-गर्भ के इस ऊष्मा-जल से साइबेरिया के शहरों और कस्बों को उनकी आवश्यक गर्मी पहुँचायी जा सकती है। शहरों के आसपास सब्जियों के सरकारी फार्म बनाये जा सकते हैं, जहाँ पौधों की नर्सरियों को भू-गर्भ के पानी से गर्म रखा जा सकता है ताकि यहाँ के निवासियों को साल भर ताजी सब्जियाँ मिल सकें।

वह दिन दूर नहीं है जब साइबेरिया की अक्षुण्ण भू-गर्भस्थ ऊर्जा एक प्रशस्त धारा के रूप में प्रवाहित हो उठेगी और इस प्रकार हर साल हजारों टन कोयले और तेल की बचत होगी और सोवियत जनता को रहन-सहन की अधिक स्वास्थ्यजनक परिस्थितियाँ उपलब्ध होंगी।

२. सोवियत संघ में संश्लिष्ट रबड़

१९वीं शताब्दी के आरम्भ में जब रबड़ प्राप्त करने की विधि ज्ञात नहीं थी, रबड़ एक कौतूहल का विषय बना रहा। फिर रबड़ का नया जीवन आरंभ हुआ। विद्युत्शक्ति उद्योग का विस्तार होने और मोटरगाड़ियों के आगमन से यह आवश्यक हो गया कि रबड़ का उत्पादन बड़े पैमाने पर हो, साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि प्रकृति उद्योग की बढ़ती हुई रबड़ की वार्षिक मांग को पूरा करने में असमर्थ है।

बहुत से वैज्ञानिकों का मत था कि संश्लिष्ट रबड़ बन ही नहीं सकता। परन्तु सितम्बर १९१८ में जब सोवियत संघ में गृहयुद्ध छिड़ा हुआ था, विख्यात रसायनविदों की एक बैठक बुलाई गई जिसमें संश्लिष्ट रबड़ बनाने के तरीकों का अध्ययन किया गया। सोवियत संघ की राष्ट्रीय आर्थिक उच्च परिषद् ने सन् १९२६ में सबसे अच्छी औद्योगिक विधि द्वारा संश्लिष्ट रबड़ तैयार करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता की घोषणा की। इसमें रसायनशास्त्रियों, वनस्पतिविदों और कृषिविशेषज्ञों ने भाग लिया। प्रतियोगिता के निर्णायकों के पास सोवियत वैज्ञानिकों तथा विदेशी वैज्ञानिकों ने औद्योगिक विधि द्वारा संश्लिष्ट रबर तैयार करने से सम्बन्धित प्रस्ताव भेजे। परन्तु उनमें से केवल दो प्रस्तावों को जिनको सोवियत वैज्ञानिकों ने भेजा था, विचार करने योग्य समझा

गया। प्रस्तावों के भेजने वाले थे लेनिनग्राद के प्रो० लेवेदेव और बाइजोव। सेर्गेई लेवेदेव के सुझाव पर विचार-विमर्श करने का निर्णय किया गया, क्योंकि उनकी विधि बहुत ही सरल थी तथा उसके लिए कच्चा माल भी उपलब्ध था।

सेर्गेई लेबेदेव ने निर्णायकों को दो किलोग्राम संश्लिष्ट रबड़ का टुकड़ा दिया। यह रबड़ उन्होंने अपनी प्रयोगशाला में ही तैयार किया था। अब यह आवश्यक था कि नये तरीके का अर्द्ध-औद्योगिक पैमाने पर परीक्षण किया जाय। अतः लेनिनग्राद में संश्लिष्ट रबड़ के कारखाने का निर्माण हुआ। १५ फरवरी १९३१ का महत्वपूर्ण दिवस आने से पहले कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बहुलीकरण (पौलीमेराइजेशन) कक्ष में नवनिर्मित कारखाने के तमाम कर्मचारी एकत्रित हुए। वे मंच के चारों ओर खड़े थे जहाँ पर कणों को संश्लिष्ट रबड़ में बदलने की अन्तिम क्रिया होती थी। लेबेदेव ने फोरमैन को संकेत किया। पोलीमेराइजर का ढक्कन धीरे से खुला। पेंदी में भूरे रंग का पदार्थ पड़ा था। यही पदार्थ सोवियत संघ में बना पहला रबड़ और विश्व का पहला संश्लिष्ट रबड़ था।

शीघ्र ही यारोस्लाव्ल की सीमा पर एक बड़े संश्लिष्ट रबड़ कारखाने का निर्माण आरम्भ हो गया और अन्त में वह दिन भी आया जब सोवियत संघ में संश्लिष्ट रबड़ से बने टायरों से भरा पहला ट्रक कारखाने से बाहर निकला।

यह आवश्यक था कि टायरों का निरीक्षण कर उनकी तुलना प्राकृतिक रबड़ से बने टायरों से की जाती। इस उद्देश्य से सड़क पर एक विशेष प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। एक मोटरगाड़ी मास्को से काराकुम रेगिस्तान के लिए रवाना हुई। प्राकृतिक ब्राजीलियन रबड़-टायरों की अपेक्षा कारखाने में बने टायर अधिक मजबूत निकले। इन टायरों ने वैज्ञानिकों की प्रयोगशालाओं में वापस पहुँचने से पहले कई मीलों की दूरी तय की। निर्णयानुसार संश्लिष्ट रबड़ को प्रथम स्थान दिया गया।

मई १९५८ में सोवियत संघ की कम्युनिष्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के पूर्ण अधिवेशन में एन० एस० ख्रुश्चेव ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि सोवियत संघ के रसायनविदों का कम समय के अन्दर संश्लिष्ट रबड़ के उत्पादन में निपुणता प्राप्त करना एक बड़ी सफलता थी। सोवियत संघ में यह कार्य जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका में जिसका रसायन उद्योग बड़ा उन्नत है, प्रारम्भ होने से कई वर्ष पहले आरम्भ किया गया था।

सोवियत वैज्ञानिक इन परिणामों से संतुष्ट नहीं हुए। हर वर्ष सोवियत अनुसन्धानशालाओं में नये किस्म के रबड़ तैयार किये जाते और रबड़ की प्रत्येक किस्म की अपनी ही विशेषता होती थी। रबड़ की ये किस्में इंजीनियरिंग में और अधिक उन्नति के लिये नये-नये क्षेत्रों में प्रयुक्त होती थीं।

कुछ वर्ष पूर्व एक नये किस्म के रबड़ की जिसको तैलीय रबड़ कहा जाता है, नयी विधि अपनायी गयी। इस रबड़ में विशेष प्रकार का लोच और टिकाऊपन होता है। इन टायरों में संश्लिष्ट रबड़ टायरों की अपेक्षा १५-२० प्रतिशत अधिक समय तक काम करने की क्षमता होती है। यह स्मरणीय है कि टायरों की क्षमता १० प्रतिशत बढ़ने का अर्थ है देश में ७,००० लाख रूबल सालाना की बचत।

अभी हाल में बने पोल्यूरेथन रबड़ का स्थायित्व बहुत अधिक बढ़ गया है—८०,०००-१२०,००० किलोमीटर चलने पर भी इन टायरों पर कोई विशेष बल नहीं पड़ता है। इस प्रकार रबड़ की आयु मोटरगाड़ी से लम्बी हो जाती है।

सिलीकौन रबड़ के अतिरिक्त अन्य प्रकार के रबड़ों को भी वातावरण का ताप, अतिबैंगनी किरणें और ओजोन नष्ट कर देते हैं। सोवियत वैज्ञानिकों ने संश्लिष्ट रबड़ में पहल की थी। यह नया पदार्थ सिलिको-कार्बनिक के मिश्रण से बनाया जाता है

और इसका स्वरूप –१००° से +३००° सेंटीग्रेड ताप तक नहीं बदलता। यह रबड़ आधुनिक वायुयानों में व्यापक रूप से प्रयुक्त होता है।

रबड़ की चीजें बनाने के लिए सिलीकोन को व्यापक रूप में प्रयोग करने के मार्ग में अभी हाल तक द्रावण की जटिल प्रविधि एक बाधा थी। मास्को अनुसन्धान संस्थान के वैज्ञानिकों ने द्रावण की नई विधि खोज निकाली है जिसमें उच्च ताप और जटिल यंत्रों की आवश्यकता नहीं पड़ती।

आजकल सोवियत कारखानों में जो रबड़ बनता है उसमें सबसे अच्छी किस्म कौन सी है? इस प्रश्न का उत्तर बहुत ही जटिल है। यह बात इस पर निर्भर है कि रबड़ को किस प्रयोग में लाया जाता है। संश्लिष्ट रबड़ के जन्मदाता अकादमीशियन लेबेदेव ने एक बार कहा था कि "रबड़ों के संश्लेषण में अनन्त विविधता होती है। सिद्धान्त के द्वारा इस विविधता की सीमा नहीं बनायी जा सकती। चूँकि प्रत्येक नये रबड़ के उत्पादन सम्बन्धी अपने मौलिक मानदण्ड होते हैं, इसलिए रबड़ उद्योग को वांछित उपादानों वाले रबड़ चुनने की व्यापक स्वाधीनता रहेगी, जो स्वाधीनता अभी नहीं है।"

३. सोवियत संघ में विटामिनों के सम्बन्ध में खोज

सोवियत संघ की विटामिन अनुसंधान संस्था मास्को की एक शान्त गली में है। इस संस्थान में वैज्ञानिक अनुसन्धान होते हैं और ऐसे उपाय निकालने का प्रयत्न होता है जिससे प्रविधि में सुधार हो तथा उत्पादन-व्यय में कमी हो। कुछ समय पहले तक पौधे, मछलियाँ और सागर के कुछ अन्य जीव विटामिनों के प्रधान स्रोत थे। बहुत बड़े क्षेत्र में कुछ फसलें उगायी जाती थीं और उनसे नगण्य मात्रा में विटामिन मिलते थे।

अब वैज्ञानिकों को असीमित मात्रा में विटामिन प्राप्त करने की विधि ज्ञात हो गयी है। बहुत ही सादे ढंग के और आसानी से मिलने वाले पदार्थों से वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के द्वारा विटामिनों के अणुओं की संख्या में वृद्धि कर दी जाती है। विटामिन जीवधारियों के लिये नितान्त उपयोगी होते हैं। उनके अभाव में पाचन क्रिया ठीक से नहीं होती और भयानक बीमारियाँ घेर लेती हैं। बीस से अधिक प्रकार के विटामिन खोज निकाले गये हैं और नये विटामिनों की खोज हो रही है।

यह सिद्ध हो चुका है कि विटामिन ए जो त्वचा और आँखों की झिल्ली को ठीक रखने के लिए आवश्यक होता है, केवल ह्वेल मछली के यकृत से ही नहीं प्राप्त किया जा सकता, बल्कि ऐसेटिलेन से भी प्राप्त किया जा सकता है। सोवियत संघ के विटामिन संस्थान में विटामिन प्राप्त करने के लिए नई विधि की परीक्षा की जा चुकी है तथा बड़ी मात्रा में संश्लिष्ट विटामिन तैयार किया जाता है।

रसायन उद्योग के व्यर्थ पदार्थों का उपयोग पैण्टोथेनिक एसिड बनाने में किया जाता है। पैंटोस का अर्थ है सर्वव्यापी। यह कृत्रिम "सर्वव्यापी" विटामिन स्वाभाविक की अपेक्षा अधिक गुणकारी सिद्ध हुआ है। विशेष बात यह है कि एक ग्राम प्राकृतिक पैण्टोथेनिक एसिड प्राप्त करने के लिए बैल या भेड़ के १०० किलोग्राम यकृत की आवश्यकता पड़ती है। इस विटामिन को देने से पहले पालतू पक्षियों का भार तेजी से बढ़ता है। दूसरी ओर ऐण्टीबायोटिक दवाओं के विकार रोकने के लिए यह विटामिन बहुत गुणकारी है।

यह सब जानते हैं कि विभिन्न प्रकार की स्नायविक गड़बड़ियां दूर करने के लिए विटामिन बी-१ नितान्त उपयोगी होता है। पहले इस विटामिन को तैयार करने के लिए टनों अनाज लगता था। अब रूसी संस्थान ने एथिलेन आक्साइड से इसका रूप तैयार कर लिया है।

विटामिन बी-२ के बिना नेत्र अपना काम ठीक से नहीं कर सकते। मुर्गी पालन में भी इसकी आवश्यकता होती है। जिन मुर्गियों को यह विटामिन दिया जाता है, वे तेजी से बढ़ती हैं और अण्डे भी

देती हैं। संस्थान ने एक रासानिक प्रक्रिया के द्वारा यह विटामिन तैयार किया और कालिनिन के विटामिन कारखाने में इसका उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है।

विटामिनों का प्राकृतिक उत्पादन भी रूस में होता है। लेनिनग्राद के निकट क्रास्नोदार में और चेलियाबिन्स्क के आसपास विटामिन वाली फसलें उगायी जाती हैं। सोवियत संघ के विटामिन अनुसन्धान संस्थान के केन्द्रीय जैव स्टेशन में ८० हेक्टर में एक बाग है। यह अनोखी प्रयोगशाला मास्को से बहुत दूर नहीं है। अनुसन्धानकर्मी यहाँ लगाये पौधों और जंगली पौधों को लेकर खोज करते हैं कि किन पौधों में विटामिन तत्व अधिक हैं। वे पौधों के संकरण से अधिक मूल्यवान किस्में तैयार करते हैं।

पशुपालन में विटामिन का उपयोग बढ़ रहा है। उनके चारे के साथ विटामिन मिला दिये जाते हैं। इससे जानवरों का भार बढ़ता है। पी० पी० — **नाइकोटाइनिक एसिड** इस दिशा में बहुत ही लाभदायी होता है। इसे मकई के चारे के साथ मिलाकर दिया जाता है।

यह आवश्यक नहीं कि हमारे दैनिक भोजन में सदा आवश्यक मात्रा में विटामिन हों, जैसे राई की बनी रोटी में बी-१ विटामिन काफी रहता है, लेकिन सफेद रोटी में उसका प्रायः अभाव होता है। जिन खाद्यान्नों के ऊपर का छिलका साफ कर दिया जाता है, उनमें विटामिन बहुत कम रह जाता है, जैसे चावल और बाजरे में। प्रत्येक व्यक्ति को वांछित मात्रा में विटामिन मिलते रहें, इसके लिए यह आवश्यक है कि भोजन में विटामिन मिला दिये जाएँ। बच्चों के अनेक संस्थानों जैसे शिशुशालाओं और किंडरगार्टनों तथा कतिपय कैण्टीनों में ऐसा किया जाता है। शीघ्र ही रूस में ऐसी रोटी, मक्खन, दूध, पनीर तथा खाने की दूसरी चीजें मिलने लगेंगी जिनमें वांछित मात्रा में विटामिन मिले होंगे। लम्बी यात्रा करने वाले यात्री को अपने साथ बड़ी मात्रा में सन्तरे या सब्जियाँ लेकर जाने की आवश्यकता न पड़ेगी। छोटे से डिब्बे में अलग-अलग विटामिनों की गोलियाँ ले जाना काफी होगा। महासागरों की यात्रा करने वालों, जेट विमान-चालकों और अण्टार्कटिक का अनुसन्धान करने वालों के लिए विटामिनों की ये गोलियाँ सुविधाजनक होंगी। यह अनुमान ठीक ही होगा कि पहला अन्तरिक्ष यात्री अपने साथ विटामिन ले जाना अपनी सबसे जरूरी चीजों में मानेगा।

———

१. औषधीय पौधों का उद्यान

मास्को में औषधीय तथा सुगन्धि वाले पौधों के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने के लिए एक संस्थान है जिसका उद्यान ११० एकड़ में फैला हुआ है और जिसमें देशी-विदेशी २५०० किस्म के पौधे हैं। पिछली शरद् ऋतु में इस उद्यान में प्राय: ५००० पेड़ और जड़ी बूटियों के पौधे लगाये गये थे और पिछले बसन्त में ३०० से अधिक प्रकार की जड़ी-बूटियों के पौधे और लगाये गये। सोवियत संघ के यूरोपीय भाग के पौधों के पास ही काकेशिया, क्रीमिया, मध्य एशिया और यहाँ तक कि चीन से "नये आये पौधे" वास करते हैं।

यह उद्यान १६० अनुसन्धानशालाओं से सम्बन्ध रखता है जिनमें से ९३ सोवियत संघ के बाहर की हैं।

हाल ही में हृद्रोग के उपचार में काम आने वाले पौधे एरीसियम के बीज भारत भेजे गये थे। हालैण्ड के एक उद्यान ने अरालिया के बीज मंगवाये। यह पौधा होमियोपैथी की दवाओं के काम में लाया जाता है। उच्च रक्तचाप में काम आने वाला सदाबहार पौधा इटली भेजा गया। दो सौ से अधिक किस्म के पौधे और बीज चीन भेजे गये। ब्रिटेन, फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी तथा अन्य देशों से पौधों और बीजों की मांग होती रहती है।

उधर यह उद्यान विदेशों से हर साल बीजों और पौधों के कोई ७००० नमूने मंगाता है।

२. अनेक रोगों की अचूक दवा-शहद

रोगोपचार के लिए शहद का उपयोग बहुत पुराना है। प्राचीन मिस्र में शहद के उपयोगी गुण लिपिबद्ध किये गये थे। प्राचीन यूनान की पौराणिक गाथाओं में देवताओं के भोजन अम्ब्रोसिया का गुणगान किया गया है। यह भोजन शहद से तैयार किया जाता था। प्राचीन युग के महान् चिकित्सक, "औषधियों के जनक" हिप्पेक्रटीस १०७ वर्ष तक जीवित रहे। वह सदा शहद खाते और अनेक बीमारियों का उपचार इस दवा से करते थे।

रूस अपने शहद के लिए प्रसिद्ध रहा है। प्राचीन रूसी महाकाव्यों में वर्णन मिलता है कि किस तरह जादूगर "एक सदी पुराने" शहद से लोक कहानियों के घायल वीरों के घावों का उपचार करते थे। अनेक प्रकार के क्षुद्र कीटाणुओं, जैसे रक्त को दूषित करने वाले कीटाणु, धनुषटंकार के कीटाणु आदि, और अर्बुदों का नाश करने की सक्रिय क्षमता शहद में होती है। इन तथ्यों के आधार पर शहद का उपयोग मवाद वाले ऐसे घावों और जलन के कारण हो गये ऐसे क्षतों का उपचार करने में होने लगा जिन पर दूसरी दवा का असर न होता था। जिन घावों और नासूरों पर शहद की पट्टी बांधी गयी, वे तेजी से साफ होने और भरने लगे।

एक क्लिनिक में जिसके अध्यक्ष प्रो० उदिन्तसेयव हैं, फेफड़ों के क्षय से पीड़ित कुछ रोगियों का उपचार शहद से किया गया। प्रत्येक रोगी को एक महीने तक प्रतिदिन सौ से डेढ़ सौ ग्राम तक शहद दिया गया। रोगियों का भार बढ़ा, खांसी कम हो गयी, उनका

मन अधिक प्रसन्न रहा तथा उनके रक्त के गठन में सुधार हुआ। शहद रक्त के लाल कणों में काफी वृद्धि करता है।

शहद से पेट के नासूर का उपचार करन से आशाप्रद फल निकले हैं। शहद अतिरिक्त अम्ल में कमी कर देता है। पेट में नासूर होने से अतिरिक्त अम्ल होगा। शहद गुणकारी भोजन भी है। मास्को के पौष्टिक भोजन संस्थान ने विशेष खाद्य विधि निरूपित की और उसके अनुसार पेट के नासूर से पीड़ित रोगियों को प्रतिदिन ६०० ग्राम शहद दिया गया। इसका फल यह हुआ कि उनके पेट का दर्द, जी मिचलाना और दिल में जलन तेजी से दूर होने लगी।

३. लकवे का अचूक इलाज

पोलियो, पक्षाघात या लकवे ने हाल के वर्षों में उग्र रूप धारण किया है। शिशु-पक्षाघात ने समूच विश्व में ही अपने पैर पसार रखे हैं। विभिन्न देशों के वैज्ञानिकों ने इस रहस्यमय पोलियो-विषाणु से संघर्ष के लिए संगठित प्रायास आरम्भ किया। अनेक वर्षों तक उन्होंने हानिरहित टीकों द्वारा मानव की पोलियो से रक्षा के उपाय ढूंढ़ने का प्रयत्न किया। अमरीका में तैयार की गई साक वैक्सीन इस कंटकाकीर्ण मार्ग पर पहला महत्वपूर्ण कदम था।

सोवियत मेडीकल विज्ञान अकादमी की परीक्षणात्मक औषधि संस्था के विषाणु विज्ञान विभाग ने १९५६ में पोलियो विरोधी जीवित सीरम तैयार करन का कार्य प्रारम्भ किया, जो कि मृत पोलियो विषाणु से प्राप्त की जाने वाली साक वैकसीन से भिन्न था। प्रख्यात जीवाणुशास्त्री प्रोफसर अनातोली अलेग्जान्द्रोविच एमोरोदिन्त्सेव और उनके दल के समक्ष एक बहुत अधिक कठिन कार्य उपस्थित था। जीवित पोलियो-विषाणु को अधिक से अधिक हल्का कर देने के बाद उसका इंजक्शन दिये जाने का विचार तक अत्यन्त आपत्तिजनक था।

जीवित सीरम के प्रथम परीक्षण बन्दरों पर किये गये। एक बन्दर की सुषुम्ना नाड़ी में हलके जीवित विषाणु का इंजक्शन दिया गया। बन्दर को रोग नहीं हुआ। उसके बाद दर्जनों परीक्षण किये गये जब तक कि वैज्ञानिकों को विश्वास नहीं हो गया कि हलका जीवित सीरम मानव प्राणियों के लिए भी हानिरहित है। किन्तु अभी इसे सिद्ध करना शेष था।

१९५७ के वसन्त में एक दिन प्रोफसर स्मारोदिन्त्सेव ने जीवित सीरम की परीक्षा स्वयं पर, अपने निकट के साथियों पर की। इसे अत्यन्त साधारण रीति से अन्दर पहुचाया गया। सिर्फ एक चम्मच भर दूध में हलके पोलियो विषाणु के करोड़ों कण विद्यमान थे रोग की अन्तर्विकासावधि (इन्कुबेशन पीरियड) बीत गई। कोई बीमार नहीं पड़ा। रक्त परीक्षा से ज्ञात हुआ कि रोगनिरोध क्षमता उत्पन्न हो चुकी है। किन्तु पोलियो तो मुख्यतया बच्चों पर आक्रमण करता है। इसीलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इसे "शिशु पक्षाघात" कहते हैं। विषाणु की क्रिया बच्चे के शरीर पर क्या होगी ?

जिन बच्चों को पहले पहल जीवित सीरम दिया गया, उनमें स्मोरोदिन्त्सेव की पञ्चवर्षीय पोती तथा उनके निकट साथियों के अपने बच्चे थे। वैज्ञानिक को अपने सीरम पर भरोसा था। बच्चे बिना हिचकिचाहट के दूध के चम्मच पी गये, जिनमें करोड़ों विषाणुकण थे। पहला महीना बीता। कोई दुर्घटना नहीं घटी। बच्चों को दूसरी खुराक दी गई, और बाद में तीसरी। इस तथ्य की पुष्टि हो गई कि जीवित सीरम हानिरहति है। सभी बच्चे स्वस्थ रहे, और उनमें स्थायी रोग-निरोध क्षमता उत्पन्न हो चुकी थी।

उसके बाद बहुत से बच्चों को टीके लगाये गये। टीका लगे हुए १५० बच्चों की जांच से बड़े उत्साहजनक परिणाम निकले। एक और परीक्षण ने इस तथ्य की पूर्णतया पुष्टि कर दी कि लेनिनग्राद की परीक्षात्मकण औषधि संस्था के विषाणु वैज्ञानिक सही मार्ग पर थे।

१९५७ में मेडीकल विज्ञान अकादमी तथा स्वास्थ्य मंत्रालय को सूचना मिली कि दो हजार बच्चों को टीके लगाये जाएँ।

रूस में पोलियो विरोधी जीवित सीरम के टीके प्रारम्भ हुए ढाई वर्ष बीत चुके हैं। लगभग २० लाख सोवियत बच्चों को इस ढंग से टीका लग चुका है। जीवित सीरम से एक भी व्यक्ति पोलियो से बीमार नहीं पड़ा, और यह स्वयं भी पूर्णतया हानिरहित सिद्ध हुआ है।

४. भुट्टे तोड़ने वाली मशीन

यूक्रेन के इंजीनियरों ने भुट्टे तोड़ने की एक नयी मशीन बनायी है। यह मशीन पके भुट्टे तोड़ लेती है। यह मशीन एक दिन में ७ हेक्टेयर खेत के भुट्टे तोड़ सकती है। इसमें किसी भी तरह का शारीरिक श्रम करने की जरूरत नहीं पड़ती।

५. कपास चुनने की मशीनें

सोवियत संघ में कपास उगाने के मुख्य क्षेत्र—उजबेक जनतंत्र में इस वर्ष ५००,००० टन कपास अर्थात् पिछले वर्ष से २००,००० टन अधिक कपास बटोरने के काम के यंत्रीकरण की योजनाएँ बनाई गई हैं। कपास चुनने की पांच नई मशीनें तैयार की गई हैं। एक मशीन कपास चुनने की स्वयंचालित मशीन है जो निर्दिष्ट मार्ग पर बिलकुल ठीक-ठीक चलती है। एक और आविष्कार हलके-फुलके गिनिंग मशीन का है जो कपास चुनने की मशीन पर फिट की गई है।

६. आग के सहारे कृषि निराई

खेतों में पंक्तियों के बीच-बीच में निराई करने पर भी कुछ घास-मोथे बच जाते हैं। आग के सहारे निराई करने से यह लाभ होता है कि सभी घास-मोंथे नष्ट हो जाते हैं। इसके लिए वे ही कल्टीवेटर प्रयुक्त किये जाते हैं लेकिन उनमें गैस बर्नर के स्थान में ब्लेड लगे रहते हैं। आग समस्त घास-मोंथों और दूसरे हानिकारक कीड़े-मकोड़ों को नष्ट कर देती है। आग से पौधों को बचाने के लिए विशेष प्रकार की ढालों का प्रयोग किया जाता है।

वोल्गा तट-स्थित सारातोव नगर के शोध संस्थान में गैसबर्नर युक्त कल्टीवेटर का निर्माण किया गया है। निकट भविष्य में इस प्रकार के कल्टी-वेटरों का बड़े पैमाने पर उत्पादन आरम्भ होने वाला है।

७. आलुओं को ताजा रखने के तरीके

सावधानी से नियंत्रित अवस्थाओं में आलुओं पर तेजसक्रिय किरणों का प्रभाव डालने से उनका स्वाद तीन साल तक बना रहता है। न वे सड़ते हैं और न उनमें अंखुवे आते हैं और वे तीन साल बीतने के बाद खाने में वैसे ही लगते हैं जैसे तीन साल पहले थे। वर्षों से मास्को के जैव-रसायन-संस्थान में इस सम्बन्ध में अनुसन्धान हो रहे हैं और अब यह घोषणा कर दी गई है कि यह प्रक्रिया हानिरहित है तथा इसे बड़े पैमाने पर काम में लाया जा सकता है।

इस साल मास्को के एक कारखाने में २५,००० टन आलुओं को इस प्रकार तेजसक्रिय किरणों से प्रभावित किया जायगा। सारा काम मशीनें करेंगी। आलू विशेष प्रकार के डिब्बों में भरे रहेंगे और विकिरण स्रोत के सामने से तीन बार ये डिब्बे गुजारे जायेंगे ताकि सब आलुओं पर समान रूप से प्रभाव पड़े।

यह सुझाव दिया गया है कि परमाणु उद्योग के व्यर्थ पदार्थ का उपयोग विकिरणस्रोत के लिए किया जाय। आगे चलकर यह प्रक्रिया और भी बड़े पैमाने पर होगी और इस तरह से "पुराने आलू" अतीत की चीज हो जाएँगे। संस्थान की जव रसायन रोग-निरोधक-शक्ति प्रयोगशाला के प्रधान प्रो० रुबिन का मत है कि यह प्रक्रिया दूसरी सब्जियों और फलों के भाण्डारों को सुरक्षित रखने के लिए भी बड़ी प्रभावशाली सिद्ध होगी।

पुस्तक समीक्षा

१. **प्रारम्भिक कुलाल विज्ञान**—लेखक-रामप्रकाश। प्रकाशक—काली सहाय, २०० पीली-कोठी, खिड़की अलीबेग, फैजाबाद, उ० प्र०। पृष्ठ संख्या १५४; मूल्य ३.७५ रु०। सन् १९५९।

यह पुस्तक 'सिरैमिक्स' के विषय में है। हाई स्कूल में इस विषय की शिक्षा प्रारम्भ हुए कई वर्ष हो गये, परन्तु कोई उपयुक्त पाठ्य पुस्तक न होने के कारण लेखक ने विद्यार्थियों के लिये हिन्दी में यह पुस्तक लिखी है। लेखक स्वयं इसी विषय के अध्यापक भी हैं अतः उन्होंने भरसक प्रयत्न किया है कि समस्त जानकारी वैज्ञानिक होते हुए भी सुरुचिपूर्ण हो। इसके लिये पुस्तक भर में रेखाचित्रों, सारणियों आदि का प्रचुरता से व्यवहार हुआ है।

समस्त पुस्तक चार भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में कुलाल विज्ञान का इतिहास, खनिजों के स्रोत, यान्त्रिक चित्रण इत्यादि के विवरण दिये गये हैं। द्वितीय भाग में कुम्भकार कला, तृतीय भाग में काँच तथा चतुर्थ भाग में एनामेल के वर्णन हैं। लेखक ने हिन्दी शब्दों के साथ ही अंग्रेजी के समानार्थी पारिभाषिक शब्दों का बिना संकोच के प्रयोग किया है। पुस्तक के प्रारम्भ में अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी रूपान्तरों की सूची भी दे दी गई है।

सरसरी निगाह पर पुस्तक अत्यन्त छात्रोपयोगी प्रतीत होती है परन्तु ध्यान देने पर ऐसा निश्चित होता है कि पुस्तक लेखन में पर्याप्त सावधानी नहीं बरती गई। उदाहरणार्थ, पुस्तक का नाम ही अत्यन्त भ्रामक है। लेखक ने कुलाल विज्ञान को "सिरैमिक्स" का पर्याय माना है परन्तु कुलाल का अर्थ "कुम्हार" होता है और निश्चित रूप से उसकी कला मिट्टियों के बर्तनों तक सीमित होती है। सिरैमिक्स पर अब कई पुस्तकें हिन्दी में उपलब्ध हैं। यथा, विज्ञान परिषद् से प्रकाशित 'पोर्सलीन' अथवा हिन्दी समिति द्वारा प्रकाशित "मृत्तिका उद्योग"। लेखक को चाहिये कि पुस्तक का नाम अवश्य ही बदल दें, जिससे नाम से विषय का बोध हो।

दूसरी विचित्रता है पारिभाषिक हिन्दी शब्दावली की। प्रारम्भ में दी गई सूची के अधिकांश शब्द भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली से भिन्न ही नहीं वरन् हास्यास्पद भी है। उदाहरणार्थ Refractory के लिये अगालनीय; Fusion point के लिये गालनांक, temperature range के लिये तापक्रम क्षेत्र, organic के लिये ऐन्द्रिक, viscous के लिये लसदार, master mould के लिये स्वामी साँचा आदि। जब तक इन कमियों को दूर करने का प्रयास नहीं किया जायगा, पुस्तक का यथेष्ठ स्वागत होना कठिन है। आशा है अगले संस्करण में इन सुझावों पर विचार किया जावेगा।

2. Hindi words Common to other Indian Languages—Hindi Punjabi, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, १९६०।

हिन्दी के राष्ट्र भाषा स्वीकृत हो जाने पर, आवश्यकता प्रतीत होने लगी है कि अन्य प्रादेशिक भाषाओं से उसका कहां तक साम्य है, ज्ञात किया जाय। यह प्रयास इसी दिशा में होने वाला प्रथम

प्रयास है। प्रायः २५०० शब्दों का प्रस्तुत संकलन यह सिद्ध करता है कि हिन्दी और पंजाबी की शब्दावली में आशातीत समानता है। परन्तु इस शब्दावली से वैज्ञानिक शब्दों के प्रयोग में कहां तक सफलता प्राप्त हो सकेगी, इसका कोई प्रयास नहीं किया गया। भविष्य में ऐसी समानता ढूँढ़ निकालना, जिसके द्वारा वैज्ञानिक शब्दावली के ग्रहण करने में सुविधा हो, अधिक श्रेयष्कर होगा। हमारा विचार है कि सामान्य जीवन से सम्बन्धित शब्दावली में साम्य न ढूँढ़ कर पारिभाषिक शब्दों की एकरूपता पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाय तो हमारे देश की भाषा सम्बन्धी अड़चन दूर होने के साथ ही सभी प्रान्तों में समान वैज्ञानिक शब्दावली के व्यवहार में सहायता मिले।

३. **विज्ञान प्रगति**, माघ १८८२, जनवरी-फरवरी १९६१। पृष्ठ संख्या २८, मूल्य ५० नये पैसे।

"विज्ञान प्रगति" के इस अंक में तीन वैज्ञानिक लेख हैं जिनमें सर्वश्रेष्ठ है डा० सद्गोपाल जी द्वारा लिखित "उडनशील सौगंधिक तेलों के कुछ नये संभाव्य स्रोत–भाग १। ऐसा प्रतीत होता है कि इस शृंखला में कई लेख प्रकाशित होंगे, जो निश्चित रूप से संग्रहणीय एवं पुस्तकाकार होने के सर्वथा योग्य होंगे। डा० सद्गोपाल ने सौगंधिक तेलों पर महत्वपूर्ण कार्य किये हैं अतः उनके द्वारा प्रस्तुत सामग्री अत्यन्त प्रामाणिक तो होगी ही, साथ ही वे हिन्दी के ज्ञाता हैं अतः उनकी भाषा में सहज प्रवाह है। यह बात अन्य दो लेखों में नहीं पाई जाती। प्रथम लेख — अंकुरित रागी के ऐन्जाइमों से खालों पर से बाल हटाने की विधि—के प्रारम्भ के अंश को देखें :

सिझाई और निचुड़ी खालों को एक **विलोमक पानी** में डुबोया जाता है। इस पानी में अंकुरित रागी का ऐन्जाइम निसार और साधारण नमक ४.५ पी-एच पर **उपस्थित** होता है। इसके पश्चात् खाल को **बेटित** किया जाता है।

मोटे टाइप के शब्द unhairing bath, at p.h. 4·5 तथा bating के अनुवाद रूप हैं।

स्पष्ट है कि न तो समुचित शब्दों का प्रयोग किया गया है और न वाक्य के गठन का ध्यान ही रखा गया है। आगे अन्य स्थलों पर "द्रव को नितार लिया जाता है," "यदि वे गीली नमकी होती हैं" "पानी की आयतन पर", "सीझे बोझ पर ५%", "एक से विलोमन के लिये" "ताप नीचा होता है" "एंजाइमी विधि"........जैसे प्रयोग हैं जो प्रथम दृष्टिपात पर ही हास्यास्पद प्रतीत होते हैं।

डा० सद्गोपाल जी के लेख में न जाने अन्य शब्दों के हिन्दी रूपों के बीच रिफ्रैक्टिव इंडेक्स, आप्टीकल रोटेशन, एसिडमान तथा बाद एस्टर मान जैसे विशुद्ध अथवा मिश्रित अंग्रेजी शब्द समूह किस प्रकार रह गये हैं। इनके हिन्दी समानार्थी शब्दों के प्रयोग किये बिना नागरी लिपि में लिख देने मात्र से कोई काम नहीं सरता।

तीसरे लेख में—द्रवों के सूक्ष्म प्रवाह नियंत्रक व्हील काक—में प्रथम कुछ पंक्तियों में दो स्थानों पर हिन्दी शब्दों के बाद अंग्रेजी शब्दों का नागरी में उल्लेख 'या' के बाद किया गया है जो भ्रामक है।

आशा है अगले अंकों में ऐसे दोषों के दूर करने का प्रयत्न होगा क्योंकि सरकार की ओर से प्रकाशित होने वाली इस अत्यन्त उपयोगी पत्रिका को भाषा-नीति के सम्बन्ध में पूर्णरूपेण दृढ़ तथा सुस्पष्ट होना चाहिये।

४. Provisional List of Technical terms in Hindi, कृषि–४ भूमि विज्ञान, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, १९६०।

कृषि शास्त्र से सम्बन्धित प्रस्तुत शब्दावली में ६१९ अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दों के हिन्दी पर्याय दिये गये हैं। हम निम्न शब्दों के सम्बन्ध में पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं, जो हमारे विचार से युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होते।

Aerobic वात, algal crust काई पपड़ी, alkaline Soil खारी मिट्टी, Anaerobic आवात, farm manure कार्बनी खाद, Base exchange मूलांश विनियम, buffer बफ़र, Cementation बन्धन, Clay complex मटियारी, disintegraton वियोजन, gel जैल, Gleization काई मिट्टी बनाना, halomorphic लोनी, Immature Soil कच्ची मिट्टी, lacustrine जलेरू, lichen लाइकेन, leaching अन्तर्गलन, lysis विलयन, trial प्रयोग, mature soil पकी मिट्टी, mull मल, moisture नमी, muck कुपांस, Net area sown खालिस बोया क्षेत्र, Peat पाँस, P.F Value पी० एफ० मूल्य, Clay मटियार, plate counting प्लेटीगणन, podsol भस्मी मिट्टी, Reed नरसल, Rock phosphate फासफेस मिट्टी, Rotten manure गला खाद, Saline soil खारी मिट्टी, Solum सोलम, Tilth बोने योग्य, वाप्सा, tuff टफ, water hyacinth गुलबकावली।

इसके अतिरिक्त छापे की अनेक भूले हैं। Base, buffer, gel, disintegration तथा rock के लिये स्वीकृत शब्द धनायन, प्रतिरोधी, श्लिषी, विखण्डन तथा चट्टान (शैल) हैं। काई पपड़ी अथवा काई मिट्टी बनाना जैसे अनुवाद सार्थक नहीं हैं। peat के लिये पाँस तथा muck के लिये कुपाँस भी उपयुक्त नहीं। प्रायः कम्पोस्ट को पाँस के नाम से पुकारा जाता है। PF value के लिये पी-एफ मूल्य न होकर पी-एफ मान होना चाहिये, Water hyacinth के लिये बहुप्रचलित शब्द "सुन्दरी" है। कच्ची तथा पक्की मिट्टी जैसे अनुवाद भी अत्यन्त ओछे प्रतीत होते हैं।

५. **इंस्टीट्यूशन आफ इंजीनियर्स (इंडिया) जर्नल**—हिन्दी विभाग, दूसरा खण्ड—यान्त्रिक, विद्युत और सामान्य इंजीनियरी जनवरी १९६१ सम्पादक, व्रजमोहन लाल, एम० आई० ई०।

इस पत्रिका में विद्युत इंजीनियरी की हिन्दी परिभाषावली प्रस्तुत की गई है जिसमें २५८ अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी समानार्थी शब्द दिये गये हैं। इन शब्दों के सम्बन्ध में सम्पादक ने पाठकों की सम्मतियां भी मांगी है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रस्तुत पत्रिका में पिछले कई मासों से ऐसी शब्दावली प्रकाशित होती रही है, जो केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय की विशेषज्ञ समिति द्वारा निर्मित है। इस प्रकार के प्रकाशन से सामान्य पाठकों को इन शब्दावलियों का परिचय मिलता रहता है जिससे से तत्सम्बन्धी साहित्य के समझने तथा लिखने में सुगमता का अनुभव करते हैं। प्रस्तुत शब्दावली में से हमें कुछ निवेदन करना है :

(१) ऐसे अनेक शब्द उसी रूप में गृहीत हुये हैं जिनके हिन्दी रूपों की आवश्यकता प्रतीत होती है यथा, ट्रंक (trunk), जम्पक (jumper), किक (Kick), लाइनमैन (lineman), फोक्सीकरण (Focussing) आदि।

(२) कतिपय शब्दों के ऐसे समानार्थी निर्मित हुये हैं जिनकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती यथा Rheostat के लिये धारा नियन्त्रक, mouth piece के लिये मोटर मुखिका आदि।

(३) कुछ शब्द ऐसे बनाये गये हैं जो उस रूप रूप में किसी भी वाक्य में वास्तविक अर्थ न दे पावेंगे यथा : Knife switch के लिये चाकू स्विच (इससे दो अर्थों का बोध होगा, चाकू तथा स्विच), lead lined wooden tank, के लिये सीसा अस्तर काठ टंकी (इसके लिये सीसा स्तरीय काठ-टंकी होता तो अच्छा होता), lampblack के लिये दीप काजल अथवा make and break contact के लिये जोड़ तोड़ सम्पर्क या make before break-contact के लिये तोड़ पूर्व जोड़ सम्पर्क (ये दोनों ही अनुवाद अत्यन्त हास्यास्पद हैं और हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद किये जाने की क्षमता पर सीधा कुप्रहार होगा)। यही बात Diaph-

ramless microphone के बिन-डायाफ्राम माइक्रोफोन जैसे अनुवाद में परिलक्षित होती है।

(४) Limiter, finder आदि के लिये सीमित्र तथा खोजित्र शब्द भी यथार्थता से परे प्रतीत होते हैं। इनके लिये सीमाबन्धक, खोजी या खोजक जैसे शब्द अधिक उपयुक्त होंगे।

आशा है सम्बन्धित अधिकारी इस ओर ध्यान देंगे।

६. हिन्दी विश्व कोष---१. अं-इले०, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी। पृष्ठ संख्या ५०४, मूल्य १५), प्रथम संस्करण, १९६०।

हिन्दी के राष्ट्रभाषा स्वीकृत हो जाने पर आवश्यकता हुई कि वैज्ञानिक एवं साहित्यिक विषयों पर प्रामाणिक विश्वकोष निर्मित हो, फलतः नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने इस कार्य को सम्पन्न करने का कार्यभार अपने ऊपर लिया। वस्तुतः अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी ३ वर्षों में प्रथम खंड का प्रकाशन सम्भव हो सका है जो भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना इसलिये कही जा सकती है क्योंकि विभिन्न विषयों के अधिकारियों ने अपने योग-दान द्वारा प्रस्तुत सामग्री के लेखन में अभूतपूर्व उत्साह दिखाया है।

हिन्दी विश्वकोष का प्रस्तुत खंड इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि इसमें दो उल्लेखनीय वैज्ञानिक समस्याओं का पहली बार अनुकूल हल ढूँढ़ निकाला गया है। ये समस्यायें थीं---रसायन शास्त्र में तत्वों के हिन्दीकरण के पश्चात उनके संकेतों का निर्धारण और फिर विभिन्न रासायनिक प्रतिक्रियाओं का सूत्रों द्वारा अंकन तथा संदर्भ लेखन की नवीन प्रणाली। हाँ, इतना अवश्य है कि इन दोनों को अन्तिम रूप देने के पूर्व अधिकाधिक विद्वानों का समर्थन प्राप्त होना आपेक्षित था परन्तु सम्पादकों ने इसके लिये न तो कोई समय दिया और न अपनी योजना को पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा प्रकट ही किया। फिर भी जो कुछ भी स्वीकृत हुआ है उसमें अधिक परिवर्तन या परिवर्द्धन की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। "विज्ञान प्रगति" तथा "अनुसन्धान पत्रिका" दोनों में कई वर्ष पूर्व से संदर्भ लेखन की यही प्रणाली अपनाई गई है।

इस वृहत्काय ग्रंथ के लिये विषयों का चुनाव अपने में एक बड़ी भारी समस्या है। ग्रंथ को देखने से प्रतीत होता है कि देशी तथा विदेशी स्थानों, व्यक्तियों धर्मों, रिवाजों, साहित्य तथा महत्वपूर्ण घटनाओं को समान रूप से स्थान दिया गया है परन्तु इनके विस्तारों में विषमतायें अवश्य हैं। साथ ही, विषयों के लेखन में एकरूपता नहीं आ पाई। प्रारम्भ में लेखकों के संक्षिप्त रूपों के विस्तार एवं विवरण के साथ साथ उनके द्वारा लिखित विषयों के उल्लेख नहीं किये गये, जो नितान्त आवश्यक है। संकेताक्षरों में तत्वों के नामों के लिये प्रयुक्त संकेतों का कोई निर्देश तक नहीं हुआ है। चाहिये तो यह था कि सम्पादकीय वक्तव्य के साथ ही इस सम्बन्ध में एक विस्तृत सूचना संलग्न की गई होती क्योंकि ऐसा न होने के कारण पाठकों को आगत नवीनताओं का समाधान अपने अनुसार करना पड़ेगा।

एक पूर्व प्रकाशित सूची के द्वारा विश्वकोष समिति ने शीर्षकों के सन्निकट विस्तार की विज्ञप्ति की थी, जिनमें से कुछ शीर्षकों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि अधिकांश शीर्षक आवश्यक विस्तार से बढ़े हुये हैं, उदाहरणार्थ अंतर्दह इंजन तथा अग्निसह भवन के विस्तार क्रमशः १० तथा १।२ स्तम्भ के बजाय २० तथा २ स्तम्भों में है। यही नहीं, एकाध शीर्षक बदल दिये गये हैं (यथा इंजीनियरी के लिये अभियान्त्रिकी), कुछ शीर्षक नये जुड़े हैं (यथा अमरूद) और कुछ शीर्षक छोड़ दिये गये हैं (यथा अनुसंधान (कृषीय))।

हिन्दी विश्वकोष में कुछ और विलक्षणताएँ हैं जिनकी ओर सम्पादकों का ध्यान आकृष्ट किया जाता है:

१. पृष्ठ ४९१ पर इलाहाबाद के विवरण में कहीं भी दिये गये सम्बन्धित चारों चित्रों का कोई निर्देश न होने से चित्रों का कोई महत्व नहीं रह जाता।

२. छापे की इतनी अधिक भूलें हैं कि विश्व-कोष जैसे प्रामाणिक ग्रंथ में उनका होना हमारी अक्षमताओं का द्योतक है। ऐसा प्रतीत होता है जल्दी के कारण अथवा कार्य देखने वाले व्यक्तियों की संख्या कम होने के कारण ही ऐसा हुआ है। इन भूलों में अधिकांशतः 'ऊ' की मात्रा का छूट जाना है (जो अक्षरों के टूटने के कारण भी हो सकती हैं)। सम्पादकों को चाहिये कि अगले खण्ड के साथ एक शुद्धि-पत्र भी प्रकाशित करें।

३. एक ही तत्व या यौगिक कई प्रकार से लिपित हुआ है यथा पृ० ४१४-४१५ में एक ही पैरा-ग्राफ में सलफाइड तथा सल्फाइड, कैल्सियम तथा कैलसियम, कोबाल्ट (पृ० ४१४) तथा कोबल्ट (पृ० ४२१), रजत (पृ० ४१४) तथा सिल्वर (पृ० ४१५), ऐल्युमीनियम (पृ० ४१५) तथा एल्यूमिनियम (पृ० ४२३) आदि। यहीं नहीं, परमाणु भार को कहीं परमाण भार और कहीं परमाणु भार है (देखिये ४२३ पृष्ठ सारणी में ३ स्थान पर, पृ० ४४२ पर), फासफोरस के लिये सारणी में फास्फोरस रूप स्वीकृत है परन्तु पृ० ४४३ पर फसफोरस छपा है। ग्लुकोस को अधिकांशतः ग्लुकोज अथवा ग्लूकोज लिखा गया है।

४. अनेक स्थलों पर भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली का ध्यान नहीं रखा गया। यथा पृ० ४१४ पर "पतले घोल" आया है जिसे "तनु विलयन" होना चाहिये था। पृ० ४४२ पर एक विचित्र कथन है शक्ति ताप का ही दूसरा रूप है। वास्तव में पूरे लेख में "ताप" शब्द का प्रयोग उष्मा के स्थान पर हुआ है (जबकि स्वीकृत शब्दावली अनुसार ताप = Temperature)।

५. कतिपय स्थानों में भयंकर भूलें हुई हैं यथा पृ० ४९२ में मणिभों के स्थान पर मणियों; पृ० ४१४ पर आ††अ.यन के स्थान पर आ. †† आयतन का अर्द्धव्यास। पृ० ४९३ में समीकरणों की संख्यायें १, २ नहीं छपीं जबकि थोड़ी ही दूर पर नीचे उनका निर्देश है।

अन्त में दो शब्द, हमें, पृ० ४२१-२४ में दी गई तत्वसारिणी के सम्बन्ध में कहने हैं :

१. शब्दों के नीचे हटकर दूसरे शब्द लिख कर तत्वों के संकेत एक ओर जहाँ विशिष्टतापूर्ण हैं वहीं दूसरी ओर सामान्य लेखन पद्धति में कठिन एवं छापे की कठिनाइयों से परिपूर्ण भी होंगे।

२. आक्सीजन के लिये "औ" किसी भी प्रकार तर्क युक्त नहीं प्रतीत होता। इसे 'आ' करके आयोडीन को "आय" किया जा सकता है इटबियन तथा इट्रियम के लिये इ ब तथा इ ट भी उपयुक्त नहीं जान पड़ते। टरबियम के लिये ट र के बजाय 'ट' ही पर्याप्त होगा।

आशा है कि विश्वकोष के अगले अंकों में उप-रोक्त प्रकार की समस्त बातों पर ध्यान देकर राष्ट्र-भाषा के इस प्रामाणिक ग्रंथ को प्रामाणिकतम बनाने का उद्योग किया जायगा। परन्तु यह तभी सम्भव है जब विशेष रूप से विज्ञान सम्बन्धी समस्त सामग्री का अवलोकन करने तथा उसे प्रामाणिकतर बनाने के लिये अधिकाधिक व्यक्तियों एवं पत्र-पत्रिकाओं का सहयोग प्राप्त किया, साथ ही समस्त चित्रों को और लघु आकार करके दिया जाय, और छपाई में पतला टाइप हो जिससे कम पृष्ठों में अधिक सामग्री प्रस्तुत की जा सके।

१. डा० कोठारी का यह विचित्र प्रस्ताव

शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार, ने डा० डी० एस० कोठारी द्वारा लिखित "भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक एवं प्राविधिक शब्दावली की समस्या" "(The problem of scientific and technical terminology in Indian languages — A draft outline") नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की है। १२ पृष्ठों के इस प्रकाशन में हिन्दी में अनूदित होने वाले वैज्ञानिक साहित्य अथवा मौलिक साहित्य के सम्बन्ध में कई महत्वपूर्ण किन्तु आश्चर्य में डालने वाले वक्तव्य दिये गये हैं। डा० कोठारी भौतिकी के लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिक हैं। सुना जाता है कि हिन्दी निर्देशालय के वे सम्मानित अध्यक्ष भी होंगे। उन्होंने भारत जैसे विस्तृत देश में भाषा की एकरूपता पर बल देते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि देश में हिन्दी के माध्यम से उच्च वैज्ञानिक शिक्षा प्रदान करने के लिये यह आवश्यक है कि कुछ नीतियों के आधार पर वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद अथवा सृजन किया जाय। उनका विचार है कि एक ओर जहाँ पाठशालाओं में विज्ञान पढ़ाने के लिए प्रान्तीय भाषाओं में ही शिक्षा की आवश्यकता है, कालेजों में विद्यार्थियों को अंग्रेजी सीखनी ही पड़ेगी। इसके समर्थन में वे यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि अंग्रेजी तथा रूसी भाषा में ही सर्वाधिक वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित होता है अतः प्रत्येक शोधकर्ता को अंग्रेजी तथा एक अन्य भाषा जानना आवश्यक है। उन्होंने हिन्दी के समर्थकों तथा विद्वानों के समक्ष "वैज्ञानिक शब्दावली आयोग" की सिफारिशों को दोहराया है और अपने सुझाव रक्खे हैं। इन सुझावों में "अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली" को देवनागरी में गृहीत किये जाने का समर्थन किया गया है। इस शब्दावली से उनका अभिप्राय यह है कि "जितने अंक हैं वे बिना किसी परिवर्तन के "अन्तर्राष्ट्रीय रूप" में स्वीकृत हों। साथ ही समस्त प्रकार के संकेत, सूत्र तथा समीकरण भी उसी रूप में लिखे जायँ एवं अंग्रेजी या अन्य विदेशी भाषाओं में लिखित ग्रंथों अथवा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध निबन्धों के सन्दर्भ निश्चित रूप से उन्हीं भाषाओं की लिपियों में दिये जायँ। उनका हिन्दीकरण या देवनागरीकरण सर्वथा अवांछित है।"

उनका दूसरा विचित्र सुझाव है कि "भारतीय भाषाओं में ऐसे वैज्ञानिक साहित्य का प्रकाशन सर्वथा बन्द कर दिया जाय जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप की अवहेलना करते हुए मनमानी ढंग से संकेतों तथा सूत्रों को परिवर्तित कर दिया गया है। उन्होंने इस सम्बन्ध में यह निष्कर्ष दिया है कि ऐसे प्रकाशनों के द्वारा न केवल हिन्दी में वैज्ञानिक परिभाषावली को ही अपार क्षति पहुँचती है वरन् विज्ञान का भारी अहित होता है।"

उपरोक्त दोनों प्रसंगों में उन्होंने परिशिष्ट में दिये गये टिप्पण-ब का निर्देश किया है। इस टिप्पण -ब में हिन्दी विश्वकोष के सद्यः प्रकाशित प्रथम भाग का एक अंश उद्धृत किया गया है।

खेद है कि उक्त प्रकार के निर्देशों एवं संकेतों द्वारा इस विद्वान लेखक ने "हिन्दी विश्वकोष" के सम्पादकों पर ही कलंक का टीका नहीं मढ़ा वरन् सम्पूर्ण देश में राष्ट्र भाषा हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक उन्नयन के प्रयास को गहरा आघात पहुँचाया है। जो लोग हिन्दी के पक्षपाती हैं एवं जिन्होंने अपने राष्ट्र में वैज्ञानिक शिक्षा के लिये हिन्दी को उपयुक्त समझ कर ही उसे राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन किया, उनके लिये इस प्रकार के लांछन तिलमिला देन वाले हैं।

प्रश्न यह है कि क्या सकेतों, तत्वों तथा सूत्रों के हिन्दीकरण के द्वारा हम विज्ञान की अन्तर्राष्ट्रीयता को लांछित कर रहे हैं ? ऐसा कदापि नहीं है। जब प्रारम्भ से हमारे छात्र हिन्दी में विज्ञान का अध्ययन करेंगे तो कालेज या विश्वविद्यालय में जाकर उनको यह सूचित करना कि अंग्रेजी या रूसी भाषा का अध्ययन किये बिना वे वैज्ञानिक नहीं बन सकते, कहाँ तक युक्तियुक्त होगा ! साथ ही, हिन्दी के माध्यम से शिक्षा देते हुए उनसे अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी लिपियों के ज्ञान की बात भी भोंडी प्रतीत होती है। इतना तो निर्विवाद सत्य है कि प्रारम्भ से हम विदेशी भाषाओं की ओर विद्यार्थियों को उन्मुख नहीं करना चाहेंगे। अपनी राष्ट्र भाषा को ही समृद्ध बनाने का प्रयत्न करते हुए हम उसी के माध्यम से समस्त प्रकार की कठिनाइयों को हल करना चाहेंगे। हाँ, यह सच है कि संदर्भ ग्रंथों के अवलोकन एवं प्रयोग के लिये हमें तत्सम्बन्धी भाषा एवं लिपि जाननी आवश्यक होगी परन्तु यह जरूरी न होगा कि हम उस ग्रंथ के नाम को अपनी भाषा की लिपि में न लिखकर विदेशी भाषा या लिपि की आयोजना करें। सभी दृष्टियों से सन्दर्भों को हमें अपनी भाषा तथा अपनी लिपि के द्वारा व्यक्त करना होगा। यदि हम किसी पुस्तक का नाम नागरी लिपि में लिख दें तो उससे यह अर्थ लगाना कि विज्ञान की 'अन्तर्राष्ट्रीयता' नष्ट हुई, ठीक नहीं।

डा० कोठारी ने अपने मत के समर्थन में जर्मन, अंग्रेजी, तथा जापानी भाषाओं में समान रूप से सन्दर्भों के लेखन की प्रवृत्ति के उदाहरण परिशिष्ट में दिया है। परन्तु उन्होंने "हिन्दी विश्वकोष' में सन्दर्भ लेखन प्रवृत्ति की भर्त्सना इसलिये की है कि उनकी जानकारी में यह शीघ्र ही प्रकाशित हुआ ग्रंथ था। इस प्रसंग में विद्वान लेखक (डा० कोठारी) को ज्ञात होना चाहिए कि हिन्दी विश्वकोष की रचना केवल अंग्रेजी जानने वाले लोगों के लिए ही नहीं वरन् उन लोगों के लिए भी की गयी है जो अंग्रेजी का ABC भी नहीं जानते। साथ ही आजकल कला वर्ग के सभी ग्रंथों में सन्दर्भ और टिप्पणियाँ पाठकों की सुविधा के लिए प्रायः अनूदित कर ही छापे जाते हैं। उदाहरणस्वरूप इतिहास, शिक्षाशास्त्र, राजनीतिशास्त्र एवं अर्थशास्त्र आदि के ग्रंथों को देखा जा सकता है जो पाठकों के लिए उपयोगी और सामायिक भी सिद्ध हुए हैं। यही बात हिन्दी विश्वकोष के सन्दर्भ लेखन की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में भी हुयी है। वस्तुतः हिन्दी विश्वकोष के सम्पादकों अथवा लेखकों ने एक उचित प्रवृत्ति का ही समर्थन किया है। विज्ञान परिषद् से प्रकाशित अनुसन्धान पत्रिका ने सम्भवतः इन प्रयासों के पूर्व इस क्षेत्र में प्रयास किया था, जिसकी ओर भी विद्वान लेखक ने ध्यान नहीं दिया।

विज्ञान के सरलीकरण एवं हिन्दीकरण के लिये आवश्यक है कि उसकी एक ही लिपि हो और इसके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि समस्त प्रकार के सूत्रों तथा संकेतों एवं अंकों को, हिन्दी अक्षरों से ही प्रदर्शित किया जाय। हमारा ऐसा विश्वास है कि हिन्दी में प्रथम बार प्रकाशित "हिन्दी विश्वकोष" में अत्यन्त पूर्वदर्शिता का परिचय देते हुए सम्पादकों ने सूत्रों तथा संकेतों का हिन्दीकरण करते हुए राष्ट्र भाषा की हित-रक्षा की है। साथ ही हमारा अनुरोध है कि डाक्टर कोठारी इस सम्बन्ध में और सूक्ष्मता से विचार करके अपना अभिमत दें

अन्यथा हिन्दी के राष्ट्र भाषा होते हुए राष्ट्र का उतना कल्याण न हो पावेगा जिसकी कामना सबों के अन्तरों में हैं। भारतीय वैज्ञानिक परम्परा का भविष्य देश की राष्ट्र भाषा के द्वारा नियन्त्रित होना है न कि विदेशी भाषाओं से। एकरूपता लाने के लिए आवश्यक होगा कि देवनागरी लिपि के द्वारा ही समस्त प्रकार के विचार व्यक्त किये जायँ। वैज्ञानिक उपलब्धियों से परिचित होने तथा अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय के लिये एक नहीं कई विदेशी भाषायें सीखें, तो कोई हानि न होगी परन्तु हम सबों के मस्तिष्कों में अपनी राष्ट्र भाषा के प्रति श्रद्धा एवं सार्वभौमिकता का विश्वास होना चाहिये।

विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि केन्द्रीय सरकार ने नागरी प्रचारिणी सभा को आदेश दिया है कि हिन्दी विश्वकोष में द्वितीय खण्ड से अंग्रेजी अंकों एवं अंग्रेजी सूत्रों का ही व्यवहार हो। सचमुच बड़े ही लज्जा का विषय होगा यदि राष्ट्रभाषा की प्रमुख संस्था नागरी प्रचारिणी अपने अडिग सिद्धान्तों की हत्या करके सरकार के इस दुराग्रह का समर्थन केवल आर्थिक लाभ की दृष्टि से स्वीकार करे!

२. इण्डिया कनाडा एटामिक रिएक्टर

१६ जनवरी को प्रधानमन्त्री नेहरू ने ४० राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति में ट्राम्बे अनुसंधान केन्द्र में १० करोड़ रुपये की लागत से निर्मित इण्डिया-कनाडा एटामिक रिऐक्टर का उद्घाटन किया। इस अवसर पर भाषण देते हुए उन्होंने इसे "अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का प्रतीक" कहा और यह घोषणा की कि इस रिऐक्टर से प्राप्त लाभों का उपयोग अन्य तमाम देशों, विशेषतः एशिया तथा अफ्रीका, के निवासियों के हित साधन में किया जायेगा। इस रिऐक्टर का विशेष महत्व इसलिये है कि इससे प्राप्त रेडियो सक्रिय पदार्थों को केवल शान्तिपूर्ण उपयोगों के लिये सुरक्षित रखा जावेगा। भारत का यह तीसरा रिएक्टर अपनी कोटि का विश्व में अद्वितीय संयन्त्र है।

भारतीय परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष डा० भाभा ने इस रिऐक्टर के तीन मुख्य कार्य बताये हैं:

१. परमाणु ऊर्जा से सम्बद्ध भौतिक, रासायनिक, जैविक तथा धातुकर्मी समस्याओं पर भूलभूत शोध करना।

२. स्वदेश तथा कोलम्बो योजना के अन्य देशों के कायकर्त्ताओं को नाभिक प्रविधियों में दक्ष बनाना, तथा

३. चिकित्सा, कृषि तथा उद्योग के लिये समस्थानिकों का निर्माण करना एवं जैविक तथा चिकित्सा सम्बन्धी शोधों के लिये संकेतक-तत्वों का अध्ययन करना।

हमारा देश जिस प्रकार से वैज्ञानिक क्षेत्र में अग्रसर होने का प्रयास कर रहा है, वह महत्वपूर्ण है और इसमें सन्देह नहीं कि वह दिन दूर नहीं जब हमारे कृषक तक परमाणु ऊर्जा के चमत्कारी उपयोगों से लाभान्वित होने लगेंगे। अहिंसावादी भारत के लिये यही सर्वथा उपयुक्त भी होगा क्योंकि उसे युद्ध सम्बन्धी शस्त्रास्त्रों के निर्माण में रत नहीं होना।

———

[पृष्ठ १८६ का शेषांश]

लोगों ने प्रो० गोपाल स्वरूप जी पर ही छोड़ा। इसी प्रकार जब प्रो० सालिगराम भार्गव के निधन पर हमने विशेषांक निकाला, तो उसके लिए भी हमने गोपाल स्वरूप जी का ही सहाय्य लिया। म्योर कालेज की जमीन पर जब परिषद् का भवन बना, तब कई बार हम गोपाल स्वरूप जी को अपने अधिवेशनों में लाये।

इधर कई वर्ष से प्रो० भार्गव अस्वस्थ रहने लगे थे। कायस्थ पाठशाला से निवृत्ति पाने पर वे कटरे के दुमंजिले मकान में रहते थे, और बहुत दिनों तक सपत्नीक गंगास्नान के लिए बेली घाट की ओर जाया करते थे। यह मार्ग मेरे मकान के निकट है। जब कभी दम्पति थकते तो एक पुलिया पर बैठकर क्षण-दो-क्षण विश्राम करते। उन्हें अभिवादन करते हुए मुझे विशेष आनन्द और सन्तोष होता। इधर एक वर्ष से वे चलने में भी असमर्थ रहे। आज केवल उनकी स्मृतियाँ हमारे पास शेष रह गयी हैं। कई पीढ़ियों के विज्ञान विषय के लेखकों को प्रो० गोपाल स्वरूप जी से प्रेरणा मिली, और वे उनके स्नेह-भाजन बने। उनके निधन से संतप्त परिवार के प्रति समवेदना प्रकट करें, इसके अतिरिक्त और हम कर ही क्या सकते हैं?

विज्ञान पुरस्कारों की घोषणा

सन् १९६० के स्वामी हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार निम्नलिखित व्यक्तियों को उनकी रचनाओं पर प्रदान किये गये :–

उच्चतर साहित्य : (दो सहस्र रुपये), लेखक श्री भ० नं० यघाणी, (निर्माण विज्ञान के सिद्धान्त)।

जनोपयोगी साहित्य : (एक सहस्र रुपया), लेखन श्री सुरेश सिंह, (जीव जगत।

बालोपयोगी साहित्य : (पाँच सौ रुपया), लेखक श्री केशव सागर (हवा की बातें)

रमेश चन्द्र कपूर
प्रधान मन्त्री
विज्ञान परिषद्
प्रयाग।

भाग ९२

संख्या ६

फाल्गुन २०१७

मार्च, १९६१

पृष्ठ

प्रति अंक ४० न० पै०
वार्षिक ४ रुपय

सम्पादक—डा० शिवगोपाल मिश्र

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिगराम भार्गव	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—प० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगाशंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रामेश वेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकरराव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण—लेखक एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर	२ रुपया
१०—कलम पैबन्द—श्री शंकरराव जोशी	२ रुपया
११—जिल्दसाजी—श्री सत्य जीवन वर्मा	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद	१ रुपया
१३—वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद, वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० न०पै०
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपया
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम खुगड़ान	३ रुपया
१९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
२०—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रु० ५० न०पै०
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकरराव जोशी	३ रु० ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनिया—श्री रामेश वेदी	४ रुपया
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्र नाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान शालायें	२ रुपया
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
२६—रेल इंजन, परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया
२७—भारतीय कृषि का विकास—डा० शिवगोपाल मिश्र	५ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जानेताति जीवन्ति विज्ञान प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ९२ | २०१७ विक्र० फाल्गुन १८८२ शाकाब्द मार्च १९६१ | संख्या ६

अटलाण्टिक महासागर का तलीय स्वरूप

रामबोध पांडेय

स्थल के सदृश जल भी प्रकृति का एक प्रधान अवयव है। पृथ्वी के चारों ओर सुविस्तृत महासागरों का जाल फैला हुआ है, जिसके दुर्गम अन्तराल में अनेक उपगूढ़ रहस्य विद्यमान हैं। विज्ञान की प्रगति के साथ ही महासागरों के तलों का भी समुचित अध्ययन हुआ। अटलांटिक महासागर और उसके तल का अध्ययन अपेक्षाकृत अधिक विस्तार के साथ हुआ है। विभिन्न खोजों के परिणाम स्वरूप इसके अन्तराल में ऐसी आकृतियाँ पाई गई हैं, जो मानव मस्तिष्क की कल्पना से भी परे थीं, और जिनका यथार्थ ज्ञान उसे आश्चर्य चकित किए बिना नहीं रहता। अटलांटिक महासागर का आकार प्रायः अधिक अनियमित है; दक्षिण की ओर जहाँ यह अण्टार्कटिक महासागर से मिलता है, इसकी चौड़ाई बहुत अधिक है किन्तु भू-मध्य रेखा की ओर अफ्रीका एवं दक्षिणी अमेरिका के मध्य में यह काफी संकरा है। इसका अधिक विस्तार अफ्रीका और उत्तरी अमेरिका के बीच में है। इसके अनन्तर उत्तर की तरफ यह फिर सँकरा हो जाता है। इसकी औसत गहराई २ मील से अधिक है।

चित्र १.

यह महासागर सभ्यता और विज्ञान में उन्नत दो महाद्वीपों—अमेरिका एवं योरप—के बीच स्थित है; अतः इसका वैज्ञानिक अध्ययन सबसे अधिक हुआ है। यहाँ हमें अटलांटिक महासागर के अभ्यन्तर

में प्राप्त तलीय आकृतियों का ही अध्ययन करना है; अतएव जल-स्तर से नीचे के स्वरूप का ही विवेचन किया जाता है। जिस तरह स्थल पर विभिन्न आकृतियाँ दिखाई पड़ती हैं उसी तरह जल के भीतर भी अनेक आकृतियाँ विद्यमान हैं। अटलांटिक महासागर में प्राप्त मुख्य आकृतियाँ ये हैं :

१. महाद्वीपीय मग्नस्थल (कांटीनेंटल शेल्फ)

अन्ध महासागर का महाद्वीपीय मग्नस्थल अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है और २,००० मीटर की गहराई तक सीमित है। इसकी चौड़ाई ५०,००० तथा २५,००० मील के बीच में है। चौड़ाई तटीय रेखा पर निर्भर है। अफ्रीका तट के सहारे बिस्के की खाड़ी से उत्तमाशा अन्तरीप तक तथा दक्षिणी अमेरिका तट पर रियोग्रैन्डी तक यह अधिक सँकरा है। इस स्थान पर यह ५० मील से कम है। विस्तृत निमग्नस्थल अमेरिका के उत्तर-पूर्वी तट तथा योरप के उत्तर-पश्चिम तट के सहारे पाए जाते हैं। यहाँ चौड़ाई १५० मील से २५० मील के बीच है। इसी मग्नस्थल पर ग्रांड तथा डोबर बैंक स्थित हैं। कारसन के अनुसार हैटरस अन्तरीप (उ० अ०) के उत्तर में महाद्वीपीय मग्नस्थल १५० मील चौड़ा है और गल्फ स्ट्रीम इसके ऊपर प्रवाहित होती है। इसी पर हडसैन की खाड़ी, बाल्टिक सागर, कैरेबियन सागर, भूमध्य सागर आदि जलराशियाँ स्थित हैं।

२. मध्य अटलांटिक कगार

अटलांटिक महासागर के मध्य में एक कगार स्थित है, जो कि उत्तर में आइसलैंड से लेकर भूमध्य रेखा से होता हुआ दक्षिण में बावेट द्वीप तक फैला है। यह लगभग ९,००० मील लम्बा कगार है। इसकी सर्वप्रथम खोज १९ वीं शती में एक जर्मन अन्वेषक मोटिअर द्वारा और इसके बाद आगे चल कर अटलांटिस द्वारा सम्पादित हुई। उत्तरी भाग में आइसलैंड एवं स्कॉटलैंड के बीच में इस कगार को 'विविल टौमसन' कगार कहते हैं। यहाँ पानी पूर्णतया छिछला है (२,००० मीटर से कम गहरा), ग्रीनलैंड के दक्षिण में यह मध्यवर्त्ती कगार एक पठार के रूप में चौड़ा हो जाता है। इसे 'टेलीग्रैफिक' पठार कहते हैं। यह दक्षिण की ओर चौड़ा हो जाता है और आकस्मिक रूप से पूर्व की ओर ढालू हो जाता है और एक द्रोणी (बेसिन) का आकार ग्रहण कर लेता है। पश्चिम की ओर लगभग ५०° के समीप एक अन्य लघु कगार पूर्व की ओर लक्षित होता है, जिसे न्युफाउन्डलैंड उभार कहते हैं। इसके बाद यह दक्षिण की ओर बढ़ता है और उत्तरी अमेरिका तथा अफ्रीका के तट के सहारे चलता है। ४०° के दक्षिण में यह कगार विस्तृत हो जाता है। भूमध्य रेखा के निकट दो नवीन शाखाएँ उद्भूत हो जाती हैं जिन्हें सियराल्योन उभार तथा पारा उभार कहते हैं। भूमध्य रेखा के पश्चात् यह कगार सीधे पूर्व की ओर बढ़ता है और फिर दक्षिण की ओर बढ़ जाता है। ०° तथा १०° दक्षिणी अक्षांश के बीच गिनी कगार प्राप्त होता है। यहाँ जल ४,००० मीटर गहरा है। इस भाग में कगार सब जगह से अधिक चौड़ा है—प्रायः ६०० मील। ४०° द० अक्षांश पर रियोग्राण्ड कगार (Reogrande ridge) दक्षिणी अमेरिका की ओर बढ़ा दिखाई पड़ता है। उत्तर से दक्षिण इसकी आकृति अँग्रेजी के अक्षर S से मिलती-जुलती है।

इसके दोनों किनारों पर गर्त, द्रोणियाँ एवं द्वीप आदि पाए जाते हैं। पीको द्वीप समुद्र-स्तर से लगभग ७,००० फीट से ८,००० फीट तक ऊँचा है। उत्तरी भाग में मध्यवर्त्ती कगार को डॉलफिन उभार और दक्षिणी भाग में चैलेञ्जर उभार कहते हैं। भूमध्य रेखा पर रोमान्स गर्त इसे दो भागों में बाँटती है, अन्यथा यह एक क्रमिक आकृति है।

इसकी उत्पत्ति के विषय में अनेक विद्वानों ने अपने मत प्रस्तुत किए है :

(अ) **हाँग महोदय**—इनके अनुसार मध्य अटलांटिक कगार का उद्भव दोनों ओर से उत्प्रेरित दबाव के कारण हुआ है।

(ब) **वेगनर महोदय**—इनके मतानुसार जब अमेरिका पश्चिम की ओर प्रवाहित हुआ, तो अमेरिका महाद्वीप का एक अवयव पीछे छूट गया और उसी ने इस कगार का निर्माण किया।

(स) **ग्रेगरी महोदय**—इनका कहना है कि अतीत में कोई अटलांटिक महाद्वीप था जिसका अधिकांश भाग किसी विशेष उथल-पुथल के परिणामस्वरूप दोनों ओर समुद्र में निमग्न हो गया। अवशिष्ट अंश आज भी इस कगार के रूप में विद्यमान हैं।

(द) **टेलर तथा डाली महोदय**—इन दोनों महाशयों के मतानुसार पर्वत-निर्माण करने के लिए महाद्वीपों के पश्चिम तथा पूर्व की ओर अग्रसारित विस्तार के फलस्वरूप मध्य में अवशिष्ट अंश द्वारा इस कगार का उद्भव हुआ।

(य) **मलेनग्राफ महोदय**—इनके अनुसार अटलांटिक बेसिन में कर्षण प्रक्रिया के सक्रिय होने पर हलका सियाल स्थल अलग बह गया और सारी सीमा का जल भाग खुला रह गया; बाद में किन्हीं भूगर्भिक शक्तियों के कारण सीमा ऊपर उठ गया और इस कगार का सृजन हुआ। यह विचार बाद के विद्वानों द्वारा बहुत कुछ अमान्य सिद्ध हुआ है।

(र) **स्टौब महोदय**—इनका कहना है कि इस कगार का सम्बन्ध अल्पाइन मोड़ से है। यह काफी नवीन है। योरप और अमेरिका में अल्पाइन या टरसरी पर्वतों के निर्माण के समय इसका उद्भव हुआ था। इस विचार की भी कटु अलोचनाएँ हुई हैं क्योंकि जहाँ तक उत्तरी अटलांटिक कगार का
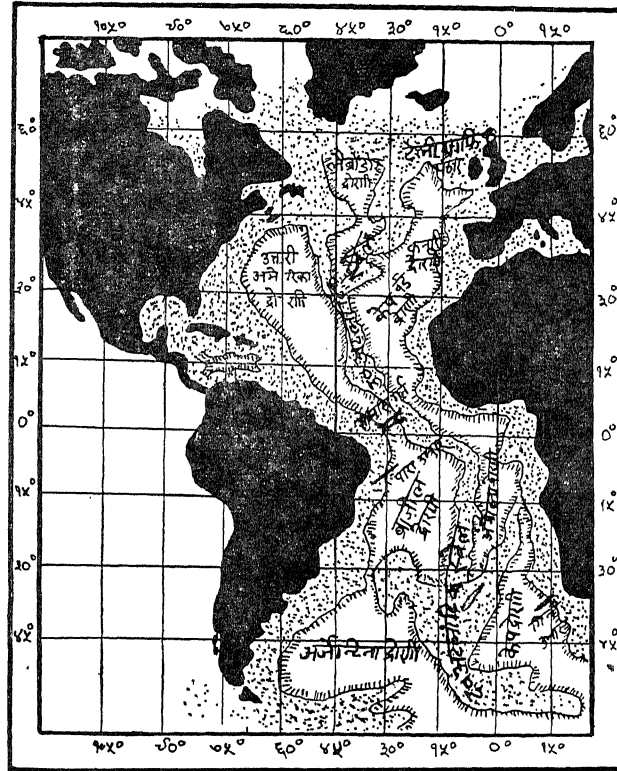
चित्र २. अटलांटिक महासागर के उभार एवं द्रोणियाँ

प्रश्न है, हम अल्पाइन फोल्डिंग से उसका सम्बन्ध जोड़ सकते हैं; किन्तु दक्षिणी अटलांटिक कगार के लिए इस महासागर के तट पर कोई ऐसी मोड़-पद्धति नहीं लक्षित होती।

वेगनर का सिद्धान्त सामान्य रूप से प्रस्तुत किया जाता है। कर्षण के सिद्धान्त का प्रथम प्रतिपादन ड्यूटोयट महोदय ने किया था।

३. **द्रोणियाँ :**

अटलांटिक महासागर में प्राप्त द्रोणियों में प्रमुख्य ये हैं :

(क) **लैब्रोडोर द्रोणी :** यह लैब्रोडोर नदी के मुहाने के सम्मुख है, जो लगभग ४,००० मीटर गहरी है।

(ख) **पश्चिमी द्वीप समूह द्रोणी :** इसे अमेरिका द्रोणी कहते हैं, जो ४०° तथा ३०° उ० अक्षांशों के बीच पश्चिमी द्वीप समूह के पूर्वोत्तर तथा संयुक्त राज्य के पूर्व में न्युफाउण्डलैंड एवं पारा उभारों के मध्य में स्थित है। प्रायः ५,००० मीटर गहरी यह द्रोणी सबसे बड़ी द्रोणी है। सबसे गहरा भाग पश्चिम की ओर पाया जाता है।

(ग) **अर्जेण्टिना द्रोणी :** यह दक्षिणी अमेरिका के पूर्वी तट पर अर्जेण्टिना के समीप ४०° और ५०° द० अक्षांशों के बीच स्थित है। इसमें एक अथाह सागर या गर्त भी हैं।

(घ) **वर्ड अन्तरोप द्रोणी :** अफ्रीका के पश्चिमी तट के निकले हुए भाग के समीप दो द्रोणियाँ हैं जो उ० अमेरिका द्रोणी के पूर्व में हैं। इनके अन्तर्गत उत्तर में लघु कनारी द्रोणी तथा दक्षिण में वर्ड अन्तरीप द्रोणी हैं।

(ङ) **स्पैनिस द्रोणी :** यह अज़ोर उभार के उत्तर में अवस्थित है।

(च) **अंगोला द्रोणी :** इसे पश्चिमी अफ्रिका द्रोणी भी कहते हैं। इसके दक्षिण में **केप वेसिन** तथा **अगुलहास** द्रोणियाँ पाई जाती हैं।

४. **अथाह सागर :**

अटलांटिक महासागर की तलीय स्थलाकृतियों के अन्तर्गत इन सागरों का भी विशेष स्थान हैं। पश्चिमी विद्वान मरे महोदय के अनुसार यहाँ करीब १९ अथाह सागर हैं जो ३,००० फैदम से भी अधिक गहरे हैं किन्तु महत्व की दृष्टि से चार प्रमुख हैं :

अथाह सागर उत्तरी अमरिका द्रोणी के दक्षिण में स्थित है जो ६,००० मीटर गहरा है। इसे **नैरिस अथाह सागर** कहते हैं।

दूसरा अथाह सागर प्वेटरिको द्वीप के उ० पू० में स्थित है जो ४,६६२ फैदम गहरा है।

तीसरा अथाह सागर भूमध्य रेखा पर स्थित हैं। इसे **रोमान्स अथाह सागर** कहते हैं। यह मध्य अटलांटिक कगार को दो भागों में बाँटता है। इसकी गहराई ४,७६७ फैदम है।

चौथा अथाह सागर दक्षिणी अटलांटिक में दक्षिणी सन्ड विज द्वीपों के सहारे पाया जाता है। इसकी गहराई करीब ४,६४५ फैदम है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अटलांटिक महासागर के आभ्यन्तरिक स्वरूप के ये नानाविध प्रकार प्रकृति के रहस्यों में नया स्तर जोड़ते हैं। जल के भीतर भी स्थल जैसी इन आकृतियों की स्थिति सचमुच विचित्र है। हो सकता है नवीन खोजों से और भी आश्चर्यजनक आकृतियां स्पष्ट हो सकें और महासागर में पाए जाने वाले उभार एवं कगार कभी किसी भूगर्भिक आन्दोलन के कारण समुद्र स्तर से ऊपर उठकर द्वीपों का रूप धारण कर लें। यह भी सम्भव है कि किसी आन्तरिक शक्ति या हलचल वश तट के निमग्न स्थल ऊपर आकर महाद्वीपों को नया अंग प्रदान करें। कल्पित सम्भावनाओं की अनेक राशियाँ इस स्थलाकृति पर सम्भव हैं, जो भविष्य में कभी न कभी प्रतिफलित अवश्य हो सकती हैं।

किसान और उसके खेत

सालिगराम शर्मा

कृषि को **किरखी** या **खती** कहा जाता है। खेती करने वाले आदमी को **किसान** या **खेतिहर** कहते हैं। किसान के जोते-बोये जाने वाले छोटे-छोटे भूमिखण्डों को **खेत** कहा जाता है। खेतों के समूह या पंक्ति को **खेतारी** कहते हैं। एक किसान प्रति वर्ष जितने खेतों को जोतता-बोता है वे समष्टि रूप में उसकी **जोत** कहलाते हैं। जोते जाने वाले खेतों की पंक्ति या सिलसिले को **जोतारी** कहा जाता है। एक किसान जितने बीघे खेतों की खेती करता है वह उतने का **जोतार** (जोतने वाला स्वामी) माना जाता है। किसान के कृषि सम्बन्धित काम को **किसानी**, **किसनई**, **खेतवई** या **खेतवही** कहा जाता है। 'खेतवई' या 'खेतवही' प्रायः वे काम होते हैं जो केवल खेत पर किये जाते हैं।

किसान अपने खेतों का नामकरण विभिन्न आधारों पर करता है। नीचे किसान के खेतों के वर्गीकरण पर विचार किया जाता है :

१. उपज के आधार पर

किसान के जिन खेतों में उपज कम होती है उन्हें **पतरिहा**, **निपंदी**, **अँकनहाँ**, या **सीट** कहते हैं। जो खेत अधिक उपजाऊ होते हैं उन्हें **जोरावर** या **कलाँ** खेत कहा जाता है। जिस खेत में बोने पर प्रायः कुछ कहीं उत्पन्न होता उसे **ऊसर** या **उसरहा** खेत कहते हैं। मध्यम श्रेणी की उपज के खेत को **मंझा** नाम दिया जाता है। तृतीय श्रेणी की पैदावार के खेत को **चाँचर** कहते हैं।

२. स्थिति के आधार पर

गाँव के बिल्कुल आस-पास के खेतों को **गोयँड़**, **गोयँड़हा**, **गौंहान**, या **गौहनियाँ** कहा जाता है। जहाँ भूमि कुछ ऊँची होती है वहाँ के खेतों को **डाँड़ी** का खेत कहते हैं। अधिक ऊँचे स्थान के खेत को **ऊँचे**, **ऊँच** या **ऊँचवा** का खेत कहते हैं। जो खेत बड़े टीले पर होता है उसे **भीटा** का खेत कहते हैं। भूमि के निचले स्तर के खेत को लोग **खलार** खेत कह कर पुकारते हैं। जो खेत किसी पुराने जमीदार या राजा की गिरी हुई पुरानी इमारत के स्थान पर बनाया रहता है उसे **कोट** का खेत कहते हैं।

बड़ी नदियों के किनारे के खेतों को **कछार** कहा जाता है। छोटी नदियों के किनारे के खेत को **नदियार** कहते हैं। बरसाती नदी के पाट के निचले खेतों को **तरी** कहा जाता है। नदियों से बहुत दूर स्थित और ढालू खेतों को **उपरवार** कहते हैं। गाँव या जंगल के नाले के किनारे के खेतों को **नरहा** खेत कहा जाता है। इसी तरह तालाब के पास रहने वाले खेत को **तलहा खेत** कहते हैं।

जो खेत किसी वृक्ष की छाया में रहते हैं उन्हें **छँहेल**, **छँहेलहा**, **झरहा**, **झरायल** या **मरायल** खेत कहा जाता है।

जिस खेत के स्थान पर कभी बस्ती रही हो और खोदने से वहाँ ईंट आदि निकलती हो उसे **डीह** का खेत या **सींगौ** का खेत कहते हैं।

जिस खेत में ईंट पकाने के लिए कभी **पजावा** (ईंट पकाने के लिए लकड़ी और उपलों का ढेर) लगाया गया हो उसे **पजावा का खेत** कहा जाता है।

खेत की अधिक चौड़ी और ऊँची मिट्टी की सीमा रेखा को **खाई** कहते हैं। अतः जिस खेत के चारों ओर खाई बाँधी रहती है उसे **खैहवाँ** या **खैयहवाँ** कहा जाता है।

जंगल या वन को गाँवो में **बन** कहा जाता है, इसलिए जो खेत 'बन' के पास हैं या 'बन' काट करके बनाये गये हैं उन्हें **बन का खेत** या **बनहाँ खेत** कहते हैं।

कुछ लोग **बाग** में भी पशुओं को खिलाने के लिए खरीफ की फसल बो देते हैं। इस तरह के खेत को **बाग का खेत** कहते हैं। इसके अतिरिक्त बाग के आस-पास के दूसरे खेतों को भी 'बाग का खेत या **बगहा खेत** कहा जाता है।

जो खेत किसान के घर से प्रायः तीन फर्लाङ्ग से अधिक दूर पर स्थित होता है उसे **पाही का खेत** कहते हैं। 'पाही' के विषय में लोकोक्ति प्रसिद्ध है :—

> 'पाही परग न चाही।
> लरिका मरिभैं आवा–जाही ।।'

अर्थात् एक क़दम भी 'पाही' का खेत नहीं चाहिए क्योंकि लड़के आते-जाते परेशान हो गये।

३. आकार के आधार पर

कम से कम एक बीघे तक के बड़े खेत को **गाटा** या **गटबँध** कहा जाता है। जो खेत एक बीघे से भी बड़ा होता है उसे **बड़का गाटा** या **नामी गाटा** कह कर पुकारा जाता है। इसी तरह दो बीघे वाले खेत को **दुइ बिगहवा**, तीन बीघे वाले खेत को **तिन बिगहवा**, चार बीघे वाले खेत को **चर बिगहवा** और पाँच बीघे वाले खेत को **पँच बिगहवा** कहते हैं। यदि किसान का कई बीघे वाला कोई खेत एक ही स्थान पर होता है तो उस खेत को **एकचक** या **चक** कहा जाता है। बड़े 'चक' को **मेंर** कहते हैं।

छोटे खेत को **कोलवा** कहा जाता है। बहुत छोटे खेत को **बेंड़ी, गटई, कोली** या **कोलई** कहते हैं। जो खेत आकार में अधिक लम्बा किन्तु कम चौड़ा होता है उसे **पटिया, पाटी, पटई** या **पटाई** कहा जाता है। जो खेत आकार में कुछ टेढ़ा होता है उसे **टेढ़िया** कहते हैं। जो खेत निचली भूमि का होता है और जिसमें बड़े-बड़े गड्ढे होते हैं उसे **गड़ारि, गडेंलहा, गड़ाहिल, गड़ायल** या **गड्ढीऊ** कहा जाता है। जिस खेत का कोना कुछ तिरछ आकार का रहता है उसे **तिरछाकोनी, तिकोनहाँ, तिनकोनहाँ** या **कोनहाँ** कह कर पुकारते हैं। जिस खेत का धरातल बहुत अधिक गहरा होता है उसे **गहिरा** कहा जाता है।

४. मिट्टी के आधार पर

जिस खेत की मिट्टी चिकनी और कड़ी होती है उसे **मटियार** या **मटियरा** कहते हैं। जिस खेत में बालू अधिक रहती है वह **बलुहा, बलुहरा** या **बलुवार** कहा जाता है। जिस खेत में बालू और चिकनी मिट्टी दोनों मिली रहती है उसे **दूमट, दुइमट, दुइरसहा** या **दुइरसा** कह कर पुकारा जाता है। जिस खेत की मिट्टी कुछ कुछ लाल रंग लिये होती है उसे **करैलहा** खेत कहते हैं। जिस खेत की मिट्टी में कंकड़ अधिक मिले रहते हैं उसे **कँकरहा** या **कँकरहवा** खेत कहा जाता है।

जिस खेत की मिट्टी कुछ बादामी या हल्के पीले रंग की होती है उसे **कपिसहा** या **कपसहा** खेत नाम दिया जाता है। जिस खेत की मिट्टी कुछ गुड़ के रंग की होती है उसे **गुरमटा** कहते हैं। जिस खेत की मिट्टी का धरातल ऊबड़-खाबड़ होता है और उपज भीब हुत कम होती उसे बञ्जर

कहा जाता है। जिस खेत की मिट्टी में धूल अधिक रहती है उसे **भूहड़** खेत कहते हैं।

जिस खेत में खपड़े और फूटे हुए मिट्टी के बर्तनों के छोटे-छोटे बहुत से टुकड़े पाये जाते हैं उसे **सिटकहा, खपटहा** या **खपरिहा** खेत कह कर लोग पुकारते हैं। जिस खेत में जोतने या खोदने पर पत्थर, छोटे या बड़े टुकड़े निकलते हैं उसे **पथरहा** खेत कहा जाता है। जोतने पर जिस खेत में ढेले अधिक फूटते हैं उसे **ढेलहा** खेत कहते हैं।

५. फसल के आधार पर

फसल को देहात में **तूर** कहा जाता है इसलिए जिस खेत में वर्ष भर में एक ही फसल तैयार होती है उसे **एक तुरिहा** खेत कहते हैं। दो फसल वाले को **दुइ तुरिहा** और तीन फसल वाले खेतों को **तिन तुरिहा** कहा जाता है।

जिस खेत में धान बोया जाता है उसे **धनहाँ, धनहवाँ** या **धनखर** कहते हैं। 'धनहा' खेतों के समूह को **धनखरिया** या **धनखराही** कहते हैं। जिस 'धनहा' खेत के चारों ओर ऊँची 'खाई' बाँधी रहती है उसे **उलझा** कहा जाता है। जिस खेत में अगहनी धान लगाया जाता है उसे **लौगहा** या **लवगहा** कह कर पुकारते हैं।

पीने वाली तम्बाकू के पत्ते बहुत बड़े-बड़े होते हैं इसीसे किसान तम्बाकू को **पात** या **पत्ता** भी कहते हैं। यही कारण है कि जिस खेत में तम्बाकू की फसल तैयार जी जाती है उसे **पतहवा** कहा जाता है।

जिस खेत में **बजरी** (बाजरा) बोई जाती है उसे **बजरिहा** कहते हैं। इसी तरह सनई वाले खेत को सनइहा कह कर पुकारा जाता है। जिस खेत में **जोन्हरी** (ज्वार) बोई जाती है उसे **जोन्हरिहा** या **उतेर** कहते हैं। कुछ लोग ज्वार को भी 'उतेर' कहा करते हैं। जिस खेत में पिछले वर्ष गेहूँ और जौ आदि रबी के अनाज बोये रहते हैं उसे आषाढ़ में **डेल** खेत कहा जाता है।

जो खेत गेहूँ या जौ बोने के लिए आषाढ़ से क्वार तक चार महीने जोता जाता है उसे **चौमस** या **पलिहर** कहते हैं।

जिस खेत में गत वर्ष बोई हुई अरहर और ज्वार की **खूंटी** (नोंकदार जड़) पड़ी रहती है आषाढ़ में उसे **खुंटैल, खुँथेल** या **खुँथेलहा** खेत कहा जाता है।

जिस खेत में एक फसल काटने पर तुरन्त ही भर और जोतकर दूसरी फसल बो दी जाती है उसे **जुंठैल** नाम दिया जाता है।

जिस खेत में कुआरी धान आदि बोया रहता है और उसे काटने के बाद जोत कर उसी में चना अलसी बो देते हैं। उस खेत को **घुट्टी** या **घोंठी** कहा जाता है।

जिस खेत में **काछी** या **कोइरी** (साग-सब्जी पैदा करने वाली एक जाति) साग-सब्जी की फसल पैदा करते हैं उसे **कोयँड़ार** या **कछियाना** खेत कहते हैं।

६. दशा के आधार पर

जिस खेत में **नरखोहों** (बहुत छोटा नाला) हो जाती है वह खराब हो जाता है। इस विषय में एक कहावत प्रसिद्ध है :—

> 'खेत जाइ नारे।
> धन जाइ सारे॥'

अर्थात् नाला हो जाने से खेत नष्ट हो जाता है और साले को अधिक खिलाने-पिलाने से धन चला जाता है।

इस प्रकार के खेत जो वर्षा के पानी के बहने से कट-छँट कर नाले हो जाते हैं उन्हे **बेहंत** या **बहँनि** कहते हैं। पानी बरसने पर खेत जब जोतने योग्य हो जाता है तब उसे **हरलगाव** खेत कहा जाता है।

जो खेत जिस वर्ष जोते-बोये नहीं जाते उन्हें उस वर्ष **परती** या **गैर मँजरुवा** कहा जाता है।

जो भूमि कृषि योग्य होते हुए भी कभी जोती-बोई नहीं जाती उसे भी 'परती' कहते हैं। इसके विपरीत सदैव जोते-बोये जाने वाले खेत को **मँजरुवा** कहा जाता है।

जो खेत इतने निचले धरातल के होते हैं कि वे वर्षा के पानी से कुछ समय के लिए डूब जाते हैं उन्हें **बुड़ायल** या **बुड़ारो** कहा जाता है।

जिस समय रबी या खरीफ की हरी-भरी फसल पकने-फूटने लगती है उस समय खेतों को **सँवार** या **हार** कहते हैं।

'परती' भूमि को तोड़ करके जोतने-बोने के लिए जो खेत बनाया जाता है उसे कुछ वर्षों तक **नौतोर** कह कर पुकारते हैं। 'नौतोर' खेत में भी कुछ दिनों के बाद साधारण खेत की तरह अन्न पैदा होने लगता है। इस तरह किसी 'नौतोर' खेत का धीरे-धीरे उपजाऊ हो जाना **खेताब** कहलाता है। आषाढ़ में जुताई प्रारम्भ हो जाने पर जो खेत कुछ समय तक बिल्कुल नहीं जोता जाता उसे **अफार** कहते हैं जिस खेत की प्रति वर्ष सिंचाई की जाती है उसे **सिंचार** कहते हैं। जिस खेत के आस-पास सींचने का कोई साधन ही नहीं रहता उसे **असींच** कहा जाता है।

७. तृण विशेष के आधार पर

जिस खेत में **जार** नामक एक काँटेदार घास अधिक मात्रा में उगा करती है उसे **जरहवा** कहते हैं। जिस खेत में **सरपत** (एक घास) बहुत होते हैं उसे **सरपतवा** कहा जाता है। **काँसा** नाम वाली घास से जो खेत भरा रहता है उसे **कँसहा** कह कर पुकारते हैं। जिस खेत में रबी की फसल के साथ-साथ **गजरा** (एम घास) बहुत अधिम जमता है उसे **गजरहवा** नाम दे दिया जाता है।

यों तो खेत में बहुत सी घासें उगती हैं किन्तु जो घास अधिक मात्रा में उग कर प्रति वर्ष किसान को परेशान करती हैं उसी के नाम पर खेत का नाम पड़ जाता है।

८. अधिकार के आधार पर

जिस खेत में दो किसान मिल कर खेती करते हैं उसे **सझियवा** कहा जाता है। साझीदारों के हलों को साथ-साथ चलने को **हरसझा** कहते हैं। किसान का जिस खेत पर वंश परम्परा से अधिकार होता है उसे **मरुसी** या **मारुसी** कहा जाता है। जिस खेत पर मौरुसी अधिकार किसी दूसरे का होता है किन्तु फसल की जिन्सवार वर्तमान अधिकारी के नाम लगाई जाती है ऐसे खेत को **सिकमी, सिकमिहाँ** या **अधिवासी** कहते हैं। नये कानून से किसान जिस खेत का दस गुना कृषिकर सरकारी कोष में जमा कर देता है वह उसका **भुइँधरा** (भूमिधर) खेत कहलाता है। भुइँधरा खेत को कृषक आवश्यकता पड़ने पर दूसरे के हाथ बेच भी सकता है।

खेतों के विषय में विशेष बातें

खेत के सरकारी कर को **पोत, देन, लगान** या **मालगुजारी** कहा जाता है। सरकार की ओर से जो अमीन और चपरासी 'पोत' या 'लगान' की वसूली करने के लिए आते हैं उन्हें समष्टि रूप से **पोतहा** कहते हैं।

जो सरकारी नौकर किसानों के खेतों की नाप-जोख, मालगुजारी, फसल और अधिकार का पूरा ब्यौरा अपने कागज़ों में रखता है उसे आजकल **लेखपाल** कहते हैं। ब्रिटिश काल में आजकल के लेखपाल को **पटवारी** कहा जाता था। अभी दोनों शब्द प्रचलित है।

किसानों के विभिन्न स्थानों पर बिखरे हुए छोटे-छोटे खेतों को जब भूमि विनिमय के माध्यम से **चक** (बड़ा खेत) बना कर एक स्थान पर कर दिया जाता है तो उसे **चकबन्दी** या **चकबंधी** कहते हैं।

अन्तरिक्ष की यात्रा में मनुष्य पर सम्भावित प्रभाव

(संकलित)

अतीत काल से संसार के सभी भागों में रहने वाले लोगों की यह प्रबल इच्छा रही है कि हम अन्तरिक्ष की यात्रा के अज्ञात और सम्भवतः कल्पनातीत रहस्यों का पता लगायें। यह एक अत्यन्त रोमांचकारी एवं साहसिक योजना है। इस चमत्कारपूर्ण कार्य के सम्बन्ध में कार्य करने वाले वैज्ञानिक यह चेतावनी दे रहे हैं कि अन्तरिक्ष में मनुष्य की यात्रा को सम्भव बनाने के लिए यह आवश्यक है कि पहले अनेक बाधाओं एवं कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की जाये।

जिन समस्याओं का अभी समाधान किया जाना शेष है उनमें कुछ ऐसी समस्याएँ हैं, जिनका अन्तरिक्ष-यात्रा करने वाले मनुष्यों के स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातों से सम्बन्ध है। वैज्ञानिक लोग इस समय ऐसी निम्न समस्याओं के हल ढूँढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं :

(१) आप अन्तरिक्ष में यात्रा करने वाले के ऊपर गुरुत्वाकर्षण शक्ति के परिवर्तन के प्रभाव के सम्बन्ध में किस प्रकार ठीक-ठीक भविष्यवाणी कर सकते हैं, जबकि बाह्य आकाश में ऐसे परिवर्तन की जाँच करना असम्भव है?

अन्तरिक्ष की यात्रा के सम्बन्ध में भारहीनता का प्रश्न एक ऐसा प्रश्न है, जिसके सम्बन्ध में पृथ्वी पर अधिक समय तक परीक्षण करना सम्भव नहीं है। वायुयानों की गति को अत्यधिक तेज करके वैज्ञानिकों ने भारहीनता की समस्या का समाधान किया है। इस सम्बन्ध में मनुष्य को केवल एक मिनट तक भारहीन किया जा सकता है। अत्यन्त तीव्र गति से संचालित वायुयानों की उड़ानों से पता चला है कि गुरुत्वाकर्षण कम होने से रक्त का दबाव, श्वास की गति तथा हृदय की धड़कन की गति कम हो जाती है।

(२) आप अन्तरिक्ष में यात्रा करने वाले व्यक्ति के स्वास्थ्य एवं मानसिक स्थिति के सम्बन्ध में किस प्रकार तेजी के साथ पृथ्वी पर सूचनाएँ प्राप्त कर सकते हैं, ताकि यदि वह स्वयं उपकरणों का संचालन न कर सके, तो उनका स्वतः ही संचालन किया जा सके ?

अन्तरिक्ष के यात्रा-सम्बन्धी उपकरणों के संचालन के सम्बन्ध में एक प्रमुख समस्या यह है कि यदि कुछ गड़बड़ हो जाय, तो आवश्यक कार्यवाही करने के लिए अन्तरिक्ष में यात्रा करने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध में किस प्रकार यथासमय सूचना प्राप्त की जाये। इस कार्य के लिए पृथ्वी पर एक ऐसे उपकरण की आवश्यकता है, जिससे पहले ही गड़बड़ का पता लग सके, ताकि यदि आवश्यकता हो, तो उपकरणों द्वारा अपने आप नियन्त्रण किया जा सके। यदि इस सम्बन्ध में तेजी के साथ सूचना प्राप्त करना सम्भव हो जाये, तो अन्तरिक्ष में यात्रा करने वाले व्यक्ति के जीवन की रक्षा की जा सकती है और पुनः सुरक्षित रूप में पृथ्वी पर लाया जा सकता है।

(३) क्या अन्तरिक्ष में यात्रा करने वाला व्यक्ति एकान्तता, उदासीनता, शारीरिक विवशता तथा दीर्घकालीन मूकता के कष्ट को सहन कर सकेगा ?

आयोवा विश्वविद्यालय के मानसिक चिकित्सा सम्बन्धी विभाग के अध्यक्ष, प्रोफेसर विलियम बीन

का कथन है कि अन्तरिक्ष की यात्रा पर जाने वाले व्यक्ति के लिए शारीरिक दृष्टि से बिल्कुल स्वस्थ, बुद्धिमान तथा सुप्रशिक्षित होना तो आवश्यक है ही, किन्तु मानसिक दृष्टि से भी उसका उपयुक्त होना परमावश्यक है। वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिए, जिस पर एकान्तता, अलगाव, सन्नाटे तथा उदासीनता की स्थिति का कोई प्रभाव न हो। यदि वह मानसिक दृष्टि से उपयुक्त न होगा, तो वह ऐसी स्थिति में घबरा कर अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठेगा और आवश्यकता पड़ने पर "पैनिक-बटन" को भी नहीं खींच सकेगा।

(४) श्वास लेने के हेतु उसके लिए किस प्रकार शुद्ध वायु की तथा आवश्यक स्वादिष्ट आहार की व्यवस्था की जायेगी ?

अन्तरिक्ष में यात्रा करने वाले व्यक्ति के लिए श्वास लेने के हेतु शुद्ध वायु की व्यवस्था करना सबसे प्रमुख समस्या है क्योंकि यदि अन्तरिक्ष-सम्बन्धी कैप्स्यूल से कार्बन डाई आक्साइड को पृथक न किया जाये तो उसके वायु में विद्यमान रहने से मनुष्य उसे सहन नहीं कर सकेगा और उसके कारण यात्री की मृत्यु हो जायेगी। यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि अन्तरिक्ष संक्षिप्त-उड़ानों के सम्बन्ध में इस समस्या को हल कर लिया गया है, किन्तु लम्बी उड़ानों के सम्बन्ध में अभी यह समस्या हल नहीं हुई है। शरीर से उत्पन्न होने वाली कार्बन डाई आक्साइड को आक्सीजन में परिणत करने के उद्देश्य से अनेक परीक्षण किये जा रहे हैं। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इस समस्या का कोई सन्तोषजनक समाधान ज्ञात करने में कई वर्ष लग जायेंगे। अन्तरिक्ष में यात्रा करने वाले मनुष्यों के लिए उपयुक्त आहार तैयार करने के विषय में अनेक अनुसंधान किये जा रहे हैं। ट्यूबों में भरे हुए अनेक प्रकार के पौष्टिक आहारों की जाँच की जा रही है।

(५) आप कैसे इस बात का विश्वास कर सकते हैं कि अन्तरिक्ष-सम्बन्धी कैप्स्यूल इतना सुरक्षित होगा कि इस यात्रा में करने वाले मनुष्य पर किसी भी प्रकार के विकिरण का प्रभाव नहीं पड़ेगा ?

पृथ्वी के चारों ओर चुम्बकीय क्षेत्र में विकिरण पट्टियाँ वर्तमान हैं। ब्रह्मांड विकिरणों में तीव्र प्रकाश की धाराएँ तथा भारी अणु सम्मिलित हैं, जिसका मनुष्य के शरीर पर दूषित प्रभाव पड़ सकता है। दिसम्बर १९५८ में डा० जेम्स ए० वान एलन ने पृथ्वी के चारों ओर दो विकिरण पट्टियों के अस्तित्व का पता लगाया। पृथ्वी की परिक्रमा करने वाले कृत्रिम भू-उपग्रहों ने उनकी इस खोज की पुष्टि कर दी।

अक्तूबर १९६० में अमेरिकी वायुसेना की ओर से ३ चूहे अन्तरिक्ष में ६५० मील ऊपर भेजे गये थे। उन्होंने एक एटलस प्रक्षेपणास्त्र के अग्रभाग में यात्रा की। उनमें से एक चूहे की पीठ पर लगाये गये एक छोटे से रेडियो ट्रांसमिटर ने उसके हृदय की गति, श्वास की गति तथा मांस पेशियों की गतिविधि के सम्बन्ध में पृथ्वी पर आँकड़े प्रेषित किये। उनके पृथ्वी पर लौट आने के पश्चात् की गयी जाँच के परिणामों से यह पता चला कि उन चूहों पर विकिरण का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था।

इस सम्बन्ध में किये गये परीक्षणों से अन्तरिक्ष की यात्रा के सम्बन्ध में कार्य करने वाले वैज्ञानिकों को बड़ा प्रोत्साहन मिला है।

महासागरों के रहस्यों की खोज

(संकलित)

कोलम्बिया विश्वविद्यालय के महासागरीय अनुसन्धान सम्बन्धी जलयान, 'वेमा' ने हाल में समुद्र के मार्ग से पृथ्वी-प्रदक्षिणा सम्पन्न की है। अपनी उत्तरी ध्रुवसागर से दक्षिणी ध्रुवसागर तक की इस अद्वितीय यात्रा के दौरान में उसने पृथ्वी और महासागरों के सम्बन्ध में अनेक नयी खोजें की हैं। यह असाधारण अनुसन्धान-यात्रा न्यूयार्क से १ अक्टूबर, १९५९ को प्रारम्भ हुई और एक वर्ष पश्चात्, १२ सितम्बर, १९६० को पुनः न्यूयार्क वापस आ जाने पर समाप्त हुई।

यात्रा का उद्देश्य

'वेमा' से यात्रा करने वाले वैज्ञानिकों ने इतनी अधिक नवीन सूचनाएँ एकत्र की हैं और इतनी अधिक महत्त्वपूर्ण खोजें की हैं कि इस सागर-यात्रा के परिणामों का सही-सही मूल्यांकन करने में काफी समय लगेगा। वैज्ञानिकों की इस टोली में कोलम्बिया विश्वविद्यालय के महासागरीय एवं भूगर्भीय अनुसन्धान संस्थान, लेमोन्ट जियोलाजिकल आब्जर्वेटरी, के एक दर्जन वैज्ञानिक सम्मिलित थे। इस टोली का नेतृत्व डा० मौरिस इविंग ने किया।

इस सागर-यात्रा के प्रमुख उद्देश्यों में से एक उस मध्य-महासागरी पर्वत-शृंखला (मिड-ओशन रिज) का अध्ययन करना था जो विश्व के प्रमुख महासागरों के नीचे पृथ्वी की पपड़ी में एक ४५,००० मील लम्बी विशाल दरार या घाटी के रूप में स्थित है। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि संसार की सबसे लम्बी, सबसे विशाल और सबसे कम ज्ञात घाटी है।

महासागरीय दरार की खोज

'वेमा' के वैज्ञानिकों ने यह खोज की कि अटलाण्टिक महासागर की तलहटी की दरार हिन्द महासागर की तलहटी की एक ऐसी ही दरार से जुड़ी हुई है। ये दोनों दरारें अफ्रीका के दक्षिणी छोर के ठीक दक्षिण में एक दूसरे से मिलती हैं। इस यात्रा में भिन्न-भिन्न स्थानों पर इस दरार की गहराई की नाप ली गयी। उससे पता चला कि घाटी का शिखर महासागर की तलहटी के नीचे लगभग १ मील से लेकर २ मील तक की भिन्न-भिन्न गहराइयों पर स्थित है; जबकि इस विशाल दरार की तलहटी महासागर की तलहटी के नीचे लगभग २ मील से ३ मील तक की भिन्न-भिन्न गहराइयों पर स्थित है। इस घाटी या दरार की चौडाई तल में १ मील से ५ मील तक और शिखर पर ४ मील से २० मील तक है।

सागर के गर्भ में पर्वत और झील

'वेमा' द्वारा सम्पन्न सबसे आश्चर्यजनक खोजों में से एक यात्रा के प्रारम्भिक चरण में ही उस समय की गयी, जब जलयान न्यूयार्क से ब्राजील के लिए रवाना होने के बाद, दक्षिण अटलाण्टिक महासागर को पार कर दक्षिण अफ्रीका की ओर अग्रसर हुआ। उत्तमाशा अन्तरीप के पश्चिम में ५५० मील दूर स्थित उस स्थान पर, जहाँ दक्षिण अटलाण्टिक को पार किया गया, जलयान के वैज्ञानिकों को सागर के गर्भ में तिरोहित एक विशाल पर्वत मिला, जिसके सम्बन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं थी। महासागर की तलहटी से इस

पर्वत शिखर की ऊँचाई १५,९८० फुट है, जबकि सागर के जल के ऊपरी धरातल से वह १२० फुट नीचे पड़ता है। इसका आकार तिकोना है, जिस से यह संकेत मिलता है कि सम्भवतः यह पहले एक विशाल ज्वालामुखी पर्वत रहा होगा, जो अब बुझ चुका है।

एक अन्य आश्चर्यजनक खोज थी—सागर के गर्भ में एक विशाल खाई या झील की खोज, जिसके समक्ष अमेरिका के दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्र में स्थित विशाल ग्रैट-कैन्योन झील का आकार नगण्य प्रतीत होगा। सागर के गर्भ में तिरोहित यह विशाल झील अर्जेण्टाइना के सागर तट से दूर दक्षिण अटलाण्टिक में स्थित है।

गहराई सम्बन्धी मापों से पता चला कि महासागर की तलहटी में स्थित यह खाई आधे मील से लेकर १ मील तक गहरी, सिरे पर ४ से ५ मील चौड़ी, अपनी तलहटी में लगभग १ मील चौड़ी तथा कई सौ मील लम्बी है। 'वेमा' के वैज्ञानिकों का विश्वास है कि यह विशाल खाई हिम-युग की एक नदी के अवशिष्ट अंशों द्वारा निर्मित हुई है, जो किसी समय अर्जेण्टिना के बीच से होकर प्रवाहित थी।

सागर के गर्भ में स्वर-संचार

मार्च, १९६० में आस्ट्रेलिया के दक्षिणी तट से दूर यात्रा करते समय, 'वेमा' के वैज्ञानिकों ने महासागर के गर्भ में गहराई पर गोले दागे थे, जिसकी ध्वनि पृथ्वी की परिधि के लगभग आधी दूरी तक सुनाई पड़ी थी। यह स्वर आस्ट्रेलिया के दक्षिणी तट से दूरस्थ हिन्द महासागर के दक्षिणी भाग में स्थित उस स्थान से, उत्तर अटलाण्टिक में बरमूडा तक, लगभग १२,०० मील की दूरी पर, सुनायी पड़ा। गोलों के दगान के धमाकों के स्वर ३२५ मील प्रति घण्टे की गति से चल कर बरमूडा में २२३ मिनट (३ घण्टे ४३ मिनट) पर पहुँचे थे। बरमूडा में ये स्वर रेडियो द्वारा प्रेषित उस तार से पहले पहुँच चुके थे, जिसमें यह घोषणा की गयी थी कि गहराई सम्बन्धी गोले दाग दिये गये।

इस प्रयोग के अन्तर्गत, डा० मौरिस इविंग की 'सोफार' (साउण्ड फिक्सिंग एण्ड रेंजिंग) प्रणाली का अनुशीलन किया गया था। यह प्रणाली पानी के गर्भ से सम्बद्ध संचार की एक विधि है, जो उनकी इस खोज पर आधारित है कि विश्व के महासागरों में एक 'स्वर-स्तर' पाया जाता है, जिस पर से होकर स्वर संचार आश्चर्यजनक दूरियों तक हो सकता है। 'स्वर-स्तर' की स्थिति पानी के ताप पर निर्भर करती है। सम-शीतोष्ण एवं उष्ण कटिबन्धों में, यह स्तर सामान्यतः पानी की सतह से कई सहस्र फुट नीचे स्थित होता है।

पंक-धाराओं के अस्तित्व की पुष्टि

'वेमा' के वैज्ञानिकों ने एक ऐसे नये प्रमाण की खोज की, जिससे लेमौण्ट वेधशाला के वैज्ञानिकों द्वारा पहले से निरूपित उन सिद्धान्तों की पुष्टि होती है, जिनके अनुसार महासागर के गर्भ में कालान्तर से, अत्यन्त तीव्र गति से चलायमान भयंकर भूमि-स्खलन होते रहते हैं, जिन्हें वैज्ञानिक 'पंक-धराएँ' (टर्बिडिटी करेण्ट) कहते हैं।

जिस समय 'वेमा' दक्षिण-अफ्रीका के पश्चिमी तट से लगभग ३०० मील दूर था उस समय सागर की तलहटी से बालू और छिछले जल के नीचे से कंकर-पत्थरों के नमूने प्राप्त किये गये थे। उनसे पता चला कि वे अपने मौलिक स्थान से कई मील दूर सम्भवतः इन्ही धाराओं द्वारा, जो महासागर की तलहटी पर एक्सप्रेस ट्रेन जैसी तीव्र गति से प्रवाहित होकर अपने साथ कंकर-पत्थरों को बहा ले जाती हैं—बह कर आ गये थे।

इन खोजों के अतिरिक्त, 'वेमा' के वैज्ञानिकों ने अनेक महत्वपूर्ण अनुसन्धान कार्यक्रम भी कार्या-

[शेष पृष्ठ २१९ पर]

केला

ब्रह्मस्वरूप मेहरोत्रा

प्राचीन काल से ही केला मनुष्य का वल्लभ रहा है। इसका उल्लेख हमें पौराणिक कथाओं तथा इतिहास में मिलता है। हमारे संत, महंत केले की छाया में प्रवचन, यज्ञ आदि करते थे और आज भी शुभ कार्यों में इसका कम महत्त्व नहीं है। ग्रीक तथा अरब के लेखकों ने इसे भारत का एक अद्भुद फ़ल कहा है। डिसरायली ने भी लिखा है कि 'संसार का सर्वोत्तम स्वादिष्ट पदार्थ केला है'।

केला आदिकाल से ही दक्षिणी एशिया में, भारत से चीन तक और दक्षिणी-पूर्वी टापुओं में सामान्यतः बोया जाता था। इसका उत्पत्ति-स्थान सभवतः भारत या मलाया है। वहीं से यह संसार के सभी उष्ण-प्रदेशीय भागों में पहुँचा है। सहारा की मरुभूमि को छोड़ कर आज कोई भी ऐसा उष्ण भाग नहीं है जहाँ यह न बोया जाता हो। जिस रूप में हम आज केले को पाते हैं वह उसका वास्तविक रूप न था। वह तो एक कंकड़ के समान कठोर बीज वाला तथा कम खट्टे गूदे वाला था। लेकिन समय के साथ साथ उसने भी उन्नति की और धीरे-धीरे ऐसी जातियों की उत्पत्ति हुई जिनमें गूदा अधिक था और बीज कम थे। सम्भवतः मनुष्य ने आरम्भ में केले को उसके फलों के लिए नहीं वरन् उसके मांसल तने के लिए अपनाया हो जिसमें अधिक स्टार्चयुक्त खाद्य पदार्थ रहता है और शनैः-शनैः जब उसके फलों का रूप और स्वाद परिर्वतित तथा रुचिकर हो गया तो उसे अपने भोजन का एक अंग बना लिया। १८७० ई० पूर्व पश्चिमी देशों के लोगों को केला प्राप्य न था। अमरीका में जब प्रथम बार केला उत्पन्न हुआ उस समय एक दर्जन केला १०० सैंट (आजकल लगभग ५ रु०) का बिकता था। अब तो यही केला गोल्ड कोस्ट, आइवरी कोस्ट और दक्षिणी नाइजेरिया के निवासियों के भोजन का मुख्य अंग है। अमरीका में यह इतनी अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है कि वहाँ से जहाजों द्वारा यह योरप, कनाडा आदि देशों में व्यापार के हेतु भेजा जाता है। यों तो केले की खेती भारतवर्ष में, सभी जगह होती है पर विशेष कर बंगाल, बम्बई, हैदराबाद, उड़ीसा, मध्यप्रदेश और उत्तर-प्रदेश में वह अधिक मात्रा में बोया जाता है।

भक्ष्य केले में बीज के न होने के कारण उनके पौधे पुत्तियों द्वारा तैयार किए जाते हैं। नए पौधे लगाने के लिए वर्षा ऋतु उपयुक्त है। इसके पौधों को नालियों में, जो २ फीट गहरी और डेढ़ फीट चौड़ी होती हैं या गड्ढों में जो दो फीट गहरे और २ फीट व्यास के होते हैं, लगाते हैं। गड्ढों में मिट्टी, गोबर और पत्तों की खाद लगभग दस बारह सेर, हड्डी का चूर्ण एक सेर तथा दो-तीन सेर राख डालनी चाहिए। एक एकड़ के लिए लगभग ४३६ पुत्तियों की आवश्यकता होती है। सिंचाई सप्ताह में एक बार की जाती है। पौधों के चारों ओर तथा कतारों के बीच की मिट्टी गोड़ दी जाती है। उपजाऊ भूमि में पौधों के लगाने के लगभग एक वर्ष पश्चात् ह? फूल आ जाते हैं परन्तु केले का पेड़ प्रायः वन्ध्या रहता है। यही कारण है कि इसके फलों में बीजों का अभाव होता है। इसके अतिरिक्त केले की भक्ष्य जातियों में परागण (परागाशय से पराग का योनिछत्र पर स्थानान्तरण) नहीं होता और फल अपराग-फलन

द्वारा ही विकसित होते हैं। इन फलों का निर्माण अंडाशय आदि की जातियों की वृद्धि से होता है। बीजयुक्त फलों के विपरीत बीजरहित फलों में फल निर्माण के लिए आवश्यक न्यासर्गीय द्रव्यों (हारमोन) का उत्पादन बिना परागण के ही हो जाता है।

केले की वृद्धि अति शीघ्र होती है और उत्पत्ति भी अधिक होती है। एक एकड़ भूमि में १५० से ४०० धौंद तक प्राप्त हो सकती हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि जितनी भूमि में हमें ३३ पौंड गेहूँ या ९८ पौंड आलू प्राप्त होता है उतनी ही भूमि में ४४०० पौंड केला प्राप्त होता है। केले की फलियाँ लगभग चार महीने में बढ़ कर पकने योग्य हो जाती हैं और जब फलियों की घौंद में दो-एक केले पीले पड़ जाते हैं उसी समय काट कर रख देने से सब केले पक जाते हैं। व्यवसाई लोग जल्दी पकाने के विचार से केले की घौंद पर चूना पोत कर ठंडी या अंधेरी जगह लटका कर या बड़े घड़ों में अथवा जमीन में गड्ढा खोद कर फलों के गुच्छों को केले के सूखे पत्तों के साथ रख कर और कुछ धुआँ देकर अथवा अंडी की पत्तियों में घौंदों को रखकर पकाते हैं।

भारत में केला लगभग ६० प्रकार का होता है पर केवल १० या १२ प्रकार के ही व्यवसायिक दृष्टि से उपयुक्त हैं। बंगाल की पीली चंम्पा, चीनी चम्पा, मर्तबान और ढाका जातियाँ प्रसिद्ध हैं। बम्बई का लाल ताम्बदी, हरा-पीला बसराई प्रसिद्ध हैं। दक्षिणी भारत की केले की पूवन जाति अधिक प्रसिद्ध है। यह बंगाल की चम्पा जाति की ही भाँति होती है। एक एक घौंद लगभग ५० पौंड की होती है और प्रायः उसमें २२५ फलियाँ होती हैं। केले की अधिकांश किस्में लम्बे पेड़ वाली होती हैं। उनकी लम्बाई लगभग ९ से १२ फीट होती है। कुछ नाटी किस्में भी होती हैं जैसे करनाटक का 'राजापुरी' जो केवल ६-७ फीट ही लम्बा होता है और बम्बई का 'बसराई' जो केवल ५-६ फीट ही ऊँचा जाता है।

गेहूँ से केले का खाद्य-मान (food value) तिगुना होता है। केले में १ से ३ प्रतिशत प्रोटीन, ०·२ प्रतिशत वसा, ०·७ प्रतिशत खनिज-पदार्थ, ३६·४ प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, ०·०१ प्रतिशत कैलिसयम, ०·०५ प्रतिशत फासफोरस और ०·४ प्रतिशत लौह होता है। इसके अतिरिक्त उसमें आवश्यक विटामिन जैसे थायमिन (विटामिन बी १), राइबोफ्लोवीन, 'ए', नायसीन और 'सी' भी उपलब्ध हैं। विटामिन 'सी' की मात्रा तो केले में उतनी ही होती है जितनी कि सेब में पाई जाती है। केला आँतों की व्याधियों के लिए एक औषधि का काम करता है। फटे हुए केले में थोड़ा नमक मिला कर खाने से पेचिश में लाभ होता है। अजीर्ण का रोगी जो कोई भी स्टार्च-युक्त खाद्य पदार्थ पचाने में असमर्थ होता है वह भी केला पचा लेता है। पके केले को सुखाने के बाद पीस कर आँटा भी बनाया जाता है। अमरीका और ब्रेजिल में इस आँटे की बड़ी खपत है। यह आँटा अति स्वादिष्ट और शीघ्र पचने वाला है। केले से जैम, शरबत, तरकारी, हलवा आदि स्वादिष्ट पदार्थ बनाए जाते हैं। फलों के अतिरिक्त अन्य भाग भी उपयोग में आते हैं। फूलों के गुच्छे और फलों के डण्ठल की भी स्वादिष्ट तरकारी बनती है। तने से एक प्रकार का रेशा निकलता है जो सन (जूट) से भी दुगुना कीमती है। इन रेशों से कागज बनाया जाता है। पश्चिमी अफरीका में धूप में सूखे केले के छिलकों से साबुन बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय खाद्य और औद्योगिक अन्वेषण विद्यालय में खोजों द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि केले का तना स्टार्च का एक उत्तम प्रभव है। स्टाच भिन्न-भिन्न खाद्य उद्योगों—बिस्कुट, बेकरी आदि—में अधिक काम आता है और वस्त्रोद्योग में भी इसकी अधिक मांग है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि भारत में इसकी एक लाख टन तक की प्रतिवर्ष खपत है। आजकल देश में अधिकतर स्टार्च

मक्के से ही निकाला जाता है क्योंकि मक्का मुख्यत: खाने के काम में आता है इसलिए देश में इस प्रभव से उचित मात्रा में स्टार्च तैयार नहीं हो पाता है, न ही यह आर्थिक दृष्टि से ही उचित है। यही कारण है कि हजारों टन स्टार्च विदेशों से मंगवाया जाता है। भारतवर्ष में लगभग आठ लाख एकड़ भूमि में केला बोया जाता है। अनुमान है कि एक एकड़ केले के खेत से फल ले लेने के उपरान्त तने से १५०० पौंड स्टार्च निकाला जा सकता है। इसे निकालने के लिए ताजे हरे केले के तने को काट या मशीन में कूट कर पानी में छोड़ देते हैं और इस सम्पूर्ण पदार्थ को मशीन में डाल कर बिलोया जाता है और फिर छान कर छने हुए द्रव्यों से स्टार्च पृथक कर लिया जाता है। केले के तने से इस प्रकार निकाला गया स्टार्च वस्त्रोद्योग में सैगो, मक्का आदि से निकाले गए स्टार्च की भाँति उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

इतने उपयोगी केले के प्रति, जिसका प्रत्येक अंग हमारे काम का है, लोकप्रियता होना स्वाभाविक ही है।

[पृष्ठ २१६ का शेषांश]

न्वित किये। इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत महासागरीय जल के प्रवाह और विश्व के जलवायु के बीच पाये जाने वाले पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में एक दीर्घ काल से उठाये गये प्रश्नों का समाधान करने में योग देने के उद्देश्य से दक्षिण-ध्रुव सागर से पानी के नमूने का संग्रह करना; समुद्र के गहरे पानी से विषाणुनाशक औषधियों के सम्भाव्य साधनों के रूप में, जीवाणुओं का संग्रह करना; तथा 'भूचालीय धमाकों' द्वारा अर्थात् समुद्र में विस्फोटक पदार्थों को छोड़ कर तथा पृथ्वी की पपड़ी में गहराई पर दबी हुई चट्टानों की श्रेणियों से टकरा कर वापस लौटने वाले स्वरों को सुन कर प्वेर्टोरिको तथा दक्षिण अमेरिका, आस्ट्रेलिया और उत्तरी लैबरेडोर के तटों से दूर, सागर के नीचे पायी जाने वाली पृथ्वी की पपड़ी की मोटाई और प्रकृति का निर्धारण करना सम्मिलित था।

गहराई और ताप सम्बन्धी माप

'वेमा' ने अपनी सागर यात्रा में सर्वत्र एक गहराई मापक-यंत्र द्वारा सागर की गहराई नापी और उसका रेखाचित्र तैयार किया। यह आवश्यक था, क्योंकि आधुनिक मा क-यन्त्रों द्वारा महा गरों के कितने ही क्षेत्रों की गहराई का निर्धारण अभी तक नहीं हुआ है। इस जलयान के वैज्ञानिकों ने पानी के ताप के असंख्य माप भी लिए। इसके अतिरिक्त, उन्होंने पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की भिन्नताओं के भी माप लिए। एक विशेष उपकरण द्वारा महासागरों की तलहटियों से मिट्टी आदि के नमूने भी प्राप्त किये गये। २,५ ० पौण्ड भार वाला यह उपकरण महा ागर की गहरी से गहरी तलहटी में पहुँच क उसमें छिद्र करके मिट्टी आदि के नमूने प्राप्त कर लेता है।

हृदय रोग व भोजन

डा० अरविन्द मोहन

हृदय की गति बन्द होने पर ही मृत्यु होती है। इसके कारण अनेक हो सकते हैं परन्तु मुख्यतः उनको दो श्रेणियों में से एक में रख सकते हैं; प्रथम तो हृदय में ही दोष का होना जैसा कि रक्त नलियों का फट जाना, रुकावट हो जाना, धक्का या बाहरी प्रभाव (आपरेशन आदि के समय) अथवा बेहोशी में स्पंदन का कम होकर एकाएक रुक जाना इत्यादि, तथा द्वितीय, शरीर के अन्य अंगों में दोष का होना तथा उसका प्रभाव हृदय पर पड़ना।

चाहे मृत्यु हृदय में गोली लगने पर हो, चाहे भयंकर ज्वर द्वारा, अन्त सदैव हृदय स्पंदन रुकने पर ही होता है—जब रुधिर प्रवाह बन्द हो जाता है। एक सामान्य दशा ऐसी है जिसमें एकाएक विना किसी कारण से हृदय गति रुक जाती है। इस दशा में मृत्यु होती अवश्य है किन्तु यदि बाहरी उपक्रम द्वारा पुनः हृदय को गति प्रदान की जावे तो तीन-चार मिनट पश्चात् रोगी 'जीवित' किया जा सकता है।

इस प्रकार मौत के मुँह से मनुष्य को वापस लाने का कार्य सर्जरी (अपरेशन) द्वारा सम्पन्न किया गया है। जब हृदय की गति रुक जाती है तो छाती की तुरन्त चीड़-फाड़ करके हृदय को खोलकर तथा उँगलियों द्वारा उसको मलकर पुनः गतिशील बनाया जाता है। चतुर सर्जन को इस कार्य को सम्पन्न करने में लगभग २-३ मिनट लगते हैं। इस विधि द्वारा अनेक मनुष्यों को जीवन मिला है परन्तु सदैव सफलता प्राप्त करना कठिन है।

गत वर्ष इस प्रकार हृदय के रोगियों का भविष्य उज्जवल हो गया जब **जोन हापकिंस** के दो विद्युत इंजीनियरों ने एक नवीन युक्ति का श्री गणेश किया जिसके द्वारा रुके हृदय को पुनः गतिशील किया जा सकता है। इस दिशा में अग्रणी प्रोफेसर **कूवनहोवन**, **जूड** तथा **निकरबोकर** हैं। इनकी विधि इतनी सरल है कि दो हाथों वाला कोई भी व्यक्ति सफलतापूर्वक उसके द्वारा किसी रुके हृदय को चालू करके रक्त संचार क्रिया बनाये रख सकता है। हृदय के आपरेशन या चीड़-फाड़ की कोई आवश्यकता नहीं रहती तथा कृत्रिम श्वास निश्वास (जैसा डूबते व्यक्ति के फेफड़ों को चालू करने के लिए किया जाता है) क्रिया के समान यह भी एक सरल कार्य है।

रोगी को पीठ के बल लिटा कर उपचार करने वाला अपने एक हाथ की गद्दी रोगी की छाती की निचली हड्डी (स्टर्नम) पर रखता है। अपना दूसरा हाथ पहले के ऊपर रखकर प्रति सेकंड एक बार हड्डी को जोर से दबाता है। पसलियों के दबने से छाती के भीतरी स्थान पर दबाव पड़ता है। चूँकि हृदय रीढ़ तथा छाती की हड्डियों के बीच संकुचित रहता है अतः बाहरी दबाव पड़ने पर उसके भीतर का रक्त नलियों में प्रवाहित हो कर निकलता रहता है। हाथ ढीला करने पर हृदय फैल कर आने वाली नलियों से रक्त खींच लेता है। इसे 'बन्द सीना मालिश' कहा जाता है और इसको करने की अवधि २—३ मिनट से लेकर २ घंटों तक की हो सकती है। जब हृदय चल जाए अथवा पूरे प्रयत्न के बाद भी न चले तब रुक जाना

चाहिए। थोड़ी-थोड़ी देर के पश्चात रुकने पर विदित हो सकेगा कि हृदय की गति वापस आ गई अथवा नहीं।

इस संजीवनी उपचार द्वारा गत वर्ष बीस बालकों पर सफल प्रयोग किये गये। इनकी आयु दो माह से लेकर आठ वर्ष तक की थी। इनमें से तेरह रोगियों को मुँह से मुँह लगा कर फूंक द्वारा श्वास क्रिया भी चालू करने की कोशिश की गयी थी। बीसों बच्चों का हृदय चालू किया जा सका—तथा उनमें से चौदह तो अब पूर्णतः स्वस्थ हैं।

पिछले मासों में अन्य पैंतीस व्यक्तियों पर बन्द सीना मालिश की गई। इनमें से २६ को सफल मौत के मुँह से वापसी मिल सकी। इसके अतिरिक्त अस्पतालों में जहाँ कुशल चिकित्सक सदैव प्राप्त हैं, इस विधि को शतप्रतिशत सफलता मिली है।

इतनी सरल विधि को संजीवनी मानने के लिए कम लोग तैयार थे। प्रो० **कूवनहोवन** तथा उनके साथियों को अपनी विधि का प्रदर्शन करना पड़ा ताकि लोगों में विश्वास बढ़े। अस्पतालों, डाक्टरों तथा सैनिक जमघटों में उन्होंने उपचार द्वारा रुके हृदय को पुनः चालू करने का दावा सिद्ध कर दिखाया। आज प्राथमिक चिकित्सा के समान इस क्रिया को भी चारों ओर जनता में प्रचलित करने का बीड़ा अमेरिका की अनेक संस्थाओं ने उठाया है।

भारत की लोक कथाओं में ऐसे वर्णन पाये जाते हैं जिनमें यमदूतों से लड़-झगड़ कर या पूजा-पाठ द्वारा देवताओं को फुसला कर जीवन वापस कर लिया जाता है। हो सकता है कि इसी प्रकार की क्रिया संभव होती रही हो। अवश्य ही मृत व्यक्ति का पुनः जी उठना एक आश्चर्यजनक घटना है।

आज भी चीड़-फाड़ विधि द्वारा हृदय को चालू करना जारी है परन्तु छाती खोलकर हृदय को चलाना इसलिए उतना सफल नहीं हो सका क्योंकि दो तीन मिनट के भीतर चतुर सर्जन के पास रोगी को पहुँचाना ही कठिन हो जाता है। नवीन विधि में यह सुविधा है कि इसको हर कोई, हर जगह, हर समय बिना किसी यन्त्र के कर सकता है। चिकित्सा की सफलताओं में इसको एक प्रमुख आविष्कार माना गया है।

हृदय रोगों के मूल में भोजन का भी बड़ा हाथ रहता है। सभी हृदय रोगों का लगभग पच्चास प्रतिशत महाधमनी मे दोष के कारण होता है जिनकी संख्या कैंसर की मृत्यु के दुगनी तक पहुँच जाती है। इस रोग का बहुत गहरा संबन्ध भोजन से है।

कोलेस्टरॉल नामक (पीला, मोम की तरह का एक प्रकार का ऐलकोहल तेल,) पदार्थ मानव मस्तिष्क में २% मात्रा में तथा शरीर के पित्ताशय के भीतर पड़ने वाली पथरी में मिलता है। आधुनिक धारणा है कि इसका निर्माण शरीर में यकृत में होता है तथा यह शरीर में वसा का संचार व नियंत्रण करता है। कालेस्टरॉल पानी में विलेय नहीं यद्यपि वसा के प्रोटीन अणु पानी में विलेय हैं।

कोलेस्टरल की उत्पत्ति वसा युक्त भोजन से अधिक है तथा पानी या रक्त में न विलेय होने के कारण यह पदार्थ रक्तवाहक धमनियों में जमकर गट्ठे बनाता है जो कि रक्त प्रबाह रोकते हैं। धमनी में रुधिर का न पहुँचना हृदय की गति रोक देता है अथवा शिरा में गट्ठे पड़ जाते हैं जिससे कि रक्त बाहर नहीं निकलता और हृदय की क्रिया रुक जाती है।

अतः भोजन में वसायुक्त पदार्थों की अधिकता से यकृत में कोलेस्टरॉल की मात्रा बढ़ती है जिसके द्वारा हृदय के रोगों का शरीर में होना संभव हो जाता है। वेसे कोलेस्टरॉल एक आवश्यक तथा अच्छा पदार्थ है परन्तु उसका यही एक बहुत बड़ा दोष है।

साधारण भोजन में पायी जाने वाली वसा तीन प्रकार की होती है—संतृप्त, एक-असंतृप्त तथा बहु-असंतृप्त। प्रथम प्रकार में अन्य हाइड्रोजन अणु नहीं चाहिए, दूसरे में केवल एक चाहिए तथा तीसरे में अनेक चाहिए। प्रथम वसा द्वारा शरीर में इतना अधिक कोलेस्टरॉल बनता है कि शरीर उसको बाहर करने में असमर्थ रहता है। माँस, दूध, मक्खन आदि में यह वसा रहती है। दूसरी वसा द्वारा रक्त के कोलेस्टरॉल की मात्रा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह तेल घी आदि में मिलता है। तीसरी वसा द्वारा रक्त के कोलेस्टरॉल की मात्रा कम हो जाती है। यह बाइल अम्ल के उत्पादन को बढ़ाती है जिसके द्वारा कोलेस्टरॉल घट जाता है। यह वसा मछली के तेल, अनाज, मूगफली आदि में पायी जाती है।

हमारा भोजन ऐसा होना चाहिए कि उसमें संतृप्त वसा न हो। साधारणतः बाजार में घी, दूध, मक्खन वही अच्छा माना जाता है जिसमें वसा अधिक हो। घी, तेल आदि को भी हाइड्रोजन के द्वारा जमाया जाता है जैसे सभी वनस्पति घी। ये हानिकारक पदार्थ हैं। अतः हमारा भोजन नवीन सिद्धान्तों के अनुसार उन पदार्थों का होना चाहिए जो कि असंतृप्त वसा वाले हैं। दूध के मक्खन निकाल लेने पर उसमें बची वसा इस दृष्टि से उपयोगी भोजन है।

संतुलित भोजन के लिए वसा की मात्रा केवल १५ प्रतिशत होनी चाहिए (जबकि इसमें ११ प्रतिशत असंतृप्त वसा हो जो वनस्पति तेल, मछली, मूगफली आदि से मिलती हैं, तथा शेष ४ प्रतिशत माँस, दूध, मक्खन अंडा आदि से)। साधारणतः शहरों के लोग तो १७ प्रतिशत संतृप्त वसा खाते हैं अतः उनकी मृत्यु हृदय से रोगों द्वारा शीघ्र व देहातियों की अपेक्षा अधिक होती है। कार्बोहाइड्रेट (आलू, शक्कर, रोटी-फल आदि) की मात्रा बढ़ा कर ७० प्रतिशत तक कर लेनी चाहिए ताकि शरीर को पूरी मात्रा में ऊष्मा (२५०० कलरी) प्राप्त हो सके। इस भांति हृदय को स्वस्थ बनाये रखना तथा दीर्घजीवी होना सम्भव है।

पाठकीय मंच

ज्वालामुखी पर्वत

प्रमोद कुमार वर्मा

कुछ दिनों पहले की बात है कि एक रात को लगभग नौ बजे लोग अपने घरों के बाहर निकल आये। वे किसी परमाणु बम के फटने के भय से या उड़ते हुए उपग्रह को देखने के लिए बाहर नहीं निकले थे। फिर भी उन्हें ऐसा लग रहा था, मानों उनके पैरों के तले की जमीन खिसक रही हो। जी हाँ, वह था भूकम्प का धक्का।

ऐसा प्रायः कभी न कभी हर देश में होता है। लेकिन विज्ञान का साधारण-सा विद्यार्थी भी जानता है कि भूकम्प कुछ विशेष जगहों पर बराबर आते हैं। पृथ्वी हिलती है; तालाब सूख जाते हैं; रेतीले स्थानों में झरने फूट निकलते हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी नदियाँ भी अपना रास्ता बदल देती हैं। मानव जाति का विनाश होता है; यह तो सर्वविदित है। कुछ ही वर्ष हुए, हमारे देश में बिहार और क्वेटा के भूकम्पों ने धन, जन, एवं सम्पत्ति की महान् हानि की थी।

विज्ञान क्या है? यह मानव द्वारा प्रकृति को तथा उसके रहस्य को समझने का एक प्रयास है। इस युग में भूकम्प को जानने तथा उसके रहस्य का उद्‌घाटन करने के नित्य नये प्रयास होते रहे हैं।

भूकम्प का इस तरह की पृथ्वी की हलचलों का एक कारण ज्वालामुखी है। क्रियाशील ज्वालामुखो एक छिद्र मात्र होता है जिसको हम दरार (fissure) का ऊपरी मुँह कह सकते हैं। इसी दरार में से हमेशा या कुछ कुछ समय के अन्तर से मैग्मा (Magma) निकला करता है। मैग्मा और लावा में कुछ अन्तर है। अत्यधिक दाब के कारण जमीन के नीचे चट्टानें पिघल जाती हैं और उनमें कुछ गैसें घुल जाती हैं, इसी को मैग्मा कहते हैं। जब यह बाहर आती हैं तो सारी घुली गैसें दाब कम होने से वायु में विलीन हो जाती हैं; तब इन पिघली हुई चट्टानों को हम **लावा** कहते हैं। इनके अतिरिक्त पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़े जो एकदम विस्फोट होने से पैदा होते हैं, निकलते हैं। इन सब भिन्न प्रकार के टुकड़ों को एक नाम दिया गया है—**पायरोक्लास्ट या उष्म खण्ड** (Pyroclast)।

लावा में क्या है?

जब ज्वालामुखी के मुख से लावा आदि निकलता है तो छिद्र चौड़ा होकर क्रेटर (Crater) के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसकी जलती हुई दीवारें (लावा की गरमी के कारण) बाहर की ओर फैल जाती हैं। लावा के जमने के प्रकारों के अनुसार ही ज्वालामुखियों का वर्गीकरण किया गया है। अगर लावा छिद्र के चारों तरफ जमकर शंकु के आकार का टीला बनाते हैं तो ऐसे ज्वालामुखी को केन्द्रीय (Central type) कहा जाता है। कैलडेरा (Caldera) उन ज्वालामुखियों को कहते हैं जिनकी चोटी धड़ाके से उड़ जाती है, और ऐसा तब होता है, जब ज्वालामुखी का केन्द्रीय भाग ध्वस्त होता है।

लावा के साथ उत्क्षेपण (Eruption) में कई वस्तुयें निकलती हैं। इनमें कुछ का वर्णन यहाँ दिया जाता है:

ज्वालामुखीय गैसें—ज्वालामुखीय गैसों का अधिक भाग जलवाष्प से आवृत्त होता है। पृथ्वी के गर्भ के भीतर जो क्रेटर झील है उसके पानी से यह वाष्प बनती है। क्या २ गैसें ज्वालामुखी में से निकलतीं हैं इसका भी परीक्षण किया गया है। किलौइआ (Kilauea—हवाई) की लावा झील के किनारे पड़ी हुई दरारें में से गैस इकट्ठी की गई। हवा का प्रत्येक भाग जहाँ तक सम्भव हो सका हटाने के बाद भाप के अतिरिक्त ६०-९०% गैसों में कार्बन डाइ-आक्साइड, नाइट्रोजन और गन्धक डाइ-आक्साइड अधिकता के क्रम से पाये गये। थोड़ा-थोड़ा हाइड्रोजन, कार्बन मोनोक्साइड, हाइड्रोक्लोरिक और दूसरे अम्ल भी पाये गये हैं।

ये गैसें ज्वालामुखीय उत्क्षेपण में महत्वपूर्ण भाग लेती हैं। इनके मैग्मा में घुले रहने के कारण उसका घनत्व कम हो जाता है जिसके कारण वह तेजी से ऊपर आ जाता है। बाहर आने पर गैसें बुलबुले के रूप में बाहर निकलती हैं जिससे उसका घनत्व और कम होकर लावा उस ऊँचाई पर पहुँचता है जिस पर बिना इस कारण के पहुँचना सम्भव नहीं था। दूसरा महत्वपूर्ण प्रभाव इन गैसों का यह होता है कि इसकी तरलता बढ़ती है और इससे लावा का जीवन बढ़ता है। इस अवस्था में इसका गलनांक कई सौ अंश ऊँचा होता है। पर कई गैसों में अपने आप अथवा आक्सिजन के संयोग से अत्यधिक उष्मा पैदा होती है जिससे लावा अपनी पिछली हुई अवस्था में ही बना रहता है।

ताजे निकले हुए लावा का ताप कभी-कभी उसके पदार्थों के गलनांक से अधिक हो जाता है। इसकी बनावट आदि से ऐसा माना जाता है कि उसका ताप ६००° से लेकर १२००° सैं० तक के बीच में होता है।

समाक्षारीयलावा—समाक्षारीय लावा जिसमें क्षारीय पदार्थों की मात्रा अधिक हो, सबसे ज्यादा गरम होते हैं। सिलिका-बाहुल्य लावा साधारणतया स्निग्ध एवं आतंचित होते हैं पर समाक्षारीय लावा बहुत लम्बी दूर तक फैलते हैं लावा की गति उसकी तरलता एवं ढलाव पर निर्भर होती है। कभी-कभी कोई लावा ५० मील प्रति घंटा गति वाला भी पाया गया है। पर ऐसा बहुत कम होता है, यहाँ तक कि लावा की गति १० मील प्रति घंटा भी कठिनता से होती है।

ताजे जमा हुये लावा की सतह दो प्रकार की होती है। इन्हें **ठप्पेदार या ब्लाक** (block) और **चासनीदार या रोपी** (Ropy) नाम दिया गया है। पारिभाषिक शब्दों **'ए ए'** (a a) एवं **पैहोएहोए** (pahochoe) कहा जाता है। जब अंशतः मणिभीकृत लावा में से गैसें एकदम बाहर निकलती हैं तो ऊपरी परत कई रुक्ष ठप्पों में परिणत हो जाती है। तब ऐसी परत 'एए' कहलाती हैं। चासनीदार या रोपी लावा का बनना काफी ऊँचे ताप पर आरम्भ होता है। जब गैसें छोटे बुलबुलों के रूप में बाहर निकलती हैं, तो इनके ठंडे होने पर परत चिकनी और चासनीदार हो जाती है तब लावा की सतह रोपी या चासनीदार कहलाती है।

कभी कभी नये चासनीदार लावा पर बहुत ठंडा पानी बह जाता है तो वह एक दूसरे से मिले हुए तकियों की आकृति का होकर जम जाता है। इससे इस को तकिया लावा (pillow lava) कहते हैं।

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है पायरोक्लास्ट या उष्मखण्ड उन छोटे बड़े टुकड़ों को कहते हैं जो ज्वालामुखी के उत्क्षेपण के समय उड़े हों। इनका वर्गीकरण इनकी गिरने की दूरी और आकृति के आधार पर किया गया है। साधारण उष्मखण्ड जिनमें बम, अधपिघले लावा के ठप्पे हलके-हलके पत्थर एवं पुरानी चट्टानों के टुकड़े शामिल हैं, क्रेटर के पास

गिर कर ढाल के सहारे-सहारे लुढ़कते हैं। इनको संघट्ट (agglomerate) या ज्वालामुखी ब्रेकिया कहते हैं। ज्वालामुखी बम लावा के उन भागों को कहते हैं जो धरातल पर आने से पहले ही कम से कम बाहरी रूप से ठंडे हो गये हों। ये कुछ नारंगी जैसी तथा कुछ गोलाभीय अथवा तकुए की शकल के होते हैं। इनकी ये आकृतियाँ जल्दी जल्दी लुढ़कने के कारण होती हैं। कुछ जो विशेष आकृति के नहीं होते हैं, इसका कारण यह है कि आरम्भ में ही जम कर वे कड़े पड़ जाते हैं। इनका आकार काफी बड़ा होता है।

छोटे टुकड़ों को जिनका आकार मटर के दाने या अखरोट के बराबर होता है लैपिली (Lapilli) कहा जाता है। इनसे भी छोटे टुकड़ों को एबरा का नाम दिया गया है। इन सब प्रकार के पायरोक्लास्ट को टफ (taff) का नाम दिया गया है। कभी कभी टफ में ज्वालामुखीय बादलों (अथवा वह धूम जो कि उत्क्षेपण के समय पैदा होता है) द्वारा गिराये गये एवगाइट (avgite), फेल्सपार (felspar) आदि कई मणिभ भी होते हैं। बहुत छोटे-छोटे कण जिनमें काँच आदि के टुकड़े होते हैं शंकु से नीचे गिरने से पहले ऊँचे चले जाते हैं। उस समय हवा उनको बहुत दूर-दूर तक उड़ा ले जाती है। जब क्राकाटोओ सन् १८८३ में फूटा तो उसके टुकड़े सारे विश्व में फैल गये थे तथा इसी कारण कई महीनों तक सूर्यास्त के समय का अन्तरिक्ष रंगीन दिखाई देता था।

संसार के कुछ प्रसिद्ध ज्वालामुखी

शंकु के प्रकार की ऐसी पहाड़ियों को ज्वालामुखी कहा जाता है, जिनके मुख से लेकर, पृथ्वी के गर्भ भाग तक एक ऐसी नली बनी रहती है, जिनसे समय समय पर गरम भाप और गैसें, चट्टानों के छोटे छोटे टुकड़े, और गले हुए पदार्थ निकलते रहते हैं। कुछ ज्वालामुखी तो बड़ी-बड़ी पर्वत श्रेणियों के ऊपरी भाग पर स्थित हैं, पर कुछ सापेक्षतः नीचे भी पाये गये हैं। कुछ का उत्क्षेपण तो समुद्र की तलैटी के निकट से आरम्भ होता है, जैसा कि एटना और वेसूवियस के ज्वालामुखी में। इन ज्वालामुखियों का बाल्यकाल वस्तुतः समुद्र की तलैटी में ही था। आधुनिक युग में भी कुछ समुद्री या जलगर्भी ज्वालामुखी बन गये हैं। उनालाश्का (Unalashka) के अन्तर में ३० मील दूरी पर उत्तरी प्रशान्त महासागर के ऊपर सन् १७९६ में भाप का एक प्रवाह ऊपर को उठता हुआ देखा गया, फिर इतने जोरों से ऊपर को समुद्र की तलैटी की धरती उठी, कि ज्वालामुखी का मुख या क्रेटर समुद्रतल से ऊपर उठ गया। १० मील के घेरे में इस प्रकार एक नन्हा-सा द्वीप तैयार हो गया। ६ वर्ष बाद जब कुछ शिकारी इस ज्वालामुखी द्वीप पर पहुँचे तो उन्हें अपने पैरों के नीचे की धरती इतनी गरम लगी, कि वहाँ उनका चलना दूभर हो गया।

कुछ ज्वालामुखी ज्वलंत हैं, और कुछ शान्त। कुछ तो निरन्तर ही ज्वलंत रहते प्रतीत होते हैं, जैसा कि स्ट्राम्बोली का ज्वालामुखी, जो होमर के समय से आज तक बराबर ही ज्वलंत रहा है, इनके मुख से उत्क्षेपण बराबर होता रहता है। मध्य अमरीका के सैलवेडोर में इजालको नामक जो ज्वालामुखी है, वह सन् १७७० से पूर्व ज्ञात भी न था, पर तब से अब तक बराबर ज्वलंत रहा है, और आज इसकी ऊँचाई २५०० फुट के लगभग है। दूसरे ज्वलंत ज्वालामुखी के उदाहरण ये हैं—निकारागुआ में मैसेया और एमाटिटलान का ज्वालामुखी; कोटोपैक्सी के एण्डीज आव् क्विटो में सैंगे का ज्वालामुखी, मोल्यूकस में साइओन का ज्वालामुखी, और फ्रैण्डली द्वीपों में टोफोआ। वेसुविअस का ज्वालामुखी कुछ दिनों तक ज्वलंत रहता है, फिर महीनों के लिए शान्त पड़ जाता है। कुछ ज्वालामुखी शतियों तक शान्त रहते हैं, और फिर अकस्मात् उनकी कुंभकर्णी निद्रा शान्त होती है। वेसुविअस इस प्रकार की निद्रा से जब

जागा, तो पोम्पिआई और हरक्यूलेनिअम नगर विध्वस्त हो गये। २०० वर्ष की नींद लेने के बाद सुण्डा की खाड़ी में क्रेकेटाओ का ज्वालामुखी कुछ ही दिन हुए जग पड़ा था। मई सन् १९०२ में मार्टिनीक और सैण्ट विन्सेण्ट का ज्वालामुखी जग उठा और उसके मुख से रक्त-तप्त बालू और विषैली गैसें लगभग पूरे वर्ष भर निकलती रहीं, और इन्होंने उसके निकट के प्राणियों एवं वनस्पतियों को पूर्णतया नष्ट कर डाला। सन् १७८३ में आइसलैण्ड के स्कैप्टर जोकुल ज्वालामुखी से लावा ४० और ५० मील लम्बी दो नदियों के समान प्रवाह में बहा। इस लावा की मोटाई या गहराई ६०० से १००० फुट तक थी। हवाई द्वीपों के ज्वालामुखी भी इसी प्रकार प्रचुर लावा प्रचंडता से बहाते रहे हैं। आजकल के बहुत से पठार या प्लैटो इन्हीं लावाओं के ठण्डे होने पर बन गये बताये जाते हैं। अबीसीनिया और भारत का दक्षिण पठार भी इसी प्रकार के ज्वालामुखियों की देन कहा जाता है।

काँच

अरुण कुमार सक्सेना

काँच तथा मिट्टी के बर्तन बनाने की विधि मनुष्य को सहस्रों वर्षों पूर्व से ज्ञात थी। लगभग ६००० वर्ष पहले मिश्र के कारीगरों ने इसका उपयोग बेलस के मन्दिर के बनाने में किया था। हमारे पूर्वज भी काँच के निर्माण में सिद्धहस्त थे। इसका विवरण महाभारत में मिलता है। पाण्डवों ने अपने लिए एक विशाल तथा भव्य राज्य प्रासाद बनवाया था जिसमें भारत-वर्ष के महान शिल्पियों ने काँच का प्रयोग इस प्रकार किया था कि जल के स्थान पर स्थल का और स्थल के स्थान पर जल का भ्रम होता था।

रोमन इतिहासज्ञों के अनुसार काँच का निर्माण एक तूफान से विनष्ट जलयान की कहानी के साथ आरम्भ होता है। इनके अनुसार ईसा के लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व फीनिशिया के मल्लाहों का एक दल तूफान के कारण भूमध्य सागर के किसी अज्ञात तट पर पहुँचा, तो उसे खाद्य पदार्थ पकाने के बर्त्तनों के नीचे रखने के लिए पत्थरों की आवश्यकता हुई। उन्होंने जलयान में पड़े सोडे के टुकड़ों को अपना चूल्हा बनाया। चूल्हे के अधिक समय तक जलने के पश्चात् उसमें से एक मल्लाह ने देखा कि अनोखे ढंग का एक तरल पदार्थ निकल आया। यही काँच था।

दसवीं शताब्दी में कुछ शिल्पियों ने जब काँच को खिड़कियों में लगाया तो इसका मूल्य बहुत अधिक था। वह मनुष्यों में धनी माना जाता जिसके घर की खिड़कियाँ काँच की होतीं अर्थात् जिसके घर में जितना अधिक काँच खिड़कियों में लगा रहता था वह उतना ही धनी समझा जाता था। शिल्पी भी यही समझते कि वे प्रगति की पराकाष्ठा पर थे।

कांच का निर्माण

काँच के निर्माण में मुख्यतः बालू, सोडा, सीसे तथा कैलसियम का उपयोग होता है। इनमें से प्रत्येक वस्तु अपना एक विशेष स्थान रखती है:

१. **बालू** :—अधिकतर सफेद तथा मामूली बालू काम में लाई जाती है।

२. **सोडा** :—यह सोडियम तथा पोटैसियम के कार्बोनेट के रूप में प्रयोग किया जाता है।

३. **सीसा** :—इसका उपयोग सीसे के लाल ऑक्साइड के रूप में होता है।

४. **कैलसियम**:—इसका उपयोग चूना तथा खड़िया के रूप में होता है।

ऊपर लिखी हुई वस्तुओं को एक विशेष अनुपात में मिलाया जाता है और इनको चूर्ण कर लिया जाता है। चूर्ण को मशीन द्वारा खूब मिला कर हिलाया जाता है जिससे वस्तुएँ भलीभाँति मिलकर समांग हो जायँ। इस चूर्ण को एक विशेष प्रकार की मिट्टी से बने बड़े-बडे बर्तनों में भर कर भट्टी में गर्म किया जाता है। चूर्ण धीरे-धीरे डाला जाता है जिससे पिघलने में आसानी होती है।

इस प्रकार बना हुआ काँच प्रायः गन्दा तथा रंगीन होता है। इस रंग तथा गन्दगी को हटाने के लिए बहुधा मैंगनीज-डाई-आक्साइड का प्रयोग किया जाता है। काँच को रंगीन बनाने के लिए धातुओं के ऑक्साइड मिला दिये जाते हैं और फिर काँच को गर्म करते हैं। काँच के बने सामान को धीरे-धीरे ठण्डा किया जाता है।

काँच के भेद :

रंगीन कांच :—काँच को बनाते समय यदि धातुओं के आक्साइड मिला दिये जायँ तो वह रंगीन हो जाता है। धातुओं के आक्साइड को कम या अधिक मिलाने से काँच का रंग हल्का अथवा गाढ़ा हो जाता है।

आप पूछेंगे कि कौन-कौन से धातु के आक्साइड को मिलाने से काँच के विभिन्न रंग प्राप्त होते हैं?

काँच कई प्रकार का होता है और इससे जो वस्तुएँ बनाई जाती हैं वे काँच की जातियों पर निर्भर होती हैं।

१. **मुलायम कांचः** :—यह सोडियम तथा कैलसियम के सिलिकेट का मिश्रण होता है। यह आसानी से पिघलाया जा सकता है और इसका उपयोग काँच की नलियों और काँच के बर्तनों के बनाने में होता है।

२. **कड़ा कांचः** :—यह कैलसियम तथा पोटैसियम के मिश्रण से बनता है। इस पर अम्ल तथा पानी का असर नहीं होता। वह बड़ी कठिनाई से पिघलता है और इससे बने सामान कठोर होते हैं।

३ **फ्लिट कांचः** :—यह सीसे तथा पोटैसियम का मिश्रण होता है। इससे दर्पण तथा बिजली के बल्ब बनाए जाते हैं।

काँच का रंग	आक्साइड
१. नीला काँच	कोबाल्ट तथा ताँबा
२. लाल काँच	सोना
३. दूधिया काँच	कैलसियम फासफेट
४. हरा काँच	क्रोमियम तथा लोहे का आक्साइड
५. पीला व भूरा काँच	ऐंटीमनी ऑक्साइड
६. बैंगनी काँच	मैंगनीज-डाई-ऑक्साइड
७. गुलाबी काँच	सिलीनियम तथा टेल्यूरियम इत्यादि के लवण
८. काला काँच	यह अभी तक नही बनाया गया है। इस प्रकार का काँच कोबाल्ट मैंगनीज तथा लोहे के आक्साइड मिलाने से बनता है।

४. बोतल कांचः :—यह सबसे सस्ता होता है और सोडा तथा चूने से बनाया जाता है। इसकी बोतलें बनाई जाती हैं।

५. जीना कांचः :—यह काँच जस्ते तथा बेरियम बोरोसिलीकेट के मिश्रण से बनाया जाता है। यह गर्मी तथा धक्कों को सहन कर सकता है।

६. पायरेक्स कांच :—यह भी जस्ते तथा बेरियम बोरोसिलीकेट के विशेष मिश्रण से बनाया जाता है। यह भी जीना काँच के समान प्रयोग किया जाता है।

७. क्रुक्स का कांच :—यह एक विशेष प्रकार का काँच है। इसमें सीरियम के ऑक्साइड मिले रहते हैं। यह ऐनकों के ताल बनाने में काम आता है। इसमें एक विशेष प्रकार का गुण होता है जिससे सूर्य की पारबैंगनी किरणें प्रवेश नहीं हो पातीं। ये आँखों के लिए हानिकारक होती हैं।

८ घिसा कांच :—यह एक प्रकार का मुलायम काँच है जो तारपीन के तेल में घिसा जाता है।

९. लैमिनेटेड काँच :—यह एक प्रकार के प्लास्टिक ब्युटेरेल को दो काँच के चादरों के बीच में भरकर बनाया जाता है। इसका उपयोग मोटरों, हवाई जहाजों इत्यादि में होता है क्योंकि यह धक्कों से नहीं टूटता है।

१०. जलीय कांच :—एक विशेष प्रकार की क्रिया से इस काँच को बनाया जाता है। इसको सोडा राख तथा स्वच्छ बालू के साथ मिलाकर प्रोड्यूसर गैस से गर्म करके बनाते हैं। यह साबुन को छानने में प्रयोग किया जाता है। इसका उपयोग लकड़ी को आग में अदहनशील बनाने में होता है। यह अंडों को सड़ने से बचाता है।

११. फाईबर कांच :—इसका प्रयोग अधिकतर गर्मी और चकाचौंध को रोकने में होता है। पारदर्शक होने के कारण इसका प्रयोग आजकल पर्दे बनाने में होने लगा है।

१२. क्वार्टज कांच :—बालू को बिजली की भट्टियों में पिघला कर बनाया जाता है। यह १०००° सें० तक गरम किया जा सकता है। गर्म होने पर पानी में डालने से टूटता नहीं। अम्ल का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

१३. विट्रोसिल कांच :—यह क्वाटर्ज काँच की एक किस्म है किन्तु यह बहुत ही सस्ती होती है।

काँच ने अभ्रक को हटा कर उसका स्थान ले लिया है। यदि काँच को बालू ६२·५%, जिरकोनिया २१%, सोडियम आक्साइड १४% तथा पोटैसियम आक्साइड २·५% से मिला कर बनाया जाय तो उसमें लगभग अभ्रक के गुण आ जायेंगे।

आज के युग में काँच ने अपना एक विशेष स्थान बना रक्खा है। छोटी-छोटी वस्तुओं के अतिरिक्त इसका उपयोग सजावट तथा भवन-निर्माण में होने लगा है। काँच के अधिकाधिक प्रयोग की संभावनाओं के कारण इसका भविष्य उज्ज्वल दीख पड़ता है।

———

सार संकलन

१. भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान के सौ वर्ष

पिछले सौ वर्षों में हमारे देश के वैज्ञानिकों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसका प्रमाण यह है कि महान् भौतिक शास्त्री ड.० सी० वी० रमन को सन् १९३० में 'रमन ईफेक्ट' ईजाद करने के लिये दुनिया का सबसे बड़ा पुरस्कार (नोबेल पुरस्कार) देकर सम्मानित किया गया। इनके अतिरिक्त श्री ए० केस्टर, श्री एस० रामानुजम, डा० जे० सी० बोस, डा० मेघनाद साहा, डा० बीरबल साहनी, डा० के० एस० कृष्णन, डा० एच० जे० भाभा, डा० एस० एस० भटनागर, प्रोफेसर एस० चन्द्रशेखर, प्रोफेसर पी० सी० महालानोबिस, प्रोफेसर डी० एन० वाडिया, डा० एस० के० मित्रा, प्रोफेसर एस० एन० बोस और डा० टी० आर० शिशादरी को रायल सोसायटी आफ लन्दन ने फेलोशिप प्रदान कर इनके अनुसंधान कार्यों का आदर किया। इस प्रकार पिछले सौ वर्षों में इन्होंने और इनके अतिरिक्त अन्य वैज्ञानिकों ने भारत का नाम अनुसंधान क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय जगत में ऊँचा किया है।

प्राचीन काल में हमारे देश में गणित, रसायन शास्त्र, चिकित्सा और विज्ञान की अन्य शाखाओं में महान प्रगति हुई थी, लेकिन उसके बाद कई सौ वर्षों तक इस क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। फिर १७ वीं और १८वीं शताब्दी में अंग्रेजों के पदार्पण के साथ ही नया प्रयोगात्मक विज्ञान भी हमारे देश में आया। इन अंग्रेजों ने हमारे देश में वैज्ञानिक अनुसंधान का काम शुरू किया। उनके काम को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम अपने शासन की नींव डालने और उसे दृढ़ बनाने के लिए इन्हें वैज्ञानिक खोज करनी पड़ी और दूसरे कुछ अँग्रेजों ने ज्ञान के लिए अनुसन्धान किया। इनमें सबसे महान संस्कृत के पंडित और सुप्रीम कोर्ट के जज सर विलियम जोन्स थे। इन्होंने सन् १७८४ में रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल की स्थापना की, जिसका ध्येय "मनुष्य और प्रकृति" का अध्ययन करना था। लगभग उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य काल से इस सोसाइटी ने प्राणविज्ञान, वनस्पति विज्ञान, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र और चिकित्सा शास्त्र इत्यादि पर अनुसंधान लेख प्रकाशित करना आरम्भ किया और इस प्रकार हमारे देश में वैज्ञानिक अनुसंधान की फिर से लौ जलाने में इस संस्था का बहुत बड़ा योग रहा है।

वैज्ञानिक अनुसंधान के दृष्टिकोण से पिछले सौ वर्षों को हम तीन कालों में बाँट सकते हैं। पहला उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से लेकर उन्नीस सौ तक; दूसरा सन् १९०० से १९४७ तक और तीसरा काल स्वतन्त्रता के पश्चात् का।

प्रथम काल में सन् १८५१, १८७५ और १८८९ में क्रमशः जियोलाजिक सर्वे आफ इण्डिया, मेट्रोलाँजिक डिपार्टमेन्ट और बोटैनिकल सर्वे आफ

इण्डिया की स्थापनायें हुई। इनके अतिरिक्त १८७८ में **सर्वे आफ इण्डिया** नामक विभाग खोला गया जिसके अन्तर्गत ही दुनिया की सबसे ऊँची माउन्ट **एवरेस्ट** चोटी की ऊँचाई नापने का काम हुआ। उधर सन् १८५७ में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई और सन् १८८२ में पंजाब तथा १८८७ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय बने, लेकिन १९वीं शताब्दी के अंत तक इन विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित कुछ ही कालेजों में विज्ञान के विषय पढ़ाये जाते थे। इन कालेजों के कुछ अध्यापकों ने कठिन परिस्थितियों के होते हुए अनुसंधान कार्य किया। उदाहरणार्थ १८७४ ई० के बाद से प्रेसीडेन्सी कालेज कलकत्ता के रसायन शास्त्र के प्रोफेसर एलेकजेण्डर **पेडलर** ने सर्पविष, क्लोरीन और क्लोरीन एसिड पर अनुसंधान कार्य किया।

इसी समय कुछ अंग्रेज वैज्ञानिकों द्वारा चिकित्सा और विशेषकर हमारे देश की बीमारियों पर अनुसंधान सर **रॉनॉल्ड रॉस** का कार्य प्रारम्भ हुआ जिसमें सबसे महत्त्वपूर्ण काम मलेरिया के कीटाणुओं को पहचानने का था। वह **इण्डियन मेडिकल सर्विस** के एक सदस्य थे और बाद में उनको इस खोज के लिए १९०२ में नोबुल पुरस्कार मिला।

इसके बाद बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से हमारे देश में अनुसंधान के काम में तीन कारणों से उन्नति हुई। प्रथम तो देश के अनेक विश्वविद्यालयों में एम० एस सी० की पढ़ाई और अनुसन्धान कार्य जोर शोर के साथ शुरू हो गया। दूसरे सरकारी और अन्य गैर-सरकारी अनुसंधान प्रयोगशालाओं और संस्थाओं का निर्माण हुआ और तीसरे देश में अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं की स्थापना हुई, जिन्होंने अनुसन्धान पत्रिकाएं प्रकाशित कीं और प्रतिवर्ष अधिवेशनों द्वारा वैज्ञानिकों को परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करने का अवसर दिया।

इस काल में कई विश्वविद्यालयों में अनुसंधान कार्य प्रारम्भ हुआ। रसायन शास्त्र के क्षेत्र में आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र रे ने नाइट्राइट और हाइपो नाइट्राइट पर अनुसंधान कार्य किया और आचार्य जगदीशचन्द्र बोस ने प्रेसीडेन्सी कालेज कलकत्ता में सूक्ष्म विद्युतचुम्बकीय तरंगों तथा पौधे व जीवित पशुओं में समानता से सम्बन्धित विषयों पर अनुसंधान कार्य किये, जिससे उनको सारे संसार में ख्याति प्राप्ति हुई। इसके अतिरिक्त श्री रामानुजम ने गणित में उच्चकोटि का मौलिक अनुसंधान कर सारे संसार में तहलका मचा दिया।

इसी समय हमारे देश में अनेक अनुसंधान प्रयोगशालाएँ खोली गई। इसमें सबसे पुरानी **इण्डियन एसोसिएशन फार दी कल्टीवेशन आफ साइन्स** की स्थापना सन् १८७६ में हुई। पहले तो यहाँ पर विज्ञान के विषय पढ़ाने की व्यवस्था भी थी, लेकिन सन १९०७ में सर सी० वी० रमन ने इस प्रयोगशाला में कार्य प्रारम्भ किया और यहाँ उच्चकोटि का अनुसन्धान कार्य होने लगा। यहीं इन्होंने '**रमन इफैक्ट**" का आविष्कार किया इसके लिए इन्हे नोबेल पुरस्कार मिला। इनके बाद **डा० मेघनाद शाहा** ने यहीं से अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। इस प्रयोगशाला के अतिरिक्त भी अन्य अनुसन्धान संस्थाओं की स्थापना इस प्रकार हुई :—

१८९९—हैफकिन इन्स्टीट्यूट, बम्बई
१९०५—एग्रीकलचरल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, नई दिल्ली
१९०६—फारेस्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट, देहरादून
१९१७—बोस रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कलकत्ता
१९२१—स्कूल आफ ट्रापिकल मेडीसिन, कलकत्ता
१९३१—स्टेटिस्टिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कलकत्ता
१९३४—आल इण्डिया इन्स्टीट्यूट आफ पब्लिक हैल्थ एंड हाइजीन, कलकत्त
१९३६—इन्स्टीट्यूट आफ सुगर टेकनालॉजी, कानपुर

१९३९—जूट रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कलकत्ता

१९४५—टाटा इन्स्टीट्यूट आफ फण्डामेंटल रिसर्च, बम्बई

१९४६—बीरबल इन्सटीट्यूट आफ् पेलियोबोटेनी

इन संस्थाओं में अनेक सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक अनुसंधान-कार्य हुए हैं।

इन अनुसन्धान संस्थाओं के अलावा सरकार से आर्थिक सहायता-प्राप्त कुछ संस्थाओं की स्थापना अनुसन्धान के काम को चलाने के लिए हुई, जैसे कृषि–इण्डियन काउन्सिल ऑफ ऐग्रीकलचरल रिसर्च १९२९, चिकित्सा-इण्डियन रिसर्च फंड एसोसिएशन जिसका बाद में नाम इण्डियन काउन्सिल आफ मेडिकल रिसर्च पड़ा–सन् १९११, अन्य वैज्ञानिक विषय—काउंसिल आफ साइण्टिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च–सन् १९४२। ये संस्थाएँ आज भी तेजी से अपना काम कर रही हैं।

इधर अनुसन्धान को प्रोत्साहन देने और वैज्ञानिकों को इस बात का अवसर देने के लिए कि वे एक स्थान पर एकत्र होकर विचारों का आदान-प्रदान कर सकें अनेक संस्थाओं की स्थापनाएँ हुइ। इनमें सबसे बड़ी संस्था **इंडियन सांइंस कांग्रेस एसोसिएशन** है, जिसकी स्थापना १९१४ में हुई थी। प्रति वर्ष इसका अधिवेशन देश के विभिन्न स्थानों में होता है जिसमें देश के तथा विदेशों के हजारों प्रतिनिधि भाग लेते हैं। इसी तरह की और संस्थाएँ नेशनल एकेडेमी आफ साइन्स, इलाहाबाद और इण्डियन एकेडेमी आफ साइंस बंगलौर हैं जिनकी स्थापना क्रमशः १९३० व १९३४ में हुई। इनके अतिरिक्त हमारे देश की सर्वोच्च अत्यन्त सम्मानित संस्था **नेशनल इंस्सटीठ्यूट आफ साइंस** नई दिल्ली का जन्म १९३५ में हुआ था। ये सब संस्थाएं अपने अनुसन्धान पत्र निकालकर अनुसंधान कार्य में मदद देती हैं। साथ ही विशेष वैज्ञानिक विषयों से संबंधित भी दर्जनों संस्थाएँ देश में काम कर रही हैं।

इस प्रकार दासता की अवस्था में भी हमारे देश में अनुसन्धान की ज्योति जगमगाई लेकिन स्वतंत्रता मिलने के बाद इस काम में बड़ी उन्नति हुई। आज हमारे देश के वैज्ञानिक भी विभिन्न उद्योगों की समस्याओं को हल करके देश के आर्थिक विकास के काम में मदद दे रहे हैं ताकि जन साधारण के जीवन का स्तर ऊँचा हो सके। १९४७ के बाद ही **काउन्सिल आफ साइन्टिफिक एंड इण्डस्ट्रियल रिसर्च** के अन्तर्गत विभिन्न वैज्ञानिक विषयों से सम्बन्धित २५ राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं का निर्माण हुआ है। इन राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में उपयोगी एवम् महत्त्वपूर्ण कार्य हुए हैं, यथा आप्टीकल कांच, बहु लाभकारी भोजन और निकिल रहित स्टेनलेस स्टील इत्यादि के निर्माण। यही नहीं, इन प्रयोगशालाओं में लगभग ५३४ नई विधियों का आविष्कार हुआ है और अनेक नुस्खें पेटेंट कराये गए हैं। गर्व का विषय है कि कुछ पेटेंटों का इस्तेमाल पश्चिमी जर्मनी, फ्रांस और इग्लैंड इत्यादि देशों में भी होता है।

परमाणु से प्राप्त शक्ति का जनसाधारण के लाभ के लिए प्रयोग किये जाने की दिशा में भी पिछले कुछ वर्षों से **एटामिक एनर्जी कमीशन** के अन्तर्गत अनुसंधान हुआ है। हमारे देश में भी एटामिक रिएक्टरों का निर्माण हुआ है, जिनसे रेडियसमस्थानिक मिलते हैं, जिनका प्रयोग चिकित्सा, कृषि और अनुसंधान में होता है। सन् १९५६ में प्रथम रिएक्टर "अप्सरा" ने कार्य प्रारम्भ कर दिया था। अब तो कनाडा-इण्डिया रिएक्टर भी चालू हो गया है।

इस प्रकार पिछले १०० वर्षों में हमारे देश के वैज्ञानिकों ने बहुत ही कठिन परिस्थितियों में भी काफी उपयोगी और महत्त्वपूर्ण अनुसंधान कार्य कर ज्ञान की वृद्धि में योग दिया है।

———————आकाशवाणी कलकत्ता के सौजन्य से

(लेखक—बालकराम नागर)

२. दैनिक जीवन में विज्ञान

हमारा दैनिक जीवन तथा वैज्ञानिकों की महान् सेना का कष्टसाध्य श्रम अनेक गहन बन्धनों द्वारा एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। थोड़ी देर के लिए अपने आस-पास की वस्तुओं पर, उन तमाम वस्तुओं पर जिन्हें हम रात-दिन प्रयोग करते रहते हैं, दृष्टि डालिये।

सवेरे उठ कर हम हाथ-मुँह धोते हैं और ब्रस से दाँत साफ करते हैं। तनिक रुक कर सोचिये तो! क्या कभी आपने अपने ब्रस को ध्यानपूर्वक देखा है? ब्रस एक आकर्षक, पारदर्शी पदार्थ से तैयार किया जाता है और यह पदार्थ रासायनिक कारखानों में बनाया जाता है। इससे पहले कि ब्रस हमारे दैनिक व्यवहार में आये, पता नहीं कि कितने वैज्ञानिकों, इंजीनियरों तथा टेकनीशियनों को अपनी-अपनी प्रयोगशालाओं और कारखानों में तथा ड्राइंग बोर्डों पर कठिन परिश्रम करना पड़ता है। अब साबुन पर भी विचार कीजिए। यों तो मनुष्य लम्बी अवधि से साबुन इस्तेमाल करता आ रहा है, लेकिन केवल इस युग में ही अनेक विद्वान रसायनविदों के निरन्तर अनुसन्धान के फलस्वरूप विविध प्रकार के साबुन तथा नहाने-धोने की सामग्री उपलब्ध हो सकी है।

आप गिलास से पानी पीते हैं। मानवजाति को हजारों वर्षों से काँच के विषय में जानकारी रही है लेकिन दीर्घकाल तक काच का बहुत ही सीमित प्रयोग था। अब इस पदार्थ के भौतिक तथा रासायनिक गुणों के गम्भीर अध्ययन के फलस्वरूप काच के प्रयोग का क्षेत्र अत्यधिक बढ़ गया है। काच तथा इसके रेशों से बनी हुई वस्तुओं को अधिकाधिक मात्रा में रहने के मकानों, जल-कल तथा इस प्रकार के अन्य भवनों के निर्माण में प्रयुक्त किया जा रहा है।

हमारी जीवन-पद्धति बहुत कुछ इस बात का निश्चय करती है कि हम कैसे काम करते हैं तथा समाज के लिए हम कितने लाभदायक होते हैं। यही कारण है कि जनता के रहन-सहन की परिस्थितियों के सुधार पर इतना अधिक ध्यान दिया जाता है। यह बात सबसे पहले और सबसे अधिक घरों के निर्माण में प्रकट होती है। १९६० में केवल मास्को में लगभग १ लाख परिवार नये आरामदेह घरों में गये हैं। इतने बड़े पैमाने पर गृह निर्माण के लिए न केवल प्रगतिशील निर्माण-विधि की आवश्यकता होती है, बल्कि ऐसी नयी-नयी निर्माण तथा सजावट की सामग्री की भी आवश्यकता पड़ती है, जिनका पहले किसी को पता भी न था।

साइबेरिया तथा सोवियत सुदूरपूर्व में ज्वालामुखी-शीशे की विशाल खाने हैं। दीर्घ काल तक उनका कोई प्रयोग नहीं था। लेकिन सोवियत वैज्ञानिकों ने अब उनके कुछ ऐसे आश्चर्यजनक गुणों का पता लगा लिया है जो रहने के मकानों तथा सार्वजनिक भवनों के निर्माण में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं। वास्तव में जब ज्वालामुखी शीशे को गर्म किया जाता है तो वह फूल कर कई गुना बढ़ जाता है। रेल के एक डिब्बा शीशे से छः डिब्बा पेरलाइट तैयार की जाती है, जो कंक्रीट में मिलाने की एक सर्वश्रेष्ट सामग्री है। दीवारों में लगाने के चौकोर टुकड़ों, फर्श तथा मकान के दूसरे भागों में पेरलाइट मिली कंक्रीट इस्तेमाल करने से उन पर पाले का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। साथ ही वह मजबूत तथा सस्ता भी होता है।

मकानों के भीतरी भागों को सजाने के लिए सोवियत संघ में तरह-तरह के प्लास्टिक इस्तेमाल किये जाते हैं। उन्हें फर्श बनाने, धातु के चौकठ ढंकने तथा कई दूसरी वस्तुएँ बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

कमरों को तैयार करने में तैलयुत रंगों की भूमिका सर्वविदित है। वे दीर्घकाल तक खराब नहीं होते, कमरों को आकर्षक बनाते हैं, साथ ही

वे अत्यन्त स्वच्छ होते हैं। सोवियत संघ के आर्थिक विकास की योजनाओं में मकानों तथा औद्योगिक भवनों के निर्माण का क्षेत्र इतना बड़ा है कि निर्माताओ के लिए वनस्पति तेलों से बने हुए रंगों को अपेक्षित मात्रा में एकत्र करना बहुत ही कठिन तथा खर्चीला काम होगा। अतएव सोवियत वैज्ञानिकों ने कृत्रिम तेल के बहुत से सूत्र तैयार किये हैं। ये तेल रासायनिक कारखानों में व्यावसायिक पैमाने पर तैयार किये जा रहे हैं। ये प्राकृतिक तेलों से किसी भी बात में कम नहीं हैं। इतना ही नहीं, उनमें कई ऐसे दूसरे गुण भी हैं जो उन्हें वनस्पति तेलों से श्रेष्ठ बना देते हैं।

चिकित्सकों के पास वनस्पति तथा पशु-उत्पादनों से बनी हुई बहुत औषधियों के होते हुये, ऐसे दूसरे बहुत से रसायनिक पदार्थ हैं, जो मानव स्वास्थ्य तथा जीवन के संघर्ष में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। रसायन-विदों तथा सूक्ष्म जीव-विज्ञान वेत्ताओं ने भी अनेक गम्भीर बीमारियों पर विजय प्राप्त करने में सहायता की है। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि रसायन शास्त्र हमारे जीवन पर विशेष रूप से प्रभाव डालता हैं।

पर्वतारोही पहाड़ों के ढलानों पर चढ़ रहे हैं। वे एक दूसरे के साथ एक मजबूत रस्सी से बँधे हुए हैं। यह रस्सी **काप्रोन** से बनाई जाती है। काप्रोन एक बहुलक (पोलीमेर) पदार्थ है जिसे कृत्रिम रूप से तैयार किया जाता है। काप्रोन की रस्सी सड़ती नहीं, साथ ही प्राकृतिक रेशों से तैयार की गयी रस्सियों से कई गुना मजबूत भी होती है। यात्री अपने साथ न तो झोले में लकड़ी ले जा सकते है, न गैस के पीपे और न मिट्टी के तेल के पीपे। भोजन बनाने के लिए वे **यूरोट्रोपाइन** की सघन तथा सर्वथा सुरक्षित छोटी-छोटी ईंटें इस्तेमाल करते हैं। भ्रमणकर्ताओं, भूतत्व वेत्ताओं तथा अन्वेषकों को साइबेरिया के सुदूर वनों और मैदानों में तथा कष्टसाध्य ध्रुवीय प्रदेशों में यात्रा करनी होती है। कभी-कभी उनके ऊपर अगणित रक्त चूषक कीड़े-पतिंगे आक्रमण कर देते हैं जिनसे उन्हें असह्य कष्ट झेलना पड़ता है और कभी कभी वे संक्रामक बीमारियों के वाहक भी बन जाते हैं। रसायन विज्ञान इनकी भी सहायता करता है। हर एक के पास "टैगा" की एक बोतल रहती है। इस डाइ-मेथिल थैलेट द्रव को खुले शरीर पर लगा देने से दो घंटे तक मच्छर निकट नहीं फटकता।

कीड़ों को भगाने के लिए सोवियत वैज्ञानिकों ने अभी हाल में एक नया तथा अधिक प्रभावपूर्ण पदार्थ तैयार किया है। इस पदार्थ का नाम है **एसिटिलहाइड्रोक्विनोल**। यदि कोई कपड़ा इस रसायनिक पदार्थ में भिगो लिया जाय तो वह डाइमेथिल थैलेट की अपेक्षा पिस्सुओं को पाँच गुन अधिक दूरी तक भगा देगा। यात्रा की पोशाक पर छिड़क लिया जाय तो वह टैंगा, **इनसेफलिटिस** के कीटाणुओं से दो महीने तक रक्षा करेगा। कपड़ों को धो डालने से भी इस रसायन का प्रभाव नहीं मिटता।

अतएव यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि सोवियत संघ में रसायन के विकास पर इतना अधिक ध्यान दिया जाता है। १९५८ में एक विशेष निर्णय के द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि वर्तमान सप्तवर्षीय योजना के काल में (१९५९–१९६५) कृत्रिम तथा रासायनिक रेशों के उत्पादन से ४·६ गुनी वृद्धि की जायगी, प्लास्टिक तथा संश्लिष्ट गोंद के उत्पादन में जिससे बहुत सी वस्तुएँ तैयार की जाती हैं, आठ गुनी वृद्धि की जायगी; रासायनिक रबड़ के उत्पादन में ३·४ गुनी वृद्धि की जाएगी।

इन आंकड़ों से यह पता चलता है कि सोवियत जनता को अधिकाधिक मात्रा में उपभोक्ता सामग्री

प्राप्त होगी। कृत्रिम चमड़े से बनाये जाने वाले जूतों के उत्पादन में २.३ गुनी तथा हल्के सूक्ष्म संरंध्र पदार्थ से बने तल्ले वाले जूतों के उत्पादन में ४० गुनी वृद्धि होगी। वस्त्र उद्योग में कृत्रिम तथा रासायनिक सूतों के प्रयोग से ऊनी कपड़ों के उत्पादन में २.३ गुनी, रेशमी कपड़ों के उत्पादन में १.७५ गुनी वृद्धि हो जाएगी। यहां यह बता देना आवश्यक है कि कृत्रिम अस्त्राखार से तैयार की गयी जाड़े की टोपियां, जो रूसी शीत से बचाव के लिए अत्यन्त आवश्यक है, प्राकृतिक अस्त्राखान की अपेक्षा ६ गुना कम मूल्य में प्राप्त होगी। इसके अतिरिक्त कृत्रिम फर से तैयार किये गए कोट किसी भी बात में प्राकृतिक फर के कोटों से कम नहीं होते। टिकाऊ होने के साथ-साथ उनका मूल्य ३० प्रतिशत कम होगा।

इस समय विज्ञान की अन्य शाखाएँ भी हमारे दैनिक जीवन में महान् परिवर्तन ला रही हैं। उदाहरण के लिए बिजली को ही ले लीजिए। केवल वैज्ञानिक अनुसंधान के ही द्वारा यह सम्भव हो सका कि मनुष्य की भलाई के लिए बिजली के विस्तृत प्रयोग का पता लगाया जाए। बिजली के रेफ्रीजरेटर भोजन को सुरक्षित रखते हैं, निर्वात क्लीनर से कपड़े, फर्नीचर, आदि की भली प्रकार सफाई करने में सहायता मिलती है।

विगत दशाब्दी में संसार के तमाम देशों में रेडियो और टेलीविजन का तेजी के साथ विकास हुआ है। आधुनिक रेडियो सेट अथवा टेलीविजन विज्ञान एव इंजीनियरिंग की एक शानदार उपलब्धि है। प्रत्येक सेट में इलेक्ट्रौनिक, स्वचालन, पोलीमेर तथा शीशे के सूत, अर्द्धचालक तथा अधातुवीय चुम्बक के सामान, नई-नई मिश्रित धातुएँ, तथा बहुत सी दूसरी चीज़ें लगी रहती है। संक्षेप में ये सब भौतिकी, रसायन, ध्वानिकी, इलेक्ट्रॉनिक्स, धातु-विज्ञान, प्रविधि तथा स्वचालित उत्पादन की महान् उपलब्धियों का परिणाम है।

यहाँ तक कि गणित जैसे अमूर्त विज्ञान भी हमारे दैनिक जीवन में प्रविष्ट हो गए हैं। सभी जानते हैं कि घरेलू इस्तेमाल की गैस दिन के विभिन्न हिस्सों में भिन्न-भिन्न परिणाम में खर्च होती है। उजबेक जनतंत्र में शहरों में और कस्बों में गैस की व्यवस्था की जा रही है। गैस संभरण के अनेक केन्द्रों को नियमित रूप से चलाने के लिए परिवर्ती गैस संभरण व्यवस्था से सम्बन्धित अनेक जटिल समस्याओं को हल करना आवश्यक था। प्राकृतिक गैस शोध संस्थान की ताशकन्द शाखा ने उजबेक विज्ञान अकादमी के कम्पूटिंग केन्द्र से प्रार्थना की कि वह तीव्र गति वाले विद्युत् कम्पूटरों से गैस के पाइपों के विद्युतीय प्रतिरूपों की गणना कर दें। यह जटिल तथा अत्यन्त सूक्ष्म कार्य अल्प समय में पूरा कर लिया गया और इस समय मॉडल के निर्माण का कार्य सम्पन्न किया जा रहा है। इससे मुख्य पाइपों में होकर गैस के जाने से सम्बन्धित आवश्यक प्रक्रियाओं को बल प्रदान करने में सहायता मिलेगी। नये कार्य-क्रम से किसी भी अपेक्षित स्थान पर, किसी मात्रा में गैस की निरन्तर सप्लाई सुनिश्चित हो जाती है।

हम वैज्ञानिक उपलब्धियों को बराबर अपने दैनिक जीवन में इस्तेमाल कर रहे हैं। सच्चा विज्ञान सदैव मानवतावादी होता है, वह मनुष्य की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लक्ष्य को सदैव अपने सामने रखता है, वह सदा प्राकृतिक शक्तियों पर मानव सत्ता की विजय के लिए प्रयत्न करता है।

—एन० सित्नीकोव

३. दो नोबेल पुरस्कार विजेता

सर्व प्रथम, १९०१ में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था तब से अब तक ७४ अमेरिकी वैज्ञानिक ये पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं। जिन ७३ वें तथा ७४ वें अमेरिकी वैज्ञानिकों को नोबेल पुरस्कार

प्रदान किये गये हैं, वे दोनों अणुशक्ति को कल्याणकारी कार्यों में प्रयुक्त करने के सम्बन्ध में कार्य करते रहे हैं। अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन के भूतपूर्व सदस्य, डा० विलाड एफ० लिवी को रसायनशास्त्र में पुरस्कार मिला हैं। वे इस समय कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में कार्य कर रहे हैं। उसी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर, डा० डोनाल्ड ए० ग्लेसर को भौतिक विज्ञान में नोबेल पुरस्कार मिला है।

डा० लिवी

५१ वर्षीय वैज्ञानिक डा० लिवी को एक आणविक केलेण्डर का विकास करने के लिये सम्मान प्रदान किया गया है। इस केलेण्डर की सहायता से वैज्ञानिक लोग मनुष्यों तथा पशुओं के शरीर के ३० हजार वर्ष तक के पुराने अवशेषों के काल का पता लगा सकते हैं। उनका यह कार्य पुरातत्ववेत्ताओं, भूगर्भशास्त्रिओं तथा शरीर-विज्ञान शास्त्रिओं द्वारा किये जाने वाले अनुसंधान-कार्यों के लिये बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है।

यह 'केलेण्डर' डा० लिवी की इस खोज पर आधारित है कि सामान्य कार्बन के अलावा एक विशेष रेडियसक्रिय कार्बन भी होता है, जिसे 'कार्बन-१४' कहते हैं। ब्रह्माण्ड किरणों द्वारा उसकी निरन्तर उत्पत्ति होती रहती है। जब कोई प्राणी मर जाता है, तब उसका शरीर कार्बन--१४ को ग्रहण नहीं कर सकता और उसमें उस समय कार्बन-१४-की जो मात्रा संचित होती है, वह बहुत धीरे धीरे नष्ट होती है। डा० लिवी द्वारा खोज की गई विधि से उसके नष्ट होने की गति को मापा जा सकता है। ५,५०० वर्ष की समाप्ति पर उस प्रारम्भिक मात्रा का आधा भाग नष्ट हो जाता है। शेष मात्रा को माप कर किसी प्राणी की मृत्यु के काल का अनुमान लगाया जा सकता है।

डा० लिवी, जो लगभग ३० वर्ष तक आणविक अनुसन्धान कार्य में संलग्न रहे हैं युद्धकालीन योजना के अन्तर्गत प्रथम अणुबम के सम्बन्ध में कार्य करते थे। उसके पश्चात् वे शिकागो विश्वविद्यालय के आणविक अध्ययन सम्बन्धी संस्थान में चले गये। फिर वे आणुशक्ति कमीशन में कार्य करने लगे। वे अब भी उसकी सलाहकार समिति के सदस्य हैं। आणविक जानकारी के सम्बन्ध में उन्होंने जो योगदान किये हैं, उसके लिये उन्हें अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। एल्बर्ट आइन्स्टीन तथा गिब्स पुरस्कार भी उन पुरस्कारों में सम्मिलित हैं।

डा० ग्लेसर

६ वर्ष पूर्व ३४ वर्षीय डा० ग्लेसर मिशिगन विश्वविद्यालय के स्टाफ में सम्मिलित थे। उन्होंने बुद-बुद प्रकोष्ट (बबल चैम्बर) नामक एक कक्ष का आविष्कार किया है, जिसमें लगभग प्रकाश की गति के समान गति से उड़ते हुए आणविक कणों के पक्षों का चित्रांकन किया जा सकता है। चूँकि चिन्हों की जांच द्वारा आधारभूत आणविक कणों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है, जो कण पदार्थ में से गुजरते हुए छोड़ जाते हैं और जो ऐसा करते समय अपने मार्ग में पड़ने वाले अणुओं में थोड़ी मात्रा में अपनी शक्ति छोड़ देते हैं, इस लिये अनुसन्धान की दृष्टि से यह कक्ष बड़ा ही उपयोगी है।

'बबल चेम्बर', अत्यन्त गहन एवं गरम तरल गैस से भरा होता है। जब शक्तिशाली अणुभंजक द्वारा आणविक कण उस तरल गैस से गुजारे जाते हैं, तब बुदबुदों के छोटे-छोटे चिन्ह बन जाते हैं। वे अपेक्षाकृत स्पष्ट तथा टिकाऊ होते हैं। अणु वैज्ञानिकों द्वारा बाद में अध्ययन किये जाने के लिये उनके चित्र लिये जा सकते हैं।

यह कक्ष अब अरबों वोल्ट शक्ति वाले सभी अणुभंजकों से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण उपकरण के रूप में प्रयुक्त हो रहा है। १९५० में डा० ग्लेसर ने केलिफोर्निया इन्स्टिट्यूट आफ टेक्नालाजी से अपनी पी० एच-डी० की उपाधि प्राप्त की थी। १९५८ में अमेरिकी जूनियर चैम्बर आफ कामर्स ने उनको अमेरिका के १० उल्लेखनीय युवकों में से एक उल्लेखनीय युवक घोषित किया था। उसके अगले वर्ष अमेरिकन फिजिकल सोसायटी ने उनको अपने बबल चैम्बर के लिए पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया था।

१. वनमानुष की अन्तरिक्ष यात्रा

फरवरी १९६१ में अमेरिका ने राकेट द्वारा एक जीवित वनमानुष (चिम्पांजी) को अन्तरिक्ष में भेजने में सफलता प्राप्त की। उसी दिन अमेरिकी वायुसेना की अनुसन्धान एवं विकास कमान ने पौइंट आरगेलो (कैलिफोर्निया) स्थित नौ-सेना के अड्डे से 'सामोस द्वितीय' कृत्रिम उपग्रह को छोड़ा।

एक राकेट द्वारा ३७ पौंड वजन के 'हैम' नामक वनमानुष ने अन्तरिक्ष में १५१ मील की ऊँचाई तक सफलतापूर्वक उड़ान की। इससे अमेरिका मनुष्य को अन्तरिक्ष में भेजकर वापस लाने की दिशा में एक कदम और आगे बढ़ गया है। केप कैनेवेरल अड्डे (फ्लोरिडा) से उड़कर अटलाण्टिक सागर में गिरने तक इसकी ४२० मील की उड़ान में केवल १६ मिनट लगे।

'राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन' ने इस परीक्षण की व्यवस्था की थी। इस संस्था ने बताया कि वनमानुष 'जीवित और स्वस्थ दीखता था'। समुद्र में गिरने की जगह के निकट बहामा के हवाई अड्डे में इस वनमानुष के बारे में विस्तृत जांच-पड़ताल की जायेगी। वनमानुष को जिस कैपस्यूल (खोल) में बन्द करके भेजा गया था, उसे समुद्र में गिरने के बाद हैलिकोप्टर द्वारा उठा कर जहाज पर पहुँचाया गया। रैडस्टोन राकेट के छूटने के ४ घंटे बाद इसे वहां लाया गया था। लगभग ३५ मील जाकर यह राकेट हवा में जल गया और बाद में तीन छोटे राकेट फटे ताकि खोल रैडस्टोन राकेट से अलग हो जाये। होलोमैन (न्यू मैक्सिको) स्थित हवाई सेना की उड्डयन-चिकित्सा प्रयोगशाला ने २ नर और ४ मादा वनमानुषों में से इसे चुना था। इस उड़ान से पहले इस वनमानुष को चार महीने तक यह सिखाया गया था कि उड़ान के समय किन विशिष्ट कलों को वह खींचे।

'हैम' को उसके शरीर की बनावट के अनुसार बनाई गई एक गद्दी में बिठाया गया। उड़ान के समय उसका मुँह आकाश की ओर था। उड़ान के समय वनमानुष की हर गतिविधि को १६-मिलीमीटर कैमरे द्वारा रिकार्ड किया गया। इसके अतिरिक्त वनमानुष के शरीर के साथ कुछ छोटे यन्त्र लगाये गये थे, जिनसे उसके हृदय की गति, श्वास-क्रिया, ताप तथा अन्य शारीरिक प्रतिक्रियाओं को अंकित किया गया। उड़ान के दौरान इस जानकारी को टेलीमीटर यन्त्र द्वारा कैपकैनेवेरल तक पहुंचाया गया और साथ ही टेप पर भी रिकार्ड किया गया ताकि बाद में विश्लेषण किया जा सके।

उधर, एक दूसरे कैमरे से खोल में रखे यन्त्रों के डायलों में रेकार्ड होने वाली सभी गतिविधियों के चित्र लिये गये और खोल के ताप, दबाव, ध्वनि, कम्पन आदि को अंकित करके उन्हे मुख्य अड्डे तक भेजा गया।

एक उन्नत कोटि के एटलस राकेट द्वारा 'सामोस' उपग्रह को वायुमण्डल से बाहर भेजा गया और बाद में उसे द्वितीय खंड के ऐगिना राकेट द्वारा ध्रुवीय कक्षा में स्थापित किया गया। चूंकि यह कार्यक्रम अभी प्रारम्भिक अवस्था में है इसलिए 'सामोस' परीक्षण की उपयोगिता पूरी तरह आंकने में अभी कुछ समय लगेगा। 'सामोस-२' उपग्रह सहित इस समय अमेरिका के १९

कृत्रिम उपग्रह अन्तरिक्ष में परिक्रमा कर रहे हैं। इनमें १७ उपग्रह तो पृथ्वी की परिक्रमा कर रहे हैं और शेष उपग्रह सूर्य की। 'सामोस-२' सहित १० अमेरिकी कृत्रिम उपग्रह अन्तरिक्ष के बारे में विविध सूचनाएं पृथ्वी पर भेज रहे हैं।

अन्तरिक्ष अनुसन्धान के ३॥ वर्ष के अल्पकाल में अमेरिका ने कुल मिलाकर ३४ कृत्रिम उपग्रहों को कक्षा में स्थापित किया। रूस ने इसी अवधि में १० उपग्रहों को कक्षा में स्थापित किया और एक राकेट को चन्द्रमा तक पहुँचाया।

२. रूस के स्पुतनिक का प्रायोगिक उद्देश्य

४ फरवरी को छोड़े गये भारी कृत्रिम भू-उपग्रह के विषय में अका० एल० आई० सेदोव से किया गया साक्षात्कार प्रावदा में छपा है। अका० सेदोव ने कहा कि जैसा कि पहले सूचित किया जा चुका है ६४८३ किलोग्राम भार का (सोवियत संघ द्वारा पहले छोड़े गये अन्तरिक्ष यानों की तुलना में लगभग दो टन अधिक वजन का) कृत्रिम भू-उपग्रह पृथ्वी की परिक्रमा करने के लिए उन्नत ढंग के बहुमंजिले राकेट द्वारा कक्षा में पहुँचाया गया है।

४ फरवरी को छोड़े गये स्पुतनिक में बाह्य अन्तरिक्ष के वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए कोई विशेष यांत्रिक सामान नहीं है, और न प्रायोगिक जीवधारी रखे गये हैं क्योंकि केवल प्रायोगिक उद्देश्यों के लिए छोड़ा गया यह अपने ढंग का पहला अन्तरिक्ष यान है। यह अफवाह कि स्पुतनिक में आदमी है, निराधार है।

इसके छोड़ने का मुख्य उद्देश्य है इतने बड़े स्पुतनिक को सबसे पहले कक्षा में पहुँचाना और इसके बाद पैरामीटरों का अध्ययन करना। इसी उद्देश्य से स्पुतनिक को, इसके तत्वों को, पैरामीटरों के नियन्त्रण के लिए रेडियो-टेलीमिट्रिक पद्धति से युक्त किया गया है।

दूसरी बात है, इस स्पुतनिक का सुचारु रूप से कक्षा पर पहुँचना जो महत्वपूर्ण होने पर भी बहुत ही कठिन है। यह काम सफलता के साथ पूरा किया गया तथा गमन-पथ की माप के लिए स्पुतनिक में रखे यंत्रों के सहारे वांच्छनीय माप कार्य तथा पर्यवेक्षण कार्य किया गया। धरती पर बने माप और गणना केन्द्र ने यह प्रतिपादित कर दिया कि स्पुतनिक परिगणित पैरामीटरों के बहुत ही निकट कक्ष पर घूम रहा है। प्रायोगिक रूप में जो यह स्पुतनिक छोड़ा गया है, उसमें स्पुतनिक को वापस लाने की कोई विशेष प्रणाली नहीं है। निम्न कक्ष होने के कारण स्पुतनिक का जीवन अवधि छोटी होगी और यह शीघ्र ही वायुमंडल के घने स्तरों में प्रवेश करेगा तथा जल जायेगा।

३. शुक्र ग्रह की ओर

सोवियत अवकाश अनुसन्धान कार्यक्रम के अनुसार सोवियत संघ में १२ फरवरी १९६१ को एक सुधरी किस्म के बहुखंडीय राकेट के द्वारा एक भारी कृत्रिम भू-उपग्रह कक्ष में पहुँचाया गया। उसी दिन स्पुतनिक से छोड़े गये एक निर्देशित अवकाश राकेट ने एक स्वचालित अन्तःनक्षत्रीय स्टेशन को शुक्र ग्रह की ओर उड़ान के लिए भेजा।

स्वचालित अन्तःनक्षत्रीय स्टेशन मई १९६१ के उत्तरार्द्ध में शुक्र ग्रह के क्षेत्र में पहुँचेगा। इस टोह का मुख्य उद्देश्य अन्तःनक्षत्रीय विक्षेप-पथ में किसी अवकाश वस्तु को डालने की विधियों की जांच करना, अतिदूरियों पर रेडियो संचारों की तथा अवकाश स्टेशन के निर्देशन की जांच करना, सौरमण्डल के आकार की और सही-सही जांच करना तथा बाह्य अवकाश में भौतिक पर्यवलोकन के कार्यक्रम को सम्पन्न करना है। अन्तःनक्षत्रीय स्टेशन में रखा गया सयंत्र सामान्य ढंग से काम कर रहा है। स्वचालित अन्तःनक्षत्रीय स्टेशन का

भार ६४३.५ किलोग्राम है। स्वचालित अन्तःनक्षत्रीय स्टेशन के रडियो ट्रांसमिशन धरती से प्राप्त निर्देशनों पर ९२२.८ किलोसाइकल की आवृत्ति पर प्रसारित हो रहे हैं। इसमें सोवियत संघ के राज्य चिन्ह से युक्त एक झण्डा हैं। इसकी उड़ान का एक बिशेष केन्द्र द्वारा पर्यवलोकन किया जा जा रहा है।

प्राप्त सूचनानुसार स्वचालित अन्तःनक्षत्रीय स्टेशन ऐसे कक्ष पर चल रहा है जो परिकलित कक्ष के बिलकुल पास है।

१२ फरवरी १९६१ के मास्को समय से १२ बजे यह अन्तर्ग्रहीय स्टेशन पृथ्वी से १,२६,३०० किलोमीटर की दूरी पर पृथ्वी तल के उस बिन्दु के ऊपर था जो ८६ डिग्री ४० मिनट पूर्वी देशान्तर और ६ डिग्री ४० मिनट उत्तरी अक्षांश पर पड़ता है। शुक्रग्रह की ओर अवकाशयान को सफलतापूर्वक छोड़ने के कार्य ने सौरमंडल के अन्य ग्रहों को जाने का प्रथम मार्ग प्रशस्त किया है।

४. वनस्पति में हल्दी का रंग

मैसूर की केन्द्रीय खाद्य शिल्प अनुसंधान संस्था में वनस्पति को रंगने के बारे में जो अनुसंधान चल रहे हैं, उनसे पता चलता है कि हल्दी के सत से वनस्पति में हलका पीला रंग दिया जा सकता है। हल्दी के सत से मिला हुआ बहुत थोड़ा वनस्पति भी जब घी में मिला कर देखा गया तो भी यह रंग साफ चूने की परख में भी पूरा उतरता है।

हल्दी का बाजार भाव ४८ रु० मन है और इसमें ८ प्रतिशत भी सत निकले तो सत निकालने के खर्च को मिलाकर वनस्पति को रंगने में प्रति पौंड १ न० पै० से भी कम लागत बैठेगी। देश में तैयार होने वाले ४ लाख टन (वार्षिक) वनस्पति को रंगने के लिए २,००० टन हल्दी काम आएगी। यह देश में हल्दी के पैदावार का लगभग १ प्रतिशत है।

हल्दी का रंग देने से घी में वनस्पति की मिलावट रोकी जा सकेगी। साथ ही वनस्पति में तिल का तेल भी मिलाना होगा। तिल के तेल पर हल्दी का असर नहीं होता। दोनों वस्तुओं के मिलाने से घी में मिलावट की दूसरी रोक हो सकेगी।

५. न सीलने वाला नमक

भावनगर की केन्द्रीय नमक अनुसन्धानशाला ने समुद्री नमक से ऐसा नमक तैयार करने की विधि निकाली है, जो किसी मौसम में सीलता नहीं और आसानी से काम आ सकता है।

अनुमान लगाया गया है कि एक टन ऐसा नमक प्रतिदिन बनाने वाले कारखाने को २१·५ प्रतिशत लाभ होगा।

खानों के नमक में कुछ ऐसे पदार्थ रहते हैं, जिनपर नमी जल्दी असर करती है। अच्छी तरह से पिस जाने पर भी वह ठीक से गिरता नहीं। इसलिए इस नमक में कुछ ऐसे रसायन मिलाने चाहिए जिनसे वह सीले नहीं और छिड़कने या बुरकने में कष्ट न हो।

नयी विधि के अनुसार नमक को चूने और सोडा ऐश से साफ किया जाता है और नियंत्रित वातावरण से सुखा कर इसके ऐसे कण बनाए जाते हैं, जो प्रयोग में अच्छे रहें। इस प्रकार नमक के कणों पर ऐसी तह जम जाती है, जिसे नमी प्रभावित नहीं करती और नमक सदैव सूखा रहता है।

६. परीक्षणात्मक विशाल वायु-सुरंग द्वारा मन्द वायु का प्रवाह

क्या आपने कभी ऐसी वायु-सुरंग सुनी है, जिसमें से मन्द-मन्द वायु बहती हो? जान होपकिंस के यन्त्र विभाग में कार्य करने वाले वैज्ञानिकों ने अभी हाल में एक ऐसी वायु-सुरंग तैयार कर ली है।

वायु तथा अन्तरिक्ष सम्बन्धी यानों की जाँच करने के लिए गत वर्षों में अत्यधिक वेग से वायु

प्रवाहित करने वाली वायु-सुरंगों के निर्माण की ओर प्रवृत्ति रही है किन्तु यहाँ एक विशाल वायु-सुरंग तैयार की गयी है, जिसमें से वायु के मखमल के समान कोमल एवं मन्द झोंके निकलते हैं। उन की गति ५ मील प्रति घंटे से १०० मील प्रति घंटा तक होती है। (कुछ आधुनिक वायु-सुरंगों से १०,००० मील प्रति घन्टा की गति से वायु चलती है।)

यह वायु-सुरंग दोमंजिला है और १०० फुट से अधिक लम्बी है। इसका आकार रुद्ध परिपथ के समान है इसलिए इसके भीतर वायु बारम्बार ऊपर-नीचे प्रवाहित होती रहती है। कम गति वाली तथा मन्द वायु प्रवाहित करने वाली वायु-सुरंग की क्या आवश्यकता है ?

होपकिन्स के यन्त्र विभाग के वैज्ञानिक डा० स्टेनली की देख-रेख में हलचल के सम्बन्ध में मूल भूत ज्ञान के लिए अनुसन्धान कर रहे हैं। यह वह हलचल है, जो काफी के प्याले में क्रीम मिलाते समय, किसी ढेर से वायु में धुवाँ उड़ाते समय तथा किसी टोंटी से बहते हुए जल में दृष्टिगोचर होता है। पाइपों में, जेट इंजनों में तथा प्रोपलरों पर तरल पदार्थों, वायु अथवा गैस के प्रवाह से सम्बन्ध रखने वाले वैज्ञानिकों, रसायनशास्त्रियों तथा अन्तरिक्ष विज्ञान-शास्त्रियों आदि को हलचल के सम्बन्ध में मूल जानकारी की आवश्यकता है।

इस उद्देश्य से बनायी गयी सुरंग में २ खण्ड का अत्यधिक दबाव वाला पंखा प्रयोग में लाया जाता है, जिसमें ऐसे फल लगे हैं, जिन्हें ऊपर-नीचे किया जा सकता है। यह पंखा मन्द गति से चलता है और इसके चलते समय बड़ी धीमी ध्वनि उत्पन्न होती है। इसके परिणामस्वरूप वायु का प्रवाह बड़ा ही धीमा रहता है। कोरसिन का कथन है कि मन्द वायु से अध्ययन प्रारम्भ करके वैज्ञानिक लोग हलचल के विषय में ठीक-ठीक जानकारी हासिल कर सकते हैं।

७. सभी ओर फैल सकने वाला कागज

अमेरिका की एक औद्योगिक फर्म ने एक नये प्रकार का कागज तैयार करने की विधि विकसित की है, जो सभी ओर फैल सकता है। कम्पनी का विश्वास है कि यह नया कागज बेल बूटे कढ़े वस्त्र, चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले लबादे, नर्सों और नाइयों के परिधान, चद्दर तथा इसी तरह की बहुत सी अन्य वस्तुएँ तैयार करने में बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

इस नये कागज का निर्माण लम्बाई में फैलने वाले एक कागज सम्बन्धी अनुसंधान का परिणाम है। चारों ओर फैलने वाला कागज तैयार करने की विधि के अन्तर्गत, कागज के एक भीगे सीट के रेशों के एक रबर के आवरण तथा एक तप्त चिकने बेलन के बीच दबा कर कस दिया जाता है। रबर के आवरण की गेंडुरी को इस प्रकार नियन्त्रित किया जाता है, जिससे कागज का सीट केवल लम्बाई में फैलने के बजाय सभी ओर फैल सके।

८. भूगर्भ निःसृत वाष्प से चालित बिजलीघर

एक शताब्दी पूर्व भालुओं के शिकार की खोज में जंगलों में घूमने वाले एक व्यक्ति ने एक ऐसा संकरा गह्वर देखा, जहाँ पर पृथ्वी के गर्भ से स्वचालित वाष्प के फव्वारे फूट रहे थे। अब से कुछ समय पूर्व तक 'गेसर्स' नामक इन स्वचालित वाष्प-कूपों की कोई उपयोगिता नहीं थी। परन्तु, अब वही वाष्प जो पहले धरती में विलीन हो जाती थी, विद्युतशक्ति के उत्पादन के लिए प्रयुक्त की जा रही है। इस स्थान पर अब अमेरिका की 'पैसफिक गैस ऐण्ड इलेक्ट्रिक कम्पनी' ने एक बिजली घर खड़ा कर दिया है। पाइपों द्वारा धरती से निकलने वाली भाप बिजली घर के टरबाइनों में पहुँचाई जाती है और इस प्रकार बिजली उत्पन्न की जाती है।

अमेरिका में इस प्रकार का यह पहला बिजलीघर है। अमेरिका में सस्ती बिजली उत्पन्न करने के स्रोतों

की जो खोज की जा रही है, उक्त बिजलीघर की स्थापना उसी का एक परिणाम है। इस प्रकार प्राप्त की जाने वाली वाष्प १२,५०० किलोवाट बिजली उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त है। इसे 'गीसर प्लाण्ट' का नाम दिया गया है। चूँकि इसके लिए ब्वायलरों की आवश्यकता नहीं है, अतएव एक छोटी सी इमारत से ही काम चल गया है। इस छोटी सी इमारत में टरबाइन स्थित हैं।

इस बिजलीघर को चलान के लिए किसी व्यक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती। बिजलीघर में एक नियन्त्रण-पैनल फिट है, जो बिजलीघर के उपकरणों के संचालन-कार्यों सम्बन्धी समस्त सूचना प्राप्त करता है। यह समस्त सूचना निकट ही स्थित एक उप-स्टेशन को प्रेषित हो जाती है, जहाँ से दूर-नियंत्रण विधि का उपयोग कर विजलीघर में विद्युतशक्ति उत्पादन को जारी रक्खा जाता है। अधिक गड़बड़ी उत्पन्न होने पर दूर-नियन्त्रण विधि द्वारा इसे बन्द भी किया जा सकता है।

९. शरीर के अन्दर विद्यमान कैंसर प्रतिरोधक क्षमता

'स्लोन-केटरिंग इन्स्टिट्यूट' ने यह सूचना दी है कि शरीर के अन्दर विद्यमान स्वाभाविक कैंसर प्रतिरोधक क्षमता को जागृत कर कैंसर रोग के प्रतिरोध करने की दिशा में उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त किए गए हैं।

'इंस्टिट्यूट' के वैज्ञानिकों का कथन है कि कई उपायों द्वारा शरीर के अन्दर विद्यमान कैंसर प्रति-रोधक क्षमता में वृद्धि की जा सकती है।

१०. खेतों के कीड़ों को नष्ट करने के लिए चीनी का उपयोग

अमेरिकी कृषि विभाग के अनुसन्धानकर्ताओं ने यह खोज की है कि यदि मिट्टी में सामान्य चीनी मिला दी जाए तो उससे संसार के कुछ सबसे अधिक भयानक और हानिकारक कीटाणुओं को नष्ट किया जा सकता है। विशेषज्ञों का कहना है कि यद्यपि चीनी 'नेमीटोड' नामक सूक्ष्म कीटाणुओं को नष्ट कर देती है, परन्तु इससे गरम रुधिर वाले पशुओं को कोई हानि नहीं पहुँचती। अभी यह प्रयोग परीक्षण अवस्था में है तथा फार्मों में इसका उपयोग करने पर काफी खर्च बैठता है।

११. नए जेबी रेडियो का विकास

वेस्टिंग एलेक्ट्रिक कार्पोरेशन ने एक ऐसे जेबी रेडियो का विकास किया है, जिसमें सिल्कोन पदार्थ की ६ छोटी-छोटी टिकिया फिट हैं। ये सिल्कोन-टिकिया ही इस रेडियो का मुख्य अंग हैं। वैज्ञानिकों का कथन है कि इसका निर्माण परीक्षण के तौर पर इस सम्भावना की खोज करने के लिए किया गया है कि क्या ऐसी अति सूक्ष्म विद्युदणु-प्रणाली का विकास किया जा सकता है, जिसमें पदार्थ के एक टुकड़े के अन्दर ही सम्पूर्ण प्रणाली का समावेश किया जा सके। ये टिकियां सेण्ट की आकार की हैं और एक यूनिट के रूप में सम्बद्ध हैं। यह यूनिट ही रेडियो के ट्यूब, ट्रांजिस्टर, विद्युदणु-सरकिट आदि का कार्य सम्पन्न करती है।

१२. हृदय की शल्य-चिकित्सा के लिए अधिक उन्नत विधि की खोज

लास एंजेल्स में बच्चों के अस्पताल में एक ऐसी विधि खोज निकाली गई है, जिससे हृदय की शल्य-चिकित्सा के दौरान शरीर का ताप कम किया जा सकता है। शल्य-चिकित्सक हृदय से निकलने वाले रक्त को एक ठण्डी नली में पहुँचाते हैं और पुनः एक मुख्य धमनी द्वारा शरीर में प्रविष्ट करते हैं। हृदय की शल्य-चिकित्सा से सम्बन्धित ७३ आपरेशनों में वे रक्त के ताप को ५० डिग्री फारेनहाइट (सामान्य से ४८ डिग्री कम) तक लाने में सफल रहे हैं। इस तापमान पर हृदय एक घण्टे से भी अधिक समय तक गतिहीन रह सकता है। इस स्थिति में शरीर को सामान्य से केवल ६ प्रतिशत अधिक ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। वैज्ञानिकों का कथन है कि इसके फलस्वरूप रक्त में ऑक्सीजन पहुँचाने के लिए कृत्रिम फेफड़ों की आवश्यकता नहीं रह जाती।

१३. स्व-नियन्त्रित विद्युत-प्रकाश प्रणाली

माउण्ट-वर्नोन (न्यूयार्क) में एक ऐसी नई 'टाइम-स्विच' का विकास किया गया है, जिसका उपयोग दिन अथवा रात में इच्छानुसार बत्ती जलाने और बुझाने के लिए किया जा सकता है। इस प्रकार की स्वयं-नियंत्रित प्रकाश प्रणाली विज्ञापन-बोर्डों, दूकानों तथा भवनों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगी।

१४. खगोलशास्त्रियों के लिए यान-वह टेलिविजन-प्रणाली

'रेडियो कार्पोरेशन आफ अमेरिका' की प्रयोगशाला में एक अत्यधिक ऊंचाई पर प्रयुक्त होने वाली नवीन यान-वह टेलिविजन प्रणाली लगभग पूरी हो रही है, जिसकी सहायता से खगोलशास्त्री दूरस्थ "विद्युदाणविक नेत्र" द्वारा अन्तरिक्षीय गतिविधियों का अध्ययन करने में समर्थ होंगे।

इस नवीन प्रणाली के विषय में विस्तृत जानकारी की घोषणा करते हुए रेडियो कार्पोरेशन के इंजिनियरों ने कहा कि इसे पृथ्वी से १५ मील की ऊंचाई पर एक गुब्बारे के ऊपर रक्खा जायगा और इसके अन्तर्गत एक ३६ इंच व्यास का दूरवीक्षण यन्त्र सम्मिलित होगा।

गुब्बारा दूरवीक्षण योजना, जिसे 'स्ट्राटस्कोप-२' कहा जाता है, नौसैनिक अनुसन्धान कार्यालय तथा राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिष्ठान के संयुक्त तत्वाधान में प्रिंस्टन विश्वविद्यालय में तैयार हो रही है।

रेडियो कार्पोरेशन आफ अमेरिका इस प्रणाली के लिए एक टेलिविजन-संजाल की व्यवस्था कर रहा है, जिसकी सहायता से पृथ्वी पर खगोलशास्त्री गुब्बारे पर रखे गये यन्त्रपुंज के टेलिविजन कैमरों तथा एक दूर से नियन्त्रित संचार प्रणाली के माध्यम से दूरवीक्षण यन्त्र के लिए दृष्टव्य क्षेत्र का चुनाव करने में समर्थ होंगे।

इस योजना विषयक विवरण की जानकारी, रेडियो कार्पोरेशन के श्री लेस्ली ई० फ्लोरी ने प्रदान की। श्री लैस्ली इंजिनियरों की उस टोली के अध्यक्ष भी रह चुके हैं, जिसने उस लघुतर टेलिविजन प्रणाली को विकसित किया था, जिसे १९५९ में सूर्य का अध्ययन करने के लिए स्ट्राटोस्कोप-१ नामक योजना के अन्तर्गत अन्तरिक्ष में ले जाये गये १२ इंच व्यास के दूरवीक्षण यन्त्र को निर्देशित करने में सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया गया था।

१५. अमेरिका का स्काउट राकेट परीक्षण

चार खण्डों वाले स्काउट राकेट के प्रथम सफल परीक्षण को अमेरिका के वैज्ञानिक ठोस चालक-ईंधन के प्रयोग की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति का सूचक मानते हैं।

अमेरिका के राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन की ओर से स्काउट राकेट को पिछले सप्ताह वैलप्स द्वीप, वर्जिनिया के परीक्षण स्थल से छोड़ा गया था। राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन के अधिकारियों ने बताया कि इस राकेट के चारों खण्ड सफलतापूर्वक क्रम से दग उठे। परीक्षण का उद्देश्य इस राकेट की क्रियाशीलता, इसके ढांचे की दृढ़ता तथा इसकी निर्देशन नियन्त्रण-प्रणाली की उपयुक्तता का पता लगाना था।

इस राकेट द्वारा जो भू-उपग्रह कक्षा में स्थापित किया गया, उसका उद्देश्य अन्तरिक्ष की सीमा पर वायुमण्डल की वायु के घनत्व का माप करना है।

आशा है कि ७२ फुट लम्बे स्काउट राकेट का प्रयोग अगले वर्ष एक अन्तर्राष्ट्रीय भू-उपग्रह कार्यक्रम के दौरान ब्रिटेन के एक यन्त्रसज्जित भू-उपग्रह को कक्षा में स्थापित करने के लिए किया जायेगा।

१६. जीव भौगोलिक मानचित्र

यह मानचित्र विषुवत रेखा से लेकर उत्तरी ध्रुव तक उत्तर अटलाण्टिक के प्रत्येक भाग के विषय में सूचना और जानकारी प्रदान करेगा। इसके अतिरिक्त, इसमें इस बात का निर्देश होगा कि उत्तर अटलाण्टिक के किन-किन भागों में मछलियां, घोंघे

तथा अन्य पशु और पौधे पाये जाते हैं। यह महासागरीय क्षेत्र के विषय में अन्य महत्वपूर्ण भौतिक एवं रासायनिक सूचनाएँ भी प्रदान करेगा।

इसका निर्माण करने के सिलसिले में ऐसी अनेक योजनाओं का अध्ययन करना पड़ेगा, जिन्हें समुद्र से अधिक से अधिक मात्रा में खाद्य-पदार्थ प्राप्त करने के लिए तैयार किया गया है।

भूगोल परिषद का कहना है कि यह एक ऐसा जीव भौगोलिक मानचित्र है, जैसा इसके पूर्व कभी भी नहीं बना।

इस मानचित्र की योजना तैयार करने वाले वैज्ञानिकों में से एक तथा उड्स होल ओशनोग्रैफिक इन्स्टिट्यूशन के डा० कोलम्बस ओ 'डी० आइसलिन ने बताया कि सम्भवतः इस योजना के सिलसिले में कनाडा के पूर्वी तट से दूर सेण्टलारेंस की खाड़ी की तलहटी में पम्प द्वारा हवा पहुँचायी जायेगी। ऐसा समझा जाता है कि खाड़ी की तलहटी में गर्म पानी का एक विशाल जलाशय है। यदि हवा के दबाव से नीचे का पर्याप्त गर्म पान ऊपर आ सका, तो इस खाड़ी में जाड़े में जहाज चलाना सम्भव हो जायेगा।

डा० आइसलिन का कहना है कि मानचित्र से इस बात का निर्धारण करने में सहायता मिलेगी कि यह अथवा इस प्रकार की अन्य योजनाएँ व्यावहारिक दृष्टि से उपयुक्त और लाभदायक सिद्ध होंगी या नहीं।

वाशिंगटन की अटलाण्टिक फिशरी आशनोग्रैफिक रिसर्च लैबोरेटरी के निर्देशक डा० लायोनेल ए० वालफोर्ड ने बताया कि क्लोरोथाल्मस नामक मछली का बहुत बड़ी मात्रा में शिकार करने से विश्व की खाद्य-पूर्त्ति में वृद्धि हो सकती है। अभी तो इसका शिकार बहुत ही कम होता है, किन्तु अमेरिका के पूर्वी तट से दूर महासागर के किसी भी क्षेत्र में जिसकी गहराई १,२०० फुट के लगभग है।

१७. पशुओं के स्वभाव का अध्ययन

शिकागो विश्वविद्यालय में एक नयी प्रयोगशाला का निर्माण हो रहा है, जहां वैज्ञानिक पशुओं के स्वभाव का अध्ययन ऐसी परिस्थितियों के अन्तर्गत कर सकेंगे, जो उनके प्राकृतिक निवासस्थान की स्थितियों से मिलती-जुलती होंगी।

इस प्रयोगशाला के भीतर प्रत्येक जाति के पशुओं का घूमने-फिरने के लिए पर्याप्त स्थान होगा और उन्हें पिंजड़े जैसे सीमित स्थान पर ही बन्द नहीं रखा जायेगा। इस नयी प्रयोगशाला का संचालन मनोविज्ञान के प्रोफेसर एरवर्ड हेस की देखरेख में होगा।

राष्ट्र भाषा का वैज्ञानिक जगत में मान

काउंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च नई दिल्ली ने १ तथा २ फरवरी को प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में एक अनुसन्धान गोष्ठी का आयोजन किया था। इस गोष्ठी में भारत के प्रमुख वैज्ञानिक संस्थाओं, विश्वविद्यालयों एवं शिक्षण संस्थाओं के अनेक वैज्ञानिकों ने भाग लिया। दो दिनों तक "रेडाक्स प्रक्रिया" पर ५० से अधिक शोध निबन्ध पढ़े गये और तीन महत्त्व-पूर्ण भाषण भी हुये। भाषणकर्ता थे रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्याल के अध्यक्ष डा० एस० घोष, इण्डियन कल्टीवेशन आफ साइंस, जादवपुर के प्रो० एस० आर० पलित तथा आन्ध्र विश्व-विद्यालय के रसायन विभाग के अध्यक्ष डा० गोपाल राव। तीनों व्यक्ति भौतिक रसायन के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। उन्होंने अपने भाषणों में अपने-अपने शोध विषयों की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की।

प्रारम्भ में कौन्सिल आफ साइंटिफिक ऐण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च की रसायन शोध कमेटी के अध्यक्ष प्रो० बी० सी० गुहा की उपस्थिति में विजयानगरम् हाल में गोष्ठी का समारम्भ हुआ। डा० सत्य प्रकाश, जो इस गोष्ठी के संयोजक थे, ने एक सूक्ष्म किन्तु सारगर्भित सूचना पढ़ी। सभी प्रकार के शोध निबन्ध जो "रेडाक्स प्रक्रिया" से सम्बद्ध थे कई उपविभागों में विभाजित करके पढ़े गये जिससे एक साथ तद्विषयक समस्त जानकारी उपलब्ध हो सके। इस गोष्ठी में पठित निबन्धों से हमने यह निष्कर्ष निकाला कि देश में रसायन के क्षेत्र में शोधकार्य में अभूतपूर्व प्रगति हो रही है। नवीन से नवीनतम प्रविधियों का आश्रय लेकर शोधकर्ता सन्तोषजनक परिणाम प्राप्त कर रहे हैं। परन्तु जो बात खटकने वाली प्रतीत हुई वह यह है कि रसायन क्षेत्र के अधिकांश शोधकर्ता अपनी शोधों को राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से व्यक्त करने में असमर्थ हैं और वैसा करने में उन्हें हिचक होती है। कतिपय वैज्ञानिकों का तो यह विचार है कि हिन्दी में प्रकाशित होने पर उनके शोध निबन्धों का महत्त्व घट जावेगा क्योंकि उनको पढ़ने वालों की संख्या नगण्य होगी। परन्तु इसके विपरीत रूसी वैज्ञानिक अ० त० वैग्राम्यन के विचारों से हम अत्यधिक प्रभावित हुये जिन्होंने अपने लेखों को सहर्ष हिन्दी में अनूदित हो प्रकाशनार्थ हमें प्रदत्त कर दिया। हमारा अनुमान है कि हमारा ही ऐसा देश है जहाँ अंग्रेजी को इतना महत्त्व प्राप्त है। जब तक हम अपनी भाषा में अपने विचारों को व्यक्त करने का प्रयास न करेंगे, इतना निश्चित ही है कि हिन्दी समृद्ध नहीं हो सकती। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि टूटी-फूटी अंग्रेजी को भी हिन्दी में रूपान्तरित करते समय हमारे देश के वैज्ञानिक घबराते हैं।

यही नहीं, अभी तक जितनी पारिभाषिक शब्दा-वलियाँ निर्मित हुई हैं, यदि उनका पूर्णरूपेण लाभ उठाया भी जाय तो शोध सामग्री को भली-भाँति हिन्दी में उल्था नहीं किया जा सकता। क्या ही अच्छा हो यदि विशिष्ट गोष्ठियों में पठित

निबन्धों को संकलित कर उनके हिन्दी रूपान्तरण अंग्रेजी के साथ-साथ प्रकाशित हुआ करें। प्रायः यह देखा जाता है कि ऐसी गोष्ठियों में पठित निबन्धों का संग्रह नहीं होता वरन् लेखकों को यह छूट दी जाती है कि वे जहाँ भी चाहें अपने शोध-निबन्धों को प्रकाशित करा लें। ऐसा नहीं होना चाहिये। गोष्ठी आयोजकों अथवा संस्थाओं को इस कार्य के लिये प्रचुर धन संग्रह करना चाहिये और उनके हिन्दी अनुवाद की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिये। ऐसा होने से उच्चतम साहित्य की सर्जना होगी और वैज्ञानिकों को इस दिशा में सोचने को प्रोत्साहन मिलेगा।

यदि ऐसा नियम बन जाय कि प्रत्येक शोध-कर्त्ता को कम से कम एक निबन्ध हिन्दी में लिखना और प्रकाशित करना होगा तो सम्भावना है कि देश में अधिकाधिक शोध पत्रिकाओं के प्रकाशन प्रारम्भ हो जाँय और हिन्दी का अधिकाधिक प्रचार एवं प्रसार हो।

हमें विश्वास है कि हमारी सरकार इस दिशा में समुचित ध्यान देकर देश में वैज्ञानिक परम्परा को राष्ट्रभाषा के द्वारा बलवती बनाने में सहयोग देगी। राष्ट्रभाषा हिन्दी के उन्नयन का अर्थ यह नहीं होगा कि अंग्रेजी का पठन-पाठन अथवा उसके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग मिट जावेगा वरन् इसके द्वारा ऐसी परम्परा का निर्माण होगा जिसके द्वारा भविष्य में हिन्दी को वैज्ञानिक क्षेत्र में सम्मान प्राप्त होगा। वैज्ञानिक जगत में राष्ट्रभाषा की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये आवश्यक है कि हमारे वैज्ञानिक गण इधर उन्मुख हों। उनकी उदासीनता से राष्ट्र का अहित होगा तथा जनसाधारण के लिये विज्ञान के द्वार सदा के लिये रुद्ध रहेंगे।

'विज्ञान' के सम्बन्ध में वक्तव्य

(समाचार पत्र रजिस्ट्रेशन (केन्द्रीय) के १९५६ के अधिनियम ८ के अनुसार)

१. प्रकाशन की स्थान	विज्ञान परिषद्, विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद—२
२. प्रकाशन का अवधि	मासिक
३. मुद्रक का नाम	अजय कुमार गुप्त
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	टेकनिकल प्रेस, लाजपत रोड, इलाहाबाद
४. प्रकाशक का नाम	डा० रमेशचन्द्र कपूर
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	प्रधान मंत्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद
५. सम्पादक का नाम	डा० शिवगोपाल मिश्र
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद
६. पत्रिका का स्वामित्व इत्यादि	विज्ञान परिषद्, विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद, (विज्ञान परिषद् संस्था द्वारा प्रकाशित मासिक पत्र "विज्ञान")

मैं रमेशचन्द्र कपूर घोषित करता हूँ कि उपरोक्त वक्तव्य प्रामाणिक है।

रमेशचन्द्र कपूर
प्रकाशक के हस्ताक्षर

दिनांक १–३–६१
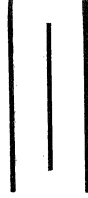
भाग ९३
संख्या १
२०१८
अप्रैल १९६१

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख पत्र

प्रति अंक ४० न० पै०
वार्षिक ४ रुपये

विज्ञान

पृष्ठ

सम्पादक—डा० शिवगोपाल मिश्र

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिगराम भार्वग	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगाशंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रामेश वेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकरराव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण—लेखक एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के० वी० माथुर	२ रुपया
१०—कलम पैबन्द—श्री शंकरराव जोशी	२ रुपया
११—जिल्दसाजी—श्री सत्य जीवन वर्मा	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद	१ रुपया
१३—वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० सन्त प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद, वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० नये पैसे
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपया
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपया
१९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
२०—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरख प्रसाद, डा० सत्य प्रकाश	३ रु० ५० नये पैसे
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकरराव जोशी	३ रु० ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनिया—श्री रामेश वेदी	४ रुपया
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्र नाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान शालायें	२ रुपया
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
२६—रेल इंजन, परिचय और संचालन—श्री ओंकार नाथ शर्मा	६ रुपया
२७—भारतीय कृषि का विकास—डा० शिवगोपाल मिश्र	५ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जानेताति जीवन्ति विज्ञान प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ९३ | विक्र० चैत्र २०१८ शाकाब्द अप्रैल १९६१ | संख्या १

उत्तर प्रदेश की खनिज सम्पत्ति

डा० राजेन्द्र सिंह मित्तल तथा रमेश अवस्थी

खनिज आदि काल से ही मानव सम्यता के मेरु-दण्ड रहे हैं। यद्यपि आदि काल के मनुष्य को वैज्ञानिक अनुसन्धानों से लाभ प्राप्त न था फिर भी उसने अपने सीमित ज्ञान का उपयोग करके अधात्विक खनिजों से अपने दैनिक व्यवहार की वस्तुयें तैयार कीं। एक युग था जब मानव ने अपने शिकार के अस्त्र-शस्त्र से पात्र एवं अनेक दैनिक उपयोग की वस्तुयें जैसे सुई, हथौड़ी, चाकू आदि प्रस्तरों से बनाये। उस युग को मानव इतिहास में **प्रस्तर काल** की संज्ञा दी गई है। इसके बाद **ताम्रकाल** आया। ताम्र खनिज को भूगर्भ से निकाला गया उसे शुद्ध करके धातु बनी और उससे प्रतिदिन के व्यवहार की वस्तुयें बनीं।

ज्यों-ज्यों सभ्यता के चरण आगे बढ़े, जीवन दिन-प्रति-दिन आकर्षक होने लगा और नाना प्रकार की कलाओं के साथ-साथ मानव अभिरुचियों का प्रखर रूप भी निखरने लगा। साथ ही विज्ञान भी उत्तरोत्तर विकसित होता गया और मानव ने अपने मस्तिष्क का उपयोग करके यन्त्रों का आविष्कार किया। या यों कहें उसने खनिजों के उपयोग के दूसरे चरण का प्रारम्भ किया। पहला था खनिजों का ज्ञान और उनसे धातुओं का उत्पादन जो उसने यन्त्र बनाने से बहुत पूर्व ही प्राप्त कर लिया था। यदि खनिजों को हमारे जीवन से निकाल दिया जाय तो हम शताब्दियों पीछे गिरि-कन्दराओं के अन्धकार में रहने वाले प्राणियों के सिवा कुछ और न रहेंगे।

भूवैज्ञानिकों, खनन अभियन्ताओं तथा धातु-विदों की सहायता से खनिजों ने हमारे जीवन को केवल आवश्यक सामग्री ही न दी वरन् उसे सुखी तथा आकर्षक बनाने में पूर्ण सहयोग दिया। यही नहीं, जीवन-स्तर ज्यों-ज्यों ऊँचा उठता गया खनिजों की सहायता से मानव को आमोद-प्रमोद की सामग्री, भवन-निर्माण के प्रस्तर, सौन्दर्य प्रसाधन, यन्त्रों के लिये लौह आदि धातुयें व उन्हें साफ करने तथा चलाने के लिए कोयला व १९वीं शताब्दी में तेल और गैसों की खोज की गई और ये पदार्थ उपयोग में लाये गये। इस प्रकार पृथ्वी पर ही दूसरा स्वर्ग खनिजों ने ला दिया। उदाहरणार्थ, **ग्रेनाइट शैल** की चिकनी की हुई सतह जिस भवन में लगती है वह रमणीक हो जाता है। **टाल्क** खनिज

का उपयोग शरीर एवं मुख पर मलने के लिए उसके चूर्ण के निर्माण में होता है। इसी प्रकार कई अन्य पत्थर भवन निर्माण में, बालुकायें शीशा उद्योग में, चीनी मिट्टी व दूसरी मृत्तिकायें मिट्टी के बर्त्तन बनाने के उद्योग में उपयोग में लाई गईं और आज भी लाई जाती हैं। शोरा तथा फासफेट कृषि में उर्वरक के रूप में उपयोग में आते हैं।

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर यदि हम यह कहें कि वर्त्तमान युग खनिजों का युग है तो कोई अत्युक्ति न होगी क्योंकि खनिज ही उद्योगों के लिये कच्चा माल

सारणी—१

१९५६ ई० तथा १९५७ ई० में भारत में उत्पादित खनिज तथा उनका मूल्य

खनिज का नाम	मात्रा की इकाई	१९५६ ई० मात्रा	१९५६ ई० मूल्य ०००, रु० में	१९५७ ई० मात्रा	१९५७ ई० मूल्य ०००, रु० में
१. कोयला	१० लाख टन	३९·२८	६५०,७९३	४३·५०	८१३,९९१
२. धात्विक खनिज					
(क) लौह युक्त					
क्रोमाइट	टन	५२,६८६	१,७५२	७८,५४२	२,९२०
लौह धातुक	००० टन	४,८९८	३९,८६३	५,०७४	४३,४३४
मैंगनीज धातुक	००० टन	१,६८७	१२९,७५७	१,६०२	१४०,५४९
		योग	१७१,३७२		१८६,९०३
(ख) अलौह युक्त					
बॉक्साइट	टन	९१,२२५	८१८	९६,७५०	९१५
ताम्र धातुक	००० टन	३८६	२८,९८१	४०४	२६,५३४
स्वर्ण	००० औंस	२०९	५७,६७३	१९७	५१,०६९
इल्मेनाइट	००० टन	३३६	१७,८१२	२९६	१६,८१२
सीसा	टन	३,९०९	९७६	४,८५०	१,२१०
रजत	००० औंस	१०५	४३८	१२६	६०५
वोलफ्रम	हण्डरवेट	३०	९	२९	९
जस्ता (यशद)	टन	६,८८०	२,३१६	७,४६९	२,५३२
		योग	१०९,०२३		९९,६८६
	कुल योग धात्विक खनिज		२८०,३९५		२८६,५८९

सारिणी—१

खनिज का नाम	मात्रा की इकाई	१९५६		१९५७	
		मात्रा	मूल्य ००० रु० में	मात्रा	मूल्य ००० रु० में
३. अधात्विक खनिज					
एपेटाइट	टन	८,७८५	१३२	९,१७८	१९०
एस्बस्टॉस	टन	१,२३०	४११	१,७०६	४२३
बेराइट्स	टन	६,३१५	१०७	१२,९१३	२६७
कैल्साइट	टन	५,६७२	५१	४,६६८	४८
चीनी मिट्टी	००० टन	१५५	२,१२९	१८१	२,२८१
कोरंडम	टन	३५३	१९८	४२६	२४४
हीरा	कैरट	१,४९९	३२७	७९०	१६८
एमरैल्ड	००० कैरट	४७४	२४०	३३८	२५
फेल्सपार	टन	३,९०९	३५	७,८७२	८१
अग्नि मृत्तिका	००० टन	१३९	१,१४९	१६४	१,२६४
गोदन्ती	००० टन	८५४	५,१०८	९२२	५,७६३
कायानाइट	टन	२०,१३५	४,७१४	२३,५०४	५,४६८
मैगनेसाइट	टन	९१,७११	१,८४६	८८,८८५	१,७९५
अभ्रक (कच्चा)	०००हण्डरवेट	५६१	२१,३२०	६०९	२८,१५४
ओकर	टन	१२,६१२	२७०	१५,५[illegible]५	३३६
रूटाइल	टन	५४१	४३६	४७३	४७३
लवण (शैल)	टन	३,४२८	१९२	४,३३५	२१२
लवण (अन्य)	००० टन	३,१७१	६९,३२८	३,६०८	७४,१६३
सिलीमेनाइट	टन	४,६३७	२३४	७,४१७	४४४
स्टीएटाइट	टन	४७,८५५	२,४१९	४३,९७६	१,८९०
वर्मीकुलाइट	टन	९२७	२८	—	—
अन्य खनिज	—	—	२४५	—	१८०
	योग अधात्विक खनिज		११०,९१९		११८,८७१
४. भवन निर्माण प्रस्तर					
डोलोमाइट	टन	९८,८५७	१,५५०	१४०,९६१	२,०१४
चूर्ण प्रस्तर	००० टन	८,२५३	३३,६६४	९,४२०	३९,७१३
अन्य	—	—	१०,१९३		११,४३५
	योग भवन निर्माण प्रस्तर		४५,३७७		५३,१६२
		कुल योग	१,०८७,४८५		१,२७२,६१३

प्रदान करते हैं। खनिज सम्पत्ति की विविधता ने ही औद्योगिक उन्नति की नींव दृढ़ की है। खनिज की बहुलता में भारत का भी एक अपना स्थान है। लौह धातुक, टाइटेनियम, थोरियम धातुक, मैंगनीज धातुक और अभ्रक के उत्पादन और आरक्षित सम्पत्ति में भारत की निर्यात क्षमता विश्वविदित है। भारत के खनिज समुदाय में इसीलिए इन्हें प्रथम श्रेणी में रक्खा गया है। दूसरे समुदाय में बॉक्साइट, बेरिल, कोरण्डम, गोदन्ती, मैंगनेसाइट, मोनाजाइट, सिलिका तथा टाल्क आदि हैं जिनमें भी भारत सम्पन्न है और दूसरे देशों को कुछ निर्यात कर सकता है। तीसरे समुदाय में ऐण्टीमनी, आर्सेनिक, बेराइट्स, भवन निर्माण प्रस्तर, सीमेण्ट पदार्थ, मृत्तिकायें, कोयला, क्रोमाइट, डोलोमाइट, फेल्सपार, स्वर्ण, चूर्ण प्रस्तर, संगमरमर, रंजकपदार्थ, नाइट्रेट, फासफेट, पाइराइट, मूल्यवान् तथा अर्धमूल्यवान् प्रस्तर, स्लेट,सोडियम लवण और क्षार, वैनेडियम तथा जिरकॉन हैं। इनमें भारत आत्म-निर्भर है। एसफाल्ट, ताम्र, फ्लोरस्पार, ग्रेफाइट, सीसा, पारद, मॉलिब्डेनम, निकेल, पेट्रोलियम, प्लैटिनम, पोटाश, रजत, गन्धक, टिन, टंगस्टन और जस्ता में भारत विपन्न है और इनके लिये उसे दूसरे देशों पर निर्भर रहना पड़ता है। **सारणी—१** में भारत में उत्पादित खनिज और उनका मूल्य दिया गया है जो खनिजों के महत्व को प्रकाश में लाता है।

उपर्युक्त सारणी पर दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट है कि हम खनिजों में बिल्कुल शून्य नहीं हैं परन्तु यह अवश्य है कि खनिज उद्योगों का पूर्ण विकास हम अभी तक नहीं कर पाये हैं। हम अपने को इस औद्योगिक युग में भी कृषि प्रधान ही कहते हैं। परन्तु यह अब आवश्यक हो गया है कि हम अपने को विश्व के उन्नत राष्ट्रों की श्रेणी में लाने के लिए अपने समस्त छिपे हुय खनिज भण्डारों के विषय में जानकारी प्राप्त करें तथा वर्त्तमान खनिज भण्डारों को इस प्रकार उपयोग में लायें कि वे अधिक से अधिक काल तक हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

भारत में उपलब्ध अनेक खनिजों में से प्रायः सभी का उत्तर-प्रदेश में अभाव है जबकि यह कृषि प्रधान क्षेत्र है। यही कारण है कि हमारे प्रदेश में कोई भी बृहद उद्योग अन्य पड़ोसी प्रदेशों की भाँति नहीं पनप सका है, तथा योजनाओं में भी इस पर कोई महत्त्वपूर्ण विचार नहीं किया गया है। बिहार, मध्य प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल में से प्रत्येक प्रदेश में किसी न किसी प्रकार के उद्योग हैं। कहीं उर्बरक-निर्माण केन्द्र हैं, तो कहीं लौह तथा इस्तपात के निर्माण केन्द्र हैं, जो वहाँ की जनसंख्या के अधिकांश भाग को रोजगार प्रदान करते हैं। परन्तु कृषि प्रधान राज्यों में बड़-बड़े उद्योग नहीं पनप सके हैं—जैसे कि उत्तर प्रदेश में—जिसका फल यह है कि यहाँ की अधिकतर ग्रामीण जनता वर्ष के अधिक भाग में बेकार रहती है और बेरोजगारी अपना विकराल मुख फलाये हमारे समक्ष खड़ी है।

दूसरे प्रदेशों की अपेक्षा इस प्रदेश में महत्वपूर्ण खनिजों का अभाव है, और जो प्राप्त किये जाते हैं उनके प्राप्ति स्थान तथा उपयोग सबों को भली भाँति ज्ञात नहीं हैं। यहाँ पर निम्नलिखित खनिज या प्रस्तर प्राप्त किये जा सकते हैं :—

(अ) औद्योगिक खनिज

१. ताँबा
२. कोयला
३. बालू
४. मृत्तिकायें

(आ) भवन निर्माण सामग्री

१. बलुआ पत्थर
२. चूर्ण प्रस्तर
३. सीमेण्ट
४. डोलोमाइट

५. संगमरमर

६. स्लेट्स

(इ) कृषि उपयोगी खनिज

१. फासफेटस

२. शोरा

(ई) अन्य प्रकार के खनिज

१. स्वर्ण
२. गोदन्ती (जिप्सम)
३. मैगनेसाइट
४. जस्ता तथा सीसा
५. अभ्रक
६. गन्धक
७. ग्रेफाइट
८. मार्ल प्रस्तर
९. पाइरोफिलाइट

औद्योगिक खनिज

१. ताम्र—यह अपने प्रदेश में अल्मोड़ा जनपद में देवलथाल स्थान पर पाया जाता है। कुछ और पश्चिम में गढ़वाल जिले के पोखरी तथा धानपुर में भी प्राचीन खानें हैं। जे० बी० आडेन के अनुसार गढ़वाल श्रेणी में दो निक्षेप सिस्टोज क्वार्टजाइट्स तथा क्लोराइट फाइलाइट्स के हैं जिनमें ताम्र तथा सीसे के धातुक पाये जाते हैं। इसका उपयोग विद्युत्-उद्योग में सुचालक की भाँति तथा विद्युत्-यन्त्रों के बनाने में होता है। मोटर कार के यन्त्रों और रासायनिक अभियन्त्रण सम्बन्धी यन्त्रों के निर्माण में भी ताम्र को प्रयोग में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त मिश्र-धातुओं-जैसे पीतल, फूल, तोप धातु, घंटा धातु और अन्य प्राविधिक महत्व की धातु बनाने में इसका उपयोग होता है। ताम्र के लवण विभिन्न औद्योगिक क्रियाओं में व्यवहृत होते हैं, जैसे ताम्र क्लोराइड कीट-नाशक के रूप में, ताम्र सलफेट वस्त्रों की छपाई एवं रंगाई उद्योग में, लकड़ी की रक्षा हेतु और फफूंद-नाशक के रूप में।

२. कोयला— उत्तर प्रदेश में यह खनिज मिर्जापुर जनपद में मिलता है। यहाँ की सिंगरौली की कोयला श्रेणी गोंडवाना के दमूदा समुदाय की है। पूर्वी सीमा अनिश्चित है लेकिन रिहन्द के आगे नहीं पायी जाती है जबकि उत्तरी और दक्षिणी सीमायें औंधी पहाड़ी और बलिया स्रोत तक सीमित हैं। यह कोयला उत्तम प्रकार का है परन्तु यातायात की कठिनाई के कारण यहाँ की खानों की खुदाई नहीं हो रही है। इसके अतिरिक्त नैनीताल जिले में रानीबाग के पास तथा भमौरी के बारा खीरा दर्रे में **लिगनाइट** के अंश मिले हैं।

कोयले की उपयोगिता के सम्बन्ध में यही कहना पर्याप्त है कि इसके बिना औद्योगिक विकास सम्भव नहीं है। इसकी गणना "शक्ति के साधनों" में है क्योंकि इसकी सहायता के बिना यन्त्रों को गति मिलना सम्भव नहीं है।

३. बालू— काँच-उद्योग में काँच-निर्माण के लिए जिस शैल का उपयोग होता है वह है धँडरौल क्वार्टजाइट्स। यह कैमूर श्रेणी का है तथा वाराणसी जिले के चकिया क्षेत्र में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त झांसी के मुरारी तथा बालावेहट और प्रयाग के पास शंकरगढ़, लोहारगढ़ और बरगढ़ के आसपास पाया जाता है। मिर्जापुर जिले के राबर्ट्स गंज पठार में भी मिलता है। यह उत्तर प्रदेश, बिहार तथा कलकत्ता के काँच-कारखानों में काम में लाया जाता है।

मृत्तिकायें

१. कन्दुक मृत्तिकायें— यह गहरे मटमैले रंग की होती है जो अत्यन्त नम्य, सूक्ष्म कणीय गठन की होती हैं। जब इसे पकाया जाता है तो श्वेत या हल्के पीले रंग की हो जाती है। इस प्रकार की मृत्तिकायें बाँदा जिले के लखनपुर नामक वनों में पायी जाती हैं।

इनका उपयोग पोर्सलेन और चीनी मृत्तिका के निर्माण में, कागज, रबड़ और रंग-उद्योग में पूरक के रूप में किया जाता है।

२. चीनी मिट्टी—चुनार के बर्तन-उद्योग में मिर्जापुर की स्थानीय चीनी-मिट्टी क उपयोग होता है। इसी जनपद की दुद्धी तहसील में भी चीनी-मिट्टी पायी जाती है।

३. अन्य प्रकार की मृत्तिकायें—मुगल सराय के आसपास छिद्र-युक्त सूक्ष्मकणीय अभ्रक वाली मृत्तिका मिलती है। इससे निर्मित घड़ों में ग्रीष्म ऋतु में शीतल जल प्राप्त होता है। ऐसे बर्तनों की खपत केवल गाँवों में ही नहीं वरन् नगरों में भी होती है।

मृत्तिकाओं द्वारा निर्मित अमरोहा, मुरादाबाद तथा चुनार, मिर्जापुर के काले बर्त्तन सभी घरों में स्थान पाते हैं।

भवन निर्माण सामग्री

भवनों के निर्माण में सभी प्रकार के पत्थरों का उपयोग नहीं हो सकता है। जो पत्थर भवन-निर्माण के उपयोग में आते हैं उनमें कुछ विशिष्ट गुण-धर्म होते हैं, जैसे मौसम-सह अर्थात् समय और ऋतु का क्षरण प्रभाव न्यूनतम होना, आकर्षक रंग, तथा सरलता और कम श्रम तथा कम धन में उपलब्ध होना। ऐसे शैल इस प्रदेश में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

१. बलुवा पत्थर—उत्तर भारत के और मुख्यतः उत्तर प्रदेश के प्रमुख नगरों लखनऊ, आगरा, मथुरा, वाराणसी, प्रयाग और दिल्ली के भवनों में जिस बलुआ पत्थर का उपयोग हुआ है वह मुख्यतः **विन्ध्य प्रणाली** का ही है। चुनार और मिर्जापुर तथा अन्य स्थानों पर प्राप्त कैमूर का बलुआ पत्थर विशेष महत्त्व रखता है। उत्तर प्रदेश में कई स्थानों पर पर्याप्त संख्या में खदानें हैं और यहाँ से दूसरे प्रदेशों को इनका निर्यात होता है। यह सूक्ष्मकणीय, सुसंहत, हल्का पीला, लाल या मटमैले रंग का होता है तथा बहुत अधिक टिकाऊ है। यह अब भी बहुतायत से मन्दिरों, स्मृति-भवनों तथा मूर्ति-निर्माण के लिये उपयोग में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त पुलों के निर्माण में तथा फर्श आदि में बहुधा काम आता है।

विशेषज्ञों का ऐसा विश्वास है कि सम्राट् अशोक ने अपने शिला लेखों के लिये विशाल प्रस्तर-खण्ड जो लगभग ५० टन था इसी चुनार क्षेत्र से प्राप्त किये थे। ये विशाल शिलाखण्ड मौर्य्य युग के कला कौशल, प्रस्तर सम्बन्धी ज्ञान तथा सुविकसित यातायात प्रणाली के द्योतक हैं।

भारत की महत्वपूर्ण बलुआ पत्थर की खदानों में विन्ध्य प्रणाली की **ऊपरी भाण्डेर** की खदानें भी हैं। आगरे के पास फतेहपुर सीकरी व भरतपुर (राजस्थान) की खदानें हैं, जो ईसवी युग के पूर्व से ही भवन-निर्माण के लिए बलुआ पत्थर की पूर्ति करती आयी हैं। ताजमहल के कुछ भाग, अकबर के बनवाये फतेहपुर सीकरी के विशाल भवन, दिल्ली का लाल किला व जामा मस्जिद तथा आगरा व मथुरा के मन्दिर व अनेक भवन इन्हीं प्रस्तरों के बने हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश में कुछ ग्रेनाइट व नीस भी मिलती है। सर्वोत्तम प्रकार के चिकनी चमक वाले एम्फीबोलाइट्स तथा इपीडोराइट्स भी बाँदा जिले में मिलते हैं. परन्तु ईंटों की सहज उपलब्धि व सस्ते होने के कारण इनका प्रयोग नहीं के बराबर है। इसके अतिरिक्त जलोढ़ मृत्तिका से बनाई ईंट व खपरैल सारे प्रदेश में कई स्थानों पर बनाये जाते हैं।

२. चूर्ण-प्रस्तर—यह भी विन्ध्य-प्रणाली का है और मिर्जापुर में कई स्थानों पर खदानों से निकाला जाता है, तथा रोहतास 'लाइम स्टोन' के नाम से प्रसिद्ध है। जनपद के पूर्वी भाग में १०० से ३०० फीट तक मोटी पट्टियाँ ५०से ५५ मील तक पायी जाती हैं। सीमेन्ट उद्योग में उपयोगी चूर्ण प्रस्तर के विशद के विशद भण्डार मिर्जापुर जिले के मारकुँडी तथा परौदी स्थानों में भी मिलते हैं और ये सेमरी श्रेणी की आधारीय अवस्था के हैं।

इसके अतिरिक्त चूर्ण प्रस्तर उत्तर-पश्चिम के बाहरी हिमालय में टोंस, अमलावा और जमुना नदियों के किनारे तथा चकराता से लेकर ऋषिकेश तक भी मिलता है। कुछ और चूर्ण प्रस्तर लैंसडाउन के उत्तर-पूर्व में तथा दोगड्डा और मंझोला के पास भी पाया जाता है। इसके अतिरिक्त नैनीताल जनपद में प्रथम श्रेणी के चूर्ण प्रस्तर पूरी पर्वतीय पट्टियों में मिलता है।

उसकी शुद्धता तथा लक्षणों के अनुसार अनेक उपयोग होते हैं—वे वर्ण जिनमें मृत्तिका का अंश होता है सीमेण्ट के लिये तथा शुद्ध वर्ण का प्रस्तर चूने के लिये फूँका जाता है। इनका औद्योगिक विधियों में उपयोग होता है, जैसे ब्लीचिंग चूर्ण, कैलसियम कार्बाइड, काँच, साबुन, कागज, रंग आदि के निर्माण में। इसके अतिरिक्त सड़कों के निर्माण में तारकोल के साथ, तथा मणिभीय वर्ण के चूर्ण प्रस्तर को भवनों के निर्माण में जड़ाऊ पत्थर की भाँति उपयोग में आते हैं। कुछ चूर्ण प्रस्तर मुद्रण उद्योग में तथा स्वच्छ पारदर्शक प्रकार का वर्ण जो कैलसाइट कहलाता है, अणुवीक्ष आदि प्रकाशीय उपकरणों में उपयोग में लाया जाता हैं।

३. **सीमेन्ट**—सीमण्ट, चूर्ण प्रस्तर व कुछ मृत्तिका को साथ-साथ फूँक कर बनाया जाता है। इसी वैज्ञानिक सत्य के आधार पर सीमेण्ट उद्योग का विकास हुआ।

इस प्रदेश में इस उद्योग के लिये चूर्ण प्रस्तर मिर्जापुर जिले में अधिकता से मिलता है जिससे चुर्क के का रखाने को कच्चा माल मिलता है। राजकीय चुर्क कारखाने की उत्पादन क्षमता वैसे तो १५०० टन प्रति मास की है, लेकिन उससे अभी केवल ८०० टन सीमेण्ट का उत्पादन होता है।

४. **डोलोमाइट**—यह कैलसियम तथा मैगनीशियम के कार्बोनेट होते हैं जिनकी रासायनिक रचना $MgCO_3$ तथा $CaCO_3$ होती है। डोलोमाइटी चूर्ण प्रस्तर चूर्ण प्रस्तरों के साथ हिमालय की सारी लम्बाई तक बहुत अधिक पाया जाता है। डोलोमाइटी चूर्ण प्रस्तर देहरादून के चकराता क्षेत्र से टेहरी-गढ़वाल के नरेन्द्र नगर क्षेत्र तक पाये जाते हैं। हल्का पीला डोलामाइट नैनीताल व मसूरी क्षेत्रों में भी मिलता है तथा स्थूल डोलोमाइट की एक श्रेणी टेहरी-गढ़वाल में मिलती है, जिनमें सिलिका अंश अधिक होता है। यहाँ के डोलोमाइट खनिजीकरण के चिह्न प्रदर्शित करते हैं। उत्तरकाशी में सिडरेटिक तथा कपरोली, पोकरी व धानपुर में यह ताम्र विसरित धातुओं से युक्त हैं।

डोलोमाइट एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भवन निर्माण पदार्थ है। यह अग्निसह भट्टियों के स्तरीभवन में भी काम में लाया जाता है। यह कार्बन डाइ ऑक्साइड गैस की प्राप्ति का भी साधन है।

५. **संगमरमर**—एफ० अहमद के अनुसार सूक्ष्मकणीय तथा अल्प डोलोमाइटी संगमरमर अपने प्रदेश के मिर्जापुर जिले की राबर्ट्सगंज तहसील में निंघा गाँव में पाया जाता है। यह गाँव तहसील से १६ मील दक्षिण पूर्व की ओर है। यह बड़ा ही आकर्षक है तथा सुन्दर एवं चमकदार बनाया जा सकता है।

मंसूरी के दक्षिणी पश्चिमी प्रदेश में भी महगाँव के चारों ओर संगमरमर पाया जाता है और अनुमान है कि लगभग ३५० लाख टन होगा।

६. **स्लेट्स**—बाहरी हिमालय में गढ़वाल तथा अल्मोड़ा जिले में कई स्थानों पर स्लेट शैल की खदानें हैं तथा यहाँ से अच्छे प्रकार का पदार्थ प्राप्त होता है। ये स्लेटें किसी प्रकार से जर्मन स्लेटों से कम नहीं हैं। परन्तु आजकल इनका उपयोग पहाड़ी क्षेत्रों में भी कम हो गया है तथा निरन्तर कम होता जा रहा है। इसका कारण कम उत्पादन, साधनों का नियमित अदोहण, तथा सरलता से प्राप्त अन्य पदार्थ, यातायात की सुविधा और देश की खनिज नीति ही कहे जा सकते हैं। विशेष महत्त्व की स्लेट शैल फाइलाइटी प्रकार की हैं और इनके सामान्य उपयोग अल्प ही कहे जा सकते हैं जो निम्नलिखित हैं :

स्थानीय ग्रामों एवं उपनगरों में यह भवनों की फर्श व छत के निर्माण के लिये उपयोग में लायी जाती है। श्याम वर्ण की स्लेट को लिखने की तख्ती के रूप में कुशलता से अलग करके उपयोग में लाते हैं।

कृषि-उपयोगी खनिज

कृषि के लिये उपयोगी खनिज भी इस प्रदेश में पाये जाते हैं। भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि जब भूमि कृषि के लिये उपयोग में लायी जाय तो उसमें उर्वरक बाहर से मिलाये जाँय। शोरा (साल्ट पीटर) तथा फासफेट प्रमुख खनिज लवण हैं जो उर्वरक की भाँति व्यवहार में लाये जाते हैं।

१. **शोरा**—इसके प्रमुख उत्पादन केन्द्र कानपुर, गाजीपुर, प्रयाग और वाराणसी हैं।

२. **फासफेट**—मसूरी के पास १ मील से भी अधिक का फासफेट-शैल का पतला स्तर मिला है।

अन्य प्रकार के उपयोगी खनिज

१. **स्वर्ण**—भारत तथा पाकिस्तान की अनेक नदियों में जलोढ़-स्वर्ण पाया जाता है। सभी स्थानों पर इसे वहाँ के निवासी निकालते हैं। इस स्वर्ण की नियमित प्राप्ति अपने प्रदेश में भी होती है। गढ़वाल तथा बिजनौर की सोना नदी में बालू की धुलाई करके स्वर्ण निकालते हैं। इसके अतिरिक्त नैनीताल की ढेला नदी की बालू को भी धोकर स्वर्ण प्राप्त करते हैं।

२. **गोदन्ती (जिप्सम)**—उत्तर प्रदेश के हमीरपुर तथा झांसी के जनपदों में जलोढ़ मृत्तिका के साथ मिलती है। इसके अतिरिक्त देहरादून, गढ़वाल और कुमायूँ के जिलों में भी इस खनिज के तालवत् स्तर पाये जाते हैं। २ लाख टन के लगभग यह खनिज इन जिलों से प्राप्त हो सकता है।

नैनीताल जिले में धपिला के समीप पाये जाने वाले गोदन्ती निक्षेप के सम्बन्ध में भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण संस्था के एस० पी० नौटियाल महोदय के विचार उल्लेखनीय हैं :—

"खनिज की मात्रा का अनुमान करना इसकी अनियमित प्राप्ति विधि के कारण कठिन है। बहुत कुछ सम्भव है कि सी० एस० मिडिल मिस का अनुमान ठीक हो यद्यपि यह भी हो सकता है कि १८८९ ई० से अब तक खनिज की कुछ मात्रा निहाल नदी के जल में घुलकर बह गई हो।"

"यह कि गोदन्ती का खनन भी सरलता से शिथिल स्तर होने के कारण किया जा सकता है।"

इसका उपयोग—

१. सीमेन्ट उद्योग में होता है।

२. कृषि में उर्वरक के रूप में, कागज, खड़िया की बत्तियों, रंग तथा रबड़ के उद्योगों में इसका पूरक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

३. प्लास्टर आफ पैरिस के बनाने के लिये इस खनिज को तप्त करते हैं ताकि कुछ मणिभीय जल निकल जाय तथा फिर इसे पीसते हैं। काँच के निर्माण में इसे चमकदार करने वाले स्तर के रूप में प्रयोग में लाते हैं।

५. आजकल इसका दुरपयोग भी भोज्य पदार्थों में मिलावट के लिये होता है।

३. **मैगनेसाइट**—इसके तीन व्यापारिक वर्ण होते हैं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है मैगनीशियम कार्बोनेट। उत्तर प्रदेश में केवल वृहद मणिभ प्रकार का प्रस्तर अल्मोड़ा जिले के देवलथाल स्थान पर मिलता है। एस० पी० नौटियाल ने ग्रीछीना स्थान के पास में भी इसके विशद् निक्षेप खोज निकाले हैं।

इसका उपयोग

कार्बन डाइ ऑक्साइड, मैगनीशियम लवणों के उत्पादन में होता है। अग्निसह ईंटों के निर्माण तथा विशेष प्रकार की सीमेन्ट बनाने के काम में आता है। इसके अतिरिक्त शर्करा उद्योग में भी इसे काम में लाया जाता है।

४. **सीसा**—यह इस प्रदेश के अल्मोड़ा जिले में पाया जाता है आजकल भारतीय भूतात्त्विक सर्वेक्षण द्वारा विस्तृत सर्वे हो रहा है, आशा है यह खनिज पर्याप्त मात्रा में मिलेगा। इसके अतिरिक्त

मिर्जापुर में आरकियन नीस शैल में सीसा गैलेना के रूप में मिलता है। गैलेना से सीसा धातु प्राप्त की जाती है।

५. **जस्ता**—सीसे के साथ साथ अल्मोड़ा जिले में जस्ते के भी धातुक मिलते हैं जिनसे जस्ता प्राप्त किया जाता है।

६. **अभ्रक**—मिर्जापुर के दक्षिणी भाग में आरकियन नीस में हार्नब्लेन्ड के साथ-साथ बायोटाइट अभ्रक भी पाया जाता है। यह छोटे-छोटे पत्रों के रूप में मिलता है। इसका रंग हरा तथा काला होता है।

७. **गन्धक**—यह खनिज इस प्रदेश के अल्मोड़ा जिले के मुन्सियारी स्थान पर रामगंगा नदी के तल में पाया जाता है। काठगोदाम तथा नैनीताल में कुछ गन्धकीय स्रोत हैं।

गन्धकाम्ल, दियासलाई, बारूद, आतिशबाजी और कीटाणुनाशक पदार्थ बनाने में इसका उपयोग किया जाता है। इन वस्तुओं की धुलाई की क्रियाओं में भी इसे उपयोग में लाते हैं, जिनमें सल्फर डाइ आक्साइड गैस की आवश्यकता पड़ती है।

८. **ग्रेफाइट**—ग्रेफाइट प्लम्बेगो या काला सीसा कार्बन के प्राकृतिक रूपों का कोमल रूपान्तर है। उत्तर प्रदेश में यह कुमायूँ में अल्मोड़ा के शिस्ट्स में पाया जाता है।

ढलाई के साँचों, रँग और घरिया उद्योग में इसे मुख्यतः उपयोग में लिया जाता है। स्टोन पालिश, लिखने की पेन्सिल तथा इलेक्ट्रोप्लेटिंग में संचालक तल की भाँति तथा विद्युत भट्टी में विद्युदग्रों के रूप में इसका उपयोग होता है। निम्न श्रेणी के ग्रेफाइट को जिसमें ४०% से अधिक तत्त्व होता है घड़ियों तथा रंग बनाने के उपयोग में लिया जाता है।

९. **मार्ल प्रस्तर**—मार्ल शब्द से तात्पर्य उन मृत्तिकाओं से है जिनमें कैलसियम कार्बोनेट की मात्रा २० से ५० प्रतिशत तक होती है। मार्लयुक्त चूर्ण प्रस्तर को मार्ल-प्रस्तर भी कहते हैं।

मार्ल प्रस्तर के सामान्यतः ४ फीट या उससे कुछ कम मोटाई के निक्षेप छिछले गर्तों में पतली जलोढ़ पर्त के नीचे इस प्रदेश में बाराबंकी, लखनऊ, आजमगढ़, रायबरेली, उन्नाव, सुल्तानपुर, जौनपुर के जिलों में मिलता है।

१०. **पाइरोफिलाइट (टाल्क)**—यह इस प्रदेश में हमीरपुर तथा झांसी के जिलों में मिलता है। १९४९ ई० में इसका उत्पादन हमीरपुर में ६१ टन था। झाँसी से १९५२ ई० में लगभग २ टन की मात्रा में निकाला गया जिसका अनुमानित मूल्य लगभग १६० रु० था।

यद्यपि उत्तर प्रदेश एक कृषि प्रधान राज्य कहा जाता है परन्तु फिर भी यहाँ वर्णित दो चार खनिज या तेल उपयुक्त मात्रा में मिल सकें तो यह प्रदेश भी शायद एक खनिज उत्पादक बन सके।

परमाणविक व्यापारिक जलयान—सेवाना

श्रीमती कृष्णा कपूर

परमाणु ऊर्जा द्वारा चालित प्रथम अमेरिकन जलयान "सेवाना" शीघ्र ही समुद्र-यात्रा करेगा। इसका नाम उस १४० वर्ष पुराने जलयान पर आधारित है जिसने अटलांटिक सागर में सर्वप्रथम वाष्प द्वारा यात्रा आरम्भ की थी। उस जलयान का भार केवल ३२० टन था। वह पैडल-पहियों द्वारा चालित किया गया था तथा उस पर न्यून दबाव के भभके लगे थे। अटलांटिक सागर को पार करने में उसे एक माह का समय लगा था।

आधुनिक सेवाना के निर्माण का निर्णय संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की लोक सभा ने जून १९५६ में किया था। इस समय जलयान का ढाँचा पूर्णतया तैयार है। केवल प्रतिकारी (Reactor) पर कार्य हो रहा है। सेवाना पर धुँआ निकलने की कोई चिमनी नहीं दिखाई देती क्योंकि इसमें लगे परमाणु प्रतिकारी से कोई गैस आदि न निकलेगी। यह जलयान उस आने वाले युग का द्योतक है जिसमें सामुद्रिक यातायात परमाणु-ऊर्जा द्वारा सम्पन्न हुआ करेगा। इसका निर्माण इस दृष्टिकोण से किया गया है कि भविष्य के जलयानों के बारे में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त की जा सके। इसे यात्रियों को ले जाने तथा सामान ढोने के उपयोग में लाया जायगा।

सेवाना के निर्माण की अनुमानित लागत बीस करोड़ रुपये होगी। इस जलयान में साठ यात्रियों के रहने का अत्यंत सुन्दर प्रबन्ध है। साथ में यह दस सहस्र टन सामान भी लाद सकेगा। इसकी अधिकतम लम्बाई १८० मीटर है। पूर्णतया लादने के पश्चात् इसका भार २१,८४० टन होगा। विशेष आश्चर्य की बात यह है कि इसका ईंधन एक बार भरने के पश्चात् साढ़े तीन वर्ष चलेगा। इतने काल में यह लगभग पाँच लाख किलोमीटर यात्रा कर सकेगा जो सामान्यतः २१ नाट की गति द्वारा होगी।

सेवाना के डेक की बनावट अन्य जलयानों से भिन्न बनाई गई है। यान की बनावट में अत्यधिक सावधानी रखी गई है। हर प्रकार की दुर्घटना से बचाव का प्रबंध रखा गया है। सेवाना के निर्माताओं ने इसका पूरा ध्यान रखा है कि परमाणु-शक्ति से चालित यह जलयान पूर्णतया सुरक्षित रहे। यह भी संभव है कि इसके प्रयोग के फलस्वरूप भविष्य के परमाणु जलयानों में इतनी सुरक्षा आवश्यक न हो।

इस जलयान में तीन डेक तथा सात मालगोदाम बनाये गये हैं। चार गोदाम परमाणु प्रतिकारी के आगे तथा तीन उसके पीछे की ओर स्थित हैं। प्रतिकारी की स्थिति को निश्चय करने के पूर्व बहुत सोच-विचार किया गया। कारण यह था कि प्रतिकारी तथा उसके उप-अंगों का भार बहुत अधिक है। केवल प्रतिकारी का भार ६०० टन है परन्तु उसके कवच आदि का भार लगभग २२०० टन है। इसके विपरीत जलयान की प्रोपेलर प्रणाली का भार केवल ११०० टन है।

सर्वोच्च डेक पर अनेक गृह बनाये गये हैं जिनमें चालक-गृह (pilot house), चार्ट (chart)

गृह, गाइरो (gyro) गृह और रेडियो-गृह उल्लेखनीय हैं। इस डेक पर तीन रेडियो चालक तथा दो नाविकों के रहने का प्रबंध रखा गया है। इनके अतिरिक्त एक पंखा-प्रकोष्ठ, बैटरी प्रकोष्ठ तथा संकटकालीन उत्पादक प्रकोष्ठ भी इसी डेक पर बनाये गये हैं।

द्वितीय डेक नाविक अधिकारियों के उपयोग के लिये रहेगा। इसमें उनके रहने तथा मनोरंजन का सम्पूर्ण प्रबंध है। यात्रियों के उपयोग के लिये प्रोमेनेड अथवा तृतीय डेक बनाया गया है जिसमें उनके आराम तथा मनोरंजन के लिये अनेक प्रकार के प्रबंध हैं।

सेवाना का चालन परमाणु प्रतिकारी द्वारा होगा। यह प्रतिकारी दाबित जल श्रेणी का बनाया गया है। इसमें ७·४ करोड़ वाट ऊर्जा उत्पन्न हो सकेगी। ईंधन के रूप में यूरेनियम आक्साइड (UC_2) के दण्डों का उपयोग हुआ है जो निष्कलंक इस्पात के खोल में सुरक्षित रहेंगे। सामान्य यूरेनियम में २३५ भार वाले समस्थानिक की मात्रा लगभग ०·७ प्रतिशत रहती है। परन्तु इन डण्डों के यूरेनियम में २३५ समस्थानिक ४·४ प्रतिशत मात्रा में रहेगा। इस कारण हम कह सकते हैं कि प्रतिकारी में समृद्ध-यूरेनियम का उपयोग हुआ है। इसमें साधारण जल संयंत्र तथा शीतलक का कार्य करेगा जो २७० किलोग्राम प्रतिघन सेन्टीमीटर के दबाव पर रहेगा।

प्रतिकारी का मध्य भाग गोलाकार बेलन की भाँति बना है। इसका व्यास १·६ मीटर और ऊँचाई १·७ मीटर है। मध्य भाग में ३२ ईंधन-समूह हैं और प्रत्येक समूह में १६४ यूरेनियम दण्ड रखे गये हैं। परमाणु प्रतिकारी को नियंत्रित दशा में श्रृंखलाबद्ध चलाने के लिये नियंत्रण-दण्डों की आवश्यकता पड़ती है। ये दण्ड यूरेनियम-खण्डन द्वारा मुक्त न्यूट्रानों का अवशोषण करते हैं। खण्डन प्रतिक्रिया तथा उसके फलस्वरूप मुक्त ऊर्जा के नियंत्रण के लिये यह अवशोषण आवश्यक है। प्रारम्भ में ये दण्ड प्रतिकारी के अन्दर पूर्णतया प्रविष्ट रहते हैं। इस दशा में खण्डन क्रिया बन्द रहती है। खण्डों को बाहर निकालने पर न्यूट्रान खण्डन-क्रिया आरम्भ कर देते हैं।

न्यूट्रान द्वारा नाभिक पर आक्रमण के फलस्वरूप परमाणु दो या अधिक भागों में विभक्त हो जाता है और साथ में कुछ न्यूट्रान भी मुक्त होते हैं। इस क्रिया द्वारा परमाणु के द्रव्यमान का एक अल्प भाग नष्ट होकर ऊर्जा में परिणित होगा। यह ऊर्जा ऊष्मा के रूप में मुक्त होकर प्रतिकारी को गरम करेगी। क्रिया द्वारा मुक्त न्यूट्रान अन्य नाभिकों पर आक्रमण कर सकते हैं और इस प्रकार अनुकूल दशा में एक श्रृंखला बन सकती है। यह श्रृंखला उसी समय संभव होगी जब ईंधन (यूरेनियम या अन्य खण्डनीय पदार्थ) एक न्यूनतम मात्रा से अधिक होगा। इस न्यूनतम मात्रा को संक्रान्तिक संमात्रा कहते हैं।

खण्डन क्रिया को घटाने के लिये नियंत्रण दण्डों को प्रतिकारी के अन्दर प्रविष्ट कराते हैं। इस प्रकार ये दण्ड परमाणु प्रतिकारी के अत्यंत आवश्यक अंग हैं। इनकी बनावट, स्थिति तथा संख्या की गणना सम्यक रीति से की जाती है। सेवाना प्रतिकारी के नियंत्रण-दण्ड बोरान-निष्कलंक इस्पात प्लेटों के समूह द्वारा बनाये गये हैं। ऐसे २१ दण्डों का उपयोग किया जायगा। प्रत्येक दण्ड की लम्बाई १·७ मीटर रखी गई है। ये दण्ड वैद्युतचुम्बकीय प्रणाली द्वारा प्रतिकारी में आवागमन करेंगे। इनकी प्रवेश गति ३८ सेंमी० प्रति मिनट होगी यद्यपि संकट के समय ये केवल १·६ सेकेंड में पूर्णतया प्रवेश कर सकेंगे।

जलयान का चालन प्रतिकारी द्वारा उत्पन्न ऊष्मा द्वारा होगा। यह ऊष्मा धातुविहीन जल द्वारा

अवशोषित होगी। यह जल प्रतिकारी में दो कुंडलिनियों द्वारा प्रवाहित होगा। प्रत्येक कुंडलिनी में दो विद्युत् पम्प लगाये गये हैं जिनके द्वारा जल-प्रवाह किया जायगा। ये कुंडलिनियाँ प्रतिकारी के अन्दर सर्पाकार मार्ग बनायेंगी, तत्पश्चात् उससे निकल कर ऊष्मा विनिमायक में जाकर अपनी ऊष्मा प्रदान करेंगी। इन कुंडलिनियों के मार्ग को प्राथमिक प्रणाली कहते हैं। इनका जल १२० किलोग्राम प्रति घन सेमी० दबाव पर रहेगा। उच्च दबाव के कारण यह जल उच्च ताप पर भी वाष्प में नहीं परिणित होता।

प्राथमिक प्रणाली का जल ऊष्मा विनिमायक में द्वितीयक प्रणाली के जल को गरम करेगा। प्राथमिक तथा द्वितीयक प्रणाली के जल का समागम नहीं होता परन्तु संचालन द्वारा ऊष्मा द्वितीयक जल को मिलती है। द्वितीयक प्रणाली का जल न्यून दबाव पर रखा जायगा जिससे वह शीघ्र वाष्प में परिणित हो जाय। यही वाष्प जलयान को चालित करेगा। साथ में सारी आवश्यक ऊर्जा भी इसके द्वारा उत्पन्न होगी। प्राथमिक जल का मध्यमान ताप २६५° से० रखा जायगा। प्रतिकारी में यात्रा करने से इसके ताप में १२·७° से० की वृद्धि होगी। द्वितीयक प्रणाली के जल का ताप १७५° से० तक पहुँचेगा।

प्रतिकारी को सुरक्षित करने के लिए इस्पात का ढाँचा बनाया गया है। यदि किसी समय प्रतिकारी में दुर्घटना हुई तो उससे मुक्त रेडियधर्मी विकिरण इस ढाँचे के बाहर न निकल पायेंगे। इस प्रकार वाह्य वायुमण्डल दूषित न हो सकेगा। इस ढाँचे में प्रयुक्त इस्पात की चादर ७ से १० सेमी० मोटी रखी गई है और यह १३ किलोग्राम प्रति घन सेमी० के दबाव को सहन कर सकेगी। किसी दुर्घटनावश प्राथमिक शीतलन-प्रणाली में विस्फोट होने पर इतना महत्तम दबाव उत्पन्न हो सकता है। इस्पात के ढाँचे को वायुविमुक्त रखा गया है। इसके अन्दर की वायु को ६०° से० के ताप पर रखा जायगा और इसकी नमी ७२% होगी।

प्रतिकारी द्वारा हानिकारक विकिरण मुक्त होते हैं। इनका समिश्रण शीतलन प्रणाली के जल में हो सकता है। कार्यकर्ताओं को इन विकिरणों से बचाना अत्यंत आवश्यक है। सेवाना जलयान के प्रतिकारी का इस प्रकार निर्माण किया गया है कि इस्पात के ढाँचे के बाहर अत्यल्प मात्रा में विकिरण निकलेंगे जिनकी हानिकारक मात्रा से बहुत कम होगी। प्रतिकारी को बन्द करने के तीस मिनट पश्चात् कार्यकर्ता भीतरी भाग में प्रवेश कर सकेंगे।

परमाणु ऊर्जा के कार्य में विकिरण सूचक यंत्र अत्यावश्यक होते हैं। इस आवश्यकता का सेवाना में पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। इनके द्वारा जलयान के सारे स्थानों में विकिरण की मात्रा का सदैव ज्ञान होता रहेगा। इस जानकारी के लिये बत्तीस सूचना स्थानस्थिर किये गये हैं। इनमें से बारह स्थानों पर सूचक-यंत्र सदैव कार्य करते रहेंगे। बचे हुये बीस स्थानों पर इच्छानुसार समय-समय पर ज्ञान हो सकेगा। यदि किसी समय सामान्य से अधिक मात्रा में विकिरण उत्पन्न होंगे तो सावधानक ध्वनि उत्पन्न हो जायगी।

इस परमाणु ऊर्जा द्वारा चालित जलयान में टर्बाइन का चालन वाष्प द्वारा होगा। इस कारण प्रतिकारी के संलग्न भागों को छोड़कर अन्य भागों की बनावट साधारण वाष्प-चालित जलयानों की भांति होगी। कहीं-कहीं कुछ स्थानों पर आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये गये हैं। टर्बाइन के पंखों के क्षरण की रोक-थाम के लिये विशेष प्रबंध है।

सेवाना में सारी आवश्यक विद्युत् की उत्पत्ति परमाणु ऊर्जा द्वारा ही होगी। यह विद्युत् दो टर्बाइन जनित्रों द्वारा बनेगी। प्रत्येक जनित्र ४५० वोल्ट पर १,५०० किवा० विद्युत की उत्पत्ति

करेगा जो ३ कला (phase) और ६० चक्र (cycle) दशा की प्रत्यावर्ती धारा के रूप में होगी । यदि किसी समय एक जनित्र कार्य करना बन्द कर दे तो उसका सारा अनिवार्य भार दूसरे जनित्र पर स्वतः स्थानांतरित हो जायगा ।

इसके अतिरिक्त ७५० किवा० का एक डीजल जनित्र भी लगाया गया है जो परमाणु ऊर्जा उत्पादन बन्द होने पर आवश्यक ऊर्जा उत्पन्न करेगा । प्रतिकारी को प्रारम्भ में चलाते समय ऊर्जा की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति इस जनित्र द्वारा होगी । उसके बन्द होने के पश्चात् अवयवों को ठंडा करने में व्यय ऊर्जा भी यहीं से प्राप्त होगी । एक अन्य ३०० किवा० का डीजल जनित्र विशेष परिस्थितियों के लिये तैयार रखा गया है ।

अंतरिक्ष के अद्भुत दृश्य

डा० गोरख प्रसाद

अंतरिक्ष के अद्भुत दृश्यों में सबसे अधिक रहस्य-मय वे नीहारिकायें हैं जो सर्पिल नीहारिकाएँ कहलाती हैं । एक को छोड़ शेष सभी सर्पिल नीहारिकाएँ हमसे इतनी दूर हैं कि बिना दूरबीन के वे हमको नहीं दिखायी पड़तीं । एक जो कोरी आँख से दिखलायी पड़ती है वह केवल धुँधले छोटे धब्बे की ही तरह दिखाई पड़ती है, जो तनिक भी सुन्दर नहीं जान पड़ती । परन्तु बड़ी दूरबीनों से देखने पर, अथवा फोटो लेने पर, वह बहुत ही सुन्दर लगती है । बीच में अंडाकार चमकीले बादल के समान केन्द्र हैं और उसमें से दो भुजाएँ निकल कर उसको कुंडली के रूप में घेरे हुये हैं । संसार की सबसे बड़ी दूरबीन २०० इंच व्यास की है । इस दूरबीन से जब पूर्वोक्त नीहारिका का फोटोग्राफ खींचा जाता है और उस फोटोग्राफ को सूक्ष्मदर्शी से देखा जाता है तब स्पष्टतः पता चलता है कि पूर्वोक्त नीहारिका धुँआ या गैस नहीं है । वह प्रायः असंख्य तारों का समूह है । इस नीहारिका का नाम देवयानी नीहारिका है । अँग्रेजी में इसे ऐंड्रोमिडा नेब्युला कहते हैं ।

आकाश में करोड़ों नीहारिकाएँ हैं । वस्तुतः लगभग एक अरब, अर्थात् १०० करोड़, नीहारिकाओं का पता चल चुका है । इनमें से देवयानी नीहारिका ही सबसे पास वाली है । इसकी दूरी का हिसाब लगाया गया है और पता चला है कि इसकी दूरी लगभग ७½ करोड़ प्रकाश वर्ष है, अर्थात प्रकाश को देवयानी नीहारिका से चल कर पृथ्वी तक पहुँचने में साढ़े सात करोड़ वर्ष लगते हैं । इतनी अधिक दूरी की कल्पना करना ही असंभव है । प्रकाश एक सेकंड में १ लाख ८६ मील चल लेता है; यह इतने अधिक वेग से चलता है कि एक सेकंड में भी देवयानी नीहारिका से पृथ्वी तक पहुँचने में इसे ७½ करोड़ वर्ष लगते हैं । और करोड़ों ज्ञात नीहारिकाओं में से यह निकटतम नीहारिका है ।

किसी वस्तु की आकृति अच्छी तरह समझने के लिए हम उसे ऊपर से, नीचे से, अलग से, बगल से देखते हैं । तभी हम उसकी सच्ची आकृति को जान सकते हैं । परन्तु देवयानी नीहारिका तो हमसे बहुत दूर है और हम इसको केवल एक दिशा से देख पाते हैं । तब फिर इसकी सच्ची आकृति का पता कैसे चले ? सौभाग्यवश हम अन्य सर्पिल नीहारिकाओं को अन्य दिशाओं से देखते हैं । इसलिए चुनी हुई दस-बीस नीहारिकाओं के फोटोग्राफों को ध्यान से देखने

पर पता चल जाता है कि इन नीहारिकाओं की वास्तविक आकृति कैसी है। यदि हम छोटे से पैमाने पर इन नीहारिकाओं की मूर्ति बनाना चाहें तो हम ऐसी चपाती ले सकते हैं जो केवल बीच में फूली हो। यदि हम अधिक सच्ची मूर्ति चाहें तो हमें चपाती के बिना फूले भाग से कुछ अंश निकाल कर फेंक देना चाहिए, जिसमें सर्पिलाकार भुजाएँ बन जायँ। स्मरण रहे कि सर्पिलाकार का अर्थ है सांप की तरह गेंडुरी या कुंडली की आकृति का।

देवयानी नीहारिका में कई करोड़ तारे हैं। प्रत्येक तारा हमारे सूर्य के समान अति तप्त पिंड है। तारों की तुलना में तो अंगीठी की आग बहुत शीतल है। अवश्य ही देवयानी नीहारिका का अद्भुत दृश्य है। इस नीहारिका के तारे एक दूसरे से बहुत दूर-दूर पर बिखरे हुए हैं। केवल हमसे बहुत दूर होने के कारण वे एक दूसरे से सटे हुए जान पड़ते हैं। देवयानी नीहारिका का व्यास ३० हजार प्रकाश वर्ष है, अर्थात् परिधि के किसी एक बिंदु से चल कर केन्द्र से होते हुए परिधि पर स्थित सम्मुख विंदु तक पहुँचने के लिए प्रकाश को ३० हजार वर्ष लगेंगे, और हम देख चुके हैं कि प्रकाश कितना शीघ्रगामी है।

विश्व की करोड़ों सर्पिल नीहारिकाओं में से एक में घुस कर हम उसकी जाँच कर सकते हैं। आप पूछेंगे : कैसे ? तो उत्तर यह है कि हम सब एक अन्य सर्पिल नीहारिका में रहते हैं। यदि कोई बड़ी सी, परन्तु छिछली झील हो तो उसके पानी को हम मोटे हिसाब से नीहारिका की आकृति का मान सकते हैं। बीच में फूला हुआ, चारों ओर पतला। यदि इसमें बहुत सी मछलियां समान रूप से वितरित हों तो हम उन्हें तारा मान सकते हैं। यदि पानी पूर्णतया स्वच्छ हो तो उसे अंतरिक्ष मान सकते हैं। अब यदि कोई छोटी मछली केन्द्र से एक बगल कुछ हटकर आधी गहराई में पड़ी हो तो उस मछली को हम पृथ्वी मान सकते हैं। और अंत में मछली की आंख को हम अपनी आँख मान सकते हैं। तो हमें इस झील में मछलियाँ किस प्रकार वितरित दिखायी पड़ेंगी ? हम ऊपर की ओर कुछ मछलियाँ देखेंगे, नीचे की ओर भी कुछ मछलियाँ देखेंगे, परन्तु झील के केन्द्र की ओर हमें बहुत मछलियाँ दिखायी देंगी, क्योंकि उस दिशा में बहुत दूर तक जल है। वस्तुतः, हमें झील के समतल में चारों ओर बहुत अधिक मछलियाँ दिखायी पड़ेंगी; परन्तु ऊपर और नीचे की ओर मछलियाँ कम दिखायी पड़ेंगी, क्योंकि इन दिशाओं में पानी कम है। ज्यों-ज्यों हमारी दृष्टि झील के समतल की ओर झुकेगी, त्यों-त्यों हमें मछलियाँ अधिक दिखायी पड़ेंगी। आकाश के तारे हमें वस्तुतः इसी प्रकार दिखायी पड़ते हैं। जितने भी तारे हमें दिखायी पड़ते हैं वे सब हमारी निजी सर्पिल नीहारिका के सदस्य हैं जिसे हम अपनी मंदाकिनी कहते हैं। हमारी मंदाकिनी भी केवल बीच में फूली हुई चपाती के समान है। हम इसके बिना फूले हुए भाग में हैं। हमारी मंदाकिनी में कई अरब तारे हैं, परन्तु वे एक दूसरे से दूर-दूर बिखरे हुए हैं। जो तारे चपाती के समतल में हैं वे हमें इतने घने दिखायी पड़ते हैं कि वे कोरी आंख या छोटी दूरबीन से अलग-अलग नहीं पहचाने जा सकते। यही घना समूह आकाश में हमें आकाश-गंगा के रूप में दिखायी पड़ता है। यदि किसी अँधेरी रात में आकाश को ध्यानपूर्वक देखा जाय तो आकाश-गंगा अवश्य दिखेगी।

कोरी आँख से, अर्थात बिना दूरबीन की सहायता लिए हमें लगभग ६,००० तारे अलग-अलग दिखायी पड़ते हैं, जिनमें से किसी समय आधे से अधिक एक साथ नहीं दिखायी पड़ते, क्योंकि शेष क्षितिज के नीचे छिपे रहते हैं। ये सब तारे एक प्रकार से हमारे बहुत निकट हैं : वे सब लगभग ढाई हजार प्रकाश वर्ष की त्रिज्या के गोले के भीतर ही हैं। निकटतम तारा हमसे लगभग ४ प्रकाश वर्ष पर हैं। यद्यपि ४ प्रकाश वर्षों में मीलों की संख्या २४ पर १२ शून्य रखने से प्राप्त होगी, तो भी हमारी मंदाकिनी के व्यास की तुलना

में यह बहुत कम दूरी है। हमारी मंदाकिनी का व्यास लगभग १ लाख प्रकाश वर्ष है।

सर्पिल नीहारिकाएँ एक दूसरे से बहुत दूर-दूर पर स्थित हैं। यदि हम अपनी मंदाकिनी को दिल्ली नगर से निरूपित करें तो देवयानी नीहारिकाएँ बहुत दूर-दूर पर बसी हैं और उनके बीच बहुत खाली जगह छूटी है।

—(आकाशवाणी, इलाहाबाद के सौजन्य से)

हरी खाद

उमाशंकर सिंह

युग-युग के अनुभव और व्यवहारिक ज्ञान पर अवलम्बित भारतीय कृषि पद्धति इस वैज्ञानिक युग में भी अपना विशेष महत्व रखती है। "हरी खाद" बनाने की प्राचीन प्रणाली इसका ज्वलंत उदाहरण है। कौन इसका प्रशंसक नहीं ? सभी तो भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने वाली इस सरलतम और अल्पव्ययी रीति को खेती के लिये वरदान मानते हैं। पाश्चात्य वैज्ञानिकों को तो इसकी उपयोगिता का आभास बीसवीं सदी के प्रारम्भ में हुआ पर भारतीय कृषि-पंडित इसे युगों पूर्व जान चुके थे। कृषि पंडित घाघ की कहावतें जो जन साधारण में आज भी प्रचलित हैं इसकी अक्षरशः पुष्टि करती हैं। सनई की उपयोगिता के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है :—

सन के डंठल खेत छिटावै,
तिनते लाभ चौगुना पावै।

इतना ही नहीं, नील की उपयोगिता के सम्बन्ध में उनके व्यक्त विचार दृष्टव्य हैं :

जो तुम देव नील की जूठी,
सब खादों में रहे अनूठी।

कितनी सत्य है ये उक्तियाँ। काश ! यदि इन पर निरंतर व्यवहार किया गया होता तो भारतीय कृष्य-भूमि की यह दयनीय दशा न हुई होती। चाहे कृषक हो अथवा वैज्ञानिक, सभी स्वीकार करते हैं कि कृषि की सुसम्पन्नता प्रति एकड़ पैदावार पर आश्रित होती है और यह पैदावार भूमि की उर्वरा शक्ति पर ! भूमि की यह उर्वरा शक्ति अन्ततः खाद पर निर्भर करती है। खाद ही भूमि को वह शक्ति प्रदान करती है जिससे वह अन्नोत्पादन में समर्थ और सक्षम बनती है। जब तक खेत में खाद न पड़े अच्छी फसल का उत्पन्न होना सम्भव नहीं रहता। घाघ ने तो यहाँ तक कहा है कि

खाद पड़े तो होवे खेती,
नाहि तो रहे नदी की रेती।

जिस खाद की इतनी महत्ता है, उसके अधिक से अधिक उपयोग में फिर संकोच क्यों ? वस्तुतः कृषक संकोच नहीं करता। उसके पास खाद के इतने साधन उपलब्ध नहीं हैं जिससे वह अपने सम्पूर्ण खेतों की आवश्यकता की पूर्ति कर सके। आखिर कितने गोबर, मल-मूत्र, हड्डी, कूड़ा करकट, घास-फूस, सड़ी गली पत्तियों, खर-पात, आदि का उपयोग

खाद बनाने के लिये कर भी सकता है ! सभी के संचय तथा खाद बनाने के सरल और सुलभ साधन तो उपलब्ध हों ? एक ओर तो साधनों का अभाव, दूसरी ओर अपनी रूढ़िवादिता और कट्टरपंथी स्वभाव के कारण मल-मूत्र के संचय और उपयोग की बात तो दूर उसका नाम सुनकर ही किसान नाक-भौं सिकोड़ने लग जाते हैं। फिर उनसे इनके उपयोग की आशा कैसे रखी जा सकती है।

इन्हीं कारणों से भारतवर्ष में खाद का बहुत ही कम उपयोग होता है। इससे भूमि की उर्वरा शक्ति निरंतर घटती जा रही है। अधिकांश खाद बनाने वाली जैविक वस्तुएँ व्यर्थ नष्ट होती जाती हैं। १९४५ में डा० आचार्य द्वारा एकत्रित आकड़ों के अनुसार भारतवर्ष में २७ करोड़ ७२ लाख टन जैविक पदार्थ प्रति वर्ष उपलब्ध होता है। यदि इनका पूर्णरूपेण उपयोग हो पाता तो १९ लाख ५६ हजार टन नाइट्रोजन, १६ लाख टन फास्फोरिक अम्ल और ९९ लाख टन पोटैशियम ऑक्साइड खेतों में पहुँचता। पर प्रचलित व्यवस्था में केवल १ करोड़ ८९ लाख टन जैविक पदार्थ ही भूमि में खाद के रूप में पहुँचता है जिससे लगभग ९ लाख टन नाइट्रोजन, ३ लाख टन फासफोरिस अम्ल और ६ लाख टन पोटैशियम ऑक्साइड का ही उपयोग हो पाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण उपलब्ध जैविक पदार्थ के केवल ६.८% का ही उपयोग भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने में हो पाता है। शेष सब व्यर्थ नष्ट हो जाता है।

प्रश्न उठता है क्या इसका कोई उपाय नहीं ? आखिर वर्त्तमान परिस्थितियों में भूमि की उर्वरा शक्ति कैसे बढ़ाई जाय ? समस्त उपलब्ध जैविक पदार्थों के उपयोग हो सकने की सम्भावना तो वस्तुस्थिति से कोसों दूर है। फिर भी निराशा की आवश्यकता नहीं। आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के प्रकाश में अपनी परम्परागत रीतियों को समुन्नत कर खाद की समस्या के समाधान में पूर्ण सफलता प्रदान की जा सकती है। हरी खाद का सरल, सुगम और सस्ता साधन उपलब्ध है। इसके लिये न किसी विशेष साधन की आवश्यकता होती है और न किसी विशेष विधि-विधान की। आर्थिक कठिनाइयाँ भी इसमें बाधक नहीं बन सकतीं। सभी कृषक अपने खेतों में बिना किसी अतिरिक्त व्यय के जितनी खाद चाहें बना सकते हैं। यही एक ऐसा साधन दृष्टिगत होता है जो वर्तमान परिस्थितियों में भौमिक उर्वरता की समस्या के समाधान में सम्यक योग दे सकता है। आज इसके विस्तृत प्रचार एवं प्रसार की नितान्त आवश्यकता है। कारण इसकी उपयोगिता का वह रहस्य जो युग-युगों से अंधकार के गर्त में विलीन था आधुनिक ज्ञान के प्रकाश में अब प्रतिबिम्बित हो उठा है। अब भारतीय कृषक का व्यवहारिक अनुभव और संचित ज्ञान ही इसकी विशेषता को सिद्ध करने का एकमात्र सम्बल नहीं है। वैज्ञानिक शोधों और अन्वेषणों से उपलब्ध परिणाम हरी खाद की उपयोगिता को वह आधार प्रदान कर चुके हैं जिसमें बुद्धि-विवेक द्वारा उपस्थित तर्क और शंका के लिये स्थान नहीं।

हरी खाद क्या है—प्रश्न उठता है कि हरी खाद है क्या ? यह कोई नवीन वस्तु नहीं है। परम्परागत कृषि प्रणाली की यह पुरातन देन है। कृषक बहुधा वर्षा-ऋतु में विशेष प्रकार की फसलें जो बहुधा फलीदार होती हैं, खेतों में उगाकर उस समय जोत देते हैं जब फसल में अधिकतम हरित पदार्थ-पत्ती, डंठल आदि के रूप में उपस्थित रहती हैं। पौधों की यह अवस्था उनकी जाति, विकास की अवधि, पानी की सुविधा तथा वृद्धि की गति पर निर्भर रहती है। अधिकांश फसलों की जुताई फल आने के पूर्व की जाती है। मिट्टी में जुताई के कारण जब डंठल-पत्तियाँ आदि दब जाती हैं तो वे सड़कर खाद का रूप धारण करती हैं। खड़ी फसलों की इस प्रकार जुताई कर देने से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है। अतएव इसे हरी खाद के नाम से सम्बोधित करते हैं।

हरी खाद की उपयोगिता का रहस्य—हरी खाद की भौतिक उर्वरता में वृद्धि करने की अद्भुत शक्ति

और फसलों के पोषण की अनुपम क्षमता का ज्ञान कृषक को है। पर इसका वैज्ञानिक रहस्य सदियों तक अंधकार के गर्त में विलीन रहा। केवल व्यवहारिक अनुभव के आधार पर ही इसका प्रचलन प्रारम्भ हुआ था और निरंतर चलता रहा। वैज्ञानिक युग के सुप्रभात में इस रहस्य को सुलझाने के प्रयत्न प्रारम्भ हुये और इस जटिल समस्या के समाधान अन्ततः मिल ही गया। अन्वेषणों द्वारा यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि फलीदार फसलों में वायुमंडल से नाइट्रोजन ग्रहण करने की अद्भुत क्षमता होती हैं जहाँ गैस के रूप में इसका अपार भंडार है। वायुमंडल में प्रायः ७९ प्रतिशत नाइट्रोजन उपस्थित है। इस प्रकार प्रत्येक वर्ग मील भूमि के ऊपर लगभग २ करोड़ टन नाइट्रोजन विद्यमान है। इसी भंडार से नाइट्रोजन लेकर फलीदार फसलें अपना पोषण करती हैं जिनसे उनका विकास होता है। अपनी जीवन अवधि में वे इतना नाइट्रोजन वायुमंडल से ग्रहण कर लेती हैं जिससे कि साधारण फसल का सुगमतापूर्वक पोषण हो सकता है। प्रति एकड़ ५०-१०० पौंड नाइट्रोजन सनई, ढैंचा, ज्वार आदि फ[illegible]लों द्वारा सरलतापूर्वक भूमि में स्थापित किया जा [illegible]कता है। इ० वी० लेवी द्वारा किये गये परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि सफेद क्लोवर से ४५० पौं० नाइट्रोजन प्रति एकड़ संस्थापित कर लेना कठिन नहीं। इसी प्रकार के परिणाम पी० एच० हैस्वर्थ को भी अपने प्रयोगों में मिले हैं। उनके अनुसार २ वर्ष तक छोड़ी हुई मीठी क्लोवर की फसल में ९०० पौं० नाइट्रोजन प्रति एकड़ संस्थापित हुआ।

इससे स्पष्ट है कि हरी खाद न केवल भूमि में जीवांश ही पहुँचाने का कार्य करती है वरन् सैकड़ों पौंड वायुमंडलीय नाइट्रोजन को भी भूमि में संस्थापित कर उसकी उर्वरता को बढ़ाने में अपूर्व योग देती है।

फलीदार फसलें स्वभावतः मूसला जड़ों वाली होती हैं अतः वे अपना आहार भूमि की निचली सतहों से ग्रहण करती हैं। जब उनकी जुताई कर दी जाती है तो गृहीत भोज्य-तत्वों का समस्त अंश जो डंठलों, पत्तियों आदि में संचित रहता है, ऊपरी सतह पर पहुँचकर वहाँ की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने में सहायक होता है। फलीदार फसलों के वर्षा ऋतु में खेत में खड़े रहने के कारण सभी विलेय भोज्य तत्व उनके द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं और वे जल के साथ विलेय होकर न तो नीचे जाते हैं और न बहकर नष्ट हो पाते हैं। इतना ही नहीं, फसलों के सड़ने के समय कार्बन डाई ऑक्साइड गैस निकलती है जो पानी में विलयित हो कार्बोनिक अम्ल का निर्माण करती है। यह अम्ल अप्राप्य भोज्य पदार्थों को प्राप्य रूप में परिवर्तित कर देता है जिससे वे अविलम्ब पौधों के भोज्य रूप में प्रयुक्त हो सकें।

इस प्रकार अपने बहुमुखी लाभों से हरी खाद भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने में सहायक होती है। यही इसकी विशद उपयोगिता का रहस्य है।

उपयोग की सम्भावना—हरी खाद की उपयोगिता, सम्भव है, शीत अथवा शीतोष्ण कटिबन्धों में अधिक न हो सके, पर उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों के लिये यह अत्यन्त उपयुक्त है। भारतवर्ष की भूमि और जलवायु तो हरी खाद के लिये अत्यन्त उपयुक्त सिद्ध हुई है फिर भी दुर्भाग्यवश इसका प्रचलन बहुत अधिक नहीं है। इसका कारण यह है कि भारतीय कृषक हरी खाद के लिये फसल उगाने के स्थान पर अन्न अथवा चारे के लिये फसल उगाने को अधिक महत्व देते हैं। आर्थिक दृष्टि से यह ठीक भी है, पर इसका भावी प्रभाव हानिकर होता है।

चाहे सभी खेतों में हरी खाद का प्रयोग करें या न करें, पर जहाँ रबी में बोई जाने वाली अन्न की फसलों के लिये पलिहर छोड़ने का प्रचलन है, वहाँ हरी खाद के प्रयोग में संकोच न होना चाहिये। उन भागों में जहाँ सिंचाई के

सरल और सस्ते साधन उपलब्ध हैं, वहाँ तो गर्मियों के दिनों में भी सिंचाई करके हरी खाद की फसलें उगाई जा सकती हैं, और वर्षा में जुताई कर देने से देर से पकने वाली धान की फसलें सरलतापूर्वक पैदा की जा सकती हैं। आधुनिक भौमिक उर्वरता और अन्य खाद के साधनों की कमी को देखते हुए निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि हरी खाद कृषि की उन्नति में अपूर्व योग दे सकती है, यदि इसका विस्तृत प्रचार-प्रसार किया जाय। इसके लिये न तो देश में साधनों का अभाव है, न आर्थिक कठिनाई। इसके अलावा, सुगम होने के कारण विशेष परिश्रम की भी आवश्यकता नहीं पड़ती।

हरी खाद के लिये न किसी विशेष साधन की आवश्यकता पड़ती है और न किसी प्रमुख विधि-विधान की। तीव्र गति से बढ़ने वाली वर्षा की फलीदार फसलें जिनके डंठल नर्म हों, शाखाओं और पत्तियों के रूप में हरित पदार्थ अधिक से अधिक पैदा होता हो और जो अधिकतम नाइट्रोजन-संस्थापन की शक्ति रखती हों, हरी खाद के लिये सर्वोत्तम मानी जाती हैं। ऐसी फसलों में सनई, ढैंचा, ग्वार, लोबिया, मूँग आदि प्रमुख हैं। भारतवर्ष के विभिन्न भागों में, भूमि-जलवायु और स्थानीय सुविधाओं के अनुसार विभिन्न फसलें उगाई जाती हैं। बंगाल, बिहार और आसाम में ढैंचा का प्रयोग अधिक होता है पर उत्तर प्रदेश में सनई का। आर्थिक दृष्टि से सस्ते बीज वाली फसलें कृषक अधिक पसन्द करते हैं।

खेती का विधि-विधान प्रायः उसी प्रकार होता है, जैसा अन्य खरीफ की फसलों का। जहाँ सिंचाई के सस्ते साधन उपलब्ध हैं और कृषक खरीफ में धान की देर से पकने वाली फसल लेना चाहते हैं, वहाँ रबी की फसल की कटाई के उपरान्त खेत की सिंचाई पर मिट्टी भुरभुरी बना देते हैं। फिर हरी खाद वाली किसी उपयुक्त फसल के बीजों को छींट कर पाटा दे देते हैं। प्रति एकड़ बुआई के लिये एक मन सनई अथवा २०-२५ सेर ढैंचा का बीज पर्याप्त होता है।

जहाँ सिंचाई के साधन उपलब्ध नहीं हैं, वहाँ वर्षारम्भ के साथ हरी खाद के लिये फसलों की बुआई करते हैं। जब फसलें पर्याप्त बढ़ जाती हैं, इनमें अधिकतम हरित पदार्थ की मात्रा एकत्रित हो जाती है, उस समय पटेला चला कर भूमि पर गिरा देते हैं। सनई-ढैंचा की जुताई प्रायः बुआई के ८-१० सप्ताह बाद करते हैं। फिर किसी मिट्टी पलटने वाले हल से खेत की जुताई कर दी जाती है, जिससे सभी डंठल, पत्तियाँ आदि पूर्णतया ढक जाँय। खेत में नमी कम होने पर यदि वर्षा की सम्भावना नहीं रहती तो सिंचाई कर देते हैं ताकि सड़ने का कार्य शीघ्र पूर्ण हो सके। मिट्टी में ढके रहन से फसल के सभी अंग सड़ कर भूमि में मिल जाते हैं। इस प्रकार प्रति एकड़ साधारण फसल द्वारा प्रायः १५०-३०० मन जीव अंश तथा ५०-१०० पौंड नाइट्रोजन भूमि में सरलतापूर्वक पहुँच जाता है और उसकी उर्वरा शक्ति को बढ़ा देता है। इसके लिय कृषक को अधिक व्यय भी नहीं करना पड़ता। यदि भूमि को उर्वरा शक्ति को बिना किसी बाहरी खाद के प्रयोग द्वारा बढ़ाना है, तो हरी खाद का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि हरी खाद की फसलों की बुआई के पूर्व यदि प्रति एकड़ ३ मन सुपर-फासफेट डाल दिया जाय तो पौधों की बाढ़ बहुत ही बढ़ जाती है और उनमें काफी मात्रा में कार्बोहाइड्रेट बनता रहता है। चूँकि पौधों की स्वाभाविक प्रवृति के कारण कार्बोहाइड्रेट और नाइट्रोजन का एक निश्चित अनुपात उसमें रहता है, कार्बोहाइड्रेट की मात्रा के बढ़ने पर उस अनुपात को बनाये रखने के लिये जीवाणुओं को अधिक नाइट्रोजन संस्थापित करने की आवश्यकता पड़ती है। अनुकूल परिस्थितियों में वे सदैव उसे पूरा करते हैं। इससे नाइट्रोजन की मात्रा

अधिक हो जाती है। इस प्रकार सुपरफासफेट के प्रयोग से जीवांश की वृद्धि तो होती है ही नाइट्रोजन भी अधिक हो जाता है।

यह भी सिद्ध हुआ है कि हरी खाद की जुताई के उपरान्त यदि खेत में १०-१५ पौंड नाइट्रोजन प्रति एकड़ डाल दिया जाय तो जड़ों, डंठलों तथा पत्तियों के सड़ने में शीघ्रता हो जाती है। जहाँ जुताई में विलम्ब हो गया हो, वहाँ इसका प्रयोग कर सड़ने का कार्य शीघ्र पूर्ण कराया जा सकता है। इस प्रकार हरी खाद का प्रयोग कर के भूमि में जीवांश और नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ा, उसकी उर्वरा शक्ति को बढ़ाने में पूरी सफलता प्राप्त की जा सकती है।

उर्वरा शक्ति कैसे बढ़ती है ?

भूमि की उर्वरा शक्ति उस भौतिक दशा पर आश्रित रहती है, जिसमें पौधे के विकास के लिये आवश्यक जल, वायु और उपलब्ध खाद्य तथा निरंतर अनुकूल अथवा प्रतिकूल वाह्य परिस्थितियों में निर्वाध गति से पर्याप्त मात्रा में मिलते रहें। जल और वायु का सम्बन्ध तो भूमि की भौतिक दशा से होता है पर खाद्य तत्वों का मिलना उसकी रासायनिक और जैविक दशाओं पर आश्रित होता है। न तो अकेले उपयुक्त रासायनिक दशायें ही पर्याप्त हैं और न जैविक क्योंकि विभिन्न रासायनिक पदार्थों के विघटन और उन्हें उपलब्ध बनाने का कार्य स्वतः नहीं होता वरन् जीवाणुओं द्वारा किया जाता है, जो भूमि में उपस्थित रहते हैं। जीवाणुओं की मात्रा और उनकी कार्य-प्रणाली पर भूमि के जीवांश, खाद्य-तत्व, जल, वायु और ताप का प्रभाव पड़ता है।

हरी खाद द्वारा नाइट्रोजन तथा जीवांश की जो वृद्धि होती है उससे भूमि के भौतिक गुणों —जैसे पानी, हवा और ताप के धारण करने की शक्ति —में केवल पर्याप्त सुधार नहीं हो जाता, वरन् रासायनिक गुण — जैसे पौधे के आहार तत्वों में वृद्धि होने के साथ-साथ उनके उपलब्ध रूप में परिवर्तित होने की गति भी तीव्र हो जाती है। भूमि के जीवाणुओं के लिये भी जीवांश की वृद्धि से पर्याप्त आहार एकत्रित हो जाता है जिससे उनका कार्य बढ़ जाता है। इस प्रकार हरी खाद त्रिकोणीय लाभ पहुँचा कर भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाती है।

मनुष्य, टेकनालॉजी और अन्तरिक्ष

प्रो० जी० पोक्रोव्स्की

जब से दूसरे सोवियत अन्तरिक्ष-यान के सफलतापूर्वक छोड़े जाने और वापस लौट आने के फलस्वरूप मनुष्य द्वारा विमान में बैठकर अन्तरिक्ष में उड़ान भरना एक व्यवहारिक सम्भावना हो गयी है' तब से मनुष्य, टेकनालॉजी और अन्तरिक्ष की समस्या केवल अनुसन्धान की प्रयोगशालाओं तथा संस्थानों तक सीमित नहीं रह गयी है। अब संसार के लाखों-करोड़ों लोगों के मस्तिष्क पर यह समस्या छायी हुई है।

टेक्नॉलॉजी के पूरे इतिहास में प्रकृति पर मनुष्य के प्रभुत्व का विकास इतनी आश्चर्यजनक गति से नहीं हुआ है। ठोस वैज्ञानिक तथा टेक्निकल परिणामों से अपने आपको अलग रखकर हमारे लिये इस प्रगति की भव्यता तथा उसके सामाजिक-राजनीतिक प्रभावों का सही-सही मूल्यांकन करना असम्भव है क्योंकि यहाँ पर ठोस प्राविधिक समस्याएँ व्यापकतम मानवीय समस्याओं के साथ मिल गयी हैं।

पिछले तीन वर्षों में राकेट-कला में सोवियत संघ की टेक्निकल प्रगति आश्चर्यजनक रही है। उच्च प्रक्षेप-शक्ति वाले और अपेक्षतः हल्के इंजनों, विशाल तथा दृढ़ बहुखण्डीय राकेट व्यवस्थाओं और ताप-संरक्षण की विश्वसनीय व्यवस्था का, जो सुरक्षित ढंग से वापस लौटने के लिये नितांत आवश्यक है, उल्लेख किया जाना चाहिए। निर्देशन तथा नियंत्रण की विश्वसनीय तथा बिलकुल सही व्यवस्था भी अत्यधिक महत्व की सफलता है। इस मामले में सोवियत राकेट, जैसा कि सभी लोग मानते हैं, अमरीकी राकेटों से कहीं आगे हैं।

इतिहास की दृष्टि से बहुत ही अल्पकाल में सोवियत अन्तरिक्ष-राकेटों का भार बड़े से बड़े विमानों के भार से बढ़ गया है। राकेटों के मोटरों (इंजन) की ऊपर की दिशा में उछालने की शक्ति वोल्गा नदी पर स्थित लेनिन जलविद्युत् केन्द्र के बिजली के कुल उत्पादन से कई गुना अधिक है, जबकि यह संसार का सबसे बड़ा जलविद्युत् केन्द्र है।

परन्तु राकेट संचालन में जो प्रगति हुई है वह मुख्यतः परिमाणात्मक दृष्टि से उल्लेखनीय है। इस क्षेत्र में मुख्य प्रवृत्ति—निरंतर बढ़ती हुई प्रक्षेप-शक्ति और निरंतर घटता हुआ भार—न तो कोई नयी बात है न अप्रत्याशित ही। प्रारम्भ में जब विमान उड़ाये गये तब उनके सम्बन्ध में भी यही समस्या थी। परन्तु राकेट-कला ने इस सिद्धान्त का शानदार ढंग से विकास किया है और आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है।

तीन वर्षों के अनुभव का निचोड़ प्रस्तुत करते समय और अन्तरिक्ष यात्रा की भावी सम्भावनाओं का मूल्यांकन करते समय हम अपने आपको इस समस्या के केवल वैज्ञानिक तथा प्राविधिक पहलू तक ही सीमित नहीं रख सकते। आज तक जो सफलताएँ प्राप्त की गयी हैं और भविष्य के लिए जो निश्चित शानदार सम्भावनाएँ हमारे सामने हैं उनके गहरे सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

स्पष्ट है, ये सफलताएँ और सम्भावनाएँ मानव-जाति के लिए केवल इसलिए महत्वपूर्ण नहीं हैं कि अति शक्तिशाली राकेट तैयार कर लिये गये हैं, चन्द्रमा तक पहुँचा जा चुका है और पृथ्वी से अन्तरिक्ष में जाकर फिर पृथ्वी तक लौट आने वाली पहली उड़ान की जा चुकी है। मनुष्य के लिए सबसे अधिक रोचक है कुछ उत्साही लोगों के एक दल द्वारा अभूतपूर्व सृजन-कार्य का सम्पन्न किया जाना। इस बात से पता चलता है कि जब वर्ग-विरोध दूर हो चुके हों और राष्ट्र के सामने उदात्त प्रगतिशील लक्ष्य हों, उस समय हम किस प्रकार काम कर सकते हैं और हमें किस प्रकार काम करना चाहिए।

दुर्भाग्यवश, अन्तरिक्ष में मनुष्य के साहसिक प्रवेश के गहरे नैतिक तथा राजनीतिक प्रभाव की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया गया है, यद्यपि अन्तरिक्ष-यात्रा के बारे में बहुत बड़ी संख्या में पुस्तकें और लेख लिखे गये हैं। नक्षत्र-यात्रा का मनुष्य और उसके आत्मिक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ना अवश्य भावी है। कारण यह है कि मनुष्य द्वारा विमान में बैठकर अन्तरिक्ष में यात्रा करना, अन्तरिक्ष के बारे में वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त करने का ही सवाल नहीं है। यह समस्या पूरी मानवता के लिए महत्व रखती है, वह मनुष्य के विश्व दृष्टिकोण के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अब समय आ गया है कि नक्षत्र-यात्रा के युग में मनुष्य के अस्तित्व के दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक पहलुओं का गूढ़ अध्ययन किया जाये।

पृथ्वी पर जड़ तथा चेतन प्रकृति दोनों क्षेत्रों में बहुत सी प्रक्रियाओं को मनुष्य ने अपने वश में कर लिया है। इसके अतिरिक्त उसने मूलतः नयी भौतिक प्रक्रियाओं और स्वचालित पद्धतियों द्वारा नियंत्रित घटनाओं को जन्म दिया है। दूसरी ओर स्वाचालन ने इतिहास में पहली बार मनुष्य को पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण को वश में करने में सहायता दी है।

स्वचालन जो आज की प्राविधिक प्रगति की मुख्य प्रवृत्ति है, अन्तरिक्ष-विजय के क्षेत्र में भी मुख्य प्रवृत्ति बनता जा रहा है। अन्तरिक्ष सम्बन्धी प्राथमिक अनुसन्धानों तथा अध्ययनों के साथ, जिनमें पृथ्वी की लपटों और चन्द्रमा के दूसरी ओर के चित्र सबसे प्रमुख हैं, स्वचालन का बहुत गहरा सम्बन्ध है।

प्रथम स्वचालित अन्तर-नक्षत्रीय खोज नक्षत्र-यात्रा के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण मंजिल थी। उस सफल प्रयोग ने स्वचालित पद्धतियों की सहायता से ग्रहों तथा अन्य नक्षत्रों इत्यादि के अध्ययन के लिए मार्ग खोल दिया। अब जबकि मनुष्य ब्रह्माण्ड के अनंत निर्जन शून्य में पदार्पण कर रहा है, इन पद्धतियों का महत्व विशेष रूप से बढ़ता जा रहा है। अन्तरिक्ष में मनुष्य के लिए असंख्य खतरे हैं जिनका अध्ययन अभी इतनी हद तक नहीं किया जा चुका है कि अभी मनुष्य विमान में बैठकर अन्तरिक्ष की यात्रा कर सके।

अन्य ग्रहों तक पहुँचने का मार्ग ढूँढ़ने के लिए मनुष्य अन्तरिक्ष की खोज करने वाले स्वचालित साधनों का प्रयोग करता रहेगा। सोवियत राकेट-कला ने जितनी प्रगति कर ली है उसके कारण अब मंगल या शुक्र ग्रह की दिशा में स्वचालित अन्वेषक यंत्र भेजना सम्भव हो गया है। इस प्रसंग में सोवियत संघ द्वारा हाल ही में परीक्षण के लिए प्रशान्त महासागर में फेंके जाने वाले प्रक्षेप राकेट का ही उल्लेख कर देना काफी है। यदि अन्तर-नक्षत्रीय अन्वेषक यंत्र शुक्र ग्रह की ओर विरोध गति के समय अपने लक्ष्य पर इसी तरह ठीक-ठीक भेजा जा सके तो वह इस ग्रह के केन्द्र से कोई ८-९ हजार किलोमीटर की दूरी पर जाकर लगेगा। शुक्र ग्रह के धरातल को देखने के लिए परिस्थितियां उन परिस्थितियों से अधिक अनुकूल होंगी जिनमें चन्द्रमा के दूसरी ओर के चित्र लिये गये थे। इन फोटो-चित्रों में शुक्र ग्रह के जितने धरातल का विवरण अंकित होगा वह चन्द्रमा के फोटो-चित्रों की अपेक्षा कई गुना छोटा होगा।

काफी शक्तिशाली और छोटे रेडियो संचार यंत्र तैयार करना, जिससे अन्तर-नक्षत्रीय अन्वेषक यंत्र और पृथ्वी के बीच विश्वस्त सम्पर्क स्थापित रह सके, एक ऐसा लक्ष्य है जिससे प्राप्त करना और भी कठिन है। परन्तु इस शुद्धतः प्राविधिक क्षेत्र में हाल ही में उत्साहजनक प्रगति की गई है। चन्द्रमा सम्बन्धी खोज में स्वचालित अन्वेषक यंत्रों का विशेष महत्व है। ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि मनुष्य शीघ्र ही चन्द्रमा के धरातल पर पग रखेगा पर अभी बहुत समय तक स्वचालित स्टेशनों को ही सबसे प्रमुख महत्व दिया जायगा।

अन्तरिक्ष में मानव-निर्मित संस्थान

हम पृथ्वीवासी अब रेडियो को कोई चमत्कार नहीं समझते। अपने प्रतिदिन के जीवन में हममें से बहुत ही थोड़े लोग ऐसे होंगे जो इस बात पर ध्यान देते हों कि हमारे चारों ओर के शून्य में असंख्य विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र और रेडियो रश्मि-दण्ड भरे हुए हैं और भौतिक विश्व को मनुष्य की आवश्यकताओं के अनुसार ढालने का यह एक साधन है। जब रडार रश्मि-दण्ड पहली बार चन्द्रमा तक जाकर पृथ्वी पर वापस आया था तो ए० स० पोपोव के इस महान अविष्कार ने मनुष्य के हाथों में एक ऐसे शक्तिशाली साधन का रूप धारण कर लिया था जिसकी सहायता से वह प्रकटतः निर्वात प्रतीत होने वाले वाह्य अन्तरिक्ष को बेध सकता।

अन्तरिक्ष-राकेट के लिए यह नितांत आवश्यक है कि जब वह पृथ्वी पर से ऊपर उठे तो उसकी दिशा और गति को बहुत ही संकुचित सीमाओं के भीतर रखा जाय। जितनी देर अन्तरिक्ष राकेट अपने इंजनों की प्रबल शक्ति के सहारे चलता है, तब तक उसका निर्देशन तथा नियंत्रण पृथ्वी पर से स्वचालित रेडियो-यंत्रों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार अन्तरिक्ष में निर्देशित रेडियो रश्मि-दण्डों का एक जाल-सा बन जाता है जो राकेट में लगे हुए रेडियो-

यंत्रों के साथ सम्पर्क बनाये रखता है। आलंकारिक भाषा में अन्तरिक्ष में हजारों किलोमीटर के विस्तार में प्रसारित रेडियो तरंगों के इस जाल को हम अन्तरिक्ष का विद्युत्-चुम्बकीय संस्थान या ईथर वास्तु-कृति कह सकते हैं। भविष्य में जिन अन्तरिक्ष-यानों पर बैठकर मनुष्य यात्रा करेगा, या जो खाली ही अन्तरिक्ष में भेजे जायेंगे, उन दोनों में ही विशालकाय विद्युत्-चुम्बकीय कीफ लगी होंगी जिसकी सहायता से अन्तर-नक्षत्रीय उड़ान के बाद निर्दिष्ट स्थान पर उतरना सम्भव हो सकेगा।

इस प्रकार अन्तरिक्ष की खोज करने वाले राकेट के अतिरिक्त मनुष्य ब्रह्माण्ड में सचमुच ब्रह्माण्डीय आकार के विद्युत्-चुम्बकीय 'ईथर' संस्थानों का जाल भी बिछा रहा है। ये पृथ्वी और चन्द्रमा तक अन्य ग्रहों के बीच "स्थानीय सामग्री" के—बल क्षेत्रों के— बने हुए मजबूत 'पुलों' का काम देंगे। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि मनुष्य विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्रों तथा तरंगों की सहायता से —जो द्रव्य का एक विशिष्ट रूप है—अत्यन्त कठिन समस्याओं को हल करने में संलग्न है। यह प्रकृति पर विजय करने की दिशा में एक बहुत बड़ा नया कदम है। २१वीं शताब्दी तक ब्रह्माण्ड के इस अथाह गर्त के पार विद्युत्-चुम्बकीय "पुल" बन जायेंगे जो पृथ्वी को हमारी आकाश-गंगा में स्थित सुदूरतम विश्वों के साथ जोड़ देंगे।

अन्तरिक्ष विजय में सोवियत संघ की भूमिका प्रमुख रही है, एक ऐसी भूमिका जो पिछले तीन वर्षों में विशेष रूप से प्रमुख रही है। इस अवधि में सोवियत संघ ने अन्तरिक्ष-यात्रा की प्रगति में पाँच मंजिलें पार की हैं: स्पुत्निक, कृत्रिम ग्रह, चन्द्रमा तक जाने वाला राकेट जो सोवियत संघ का राष्ट्र चिह्न लेकर चन्द्रमा तक गया था, एक स्वचालित अन्तरिक्ष राकेट, और अन्तरिक्ष में पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाने वाला अन्तरिक्ष यान जिसमें बैठकर आदमी उड़ सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका भी अन्तरिक्ष-यात्रा की ओर बहुत ध्यान देता रहा है परन्तु अमरीका अन्तरिक्ष को वैज्ञानिक सफलताएँ प्राप्त करने की अपेक्षा सैनिक उद्देश्यों के लिए विशेष रूप से जासूसी के लिए अधिक इस्तेमाल कर रहा है। संयुक्त राज्य अमेरिका एक ऐसा देश है जहाँ इंजीनियरी का स्तर बहुत ऊँचा है, जहाँ कुशल अविष्कार करने वाले तथा इंजीनियर हैं, जिस देश में दूसरे महायुद्ध के बाद विभिन्न पूँजी-वादी देशों के बहुत से प्रमुख वैज्ञानिक आकर बस गये थे। इस बात में किसी को सन्देह नहीं हो सकता कि द्वितीय महायुद्ध से उस देश को कोई हानि पहुँचने के बजाय लाभ ही हुआ।

इन सब बातों के साथ ही संयुक्त राज्य अमरीका प्रारम्भ से ही सोवियत संघ से पिछड़ा हुआ है। अन्तरिक्ष सम्बन्धी अपने सभी प्रयोगों में संयुक्त राज्य अमरीका ने या तो सोवियत सफलताओं की नकल की है या उन्हीं सफलताओं को आधार बना कर आगे पग रखा है। सच तो यह है कि अभी तक अमरीका सोवियत संघ की प्रमुखतम सफलताओं की नकल भी नहीं कर पाया है, जैसे चन्द्रमा तक उड़ान, चन्द्रमा का चक्कर लगाना और चन्द्रमा की दूसरी तरफ के चित्र लेना और अन्तरिक्ष-यान की उड़ान।

व्यापकतर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग

अन्तरिक्ष की शांतिपूर्ण विजय के क्षेत्र में जो प्रतिस्पर्द्धा चल रही है उसका तर्कसंगत परिणाम यही होना चाहिए कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग घनिष्ठतर हो। सोवियत वैज्ञानिक हमेशा हर सम्भव दिशा में इस प्रकार के सहयोग के पक्ष में रहे हैं, क्योंकि इससे मानवजाति के लिए विशाल व्यवहारिक लाभ की सम्भावना है। इस सम्बन्ध में केवल एक ही उदाहरण दे देना पर्याप्त होगा। पूरी पृथ्वी

पर बसने वाले सारे लोगों में प्रतिवर्ष कुछ खरब रूबल की खेती की पैदवार की खपत होती है। इसके साथ ही हर साल पहले से मौसम का सही-सही हाल न ज्ञात हो सकने के कारण लगभग दस खरब रूबल की फसल नष्ट हो जाती है। यदि पहले से मौसम का हाल बताने के लिए अन्तरिक्ष में एक ही विश्वव्यापी व्यवस्था की स्थापना की जाये तो कम से कम इसकी आधी राशि, अर्थात् ५ खरब रूबल की बचत हो सकती है। सारी दुनिया में राकेटों पर इससे कई गुना धन खर्च किया जाता है। विश्वव्यापी व्यवस्था का होना नितांत आवश्यक है क्योंकि सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमरीका के लिए या यूरेशिया और अमरीका के लिए अलग-अलग मौसम का हाल बताना असम्भव है। इस प्रकार की व्यवस्था सभी देशों की संयुक्त योजना के रूप में होनी चाहिए। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अन्तरिक्ष विजय में अधिक व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के फलस्वरूप मनुष्य को ऐसे आर्थिक लाभ होंगे जिनकी हम इस समय कल्पना भी नहीं कर सकते।

———

सार संकलन

१. महासागर के रहस्य

एन० गोर्स्की

समुद्र तट से दूर रहने वाले लोग शायद इस बात को न देखें कि हमारे ग्रह के जीवन में महासागर का कितना अधिक महत्व है। पानी जीवन का पोषक है, उसके बिना पृथ्वी निर्जन हो जाती। समुद्र और महासागर परिवहन के सस्ते मार्ग हैं, वे बहुमूल्य खाद्य सामग्री और खनिज पदार्थों के भण्डार हैं और तापशक्ति तथा ऊर्जा के स्रोत हैं और यही कारण है कि हमारे वैज्ञानिक ज्ञान में महासागर-विद्या का इतना प्रमुख स्थान है।

चन्द्रमा और प्रशान्त महासागर

विस्मित पाठक शायद यह प्रश्न पूछें कि विश्व महासागर और चन्द्रमा के बीच क्या सम्बन्ध है। महासागरों की उत्पति से सम्बन्धित एक सिद्धान्त के अनुसार यह सम्बन्ध वास्तव में बहुत गहरा है।

इस सिद्धान्त के मानने वालों का कहना है कि सृष्टि के आदिकाल में पृथ्वी अपनी पिघली हुई अवस्था में अपनी धुरी पर आज की अपेक्षा छः से दस गुनी तक अधिक तेजी से घूमती थी: तदनुकूल पृथ्वी का दिन भी छोटा था। सूर्य की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण उत्पन्न होने वाली ज्वार-भाटे की प्रचण्ड लहरों ने ठंढे होते हुए इस ग्रह के गाढ़े तरल पदार्थ के बाहरी पतले-से आवरण को आन्दोलित किया, बहुत कुछ उसी प्रकार जैसे आज चन्द्रमा और सूर्य की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण समुद्र में ज्वार की लहरें उठती हैं।

उस समय भी ज्वार की लहरें पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाती थीं और घर्षण के कारण उन्होंने प्रतिदिन धुरी पर चक्कर लगाने की पृथ्वी की गति को धीमा कर दिया। एक ऐसा क्षण भी आया जब ज्वार की लहरों के बीच की अवधि गाढ़े तरल पदार्थ की बनी हुई पृथ्वी के प्राकृतिक प्रदोलनों के बीच की अवधि के बराबर हो गयी। इसके फल-स्वरूप प्रदोलन अनुनाद उत्पन्न हुआ जिसने ज्वार की एक बहुत बड़ी लहर को इस ग्रह से नोंच लिया और उसे वाह्य अन्तरिक्ष में पहुँचा दिया। इस सिद्धान्त के मानने वाले कहते हैं कि इस प्रकार जो रिक्त स्थान पैदा हुआ वही प्रशान्त महासागर की तली है, और पृथ्वी से अलग हो जाने वाला यह पदार्थ एक गोले के रूप में जम गया और चन्द्रमा बनकर अपनी रश्मियाँ कवियों और प्रेमियों के हृदय की शांति के लिए पृथ्वी पर बिखेरने लगा।

इस सिद्धान्त की परोक्ष पुष्टि सोवियत लूनिकों ने की जिन्होंने यह पता लगाया कि पृथ्वी की तरह चन्द्रमा में कोई चुम्बकीय क्षेत्र नहीं है। पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र उन विद्युतीय धाराओं से बना है जो हमारे ग्रह की तरल धातु की बनी हुई 'गुठली' में से होकर गुजरती हैं। चन्द्रमा का कोई चुम्बकीय क्षेत्र नहीं है जिससे पता चलता है कि उसकी 'गुठली' धातु की बनी हुई नहीं है। इसलिए यह कल्पना करना सम्भव है कि चन्द्रमा उस पदार्थ से बना जिससे किसी समय पृथ्वी की ऊपरी तहें बनी हुई थीं और किसी समय में यही पदार्थ प्रशान्त महासागर के विशाल गर्त में भरा हुआ था।

महासागर की आयु

आरम्भ में महासागरों के विशाल गर्त जल-विहीन थे। जैसे-जैसे युग बीते और पृथ्वी धीरे-धीरे ठंडी हुई, उसके खनिज पदार्थों से पानी रिस-रिसकर निकलने लगा। परन्तु इसकी ऊपरी पपड़ी अब भी बहुत गर्म थी अतः इस पानी की भाप बन गयी। फिर ऐसा समय आया जब वायुमण्डल काफी ठंडा हो गया और पानी की भाप से परिपूर्ण हो गया। प्रथम वर्षा आरम्भ हुई। हजारों वर्ष तक, शायद लाखों वर्ष तक लगातार वर्षा होती रही और महासागर, जो अभी तक काफी उथले थे पानी से भर गये। महासागरों की लचकीली तलियाँ पानी के बोझ से झुक गयीं और गहरी होती गयीं। उनकी तली में जो गाढ़ा तरल पदार्थ था वह बहकर बाहर महाद्वीपों की ओर आने लगा जिनका ताप अधिक ऊँचा था और पदार्थ इतना गाढ़ा नहीं था।

महासागरों की आयु के बारे में विशेषज्ञों में बहुत मतभेद है। कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि सभी महासागर लगभग एक ही समय पर बने। दूसरे विशेषज्ञों का कहना है कि प्रशान्त महासागर ही अकेला 'आदि' महासागर है। उनका कहना है कि किसी समय में अटलांटिक और भारतीय महासागर शुष्क भूखण्ड थे।

एक दूसरे सिद्धान्त के समर्थकों का कहना है कि महासागरीय गर्तों का कुल आयतन हमेशा एक ही रहता है, केवल 'महाद्वीपों के विचलन' के कारण, अर्थात् आधारभूत गाढ़े तरल पदार्थ पर तैरते हुए महाद्वीपों के हिलने-डुलने के कारण, उनका आकार और रूप बदलता रहता है। इस सिद्धान्त में यह कहा गया है कि प्रारम्भ में सारे महाद्वीप एक ही विशाल भूखण्ड के रूप में जुड़े हुए थे जो बाद में चलकर टूट गया और उसके अलग-अलग हिस्से तैर कर अलग-अलग चले गये। यह क्रम अब भी जारी है और इसका कारण है विभिन्न अक्षांशों पर गुरुत्वाकर्षण शक्ति का समान न होना और पृथ्वी की दैनिक परिक्रमा के फलस्वरूप चाप में उत्पन्न होने वाला अन्तर। इस सिद्धान्त के अनुसार दक्षिणी अमरीका अफ्रीका से और उत्तरी अमरीका यूरोप से टूटकर अलग हो गया।

नेपच्यून और प्लूटो

हमारे ग्रह का भू-रचना सम्बन्धी इतिहास नेपच्यून और प्लूटो के बीच निरंतर संघर्ष का इतिहास है, जो समुद्र और पाताल लोक के प्राचीन देवता माने जाते हैं। पृथ्वी पर शायद ही कोई स्थान ऐसा होगा जहाँ किसी समय में समुद्र की लहरें थपेड़े न मारती रही हों। हिमानी युग में, जब यूरोप, एशिया और अमरीका के उत्तरी भाग में बर्फ की एक किलोमीटर से अधिक मोटी तह जमी हुई थी, महासागरों में पानी कम था और लगभग ३०० मीटर की गहराई तक इनकी तली सूखी थी। जब ग्लेशियर पिघले तो महासागरों में पानी चढ़ने लगा और जमीन पर फैलने लगा। इस समय ध्रुव प्रदेशों में जो बर्फ है वह अगर पिघल जाय तो महासागर में पानी का स्तर बीस मीटर या इससे भी अधिक ऊँचा उठ जाय।

महासागरों के घटने-बढ़ने का एक और कारण पृथ्वी की ऊपरी पपड़ी के प्रदोलन हैं। उदाहरण के लिए इस समय मुर्मास्क के निकट समुद्रतट ऊपर उठ रहा है और हालैण्ड और डेनमार्क धीरे-धीरे नीचे धंसते जा रहे हैं।

बहुत समय नहीं हुआ महासागरों की तली अपेक्षतः अधिक सपाट समझी जाती थी, उसके उतार-चढ़ाव शुष्क भूखण्ड जैसे नहीं थे। वास्तव में महासागरों की तली का बहुत बड़ा भाग चौरस मैदानों का है जिनके ऊपर भूखण्ड से बह-बह कर समुद्र में जाने वाली मिट्टी की बनी हुई परतदार चट्टानों और मृत जीव-जन्तुओं के कठोर अवशेषों की चार-छः किलीमीटर मोटी तह है। परन्तु बाद

में चलकर इन चौरस मैदानों में पर्वत-मालाओं और अलग-अलग पर्वत-शिखरों का पता लगा।

महासागरों की तली में कुछ ऐसी भौमिकीय संरचनाएँ पायी जाती हैं जो भूखण्ड पर नहीं पायी जातीं, जैसे समुद्र के नीचे के गर्त जिनकी गहरायी सात से ग्यारह किलोमीटर तक है, जो पृथ्वी की पपड़ी में पड़ जाने वाली दरारें हैं जिनमें धीरे-धीरे बह-बहकर आने वाली चीजें एकत्र हो गयीं। यदि एवरेस्ट पर्वत को मारियानास नामक गर्त में डुबो दिया जाय तो उसकी चोटी दो किलोमीटर गहरे पानी के नीचे छिप जायेगी।

महासागरों की इन गहरी फर्शों के दोनों ओर महाद्वीपों की सीधी ढलानें हैं जो महासागरों के गर्तों के लिए प्राकृतिक दीवार का काम करती हैं। मछलियों के अधिकांश भाण्डार, जल के नीचे पाया जाने वाला तेल और खनिज भाण्डार इन्हीं ढलानों की अलमारियों में पाये जाते हैं।

पृथ्वी का जलाशय होने के अतिरिक्त महासागर उसके लिए ताप ऊर्जा का संचय तथा नियमन भी करते हैं। ऊष्मा कटिबन्धीय प्रदेशों में साल भर और समशीतोष्ण प्रदेशों में गर्मियों में महासागर बहुत बड़ी मात्रा में ताप ऊर्जा एकत्र कर लेते हैं। इसका कारण यह है कि पानी में ताप ऊर्जा शोषित करने की बहुत क्षमता होती है। एक घनमीटर पानी का ताप एक डिग्री घटने से जितनी ऊष्मा निकलती है वह ३,००० घनमीटर वायु का ताप एक डिग्री बढ़ा सकती है। गर्मियों में ताप ऊर्जा एकत्र कर लेते हैं और सर्दियों में जब गर्म करने का मौसम आता है तब वह इस गर्मी को चारों ओर के वायुमण्डल में विकीर्ण करते रहते हैं। यही कारण है कि महाद्वीपों के भीतरी भागों की अपेक्षा समुद्रतट के निकट के स्थानों का मौसम इतना विषम नहीं होता, गर्मियों में न बहुत ज्यादा गर्मी पड़ती है, न जाड़ों में बहुत सर्दी।

२. बुझे हुए ज्वालामुखियों की सम्पदा

वी० आई० स्मिर्नोव

हमारा ग्रह अथवा उसकी वाह्य परत में निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं और ये परिवर्तन भी एक से नहीं—कहीं कम और कहीं ज्यादा हो रहे हैं। पृथ्वी की परत में कुछ भाग अपेक्षाकृत स्थिर होते हैं, जिन्हें 'प्लेटफार्म' कहा जाता है और कुछ अपेक्षाकृत अधिक गतिशील होते हैं जिन्हें 'जिओसिंक्लाइन' कहते हैं। ये जिओसिंक्लाइन जिन्होंने पिछले भू-युग में प्लेटफार्मों को विभक्त कर रखा था, पृथ्वी पर संकरी अधोगामी खाई के समान थे जिनमें तलछट बहकर जमा हो गई। बाद में पृथ्वी की परत पर दबाव पड़ने, तह बन जाने या अन्य प्रक्रियाओं के कारण वहाँ पर्वत श्रृंखलाएँ उभर आईं। जिओ-सिंक्लाइनों के पर्वत श्रृंखलाओं में परिवर्तित हो जाने के साथ-साथ पृथ्वी की परत में गहरी दरारें पड़ गईं जिनसे पिघले हुए लावे को बहने का रास्ता मिला और ज्वालामुखियों का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया। यही कारण है कि पुराने और नवीन दोनों प्रकार के ज्वालामुखी पर्वत श्रृंखलाओं के साथ-साथ पाए जाते हैं।

किन्तु ज्वालामुखी के विस्फोट पृथ्वी की सतह पर कदाचित् ही होते हैं। ज्वालामुखियों के विस्फोट समुद्र की पेंदी में अनेक बार हुए हैं—विशेषकर पिछले भू-युग में। जिओसिंक्लाइन वाले समुद्रों के उफनते हुए गड्ढों में पृथ्वी की परत में पड़ी-हुई दरारों में गुँथे सागरान्तर्वर्ती ज्वालामुखियों की श्रृंखलाओं के अतिरिक्त समुद्र की पेंदी में जल धाराओं द्वारा छान और समेट कर लाये हुए ठोस लावा तथा ज्वालामुखी की राख की बड़ी-बड़ी तहें जमा हो गईं। बाद में पहाड़ बनने के कारण वे समुद्र की पेंदी में से उठकर ऊपरी सतह पर आ गईं और हमें उनका अध्ययन करने का अवसर मिला।

पुराने और बहुत पहले बुझे हुए इन ज्वाला-मुखियों की हलचल से बनी चीजों की इन तहों के

भूतत्व सम्बन्धी अध्ययन से पता चलता है कि उनमें प्राय: खनिज द्रव्यों की भारी मात्रा होती है। सोवियत संघ तथा विश्व के अन्य भूभागों में, जहाँ पुरानी ज्वालामुखी चट्टानें पाई जाती हैं सोना, चाँदी, टिन, बिस्मथ, पारा, सुरमा तथा ताँबे की कच्ची धातु बहुतायत से पाई जाती है।

अकादमीशियन जावारित्स्की की कल्पना

अभी हाल तक अधिकांश भूतत्ववेत्ता यह समझते थे कि बुझे हुए ज्वालामुखियों में, पृथ्वी के अन्दर काफी गहराई में पड़ी दरारों में खनिज द्रव्यों से भरपूर गरम पानी तथा अत्यधिक नीचे पड़े हुए ग्रेनाइट के लावा में से, जो ऊपर नहीं आ पाते, उठते हुए वाष्पों के प्रवाह से उत्पन्न प्राकृतिक सम्पदा का निर्माण काफी बाद में हुआ है। वे ज्वालामुखी से बनी हुई और ऊपर आई हुई चट्टानों को केवल एक अनपेक्षित भूतत्व सृष्टि समझते रहे हैं जिसने अपने अन्दर ऐसे बहुमल्य पदार्थ छिपा रखे हैं जो उनकी अपनी कृति नहीं हैं। उनके मतानुसार बहुमूल्य खनिजों की ये तहें इस प्रकार से बने विशिष्ट भूखण्डों के बाहर अन्य प्रकार से बनी पर्वतशिलाओं में भी आसानी से पायी जा सकती हैं।

यूराल पर्वतमाला के पूर्वी ढलान के साथ-साथ २००० किलोमीटर से अधिक दूरी तक कुछ-कुछ हरे रंग की आदिम भू-युग की ज्वालामुखी चट्टानें चली गई हैं। इस शृंखला के साथ-साथ ताँबे की कच्ची धातु बहुतायत से पायी जाती है। सोवियत संघ के भूतत्ववेत्ता अकादमीशियन जावारित्स्की ने कच्ची धातु की परीक्षा करके ज्वालामुखी-शिलाओं तथा उनमें पाए जाने वाली ताँबे की भूतत्व सम्बन्धी आयु में काफी समानता पाई। इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि वे एक साथ बनी हैं और अध्ययन करने के बाद वह यह सिद्ध कर सके कि पुराना लावा और ताँबे की तहें एक ही युग में बनी हैं और ताँबे की धातु ज्वालामुखी की हलचल के फलस्वरूप बनी हैं। इस प्रकार यूराल की ताँबे की खानों के ज्वालामुखी के कारण बनने की जावारित्स्की की कल्पना सामने आई। यह कल्पना ज्वालामुखी के क्षेत्रों में धातुओं की तह बनने के बारे में क्या कहती है?

इस प्रक्रिया को चित्रित करने के लिये ज्वालामुखी के विकास के मुख्य-मुख्य अवस्थाओं को समझने की आवश्यकता है। प्रारम्भ में एक मुँह बन जाता है और उसमें से राख के साथ लावा निकलना प्रारम्भ होता है। ज्वालामुखी का विकसित रूप ठोस लावा से बने एक पहाड़ का होता है जिसका कुछ हिस्सा ज्वालामुखी राख से ढका होता है और ऊपर के हिस्से में पिघले लावा से भरा मुँह होता है। तब ज्वालामुखी शनैः शनैः बूढ़ा हो चलता है और उसके यौवन की हलचल निःशेष होकर उसके शिखर में से उठते हुए धुँए के सिर्फ मन्द, सुस्त व समाप्तप्राय बादल ही बच जाते हैं। यही वह समय है जब ज्वालामुखी की विनाशक हलचलों के स्थान पर उसके अन्तरतम में चुपचाप किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण रचनात्मक हलचल प्रारम्भ हो जाती है।

ज्वालामुखी से लावा तथा राख के विनाशक विस्फोट पृथ्वी के अन्दर काफी गहराई में जमा हुए बहुत गरम पानी के वाष्प तथा अन्य गैसों के अत्यधिक दबाव के कारण होते हैं।

गैसों का भारी जमाव जो पहली अवस्था में लावा तथा राख के चश्मे उगलने वाली दानवी शक्ति के रूप में प्रकट होता है बाद में मन्द पड़ जाता है और ये गैसें कड़ी पड़ गई चट्टानों की दरारों व छिद्रों में से फुसफुसाकर निकलती रहती हैं। इस प्रक्रिया में जल वाष्प बन जाता है और धरती के पानी से मिलकर गरम खनिज सोतों के रूप में फूट पड़ते हैं। ये गरम ज्वालामुखी पानी और वाष्प धातुओं के मिश्रणों समेत अनेक रासायनिक मिश्रणों को ज्वालामुखी के पेंदे में से ऊपर ले जाते हैं।

इस प्रकार ज्वालामुखी के पेंदे में से ऊपर लाई हुई धातुओं की मात्रा बहुत अधिक होती है। उदाहरणार्थ सेवेनी चिरिप जैसी छोटी नदी जिसमें (क्यूराइल में इतुरूप द्वीप पर स्थित) बोगदान रुमेलनिस्त्की ज्वालामुखी से उत्पन्न खनिज द्रव्यों से मिश्रित पानी बहकर आता है, ओखोत्स्क समुद्र में प्रति वर्ष १३००० टन से अधिक लोहा तथा २०००० टन से अधिक एल्यूमीनियम उंडेलती हैं। अलास्का की 'टैन थाउजेण्ड स्मोक्स' की घाटी में जो चश्मे १९१२ में कातमाई ज्वालामुखी के शक्तिशाली विस्फोट समाप्त हो चुकने पर फूटे वे १० लाख टन से अधिक नमक का तेजाब और करीब ढाई लाख टन हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल जमीन में से लाते हैं जिनमें लोहा व अन्य धातुएँ मिली होती हैं।

ज्वालामुखी की गैसों और जलीय द्रव्यों द्वारा ऊपर लाये जाने वाले कुछ रासायनिक मिश्रण बुझते हुए ज्वालामुखियों के भीतर के भागों में उनके ऊपर आने के मार्ग के साथ-साथ एकत्र हो जाते हैं और कुछ ऊपर आकर समुद्र में चले जाते हैं और वहाँ उसके पेंदे में बैठ जाते हैं। अलौह धातुओं तथा अन्य दुर्लभ व बहुमूल्य धातुओं की तहें अब इसी भाँति बन रही हैं और ज्वालामुखी की हलचलों के बहुत पहले के भूतत्व-युग में भी इसी प्रकार बनती रही हैं।

ज्वालामुखियों से बनी हुई इस प्रकार की तहें बहुत से देशों में पाई जाती हैं। इनमें विशेष उल्लेखनीय तथा अपेक्षाकृत आधुनिक भूतत्व काल की खनिज धातुएं कामचटका तथा चुकोटका प्रायद्वीपों में, हिमालय में, पामीर के पठार, काकेशस तथा कार्पेथियन की पहाड़ियों में और अमरीका (कार्डिलैरा) में तथा विशेष रूप से लातिन अमरीका में पाई गई हैं।

खनिज द्रव्यों के उद्‌गम ज्वालामुखी हैं—इस विचारधारा ने ज्वालामुखियों से बनी पुरानी चट्टानों में कच्ची धातु की खोज के हेतु भूतत्व सम्बन्धी अन्वेषण के लिए एक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है। भूतत्ववेत्ता अपने नकशों पर पुराने ज्वालामुखियों से उत्पन्न लावा के वितरण का खाका तैयार कर लेते हैं और तब लावा की ठोस धाराओं की आपेक्षिक स्थिति का अंकन करते हुए कि वे किस दिशा में प्रवाहित हुईं और कहाँ लावा-चट्टानों के स्थान पर राख के विशाल ढेर हैं, वे सुदूर अतीत में हुई ज्वालामुखी की गतिविधि के केन्द्र का पता लगा लेते हैं। इस केन्द्र के आसपास के स्थानों में कच्ची धातु के मिलने की बहुत अधिक सम्भावना होती है।

विभिन्न भूतत्व-युगों में एकत्र हुए लावे के इतिहास से अनेक ज्वालामुखी चक्रों का पता चलता है। प्रत्येक चक्र में ज्वालामुखी के फूट पड़ने और उसके बुझ जाने के काल सम्मिलित होते हैं। जब किसी स्थान पर एक चक्र के ज्वालामुखी बुझ जाते हैं तो उसी स्थान पर दूसरे चक्र के ज्वालामुखी फूट सकते हैं। ज्वालामुखी की इस हलचल के पुनः अभ्युदय से विविध चक्रों में बने लावा के जटिल मिश्रण की धाराएँ बहने लगती हैं। ज्वालामुखी की हलचल से उत्पन्न खनिज चूंकि मुख्यतः उस हलचल की समाप्ति कर पर बनते हैं इसलिए भूतत्ववेत्ता के लिए पुरानी चट्टानों का विविध ज्वालामुखी चक्रों के अनुसार वर्गीकरण करना बहुत महत्व रखता है। विशाल तहों के अध्ययन से जो प्रायः ३ से ५ किलोमीटर मोटी होती हैं वह विभिन्न ज्वालामुखी चक्रों की चट्टानों को समझ पाता है जिनके ऊपरी हिस्सों में प्रायः कच्ची धातु की तहें एकत्र रहती हैं।

३. भूमि सुरक्षा

गहरी वर्षा, बाढ़, तेज हवा और समुद्र की तरंगों से उपजाऊ जमीन बराबर कटती और क्षरती रहती है। मनुष्य भी अपनी नासमझी से इस नाश

कार्य में योग देता है, जैसे पेड़ों की अंधाधुंध कटाई, अत्यधिक चराई, पानी की निकासी का प्रबन्ध न करना और जमीन का गलत इस्तेमाल । इसके फलस्वरूप प्रतिवर्ष हजारों एकड़ जमीन बेकार हो जाती है ।

देश की कुछ जमीन का लगभग २५ प्रतिशत भाग ऐसा है, जिसका कटाव से बचाव अत्यंत जरूरी है। विशेषज्ञों की राय में, लगभग २० करोड़ एकड़ जमीन की हवा और पानी के क्षरण और कटाव से रक्षा करनी है ।

वर्षा के पानी से जमीन की उपजाऊ सतह बह जाती है, इससे उसका उपजाऊपन घटता जाता है और कुछ भाग तो बिलकुल बंजर हो जाता है ।

समुद्र की लहरें भी किनारे को काट कर बहा ले जाती हैं । केरल में समुद्र के किनारे की जमीन कटती रहती है । पश्चिमी घाट की पहाड़ियों और समुद्र के बीच ४५०० वर्ग मील चिकनी उपजाऊ जमीन है, जिसे लहरों से सदैव खतरा है । रेगिस्तान में रेत का उड़ना रोकना भी बहुत जरूरी है ।

भू-क्षरण की रोकथाम

जमीन का क्षरण रोकने के लगातार उपाय किए जा रहे हैं । उपजाऊ जमीन को बचाने और कटी जमीन को खेती योग्य बनाने के ठोस प्रयास किए जा रहे हैं ।

पहली योजना में जमीन के बचाव के कामों में ३ करोड़ २५ लाख रु० खर्च हुआ । इसमें खेतों की मेड़बंदी या कंटूर का काम मुख्य रूप से किया गया । तृतीय योजना में जमीन के बचाव पर ७० करोड़ रु० खर्च करने का कार्यक्रम है

इसमें मेंड़ें बांधने के अलावा, पेड़ और बन लगाने, अनुसंधान, ट्रेनिंग और भूमि की पड़ताल पर जोर दिया जाएगा । इसके अतिरिक्त वरानी खेती, गोचर या चराई का प्रबन्ध, बीहड़ों को खेती योग्य बनाने और खारी व लोनी भूमि को सुधारने का काम भी किया जायगा ।

तीसरी योजना में २ करोड़ १६ लाख एकड़ जमीन के संरक्षण का का कार्यक्रम है । इसके अलावा २ करोड़ ८१ लाख ६० हजार एकड़ भूमि की पड़ताल और ३०० अधिकारियों और कृषि विस्तार कर्मचारियों को ट्रेनिंग दी जायगी ।

यद्यपि भू-संरक्षण का काम राज्य सरकारों के जिम्मे है, तथापि केन्द्रीय भू-संरक्षण मण्डल पूरे देश में भूमि की पड़ताल, उपायों के अनुसंधान और कर्मचारियों को ट्रेनिंग देने का काम करता है ।

दूसरी योजना के अंत तक १ करोड़ २५ लाख एकड़ भूमि की पड़ताल पूरी हो चुकी है। क्षरण के कारणों की जाँच करने और भू-संरक्षण के तरीके निकालने के लिए देहरादून, चण्डीगढ़, उदकमण्डलम्, कोटा, आगरा, बसाद, बेलारी और चतरा में अनुसंधान और प्रदर्शन केन्द्र स्थापित किए गये हैं। इनके अलावा जोधपुर में केन्द्रीय मरु-अनुसंधानशाला खोली गयी है ।

दूसरी योजना में विभिन्न राज्यों में २२ लाख ७० हजार एकड़ जमीन की रक्षा करके उसे खेती योग्य बनाया गया है। रेगिस्तानी क्षेत्र में बन लगाकर और घास उपजाकर रेतीली मिट्टी को उड़ने से बचाया गया है ।

तीसरी योजना के कार्यक्रम

तीसरी योजना में ७५ लाख से १ करोड़ एकड़ भूमि की मेड़बंदी का कार्यक्रम है । इस पर ४ करोड़ रु० खर्च होंगे । लगभग ७ लाख एकड़ जमीन में बन और घास लगाई जाएगी। २ करोड़ २० लाख एकड़ जमीन में बरानी की जाएगी। नदियों के किनारे के बीहड़ों में भी बन लगाया जाएगा ।

खारी और लोनी जमीन को खेती योग्य बनाकर उन पर अनाज की खेती की जाएगी । लगभग

४ लाख ३० हज़ार एकड़ जमीन को सुधारने में ७ करोड़ रु० व्यय होने का अनुमान है।

आशा है कि १९६६ तक देश की जमीन और विभिन्न प्रकार की मिट्टी की पड़ताल व वर्गीकरण हो जाएगा।

जलागम क्षेत्र में भू-संरक्षण

देश की नदी घाटी योजनाओं के जलागम क्षेत्र में संरक्षण का विशेष कार्यक्रम बनाया गया है जिससे जलाशयों के पेटों में मिट्टी न भरे। इससे सिंचाई, बिजली बनाने और बाढ़ रोकने में सहायता मिलेगी। तीसरी योजना में इस काम पर केन्द्रीय सरकार ११ करोड़ रु० खर्च करेगी।

समुद्री कटाव और लोनापन

प्रायः से जून और जुलाई के महीने में बरसात के दिनों में अरब सागर की तेज लहरों का टकराव बढ़ जाता है जिससे समुद्र के किनारे की जमीन में पानी लग जाता है और वह दलदल हो जाती है। केरल में ऐसा बहुत होता है। बरसात के बाद, जो पानी बच जाता है उसके लोनेपन से फसलों और बागों को बड़ा नुकसान होता है।

केरल में समुद्री कटाव रोकने के लिये दीवारें बनाने का कार्यक्रम है। जिस उत्साह और तेजी से यह काम हो रहा है, उससे अनुमान है कि समुद्र से केरल की जमीन की रक्षा की जा सकेगी।

गुजरात, महाराष्ट्र और पश्चिमी बंगाल में भी कार्य शुरू करने का विचार है।

पंजाब में पानी की निकासी और सेम रोकने की बड़ी योजना बनायी गई है। पंजाब में ७० लाख ७० हजार एकड़ जमीन में सिंचाई की अधिकता के कारण पानी लग जाता है।

हवा और पानी से जमीन का क्षरण रोकने के लिए निरंतर संघर्ष जारी रखना है।

४. लेनिनग्राद के रसायनवेत्ताओं की नवीन सफलताएं

उच्च अणु यौगिकों का लेनिनग्राद इंस्टीच्यूट एक सबसे महत्वपूर्ण सोवियत वैज्ञानिक केन्द्र है, जहाँ के कर्मचारी उच्च अणु यौगिकों के क्षेत्र में नये पथ-प्रशस्त कर रहे हैं। विज्ञान अकादमी के करेस्पांडिग सदस्य सर्गेई उशाकोव, जो वहाँ की एक प्रयोगशाला के प्रधान हैं, सोवियत प्लास्टिक उद्योग के एक संस्थापक और उच्च अणु यौगिकों के सर्वप्रथम सोवियत विषज्ञों में से हैं।

एल्कोहल (स्प्रिट) से कपड़ा

उशाकोव प्रयोगशाला की एक सबसे रोचक सफलता है पालीविनील एल्कोहल से विनोल नामक रासायनिक धागे का उत्पादन।

विनोल के बने हुए कपड़े सूती और ऊनी कपड़े से कई गुने दृढ़ होते हैं और कैप्रोन तथा नाइलौन से भी ज्यादा मजबूत होते हैं। उनमें पानी को सोखने की बहुत क्षमता है और वे ३०% तक नमी सोख सकते हैं। इसलिए इस कपड़े के बने हुए वस्त्र स्वास्थ्य और सफाई की दृष्टि से कैप्रोन अथवा नाइलौन की अपेक्षा अधिक अच्छे होते हैं। विनोल का बना हुआ कपड़ा सिकुड़ता नहीं। इस कपड़े पर इस्त्री भी की जा सकती है क्योंकि यह २२०° सेंटीग्रेड तक का ताप सहन कर सकता है। विनोल का बना हुआ कपड़ा सूती कपड़े से मंहगा भी नहीं होगा। इसे आसानी से बड़े पैमाने पर कारखानों में तैयार किया जा सकेगा, क्योंकि इसके लिए आवश्यक पदार्थ प्राकृतिक गैस है।

विनोल तैयार करने का काम बहुलीकृत प्लास्टिक के रिसर्च इंस्टीच्यूट और रासायनिक विधियों से धागा तैयार करने वाले एक कारखाने के सहयोग से किया गया, जहाँ प्रतिवर्ष १५० टन विनोल तैयार करने का एक छोटा सा कारखाना बनाया गया है।

कार्बोक्सीलेट रासायनिक रबड़

इस इंस्टीच्यूट ने एक और महत्वपूर्ण काम किया है। इंस्टीच्यूट की उस प्रयोगशाला में जिसके संचालक अकादमी के करेस्पांडिंग सदस्य बोरिस दोलगेप्लोस्क हैं, अब रासायनिक विधि से कार्बोक्सीलेट रबड़ तैयार किया गया है। इस प्रकार के रबड़ को गंधक के बिना मैंगनीसियम, जिंक या कैलसियम ऑक्साइड की सहायता से वल्कनाइज किया जा सकता है (गंधक से वल्कनाइज करने में यह भय रहता है कि बहुत देर तक उच्च ताप के प्रभाव में रखने से रबड़ की नम्यता नष्ट न हो जाय)। इस नयी विधि से जो रबड़ तैयार किया जाता है वह अधिक मजबूत होता है और इसके अतिरिक्त नम्य भी बहुत होता है।

कार्बोक्सीलेट रबड़ तैयार करने की प्रायोगिकीय विधि का पता लगाने और उसके गुणों का अध्ययन करने का काम प्रयोगशाला के कर्मचारियों के साथ मिलकर रासायनिक रबड़ के अखिल संघ रिसर्च इंस्टीच्यूट में किया गया। इस नये प्रकार के रबड़ के बने हुए टायरों को सड़क पर चलाकर उनकी उपयोगिता सिद्ध की जा चुकी है।

औषधियाँ

प्रोफेसर गियोर्गी सैमसनोव की प्रयोगशाला में अध्ययन विनिमय विधि के अनुसार सोवियत संघ में तैयार की गयी नयी प्रकार की राल (रेजिन) की सहायता से विभिन्न जैव यौगिकों को अलग करने तथा उनको शोध करने की विधियों का अध्ययन करने का काम हो रहा है।

भिन्न अणु-भारों वाले पदार्थों को पृथक करने के लिए एक नयी विधि का पता लगाया गया है और औषधि उद्योग में उसका उपयोग किया जा रहा है।

फलस्वरूप सोवियत संघ की बनी हुई औषधियों को आसानी से पहचानना सम्भव हो गया है क्योंकि वे विदेशों की बनी हुई ऐसी ही औषधियों से अधिक शुद्ध होती हैं। एक नयी जीवाणु-नाशक औषधि भी तैयार की गयी है जो बच्चों के संक्रामक रोगों का इलाज करने में विशेष रूप से कारगर सिद्ध हुई है। इसके अतिरिक्त टेट्रासाइक्लीन जाति की और भी कई जीवाणु-नाशक औषधियाँ तैयार की गयी हैं।

विज्ञान वार्ता

१. चमड़ा जोड़ने का सरेस

मद्रास की केन्द्रीय चमड़ा अनुसंधान संस्था में चमड़ा जोड़ने का सरेस या गोंद बनाया गया है। यह चैप रबर लेटेक्स से बनाया गया है, इसे लेटेक्स सीमेंट कहते हैं। देश में चमड़े का सरेस बहुत कम मात्रा में बनता है और मँगाये गये सरेस बहुत मंहगे पड़ते हैं।

यह विधि इस प्रकार है: पेड़ों से निकलने वाले रबड़ को कैसीन के घोल में मिलाकर अमोनिया-युक्त पानी में घोला जाता है। इसमें फॉरमैलिन और एक रंग भी मिलाया जाता है। सरकारी जूता केन्द्र और मद्रास के जूता केन्द्र का कहना है कि जूते बनाने में इस चैप ने सन्तोषजनक काम किया।

इस चैप के बनाने में जो कच्चा सामान लगता है—रबड़ और केसीन, अमोनिया, फॉरमैलिन और रंग—देश में आसानी से मिल जाता है। इस विधि में कुछ बर्तनों और एक भट्टी की आवश्यकता पड़ती है। प्रति दिन ३० गैलन चैप बनाने का कारखाना लगाने पर लगभग २५ हजार रु० खर्च होंगे। १० हजार रु० की लागत से प्रतिदिन १० गैलन चेप बनाने वाला कारखाना खोला जा सकता है।

२. रेंडी के तेल से वार्निश

हैदराबाद की क्षेत्रीय अनुसंधान संस्थाओं में रोसिन मिश्रित रेंडी का जमा हुआ तेल बनाने की विधि निकाली गयी है। इस तेल से अच्छी किस्म की वार्निश बनती है, जो जल्दी सूख जाती है।

इस विधि से रोसिन (तारपीन की राल) मिले रेंडी के तेल को गरम करके जमाया जाता है। इस जमे हुए तेल में मैलेइक एनहाइड्राइड मिलाया जाता है और फिर गरम किया जाता है। इसमें ग्लीसरॉल मिलाकर एक नियत ताप पर इसे गरम किया जाता है ताकि ऐल्कोहल पर अम्ल की क्रिया पूरी हो जाए। इस पदार्थ में जो हाइड्रॉक्सिल रह जाते हैं, उन्हें अनार्द्र सोडियम बाइसल्फेट द्वारा गरम किया जाता है।

इस विधि में अनेक क्रियाएँ होती हैं, जैसे ऐल्कोहल पर अम्ल की क्रिया, हाइड्रॉक्सिल पदार्थ का डीहाइड्रॉक्सिल होना और विभिन्न अणुओं का सम्मिश्रण। इस विधि द्वारा रेंडी के जमे हुए तेल में सब गुण आ जाते हैं, जो अच्छे वार्निश में होने चाहिएं। यह पदार्थ यशद के ऑक्साइड, सीसे के सलफेट और सीसे से खराब भी नहीं होता।

३. सेलखरी से नमी को सोखने वाला पदार्थ

सेलखरी (जिप्सम) से नमी सोखने वाला ऐसा पदार्थ—अनार्द्र कैलसियम सल्फेट—बनाया जा सकता है, जो सस्ता, खरोच न डालने वाला और अविषैला होता हो। यह पदार्थ हैदराबाद की क्षेत्रीय अनुसंधान संस्था में बनाया गया है।

यह पदार्थ बार-बार काम में आता है। यह औद्योगिक गैस, कार्बनिक द्रवों और पैकिंग के औजारों तथा मशीनों के पुर्जे सुखाने के काम आ सकता है।

प्रति दिन आधा टन शोषक पदार्थ बनाने वाले कारखाने में, १ रु० ३ न०पै० प्रति किलोग्राम और

साधारण दर पर ५३ न० पै० किलो० लागत आएगी।

अनार्द्र कैलसियम सल्फेट १०० सेंटीग्रेड तक के ताप में नमी सोख सकता है, इसके आकार तथा बनावट में कोई अन्तर नहीं आता। उद्योग और अनुसंधान में इसका प्रयोग किया जा सकता है।

४. बॉक्साइट की अग्नि ईंट

कलकत्ते की काँच और मिट्टी अनुसंधान संस्था में परीक्षा से पता चला कि है कि कारखानों की भट्टियों की ईंट या स्तर केवल ऑक्साइड से बन सकता है। यह पदार्थ कटनी और शेवराय के बॉक्साइट को १,५०० सेंटीग्रेड से अधिक ताप पर जलाकर बनता है। इससे भट्टी बनाते समय १.६०० सेंटीग्रेड से अधिक ताप होना चाहिए।

५. टीन-तांबे का मिश्रण

बंगलौर की भारतीय विज्ञान संस्था में पाइरो-फॉस्फेट घोल में टीन और तांबे का मिश्रण तैयार किया गया, जो धातुओं पर चढ़ाया जा सकता है। इस मिश्रण की तह बड़ी चिकनी, सुन्दर और टिकाऊ होती है। यह भी विषैला नहीं होता। यह कलई, स्टेन्नेट-साइनाइड कलई से अच्छी होती है, जो आज-कल प्रयोग में आती है।

६. आम की लकड़ी से कागज

वन अनुसंधान संस्था, देहरादून में सल्फेट की विधि से आम की लकड़ी से, बिना विरंजित (साफ) की हुई ४८ प्रतिशत और साफ की हुई ४२ प्रतिशत रासायनिक लुगदी बनायी गयी है। इस लुगदी को व स की साफ की हुई लुगदी से ५० या ७० प्रतिशत अनुपात से मिलाकर बढ़िया प्रकार का कागज बनाया जा सकता है, जो लिखने या छपाई के काम आ सकता है। आम के पेड़ देश में सब जगह होते हैं।

७. हवा का भण्डार

दबी हुई हवा को स्टोर करने के एक यंत्र का डिजाइन तैयार किया गया है, जो तेज उड़ान सम्बन्धी वैज्ञानिक अध्ययन में काम आता है। यह डिजाइन बंगलौर की राष्ट्रीय विमान अनुसंधानशाला में तैयार किया गया है।

इस यंत्र में १२ फुट के व्यास के चार सिलैण्डर (बेलन) लगे हैं। ये सिलैण्डर १ इंच मोटी नर्म इस्पात की चादर से बनाए गए हैं। यह यंत्र २२५ फुट लम्बा है और इसकी क्षमता १ लाख फुट है।

८. कोयले के धोवन से गंधक

बम्बई विश्वविद्यालय में कोयले के धोवन से गंधक निकाली गयी है। आजकल उद्योगों में गंधक की मांग बढ़ रही है, और इसे पूरा करने के लिए देश में सस्ती गंधक बनाना जरूरी है।

उक्त पड़ताल में पता चला कि नौरोजाबाद में कोयला धुलाई कारखाने की कोयले के धोवन में एक पदार्थ मिला, जिसमें ४३% से भी अधिक गन्धक थी। इसमें से ९५.५% गन्धक निकाली जा सकी।

९. गन्ना छेदने वाली सुई

गन्ना छेदने के लिए एक अच्छी किस्म की सुई बनाई गई है। यह देखने के लिए कि गन्ना पका या नहीं और इसमें शर्करा की कितनी मात्रा है, गन्ने में सुई चुभोकर रस निकाला जाता है।

इस नए यंत्र में अच्छी सुई और काँच की नली लगी हुई है, जिसमें रस भरा जा सकता है। इस पर धातु की खोर और एक हत्था भी होता है। यह यंत्र निष्कलंक इस्पात का बना होता है। इस यंत्र में रस भाप बनकर नहीं उड़ पाता।

१०. तेलों से प्लास्टीसाइजर

दिल्ली की श्रीराम औद्योगिक अनुसंधान संस्था में वनस्पति तेलों और चरबी युक्त अम्लों से प्लास्टी-साइजर बनाने के परीक्षण हो रहे हैं। यह पदार्थ पोलीविनाइल क्लोराइड रेजिन में प्रयोग होता है।

अभी तो वनस्पति तेलों से मोनोग्लीसराइड और उत्प्रेरक से ग्लीसरीन बनाने की विधि निकाली गयी है। इस विधि से ८०-९०% शुद्ध मोनोग्लीसराइड बनता है, जिसमें दुर्गन्ध भी नहीं होती।

११. एक वर्ष में धान की तीन फसलें

काठगोडा गाँव के हरिजन किसान श्री बीरो नायक ने एक ही खेत में एक साल में धान की तीन फसलें पैदा कीं। इसके फलस्वरूप न केवल पड़ोसी गाँवों के किसान बल्कि गाँव पंचायतों के सदस्य धान के बीज मांगने श्री नायक के पास आते हैं। काठ-गोड़ा गांव भुवनेश्वर है ६० मील दूर सिल्लीकोट विकास खण्ड के केसपुर ग्राम पंचायत में है।

जब कोई यात्री भुवनेश्वर के खल्ली कोट की ओर जाता है, तो उसकी दृष्टि सड़क के किनारे एक तख्ते पर पड़ती है, जिस पर श्री नायक की सफलता का वर्णन है।

श्री नायक एक साधारण भारतीय किसान हैं। उनकी आयु ४९ वर्ष है। उनके परिवार में ५ प्राणी हैं। वे कर्ज के बोझ से दबे थे। वे अधिक से अधिक फसल उपजाकर अपना ऋण चुकाना चाहते थे। उन्होंने खण्ड विस्तार अधिकारी (कृषि) से उपज बढ़ाने के बारे में सलाह ली। उन्हें पता चला कि बरहामपुर कृषि अनुसंधान केन्द्र में एन-१३६ धान का बीज तैयार किया गया है, जो बहुत जल्दी पकता है पर श्री नायक को संदेह था, इसलिए इस बीज को बोने में हिचकिचाते रहे।

कृषि विस्तार अधिकारी ने जब २०० रु० की बाजी लगायी तो श्री नायक का साहस बंधा और उन्होंने १० सेर बीज लिया। उन्होंने १५ मई, १९६० को बीज डाला। १ जून, १९६० को आधे एकड़ खेत में जापानी तरीके से धान के पौधे रोपे गये। सितम्बर १९६० तक फसल तैयार हो गयी और १२ मन धान पैदा हुआ।

इसके बाद इसी खेत में स्थानीय 'नवाबी' किस्म (बी-एन-६) का धान बोया गया, जो दिसम्बर १९६० में काटा गया। इसके बाद फिर इसी खेत में एन-१३६ धान रोपा गया, जो मार्च-अप्रैल तक तैयार हो जाएगा।

तीसरी बार खेत में काफी हरी खाद और अमोनिया सल्फेट डाली गयी और पानी की भराई की गई।

१२. आकाशगंगा का केन्द्र

आकाशगंगा के केन्द्र में शीतल ब्रह्माण्ड धूल के ऐसे विशालकाय बादल हैं जिनके कारण केन्द्र प्रायः अदृश्य बना हुआ है। १९४८ और १९४९ में सोवियत वैज्ञानिक कालिन्याक, वी० आई० क्रासोव्स्की और वी० वी० निकोनोव ने इन्फ्रारेड प्रविधियों के सहारे उस क्षेत्र में एक बड़ा तारकीय बादल देखा, किन्तु कोई निश्चित परिणाम न निकाला जा सका, क्योंकि धूल के घने आवरण में से कुछ स्पष्ट देखना कठिन था।

इसके बाद पुल्कोवो की केन्द्रीय ज्योतिर्विज्ञान वेधशाला में विश्व के सबसे बड़े रेडियो दूरवीक्षण यंत्र का निर्माण हुआ। यह यंत्र एक सेण्टीमीटर लम्बी रेडियो-तरंगों की सीमा में काम करता है। इस दूरवीक्षण यंत्र ने आकाशगंगा के केन्द्र का अधिक स्पष्ट दर्शन सम्भव बना दिया है।

कुछ मास पूर्व युवा वैज्ञानिक वाई० एन० पारीस्की ने नये रेडियो दूरवीक्षण यंत्र की एक अदृश्य किरण आकाशगंगा के अस्पष्ट केन्द्र की तरफ भेजी। जब दूरवीक्षण यंत्र के "चाकू" ने सर्जन के चाकू की तरह ब्रह्माण्ड धूल की मोटी तह को काटा तो आकाशगंगा के ठीक केन्द्र में एक छोटी सी सघन न्यष्टि दिखाई पड़ी जो उष्ण अयनीभूत गैसों से बनी है। यह आकार में आकाशगंगा के ४०००वें भाग के बराबर है, किन्तु तो भी यह इतनी विशाल है कि प्रकाश इसमें से होकर लगभग २० वर्ष में ही गुजर सकता है। यह क्षेत्र इतना है कि इसमें सूर्य तथा उसके निकटवर्ती तारों का समूचा क्षेत्र समा सकता है।

पारीस्की ने हिसाब लगाया है कि इस बादल में केवल हाइड्रोजन के अयनीभूत परमाणुओं की ही संहति १० हजार सूर्यों की संहति के समान है और इसमें उदासीन परमाणुओं तथा बहुसंख्यक तारों की संहति की गणना नहीं है।

न्यष्टि सब तरफ से इलेक्ट्रानों के आवरण से ढकी है जो प्रकाश के समकक्ष वेग से शक्तिशाली चुम्बकीय नीहारिका क्षेत्रों के आलिंगन पाश में आबद्ध होकर नाच रहे हैं। वे रेडियो तरंगें और प्रकाश भी छोड़ते हैं।

१३. पृथ्वी के नीचे की उष्मा का उपयोग

सोवियत संघ में प्राकृतिक गरम पानी और वाष्प के विपुल भाण्डारों से जितनी ताप ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है, उसकी तुलना देश के कोयला, तेल, गैस, पीट जैसे ईंधन-भाण्डारों से की जा सकती है।

कामचटका और कुराइल द्वीप में जो गरम सोते पृथ्वी की सतह पर आते हैं, उनके नीचे पृथ्वी के नीचे की उष्मा के समृद्ध भाण्डार हैं। कामचटका प्रायद्वीप के दक्षिणी भाग में पाउगेत्का नदी की वादी में भूगर्भीय ऊष्मा का १२ हजार किलोवाट का पहला विजलीघर सोवियत संघ में बन रहा है। यहाँ ३००-५०० मीटर की गहराई में गरम पानी और वाष्प के सोते हैं जिनकी मात्रा भी बहुत है तथा चाप भी बहुत है। एक ही सोतेको चालू करने से दो तीन हजार किलोवाट बिजली मिल सकती है।

इन ऊर्जा-स्रोतों के पास बिजलीघर बनाना सस्ता भी पड़ेगा। यहाँ न ईंधन की आवश्यकता है और न ब्वायलरघर, भाण्डारघर या रेलवे लाइन की। स्टेशन का स्वयं-चालित रूप में नियंत्रण सम्भव है।

चुकोत्स्क राष्ट्रीय प्रदेश, पश्चिमी साइबेरिया के मगादान क्षेत्र के ओखोत्स्क सागर तट और उत्तरी यूराल क्षेत्र में जो धरती की चिर तुषार परत की श्रंखला में पड़ते हैं, गरम पानी और वाष्प के समृद्ध भाण्डार हैं। जब इन शक्ति-स्रोतों का ठीक से दोहन होने लगेगा, तब इन विस्तृत प्रदेशों में भूगर्भीय ताप-विद्युत् स्टेशन खड़े हो जाएँगे।

देश के यूरोपीय भाग में भी बड़े-बड़े भाण्डार हैं। उफा के पास ९०-१०० मीटर की गहराई में ३६ सेण्टीग्रेड ताप की गरम गैस और वाष्प का पता चला है। काकेशिया के इलाके में सबसे अधिक सम्भावनाओं से युक्त स्रोतों का पता चला है। अधिकांशतः वे उच्च चाप और उच्च ताप (२७० सेण्टीग्रेड तक) युक्त हैं। इनमें स्नान के लिए उपयोगी उपादान भी हैं। स्तावरोपोल प्रदेश, कुबान और कुरा के बेसिन, रिओनी का निचला भाग, अरारात वादी, काकेशिया, कालासागर तट और दागिस्तान की सीमा के भीतर कैस्पियन का निचला भाग—ये सब क्षेत्र जमीन के नीचे के गरम पानी के बड़े-बड़े क्षेत्र हैं।

दागिस्तान जनतंत्र में इस प्रकार के ६० छिद्र चालू हैं जिनसे प्रतिदिन ६०-६५ सेण्टीग्रेड ताप का ५० हजार घनफुट पानी मिलता है। माखाच्काला में बहुत से सार्वजनिक स्नानागार और फौव्वारों से स्नान के स्थान बन गये हैं।

अनुमान लगाया गया है कि एक लाख की जन-संख्या वाले नगर की ऊष्मा सम्बन्धी सारी आवश्यकतायें पृथ्वी के नीचे के गरम पानी से पूरी करने से राष्ट्रीय अर्थतंत्र में प्रतिवर्ष एक करोड़ रूबल की बचत होगी। जाड़ों में एक किलोग्राम तरकारी उगाने में ५० किलोग्राम से कम कोयला नहीं लगता। परन्तु इस मूल्यवान शक्ति का उपयोग करने से तरकारियों का एक बड़ा फार्म चलाने में खर्च १० से १५ प्रतिशत तक कम हो जाता है।

काकेशिया और मध्य एशिया के पहाड़ी इलाके उच्च विकसित रूप में पशुपालन के लिए, खासकर भेड़ें पालने के लिए विख्यात हैं। यहाँ भी पृथ्वी के नीचे का गरम पानी काम में लाया जा सकता है, विशेषतः ऊन धोने में, क्योंकि उसमें क्षार बहुत रहता है। इससे प्रति टन ऊन में ६००-६५० रूबल की बचत होगी।

विज्ञान अकादमी की गणना के अनुसार सोवियत संघ के अनेक कृषि-क्षेत्रों तथा ६० नगरों और कस्बों में जमीन के नीचे के गरम पानी और वाष्प का उपयोग उष्मा के लिए किया जा सकता है।

१४. लहरों की शक्ति का उपयोग

क्या लहरों की शक्ति भी काम में लायी जा सकती है ? सोवियत वैज्ञानिकों का उत्तर सकारात्मक है। एक विशेष प्रकार का तरंग टर्बाइन बनाया जा चुका है। यह टर्बाइन कुण्डली के रूप में झुका हुआ, लोहे की नली जैसा होता है। इसके दोनों सिरे बन्द रहते हैं। लहरें इसे इसकी धुरी पर घुमाती हैं और इस प्रकार घूमने से बिजली तैयार होती है।

इससे भी अधिक मनोरंजक उपक्रम का सुझाव सोवियत विज्ञान अकादमी के कारेस्पाण्डिंग सदस्य वेन्तिसियोन वुल का है। उन्होंने डेढ़ दशक पहले यह प्रतिपादित किया था कि कुछ पदार्थ जो सेग्नेटो इलेक्ट्रिस कहलाते हैं, अगर दबाकर एक में मिला दिये जायँ, तो वे बिजली पैदा करते हैं। अगर समुद्र के किनारे पर सेग्नेटो इलेक्ट्रिक्स की बनी तश्तरियाँ जड़ दी जाएं, तो उनसे टकराने वाली प्रत्येक लहर उन्हें बिजलीघर में बदल देगी।

१५. दलदलीय वनस्पतियों का औद्योगिक उपयोग

यूक्रेन के एक वनस्पति वैज्ञानिक ने ओकलिचन (एक प्रकार की काई जो ओक वृक्षों पर पैदा होती है) जिसे साधारणतः ओक शैवाल भी कहते हैं—का सत्व खोज लिया है जिसके द्वारा इत्रादि सुगन्धित द्रव्यों की सुगन्ध को देर तक अक्षुण्ण रखा जा सकता है।

"बिनान" को जो जले हुए भागों के निदान के लिये बहुत ही लाभप्रद है तथा सोडियम क्षार को भी जो दवाओं में प्रयुक्त होता है, दलदल में तथा चट्टानों पर पैदा होने वाली वनस्पति द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। वनस्पति वैज्ञानिक एलिकानीदा मोयसेयेवा ने इसकी त्वरित उत्पत्ति करने की विधि ढूंढ़ निकाली है।

१६. बड़े यंत्रीकृत फार्म

यंत्रीकृत फार्मों के आर्थिक पक्ष के संबंध में पड़ताल के लिए केन्द्रीय खाद्य और कृषि मंत्रालय के सचिव के० आर० दामले की अध्यक्षता में जो समिति नियुक्त की गई थी उसने बड़े यंत्र कृत फार्म बनाने का समर्थन किया है तथा कहा है कि ऐसे फार्म बनाना आर्थिक दृष्टि से लाभकर होगा।

सूरतगढ़ फार्म के संबंध में समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि सिंचाई की पर्याप्त सुविधाएँ न होने पर तथा कुछ प्राकृतिक संकटों के बाद भी इस फार्म से १९५६-५७, १९५८-५९ और १९५९-६० वर्षों में लाभ हुआ है। सूरतगढ़ फार्म लगभग ३०,००० एकड़ में बना है, जिसमें से २२,००० एकड़ में खेती होती है। २,००० एकड़ में बगीचा है तथा १,५०० एकड़ पशु आदि रखने के लिए है। शेष ४,५०० एकड़ में सड़कें, इमारतें तथा सिंचाई की नालियां आदि बनी हैं। इस फार्म पर मशीनों आदि को मिलाकर कुल २ करोड़ २७ लाख ६४ हजार की पूँजी लगी है।

समिति ने राज्य सरकारों से प्राप्त बड़े यंत्रीकृत फार्मों के १५ प्रस्तावों पर विचार किया तथा इस अधुना राजस्थान में सूरतगढ़ के पास जैतसर में एक और फार्म बनाने की सलाह दी है। इस नये फार्म के बारे में समिति ने कहा है कि इस क्षेत्र में भूमि को कृषि योग्य बनाने तथा खेती प्रारम्भ करने में कुछ वर्ष लगेंगे। राज्य सरकार ने जो आश्वासन दिये हैं, उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस फार्म में जून, १९६२ से खेती प्रारम्भ की जा सकेगी। फार्म के लिए नयी मशीनें आदि खरीदने पर ६१ लाख रु० खर्च होंगे। कुछ मशीनें सूरतगढ़ से भी मिल जायँगी। समिति को आशा है कि काम होने के पहले ही वर्ष में नये फार्म से लाभ मिलने लगेगा। लाभ की मात्रा सिंचाई की सुविधा अधिक प्राप्त होने पर धीरे-धीरे और भी बढ़ जाएगी।

१७. वायुयानों द्वारा अग्नि से रक्षा

अमेरिकी कृषि विभाग द्वारा अभी हाल में 'एयर एटैक आन फारेस्ट फायर्स' नामक जो ३२ पृष्ठ की पुस्तिका प्रकाशित की गयी है, उसके कथनानुसार,

अमेरिकी वन सेवा विभाग ने उन साहसी लोगों की सहायता से लाखों एकड़ भूमि की अग्नि से रक्षा की है, जो वायुयानों की सहायता से कार्य करते रहे हैं।

अमेरिकी वन सेवा विभाग के कर्मचारियों का कथन है कि वायुयान तथा हेलिकोप्टर वन की अग्नि को बुझाने के लिये बड़े ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं। सर्वप्रथम १९१९ के आसपास बन में ऐसे स्थानों पर लगने वाली अग्नि का पता लगाने के लिये वायुयानों का प्रयोग किया गया था, जहाँ तक पहुँचना कठिन होता था। अमेरिकी वायुसेना के उस समय के मेजर हेनरी हैप अर्नोल्ड तथा रिजनल फोरेस्टर कोर्ट डु वोइस ने उस समय से ठीक १६ वर्ष बाद बनों की अग्नि बुझाने के लिये वायुयानों का प्रयोग करने की विधि निकाली थी, जब राइट बन्धुओं ने किटी हांक (उत्तरी केरोलाइना) में प्रथम ऐतिहासिक उड़ान ली थी।

आज भी वायुयानों द्वारा वनों की अग्नि को बुझाने के लिए उस स्थान का पता लगाने का बड़ा महत्व है, जहाँ अग्नि लगी हो। वन-सेवा विभाग के इञ्जिनियर तथा फोटोग्राफर दूरस्थ स्थानों पर लगी अग्नि का पता लगा सकते हैं, चित्र ले सकते हैं अथवा पूरा-पूरा मानचित्र तैयार कर सकते हैं। किन्तु १९३९ से पेराशूट द्वारा नीचे उतरने का प्रयत्न नहीं किया गया था। जब वायुयानों तथा अन्य उपकरणों में पर्याप्त सुधार हो गया, तब ऐसा करना सम्भव हुआ। अब वनों में आग लग जाने पर कहीं भी वायुयानों तथा हेलिकोप्टरों से नीचे उतर कर अग्नि बुझायी जा सकती है।

द्वितीय विश्वयुद्ध में फोर्ट वेनिंग, जार्जिया, में प्रथम पेराशूटिंग प्रशिक्षण केन्द्र का संगठन करते समय अमेरिकी सेना ने वन-सेवा विधियों का प्रयोग किया। उस समय पेराशूटों का प्रयोग करने वाले सैनिकों को प्रशिक्षण देने के लिये वन सेवा विभाग के कर्मचारियों को बुलाया गया था। मिसौला, माण्टाना, प्रशिक्षण अड्डे पर ५५वीं पेराट्रूपर बटालियन तथा वायुसेना के चिकित्सकों को प्रशिक्षण प्रदान किया गया।

अब वनों में बड़े जोर से लगने वाली अग्नियों को बुझाने के लिये वायुयानों एवं हेलिकोप्टरों से जल तथा अग्नि को बुझाने वाले रासायनिक पदार्थ डाले जाते हैं। वायुयानों तथा हेलिकोप्टरों की सहायता से अग्नि बुझाने की इस प्रक्रिया के विकास में कई वर्ष लगे हैं। सर्वप्रथम १९३० के बाद के वर्षों में इस विधि द्वारा अग्नि बुझाना शुरू किया गया था। कुछ स्थानों पर केवल वायुयानों की सहायता से अग्नि को बुझाना सम्भव नहीं होता है। उनके लिए अग्नि बुझाने वाले ऐसे कुशल कर्मचारियों की आवश्यकता होती है, जो नीचे से अग्नि को शान्त करते हैं। जब तक नीचे से अग्नि बुझाने वाला दल अग्निग्रस्त स्थल पर पहुँचता है, तब तक गर्म स्थल को शीतल कर दिया जाता है, ताकि अग्नि बुझाने वाले वहाँ पहुँच कर सुरक्षित रूप से कार्य कर सकें।

इसी प्रकार आवश्यक सामग्री नीचे फेंकने के लिये भी वायुयानों का प्रयोग किया जाता है। जब ज्वालाओं तथा धुएँ के कारण अग्नि बुझाने वालों के पास आवश्यक सामग्री पहुँचाना असम्भव हो जाता है, तब वायुयानों द्वारा उनके पास आवश्यक उपकरण, प्राथमिक सहायता सम्बन्धी सामग्री तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ फेंकी जा सकती हैं।

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत वैज्ञानिक कृतियाँ

उत्तर प्रदेश सरकार ने सन् १९६०-६१ में हिन्दी-पुस्तकों के १७२ लेखकों को उनकी कृतियों पर कुल ५३,९५० रू० के पुरस्कार दिये हैं। बारह-बारह सौ रुपये के सर्वोच्च पुरस्कार आगरा के डॉ० निहालकरण सेठी को '**चुम्बक और विद्युत**' तथा बम्बई के श्री भ० ने० थधाणी को '**निर्माण विज्ञान के सिद्धान्त**' नामक उनकी वैज्ञानिक पुस्तकों पर प्रदत्त हुये हैं।

वैज्ञानिक पुस्तकों पर अन्य पुरस्कार विजेताओं में हैं सर्व श्री हरिशरणानन्द वैद्य, दिल्ली ('व्याधि मूल विज्ञान' पर ६०० रू०), डॉ० शिवगोपाल मिश्र, प्रयाग (भारतीय कृषि का विकास' पर ५०० रु०), देवेन्द्र कुमार, दिल्ली ('विज्ञान-जगत' पर ४०० रु०) डॉ० कृष्ण बहादुर, इलाहाबाद ('नवीनतम आविष्कार' पर ३०० रु०) डॉ० प्रियकुमार चौबे, वाराणसी ('चर्मरोग चिकित्सा' पर २०० रु०), आनन्द कुमार, सुलतानपुर ('आपका शरीर' पर २०० रु०), डॉ० सुखदेव प्रसाद सिंह, सुल्तानगंज, भागलपुर ('ठीक खाओ स्वस्थ रहो' पर २०० रु०), हरिदास सहयोगी, वाराणसी ('बाटिका-विज्ञान' पर २०० रु०), नारायण दुलीचन्द व्यास, नई दिल्ली ('खेती के साधन' पर २० ०रु०), विदुर नारायण अग्निहोत्री, लखनऊ ('फल-संरक्षण-विज्ञान' पर २०० रु०), भगवती प्रसाद श्रीवास्तव, नई दिल्ली ('ज्ञान-भारती —आवि कार-कथा' पर २०० रु०), कृष्ण मूर्ति मेहरोत्रा, इलाहाबाद ('आविष्कारों के खेल' पर १५० रु०), केसवसागर, दिल्ली ('आग की कहानी' 'आवाज' पर १५० रु०), कृष्ण नारायण लाल, इलाहाबाद ('चिड़ियों के देश में' पर १०० रु०)।

हिन्दी निदेशालय की तथाकथित सक्रियता

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय १ मार्च सन् १९६० को स्थापित किया गया। तब से इसने ७४३२० वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्द बनाये और दिसम्बर १९६० तक निर्मित सभी पारिभाषिक शब्दों को संग्रहीत करके कोष तैयार किया जो प्रकाशित हो रहा है। साथ ही हिन्दुस्तानी कल्चरल सोसाइटी इलाहाबाद ने जो अंग्रेजी-हिन्दी कोष 'ए' से 'जी' तक तैयार किया है, निदेशालय ने उसमें संशोधन किये।

निदेशालय ने विश्वविद्यालयों के लिये अच्छी पुस्तकों को हिन्दी में अनूदित करने की योजना चलाई है। कुछ संस्थाओं ने अनुवाद कार्य प्रारम्भ भी कर दिये हैं। इस योजना के अन्तर्गत क्षेत्रीय भाषाओं में भी अनुवाद करने का निर्णय किया गया है। लोकप्रिय पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद के लिये अभी २५ पुस्तकें चुनी गई हैं जिनके अनुवाद तथा प्रकाशन के लिये प्रकाशकों से टेण्डर माँगे गये हैं।

स्पष्ट है कि निदेशालय हिन्दी की समृद्धि के लिये प्रचुर कार्य कर रहा है। परन्तु इतना होते हुये भी निदेशालय की नीति इस सम्बन्ध में बिल्कुल स्थिर नहीं हो पाई कि वैज्ञानिक सूत्रों तथा अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को हिन्दी पुस्तकों से किस रूप में रखा जाय। फरवरी मास के सम्पादकीय में हमने इस सम्बन्ध में विस्तार से अपने विचार प्रस्तुत किये थे। उसके ही पश्चात् समाचार पत्रों में पढ़ने को मिला कि नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित "हिन्दी विश्वकोष" की केन्द्र द्वारा कटु आलोचना इस आधार पर हुई कि उसमें नागरी अंकों तथा हिन्दी में वैज्ञानिक सूत्रों का प्रयोग हुआ। नागरी प्रचारिणी सभा ने इस सम्बन्ध में कड़ा दृष्टिकोण अपना कर न केवल हिन्दी के हित में समर्थन किया है वरन् उसने अपनी परम्परागत नीति का पालन किया है। सभा ने अन्तर्राष्ट्रीय अंकों के प्रयोग पर इसीलिये आपत्ति की कि हिन्दी पाठकों के लिये विश्वकोष की उपयोगिता बहुत कम हो जायगी। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय अंकों तथा चिह्नों के प्रयोग को सभा ने अपनी नीति के विरुद्ध घोषित किया है।

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय ने हिन्दी निदेशालय द्वारा की गई आलोचना के आधार पर ही नागरी प्रचारिणी सभा को आदेश भेजा था कि सरकारी अनुदान प्रदत्त होने के कारण सभा को चाहिये कि हिन्दी विश्वकोष में अन्तर्राष्ट्रीय अंकों तथा वैज्ञानिक सूत्रों को प्रयोग में लावे।

सचमुच ही सरकार की यह हस्तक्षेप करने की नीति न्यायसंगत नहीं प्रतीत होती। राष्ट्रभाषा के द्वारा वैज्ञानिक साहित्य के लेखन एवं प्रकाशन के हेतु यह वाञ्छित ही होगा कि नागरी अंकों तथा चिह्नों का प्रयोग हो। अन्ततः जब हमारे देश में राष्ट्रभाषा हिन्दी का ही प्रयोग सभी प्रकार के विचारों की अभिव्यक्ति के लिये होना है तो फिर उसके निजी अंकों एवं चिह्नों को मान्यता न देने एवं उनके प्रयोग में हिचकिचाहट दिखाने से क्या लाभ? नागरी प्रचारिणी सभा ने इस दिशा में जो दृढ़ता दिखाई है वह सामयिक एवं सरकार की आँखें खोलने वाली है परन्तु यह ज्ञात नहीं हो पाया कि सरकारी अनुदान का उपयोग करते हुये सभा इस दिशा में कहाँ तक सफलता प्राप्त करेगी।

हमारा सुझाव है कि एक बार "हिन्दी विश्व-कोष" के एक परिशिष्ट में वैज्ञानिक सूत्रों के हिन्दी रूपों के समानार्थी अंग्रेजी सूत्र दे दिये जायँ। "विश्व-कोष" के भीतर कहीं भी किसी प्रकार के अंग्रेजी समानार्थी शब्द प्रविष्ट न हो पायें। धीरे-धीरे इस परिशिष्ट को अगले संस्करणों में समाप्त कर दिया जावे। ऐसा करने से उन लोगों के आक्षेपों का निरा-करण हो जावेगा जो यह कहते हैं कि पहली बार ही हिन्दी में ऐसी शब्दावली एवं सूत्र प्रणाली अपनायी गई है जो सबों के लिये बोधगम्य नहीं।

विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका

वैज्ञानिक अनुसन्धान से सम्बन्धित हिन्दी की प्रथम शोध पत्रिका

(त्रैमासिक)

जिसमें गणित, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, प्राणि शास्त्र, वनस्पति शास्त्र तथा भूगोल शास्त्र पर मौलिक एवं शोधपूर्ण निबन्ध प्रकाशित होते हैं। भारतवर्ष की विविध प्रयोगशालाओं के उत्कृष्ट निबन्धों को इसमें स्थान दिया जाता है।

विश्व की सभी प्रमुख वैज्ञानिक संस्थाओं, पुस्तकालयों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा यह पत्रिका समादृत है।

सामान्य सदस्यों के लिए वार्षिक शुल्क ८ रु०। 'विज्ञान' के सभ्य ४ रु० अतिरिक्त वार्षिक शुल्क देकर अनुसन्धान पत्रिका प्राप्त कर सकते हैं। यह पत्रिका अभी त्रैमासिक है किन्तु भविष्य में द्वैमासिक होने की सम्भावना है।

प्रधान सम्पादक—**डा० सत्य प्रकाश**
प्रबन्ध सम्पादक—**डा० शिवगोपाल मिश्र**

मँगाने का पता

विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका,
विज्ञान परिषद्,
थार्नहिल रोड,
इलाहाबाद—२

विज्ञान—अप्रैल १९६१ पंजीकृत संख्या A-372

सूचना

'हरिशरणानन्द वैज्ञानिक पुरस्कार'

विज्ञान परिषद्, प्रयाग द्वारा सूचित किया जाता है कि

इस वर्ष हरिशरणानन्द जी के नाम पर तीन वैज्ञानिक पुरस्कार वैज्ञानिक हिन्दी ग्रन्थों पर दिये जायेंगे। ये पुरस्कार तीन श्रेणी के होंगे :—

प्रथम—'हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार'—यह पुरस्कार दो सहस्र रुपये का होगा। यह पुरस्कार उच्च स्तर की सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक रचना पर प्रदान किया जावेगा।

द्वितीय—'हरिशरणानन्द जनोपयोगी विज्ञान पुरस्कार'—यह पुरस्कार एक सहस्र रुपये का होगा और सामान्यतः जनोपयोगी वैज्ञानिक साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना पर दिया जावेगा।

तृतीय—'हरिशरणानन्द बालोपयोगी विज्ञान पुरस्कार'—यह पाँच सौ रुपये का होगा।

विज्ञान परिषद्, प्रयाग पुरस्कार के लिये प्रत्येक वर्ग की वैज्ञानिक विषय की पुस्तकें आमंत्रित करती है।

१. प्रत्येक वर्ग की पुस्तकों की ८ प्रतियाँ ३० सितम्बर, १९६१ तक विज्ञान परिषद्, प्रयाग के कार्यालय में आ जानी चाहिएँ।

२. १ जनवरी, १९५९ के बाद की प्रकाशित पुस्तकों पर ही विचार किया जावेगा।

३. अनुवाद के ग्रन्थों पर विचार नहीं किया जावेगा।

४. पुस्तकें शुद्ध हिन्दी भाषा में प्रकाशित हुई हों।

५. इन प्रकाशित पुस्तकों में विज्ञान परिषद्, प्रयाग, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग अथवा भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा स्वीकृत में से कोई भी वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली यदि व्यवहृत हुई हो तो मान्य होगी।

पुरस्कार सम्बन्धी नियमावली के लिए मंत्री, विज्ञान परिषद्, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद-२ के पते पर लिखा जा सकता है।

प्रकाशक—डा० आर० सी० कपूर, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।
मुद्रक—टेकनिकल प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद।

अन्तिम दर्शन

विज्ञान परिषद्, प्रयाग के सभापति डा० गोरख प्रसाद जी शुक्रवार मई ५, १९६१ को सायंकाल काशी नगरी में अपने एक तरुण सेवक की रक्षा करते हुए स्वयं भी गंगा की भेंट हो गये !

स्वर्गीय डा० गोरख प्रसाद

विज्ञान परिषद् के सदस्यों और "विज्ञान" के पाठकों को यह संवाद देते हुए हमें बड़ा दुःख हो रहा है कि शुक्रवार ५ मई, १९६१ ई० को सायं समय काशी नगरी में अपने एक सेवक की प्राण रक्षा करते हुए डा० गोरख प्रसाद जी गंगा की भेंट हो गये। अपनी नौका लेकर वे गंगा पार अपने एक सेवक और नाती के साथ गंगा स्नान के लिए नित्य प्रति की भाँति उस दिन भी गये हुए थे। वे अनेक तरुणों को तैरना सिखाया करते थे। प्रति वर्ष गरमियों के दिनों का उनका यह नियम था—प्रयाग में भी और काशी में भी। अच्छे तैरने वाले थे। पर काल के आगे उनकी न चली। न तो सेवक बच पाया, और न वे ही। रात्रि में २ बजे के लगभग बहुत परिश्रम के अनन्तर उनका शव बाहर निकाला जा सका। काशी में हरिश्चन्द्र घाट पर उनका अन्तिम संस्कार ६ मई को सायं समय हुआ।

डा० गोरख प्रसाद का जन्म २८ मार्च १८९६ ई० को गोरखपुर में हुआ था। उनके पिता श्री ब्रज भूषण प्रसाद जी गोरखपुर में ही अध्यापक थे। वैसे तो इनका पैतृक गृह काशी में था। गोरखपुर से ही इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और सर्व प्रथम स्थान प्राप्त किया। सेंट एंड्रूज कालेज, गोरखपुर से, जो उस समय प्रयाग विश्वविद्यालय के अन्तर्गत था, डाक्टर साहेब ने बी० एस-सी० परीक्षा उत्तीर्ण की। फिर ये डा० गणेश प्रसाद जी की शिष्यता में काशी विश्वविद्यालय आ गये और यहाँ से उन्होंने एम० एस-सी० किया। डा० गणेश प्रसाद जी के ये योग्यतम शिष्यों में से थे, और उनकी प्रेरणा से ही ये गणित की गवेषणाओं के लिए एडिनबरा गये, और वहाँ से डी० एस-सी० की उपाधि ली। डा० गोरख प्रसाद के समान प्रखर प्रतिभा वाले व्यक्ति कम ही मिलेंगे। उन्हें फोटोग्राफी और शिल्प में विशेष रुचि थी।

एडिनबरा से लौटने पर २१ जुलाई १९२५ ई० को डाक्टर साहेब को प्रयाग विश्वविद्यालय में रीडर-शिप का पद प्राप्त हुआ और तब से पदविमुक्त होने तक उन्होंने प्रयाग में ही गणित के अध्यापन का कार्य किया। उनके छात्र आज देश के कोने-कोने में फैले हुए हैं। प्रयाग में ही उन्हें हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर लिखने की रुचि आरंभ हुई। उनकी सर्वप्रथम "फोटोग्राफी" पुस्तक पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन से मंगला प्रसाद पुरस्कार (सं० १९८८ वि०) मिला। विज्ञान परिषद् की उन्होंने बड़े मनोयोग से सेवा की। श्री केशवदेव मालवीय जी के बाद वे विज्ञान परिषद् के सभापति चुने गये, और कौन जानता था कि इस वर्ष के वार्षिक अधिवेशन से पूर्व ही विज्ञान परिषद् अपने अध्यक्ष से विदा लेगा। डाक्टर साहेब के रचे साहित्य में सौर परिवार (हिन्दुस्तानी अकेडमी), नीहारिका (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्), सरल विज्ञान सागर, उपयोगी नुसखे, घरेलू डाक्टर, तैरना और फल संरक्षण, (विज्ञान परिषद् प्रयाग), फोटोग्राफी और आकाश की सैर (इंडियन प्रेस), चन्द्रसारणी (काशी नगरी प्रचारिणी सभा), भारतीय ज्योतिष् का इतिहास (हिन्दी समिति, लखनऊ), सरल फोटोग्राफी, डिफरेंशियल कैलक्यूलस, इन्टीग्रल कैलक्यूलस, कोआर्डिनेट ज्योमेट्री, अवकल समीकरण, गणित ज्योतिष, स्फेरिकल ऐस्ट्रानामी, स्फेरिकल ट्रिगोनोमेट्री, तथा हाईस्कूल, इण्टरमीडिएट कक्षाओं की अन्यान्य बहुत सी पुस्तकें (पोथीशाला प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग) आदि प्रमुख हैं। हिन्दी समिति के लिए वे एक और पुस्तक का अनुवाद भी कर रहे थे। आजकल वे काशी नागरी प्रचारिणी सभा के विश्वकोष का सम्पादन कर रहे थे जिसका एक खण्ड अब तक प्रकाशित हुआ है। विज्ञान के प्रधान संपादक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के परीक्षा मंत्री (सं० १९९०-१९९३ वि०), बनारस मैथेमेटिकल सोसायटी के अध्यक्ष और अनेक समितियों के वे सदस्य थे। पंचांग संबंधी सरकारी समिति और केन्द्रीय पारिभाषिक शब्द समिति (गणित) के भी सदस्य थे। प्रयाग विश्वविद्यालय की कार्य-कारिणी समिति के भी वे सदस्य थे। काशी में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जो २८वाँ अधिवेशन १९३९ ई० में हुआ था, उसके अन्तर्गत विज्ञान परिषद् के अध्यक्ष डा० गोरख प्रसाद जी थे।

ईश्वर उनके संतप्त परिवार को धैर्य प्रदान करे!

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जानेताति जीवन्ति विज्ञान प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ९३ | वैशाख २०१८ विक्र, शक १८८३ मई १९६१ | संख्या २

अन्तरिक्ष अभियान की समस्याएँ

१. गन्तव्य का चुनाव

अशोक शर्मा तथा बिजेन्द्र पाल सिंह सैंगर

आकाश में दिखाई देने वाले ज्योतिर्पिण्ड जैसे सूर्य चन्द्रमा नक्षत्र तारे इत्यादि मानव के शैशव काल से असीम कौतूहल के कारण बने हुए हैं, अतः शताब्दियों से उसने इनके बारे में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया और इनके सम्बन्ध में अत्यन्त रोचक कल्पनायें भी कीं। सूर्य और चन्द्रलोक की यात्राओं की कल्पना इन्हीं में से एक है। जटायु और सम्पाती के अभियान की कथा से तो सभी परिचित हैं। इसी प्रकार की कथायें यूनान आदि देशों में भी प्रचलित थीं। इस प्रकार की यात्राओं की कल्पना कुछ वर्षों पूर्व तक असम्भव एवं हास्यास्पद मानी जाती थी। परन्तु इस शताब्दी में हुई विज्ञान तथा औद्योगिकी की आशातीत प्रगति के कारण यह कल्पना सत्य प्रतीत होने लगी है और आशा बँधने लगी है कि निकट भविष्य में ये यात्रायें सम्भव हो जायँगी। मानव के विकास-क्रम में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण परिवर्तन होगा इसलिए अन्तरिक्ष अभियान की समस्याओं और सम्भावनाओं की जानकारी सबों के लिए आवश्यक है।

विकासवाद के सिद्धांत के अनुसार जीव-जगत का आविर्भाव पानी के भीतर समुद्र में हुआ था। उस काल के प्राणी जल में विलेय वायु को श्वास-प्रश्वास के लिए काम में लाते थे। समुद्र के तल पर रहने के कारण उनकी शारीरिक रचनायें पानी के अत्यधिक दबाव के अनुकूल होतीं। यदि ऐसे प्राणी समुद्र सतह पर आ जाते तो दबाव की कमी के कारण उनकी रक्त नलिकायें फट जातीं तथा आक्सीजन की अधिकता के कारण उनकी श्वास-प्राणाली क्षत-विक्षत हो जाती थी। विकास-क्रम की कई श्रेणियाँ पार कर समुद्र के गर्भ के ये आदि प्राणी वर्तमान जीव-जगत के रूप में आये। आज भी हम वायु-समुद्र की तलहटी में रहने वाले प्राणी हैं। हमारी शारीरिक रचना वायुमंडल के दबाव के अनुकूल है। अतः यदि हम वायुमंडल के ऊपर जाना चाहें तो

हमको उन्हीं समस्याओं का सामना करना पड़ेगा जिन्हें आदि-प्राणियों ने समुद्र-तल से स्थल पर जाने के समय किया था। यह भी सम्भव है कि इस उद्योग के फलस्वरूप एक नये जीवधारी का निर्माण हो जावे।

वर्तमान सभ्यता के विकास और उनकी आवश्यकताओं के अनुसार अन्तरिक्ष यात्रा का प्रयास केवल आपेक्षिक ही नहीं अपितु आवश्यक भी है। पृथ्वी पर इस समय प्राप्य सम्पूर्ण रासायनिक पदार्थ निकट भविष्य में ही समाप्त हो सकते हैं अतः इस सभ्यता को सुरक्षित रखने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि इन तत्वों की खोज करते हुए दूसरे ग्रहों पर जाया जाय। पिछले वर्षों के ही अनुरूप यदि जनसंख्या की वृद्धि होती रही तो यह आवश्यकता शीघ्र आ जावेगी। एक वैज्ञानिक का मत है कि ६६ वर्षों में ही वर्तमान सभ्यता का अन्त आबादी की वृद्धि के कारण हो जावेगा। अतः यह स्पष्ट है कि अन्तरिक्ष यात्रा एक कौतूहल का ही विषय नहीं अपितु आज के युग की मांग है। यह लेख अन्तरिक्ष यात्रा के विभिन्न उपयोगों की चर्चा का विषय नहीं।

किसी भी यात्रा के प्रारम्भ में गन्तव्य स्थान का ज्ञान परमावश्यक है, अतः अन्तरिक्ष यात्रा की भी पहली समस्या यही है कि अन्तरिक्ष में कहाँ जाया जाय तथा मार्ग का सम्भव रूप क्या हो? कहने का तात्पर्य यह है कि हम यह जान लें कि अन्तरिक्ष में हम कहाँ पर हैं अर्थात् हमारी पृथ्वी कहाँ पर है? आकाश में दिखाई देने वाले चाँद, तारे, सूर्य आदि से पृथ्वी का क्या सम्बन्ध है?

ज्योतिभौंतिकी (Astro-physics) तथा ज्योति-विज्ञान (Astronomy) के अनुसन्धानों के फलस्वरूप सूर्य, चन्द्रमा एवं तारों के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त हो गई है जो यात्रा की प्रारम्भिक समस्या का समाधान भी है। फलतः यहाँ पर विश्व की रचना तथा उसमें सौर परिवार में पृथ्वी की स्थिति पर विचार किया जावेगा।

यह ब्रह्मांड करोड़ों तारा-समूहों से बना है जिनको नीहारिका (Galaxy) कहते हैं। एक तारा समूह में करोड़ों तारे होते हैं। आँख से दिखाई देने वाले सभी तारे एक ही नीहारिका के सदस्य हैं। सूर्य भी उन्हीं तारों में से एक है। पर नीहारिका के तारे उस अक्ष के चारों ओर अन्तरिक्ष में परिभ्रमण करते हैं। नीहारिकाओं की परस्पर दूरी $१०^{१६}$ से $१०^{१९}$ किलोमीटर के परिमाण के लगभग और एक नीहारिका में तारों की यह परस्पर दूरी $१०^{१३}$ से $१०^{१६}$ किलोमीटर के लगभग होती है। पृथ्वी सूर्य का एक ग्रह है और सूर्य के चारों ओर एक निश्चित वेग से घूमती है। इस प्रकार के और आठ ग्रह सूर्य के चारों ओर विभिन्न दूरी पर घूमते हैं। इन ग्रहों की पारस्परिक दूरी $१०^{७}$ से $१०^{९}$ किलोमीटर के बीच में है। यदि हम ऐसे वायुयान से यात्रा करें जिसका वेग लगभग १००० मील प्रति घंटा हो तो हमको निकटतम ग्रह तक पहुँचने में लगभग एक वर्ष का समय लग जावेगा और निकटतम नक्षत्र तक पहुँचने में तो लगभग एक करोड़ वर्ष लगेंगे। यदि वाहन प्रकाश के वेग, १८६००० मील प्रति सैकंड से जा सकें तो निकटतम नक्षत्र तक पहुँचने में लगभग तीन वर्ष का समय चाहिए। आइन्स्टाइन के सिद्धान्त के अनुसार कोई भी भौतिक पदार्थ इस वेग से गति नहीं कर सकता, क्योंकि पदार्थों का भार उनकी गति के साथ बढ़ता जाता है। इसलिये अन्तरिक्ष यान का वेग प्रकाश की गति से बहुत ही कम हो सकेगा। इस कारण निकटतम नक्षत्र तक पहुँचना असम्भव सा ही ज्ञात होता है। अतः अन्तरिक्ष यात्रा के गन्तव्य सौर परिवार के सदस्य ग्रह ही हो सकते हैं। इनकी पारस्परिक दूरी, गति, सम्भावित ताप, वायुमंडल इत्यादि का ज्ञान ही इस प्रथम समस्या का समाधान है।

सारणी १*

ग्रहों के सम्बन्ध में ज्ञातव्य तथ्य

	बुध	शुक्र	पृथ्वी	मंगल	बृहस्पति	शनि	राहु	केतु	प्लूटो
औसत दूरी	५७.९४	१०८.२७	१४९.६८	२२८.०६	७७८.७३	१४२७.७	२८७२.४	४५००.८	५९१४.८
$१०^६$ कि० मी०	०.३८७	०.७२३	१.०००	१.५२४	५.२०३	९.५३९	१९.१९	३०.०७	३९.४६
कक्षीय वेग (कि० मी० प्रति से०)	४७.९	३५.०	२९.८	२४.१	१३.६	९.६	६.८	५.४	४.८
ग्रह का औसत व्यास (कि०मी०)	५०००	१२४००	१२७२४	६८७०	१३९७६०	११५१००	५१०००	५००००	१२७००
गुरुत्वजनित वेग वृद्धि (पृथ्वी की तुलना में)	०.२७	०.८६	१.००	०.३७	२.६४	१.१७	०.९२	१.४४	?
भार (पृथ्वी की तुलना में)	०.०४	०.८२	१.००	०.११	३१८.३	९५.३	१४.७	१७.३	१.०
सतह का ताप (अंश फारेनहाइट)	७७०	१४०	१४०	८६	—२१६	—२४३	—३००	३३०	—३४८
दिन-काल	८८दिन	३०दिन	१ दिन	१ दिन ३७ मि० २३सै०	९ घंटा ५५मि०	१० घं० ३८मि०	१० घं० ७ मि०	१५ घं० ८ मि०	?
वर्ष-काल	८७.९७ दिन	२२४.७ दिन	३६५.२६ दिन	६८.७.० दिन	११.८६ वर्ष	२९.४६ वर्ष	८४.०२ वर्ष	१६४.४ वर्ष	२४७.७ वर्ष
ज्ञात चन्द्रमाओं की सख्या	×	×	१	२	१२	९	५	२	×

*डा० सैसीलिया पे ने–गैपोश्किन द्वारा लिखित पुस्तक *Introduction to Astronomy* से उद्धृत

सूर्य के चारों ओर घूमने वाले बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, वृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपचून तथा प्लूटो नव प्रमुख ग्रह हैं। मंगल तथा बृहस्पति ग्रहों के बीच बहुत अधिक संख्या के लघुग्रह भी सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इनको एस्टैरोइड कहते हैं। ये एस्टैरोइड विभिन्न परिमाण के होते हैं। सौर परिवार के प्रमुख ग्रह अंडाकार कक्ष में सूर्य की परिक्रमा करते हैं। सारणी-१ में इन ग्रहों की सूर्य से औसत दूरी, भार, ग्रह का औसत व्यास, पृथ्वी के अनुपात में उनका भार, गुरुत्व जनित वेग-वृद्धि, ताप, दिवस-काल तथा ग्रह के उपग्रहों की संख्या दी गई है।
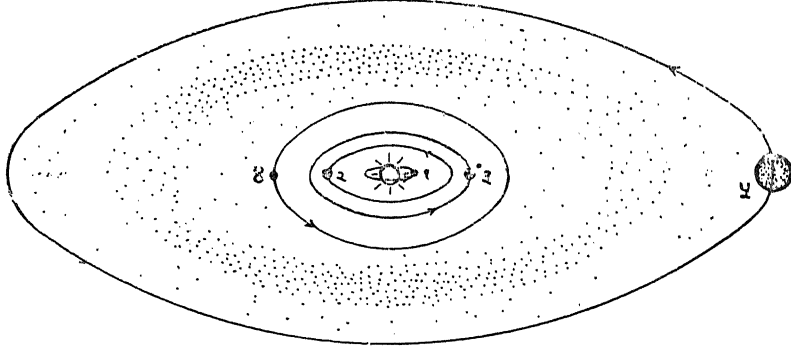
चित्र १—सौर मंडल के आन्तरिक ग्रह

१. बुध २. शुक्र ३. पृथ्वी ४. मंगल ५. वृहस्पति

विन्दुओं द्वारा एस्टैराइड प्रदर्शित किये गये हैं।
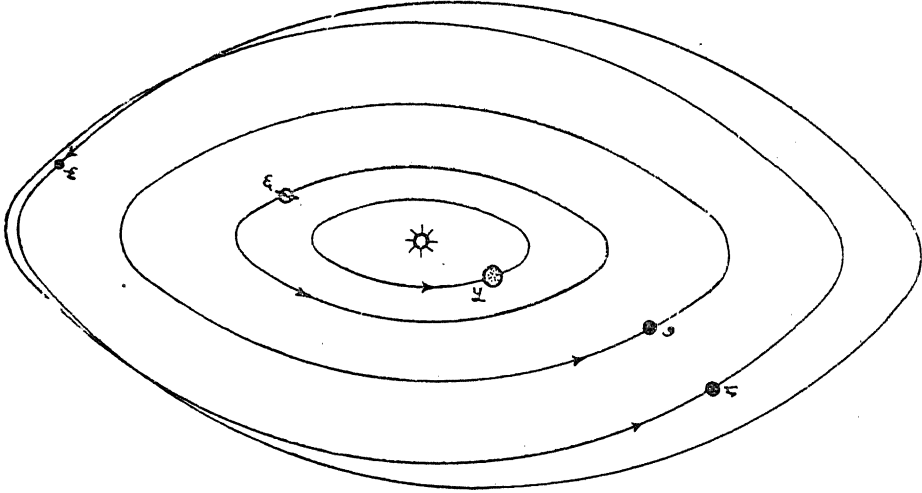
चित्र २—सौर मंडल के वाह्य ग्रह

५. वृहस्पति ६. शनि ७. यूरैनस ८. नेपचून ९. प्लुटो

उपरोक्त तथ्यों को चित्र संख्या १ तथा २ में व्यक्त किया गया है। चित्र १ में सौर परिवार के आन्तरिक ग्रहों की स्थिति तथा चित्र २ में बाहरी ग्रहों की उपस्थिति व्यक्त है।

अन्तरिक्ष अभियान के लिये सम्भावित गन्तव्यों का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखना होगा कि गन्तव्य ग्रह की भौतिक दशा कैसी है, अर्थात् ग्रह का ताप, दिन-काल, वर्ष-काल आदि का मान क्या है? इस विचार से सारणी १ को देखें तो ज्ञात होगा कि शुक्र तथा मंगल ग्रहों की भौतिक दशा सम्भवतः पृथ्वी से मिलती-जुलती है, बुध-ग्रह सूर्य के अत्यन्त निकट होने के कारण अत्यधिक गर्म है, तथा अन्य ग्रह दूरस्थ होने के कारण अत्यन्त शीतल हैं।

उपरोक्त सारणी से यह स्पष्ट है कि बुध सूर्य से निकटतम दूरी पर है तथा प्लूटो सबसे दूर अवस्थित है। ग्रहों की कक्षा को अंडाकार कहा जाता है, तथा उनके दीर्घतम तथा न्यूनतम कक्षा-व्यासों में इतना कम अन्तर होता है कि यदि उनकी कक्षाओं का चित्रण किया जाय तो वे वृत्ताकार ही दिखाई देंगी—अंडाकार नहीं। विभिन्न ग्रहों के कक्षातल लगभग एक ही सतह में हैं। पृथ्वी के कक्षातल से सबसे अधिक झुके हुये कक्षातल प्लूटो तथा बुध ग्रहों के हैं, जो क्रमशः १७° तथा ७° हैं। अन्य ग्रहों के कक्षीय तलों का झुकाव २° से भी कम है।

मंगल तथा शुक्र ग्रह पृथ्वी के निकटतम हैं तथा उनकी भौतिक दशा भी पृथ्वी के लगभग समान ही है अतः अन्तरिक्ष अभियान का प्रथम प्रयास भी सम्भवत इन्हीं ग्रहों पर होगा। चन्द्रमा भी जो कि पृथ्वी का उपग्रह है और जो इन ग्रहों की तुलना में पृथ्वी के अधिक निकट है, प्रथम गन्तव्य हो सकता है। चन्द्रमा के बारे में की गई खोजों से पता चलता है कि इस पर वायुमंडल का सर्वथा अभाव है तथा ताप का परिवर्तन अधिक होता है। अतः चन्द्रमा की यात्रा अन्तरिक्ष यात्रियों के लिए अधिक अनुकूल न होगी।

किसी भी ग्रह की सतह के ताप का अनुमान ग्रह के व्यास तथा सूर्य से उसकी दूरी द्वारा किया जा सकता है। रेडियोमापियों (Radiometers) द्वारा विकिरण उष्मा के मापन से ग्रह के ताप का भी अनुमान किया जा सकता है। साधारणतया किसी भी ग्रह का ताप निम्न-सूत्र द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

$$T=\sqrt{\frac{T_0}{R}}, \ldots\ldots\ldots\ldots (१)$$

जहाँ पर T ग्रह का परम ताप है, R उसकी कक्षा का अर्धव्यास एवं T^0 पृथ्वी की सतह का औसत ताप है जो प्रायः २९०° परम ताप है। इन विधियों से अनुमानित ग्रहों के ताप भी सारणी १ में दिये हुये हैं।

ग्रहों के भार तथा उनके सम्भावित तापों को ज्ञात कर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ग्रह पर वायु-मंडल है अथवा नहीं। गैसों के गतिज-सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक गैस के अणु सर्वदा गतिमान रहते हैं। किसी निश्चित वेग से गतिशील अणुओं की संख्या गैस के ताप तथा उसके अणुभार पर निर्भर करती है।

गैस के अणुओं का औसत वेग मैक्सवैल-बोल्ट्ज़मैन के निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त किया जाता है;

$$V_m=\sqrt{\frac{3KT}{\mu}}, \ldots\ldots (२)$$

V_m अणुओं का औसत वेग, T गैस का परम ताप, μ गैस का अणुभार तथा K बोल्ट्ज़मैन स्थिरांक हैं। समीकरण से प्रत्येक ग्रह के वायुमंडल में सम्भावित वायु-मंडलीय गैसों के अणुओं का वेग निकाला जा सकता है।

पृथ्वी पर किसी भी द्रव्य पिण्ड को जितने ही अधिक वेग से फेंका जाय, वह उतनी ही अधिक

ऊँचाई तक जाता है। ऐसा भी हो सकता है कि पदार्थ पिण्ड की प्रारम्भिक गति यदि एक निश्चित मान से अधिक हो तो पिंड पृथ्वी में न लौटकर अन्तरिक्ष की ओर बढ़ता जाय। पिंड के लिए आवश्यक इस न्यूनतम गति के परिमाण को पृथ्वी के लिए पिंड की पलायन गति कहते हैं। किसी भी ग्रह की पलायन गति को हम निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त कर सकते हैं :—

$$Ve = 11 \cdot 3\sqrt{\frac{M}{R}} \text{ कि० मि०/सै०} \ldots (३)$$

जहाँ M तथा R पृथ्वी की तुलना में ग्रह के भार तथा अर्द्ध-व्यास हैं।

इस सूत्र द्वारा प्राप्त विभिन्न ग्रहों के लिए पलायन गतियाँ सारणी २ में दी जा रही हैं।

सारणी २

ग्रहों की पलायन गतियाँ

ग्रह	पलायन गति
	कि० मी०/सै०
बुध	३.८
शुक्र	१०.४
पृथ्वी	११.३
मंगल	५.१
बृहस्पति	६१
शनि	३६.७
यूरेनस	२१.६
नेपचून	२३.८
प्लूटो	११

समीकरण (२) तथा (३) की सहायता से उन परमाणुओं का भार (μ) जिनका कि तापीय वेग ग्रह की पलायन गति से अधिक हो, निकाला जा सकता है क्योंकि वायुमंडलीय ताप ग्रह की सतह के ताप से कहीं अधिक होता है अतः उपरोक्त विधि से ज्ञात परमाणुओं का भार वास्तविक पलायनशील परमाणुओं के भार से कम ही होता है। फिर भी इस प्रकार से ज्ञात किया हुआ भार विभिन्न ग्रहों की वायुमंडल धारणा-शक्ति का परिचायक होता है।

वायु-मंडल धारणा-शक्ति के अनुसार ग्रहों को निम्न क्रम में रख सकते हैं :

बृहस्पति, शनि, नेपचून, यूरेनस, पृथ्वी, शुक्र, प्लूटो, मंगल तथा बुध।

इसके अतिरिक्त दूरदर्शियों द्वारा ग्रहों के निरीक्षण और परीक्षणों से उनके वायुमंडल का भी पता लगाया जा सकता है। प्रतिबिम्ब के किनारे से आने वाले प्रकाश के वर्णक्रम को देख कर ग्रहों के वायु-मंडल में विभिन्न गैसों की उपस्थिति तथा उनके परिमाण का भी अनुमान लगाया जाता है। ग्रह के वायुमंडल द्वारा विकीर्ण प्रकाश का अध्ययन करके ग्रह के सम्पूर्ण वायुमंडल के परिमाण का भी परिचय प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार विभिन्न ग्रहों के बारे में प्राप्त जानकारी का समावेश सारणी ३ में किया जा रहा है।

सारणी को देखने से यह ज्ञात होता है कि किसी भी ग्रह का वायुमंडल हमारे वायुमंडल जैसा नहीं है, फिर भी मंगल तथा शुक्र ग्रहों के वायु मंडल अन्य ग्रहों की तुलना में कुछ अनुकूल हैं। इनके विषय में विस्तृत विवेचना अगले अध्यायों में होगी। उपरोक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकालना स्वाभाविक होगा कि अन्तरिक्ष अभियान के प्रारम्भिक गन्तव्य चन्द्रमा, मंगल तथा बुध ही होंगे।

सारणी–३

विभिन्न ग्रहों में गैसों की उपस्थिति

ग्रह	पदार्थ	परिमाण (सें मी०)	अनुमान के आधार
बुध			वायु मण्डल शून्य
शुक्र	CO_2	१०^{५}	बादलों का वर्णक्रम
	H_2O	समुद्र	दर्शीय
	N_2	?	वर्णक्रम दर्शीय
	CO	→<१००	वर्णक्रम दर्शीय
पृथ्वी			विस्मत विवरण अगल लख में
मंगल	CO_2	३६००	बादलों का वर्णक्रम दर्शीय
	H_2O	?	
	N_2	१·८ × १०^{५}	सम्पूर्ण दाब नाप
बृहस्पति	CH_4	१·५ × १०^{४}	वर्णक्रम दर्शीय
	NH_3	७००	वर्णक्रम दर्शीय
	H_2	२·७ × १०^{६}	
	He	५·६ × १०^{६}	ग्रह का घनत्व
	N_2	४ × १०^{३}	
	Ne	१·७ × १०^{४}	
शनि	CH_4	३५०००	वर्णक्रम दर्शीय
	NH_3	२००	वर्णक्रम दर्शीय
	H_2	६·३ × १०^{७}	ग्रह का घनत्व
	He	१·३ × १०^{७}	
	N_2	९·५ × १०^{३}	
	N.	२·७ × १०^{४}	
यूरेनस	CH_4	२·२ × १०^{५}	हर्स वर्ग के वर्णक्रम दशाय रूप सेकी गई गणना
	H_2	९ × १०^{६}	
	H_e	२·७ × १०^{७}	
	H_2	४·२ × १०^{६}	
	H_e	८·६ × १०^{५}	
	N_2	४·२ × १०^{६}	
नेपचून	CH_4	३·७ × १०^{५}	
	H_2	राहु की अपेक्षाकृत अधिक	
	N_2		वर्णक्रम दर्शीय
	He		वर्णक्रम दर्शीय

किलेटीकरण—२

किलेटीकारक प्रतिकर्मकों के कुछ उपयोग

हरिहर मिश्र

यह देखा जा चुका है कि यदि परमाणुओं का एक समूह आपस में सम्बन्धित होकर एक वलय बनाता है जिसमें कम से कम एक दाता बन्धन हो तो उस क्रिया को **किलेटिकरण** और क्रिया के फलस्वरूप बने यौगिक को **'किलेट'** (chelate) कहते हैं। किलेट बहुत ही अद्भुत पदार्थ हैं और अनेक विधियों से मनुष्य मात्र की सेवा में प्रयुक्त किये जा रहे हैं।

१. जल को मृदु बनाने में किलेटीकरण

धातु के आयनों की उपस्थिति के कारण जल कठोर हो जाता है और बहुत से कार्यों में प्रयोग किये जाने योग्य नहीं रहता। यह जल अनेक प्रकार से बाधाएँ उपस्थित कर देता है—उदाहरणार्थ साबुन के साथ झाग बनने में बाधा डालना, जल के स्थिर रहने पर धातुओं का अवक्षेपण हो जाना, बर्तनों का रंग खराब कर देना आदि। किलेटीकारक जब इस प्रकार के जल में मिलाये जाते हैं तो वे धातु के उपस्थित आयनों से क्रिया करके उनका "अपहरण" कर लेते हैं। किलेटीकरण हो जाने के कारण धातु के आयनों का प्रभाव जाता रहता है और जल मृदु बन जाता है। ई० डी० टी० ए० (E. D. T. A.), ए० टी० ए० (A.T.A.), सिक्वेस्ट्रीन और बहुत से अन्य पदार्थ, जो किलेटीकारक हैं, इस प्रकार प्रयोग किये गये हैं परन्तु मँहगे होने के कारण अभी तक वे बड़े पैमाने पर इस कार्य पर नहीं लाये जा सके। उनके उत्पादन का मूल्य कम करने की ओर प्रयास किये जा रहे हैं। अधुना वे उत्तम प्रकार के साबुन, शेम्पू आदि में मिलाये जा रहे हैं।

ध्यान देने योग्य बात है कि जल को मृदु बनाने के प्रयत्न अन्य विधियों द्वारा (जिनमें किलेटीकरण क्रिया का उपयोग नहीं होता) भी किये गये हैं। परन्तु इन विधियों में प्रयुक्त यौगिकों की कार्य-क्षमता जल से दीर्घकालीन सम्पर्क के कारण घट जाती है। दूसरी ओर किलेटीकारकों, विशेषतः ई० डी० टी०ए०, के बारे में यह बात भलीभांति स्थापित हो चुकी है कि वे जल के साथ दीर्घ काल तक सम्पर्क में रहने पर भी अपनी शक्ति में तनिक भी कमी नहीं आने देते। जल को मृदु करने में किलेटीकारक के प्रयोग करने का एक कारण यह भी है।

२. खाद्य पदार्थों की सुरक्षा और किलेटीकरण

यह सर्वविदित है कि कटा सेब रखने पर भूरा हो जाता है, संतरे के रस का स्वाद नष्ट हो जाता है, हरी सब्जियाँ खराब हो जाती हैं आदि। पर ऐसा क्यों होता है? इसका कारण यह है कि धातु के आयन, वायु के ऑक्सीजन द्वारा पदार्थों की आक्सीकरण क्रिया को उत्प्रेरित कर देते हैं। अन्वेषकों ने ज्ञात किया है कि धातु का एक भाग पदार्थ के लगभग दस लाख भाग में रासायनिक परिवर्तन ला देने की क्षमता रखता है। किलेटीकारकों, विशेषतः ई० डी० टी० ए०, के साथ किये प्रयोगों से पता चलता है कि इनके मिला देने पर पदार्थों का संरक्षण गुण कई गुना बढ़ जाता है। इसका कारण किलेटीकारक द्वारा धातु से संयोग कर लेना है जिसके

फलस्वरूप धातु के आयन वायुमंडल के ऑक्सीजन के साथ क्रिया करने में सहायक नहीं हो पाते।

इस स्थान पर एक और महत्वपूर्ण बात का वर्णन करना अनुचित न होगा। ई० डी० टी० ए० और इसी श्रेणी के अन्य यौगिकों का प्रयोग आजकल उत्तम प्रकार के मोटर-ईंधन में मिलाने के लिये, जिससे वे संरक्षित रह सकें, भी हो रहा है। अच्छे प्रकार के मोटर-ईंधन साधारणतया शीघ्र ही विच्छेदित हो जाते हैं। उनका राकेट विज्ञान में विशेष महत्व है।

३. रंगाई उद्योग तथा किलेटीकरण

रंगाई उद्योग में आकस्मिक रूप से धातु के आयनों की उपस्थिति प्रायः हानिप्रद होती है, कारण कि रंग स्वयं शक्तिशाली किलेटीकारक यौगिक होते हैं। वे धातु के आयनों से अधिमान्य क्रिया कर लेते हैं, यदि वे उपस्थित हों। इस संयोग का फल प्रायः बुरा होता है, जैसे रंगने वाले रसायनों का रंग परिवर्तित हो जाना या रंग का फीका पड़ जाना। कभी-कभी धातु के आयनों की उपस्थिति के कारण वस्त्र के रेशों में धब्बे पड़ जाते हैं, विशेषकर यदि लौह उपस्थित हो। फलस्वरूप उत्तम रंगाई के लिए धातु के आयनों को "हटा देना" ही ठीक होता है। इस कार्य में किलेटीकारकों की सहायता ली जाती है। वे धातु के आयनों से संयोग कर उनको "हटा देते हैं" और रँग अपना कार्य स्वतन्त्र रूप से कर सकता है। इसी कारण आजकल रँगाई उद्योग में रँगों के साथ-साथ किलेटीकारक भी उपयोग में लाये जाते हैं।

४. विद्युल्लेपन उद्योग तथा किलेटीकरण

यह देखा गया है कि जब धातुओं के लेपन साधारण लवण-विलयनों से कराये जाते हैं तो वे प्रायः अस्थिर, कम चिपकने वाले होते हैं और उत्तम कोटि के नहीं होते। परन्तु जब वे लेपन उचित संकीर्ण-लवण-विलयनों से कराये जाते हैं तो वे सुचिक्कण, चिपकने वाले और उच्च प्रतिरोधी-मान वाले होते हैं। विशेष बात है धातु के आयन की सान्द्रता को भली प्रकार नियंत्रण में रखना। किलेटीकारक यदि चुनकर ठीक तरह मिला दिये जायँ तो धातु के आयनों की सान्द्रता पर नियंत्रण रखा जा सकता है। इस प्रकार बहुत सी धातुओं के सुचिक्कण, चिपकने वाले लेपन सुगमता से प्राप्त किये गये हैं।

५. रोगों का उपचार तथा किलेटीकरण

यह देखा गया है कि किलेटीकारक कभी-कभी क्रिया करके अविलेय लवणों को विलेय बना देते हैं। इस गुण का प्रयोग गुरदे की पथरी को उपयुक्त किलेटीकारकों के उपयोग से गलाने के हेतु किया गया है। इसी सिद्धान्त का प्रयोग हड्डी को विचूनित करने के लिए और विषैली भारी धातुओं को शरीर से निकालने के लिए भी किया जा रहा है। ध्यान देने योग्य बात है कि ई० डी० टी० ए० से किलेटीकरण ही प्लूटोनियम विष के प्रभावों को नष्ट करने का संभवतः एकमात्र उपचार है। किलेटीकरण स्ट्रान्सियम-९० के भयावह प्रभावों से मुक्त करने में भी सहायता कर सकता है। इस दिशा में प्रयोग किए जा रहे हैं। कई स्थानों पर यह देखा गया है कि रेडियसक्रिय पदार्थों की परतें जम जाने पर हटाई जाने के प्रयत्नों के प्रयास में प्रतिरोध उत्पन्न करती हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि उनकी उपस्थिति हानिकारक होती है। किलेटीकरण करके अविलेय रेडियसक्रिय पदार्थों की परतें सुगमतापूर्वक "धोई" जा सकती हैं। किलेटीकरण रेडियसक्रिय पदार्थों से किलेटीकरण करके विलेय किलेट बनाते हैं जो विलायक द्वारा धोकर हटाए जा सकते हैं।

रक्त में ई० डी० टी० ए० मिलाकर यह देखा गया है कि उसे अधिक काल तक संरक्षित और शुद्ध

रक्खा जा सकता है। आजकल रक्त में साइट्रेट का घोल मिलाकर उसका संरक्षण करते हैं।

यह बात बड़ी रोचक है कि यद्यपि हमारे शरीर में बहुत सी धातुएँ विद्यमान रहती हैं, तो भी उनका अवक्षेपण नहीं होता। ऐसा कैसे संभव है? इसका कारण है कि मैलिक, सिट्रिक, लैक्टिक और टारटरिक अम्ल, जो हमारे शरीर में उपस्थित रहते हैं, किलेटीकारक पदार्थ हैं और धातुओं से संयोग करके किलेट बना देते हैं। किलेटीकरण हो जाने के कारण धातुएँ "बन्द" हो जाती हैं और उनका अवक्षेपण नहीं होता। आवश्यकतानुसार वे हमारे शरीर के उपयुक्त स्थानों पर प्राप्त हो जाती हैं।

यहाँ पर हमारे रक्त में उपस्थित विलक्षण पदार्थ हीमोग्लोबिन का वर्णन करना उपयुक्त होगा। हीमोग्लोबिन, जो ऑक्सीजन को हृदय में एकत्रित करता है और हमारे शरीर के विभिन्न भागों में उसे पहुँचाता है, लौह का एक किलेट है।

६. कृषि तथा किलेटीकरण

सर्वविदित है कि पौधों और वृक्षों के स्वस्थ विकास के लिए धातुओं की उपस्थिति परमावश्यक है। प्रायः पौधे धात्वीय पोषक तत्वों की कमी के कारण अस्वस्थ हो जाते हैं उदाहरणतः, लौह **क्लोरेसिस** जिसके कारण पौधे पीले पड़ जाते हैं। विशेषज्ञों के मतानुसार पौधों में लौह की कमी का कारण प्रायः उसका शीघ्रतापूर्वक भूमि में स्थिर हो जाना है, जिसके फलस्वरूप वह पौधों को प्राप्त नहीं हो पाता। लौह को ई० डी० टी० ए० और इसी प्रकार के अन्य किलेटीकारकों के प्रयोग से भूमि में सफलतापूर्वक किलेट में बदला जा चुका है। किलेटीकरण के फलस्वरूप उसका भूमि में "निष्क्रिय होना" रुक जाता है और लौह पौधों को प्राप्त होता रहता है। विशेषज्ञों के मतानुसार किलेटीकृत लौह भूमि में लोहे के स्थिरीकरण और अवक्षेपण को या तो बिल्कुल रोक देता है या कम कर देता है।

उपर्युक्त उदाहरणों से इस बात का स्पष्टीकरण होता है कि किस प्रकार किलेटीकरण की क्रिया कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण है और अच्छे और स्वस्थ पौधे उगाने में सहायक हो सकती है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में हुयी खोजों के अनुसार किलेटीकरण क्रिया का उपयोग करके फलों की, विशेषतः नींबू के वर्ग के फलों की, उपज बढ़ाई और उत्तम बनाई जा सकती है। सेव और अंगूर उगाने में भी किलेटीकरण का प्रयोग किया गया है और उत्साहवर्धक फल प्राप्त हुये हैं।

कृषि में प्राथमिक महत्व के किलेटीकरण का उदाहरण है यौगिक क्लोरोफिल, जो प्रकाश के फोटोनों को ग्रहण करके उनको ऐसे मंडल में भेजता है जहाँ वे प्रकाश संश्लेषण द्वारा रासायनिक क्रिया के लिए आवश्यक ऊर्जा में परिवर्तित हो जाते हैं। यह ऊर्जा वनस्पति-जगत के लिये कार्बन-स्वीकरण के काम आती है। क्लोरोफिल मैगनीसियम का एक किलेट है। इसकी संरचना के अध्ययन से ज्ञात होता है कि क्लोरोफिल के अणु में "तनाव" होता है। फलस्वरूप क्लोरोफिल अस्थाई यौगिक होना चाहिए और यह है भी। यह देखा गया है कि क्लोरोफिल में मैगनीसियम के स्थान पर अन्य धातुएँ लगा देने से बना यौगिक अधिक स्थाई बन जाता है—यथा व्यापक वस्तुओं में जो क्लोरोफिल प्रस्तुत होता है उसमें मैगनीसियम के स्थान पर ताम्र होता है। रासायनज्ञ के लिए यह प्रश्न अब भी एक पहेली ही बना हुआ है कि भूमि में उपस्थित अनेकों धातुओं में से क्लोरोफिल विशेषतः मैगनीसियम को ही क्यों चुनता है।

७. रासायनिक विश्लेषण और अनुसंधान में किलेटीकरण

रासायनिक विश्लेषण में किलेटों का महत्व विशेषतः निम्नलिखित तीन कारणों से है—

१. अनेक किलेट जल में अविलेय होते हैं।

२. किलेटों के निर्मित होने पर प्रायः रंग में परिवर्तन होता है।

३. धातु के क्रिया करने से बने किलेटों के अणुभार प्रायः काफी अधिक होते हैं। फलस्वरूप धातु की थोड़ी मात्रा भी परिमापित की जा सकती है। तीनों ही गुणों का अपने अपने प्रकार से व्यापक उपयोग हुआ है।

(क) किलेटीकरण द्वारा भारमितीय विश्लेषण :—

अनेक किलेट संकीर्ण काफी सुस्थिर होते हैं और उनकी मात्रा का परिमापन भारमितीय विधि द्वारा किया जा सकता है। अवक्षेपों को प्रायः सुखाकर तौला जा सकता है जैसे डाई-मेथिल-ग्लाइआक्सीम द्वारा तनु अमोनिया के घोल में निकेल का परीक्षण और परिमापन। यह परीक्षण बहुत ही सूक्ष्मग्राही होता है और निकेल बड़ी सुगमता से और प्रामाणिकता के साथ परिमापित किया जा सकता है। सबसे उत्तम बात तो यह है कि लगभग २०० से अधिक ज्ञात तत्वों में से निकेल ही इस प्रतिकर्मक द्वारा इस प्रकार अवक्षेपित होता है, यद्यपि किलेट अन्य तत्व भी बनाते हैं।

अन्य अवसरों पर अवक्षेपित धातु को जलाकर धातु को उसके ऑक्साइड के रूप में परिमापित किया जाता है जैसे थोरियम का थोरियम-डाई-ऑक्साइड के रूप में परिमापन।

(ख) किलेटीकरण द्वारा रंगमापी परिमापन :—

यह बताया जा चुका है कि किलेटीकरण के साथ ही प्रायः रंग परिवर्तन भी होता है। इन रंगों का अध्ययन करके धातुओं की उपस्थिति का पता लगाया जा सकता है और उपयुक्त साधनों का प्रयोग करके धातु का भारात्मक परिमापन भी किया जा सकता है। धातुओं के जटिल मिश्रण के अवयवों का परिमापन रंगमापी विधि द्वारा सुगमतापूर्वक किया जा रहा है। रंगमापी परिमापन के लिए एक बहुत ही उत्तम किलेटीकारक प्रतिकर्मक गंधकयुक्त यौगिक डाई-थायाजोन है। यह कहा जाता है कि इस प्रतिकर्मक की सहायता से उपयुक्त धातुओं की सूक्ष्मतम मात्राएँ ($१०^{-७}$ ग्राम तक) ज्ञात की जा सकती हैं।

(ग) किलेटीकरण द्वारा आयतनीय परिमापन :—

प्रायः किलेटीकरण की क्रिया धातुओं के आयतनीय परिमापन में उपयोग की जाती है जैसा निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होता है—

किसी विलयन में मैगनीसियम आयनों के परिमापन के लिए ई० डी० टी० ए० का कोई प्रामाणिक विलयन धीरे-धीरे मिलाया जाता है। अनुमापन का चरमविन्दु ज्ञात करने के लिए एक उपयुक्त रंग, जो मैगनीसियम आयनों से स्वयं किलेट बनाता हो, पर जो किलेट मैगनीसियम-ई० डी० टी० ए० किलेट से कम स्थाई हो, मिला दिया जाता है। जब तक विलयन में मैगनीसियम आयनों का आधिक्य रहेगा, मैगनीसियम ई० टी० डी० ए० किलेट बनाने के साथ साथ मैगनीसियम रंग के साथ भी किलेट बनायेगा। परन्तु जब ई० डी० टी० ए० की समतुल्य मात्रा मिला दी जायेगी तो समस्त मैगनीसियम आयन अधिक स्थायी मैगनीसियम -ई० डी० टी० ए० किलेट बनाने में व्याप्त हो जायेंगे। फलस्वरूप कोई भी मैगनीसियम आयन न होने के कारण रंग आकस्मिक रंग-परिवर्तन दिखायेगा।

इस सिद्धान्त का प्रयोग किसी विलयन में एक से अधिक धातुओं की मात्रा का परिमापन करने के लिए भी किया जा सकता है।

(घ) किलेटीकरण द्वारा आंशिक अवक्षेपण :—

कभी-कभी किसी घोल के अवयवों का परिमापन, जिसमें एक से अधिक धातुओं के आयन उपस्थित हों, आंशिक अवक्षेपण की विधि द्वारा सरलतापूर्वक किया जा सकता है। उदाहरणतः ताम्र और निकेल

के एक विलयन में तनु अमोनिया की उपस्थिति में डाई-मेथिल-ग्लाइऑक्सीम मिलाने पर दोनों धातुएँ किलेट बनाती हैं। परन्तु जबकि निकेल किलेट अविलेय है, ताम्र किलेट विलेय है। अतः केवल निकेल ही अवक्षेपित होगा। इस प्रकार निकेल का परिमापन दूसरी धातुओं की उपस्थिति में आंशिक अवक्षेपण की विधि द्वारा किया जा सकता है।

इस सिद्धान्त का उपयोग करके अनेक धातुओं के परिमापन सफलतापूर्वक किये जा चुके हैं।

८. औषधि विज्ञान और अनुसंधान में किलेटीकरण

यह बताया जा चुका है कि हमारे शरीर में अधिकांश धातुओं की उपस्थिति हानिप्रद है। एक बार प्रवेश पा लेने पर ये धातुएँ सुगमता से शरीर से बाहर नहीं निकलतीं। परन्तु निकेल और रेडियसक्रिय इट्रियम के साथ हुयी डॉक्टरी खोजों ने सिद्ध कर दिया है कि यदि वे धातुएँ किलेटीय अवस्था में हों तो कम हानिकारक सिद्ध होती हैं और आसानी से शरीर के बाहर निकल भी जाती हैं। यह बात अन्य रेडियसक्रिय धातुओं पर भी लागू की जा सकती है और धातु द्वारा विषपान के उपचार की एक सरल विधि निकल सकती है।

जैविक प्रणालियों में धातुओं को नियंत्रित करने के लिए भी किलेटीकरण का उपयोग किया गया है। जैविक-मंडल में ऑक्सीजन वाहकों के नमूनों का कार्य करने वाले संश्लेषित किलेटों का वर्णन करना भी आवश्यक है। हीमोग्लोबिन और हीमोस्यानिन ही प्राकृतिक ऑक्सीजनवाहक है। ये हमारे शरीर के विभिन्न अंगों को ऑक्सीजन पहुँचाते हैं, जैसा कि पहले बताया जा चुका है परन्तु इनका अध्ययन करना बड़ा कठिन है। उनकी रचना बड़ी ही जटिल होती है कारण कि वे दोनों ही प्रोटीन हैं। फलस्वरूप हीमोग्लोबिन और हीमोस्यानिन का प्रयोग उनकी कार्यप्रणाली को समझाने के लिए नहीं हो पाता।

संश्लेषित ऑक्सीजनवाहकों (जो किलेट संकीर्ण है) पर किये गये अनुसंधान बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। उन पर सुगमतापूर्वक कार्य हो सकता है। इस प्रकार के नमूने निम्नलिखित कोबाल्ट-किलेट हैं—

१. बिस-सैलिसिलडिहाइड ऐथिलीन डाई-अमीन कोबाल्ट और

२. कोबाल्ट हिस्टीडीन किलेट

इन किलेटों द्वारा किये गये अध्ययन के फलस्वरूप हीमोग्लोबिन अणुओं की कार्यप्रणाली अधिक भली प्रकार समझने में सहायता मिल रही है।

अब विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि किलेटीकरण की क्रिया का अध्ययन वास्तव में अत्यन्त महत्वपूर्ण और लाभदायक है। यह भी देखा जा चुका है कि किलेट मनुष्यमात्र की सेवा विविध विधिओं से करते हैं। इस क्रिया के अध्ययन के फलस्वरूप अब हम प्रकृति में होने वाली अनेक क्रियाओं को भली प्रकार समझने लगे हैं और इसमें कोई संदेह नहीं कि भविष्य में होने वाले अध्ययन हमारे ज्ञान को बढ़ायेंगे और उसे अधिक परिमार्जित और परिष्कृत रूप देंगे।

अपने अद्भुत गुणों के कारण किलेट, हमारे जीवन में विशेष महत्व रखते हैं। **हारोल्ड वाल्टन** का कथन है कि वे रसायन शास्त्र के सर्वाधिक तीक्ष्ण रसायन हैं।

———

रेशों का प्रकाश विज्ञान

मदन लाल मेहता

जी हाँ, प्रकाश पुंज के रेशे बनाये, बटे व गूँथे जा सकते हैं और उनका विभिन्न कार्यों में उपयोग किया जा सकता है। काफी समय हुआ, जब अंग्रेज वैज्ञानिक **जोह्न टिंडल** ने यह दिखाया कि प्रकाश को घुमावदार रास्ता ग्रहण करने को भी बाध्य किया जा सकता है। उसकी तरकीब सीधी सी थी; एक टंकी की दीवार के छेद से पानी की धार नीचे गिरती थी, टंकी को अन्दर से प्रकाशित करने पर छेद में से निकलने वाला प्रकाश पानी की धार में ही चलता था। यही क्रिया हमसे शायद बहुतों ने प्रकाशित फव्वारों में देखी होगी। अब पानी की तरल धाराओं के बजाय प्लास्टिक या काँच के ठोस रेशे प्रयुक्त होने लगे हैं, जिनमें होकर प्रकाश उनके एक सिरे से दूसरे सिरे तक यात्रा करता है।

ऐसे रेशों की एक लचकीली नली द्वारा हम खिड़की के बाहर दीवार के पीछे की वस्तुएँ भी देख सकते हैं। वैसे पनडुब्बों के "परिवीक्षण यंत्र" (पेरिस्कोप) की बात कई लोगों ने सुनी होगी, जिसमें एक दुबारा मुड़ी नली में मोड़ों पर लगे दो दर्पणों द्वारा परावर्तित होकर प्रकाश देखने वाले तक पहुँचता है **(चित्र १)**। पर यह विधि रेशों वाली विधि से भिन्न है, क्योंकि परिवीक्षण यन्त्र की नली लचकीली न होने से इच्छित आकार में नहीं मोड़ी जा सकती। रेशों वाले विधि की अपनी कमियाँ भी हैं, जिन्हें हम नीचे यथास्थान बतायेंगे।

प्रकाश के इन घुमावदार रास्तों पर चलने का रहस्य वह क्रिया है, जिसे **पूर्ण आन्तरिक परावर्तन** कहते हैं। इसे यों समझ सकते हैं—एक से माध्यम में प्रकाश सीधी रेखाओं में चलता है, पर जब वह एक माध्यम से दूसरे माध्यम में प्रवेश करता है तो अपनी दिशा बदल देता है **(चित्र २)**। दोनों माध्यमों के सीमा धरातल पर आकर प्रकाश का कुछ हिस्सा हमेशा परावर्तित हो उसी माध्यम में लौट जाता है। उसका दूसरा हिस्सा (कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़) परावर्तित होकर दूसरे माध्यम में चला जाता है और शेष प्रकाश या तो सोख लिया जाता है या बिखर जाता है। ये विशेष परिस्थितियाँ तब पैदा होती हैं जब प्रकाश सघन माध्यम से सीमा धरातल तक लगभग उसके समानान्तर आये; इन परिस्थितियों में प्रकाश अपने सघन माध्यम को छोड़ विरल माध्यम में नहीं प्रवेश कर सकता और लगभग पूर्णतः परावर्तित हो जाता है **(चित्र ३)**। यही पूर्ण आन्तरिक परावर्तन है। पूर्ण परावर्तन के लिए प्रकाश रेखा सीमा धरातल पर के लम्ब से कम से कम कितनी झुकी होनी चाहिए, यह उन माध्यमों की सघनता के अन्तर पर निर्भर करती है और इस न्यूनतम कोण को **'उत्तेजनकोण', क्रान्तिककोण** या क्रिटिकल एंगल कहते हैं। 'उत्तेजन कोण' जितना छोटा होगा, पूर्ण परावर्तन की सम्भावनाएँ उतनी ही अधिक होंगी।

तो प्लास्टिक, काँच, पानी या अन्य किसी पारदर्शक वस्तु के रेशों में सीधे मार्ग पर चलता प्रकाश जब उसकी दीवार से टकराता है तो दीवार के पारदर्शक होते हुए भी बाहर नहीं आ पाता, क्योंकि तब
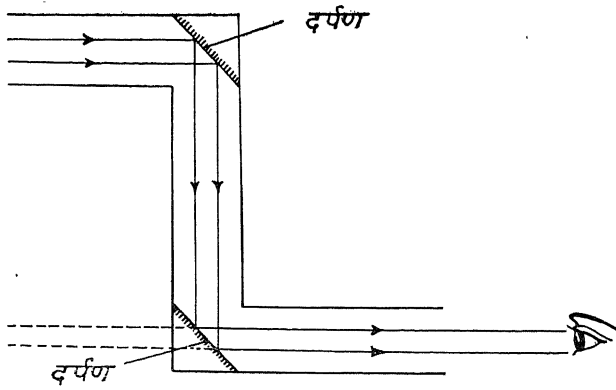
चित्र १—परिवीक्षण यंत्र, इसे पतले दफ्ती के कागज़ व दर्पण के दो टुकड़ो से कोई भी बच्चा बना सकता है और भीड़ में दूर की चीजें देखने के काम लाया जा सकता है।
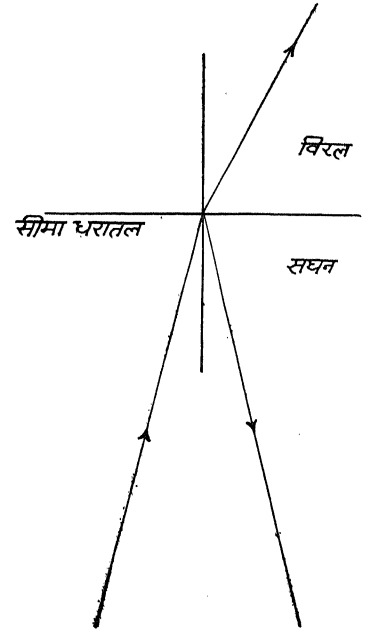
चित्र २—सीमा धरातल पर आकर प्रकाश का कुछ हिस्सा परावर्तित हो जाता है और कुछ हिस्सा मुड़कर दूसरे माध्यम में चला जाता है।
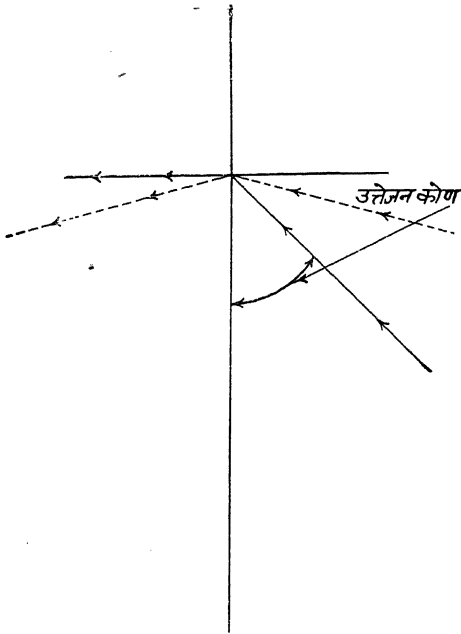
चित्र ३—पूर्ण परावर्तन। बहुत झुकी हुई प्रकाश किरण केवल परावर्तित ही हो सकती है।

चित्र ४—सीधे रेशे में प्रकाश पूर्ण परावर्तन द्वारा एक सिरे से दूसरे सिरे तक चला जाता है।

पूर्ण परावर्तन की सब परिस्थितियाँ विद्यमान रहती हैं **(चित्र ४)**। जैसा चित्र ५ से ज्ञात होगा, रेशे के मोड़ पर प्रकाश रेखा व दीवार के बीच का कोण बढ़ सकता है और इसीलिये मार्ग के घुमाव की मात्रा भी रेशे की मोटाई और उसके उत्तेजन कोण पर निर्भर करती है। छोटे उत्तेजन कोण वाले पदार्थ के अधिक घुमावदार पतले रेशों में भी प्रकाश यात्रा कर लेता है।

इस प्रकार के पतले प्रकाश संचालकों के सामान्यतया दो हिस्से होते हैं; एक अति सघन काँच का केंद्रीय रेशा और उसके चारों ओर अपेक्षतया विरल काँच की एक बहुत पतली खाल। पूर्ण परावर्तन इन दोनों के मिलन-स्तर पर होता है। यह खाल केन्द्रीय रेशे के चिकने धरातल की रक्षा करती है और यदि कई रेशे एक साथ हों तो उनके केंद्रीय रेशों को छूने नहीं देती। आजकल प्रायः काँचों के सतर्कतापूर्ण चुनाव से ऐसे रेशे बनाये जा सकते हैं, जिनका उत्तेजन कोण ५०° तक छोटा हो। ऐसा प्रकाश चालक किसी भी दिशा से अपने सिरे पर पड़ने वाले प्रकाश को अपने अन्दर कर लेगा।

इस विधि से प्रकाश कितनी दूर भेजा जा सकता है? काँच प्रकाश के कुछ भाग को सोख लेता है, और प्रेषण दूरी बढ़ने के साथ-साथ प्रकाश मन्द हो जाता है। फिर भी रेशों का ७ फीट लम्बा रस्सा आधे प्रकाश को दूसरे सिरे तक पहुँचा देता है। २५ फीट लम्बे रस्से कुछ कामों के लिए काफी प्रकाश प्रेषित कर लेते हैं और ऐसे रस्से की १५० फीट दूरी पार करते करते लगभग सारा प्रकाश सोख लिया जाता है।

जहाँ काँच या प्लास्टिक के रेशों के रस्सों में लचकीले होने का गुण है, वहाँ उसमें प्रतिबिम्ब को अलग-अलग प्रकाश बिन्दुओं में बाँट देने का आवश्यक दोष भी है। अतः प्रतिबिम्ब के बिलकुल ठीक होने के लिए न रस्से में बट होना चाहिये और न विभिन्न रेशे उलझे या गुँथे हुए ही होने चाहिये। पर यह अपने आप में कोई दोष नहीं, क्योंकि कुछ उपयोग के लिये हम उन्हें जानबूझ कर उलझा देना चाहेंगे। प्रतिबिम्ब के अलग-अलग बिन्दुओं से बने होने के कारण हम उसकी सूक्ष्मताओं को भी एक सीमा तक ही देख सकते हैं।

प्रतिबिम्ब के बिन्दुपने से गतिशील अवलोकन द्वारा छुटकारा पाया जा सकता है। इसमें रस्से के दोनों सिरों को साथ-साथ एक ही दिशा व गति से बिल्कुल एक ही तरह से चारों तरफ घुमाया जाता है। इस तरह प्रतिबिम्ब बिल्कुल स्थिर रहता है और प्रकाश के एक सा फैलने से उसका अलग-अलग बिन्दुपना अदृश्य हो जाता है।

पर यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक अवस्था में गतिशील अवलोकन अनुकूल ही रहे। ऐसी स्थिति में **'गहन जड़ अवलोकन'** काम में लिया जा सकता है। इसमें प्रतिबिम्ब को दो या तीन पतली पारदर्शक फिल्मों में से होकर देखा जाता है। हर फिल्म प्रकाश को कुछ-कुछ एक सा फैला देती है। पर इस क्रिया में प्रतिबिम्ब मन्द हो जाता है क्योंकि फिल्में प्रकाश सोखती हैं।

इन काँच रेशों को बनाने के लिये एक सघन काँच की छड़ को एक विरल काँच की नली में बिठा कर विशेष प्रकार की मिट्टी में गर्म करते हैं, फिर उसका एक सिरा खींच कर वांछित मोटाई का रह जाने पर एक घूमते हुए ढोल पर सिलसिलेवार स्तरों में लिपटाया जाता है। इस तरह लगभग १/५० मिलीमीटर व्यास के एक सदृश रेशे खींचे जा सकते हैं। और भी पतले रेशे खींचना हो तो पहले वाले कुछ रेशों को साथ मिला, गरम कर फिर पहले की भाँति खींचना पड़ता है। इस तरह दूसरी बार में रेशों का व्यास लगभग १/१००० मिलीमीटर तक घटाया जा सकता है। इन रेशों के रस्से द्वारा एक मिलीमीटर में लगभग ५०० रेखायें तक अलग-अलग
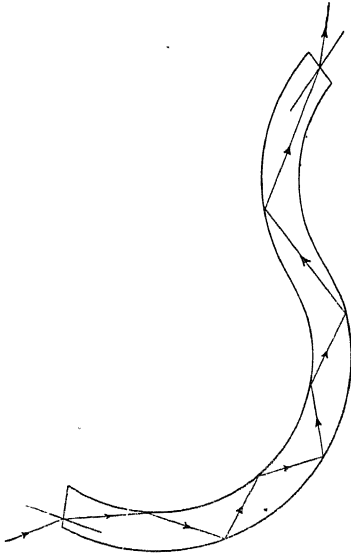
चित्र ५—मुड़े रेशे में में प्रकाश-प्रेषण
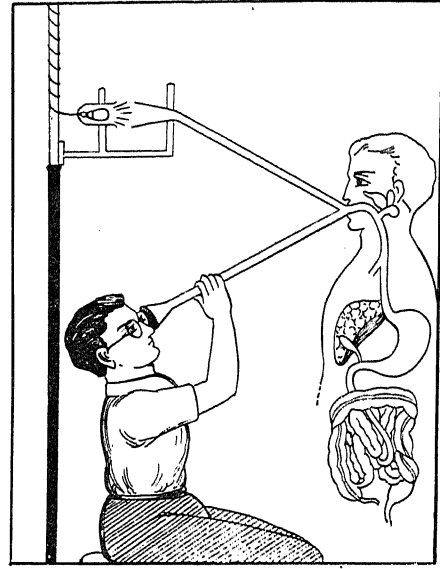
चित्र ७ (डाक्टर—रोगी के पेट को सहला कर रेशावीक्षण यन्त्रको इधर उधर चलाते हुए) "हैं, यह क्या? बुखार में बेर और कचौरियाँ भी !
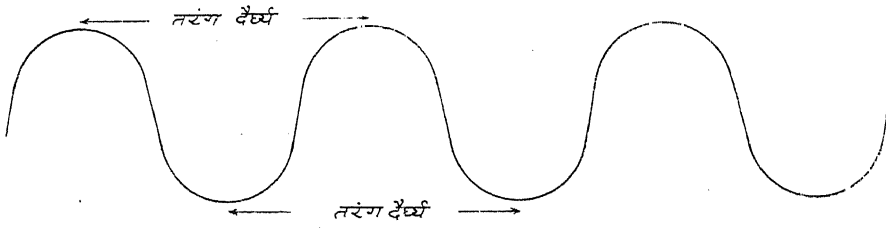
चित्र ६—लहरों की लम्बाई
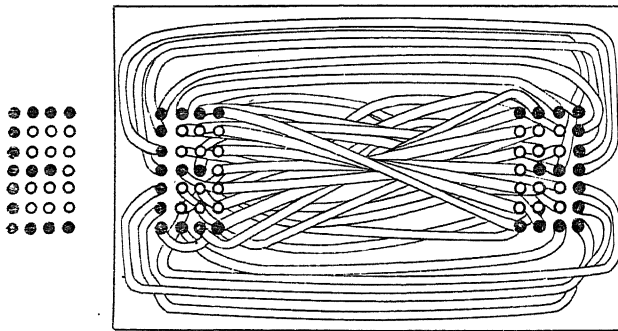
चित्र ८—गुप्त रूप से समाचार भेजने के लिए उलझे रेशे के रस्से का उपयोग :—बायीं ओर लिखा 'E' रेशों के उलझे रस्से से देखने पर दायीं ओर जैसा दिखाई देगा। दायीं ओर के चित्र को फिर उसी रेशे में होकर बाईं ओर से देखने से 'E' दिखलाई देगा।

देखी जा सकती हैं। और भी पतले रेशे खींचे जा सकते हैं, पर तब वे प्रकाश के सामान्य नल का काम नहीं करते। चूँकि प्रकाश तरंगों द्वारा चलता है और यह तरंग-दैर्ध्य प्रायः ४/१०००० मिलीमीटर होती है; इसके लगभग दुगुने या कम व्यास के रेशों में प्रकाश का परिचालन सामान्य नियमों से न होकर क्वांतम या तरंग-गति सिद्धान्त के नियमों से होता है।

तरंग सिद्धान्त के अनुसार प्रकाश विद्युत चुंम्बकीय तरंगों से बना है, जो तालाब में पानी की लहरों की भाँति किसी रुकावट के उस पार भी मुड़कर जा सकती हैं। दोनों तरह की तरंगों के कई गुण एकसे हैं; अन्तर केवल तरंग-दैर्ध्य का है। कोई भी तरंग अपनी लंबाई अथवा किसी भी उठे हुए हिस्से से लेकर अन्य उठे हुए हिस्से की दूरी (चित्र ६) से सैकड़ों गुना चौड़ी रुकावटों को नहीं पार कर सकती। जहाँ पानी की तरंगों की लंबाई (तालाब में) कुछ सेंटीमीटर से कुछ मीटरों (समुद्र में) तक होती है वहाँ प्रकाश का तरंग दैर्ध्य बहुत छोटा अथवा ४/१०००० मिलीमीटर होता है; और यही कारण है कि कुछ सेंटीमीटर चौड़ी रुकावटों को जहाँ पानी की तरंगे मुड़कर पार कर जाती हैं वहाँ प्रकाश की तरंगें इतना न मुड़ पाने के कारण उसे पार नहीं कर पातीं, अपने तरंग-दैर्ध्य के लगभग चौड़ी रुकावट को प्रकाश भी उतनी ही सरलता से मुड़ कर पार कर लेता है।

जब रेशे की मोटाई प्रकाश के तरंग-दैर्ध्य से चार-पाँच गुना अधिक या कम होती है तो प्रकाश सीधी रेखा-ओं में नहीं चलता और न पूर्ण परावर्तन ही सामान्य क्रिया रह जाती है। ऐसी दशा में कुछ विशिष्ट लम्बाई से छोटी तरंगों वाला प्रकाश ही-कुछ विशिष्ट रंग ही-रेशे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक यात्रा कर सकते हैं और इस यात्रा के ढंग भी सीमित होते हैं जिनकी संख्या रेशे के व्यास के साथ घटती जाती है। ऐसे पतले रेशों का रस्सा रंगों के काम आ सकता है।

प्रकाश का रंग उसकी तरंगों की लंबाई पर निर्भर करता है, जैसे लाल प्रकाश की तरंगें हरे या पीले प्रकाश की तरंगों से अधिक लम्बी होती है। बहुत पतले रेशे केवल छोटी प्रकाश तरंगों को ही जाने देते हैं और बड़ी तरंगों को रोक लेते हैं जैसे एक छलनी छोटे छोटे कणों को निकल जाने देती है और बड़े कणों को रोक लेती है।

इसी तरह परावर्तन या पूर्ण परावर्तन भी बिल्कुल धरातल पर ही नहीं होता। वास्तव में प्रकाश दूसरे माध्यम में भी कुछ दूर तक चले जाने पर ही लौट पाता है और यह दूरी लगभग प्रकाश के तरंगदैर्ध्य जितनी होती है। यदि नग्न (भले ही मोटे हों) रेशे बहुत पास पास सटा कर रखे जायँ ताकि उनके छूने में एक मिलीमीटर के कुछ हजारवें हिस्सों की ही कसर रह जाय, तो एक रेशे में चलने वाला प्रकाश जब उसके धरातल पर आता है तो उसका कुछ अंश रेशे की बाहर की हवा में भी निकल आता है और उसी रेशे में वापस लौट सकने के पहले ही दूसरे रेशों द्वारा पकड़ लिया जाता है। इसलिये नग्न रेशों के रस्से द्वारा बना प्रतिबिम्ब किनारों पर आस-पास फैल कर धुँधला हो जाता है, और उसकी सूक्ष्मता भी स्पष्ट नहीं रह पाती। रेशों का चर्म मंडित होना इसीलिये आवश्यक है।

इन लचकीली प्रकाश चालिकाओं (रेशों की रस्सियाँ) को डॉक्टर लोग शरीर के अंगों, जैसे आमाशय के भीतरी हिस्सों को देखने के काम में ला सकेंगे। एक नली द्वारा एक तेज लैंप का प्रकाश पेट के अन्दर तक पहुँचेगा और साथ लगी दूसरी नली से डॉक्टर सब कुछ देख लेगा। नलियों के लचकीले होने से रोगी को भी अधिक कष्ट नहीं होगा (चित्र ७)।

शंकु के आकार के प्रकाश रस्से जिनका एक मुँह चौड़ा व दूसरा मुँह संकरा हो, प्रकाश संचित करने के काम आ सकते हैं। इस तरह व्यर्थ जाने वाले प्रकाश को भी ज्योतिर्विद लोग अपने दूरवीक्षण

यन्त्र द्वारा मन्द नक्षत्रों को या स्पैक्ट्रोस्कोप द्वारा धूमिल रंग-रेखाओं को देख सकेंगे। लेन्स बनाने वाले जानते हैं कि प्रतिबिंब को मेढ़ा-मेढ़ा कर देने के या उसके रंगों को छितरा देने के कुछ दोष दूर करने में उन्हें कितने परिश्रम व सावधानी की आवश्यकता पड़ती है; फिर भी कुछ दोष रह ही जाते हैं। रेशों के ऐसे रस्से जिनका एक मुँह गोलाकार और लेंस पर फिट बैठने वाला हो व दूसरा मुँह सपाट हो, उनके काम को बहुत हलका और आसान बना देंगे।

रेशों के एक गुँथे या उलझे हुए रस्से के एक सिरे के सामने यदि कोई लिखित सूचना रख कर दूसरे सिरे के सामने कैमरा रख उसका फोटो लिया जाय तो इस फोटो को पहचानना असंभव है, पर यदि इसी फोटो को उसी रस्से के दूसरे सिरे, जिससे फोटो लिया गया था, के सामने रख पहले सिरे से देखा जाय तो फोटो पर की सूचना सरलता से पढ़ी जा सकती है **(चित्र ८)**। यदि ठीक एक ही तरह से उलझे दो रस्से तैयार किये जा सकें, तो इस तरह समाचार या चित्र गुप्त रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान भेजे जा सकते हैं। सेना में इसके उपयोग के लिये कोई ऐसी विधि ढूँढनी पड़ेगी, जिससे ठीक एक ही जैसे उलझे हुए कई रस्से बनाये जा सकें और इनमें से किसी एक या अधिक के दुश्मन के हाथ लग जाने पर सबको एकदम वदला जा सके। यद्यपि अब तक कोई ऐसी विश्वासपात्र विधि किसी को ज्ञात नहीं परन्तु यह काम बहुत कठिन भी नहीं है।

नग्न रेशों (जिनमें केवल केंद्रीय सघन रेशा होता है और विरल काँच की खाल नहीं होती) के भी उपयोग सोचे जा सकते हैं, जैसे एक कुछ मोटा अकेला नग्न रेशा तरल पदार्थों के आवर्तनांक नापने के काम आ सकता है। प्रकाश की गति अलग-अलग पदार्थों में अलग अलग होती है; शून्य में यह लगभग ३ लाख किलोमीटर (१८६४०० मील) प्रति सेकण्ड है। शून्य में प्रकाश की गति का किसी पदार्थ में उसकी गति से जो अनुपात होता है, उसे उस पदार्थ का 'आवर्तनांक' कहते हैं। जैसे साफ मीठे पानी में प्रकाश की गति सवा दो लाख किलोमीटर प्रति सेकंड है, तो उसका आवर्तनांक (तीन में सवा दो का भाग देने से) ४/३ हुआ। उच्च आवर्तनांक वाले पदार्थों में प्रकाश मन्द गति से चलता है और ये पदार्थ सामान्यता सघन होते हैं। ऊपर जहाँ जहाँ भी काँच के 'सघन' या 'विरल' होने की चर्चा है, वहाँ हमारा अभिप्राय उनके वास्तविक घनत्वसेन होकर उनके आवर्तनांक के अधिक या कम होने से है।

रेशे का उत्तेजन कोण उसके आवर्तनांक और उसके चारों ओर के माध्यम के आवर्तनांक पर निर्भर करता है। इन आवर्तनांकों में जितना कम अन्तर होगा, रेशे का उत्तेजन कोण उतना ही बड़ा होगा और एक सिरे से प्रवेश करने वाले प्रकाश का उतना ही अधिक हिस्सा उसकी दीवारों से बाहर निकल विलीन हो जायेगा। यदि रेशे को द्रव में डुबोया जाय, उसके एक सिरे को प्रकाशित किया जाय और दूसरे सिरे तक पहुँचने वाले प्रकाश की मात्रा फोटोसेल द्वारा नापी जाय तो द्रव के 'आवर्तन गुणक' का अनुमान सही-सही लगाया जा सकता है। विभिन्न काँचों के ऐसे रेशों वाला यंत्र सभी द्रवों के आवर्तनांक नापने के काम आ सकता है। फोटो सेल की विद्युत धारा को सुविधाजनक विशेष नियन्त्रण यन्त्र से भेज कर किसी रासायनिक फैक्टरी में द्रवों के गुणों को स्वयं चालित ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि यह विधि अपारदर्शक द्रवों के लिये भी उतनी ही लाभदायक है, जितनी पारदर्शक द्रव्यों के लिये।

उपयोगों की दृष्टि से रेशों का प्रकाश-विज्ञान अभी अपनी बाल्यावस्था में है। अमेरिका में और यूरोप के कई देशों में इसको हर तरह से उपयोगी बनाने के प्रयत्न में अनुसंधान चल रहे हैं और इसमें कोई संदेह नहीं कि निकट भविष्य में यह हमारे दैनिक जीवन में बिल्कुल घुलमिल जायगा।*

ईंधन सेल

विष्णु कुमार श्रीवास्तव

सभ्यता की शक्ति के सबसे महत्वपूर्ण स्रोत कोयला, पेट्रोलियम अथवा प्राकृतिक गैस में कार्बन के रासायनिक बंध उपस्थित हैं। पेट्रोल इंजिन, डीजल इंजिन, रेलवे इंजिन, वाष्प टरबाइन, पानी के जहाज, वायुयान, डायनैमो आदि अनेकों प्रकार के यंत्र इसी कार्बन की रासायनिक शक्ति द्वारा उत्पन्न उष्मा शक्ति से कार्य करते हैं। परन्तु इस प्रकार उत्पन्न रासायनिक शक्ति को यांत्रिक शक्ति में परिवर्तित करने की वर्तमान विधियाँ संतोषजनक नहीं हैं क्योंकि इनमें बहुत सी रासायनिक शक्ति व्यर्थ चली जाती है। उदाहरणतः, जब उष्मा शक्ति से १०००° सें० की भाप बनाई जाती है जो डायनैमो चलाने के लिए वाष्प टरबाइन द्वारा यांत्रिक शक्ति में बदल दी जाती है, तो हमें कुल व्यवहृत उष्मा शक्ति का लगभग ३४% ही विद्युत शक्ति के रूप में प्राप्त होता है, क्योंकि व्यवहृत शक्ति का १०% दहन क्रिया में, ४५% उष्मा-गति-विज्ञान के अनुसार, टरबाइन में उष्मा को यांत्रिक शक्ति में बदलने में, ९% घर्षण और उष्मा की क्षति में एवं २% डायनैमों में उष्मा क्षति के कारण बेकार चला जाता है और विद्युत शक्ति के रूप में नहीं प्राप्त होता। इस प्रकार अच्छे से अच्छे उष्मा इंजिन की क्षमता भी ३५-४०% तक ही सीमित है; लगभग आधी से अधिक शक्ति व्यर्थ ही चली जाती है। परन्तु इसमें यंत्रों का क्या दोष? घर्षण के कारण और उष्मा-गति-विज्ञान के द्वितीय नियम के अनुसार इन यंत्रों की क्षमता ३०% से अधिक हो ही नहीं सकती अतः अधिक से अधिक रासायनिक शक्ति को यांत्रिक अथवा विद्युत शक्ति के रूप में परिवर्तित करने के उद्देश्य से रासायनिक शक्ति को सीधे विद्युत शक्ति में परिवर्तित करने के प्रयत्न किए गए हैं और किये जा रहे हैं और इस दिशा में वैज्ञानिकों को आशातीत सफलता भी मिली है। सन १८३९ में इंगलैंड के वैज्ञानिक **सर विलियम ग्रोव** ऑक्सीजन-हाइड्रोजन की जलोत्पादक रासायनिक क्रिया में उत्पन्न हुई रासायनिक शक्ति

---

* ('साइंटिफिक अमेरिकन' के नवम्बर १९६० अंक में निकले एक निबंध से प्रोत्साहित)

नोटः इन अनुसंधानों में भारतीयों का भी महत्वपूर्ण हाथ है। 'ईलिनुआ इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी संयुक्त राज्य अमेरिका' के 'आर्मर रिसर्च फाउंडेशन' में श्री नरीन्द्र एस० कापानी के अनुसंधान इस बारे में प्रशंसनीय हैं। इस विषय में अधिक रुचि रखने वाले श्री कापानी के लेखों को पढ़ें जो Journal of Optical Society of America (१९५७) में प्रकाशित हुए हैं।

को सीधे विद्युत धारा में बदलने में सफल हुये। तत्पश्चात् **लुडविग मॉण्ड** और **कार्ल लेंजर** आदि वैज्ञानिकों ने इस विधि में सुधार किये तथा इस विधि में काम आने वाले उपकरण को **ईंधन सेल** (fuel cell) के नाम से पुकारा। परन्तु डायनैमो में अधिकाधिक उपयोग होने के कारण इस दिशा में वैज्ञानिकों का ध्यान नहीं गया। फिर भी सन् १९४४ से इस दिशा में पुनः काम प्रारम्भ हो गया है और किसी हद तक सफलता भी मिली है।

आधुनिक वैज्ञानिक युग में ईंधन सेलों की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। उपग्रह में काम आने वाले सेल ऐसे होने चाहिए जो हल्के हों एवं अधिक विद्युत शक्ति दे सकें। ईंधन सेल, जिनकी पट्टिकायें जल्दी खराब नहीं होतीं और जिनमें हल्के द्रव अथवा गैसीय ईंधन भरे होते हैं, इस कार्य के लिए बहुत ही उपयुक्त हैं। यातायात के साधनों में भी इनकी बड़ी आवश्यकता है क्योंकि विद्युत मोटर, डीजल मोटर से अधिक सुगम होती है क्योंकि विद्युत मोटर डीजल मोटर की अपेक्षा अधिक तीव्र-गामी, शीघ्र वेगवर्धन वाली एवं शांत होती हैं और इनसे दुर्गन्धयुक्त गैसें भी नहीं निकलतीं। परन्तु लेड बैटरी से चलने वाली ट्रकों की संख्या बहुत कम है क्योंकि लेड बैटरी को चार्ज करने में बहुत समय लगता है और इनका शक्ति-भार अनुपात भी बहुत कम है। अतः गैसोलीन या डीजल के ईंधन-सेलों के उपयोग से सुगम और सस्ते यातायात के साधन भी सुलभ हो सकते हैं क्योंकि ईंधन सेलों के उपयोग से मोटरों की क्षमता भी ३०-४०% से बढ़कर लगभग ७५% हो जायगी। परन्तु इस दिशा में अभी विशेष प्रगति की आवश्यकता है।

इन सेलों की क्रिया का सिद्धान्त बहुत सरल है। ऑक्सीजन और हाइड्रोजन जलकर पानी बनाते हैं। पानी की अपेक्षा तत्व के रूप में इन ईंधनों में अधिक शक्ति होती है जिसके कारण ये पानी बनाते हैं और बची हुई शक्ति उष्मा के रूप में मुक्त करते हैं। यह क्रिया साधारण ताप पर नहीं होती क्योंकि दहन अवस्था तक पहुँचने के लिए ईंधन के अणुओं को एक निश्चित **'शक्ति स्तर'** तक उत्तेजित अथवा सक्रिय होना चाहिए जिनके लिए कुछ शक्ति (उच्च ताप) की आवश्यकता होती है। ऑक्सीजन व हाइड्रोजन गैसें लगभग ५००° सें० पर विस्फोट के साथ संयोग करती हैं। परन्तु जिस प्रकार एक फुट ऊँचे चबूतरे पर चढ़ सकने वाला मनुष्य २ सीढ़ियों की सहायता से कई बार थोड़ा-थोड़ा चढ़ कर १०-१५ फीट ऊँची छत तक पहुँच जाता है उसी प्रकार निम्न शक्ति-स्तर वाले अणुओं को भी धीरे-धीरे कई पदों पर साधारण ताप पर ही निश्चित उच्च-शक्ति-स्तर पर लाया जाता है और उपर्युक्त क्रिया साधारण ताप पर हो जाती है।

ऑक्सीजन-हाइड्रोजन ईंधन-सेल में ऑक्सीजन और हाइड्रोजन साधारण ताप पर संयोग करते हैं। अणु कई पदों में क्रिया करके सक्रियता के शक्ति-स्तर तक पहुँचते हैं। सेल इस प्रकार बनाया गया है कि रासायनिक क्रिया का एक महत्वपूर्ण परिणाम है ऋणाणुओं का ऋण ध्रुव से धन ध्रुव तक पहुँचना जिससे विद्युत धारा उत्पन्न होती है। इस प्रकार बहुत सी रासायनिक शक्ति उष्मा के बजाय विद्युत शक्ति में परिवर्तित की जाती है। सेल में दो रंध्र-युक्त पट्टिका के आकार के ध्रुव होते हैं जिनकी सतह पर उत्प्रेरक लगे होते हैं। कास्टिक सोडा अथवा कास्टिक पोटाश का विलयन विद्युद्विश्लेष्य का कार्य करता है। हाइड्रोजन गैस जो ऋणाग्र पर प्रसारित होती है उत्प्रेरक द्वारा सक्रिय होकर परमाणु की अवस्था में ऋणाग्र की सतह पर चिपक जाती है। हाइड्रोजन परमाणु विद्युद्विश्लेष्य हाइ-ड्राक्सिल आयनों से क्रिया करके जल बनाते हैं और अपने ऋणाणु को दे देते हैं। उत्पन्न जल विद्युद्विश्लेष्य

में मिल जाता है। यह क्रिया ऑक्सीजन की क्रिया में भी सहायक होती है। धनाग्र पर हाइड्रोजन की ही भाँति ऑक्सीजन भी परमाणुओं के रूप में चिपक जाता है। ऑक्सीजन परमाणु पानी (H_2O) से क्रिया करके हाइड्रॉक्सिल आयन बनाते हैं। इस क्रिया में भी उत्प्रेरक सहायता करता है। ऋणाणु विद्युद्विश्लेष्य से होकर हाइड्रोजन-ध्रुव तक पहुँच कर विद्युत-चक्र पूरा करते हैं।
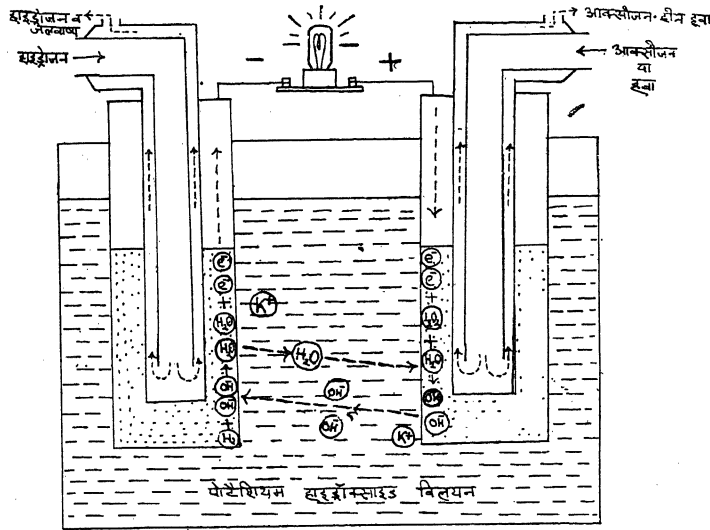
हाइड्रोजन-आक्सीजन-ईंधन सेल

जब विद्युत चक्र बन्द होता है तब हाइड्रोजन ध्रुव पर हाइड्रोजन द्वारा छोड़े गये ऋणाणु एकत्र हो जाते हैं जो पोटैशियम के धनात्मक आयन को आकर्षित करते हैं फलतः हाइड्रोजन ध्रुव के चारों ओर धनात्मक पोटैशियम आयनों की एक तह जम जाती है। उसी प्रकार ऑक्सीजन ध्रुव धनात्मक होने के कारण अपने चारों ओर ऋणात्मक हाइड्रॉक्सिल आयनों की तह बना लेते हैं। इन तहों के कारण गैसों और विद्युद्विश्लेष्य में आगे प्रतिकिया नहीं होने पाती। परन्तु विद्युत चक्र पूरा होते ही हाइड्रोजन-परमाणु हाइड्रॉक्सिल आयनों से क्रिया करके जल बनाते व ऋणाणु मुक्त करते हैं जो ऑक्सीजन ध्रुव पर जाते हैं और ऑक्सीजन परमाणुओं से संयोग करके हाइड्रॉक्सिल आयन बनाते हैं जो विद्युद्विश्लेष्य से होकर हाइड्रोजन ध्रुव पर पहुँच कर विद्युत चक्र पूरा करते हैं। इस प्रकार ऋणाणुओं के प्रवाह से विद्युत धारा उत्पन्न होती है।

जब वाह्य अवरोध अधिक होता है तब प्रक्रिया साधारण गति से होती है और रासायनिक शक्ति का अधिकांश भाग विद्युत शक्ति में बदल जाता है। यद्यपि कुछ शक्ति गैस परमाणुओं को 'शक्ति-स्तर' तक उत्तेजित करने में व्यय हो जाती है परन्तु अवरोध कम होने पर शक्ति की अधिकांश मात्रा परमाणुओं को सक्रिय बनाने में व्यय हो जाती है। यहाँ तक कि शून्य अवरोध होने पर प्रक्रिया लगभग दहन के समान तीव्र हो जाती है और सारी रासाय-

निक शक्ति परमाणुओं को सक्रिय बनाने में व्यय हो जाती है।

परमाणुओं को सक्रिय बनाने में व्यय हुई शक्ति के अतिरिक्त रासायनिक शक्ति गैस अणुओं को ध्रुवों से प्रक्रिया क्षेत्र तक लाने में, हाइड्राक्सिल आयनों को प्रवाहित करने में तथा ध्रुवों के विद्युत अवरोध के विरुद्ध ऋणाणुओं को प्रवाहित करने में भी व्यय होती है। अतः रासायनिक शक्ति का लगभग ७५% ही विद्युत शक्ति के रूप में मिल पाता है।

कार्ल कॉर्डर्च के ईंधन सेल में रंध्रयुक्त कार्बन के ध्रुव काम में लाये जाते हैं। हाइड्रोजन ध्रुव पर प्लैटिनम अथवा पैलेडियम और ऑक्सीजन ध्रुव पर कोबाल्ट ऑक्साइड, प्लैटिनम अथवा चाँदी के सूक्ष्म कण लगे होते हैं जो उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। ध्रुवों पर पैराफिन की एक पतली तह लगा दी

दूसरा हाइड्रोजन-आक्सीजन-ईंधन-सेल
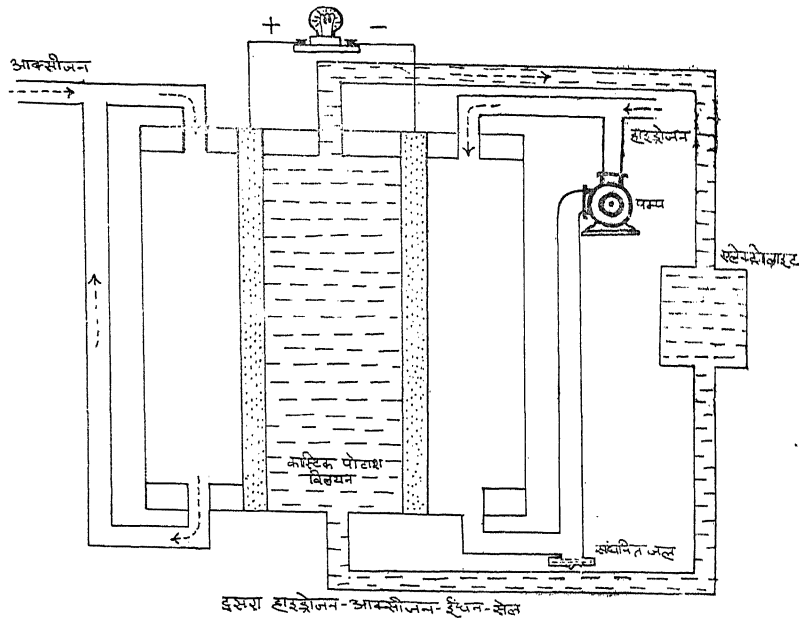
जाती है जिससे कार्बन ध्रुवों के रंध्र पानी से भर कर बन्द न हो जायँ। पैराफिन की तह जल के अणु एवं आयनों को ध्रुवों से गुजरने में बाधा नहीं डालती। प्रायः ध्रुव एक-अक्षीय खोखली नलियों के आकार के होते हैं जिससे उनके बीच की दूरी कम रखी जा सके। संयुक्त राज्य अमेरिका की सेना में उपरोक्त सेल बहुत उपयोग किया जाता है। यह सेल वर्षों तक बिना किसी दोष के काम देते रहते हैं। चल-रडार में यह सेल बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह सेल साधारण ताप पर कार्य करता है।

निम्न-तापीय ऑक्सीजन-हाइड्रोजन ईंधन सेलों का प्रयोग अत्यंत सीमित है, क्योंकि हाइड्रोजन बहुत मँहगा पड़ता है और शक्ति-आयन-अनुपात (लगभग १ किलोवाट घंटा प्रति घन फुट) निम्न होने के कारण गाड़ियों में प्रयोग किये जाने में बहुत असुविधाजनक होते हैं क्योंकि ये बहुत जगह घेरते हैं अतः इनमें सुधार की आवश्यकता है। यदि

अधिक दाब पर गैसें भेजी जायँ तो वे ध्रुवों से तीव्र गति से प्रसारित होंगी अतः रासायनिक प्रक्रिया की गति भी अधिक होना चाहिए। प्रक्रिया की गति को सेल के ताप में वृद्धि करके अधिक की जा सकती है। उष्मा-क्षति रोकने के लिए ऐसे सेलों को कुचालकों से ढका रख सकते हैं।

फान्सिस टी० बेकन ने उपर्युक्त उद्देश्य से ऑक्सीजन हाइड्रोजन ईंधन-सेल में सुधार किए। बेकन के सेल में ८०० पौंड प्रति वर्ग इंच दाब पर गैसें भेजी जाती हैं और सेल का ताप २५०° सें० रखा जाता है। इसमें १/१६ इंच मोटी निकेल की रन्ध्रयुत पट्टिका ध्रुव का काम करती है और पोटैसियम हाइड्रॉक्साइड का विलयन विद्युद्विश्लेष्य के रूप में व्यवहृत होता है। इस सेल का शक्ति-आयतन अनुपात निम्न ताप ईंधन सेल की अपेक्षा छः गुना अधिक है। इसका शक्ति-भार अनुपात (लगभग १५० वाट प्रति पाउंड) भी लेड बैटरियों के शक्ति-भार-अनुपात (लगभग १० वाट प्रति पाउंड) का पन्द्रह गुना है।

यद्यपि बेकन के सेल से अधिक शक्ति मिलती है परन्तु हाइड्रोजन जैसे ईंधन के प्रयोग के कारण यह सेल भी बहुत मँहगा पड़ता है। सस्ती विद्युत-शक्ति के उत्पादन के लिए इन सेलों में कोल-गैस, प्राकृतिक गैस अथवा वाष्पीकृत गैसोलीन आदि सस्ते ईंधनों का प्रयोग होना चाहिए और क्रिया करते समय सेल का ताप भी अधिक (५००° सें० या इससे अधिक) होना चाहिए। स्पष्ट है कि इन सेलों में लवणों के विलयन विद्युद्विश्लेष्य के रूप में प्रयुक्त नहीं किये जा सकते क्योंकि उच्च ताप पर
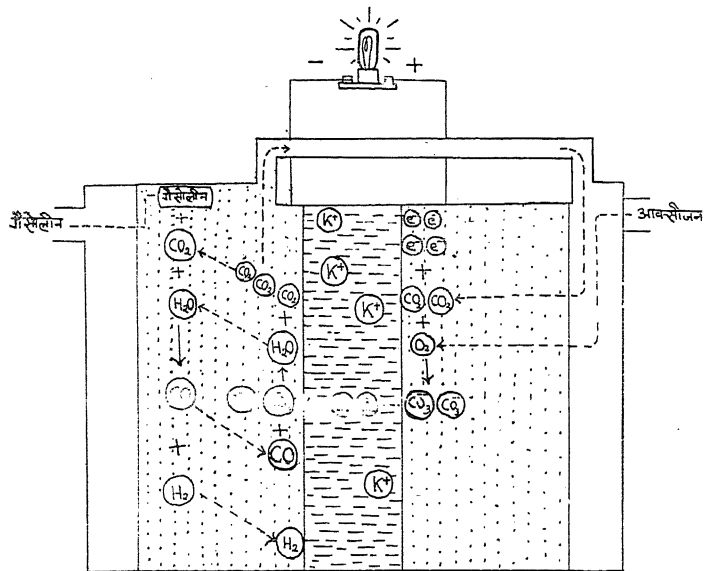
गैसोलीन-आक्सीजन ईंधन सेल

इनका जल वाष्पीकृत हो जायगा। इनमें पिघला हुआ सोडियम कार्बोनेट अथवा पोटैशियम कार्बोनेट (जिसमें द्रवणांक कम करने के लिए लिथियम कार्बोनेट की अल्प मात्रा मिला दी जाती है) विद्युद्विश्लेष्य का काम देता है। विद्युद्विश्लेष्य एक रंध्रयुक्त अग्निसह वस्तु के बर्तन में धातु अथवा धात्वीय ऑक्साइड की ध्रुव-पट्टिकाओं के बीच में रखा होता है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रयुक्त

ईंधन हाइड्रोजन की भाँति ही ऑक्सीजन से सीधे संयोग करे। प्रायः ईंधन उष्मा द्वारा कार्बन मोनोक्साइड व हाइड्रोजन में (सेल के अन्दर अथवा बाहर) विच्छेदित कर लिया जाता है। ऋणाग्र से हाइड्रोजन और कार्बन-मोनोक्साइड सेल में प्रसारित होते हैं और विद्युद्विश्लेष्य कार्बोनेट आयनों से क्रिया करके कार्बनडाइ-आक्साइड बनाते हैं। इस क्रिया में कार्बोनेट आयन अपने ऋणाणु ऋणाग्र को दे देते हैं। बनी हुई कार्बन डाइ-आक्साइड धनाग्र पर जाकर ऑक्सीजन से संयोग करके दो ऋणाणु (जो ऋणाग्र पर उत्पन्न होते और विद्युत धारा के रूप में धनाग्र तक पहुँच जाते हैं) लेकर विद्युत ऋणात्मक कार्बोनेट आयन बनाती है। ये कार्बोनेट आयन विद्युद्विश्लेष्य से होकर ऋणाग्र पर पहुँचते हैं और इस प्रकार विद्युत-चक्र पूरा करते हैं। यद्यपि उच्च ताप ईंधन-सेल गत विश्वयुद्ध में बहुत प्रयोग में आये परन्तु इनका शक्ति-आयतन अनुपात बहुत कम (लगभग १/२ किलोवाट प्रति घन फुट) है जो साधारण हाइड्रोजन आक्सीजन ईंधन-सेल का आधा अथवा बेकन सेल का १/१२वाँ भाग है।

प्रायः ईंधन ऑक्सीजन से सीधे संयोग नहीं करते परन्तु वे सेल के बाहर पुनर्जनित्र (जेनेरेटर) में अन्य उपयुक्त पदार्थों से प्रक्रिया करके एक रासायनिक माध्यम का कार्य करने वाली वस्तु बना सकते हैं जो सेल में विद्युत धारा उत्पन्न कर सकती है। इस प्रकार के सेल **रेडाक्स (अवकरण-आक्सीकरण)** सेल कहलाते हैं। इंगलैंड के वैज्ञानिक **सर एरिक राइ-**
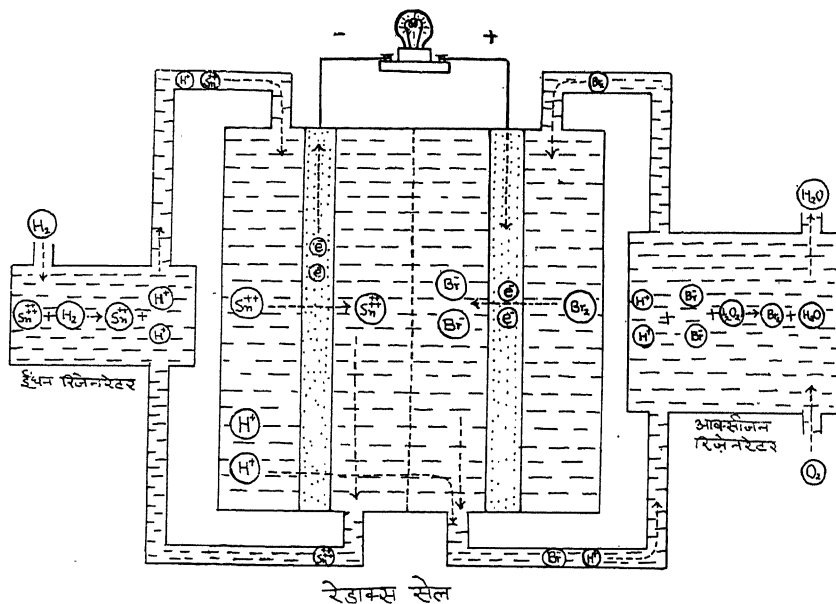
रेडाक्स सेल

डिएल ने जो रेडाक्स सेल बनाया उसमें ब्रोमीन और टिन लवण रासायनिक माध्यम के रूप में व्यवहृत होते हैं। ईंधन टिन आयनों को अपचयित कर देता है अर्थात ऋणाणु दे देता है। अपचयित टिन आयन अपने ऋणाणु ऋणाग्र को दे देते हैं और लौट आते हैं तथा फिर और ईंधन से उसी प्रकार प्रतिक्रिया करने लगते हैं। इसी प्रकार ऑक्सीजन ब्रोमीन को ऑक्सीकृत करता है अर्थात् ब्रोमीन से ऋणाणु

ले लेता है। ब्रोमीन की प्रतिक्रिया भी टिन आयनों की भाँति ही होती है। **"जनरल एलेक्ट्रिक कम्पनी"** में टिन लवण के स्थान पर टिटैनियम लवण को काम में लाने के लिए प्रयोग किए जा रहे हैं। रेडाक्स सेल को अधिक उपयोगी बनाने के लिए ऐसा रासायनिक माध्यम चुनना चाहिए जो तेजी से प्रक्रिया कर सके और शक्तिशाली विद्युत धारा उत्पन्न करे। इसके अतिरिक्त शक्ति-क्षति भी कम से कम होनी चाहिए। उपयुक्त रासायनिक माध्यम की समस्या अभी तक हल नहीं हो सकी है। इसके अतिरिक्त दो विद्युद्विश्लेष्य की व्यवस्था में दोनो विद्युद्विश्लेष्यों को रंध्रहीन वस्तु की दीवार से पृथक करना चाहिए ताकि वे परस्पर मिलकर प्रक्रिया न करने लगें। इस प्रकार के सभी ज्ञात पृथक्कारकों का अवरोध बहुत अधिक होता है अतः कम अवरोध के विद्युद्विश्लेष्य पृथक्कारक की समस्या भी हल करनी है। यह ज्ञात नहीं हो सका कि रेडाक्स सेल साधारण ईधन सेलों से श्रेष्ठ हैं अथवा नहीं।

यद्यपि ईधन सेल सम्बन्धी अनुसंधान अभी बहुत उन्नत दशा में नहीं है तथापि इस दिशा में तेजी से कार्य हो रहा है। आशा है कि निकट भविष्य में श्रेष्ठ ईंधन सेलों के आविष्कार द्वारा परमाणु-शक्ति-उत्पादन एवं रासायनिक उद्योग की उन्नति होगी। लिथियम हाइड्राइड एवं कैलसियम सुपर-ऑक्साइड को हाइड्रोजन और ऑक्सीजन उत्पन्न करने के लिए काम में लाया जा सकता है। ये वस्तुएँ गैसों की अपेक्षा कम स्थान घेरेंगी। काँच के रेशों से युक्त प्लास्टिक बर्तनों के प्रयोग से सेलों को हल्का बनाया जा सकता है। अभी हाल ही में ज्ञात हुआ है कि उत्प्रेरण द्वारा सूर्य की धूप से जल को ऑक्सीजन व हाइड्रोजन में विच्छेदित किया जा सकता है जो विद्युत उत्पादन में काम आ सकती है। इस रीति से विद्युत उत्पादन करने के कारखाने बहुत जगह घेरते हैं। अतः रेगिस्तान अथवा बंजर जमीन का उपयोग किया जा सकता है। लगभग दो वर्ग किलोमीटर मरुभूमि में विस्तृत उपरोक्त प्रकार का बिजलीघर एक लाख किलोवाट विद्युत शक्ति प्रदान कर सकता है। विद्युत उत्पादन की इस विधि की क्षमता साधारण धूप बैटरी की अपेक्षा ढाई गुनी अधिक होगी। सस्ती विद्युत शक्ति के उत्पादन से परमाणु शक्ति भी सस्ती और सुलभ हो जायगी। गैसों को सासेज के बर्तनों में भरकर पृथ्वी के अन्दर सुरक्षित रखा जा सकता है। सम्भव है कि ईंधन सेलों के उपयोग बढ़ने पर पेट्रोलियम अथवा प्राकृतिक गैस के स्रोत के निकट बिजलीघर बनाए जायँ। श्रेणीवद्ध बहुत से ईंधन सेल ७०० या अधिक वोल्ट पर **डी० सी०** दे सकते हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर **ए० सी०** की अपेक्षा अधिक सुगमतापूर्वक भेजी जा सकती है। ऐल्यूमीनियम आदि अनेकों धातुओं के निष्कर्षण में विद्युत शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। प्राकृतिक गैस के कुँओं के निकट ऐसी धातुओं के निष्कर्षण के कारखाने खोले जा सकते हैं। सम्भव है निकट भविष्य में ईंधन सेलों में मीथिल ऐल्कोहल अथवा ईथिल ऐल्कोहल को ईंधन के रूप में काम में लाया जाय और उनके ऑक्सीकरण से विद्युत-शक्ति एवं फार्मिक अम्ल अथवा एसीटिक अम्ल आदि उपयोगी पदार्थ प्राप्त हों।

टिप्पणीः—अधिकांशतः poles अथवा electrodes के लिए 'ध्रुव' शब्द का प्रयोग हुआ है। यत्र-तत्र 'विद्युदग्र' भी प्रयुक्त हुआ। पाठक इसे ही ठीक समझें। (सम्पादक)

प्राचीन जैन ग्रन्थों में संख्या गणना

अगर चन्द नाहटा

भारतीय गणित में दसगुने की संख्या की परिपाटी प्राचीन एवं प्रसिद्ध है जिसमें एक, दश, सौ, हजार, दसहजार, लाख, दसलाख, करोड़, दसकरोड़, अरब, दसअरब, खरब, दसखरब, पद्म, दसपद्म, नील, दसनील, शंख, दसशंख तक की (१८ अंकों की) गणना तो प्रसिद्ध ही है। पर **अमलसिद्धि** और **लीलावती** ग्रन्थ में इसके आगे की कुछ संख्याओं के भी नाम मिलते हैं। लीलावती के अनुसार दस शंख के बाद की संख्याओं को क्षिति, महाक्षिति, निधि, महानिधि, कल्प, महाकल्प, घन, महाघन, रूप, महारूप, विस्तार, महाविस्तार, ऊँकार, महाऊँकार और औंकार शक्ति तक की सख्याओं के नाम होते हैं।

अमल सिद्धि में दसशंख के पश्चात् क्षिति, दस क्षिति, क्षोभ, दसक्षोभ, रिद्धि, दसरिद्धि, सिद्धि दससिद्धि, निधि, दसनिधि, क्षोणि, दसक्षोणि, कल्प, दसकल्प, प्राहि, दसप्राहि, ब्रह्मांड, दसब्रह्मांड, रुद्र, दसरुद्र, ताल, दसताल, भार, दसभार, बुर्ज, दसबुर्ज, घण्टा, दसघण्टा, मील, दसमील, पचूर, दस पचूर, लय, दसलय, कार, दसकार, अपार, दसअपार, नट, दसनट, गिरि, दसगिरि, मन, दसमन, बन, दसबन, शंकू, दसशंकू, बाप, दसबाप, बल, दसबल, झाड़, दसझाड़, भीर, दसभीर, बज्र, दसबज्र, लोट, दसलोट, नजे, दस नजे, पट, दसपट, तम, दसतम, द्रम्भ, दसद्रम्भ, कैंक, दस कैंक, अमित, दसअमित, गोल, दसगोल, परामित, दसपरामित, अनन्त, दस अनन्त तक की सख्याओं की नामावली दी है। अन्तिम 'अनन्त' शब्द से संख्या की यहाँ समाप्ति हुई समझिये।

एक अन्य ग्रन्थ में दशांक संख्या बतलाते हुए सख्याओं के नाम निम्नोक्त दिए हैं:—

सौ सौ हजार=एक करोड़
करोड़ सौ हजार=एक शंकू
शंकू सौ हजार=एक महा शंकू
महा शंकू सौ हजार=एक वृन्द
वृन्द सौ हजार=एक महा वृन्द
महा वृन्द सौ हजार=एक पद्म
पद्म सौ हजार=एक महा पद्म
महा पद्म सौ हजार=एक खरब
खरब सौ हजार=एक समुद्र
समुद्र सौ हजार=महोध

बौद्ध ग्रन्थों में गणना प्रणाली के निम्नोक्त संख्याओं तक के नाम मिलते हैं:—

(१) एक १,
(२) दस १०
(३) सौ १००, १
(४) सहस्स = १०००
(५) दस सहस्स १००००
(६) सत सहस्स १०००००
(७) दस सत सहस्स १००००००
(८) कोटि=१००००००००
(९) पकोटि=(१००००००००) २
(१०) कोटिप्पकोटि=(१००००००००) ३
(११) नहुत=(१००००००००) ४
(१२) निन्नहुत=(१००००००००) ५
(१३) अखोमिनी=(१००००००००) ६
(१४) बिन्दु=(१००००००००)७

(१५) अब्बुद=(१००००००००) ८
(१६) निरब्बुद (१००००००००) ९
(१७) अहह=(१००००००) १०
(१८) अबब=(१००००००) ११
(१९) अटट=(१००००००) १२
(२०) सोगन्धिक=(१००००००००) १३
(२१) उष्पल=(१००००००००) १४
(२२) कुमुद=(१००००००००) १५
(२३) पुंडरीक=(१००००००००) १६
(२४) पदुम=(१००००००००) १७
(२५) कथान=(१००००००००) १८
(२६) महा कथान=(१००००००००) १९
(२७) असंख्येय=(१००००००००) २०

विज्ञान ने आज अनेक विषयों में असाधारण उन्नति की है। गणना-संख्या का भी बहुत अधिक विस्तार हुआ है, फिर भी जितनी लम्बी संख्याओं के नाम क्रमिक रूप में जैन ग्रन्थों में मिले हैं वहाँ तक पाश्चात्य देशों की गणना-पद्धति भी नहीं पहुँच पाई है। ३३ शून्यों तक की संख्या अंग्रेजी में प्रचलित है। उसके आगे बीच की अनेक संख्याओं को छोड़ कर **प्रकाश वर्ष** (Light-year) संख्या आती है और फिर उपनामों के साथ वह बढ़ती जाती है। ३३ शून्यों तक की संख्याओं के नाम इस प्रकार हैं:—

(१) Unit इकाई=१
(२) Ten दहाई=१०
(३) Hundred सैकड़ों=१००
(४) Thousand हजार=१०००
(५) Tens of thousands १००००
(६) Hundreds of thousands १०००००
(७) Million १००००००=(१ और ६ शून्य)
(८) Tens of millions=१०००००००
(१ और ७ शून्य)
(९) Hundreds of millions=
१००००००००० (१ और ८ शून्य)
(१०) Billions=१०००००००००
(१ और ९ शून्य)
(११) Tens of billions १००००००००००
(१ और १० शून्य)
(१२) Hundreds of billions
१००००००००००० (१ और ११ शून्य)
(१३) Trillions=(१ और १२ शून्य)
(१४) Quardrillions=(१ और १५ शून्य)
(१५) Quintillions=(१ और १८ शून्य)
(१६) Sextillions=(१ और २१ शून्य)
(१७) Septillions=(१ और २४ शून्य)
(१८) Octillions=(१ और २७ शून्य)
(१९) Nonillions=(१ और ३० शून्य)
(२०) Decillions=(१ और ३३ शून्य)

प्रकाशवर्ष—१ सैकण्ड में प्रकाश की गति १ लाख ८६ हजार मील के हिसाब से—

३६०० × २४ × ३६५ × १८६००० = Light year (प्रकाशवर्ष)

जैनागमों में समय या काल गणना लाख से आगे चौरासी (८४) लाख से गुणित मिलती है और उनमें आगे की संख्या के उपरोक्त नामों से प्राय: सर्वथा भिन्न है। पद्म, नलिन, अयुत, प्रयुत, आदि थोड़े नाम उपर्युक्त ग्रन्थों में भी आये हैं। पर उनकी संख्या की गणना करने से वह बहुत ही अधिक जा पहुँचती है, अतः उन नामों का साम्य वास्तव में संख्या का साम्य नहीं है। ज्ञात होता है कि आजकल जो संख्या की दसगुणित प्रणाली प्रसिद्ध है उससे पहले भारत में एक ऐसी भी परम्परा रही है जो चौरासी (८४) लाख संख्या से गुणित होती थी। इस प्रणाली के संख्या नामों का उल्लेख सौभाग्य से जैनागमों में सुरक्षित है। अन्यत्र पीछे वाली परम्परा प्रसिद्ध होने पर प्राचीन परम्परा

भुलाई जा चुकी प्रतीत होती है। आगे दी जाने वाली जैन काल गणना में से त्रुटितांग संख्या का तो प्रयोग कहीं-कहीं जैन ग्रंथों में मिलता है। पूर्व तक की संख्या तो प्रसिद्ध ही है। भगवान ऋषभदेव आदि की आयु का परिमाण चौरासी लाख पूर्व का बतलाया गया है। उस संख्या का नाम **त्रुटितांग** होता है। इसके आगे की संख्याओं के नामों का प्रयोग मेरे देखने में नहीं आया। उसके बाद संख्यात, असंख्यात्, अनन्त, पल्योपम और सागरोपम इन नामों का ही प्रयोग जैनागमों में मिलता है। **लीलावती** और **अमल सिद्धि** में उल्लेखित संख्या नामों से भी पिछले नामों का प्रयोग व्यवहार में नहीं आया प्रतीत होता है। अतः ऐसी संख्याओं के नाम केवल गणना की दीर्घता बतलाने के लिए ही लिखे गये प्रतीत होते हैं।

जैन आगमों में भी **एकादश अंग** भगवान महावीर कथित सबसे प्राचीन माने जाते हैं। इनमें तीसरे व पाँचवें अंगसूत्र-स्थानांग, भगवती में नीचे दी जाने वाली काल गणनात्मक संख्याओं का उल्लेख मिलता है। उसके बाद के जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति, अनुयोग द्वार, ज्योतिष करंडक आदि सूत्रों में भी इन संख्याओं का विवरण प्राप्त होता है। इसी प्रकार दिगम्बर सम्प्रदाय के प्राचीन साहित्य में **तिलोय पन्नति** आदि ग्रन्थों में इन संख्या नामों का उल्लेख है यद्यपि इन भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में कहीं-कहीं भिन्नता या वैषम्य भी है, जिसका कारण यही हो सकता है कि आगमादि मूल सूत्र दीर्घ काल तक मौखिक रूप में रहे। अतः कुछ संख्याओं के नाम भूल गए व पर तित हो गये होंगे। प्रयोग में तो उनका प्रचलन था ही नहीं, अतः ऐसा होना स्वाभाविक भी है।

भगवती सूत्र के शतक ६, उद्देश्य ७ तथा शतक ११ में **सुदर्शन शेठ** ने भ० महावीर से वाणिज्य ग्राम के बाहर जब वे पलासक चैत्य में पधारे थे तो पूछा था कि हे भगवान्! काल कितने प्रकार के होते हैं। तो भगवान ने उत्तर दिया कि ४ प्रकार के—(१) प्रमाणकाल, (२) यथायुर्निवृतिकाल (३) मरण-काल और (४) अद्धाकाल। प्रमाण काल दो प्रकार का है, दिवस प्रमाण काल, रात्रि प्रमाण काल। इसमें चार पौरषी यानी ४ प्रहर का दिवस और चार प्रहर की रात्रि होती है। अलग-अलग ऋतुओं आदि में प्रहर छोटा-बड़ा होता है अर्थात बड़े से बड़े दिन में पौरषी ४½ मुहूर्त की और कम से कम तीन मुहूर्त की होती है—इत्यादि का निरूपण है। उसके सम्बन्ध में बताया गया है कि अद्धा काल अनेक प्रकार का होता है। काल का सबसे छोटा अविभाज्य अंश **'समय'*** कहलाता है। असंख्यात् समयों की **१ आवलिका,** संख्यात् आवलिकाओं का एक **उश्वास** और (अ) संख्यात् आवलिकाओं का ही एक **निश्वास** होता है। व्याधिरहित जीव का एक श्वास और उश्वास एक **'प्राण'** कहलाता है। सात प्राणों का एक **स्तोक**, सात स्तोकों का एक **लव,** ७७ लवों का एक मुहूर्त, ३७७३ उश्वासों का **एक मुहूर्त** (दो घड़ी =४८ मिट) होता है। ३० **मुहूर्त** का एक **अहोरात्र,** १५ अहोरात्रों का एक **पक्ष,** दो पक्षों का एक **मास,** दो मासों का एक **ऋतु,** तीन ऋतुओं का एक **अयन,** २ अयनों का एक **वर्ष,** पाँच वर्षों का एक **युग,** २० युगों की एक **शताब्दी,** दस **शताब्दी** का एक **हजार वर्ष,** सौ हजार वर्षों का **एक लाख वर्ष**—यहाँ तक की गणना तो प्रसिद्ध प्रणाली के अनुसार ही है। पर इससे आगे की गणना चौरासी लाख से गुणित है और उनके गुणनफल या परिणाम की संख्याओं के नाम भी सर्वथा भिन्न प्रकार के हैं। जैसे ८४ लाख वर्षों का एक **पूर्वांग,** ८४ लाख पूर्वांगों का **एक पूर्व** (७०५६०००००००००० वर्ष) इस तरह से क्रमशः ८४ लाख से गणना करने पर जो संख्यायें आती हैं उनके नाम हैं:—त्रुटितांग,

*समय की सूक्ष्मता का जितना विशद् वर्णन जैन ग्रंथों में मिलता है उतना विश्व के किसी भी दर्शन या साहित्य में नहीं मिलता। देखें अनुयोग द्वार सूत्र।

त्रुटित, अड़ड़ाम, अड़ड़, अववांग, अवव, हुहुआँग, हुहुअ, उत्पलांग, उत्पल, पद्‌मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनूपुरांग, अर्थनुपूर, अयुतांग, अयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, नयुतांग, नयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका, यहाँ तक की गणित संख्या है। इसके बाद का काल उपमा द्वारा जाना जाता है। **औपमेय काल** के दो प्रकार हैं (१) पल्योपम (२) सागरोपम। **जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति** (सूत्र १८) और **अनुयोग द्वार सूत्र** में भी इनकी गणना से शीर्षप्रहेलिका तक ५४ अंक और १४० शून्य मिला कर १९४ तक के अंकों की संख्या पहुँचती है।

इससे एक और अधिक संख्या प्राचीन **जैन ज्योतिषकरण्डक ग्रंथ** में मिलती है जिसके अनुसार शीर्षप्रहेलिका तक की संख्या ७० अंक और उस पर १८० शून्य अर्थात २५० अंकों तक जा पहुँचती है। उसमें **'पूर्व'** से शीर्ष प्रहेलिका तक के संख्या नाम इस प्रकार दिए हैं :

पूर्व लतांग, लता, महालतांग, नलिनांग, महा-नलिना, पद्‌मांग, पद्म, महापद्मांग, महाकुमुद, त्रुटितांग, त्रुटित, महा त्रुटितांग, महात्रुटित, अडड़ांग, अड़ड़, महाअड़डांग, महाअड़ड़, उहांग, उह, महा उवहांग, महा उवह, शीर्ष प्रहेलिकांग, शीर्ष प्रहेलिका। पाठक देखेंगे कि पूर्व से त्रुटितांग के बीच के नाम तो सर्वथा भिन्न हैं और उसके बाद भा महाशब्द से संख्या दुगुनी कर दी गई है। अवहांग, हुहआंग का और महाअवहांग, उत्पलांग का संक्षिप्तीकरण है और उसके बाद की भी कुछ संख्या छोड़ दी गई हैं। अन्तिम शीर्षप्रहेलिकांग और शीर्षप्रहे-लिका नाम दोनों में समान है। इनकी काल गणना के अनुसार यह संख्या १८५५१७९५५०११२५९५-४१९००९६९८१३४३९७७०७९७४६५४९४२६१९-७७७७४७६५७२५७३४५७१८६८१६ हैं। इस ७० अंक की संख्या के बाद १८० शून्य और लगाकर यह संख्या २५० शून्यों की पूरी होती है।

दिगम्बर ग्रन्थों में धवला, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, त्रिलोक सार, राजवार्त्तिक, हरिवंश पुराण आदि में इस गणना पद्धति का उल्लेख है। **षट्‌खंडागम** खण्ड १ भाग २ पुस्तक नं० ३ की प्रस्तावना में दिये गये पूर्व तक की गणना के नाम तो वही हैं पर आगे के नामों में कुछ अन्तर है, यथा चौरासी पूर्व का नयुतांग, ८४ लाख नयुतांग का नयुत तथा इसी प्रकार ८४ और ८४ लाख गुणित क्रम से कुमुदांग और कुमुद, पद्मांग और पद्म, नलिनांग और नलिन, कमलांग और कमल, त्रुटितांग और त्रुटित, अटटांग और अटट, अममांग और अमम, हाहांग और हाहा, हुहांग और हुहु, लतांग और लता तथा महा लतांग और महालता क्रमशः होते हैं। फिर ८४ लाख गुणित क्रम से श्रीकल्प (या शिरःकम्प) हस्त प्रहेलित, (हस्त प्रहेलिका) और अचलप्र (चर्चिका) होते हैं। ८४ को ३१ बार परस्पर गुणा करने से अचल-प्रवर्षों का प्रमाण आता है जो ९० शून्यों का होता है। यद्यपि इन युतांग आदि काल गणनाओं का उल्लेख प्रस्तुत पट्‌खंडागम में नहीं आया तथापि संख्यात् गणना की मान्यता का कुछ बोध कराने के लिए प्रस्तावना में दिया गया है। यह सब संख्यात् (मध्यम) का ही प्रमाण है। इससे कई गुना ऊपर जाकर उत्कृष्ट संख्यात् का परिमाण होता है। संख्यात् के तीन भेद हैं—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। गणना का आदि (प्रारंभ) एक से माना जाता है। किन्तु एक केवल वस्तु की सत्ता को स्थापित करता है, भेद को सूचित नहीं करता। भेद की सूचना दो से प्रारम्भ होती है इसीलिए दो को संख्यात् का आदि माना है। इस प्रकार जघन्य संख्यात् दो हैं। उत्कृष्ट संख्यात् आगे बतलाये जाने वाले जघन्य परीतासंख्यात् से एक कम होता है। इन दोनों छोरों के बीच जितनी भी संख्याएँ पायी जाती हैं वे सब मध्यम संख्यात् के भेद हैं। असंख्यात के तीन भेद हैं—परीत, युक्त और संख्यात और इन तीनों में से प्रत्येक पुनः जघन्य, मध्यम

और उत्कृष्ट के भेद से तीन प्रकार का होता है।

श्वेताम्बर ग्रन्थों में भी संख्यात् के तीन, असंख्यात् के ९ और अनन्त के ९ भेद **लोक प्रकाश** आदि ग्रन्थों में वर्णित हैं। अनन्त के ११ अन्य प्रकारों का उल्लेख **धवल** में पाया जाता है। औपमिक काल प्रमाण दो प्रकार का होता है—पल्योपम एवं सागरोपम। पल्योपम तीन प्रकार का होता है, १. उद्धार पल्योपम, २. अद्धापल्योपम, ३. क्षेत्र-पल्योपम। उद्धार पल्योपम दो प्रकार का होता है—१. सूक्ष्म-उद्धार, २. व्यवहारिक पल्योपम। इसी प्रकार अद्धा और क्षेत्र पल्योपम के भी दो भेद होते हैं। दस कोड़ा-कोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। पल्योपम के ६ भेदों के अनुसार सागरोपम के ६ भेद होते हैं। ऐसे दश कोड़ा-कोड़ी सूक्ष्म अद्धा सागरोपम की एक उत्सर्पिणी या १ अवसर्पिणी होती है। इन दोनों के मिलाने से अर्थात २० कोड़ा-कोड़ी सागरोपम का एक काल चक्र होता है। इससे अधिक समय को अनन्त काल कहते हैं।

स्थानांग सूत्रों में औपमिक काल आठ प्रकार का बताया है (१) पल्योपम (२) सागरोपम (३) उत्सर्पिणी (४) अवसर्पिणी (५) पुद्गल-परावर्त (६) अतिताद्धा (७) अनागताद्धा (८) सर्वाद्धा। इनमें से अवसर्पिणी उत्सर्पिणी तक का विवरण ऊपर आया है। अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी का पुद्गल परावर्त होता है। **भगवती सूत्र** के १२ वें शतक के चौथे विवेचना में पुद्गलपरावर्त ७ प्रकार के बताये हैं। औदारिक पुद्गल परावर्त, वैक्रिया पुद्गल-परावर्त, तैजसपुद्गल परावर्त, कार्मणपुद्गल परावर्त, मनपुद्गल परावर्त, वचन पुद्गल परावर्त और आनप्राण पुद्गल परावर्त।

भारत की इस प्राचीन विशिष्ट संख्या गणना की जानकारी पाठकों के लिये दृष्टव्य है।

संक्षिप्त परिचय माला—१

कृत्रिम तत्वों के जनक—डा० ग्लेन सीबर्ग

जिन नवीन तत्वों को मनुष्य ने कभी देखा तक नहीं था, उनका निर्माण किस प्रकार किया जाय? मानव-समुदाय के लिए यह एक प्रकार की चुनौती थी। ४७ वर्षीय **डा०ग्लेन सीबर्ग** ने निर्भीकता पूर्वक इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। डा० ग्लेन का लक्ष्य विशेष रूप से यूरेनियम से भी अधिक भारी नए तत्वों का निर्माण करना था। प्रकृति में विद्यमान् यह सबसे अधिक भारी तत्व माना जाता है। डा० सीबर्ग इस महान चुनौती का सामना करने और अपना लक्ष्य प्राप्त करन में सफल रहे। वैज्ञानिक जगत में मनुष्य द्वारा जो १४ कृत्रिम तत्व तैयार किए गए, उनमें से ८ तत्वों का निर्माण करने का श्रेय डा० ग्लेन और उनके सहयोगियों को ही है। इस सफलता के लिए उन्हें १९५१ में डा० एडविन एम० मेकमिलन के साथ रसायनशास्त्र में नोबेल पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया गया।

डा० सीबर्ग के इस साहसिक वैज्ञानिक अनुसन्धान की कहानी १९३०-४० से प्रारम्भ होती है। यह ऐसा दशक था जबकि अणु-विज्ञान के क्षेत्र में अत्यधिक महत्वपूर्ण खोजें की जा रही थीं। यूरेनियम से भी भारी तत्व का निर्माण करने की दिशा में सबसे पहला प्रयत्न १९३४ में इटली में **डा० एनरिको फेर्मी** और **एमिलो सेगरी** द्वारा किया गया। उन्होंने यूरेनियम तत्व पर प्रचण्ड गतियुक्त न्यूट्रॉन कणों का

प्रहार किया। न्यूट्रान विद्युतहीन ऐसे कणों को कहते हैं, जो साधारण हाइड्रोजन को छोड़कर अन्य सभी तत्वों में पाए जाते हैं। उनको आशा थी कि यूरेनियम तत्व इन न्यूट्रन कणों को अवक्षेपित कर लेगा और इस प्रकार यूरेनियम पहले से भी अधिक भारी तत्व के रूप में परिणत हो जाएगा। लेकिन उनका यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ।

इसके चार वर्ष बाद इस दिशा में पहली महत्वपूर्ण खोज करने में सफलता प्राप्त हुई। जर्मनी में प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक **ओटो हान** और **एफ० एस० स्ट्रासमैन** ने १९३८ में अणु-विखण्डन की सम्भावना का पता लगा लिया था। उन्होंने यह अनुभव कर लिया कि यूरेनियम का अणु विखण्डित होकर अपेक्षाकृत अधिक हल्के तत्वों और कणों में परिणत हो सकता है। उन्होंने यह भी ज्ञात कर लिया कि इस प्रक्रिया में प्रचण्ड शक्ति का निःसरण भी होता है। लेकिन संसार के वैज्ञानिक उस समय तक यह नहीं समझ पा रहे थे कि यूरेनियम पर जब न्यूट्रॉन कणों की बौछार की जाती है, तो वह उसे स्थायी रूप से अवशोषित क्यों नहीं करता।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय (बर्कली) में **डा० एडविन एम० मैकमिलन** ने डा० हान और स्ट्रासमैन द्वारा किए गए परीक्षणों पर आगे अनुसन्धान-कार्य जारी रखा। उन्होंने सिगरेट के कागज पर यूरेनियम-ऑक्साइड रख कर उस पर न्यूट्रॉन-कणों के प्रहार करने की विधि का परीक्षण किया। १९४० में उन्हें पहली बार एक नए तत्व के अस्तित्व में आने का प्रमाण मिला। इस नवीन तत्व-९३ का नाम उन्होंने **नेपचूनियम** (यूरेनियम ग्रह की खोज के बाद प्रकाश में आने वाले ग्रह नेपचून के नाम पर) रखा।

इस बीच में द्वितीय महायुद्ध छिड़ चुका था और अमेरिका अपनी प्रतिरक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ करने के कार्य में संलग्न था। डा० मैकमिलन को रडार के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने की सलाह दी गई। अतएव यूरेनियम से भी अधिक भारी तत्वों की खोज करने का कार्य उन्होंने अपने एक युवा परन्तु अत्यधिक प्रतिभाशाली सह-वैज्ञानिक **डा० ग्लेन सीबर्ग** को सौंप दिया। इस प्रकार नए तत्वों का अनुसन्धान और निर्माण सम्बन्धी अनुसन्धान कार्य बराबर जारी रहा। डा० ग्लेन ने बर्कली स्थित ६० इंच व्यास वाले साइक्लोट्रॉन-यंत्र (अणु-भंजक-यंत्र) में यूरेनियम पर 'डियुट्रॉन' नामक सूक्ष्म-कणों की बौछार की। डियुट्रॉन हाइड्रोजन के नाभिक को कहते हैं, जिसमें कोरे न्यूट्रॉन के बजाय एक प्रोट्रॉन और एक न्यट्रॉन स्थित रहते हैं। प्रोट्रॉन धन-विद्युतशक्ति से युक्त सूक्ष्मकणों को कहते हैं।

इस अनुसन्धान के फलस्वरूप अन्ततोगत्वा 'तत्व-९४' अस्तित्व में आया। इस नवीन तत्व का प्रथम दृष्टिगोचर और तौले जा सकने योग्य कण का आकार पिन के बिन्दु से बड़ा नहीं था। सौरमण्डल के नवीनतम ग्रह प्लूटो के नाम पर इस नवीन तत्व का नाम **प्लूटोनियम** रखा गया।

यह घटना १९४२ की है, जबकि बहुत से अमेरिकी वैज्ञानिक अणुबम बनाने के लिए कठोर परिश्रम कर रहे थे। यूरेनियम के विखण्डनीय समस्थानिक की भांति प्लूटोनियम का उपयोग भी बम के निर्माण में किया जा सकता था। इससे अगले वर्ष प्लूटोनियम का निर्माण करने के लिए कई कारखानों की स्थापना हुई और १९४९ तक तो संतोषजनक पैमाने पर प्लूटोनियम तत्व का निर्माण होने लगा।

डा० सीबर्ग ने प्लूटोनियम से भी भारी तत्वों की खोज करने का कार्य जारी रखा। लेकिन इस दिशा में उनके मार्ग में एक बड़ी सैद्धान्तिक बाधा आ उपस्थित हुई। जब हम अणुओं की संख्या के आधार पर तत्वों की तालिका बनाते हैं, तो कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं, जो समय समय पर इनमें दृष्टिगोचर होती हैं। १९४४ में यूरेनियम, नेपचूनियम और प्लूटोनियम लगभग एक ही श्रेणी के तत्व माने जाते थे, यद्यपि

उनके पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में वैज्ञानिकों को विशेष कोई जानकारी न थी। विशेषताओं सम्बन्धी सारणी में उनकी जो स्थिति थी, उसके आधार पर **तत्व-९५** और **तत्व-९६** में भी लगभग अपने पूर्ववर्ती तत्वों जैसी विशेषताएँ होने की सम्भावना थी लेकिन बाद में यह धारणा सही नहीं सिद्ध हुई।

इसके बाद ही डा० सीबर्ग के मस्तिष्क में यह विचार आया, जिसके फलस्वरूप प्लूटोनियम से भारी अन्य तत्वों की खोज हुई। सम्भवतः सारणी में रेडियो-सक्रिय तत्वों को गलत स्थान पर अंकित कर दिया गया था। **एक्टीनियम** से प्रारम्भ करके उन्होंने सभी रेडियसक्रिय तत्वों को एक विशेष क्रम में रख दिया। संशोधित सारणी में सबसे भारी तत्वों को विरल मृदाओं के साथ रख दिया गया। विरल-मृदाओं की गणना उन तत्वों में होती है, जिनकी संख्या ५७ से लेकर ७१ तक है। इन्हें भी अलग क्रम में अंकित किया गया। इन्हें मृदा की संज्ञा इसलिए दी गई है क्योंकि ये चूना, मैगनीसियम जैसे पदार्थों से मिलते-जुलते हैं।

तत्वों की इस संशोधित सारणी को तैयार करने के शीघ्र बाद ही, उन्होंने अपने नवीन सिद्धान्त की प्रामाणिकता की जांच करने के लिए कई अत्यधिक उत्साहवर्धक परीक्षणों की योजना तैयार की और इन परीक्षणों के परिणामस्वरूप ही उन्होंने **'अमेरीकियम-९५'** और **'क्यूरियम-९६'** जैसे नवीन तत्वों की खोज की। चार-पाँच वर्ष बाद, (१९४९ और १९५० में) उन्होंने **'बर्केलियम-९७' कैलिफोर्नियम-९८'** और **'अइंस्टीनियम-९९'**, **'फेर्मियम-१००'** की खोज की। १९५५ में उन्होंने **'मेण्डलिवियम-१०१'** नामक एक और नए तत्व की खोज की।

डा० सीबर्ग के अनुसार इन कृत्रिम नए तत्वों की खोज कई खण्डों में की गई है। हर नए तत्व की खोज के बाद दूसरे नए तत्व की खोज करने के लिए पुनः समस्त साधन-स्रोतों को जुटाना और संगठित करना पड़ा। इसके साथ ही यह भी आवश्यक था कि नए तत्व इतने प्रचुर परिमाण में निर्मित किए जाएँ ताकि अनुसन्धान के अगले चरण में उनका उपयोग सम्भव हो सके। इसके अतिरिक्त प्राविधिक विधियों और उपकरणों में भी निरन्तर सुधार करने की आवश्यकता बनी रहती थी। इस खोज कार्य में सबसे अधिक स्मरणीय घटनापूर्ण तिथि वह रात्रि थी, जब **'तत्व-१०१'** अन्ततोगत्वा पकड़ में आया था। परीक्षण-शाला में उस रात्रि निराशा और विषाद का वातावरण था। 'तत्व-१०१' का पता लगाने के सम्बन्ध में कई परीक्षण किए जा चुके थे, परन्तु सब असफल हो गए थे। इस रात्रि इस सम्बन्ध में अन्तिम परीक्षण चल रहा था। वैज्ञानिकों को यह अशंका थी कि सम्भवतः 'तत्व-१०१' का अणु अस्तित्व में आने के बाद एक या दो घण्टों के अन्दर ही पुनः 'तत्व-१००' में परिणत हो जाता हो। इसी सम्भावना के आधार पर उक्त परीक्षण किया जा रहा था। डा० सीबर्ग और उनके सहयोगियों की दृष्टि स्पन्दनों की गणना करने वाले यंत्र पर जमी हुई थी। बहुत देर तक प्रतीक्षा करने के बाद सहसा यन्त्र की सुई ऊपर की ओर दौड़ी और फिर नीचे गिर गई। इस प्रक्रिया में एक लाल रेखा यंत्र-पटल पर अंकित हो गई। यह रेखा **'आयोनाईजेशन पल्स'** प्रक्रिया के अविर्भाव की सूचक थी। यह प्रक्रिया तब आरम्भ होती है, जब किसी अणु से इलेक्ट्रॉन अलग हो जाता है और वह विद्युत शक्ति से युक्त हो जाता है। इस हलचल के बाद भी वैज्ञानिकों की दृष्टि यंत्र पटल की ओर लगी रही। लगभग १ घण्टे के बाद यन्त्र पटल की सुई ने पुनः उसी प्रकार की एक और रेखा खींची। इस क्रिया से वैज्ञानिकों को यह विश्वास हो गया था कि 'तत्व-१०१' की खोज कर ली गई है और यन्त्र पटल पर उन्होंने जो क्रिया देखी है, वह और कुछ नहीं बल्कि 'तत्व-१०१' के दो कणों के नष्ट होने की सूचना थी।

---

१. विद्युदणु-यन्त्र

विद्युत-शक्ति-विज्ञान के क्षेत्र में आज सबसे अधिक विस्मयजनक समाचार यह है कि अनेक प्रकार की विद्युत-प्रणालियों और उपकरणों में विद्युत शक्ति का स्थान धीरे-धीरे द्रव-पदार्थों और गैसों द्वारा ग्रहण किया जा रहा है। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इस परिवर्तन के फलस्वरूप अत्यधिक सूक्ष्म और जटिल विद्युदणु-उपकरण अधिक सरल, मजबूत, सस्ते और विश्वसनीय सिद्ध हो सकेंगे। शीघ्र ही वह दिन आ सकता है, जबकि स्वचालित वस्त्र धोने की मशीन के अन्दर स्थित जल मशीन के चालू रहने की अवधि निर्धारित कर सके और मशीन के विद्युदणु-मस्तिज्क में उन स्पन्दनों का सृजन कर सके, जिनके द्वारा यह पता चलता है कि वस्त्र धोने की विभिन्न प्रक्रियाएँ कब और किस समय प्रारम्भ की जाएँ तथा मशीन कब रोक दी जाय। यही नहीं कि स्वचालित मशीन की जटिल यान्त्रिक-व्यवस्था का संचालन विद्युत-शक्ति के स्थान पर पानी करेगा, बल्कि इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह मशीन न तो कभी खराब होगी और न इसकी मरम्मत करने की आवश्यकता ही पड़ेगी। भविष्य की स्वचालित वस्त्र धोने की मशीन में प्रक्षेपणास्त्र की पथ-प्रदर्शन प्रणाली अथवा **'आटोमोटेड इण्डस्ट्रियल प्रोसेस'** का उपयोग किया जाएगा और इसके वैकुअम ट्यूबों, ट्रांजिस्टर तथा अन्य सचल पुर्जों का स्थान द्रव-पदार्थों की धाराएँ तथा ऐसे ठोस वर्गाकार टुकड़े ले लेंगे, जिनमें अत्यधिक पतले छिद्र आरपार बने होंगे। इस प्रकार निर्मित विद्युदणु उपकरणों में बिजली के तारों और कनेक्शनों की भी कोई जरूरत नहीं रहेगी।

बिना विद्युतशक्ति के कार्य करने वाले विद्युदणु-यन्त्रों का निर्माण करने सम्बन्धी इस सिद्धान्त के आधार पर आज सर्वथा नवीन विद्युदणु-यन्त्र उद्योग के विकास की सम्भावनाएँ दृष्टिगोचर होने लगी हैं। इसका श्रेय अमेरिकी स्थल सेना के वैज्ञानिकों द्वारा किए गए एक नए आविष्कार को है, जो **'पी एफ ए' (प्योर फ्लुइड एम्पलीफायर)** के नाम से विख्यात है। 'पी एफ ए' धातु विशेष प्रकार की मिट्टी अथवा प्लास्टिक का एक टुकड़ा मात्र होता है, जिसमें छिद्र रहते हैं। लेकिन यही सामान्य सी दिखने वाली वस्तु बिना विद्युतशक्ति के चलने वाले विद्युदणु-यन्त्रों का निर्माण करने में समर्थ है।

अमेरिकी स्थल सेना के वाशिंगटन स्थित **'डायमण्ड आर्डिनेन्स फ्युज लेबोरेटरी'** के वैज्ञानिकों ने ऐसी द्रव-प्रणालियों का विकास किया है, जो नियन्त्रण करने, हिसाब-किताब करने, निर्देशन करने, सोचने और याद रखने में समर्थ हैं। वे यह कार्य विद्युतशक्ति के परिपथों के ढंग पर सम्पन्न करती हैं।

अमेरिका की स्थल सेना इस नवीन प्रविधि के विकास में विशेष रूप से रुचि ले रही है। इस प्रकार की प्रणाली द्वारा निर्मित विद्युदणु उपकरण सैनिक दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे, क्योंकि उन पर न तो युद्ध कालीन परिस्थितियों का कोई प्रभाव पड़ेगा

और न शान्तिकाल में भंडार में सुरक्षित रखने की अवधि उनमें कोई खराबी उत्पन्न होगी। अमेरिकी स्थल-सेना द्वारा उक्त खोज विषयक समाचार घोषित किए जाते ही विद्युदणु-यन्त्रों का निर्माण करने वाली गैर सरकारी अमेरिकी कम्पनियों के प्रतिनिधियों और टेक्नीशियनों का **'डायमण्ड आर्डिनेन्स फ्युज लेबोरेटरी'** में तांता सा बंध गया है।

सहज ही प्रश्न उठता है कि विद्युदणु-यन्त्रों की आश्चर्यजनक क्षमता सम्पन्न वर्तमान प्रणाली के स्थान पर नई प्रणाली का उपयोग करने के लिए अमेरिकी स्थल-सेना इतनी अधिक उत्सुक क्यों है? नई प्रणाली की द्रव-नियंत्रण विधियों पर एक दृष्टि डालते ही इस प्रश्न का उत्तर मिल जाता है। द्रव का उपयोग करने वाली इस नवीन नियन्त्रण-प्रणाली में कोई सचल पुर्जा नहीं होगा, न उसमें कोई टूट-फूट या घिसावट का ही भय रहता है। मरम्मत और पुर्जे बदलने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। ये बहुत मजबूत और टिकाऊ होते हैं क्योंकि ये ऐसे ठोस पदार्थों के टुकड़ों के रूप में होते हैं, जिनमें तारों, ट्यूबों, स्विचों अथवा जोड़ों की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती। ये ऐसे रासायनिक पदार्थों के भी नहीं बने होते, जो ताप के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हों अथवा ठण्डे होने पर कार्य न कर सकें। एक विशेष पदार्थ से निर्मित होने पर इनका उपयोग प्रक्षेपणास्त्र के उस भाग में किया जा सकता है, जहाँ से प्रचण्ड तापयुक्त गैसों का निःसरण होता है। किसी अन्य पदार्थ से निर्मित होने पर वे ऑक्सीजन के ठण्डे टैंक में काम आ सकते हैं। इनमें विद्युतशक्ति अथवा कनेक्शनों की भी आवश्यकता नहीं रहती, अतएव यन्त्र में आग लग जाने का भी कोई खतरा नहीं रहता। आणविक विकिरण अथवा 'रेडियो-जैमिंग' का भी इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इन्हें सुविधापूर्वक उन उष्ण कटबन्धीय प्रदेशों में भी प्रयुक्त किया जा सकता है जहां ताप, नमी और जंगली मौसम का विद्युदणु-यंत्र में प्रयुक्त सामान्य विद्युत-उपकरणों पर बहुत हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

इन सब गुणों और विशेषताओं के कारण द्रव नियंत्रण-प्रणाली का उपयोग करने वाले विद्युदणु-उपकरण वर्तमान विद्युदणु-यन्त्रों से कहीं अधिक उपयोगी और व्यावहारिक सिद्ध हो सकेंगे। इनकी एक सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह भी है कि वर्तमान विद्युदणु-उपकरणों की तुलना में ये अपेक्षाकृत सस्ते होंगे और साथ ही अधिक विश्वसनीय भी, क्योंकि इनके खराब होने अथवा दोषयुक्त होने की सम्भावना ही नहीं रहेगी। इस नवीन विधि के आविष्कारकों का यह कहना है कि उस विद्युदणु-यन्त्र में, जिसमें इस समय वेकुअम ट्यूब लगाने पर ५० सेण्ट लागत आती है, 'पी एफ ए' लगाने पर केवल ०.२ सेण्ट लागत आएगी।

'हाइड्रॉलिक' और 'न्यूमैटिक' प्रणालियों में 'पी एफ ए' का उपयोग इस समय भी काफी बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। फिर भी, इनमें अभी भी वाल्ब, पिस्टन और 'डायफ्राम' जैसे ठोस सफल पुर्जों का उपयोग होता है। लेकिन 'पी एफ ए' में कोई सचल नहीं होगा। इसमें **'मोमेन्टम एक्सचेंज कण्ट्रोल'** के सिद्धान्त का उपयोग किया जाएगा।

विद्युदणु-यन्त्रों की प्रणाली में स्वचालन के लिए जिन प्रक्रियाओं का उपयोग होता है, उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रक्रिया' **'फीड बैक'** कहलाती है। साधारण शब्दों में इसका अर्थ होता है कि यंत्र के किसी पुर्जे को संचालित करने के लिए जो 'धारा' भेजी जाती है, यह पुनः उस यान्त्रिक प्रणाली में वापस लौट आती है, जो धारा को नियन्त्रित करती है। यह ठीक उसी प्रकार हुआ जैसे किसी कारखाने में फोरमैन कुछ व्यक्तियों को कोई कार्य करने का आदेश देता है और इन व्यक्तियों में से एक थोड़ी-थोड़ी देर बाद लौट कर काम की प्रगति के बारे में उसे सूचित करता रहता है। उदाहरणार्थ, 'फीड बैक' की प्रक्रिया 'भट्टी' और 'थर्मोस्टेट' के मध्य जारी रहती है।

प्रश्न यह उठता है कि ताप को विद्युतशक्ति में बदलने का एक और झंझट मोल लिये बिना ही यह कार्य क्यों नहीं कर लिया जाता ? "फीड बैक" की प्रक्रिया विद्युतशक्ति का कोई करामाती गुण नहीं, क्योंकि प्रत्येक गतिशील प्रणाली में, चाहे वह विद्युतीय प्रणाली हो, न्यूमैटिक प्रणाली हो, हाइड्रॉलिक प्रणाली हो अथवा लीवर-प्रणाली, जब किसी अमुक कार्य को पूरा करने के लिए प्रयुक्त शक्ति अपने मूल स्रोत को वापस लौटती है, तो उसे "फीड बैक सरकिट" की संज्ञा दी जा सकती है। उदाहरण के लिए, भविष्य में कमरों को गर्म करने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली विधि को लीजिए। इसके लिए "थर्मोस्टेट", "फरनेस-फैन मोटर" और विद्युतीय सरकिट की कोई आवश्यकता न रहेगी। कमरे से भट्टी तक एक लम्बा चक्राकार ट्यूब रहेगा। वायु की गणना "फ्लुइड एम्पलीफायर" तत्व के रूप में होती है। अतः यह हवा "फ्लुइड एम्पलीफायर" के अन्दर प्रवाहित होती हुई भट्टी के सम्पर्क में आएगी आर पुनः स्रोत की ओर वापस लौटने की प्रक्रिया में इतनी गर्मी अपने साथ लाएगी, जो कमरे को गर्म करने के लिए काफी होगी।

'पी एफ ए' इंजिनियरों का कथन है कि नदियों के कटावों के पास विशालकाय 'पी एफ ए' नहरों के रूप में लगाकर बाढ़ पर नियन्त्रण करना भी सम्भव हो सकता है। यही नहीं, ऐसे छोटे-छोटे 'पी एफ ए' यन्त्रों द्वारा जो नदी के प्रवाह से चलने में समर्थ हों, लीवर प्रणाली का उपयोग कर, बांधों में लगे बाढ़ के फाटकों को नियंत्रित किया जा सकता है।

अमेरिकी स्थल सेना के प्रमुख वैज्ञानिक परामर्शदाता का कथन है कि 'पी एफ ए' ने एक वैज्ञानिक प्रवृत्ति को सर्वथा विपरीत दिशा में मोड़ दिया है। स्वचालित वस्त्र धोने की मशीन में विद्युत उपकरणों का स्थान 'पी एफ ए' जिस प्रकार ग्रहण कर लेगा, उससे डा० वेवर के कथन की सत्यता भली प्रकार प्रकट होती है। मशीन की मोटर चलाने के लिए विद्युतशक्ति का उपयोग होता रहेगा। सबसे बड़ा परिवर्तन मशीन के 'प्रोगैपर' नामक यन्त्र में होगा। यह मशीन की वह यान्त्रिक प्रणाली है, जो वस्त्र धोने की विभिन्न प्रक्रियाओं का संचालन और नियंत्रण करती है। चूँकि मशीन में पहले से ही प्रचुर परिणम में जल रहता है, अतएव 'एम्पलीफायर' में द्रव पदार्थ के रूप में जल का ही प्रयोग होगा। जल की एक तेज धारा एक 'फ्लुइड एम्पलीफायर' में प्रविष्ट होगी, जहां वह चक्राकार घूमेगी और लौटती हुई पुनः मुख्य धारा से आ टकराएगी।

धारा के इस प्रकार के टकराव से 'टिक टाक' की वैसी ही प्रक्रिया का आविर्भाव होगा, जैसी घड़ी में उत्पन्न होती है। 'टिक-टाक' की इस प्रक्रिया में 'टाक' स्पन्दन के दौरान जो जल एक दिशा की ओर जाएगा, वह सरकिट से बाहर निकल जाएगा और बेकार रहेगा। लेकिन 'टिक' स्पन्दन के दौरान दूसरी दिशा की ओर छिटकने वाला जल एक ओर 'पी एफ ए' में प्रविष्ट होगा, जो पानी की बूँदों को संग्रह करता हुआ 'टिक' स्पन्दनों की गणना भी करता जाएगा। जब इस 'पी एफ ए' में पर्याप्त जल और पर्याप्त 'टिक' स्पन्दों का संग्रह हो जाएगा तो यह कुछ समय बाद एक तीसरे 'पी एफ ए' में जाएगा। यहां पर इनका टकराव एक ऐसी जलधारा से होगा, जिसके कारण वहां स्थित एक 'वाल्व' अथवा 'स्विच' बन्द स्थिति में होगा। दूसरे 'पी एफ ए' से आने वाले 'टिक' स्पन्दनों के स्पर्श से जब यह धारा कुछ क्षण के लिए अपने मार्ग से हटेगी तभी स्विच खुल जाएगा और पानी बाहर निकल जाएगा, या गर्म पानी अन्दर आ जाएगा, अथवा मोटर बन्द हो जाएगी। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में कोई भी ठोस भाग अपने स्थान से किंचित भी नहीं हटेगा। इसकी तुलना वर्तमान स्वचालित मशीन की नियंत्रण-प्रणाली से कीजिए, जिसमें अनकों सचल पुर्जे, अनेकों वाल्व और स्विचें भरी रहती हैं और इनमें से हर एक खराब हो सकता है अथवा घिस सकता है।

स्वचालित वस्त्र धोने की मशीन तो इस बात का एक बहुत साधारण सा उदाहरण है कि आधारभूत 'प्योर फलुइड यूनिटें' किस प्रकार अलग-अलग प्रणालियों के रूप में कार्य कर सकती हैं। अमेरिकी स्थल सेना की परीक्षणशाला इन अलग-अलग यूनिटों को तैयार कर रही है जिनको मिला कर उक्त मशीन तैयार की जा सकेगी।

२. चन्द्र स्पुत्निक

—एन० वार्वारौव

कृत्रिम भू-उपग्रह हमारे दैनिक जीवन के अभिन्न-अग बन गए हैं। अत्यन्त स्वल्प काल में उन्होंने हमारी पृथ्वी के अन्वेषण से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण जटिल वैज्ञानिक समस्याओं को हल करना, उसके वायुमण्डल तथा वातावरण का पता लगाना सम्भव बना दिया है। ब्रह्माण्ड के इन अग्रदूतों का इस संसार के समस्त निवासी सम्मान करते हैं तथा उनसे नयी, महान् खोजों की उज्ज्वल आशा रखते हैं।

स्पष्ट है कि पृथ्वी के लिए ही स्पुत्निकों की आवश्यकता नहीं है। व्योम के अन्य ग्रहों और उपग्रहों की खोज तथा अध्ययन के लिए भी वे आवश्यक हैं। उदाहरण के लिए केवल आन्तरिक राकेटों की सहायता से चन्द्रमा का विस्तारपूर्वक अध्ययन करना सम्भव नहीं होगा। चाहे वे कितने ही पूर्ण उपकरणों तथा यंत्रों से सुसज्जित क्यों न हों, वे कुछ क्षण के लिए चन्द्रमा की परिक्रमा करके अथवा उसके धरातल पर यहां-वहां उतर करके उसके किसी भी भाग की भौतिक परिस्थितियों का एक विस्तृत चित्र वैज्ञानिकों को नहीं दे सकेंगे।

चन्द्र स्पुत्निकों में ये प्रमुख कमजोरियां नहीं होंगी।

एक समय आएगा जब पृथ्वी के दूत स्वयं चन्द्रमा के उपग्रह के रूप में परिक्रमा करेंगे और उसके इर्दगिर्द की तथा धरातल की परिस्थितियों की सही-सही सूचना देंगे।

कितनी आकर्षक सम्भावना है? लेकिन यह याद रखना चाहिए कि इस प्रकार के स्पुत्निकों द्वारा चन्द्रमा की परिक्रमा कराना वैज्ञानिकों के लिए आज भी एक अत्यन्त कठिन वैज्ञानिक तथा प्राविधिक समस्या है।

सबसे पहले चन्द्रमा की ओर जाने तथा उसकी कक्षा में पहुँचने के लिए राकेट की उड़ान की एक अत्यन्त निश्चित गति तथा दिशा होनी अत्यन्त आवश्यक है। चन्द्रमा के २०० मील चारों ओर पर चक्कर लगाने के लिए राकेट को १५६० मील प्रति सेकंड की गति से जाना चाहिए। यदि नीचे की ओर गति में कुछ मीटर प्रति सेकंड की भी त्रुटि हो गयी तो चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण से वह चक्कर लगाने के बजाय चन्द्रमा पर ही जा गिरेगा।

चन्द्रमा की कक्षा में पहुँच कर उसकी परिक्रमा करने के लिए यह आवश्यक है कि राकेट एक निश्चित गति पर एक निश्चित दिशा में उड़ान भरे। इसके लिए यह आवश्यक है कि राकेट में ईंधन के साथ एक विशेष प्रकार की मोटर लगी हो, साथ ही अन्तरिक्ष में दिशा का नियमन करन के लिए अन्य साधन भी हो। तभी राकेट की मोटर के लिए यह सम्भव हो सकेगा कि वह सावधानी के साथ दिशाबद्ध राकेट की गति में कमी या तेजी ला सके। स्वाभाविक बात है कि यदि राकेट व्योम में यों ही जा पहुँचेगा तो जेट की धारा का सही-सही निर्देशन करना असम्भव हो जाएगा। फलस्वरूप राकेट को चक्राकार मार्ग पर डालना असम्भव हो जाएगा।

चन्द्रमा के चारों ओर २०० किलोमीटर की ऊंचाई पर उसकी परिक्रमा करने वाला व्योमयान २ घंटा ७ मिनट ३८ सेकंड में १२,१७७ किलोमीटर का फासला तय करके परिक्रमा पूरी कर डालेगा। चूँकि चन्द्रमा अपनी धुरी पर चक्कर लगाता रहता

हैं, इसलिए उसका उपग्रह हर बार धरातल पर एक नये विन्दु के ऊपर से होकर जायगा। इस प्रकार एक निश्चित समय के भीतर चन्द्रमा के पूरे धरातल का पता लगाया जा सकेगा। चन्द्रमा की ध्रुवीय कक्षा में चक्कर लगाते हुए उपग्रह एक चन्द्र-दिवस में ४० लाख किलोमीटर की दूरी तय करता हुआ चन्द्रमा की ३०८ परिक्रमाएं करेगा। एक चन्द्र-दिवस लगभग २७½ दिन के बराबर होता है।

चन्द्रमा के धरातल की खोज में इतना समय लगने की बात ध्यान में रखते हुए प्रसिद्ध सोवियत वैज्ञानिक **प्रो० आरी स्तेर्नफल्द** ने, जिन्हें अन्तरिक्ष विज्ञान का अन्तरीष्ट्रीय पुरस्कार मिल चुका है, अन्वेषण के समय में कमी करने का एक नया उपाय सुझाया है। उनका विचार है कि जेट मोटर की सहायता से उसपग्रह के परिक्रमा-यानों को एक निश्चित कोण पर हटा दिया जाए। चूँकि स्पुत्निक २०० किलोमीटर की ऊंचाई पर परिक्रमा करेगा, इसलिए आठ घंटे के भीतर ही चन्द्रमा के अन्वेषण का कार्य पूरा हो जाएगा। चन्द्रमा का आकार छोटा होने के कारण उसी ऊंचाई पर पृथ्वी का चक्कर लगाने वाले स्पुत्निक की अपेक्षा ½ गति से चन्द्र स्पुत्निक चक्कर लगाएगा। इसके साथ ही साथ चन्द्रमा के चारों ओर वायुमण्डल न होने के कारण उपग्रह की सहायता से चन्द्रमा का अन्वेषण करने के लिए अनुकूल परिस्थिति पैदा हो जाती है।

उस क्षण की कल्पना कीजिए जब भविष्य में टेलीविजन से हम एक विस्मय-जनक कार्यक्रम देख रहे होंगे। परिक्रमा करता हुआ टेलीविजन का केमरा चन्द्रमा के लगातार परिवर्तित होते हुए दृश्य टेलीविजन-पट पर भेज रहा है। नीले पर्दे पर चकित कर देने वाले दृश्य धीरे-धीरे बदल रहे हैं। हम विशाल गर्तों के मुँह बाये हुए काले खड्ढों को ध्यान से देखते हैं, फिर स्पुत्निक उस रेखा को पार करता है जो दिन और रात का विभाजन करती है और गहरे अन्धकार में खो जाता है। ४५ मिनट तक वह चन्द्रमा के अन्धकारपूर्ण भाग से पार करता है और फिर दूसरी ओर प्रकाश में प्रकट हो जाता है।

चन्द्रमा के अन्धकारपूर्ण कक्ष में बदलती हुई ऊंचाई पर चन्द्रमा की छाया में स्पुत्निक अधिक से अधिक २०० किलोमीटर की ऊंचाई पर यात्रा करता है। इस प्रकार वह १५०० किलोमीटर चौड़े भाग का अन्वेषण करता है। प्रत्येक वस्तु १८ मिनट तक दृष्टि के सामने रहती है। जव वह अपनी न्यूनतम ऊँचाई ३० किलोमीटर पर उतर आता है तब केवल ६५० किलोमीटर चौड़ा भाग दिखाई देता है तथा प्रत्येक वस्तु केवल ६ मिनट तक आँख के सामने रहती है। इस तरह टेलीविजन से चन्द्रमा के धरातल का विस्तृत अन्वेषण किया जा सकेगा।

हमें चन्द्रमा के धरातल तथा उसकी भौतिक दशा के विषय में बहुत सी बातें ज्ञात हैं। लेकिन हमारे ज्ञान से हमारा अज्ञान कहीं अधिक है। चन्द्रमा के धरातल की ऊंचाई, निचाई, प्राकृतिक दशा का पता लगाना तथा उसके स्वरूप का एक विस्तृत मानचित्र तैयार करना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। चन्द्रमा पर विशेष रूप से उसके अन्धकारपूर्ण भाग पर भावी राकेटों के उतरने का स्थान निश्चित करने के लिए इस प्रकार के मानचित्र बिल्कुल आवश्यक होंगे। इससे भी कहीं अधिक वैज्ञानिक महत्व की बात यह है कि चन्द्रमा के आकार तथा संहति अर्थात् उन पदार्थों का जिनसे चन्द्रमा बना है, ठीक-ठीक पता लगाया जाए।

चूँकि चन्द्रमा की रक्षा के लिए उसके चारों ओर सघन वायुमण्डल नहीं है, इसलिए उस पर अन्तरिक्ष विकिरणों की बौछारें होती रहती हैं। अतएव यह भी सम्भव है कि चन्द्रमा स्वयं रेडियसक्रिय हो। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि इस रेडियसक्रियता की तीव्रता का अध्ययन किया जाए ताकि उसके सम्पर्क में आने से पैदा होने वाली उन सम्भावित आपदाओं और बीमारियों के सम्बन्ध में पहले से ही जानकारी प्राप्त हो सके, जिन्हें चन्द्रमा के अन्वेषकों को रेडिय विकिरण के सम्पर्क में आने से भोगना पड़ सकता है।

१. कीड़ों पर नियन्त्रण रखने के लिए हारमोन का उपयोग

हानिकारक कीड़ों को नष्ट करने के लिए मनुष्य दीर्घकाल से जो संघर्ष कर रहा है, उसने रटगर्ज विश्वविद्यालय की कृषि परीक्षणशाला में एक नया मोड़ ले लिया है। वहाँ के वैज्ञानिक आजकल कीड़ों के नियन्त्रण के लिए विशेष प्रकार के हारमोनों का उपयोग कर रहे हैं। ये हारमोन विकास की प्रक्रिया और गति पर नियन्त्रण रखने का कार्य करते हैं। वैज्ञानिकों को यह ज्ञात है कि यदि बहुत अधिक परिमाण में इस कोटि के 'हारमोन' का प्रयोग किया जाय, तो कीड़े परिपक्व अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकते। दूसरे शब्दों में इनके प्रयोग से कीड़ों के स्वाभाविक विकास की प्रक्रिया को रोका जा सकता है।

लेकिन अभी इस दिशा में बहुत परीक्षणात्मक कार्य करना शेष है। उदाहरणार्थ, अभी उचित कोटि के कृत्रिम हारमोनों का निर्माण करने और प्रभावशाली ढंग पर उनका उपयोग करने सम्बन्धी अनेक समस्याओं को हल करना शेष है। सम्भव है कि अन्य कीटमार औषधियों की तरह इसको भी कीड़ों से प्रभावित क्षेत्र में छिड़कने का तरीका अपनाया जाए। यद्यपि अभी अनेक समस्याओं का समाधान शेष है, फिर भी अब तक जो प्रारम्भिक कार्य इस दिशा में हो चुका है, उसके परिणाम अत्यधिक उत्साहवर्धक हैं।

हार्वर्ड विश्वविद्यालय के **डा० कैरोल विलियम्स** और कार्नेल विश्वविद्यालय के **होवर्ड ए० स्किनीडरमेन** ने कई भयानक और दुष्ट कीड़ों पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए 'हारमोनों' का उपयोग करने की दिशा में जो उल्लेखनीय कार्य किया है, उसने रटगर्ज विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध वैज्ञानिक और अनुसन्धान-कर्त्ता **डा० एण्ड्र जे० फारगश** का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। डा० फारगश ने कीड़ों के सम्बन्ध में विशेष रूप से अनुसन्धान-कार्य किया है। उन्होंने यह बताया है कि कई कोटि के 'हारमोनों' की क्रिया का अध्ययन करने से यह विदित होता है कि १६ वर्ष की अवस्था तक किशोरों को हजामत बनाने की आवश्यकता क्यों नहीं पड़ती, बालकों के विकास की प्रक्रिया क्यों जारी रहती है, प्रौढ़ व्यक्तियों का विकास क्यों अवरुद्ध हो जाता है तथा एक निश्चित समय पर कीड़े फतिंगों में क्यों परिणित हो जाते हैं।

उनका कहना है कि यदि हारमोन का उपयोग कर जापानी गुबरीले के विकास को इस प्रकार अवरुद्ध कर दिया जाए कि वह कभी भी उड़ने योग्य न हो सके, तो उससे गुलाब के खेतों के लिए कोई भय उत्पन्न न हो सकेगा। यही हाल मच्छड़ का भी हो सकता है और मक्खी का भी, जो उड़ने में असमर्थ होने के कारण एक प्रकार से प्रभावहीन हो जाएँगे।

वैज्ञानिक हार्शबर्गर ने अपने अनुसन्धान-कार्य के लिए इस फतिंगे को विशेष रूप से उसके बड़े आकार के कारण चुना है। 'हारमोन' एक ग्रंथि के द्वारा इसके सिर में प्रविष्ट कर दिया जाता है। अभी तक जो परिणाम प्राप्त हुए हैं, वे अत्यधिक उत्साहवर्धक हैं। डा० फारगश और हार्शबर्गर

अब तक प्राप्त परिणामों को एक आशाप्रद और उत्साहबर्धक संकेत मानते हैं, परन्तु अभी इस दिशा में बहुत अधिक कार्य किया जाना शेष है।

कृत्रिम हारमोन तैयार करने की दिशा में दूसरा चरण कीड़े के कुछ अंगों से निकाले गए तत्व को शुद्ध करना होगा और इसके बाद उन रासायनिक मिश्रणों को अलग करने का प्रयत्न किया जाएगा, जिसकी खोज में इस समय उक्त वैज्ञानिक अनुसन्धान रत हैं। इसके उपरान्त रसायनशास्त्री एक ऐसा रासायनिक पदार्थ तैयार करने का प्रयत्न करेंगे, जो मूल पदार्थ से मिलता-जुलता होगा और उसी प्रकार की प्रतिक्रिया को जन्म देगा।

२. दुर्लभ प्रकार के सरीसृप के अस्थि-पिंजर की खोज

न्यूयार्क पर स्थित 'अमेरिकन म्यूजियम औव् नेचुरल हिस्ट्री' में दुर्लभ कोटि के एक ऐसे सरीसृप का अस्थि-पिंजर प्रदर्शित किया जा रहा है, जिसका अस्तित्व १७ करोड़ ५० लाख वर्ष पूर्व था और जो उड़ने में समर्थ था। इस सरीसृप के अस्थि-पिंजर की खोज करने का श्रेय तीन अमेरिकी युवाजनों को प्राप्त है।

यह अस्थि-पिंजर ७½ इंच लम्बा है और एक ऐसी जाति के सरीसृप का है, जो लोप हो चुकी है। प्राणिशास्त्रियों का कथन है कि इस कोटि के सरीसृप बहुत प्राचीन काल में अस्तित्व में थे। एक पेड़ की फुनगी से दूसरे पेड़ की फूनगी पर लगभग उसी प्रकार फुदक कर पहुचने में समर्थ थे, जिस प्रकार आजकल की उड़न-गिलहरी समर्थ है।

इस अस्थि-पिंजर के खोज की घोषणा 'अमरिकन म्यूजियम औव् नेचुरल हिस्ट्री' नामक संग्रहालय के डा० एडविन एच० कोलवर्ट ने की है।

३. नेत्रविहीनों का सहायक विद्युदणु यन्त्र

न्यूहोप में अन्धों को सुरक्षापूर्वक सड़क के फुटपाथों पर चलने में सहायता करने के लिए दो इन्फ्रा-रेड विद्युदणु उपकरणों का विकास किया गया है। इन विद्युदण-उपकरणों की इस समय 'वायो-फिजिकल एलेक्ट्रानिक्स इनकार्पोरेटेड' द्वारा परीक्षा की जा रही है। इनमें से एक उपकरण ऐसा है, जो नेत्रविहीन व्यक्ति के मार्ग में आने वाली वाधाओं का पता लगाता है। इस उपकरण से विकिरण की अदृश्य किरणें निकलती हैं और जब किसी वस्तु से टकरा कर पुनः यन्त्र की ओर लौट आती हैं, तो यन्त्र के हैण्डिल में कम्पन होता है। इस कम्पन के आधार पर एक प्रशिक्षित नेत्रविहीन व्यक्ति यह ज्ञात कर लेता है कि वाधा उससे कितनी दूरी पर है। एक अन्य उपकरण फुटपाथ की सतह के स्तर की ऊँचाई अथवा निचाई का पता देता रहता है। जब नेत्रविहीन व्यक्ति के आगे की जमीन की सतह में कोई परिवर्तन होने का अवसर आता है तो यह यन्त्र एक छोटे से लाउडस्पीकर के द्वारा चलने वाले को चेतावनी दे देता है।

४. सिगरेटों की निकेल से कैंसर का भय

जेफर्सन मेडिकल कालेज फिलाडेल्फिया के अनुसन्धानकर्त्ताओं ने यह खोज की है कि सिगरेट के धुएं में प्रर्याप्त परिमाण में 'निकेल' रहता है। इन वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इस निकेलयुक्त धूम्र-पान से छाती का कैंसर हो जाने का भय रहता है।

इस दिशा में चूहों पर कई परीक्षण किए जा चुके हैं। इन परीक्षणों में लगातार एक वर्ष तक सप्ताह में तीन बार चूहों को ऐसे धुएं से युक्त स्थान में रखा गया, जिसमें निकेल का कुछ अंश था। कुछ ही समय में इन चूहों को छाती का कैंसर हो गया।

५. बंगलोर में विशिष्ट विमान की परीक्षा

विश्व में वायु की गति से तेज उड़ने वाले विमानों का निर्माण करने वाले पांच देशों के साथ भारत भी शीघ्र ही सम्मिलित हो जाएगा। हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट फैक्टरी के एक प्रवक्ता ने पत्रकार को बताया कि हिन्दुस्तान फाइटर (एच० एफ० २४) विमान अब

तैयार हो गया है तथा उसके प्रारंभिक परीक्षण आरम्भ किये जा रहे हैं। उसकी सन्तोषजनक प्रगति है तथा उसका भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है।

प्रवक्ता ने यह दावा किया कि एशिया तथा अन्य देशों में यह अपने प्रकार का प्रथम साहसपूर्ण प्रयास है। केवल ब्रिटेन, अमरीका, रूस, फ्रांस तथा स्वीडन ने ही ऐसे लड़ाकू विमान तैयार किये हैं।

६. बिहार में गन्धक का कारखाना

बिहार में नार्वे की एक फर्म के सहयोग से गंधक का कारखाना सरकारी क्षेत्र में खोला जाएगा। भारत में गंधक का यह पहला कारखाना होगा। बिहार के शाहाबाद जिले में मिलने वाले सोनामक्खी से गन्धक बनाने के लिए केन्द्र ने एक कम्पनी खोली है। देश में ही सोनामक्खी के उपयोग तथा गन्धक बनाने से न केवल विदेशी-मुद्रा की बचत होगी, बल्कि इससे इस क्षेत्र में रसायन उद्योगों का भी विकास होगा।

७. ल्यूकेमिया के मूल कारण का रहस्योद्घाटन

वाशिंगटन विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने उस रहस्यपूर्ण तत्व को पहचान लिया है, जो ल्यूकेमिया (एक प्रकार का नेत्र रोग) के कैंसरयुक्त रक्तकोष्ठकों की शीघ्र और सतत वृद्धि में योग देता है। अमेरिकी कैंसर परिषद् की रिपोर्ट में बताया गया है कि यह तत्व एक 'इन्जाइम' (शरीर के भीतर विशिष्ट रासायनिक परिवर्तन करने में योग देने वाला तत्व) है, जिसे 'डी० आर०' या द्विहाइड्रोफोलिक रेडुटेस' कहते हैं। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इसकी पहचान हो जाने से ल्यूकेमिया के रोगियों की प्राण-रक्षा के तरीकों में सुधार करने में सहायता मिलेगी।

'डी० आर०' रासायनिक प्रतिक्रियाओं का एक क्रम प्रारम्भ कर देता है, जिससे ल्यूकेमिया के कोष्ठकों तथा बहुत ही नये सामान्य कोष्ठकों की संख्या बढ़ाने में योग मिलता है। जब यह तत्व विद्यमान नहीं होता, तो कोष्ठकों का पुनर्गमन नहीं होता और अन्त में वे मर जाते हैं।

८. वंश-परम्परा परिवर्तन में रसायन

सेण्ट लुई, मिसौरी, में 'प्राणि-भौतिक विज्ञान परिषद्' की बैठक में प्रस्तुत एक रिपोर्ट में इस बात के पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं कि रसायनों द्वारा, और सम्भवतः उन रसायनों द्वारा, जो खाद्य-पदार्थों और हवा में पाये जते हैं, वंश-परम्परा सम्बन्धी परिवर्तन उत्पन्न हो सकते हैं। रिपोर्ट में निर्दिष्ट खोजों से उन पुराने सिद्धान्तों की पुष्टि हुई है, जिनमें कहा गया है कि एकमात्र विकिरण ही मनुष्य के वंश-परम्परा सम्बन्धी समस्त परिवर्तनों और विकास प्रक्रियाओं का कारण नहीं हैं।

नये प्रमाणों से पता चलता है कि बेन्जोपाइरीन (जो सिगरेट के धूम्र में पाया जाता है), एक्रीडीन (जो कोलतार में पाया जाता है) तथा कैफीन (जो काफी में विद्यमान है), वंश-तत्व के ढाँचे को परिवर्तित कर सकते है और इस प्रकार वंश-परम्परा के स्वरूप को बदल सकते हैं।

९. नये हारमोन की खोज

अमेरिकी वैज्ञानिकों ने सुअरों की कफ सम्बन्धी गिल्टी में एक नये हारमोन की खोज की है, जो, ऐसा प्रतीत होता है, कि शरीर के तन्तुओं में संग्रहीत वसा को रक्त में प्रवाहित करने में सहायक होता है। इस हारमोन को अभी कोई संज्ञा नहीं दी गयी है। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि यह हारमोन 'एथोरोसलेरोसिस' (वसा जमा हो जाने से रक्त-नलिकाओं का कड़ा पड़ जाना) से सम्बद्ध है, जिसे प्रायः हृदय के आकस्मिक गतिरोध और लकवे का कारण मानते हैं।

१०. समुद्रतल में १,०४३ फुट गहरा छिद्र

वैज्ञानिकों ने 'प्रोजेक्ट मोहोल' के अन्तर्गत, पृथ्वी-तल में सबसे अधिक गहराई तक छिद्र करने का नया रिकार्ड स्थापित करने में सफलता प्राप्त की है। उक्त योजना एक परीक्षणात्मक योजना है, जिसका उद्देश्य प्रशान्त महासागर के तल-प्रदेश से मिट्टी तथा अन्य वस्तुओं के नमूनों का संग्रह करना है। यह योजना 'नेशनल एकेडमी ऑफ् सांइसेज' द्वारा चलाई जा रही है।

यह नया रिकार्ड समुद्रतल में छिद्र करने का कार्य करने वाले एक जलयान ने कैलिफोर्निया तट से कुछ दूरी पर स्थापित किया है। इसने समुद्रतल में १,०४३ फुट की गहराई तक, अर्थात् समुद्र-सतह से ३,१४० फुट की गहराई तक, छिद्र करने में सफलता प्राप्त की है। इससे पूर्व की गई खुदाई में धरती के अन्दर ८ नई परतों का पता चला, जिनमें बालू और मिट्टी प्राप्त हुई है। समुद्र तल से ७६० फुट की गहराई पर मिट्टी की जो परत प्राप्त हुई है, उसमें सीपी और घोंघे इत्यादि के ऐसे अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिनकी आयु कम से कम ५० हजार वर्ष आँकी गई है।

भूगर्भशास्त्रियों का ऐसा विश्वास है कि समुद्रतल के नीचे धरती की जो तहें हैं, उनमें पृथ्वी के अब तक के जीवनकाल (३ अरब ५० करोड़ वर्ष) में अवतरित जीवन का रिकार्ड सुरक्षित है। इस खुदाई के फलस्वरूप जो पहले नमूने एकत्र किए गए हैं, उन्हें वैज्ञानिक एक बहुत बड़ी सफलता मानते हैं। यदि पृथ्वी में अधिकाधिक गहराई तक छिद्र करने के प्रयत्नों में सफलता मिलती रही तो वैज्ञानिकों को यह आशा है कि वे अन्ततोगत्वा पृथ्वी की भीतरी खोल जो 'मोहोरीविक सतह' के नाम से विख्यात है, तक पहुँच जावेंगे। यह अनुमान लगाया जाता है कि यह सतह समुद्र तल से भी कई मील नीचे स्थित है।

११. वातानुकूलित वस्त्र

अमेरिका की **वेस्टिंगहाउस एलेक्ट्रिक कार्पोरेशन** और अमेरिकी नौसेना के वैज्ञानिकों ने मिलकर ऐसे परीक्षणात्मक वस्त्रों का विकास किया है जिन पर न तो आर्कटिक प्रदेश की भयंकर सर्दी का और न उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र की तेज गर्मी का कोई प्रभाव पड़ेगा। यह परीक्षणात्मक वातानुकूलित वस्त्र ऐल्यूमीनियम-मण्डित रेशे से तैयार किया गया है। इस बात की विशेषता यह रहेगी कि बाहर का तापमान चाहे कितना ऊँचा या कम क्यों न रहे, अन्दर का ताप मान ८०° से कम या अधिक नहीं रहेगा।

इसके वस्त्र के निर्माण में 'ओटो एलेक्ट्रिसिटी' नामक विधि का उपयोग किया गया है। इस विधि के अंतर्गत एक दिशा से वस्त्र में विद्युतधारा प्रवाहित होती है, जो वस्त्र को ठण्डा रखती है, लेकिन प्रवाह की दिशा विपरीत हो जाने पर यही वस्त्र को गर्म कर देती है।

१२. 'फोटोसेनथिसिस प्रक्रिया' का आविर्भाव

फोटोसेनथिसिस वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा पौधे सूर्य के प्रकाश की सहायता से जल और कार्बन डाई-ऑक्साइड से अपनी खुराक का निर्माण करते हैं। इलिनोय विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों के अनुसार इस प्रक्रिया का अविर्भाव किसी एक प्रक्रिया के फलस्वरूप नहीं, बल्कि तीन रासायनिक प्रक्रियाओं के समागम के फलस्वरूप होता है। वैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि 'क्लोरोफिल' में कम से कम दो तत्व होते हैं। यदि इन तत्वों में 'फोटोसेनथिसिस' क्रिया को प्रेरित करने योग्य आवश्यक शक्ति संग्रह करनी है तो यह आवश्यक है कि सूर्य-प्रकाश की इन पर एक साथ ही प्रतिक्रिया हो।

१३. हृदय रोग के लिए नई औषधि

हृदय रोग की चिकित्सा के लिए एक नई औषधि का विकास हुआ है, जिसमें रक्त के थक्कों को घोलने के लिए मनुष्य के रक्त और मूत्र में विद्यमान "इन्जेम्स" का उपयोग किया जाता है। प्रारम्भिक परीक्षणों में हृदय रोग से पीड़ित व्यक्तियों पर इस औषधि का उत्साहवर्धक प्रभाव पड़ा है।

'यूनिवर्सिटी' के चिकित्सा स्कूल के प्रोफ़ेसर डा० जूलियन एम्ब्रेस ने 'यूरोकिनार्से एक्टिवेटेड प्लाजिमिन' नामक इस नई औषधि का विकास किया है। थक्कों को पिघलाने वाली औषधि तथा रक्त को जमने से रोकने वाली औषधियों को मिलाकर डाक्टर लोग लकवे के फलस्वरूप होने वाले पक्षाघात के प्रभाव को केवल उस स्थान तक सीमित करने में समर्थ हो जाते हैं, जहाँ का खून जम जाता है। इस प्रकार मस्तिष्क की ज्ञान-शिराओं को कम से कम हानि पहुँचती है।

पुस्तक समीक्षा

१. **विज्ञान प्रगति**—वैशाख १८८३ कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली वर्ष १०, अंक ४, पृष्ठ ८९-१२०।

'विज्ञान प्रगति' के द्वारा प्रतिमास प्राविधिक विज्ञान पर अत्यन्त उपयोगी सामग्री पाठकों को प्राप्त होती रहती है। यह सच है कि इसके पूर्व राष्ट्र भाषा हिन्दी में इस विषय पर कोई प्रामाणिक साहित्य उपलब्ध नहीं था परन्तु विगत १४ वर्षों में हिन्दी के राष्ट्र भाषा घोषित हो जाने से वैज्ञानिक शब्दावली के सम्बन्ध में प्रचुर कार्य हुआ है। जहाँ सभी प्रकार के साहित्य को अंकित करने के लिए शुद्ध भाषा के लेखन की आवश्यकता पड़ती है वहीं ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सर्जन या लेखन में इस ओर विशेष स्थान नहीं दिया जाता।

एक ओर 'विज्ञान प्रगति' के आलोच्य अंक में जहाँ "चुम्बकीय तरल का उत्पादन", "थर्मोकपल का ठण्डा जोड़", "नाइट्रोजन समस्या" आदि अत्यन्त महत्व-पूर्ण लेख पढ़ते प्रसन्नता होती है वहीं उनमें व्यवहृत परिभाषिक शब्दों एवं व्याकरण सम्बन्धी प्रयोगों के पढ़ने पर हार्दिक क्षोभ होता है। उदाहरण के लिये पृष्ठ ९० पर "तरल के कण **आकर्षण के बलों** के कारण दोष के क्षेत्र के चारों ओर इकट्ठे हो जाते हैं" में आकर्षण के बलों—forces of attraction का अनुवाद प्रतीत होता है, जो नितान्त अशुद्ध है। यही बात **'परागम्यता'** के लिये कही जा सकती है। पृष्ठ ९१ में इसी को "पारगम्यता" लिखा गया है, जो शुद्ध है। **"चुम्बकीय बिलगावक"** (पृष्ठ ९२) में बिलगावक भी शक्तिशाली पर्याप्त नहीं। पृष्ठ ९३ में **आक्सैलिक,** फैरिस आक्जैलट तथा फैरस आक्जैलेट शब्द आये हैं, जिनमें से आक्जैलेट को **आक्सलेट** तथा **फैरिस** को फेरस होना चाहिये था। वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में लेख लिखते समय शब्द शुद्धि पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता, यह बड़े ही दुख का विषय है।

पृ० ९१ तथा ९५ से व्याकरण सम्बन्धी दोष का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है जो अँग्रेजी वाक्य के अक्षरशः अनुवाद के कारण है।

पिछले दिनों से पानी के...उपयोग भी होने लगा है, तथा

अभी पिछले दिनों तक भारत में ....तैयार नहीं किया जा रहा था।

एक और विलक्षण प्रयोग "बारीकी से" (precisely) का हुआ है :

थर्मोकपल निश्चित रूप से ०·०१ सें० तक की **बारीकी** से ताप नाप सकते हैं (पृ० ९४)।

ताप कितनी **बारीकी से** स्थिर रखा जाता है—(पृ० ९५)।

पृष्ठ ९५ पर एक अन्य त्रुटि का उदाहरण देखें—साधारणतया पाइरोमीटर के टर्मिनल ही **ठण्डा** जोड़ बन जाते हैं।

इसी पृष्ठ पर "प्वाइंट सेल" तथा "ग्लास वूल" शब्दों का प्रयोग बिना किसी रूपान्तर के हुआ है जो श्रेयस्कर नहीं।

२. **केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड**—भारत सरकार, मार्च १९६१।

५८ पृष्ठों की इस पुस्तिका में समाज कल्याण सेवाओं के संगठन पर जो व्यय हुआ, पंचवर्षीय योजनाओं

में इस ओर जो कार्य किया गया उसका विस्तृत लेखा प्रस्तुत किया गया है। समाज कल्याण बोर्ड को विशेषकर महिलाओं, बच्चों तथा बाधितों के कल्याण कार्यक्रम सौंपे गये हैं। पुस्तिका में संस्थाओं की संख्या, स्वीकृत अनुदान, राजसमाज के कल्याण सलाहकार बोर्डों के पते तथा अन्त में पारिभाषिक शब्दावली दी गई है। यह पुस्तिका तथ्यों से परिचित होने के लिये सर्वोत्कृष्ट साधन है।

३. **वार्षिक रिपोर्ट १९६०-६१—वैज्ञानिक अनुसन्धान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय,** पृष्ठ संख्या ८४।

सन् १९६०-६१ में वैज्ञानिक अनुसन्धान और संस्कृति के सभी क्षेत्रों में जो कार्य हुआ है, उसी का विवरण इस रिपोर्ट में है। रिपोर्ट से विदित होता है कि देहातों में विज्ञान के प्रति रुचि बढ़ाने के लिये और उनके दैनिक जीवन की समस्याओं सम्बन्धी वैज्ञानिक सिद्धान्त उन्हें समझाने के लिये सन् १९५० में विज्ञान मन्दिरों की योजना चालू की गई थी। सन् १९५८ में जब वैज्ञानिक अनुसन्धान और सांस्कृतिक कार्य मन्त्रालय बना तो विज्ञान मंदिरों की संख्या १८ थी परन्तु आज उनकी संख्या ३४ है। ये भारत के १७ राज्यों और संघ क्षेत्रों में है। शीघ्र ही ४ और विज्ञान मन्दिर खोले जाने की योजना है। यद्यपि रिपोर्ट में यह नहीं बताया गया कि ये विज्ञान मंदिर कैसा कार्य करते हैं परन्तु जनता इस तथ्य से भलीभाँति परिचित हैं कि उन्हें इन संस्थाओं से कोई भी लाभ नहीं मिला।

रिपोर्ट में प्रादेशिक भाषाओं में लोक विज्ञान साहित्य के प्रकाशन को प्रोत्साहित करने के लिये वित्तीय सहायता का उल्लेख है। तृतीय पंचवर्षीय योजना में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिये १० लाख की निधि सुरक्षित की गई है। सचमुच ही विज्ञान-प्रेमियों के लिये यह सुखद समाचार होगा।

३. **भारतीय मानक संस्था—रंजकों से बनी फाउंटेन पेन की स्याहियों की विशिष्टि**—भारतीय मानक संस्था, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ सं० ६ मूल्य २ रु०।

यह संस्करण अंग्रेजी संस्करण का हिन्दी रूपान्तर है। अंग्रेजी संस्करण का लाभ न उठा पाने वाले व्यक्तियों के लिये यह प्राविधिक जानकारी भारतीय मानक संस्था की हिन्दी समिति द्वारा प्रस्तुत की गई है। इसमें रंजकों से बनी फाउन्टेन पेन की नीली, हरी, बैंगनी, काली और लाल—पांच रंगों की स्याहियों के सम्बन्ध में उपक्षायें एवं उनको परीक्षण पद्धितियों के स्वीकृत मानों को प्रस्तुत किया गया है।

कहना न होगा कि यह योजना अत्यन्त प्रशंसनीय एवं जनोपयोगी होने के साथ ही राष्ट्रभाषा के हित में है।

४. **इंस्टीट्युशन ऑफ इंजीनियर्स (इंडिया जर्नल)** दूसरा खंड—यांत्रिक, विद्युत और सामान्य इंजीनियरी, फरवरी १९६१।

इस अंक के पृष्ठ ८९ से ९६ तक यांत्रिक इंजीनियरी की हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली दी गई है जिसमें २८५ शब्द हैं जिन्हें शिल्प मन्त्रालय की नियुक्त विशेषज्ञ समिति ने बनाया है। इनमें से हम कतिपय शब्दों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करेंगे :

१. ऐसे शब्द जिन्हें अंग्रेजी रूप में ही सीधे उतार कर हिन्दी में रखा गया है यथा इकोनोमाइजर, एन्ट्रापी, जम्प, चार्ज, जेल आदि।

२. ऐसे शब्द जिनके लिये स्वीकृत हिन्दी पर्याय दूसरे हैं परन्तु यहाँ उन्हें भिन्न रूप में रखा गया है: यथा discharge के लिये निस्सरण, Strong solution के लिये "प्रबल विलयन" तथा space lattice के लिये "त्रिदिक जालक"।

३. कुछ ऐसे शब्द बनाये गये हैं जो वास्तविक अर्थ नहीं देते यथा radiator के लिये "विकिरक" major calorie के लिये "किलोकेलोरी' slider के लिये 'सरक' तथा Triatomic के लिये "त्रिपारमाणिक" आदि।

आशा है विशेषज्ञ समिति उक्त सुझावों के प्रति जागरूक रहकर अगला कार्य करेगी।

———

१. दो महत्वपूर्ण अन्तरिक्ष यात्रायें :

सबों को यह भलीभाँति ज्ञात है कि रूस और अमेरिका में विगत तीन वर्षों से किस प्रकार की अन्तरिक्ष यात्रा की होड़ चल रही है। इस अवधि में रूस ने जो उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं वे विश्व भर के वैज्ञानिकों द्वारा सराही जाती रही हैं। कृत्रिम ग्रहों के निर्माण, ध्वजायुक्त राकेट का चन्द्रमा तक जाना, चन्द्रमा के दूसरी ओर का फोटो लेना, सौर मंडल के सर्व प्रथम कृत्रिम ग्रह छोड़ना आदि ऐसी सफलतायें हैं जो रूसी विज्ञान एवं वैज्ञानिकों को प्रथम पंक्ति में बैठाती हैं। १२ अप्रैल सन् १९६१ को पुनः प्रथम उपग्रह अन्तरिक्ष यान "वोस्तोक" (पूर्व), जिसमें २७ वर्षीय नवयुवक फ्लाइट मेजर यूरी अलेक्सेयेविच गागारिन बैठा था, को पृथ्वी की परिक्रमा करने के लिये छोड़कर तथा उसे पुनः पृथ्वी पर निर्धारित समय एवं स्थान पर उतार कर रूसी वैज्ञानिकों ने अद्वितीय विजय प्राप्त की है। इस सफलता एवं साहसिक प्रयास की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई है। अमेरिका के राष्ट्रपति केनेडी ने तो यह भी स्वीकार किया कि रूस की इस सफलता की तुलना में अमेरिका अभी दस वर्ष पीछे है। सचमुच ही अन्तरिक्ष में मानव यात्री को भेजकर उसे स्वस्थ एवं जीवित अवस्था में वापस लाने का लाघव आज के राकेट-विज्ञान की चरम सफलता है।

यह प्रथम उपग्रह अन्तरिक्ष यान पृथ्वी से १७५ से ३०२ किलोमीटर की दूरी पर परिक्रमा कर सका। इसने ८९·१ मिनट में पृथ्वी की परिक्रमा पूरी की। इस यान का भार, राकेट के अन्तिम मंजिले को छोड़कर, ४७२५ किलोग्राम था। अन्तरिक्ष यात्री गागारिन के दोनों ओर रेडियो संचार स्थापित किये गये थे जो बराबर कार्यशील रहे। गागारिन ने दक्षिणी अमेरिका तथा अफ्रीका के ऊपर उड़ान भरते हुए सूचित किया कि मैं बिल्कुल ठीक हूँ। १२ अप्रैल को ही १० बजकर ५५ मिनट पर उक्त यान सोवियत संघ के पूर्व निर्दिष्ट प्रान्त में सकुशल उतरा।

मेजर यूरी का जन्म एक सामूहिक कृषक परिवार में ७ मार्च सन् १९३४ को रूसी संघ के स्मोलेंस्क क्षेत्र में हुआ था। सन् १९५५ में उसने वोल्गा तट स्थित सारातोब के औद्योगिक स्कूल में स्नातक परीक्षा पास की। इसी बीच उसने ऐयरो क्लब में उड्डयन शिक्षा प्राप्त की और १९५७ में सोवियत उड़ाके के रूप में ख्यात हुआ। वह एक वर्ष पूर्व कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य भी चुना गया। मार्के की बात यह है कि गागारिन विवाहित है। उसकी छब्बीस वर्षीया पत्नी वालेनतीना गागारीना मेडिकल स्कूल की स्नातिका है। उसके दो पुत्रिय हैं। उसके बाप की आयु ५९ वर्ष तथा माता अन्ना की आयु ५८ वर्ष है। इस प्रकार परिवार में बँधे होकर भी गागारिन ने अपूर्व साहस का परिचय देते हुये अन्तरिक्ष यात्रा की और सफल रहा। उसे 'सर्वोच्च सम्मान' प्रदान किये जाने का प्रमुख कारण यही है।

रूस के प्रधान मन्त्री ख्रुश्चेव ने न केवल गागारिन को बधाइयाँ दीं वरन् १४ अप्रैल को मास्को में आयोजित एक भव्य समारोह में उसका आलिंगन किया। गागारिन की विजय अन्तरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में

रूस देश की विजय थी इसीलिये राष्ट्र भर के लोगों ने इतना आनन्दोल्लास प्रकट किया। गागारिन ने अपने भाषण में अपने राष्ट्र तथा कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। इसी अवसर पर रेड-स्क्वायर में भाषण करते हुए निकिता ख्रुश्चेव ने कहा कि गागारिन का नाम मनुष्य जाति में सदा अमर रहेगा। उसने अन्तरिक्ष यान 'वोस्तोक" के निर्माताओं, इंजीनियरों तथा वैज्ञानिकों का भी अभिनन्दन किया। ख्रुश्चेव ने घोषणा की कि इस अपूर्व साहस एवं निर्भीकता के लिये गागारिन को "सोवियत संघ के वीर" का उच्च सम्मान प्रदान किया जा रहा है और मानव की प्रथम अन्तरिक्ष उडान की स्मृति में इस वीर की काँसे की बनी आवक्ष मूर्ति मास्को में प्रतिष्ठित की जायगी और स्मारक पदक जारी किया जायगा।

अन्तरिक्ष यात्रा के पूर्व गागारिन बिल्कुल शान्त चित्त था और जब उससे उडान भरने के लिये कहा गया तो उसने कहा कि मैं बिल्कुल तैयार हूँ। यह जानते हुये भी कि वह प्राणों की बाजी लगाने जा रहा है अशान्त नहीं हुआ और न उसे पत्नी का मोह ही हुआ। उसे यह धुन थी कि वह अन्तरिक्ष यात्रा से लौटकर महिमा मंडित हो और वही हुआ भी। अपनी यात्रा के संस्मरणों को उसने बड़े ही नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। कुछ लोगों की धारणा है कि उच्चाकाश का वर्णन कि "अहा, कैसी अद्‌भुत सुन्दरता है" ग्राह्य नहीं परन्तु गागारिन ने पुनः कुछ दिन पूर्व यह कहा है कि ऊपरी दृश्य बहुत कुछ वैसा ही था जैसा कि रोरिक के एक चित्र में अंकित उसने देखा है। उसने बताया कि जिस उच्चता पर उसका यान उड़ रहा था वहाँ से पर्वत-मालाओं, नदियों, द्वीपों, झीलों आदि को साफ-साफ देखा जा सकता है। उसे बादलों से ढकी पृथ्वी स्पष्ट दिखती थी और भूमण्डल की सतह पर उसकी प्रतिच्छाया भी। आकाश बिल्कुल काला, तारे कहीं अधिक भास्वर एवं पृथ्वी के चारों ओर नीले रंग का मंडल दिखता था। गागारिन ने कहा कि भारहीनता का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह उडान के समय मजे में था।

ऐसी अन्तरिक्ष-उडान का सर्वाधिक महत्त्व है भविष्य में चन्द्रलोक की यात्रा के लिये मार्ग का प्रशस्त होना। गागारिन की सफल उडान से यह विश्वास होने लगा है कि अब अन्तरिक्ष में मानव निरापद यात्रा कर सकता है और वह दिन दूर नहीं जब रूसी वैज्ञानिक उन तमाम अन्य समस्याओं का हल ढूंढ़ निकालेंगे जो अन्य ग्रहों तक पहुँचने में बाधा के रूप में उपस्थित होंगी।

फ्रांस से प्राप्त समाचारों से यह विदित होता है कि गागारिन से भी कई दिन पूर्व सोवियत परीक्षण चालक ब्लादिमिर इल्युशिन ने, जो इस समय चीन में हैं, उडान भरी थी अतः उसे ही प्रथम अन्तरिक्ष यात्री कहना चाहिये। परन्तु यहाँ यह स्पष्ट कर दिया जाय कि किसने प्रथम यात्रा की यह उतना महत्वपूर्ण विषय नहीं जितना कि स्वयं प्रथम यात्रा का सफल होना, जिसमें वैज्ञानिक सफलता निहित है। रूसी वैज्ञानिकों ने क्रमशः चूहों, कुत्तों तथा अन्त में मनुष्य को अन्तरिक्ष में भेजकर जो अनुभव एवं विकसित वैज्ञानिक प्रणाली का परिचय दिया है वह सराहनीय है और इसमें सन्देह नहीं कि वे अपनी अध्यवशीलता के द्वारा अन्य गूढ़ रहस्यों का पता लगा लेंगे।

स्पष्टतः अन्तरिक्ष यात्रा की होड़ में अमेरिका पीछे रह गया जिससे उसकी प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा। परन्तु उसने भी अन्तरिक्ष विज्ञान के विकास व उन्नयन में इतना श्रम एवं धन व्यय किया है कि यदि वह अपने प्रयासों को बीच में छोड़ दे तो बड़ी हँसी हो। अतः उसने भी शीघ्र ही अन्तरिक्ष में मानव को भेजने की योजना बनाई। यद्यपि मार्च १९६१ में मनुष्य को काफी ऊँचाई तक पहुँचा कर वापस लाने में सफलता की घोषणा अमेरिका द्वारा हो गई थी परन्तु अन्ततः ५ मई को अमेरिकी वैज्ञानिकों को सुनिश्चित सफलता मिली। उस दिन अमेरिका के ३७ वर्षीय

कमाण्डर एलन शेपर्ड ने ११५ मील ऊपर जाकर १५ मिनट के पश्चात् पृथ्वी पर पुनः स्वस्थ वापस लौटने में सफलता प्राप्त की। जिस अन्तरिक्ष कैपसूल में उसने यात्रा की वह १ टन भारी था। यह यात्रा गागारिन से २३ दिन बाद सम्पन्न हुई। यद्यपि दो दिन पूर्व ही यह यात्रा सुनिश्चित थी परन्तु मौसम के खराब होने से यात्रा को स्थगित करना पड़ा। यात्रा के पूर्व शेपर्ड को नींद नहीं आई और जब वह यात्रा करके उतरा तो पूर्ण रूपेण स्वस्थ नहीं दिखाई पड़ा। यात्रा के समय उसने रेडियो द्वारा ये शब्द प्रेषित किये—अहा क्या ही सुन्दर दृश्य !!

गागारिन की बराबरी में शेपर्ड को राष्ट्रपति केनेडी ने बधाइयाँ प्रेषित कीं और वाशिंगटन में उसका सम्मान किया गया।

अमेरिकी मानवीय अन्तरिक्ष-विजय ने विश्व भर में उतना उत्साह या उल्लास नहीं उत्पन्न किया जितना कि रूसी विजय ने। इसका कारण यह है कि अमेरिकी यात्री ने केवल १५ मिनट तक अन्तरिक्ष में, ऊर्ध्वाधर में, उडान ली जबकि रूसी यात्री ने पृथ्वी की पूरी परिक्रमा की और ८९ मिनट तक की दीर्घ अवधि तक अपने को अन्तरिक्ष प्रभावों से अनुप्रभावित किया। परन्तु महत्त्वपूर्ण बात यह नहीं है कि कितनी अवधि तक यात्रा की गई, महत्व तो इस बात का है कि मानवीय अन्तरिक्ष यात्रा की पुष्टि अमेरिका द्वारा भी की गई। विश्वास है कि भविष्य में ऐसी अनेक यात्रायें इन दोनों राष्ट्रों द्वारा सम्पन्न की जावेंगी जिनसे अन्तरिक्ष विज्ञान को पूर्णता प्राप्त होगी।

२. विज्ञान परिषद के सभापति डा० गोरख प्रसाद का निधन :

विज्ञान परिषद् एवं विज्ञान के पाठकों की ओर से हम डा० गोरख प्रसाद की असामयिक मृत्यु पर खेद प्रकट करते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे और उनके सन्तप्त परिवार को असह्य विछोह के सहन करने की क्षमता दे।

डा० गोरख प्रसाद जी की मृत्यु जिस परिस्थिति में हुई वह अत्यन्त जटिल थी। वे गंगा में डूबते अपने नौकर की प्राणरक्षा का प्रयास कर रहे थे परन्तु दुर्भाग्य कि वे स्वयं भी गंगा की गोद में सदा के लिये सो गये।

डा० गोरख प्रसाद की मृत्यु से वैज्ञानिक जगत की अपार क्षति हुई है। उनकी सेवायें अनेक क्षेत्रों में परिव्याप्त थीं। प्रयाग विश्वविद्यालय के गणित विभाग से अवकाश प्राप्त कर वे काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा आयोजित "हिन्दी विश्वकोष" के सम्पादक थे। तीन वर्षों में ही अपने अथक प्रयासों के द्वारा विश्वकोष का प्रथम खण्ड प्रकाशित करके द्वितीय खण्ड के प्रकाशन की तैयारी कर रहे थे। इसी बीच शिक्षा मन्त्रालय एवं नागरी प्रचारिणी सभा में हिन्दी सम्बन्धी नीति को लेकर कुछ वाद-विवाद चल पड़ा था जिससे द्वितीय खंड के प्रकाशन में विलम्ब हुआ। डा० साहब हिन्दी के प्रबल समर्थक थे, कट्टर पक्षपाती नहीं। जब उन्होंने देखा कि सरकारी हस्तक्षेप के कारण 'विश्वकोष' के प्रकाशन में विलम्ब हो सकता है तो उन्होंने रासायनिक सूत्रों तथा वैज्ञानिक समीकरणों के लिये अंग्रेजी तथा हिन्दी दोनों रूपों के साथ साथ प्रयोग किये जाने के मध्यम मार्ग को स्वीकार कर लिया। ज्ञात हो कि 'विश्वकोष' के प्रथम खण्ड में उन्होंने पहली बार रासायनिक सूत्रों एवं समीकरणों का हिन्दी रूपान्तरण किया था, जिसका घोर विरोध डा० कोठारी ने किया।

विज्ञान परिषद् डा० गोरख प्रसाद की सेवाओं का चिर आभारी एवं कृतज्ञ है क्योंकि उन्होंने अनेक वर्षों तक न केवल 'विज्ञान' का अत्यन्त कुशलतापूर्वक सम्पादन किया वरन् विविध विषयों पर कई पुस्तकें लिखीं। उन्होंने हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के अवतरण के लिये जो गहन परिश्रम किया वह उनके द्वारा लिखे

विविध विषयों के विविध ग्रंथों से परिलक्षित है। विगत एक वर्ष से वे परिषद् के सभापति भी थे। उन्होंने इस काल में जो अभिरुचि दिखाई एवं परिषद् के उन्नयन के लिये जितने भी प्रयास किये वे अत्यन्त प्रशंसनीय एवं वर्णनातीत हैं।

ऐसे कर्मठ विज्ञान सेवी के अकस्मात निधन से विज्ञान परिषद् अनाथ हो गया है और उनके सहयोगी तथा प्रशंसक खिन्न एवं उदास हैं। परन्तु विधि का विधान—मौत के आगे किसका वश चलता है। हम उनके गुणों एवं आदर्शों को आत्मसात कर उसी दिशा में आगे बढ़ने का प्रयास करें—यही उनका वास्तविक सम्मान एवं उनकी आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि होगी।

*डा० गोरख प्रसाद जी की मृत्यु के कारण काशी नागरी प्रचारिणी सभा भी उस दिन बन्द रही।

*वाराणसी तथा प्रयाग के प्रमुख साहित्यकों, सहयोगियों, नागरिकों एवं टेकनिकल प्रेस, प्रयाग, के अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने ६ मई १९६१ को संध्या समय हरिश्चन्द्र घाट पर होने वाले दाह संस्कार में सम्मिलित हो उनके प्रति अपनी श्रद्धा का परिचय दिया।

*विज्ञान परिषद् प्रयाग ने १३ मई को निश्चित अपने वार्षिक अधिवेशन को स्थगित कर दिया।

*प्रयाग के नागरिकों की ओर से एक सार्वजनिक सभा का आयोजन १३ मई १९६१ को नगर प्रमुख एवं साहित्यकार श्री बालकृष्ण राव की अध्यक्षता में विज्ञान परिषद् भवन, प्रयाग में हुआ। इस अवसर पर प्रतिष्ठित नागरिकों ने डा० गोरख प्रसाद जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुये हुतात्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं।

दिवंगत डा० गोरख प्रसाद के सम्मान में

*विज्ञान परिषद् प्रयाग के सभापति डा० गोरख प्रसाद जी की असामयिक मृत्यु की दुखद घटना का समाचार ६ मई १९६१ को मिलते ही विज्ञान परिषद् के सभ्यों एवं कार्यकारिणी के सदस्यों ने एक तत्काल बैठक १०½ बजे प्रातःकाल की जिसमें शोक प्रस्ताव पास किया गया। हुतात्मा के सम्मान में विज्ञान परिषद् कार्यालय बन्द कर दिया गया।

विज्ञप्ति

विज्ञान का "जून-जुलाई" अंक **डा० गोरख प्रसाद "श्रद्धांजलि अंक"** के रूप में प्रकाशित होगा।

लेखकों से निवेदन है कि वे डा० गोरख प्रसाद से सम्बन्धित लेख—जीवन परिचय, संस्मरण आदि तथा चित्र १५ जून १९६१ तक प्रेषित कर अनुगृहीत करें—सम्पादक 'विज्ञान' विज्ञान परिषद थार्नहिल रोड, इलाहाबाद।

डा० गोरख प्रसाद स्मृति अंक

वि
ज्ञा
न

वि
शे
षां
क
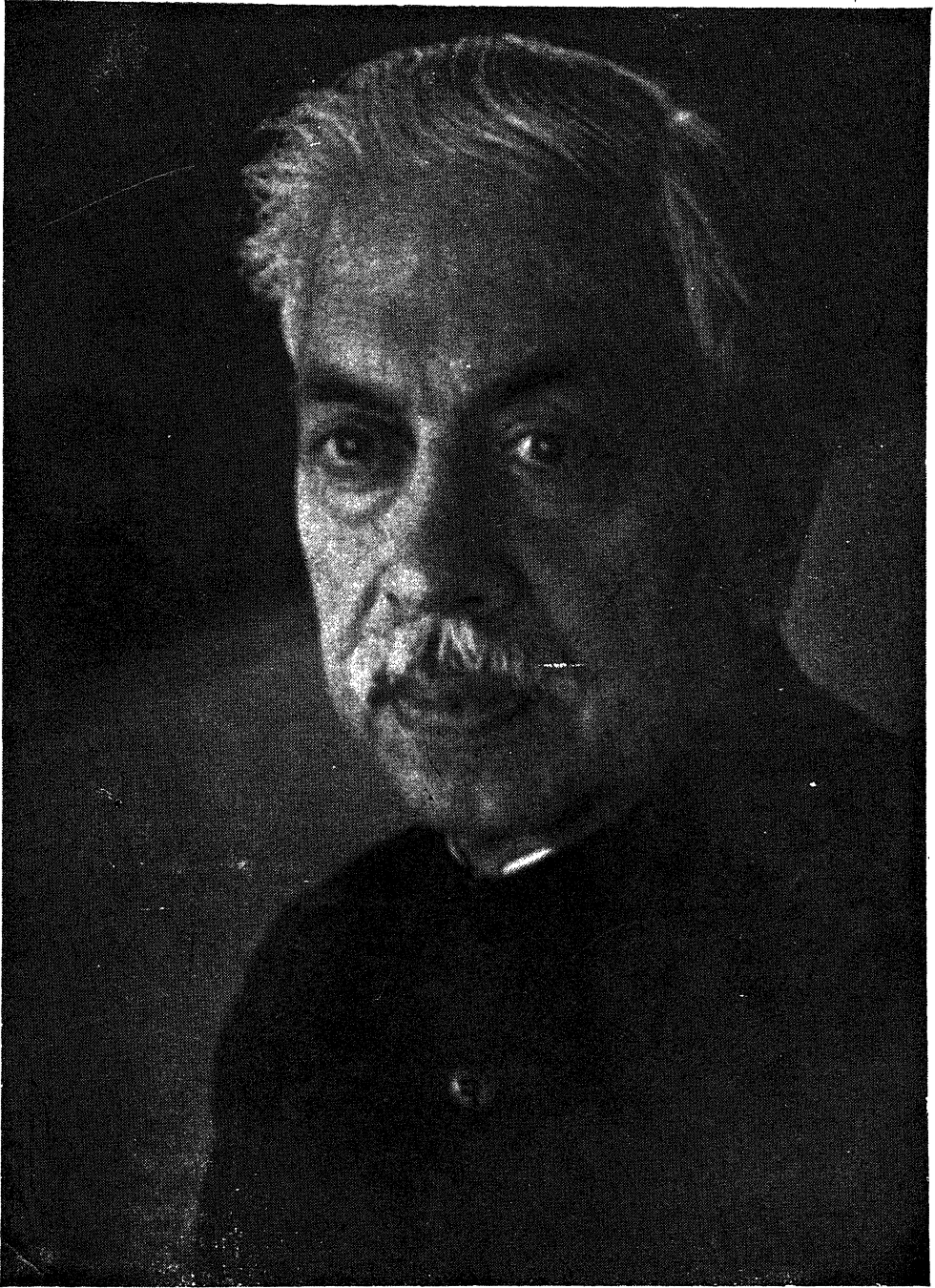
विज्ञान परिषद्, प्रयाग

सम्पादक—डा० शिवगोपाल मिश्र

विशिष्ट परामर्शदाता—डा० सत्य प्रकाश

सम्पादकीय

पाठकों के समक्ष डा० गोरख प्रसाद स्मृति अंक इतने विलम्ब से प्रस्तुत हो रहा है कि हम स्वयं लज्जा का अनुभव कर रहे हैं।

डा० गोरख प्रसाद का व्यक्तित्व कितना आकर्षक एवं व्यापक था यह उनके सम्पर्क में रहने वालों द्वारा लिखित संस्मरणों से स्पष्ट है। उनके कृतित्व का अनुमान उनके द्वारा लिखित पुस्तकों, लेखों एवं रेडियो-वार्त्ताओं से लगाया जा सकता है।

उनका सामाजिक पक्ष भी उतना ही पूर्ण था। गणितज्ञ होते हुए भी उनके अन्तर में सहज मानवता की धारा प्रवाहित थी। वे बच्चों के मनोभावों के पूर्णज्ञाता थे। उनके द्वारा लिखित पत्रों से इसकी पुष्टि होती है।

हम उन सुधीजनों, लेखकों एवं विद्वानों के आभारी हैं जिन्होंने अपने संस्मरणों एवं लेखों द्वारा इस अंक के निकालने में योग दिया। हम डा० गोरख प्रसाद के सुपुत्र डा० चन्द्रिका प्रसाद के कृतज्ञ हैं जिन्होंने उन अनेक शोक समाचारों एवं समवेदनाओं को प्रकाशनार्थ हमें दिया, जो उनके पास आये थे।

हम आकाशवाणी, इलाहाबाद के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करते हैं जिसने डा० गोरख प्रसाद की रेडियो वार्ताओं को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की।

चित्रकार सौनरिक्शा तथा बैजनाथ वर्मा ने डा० गोरख प्रसाद के चित्रों को छापने की अनुमति देकर हमें कृतार्थ किया है।

डा० सत्यप्रकाश ने समय समय पर इस अंक के संकलन में जो योग दिया और डा० गोरख प्रसाद के परिवार के जिन व्यवितयों ने लेख लिखकर हमारी सहायता की उसके लिये वे सब प्रशंसा के पात्र है।

टेकनिकल प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद ने सम्पूर्ण अंक के मुद्रण एवं पोथीशाला प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद ने अन्य समस्त व्यय वहन किया, जिसके लिये वे साधुवाद के भागी हैं।

विषय-सूची

विषय-सूची

हिन्दी विश्वकोष के सम्पादक

स्वर्गीय डा० गोरख प्रसाद (मृत्यु ५ मई १९६१ वाराणसी में)

डा० गोरख प्रसाद स्मृति अंक

के

सम्बन्ध में प्राप्त सन्देश

डा० गोरखप्रसाद मेरे पुराने सहयोगी और मित्र थे। उनके आकस्मिक देहान्त से मुझे मार्मिक क्लेश हुआ है। उन्होंने हिन्दी की सेवा लगन से की थी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के परीक्षामंत्री वह रहे थे और परीक्षा का काम उन्होंने बढ़ाया था। गणित और ज्योतिष के विषयों के वह ऊँचे विद्वान थे और अपनी विद्वता का लाभ उन्होंने हिन्दी को दिया था। उनके उठ जाने से हिन्दी माता का एक महारथी पुत्र चला गया। हिन्दी साहित्यिक संसार ने उनके चले जाने से अपना एक उज्ज्वल रत्न खो दिया।

प्रयाग, १२-५-६१ (राजर्षि) **पुरुषोत्तमदास टण्डन**

* * *

प्रिय महाशय

कार्ड मिला। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि डाक्टर गोरख प्रसाद के निधन से प्रदेश के विद्वज्जगत और विशेषकर हिन्दी के क्षेत्र की बड़ी हानि हुई। जिस अवस्था में उनकी मृत्यु हुई वह उनके उदात्त स्वभाव की परिचायक थी। उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि ही अर्पित कर सकता हूँ।

पार्क रोड, लखनऊ
२५-५-६१

भवदीय
सम्पूर्णानन्द

* * *

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि स्वर्गीय डा० गोरख प्रसाद की पुण्य स्मृति में 'विज्ञान' का एक विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है।

शिक्षा के क्षेत्र, विशेषकर विज्ञान और हिन्दी में डा० गोरख प्रसाद की सेवायें अपना विशेष स्थान रखती हैं।

लखनऊ
जून ६, १९६१

चन्द्रभानु गुप्त
मुख्य मंत्री, उत्तर प्रदेश

* * *

कल दैनिक विश्वमित्र में डाक्टर गोरख प्रसाद का दुःखद समाचार पढ़ कर बड़ा धक्का लगा और अत्यंत शोक हुआ। क्या वह नौकर जिसको बचाने के लिए उन्होंने अपनी जान गँवा दी, बच गया ! उन्होंने दूसरों की सेवा में ही अपना होम कर दिया।

हिन्दी भाषा के वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण में उनका कार्य अविस्मरणीय रहेगा। हिन्दी विश्वकोष के लिए भी उनका ही परिश्रम सराहनीय है। उनकी जगह कभी भी नहीं भरी जा सकेगी। विज्ञान परिषद् के तो वह प्राण ही थे। उनकी यह आकस्मिक मृत्यु बहुत ही दुःखदायी है। मेरा सन् १९५६ से उनका परिचय था और तभी से उनका मुझसे बड़ा ही प्रेम था। वह मैं कभी न भूल सकूँगा। परमात्मा उनकी आत्मा को शान्ति और उनके परिवार को यह महान शोक सहने की शक्ति दे।

३/१७ ईस्ट पटेल नगर,
नई दिल्ली-१२

ब्रज मोहन लाल
रिटायर्ड चीफ इंजीनियर

डाक्टर गोरख प्रसाद जी की मृत्यु से संस्था को बहुत धक्का लगा। वह परिषद् के संस्थापकों में से थे। मेरी ओर से उनके परिवार को सम्वेदना पहुँचा दें।

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी,
६०-६१ अकाली मार्कीट, अमृतसर
८-५-१९६१

हरिशरणानंद

* * *

पूज्य डाक्टर साहब के निधन का समाचार पत्रों में पढ़ कर कितना दुःख हुआ, वह व्यक्त नही कर सकता। क्या कहा जावे विधि के विधान में मनुष्य कर ही क्या सकता है !

१७ कैसर बाग, लखनऊ
९-५-६१

सुरेश सिंह

* * *

प्रिय डा० सत्यप्रकाश,

स्वर्गीय डा० गोरख प्रसाद की पुण्य स्मृति के प्रति मेरी श्रद्धांजलि और आदर प्रकट करने का जो अवसर आपने दिया है उसके लिये मैं आपका आभारी हूँ। डा० गोरख प्रसाद के इस आकस्मिक देहावसान का सम्वाद पाकर मुझे अत्यन्त शोक हुआ है। वह एक महान् विद्वान थे जिन्होंने अपना जीवन विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के कार्य के लिये अर्पण कर दिया था। उनके कार्य और निरन्तर प्रयास ने विदेशी भाषा की बेड़ियों को तोड़कर आधुनिक ज्ञान को हमारे देशवासियों तक पहुँचने में बहुत सहायता की है। विश्वविद्यालयों में शिक्षा का स्तर ऊँचा रखने के लिये वह सदा लड़ते रहे और उनके सम्पर्क में आने वाले सभी लोग उनके इन सराहनीय कार्यों से प्रभावित थे। उनके इस आकस्मिक निधन से देश को बहुत बड़ी हानि हुई है। मेरी प्रार्थना है कि भगवान् उनकी आत्मा को शान्ति दे।

डाइरेक्टर, इण्डियन एसोशिएसन फार
द कल्टीवेशन ऑव साइंस, कलकत्ता-३२
१९-६-६१

केदारेश्वर बनर्जी

* * *

My dear Shri Ramesh Chandra Ji,

It was shocking to learn of the demise of Dr. Gorakh Prasad who died an untimely death. I pray for peace to the departed soul and wish God may give strength to the bereaved family to bear the loss.

11735, Satyanagar,
New Delhi-5
May 15, 1961.

Yours sincerely,
K. Sagar
(के० सागर)

My dear Dr. Kapur,

I was away from the Headquarters when your telegraphic news for the postponement of your Annual Meeting on account of the sudden and tragic death of Dr. Gorakh Prasad was received here. No doubt, in the death of Dr. Gorakh Prasad both the scientific and Hindi sectors of our country have suffered irreparable loss. The postponement of the Annual Meeting was the least token of the grevious loss to which vent could be given by Vigyan Parishad.

MANAK BHAVAN,
MATHURA ROAD,
NEW DELHI
15 May, 1961

Yours sincerely,
(Dr.) Sadgopal.
(डा० सदगोपाल)

*　　*　　*

प्रिय कपूर जी,

दिनांक ७ मई प्रातःकाल आपका तार इस दुःखद समाचार के साथ मिला कि परिषद् के अध्यक्ष का देहान्त हो गया है। सचमुच यह बहुत ही दुख की घटना है। कृपया अध्यक्ष के परिवार वालों को मेरी सहानुभूति तथा शोक से अवगत कराइये।

बम्बई
८-५-६१

भवदीय
भ० ने० थधाणी

विभिन्न व्यक्तियों
द्वारा प्रेषित
शोक सम्वाद एवं समवेदनाएँ

(१)

प्रिय डा० चन्द्रिका प्रसाद जी,

आपके पूज्य पिता जी, मेरे पुराने मित्र और सहयोगी डा० गोरख प्रसाद, के आकस्मिक शरीरान्त का समाचार पढ़कर मुझे स्वभावतः क्लेश हुआ। उन्होंने हिन्दी की उच्च सेवा की और भविष्य में भी उनसे, उनकी महान विद्वत्ता के कारण, ऊँचे हिन्दी कार्य की आशा थी।

परमात्मा ने उनको खींच कर न केवल आपको और आपकी माता जी तथा कुटुम्बियों को, अपितु हिन्दी संसार को पीड़ा पहुँचाई है। इस महान् दु:ख में आपके, और आपकी माता जी तथा बहनों के प्रति मेरी हार्दिक समवेदना है।

लाजपत भवन, कल्यानी देवी
इलाहाबाद
दिनांक १०-५-१९६१.

शुभैषी
पुरुषोत्तमदास टण्डन
अध्यक्ष, लोक सेवा मंडल

(२)

Deeply shocked distressed learning Dr. Gorakh Prasad's tragic death. Kindly accept yourself and convey bereaved family my heartfelt condolences. Hindi world loses great scientist.

श्रीप्रकाश
(राज्यपाल, महाराष्ट्र)

Sri Prakash
Rajya Pal, Maharashtra.

(३)

The sad demise of Prof. Dr. Gorakh Prasad is an irreparable loss to the field of learning, notably Mathematics and Astronomy. Many of the books which he had written for classroom purposes have been popular throughout the country. Of late he had been devoting a great attention to popularise science and mathematics through the medium of Hindi. It is really unfortunate that he has been snatched away at a time when the country is realising the importance of fundamental research, to which he has contributed a great deal. Our heartfelt sympathy is due to the bereaved family.

Department of Mathematics,
Indian Institute of Technology,
Kharagpur.
29th May, 1961.

Satish Ram Mandar
(सतीश राम मन्दार)

(४)

My dear Dr. Chandrika Prasadji.,

Kindly permit me to express my deep sorrow and sympathy at the passing away of your revered father, who was a personal friend of mine whom all of us in the university looked upon as a very learned scholar and a perfect gentleman. We all miss him very much. His death is a national loss and I hope and trust you will inherit from him his great virtues and abilities which endeared himself to all.

(Retired Dean, Law Faculty,
Allahabad University.)
3 Elgin Road, Allahabad
3. 6. 61

K. K. Bhattacharya
(किरण कुमार भट्टाचार्य)

(५)

My dear Dr. Chandrika Prasad ji,

We have all been stunned to learn of the very sad and sudden demise of Dr. Saheb. It is unfortunate that noble souls like his depart so suddenly from us.

May Dr. Saheb's soul rest in peace! May He give you strength enough to bear this shock!

Head Mathematics Dept.
University of Lucknow
6. 5. 61

Yours sincerely
Ram Ballabh
(डा० राम बल्लभ)

(६)

प्रियवर,

आपके पूज्य पिताजी और मेरे मित्र बंधुवर डा० गोरख प्रसाद जी के अचानक गंगा में डूब जाने का समाचार पत्रों में पढ़ कर गहरा दुःख हुआ। विज्ञान परिषद् के नाते मेरा उनका सम्बंध रहा। उनका स्नेह पाकर मैं गौरवान्वित हुआ हूँ। आपके इस दुःख में हम भी आपके साथ हैं। भगवान से यही प्रार्थना है कि स्वर्गीय आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

हिन्दी समाचार पत्र संग्रहालय
कसारहट्टा रोड, हैदराबाद-२
११ मई, ६१

शोक सन्तप्त
बंकटलाल ओझा

(७)

Mrs. Gorakh Prasad,

Impossible to believe or bear fate's cruel decree. Please accept and take heart.

Editor, Hindi Viswakosh

Bhagwatsaran Upadhyaya
(डा० भगवतशरण उपाध्याय)

(८)

प्रिय कार्तिक प्रसाद,

कल दैनिक विश्वमित्र में आपके भाई गोरख प्रसाद का दुःखद समाचार पढ़कर बहुत ही आघात लगा और शोक हुआ, उनकी यह आकस्मिक मृत्यु आप सबके लिये बहुत ही दुःखद है। इस महान दुख में हमारी आपके साथ बहुत सहानुभूति है। परमात्मा आपके परिवार को यह असहनीय दुःख सहने की शक्ति दे और डाक्टर गोरखप्रसाद की आत्मा को शांति दे। उन्होंने अपने प्राण अपने नौकर की प्राणरक्षा के लिए होम किये हैं। इससे बड़ा यज्ञ क्या हो सकता है? मेरा परिचय उनसे १९५६ से ही हुआ था पर अब हिन्दी विश्वकोश के कारण हमारे सम्बंध बहुत निकट और प्रेमपूर्ण हो गये थे। हिन्दी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण में उनका अमूल्य कार्य अविस्मरणीय है।

३-१७, ईस्ट पटेल नगर
नई दिल्ली-१२
८-५-६१

हार्दिक सहानुभूति सहित,
भवदीय,
ब्रजमोहन लाल

(९)

प्रिय भाई चन्द्रिका प्रसाद जी,

अखबार में आदरणीय डाक्टर साहब के अत्यन्त दुःखद देहावसान की खबर पढ़कर मैं स्तब्ध रह गया। आप लोगों के ऊपर तो वज्र-निपात ही हुआ है।

इस संसार में जिसने जन्म लिया है उसको एक दिन मरना है पर मृत्यु का इस प्रकार क्रूर आघात करना हम सभी को अवसन्न और ज्ञान-शून्य कर देता है। आपको तथा आपके परिवार के अन्य लोगों को सान्त्वना देने के लिए मुझे शब्द नहीं मिल रहे हैं, पर हम सभी लोग नियति के इस क्रूर आघात से शोकाकुल हैं और हमारी संवेदना तथा सहानुभूति आपके साथ है।

भगवान से प्रार्थना है कि वह दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे और आप लोगों को यह विपत्ति सहने की शक्ति दे।

महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी
बडौदा

आपका
उदित नारायण
प्रोफेसर, गणित-विभाग

(१०)

My dear Prof. Chandrika Prasad,

It is a great shock to hear about the sad demise of an eminent soul that Prof. Gorakh Prasad was. His sudden passing away is a great sorrow for your Mataji and family. His demise is a great loss to the country as a whole. His earlier achievements and present engagements were a great service to the country.

We have a solace, however, that he breathed his last in the sacred waters of Ganges at Banaras. I pray to God to rest his soul in eternal peace and give you and family courage to withstand the shock and sorrows.

With respects to Mataji,

Yours Scincerely
Omar Ali Siddiqi, M.Sc.
(उमर अली सिद्दीकी)

Reader in Mathematics and Head of
the Applied Science Deptt.
College of Engineering and Technology
Muslim University
Aligarh 7. 5. 61

(११)

This meeting of the teachers and the students of the Department of Mathematics, University of Gorakhpur, expresses their deep sense of sorrow at the sad and sudden demise of Prof. Gorakh Prasad.

Dr. Gorakh Prasad was the author of a number of University text-books in Mathematics and did a great national service to the cause of Mathematics in India. His passing away is an irreparable loss to the field of Mathematics.

Department of Mathematics,
University of Gorakhpur,
Gorakhpur.
9. 6. 61

R. S. Mishra
(आर० एस० मिश्र)

(१२)

My dear Dr. Chandrika Prasad,

My wife and I are extremely grieved to learn of the very tragic end of your beloved father, and my erstwhile colleague and neighbour on whom I could always depend for help and guidance. May his soul rest in peace. May God give you and your mother and sisters strength to bear this terrible loss. There is mourning in the city here as well as in the University. We shall ever miss that great soul and mind. Today we are all distressed and do not know with what words we can console you. The Almighty alone will help us all at this most tragic and terrible moment.

If we can be of any service to you and your mother, please do not hesitate to tell us how best we can serve the people of our beloved friend and neighbour who never said 'no' to any request we made to him.

With tears in our eyes we offer you our condolences and pray to Him to help you, and your people.

7, Lajpat Rai Road,
Allahabad
6. 5. 61

Yours affectionately
P. L. Srivastava
(डा० प्यारे लाल श्रीवास्तव)

(१३)

प्रिय श्री चन्द्रिका प्रसाद जी,

आपके स्वर्गीय पिता जी के निधन का समाचार पाकर मैं स्तब्ध रह गया। हम सभी उनके असामयिक निधन से अत्यधिक दुःखी हैं और उनकी दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिये परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं। परिषद् के कार्यों में स्वर्गीय डाक्टर साहब का सदैव अमूल्य सहयोग मिलता रहा है। उनके निधन से परिषद् को एक बड़ी क्षति पहुँची है जिसका उल्लेख शब्दों में करना मुझे कठिन प्रतीत हो रहा है। भगवान आपको एवं आपके शोक सन्तप्त परिवार को इस महान दुःख को सहन करने की सामर्थ्य दें।

डा० साहब इण्टरमीडिएट परीक्षा १९६१ के दो सारणीयन खंडों के सारणीयक थे। उसमें से एक रजिस्टर ५६ प्र० प्र० उनको भेजा जा चुका था तथा दूसरे खंड को भी (६६ प्र० प्र०) भेजा जा रहा था इसी बीच यह दुःखद समाचार प्राप्त हो गया।

हम सभी लोग इस महान शोक में आपके परिवार के साथ सम्मिलित हैं।

भवनिष्ठ,
श्रीनिवास शर्मा

सचिव,
माध्यमिक शिक्षा परिषद्,
उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।
दिनांक ८-५-१९६१

(१४)

My dear Chandrika Prasad,

I am indeed very sorry to learn about the sad and tragic death of your revered father, the late Dr. Gorakh Prasad. On behalf of the University as well as on my own behalf, I convey my deep condolences to you and other members of the family in their sad bereavement. The news of his death received this morning was quite a shock to me as he was with us in the Executive Council meeting only on the 29th of April. Dr. Gorakh Prasad was a well-known figure in the academic world and was very popular both with his students and colleagues. His loss will be mourned by his numerous friends and students. I take this opportunity to record my great appreciation of the valuable services rendered by Dr. Gorakh Prasad to the University in various capacities. He was a sitting member of the Executive Council of the University and made notable contribution in its deliberations. He always took keen interest in the welfare of the students and the University. In his death the University has lost a great scholar, a popular teacher and a perfect gentleman.

May his soul rest in peace!

Yours sincerely,
P. K. Kaul
Vice-Chancellor.
(पी० के० कौल)

SENATE HOUSE
Allahabad
6th May, 1961

(१५)

Dear Doctor Chandrika Prasad,

I am deeply pained to learn about the sad demise of your father in a valiant effort to save a human life.

Kindly accept our heartfelt condolence.

Dept. of Applied Mathematics,
Indian Institute of Science,
Bangalore-12.
18th May 1961

Yours sincerely,
P. L. Bhatnagar
(पी० एल० भटनागर)

(१६)

Dear Prof. Chandrika Prasad,

I learnt with a deep sense of sorrow a few days ago of the sad, premature and sudden demise of the late Dr. Gorakh Prasad, M.Sc., D.Sc., F.R.A.S.

We met him only about a month ago when I was in Varanasi on leave.

His unassuming nature, the frank and sincere advice he gave to his students and his rigorous and realist outlook would ever be remembered by those who came in contact with him. I was directly his student in the University of Allahabad in his various classes from 1927 to 1932 and continued to receive his advice and guidance for several years thereafter.

His exposure (with facts and figures) of spirit photography was unique. His very special ability in the exposition of otherwise difficult scientific works in popular Hindi (neither highly Persianised nor highly Sanskritised) was probably unparalleled.

It is, however, a matter of pride that he lost his own life in an attempt to save that of another person—his own servant.

I have to convey our heartfelt sympathies and condolences to the members of his family in their bereavement. May the departed soul rest in peace.

Insurance Officer,
Finance Department,
Govt. of Maharashtra,
Sachivalaya—Annexe,
BOMBAY—32.
Dated, 30th May 1961.

Yours sincerely,
S. C. Damle
M.Sc. F.I.A.(London),
(एस० सी० दामले)

(१७)

My dear Doctor Chandrika Prasad,

I got the news of the sad and untimely demise of your revered father and our most respected teacher, Dr. Gorakh Prasad, rather late. I had the good fortune of being his student at Banaras in 1923 and at Allahabad in 1925-26. I cannot find words, believe me, to express the supreme sovereign qualities of the head and heart which he possessed.

May God bestow peace on the departed soul and give you and other members of your family the strength to bear this great calamity !

Sagar
12. 6. 61.

Your very sincerely
Mannoo Lal Misra
(मन्नू लाल मिश्र)

(१८)

My dear Dr. Saheb,

I was shocked to hear the sudden death of your father. It gave us pain as well. Once when he came here in connection with a viva, he put up with me for 3 or 4 hours in day time. I had seen him many times when he was at Allahabad. He loved me very much.

May God grant peace to his soul and consolation to the bereaved family.

Associate Professor
Mathematics Department
Agra College
Dated 10. 5. 61

Yours sincerely
Har Swarup
(हर स्वरूप)

(१९)

Dr. C. Prasad,

I am really very sorry to learn of the sad demise of Dr. Gorakh Prasad. The death is untimely, as also unexpected. It seems that noble souls are taken away like this at an early date. He was like a father to us and did all to help me in life. We have no control over His decision. Time is the only healer. May his soul rest in peace.

Landour

R. S. Varma
(आर० एस० वर्मा)

(२०)

My dear Dr. Chandrika Pd.,

I am extremely shocked to learn about the sudden, sad and most untimely death of your worthy father who gave his life in an effort to save another. Throughout

his life he has been most kind and generous and ultimately his helpful attitude for others has cost him his life and we have lost a great soul. I fully realise the feeling of everyone of you. It is always a great calamity to lose a father and it is particularly most so when one loses a father of the type of Doctor Sahib. I have no words to express my feeling of sorrow on this sad occasion. We can only pray that the almighty Father may grant peace to the departed soul and courage to all his relations and friends to bear this most heavy loss. Kindly convey my heart-felt sympathies to your worthy mother and I shall personally meet her after my return to Allahabad.

4 Ayub Mansion
Vincent Road, Matunga
Bombay-19

Yours Sincerely
R. N. Tandon
(आर० एन० टंडन)
(Head Botany Department,
University of Alld.)

(२१)

Dear Chandrika Prasad,

I do not know what to write. I got stunned at reading in to-day's paper, the paralysing tragic news.

I loved greatly your father; he was like a younger brother to me. Of what shall I say of him ? He was loved and respected by all. I feel bereaved.

May God give you, your mother and all the members of your family, strength to bear this great bereavement. May He give you peace of mind.

I am lying ill in bed, otherwise I would have called on and seen you.

B 6/15 Pitambarpura,
Varanasi
7. 5. 1961

Yours
K. P. Chatterjee
(के० पी० चटर्जी)

(२२)

आदरणीय भैय्या,

काल रूपी तूफान ने डा० साहब जैसे वृक्ष को उखाड़ दिया। उस सघन वृक्ष पर वसेरा करने वाले हम पंक्षियों का तड़फड़ाते देखना ही शायद प्रकृति का क्रूर विनोद था। शरीर ऐसा वज्र है कि निर्मम से निर्मम पीड़ा को भी सह लेता है। हम डाक्टर साहब के लिए रोते हैं। सच तो यह है कि हम अपने लिए रोते हैं। वे हर प्रकार से महान थे। जीवन के पग पग पर उनकी महानता प्रगट होती रही और उनका मरण भी अपने में महान् रहा। जीवन में जैसे वे शानदार और गौरवपूर्ण रहे उसी के अनुरूप ही उनका अंत भी हुआ। डाक्टर साहब पहाड़ियों के मध्य के पहाड़ नहीं थे, बल्कि ऊँचे पहाड़ों के मध्य में एवरेस्ट के समान ऊँचे थे। वे महान कर्मठ थे। वे धुरन्धर विद्वान तो थे ही, उनसे अधिक साहसी, निर्भीक, सरल, विनोदी अनुशासन-प्रिय,

जीवन व्यतीत करने की कला के वे विशेषज्ञ थे। वे शरीर से जैसे सुन्दर और विशाल थे, उससे भी अधिक विशाल एवं उदार हृदय वाले थे। उनके बिना हमारी दशा पानी से बाहर निकाली हुई मछली के समान हो गई है। सच्चरित्र आदमी उँगलियों पर गिनने को भी नहीं मिलेंगे। हम गोशन्देपुर के लोग तो एक प्रकार से अनाथ हो गये। गोशन्देपुर का बच्चा बच्चा इस निर्मम आघात से महान् दुःखी है। डा० साहब के आकस्मिक और समय से पूर्व निधन के कारण सारा शिक्षित समाज दुःखी है। इतना व्यापक दुःख केवल पं० अमर नाथ झा की मृत्यु के समय लोगों में देखा गया था। मैं कितना भी कहता हूँ, संतोष नहीं होता। उनका जीवन एक बड़े लम्बे-चौड़े उपन्यास और नाटक की विशाल सामग्री उपस्थित करता है। ३२ वर्ष पूर्व अपने गाँव में उन्हें देखा था और उनके ग्रामोफोन का रेकार्ड सुना था। वे लाइनें आज भी भूली नहीं हैं। "सुव्वन के अब्बा, हाँजी, तू गयो बाजार, हाँजी," वे लाइनें आज जब डाक्टर साहब हमलोगों के मध्य में नहीं हैं, शायद उसी बाजार चले गये जहाँ से जाकर कोई लौटाता नहीं, रह रहकर याद आती हैं और अपनी निर्मम स्मृति छोड़ जाती हैं। सम्भवतः प्रकृति के क्रूर झूले पर झूलने के लिए ही हमारा निर्माण हुआ है। प्रकृति की क्रूरता का ज्ञान हमें भारी झटका खाने के बाद ही होता है। भैय्या आप तो काफी रो चुके होंगे और हल्के भी हो गए होंगे। बुआ जी को महान धीरज हम रोते हुओं को चुप कराने के लिए धरना होगा और रोना बंद करना होगा। डाक्टर साहब लोगों के मध्य में नहीं हैं, यह विश्वास ही नहीं होता। उनकी छाप में हमलोग इतने घुलमिल गए हैं कि उनके पार्थिव शरीर के न रहने पर भी वे हमारे हृदयों से निकल नहीं सकते। अतः हम लोग उनके ऋणी हैं। जीवन में उनके जैसा अब हम लोग पा नहीं सकते।

His life was gentle, and the elements so mix'd in him that Nature must stand up and say to all the world, 'This was a man !'

अंत में मैं अपनी श्रद्धांजलि उनकी स्वर्गीय आत्मा के चरणों में यह कहकर अर्पित करता हूँ जो Hamlet ने अपने स्वर्गीय पिता के बारे में कहा था :—

"He was a man, take him for all in all,
I shall not look up on his like again."

आप का छोटा भाई
राम बदन दुबे

(२३)

My dear Dr. Chandrika Prasad,

I very much regret that I could not stay at varanasi during the night and comfort you the next day when you were expected. The loss in the passing away of your revered father in such a tragic way gave us all a stunning blow. His association with me was from 1918 when he joined B. H. U. as a researcher and we as a student —all of us under one guru Dr. Genesh Prasad. First in 1954, A. N. Singh parted company and now your father who was also my teacher has parted. Almost every

fortnight even after his retirement we used to meet and our association was deep and abiding. He was so good and kind to us that we felt him as one of our elder family members. He has presented a very fine wooden horse of his own design and making to my grand children and it brings the memory of his warm and jolly company. I felt overwhelmed to see him calm and serene cased in ice. It was a very touching site and I could not stay there long.

I know your grief is greater than mine and I pray that time will partly heal your wound.

He lived for others all his life and he died for others at the last moment. Death could not be nobler—to die for others. Our feelings are with you at this sad moment.

With best wishes to you all.

11A Elphinstone Hotel,
Naini Tal
19. 5. 61

Yours Sincerely
Piare Mohan
(प्यारे मोहन)

(२४)

प्यारे भाई श्री चंद्रिका प्रसाद जी,

सस्नेह नमस्कार। पिछले महीने जब श्रद्धेय डाक्टर साहब के परलोकवास का पता चला तो दंग रह गया। एक बज्रपात! ईश्वर की गति सचमुच निराली है। मुझे लगा कि इस प्रकार वह हम सबको और विशेषकर, आपको व पूजनीया माता जी को बड़ी कसौटी, भयानक से भयानक कसौटी, पर कसना चाहता है। पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने धीरज, दृढ़ता और निष्ठा के बल पर आप इसमें खरे उतरेंगे और आगे चलकर श्रद्धेय डाक्टर साहब से भी ज्यादा यशस्वी होंगे। वैसे, व्यक्तिगत दृष्टि से मानता हूँ कि डाक्टर साहब की यह विदाई बड़ी अद्भुत और प्रेरणादायक है। अखबारों से जैसा पता चला, एक डूबते हुए मनुष्य को बचाने में उन्होंने प्राण दिये। आखिरी दम तक परोपकार करने का यह उत्कृष्ट उदाहरण है जिस पर किसे ईर्ष्या न होगी। भगवान अपने प्यारे भक्तों को शायद इसी प्रकार सद्गति देकर अपने पास बुलाता है। यह सब देख कर डाक्टर साहब के चरणों में मस्तक नत हो जाता है। पिछले २४-२५ साल से उनसे परिचय का सौभाग्य मुझे मिला। उनका वह हँसमुख चेहरा, काम से काम, बात कम, संयमपूर्ण जीवन—उनकी पूरी साधना की सफलता उनके अन्त काल भी सेवा से चरितार्थ होती है। ऐसे गुरु के शिष्य होना हम सब अपना सद्भाग्य समझते हैं।

सर्वोदय प्रचरालयम
२४, श्री निवासपुरम
तंजोर (दक्षिण भारत)

आपका स्नेहाधीन
सुरेश राम

(२५)

We are all stunned and shocked at this most tragic event. He has been my oldest and dearest friend in life since 1919. I used to regard him much more than an elder brother and he showered affection on me as a younger brother. We used to confide and take counsel from each even in most confidential family matters; there has been nothing secret between us. You might be knowing that recently I suffered from a serious illness which, according to the statement of my doctor there, also had mildly affected my heart. During this period of my illness every time he came to Allahabad, he used to come to see me and give me every kind of encouragement. When I recall this 42 years of my affectionate attachment with him, my eyes become full of tears.

Please tell your mother, sisters and others that this grief is fully shared by all of us. We can only pray to God to give to us all strength to bear this irreparable loss and peace to the departed most sacred soul.

C/o Mr. P. C. Silaichia
Burmah-Shell Refineries Ltd.
Post Box 1725, Bombay.
Dated 8. 5. 1961

Yours in extreme grief & sorrow
B. N. Prasad
D.Sc. (Paris), Ph.D. (Liverpool),
(डा० बी० एन० प्रसाद)

विभिन्न संस्थाओं द्वारा
डा० गोरखप्रसाद के निधन पर पारित
शोक प्रस्ताव

नागरी प्रचारिणी सभा

वाराणसी

प्रियवर,

आपके पूज्य पिता जी के निधन से हम सब अत्यंत अनुतप्त हैं। उनकी आचारनिष्ठा और संयमशीलता जैसी थी उससे किसी को स्वप्न में भी ऐसी आशंका नहीं थी कि सहसा दुर्दैव ऐसा वज्राघात करेगा। पर भवितव्य के सामने ही मनुष्य विवश हो जाता है। आप स्वयं विचारवान् हैं। अधिक क्या कहा जाय।

भवदीय

काशी। १२-५-६१

जगन्नाथ प्रसाद शर्मा

प्रधानमंत्री

प्रयाग विश्वविद्यालय कार्यकारिणी समिति

Allahabad University Executive Council

A meeting of the Executive Council of Allahabad University was held on Sunday, Shri P. K. Kaul, Vice-Chancellor, presiding.

On a reference made by the Vice-Chancellor on the sad and tragic death of Dr. Gorakh Prasad, a sitting member of the Executive Council, the Council passed the following condolence resolution, all members standing as a mark of respect to the memory of the deceased :

"This meeting of the Executive Council places on record its deep sense of sorrow at the sad and tragic death of Dr. Gorakh Prasad at Varanasi.

He retired from University only three years ago and was appointed Joint Editor of Hindi Vishwakosh. He was a well-known figure in the academic world and had written a number of books on high class Mathematics and Science. He had endeared himself to the staff and students by his enfficient teaching and great personal qualities.

In his death, the University has lost a great scholar, a popular teacher and a perfect gentleman.

जायसवाल क्षत्रिय हितकारिणी सभा

शोक प्रस्ताव

आज की यह सभा जाति रत्न तथा देश के प्रकाण्ड विद्वान डाक्टर गोरख प्रसाद, डी० एस-सी० के असामयिक निधन पर, जिन्होंने अपने डूबते हुए नौकर को बचाने के प्रयास में अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया,

हार्दिक शोक प्रकट करती है और ईश्वर से प्रार्थना करती है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति तथा उनके शोक संतप्त परिवार को धैर्य प्रदान करें।

१४, बेन्टिंक स्ट्रीट,
कलकत्ता-१

शोभ नाथ गुप्त
प्रधान मंत्री

महिला मनोरंजन क्लब, इलाहाबाद

शोक प्रस्ताव

हम महिला मनोरंजन क्लब की सब सदस्याएँ डा० गोरख प्रसाद जी की आकस्मिक मृत्यु से बहुत दुःखी हैं और अपनी प्रिय बहिन श्रीमती गोरख प्रसाद से इस कष्टप्रद तथा दुःखपूर्ण स्थिति में पूर्ण सहानुभूति प्रकट करती हैं। डाक्टर साहब अत्यन्त परोपकारी स्वभाव के थे। इसी परोपकार व सेवाभाव में रत हो उन्होंने अपने प्राण अन्य प्राणी को बचाने के लिए ही भेंट कर दिये।

हम लोगों की परमेश्वर से प्रार्थना है कि स्वर्गीय डा० गोरख प्रसाद जी की आत्मा को शांति प्रदान कर और श्रीमती गोरख प्रसाद व उनके परिवार के अन्य सदस्यों को इस गहन दुःख को सहन करने की शक्ति दे।

राज वार्ष्णेय

अन्तर्राष्ट्रीय दर्शन अकादमी

International Academy of Philosophy

(Visva Tattvajnana Mandira)

शोक प्रस्ताव

'This meeting of the citizens of Ahmedabad held on 9th May, 1961 under the auspices of the International Academy of Philosophy (Viśva Tattvajnana Mandira) laments the sad demise of Dr. Gorakh Prasad. In his death we have lost a noted astronomer, a profound scholar, a scientific critic, a *samadarsin* philosopher and a great humanist of modern India.'

565, Delhi Chakla,
Ahmedabad, India
May 9, 1961

Harihar P. Bhatt
President of the meeting.

विज्ञान परिषद् प्रयाग

शोक प्रस्ताव

विज्ञान परिषद् की यह साधारण बैठक अपने अध्यक्ष, डा० गोरख प्रसाद के आकस्मिक निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करती है। विज्ञान परिषद् के तत्वावधान में अपनी राष्ट्र भाषा के माध्यम से वैज्ञानिक

साहित्य के प्रचार व प्रसार के पुनीत कार्य में उनकी सेवाएँ अनन्य थीं, उनके निधन से हिन्दी वैज्ञानिक जगत की अपार क्षति हुई है। यह सभा परमात्मा से प्रार्थना करती है कि उनकी दिवंगत आत्मा को चिर शान्ति प्रदान करे तथा शोकग्रस्त परिवार को यह महान कष्ट सहन करने की शक्ति दे।

रमेश चन्द्र कपूर
प्रधान मंत्री

राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (भारतवर्ष)

The National Academy of Sciences, India

The Council of the National Academy of Sciences, India, Allahabad at its meeting held on July 26, 1961 passed the following resulution on the sad demise of Dr. Gorakh Prasad, a Fellow of this Academy:

Resolved that "the Council of the National Academy of Sciences, India, Allahabad places on record its deep sense of sorrow at the sad and sudden tragedy which ended in the death of Dr. Gorakh Prasad who was a Life Fellow of this Academy. He was a great scientist and was responsible for the propogation of Science through the mother tongue. He was closely associated with the academy and took an active part for its uplift".

टेकनिकल प्रेस कर्मचारी संघ

लाजपत रोड, इलाहाबाद

टेकनिकल प्रेस कर्मचारी संघ के पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों की यह शोक सभा टेकनिकल प्रेस प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद के संस्थापक डा० गोरख प्रसाद जी की असामयिक मृत्यु पर हार्दिक खेद प्रकट करती है। उनके असामयिक निधन से टेकनिकल प्रेस कर्मचारी संघ की ही नहीं अपितु समस्त समाज की एक अपूरणीय क्षति हुई है। हम लोगों से डाक्टर साहब का सम्बंध बहुत निकट था। उनकी समस्त सरलता, सहृदयता एवं अपने कर्मचारियों की हित-चिन्ता का स्मरण कर संघ का पूरा परिवार दुखी है। सभा की प्रार्थना है कि भगवान उनकी दिवंगत आत्मा को शान्ति दे तथा उनके परिवार के लोगों को धैर्य प्रदान करे।

उपर्युक्त शोक प्रस्ताव स्वीकृत होने के पश्चात् टेकनिकल प्रेस तथा पोथीशाला प्राइवेट लिमिटेड के सभी विभाग बन्द कर दिये गये।

मंत्री
टेकनिकल प्रेस कर्मचारी संघ
इलाहाबाद

दिनांक १०-५-१९६१

हैहय क्षत्रिय इण्टर कालेज, इलाहाबाद

शोक सभा

आज ७-५-६१ को हैहय क्षत्रिय सभा, प्रयाग तथा हैहय क्षत्रिय कालेज की प्रबन्धक समिति के सदस्यों तथा कालेज के अध्यापक तथा अन्य कर्मचारियों की उपस्थिति में एक शोक सभा हैहय क्षत्रिय इंटर कालेज के प्रांगण में सायंकाल ७ बजे राष्ट्र के महान विद्वान डा० गोरख प्रसाद, अवकाशप्राप्त रीडर, प्रयाग विश्वविद्यालय के दुःखद निधन पर शोक प्रकाशार्थ हुई जिसमें उपस्थित सदस्यों ने उनके प्रति अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट किए तथा उनके प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं तथा सभापति महोदय द्वारा उपस्थित किया हुआ निम्नलिखित शोक प्रस्ताव पारित किया।

शोक प्रस्ताव

हम हैहय क्षत्रिय सभा, प्रयाग के सदस्यगण हैहय क्षत्रिय इन्टर कालेज, प्रयाग की प्रबन्धक समिति के सदस्यगण तथा अध्यापक लिपिक तथा कर्मचारीगण स्वजाति के महान् विद्वान तथा हितैषी डा० गोरख प्रसाद जी की दुःखद मृत्यु पर अपना हार्दिक शोक प्रकट करते हैं तथा परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि दिवंगत आत्मा को चिरशान्ति प्रदान करे तथा उनके शोक संतप्त परिवार को इस महान दुख को सहन करने की शक्ति दे।

प्रधानाचार्य

दिनांक ७-५-६१ — हैहय क्षत्रिय इन्टर कालेज, इलाहाबाद

जायसवाल सभा, काशी

श्री जायसवाल सभा-काशी के कार्यकारिणी समिति की दिनांक ७-५-६१ की निर्धारित बैठक स्वर्गीय डा० गोरख प्रसाद जी की आकस्मिक एवं दुःखद मृत्यु के शोक में बिना कोई कार्य किए निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत करने के पश्चात् स्थगित हो गई।

शोक प्रस्ताव

"श्री जायसवाल सभा, काशी की कार्य कारिणी समिति अपने स्वजातीय एवं इस सभा के परम शुभचिंतक तथा हितैषी, गणित, ज्योतिष और खगोल विद्या के प्रकाण्ड विद्वान, भूतपूर्व रीडर, प्रयाग विश्वविद्यालय तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा तैयार किए जा रहे हिन्दी विश्वकोश के विज्ञान विभाग के सम्पादक डा० गोरख प्रसाद की आकस्मिक मृत्यु पर हार्दिक दुःखद प्रगट करती है। यह सभा उनके शोक सन्तप्त परिवार के प्रति हार्दिक सम्वेदना प्रकट करने के साथ-साथ ईश्वर से प्रार्थना करती है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे"।

प्रधान मंत्री

दिनांक ८-५-१९६१ — श्री जायसवाल सभा, काशी

जायसवाल राष्ट्रीय नाटक मण्डली, काशी

डा० गोरख प्रसाद के दुःखद निधन पर जायसवाल राष्ट्रीय नाटक मण्डली द्वारा शोक प्रस्ताव

आज दिनांक ६-५-६१ को सायंकाल ७ बजे माननीय डा० गोरख प्रसाद के आकस्मिक जलमग्न हो जाने पर श्री जायसवाल राष्ट्रीय नाटक मण्डली के सदस्यों की एक शोक सभा हुई जिसमें ईश्वर से प्रार्थना की गई कि उस महान् दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा उनके कुटुम्ब के कल्याण की कामना व्यक्त की गई।

प्रधान मंत्री
जायसवाल राष्ट्रीय नाटक मण्डली, काशी

के० एन० गवर्नमेण्ट कालेज, ज्ञानपुर (वाराणसी)

"Members of the K. N. Government College Staff, Gyanpur (Varanasi) were terribly shocked and express their deep sense of sorrow at the sudden demise under tragic circumstances of Dr. Gorakh Prasad, a distinguished Mathematician, renowned scholar and a fine man. A void has been created in the Scientific-Hindi-World by his passing away which can not be filled up easily. They offer their heart-felt condolence to the bereaved family and pray to God to grant peace to the departed soul".

K. N. Government College
Gyanpur (Varanasi)
May 10, 1961.

J. L. Sharma
Prinicpal
(झम्मनलाल शर्मा)

सेन्ट्रल हिन्दू कालेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

शोक प्रस्ताव

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के गणित के अध्यापकों की यह सभा डा० गोरख प्रसाद के असामयिक निधन पर हार्दिक शोक व्यक्त करती है। डा० साहब का इस विश्वविद्यालय से आरम्भ से ही सम्बन्ध था। आपने उच्च शिक्षा यहीं से प्राप्त की थी और यहीं पर अध्यापन कार्य आरम्भ किया था। आप जीवन भर हिन्दी प्रेमी रहे। जब तक प्रयाग विश्वविद्यालय की सेवा में रहे, लेखनी द्वारा हिन्दी की सेवा करते रहे। वहाँ से अवकाश प्राप्त करने पर आप हिन्दी विश्वकोश के विज्ञान विभाग के सम्पादक के रूप में पूर्ण रूप से हिन्दीसेवी बन गये। यह उन्हीं के अध्यवसाय का फल था कि विश्वकोश का प्रथम खण्ड इतनी साज-सज्जा के साथ निकल सका। आप के निधन से हिन्दी और विज्ञान के क्षेत्र की अपूरणीय क्षति हुई है।

ईश्वर दिवंगतात्मा को शान्ति दे और उनके परिवार के सदस्यों को इतना बल दे कि इस दारुण दुःख को सहन कर सकें।

ब्रजमोहन
अध्यक्ष, गणित विभाग

दिनांक ६-५-१९६१

तोशनीवाल ब्रदर्स प्राइवेट लिमिटेड

TOSHNIWAL BROS. Private Ltd.

Branches :
Ajmer, Calcutta & Madras.

My dear Chandrika Prasad,

A few days back when I learnt about the death of your father Dr. Gorakhprasad, I got a shock. It was really laudable of him even at the last moment to try and save the life of a servant and while doing that, he lost his own life. This shows how high his ideals were.

Having had the opportunity of coming in close contact with him since 1926, I know fairly closely what he did for the Vigyan Parishad and for the cause of Hindi. It is rather said that owing to party politics his merits were not recognised in the University and he had to retire a sore man.

I should have written to you earlier but unfortunately I was moving frequently and just now Mr. Rambabu Malhotra conveyed the said news again and I took the first opportunity of writing to you and though late, I would like to offer to you and the whole family my very sincere condolences. I deeply sympathise with you and pray to God to give peace to the departed soul.

With good wishes,

Uttari Marg, New Delhi 5.
June 7, 1961

Yours sincerely,
G. R. Toshniwal.
(जी० आर० तोशनीवाल)

माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

शोक प्रस्ताव

माध्यमिक शिक्षा परिषद् उत्तर प्रदेश कार्यालय के समस्त कर्मचारी परिषद् के भूतपूर्व सदस्य डा० गोरख प्रसाद के आकस्मिक निधन पर हार्दिक शोक एवं संवेदना प्रकट करते हैं। परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि उनकी दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे एवं उनके शोक संतप्त परिवार को इस महान दुख को सहन करने की शक्ति एवं धैर्य दे।

उपसचिव,
माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश,
इलाहाबाद

लक्ष्मीकान्त

भारत गणित परिषद्

BHARATA GANITA PARISAD

(Formerly Benares Mathematical Society)

Mathematics Department
University, Lucknow

Resolved that this emergency meeting of the Executive Committee of Bharata Ganita Parisad places on record its deep sense of sorrow at the sad and sudden demise of Dr. Gorakh Prasad, an ex-President of the Society.

Dr. Gorakh Prasad had been associated with the Parisad for a large number of years in various capacities. In his death the Parisad has lost a benefactor and a lover of Mathematical research.

The meeting conveys its heart-felt condolences to the members of the bereaved family.

विज्ञान लोक

VIGYAN LOK

I was shocked to learn of the tragic death of your revered father, Dr. Gorakh Prasad. Long ago I happened to be one of his students, but I came in closer contacts with him later in connection with my writing in Hindi on scientific topics. He was a source of constant inspiration to me.

He was very happy to learn that I had taken over as the Editor, Vigyan Lok. He was kind enough even to contribute his thought-provoking article to the Indian Science Congress number of Vigyanlok, (Jan., 61 issue).

The whole of Hindi-world has been put to a great loss due to the sad demise of Doctor Saheb.

Kindly accept my heartfelt condolence at this sad event. I trust you will rise to the occasion to face the difficult situation as is expected of the brave son of a worthy father.

Bhagwati Prasad Srivastava
Editor

(भगवती प्रसाद श्रीवास्तव)

राजकीय टेकनिकल एजुकेशन एण्ड ट्रेनिंग परिषद्

STATE BOARD OF TECHNICAL EDUCATION AND TRAINING

Dear Shri Chandrika Prasad,

I take this opportunity of offering my heart-felt condolences on the untimely death of your father. I only wish that his soul may rest in peace and God may give you strength to bear the loss.

Lucknow
Dated: May 19, 1961

Yours sincerely
S. K. Mittal
Secretary
(एस० के० मित्तल)

नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

नागरी प्रचारिणी सभा के कार्याधिकारियों, प्रबंध समिति के सदस्यों, सभा के अन्यान्य सभासदों और कर्मचारियों की यह सभा गणितशास्त्र, खगोल-विज्ञान एवं भौतिकी की विभिन्न शाखाओं के अप्रतिम विद्वान् तथा प्राध्यापक और हिन्दी विश्वकोश के विज्ञान विषयक संपादक श्री डा० गोरखप्रसाद जी के असामयिक और आकस्मिक निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करती है। उच्चतर वैज्ञानिक विषयों को हिन्दी माध्यम से सुलभ करने का श्रीगणेश करने वाले और जीवनपर्यन्त मनोयोगपूर्वक इस दिशा में अग्रसर होने वाले देश के इने-गिने विद्वानों में उनका विशिष्ट स्थान था। हिंदी विश्वकोश के लिये उनका सहयोग अत्यन्त मूल्यवान रहा और उसकी सफलता का बहुत कुछ श्रेय उन्हीं को है। प्रतिभा एवं विद्वत्ता के अतिरिक्त उनके मानवोचित उदात्त गुण लोगों को सहज ही आकर्षित कर लिया करते थे। उनके सहसा उठ जाने से जो स्थान रिक्त हुआ है, निकट भविष्य में उसकी पूर्ति शक्य नहीं है। यह सभा जगदीश्वर से प्रार्थना करती है कि उनके दिवंगतात्मा को सद्गति तथा उनके शोक-संतप्त परिजनों को उनका चिरवियोग दुःख धैर्यपूर्वक सहन करने की शक्ति दे।

शोकसभा
नागरीप्रचारिणी सभा

ब्रजमोहन
अध्यक्ष

भारतीय जन संघ, वाराणसी

माँ भारती के अन्यतम् पुजारी, तथा विज्ञान, गणित एवं खगोल शास्त्र के प्रकांड विद्वान, डा० गोरख प्रसाद की असामयिक व अकाल मृत्यु पर, भारतीय जनसंघ की वाराणसी समिति गहरा शोक प्रकट करती है।

डा० साहब का, उपरोक्त विषयों पर गहन अध्ययन के साथ-साथ, अन्य क्षेत्रों पर भी पर्याप्त अधिकार था। अनेक विद्यार्थी तथा संस्थायें, उनके सम्पर्क द्वारा निरंतर लाभान्वित होती रहती थीं। विज्ञान तथा गणित जैसे गम्भीर विषयों में भी हिन्दी के प्रचलन का प्रयास, वे प्रारम्भ से ही करते रहे हैं, तथा उच्चकोटि की अनेक पुस्तकें लिखी हैं।

इधर डा० साहब ने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, द्वारा प्रकाशित होने वाले महान ग्रंथ 'हिन्दी विश्व-कोश', के सम्पादन का गुरुतर भार सम्हाला था, जो अधूरा ही रह गया।

उनकी असामयिक मृत्यु से जो गहरी क्षति हुई है, उसकी शीघ्र पूर्ति असम्भव है। ऐसे महान संकट के समय, भारतीय जनसंघ वाराणसी, उनके शोकसंतप्त परिवार तथा अन्य लोगों के साथ सहानुभूति अनुभव करता है, तथा ईश्वर से प्रार्थना करता है कि दिवंगत महान् आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

शोभनाथ सिंह
जिला मंत्री

दिनांक १४-५-६१

श्रद्धांजलियाँ
(काव्यमय)

श्रद्धेय गुरुदेव की पुण्य स्मृति में

हरिश्चन्द्र गुप्त

(१)

शोचनीय नहिं मृत्यु तुम्हारी, जीवन भर परिजन उपकारी।
निज सेवक हित प्राण गँवाये, भाग्यवान ही यह गति पाये।
तुलसी घाट समक्ष जल धारा, तुलसी दर्शन कर युग सारा।
हुई पुनीत पवित्र सदा को, मिलती सुगति वहाँ संतों को।
धीर पुरुष निश्चित मतधारी, काम न क्रोध कुशल व्यवहारी।
सात्विक वृत्ति सत्य-आचारी, शोषक नहीं, यदपि अधिकारी।
सतत श्रमी अरु अध्यवसायी, स्वावलंब प्रिय सँग सुखदायी।
किंचित नहीं महत्वाकांक्षी, थे कर्त्तव्यनिष्ठ जग साक्षी।
यश वैभव सुख धन संतति श्री, मिली तुम्हें साधक सब कुछ ही।
संयम नियम-पूर्ण दिनचर्या, थी मधुमेह उचित परिचर्या।
ज्ञान विपुल सैद्धान्तिक तो था, संभवतः प्रायोगिक वह था।
अतः बनी अनुचरी सफलता, प्राप्त तुम्हें थी कला कुशलता।
सार लोकप्रियता का सच में, देख लिया था राम कथा में।
लेखक सफल अतः तो थे ही, बना दिये लेखक कितने ही।
जीवन एक खुली पुस्तक था, जो भी चाहे उसको पढ़ता।
भेद नहीं रखते थे कुछ भी, आय आदि बतलाते सच ही।
बाल प्रीति ढँग था अति मोहक, खींचें सुना कहानी रोचक।
बना खिलौने उन्हें लुभाते, बच्चे तुम में हिल मिल जाते।
सत्य स्पष्टवादिता अनुपम, शत्रु न कोई, मित्र न कुछ कम।
रहते सदा पिता गुण गाते, किये प्रशंसा नहीं अघाते।
शोचनीय गति हिन्दी भाषा, तुमसे उसे बड़ी थी आशा।
हिन्दी विश्वकोष संपादन, आज बना वह एक दुराशा।
शोचनीय गति जीवन साथी, पुत्र-पुत्रियों अरु प्रियजन की।
सहसा हुए निराश्रित सब ही, अंतिम सत्सँग से वंचित भी।

———

श्रद्धांजलि

(२)

जैसा था गौरवमय जीवन, वैसी ही है मृत्यु महान ;
सेवकजन हित देह विसर्जन कर तुम गये स्वर्ग सुखधाम ।
शोक ! गये तुम इतने जल्दी, हे आचार्य सरल शुचि नेक ;
छोड़ अधूरा विश्वकोष को, संपादित कर लेख अनेक ।
हिन्दी में सब ज्ञान सुलभ हो, यही साधना थी अंतिम ;
विश्वकोष के संपादक वर, हिंदी हुई दीन इस दिन ।
विश्वकोष का प्रथम खंड छप सका समय से जो सत्वर—
उसका श्रेय अधिकतर तुमको, विविध कला पारंगत कर ।
हिंदी बने शीघ्र ही माध्यम शिक्षा का बस यह था ध्येय ;
उत्तर देश माध्यमिक शिक्षा परिषद के सदस्य श्रद्धेय !
रहा नहीं अब उस परिषद् में हिंदी सेनानी तुम सा ;
है अवरुद्ध प्रगति हिंदी की जाता हिंदी युग टलता ।
दान भावना आरंभ ग्रह से, इस विचार के थे हामी ;
पढ़ा लिखा कितने सम्बंधी, बना दिया उनको नामी ।
सत्य स्पष्टवादिता का गुण, तुममें एक अलौकिक ही ;
जिसको देना वोट न होता, उससे कहते बात सही ।
देखा सार लोकप्रियता का, रामायण में तुमने ही ;
इसीलिए तुम बने लोकप्रिय लेखक सफल सहज में ही ।
ज्ञान असाधारण यंत्रादिक वास्तुशास्त्र का था अनुपम ;
बना गये प्रासाद अनेकों, एक मुद्रणालय उत्तम ।
गीता के उपदेश निरंतर देते समय समय पर ही ;
है अधिकार कर्म करने का फल-इच्छा नहिं उचित कभी ।
यदपि नहीं तुम मध्य हमारे, मिले प्रेरणा जीवन से ;
कर्मयोग आदर्श निभाया, बचकर रहे प्रलोभन से ।

'डाक्टर गोरख प्रसाद जी को अन्तिम श्रद्धांजलि बार-बार'

शालिग्राम शर्मा, एम० ए०

(१)

परतन्त्र देश भारत में भी ऐसे जनमे बहु मनुज रत्न,
सुस्मरण रहेंगे युग-युग तक जिनके वैभव, जिनके प्रयत्न,
डाक्टर साहब उनमें ही थे जिनसे स्वदेश हो गया धन्य,
वे थे वाणी के वरद पुत्र, वे थे विद्योपासक अनन्य,
है छिपा नहीं इस जगती में उनकी प्रतिभा का चमत्कार,
डाक्टर गोरख प्रसाद जी को अंतिम श्रद्धांजलि बार-बार ।

(२)

ज्यों दयानंद जी सरस्वती को गुरुवर बिरजानंद मिले,
ज्यों रामकृष्ण जी परमहंस को शिष्य विवेकानंद मिले,
त्यों डाक्टर गणेश प्रसाद के डाक्टर साहब थे योग्य शिष्य,
ज्योत्स्ना के सम अति उज्वल था जिनका पहले से ही भविष्य,
जा करके एडिनबरा, किया डी० एस-सी० जिसने साधिकार,
डाक्टर गोरख प्रसाद जी को अंतिम श्रद्धांजलि बार-बार ।

(३)

जो प्रयाग विश्वविद्यालय के गौरव के थे पूरे प्रतीक,
विज्ञान-ज्ञान के क्षेत्रों में जिनकी साधना थी अलीक,
जो अनेक संस्थाओं के ऊँचे पदों पर रहे समासीन,
जिनकी बहुसंख्यक कृतियाँ हैं सम्मानित, मौलिक, चिर नवीन,
जो असमय में लुट गये हाय ! पाकर गंगा की तीव्र धार,
डाक्टर गोरख प्रसाद जी को अंतिम श्रद्धांजलि बार-बार ।

(४)

अपने जीवन के पग-पग पर जो थे हिन्दी प्रेमी महान्,
जिसने हिन्दी की उन्नति में निज शक्ति भर दिया योग दान,
हिन्दी विश्वकोश के थे जो सम्पादक अति गण्यमान्य,
जो स्वार्थ रहित परसेवा में थे सुप्रसिद्ध जग में वदान्य,
अवकाश प्राप्ति के पीछे भी जो थे इतने कर्मठ अपार,
डाक्टर गोरख प्रसाद जी को अंतिम श्रद्धांजलि बार-बार ।

डा० गोरख प्रसाद के प्रति

पिउपर्ति वेंकटराम शास्त्री

गोरख विज्ञ महायशकारक , जीवन लेकर स्वर्ग सिधारा।
भारत का सिर उन्नत ही कर , भूतल से निज पा छुटकारा।
नौकर मालिक के झगड़े नित , देख रहा, जग पीड़ित सारा।
नौकर के सुख जीवन के हित , डूब गया खुद पी जल धारा।

राजमहेन्द्री
आंध्रप्रदेश

स्वर्गीय डा० गोरखप्रसाद
का
व्यक्तित्व
(संस्मरणात्मक लेख)

स्वर्गीय डा० गोरख प्रसाद जी और वैज्ञानिक साहित्य

डा० सत्य प्रकाश

पाँच मई, सायंकाल, को विचित्र परिस्थिति में डा० गोरख प्रसाद जी का आकस्मिक निधन हो जाना हमारे लिए हृदय विदारक घटना है। डाक्टर साहेब का जन्म २८ मार्च १८९६ ई० को हुआ था। इस समय उनकी ६५ वर्ष की आयु थी। अच्छे तैराक थे और दूसरों को तैरना सिखाने में निपुण। इधर कुछ दिनों से मधुमेह आरम्भ हो गया था, बुढ़ापा आ ही रहा था, गंगा में डूबते हुए अपने एक सेवक की प्राण रक्षा के प्रयास में थक गये, और किनारे पर पहुँच सकने से पूर्व ही उनकी हृदयगति रुक गयी, और वह काशी नगरी में गंगा की भेंट हो गये।

गत पच्चीस वर्षों से मेरी और उनकी घनिष्टता बहुत बढ़ गयी थी, और हम दोनों वैज्ञानिक साहित्य के सृजन के अनेक प्रकार के स्वप्न देखा करते थे। डा० गोरख प्रसाद जी उन कुशाग्र बुद्धि के विद्यार्थियों में से थे जो मैट्रिकुलेशन से लेकर ऊपर तक की समस्त परीक्षाओं में सर्वप्रथम आये। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वे अच्छे शिल्पी थे। साहित्य की रचना भी एक शिल्प है, जिसके वे कलाकार थे। गत तीस वर्षों के भीतर उन्होंने बहुत कुछ लिखा, विविध विषयों पर लिखा, आबाल-वृद्ध सभी के लिए लिखा; विशेषज्ञों के लिए भी लिखा, और जनता के लिए भी। जिन पुस्तकों पर उनका नाम है, वे तो उनकी रचनायें हैं ही, कुछ ऐसी भी हैं, जिनके लेखक परोक्ष में डाक्टर साहेब थे। अन्यों की कई पुस्तकों का सम्पादन और संशोधन इस प्रकार किया, कि वह नई पुस्तक ही बन गयी, पर प्रकाशित हुई मूल लेखक के नाम पर।

उनकी सबसे पहली ख्यातिप्राप्त पुस्तक "फोटोग्राफी" थी, जिसका प्रकाशन इण्डियन प्रेस ने किया, और जिस पर संवत् १९८८ वि० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन से मंगला प्रसाद पारितोषिक मिला। यह पुस्तक डाक्टर साहेब ने अनुभव के आधार पर लिखी थी। डाक्टर साहेब के लिखने का आदर्श यह था कि लोग उनके लिखे को पढ़कर कुछ करना सीख जायँ। केवल बौद्धिक तुष्टि से उन्हें सन्तोष न था। फोटोग्राफी पुस्तक की सफलता इसी बात में थी कि उसको पढ़कर फोटोग्राफी में रुचि रखने वाले को छाया चित्र में सहायता मिले। उन्होंने 'फलसंरक्षण' पुस्तक जिस समय लिखी, उस समय उनके घर पर जेली बनाने और डिब्बाबन्दी के प्रयोग प्रारम्भ। गये रोज किसी न किसी प्रयोग को करते, और उन दिनों प्रयाग में फलसंरक्षण सम्बधी जो नया उद्योग प्रारम्भ हुआ था, उसके विस्तार को समझने का प्रयत्न करते। इसी प्रकार श्री दयाराम जुगड़ान ने विज्ञान परिषद् के पास 'मधुमक्खी पालन' पर एक छोटी-सी पुस्तिका लिखकर भेजी, तो डाक्टर साहेब को इस विषय की धुन लग गयी, और मधुमक्खी पालन कला स्वयं समझने का प्रयास आरंभ किया। जब उसमें दक्ष हो गये, तब जुगड़ान जी की पुस्तक को इतने विस्तार से सम्पादित किया और स्वयं उसमें इतना लिखा कि उस ग्रंथ का रूप ही कुछ और हो गया। डाक्टर साहेब सभी से काम लेने में सिद्धहस्त थे। उन्होंने डाउस्टं की लिखी हुई 'कार्टून और केरिकेचर' पुस्तक का अनुवाद मेरी पत्नी के सुपुर्द किया, जो परिषद् से 'व्यंग चित्रण' नाम से प्रकाशित हुआ है। पुस्तक इसलिए डाक्टर साहेब को पसन्द थी, कि इसके आधार पर नौसिखिया घर बैठे व्यंग चित्र बनाना सीख सकता है। हम लोग अंग्रेजी पुस्तक को समझने में बहुत भूलें करते थे, पर डाक्टर साहेब की प्रतिभा ऐसी थी, कि उन्होंने व्यंग चित्रण की समस्त बारीकियां समझ लीं, और इस

प्रकार उनकी सहायता से सुन्दर पुस्तक तैयार हो सकी। ऐसी ही एक पुस्तक 'कागज के फूल' बनाने के संबंध में थी, जिसका कुछ अंश डाक्टर साहेब की सहायता से 'विज्ञान' में छपा।

डाक्टर साहेब ने 'लकड़ी पर पालिश', 'जिल्दसाजी' 'कलम पैबन्द' आदि पुस्तकें इसी दृष्टि से परिषद् से प्रकाशित करवायीं कि इनको पढ़कर लोगों के पल्ले कुछ पड़े। वे इस बात के इच्छुक थे कि हिन्दी में 'साइंटिफिक अमेरिकन इनसाइक्लोपीडिया आव् रेसिपीज' और 'होम डाक्टर' की तरह की कोई पुस्तक हो। दो वर्ष उन्होंने इस संबंध में प्रयत्न किया, और स्वयं भी लिखा और दूसरों से भी लिखाया। 'उपयोगी नुसखे' और 'घरेलू डाक्टर' नाम से इन दोनों के एक-एक खण्ड विज्ञान परिषद् से प्रकाशित हुए। वे बराबर इन दिनों भी कहा करते थे कि इन अपूर्ण ग्रन्थों को पूरा कर डालना चाहिए। 'सरल विज्ञान सागर' ग्रन्थ उन्होंने अकेले एक खण्ड में सम्पादित कर डाला था और परिषद् से प्रकाशित कराया। विज्ञान परिषद् के पास प्रकाशन के लिए कभी धन न रहा, पर प्रकाशन के आर्थिक पहलू पर डाक्टर साहेब ने कभी चिन्ता न की। वे कोरे साहित्यिक नहीं, कुशल व्यावसायिक भी थे। उन्होंने अनेक बार परिषद् के कार्य के लिए अपने पास से धन लगाया, और परिषद् को किसी आयोजना में घाटा न सहने दिया। डाक्टर साहेब व्यावहारिक व्यक्ति थे---उन्होंने जब कभी भी कोई आयोजना हाथ में ली, किसी में भी आर्थिक घाटा न रहा।

डाक्टर साहेब गणित के प्राध्यापक थे, पर कहा करते थे कि उनको वास्तविक रुचि तो हाथ के काम में थी, वे इंजीनियर की प्रकृति के थे। भवन निर्माण में उनकी रुचि विशेष थी, पर उन्होंने गणित विषय की सूक्ष्मता की कभी उपेक्षा न की। यही कारण है कि उनकी उच्च पुस्तकें गणित के अध्ययन-अध्यापन क्षेत्र में इतनी प्रिय हुईं। डाक्टर साहेब उन इने-गिने व्यक्तियों में थे जो भारतीय और पाश्चात्य दोनों ज्योतिषों के मर्मों को समझते-बूझते हों। उन्होंने हिन्दुस्तानी एकेडमी से 'सौर परिवार' नामक बड़ा भव्य ग्रन्थ प्रकाशित कराया। खेद की बात है कि इस ग्रन्थ का एक ही संस्करण निकल कर रह गया। यह ग्रन्थ इतने सरल और सुगम विस्तार के साथ लिखा गया था कि एक बार पढ़ना आरम्भ कर दीजिए, तो पूरा किये बिना छोड़ने को मन न होगा। डाक्टर साहेब ने बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् में नीहारिकाओं पर व्याख्यान दिए, जो 'नीहारिका' नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। काशी नागरी प्रचारिणी सभा से आपकी 'चन्द्र सारणी' प्रकाशित हुई। ज्योतिष की गणना के लिए ऐसी सारणियों की नितान्त आवश्यकता रहती है। पुरानी सारणियों के अनुसार जो गणना की जाती है, उनमें त्रुटियाँ उत्पन्न हो गयी हैं, और वे प्रत्यक्ष वेध के प्रतिकूल ठहरती हैं। डाक्टर साहेब सदा इस पक्ष के थे कि पंचांगों को तैयार करने के लिए त्रुटिहीन सारणियाँ हों। इन सारणियों को तैयार करने के लिए परिश्रम-साध्य गणनायें करनी पड़ती हैं। डाक्टर साहेब ने 'भारतीय ज्योतिष का इतिहास' लिखा जो हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश, से १९५६ ई० में प्रकाशित हुआ। एक पुस्तक 'गणित ज्योतिष' नाम की डा० गोरख प्रसाद ने मध्य प्रदेश सरकार की आयोजना में लिखी थी, पर बाद को वह उन्होंने स्वतः 'पोथीशाला' से प्रकाशित करायी।

डा० गोरख प्रसाद ने कई वर्ष 'विज्ञान' पत्रिका का भी सम्पादन किया था और जब उनका नाम प्रधान सम्पादक के रूप में नहीं भी जाता था, तब भी वे विज्ञान के लिए बहुत कुछ लिखा करते थे। 'विज्ञान' के पृष्ठों में उनकी लिखी सामग्री के संकलन कराने की आवश्यकता है। बच्चों के लिए भी उन्होंने लोकप्रिय भाषा में

विकासमान व्यक्तित्व

डा० गोरख प्रसाद—विदेश यात्रा के समय

गणितज्ञ

डा० गोरख प्रसाद—१९५६ मे

बहुत लिखा। ('बालसखा' की पुरानी फाइलों में उनके लेख मिलेंगे)। बच्चों के लिए वे तुकबन्दी भी कर लेते थे। अभी कुछ महीनों की ही बात है, कि उनकी दौहित्री, सुधा, का विवाह मिर्जापुर में था, उन्होंने अपनी पोती, राशि, को रुड़की पत्र में लिखा—'नानी जातीं रोज बजार। चीजें लाती कई हजार।। सुधा बहिन की शादी होगी। बोलो राशि तुम क्या लोगी' उनके पोती-पोता, नाती-नतिनी, और उनके मित्रों के परिवार के बच्चे उनसे बड़े प्रसन्न रहते थे। उन्हें तरह-तरह के खिलौने बनाकर वे देते। उनके घर में छोटी सी वर्कशाप थी, फोटो खींचने का कक्ष था, पर वे अपने चित्र खिचाने में सदा संकोच करते, किसी न किसी बहाने से टाल जाते। अपने विषय में कभी बातें करते ही न थे। डाक्टर साहेब की विज्ञान-विषयक रेडियो वार्त्तायें भी बड़ी सफल होतीं। मैंने कई बार उनसे कहा कि उन वार्त्ताओं की एक प्रतिलिपि परिषद् को दे दिया करें। यदि इन वार्त्ताओं का संग्रह हो जाय, तो वह भी बड़ा उपयोगी रहेगा।

आजकल तो वह काशी नागरी प्रचारिणी सभा के विश्वकोश के विज्ञान-अनुभाग के सम्पादक थे। यह सौभाग्य की बात थी कि विश्वकोष के लिए उनकी सेवायें प्राप्त हो गयीं। इसके लिए वे बड़ा परिश्रम कर रहे थे और हमें पूरा विश्वास था कि उनके सहयोग से यह विश्वकोष हमारे साहित्य का गौरव बन सकेगा। डा० गोरख प्रसाद जी के आकस्मिक देहावसान से जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति होना सरल नहीं है।

बेली रोड
इलाहाबाद

डा० गोरख प्रसाद

धीरेन्द्र वर्मा

यों तो डा० गोरख प्रसाद जी से मेरा परिचय १९२४ से था जब मैं इलाहाबाद यूनीवर्सिटी में नियुक्त हुआ था। यूनीवर्सिटी की भिन्न-भिन्न कमेटियों में तथा अन्य संस्थाओं में उनके साथ कार्य करने के अनेक अवसर मिले। किंतु हिन्दी विश्वकोष के संपादन के नाते १९५९ से निरंतर साथ-साथ कार्य करने का अवसर मिला।

उनके चरित्र में अनेक विषशेषताएँ थीं। वे अत्यन्त परिश्रमशील थे। जिस काम को भी हाथ में लेते थे उसे पूरे ध्यान से और पूर्ण परिश्रम से करते थे। यहाँ तक कि अपने मनोरंजन के कार्यों को भी वे पूरी लगन से करते थे। उनके मनोरंजन के कार्यों में कुछ उपयोगिता होती थी, जैसे फोटोग्राफी, तैरना आदि।

दूसरे, वे स्वभाव से पूर्ण आशावादी थे। उन्हें निराश अथवा हतोत्साह मैंने कभी नहीं पाया। विश्व-कोष के लेख संग्रह, चित्र संचय, छपाई आदि में अनेक अड़चनें पड़ती थीं किंतु वे सब कठिनाइयों में से रास्ता निकालने के सम्बंध में यत्नशील रहते थे। उन्हें इतना आत्मविश्वास था कि वे अकेले सब कठिनाइयों का सामना करने को तैयार रहते थे। मुझे स्मरण है कि बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कई बार कहा था कि यदि हम लोगों को बाहर से ठीक सहयोग नहीं मिल पाता है तो मैं कुछ सहायकों की सहायता से विज्ञान के समस्त अंश को तैयार करने को उद्यत हूँ।

स्पष्टवादिता उनका एक अन्य विशेष गुण था। प्रत्येक व्यक्ति, जिसका उनसे काम पड़ता था, जान लेता था कि वे क्या करेंगे। यहाँ तक कि चुनाव तथा वोट आदि के सम्बंध में भी वे अपने विचार छिपाते नहीं थे। इस कारण कभी कभी लोगों को बुरा भी लग जाता था किंतु आगे चलकर उन्हें कोई शिकायत नहीं रहती थी। कहना कुछ और करना कुछ, यह उनके स्वभाव में ही नहीं था।

डा० गोरख प्रसाद का स्वास्थ्य उनकी आयु को देखते हुए काफी अच्छा था। वे इस सम्बंध में ध्यान भी पूरा देते थे। खाना पीना, समय की पाबंदी, आराम आदि सब नियमानुसार चलता था। यदि यह आक-स्मिक दुर्घटना न हो गई होती तो कम से कम दस वर्ष तक तो वे अच्छी तरह काम कर सकते थे।

विज्ञान के क्षेत्र में उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। अपने मुख्य विषय के अतिरिक्त विज्ञान से सम्बंधित अन्य विषयों की भी साधारण जानकारी उनकी बहुत अच्छी थी। फिर इस जानकारी को हिंदी के माध्यम से जनसाधारण के लिये उपलब्ध कराने के सम्बंध में उनको विशेष लगन थी। अपने जीवन के अंतिम दिन तक वे इस कार्य में संलग्न रहे।

प्रधान सम्पादक, हिन्दी विश्वकोष
वाराणसी

डाक्टर गोरख प्रसाद से मेरे सम्पर्क

ब्रजमोहन लाल

डाक्टर गोरख प्रसाद के नाम से मैं तब से परिचित था जब उनकी विख्यात पुस्तक 'फोटोग्राफी' प्रकाशित हुई किन्तु मेरा उनसे वैयक्तिक सम्पर्क सन् १९५६ के नवम्बर महीने में हुआ जब मैं अपने पुत्र से मिलने इलाहाबाद गया, जो उस समय वहाँ पी० डब्लू० डी० के इक्जीक्यूटिव इंजीनियर थे और कटरे में बेली रोड पर रहते थे। मुझे सुबह सैर करने का व्यसन है और जब मैं एक दिन सैर करने निकला तो निकट ही एक कोठी के फाटक पर डाक्टर गोरख प्रसाद के नाम की तख्ती लगी देखी। तब उनसे मिलने की मेरी उत्कण्ठा हुई। मैंने टेलीफोन पर डाक्टर सत्य प्रकाश से (वह भी उस समय तक मुझसे अपरिचित थे) सम्पर्क स्थापित किया और फिर एक दिन उनसे मिलकर डाक्टर गोरख प्रसाद जी से जाकर मिला। उनके सौजन्यपूर्ण व्यवितत्व ने मुझे बहुत प्रभावित किया और फिर नित्य ही मैं उनके साथ प्रातःकाल भ्रमण के लिये बनारस सड़क पर जाने लगा। वह बड़े हँसमुख और दिल्लगीपसंद थे और उनके साथियों सहित सैर करने में अच्छा मनोरंजन होता था। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी और उनके साथ वार्तालाप में उनके अपने विषय गणित के अतिरिक्त अनेक वैज्ञानिक और आध्यात्मिक विषयों में उनका ज्ञान प्रकट होता था।

डाक्टर साहब ने इलाहाबाद आते ही विज्ञान परिषद् के कार्य में सहयोग देना आरम्भ कर दिया था और फिर तो वह इसके मुख्य स्तम्भ बन गये थे। विज्ञान परिषद्-भवन का निर्माण उन्हीं की विशेष सूझ-बूझ का परिणाम है। एक दिन वे मुझे विज्ञान परिषद् भवन का निर्माण कार्य दिखाने ले गये। वहाँ डाक्टर साहब ने जो मुझसे उसके कई अंगों के निर्माण के विषय में विचार विमर्श किया तो मैं उनके इंजीनियरी विशेषकर प्रबलित कंक्रीट के सिद्धांतों के विस्तृत ज्ञान से चकित रह गया।

इसके पश्चात् मेरा उनसे विशेष सम्पर्क उनके हिंदी विश्वकोष के वैज्ञानिक भाग के सम्पादक बनने पर हुआ।

ऊपर लिखे परिचय के कारण उन्होंने विश्वकोश के इंजीनियरी विषय के लेखों के सम्पादन का भार मुझे सौंप दिया था। इस विषय के अधिकतर लेख अंग्रेजी में मूलरूप से लिखे जाते हैं। विश्वकोश कार्यालय में वे उनका हिंदी अनुवाद कराते थे और अनुवाद को ठीक करते समय वे प्राविधिक परिभाषा, वर्ण और मुहावरों का ही संशोधन नहीं करते थे, साथ में मूल लेख में भी सुधार करने के अमूल्य सुझाव देते थे जिससे मुझे उनके सम्पादन में बड़ी सहायता मिलती थी। वे हरेक लेख को बहुत बारीकी से पढ़ते थे और विश्वकोश में छपने की स्वीकृति तभी देते थे जब वे उसे सर्वांगपूर्ण बना दें।

डाक्टर साहब के असामयिक निधन से हिंदी के वैज्ञानिक साहित्य सर्जन में जो रिक्तता हुई है वह कठिनता से भरी जा सकेगी। हिंदी साहित्य उनका सदा ऋणी रहेगा।

रिटायर्ड चीफ इंजीनियर, पंजाब पी० डब्लू० डी०
३/१७, ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली १२

कुछ स्मृतियाँ

डा० बाबू राम सक्सेना

इलाहाबाद युनिवर्सिटी में डा० गोरख प्रसाद मेरे दो एक साल बाद आए। डा० गणेश प्रसाद मुझ पर भी कृपा करते थे और यह उनके पट्ट शिष्य थे। इसलिए हम दोनों का सौहार्द हो जाना स्वाभाविक था। कालक्रम से यह सौहार्द बढ़ता ही गया।

गोरख प्रसाद जी स्पष्टवादी, सरल प्रकृति के थे। १९३४ में मैं युनिवर्सिटी की कार्यसमिति की सदस्यता का इच्छुक था, दो चुने जाने थे और चार उम्मीदवार थे। मैं भी लोगों के पास गया, पर जो स्पष्ट-वादिता मैंने गोरख प्रसाद जी में पाई, वह अन्यत्र दुर्लभ थी। वह बोले "बाबूराम जी ! आपका नम्बर तीसरा आता है"। यह स्पष्ट नकारात्मक उत्तर था। बहुत लोगों ने इंगित और आकार से ऐसा दिखाया कि वोट देंगे पर दिया नहीं। मैंने गोरख प्रसाद की स्पष्ट बात को अत्युत्तम समझा।

गोरख प्रसाद जी को लोग बहुत गंभीर समझते थे, पर थे वह बहुत विनोदप्रिय। हमें याद है कि जब हमारे एक मित्र विलायत से लौटने वाले थे और विलायती सज-धज से, तब मित्रों को यह सूझी कि उनका स्वागत करते समय स्टेशन पर कुछ मजाक भी बनाया जाय। सोचा गया कि थोड़ा सा 'लाइसोल' उनके आने के पहले स्टेशन पर छिड़क दिया जाय। योजना गोरख प्रसाद के साथ बनी और यह लाइसोल गोरख प्रसाद जी ने दिया था और वह बाकायदा छिड़क दिया गया। ट्रेन से हमारे मित्र गर्मी के दिनों में विलायती ऊनी सूट पहने उतरे। पर उनके चारों ओर उतरते हुए हर एक यात्री के नाक पर रूमाल था और सब कह रहे थे कि बड़ी बदबू है।

लोगों को आशा थी कि ५५ वर्ष पूरे होने पर प्रो० अमिया चरण बनर्जी रिटायर हो जायेंगे और सीनियर होने के नाते गोरख प्रसाद जी गणित विभाग के अध्यक्ष बनेंगे। पर बनर्जी साहब को पाँच साल का कार्यकाल और मिल गया। परिणामस्वरूप हताश होकर गोरख प्रसाद जी ने प्रेस खोल लिया और अधिकांश ध्यान उस पर लगा दिया। उनकी व्यवहारिक कार्य पटुता से इनका यह काम चमक उठा और युनिवर्सिटी का काम गौण हो गया।

प्रो० बनर्जी जब कुछ महीनों के लिए अमरीका जाने लगे तब राजनीतिक दाँव पेंच द्वारा गोरख प्रसाद जी को स्थानापन्न अध्यक्ष का भी पद नहीं दिया गया। इस समय मैंने मित्रों की पर्वाह न करके गोरख प्रसाद जी का साथ दिया था और गोरख प्रसाद जी इस न्यायवृत्ति को मानते थे। उनके प्रति जो उस बार अन्याय हुआ उसका युनिवर्सिटी के वातावरण पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। सच तो यह है कि उस संस्था की दुर्गति का स्पष्ट आरंभ तभी से हुआ।

तीन चार वर्ष पूर्व जब गोरख प्रसाद जी रिटायर होने वाले थे, तब हिन्दी विश्वकोश के विज्ञान भाग के सम्पादक पद के लिए उनका नाम परामर्श मंडल के सामने रक्खा गया। पाँच वर्ष का कार्यकाल था, किसी ने कहा कि ६२ के हो गए हैं, दो या तीन साल के ही लिए नियुक्ति करिए। मैंने कहा कि उनका स्वास्थ्य ऐसा अच्छा है कि अभी कम से कम दस साल और काम कर सकते हैं। मंडल के सभापति पं० गोविन्दवल्लभ

पन्त के निवास स्थान पर ही बैठक हो रही थी । पन्त जी को मेरी बात जँची और गोरख प्रसाद जी की नियुक्ति ५ साल की हो गई । कौन जान सकता था कि जिस शरीर को मृत्यु अन्यथा न ले जा सकती थी उसे डुबा कर ले जायगी । पं० देवी प्रसाद शुक्ल कहा करते थे :

क्षणादूर्ध्वं न जानामि विधाता किं करिष्यति ।

मैंने गोरख प्रसाद जी के साथ जगह-जगह काम किया था । वह व्यवहार पटु थे । कठिन समस्या उपस्थित होने पर वह कोई न कोई समाधान खोज लाते थे । आज उनके निधन पर ऐसा लगता है जैसे कोई बहुत स्नेही, कर्मठ सहयोगी बहुत जल्दी चला गया ।

ईश्वर उनको सद्गति दे ।

अध्यक्ष
भाषा विज्ञान विभाग,
सागर विश्वविद्यालय

———

एक श्रद्धांजलि

डा० सन्त प्रसाद टंडन

डा० गोरख प्रसाद जी की सफेद कपड़ों की वेशभूषा तथा उनके व्यक्तित्व में एक विशेष आकर्षण था। सन् १९२८ में जब मैंने प्रयाग विश्वविद्यालय में बी०एस-सी०के छात्र के रूप में प्रवेश किया तो उनके व्यक्तित्व से आकर्षित होकर उनके सम्बन्ध की बातें जानने की उत्सुकता हुई। विद्यार्थी जीवन की उनकी ऊँची सफलता तथा अध्यापक और अन्वेषक के रूप में उनकी अच्छी योग्यता की चर्चा विद्यार्थियों में प्रायः हुआ करती थी। यह सब बातें सुन कर उनके प्रति मेरे हृदय में विशेष आदर का भाव विद्यार्थी जीवन में ही हो गया था। किन्तु मैं गणित का विद्यार्थी नहीं था। अतः विद्यार्थी जीवन में उनके सीधे सम्पर्क में आने का अवसर मुझे नहीं मिल सका था। डा० गोरख प्रसाद जी को उनकी हिन्दी में लिखी प्रथम पुस्तक 'फोटोग्राफी' पर जब (सं० १९८८) हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा मंगला प्रसाद पुरस्कार मिला तब लेखक के रूप में उनके प्रति मेरे मन में और अधिक श्रद्धा उत्पन्न हुई।

डा० गोरख प्रसाद जी से व्यक्तिगत रूप से मिलने का सौभाग्य मुझे सन् १९३८ में प्रथम बार प्राप्त हुआ। प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में एक अध्यापक की अस्थायी नियुक्ति होनी थी। मैंने इस स्थान के लिए प्रार्थना-पत्र दे रखा था। डा० गोरख प्रसाद जी प्रयाग विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी समिति के एक प्रभावशाली सदस्य थे। मैं अपने एक मित्र के साथ जो उनसे परिचित थे उनसे मिलने गया। उनका विश्वविद्यालय में जो स्थान था उससे मेरे मन में कुछ संकोच तथा भय था कि कहीं वह यह न समझें कि मैं अपनी नियुक्ति के लिए उन पर दबाव डालने गया हूँ। किन्तु डा० गोरख प्रसाद जी जितने अच्छे ढंग से मुझसे मिले और बातें की उससे मेरे मन का सब भय और संकोच जाता रहा और उनके प्रति मन में बहुत आदर की भावना उत्पन्न हुई। उनकी स्पष्टवादिता ने मुझे विशेष रूप से प्रभावित किया। साथ ही उनका यह कथन सुनकर कि वह योग्यता का ध्यान रखकर ही नियुक्ति के सम्बन्ध में कार्यकारिणी समिति में अपना मत व्यक्त करेंगे मुझे उन पर कुछ भरोसा हुआ। उन्होंने जो कुछ कहा था वही किया। इससे मेरे मन में उनकी सच्चाई की छाप बैठ गई। मुझे उस समय तक थोड़ा अनुभव युनिवर्सिटी की कार्यकारिणी के अन्य सदस्यों का हो चुका था। डा० गोरख प्रसाद जी की सच्चाई तथा अपने वचन पर दृढ़ रहने के गुण का यह मेरा प्रथम परिचय था। इसने मुझे उनकी ओर विशेष रूप से आकर्षित किया। फिर तो मैं युनिवर्सिटी में अध्यापक के रूप में आ गया और धीरे-धीरे उनसे मेरा सम्पर्क बढ़ता गया।

डा० गोरख प्रसाद जी में अपने पद तथा बड़प्पन का कोई घमंड नहीं था। वह छोटे-बड़े प्रत्येक व्यक्ति से बड़े प्रेम से मिलते थे। युनिवर्सिटी में अध्यापक होने के बाद से मेरी उनसे घनिष्ठता दिन प्रतिदिन बढ़ती गई और थोड़े ही समय में मैं उनके निकटतम लोगों में हो गया। इन दिनों 'विज्ञान परिषद्' का कार्यभार बहुत कुछ उन्हीं पर था और वह 'विज्ञान परिषद्' के मासिक पत्र 'विज्ञान' का सम्पादन भी कर रहे थे। वह बराबर मुझको प्रेरणा देते रहते थे कि मैं विज्ञान के लिए हिन्दी में लेख लिखूँ। वे अपना व्यक्तिगत उदाहरण मेरे सामने रखते थे और बतलाते थे कि उन्होंने 'विज्ञान' से ही हिन्दी में लिखना सीखा था। वह हम लोगों को प्रेरित करते हुये सदा यह कहते थे कि हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि तब तक नहीं हो सकती जब तक हम

लोग इस दिशा में विशेष प्रयत्नशील नहीं होंगे। उनकी हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि करने की इस लगन से हम सबको बड़ी प्रेरणा मिलती रही। उन्होंने कितने ही 'विज्ञान' के नये लेखक पैदा कर दिये। उनकी अपनी लेखनी में बड़ी शक्ति थी। उन्होंने जो कुछ भी लिखा उसमें उन्हें पूरी सफलता मिली। विज्ञान परिषद् के लिये उन्होंने विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर पर्याप्त लिखा है। ऐसे विषयों पर भी जो उनके विषय नहीं थे, उन्होंने जो कुछ लिखा है वह भी प्रामाणिक है। इससे उनकी योग्यता तथा लिखने की शक्ति का अनुमान हो जाता है। लिखने में भी वह बहुत तीव्रगामी थे। सीधे प्रेस के लिए एकबार में ही लिखकर भेज देते थे। दुबारा उसमें विशेष संशोधन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। जिन दिनों 'विज्ञान' का वह संपादन करते थे, लेखों का अभाव रहा करता था। उन्हें स्वयं ही 'विज्ञान' के कलेवर की प्रतिमास पूर्ति करनी पड़ती थी। इसके साथ ही युनिवर्सिटी में उनका अध्यापन तथा खोज का कार्य भी होता रहता था। साधारण व्यक्ति के लिए प्रतिमास न तो इतना लिख सकना सम्भव है और न इतना कार्य कर सकना। उनमें अतीव क्षमता थी। 'विज्ञान' के सम्पादन का उनका यह क्रम कई वर्षों तक चलता रहा। इसके बाद कुछ अन्य प्रकार के कार्यों का भार आ जाने के कारण उन्होंने अपने को सम्पादन के कार्य से मुक्त करना चाहा और बहुत दबाव डालकर लोगों ने यह भार मुझ पर सन् १९४४ में डाल दिया। केवल दो वर्ष ही 'विज्ञान' के कार्य करने के बाद मैंने यह अनुभव किया कि यह कितने परिश्रम का कार्य था और अपने युनिवर्सिटी के अध्यापन के कार्य के साथ इसको सम्पन्न करना कितना कठिन था। डा० गोरख प्रसाद की जैसी क्षमता न होने के कारण मुझे तो दो वर्ष के बाद ही सम्पादन के भार से अपने को मुक्त करना पड़ा। डा० गोरख प्रसाद जी जब अपना उदाहरण सामने रखकर मुझसे इस सम्बन्ध में बातें करते, तब मैं केवल यही उत्तर देता था कि "आपकी ऐसी कार्यक्षमता तथा योग्यता सभी में नहीं है और हमसे भी उतने ही कार्य की आशा करना, जितना आप करते हैं ठीक नहीं है।"

डा० गोरख प्रसाद जी में जहाँ एक ओर ऊँची योग्यता थी, दूसरी ओर चरित्र की महानता थी। इतने ऊँचे पद पर पहुँच कर छोटे लोगों के प्रति सहानुभूति रखना तथा सदा उनकी सहायता के लिए तत्पर रहना कम लोग कर पाते हैं। उनमें सत्य की ऊँची भावना थी और जो कुछ भी उनके विचार होते थे उन्हें वह निर्भीकता से व्यक्त करते थे। हम लोगों में आजकल एक बड़ी कमजोरी जातिगत बातों से प्रभावित होने की आ गई है। डा० गोरख प्रसाद जी इससे बहुत दूर थे। उनके विचार तथा कार्य साम्प्रदायिक अथवा जातिगत बातों से कभी प्रभावित नहीं होते थे। उनमें किसी प्रकार की संकुचित भावना नहीं थी, किन्तु इसके विपरीत विचारों की उदारता थी। वह प्रत्येक प्रश्न और विषय पर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करते थे। केवल एक उदाहरण से उनके राष्ट्रीय दृष्टिकोण का अनुमान हो जायगा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के परीक्षा मंत्री के रूप में जब वह राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन के सम्पर्क में आये तो उन्होंने यह अनुभव किया कि हिन्दी की सेवा करना राष्ट्र के एकीकरण के लिए बहुत महत्त्व का काम है। तभी से उन्होंने हिन्दी में लिखना और उसका कार्य करना अपना एक पुनीत कर्तव्य बना लिया। हिन्दी का कोई विशेष पूर्वज्ञान न होने पर भी उन्होंने अपनी लगन द्वारा हिन्दी में शीघ्र ही अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली और विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में उच्चकोटि के ग्रन्थ प्रणीत किये। उनके रचित ये ग्रन्थ हिन्दी साहित्य की निधि हैं।

डा० गोरख प्रसाद जी में एक बड़ा गुण अपने उत्तरदायित्व को पूरा करने का था। वह जो भी कार्य अपने जिम्मे लेते थे उसे पूरा करने की उन्हें सदा चिन्ता बनी रहती थी और जब तक वह उसे पूरा नहीं कर लेते थे उन्हें शान्ति नहीं मिलती थी। वह उसे उत्तम रूप में सम्पन्न करने के भी इच्छुक रहते थे। इसी स्वभाव के कारण उन्होंने जहाँ-जहाँ जिस पद पर कार्य किया एक अच्छा आदर्श उपस्थित किया। इसके साथ ही प्रत्येक कार्य की गहराई में जाने की भी उनकी विशेष प्रवृत्ति थी।

डा० गोरख प्रसाद जी में सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों प्रकार की बुद्धि का अच्छा सम्मिश्रण था। गणित की उनकी पुस्तकें जब प्रेस में छपनी आरम्भ हुईं तो गणित के चिन्हों के छापने की कठिनाइयाँ प्रेस के सामने आईं। प्रेस सम्बन्धी बातों का उस समय उन्हें स्वयं कोई ज्ञान नहीं था किन्तु उन्होंने अपनी सहज तीव्र बुद्धि द्वारा इन कठिनाइयों को समझने की चेष्टा की और शीघ्र ही उनका हल निकाल लिया। थोड़े ही दिनों में उन्हें प्रेस सम्बन्धी बातों का इतना अच्छा ज्ञान हो गया कि इस क्षेत्र में काम करने वाले पुराने अनुभवी व्यक्ति भी विशेष कठिनाई उपस्थित होने पर उनसे परामर्श लेते थे।

युनिवर्सिटी से अवकाश ग्रहण करने के बाद पिछले तीन वर्षों से डा० गोरख प्रसाद जी नागरी प्रचारिणी सभा में एक वृहत् कोश तैयार करने के कार्य में लगे हुये थे। इस कोश का एक भाग प्रकाशित भी हो चुका है। डा० गोरख प्रसाद जी की असायमिक मृत्यु से न केवल इस कार्य को अपितु हिन्दी साहित्य को महान क्षति पहुँची है। मैं दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

रसायन विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय

कुछ संस्मरण

डा० रामदास तिवारी

सन् १९३४ की बात है, मैं कानपूर में इन्टरमीडियेट में पढ़ता था। एक दिन यह पता चला कि प्रयाग विश्वविद्यालय के डाक्टर गोरख प्रसाद जी आए हैं और उनका ज्योतिष विज्ञान के विषय में एक भाषण होगा। मैंने उस भाषण को सुना और उसे सुनकर उसी दिन से डाक्टर साहब की विद्वता तथा महानता का भक्त बन गया।

इसके बाद जुलाई १९३५ में विश्वविद्यालय में बी० एस-सी० में प्रवेश लिया और फिर उनके कई भाषण गणित, ज्योतिष, फोटोग्राफी आदि अनेक विषयों पर सुने और तबसे उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप मेरे ऊपर पड़ गयी। जब यहाँ अध्यापक हुआ तो उनके और निकट आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और फिर विज्ञान परिषद् से सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर तो उनके बिलकुल निकट संपर्क में आ गया।

डाक्टर साहब गणित के उच्चकोटि के विद्वान तथा अध्यापक थे। आपके अनेक शिष्य उत्तर प्रदेश के कोने-कोने में तथा भारतवर्ष के अन्य राज्यों की शिक्षा संस्थाओं में कार्य कर रहे हैं। डाक्टर साहब का स्थान उन उच्चकोटि के गुरुओं में है जो अपने शिष्यों की उन्नति पर गर्व करते हैं और प्रसन्न होते हैं। सब से आदर्श अध्यापक वह है जो अपने छात्रों को अपने से भी आगे निकलते और उन्नति करते देख कर अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त होता है। डाक्टर साहब इसी प्रकार के अध्यापक थे। उनके शिष्य उनका सम्मान करते थे।

गणित के कुशल अध्यापक होने के अलावा डाक्टर साहब अन्य विषयों में भी बड़ी जानकारी रखते थे। फोटोग्राफी उनका सबसे प्रिय विषय था। विश्वविद्यालय में **फोटोग्राफी एसोसिएसन** को उन्होंने जन्म दिया और आरंभ से अवकाश ग्रहण करने तक डिप्लोमा कोर्स के विद्यार्थियों को प्रति सप्ताह लगभग दो लेक्चर पढ़ाते रहे। फोटोग्राफी पर आपने एक सामान्य तथा जनोपयोगी पुस्तक भी लिखी जो इतनी लोकप्रिय हो गयी कि समय-समय पर इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी के लिए उनके पास अनेक पत्र आया करते थे। अनेक आद्यौगिक विषयों पर भी डाक्टर साहब ने हिन्दी में कई पुस्तकें लिखीं—लकड़ी पर पालिश, उपयोगी नुसखे, घरेलू डाक्टर, सरल विज्ञान सागर। ये पुस्तकें ऐसी हैं कि किसी साधारण व्यक्ति के लिए उनका लिखना असंभव है। 'उपयोगी नुसखे' तो इतनी लोकप्रिय हो गई कि अनेक व्यवसायी तथा अन्य लोग डाक्टर साहब को पत्र लिखकर यह पूछा करते थे कि अमुक नुसखे से बनाने पर उनको ठीक चीज मिली या न मिली और आगे उनको क्या करना चाहिए।

हिन्दी के कुशल लेखक होने के साथ ही डाक्टर साहब की सबसे बड़ी देन लेखकों को हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य लिखने के लिए प्रोत्साहित करना था। इसके फलस्वरूप प्रयाग में ही नहीं अन्य स्थानों के लेखकों को इस कार्य्य में बड़ी सहायता मिली।

डाक्टर साहब की सज्जनता, उदारता, स्पष्टवादिता, सच्चाई, मिलनशीलता, चरित्र की महानता, दूसरों के प्रति सहानुभूति आदि चिरस्मरणीय रहेंगे। डाक्टर साहब में एक विशेष गुण था अपने उत्तर-दायित्व को निभाने की क्षमता।

विश्वविद्यालय में इतने वर्ष रहने पर भी वह यहाँ की राजनीति से बिलकुल अलग रहे। अवकाश ग्रहण करने के बाद हम लोगों के बड़े प्रयत्न करने पर डाक्टर साहब रजिस्टर्ड ग्रेजुएट से कोर्ट की सदस्यता का चुनाव लड़ने को तय्यार हुए। यह चुनाव (single transferable vote) की प्रणाली से होता है और प्रत्येक उम्मीदवार अधिक से अधिक प्रथम (first preference) वोट पाने का प्रयत्न करता है और इसके लिए मतदाताओं को लिखता है। डाक्टर साहब ने जो पत्र अपने मित्रों को लिखे, उनमें यह लिखा कि वे उनको जो ऊँची से ऊँची मान्यता सरलता से दे सकें दें। किसी को प्रथम के लिए नहीं लिखा। यह था डाक्टर साहब का व्यक्तित्व। वह किसी को वाध्य नहीं करना चाहते थे। डाक्टर साहब कोर्ट में काफी मतों से निर्वाचित हुए और फिर कोर्ट से कार्य्य-समिति (executive council) में भी चुने गये। वह कार्य्य-समिति के एक बड़े प्रभावशाली सदस्य थे तथा उनकी उपस्थिति से विश्वविद्यालय का बड़ा लाभ हुआ। डाक्टर साहब कार्य्य समिति के कुछ उन गिने-चुने सदस्यों में से थे जिन्होंने सन् १९५९ में प्रयाग विश्वविद्यालय के अन्दर पी० ए० सी० के बुलाए जाने का घोर विरोध किया था। कारण कि इस घटना ने विश्वविद्यालय के नाम को जितना कलंकित किया है अन्य किसी घटना ने नहीं।

डाक्टर साहब की असामयिक मृत्यु से एक महान क्षति हुई है जिसका पूरा होना असंभव है। परमात्मा उनकी आत्मा को शान्ति दे तथा अन्य व्यक्तियों में वह क्षमता पैदा करे कि वे उनके प्रारंभ किए हुए कार्य्य को आगे बढ़ा सकें।

प्राध्यापक
रसायन विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय

डा० गोरख प्रसाद-एक संस्मरण

बैजनाथ वर्मा

डाक्टर गोरखप्रसाद से मेरी पहली मुलाकात फरवरी सन् १९५९ में हुई। उस समय विश्वकोश के प्रथम खण्ड की तैयारी बड़ी जोरों में चल रही थी। एक चित्रकार की जगह खाली थी। इसके थोड़े दिन पहले श्री केशव दुबाड़ी वहाँ से काम छोड़कर नैपाल चले गये थे। कुछ कार्य उन्होंने भी किये थे। उसके बाद काशी के और भी पेशेवर चित्रकार कार्य कर रहे थे। मैं भी एक दिन श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद' के साथ हिन्दी विश्वकोश के दफ्तर में गया। डाक्टर गोरख प्रसाद जी से मेरा परिचय हुआ। उसी समय वह मेरे कार्य से भी परचित होना चाहते थे। मैंने कहा कि मैं घर से कुछ लेकर कल आऊँगा। तुरंत ही उन्होंने मेरे सामने लेटर पैड, निब और स्याही रख दी। हिन्दी के कुछ शब्द और गिनती तथा कुछ रेखाएँ खींचने को कहा। एक बार तो मैं भी चक्कर में पड़ गया। मेरे जीवन की यह ऐसी पहली घटना थी। कुछ देर तक मैं सोचता रहा। डाक्टर साहब ने पूछा—क्या सोच रहे हैं? मैंने कहा कि इसमें क्या बनेगा, जब तक पूरा सामान न हो। उन्होंने फिर कहा—खैर, बनाइये कुछ तो पता चलेगा। मैंने भी उसी घिसी हुई पुरानी निब और स्याही से बनाने का प्रयत्न किया। कुछ बना भी, लेकिन मेरे मन के अनुकूल नहीं हुआ। मैंने कहा, यह तो ठीक नहीं हुआ। डाक्टर साहब ने कहा—लाइये साहब, एक चावल से सारे बटुए के चावल का पता चल जाता है। देखने के बाद बोले कि कल से आप आइये, कुछ काम कीजिये। मैंने कहा कि दे दीजिये, मैं घर से करके लाऊँगा। कहने लगे, जिस पुस्तक से चित्र बनाना है उससे मुझे भी काम पड़ता है। मैंने कहा—ठीक है, कल तो नहीं, मैं परसों सामान लेकर आऊँगा।

तीसरे दिन सामान लेकर दोपहर में १२ बजे दफ्तर में दाखिल हुआ। उसी समय फाउन्टेनपेन निकालकर उन्होंने टेबुल पर रखा। तुरंत चपरासी को बुलाकर मेरे लिए टेबुल और कुर्सी का इन्तजाम कराया और एक पुस्तक दी जिसमें से मोटर का इंजन बनाना था। समझकर मैंने काम शुरू किया। चित्र बहुत ही जटिल था। फोटोग्राफ से लाइन में बनाना था। फोटो में कहीं-कहीं शेड की जगह के छोटे पुर्जे स्पष्ट नहीं थे। मैं कई बार पूछने उनके पास गया। वे बड़े ही सरल ढंग से समझाते और कहते कि जो चीज समझ में न आये उसे अच्छी तरह समझकर कार्य करने से ठीक होता है। इतना ही नहीं, मुझे साथ लेकर नीचे गये, अपनी मोटर का इंजन खुद खोलकर दिखाया और पुर्जों के अलग-अलग नाम बताये। मुझे तो नाम याद नहीं हैं, लेकिन देखने से काम जरा ठीक हुआ और उन्होंने भी पसन्द किया; लेकिन मेरी लेटरिंग उन्हें पसन्द नहीं थी। कहते थे कि आपकी राइटिंग जनानी है। दरअसल देवनागरी लेटर की डिजाइन बनाने का मुझे बहुत कम अवसर आया था। अगर कभी जरूरत पड़ी तो प्रेस से कम्पोज कराकर काम चला लेता था। वहाँ भी प्रेस का सहारा लेना पड़ा क्योंकि इतने अधिक अक्षरों की जरूरत पड़ती थी कि हाथ से लिखना और वह भी एक समान असम्भव था लेकिन फिर भी मुझसे अक्सर कहा करते थे कि किरिच की कलम से एक पेज रोज लिखा कीजिये, ठीक हो जायगा। मैं भी तब से कभी-कभी घर पर किरिच की कलम से लिखा करता हूँ जिससे मेरी लिखावट में बहुत कुछ सुधार भी हुआ है।

मैं प्रतिदिन १२ बजे दफ्तर जाता था। उनका भी आने का समय ठीक १२ बजे का ही था। गर्मी के दिनों में ७ बजे आते थे और १० बजे चले जाते थे। बड़े समयनिष्ठ थे। काम कैसे होता है, उनको अच्छी तरह मालूम था। यह उनकी विशेषता थी कि कोई भी काम हो, सबसे पहले खुद आगे बढ़ते थे। फोटो और चित्र के बारे में, प्रेस के और छपाई के बारे में, ऐसा मालूम होता था कि सभी के अच्छे जानकार हैं।

एक दिन इण्डियन आर्ट का एक चित्र उनको दिखाया तो कहने लगे कि यह भी कोई आर्ट है ? टेढ़ा-मेढ़ा बना दिया और कह दिया 'भारतीय कला है'। क्या आदमी इसी प्रकार का होता है ? मैंने कहा तब तो आपको अजन्ता और खुजराहो के चित्र भी ऐसे ही लगेंगे। बोले—मुझे तो सच्चा काम अच्छा लगता है। जिसका भी चित्र बनाया जाय, असली मालूम पड़े। इसका मतलब था कि उनको 'रियलिस्टिक' काम ज्यादा पसन्द था।

अकसर कोई भी चीज बनानी रहती तो कहते कि देखकर बनाइये। कई बार तो मुझे उनके आदेश से हिन्दू विश्वविद्यालय के बगीचों का चक्कर लगाना पड़ा। वहाँ जाकर अमलताश, इन्द्रयव, अड़ूसा, अजवाइन आदि कितने ही प्रकार के पौधों का चित्र बनाना पड़ा। जहाँ कहीं भी गलती देखते वहाँ तुरंत टोकते और समझाते थे। प्रपोरशन और प्रास्पेक्टिव का भी उनको अच्छा ज्ञान था।

वे निरभिमान व्यक्ति थे। हमेशा सीखने और सिखाने की प्रवृत्ति थी। कभी फालतू समय नष्ट नहीं करते थे। एक दिन मैंने कहा—डाक्टर साहब आपकी मोटर बड़ी पुरानी हो गयी है, दूसरी नयी मोटर लीजिये। कहने लगे—शरीर कहाँ से नया ले आयेंगे ? शरीर भी तो पुराना हो गया है।

एक दिन की बात है कि मैं अपने टेबुल पर काम कर रहा था। वे किसी काम से आये। बनारसी मघई पान जमा था। देखा तो बोले—साहब, आप लोगों से तो बोलने का मन नहीं करता। जब देखिये मुँह में पान जमा है।

दरअसल पान से वे बेहद चिढ़ते थे, वे खुद पान नहीं खाते थे। इसी प्रकार की अनेक घटनाएँ हैं। मेरे लिए तो वे गुरुतुल्य थे।

उनसे मैंने बहुत सी बातें सीखीं। मुझे बड़े प्यार से समझाते। कुछ न कुछ मुझे रोज ही बताते। काश ! डाक्टर साहब अभी कुछ दिन और जीते !

चित्रकार
के० ९/२१ पत्थर गली
वाराणसी-१

———

व्यक्तिगत संस्मरण

श्रीमती पार्वती देवी राय

पूज्य गोरखप्रसाद जी हमारे निजी सम्बन्धी थे। जब कभी वे सागर या नागपुर यूनिवर्सिटी की सिनेट बैठक की मीटिंग में जाते तो अकसर कटनी में ठहर, हमें अपने सहवास के कुछ क्षणों का अवसर प्रदान करते थे। यों तो वह घर, परिवार व पड़ोसी आदि सभी से बातचीत करते थे किन्तु उनके थोड़े से ही सुमधुर शब्दों से उनकी सौजन्यता तथा अपार प्रेम प्रकट होता था। फलतः उनके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ती ही गई। सन्तान का पिता से कितना प्यारमय सम्बन्ध होता है फिर भी हम लोग अपने चाचा डाक्टर हीरालाल तथा पूज्य पिता श्री गोकुलप्रसाद जी को समय के साथ-साथ भूल से चले थे क्योंकि हमें अपने एक अन्य पिता का सहारा था। पर आज जिस समय डाक्टर गोरखप्रसाद जी की जल समाधि की दुखद घटना का समाचार सुना, हमारी रही-सही आशाओं पर पानी फिर गया। दुर्दैव ने हमारे बीच से उस महान आत्मा को भी समेट लिया और हम पितृ-प्रेम से सदा के लिये वंचित हो गये।

५ मई की यह दुखद घटना दियाबत्ती की बेला में हुई। वे इस वृद्धावस्था में भी नियमित जीवन के संयम में बँधे, नित्य की भाँति अपने नौकर, निहोर—जो १ वर्ष से उनकी सेवा में था व नाती श्री अशोक के साथ संध्या समय नाव द्वारा उस पार गंगा के सुनसान तट पर पहुँचे। कुछ देर नहाने के पश्चात् नौकर को डूबने से बचाने के लिये अपूर्व प्रयत्न करते हुए नौकर के साथ ही साथ गंगा जी की अथाह जलराशि में विलीन हो गये।

मुझे १०-१२ वर्ष पूर्व की उस घटना का स्मरण हो रहा है जब कि गंगा मैया ने हम लोगों की करुण पुकार सुन ली थी। तब मेरी पूज्य बुआ जी भी जीवित थीं। वह बड़ी भक्त थीं और प्रायः गंगा स्नान करने इलाहाबाद जाया करती थीं। मैं सदा ही उनके साथ रहा करती थी। हमारा एक सम्बन्ध श्री बाबू हजारी लाल के यहाँ भी है। इलाहाबाद के प्रवास के समय हम लोग कभी डाक्टर साहब के यहाँ, कभी हजारी लाल जी के यहाँ ठहरा करते थे। इस बार हम लोग डाक्टर साहब के यहाँ ही ठहरे थे। उनको उस समय अवकाश कम था पर यह उनकी सज्जनता का ही एक नमूना था जो अवकाश कम रहते हुए भी उन्होंने बुआ जी से यह कहा—"दीदी जी, चलिये मैं आपको मोटर से गंगा स्नान के लिये ले चलता हूँ।" और उन्होंने तुरन्त गैरेज से मोटर निकाली। हम सब गंगा किनारे द्रौपदी घाट पहुँचे। वर्षा के दिन थे। गंगा जी में बाढ़ आई हुई थी। गंगा जी पूरे वेग में अपनी लीला दिखा रही थीं। डाक्टर साहब भी तैरने के लिये गंगा की धारा में कूद पड़े। डाक्टर साहब अच्छे तैराक थे; फिर भी वेगवती धारा में पड़ कर वे बीच गंगा में पहुँच गये। बुआ जी व चाची जी (श्रीमती गोरखप्रसाद) किनारे से चिल्लाने लगीं। चाची जी करुण स्वरों से माँ गंगा से अपने सुहाग की भीख माँगने लगीं—"माँ मेरे सुहाग की रक्षा करो। रक्षा करो माँ गंगा!" माँ गंगा भी उस दिन दयामयी हो गई थीं और कुछ मिनटों के संघर्ष के पश्चात् डाक्टर साहब किनारे आ गये थे। यह घटना मैं भूल सी गई थी। पर इस घटना से मुझे उस घटना की याद हो गई, जैसे यह कल की घटना हो। क्या डाक्टर साहब के जीवन की यही घटना भविष्य के लिये संकेत थी?

डाक्टर साहब का पूरा जीवन परोपकार में ही बीता । अन्त समय भी परोपकार करते हुए ही उन्होंने अपने प्राणों का बलिदान कर दिया । शास्त्रों में लिखा है भी है:

स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः, पिबन्ति नाम्भः स्वयमेव नद्यः ।
धाराधरो वर्षत नात्म हेतोः, परोपकाराय सतां विभूतयः ।।

उनकी अन्तिम समय की फोटो देखने से ऐसा ही प्रतीत होता है कि उनके चेहरे पर कैसी दिव्य शान्ति विराज रही है ।

डाक्टर साहब कितने उदार हृदय थे, यह भूलने की बात नहीं । ४ वर्ष पूर्व मैं उनके वासस्थान पर पहुँची व उनके बैठक की लाइब्रेरी की पुस्तकें देखने लगीं । उसमें डा० साहब रचित 'नीहारिका' व 'भारतीय ज्योतिष का इतिहास' नामक पुस्तकें भी देखीं । लाइब्रेरी में दूसरी पुस्तक की एक ही प्रति दिखी । मैं 'भारतीय ज्योतिष का इतिहास' नामक पुस्तक लेना तो चाहती थी पर डाक्टर साहब से माँगने में संकोच लगता था । इसी पशोपेश में थी कि इतने में डाक्टर साहब स्वयं लाइब्रेरी में आये । मैं पुस्तक हाथ में लिये ही लिये खड़ी हो गई । उन्होंने कहा—'इस बार यह पुस्तक लिखी है । सब प्रतियाँ खर्च हो गई हैं, केवल एक हमारे लिये बची है ।" मैं कुछ बोली नहीं पर उन्होंने मेरे मन की बात भाँप ली कि मैं यह पुस्तक चाहती हूँ । वे बोले—"अच्छा आप इसे लेती जाओ ।"

२६ जून सन् १९५८ को अपने भाई श्री वीरभानु राय की ज्येष्ठ पुत्री व डाक्टर साहब की ज्येष्ठ नातिन किरण कुमारी के विवाहोपलक्ष्य के अवसर पर मैंने कविता के रूप में शुभाशीष लिख कर उन्हें दिखाया । पदों की गलतियाँ देखकर वे तुरन्त उसे सुधारने बैठ गये यद्यपि वे उस समय अत्यन्त व्यस्त थे । बारात आगमन का समय निकट था फिर भी उन्होंने उसे अपने हाथों से अति सुन्दर लिपि में लिख, तुरन्त मढ़वा कर बारात आने के पहले तैयार करवा दिया ।

ऐसे व्यक्ति के लिये जो कुछ भी कहा जाय, थोड़ा है । उनके इस धराधाम से चले जाने से इस भौतिक संसार, साहित्यक क्षेत्र, व हैहय जाति और समाज की भारी क्षति हुई है । वे वर्तमान युग के गौरव थे उनके रिक्त स्थान की पूर्ति होना असम्भव प्रतीत होता है ।

———

पूज्य बाबू जी की याद में

श्रीमती माधुरी जायसवाल

ता: ६ मई की शाम को जिस समय तार द्वारा यह हृदय विदारक समाचार मिला —Dr. Gorakh Prasad drowned in Ganges. कुछ क्षणों के लिये जैसे बेहोशी सी छा गई। मेरा मन बार-बार यही कहता था, मेरे बाबू जी इतना अच्छा तैरना जानते थे वह कभी डूब नहीं सकते। जरूर किसी हतभाग्य की प्राणरक्षा के लिये, किसी को डूबने से बचाने के लिये ही उन्होंने अपने प्राणों का बलिदान किया होगा और दूसरे दिन अखबार द्वारा पूरी घटना का विवरण ज्ञात हो गया।

हम सब भाई बहनों के लिये वे कितने स्नेहमय पिता थे! उनकी स्नेहमयी छत्रछाया में हम लोग पढ़े लिखे, बड़े हुए और क्या नहीं सीखा! हम लोगों ने उनसे तैरना सीखा। मैं सब भाई-बहनों में छोटी होने के कारण माता-पिता की अत्यन्त लाड़ली रही। पर यह लाड़ ऐसा न था कि मुझे गलत रास्ते पर ले जाता। मुझे अभी भी याद है, मैं तैरना सीख जाने पर भी पानी से बहुत डरती थी। उस समय मेरी उम्र ९-१० साल की रही होगी। बाबूजी का सदा का नियम था कि गरमियों में जब तक इलाहाबाद रहते थे नित्य नियम से गंगा जी स्नान के लिये जाते थे। हम सब भाई बहन भी व माँ भी उनके साथ ही जाते थे। बाबूजी ने पानी से मेरा डर छुड़ाने के लिये अपनी कमर तक पानी में खड़े होकर मुझे गोद में उठा लिया और अपने शरीर का सारा जोर लगा कर मुझे गंगा की बीच धाराओं में उछाल दिया। माँ एक दम चीख पड़ी—'अरे लड़की डूबी'! बाबू जी बोले —"डूबेगी कैसे"? और क्षण भर में ही वह मेरे पास पहुँच गये। मैं किनारे पर आने के लिये प्राणपण से तैरने लगी। बाबूजी चुपचाप मेरे साथ-साथ तैरते हुए आ रहे थे कि अगर यह थक जाय तो सहारा दूँ। पाँच मिनट में ही मैं माँ के पास से तैरती हुई आकर अपनी कमर तक के पानी में खड़ी हो गई। बाबूजी ने स्नेहपूर्वक कहा "डूबी तो नहीं न? देखो तैरना आ जाने पर कोई भी व्यक्ति डूब नहीं सकता। चाहे वह कितने ही गहरे पानी में क्यों न तैरे।"

इसी तरह मेरी शादी के समय मेरे ससुराल पक्ष वालों को बाबूजी अपनी मोटर में बिठाकर त्रिवेणी स्नान के लिये गये। वहाँ मेरे पति के एक मित्र जिन्हें हम लोग रज्जन भइया कहते हैं जब यमुना की धाराओं में पड़ कर डूबने लगे तो देखते ही देखते बाबूजी उन्हें बचा लाये। आज कल वे नागपुर में डाक्टर हैं। पर कौन जानता था कि इतना सब कुछ होते हुए भी नियति उनके साथ इतना क्रूर खेल खेलेगी, बाबूजी अपने नौकर की प्राण रक्षा करने के प्रयास में स्वयं ही अपने प्राणों का बलिदान कर देंगे।

बाबूजी की गणित, विज्ञान, ज्योतिष सम्बन्धी सेवायें साहित्यिक जगत के लिये सेवाएँ थी। इन सब के बीच भी वे हम सब भाई बहनों से खेलने के लिये भी थोड़ा समय निकाल ही लेते थे। छुट्टियों में मेरी बुआएँ आतीं तो वे सब बच्चों के लिये अपने हाथों से लकड़ी के खिलौने बनाते। उन्हें रँगते और हर खिलौने पर अलग-अलग हर बच्चे का नाम लिखते। जिस कमरे में वह यह सब काम करते उस कमरे का नाम हम लोगों ने 'बढ़ई घर" रख दिया था। उस कमरे में बाबूजी के बढ़ईगीरी में काम आने वाले तरह-तरह के औजार संगृहीत थे।

यही नहीं, बाबूजी ने फल-संरक्षण पर भी पुस्तक लिखी। किस प्रकार जैम, जेली बन सकती है इसका उन्होंने लिखित विश्वास नहीं किया वरन् अमरूद, करौंदे आदि की जेली मुझसे घर में बनवा कर उसका परीक्षण भी किया। इन सब परीक्षणों में वे स्वयं सामने खड़े होकर मेरी मदद करते और यदि कभी माँ विरोध भी करतीं तो मुस्करा कर टाल देते।

हाय! स्वप्न में भी न सोचा था हम लोग असमय में ही बाबूजी को खो बैठेंगे वह हम लोगों से इतने जल्दी बिछुड़ जायँगे।

कोष का रूप

कोष को विषयानुसार अलग अलग खण्डों में न छपा कर एक साथ ही अकारादि क्रम में छापना चाहिए। अलग अलग छपे खण्डों से शब्द ढूँढ़ने में बड़ी ही असुविधा होती है। फिर बहुत से शब्द ऐसे हैं कि वे अनेक विषयों में प्रयुक्त होते हैं। अलग अलग बने कोषों में एक ही शब्द के लिये बहुधा किसी खंड में कोई किसी में कोई रूपान्तर रहता है जिससे बड़ी गड़बड़ी होती है।

सभी विषयों के शब्दों को सम्मिलित करने पर विज्ञान परिषद् से छपे कोष में लगभग ७५००० शब्द होंगे। जिस ढंग से काफी जगह छोड़कर वर्तमान वैज्ञानिक कोष छपे हैं उस ढंग से ऐसे कोष में हजार, डेढ़ हजार पृष्ठ हो जावेंगे परन्तु यदि कोष को खूब ठोस ढंग से छापा जाय जैसा आप्टे के इंगलिश-संस्कृत कोष में किया गया है और आवश्यकतानुसार सँकरे स्तम्भ रखे जायँ तो सम्भवतः डेमाई अठपेजी आकार के ५००-७०० पृष्ठों में ही कोष समाप्त हो सकता है। अब तो आठ प्वाइन्ट का देवनागरी टाइप बराबर मिलता है। कोष का कागज इतना पतला भी न हो कि पन्नों के उलटने में कठिनाई पड़े और इतना मोटा भी न हो कि कोष बहुत मोटा हो जाय।

दूसरी बात यह है कि कोष को बहुत सस्ता होना चाहिए। कोष पर जो घाटा हो उसे प्रचारार्थ व्यय समझा जाय। शिक्षकों को पुस्तक आधे मूल्य में मिले।

यह भी आवश्यक है कि एक ही हिन्दी शब्द को दो विभिन्न पारिभाषिक अर्थों में प्रयुक्त न किया जाय। इसलिये कोष बनाते समय हिन्दी रूपान्तरों का एक कार्ड इंडेक्स रखना चाहिये जिससे पता चलता रहे कि कौन सा हिन्दी शब्द किस अंग्रेजी शब्द के लिये निर्धारित किया गया है।

कुछ अंग्रेजी शब्दों को ज्यों का त्यों लेना ही पड़ेगा। ऐसे शब्दों के लिए लिंग भी सूचित कर देना चाहिये। एक ही शब्द को कोई लेखक स्त्रीलिंग मानता है, कोई पुल्लिग।

डा० गोरख प्रसाद

विज्ञान, सितम्बर १९४३

पूज्य नाना जी की दुखद जल समाधि

अशोक कुमार जायसवाल

५ मई सन् १९६१ की उस कालरात्रि को मैं कभी न भूलूँगा जिसने मेरे पूज्य नानाजी को हम सबसे छीन लिया। नाना जी नित्य नियम के अनुसार मेरे व नौकर रामनिहोर के साथ उस दिन भी शाम के ६॥ बजे के करीब गंगा स्नान के लिये गये। ४ ता० की शाम को नानी जी के घुटने में चोट आ गई थी जिससे वे हम लोगों के साथ उस दिन नहीं गईं। दुर्भाग्यवश उस दिन हम लोग लंगर ले जाना भी भूल गये थे।

नाना जी बोले—"अब तो निहोर काफी तैरना सीख गया है अतः रस्सी नहीं ले चलेंगे।" करीब १५ दिन से नाना जी उसे तैरना सिखा रहे थे। ५ मई को भी मैं व नाना जी उसके साथ काफी तैरे। उसे काफी देर तक तैरना सिखलाया और फिर कहा 'अब तुम यहीं ठहरो, हम लोग कुछ दूर और तैर आयें। फिर घर चलें।'

हम लोगों के १०-१५ गज दूर चले जाने के बाद पता नहीं निहोर को अकेले में तैरने का शौक हुआ या उसके नीचे से बालू खिसक पड़ी वह गहरे पानी में डुबकियाँ खाते हुए हताश स्वर में चिल्लाया —"बाबू जी बचाओ, मैं डूबा।" उसकी पुकार सुन कर नाना जी बेतहाशा तेजी से तैरते हुए उसकी ओर आये। मैं भी साथ ही साथ था। हम दोनों ने मिलकर निहोर को छिछले पानी में ठेलने का प्रयत्न किया। नाना जी ने निहोर को समझाया कि वह उनकी कमर पकड़ ले। पर होनी को कौन रोक सकता है। निहोर घबराहट में नाना जी का गला पकड़ कर झूल गया। इतने पर भी नाना जी उसे साथ लिये-लिये काफी दूर तक तैरे। मैंने जल्दी से थाह पाने की कोशिश की और अपनी छाती तक पानी में खड़े होकर चाहा कि नाना जी का कंधा पकड़कर उन्हें भी छिछले पानी में घसीटने की कोशिश करूँ। बहाव ज्यादा था। नाना जी शायद मेरी मजबूरी समझ गये थे। अंत समय नजदीक होते हुए भी उन्होंने अपना धीरज और आत्मविश्वास नहीं खोया। उन्हें पूरा भरोसा था कि मैं निहोर को बचा लूँगा। पर शक्ति जवाब दे चुकी थी। वह मुझसे केवल इतना ही बोले—"अशोक क्या नाव ला सकोगे ? मैं बहुत थक गया हूँ।"

मैं जल्दी-जल्दी नाव के पास पहुँचा जो १५-२० गज दूर थी। मुझमें न जाने कहाँ से बल आ गया कि जिस नाव को हम तीनों ने मिल कर रेती में घसीटा था उसे गहरे पानी में ठेल कर भरसक तेजी से खेता हुआ उस स्थान पर पहुँचा जहाँ मेरे पूज्य नाना जी मृत्यु और माँ गंगा की वेगवती लहरों से अपने नौकर को गोद में सँभाले संघर्ष कर रहे थे।

वहाँ पहुँच कर देखा नानाजी नहीं हैं। मेरे वहाँ से चले जाने के कुछ क्षणों बाद ही माँ गंगा ने सदा के लिये उन्हें अपनी गोद में सुला लिया था।

———

आर्त माँ की वाणी से

संकलनकर्त्री : श्रीमती माधुरी जायसवाल

आज आसुओं के बीच डूब कर मुझे अपनी जीवन की एक एक बात याद आती है। उस समय शायद मैं १५-१६ वर्ष की थी। मेरे पति बी० एस-सी० की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे। बातचीत के बीच एक बार उनके मुँह से निकला—"तुम अगर अपने मायके चली जाओ तो ज्यादा अच्छा हो वरना मेरी पढ़ाई में बाधा पड़ेगी।" उनके इस प्रकार कहने से मेरे मन में ठेस लगी व यही ख्याल बार बार आता था क्या मैं उनकी किताबें छीन लूँगी —जो वे इस तरह कहते हैं। मैं गाँव की लड़की हूँ यह कहने में आज मुझे शरम नहीं लगती। पर मेरे देवता ने धीरे-धीरे करके तरह-तरह की शिक्षाएँ देकर आज मुझे इस लायक बना दिया कि मैं पढ़ी-लिखी औरतों से भी टक्कर ले सकूँ। मेरे देवता के जीवन काल में मेरा रहन-सहन देखकर क्या कोई यह कह सकता था कि मैं गाँव की वही अनपढ़ लड़की हूँ। पर उस समय मुझमें इतनी बुद्धि नहीं थी। जब वे पढ़ाई में लीन रहते तो मैं भी भगवान की पूजा करती और मन ही मन प्रार्थना करती रहती कि हे भगवान! मेरे मुँह की लाली रखना। आखिर परीक्षा हुई। यू० पी० भर में वे फर्स्ट आये। इनाम में कई पुस्तकें, ५०) नगद और एक स्वर्ण पदक मिला। जैसे ही वे घर में आये, सारी चीजें मुझे देकर बोले, "यह तुम्हारे मुँह की लाली है।" यह कितने दिन पहले की बात है पर याद आती है तो मन में टीस उठती है। धीरे-धीरे वह ऊँची पढ़ाई करते रहे और धीरे-धीरे मुझे भी इस योग्य बनाते गये। यह जरूर है कि मैंने कोई किताबी परीक्षा नहीं पास की पर मेरे देवता ने मुझे दूसरी तरह से इस योग्य बना दिया कि कोई भी मुझे देखकर बेपढ़ी-लिखी नहीं कह सकता था।

मुझे इस बात का कितना गर्व होता था कि उनका जगह-जगह मान सम्मान होता है। फूल मालाएँ भेंट की जाती थीं तो यह देखकर मैं फूली नहीं समाती थी। मैं दिनरात अपना भाग्य सराहती रहती थी कि भगवान मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ जो मैंने इतना महान और योग्य पति पाया।

मैंने गाँव में थोड़ा थोड़ा तैरना सीखा था। इनके साथ रहते-रहते मैंने अच्छी तरह से तैरना सीखा। उन्होंने मुझे मोटर चलाना सिखाया और मुझे इतनी होशियार बना दिया कि माघ मेला और कुम्भ की भरी भीड़ में भी मैं मोटर चला लेती और कभी किसी तरह की दुर्घटना नहीं हो पायी।

देवर, लड़की व लड़के की शादियाँ हुईं पर हर समय उन्होंने मुझको ही मान दिया। जेवर-कपड़ा, किसको क्या देना-लेना है, वे कभी किसी बात में दखल नहीं देते थे बल्कि हर बात में सबों से कह देते थे— "भाई मैं कुछ नहीं जानता, घर के इंतजाम की ये मालकिन हैं।" मेरे मन में झुँझलाहट भी होती कि ये कुछ देखभाल नहीं करते। और गर्व भी होता—अरे! ये मेरा इतना आदर करते हैं। क्या मेरा यह आदर परमात्मा से सहन नहीं हुआ, जो उन्होंने एकाएक मेरे ऊपर यह वज्रपात कर दिया और मेरी दुनिया अंधेरी कर दी।

तीन वर्ष पहले उन्होंने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से अवकाश प्राप्त किया। उसी समय नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से उन्हें निमंत्रण मिला। वे हिन्दी विश्वकोश के सहायक सम्पादक होकर वाराणसी चले गये। आज सूने मकान में बैठ कर मुझे यह भी याद आती है कि उन्होंने अपनी नौकरी की शुरुआत काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

से ही की थी और अन्त समय काशी ही गये, नागरी प्रचारणी सभा में। बच्चों की पढ़ाई व नातिनों के विवाह की जिम्मेदारी की वजह से मैं सदा अपने पति के साथ बनारस न रह सकी, इसका पछतावा मुझे मरते दम तक रहेगा। यदि कभी मन में यह ख्याल आता भी कि अपनी छोटी लड़की का विवाह भी करके हमारी जिम्मेदारियाँ खतम हो जावेंगी पर फिर यह ख्याल भी आता था कि अरे अब इन लड़कियों के बच्चों को पढ़ाना, नातिनों के विवाह करना भी एक तरह से अपना ही फर्ज है। इस तरह मेरे दिन कभी इलाहाबाद में, कभी बनारस में व्यतीत होते रहे। जब कभी वे इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की इक्जीक्यूटिव की मीटिंग में आते तो मन में कितना उत्साह होता व बच्चे भी मगन रहते कि आज नाना जी आ रहे हैं। बच्चों का और मेरा उल्लास जो उनकी प्रतीक्षा के लिये रहता था कहाँ चला गया? नियति के क्रूर हाथों ने उस उल्लास को क्यों समाप्त कर दिया?

इस वर्ष मैं बच्चों की परीक्षा के बाद २ मई १९६१ को बनारस पहुँच सकी। मन में यह सोच कर ही बनारस गई थी कि इस बार २½ महीना बनारस रहूँगी। क्या मालूम था कि एक कोने में खड़े भाग्यदेवता हँस रहे हैं कि तुम २½ माह के लिये अपने पति के साथ रहने के लिये आई हो, तुम २½ दिन ही रह सकोगी।

तीन मई की शाम भी मुझे याद है। हम लोग गंगा के तट पर पहुँचे। उनका नियम था कि नाव लेकर उस पार चले जाते और वहाँ के सुनसान किनारे पर जी भर कर तैरने के बाद स्वयं ही नाव खेकर वापस लाते। कहते कि दिन भर कुर्सी पर बैठे-बैठे काम करना पड़ता है। यही मेरी कसरत है और यही मेरा मन बहलाव है। जवानी से लेकर बुढ़ापे तक यह उनका गर्मियों का नित्य का कार्यक्रम था। तीन मई की शाम को जब हम लोग गंगा तट पर पहुँचे, एक मद्रासी दम्पति ने हम लोगों के साथ आने की इजाजत चाही। उनके साथ उनकी ४-५ वर्ष की बच्ची भी थी। मेरे पति मुझसे धीरे से पूछने लगे––कहो तो उन्हें भी साथ ले लें। पर जब मद्रासी दम्पति नाव पर चढ़ आये तो प्रसंग वश मद्रासी सज्जन ने अन्य किताबों और लेखकों के बारे में बताते हुए कहा कि डाक्टर गोरख प्रसाद की इंटेगरल और डिफरेंशियल कैलकुलस पढ़ी है। उसपर इनके मुँह पर हँसी आ गई और कहने लगे क्या आप लेखक को पहचानते हैं? उसके नहीं कहने पर बोले, "लेखक तो आपके सामने बैठा नाव खे रहा है।"

उस दिन हँसी खुशी हम लोग वापस लौटे। घाट पर की ४०-४५ सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते जब मैं थक सी गई तो वे मुझसे बोले ४-६ दिन में आदत पड़ जायगी तो नहीं थकोगी।

४ ता० को जिस समय हम लोग वापस आ रहे थे घाट पर की अन्तिम सीढ़ी पर मैं ठोकर खाकर गिर पड़ी। उसी समय उन्होंने मुझे सहारा दे कर उठाया और घर पहुँच कर अपने हाथों से मेरे घुटने में दवा लगायी। तब क्या जानती थी कि यह मेरे देवता के हाथों से मेरी आखिरी सेवा है और बदले में वह मुझसे जरा भी सेवा न लेंगे। और न यही सोचा कि विधाता ने मुझे यह ठोकर देकर चेतावनी दी है कि "अब भी सँभल जाओ, कल तुम्हें ऐसी गहरी ठोकर लगेगी कि जिन्दगी भर न सँभल सकोगी।"

और ५ ता० का काल रूपी वह दिन। दोपहर को हलकी हँसी मजाक में मैं कितना हँसती रही। उस समय क्या मालूम था कि ४ घंटे बाद मुझे रोना पड़ेगा और वह जिन्दगी भर के लिये ही हो जायगा।

शाम को जाने के लिए मैंने गंगा स्नान के लिये कपड़े तो जरूर निकाल कर अलग रखे पर उत्सुकतावश हैहय क्षत्रिय की एक पत्रिका पलटते ही 'हत्या का अन्त' शीर्षक कहानी दिखलाई पड़ गई । मैं पढ़ने लगी । उसी समय उन्होंने मुझ से पूछा "गिरजा की माँ ! समय हो गया, चलती हो ?" तब क्या पता था कि यह आखिरी बार कह रहे हैं ?

मैंने कहा "आज तो नहीं जाऊँगी । घुटना थोड़ा दर्द कर रहा है । कल चलूँगी आपके साथ ।"

शायद मैं गई होती तो यह काण्ड न होता । आखिर वे अपने नाती अशोक और नौकर नीहोर के साथ अकेले गंगा जी चले गये । और यह नीहोर भी ऐसा नौकर जो पिछले वर्ष ठीक ५ मई को ही उनकी सेवा में आया था ।

आखिर दो-ढाई घंटे बाद जब अशोक बदहवास सा यह समाचार लाया—नाना जी और नीहोर दोनों डूब गये, मेरे पैरों के तले की धरती खिसक गई । बाद में प्रयत्न कर के उनका शव निकाला गया—सब कुछ हुआ पर मेरे मन में पछतावा है और यह पछतावा मेरी जिंदगी भर नहीं जायगा कि हाय ! अगर मैं अपने देवता के संग गई होती तो शायद यह काण्ड न होता । शायद मैं अपने देवता को बचा पाती ।

कोष-निर्माण

कोष निर्माण के सम्बन्ध में मेरी निजी राय यह है कि किसी न किसी संस्था को ऐसे शब्दों का रूपान्तर भी गढ़ना चाहिए जो हिन्दी आदि के वर्तमान कोषों और पुस्तकों में नहीं हैं । इन शब्दों की गिनती पहले असंख्य जान पड़ सकती है क्योंकि अंग्रेजी में अब भी प्रतिवर्ष सैकड़ों नवीन शब्द गढ़े जाते हैं । परन्तु यदि इस समय केवल वे शब्द ले लिये जायँ जो यहाँ के विद्यालयों में एम० एस-सी० तक की पढ़ाई में काम आते हैं तो एक बड़ी कमी पूरी हो जायगी । इनके अतिरिक्त उद्योग और व्यवसाय सम्बन्धी वे शब्द भी अवश्य आ जायँ जो विज्ञान से सम्बन्ध रखते हैं ।

अपने देश के विश्वविद्यालयों में विज्ञान की फैकल्टी में गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन, वनस्पति शास्त्र और जन्तुशास्त्र ही साधारणतः पढ़ाये जाते हैं । इनमें से दो विषयों पर, वनस्पति शास्त्र और जन्तु शास्त्र पर, तो आज एक भी ऐसा कोष नहीं जिसकी सहायता से इंटरमीडियेट के योग्य पाठ्य पुस्तकें हिन्दी में लिखी जा सकें । इन दो विषयों के ऐसे दो लेखकों से मेरा परिचय है जिन्होंने महीनों तक परिश्रम करने के पश्चात् पुस्तक लिखने का विचार केवल इसीलिये छोड़ दिया कि आवश्यक शब्दों का हिन्दी रूपान्तर उनसे न बन सका । हिन्दी रूपान्तर बनाने वाले व्यक्ति को अपने विषय के अतिरिक्त संस्कृत और हिन्दी का भी अच्छा ज्ञान चाहिये । परन्तु खेद है कि ऐसे विद्वानों का अभाव है जिनमें वनस्पति शास्त्र, जन्तुशास्त्र, संस्कृत और हिन्दी सभी का पर्याप्त ज्ञान हो । विज्ञान विषय के विस्तार पर विचार करने से जान पड़ता है कि भविष्य में भी ऐसे व्यक्तियों के मिलने की आशा कम है । केवल यही सम्भव जान पड़ता है कि कोई संस्था इस कार्य को अपने हाथ में ले और वैज्ञानिकों तथा भाषाविशेषज्ञों का सहयोग लेकर इस काम को कर डाले ।

डा० गोरख प्रसाद
विज्ञान, अगस्त १९४३

अनमोल स्मृतियाँ

कृपा शंकर जायसवाल

श्रद्धेय बाबूजी, डाक्टर गोरख प्रसाद जी, से मेरा प्रथम साक्षात्कार जनवरी सन् १९४६ में हुआ था। उस समय आप नागपुर यूनिवर्सिटी की सिनेट बैठक के सिलसिले में पधारे थे। वे हमारे पड़ोसी डाक्टर शब्दे के यहाँ ठहरे थे। जिस समय आप हमारे घर मिलने आये नेवी ब्लू कोट, पतलून पहने और काली टाई बाँधे थे। देख कर ही मन में श्रद्धा होती थी। गरमी में सफेद कोट पतलून और काली टाई, ठण्ड में नेवी ब्लू कोट, पतलून और काली टाई—उनका सदा पहनने और बाँधने का नियम था जिसका कभी व्यतिक्रम न हुआ।

जिस समय आप मिलने के लिये घर पर पधारे थे मुझे यह न मालूम था कि यही मेरे भावी ससुर हैं और आगे चल कर आपके द्वारा मुझे पिता से बढ़ कर स्नेह और आदर मिलेगा। आप सीधे बहुत थे व सदा अपने पठन-पाठन में लीन रहते थे जिसका एक उदाहरण यह भी है कि जब वे अन्य बारातियों को दहेज का सामान दिखला रहे थे तब स्वयं भी आश्चर्य चकित से एक-एक सामान देख कर कहने लगे, "यह सब सामान तो मैंने कभी ध्यान से देखा भी न था।" और सचमुच यदि वह इतने ध्यान से दूसरी चीजों की चिन्ता करते तो साहित्य को जो आप के द्वारा अमर देन प्राप्त हुई है कभी न प्राप्त होती।

पूज्य बाबू जी वचन के कितने पक्के थे यह इस प्रकार जाहिर है कि विवाह के अवसर पर आपने मुझसे कहा "बाबू कृपा शंकर जी, आपका कैमरा मेरे ऊपर उधार है। यह उधारी शीघ्र पटाने की कोशिश करूँगा।"

हम लोग तो इस बात को भूल गये पर बाबूजी नहीं भूले थे और विवाह के करीब ६-७ वर्ष बाद जब मुझे ४५०) का इंश्योर्ड पार्सल मिला तब मुझे एकाएक स्मरण हुआ कि बाबू जी ने कैमरा देने को कहा था। व इतने दिन बीत जाने पर भी वे अपना वायदा नहीं भूले हैं और कैमरा पार्सल द्वारा भेजा है।

वह विनोद प्रिय भी थे। पत्नी को लेने जब मैं इलाहाबाद गया तो ८ बजे के करीब भोजन कर चुका था। उस दिन कार्तिक पूर्णिमा थी। अभ्यास के अनुसार आप ९½ बजे खाने आये, मुझसे भी कहने लगे, "आइये हमारा साथ दीजिये।"

"आज कार्तिक पूर्णिमा होने की वजह से मैं बार-बार न खाऊँगा, ८ बजे के करीब मैं तो खा चुका हूँ" मैंने कह दिया। मुँह पर तो हँसी थी पर आँखों से गुस्सा दिखलाने का प्रयत्न करते हुए आप कहने लगे—"हैं? आप क्या कहते हैं? आप पर मानहानि का दावा किया जायगा।"

मैं पशोपेश में पड़ गया पर फिर भी अपनी बात पर जोर देते हुए बोला—" मैं सच कह रहा हूँ। आज कार्तिक की पूर्णिमा है। दिन भर के व्रत के बाद ८ बजे के करीब भोजन कर लिया है। इस वजह से बार-बार नहीं खाऊँगा।" मन ही मन मुझे आश्चर्य भी था कि इतनी सीधी सी बात इनकी समझ में क्यों नहीं आती है।

आप फिर बोले—"देखिये मिस्टर! आप मानते नहीं हैं। बार-बार वही बात दुहराते जाते हैं। कार्तिक तो मेरे छोटे भाई का नाम है। आप ने तो मेरी पत्नी को उनकी बना दिया। जनाब आपकी सास कार्तिक की पूर्णिमा नहीं हैं, गोरख प्रसाद की पूर्णिमा हैं। इसीसे मैं कह रहा था कि आप पर मानहानि का दावा किया जायगा।" और ठहाका मार कर हँसने लगे।

मैं आपकी विनोदशीलता पर दंग रह गया, जरा-सी बात पर कितना गहरा मजाक था। और तभी मुझे पहली बार पता चला कि माँ जी का नाम पूर्णिमा देवी है।

यही नहीं, सम्बल और धीरज देना भी खूब जानते थे। भूपाल स्टेट में जब सन १९५४ में मैं सहायक शाला निरीक्षक के पद पर नियुक्त होकर आया तो मेरी पोस्टिंग बेरसिया में हुई। उस समय वहाँ पर बिजली भी नहीं थी। (द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत अभी बाद में लगी है)। कच्चा मकान था। पत्र जो मैंने आप के पास भेजा था उसमें शायद नया काम सँभालने की घबराहट का भी आभास था। उस समय आपने सांत्वना भरा पत्र जो भेजा था उसके एक-एक शब्द आज भी जैसे हृदय में गड़े हुए हैं, मुझे धीरज और सम्बल देते रहते हैं।

आपने लिखा था—

"नई नौकरी से घबराइये नहीं। रायबहादुर डाक्टर हीरालाल जी भी एक समय इसी पद पर नियुक्त हुए थे व लगन और मेहनत से उन्नति करते गये। उनका ज्वलन्त उदाहरण आपके सामने है। परेशानियों का हिम्मत से सामना कीजिये व फुरसत के समय गीता पढ़ा कीजिए, आपको हिम्मत रहेगी।"

रायबहादुर डाक्टर हीरालाल जी भी आपके निकट सम्बन्धी थे। आपकी बड़ी लड़की गिरजा देवी का विवाह रायबहादुर साहब के तीसरे भतीजे श्री वीरभानु राय से हुआ है।

कौन जानता था कि वे इतने जल्दी हम लोगों से विदा ले लेंगे। सन् '६० की २७ मई को जब मैंने अपने पूज्य पिता को खोया था मन में आशा थी कि अभी एक पिता का सहारा है। पर क्या पता था कि १९६१ की ५ मई मेरा यह सहारा भी छिन जायगा।

मेरे विवाह के अवसर पर जब आप पिता जी व उनके साथ अन्य बारातियों को त्रिवेणी स्नान कराने ले गये, मेरे एक मित्र यमुना की धारा में डूबने लगे। उसी समय आपने उसे बचाया और मुझसे पूछा—"आप तैरना जानते हैं?" मेरे नहीं कहने पर बोले "बहुत आसान है। मैं आपको ५-६ दिन में ही सिखला दूँगा। किसी भी साल की गरमी की छुट्टियाँ आप यहीं पर बिताइयेगा।"

उसके बाद उनका स्नेह भरा निमंत्रण मुझे सदा प्राप्त होता रहा पर मैं उनके अनुरोध की रक्षा करने कभी भी गरमी की छुट्टियों में न जा पाया। इसका मुझे सदा दुख रहेगा। कभी विश्वास न था कि वे इतने अचानक बिछुड़ जाएँगे। तैरना वह कितना अच्छा जानते थे! तैरने पर एक पुस्तक भी लिखी थी, हर साल न जाने कितने लोग उनसे तैरना सीखते थे। न जाने कितने डूबते हुए लोगों की वह प्राण रक्षा करते थे पर कौन जानता था कि एक दिन उनकी यही कला उनके प्राणों की ग्राहक बन जायगी। अपने नौकर की प्राण रक्षा के प्रयत्न में उसे डूबने से बचा लेने के प्रयास में उनके प्राणों का बलिदान हो जायगा।

———

डाक्टर गोरख प्रसाद—जीवन वृत्त और विचार, उन्हीं के शब्दों में

संकलनकर्ता—जटाशंकर द्विवेदी

शिक्षा

जब मैं इंटरमीडियेट में पहुँचा—मैं उस समय गोरखपुर के सेंट ऐंड्रयूज कालेज का छात्र था—तो मैंने एक दिन अपने गणित अध्यापक की मेज पर डाक्टर साहेब (डा० गणेश प्रसाद) की बनाई "डिफरेंशियल कैलकुलस" नाम की पुस्तक पड़ी देखी। उस समय मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि एक हिन्दुस्तानी भी इतना बड़ा पंडित हो सकता है कि इतने कठिन विषय पर पुस्तक लिख सके—मैंने उस समय तक उच्च गणित पर अन्य कोई हिन्दुस्तानी की लिखी पुस्तकें नहीं देखी थीं। इंटरमीडियेट की हमारी सब पाठ्यपुस्तकें अंग्रेजों की लिखी थीं।

मैंने बी० एस-सी० सेंट्रल हिन्दू कालेज, बनारस से पास किया। वहीं एम० एस-सी० के लिये गणित पढ़ा। फाइनल परीक्षा मार्च १९१८ में होने वाली थी। इसी बीच में खबर मिली कि हिन्दू विश्वविद्यालय की स्वीकृति सरकार से आ गई। परीक्षायें हम लोगों को इलाहाबाद यूनीवर्सिटी में देने के बदले काशी विश्व-विद्यालय में देनी होगी। यह भी पता चला कि समयाभाव के कारण परीक्षायें मार्च के बदले जुलाई में होंगी। खैर, यह तो अपने हाथ में नहीं था कि परीक्षायें इलाहाबाद ही में दें इसलिये जुलाई तक उन सब बातों को स्मरण रखने का लगातार परिश्रम करना पड़ा जिससे मार्च में परीक्षा देने के बाद छुट्टी मिल जाती। इस बीच में मेरा नामिनेशन डिप्टी कलेक्टरी के लिये हो गया। जुलाई में, परीक्षा तिथि से चार दिन पूर्व, मैं नैनी-ताल में इंटरव्यू के लिये बुलाया गया। इसी बीच में मैंने फिनैंस डिपार्टमेंट की कम्पीटीशन परीक्षा में शरीक होने की स्वीकृति भी प्राप्त कर ली। चूँकि मैं बी० एस-सी० में सर्वप्रथम हुआ था, इसलिए मेरे अध्यापकों को बहुत आशा थी कि मैं फिनैंस डिपार्टमेंट में चुन लिया जाऊँगा। परन्तु जुलाई के पहले ही डाक्टर साहेब की नियुक्ति सेंट्रल हिन्दू कालेज के प्रिन्सिपल और काशी-विश्वविद्यालय के गणिताचार्य के पदों पर हो गई। कालेज खुलते ही उन्होंने मुझे बुला भेजा और मुझसे बहुत देर तक बातें कीं।

यही डाक्टर साहेब से मेरी पहली भेंट थी।

डा० गणेश प्रसाद का प्रभाव

डाक्टर साहेब ने मुझे समझाया कि डिप्टी कलेक्टरी में क्या रक्खा है। रोज कलेक्टर की डाट सुननी पड़ती है। अपने अन्तःकरण के विरुद्ध अक्सर काम करना पड़ता है। फिर, डिप्टी कलेक्टरों के पास कुछ धन नहीं बचता। यह भी कहा कि "मैंने पचास हजार रुपया बैंक में जमा कर लिया है, यद्यपि थोड़े ही दिनों से मुझे अच्छा वेतन मिल रहा है। भला किसी डिप्टी कलेक्टर के पास इतना धन जमा हो सकता है। और फिनेन्स डिपार्टमेंट में ही क्या रक्खा है? अकाउंटेंट जनरल और क्लार्क में अन्तर ही क्या है ? अकाउंटेंट जनरल भी क्लार्क ही है, केवल वेतन भर अच्छा है। **प्रोफेसरी से बढ़कर कोई उद्यम नहीं**। गणित में खोज करने से जो ख्याति मिलेगी वह न तो डिप्टी कलेक्टरी में और न फिनैंस डिपार्टमेंट में मिल सकती है। यदि तुम गणित को ही अपना जीवन समर्पित करो तो तुम्हें कभी पछताना न पड़ेगा। ७५) मासिक की छात्रवृत्ति

भी दिला देंगे; परन्तु यह प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी, "तुम डिप्टी कलेक्टरी के लिये इंटरव्यू में न जाओगे और न फिनैंस की परीक्षाओं में बैठोगे।"

मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। जिस महान पुरुष के बारे में मैंने इतनी बातें सुनी थीं उन्हीं की मातहती में मैं गणित का अध्ययन कर सकूँगा, उसमें नयी बातें निकाल सकूँगा, पीछे गणित का आचार्य बन सकूँगा, इससे बढ़कर क्या चाहिये था। मैंने तुरन्त प्रतिज्ञा की। घर वालों से कह दिया कि डिप्टी कलेक्टरी के लिये परीक्षा से चार दिन पहले इंटरव्यू में जाना पड़ेगा। बीच में घुड़सवारी की सर्टीफिकेट भी लेनी पड़ेगी। समय कम है। घुड़सवारी के पीछे पड़े तो हो सकता है इधर हाथ-पैर भी टूटे, उधर डिप्टी कलेक्टरी भी न मिले और ऊपर से परीक्षा भी बिगड़ जाय। फिर, डिप्टी क्लेक्टरी मुझे विशेष अच्छी भी नहीं जँचती। इस प्रकार से तो डिप्टी कलेक्टरी से जान छुड़ाई। फिनैंस के लिये मैंने कह दिया कि उसका क्या ठिकाना? भारतवर्ष के अच्छे से अच्छे लड़के उसमें परीक्षा देते हैं। केवल तीन-चार लिये जाते हैं। क्या पता उसमें आ सकेंगे या नहीं? इधर गणित की असिस्टेंट प्रोफेसरी का मिल जाना एक प्रकार से निश्चय है। पिता जी मेरी इच्छा देख कर राजी हो गये। फिर क्या वाधा थी? मैं बी० एस-सी० की परीक्षा देने के बाद से ही डाक्टर साहेब का शिष्य हो गया और आज निश्चय रूप से कह सकता हूँ कि डाक्टर साहब की बात मानने के कारण कभी मुझे पछताना नहीं पड़ा।

१९१८ की जुलाई से लेकर अन्तिम तिथि तक डाक्टर साहब और मेरे बीच गुरु और शिष्य का सम्बन्ध बना रहा। जैसे-जैसे मेरा उनसे सम्बन्ध घनिष्ट होता गया, तैसे-तैसे उनके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ती गई। मैंने उनके बराबर परिश्रम करने वाला --उनका आधा भी परिश्रम करने वाला--नहीं देखा।

जब मैं १९२८ में सहायक प्रोफेसर के पद पर काशी विश्वविद्यालय में नियुक्त हुआ तब डाक्टर साहेब ने मुझे सलाह दी कि जब तक कि चारपाई छोड़ना असम्भव न हो जाय तब तक पढ़ाने में नागा न करना चाहिए।

"डाक्टर साहब को जैसा मैंने देखा"
(डाक्टर गणेश प्रसाद के जीवन संस्मरण, विज्ञान, सितम्बर १९३५)

विज्ञान-परिषद् से सम्पर्क

मैं उन दिनों हिन्दू विश्वविद्यालय में नया-नया असिस्टेंट प्रोफेसर हुआ था। गौड़ जी भी वहीं रसायन के प्रोफेसर थे परन्तु ओरियंटल (प्राच्य) विभाग में। मैं डाक्टर गणेश प्रसाद साहब के निजी कमरे में बैठा उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। गौड़ जी भी वहाँ उन्हीं की तलाश में आये परन्तु डाक्टर साहब के न मिलने के कारण वे भी वहीं बैठ गये। बात चीत शुरू हुई। उन्होंने मुझसे कहा कि हिन्दी में क्यों नहीं कुछ लिखा करते। मैंने शायद यह कहा कि हिन्दी में लिखने योग्य कोई उपयुक्त विषय मुझे नहीं सूझता और हिन्दी में लिखने की योग्यता मुझमें नहीं है। वहीं "सायंशिया" नामक एक पत्रिका पड़ी थी, जिसमें विज्ञान विषयक कई एक मनोरंजक लेख थे। उनमें से एक लेख चुनकर उन्होंने कहा कि आप इसी का अनुवाद हिन्दी में करने की चेष्टा कीजिये। जो शब्द या वाक्य आप हिन्दी में न कर सकें, उन्हें ज्यों का त्यों रहने दें। मैं हिन्दी कर दूँगा। मुझे स्मरण नहीं है कि मैंने उस लेख का कोई भाग अनुवाद किया या नहीं परन्तु इतना निश्चय है कि उसके कुछ ही

विनोदी

डा० गोरख प्रसाद—नैनीताल में पिकनिक के समय (१९५४)
पकौड़ी के लिए बेसन फेंटते हुए

अवकाश के समय

चाय की चुस्की में मस्त डा० गोरख प्रसाद जी
कश्मीर, पहलगाम में (सन् १९३९)

दिनों बाद इलाहाबाद से श्रीयुत सालिग्राम जी भार्गव और गोपाल स्वरूप जी भार्गव बनारस पहुँचे। उनके जाने का कारण एक विचित्र झगड़ा था। उन दिनों स्वर्गीय पं० सुधाकर द्विवेदी की लिखी पुस्तक "समकीरण मीमांसा" विज्ञान-परिषद् की ओर से छप रही थी। इसके छपने के लिये प्रान्तीय सरकार ने १२००) की सहायता दी थी और शायद काशी-गणित-परिषद् (बनारस मैथेमेटिकल सोसायटी) को उक्त पुस्तक का सम्पादन सुपुर्द किया था। मैथेमेटिकल सोसाइटी ने मुझे और सुधाकर जी के सुपुत्र पं० पद्माकर द्विवेदी को उक्त पुस्तक का सम्पादक नियुक्त किया। विज्ञान परिषद् ने यह नियम बना रक्खा था कि विभक्तियाँ शब्दों के साथ ही छपें। शब्दों और विभक्तियों के बीच कोई स्थान न छोड़ा जाय। परन्तु पं० पद्माकर द्विवेदी इसके बहुत विरोधी थे। मैं इस विषय पर उदासीन था। परन्तु पद्माकर जी और परिषद् दोनों अपने-अपने मत पर इस दृढ़ता से डटे थे कि पत्र व्यवहार से इसका तय होना असम्भव था। इसी प्रश्न को हल करने के लिये श्री सालिग्राम जी भार्गव और गोपाल स्वरूप जी भार्गव काशी पहुँचे। अन्त में विभक्तियों को पृथक रखने की बात बहाल रही। परन्तु इस सिलसिले में इस अवसर पर गौड़ जी और दोनों भार्गव महाशयों ने मुझसे हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर लेख लिखने का विशेष अनुरोध किया। इन्हें वे "विज्ञान" के लिये चाहते थे। उन दिनों सालिग्राम जी विज्ञान परिषद् के मंत्री और गोपाल स्वरूप जी "विज्ञान" के सम्पादक थे। मैं लेख लिखने में तब भी हिचकिचा रहा था क्योंकि मैं समझता था कि मैं हिन्दी में कुछ लिख न पाऊँगा। परन्तु मुझे गौड़ जी और गोपाल स्वरूप जी दोनों ने आश्वासन दिया कि यदि मुझे कहीं थोड़ी-सी भी कठिनाई पड़े तो मैं उन स्थानों में अंग्रेजी शब्द या वाक्य लिख सकता हूँ, और वे उन्हें ठीक कर लेंगे। इस प्रकार गौड़ जी और सालिग्राम जी के प्रोत्साहन से ही मैं हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर लिखने लगा। **मेरा पहला लेख फोटोग्राफी सम्बंधी था और वह 'विज्ञान' में छपा।**

तुकबन्दियों का लेखक

मैं अध्ययन के लिये विलायत जाने वाला था और मुझे रुपये की सख्त जरूरत थी। मेरे कुछ लेख और कुछ तुकबन्दियाँ जो उस समय अप्रकाशित पड़ी थीं लेकर मैं गौड़ जी के पास पहुँचा और मैंने उनसे कहा कि मुझे पैसे की आवश्यकता है; यदि आप कहीं से कुछ पैसे दिलवा सकें तो बड़ी कृपा हो। गौड़ जी ने मुझे प्रोत्साहित करते हुए लेखों की बड़ी प्रशंसा की। एक सिफारिशी चिट्ठी के साथ एक लेख "माधुरी" में छपने भेज दिया जिसके मुझे पैसे मिले और तुकबन्दियों को बेचने के लिये कुछ पते बतलाये। अंत में ये नकद दाम पर **हिन्दी पुस्तक एजेंसी** के हाथ बिकीं और कुछ समय बाद प्रकाशित हुईं।

इस प्रकार जब भी मुझे हिन्दी सम्बन्धी कोई काम पड़ा, मुझे गौड़ जी से बराबर सहायता और प्रोत्साहन मिलता रहा। उनकी और सालिग्राम जी की उदारता के बिना शायद ही मैं हिन्दी का लेखक बन पाता।

विज्ञान परिषद् में प्रवेश

मैं विलायत चला गया। लौटने पर इलाहाबाद चला आया और इस प्रकार गौड़ जी से विशेष सम्पर्क न रहा परन्तु जब "विज्ञान" की हालत कुछ खराब हो चली तो "विज्ञान" का सम्पादन फिर गौड़ जी के सुपुर्द किया गया। तब गौड़ जी ने अपने पुराने मित्र डा० गणेश प्रसाद साहब को विज्ञान-परिषद् का सभापतित्व

स्वीकार करने के लिए बाध्य किया और उन्हीं के विशेष अनुरोध से मैं विज्ञान परिषद् का सभ्य और अन्त में मंत्री बना। तब से मेरा और गौड़ जी का सम्बन्ध घनिष्ट हो चला।

"मेरी कुछ संस्मृतियाँ", विज्ञान, १९३७

पुस्तक प्रकाशन

फल संरक्षण का महत्त्व दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। करोड़ों रुपयों का व्यवसाय इसी पर निर्भर है। थोड़ी सी पूँजी से भी यह रोजगार लाभ सहित आरम्भ किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक गृहस्थ फल संरक्षण के ज्ञान से अपना पैसा बचा सकता है और रुचिकर तथा पौष्टिक भोज्य पदार्थ सदा अपने पास तैयार रख सकता है। परन्तु अभी तक हिन्दी में कोई भी पुस्तक इस विषय पर नहीं थी। आशा है यह पुस्तिका उस कमी को पूरा करेगी और व्यवसायी तथा ग्रहस्त दोनों को प्रिय होगी।

"फल संरक्षण" की भूमिका से (१९३७ ई०)

मुझे बचपन से ही अपने हाथों चीजें बनाने और काम करने का शौक था। पिता जी के प्रोत्साहन और अनुग्रह से बहुत-सा कार्य करने में मैं सफल हुआ। पहले तो पुस्तकों के सच होने का मुझे अंधविश्वास-सा था, परन्तु कटु अनुभव से मैंने सीखा कि पुस्तकों में बहुत सी अंट-संट बातें भी रहती हैं।

वर्षों से मेरा दृढ विश्वास रहा है कि हिन्दी में एक ऐसी पुस्तक की विशेष आवश्यकता है जिसमें हर तरह की उपयोगी वस्तुओं के बनाने की रीतियाँ और नुसखे रहें। अंग्रेजी में ऐसी कई-एक पुस्तकें हैं, परन्तु उनमें दो अवगुण हैं। एक तो उनका दाम बहुत होता है (एक का मूल्य २७ रुपया है)। दूसरी त्रुटि यह होती है कि उसमें बहुत-सी ऐसी वस्तुओं का प्रयोग होता है जो भारतीय बाजारों में नहीं मिलतीं। उनमें प्रयुक्त वस्तुओं में से कई एक यहाँ बहुत मँहगी बिकती हैं क्योंकि वे विदेश से आती हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में सम्पादकों ने इस प्रकार की और अन्य कई एक त्रुटियों से बचने की चेष्टा की है। बहुत नुसखे अनुभव-सिद्ध हैं। परन्तु कुछ अध्याय ऐसे भी हैं जिनके नुसखों का सम्पादकों को कुछ अनुभव नहीं है। परन्तु अनुभव सिद्ध न होते हुये भी अधिकांश नुसखे, ऐसा सम्पादकों का सच्चा विश्वास है—ठीक उतरेंगे।

यों तो हजारों चीजें ऐसी हैं जिन्हें गृहस्थ या छोटा व्यवसायी स्वयं बना सकता है और जो यदि पूर्णतया नहीं तो काफी सन्तोषजनक होंगी। उदाहरणतः एक बोतल स्याही अपने काम के लिये बना लेना सरल है। यह बाजार से सस्ती होगी और काफी अच्छी होगी। इसी तरह घर में मंजन में निरंतर उपयोग से गत दस वर्षों से मैंने कम से कम सौ रुपया बचाया है। जहाँ पहले आठ आने का एक ट्यूब डेंटल पेस्ट आता था और केवल दस दिन चलता था वहाँ अब आठ आने में घर पर बने मंजन से महीना भर काम चलता है।

इन्हीं कारणों से प्रस्तुत ग्रन्थ की तैयारी में विशेष रूप से गृहस्थों पर ध्यान रक्खा गया है। यह पुस्तक उनके बड़े काम की होगी। परन्तु छोटे उद्योग-धन्धों वालों को भी इससे बहुत लाभ हो सकता है। यदि उनमें सफल व्यापारी के अन्य गुण हैं तो वे अवश्य ही यहाँ दिये गये नुसखों से हजारों रुपये कमा सकते हैं।

"उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर" के प्राक्कथन से
सम्पादक डा० गोरख प्रसाद और डा० सत्य प्रकाश

आज पचीस-छब्बीस वर्षों से विज्ञान-परिषद् वैज्ञानिक पुस्तकें छाप कर और 'विज्ञान' नामक मासिक पत्रिका निकाल कर हिन्दी की सेवा कर रही है। इधर कई वर्षों से औद्योगिक विषयों पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। फल-संरक्षण, व्यंग चित्रण, मिट्टी के बर्तन, लकड़ी पर पालिश, उपयोगी नुसखे आदि पर पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं। हमारी विशेष कठिनाई यही है कि ऐसे लेखक जो विषय को स्वयं अच्छी तरह जानते हों और जिन्होंने काम को स्वयं अपने हाथों किया हो, और साथ ही जो सरल तथा शुद्ध हिन्दी में अपना ज्ञान दूसरों को प्रदान कर सकें, बड़ी कठिनाई से मिलते हैं। इसलिये हमें बड़ा आनन्द हुआ जब श्री शंकर राव जोशी ने अपनी प्रस्तुत रचना हमारे पास छपने को भेजी। प्रयाग विश्वविद्यालय के विशेषज्ञों को दिखलाने पर उन्होंने इस पुस्तक की मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

"कलम पेबंद" के प्राक्कथन से, १९४० ई०

यहाँ के व्यवसायी पॉलिश करने वाले अपने उस्ताद से जो कुछ सीख पाते हैं वह केवल चालू काम के लिये काफी होता है। उनको पॉलिश सम्बन्धी उन नवीन बातों का ज्ञान नहीं होता जिनका पता आधुनिक खोज से लगा है। इस पुस्तक से उन्हें बहुत-सी बातें मालूम होंगी।

शिल्प के शौकीनों को भी इस पुस्तक से बहुत सहायता मिलेगी। मुझे शिल्प का शौक बचपन से है इसलिये मैंने स्वयं कई बार लकड़ी पर पालिश और वार्निश की है। इसीसे व्यवसायी न होने पर भी मैं अनुमान कर सकता हूँ कि पुस्तक में भारी अशुद्धियाँ बहुत कम होंगी।

यह पुस्तक इतनी बार दोहराई गई है और प्रथम बार की पाण्डुलिपि में इतना काट-छाँट हुआ है कि अब यह कहना कठिन है कि कौन-सा अंश किसका लिखा है। इसलिए सब त्रुटियाँ अब मेरी ही गिनी जानी चाहिये।

"लकड़ी पर पालिश" की भूमिका से (१९४० ई०)
लेखक डा० गोरख प्रसाद और रामरत्न भटनागर

इस पुस्तक का उद्देश्य है प्रत्येक व्यक्ति को स्वस्थ रहने में सहायता देना। रोग क्यों होता है, उससे कैसे बचे रहें, विशेष रोगों में क्या-क्या उपचार हो, इत्यादि, यह सब बतलाया गया है, परन्तु यह चेष्टा नहीं की गई है कि ऐसी पुस्तक लिखी जाय जिसे पढ़कर कोई स्वयम् डाक्टर हो जाय। पुस्तक पढ़कर कोई डाक्टर नहीं हो सकता। यही कारण है कि अधिकांश रोगों के लिये औषधियों के नुसखे नहीं दिये गये हैं, केवल सरल रोगी की चिकित्सा बतलाई गई है।

१९३९-४० के जाड़े में मैं आमवात (रुमैटिज्म) से पीड़ित चारपाई पर पड़ा था। डाक्टर की दवा हो रही थी; परन्तु एक अंग्रेजी पुस्तक में इस रोग के कारण और उपचार के पढ़ने पर सान्त्वना मिली। ठीक-ठीक पता चला कि क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिये। किस भूल से रोग उभड़ता है और एक बार अच्छे हो जाने पर किस प्रकार रहना चाहिए कि रोग का फिर से आक्रमण न हो। तभी से ध्यान में आया कि हिन्दी में भी कोई ऐसी पुस्तक हो तो बहुत अच्छा हो। अंग्रेजी पुस्तकें विदेशों के वातावरण के

अनुकूल होती हैं । वहाँ की रहन-सहन, जलवायु, खान-पान आदि में और यहाँ की दशा में आकाश-पाताल का अन्तर है । वहाँ की लिखी पुस्तकें साधारणतः यहाँ के लिये विशेष उपयोगी नहीं हो सकती । इसलिये मैंने यह निश्चय किया कि एक ऐसी पुस्तक डाक्टरों की सहायता से लिखी जाय जिसमें भारतीय परिस्थितियों पर ध्यान रक्खा जाय ।

पुस्तक का मूल्य कम रखने के लिए इसे पहले "विज्ञान" में छापा गया है और साथ ही साथ इस पुस्तक के लिये प्रतियाँ भी छपती गईं । फिर, लेखों और सम्पादकों ने भी सभी अवैतनिक रूप से ही काम किया है । कोई प्रूफ रीडर भी नहीं रक्खा गया है । अन्तिम प्रूफ मैं ही पढ़ दिया करता था ।

हिन्दी संसार को विज्ञान परिषद् का गुण मानना चाहिये कि उसने ऐसे उपयोगी ग्रन्थ का निर्माण कराया और इतने सस्ते मूल्य में उसे उनके लिये सुलभ कर दिया ।

"घरेलू डाक्टर" की भूमिका से, (अगस्त १९४०)

यह पुस्तक कई व्यक्तियों के सहयोग का फल है । मधुमक्खी कुटुम्ब में जिस प्रकार बाहर काम करने वाले सदस्य पुष्परस संचय कर घर पर लाते हैं और तब घर पर रहने वाले सदस्य उसे गाढ़ा कर, और उसमें अपनी ओर से भी कुछ मिला, उस रस को मधु में परिवर्तित कर डालते हैं, उसी प्रकार पंडित दयाराम जुगड़ान की अति परिश्रम से लिखी अनेक पुस्तकों और अपने निजी अनुभवों से प्राप्त ज्ञान पर आश्रित, पाण्डुलिपि विज्ञान-परिषद् में आने पर वर्तमान स्वरूप में परिणत हो गई । सम्पादक के नाते मैंने उसमें आवश्यक तथा अनावश्यक सभी प्रकार की काटछाँट की और कई स्थानों पर सामग्री बढ़ा दी ।

इस प्रकार यह पुस्तक कई व्यक्तियों का सहयोग पाकर पाठकों के सामने वर्तमान रूप में आ रही है । कई व्यक्तियों की निःसंकोच दी गई सम्मतियों के आधार पर मेरा विश्वास है कि इस पुस्तक से उन सबको विशेष लाभ होगा जो मधुमक्खी पाल रहे हैं, परन्तु इस विषय के साहित्य का अध्ययन नहीं कर रहे हैं । उनको भी बड़ी सहायता मिलेगी जो पालन कार्य आरम्भ करना चाहते हैं । यह पुस्तक वैज्ञानिक प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों के काम की भी होगी ।

"मधुमक्खी पालन" की भूमिका से (१९४२ ई०), लेखक—दयाराम जुगड़ान

मैंने स्वयं सोलह वर्ष की आयु में तैरना सीखा । फिर, मैंने आठ-दस व्यक्तियों को तैरना सिखलाया भी है। इसलिये मैं नौसिखियों की कठिनाइयों को अच्छी तरह जानता हूँ । आशा करता हूँ कि इस पुस्तिका से नौसिखियों को वास्तविक सहायता मिलेगी । अच्छे तैराक भी इससे कुछ नवीन बात सीख सकेंगे, क्योंकि इस विषय की कई अंग्रेजी पुस्तकों को मैंने पढ़ डाला है और उल्लेखनीय बातों का समावेश इसमें मैंने कर दिया है ।

"तैरना" की भूमिका से (१९४४ ई०) लेखक—डा० गोरख प्रसाद

सरल विज्ञान सागर को विशेष रोचक ढंग से लिखने की चेष्टा की गई है, परन्तु यह प्रयत्न नहीं किया गया है कि सम्पूर्ण विज्ञान का सार इस पुस्तक में किसी प्रकार ठूँस दिया जाय । यदि ऐसा किया गया होता तो बच्चों का मन ऊब जाता, और इसलिये उनकी ज्ञान वृद्धि में पुस्तक बहुत सहायक न हो पाती ।

सम्पादक की नीति सदा से यही रही है कि जो काम किया जाय वह सर्वोत्तम हो जिससे भूमिकाओं में पाठकों से किसी त्रुटि के लिये क्षमा न माँगनी पड़े।............परिषद् का सदा यही उद्देश्य रहा है कि जनता को वैज्ञानिक पुस्तकें बहुत सस्ते में मिलें।

"सरल विज्ञान सागर" की भूमिका से (१९४६ई०) सम्पादक—डा० गोरख प्रसाद

यद्यपि अभी भारतवर्ष में ब्रिटेन सदृश्य बच्चों के लिये "हँसोड" पत्र नहीं निकलते, जिनमें तीन चौथाई से अधिक स्थान सादे और रंगीन हँसोड अथवा अतिपरिहासमय चित्रों से भरा रहता है और न अभी "पंच" सदृश व्यंग और परिहास चित्रमय प्रौढ़ों के लिये साप्ताहिक ही निकलता है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ये सब बातें यहाँ शीघ्र ही आने वाली हैं। अब भारतीय समाचार पत्रों में व्यंग चित्रमालायें तो निकलने लगी हैं जिसमें चार-पाँच या अधिक क्रमानुसार व्यंग चित्रों से एक छोटी-सी कहानी ही कह डाली जाती है, परन्तु इसका भी प्रचार अभी बहुत फैलेगा, इसमें संदेह नहीं। इन सबके अतिरिक्त क्रमानुसार हजारों व्यंग अथवा परिहास-चित्र खींचकर इनको सिनेमा मशीन द्वारा दिखलाकर "मिकी माउस" की तरह चलते फिरते (और बोलते) व्यंग चित्र दिखलाने का क्षेत्र सारा खाली पड़ा है।

निस्संदेह इन सबमें खूब धन कमाने का अच्छा अवसर है। इस कारण भी **'व्यंग चित्रण'** बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है।

जब मैंने **डाउस्ट** की पुस्तकें पढ़ीं तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि इन पुस्तकों की सहायता से कोई भी घर बैठे आकृति लेखन, परिहास चित्रण और व्यंग चित्रण सीख सकता है। ये पुस्तकें भारतवासियों के लिये मुझे विशेष महत्त्व की जँची, क्योंकि यहाँ कला-पाठशालाएँ संख्या में नहीं के बराबर हैं और इने-गिने ही लोग इनसे लाभ उठा सकते हैं। इसलिए प्रकाशकों से लिखा-पढ़ी करके मैंने दो पुस्तकों के अनुवाद करने की विशेष स्वीकृति प्राप्त की और उनका सरल और सच्चा अनुवाद पाठकों के सामने उपस्थित किया जाता है।

"व्यंग चित्रण" की भूमिका से (१९४८ ई०)
एल० ए० डाउस्ट की पुस्तक से, श्रीमती रत्नकुमारी द्वारा अनूदित

या तो अंग्रेजी शब्दों को ज्यों-का-त्यों प्रयोग किया जाय, या नये शब्द गढ़े जायँ। उन शब्दों को जिनका प्रयोग फोटोग्राफी-संबंधी बातचीत में बार-बार किया जाता है हमने ज्यों-का-त्यों रख देना ही उचित समझा है। और शब्दों के बदले नया शब्द ही गढ़ लेना उचित जान पड़ता है क्योंकि वे पहले कितने ही बेढ़ब क्यों न जान पड़ें, पीछे प्रिय जान पड़ेंगे। कुछ भी हो, अंग्रेजी न जानने वाले को "इनफिनिटी-कैच', से तो "अनन्त-पकड़" ही अच्छा और सरल जान पड़ेगा। कुछ लोग इन नये गढ़े शब्दों पर अवश्य हँसेंगे, पर उन्हें विचार करना चाहिये कि अंग्रेजी के शब्द भी कुछ कम उपहास योग्य नहीं हैं। नमूने के लिये डार्क स्लाइड ही लीजिये। डार्क हुआ "अंधेरा" और स्लाइड हुआ "खिसकने वाला"। इन शब्दों के अर्थ को जान कर फोटोग्राफी न जानने वाला कौन ऐसा विलक्षण बुद्धिमान है जो अनुमान कर सकेगा कि डार्क स्लाइड किस जानवर का नाम है ? लाल बुझक्कड़ को छोड़कर और दूसरा तो कोई नहीं दिखलाई पड़ता। हमारे एक फोटोग्राफर मित्र, जिनसे इस विषय पर हम बातें कर रहे थे, सहसा बोल उठे "मार ली है बाजी। इसको कहना चाहिये हिन्दी में अन्धेर 'खसकर'"।

"फोटोग्राफी" से लेखक—डा० गोरखप्रसाद

२८वें हिन्दी साहित्य सम्मेलन के विज्ञान परिषद् के सभापति पद से दिया गया डा० गोरख प्रसाद जी का भाषण

वैज्ञानिक क्षेत्र में हिन्दी का महत्व दिनों दिन बढ़ता जा रहा है, और यह उचित ही है। उदाहरणतः संयुक्त प्रान्त के इंटरमीडियेट बोर्ड ने हाई स्कूल की विज्ञान की परीक्षाओं में हिन्दी या उर्दू में उत्तर देना अनिवार्य कर दिया है। एक समय था जब लोगों को सन्देह हुआ करता था कि हिन्दी द्वारा सरल विज्ञान की भी शिक्षा या परीक्षा हो सकेगी, या नहीं, परन्तु अब वह समय आ गया है जब ऐसी शिक्षा और परीक्षा में हिन्दी या उर्दू को ही माध्यम बनाना अनिवार्य हो गया है, यह बड़े संतोष की बात है। इस कठिन कार्य के लिये क्षेत्र तैयार करने का अधिकांश श्रेय उन व्यक्तियों को है जिन्होंने अनेक कठिनाइयाँ झेल कर हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी प्रथम पुस्तकें लिखीं।

मुझे तनिक भी सन्देह नहीं जान पड़ता कि अब शीघ्र ही हिन्दी में हाई स्कूल तक के लिये अनेक वैज्ञानिक पुस्तकें तैयार हो जावेंगी। परन्तु यह साहित्य सम्पूर्ण विज्ञान के साहित्य का कदाचित एक हजारवाँ भाग भी न होगा। उन लोगों के सामने जो विज्ञान-साहित्य-निर्माण में लगे हैं अभी अति वृहद् कार्य ज्यों का त्यों पड़ा है। अनेक विषयों को किसी ने अभी तक छुआ नहीं है, विशेषकर विज्ञान की उच्च शाखाओं को। यह परमावश्यक है कि शीघ्र ही प्रत्येक अंग पर कोई न कोई छोटी-मोटी प्रकाशित पुस्तकें हो जायँ, अवश्य ही प्रथम प्रयास होने के कारण ये पुस्तकें कदाचित् प्रथम श्रेणी की न हो सकेंगी और संभवतः ये अधिक व्योरेवार भी न होंगी। परन्तु एक बार ढाँचा तैयार हो जाने पर आगामी लेखक त्रुटियों को सहज ही दूर कर लेगें और आवश्यक व्यौरा भी भर लेंगे।

परन्तु जिस धीमी चाल से हम इन दिनों वैज्ञानिक साहित्य के निकालने में आगे बढ़ रहे हैं उस गति से चलने पर हमें उपरोक्त उद्देश्य के साधन में सैकड़ों वर्ष लगेंगे।

हमें अधिक तीव्र गति से आगे बढ़ना होगा। परन्तु इसमें कई एक अड़चनें हैं जिनमें से मुख्य है धनाभाव। दुर्भाग्यवश अभी तक कोई भी योग्य व्यक्ति इस कार्य के पीछे तन मन धन से नहीं लग सका है। न कोई आशा ही दिखाई दे रही है कि निकट भविष्य में कोई ऐसा मिलेगा जो इतना धन इकट्ठा कर देगा।

मेरी राय में वह समय आ गया है जब सरकार और दानवीरों को चाहिये कि वे स्वयं वैज्ञानिकों की सहायता करें।

हिन्दुस्तानी एकेडमी को छोड़ अन्य संस्थाओं में इतना धन नहीं है कि वे लेखकों को उचित पारिश्रमिक दे सकें।

मुफ्त में लिख देने वालों की संख्या इतनी परिमित है कि अधिकांश विशेष विषयों पर लेखक नहीं मिलते।

साहित्य सेवा की दृष्ट से मुफ्त लिखने वालों की संख्या अत्यंत परिमित है। परन्तु निश्चय है कि इनकी संख्या दिन पर दिन बढ़ती जायगी। उनकी संख्या शीघ्र नहीं बढ़ती, इसका कारण एक यह है कि नवीन लेखकों के मार्ग में इस समय अनेक कठिनाइयाँ हैं। हमारे सभी वर्तमान वैज्ञानिकों ने अपने विषय का ज्ञान अंग्रेजी माध्यम द्वारा प्राप्त किया है। अन्य जो कुछ साहित्य भी वे पढ़ते हैं उसका अधिकांश अंग्रेजी में रहता है। इसलिए स्वाभाविक है कि वे अंग्रेजी में अधिक सुगमता से अपने भावों को प्रकट कर सकते हैं। ऐसे लोग जब हिन्दी में लिखने बैठते हैं तो उनको उपयुक्त शब्द और मुहावरे सूझते ही नहीं। केवल विज्ञान में ही यह बात नहीं है। विशुद्ध साहित्य के क्षेत्र में भी यही बात लागू है।

साधारण बोल-चाल की भाषा लिखने में किसी ऐसे सुगम उपाय की बराबर आवश्यकता प्रतीत होती है जिससे अंग्रेजी जानने वालों को उचित हिन्दी शब्द तुरन्त मिल जायँ। परन्तु आज तक कोई भी ऐसा अंग्रेजी-हिन्दी-कोष जो लेखकों के लिए वस्तुतः उपयोगी हो, नहीं बन पाया है। अभी तक जितनी भी अंग्रेजी हिन्दी डिक्शनरियाँ मैंने देखी है वे सभी लेखकों के लिये नहीं, उन विद्यार्थियों के लिये बनी हैं जो किसी विशेष अंग्रेजी शब्द का अर्थ जानना चाहते हैं। लेखकों के लिये सबसे उपयोगी कोश अब भी आप्टे की इंगलिश संस्कृत डिक्शनरी है।

अभी हिन्दी वैज्ञानिक भाषा परिमार्जित नहीं हो पाई है। इसे जिस किसी भी धारा में बहा दी जायगी बह जायगी। परन्तु इसी कारण से उनका उत्तरदायित्व जो वैज्ञानिक साहित्य निर्माण में लगे हैं भारी है। तो भी कई लोग प्रचलित पुस्तकों और कोषों की अवहेलना करते हैं। यदि वे कोई उत्तम नवीन शब्द गढ़ सकें तो अवश्य उन्हें नवीन शब्द चलाना चाहिये। प्रत्येक लेखक को उसी विषय की लिखी पूर्व पुस्तकों पर और तत्सम्बन्धी पारिभाषिक कोष पर भी अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

मेरी राय में यदि एक वैज्ञानिक विश्वकोष तैयार किया जाय तो यह बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। ऐसा विश्वकोष यदि प्रसिद्ध इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के वैज्ञानिक अंशों के प्रसार का हो तो हम प्रायःसभी विषयों का प्रारम्भिक साहित्य तैयार कर लेंगे और प्रायः सभी आवश्यक पारिभाषिक शब्द बन जावेंगे। यह कार्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साहित्य विभाग के बूते के बाहर जान पड़ता है परन्तु काशी नागरी प्रचारिणी सभा यदि चेष्टा करे तो इस काम को कर सकती है या यदि सम्मेलन ही सरकार से आवश्यक धन प्राप्त कर सके तो इस कार्य के करने में सफल हो सकता है।

[विज्ञान, नवम्बर १९३९]

सरल वैज्ञानिक साहित्य के प्रणेता—डा० गोरख प्रसाद

बंकटलाल ओझा

"आपका सुझाव तो ठीक है, पर हम विज्ञान परिषद् की ओर से हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर पाठ्य-पुस्तकें इसलिए प्रकाशित करना नहीं चाहते कि कहीं परिषद् लाभ के लोभ में आकर पूर्ण व्यवसायी न बन जाए, जिससे परिषद् अपने सेवा क्षेत्र से एकदम अलग-अलग हो जाए और साथ ही उस पर रिडर बाजों का अधिकार हो जाए, जैसा कि आजकल अन्यत्र संस्थाओं में देखा जाता है। हम तो चाहते हैं कि व्यवसायी प्रकाशकों के लिए मार्ग प्रशस्त किया जाए। पहले परिषद् ने विज्ञान प्रवेशिका भाग १ और २ प्रकाशित की थीं, पर जब माँग बढ़ी और दूसरे प्रकाशक इस क्षेत्र में आए तो परिषद् इस क्षेत्र से हट गई। इसीलिए परिषद् आज स्वार्थियों से बची हुई है, अन्यथा यह भी स्वार्थियों का अखाड़ा बन जाता।"

ये शब्द भाई डा० गोरखप्रसाद के हैं, जो उन दिनों विज्ञान परिषद् के संभवतः प्रधान मंत्री और 'विज्ञान' के प्रधान संपादक थे। उन दिनों परिषद् की आर्थिक अवस्था बड़ी ही शोचनीय थी। किसी प्रकार परिषद् जीवित थी और उसके मासिक पत्र 'विज्ञान' ने २८वें वर्ष में प्रवेश किया था। आचार्य रामदासजी गौड़ के निधन के बाद परिषद् और उसके 'विज्ञान' का संचालन-भार डा० गोरखप्रसाद के कंधों पर आ गया था। १९४२ में प्रयाग में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक थी और मैं भी वहाँ पहुँच गया था। दर्शनार्थ डाक्टर साहब की सेवा में पहुँचा और परिषद् की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये उपर्युक्त सुझाव मैंने रखा था, जिससे परिषद् आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो और प्रकाशन आदि के अतिरिक्त उसका अपना भवन भी बन जाए। यह संतोष की बात है कि परिषद् आज भी अपने ध्येय पर चट्टान की तरह अडिग खड़ी है, तिलमात्र भी नहीं डिगी।

वास्तव में देखा जाय तो विज्ञान परिषद् के वर्तमान विकसित रूप में डा० गोरखप्रसाद जी का बहुत बड़ा योग है। सरल हिन्दी में वैज्ञानिक लेख लिखने में तो गोरखप्रसादजी सिद्धहस्त थे ही, अपने प्रधान संपादन काल में 'विज्ञान' का काया पलट कर दिया। लोकोपयोगी नित्य व्यवहार के विषयों पर विशेषकर घरेलू दस्तकारी, हाथकारीगरी, आदि पर अनेक लेख स्वयं लिखे और अन्य लोगों से भी लिखवाए। उनके प्रधान संपादन काल का 'विज्ञान' इस प्रकार के सचित्र लेखों से भरा पड़ा है जिसके केवल हिन्दी जानने वाले लोगों में 'विज्ञान' की ग्राहक संख्या बढ़ी। वे बड़े चाव से 'विज्ञान' पढ़ने लगे। फल संरक्षण, व्यंग चित्रण, जिल्दसाजी, आदि का प्रकाशन आपका सुरुचि का ही प्रमाण है। घरेलू डाक्टर, उपयोगी नुस्खे, तरकीबें और हुनर, सरल विज्ञान सागर, जैसी पुस्तकों के, खेद है कि, एक-एक भाग ही प्रकाशित हो सके, इनके बाद के भागों का प्रकाशन नहीं हो सका जिसका डा० गोरखप्रसाद जी को सदा खेद बना रहता था। उनकी स्मृति की रक्षा के लिये इससे बढ़ कर और क्या कार्य हो सकता है कि इन अधूरे प्रकाशनों को पूर्ण किया जाए जिससे उनकी आत्मा स्वर्ग से हमें आशीर्वाद दे। उनके अपूर्ण संकल्प को पूर्ण करने का दायित्व अब हम सब पर आ गया है। आशा है परिषद् और गोरखप्रसाद जी के सहयोगी अब इस कार्य में अपना पूर्ण योग देंगे।

बी० एस-सी० की परीक्षा में गोरखप्रसाद जी सर्व प्रथम आए थे और एम० एस-सी० की अंतिम परीक्षा मार्च १९१८ में देने वाले थे। इसी बीच हिन्दू विश्वविद्यालय की स्वीकृति सरकार से मिल गई। इस-

लिए प्रयाग विश्वविद्यालय के बजाय उन्हें हिन्दू विश्वविद्यालय में ही परीक्षा देनी थी, जो मार्च के स्थान पर जुलाई में होने वाली थी। परीक्षा तिथि से चार दिन पूर्व नैनीताल में डिप्टी कलेक्टरी के लिए उम्मेद-वारों को छांटने के लिए बुलाया गया था, जिनमें गोरखप्रसाद भी एक थे। दूसरी ओर अर्थ विभाग की प्रति-योगिता परीक्षा में बैठने की स्वीकृति भी उन्हें मिल चुकी थी। गणित लेकर बी०एस-सी० में सर्वप्रथम आने से सभी को आशा थी कि अर्थ विभाग में उनका चुना जाना निश्चित है, परन्तु हुआ ठीक आशा के विपरीत। नियति ने तो उनके लिए दूसरा ही कार्य चुना था।

हिन्दू विश्वविद्यालय के सर्वप्रथम गणिताचार्य डा० गणेशप्रसाद नियुक्त हुए, जिनकी गणित के संबंध में गवेषणाएँ विश्व-विख्यात हैं। संसार के गणितज्ञों में उनका सर्वोच्च स्थान है। ऐसे गणितज्ञ ने गोरखप्रसाद जी की जीवन धारा बदल दी। डिप्टी कलेक्टरी के दलदल से बचा कर गणितज्ञ बना दिया। इस संबंध में वे लिखते हैं "डाक्टर साहब ने मुझे समझाया कि डिप्टी कलेक्टरी में क्या रखा है। रोज कलेक्टर की डांट सुननी पड़ती है। अपने अंतःकरण के विरुद्ध अकसर काम करना पड़ता है। फिर, डिप्टी कलेक्टरों के पास कुछ धन नहीं बचता।" यह भी कहा कि "प्रोफेसरी से बढ़ कर कोई उद्यम नहीं। गणित में खोज करने से जो ख्याति मिलेगी वह न तो डिप्टी कलेक्टरी में और न अर्थ विभाग में मिल सकता है।"

"मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। जिस महान् पुरुष के बारे में मैंने इतनी बातें सुनी थी उन्हीं की मातहती में मैं गणित का अध्ययन कर सकूँगा, उसमें नयी बातें निकाल सकूँगा, पीछे गणित का आचार्य बन सकूँगा, इससे बढ़ कर क्या चाहिए था। मैंने तुरन्त प्रतिज्ञा की। घर वालों को कह दिया, पिताजी मेरी इच्छा देख कर राजी हो गए। फिर क्या बाधा थी, डाक्टर साहब का शिष्य हो गया और मैं आज निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि डाक्टर साहब की बात मानने के कारण कभी मुझे पछताना नहीं पड़ा।"

यह है भावी डिप्टी कलेक्टर या अकाउंटेंट जनरल मिस्टर गोरखप्रसाद के स्थान पर गणितज्ञ डा० गोरखप्रसाद बनने का रहस्य, स्वयं उन्हीं की जबानी।

इसी प्रकार गोरखप्रसाद जी को हिन्दी का सिद्धहस्त लेखक बनाने का श्रेय आचार्य रामदासजी गौड़ को है। उन्हीं की प्रेरणा और प्रोत्साहन पाकर गोरखप्रसाद जी ने हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर लिखना आरंभ किया। इनका पहला लेख फोटोग्राफी पर 'विज्ञान' में ही छपा। बहुत कम लोगों को पता है कि गोरख-प्रसाद जी अपनी प्रारंभिक अवस्था में कविता भी किया करते थे। उनका एक कविता संग्रह हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। डी० एस-सी० करने के लिए उन्हें विलायत जाना था और धन की सख्त जरूरत थी, इसलिए गौड़जी की सिफारिश पर नकद दाम पर कविता संग्रह प्रकाशनार्थ एजेन्सी ने लिया था। बस यही गोरखप्रसाद जी का प्रथम और अंतिम कविता संग्रह था।

फोटोग्राफी के सिद्धान्त और प्रयोग नामक ग्रंथ पर **मंगला प्रसाद पारितोषिक** भी डा० गोरखप्रसाद जी को मिला था। यह ग्रंथ आज भी हिन्दी ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं में बेजोड़ है। **सौर परिवार, नीहारिका, आकाश की सैर, चन्द्रसारिणी, भारतीय ज्योतिष का इतिहास** आदि अनेक ग्रंथों के रचयिता के रूप में उनकी बहुत बड़ी देन हिन्दी जगत को है। अंग्रेजी में भी इनकी पुस्तकें हैं, जिनके कारण विदेशों से गणित विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों का विश्वविद्यालयों के लिए आना बन्द हो गया।

पारिभाषिक वैज्ञानिक शब्दावली का क्या रूप रखा जाय इस संबंध में गोरखप्रसाद जी के विचार बड़े ही सुस्पष्ट हैं। भारत सरकार ने १९४१ में सारे देश में यथासंभव एक ही पारिभाषिक शब्दावली रखने के लिए **सर अकबर हैदरी** की अध्यक्षता में एक सलाहकार मंडल बनाया था, जिसने मुख्यतया अंग्रेजी शब्दावली को ही अन्तर्राष्ट्रीय नाम से प्रचलित करने का अनुरोध किया था। इसका प्रचंड विरोध उस समय डा० गोरखप्रसाद जी ने किया था। इस संबंध में वे लिखते हैं : **'सरकार अपना जोर लगा कर जबरदस्ती सब स्कूलों, कालेजों में अंग्रेजी वैज्ञानिक शब्दावली का प्रचार करे। मेरी समझ में ऐसा करने से लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक संभावना है। मातृभाषा में विज्ञान पढ़ाने का अभिप्राय यही है कि विद्यार्थी अधिक सुगमता से ज्ञान प्राप्त करे। जब ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे अनेक ऐसे शब्दों को स्मरण रखना पड़ेगा जिनका उसकी परिचित भाषा से कोई संबंध नहीं, तो उसकी ज्ञानवृद्धि का प्रवाह अवश्य ही रुक जायगा। मस्तिष्क नवीन, पूर्णतया अपरिचित शब्दों के समझने में ही उलझ जायगा। संस्कृत के आधार पर कई शब्द अपने अर्थ के कारण बिना परिभाषा के भी बहुत कुछ समझ में आ जाते हैं।'** अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली के खंडन में उन्होंने अकाट्य प्रमाणों से यह सिद्ध किया था कि वह हमारे लिए किसी प्रकार भी उपयोगी नहीं है। आगे लिखते हैं **"बहुतेरे शब्द तो अंग्रेजी उच्चारण के अनुसार ठीक ठीक लिखे भी नहीं जा सकते...**केवल इतना ही नहीं, एक **धातु से निकले अनेक शब्दों को अलग अलग लेना पड़ेगा ?.. परिणाम यह होगा कि भविष्य के व्याकरणों को किसी दिए हुए विशेषणों से संज्ञा, क्रिया आदि बनाने के नियमों में वे सब नियम देने पड़ेंगे जो आज अंग्रेजी में होते हैं'**। अन्त में गोरखप्रसाद जी ने भारत सरकार से यही अनुरोध किया था कि सलाहकार मंडल के प्रस्ताव को कार्य रूप में परिणत न करना चाहिए।

खेद है कि आज २० वर्ष बाद भी ब्रिटिश भारत सरकार और वर्तमान भारतीय गणतंत्र की सरकार की वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली संबंधी नीति में कोई अन्तर नहीं आया है। कहने के लिए हमारी अपनी सरकार है पर नीति अंग्रेजी भाषा पोषक ही है।

प्रयाग विश्वविद्यालय से सेवा निवृत होकर डा० गोरखप्रसाद जी वाराणसी चले आए थे और भारत सरकार के आर्थिक सहयोग से काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित होने वाले हिन्दी **विश्वकोष** का संपादन कर रहे थे। फिर भी विज्ञान परिषद् से तो उनका अटूट संबंध बना हुआ ही था। अन्त समय वे परिषद् के सभापति थे।

देवनागरी लिपि सुधार के संबंध में भी उनके अपने विचार थे, जो उन्होंने 'सरस्वती' में एक लेख के रूप में रखे थे। आचार्य नरेन्द्रदेव समिति ने भी उनकी इस योजना पर विचार किया था। टेकनिकल प्रेस की स्थापना में तो अग्रणी थे ही।

डा० गोरखप्रसादजी ने आचार्य रामदासजी गौड़ से सेवा का जो पाठ पढ़ा था उसे अन्त समय तक निभा गए। अपने सेवक को तैरना सिखा रहे थे कि वह अचानक गंगा की लहरों में बह गया। उसकी प्राण रक्षा करते हुए स्वयं सदा के लिए माँ गंगा की पावन गोद में समा गए। कितनी सुखद मृत्यु। न कोई बीमारी, न कोई कष्ट, न किसी आत्मीय जन की सेवा। कर्त्तव्य पालन करते हुए मृत्यु का वरण। चेहरे

पर कर्तव्य पालन के संतोष की भावना उनके अंतिम चित्र में स्पष्ट अंकित है। वे तो माँ गंगा के प्यारे हो गए परन्तु हिन्दी के विज्ञान जगत् में जो स्थान रिक्त हुआ है, उसकी पूर्ति निकट भविष्य में कठिन है। माँ गंगा और भगवान विश्वनाथ उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

कसारहट्टा रोड
हैदराबाद-२

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी साहित्य की विशेष उन्नति हुई है। अन्य प्रकार के साहित्य के साथ साथ वैज्ञानिक साहित्य की भी अच्छी उन्नति हुई है तो भी **अभी बहुत काम बाकी है। जिस गति से इस समय हिन्दी संसार इस बात में आगे बढ रहा है उस गति से काम चलाऊ साहित्य की पूर्ति में भी बीसों वर्ष लगेंगे। परन्तु निराश होने की कोई बात नहीं है।**

डा० गोरख प्रसाद
विज्ञान, अक्टूबर १९५७

प्रथम भेंट

ओंकारनाथ शर्मा

अपने विद्यार्थी जीवन से ही मुझे चित्रकला में रुचि थी, इसीलिये फोटोग्राफी का भी अभ्यास किया। मैं इस तलाश में था कि प्राकृतिक रंगों के साथ फोटोग्राफ बनाने की विधि भी मालूम हो, उसी समय एक मित्र ने इंडियन प्रेस इलाहाबाद की छपी हिन्दी में फोटोग्राफी विषयक एक पुस्तक दिखाई जिसमें रंगीन फोटोग्राफी पर भी कुछ लिखा था। उसे पढ़ने पर कुछ बातें समझ में नहीं आईं। मुझे याद है कि उसके स्पष्टीकरण के लिये मैंने डाक्टर गोरखप्रसाद जी को कई पत्र भी लिखे जिनके उन्होंने बहुत ही जल्दी-जल्दी संतोषप्रद उत्तर दिये और अन्तिम पत्र में उन्होंने मुझे इलाहाबाद आने पर मिलने का निमंत्रण भी दिया। शायद सन् १९३० में किसी कार्यवश मैं इलाहाबाद गया तो अपने पूर्व परिचित प्रोफेसर शालिग्राम जी भार्गव के यहाँ ठहरा और उनसे डाक्टर गोरखप्रसाद जी के निवास स्थान का पता पूछ कर उनके बंगले पर गया, लेकिन दुर्भाग्यवश डाक्टर साहब इलाहाबाद से बाहर गये हुए थे, अतः अपना परिचय पत्र वहाँ छोड़ आया।

सन् १९३४ में दिल्ली में अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन का २३वाँ अधिवेशन हुआ था जिसमें मुझे भी भाग लेना था। वहां विषय निर्वाचन समिति की बैठक में ज्यों ही जाकर बैठा कि पीछे से किसी ने स्नेहपूर्वक कंधे पर हाथ रखते हुए मुझे सम्बोधन किया और मेरे पीछे फिर कर देखते ही वे सज्जन अपना परिचय देते हुए बोले कि, "मैं गोरखप्रसाद हूँ।" यही मेरा और उनका प्रथम साक्षात्कार था। उनकी सरलता और निरभिमानता ने मुझे मुग्ध कर लिया। मुझे बिलकुल ध्यान ही नहीं था कि डाक्टर साहब से वहाँ भेंट हो सकती है। इलाहाबाद वाली बात तो मैं भूल ही चुका था, लेकिन उन्होंने याद रखी, और अन्य लोगों से मेरे विषय में पूछ कर स्वयं मुझसे मिले। मेरा तो अनुभव है कि उनका जैसा उच्च पदस्थ कोई अन्य विद्वान होता तो मेरे जैसे नगण्य व्यक्ति की क्या परवाह करता? सत्य ही कहा है कि—

"वरषहिं जलद भूमि नियराए। यथा नवहिं बुध विद्या पाए॥"

डाक्टर गोरखप्रसाद जी गणित और तत्सम्बन्धित विषयों के बेजोड़ विशेषज्ञ तो थे ही, लेकिन साथ ही में उन्होंने सब प्रकार की आधुनिक ललित कलाओं में भी स्वान्तः सुखाय दक्षता प्राप्त कर ली थी। मैं जब भी उनसे मिलता, वे घंटों ही यंत्र-निर्माण-कला पर भी मुझसे बातें किया करते। उनकी सर्वमुखी प्रतिभा और अगाध ज्ञान के कारण ही नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें विश्वकोष के वैज्ञानिक विभाग का सम्पादक नियुक्त किया था, क्योंकि वे स्वयं ही "चलते फिरते मूर्तिमान विश्वकोष" थे। लेकिन विधाता को यह मंजूर नहीं था, अतः उन्हें बड़ी बेरहमी से हम लोगों से छीन लिया। इससे बढ़कर हिन्दी भाषा का और क्या दुर्भाग्य हो सकता है?

लक्ष्मी निवास
गुलाब मंडी, अजमेर

गुरुवर डा० गोरख प्रसाद को जैसा मैंने देखा

केदारराम

जब मैं हाई स्कूल में पढ़ता था डाक्टर साहब का नाम उनकी गणित की पुस्तकों के कारण सुना था। यही मालूम था कि डाक्टर साहब प्रयाग विश्वविद्यालय में गणित विभाग में रीडर हैं। लेकिन इतनी ही जानकारी एक हाई स्कूल के विद्यार्थी के लिए उनकी योग्यता की छाप लगाने के लिए काफी थी।

हाई स्कूल में उत्तीर्ण होने के बाद मैं क्रिश्चियन कालेज, इलाहाबाद में एक विज्ञान के विद्यार्थी की हैसियत से जुलाई १९४४ में नाम लिखवाया। भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र तथा गणित—ये वैज्ञानिक विषय थे। क्रिश्चियन कालेज में गणित में एक प्रोफेसर थे श्री एस० बोस जो कि एक बड़े ही योग्य तथा प्रिय अध्यापक थे। उनके मुँह से हम लोग डाक्टर साहब की प्रशंसा सुना करते थे। दिन पर दिन डाक्टर साहब को बिना देखे ही उनके प्रति श्रद्धा की भावना हृदय में आती जाती थी।

संयोग की बात थी कि जनवरी सन् १९४६ ई० में क्रिश्चियन कालेज के भी निरीक्षण के लिए एक तीन आदमियों का पैनेल आया था जिसमें डाक्टर साहब भी एक थे। पहले पहल डाक्टर साहब के दर्शन का सौभाग्य उसी समय हुआ।

गणित का क्लास हम लोगों का चल रहा था। निरीक्षक वर्ग हमारे गणित के कमरे में आ पहुँचा। नीले रंग के सूट में डाक्टर साहब का गौरांग शरीर बहुत ही जँचता था। हम लोगों को बीजगणित का Exponential Theorem समझाया जा रहा था, $e^x = 1 + x + \frac{x^2}{2!} + \frac{x^3}{3!} + \ldots$ इसके ऊपर डाक्टर साहब ने एक दो प्रश्न हँसते हुए विद्यार्थियों से पूछा। खुशी की बात थी कि जो प्रश्न उन्होंने पूछा था उसका उत्तर हमारे क्लास के विद्यार्थियों ने दे दिया, इससे वे भी बड़ी ही प्रसन्न मुद्रा में थे।

इसके बाद प्रथम श्रेणी में इन्टर उत्तीर्ण होकर प्रयाग विश्वविद्यालय में मैंने नाम लिखवाया। विषय थे—गणित, भौतिक तथा रसायन शास्त्र। सौभाग्य से बी० एस-सी० में कैलकुलस पढ़ाने की जिम्मेदारी डाक्टर साहब पर पड़ी। डाक्टर साहब की ही लिखी हुई Differential Calculus उन्हीं से पढ़ने का सौभाग्य मिला। क्लास रूम में बड़े ही समय से डाक्टर साहब आ जाते थे। घंटे का बजना और उनका कमरे के अन्दर प्रवेश, दोनों साथ ही साथ होते थे। जिस अध्याय को पढ़ाना होता था उसके सिद्धान्त को पहले वे खूब अच्छी तरह से समझाते थे, फिर एक या दो प्रश्न स्वयं हल कर देते थे। इसके बाद बारी-बारी से हर एक विद्यार्थी से एक प्रश्न श्यामपट पर हल करवाते थे। दो साल तक मुझे उनका शिष्य बनकर रहने का सौभाग्य रहा। इस दो साल के समय में डाक्टर साहब को मैंने एक गुरु की हैसियत से देखा और समझा। इस समय तक उनके पाण्डित्व की गहरी छाप मेरे ऊपर पड़ चुकी थी। दूसरा उनका सरल स्वभाव तथा निश्छल स्वाभाविक हँसी भी अपनी जगह पर बेमिसाल बात थी।

उनके समय की पाबन्दी का असर मेरे ऊपर बहुत पड़ा और उन्हीं से यह गुण मैंने अनुकरण किया तथा मैं भी समय की पाबन्दी की कोशिश करता हूँ। लेकिन अभी तक डाक्टर साहब को एक इन्सान के नाते देखने तथा समझने का अवसर मुझे नहीं मिल पाया था, केवल एक गुरु के नाते देख पाये था।

सन् १९४८ में मैं बी० एस-सी० परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ, उसके बाद मैं रसायनशास्त्र में एम०एस-सी० करना चाहता था परन्तु भाग्य को वह मन्जूर नहीं था, कुछ घरेलू परिस्थितियाँ ऐसी आ खड़ी हुईं कि मैं उस वर्ष एम० एस-सी० में नाम न लिखा सका।

मेरी स्थिति उस समय एक बेकार बेरोजगार की तरह हो गई। सामने प्रश्न था समय का सदुपयोग कैसे करूँ। एक दिन मेरे एक साथी बाबू महेन्द्र सिंह जी, जो कि आजकल गोरखपुर विश्वविद्यालय में संगीत के अध्यापक हैं, ने बतलाया कि डाक्टर साहब अपनी पुस्तकों की छपाई तथा प्रकाशन के सिलसिले में एक सहायक चाहते हैं। मैंने उनसे चर्चा की। उसी दिन उन्होंने मुझसे कहा कि टेकनिकल प्रेस की देख-भाल मदनलाल जी करते हैं, आप उनसे बातचीत कर लीजिये। मैंने उनके कहने के अनुसार श्री मदनलाल जी से बातचीत की और मेरा उनके यहाँ काम करना तय हो गया। १६ अगस्त सन् १९४८ से लेकर १४ नवम्बर सन् १९५४ तक मैंने टेकनिकल प्रेस, इलाहाबाद में काम किया। यह प्रेस एक बहुत ही अच्छा तथा गणित और विज्ञान की पुस्तकों की छपाई के लिए प्रख्यात है।

जीवन के इसी समय में डाक्टर साहब को एक इन्सान के नाते देखने का मौका बड़े ही करीब से मिला। उनका पाण्डित्व तो अपनी जगह पर था ही परन्तु उनकी मानवता उनके पाण्डित्व से भी कहीं अधिक मात्रा में थी। अमीर-गरीब, बड़े-छोटे, पंडित-मूर्ख, सभी प्रकार के लोगों से एक-सा बर्त्ताव करना एक बड़ा ही मनोहारी गुण था। हर एक कार्य को चाहे वह छोटा कार्य हो या बड़ा कार्य हो बड़े ही विधि विधान और लगन से सम्पन्न करते थे। डाक्टर साहब को गुस्सा होते तो मैंने देखा ही नहीं। अगर कोई मतभेद या विचार में अन्तर कभी टेकनिकल प्रेस के कर्मचारी और प्रबन्धक के बीच हुआ भी तो वे समझाकर शान्ति पूर्वक सदा ही तय करा देते थे।

इतना व्यस्त रहते हुए भी वे अपने घर के नाती-पोतों के साथ खेलने के लिये कुछ समय निकाल लेते थे। वे बालसुलभ सरल स्वभाव से मिलते-जुलते थे। बड़ा सा बंगला, मोटरकार, सामाजिक प्रतिष्ठा, विद्या छापाखाना, प्रकाशन, पुत्र, पौत्र—हर सांसारिक सुख होने के बावजूद भी वे इन सभी से निर्लिप्त रहे। अभिमान तो उनको किसी बात का था ही नहीं। एक युवक से भी अधिक काम करने की लगन उनमें आखिरी समय तक रही।

डाक्टर साहब टेकनिकल प्रेस के कर्मचारियों को अपने आधीन न समझ कर एक परिवार के सदस्य समझते थे। हर एक आदमी के दुख में मदद करने के लिए तैयार रहा करते थे।

डाक्टर साहब से मुझे मन लगाकर काम करने की प्रेरणा मिली। टेकनिकल प्रेस में मैं ६ घंटे प्रतिदिन अपना समय देता था और बाकी समय अपने पढ़ने-लिखने में बिताता था। यहीं पर काम करते हुए मैंने प्रयाग विश्वविद्यालय से कानून की परीक्षा पास की। आज भी डाक्टर साहब को याद कर काम करने की एक प्रेरणा लेता हूँ।

त्यौहारों में खासकर होली के कई एक अवसर पर डाक्टर साहब से घर पर मिलने का सौभाग्य मिला। ऐसे सरल तरीकों से बिना किसी शिष्टाचार के वे मिलते थे कि जी प्रसन्न हो जाता था।

डाक्टर साहब का अन्तिम दर्शन २५ अक्टूबर, १९६० ई० को लखनऊ में दिलकुशा में उनके छोटे भाई श्री कार्तिक प्रसाद जी, सुपेरिन्टेन्डेण्ट इन्जीनियर के बंगले पर हुआ था। श्री सदन लाल जी गुप्ता (डाक्टर साहब के भांजे) के साथ मैं वहाँ गया था।

शाम का समय था। सोकर डाक्टर साहब उठे। हमने उन्हें प्रणाम किया इसके बाद बातचीत शुरू हुई। कुशल क्षेम के बाद उन्होंने कहा कि काशी नागरी प्रचारिणी सभा के विश्वकोष का एक खंड निकल चुका। उसी के सिलसिले में वे दिल्ली गये थे। लखनऊ में मुख्य मंत्री से मुलाकात करने के लिए आये थे। ज्योतिष-शास्त्र का कोई प्रकाशन था इस सिलसिले में बात करनी थी। हंसते हुये मुझसे पूछा कि सूट पहन कर जाऊँ या धोती कमीज पहन कर जाऊँ। मैंने उत्तर दिया कि आपके लिये दोनों ही ड्रेस एक-सी ही हैं। इस पर उन्होंने कहा कि जब से मैं काशी रहने लगा हूँ खादी की धोती तथा कुर्ता पहनने लगा हूँ। इस पर मैंने जवाब दिया "तब तो आप धोती और कुर्ता ही पहन कर जाइये।" इसके बाद मुझी से उन्होंने कहा कि एक रिक्शा बुला दीजिये। मैं एक रिक्शा चौराहे से जाकर लाया। डाक्टर साहब को उस पर बिठला दिया और वे मुख्य मंत्री की कोठी की ओर जाने को तैयार हो गये। हमने उन्हें प्रणाम किया। परन्तु मुझे उस समय क्या मालूम था कि यह अन्तिम दर्शन था।

५ मई को गंगा में डूबकर मरने की खबर पढ़कर मैं तो कुछ देर के लिए अचेत-सा हो गया। समझ नहीं पा रहा था कि यह सत्य था या सपना। परन्तु दैव के विधान के आगे तो सबको झुकना ही पड़ता है।

जिस दिन से डाक्टर साहब की मृत्यु की सूचना मिली मुझे लखनऊ में अच्छा नहीं लग रहा था। मन में आता था कि एक दो दिन के लिए इलाहाबाद हो आऊँ, थोड़ा सा परिवर्तन हो जायेगा। अन्त में १५ मई १९६१ को इलाहाबाद गया। अपने भाई साहब से मुलाकात करने के बाद मैं १७ ता० को टेकनिकल प्रेस तथा डाक्टर साहब के बंगले गया और माता जी तथा चन्द्रिका भैया से थोड़ी देर बात-चीत किया। ऐसा लग रहा था कि हम सभी किसी शोक-सागर में डूब रहे हों। माता जी ने कहा कि मेरा तो सर्वस्व लुट गया, देवता मुझसे छीन लिया गया। यह कह कर वे रोने लगी। फिर उनको बहुत कुछ सान्त्वना दिलाया। वहीं पर उसी समय तय हुआ कि १८ ता० को सुबह डाक्टर साहब के पुष्प का प्रयाग संगम पर प्रवाह होगा। मैं इसमें चलने के लिये तैयार हो गया। १८ मई को सुबह ६ बजे संगम हम पहुँच गए। डाक्टर साहब के परिवार के सदस्य, टेकनिकल प्रेस के करीब सभी कर्मचारी तथा कुछ मुहल्ले के लोग थे। चार नावें संगम पर किराये पर ली गई थीं। संगम के मध्य में जाकर पुष्प प्रवाह किया गया और गुरुवर डाक्टर साहब को अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित की तथा ईश्वर से प्रार्थना किया कि पवित्र आत्मा को शान्ति मिले तथा हम लोगों को भी बल मिले कि उनके पद चिन्हों पर चल सकें। उनके जीवन का अन्तिम क्षण भी परोपकार में गया। एक नौकर की जिन्दगी बचाने में अपनी जिन्दगी खो बैठे। धन्य हैं डाक्टर साहब। धन्य है उनकी मानवता।

सआदतगंज,
लखनऊ

हिन्दी का अमर सेनानी

डा० ब्रजमोहन

यह एक ऐसी अनहोनी घटना घटी है कि आँखों से देखने पर भी कानों को विश्वास नहीं होता कि डा० गोरखप्रसाद नहीं रहे। स्वर्गीय डाक्टर साहब इतने लोकप्रिय थे कि उन्हें केवल 'लोकप्रिय' कह देना पर्याप्त नहीं है। यदि ऐसे सौ दो सौ व्यक्तियों को चुना जाय और उनमें से भी एक या दो व्यक्ति ऐसे निर्वाचित करने हों जो सर्वप्रिय हों तो डाक्टर साहब की गिनती उनमें होगी।

मेरा डाक्टर साहब से परिचय उन्तीस वर्ष पुराना है। यों मैं उनके नाम से तो पहले भी परिचित था और उनकी ऋजुता और मृदुभाषिता की चर्चा सुना करता था किन्तु व्यक्तिगत रूप से मुझे उनका परिचय सन् १९३२ में प्राप्त हुआ जब मैं इंग्लैंड से लौटा था। दिन बीतते गए और उनके प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता गया। उनके प्रति मेरे हृदय में छोटे भाई का प्रेम है, शिष्य का आदर है और भक्त का अनुराग है।

डा० गोरखप्रसाद की प्रतिभा बहुमुखी थी। उनके व्यक्तित्व का सर्वप्रमुख अंग था उनका हिन्दी प्रेम। हिन्दी की उन्होंने सेवा की और हिन्दी ने उनका आदर किया। यों तो वर्षों से वह हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकें लिखा करते थे और इस कला में इतने सिद्धहस्त थे कि छात्रोपयोगी पुस्तकों में उनकी टक्कर का लेखक प्रान्त भर में नहीं था। जिनका उनसे सदैव मतभेद रहता था, वह भी उनकी लेखनी को आदर की दृष्टि से देखते थे। स्कूलों और कालेजों के विद्यार्थियों के लिए उन्होंने दर्जनों पुस्तकें लिखीं थीं और उनमें से कदाचित् ही कोई पुस्तक ऐसी रही हो जो लोकप्रिय न बन गई हो। वह एक आदर्श अध्यापक थे और उनकी अध्यापन विधि इतनी सुलभ थी कि वह टेढ़ी से टेढ़ी बात को भी सीधी और सरल भाषा में व्यक्त कर दिया करते थे। उनकी यही प्रतिभा उनकी लेखनी में प्रस्फुटित होती थी और इसी कारण उनकी पुस्तकें हाथों हाथ बिकती थीं।

हिन्दी प्रेम के नाते मुझे सैकड़ों ही बार उनसे मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। वैज्ञानिक क्षेत्र में हिन्दी के लेखक इतने कम हैं कि चारों ओर अभाव ही अभाव दिखाई देता है। इस कारण मैं भी अपने आपको वैज्ञानिक क्षेत्र के हिन्दी लेखकों में गिनने लगा था। किन्तु जब कभी डाक्टर साहब के सम्मुख जाता था, श्रद्धा से नतमस्तक हो जाता था। वह मेरे लिए एक ऐसा आदर्श था, जिस तक पहुँचने का मैं आज तक प्रयास कर रहा हूँ। वह मुझसे कहा करते थे कि वर्षों से उनकी यह आकांक्षा थी कि वह प्रत्यक्ष रूप से हिन्दी की सेवा करें। जब वह प्रयाग विश्वविद्यालय से सेवा निवृत हुए उसी समय हिन्दी विश्वकोष के लिए संपादकों की खोज हुई। वैज्ञानिक विभाग के संपादक पद के लिए एक ही नाम समस्त हिन्दी प्रेमियों की जिह्वा पर दृष्टिगोचर हुआ : डा० गोरखप्रसाद का। उन्हें हिन्दी सेवा के अवसर की खोज थी और हिन्दी को उनकी आवश्यकता थी। उन्होंने कार्य आरम्भ कर दिया और इन ढाई वर्षों में इतनी लगन और तपश्चर्या से काम कर दिखाया कि युवकों को मात कर दिया। यह उनके ही अध्यवसाय का फल था कि हिन्दी विश्वकोष का पहला खण्ड पूर्ण साज-सज्जा के साथ इतनी शीघ्र निकल गया।

डा० साहब इतने नम्र स्वभाव के थे कि पहले ही परिचय में शत्रु को मित्र और मित्र को अपना दास बना लेते थे। इतने बड़े विद्वान थे, किन्तु गर्व उन्हें छू तक नहीं गया था। छोटे से छोटे काम करने में भी

न्हें कोई संकोच नहीं होता था । बड़ों में बड़े और बच्चों में बच्चे बन जाते थे । मैंने उन्हें छोटे-छोटे बच्चों के साथ घंटों घुल मिलकर खेलते हुए देखा है । मेरे बच्चे आज भी उन्हें 'मोटर वाले ताऊ जी' कहकर याद किया करते हैं ।

प्रायः देखा जाता है कि उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों में व्यवहार-बुद्धि की कमी होती है । डाक्टर साहब इस नियम के अपवाद थे । वह प्रत्येक बात को व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखा करते थे । सिद्धान्तवादी तो हममें से बहुत से बनते हैं, किन्तु ऐसे विरले ही होते हैं जो सिद्धान्तों को व्यवहार में परिणत कर सकें । यह डाक्टर साहब की ही विशेषता थी कि प्रत्येक सिद्धान्त को व्यवहार की कसौटी पर कसा करते थे । इतना ही नहीं, आप अपने दैनिक जीवन में भी बड़े व्यवहारवादी थे । डा० साहब के बहुत से मित्र ऐसे हैं जो वर्षों से यह सोचते रह गए कि मोटर खरीदनी चाहिए किन्तु आज तक खरीद न पाए । डाक्टर साहब के मन में जिस दिन पहली बार मोटर खरीदने का विचार आया, आप उसी दिन खरीद लाए । कम से कम पिछले ३५ वर्ष से आप मोटर चला रहे थे किन्तु आप इतने सावधान चालक थे कि कभी एक बार भी आपकी मोटर दुर्घटना में नहीं फँसी ।

डाक्टर साहब एक कुशल फोटोग्राफर थे । आपने उक्त विषय पर एक पुस्तक भी लिखी है जिसपर आपको सेकसरिया पुरस्कार प्राप्त हुआ था । इस पुस्तक को पढ़ने से ही पाठक यह जान सकते हैं कि आपकी अभिव्यंजना शक्ति कितनी व्यावहारिक , प्रबल और सजीव थी । एक बार आप एक पुस्तक पढ़ रहे थे जिसमें लेखक ने Mechanically homogeneous glass का अनुवाद किया था—यांत्रिक दृष्टि से समकाँच । आपने मुझसे कहा कि 'कितने हिन्दी पाठक ऐसे होंगे जो इस पद का अर्थ समझ लेंगे ? ' आपने उक्त पद के लिए अपनी पुस्तक में लिखा है—ऐसा शीशा जिसमें न बाल हो न दरार । यह था आपका व्यावहारिक दृष्टि-कोण ।

डाक्टर साहब तैरने में भी निपुण थे । एक दो नहीं, दर्जनों युवकों और बच्चों को आपने तैरना सिखाया था । कौन जानता था कि एक दिन यही कला आपकी जान की ग्राहक बन जायगी । तैरने पर आपने एक पुस्तक भी लिखी है, जो विज्ञान परिषद् से छपी है । उक्त पुस्तक से बहुत से युवकों ने प्रेरणा ली है । आप बताया करते थे कि जब किसी डूबते हुए को बचाने जाओ और यदि वह तुमको पकड़ ले तो किस प्रकार अपने को छुड़ाना चाहिए । किन्तु विधि का विधान अटल है जो शिक्षा वह दूसरों को दिया करते थे, अन्त समय उन्हीं के काम न आयी । परोपकार में ही उनका जीवन बीता और परोपकार में ही उन्हें जीवन से हाथ धोना पड़ा ।

किन्तु जहाँ डाक्टर साहब स्वभाव के नम्र थे, वहीं सिद्धान्त के विषय में उतने ही दृढ़ भी थे । मुझे पता है और उनके बहुत से मित्र भी जानते हैं कि माध्यमिक शिक्षा परिषद् में तथा अन्य शैक्षणिक संस्थाओं में डाक्टर साहब हिन्दी के पक्ष के लिए किस प्रकार लड़ा करते थे और बीहड़ मार्गों एवं अनगिनत बाधाओं में से भी हिन्दी की गाड़ी को किसी न किसी प्रकार निकाल कर ले ही जाया करते थे । आप इस सिद्धान्त के बहुत ही प्रबल समर्थक थे कि हमारे देश में उच्च से उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो और पाठ्य-पुस्तकों में प्रायः सभी संकेताक्षर तथा सूत्र हिन्दी में ही दिए जाएँ । अभी पिछले महीने ही केन्द्रीय सरकार का आदेश आया था कि हिन्दी विश्वकोष के शेष समस्त खण्डों में संख्यांक और प्राविधिक सूत्र रोमन अक्षरों में दिए जाएँ । आपने इस

आदेश का उग्र विरोध किया और अपने पक्ष का प्रतिपादन करने दिल्ली तक गए। अन्त में केंद्रीय सरकार को आपके तर्कों के आगे झुकना ही पड़ा और यह मध्य मार्ग अपनाना पड़ा कि विश्वकोष में संख्यांक और संकेताक्षर रोमन और नागरी लिपि दोनों में दिए जायँ।

डाक्टर साहब एक जीती जागती संस्था थे। जो कोई आपके सम्पर्क में आता था प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। आपका व्यक्तित्व इतना प्रभावोत्पादक था कि आपसे किसी को किसी भी कार्य के लिए इन्कार करते नहीं बनता था। आपमें वह सब गुण विद्यमान थे जो किसी सफल प्रशासक में होने चाहिए। आप स्वयं काम करना ही नहीं जानते थे, दूसरों से काम लेना भी जानते थे। हममें से कितने व्यक्ति ऐसे हैं जिनमें काम करने की योग्यता है, परन्तु उसे निष्पादित करने की क्षमता नहीं है। ऐसे व्यक्ति तभी कोई काम करके देते हैं जब किसी प्रभावशाली प्रशासक के सम्पर्क में आते हैं। ऐसे व्यक्तियों से काम लेने में डाक्टर साहब बहुत ही पटु थे। विश्वकोष के प्रथम खण्ड के बहुत से लेख ऐसे हैं जो लिपिबद्ध हुए ही न होते, यदि उनके पीछे डाक्टर साहब के व्यक्तित्व की छाप न होती।

डाक्टर साहब चले गए किन्तु हम लोगों को अनाथ कर गए। हिन्दी विश्वकोष के विज्ञान विभाग का सम्पादन जिस योग्यता से आप कर रहे थे, कोई दूसरा कर सकेगा, इसमें बहुत संदेह है। आप के उठ जाने से हिंदी और विज्ञान की अपूरणीय क्षति हुई है। हमें विश्वकोष का भविष्य अन्धकारमय दिखाई पड़ने लगा है। वैज्ञानिक क्षेत्र में गिने-चुने तो हिन्दी लेखक ही हैं। हम किसके आगे हाथ पसारें और कहें कि हमारा यह काम कर दो। उस अमर सेनानी के निधन पर गणितीय क्षेत्र स्तब्ध है, विश्वकोष आँखें फाड़-फाड़ कर चारों ओर देख रहा है और हिन्दी माता सिर धुनती है। घण्टा, दो घण्टा, एक दिन, दो दिन हमने भी आँसू बहा लिये। फिर संतोष करके बैठ रहे। इससे अधिक मनुष्य के अधिकार में है ही क्या?

अध्यक्ष, गणित विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

हिन्दी विश्वकोष की अपूरणीय क्षति

महाराजा नारायण मेहरोत्रा

मनुष्य अपने जीवन में बहुत से व्यक्तियों की ओर आकृष्ट होता है। कुछ का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली होता है कि हम स्वतः ही उनकी ओर झुक जाते हैं। कुछ पुरुषों की योग्यता हमें उनकी ओर खींच ले जाती है और किसी-किसी की मृदु वाणी हमें उनकी संगति में बैठने का प्रलोभन देती है। यदि किसी में उपर्युक्त गुणों का सामंजस्य हुआ तो वह हमारे हृदय में स्थान बना लेता है। डा० गोरख प्रसाद जी ऐसे ही व्यक्ति थे जिनमें योग्यता के साथ सरलता तथा अधिकार के साथ मृदुता का अनोखा मेल था। अतः जो भी आपके सम्पर्क में आया उस पर आपकी अमिट छाप पड़ गई।

डा० साहब का नाम तो बचपन से ही सुना था। राष्ट्रभाषा के सेवी तथा गणित के सफल प्राध्यापक के रूप में आपकी ख्याति चारों ओर फैल गई थी। आपके ग्रन्थ "सौर परिवार" "नीहारिकाएँ", "फोटोग्राफी" आदि ने हिन्दी विज्ञान के क्षेत्र में रिक्त स्थान की पूर्ति ही नहीं की, वरन् उच्च श्रेणी की मौलिक रचनाएँ होने के नाते अपनी ओर विद्वानों को आकृष्ट किया। पर कदाचित आपके जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अवकाश प्राप्त करने के उपरान्त प्रारम्भ हुआ। वह था हिन्दी विश्वकोष के प्रणयन के लिए आपका आगमन। राष्ट्रभाषा हिन्दी का विश्वकोष निकालने की भारत सरकार की योजना राष्ट्र-भाषा के भण्डार को भरने का एक प्रयास है। इसके विज्ञान अनुभाग के संपादन के लिये भारत सरकार को इनसे योग्य दूसरा कौन व्यक्ति मिल सकता था और आज जब उनका देहावसान हो गया है—कोई दूसरा व्यक्ति उनके स्थान की पूर्ति करता दिखाई नहीं देता। हिन्दी विश्वकोष का प्रथम भाग उनके परिश्रम, योग्यता और कुशलता का द्योतक है। जिन लोगों का विश्वकोष से सम्बन्ध रहा है, अच्छी प्रकार जानते हैं कि प्रथम खण्ड के निकालने में कदाचित् सबसे अधिक योग डा० साहब का ही था।

मुझे याद है—आज से लगभग ढाई वर्ष पूर्व मेरे घर के सामने एक गाड़ी आकर रुकी। उसमें से एक दिव्य मूर्ति निकल कर मेरे यहाँ आई। आकर कहा, "खनिजों पर आपको लेख लिखने होंगें, तथा भू-वैज्ञानिकों की जीवनियाँ भी। खनिजों के कुछ रंगीन चित्रों का भी प्रबंध कीजिये, आदि आदि।" उनके जाने के पश्चात् मैं सोचने लगा कि यह काम तो पत्र द्वारा भी हो सकता था! पर विश्वकोष से डा० साहब का सम्बन्ध केवल आर्थिक नहीं था, वरन् उनमें इस बात की लगन थी कि राष्ट्रभाषा का विश्वकोष सर्वोच्च तथा सर्वश्रेष्ठ हो। वह दिन रात विश्वकोष की लगन में ही डूबे रहते थे। उनकी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि उसमें कोई कमी न रहने पाये। विश्वकोष के लिये उनकी देन अनमोल है। उनके निधन से विश्वकोष की जो क्षति हुई है, शीघ्र पूरी होती नहीं दिखाई देती।

भगवान दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा उनके कुटुम्बियों को इस दुख को सहने की शक्ति दे।

भौमिकी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

———

चार मास का निकट सम्पर्क

डा० नवरत्न कपूर

डा० गोरख प्रसाद जी से मेरा परिचय लगभग २ वर्ष पूर्व हुआ था, जबकि वे हिन्दी विश्वकोष के संपादनार्थ बनारस आ चुके थे। जब कभी वे चाचाजी (डॉ० ब्रज मोहन जी) के घर पर आते तब उनके दर्शन यदा-कदा हो जाते थे। किन्तु इधर विश्वकोष के विज्ञान अनुभाग में मेरी नियुक्ति हो जाने पर उनसे मेरा घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हो गया था। चाचा जी को वह अनुज सदृश मानते थे, मेरे प्रति भी उनका पितृ तुल्य वात्सल्य सजग हो गया था। चार मास के कार्यकाल के मेरे कुछ संस्मरण इस लेख में निबद्ध हैं।

(१)

सर्दियों में विश्वकोष कार्यालय ११ बजे से ५ बजे तक खुलता था और गर्मियों में ६½ से ११½ तक। सर्दियों में दोपहर को ठीक १२ बजे मोटर का भोंपू सुनाई पड़ता—यह डाक्टर साहब के आगमन की सूचना होती थी। उनकी समयनिष्ठा का ज्ञान इसी बात से हो जाता है कि इन चार महीनों में केवल दो दिन ही ऐसे थे जब उन्हें कार्यालय पहुँचने में थोड़ा विलंब हो गया था। मार्च के महीने की बात है। वह सवा बारह बजे कार्यालय में पधारे। मानो उनका अन्तःकरण उनको कचोट रहा था। अपनी कुर्सी पर स्थान ग्रहण करते हुए बोले—"आज मोटर का ब्रेक ठीक नहीं था। धीरे-धीरे मोटर खींचकर लाया हूँ। मदनपुरा में तो भीड़ भी थी। पाँच छः वर्ष की एक लड़की भाग कर सड़क पार कर रही थी। मैंने उसे बचाने के लिए और लड़की की रक्षा के लिये मोटर को दूसरी ओर मोड़ा। उधर एक रिक्शा वाला तेजी से रिक्शा चलाता हुआ आ पहुँचा। रिक्शा चालक और लड़की की रक्षा के लिये जैसे ही मैंने मोटर को फिर दूसरी ओर मोड़ा कि एक बकरी मोटर के नीचे दबकर मर गई। खैर, मनुष्य बच गए, यह अच्छा हुआ। कहीं लड़की दब गई होती तो पीटते-पीटते मुझे भी अधमरा कर देते।"

मेरे इस अन्तिम प्रश्न पर उनका वक्तव्य समाप्त हुआ—

प्रश्न—क्या आपकी मोटर से कभी कोई दुर्घटना हुई है ?

उत्तर—नहीं, कभी नहीं। बड़ी सतर्कता से चलाता था। कुत्ते, बकरी से बड़ा पशु मेरी कार के नीचे आकर नहीं मरा।

दूसरी बार डाक्टर साहब फिर थोड़े विलंब से कार्यालय पहुँचे। आते ही विलंब का कारण भी बता दिया—"बिरादरी में एक शादी थी। सोचा थोड़ी देर बैठकर कार्यालय पहुँच जाऊँगा किन्तु बातचीत में देर हो ही गई।"

वे पूरे समय तक कार्यालय में बैठते थे। चलते समय कुर्सी से खड़े होकर हाथ जोड़ते और कहते—"अच्छा! मैं चल रहा हूँ।"

डाक्टर साहब बड़े हँसमुख, मृदुभाषी और नम्र स्वभाव के थे। पद में छोटे किसी भी व्यक्ति को अपने कमरे में बुलाते तो पहले उनका संकेत कुर्सी की ओर होता था—'बैठिए'। अहंकार और अभिमान उन्हें छू तक नहीं गया था। सम्पादन के समय, हम लोगों को अन्य काम में व्यस्त देखकर, अभिदेश की आवश्यकता

पड़ने पर स्वयं उठकर कोश और विश्वकोश (अंग्रेजी की एंसाइक्लोपीडिया) आदि देखने लगते थे। पानी की प्यास लगती। कभी चपरासी सामने हुआ तो भले ही उसे एक गिलास पानी लाने के लिए कह दें। अन्यथा, स्वयं ही कुर्सी से उठते और गिलास धो कर पानी पी लेते। चपरासी से कोई काम करवाना होता तो "देखो जी ; बड़े साहब (प्रधान सम्पादक जी से अभिप्राय है) के पास यह कागज ले जाओ" बड़ी ही मधुर वाणी में उसे संबोधन करके आदेश देते थे। कार्यालय के लोगों में या सहायकों में यदि किसी बात पर झगड़ा हो जाता तो वह बड़े ही सरल ढंग से मामले को सुलझा लेते। जब दोनों पक्ष वाले दबने में अपना अपमान समझते तो वह स्वयं ही दुर्बल पक्ष वाले की ओर से क्षमा माँग लेते। ऐसे दो अवसर तो मेरे सामने भी आए (झगड़े से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं था)।

(३)

वैज्ञानिक तो वे थे ही, परिश्रम से भी सकुचाते न थे। उनका कमरा यथासुलभ सुविधाओं से सम्पन्न था। अपने पैसों से खरीद कर उन्होंने सर्दी के लिए एक हीटर रखा था। गर्मी के लिए वायु शीतक पंखा (एयर कूलिंग फैन) लगा रक्खा था। उच्चतर शक्ति का होने के कारण जब कभी हीटर का क्वाइल जल जाता तो स्वयं ही पेंचकश उठाकर उसे ठीक करने बैठ जाते। घर जाते समय मैंने उन्हें कई बार अपनी मोटर में स्वयं ही पानी डालते हुए देखा है। मोटर तो वह स्वयं ही चलाया करते थे। छोटी मोटी मरम्मत भी वह स्वयं ही कर लेते थे। ज्ञात हुआ है कि 'अन्तर्दह इंजन' (हिन्दी विश्वकोष, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ३७-४६) वाले लेख के लिए चित्र बनवाने के समय उन्होंने अपने हाथ से मोटर खोलकर बहुत से पुर्जे चित्रकार को प्रत्यक्ष दिखाकर आवश्यक चित्र बनवाए थे।

(४)

डाक्टर साहब की विनोद प्रियता भी स्मरणीय रहेगी। अप्रैल में जब गर्मी काफी बढ़ गई तो वायु शीतक पंखा चलने लगा। मेरी मेज पंखे से काफी दूर पड़ती थी, इसलिए उन्होंने मुझे अपनी बगल में ही मेज लगवाने के लिए कहा। मैं अधिक हवा सहन नहीं कर सकता अतः मैंने कह दिया—"यहीं पर ही ठीक हूँ क्योंकि अधिक हवा से मुझे जुकाम हो जाता है।" किन्तु उन्हें सप्ताह दस दिन के बाद होने वाले गर्मी के प्रकोप और कमरे की तपन का ज्ञान था। मैंने उनके आदेश की अवहेलना करना उचित न समझकर उनके बताए हुए स्थान पर अपनी मेज लगवा ली। जब वह साढ़े दस बजे घर जाने लगे तो हँसते हुए बोले—"कहिए कपूर साहब ! जुकाम तो नहीं हुआ !" मैंने उत्तर दिया—जी नहीं, अभी तक तो नहीं हुआ, जाते जाते मुस्करा कर बोले—"यदि इसका डर हो तो कल से ऊनी कपड़ा पहन आया कीजिए।"

(४)

विश्वकोष रचना को डाक्टर साहब व्यावसायिक दृष्टि से नहीं देखते थे प्रत्युत इस कार्य में उनकी रुचि हिन्दी माता के प्रति कर्त्तव्य रूप में थी। कुछ ही दिनों पूर्व पता चला कि इलाहाबाद के अध्यापन काल में उनका स्वयं ही विश्वकोश प्रणयन और प्रकाशन का विचार था। किन्तु अकेले आदमी के लिए असंभाव्य तथा महँगा कार्य होने के कारण वे अपनी इच्छा को कार्यान्वित न कर पाए। उन्हें सदैव विश्वकोश का ध्यान

रहता था। यात्रा के लिए उन्होंने 'हिन्दी विश्वकोश' की एक प्रति अपने पास रखँ थी जिससे विश्वकोश में रुचि रखने वालों को वह दिखा सकें। जब भी वे यात्रा से लौटते थे तो चार-छः नये लेखकों के जिनमें से अधिकांश से गाड़ी में ही परिचय होता था—पते ले आते थे।

जबसे मैं उनके साथ कार्य करने लगा था, तभी से मैंने देखा कि उनका हर काम व्यवस्थित होता था। आडम्बर से वह बचते थे। अधिक रजिस्टर रखने के वे समर्थक न थे। अन्तिम दिनों में 'क' अक्षर के लेखों का सम्पादन चल रहा था। 'कवर्ग' के लेखों की एक साइक्लोस्टाइल्ड सूची उनकी मेज पर पड़ी रहती थी। लेखकों से आए हुए लेखों का क्रमांक, चित्रों की सूची, शब्द संख्या, लेख पहुँचने की तिथि आदि सभी विवरण उसमें रहते थे। अपने निधन से पूर्व उन्होंने २५ अप्रैल तक प्राप्त लेखों की शब्द संख्या गिनवा कर मुझसे वर्णानुसार एक सूची तैयार करवा ली, ताकि लेखकों का पारिश्रमिक यथाशीघ्र भेजा जा सके। विश्वकोश के लिए उन्होंने स्वयं बहुत से लेख अपनी ही लेखनी से लिखे थे: कठिन से कठिन विषयों पर, अपने अनुभव और पाण्डित्य के आधार पर, बड़ी ही सरल भाषा में।

विश्वकोश में एक मात्र रोमन सूत्रों तथा संकेतादि को रखने के वे विरोधी थे। किन्तु दूसरी ओर वे अबोध्य और क्लिष्ट हिन्दी के अनुमोदक भी न थे। कई लेखक अपने लेख अंग्रेजी में लिखकर भेज दिया करते हैं। वे अधिकांश लेखों का स्वयं ही अनुवाद कर लिया करते थे। यह अनुवाद शाब्दिक अनुवाद न होकर विषय-वस्तु का बोधक भावानुवाद होता था। नमूने के लिए मूल अंग्रेजी और हिन्दी अनुवाद नीचे उद्धृत है—

The merits of concrete as a paving material for roads are well recognized, viz. its durability, small wear & tear, smoothness & low attractive resistance, relatively inexpensive maintenance & repair, good visibility & high salvage value."

"सड़कों के फर्श बनाने में कंक्रीट का गुण यह है कि यह बहुत दिन तक चलती है, धिसती पिसती कम है, चिकनी होती है एवं गाड़ियों के चलने में बहुत कम अवरोध उत्पन्न करती है। इसकी मरम्मत में बहुत कम पैसा लगता है। सड़क दूर तक दिखाई पड़ती है। यदि कभी सड़क तोड़नी पड़े तो पर्याप्त धन उपलब्ध हो जाता है।"

उनका यही मत था कि हिन्दी में होने वाला अनुवाद इतना सरल हो कि थोड़ा पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी उसे समझ सके। एक बार उन्होंने बताया था मैं जब कभी अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करता हूँ तो दो चार कठिन वाक्यों का हिन्दीकृत अंश अपनी पत्नी को पढ़कर सुना देता हूँ। वे अधिक पढ़ी-लिखी नहीं हैं। जब वे मेरे भावों को समझ जाती हैं, तभी मुझे संतोष होता है। कि सच्चा अनुवाद हुआ है।"

अनुवाद करते समय बिना शब्दकोशों की सहायता के ही वह धारावाही हिन्दी बोलकर मुझे लिखवाते रहते थे। संपादन के समय विज्ञान के विभिन्न चौदह विषयों पर आत्मविश्वास से ही अपनी लेखनी सरलता से चला देते थे।

(५)

५ मई १९६१ को हिन्दी विश्वकोश कार्यालय में डाक्टर साहब का अंतिम दर्शन हुआ था। विश्वकोश में हिन्दी और अंग्रजी के सूत्र होंगे—केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के इस प्रस्ताव को जब नागरी प्रचारिणी सभा ने

स्वीकार कर लिया तो डाक्टर साहब 'औ' तक के मुद्रणोपयोगी लेखों (Articles for press) में आवश्यक संशोधन करने लगे। ५ मई को उन्होंने 'स्वर' के सभी लेख संशोधित करके प्रधान संपादक जी की सेवा में भेज दिए। इधर गर्मी भी काफी बढ़ गई थी। दिन भर हमारा कमरा बंद रहने के कारण काफी तप जाता था। सुबह डाक्टर साहब आते, गर्म कमरे में बैठना कठिन होता। शाम को कमरे की खिड़कियाँ खुलवाने का प्रबंध किया गया ताकि कमरा सुबह तक ठंडा हो जाय। अतः उन्होंने प्रधान संपादक डा० धीरेन्द्र जी वर्मा की आज्ञा से सभी मूल्यवान पुस्तकें कार्यालय के बड़े कमरे में भिजवा दीं। स्वयं मेरे साथ लगकर एंसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के चौबीसों खंड मेरी मेज के पीछे वाली गोडरेज की आलमारी में रख दिए। कमरा सूना-सूना लगने लगा था। किन्तु हमें क्या मालूम था कि विश्वकोश पथ का यात्री अपने अभिन्न मित्र श्री वर्मा जी से अन्तिम भेंट करके और अपने कमरे का सामान समेट कर तथा सुरक्षित करके जा रहा है। उस भव्य एवं विशाल मूर्ति के दर्शन अब हमें अलभ्य ही होंगे। बार बार वही दृश्य दृष्टि के सामने घूम जाता है, रह रह कर वही शब्द कानों में गूँज उठते हैं जैसा कि नित्य प्रति की भाँति अपने स्वभावानुसार हाथ जोड़कर उन्होंने विदा होते समय मुझे संबोधित करके कहा था—"अच्छा कपूर साहब! मैं चल रहा हूँ।"

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

डाक्टर गोरख प्रसाद तथा गणितीय कार्य

हीरालाल अग्रवाल

डाक्टर गोरख प्रसाद का जन्म २८ मार्च, १८९६ ईसवी को गोरखपुर में हुआ था। उन्होंने गोरखपुर से बी० एस-सी० परीक्षा उत्तीर्ण कर, १९१६ ईसवी में काशी विश्वविद्यालय में एम० एस-सी० गणित प्रथम वर्ष की कक्षा में प्रवेश किया। उन्होंने एम० एस-सी० गणित की परीक्षा १९१८ ईसवी में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। उनकी योग्यता तथा परीक्षा में प्रथम उत्तीर्ण होने के कारण, विश्वविद्यालय के अधिकारियों द्वारा, उनका नाम पी० सी० एस० की नौकरी के लिए भेज दिया गया। उनका पी० सी० एस० में चुनाव हो जाना परिवार के लोगों को खुशी का कारण था, परन्तु उनके गुरु डा० गणेश प्रसाद को, जोकि उस समय काशी विश्वविद्यालय के गणित विभाग के अध्यक्ष थे, अच्छा न लगा। उन्होंने डा० गोरख प्रसाद से कहा कि 'तुम पी० सी० एस० की नौकरी में मत जाओ। तुम मेरी देख-रेख में गणितीय गवेषण कार्य करो। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा क्योंकि यदि तुम रुपया पैदा करना चाहते हो तो इस कार्य को करते हुये, पुस्तकें लिख कर खूब रुपया पैदा कर सकते हो।'

डाक्टर साहब अपने स्वभाव से लाचार थे। उन्होंने डा० गणेश प्रसाद की राय को मान कर पी० सी० एस० की नौकरी का विचार त्याग दिया, तथा डा० गणेश प्रसाद के साथ गणितीय गवेषण कार्य करने में लग गये। उन्होंने केवल १९१८ ईसवी से १९२० ईसवी तक गवेषण कार्य किया। इस अवधि में गतीय खगोल पर सफलतापूर्वक कार्य करने के पश्चात्, उन्होंने अपनी खोज को गणितीय लेख की रूपरेखा दिया तथा प्राध्यापक का कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। इस कार्य का भार सँभालते हुये उन्होंने गवेषण कार्य भी चालू रक्खा। उनके परिश्रम को देख कर पण्डित मदनमोहन मालवीय जी ने काशी विश्वविद्यालय के कोष से आर्थिक सहायता दे कर उनको १९२३ ईसवी में एडिनबरा गणित की गवेषणाओं के लिये भेजा। वहाँ से उन्होंने १६ महीने में **खगोल विज्ञान** में गवेषण कार्य समाप्त कर डी० एस-सी० की उपाधि ली। उन्होंने **डी० एस-सी०** की उपाधि के लिये खगोल विज्ञान पर केवल चार उच्च कोटि के प्रपत्र तैय्यार किये थे। इधर डाक्टर साहब के पिता श्री ब्रज भूषण प्रसाद जी के देहान्त हो जाने के कारण उनको तुरन्त काशी लौट आना पड़ा। महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय जी से मतभेद हो जाने के कारण डा० साहब को प्रयाग विश्व-विद्यालय जाना पड़ा। प्रयाग विश्वविद्यालय में २१ जुलाई, १९२५ ईसवी को गणित विभाग में रीडर का पद प्राप्त किया, और तब से पदविमुक्त होने तक आप प्रयाग विश्वविद्यालय में ही गणित के अध्यापन तथा गवेषण का काम करते रहे।

डाक्टर साहब का नाम तो मैंने बचपन से ही सुना था। राष्ट्रभाषा के सेवी तथा गणित के सफल प्राध्यापक तथा लेखक के रूप में आपकी ख्याति चारों ओर फैल गई थी।

आज से दस वर्ष पूर्व मैंने बी० एस-सी० परीक्षा उत्तीर्ण करके एम०एस० सी० प्रथम वर्ष गणित कक्षा में प्रवेश किया तब मेरे सामने यह समस्या थी कि मैं कौन से विषय का वैकल्पिक प्रश्न पत्र चुनूँ। इस समस्या को हल करने के लिए मैंने डा० गोरख प्रसाद के पास जाने का निश्चय किया। यद्यपि मेरा उस समय उनसे कोई परिचय न था फिर भी मैं उनके पास जाने से न हिचका। मैंने डा० साहब के पास जाने से पहले यह

सोच लिया था कि मुझको वही विषय लेना है जिसको कि वे पढ़ाते हों तथा जिस पर कुछ गणितीय गवेषण कार्य हो सके ।

जब मैं डा० साहब से गणित विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय में उनके कमरे में मिलने गया तो उन्होंने, जैसी कि उनकी आदत सी थी, हँस कर कई अन्य विषयों का नाम बतलाया जिसको कि अन्य अध्यापक पढ़ाते थे । इस उत्तर पर मैं कुछ निराश-सा हुआ परन्तु उन्होंने फिर अन्य दो विषयों, **खगोल विज्ञान** तथा **द्रव गति विज्ञान,** के नाम बतलाये । उन्होंने यह भी बतलाया कि मैं दोनों विषयों पर गवेषण कार्य भी करा सकता हूँ । उन्होंने आगे कहा कि खगोल विज्ञान में कार्य करने के लिए प्रयाग विश्वविद्यालय में विशेष सुविधायें नहीं प्राप्त हो सकतीं । यह सुविधा काशी विश्वविद्यालय में उपलब्ध हो सकती हैं । उन्होंने यह भी कहा कि द्रव गति विज्ञान में गवेषण कार्य प्रयाग विश्वविद्यालय में मेरी देखरेख में हो सकता है । डा० साहब की इस प्रकार की बात सुनकर मैं बड़ा उत्साहित हुआ तथा यह निश्चय किया कि मुझको द्रवगति विज्ञान पढ़ना चाहिए जिसमें मैं डा० साहब के सहयोग से गवेषण कार्य कर सकूँ । यह विषय एम० एस-सी० प्रथम वर्ष की कक्षा में न होने के कारण मैंने खगोल विज्ञान का विषय लिया ।

डा० साहब ज्योतिष तथा खगोल विज्ञान के प्रकांड पण्डित थे । कक्षा में वह टेढ़ी-सी-टेढ़ी बात को इतने सीधे और सरल ढंग से व्यक्त करते थे कि विद्यार्थी को किसी भी प्रकार की कठिनाई उस विषय को समझने में नहीं पड़ती थी । उन्होंने विद्यार्थियों के आग्रह से एम० एस-सी० कक्षा के लिये खगोल विज्ञान पर **'स्फेरिकल स्ट्रानामी'** नाम की एक बहुत ही सुन्दर पुस्तक लिखी । यह उनका सर्वप्रिय विषय था । उन्होंने इसी विषय में गवेषण कार्य करके डी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की तथा इसी विषय पर अनेक पुस्तकें लिखीं जैसे **'भारतीय ज्योतिष का इतिहास,' 'नीहारिकाएँ', 'स्फेरिकल स्ट्रानामी', 'सौर परिवार', 'चन्द्र सारिणी'** आदि । डा० साहब ने गणित में भी कक्षा ८ से लेकर एम० एस-सी० कक्षा तक की दर्जनों पुस्तकें लिखीं जो आज भी लोगों को प्रिय हैं ।

जब मैं एम० एस-सी० गणित की परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ, तो मैं डा० साहब से द्रवगति विज्ञान में गवेषण कार्य के सम्बंध में , उनके ५ बेली रोड स्थित बंगले में मिलने गया । उन्होंने मुझसे विश्वविद्यालय खुलने पर मिलने को कहा क्योंकि वे उस समय नैनीताल जा रहे थे । डा० साहब हर वर्ष गर्मियों में परीक्षा कार्य समाप्त करने के पश्चात् पहाड़ों की सैर करने जाया करते थे । मैं फिर उनसे विश्वविद्यालय खुलने के पहले मिला । वे मुझको गवेषण कार्य के लिये अपनी देखरेख में लेने से हिचकते थे । हिचकने का कारण सही ही था । कुछ विद्यार्थी गवेषण कार्य के सिलसिले में उनके पास जाते थे परन्तु उन लोगों का कार्य संतोषजनक न होने के कारण डा० साहब असंतुष्ट थे । मेरे बहुत आग्रह के पश्चात् उन्होंने मुझको, १५ जुलाई १९५३ ई० को द्रवगति विज्ञान में गवेषण कार्य के लिये, विद्यार्थी के रूप में लेना स्वीकार किया । उन्होंने मेरे गवेषण कार्य प्रारम्भ करने के पहले यह साफ-साफ कह दिया था कि 'मैं आपकी किसी प्रकार की आर्थिक सहायता न कर सकूँगा' । मैंने इसके उत्तर में यही कहा कि 'मैं आपसे आर्थिक सहायता न चाह कर गवेषण कार्य करने में कठिनाइयों को दूर कराने के लिये अवश्य सहायता चाहूँगा' । संयोग की बात कि जिस दिन मैंने गवेषण कार्य प्रारंभ किया

उसके दूसरे दिन डाक्टर साहब ने मुझसे कहा कि 'मैं आप को १५०) माह की सहायता जोकि उत्तर प्रदेश सरकार की है, देता हूँ'।

दो वर्ष बीत गये, कुछ गवेषण कार्य न हो सका तथा आर्थिक सहायता का धन भी समाप्त हो गया। मैंने डा० साहब से, प्रान्तीय सरकार को आर्थिक सहायता के लिये, लिखने को कहा। वे अपने सिद्धान्त के पक्के थे। उन्होंने कहा, 'भाई जब तक कुछ गवेषण कार्य न हो जाये, आर्थिक सहायता के लिये लिखना अच्छा नहीं लगता। लोग कहेंगे कि रुपया खा रहे हैं, कोई कार्य नहीं कर रहे हैं।' जब नवम्बर १९५५ ईसवी में मेरा द्रवगति विज्ञान में पहला गवेषण प्रपत्र **"ए न्यू इक्जैक्ट सलूशन आफ दी इक्वेशन्स आफ विसकस मोशन विद एक्सियल सिमेट्री"** तैयार हुआ, तो उन्होंने उसको आक्सफोर्ड छपने के लिये भेज दिया। यह गवेषण प्रपत्र **क्वार्टली जरनल आफ मेकेनिक्स एण्ड एपलाइड मैथेमेटिक्स, आक्सफोर्ड,** में फरवरी, १९५७ ईसवी में छपा। इस गवेषण प्रपत्र को तैयार करने में डा० साहब ने हर प्रकार से मेरी सहायता की। मैंने इस गवेषण प्रपत्र के पश्चात् चार-पाँच प्रपत्र और तैय्यार किये, जिसको कि मैंने थीसिस का रूप देकर १९५७ ईसवी में प्रयाग विश्वविद्यालय में डी० फिल्० की परीक्षा के लिए जमा कर दिया। इस गवेषण कार्य की अवधि में, मैं प्रायः डाक्टर साहब से सप्ताह में एक दिन अवश्य मिलता था। मैं हमेशा उनको किसी न किसी लिखने-पढ़ने के कार्य में व्यस्त देखता।

वे समय का मूल्य समझते थे। उसका सदुपयोग करते थे तथा अपने विद्यार्थियों को भी यही शिक्षा देते थे। उनके सहयोग तथा प्रेरणा से मुझको १९५८ ईसवी में प्रयाग विश्वविद्यालय से गणित में डी० फिल्० की उपाधि मिली।

डाक्टर साहब २० दिसम्बर, १९५७ को प्रयाग विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण कर, दूसरे ही दिन हिन्दी की सेवा में काशी नागरी प्राचारिणी सभा के विश्वकोश का सम्पादन कार्य करने के लिये काशी अपनी मोटर से चले गये। उनके अवकाश प्राप्त के अवसर पर जो भव्य बिदाई-समारोह का आयोजन साइंस फैकल्टी ने किया, सचमुच ऐसा समारोह प्रयाग विश्वविद्यालय के इतिहास में न हुआ होगा। उन्होंने विदाई के अवसर पर कहा था कि मैंने प्रयाग विश्वविद्यालय में रह कर पाँच बातें सीखी। पहली डा० प्यारे लाल से चुनाव लड़ना, तथा चुनाव में हार जाने पर मित्रता बनाये रखना, दूसरी डा० बी० एन० प्रसाद से भाई चारे का सम्बन्ध, तो तीसरी श्री प्यारेमोहन से हँसना, चौथी श्री आर० एन० चौधरी से एकान्तवास तथा बिना प्रयोजन किसी के कामों में हस्तक्षेप न करना तथा पाँचवीं विद्यार्थियों से गणित सीखी। उन्होंने आगे कहा कि अब मैं यहाँ से अवकाश प्राप्त कर हिन्दी सीखने काशी जा रहा हूँ। डा० साहब के काशी चले जाने के बाद, १ सितम्बर, १९५८ ईसवी को काशी विश्वविद्यालय के इंजीनियरिंग कालेज के, गणित विभाग में, प्राध्यापक के पद पर मेरी भी नियुक्ति हो गई, जिससे कि मेरा तथा डा० साहब का सम्बन्ध उसी प्रकार बना रहा जिस प्रकार प्रयाग में था। जब कभी मैं उनसे उनके मकान, सुनारपुरा, बनारस, में मिलने जाता तो वे हमेशा मुझको आगे गणितीय गवेषण कार्य के लिये प्रोत्साहित करते थे।

डाक्टर साहब ने काशी नागरी प्राचारिणी सभा में विश्वकोश का सम्पादन केवल २ वर्ष ४ महीने १६ दिन अत्यन्त सफलता के साथ सम्हाला था। उन्हीं के प्रयास से विश्वकोश का प्रथम खण्ड प्रकाशित हुआ है।

वे अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् भी प्रयाग विश्वविद्यालय की कार्य कारिणी समिति के सदस्य थे, तथा उनका अनेक संस्थाओं से किसी न किसी रूप में सम्बन्ध रहा। उनके निधन से उनके शिष्य अनाथ हो गये तथा विश्वकोश को जो क्षति हुई है वह शीघ्र पूरी नहीं की जा सकती।

न्यू जी-३५
हैदराबाद कालनी
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

अविस्मरणीय स्मृतियाँ

डा० शिवगोपाल मिश्र

डा० गोरख प्रसाद जी के असामयिक निधन ने हिन्दी प्रेमियों विशेषतः विज्ञान के प्रेमियों को स्तम्भित एवं मूक-सा बना दिया है। उनकी दीर्घकालीन सेवाओं का यह अचानक विच्छेद सबों के लिये दुखदायी है। सभी लोग आश्वस्त होकर राष्ट्रभाषा हिन्दी के द्वारा वैज्ञानिक साहित्य के अंकुरण एवं पल्लवन को अपने ही एक निपुण माली के द्वारा सम्पन्न होते देख ही रहे थे कि एकाएक उन्हें उस माली के ही न रहने का अशुभ समाचार मिला। सचमुच ही ५ मई की वह संध्या, जब डा० गोरख प्रसाद पतित पावनी गंगा में शिव की नगरी काशी में डूबे, इतिहास के पृष्ठों में शोक एवं पीड़ा की संध्या के रूप में अंकित रहेगी।

मन में ऐसा विचार उठता है कि काश! वे गंगा स्नान न करते होते! परन्तु नहीं, वे किसी धार्मिकता के विचार से नहीं, वरन् नदी में तैरने एवं दूसरों को तैरने की कला सिखाने के लिये नित्यप्रति गंगा जी जाया करते थे। ६४ वर्ष की उम्र में भी वे अत्यन्त हृष्टपुष्ट एवं स्फूर्तिवान थे। बताया जाता है कि जिस दिन यह दुर्दान्त घटना हुई, वे अपने नौकर की प्राणरक्षा के लिये जो तैरने का नवाभ्यासी था, गंगा में कूदे थे परन्तु हा दैव! कि कुशल तैराक डूबते की प्राण रक्षा तो करना दूर, अपने भी प्राण गँवा बैठा। इस प्रकार से डा० गोरख प्रसाद जी के निधन का होना ही हम सबों के मनों में असन्तोष की लहर पैदा करता है जिससे सबों के मन अधीर एवं अशान्त हो उठते हैं।

हम अपने इस तपःपूत, परोपकारी की दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धाजलियाँ अर्पित करते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि ऐसे सपूत फिर-फिर जन्म लें और हिन्दी माँ की कुक्षि को भरते रहें।

यद्यपि मैं सन् १९४८ में प्रयाग विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के लिये आया और बी० एस-सी० कक्षा में गणित ली परन्तु डा० गोरख प्रसाद जी से कोई सम्पर्क स्थापित न हो सका। उन दिनों वे हमें नहीं पढ़ाते थे। हाँ, गणित की प्रायः सभी पुस्तकें उन्हीं की थीं। इस प्रकार वे मेरे केवल ज्ञान गुरू थे पर प्रच्छन्न रूप से। बाद में एम० एस-सी० में मैंने गणित नहीं ली अतः उनसे किसी प्रकार से भी सम्बन्ध न हो पाया।

डा० गोरख प्रसाद जी के प्रथम व्याख्यान सुनने का अवसर मुझे तब मिला जब दिसम्बर १९५७ ई० को वे गणित विभाग से अवकाश प्राप्त करके नागरी प्राचारिणी सभा काशी के तत्वावधान में प्रकाशित होने वाले 'विश्वकोष' में सम्पादन कार्य करने के लिये विश्वविद्यालय से विदा ले रहे थे। म्योर सेण्ट्रल कालेज में विजया नगरम् हाल के पार्श्वस्थ प्रांगण में एक भव्य विदाई समारोह आयोजित हुआ था। गणित परिषद् की ओर से आयोजित इस समारोह में समस्त गणित के छात्र एवं विश्वविद्यालय के प्राध्यापक आमन्त्रित थे। मैं तब तक रसायन विभाग में प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हो चुका था अतः विद्यार्थी के रूप में न रहकर अब अध्यापक के रूप में डा० गोरख प्रसाद जी के दर्शन एवं व्याख्यान का लाभ उठा रहा था। उनकी शांत मुद्रा, बड़ी-बड़ी आँखें, श्वेत-श्याम मूछें मुझे प्रभावित कर चुकी थीं। मैं उनकी गम्भीरता एवं सादगी पर मुग्ध था। फिर उन्होंने जो हिन्दी में भाषण दिया उससे मैं विशेषरूप से प्रभावित हुआ। उन्होंने विश्वकोष के हिन्दी सम्पादन की गुरुता के साथ ही उस दिशा में प्राप्त अपने व्यावहारिक ज्ञान की भी चर्चा की।

डा० गोरख प्रसाद जी बनारस जाकर विश्वकोष के सम्पादन में लग गये । कुछ दिनों के ही उपरान्त जुलाई १९५८ में रसायन विभाग के अधिकांश प्राध्यापकों के पास विश्वकोष के लिये रसायन के विभिन्न विषयों पर हिन्दी में लेख लिखने के लिये आमन्त्रण आये । मुझे हिन्दी से विशिष्ट प्रेम है, मैंने साहित्यरत्न की परीक्षा भी इसीलिये उत्तीर्ण की अतः आमन्त्रण पाने के कुछ दिनों के उपरान्त ही मैंने निश्चित लेखों को प्रेषित कर दिया ।

इसी बीच विज्ञान परिषद् से मेरी घनिष्टता बढ़ी । मैंने कई लेख 'विज्ञान' में लिखे । कुछ दिनों के उपरान्त मुझे विज्ञान के सम्पादक मंडल में रख लिया गया । डा० सत्यप्रकाश जी को न जाने कैसे मेरे हिन्दी प्रेम की खबर मिली । उन्होंने मुझे विज्ञान परिषद से प्रकाशित होने वाली अनुसंधान पत्रिका का प्रबन्ध सम्पादक बनने के लिये बाध्य किया । मैंने ईश्वर को स्मरण करते हुए यह गुरु भार अपने कंधों लिया । सन् १९५९ के अप्रैल मास तक अनुसंधान पत्रिका के कई अंक छप चुके थे । पत्रिका के सभी अंक डा० गोरख प्रसाद जी के पास भी जाते थे ।

जब विज्ञान परिषद् का वार्षिक अधिवेशन संध्या समय होने जा रहा था, तो डा० गोरख प्रसाद जी समय से पूर्व विज्ञान परिषद् भवन पहुँचे और कार्यालय में प्रविष्ट हो मेज में रखी पत्रिका के नवीनतम अंक को पढ़ने लगे । पता नहीं, डा० सत्यप्रकाश जी ने, अथवा अन्य किसी ने अनुसन्धान पत्रिका के लिये लेखों के अनुवादक के रूप में मेरी चर्चा की होगी, जिससे वे पत्रिका को खोलते और बन्द करते हुये न केवल परिषद् के इस प्रयास की प्रशंसा कर रहे थे वरन् मुझसे मिलना भी चाहते थे । तभी मैं भी कमरे में घुसा और अपना परिचय दिया । उन्होंने जिस भाँति मेरी पीठ ठोंकते हुये मुझे शाबाशी दी थी, सम्भवतः जीवन में वह प्रथम प्रोत्साहन था, जिसे मैं आजीवन नहीं भूल सकता । कहाँ मैं एक नगण्य व्यवित, कहाँ वे लब्ध प्रतिष्ठ गणितज्ञ एवं हिन्दी के धुरन्धर लेखक ।

इसके उपरान्त विज्ञान परिषद् का वार्षिक अधिवेशन प्रारम्भ हुआ । डा० हुमायूँ कबीर मुख्य अतिथि के रूप में दिल्ली से यहाँ पधारे थे । उन्हें परिषद् के प्रकाशनों से परिचित कराने के उपरान्त जब भाषण देने का अवसर दिया गया तो उन्होंने हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली का विरोध किया । उसी समय डा० गोरख प्रसाद उठ खड़े हुये और तर्कों एवं तीखे व्यंगों द्वारा भाषणकर्ता को विचलित कर दिया । उन्होंने, मुझे स्मरण है, अंग्रेजी के शब्द Caculus की व्याख्या प्रारम्भ की । उन्होंने बताया कि इससे गणित की एक विशिष्ट शाखा का बोध अवश्य होता है परन्तु यदि इसका शाब्दिक अर्थ देखा जाय तो 'कंकड़' या "पत्थर के टुकड़े" निकलता है । अतः उसके हिन्दी समानार्थी 'चलनकलन' पर हँसना या उसका मजाक उड़ाना श्रेयस्कर नहीं । इतने बड़े अधिवेशन में अन्य किसी के हिन्दी अनुराग को उतना धक्का नहीं लगा जितना डा० गोरख प्रसाद जी को । यही कारण था कि उन्होंने निर्भीकता से उत्तर दिया ।

जुलाई १९५९ में मुझे काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अतिथि भवन में एक सप्ताह रुकने का अवसर मिला । एक दिन सम्भवतः १५ जुलाई को मैं दुमंजिले पर, जहाँ 'विश्वकोष' का कार्यालय था, डा० गोरखप्रसादजी से मिलने गया । वे अपने कार्य में व्यस्त थे । मैंने अभिवादन किया । उन्होंने अपनी बगल की कुर्सी पर मुझे बिठा लिया और 'विश्वकोष' में काम करने वालों की संख्या, सामान तथा मुद्रण एवं

चित्रांकन सम्बन्धी व्यवस्था से अवगत कराया। फिर लेखकों की सूची को खोलते हुये कहने लगे—देखिये मैंने इन-इन सज्जनों को इतनी बार स्मृति पत्र भेजे हैं परन्तु न तो उन्होंने कोई उत्तर दिया और न लेख ही लिखा। जो लेख आये भी हैं उनमें से अधिकांश अशुद्ध हैं। ठीक करने में बड़ा समय लगता है। सोचता हूँ कि मैं ही इन लेखों को लिखे होता तो परिश्रम भी कम पड़ी होती और कार्य भी सम्पन्न हो गया होता।

उन्होंने बताया कि विज्ञान अनुभाग की 'इ' तक सामग्री प्रेस जा चुकी है और १५ अगस्त तक उसके प्रकाशित होने की सम्भावना भी है। उन्होंने यह भी कहा कि मुझे ज्ञात नहीं था कि तुम यहीं हो नहीं तो कुछ विषयों पर लेख लिखवा लिये जाते, खैर।

चलते समय उन्होंने डा० सत्यप्रकाश जी के लिये यह सन्देश भेजा कि जिस पारिभाषिक कोष के लिये वे दोनों प्रयत्नशील थे उसके प्रकाशनार्थ केन्द्रीय सरकार ने कुछ आर्थिक सहयोग देने का वचन दिया है।

अप्रैल १९६० में विज्ञान परिषद् ने उन्हें सभापति के रूप में चुना। तबसे अपने अन्तिम समय तक वे सभी बैठकों में आते रहे। प्रायः बैठकों के लिये वे ऐसा अवसर चुनते जब उन्हें प्रयाग विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी सभा की बैठक या अन्य कार्य से प्रयाग आना होता था। बैठकों के पश्चात् व्यक्तिगत वार्ता के समय वे सदैव यही कहते कि परिषद् द्वारा ऐसी पुस्तकें प्रकाशित हों जो जनता के द्वारा आदरित हों एवं उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती हों। वे "उपयोगी नुस्खे तथा हुनर" के अन्य खंडों को निकालने के लिये हर बार जोर देते। यह योजना बनी थी कि इस वर्ष की गर्मियों में उनकी इच्छा को उन्हीं के निर्देशनों पर पूरा कर लिया जाता परन्तु दैवयोग कि उनका स्वप्न अधूरा रह गया !

जब जब डा० गोरख प्रसाद जी प्रयाग आये मैं उनसे विज्ञान के लिये लेख माँगने, छपाई आदि के सम्बन्ध में सुझाव लेने तथा अन्य सम्बन्धित कार्यों के लिये उनके घर पर जाकर मिलता रहा। हर बार बनारस पत्र लिखकर पूछ लेता था कि वे कब प्रयाग पधार रहे हैं। जैसे ही द्वार पर जाकर घंटी बजाता कि कमरे में बैठने का मुझे आदेश मिलता और डा० साहब जिस अवस्था में होते मिलने के लिये चले आते। कभी कभी मुझे क्षोभ होता कि वृथा ही मैं ऐसे अवसर पर उपस्थित हुआ। वे हँस हँस कर बड़े ही स्नेह भाव से बातें करते। कभी भी ऐसा आभास न होता कि वे अपने से निम्न स्तर वाले से बातें कर रहे हैं। विज्ञान के सम्बन्ध में हर बार वे यही बातें कहते :

"जब तुम लेखकों को पारिश्रमिक देते हो तो उनसे उपयोगी विषयों पर धारावाहिक लेख लिखाकर उन्हें पुस्तकाकार कर लो। यह परिषद् के लिये स्थायी निधि हो जावेगी। मैं जब सम्पादक था तो स्वयं अनेक विषयों पर लेख लिखता और अन्त में उन्हें ग्रंथ रूप में प्रकाशित करवा देता।..............विज्ञान में वही सामग्री देनी चाहिये जो अन्यत्र प्रकाशित न हुई हो। कोई भी लेख या सामग्री जो किसी भी रूप में हिन्दी में कहीं भी छप चुकी हो न छापो। यदि अंग्रेजी या अन्य भाषाओं में कोई ऐसा लेख या शीर्षक मिले जो उपयोगी एवं व्यावहारिक हो, अनुवाद करके जरूर छापो। इसीसे हिन्दी की श्रीवृद्धि होगी। हमें यही ध्यान में रखना है।...........हाँ छपाई तथा कवर आदि में तुमने सुधार तो किये हैं परन्तु यह 'स्पेस' (रिक्त स्थान) खटकने वाली है। मैं अपने काल में एक इंच भी खाली जगह नहीं रहने देता था।.........हाँ ब्लाक होने चाहिये परन्तु इस ब्लाक के अच्छर टेढ़े-मेढ़े हैं—जान पड़ता है लेखक के द्वारा खींचे गये चित्र

का ही ब्लाक बनवा लिया गया है——चाहिये था कि इसमें अक्षरों को फिर से लिखकर सुघर ब्लाक बनवाया जाता——"........आदि आदि न जाने कितने उपयोगी सुझाव वे देते जिनसे प्रोत्साहित होकर मैं 'विज्ञान' में सुधार लाने का प्रयास करता। मेरे लिये इस दिशा में वे श्रेष्ठ पथ-प्रदर्शक थे।

मैंने 'विज्ञान' के रसायन, गणित तथा भौतिकी के विशेषांक निकालने की एक योजना बनाई। रसायन अंक जनवरी १९६० में प्रकाशित हुआ। गर्मियों में मैं गणित अंक प्रकाशित कर देना चाहता था परन्तु जिन गणितज्ञों को मैंने लिखा वे समयाभाव के कारण मुकर गये। यहाँ तक कि डा० गोरख प्रसाद जी का भी लेख न आया। मैंने कई पत्र लिखे परन्तु उन्होंने कोई उत्तर न दिया। बनारस से, जुलाई के प्रथम दिन एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने अपने लेख की सूचना दी। उनके उस पत्र की प्रतिलिपि यहाँ मनोरंजनार्थ दे रहा हूँ।

प्रतिलिप पत्र १ (परिशिष्ठ में संग्रहित है)

स्पष्ट है कि वे 'विज्ञान' का कितना ध्यान रखते थे। जब जब मैं उनसे लेख के लिये आग्रह करता वे अवश्य ही भेज देते। मुझे स्मरण है रुड़की में होने वाले साइंस कांग्रेस के अवसर पर "विज्ञान लोक" में उनका एक लेख प्रकाशित देखकर मैंने उलाहना देते हुये उन पर 'विज्ञान' के प्रति 'अन्यमनस्कता' का दोष लगाया तो वे जब अगली बार प्रयाग आये तो साथ में एक छोटा-सा लेख लेते आये।

विश्वकोष के प्रथम खण्ड के छप जाने पर उसकी एक प्रति 'विज्ञान' में समालोचनार्थ प्राप्त हुई। ठीक उन्हीं दिनों डा० कोठारी द्वारा लिखित एक पुस्तिका भी (अंग्रेजी में) डा० गोरख प्रसाद जी के हस्ताक्षर सहित बनारस से मुझे मिली। 'विश्वकोष' की अनेक त्रुटियों पर सरसरी निगाह डालते हुये मैंने यह निश्चय किया था कि उसकी कड़ी समालोचना लिखूँगा परन्तु जब डा० कोठारी के द्वारा 'विश्वकोष' की हिन्दी नीति पर लगाये गये आरोपों को पढ़ा तो मैंने अपने संकल्प को बदल दिया और फरवरी १९६१ के विज्ञान में 'विश्व-कोष' की सपक्ष समालोचना देते हुये डा० कोठारी के आरोपों का सम्पादकीय में खंडन किया।

यहाँ यह बता दूँ कि 'विश्वकोष' को देखने के पश्चात् एक बैठक में जब डा० गोरख प्रसाद जी से मेरी भेंट हुई तो मैंने अपने दृष्टिकोण को उनके समक्ष भी निःसंकोच भाव से रखा। वे अत्यन्त प्रसन्न हुये और स्मित स्वर से बोले——हमारी त्रुटियों को हमें जरूर बताओ। मैं सम्पादक मंडल के समक्ष उन्हें रखूँगा और भविष्य में हम उनको सुधारने का प्रयत्न करेंगे।

इसी प्रकार का विनम्र उत्तर उन्होंने डा० सन्त प्रसाद जी टण्डन को विश्वकोष के लेखकों में उनके नाम छूट जाने के संकेत करने पर दिया था। वे अपनी त्रुटियों को स्वीकार करने में हिचकते नहीं थे, न त्रुटियों के संकेत को अपना अपमान समझते थे। वे किसी भी दशा में त्रुटियों के सुधारने के पक्षपाती थे।

एक बार हम लोगों के पास अंग्रेजी में लिखा हुआ, डा० गोरख प्रसाद जी के हस्ताक्षरों सहित, पत्र आया जिसमें कुछ लेख लिखने के आदेश थे। मैंने परिषद् की एक बैठक के समय जब उनका ध्यान इस ओर आकर्षित किया तो उन्होंने कहा——मुख्य बात तो यह है कि हमारे पास हिन्दी का टाइपराइटर नहीं। टाइपिस्ट अंग्रेजी जानता है अतः उसे काम में लगाये रखने के लिये ऐसा किया गया है। मैं मानता हूँ कि यह सब काम हिन्दी में ही होना चाहिये था।

मार्च-अप्रैल १९६१ में डा० कोठारी द्वारा 'विश्वकोष' की हिन्दी नीति की कटु आलोचना को लेकर दिल्ली में कुछ विचार विनिमय हुये। नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने केन्द्रीय शिक्षा विभाग के "अन्तर्राष्ट्रीय अंक तथा सूत्र" आदि के सुझाव पर असन्तोष प्रकट किया। डा० गोरख प्रसाद जी 'सभा' की इस बैठक में विशेष रूप से आमन्त्रित थे और उन्हीं के पत्र पर ही यह बैठक बुलाई गई थी। वे हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। अपने सम्पादक-पद का ध्यान न रखते हुये उन्होंने हिन्दी का खुलकर समर्थन किया। फिर वे दिल्ली भी गये।

समाचारपत्रों की गरम खबरें पढ़कर मुझे यह भी लगा कि मैं 'विज्ञान' में एक सम्पादकीय दूँ। मैंने वास्तविक स्थिति का पता लगाने के लिये डा० साहब को एक पत्र में अपना मन्तव्य लिख भेजा। ७ अप्रैल को जो उनका उत्तर प्राप्त हुआ वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसे भी उसी रूप में उद्धृत कर रहा हूँ (पत्र २)।

'आज'—गुरुवार, ६ अप्रैल, १९६१, ४५

अन्तर्राष्ट्रीय अंकों के प्रयोग पर आपत्ति क्यों

नागरी प्रचारिणी सभा का स्पष्टीकरण

नयी दिल्ली, ५ अप्रैल। हिंदी विश्वकोष में शास्त्रीय लेखों और रासायनिक सूत्रों में अंतर्राष्ट्रीय अंकों का प्रयोग करने से नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) ने इस कारण भी असमर्थता प्रकट की है कि इससे, 'हिन्दी पाठकों के लिये विश्वकोष की उपयोगिता बहुत कम हो जायगी।'

आज लोक सभा में शिक्षा मन्त्री ने यह सूचना श्री खुशवक्त राय के प्रश्न के लिखित उत्तर में दी। उन्होंने बताया कि नागरी प्रचारिणी सभा ने शिक्षा मन्त्रालय से अपना निदेश वापस लेने की प्रार्थना की है और इसके ५ कारण बतलाये हैं, जिनमें यह भी एक है कि इससे हिन्दी की प्रगति में रुकावट पैदा होगी और सामान्य रूप से लोगों के मन में यह विचार उत्पन्न होगा कि हिंदी अंग्रेजी की सहायता के बिना प्रगति नहीं कर सकती। सभा ने अन्तर्राष्ट्रीय अंकों और चिह्नों के प्रयोग को 'सभा की नीति के विरुद्ध' भी कहा है।

शिक्षा मन्त्री ने बताया कि सभा द्वारा रखे गये इन कारणों के प्रकाश में उसकी प्रार्थना पर विचार चल रहा है।

—हिं० स०

पत्र पढ़कर उनकी अन्तिम पंक्तियों से मैं सन्तुष्ट नहीं हुआ अतः अप्रैल के 'विज्ञान' के सम्पादकीय में मैंने अपने मन की ही बातों को लिख मारा। डा० साहब दिल्ली से होकर सपत्नीक प्रयाग आये तो मैं उनसे 'विज्ञान' लेकर मिला। सम्पादकीय पढ़ते हुये मुस्कराकर कहने लगे—ठीक लिखा है। मैं तो मध्यम मार्ग को भी इसीलिये विहित समझता हूँ कि हमारा काम आगे बढ़ता रहे। सम्भवतः यह १८ या १९ अप्रैल की तिथि थी और यही था उनका अन्तिम दर्शन। उस दिन मैंने उन्हें विज्ञान परिषद् के वार्षिक अधिवेशन की सूचना दी तो उन्होंने कहा—टैबुलेशन की अन्तिम तिथि भी १३ मई ही है अतः आना कठिन प्रतीत होता है परन्तु प्रयत्न करूँगा।

बनारस से २६-४-६१ को उन्होंने मुझे एक और पत्र लिखा जो मेरे पास अन्तिम निधि के रूप में है। इसमें उन्होंने २७ कृषि वैज्ञानिकों की जीवनियाँ लिखने का आदेश भेजा था। मैंने ४ मई को उत्तर भी—

प्रेषित कर दिया था। उनका यह आदेश हिन्दी में टाइप करके आया था—सम्भवतः मेरे उलाहने की प्रतिक्रिया के रूप में।

नागरी प्रचारिणी सभा,
वाराणसी २६-४-६१

पत्र संख्या—हिं० वि० ६१/४१३९

प्रिय मिश्र जी,

कृषि वैज्ञानिकों की जीवनियाँ विश्वकोष के लिये चाहिये। इनकी सूची साथ में संलग्न है। कृपया ये जीवनियाँ आप लिख दें।

इनमें से संख्या २ अर्थात् टामस विलियम कुक की जीवनी की शीघ्र आवश्यकता है, इसे आप १५ दिन के भीतर भेज दें तो कृपा होगी। अन्य जीवनियाँ २ मास में भेजें।

जीवनियों का औसत विस्तार लगभग २०० शब्दों का होना चाहिये। आशा है कोई भी जीवनी ४०० शब्दों से अधिक की न होगी। अपनी स्वीकृति से शीघ्र सूचित करें तो बाधित होऊँगा।

आपका
गोरख प्रसाद
संपादक

परन्तु मुझे क्या पता कि मेरा यह पत्र उन्हें मिल तो जावेगा परन्तु उसका उत्तर न मिलेगा। ६ मई को प्रातःकाल जब विश्वविद्यालय पहुँचा तो उनकी मृत्यु की मर्मभेदी सूचना मिली। अवाक् हो कलेजा थाम कर बैठ गया। चारों ओर अंधकार एवं निराशा दिखने लगी। विश्वास नहीं हो रहा था कि उनकी मृत्यु इस प्रकार हुई होगी।

१०½ बजे विज्ञान परिषद् भवन में हम सब लोगों ने इस हुतात्मा को अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित कीं और शोक प्रस्ताव किये।

जब कभी मैं अकेले में उनके विषय में सोचता हूँ तो उनकी हँसती आकृति मेरे समक्ष आ जाती है। मैं उनकी स्मृति मात्र से भविष्य में अपना पथ प्रशस्त कर सकूँ, यही कामना करता हूँ। वे महापुरुष थे। उनकी ज्योति अखण्ड है जो 'विज्ञान' को सही मार्ग में बढ़ने के लिये पथ प्रदर्शिका बनती रहेगी।

रसायन विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय।

एक श्रद्धांजलि

जगदीश

तीन वर्ष पहले की बात है। तब मेरी बुद्धि सहज चपलता लिये थी। मैं प्रातःकाल डा० सत्य प्रकाश के आवश्यक कार्य से डा० गोरख प्रसाद जी के निवास स्थान पर गया। सूर्योदय की किरणें अभी विकसित भी न हुईं थीं। डा० साहब मकान के बाहर मैदान में पुष्पों का आनन्द लेते हुये घूम रहे थे। मैं पहुँचा। साइकिल खड़ी करके नमस्ते किया। डा० साहब ने पूछा आप कहाँ से आ रहे हैं? मैंने डा० सत्यप्रकाश जी का पत्र दिया। डा० साहब ने पढ़कर कहा—अच्छा जाओ। पर मैंने कहा "डा० साहब मैं भी एक कष्ट आप को देना चाहता हूँ।" "बताओ भाई"। मैंने कहा, "डा० साहब आपकी एक गणित की पुस्तक चाहिए।" "इस चीज के लिए कष्ट का क्या प्रश्न है", कहते हुए अन्दर गए। थोड़ी देर में हाथ में पुस्तक लिए हुए बाहर आए और कहा—"लो।" मैं धन्यवाद देता चला आया।

थोड़े दिन बाद, हिन्दी वैज्ञानिक शब्द कोष का कार्य डा० सत्यप्रकाश जी के निवास स्थान पर चलने लगा। डा० साहब आए थे। मैंने नमस्ते किया। डा० साहब ने पूछा—"अच्छे हो जगदीश? पढ़ते हो न?" मैंने कहा—"थोड़ा बहुत"। डा० साहब ने प्रोत्साहित करते हुए कहा—"खूब पढ़ा करो।" मैंने अपने को बड़ा भाग्यशाली समझा। मैं पहले कल्पना करता था कि बड़ा आदमी धन के कारण होता है, पर मैंने डा० सत्य-प्रकाश जी तथा उनके उदार मित्रों की टोली से यही सीखा कि कदाचित् ही पैसे से मनुष्य बड़ा होता है। बड़े वे हैं, जिनमें उदारता, क्षमाशीलता, नम्रता हो। डा० गोरख प्रसाद जी महान् थे, उनमें गर्व का नाम निशान नहीं था। मैं एक नौकर हूँ परन्तु मुझसे वे प्रेमभरी बातें करते थे।

शनैः-शनैः मैंने डा० साहब की कई-एक पुस्तकें पढ़ीं। 'फोटोग्राफी' नामक पुस्तक से बहुत कुछ सीखा भी। 'भारतीय ज्योतिष का इतिहास' भी पढ़ा।

मैं अवकाश लेकर अपने घर, देहात गया था। सुबह घूमते-घूमते उच्चतर माध्यमिक विद्यालय डेरवा गया। वहाँ पर मेरे बड़े भाई आचार्य महादेव प्रसाद ने बताया कि आज समाचार-पत्र, भारत, में निकला है कि डाक्टर गोरख प्रसाद जी ने काशी में अपने एक सेवक की प्राण रक्षा में गंगा माँ की गोद में हम सब को छोड़कर सदैव के लिए विश्राम ले लिया।

यह दुःखमय समाचार सुनते ही मैं एक बार मूक-सा हो गया। आँखों में आँसू आ गये। डाक्टर साहब इतने अच्छे तैराक, उन्होंने पुस्तक भी तैरने पर लिखी, जो उनके जीवन की रोक बन गई। शायद ईश्वर से ये बातें देखी न गईं। अनेक प्रश्न मन में उठने लगे। एक महान् आत्मा जो अपने सेवक की प्राण रक्षा में अपने को खो दिया, धन्य है उस आत्मा की उदारता को।

उदार मित्रों की टोली की एक नींव ढह गई। जब डाक्टर साहब वाराणसी से इलाहाबाद आते तो प्रातःकाल सब मित्र घूमने जाते। आज एक कोना सूना हो गया।

प्रभु से प्रार्थना है, कि उस दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें। मेरी श्रद्धांजलियाँ उस आत्मा के प्रति समर्पित हैं।

१० डी बेली एवेन्यू,
इलाहाबाद।

विज्ञान परिषद् को डा० गोरख प्रसाद की देन

जटाशंकर द्विवेदी

डा० गोरखप्रसाद से मेरा प्रथम परिचय जुलाई सन् १९४६ ई० में हुआ। उस वर्ष मैंने बी० एस०-सी प्रथम वर्ष में प्रवेश लिया था। गणित भी मेरे विषयों में एक था और डा० गोरखप्रसाद मुझे कैलकुलस पढ़ाते थे। पाठ्यक्रम में कैलकुलस की जो पुस्तक थी वह भी डाक्टर साहब की ही लिखी हुई थी। पुस्तक में नाम के साथ डाक्टर साहब की उपाधि, डी० एस-सी० (एडिनबरा), को देख मुझे यह भी पता लग गया कि डाक्टर साहब ने विदेश में अपनी उच्चतम शिक्षा प्राप्त की।

कक्षा में क्रमशः डाक्टर साहब से व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित हुआ। धीरे-धीरे डा० साहब के व्यक्तित्व से मैं परिचित होता गया। डाक्टर साहब ठीक समय पर कक्षा में आ जाते। अपना हाजिरी रजिस्टर निकाल लेते और विद्यार्थियों का नाम लेकर उनकी हाजिरी भरते थे। वे हाजिरी लेते समय प्रत्येक विद्यार्थी के नाम के साथ मिस्टर अवश्य कहते यथा मिस्टर अमुक। सम्भवतः विद्यार्थियों के नाम के पहले मिस्टर कहने से उनका अभिप्राय था कि विद्यार्थीगण अब इतने बड़े हो गये हैं कि उनका नाम मिस्टर शब्द लगाकर आदरपूर्वक लेना ही उचित है। इसके बाद वे तुरन्त ही पढ़ाना प्रारम्भ कर देते। पाठ में अन्तर्निहित तथ्य का वे ऐसे सुन्दर ढंग से विवेचन करते कि प्रायः प्रत्येक विद्यार्थी उसे ग्रहण कर लेता। इसके पश्चात् वे पिछले दिनों पढ़ाये गये पाठों के सम्बन्ध में विद्यार्थियों से पूछते। जिस विद्यार्थी को किसी पाठ में कोई कठिनाई होती वह उनसे पूछ लेता और वे बड़े सरल ढंग से उसकी व्याख्या कर देते। प्रत्येक कक्षा में कुछ विद्यार्थी पिछड़ जाते हैं। गणित में पिछड़ना तो एक प्रकार से घातक ही होता है क्योंकि पिछला पाठ समझे बिना आगे के पाठ पढ़ना और समझना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। डाक्टर साहब इस ओर सदैव जागरूक रहे। वे प्रतिदिन अपनी कक्षा के कुछ विद्यार्थियों को श्यामपट पर बुलाते और उन्हें एक-दो प्रश्न हल करने की आज्ञा देते। विद्यार्थी को वे प्रश्न श्यामपट पर करने पड़ते। उसके बिना निस्तार न था। यदि विद्यार्थी हिचकता या प्रश्न हल कर सकने में असमर्थ होता तो वे उसे कुछ संकेत दे देते और उनसे प्रोत्साहन पाकर विद्यार्थी अपने आप ही प्रश्न हल कर लेता। जो विद्यार्थी श्यामपट पर आ चुकते उनके नाम के सामने डाक्टर साहब चिह्न लगा लेते। दूसरे दिन वे दूसरे विद्यार्थियों को बुलाते। इस प्रकार प्रत्येक विद्यार्थी अपने क्रम के अनुसार श्यामपट पर आता और प्रश्न हल करता। ऐसा करने से विद्यार्थियों को बड़ा लाभ होता था। वे विद्यार्थी जो कक्षा में पिछड़ जाते, स्तर तक आने के लिये परिश्रम करते क्योंकि वे जानते थे कि जब उन्हें श्यामपट पर आना पड़ेगा तो उनका भण्डाफोड़ हो जायगा। इस मानापमान की मनोवैज्ञानिक भावना का आश्रय लेकर डाक्टर साहब प्रत्येक विद्यार्थी को कक्षा भर के साथ बने रहने के लिये वाध्य करते। कक्षा में उपस्थिति लेते समय ही वे विद्यार्थियों के नाम के आगे उपस्थिति या अनुपस्थिति का चिह्न लगा देते थे। अनुपस्थित विद्यार्थियों के नाम के सामने वे बिन्दु कभी नहीं रखते थे। वे ऐसे लोगों के नामों के सम्मुख कक्षा में ही अनुपस्थिति का चिह्न लगा देते। यदि कोई विद्यार्थी देर से कक्षा में आता और कक्षा समाप्त होने के पश्चात् उनकी कक्षा में पहुँचता तो वे उसके नाम के सम्मुख लिखे हुए अनुपस्थिति का चिह्न काटकर उपस्थित का चिह्न लिख देते और अपने हस्ताक्षर बना देते। वे

प्रत्येक कार्य को बड़े नियमित ढंग से करते थे। वे यह नहीं चाहते थे कि उनका हाजिरी का रजिस्टर थोड़ी-देर के लिये भी अपूर्ण रहे। बी० एस-सी० के प्रथम तथा द्वितीय वर्षों में उन्होंने हमारी कक्षा को डिफ-रेन्शियल कैलकुलस, इंटीग्रल कैलकुलस और कोआर्डीनेट ज्योमेट्री पढ़ाई। उनका पढ़ाने का ढंग सरल, सुव्यवस्थित और बोधगम्य रहता था।

परिषद् के प्रधान मंत्री के रूप में

बी० एस-सी० के प्रथम वर्ष में ही मैं बाबू महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव से मिला। श्रीवास्तव जी ने गवर्नमेण्ट हाई स्कूल फर्रुखाबाद में मुझे पढ़ाया था। वे वहाँ से हेडमास्टर के पद से अवकाश ग्रहण कर प्रयाग में स्थायी रूप से रहने लगे थे। विज्ञान-परिषद् से उन्हें बड़ा प्रेम था। अपने जीवन के अवकाश के वर्ष वे विज्ञान-परिषद् की सेवा में लगा रहे थे। उस वर्ष वे परिषद् के प्रधान मंत्री थे। उन्होंने मुझसे किसी वैज्ञानिक विषय पर लेख लिखने को कहा। मैंने अपना पहला लेख उन्हें लिखकर दिया। जिन शब्दों की हिन्दी मुझे नहीं आती थी उन्हें मैंने अंग्रेजी में ही लिख दिया था। श्रीवास्तव जी ने उन शब्दों को हिन्दी में करके और लेख में कुछ सुधार करके उसे विज्ञान के अक्टूबर १९४६ अंक में प्रकाशित करा दिया। तब से मेरा परिचय मासिक पत्र 'विज्ञान' से हुआ। 'विज्ञान' और 'विज्ञान-परिषद्' से थोड़ा-सा परिचय होने पर मुझे पता लगा कि विज्ञान और विज्ञान-परिषद् के कार्य में भी गोरखप्रसाद जी सक्रिय सहयोग देते रहे हैं। बीच में विश्वविद्यालय के गणित विभाग और विज्ञान-परिषद् से विशेष सम्पर्क न रहने के कारण कुछ वर्ष तक मैं गोरखप्रसाद जी के विशेष सम्पर्क में न रह सका। अक्टूबर सन् १९५२ में डा० रामदास तिवारी विज्ञान-परिषद् के प्रधान मंत्री थे। उन्होंने विज्ञान-परिषद् के कुछ कार्य मुझे सौंपे। इसी समय से विज्ञान-परिषद् और उसके कार्यकर्त्ताओं से मेरा विशेष परिचय हुआ। अब मैं डाक्टर गोरखप्रसाद के और भी निकट सम्पर्क में आया। कार्यालय के पुराने कागज पत्रों आदि को देखने से मुझे परिषद् के विकास और उसकी प्रगति के सम्बन्ध में धीरे-धीरे पता चलता गया। कार्यालय का कार्य देखते समय मुझे अनेक कागज-पत्र ऐसे मिले जिनसे मुझे आभास हुआ कि डा० गोरखप्रसाद ने कार्यालय का कार्य सुव्यवस्थित करने के लिये बड़ा परिश्रम किया था। वे अपने कर्तव्य पालन में विशेष जागरूक मालूम पड़े। उनके हस्ताक्षर सहित मुझे अनेकों ऐसे फार्म मिले जिनका उपयोग विज्ञान परिषद् जैसी संस्था में होना आवश्यक है। इन फार्मों की सहायता से कार्यालय का काम अधिक सुविधाजनक और अधिक प्रभावशाली हो जाता है। परिषद् के सामने दो प्रमुख समस्यायें थीं—एक तो परिषद् के कार्य चलाने के लिये अधिक से अधिक धन के संग्रह की और दूसरे हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन के लिये सुपात्र लेखकों को प्रोत्साहन देने और उन्हें बार-बार लेख लिखने के लिये स्मरण दिलाने की। अधिकांश व्यक्ति अपने सदस्यता शुल्क या मासिक पत्र 'विज्ञान' का चन्दा भेजने के प्रति उदासीन रहते हैं। चन्दे की समाप्ति के पूर्व उन्हें अगले वर्ष के लिये चन्दा भेजने का स्मरण दिलाना अनिवार्य हो जाता है। जो व्यक्ति समय से चन्दा न भेज सकें उनके पास 'विज्ञान' की आगे की प्रति वी० पी० पी० से भेजी जाती है और उस प्रति के द्वारा एक वर्ष का चन्दा प्राप्त कर लिया जाता है। यह ठीक से कहना कठिन है कि इस नियम का प्रारम्भ परिषद् में कब से हुआ किन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि डा० गोरखप्रसाद के मंत्रित्व काल में इस नियम का निर्वाह सफलतापूर्वक किया गया।

नवीन लेखकों के निर्माण में

डाक्टर साहब समझते थे कि अधिकांश कार्य जो सम्पन्न नहीं हो पाते, कार्यकर्ताओं की कार्य शक्ति की कमी के कारण से नहीं अपितु उनके आलस्य के कारण से पड़े रह जाते हैं। किसी भी व्यक्ति की कार्य-क्षमता को बढ़ाने के लिये उसे आलस्य छोड़कर कार्य-क्षेत्र में उतरना पड़ेगा। किसी भी व्यक्ति को ऐसा करने के लिये बाध्य करने का केवल एक ही साधन है: ऐसे व्यक्ति से बार-बार उस कार्य को करने का अनुरोध। इस अनुरोध के फलस्वरूप व्यक्ति कार्य करने लगता है और थोड़े से प्रोत्साहन से अच्छा कार्य करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। अधिकांश लेखक जिन्होंने वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में लेख अथवा पुस्तकें लिखी हैं किसी न किसी समय विज्ञान परिषद् के कार्यकर्ताओं से प्रोत्साहन पाकर ही अपना लेखनकार्य प्रारम्भ कर सके। धीरे-धीरे उनकी भाषा, शैली और हिन्दी का ज्ञान बढ़ता गया और वे अपनी मातृभाषा की सेवा करने के लिये समर्थ बन सके। इस प्रकार के लेखकों का उद्भव जिन कर्मठ व्यक्तियों के प्रयत्न स्वरूप हुआ उनमें डा० गोरखप्रसाद का नाम सम्मानपूर्वक लिया जावेगा।

पुस्तकों के प्रकाशन में

विज्ञान-परिषद् की आर्थिक अवस्था में सुधार करने और जनोपयोगी साहित्य को पुस्तकाकार रूप देने का प्रयत्न भी डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश के प्रयत्नों के फलस्वरूप हुआ। ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन की योजना बनी जो जनोपयोगी हों और जिनकी समुचित बिक्री हो सके। इस प्रकार की पुस्तकों का प्रकाशन विज्ञान परिषद् के लिये आवश्यक रहा है। डाक्टर साहब ने जनता की नब्ज को पकड़ा और उन्हें ऐसा वैज्ञानिक साहित्य प्रदान किया जिसकी उन्हें अत्यन्त आवश्यकता थी। ये पुस्तकें धारावाहिक रूप से मासिक पत्र 'विज्ञान' में छपतीं। साथ ही अच्छे कागज पर पुस्तकों के इन भागों की कुछ सहस्र अतिरिक्त प्रतियाँ निकलवा ली जातीं। जब पुस्तक के सब अंश प्रकाशित हो जाते, पूरी पुस्तक भी लगभग छपकर तैयार हो जाती। केवल जिल्द बँधवाई और भूमिका लेखन का ही काम शेष रहता। इस प्रकार से पुस्तकें सरलतापूर्वक और बिना विशेष व्यय के छप जातीं। कम से कम कम्पोजिंग का धन तो बच ही जाता था। इस प्रकार "विज्ञान" के आकार की निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित की गईः—

(१) घरेलू डाक्टर (२) उपयोगी नुस्खे, तरकीबें और हुनर (३) राष्ट्रीय अनुसधान शालायें (४) वैज्ञानिक परिमाण। इसके अतिरिक्त विज्ञान के फर्मों को तोड़ कर कुछ छोटे आकार की पुस्तकें भी प्रकाशित हुई जिनका प्रकाशन 'विज्ञान' के साथ ही चलता गया। इन पुस्तकों में से प्रमुख ये हैं—(१) व्यंगचित्रण (२) तैरना (३) वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें (४) खाद्य और स्वास्थ्य (५) पोर्सलीन उद्योग। ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन में डा० गोरखप्रसाद ने बड़ा परिश्रम किया। उनके लेखन या सम्पादन के फलस्वरूप इनमें से अधिकांश पुस्तकें छपीं। उनका विचार "उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर" को चार भागों में और "घरेलू डाक्टर" को भी कई भागों में प्रकाशित करने का था। समयाभाव के कारण जब वे इन पुस्तकों के आगे के भागों के प्रकाशन में सक्रिय सहयोग देने में समर्थ न हो सके तब आगे के भागों के प्रकाशन में गतिरोध आ गया। परिषद् के उस समय के युवक कार्यकर्त्ता डाक्टर साहब के द्वारा प्रारम्भ किये गये इस अभियान की पूर्ति में सहयोग न दे सके और यह कार्य पड़ा ही रह गया। आज भी घरेलू डाक्टर और उपयोगी नुस्खे, तरकीबें और हुनर के शेष भाग तैयार नहीं हो सके हैं।

डा० गोरखप्रसाद ने परिषद् के लिये जो पुस्तकें लिखीं उनमें से निम्न प्रमुख हैं :

(१) सरल विज्ञान सागर (भाग १) (२) फोटोग्राफी (३) तैरना (४) लकड़ी पर पालिश (५) फल संरक्षण (६) घरेलू डाक्टर (भाग १) (७) उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर (भाग १)।

इनमें से पहली तीन पुस्तकें तो गोरखप्रसाद जी ने स्वयं लिखीं और बाद की चार पुस्तकें अन्य लेखकों के साथ उनके सहयोग से। इनमें "तैरना" नाम की पुस्तक को छोड़कर शेष सब पुस्तकें विशेष लोकप्रिय हुईं और कई पुस्तकों के एक से अधिक संस्करण निकालने पड़े। इनमें से दो पुस्तकें सरल विज्ञान सागर (भाग १) और लकड़ी पर पालिश-इस समय अप्राप्य हैं और इनके नवीन संस्करण निकालने की आवश्यकता है। घरेलू डाक्टर नाम की पुस्तक अधूरी है उसके आगे के भाग प्रकाशित होने चाहिये। साथ ही यदि सरल विज्ञान सागर के तथा उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर के भी आगे के भाग प्रकाशित हो सकें तो बड़ा अच्छा हो। इन पुस्तकों के नाम से और साथ ही उनमें निहित सामग्री से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये पुस्तकें उद्योग तथा व्यवसाय से सम्बन्ध रखती हैं। डाक्टर साहब की रुचि व्यवसायी विषयों पर बहुत रही। वे स्वयं भी कुछ न कुछ किया करते थे। फोटोग्राफी का शौक तो उन्हें था ही, साथ ही वे घर पर कुछ न कुछ बनाया करते थे या फिर अपने फरनीचर पर पालिश ही कर लिया करते थे। इस प्रकार उन्होंने जो कुछ भी लिखा वह प्रामाणिक है। उसमें ऐसी भूलें शायद ही कहीं मिलें जो साधारणतः व्यावसायिक विषयों पर लिखने में हो जाती हैं। इस प्रकार डाक्टर गोरखप्रसाद के परिश्रम के फलस्वरूप परिषद् के वैज्ञानिक साहित्य का औद्योगिक अंग पुष्ट हुआ और साथ ही साथ इन लोकप्रिय पुस्तकों की बिक्री से परिषद् की आर्थिक अवस्था भी सुधरी।

विज्ञान के लेखक और सम्पादक के रूप में

सन १९२५ ई० में डा० साहब की नियुक्ति प्रयाग विश्वविद्यालय में हुई। धीरे-धीरे वे विज्ञान परिषद् के कार्यकर्त्ताओं के सम्पर्क में आये। जहाँ तक मुझे ज्ञात है उन्होंने मासिक पत्र 'विज्ञान' के लिये अपना पहला लेख **"वह तारा कितनी दूर है"** लिखा। यह लेख विज्ञान के नवम्बर-दिसम्बर १९२७ के सम्मिलित अंक में प्रकाशित हुआ। सन् १९३२ ई० में ये विज्ञान परिषद् के सभ्य (सदस्य) बने। परिषद् के सभ्य बनने के पश्चात् मासिक पत्र 'विज्ञान' में उनके लेख बराबर प्रकाशित होते रहे। प्रारम्भ में उन्होंने विदेशी भाषाओं से अनुवाद करके कुछ लेख लिखे। बाद में वे स्वतन्त्र रूप से लेख लिखने लगे। औद्योगिक विषयों पर लिखने का डाक्टर साहब को बड़ा शौक था। उन्होंने औद्योगिक विषयों पर जो लेख लिखे उनमें से कुछ के नाम नीचे दिये जा रहे हैं:

(१) बिना धुयें का फ्लेशलाइट	
(२) केलिडस्कोप	सितम्बर १९३३
(३) कोसों दूर से साफ फोटो खींचना	दिसम्बर १९३३
(४) सबके लिये सरल बढ़ईगीरी (३ भागों में)	मार्च, जून १९३४, जनवरी १९३५
(५) बच्चों की लकड़ी की बनी स्कूटर सैकिल	मार्च १९३५
(६) खेल का और काम का ठीक तराजू	अप्रैल १९३५

(७)	सुन्दर खिलौने	जुलाई १९३६
(८)	धातुओं की कलई और रंगाई	दिसम्बर १९३९
(९)	फोटोग्राफी का व्यवसाय	मई १९४०
(१०)	फोटो खींचने का कैमरा	नवम्बर १९४०
(११)	ब्लाक कैसे बनते हैं	मार्च १९४१
(१२)	एनलार्ज करना	अप्रैल १९४२
(१३)	हाफटोन ब्लाक कैसे बनते हैं	मई १९४१
(१४)	दर्पण बनाना	सितम्बर १९४१

इन लेखों में पाँच फोटोग्राफी से सम्बन्धित हैं। फोटोग्राफी पर डाक्टर साहब ने एक पुस्तक भी लिखी है जो विज्ञान परिषद् से "सरल फोटोग्राफी" के नाम से प्रकाशित हुई। औद्योगिक विषयों पर अच्छे लेखों का सदैव अभाव रहा है। डा० गोरख प्रसाद जब तक लिखते रहे उन्होंने विज्ञान के पाठकों को इस अभाव का अनुभव नहीं होने दिया। वे औद्योगिक विषयों के ज्ञाता तो थे ही, साथ ही अपने अनुभवों को आकर्षक शब्दों में रखने की योग्यता भी उनमें थी। इसीसे उनके लेख विशेष प्रभावोत्पादक हुआ करते थे।

औद्योगिक विषयों के अतिरिक्त डाक्टर साहब को ज्योतिष से विशेष रुचि थी। 'विज्ञान' में उनका पहला लेख था "वह तारा कितनी दूर है" (नवम्बर-दिसम्बर १९२७) और अन्तिम लेख था "अन्तरिक्ष के अद्भुत दृश्य (अप्रैल १९६१ अंक)"। इस प्रकार मासिक पत्र "विज्ञान" में वे ज्योतिष के एक लेखक के रूप में आये और ज्योतिष सम्बन्धी अन्तिम लेख विज्ञान को प्रदान कर दिवंगत हुये। इन दो लेखों के अतिरिक्त ज्योतिष पर उन्होंने निम्न लेख भी 'विज्ञान' में लिखे :

(१)	तारे कितने बड़े हैं	सितम्बर १९३८
(२)	तारा समूह	अगस्त १९४२
(३)	पंचांग शोध	फरवरी १९४३
(४)	आकाश के ५० सबसे अधिक चमकीले तारे	अप्रेल १९४३
(५)	तारे क्या हैं	जून १९४५

इन लेखों के अतिरिक्त सरल विज्ञान सागर का ज्योतिष वाला भाग भी डा० गोरख प्रसाद ने लिखा जिससे ज्योतिष के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

डाक्टर साहब ने विविध विषयों पर भी रोचक लेख लिखे हैं यथा :

(१)	स्वावलम्बन और स्वदेशी के लिये जर्मनी की कड़ी कोशिश	मार्च १९
(२)	डायनेमाइट	मार्च १९३८
(३)	साइकिल की कहानी	जून १९४०
(४)	बागबानी	मार्च १९४१
(५)	आग पर चलना	जुलाई १९४१

(६) विज्ञान और निनाद अगस्त १९४१

(७) कुछ उपयोगी नुसखे (दो भाग में) मई जून १९४५

इन लेखों से पता चलता है कि डाक्टर साहब ने विभिन्न विषयों पर सुन्दर लेख लिखकर "विज्ञान" के स्तर को ऊँचा किया।

फरवरी १९३४ ई० से आप मासिक पत्र 'विज्ञान' के सहकारी सम्पादक बने। प्रो० रामदास गौड़ के देहावसान के पश्चात् 'विज्ञान' के सम्पादन का भार डा० गोरख प्रसाद पर आया। प्रो० रामदास गौड़ सम्पादन के कार्य में तो निपुण थे ही, साथ ही बड़े अध्यवसायी जीव भी थे। उन्होंने मासिक पत्र 'विज्ञान' के लिये बड़ा कार्य किया। उस परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये उन्हीं के समान योग्य और विद्वान व्यक्ति की आवश्यकता थी। डा० गोरख प्रसाद ने सम्पादन कार्य में आशातीत सफलता प्राप्त की। उनके सम्पादन काल में विज्ञान में औद्योगिक लेखों की भरमार थी। वे स्वयम् भी औद्योगिक विषयों पर लिखते थे, साथ ही उनके प्रोत्साहन से बहुत ऐसे लेखक भी अपने लेख भेजने लगे। लेखों में आवश्यकतानुसार सुधार करके डाक्टर साहब उन लेखों को विज्ञान में प्रकाशित करा देते। इस प्रकार बहुत से नये लेखकों का निर्माण हुआ। डाक्टर साहब की नीति थी—विज्ञान के लेखों को अधिक उपयोगी और रोचक बनाना। उनके सम्पादन काल में विज्ञान में जो सामग्री प्रकाशित हुई उसमें इस नीति का पूर्णरूपेण पालन किया गया। 'विज्ञान' सदैव समय से प्रकाशित होता रहा और उसमें अत्यन्त उपयोगी और रोचक सामग्री का समावेश रहा। विज्ञान का स्तर भी ऊँचा उठा। इस प्रकार उनके सम्पादन काल में विज्ञान की पर्याप्त उन्नति हुई। लगभग ४ वर्ष तक वे विज्ञान के प्रधान सम्पादक रहे। वैसे विज्ञान के सम्पादक मण्डल में वे १७ वर्ष तक रहे। इस प्रकार विज्ञान के लिये उन्होंने अपनी बहुमूल्य सेवायें अर्पित कीं।

२४ जनवरी १९५२ को डाक्टर साहब विज्ञान परिषद् के उपसभापति निर्वाचित हुये। इस पद पर वे सन १९५८-५९ तक रहे। प्रयाग विश्वविद्यालय से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् डाक्टर साहब काशी नागरी प्रचारिणी द्वारा प्रकाशित होने वाले हिन्दी विश्वकोष के सम्पादक बनकर वाराणसी चले गये। इलाहाबाद से दूर रहने पर भी विज्ञान परिषद् से उनका प्रेम यथावत् रहा। सन् १९६०-६१ के लिये वे विज्ञान परिषद् के सभापति निर्वाचित हुये। विधि के क्रूर विधान ने ५ मई १९६१ को विज्ञान परिषद् का यह महान कार्यकर्त्ता हमसे छीन लिया। वे अपने एक सेवक को गंगा जी में डूबने से बचाने के लिये धारा में कूद पड़े और इसी प्रयत्न में गंगा जी में विलीन हो गये। इस प्रकार उनके तपोपूत जीवन का अंत एक शुभ कार्य में हुआ। डाक्टर साहब ने सन् १९३२ से अपनी मृत्युपर्यन्त (लगभग ३० वर्ष तक) विज्ञान परिषद् की जो सेवायें की हैं, विज्ञान परिषद् के इतिहास में उन्हें सदैव सम्मान की दृष्टि से देखा जावेगा।

रसायन विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय।

श्रद्धेय डा० गोरखप्रसाद

डा० हरिश्चन्द्र गुप्त

श्रद्धेय डा० गोरखप्रसाद बीसवीं शताब्दी के उन विद्याप्रेमियों में थे जिनका अपना विशिष्ट स्थान था। जीवन पर्यन्त जिस लगन और परिश्रम से उन्होंने सरस्वती की सेवा की वैसी विरले ही व्यक्ति कर पाते हैं। किसे आशंका थी कि ज्ञान का यह महारथी अकस्मात् ही हमारे बीच से चला जायगा! पाँच मई १९६१ का सायंकाल निश्चय ही महान दुर्भाग्य का समय था। (इसी तिथि को नेपोलियन बोनापार्ट का भी स्वर्गवास हुआ था।) सदा की भाँति इस दिन भी वे गंगा पर तैरने गये। साथ में उनका सेवक भी था। उसे तैरना सिखा रहे थे। सहसा सेवक ने भयपूर्ण चीत्कार किया और डाक्टर साहब उसके प्राणों की रक्षा करते-करते स्वयं को ही गँवा बैठे। यद्यपि गंगा की पावनी तरंगों ने उनके पार्थिव देह को अपने में समा लिया परंतु उनके कर्त्तव्य भावी पीढ़ियों के लिये प्रकाश स्तंभ का कार्य करेंगे।

डाक्टर साहब में चतुर्मुखी प्रतिभा का वास था। इसी प्रतिभा के बल पर उन्होंने प्रकांड पांडित्य और अध्यवसाय के साथ विभिन्न विषयों पर अनेकों पुस्तकों का निर्माण किया। अपने विषय गणित और ज्योतिष-शास्त्र के अतिरिक्त विविध विषयों और तकनीकी विषयों को अध्यवसाय द्वारा समझने और समझाने की क्षमता उन जैसी अन्यत्र दुर्लभ प्रतीत होती है। इसी सूझबूझ के कारण, केवल स्वाध्याय के आधार पर, वे अपनी देख-रेख में प्रथम वर्ग के मुद्राणालय की स्थापना करने में सफल हुए। घर पर ही फोटोग्राफी का मोटा सामान, मनोरंजन के लिये नाव और खिलौने आदि बना लेना उनके लिए बाएँ हाथ का खेल था। वे सही अर्थ में उद्योग-धंधों के व्यक्ति थे।

भारतीय छात्रों को सभी विषयों का ज्ञान मातृभाषा हिन्दी के माध्यम से सरलतापूर्वक सुलभ हो—इस विचार के वे प्रबल समर्थक थे। उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद् के सर्वाधिक प्रतिष्ठित सदस्य के रूप में उन्होंने इंटरमीडियेट कक्षाओं तक की शिक्षा पद्धति में हिंदी को उच्च स्थान दिलवाया। हिंदी का यह स्थान अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए उन्होंने हिन्दी में अपने विषय गणित और ज्योतिषशास्त्र ही नहीं किंतु फोटोग्राफी और तैरना, फलसंरक्षण आदि तकनीकी विषयों पर भी अत्यंत सुन्दर और प्रामाणिक पुस्तकों की रचना की। कुछ क्लिष्ट वैज्ञानिक पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद भी किया। फोटोग्राफी की पुस्तक उन्होंने १९३० में बड़े परिश्रम से लिखी जिसमें कितने ही अपने अनुभव से खोज किये हुए मिश्रणों आदि की चर्चा है। कोई आश्चर्य नहीं कि इस पुस्तक पर उन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक से विभूषित किया गया। केवल परिपक्व मस्तिष्क के लिए ही पुस्तकें लिखी हों, सो बात नहीं। सौर-परिवार और सरल विज्ञान सागर की रचना किशोरावस्था के बालकों के हित को दृष्टि में रखते हुए की गयी।

काव्य कौशल भी डाक्टर साहब में किसी अंश तक था। छात्रावस्था में ही 'Jack and Jill went up a hill to fetch a pail of water शीर्षक की कविता का किया हुआ पद्यानुवाद एक प्रकाशक ने सहर्ष छाप डाला। इस सफलता पर अन्य कोई व्यक्ति कवित्व की लहरों में बह जाता और उससे मुक्ति न पाता; किंतु डाक्टर साहब मूल में वैज्ञानिक थे इसीलिए उन्होंने कल्पना शक्ति को सूझबूझ में परिणत कर लिया। उनकी उक्तियाँ अकाट्य होती थीं। आकाशवाणी से प्रसारित उनके भाषण अत्यंत ताथ्यिक, सुस्पष्ट और तर्क

पूर्ण होते थे। लिपि सुधार पर 'सरस्वती' पत्रिका में छपे लेख सदा के लिए तर्कपूर्ण विवेचन के प्रमाण रहेंगे। सौर परिवार, नक्षत्र मंडल, आकाश की सैर आदि कितने ही विषयों पर उन्होंने लोकप्रिय सुबोध वार्ताएँ दीं।

इस प्रकार छोटे-बड़े, विशेषज्ञ, जन साधारण सभी को उनके मस्तिष्क एवं सिद्धहस्त लेखनी से निरंतर कुछ-न-कुछ मिलता ही रहा। प्रयाग विश्वविद्यालय से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् आपने नागरी प्रचारिणी सभा को अपनी सेवाएँ प्रदान कीं। जीवन के अंतिम दिनों में वे इस सभा से प्रकाशित होनेवाले 'हिंदी विश्वकोष' का संपादन कर रहे थे। इन्हीं के सतत प्रयत्नों के फलस्वरूप हिंदी विश्वकोष का प्रथमखंड इतनी तत्परता से जनता के हाथों में आ गया। पुस्तक लेखन से आरंभ कर मुद्रण और प्रकाशन करने के सभी पहलुओं में निपुण होने के कारण और उनके सतत परिश्रमी होने के कारण यह सब संभव हो सका। अंत्येष्टि के समय विश्व-कोष के प्रधान संपादक डा० धीरेंद्र वर्मा के ये उद्गार कि 'अब या तो विश्वकोष निकलेगा नहीं और निकलेगा भी तो कूड़ा निकलेगा' डाक्टर साहब के योगदान की महत्ता के सूचक हैं।

जैसा डाक्टर साहब का मस्तिष्क उन्नत था वैसा ही उनका हृदय विशाल था और व्यक्तित्व प्रभावशाली। जिन मानवीय गुणों का समावेश उनमें था वे विरले व्यक्तियों में ही मिलते हैं। सत्यनिष्ठ डाक्टर साहब जीवनपर्यन्त स्पष्टवादी रहे। गंभीर प्रकृति के होने पर भी वे बालकों के साथ खेलने में विशेष आनंद का अनु-भव करते थे। नन्हें बालकों के साथ बाल सुलभ वार्ता में तल्लीन हो जाना उनके स्वभाव की विशिष्टता थी। भाँति-भाँति के खिलौने बनाकर वे बालकों का मन बहलाना जानते थे। प्रथम परिचय में ही प्रायः बच्चे उनसे हिलमिल जाते थे। बच्चों के अनुशासन में भी सत्यता को प्राथमिकता देते थे। बालकों को प्रायः अवज्ञा के लिए कोई दंड-विधान न सुनाते और उसे समझा बुझाकर सही मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते। किन्तु यदि कभी चर्पट-दंड की घोषणा करने को बाध्य होना पड़ता तो अवज्ञा पर अवश्य ही चाँटा लगाकर अपने वचन को पूरा करते। उनका विश्वास था कि मिथ्या धमकी देने से बालक उद्दंड हो जाता है और उसे दंड का भय नहीं रहता।

संयम और नियमपूर्ण जीवन व्यतीत करना ही उनके जीवन का लक्ष्य था। लगभग १० वर्ष से वे मधु-मेह से पीड़ित थे किंतु नपे-तुले भोजन और इंसुलिन के इंजेक्शन द्वारा उन्होंने रोग को नियंत्रित कर रक्खा था। मिर्च, मसाले, छोंक आदि से रहित सात्विक भोजन ही उन्हें रुचिकर था। सेवा काल में यद्यपि निरंतर सूट ही पहनते रहे किंतु उसमें भी सादगी थी। जाड़ों में सदा नेवीब्लू रंग का सूट और काली टाई, गर्मियों में सफेद सूट और काली टाई, श्वेत कमीज——यह उनकी अपरिवर्तनीय वेषभूषा थी। उनका कहना था कि वस्त्र की डिजाइन, रंग आदि न बदलने से कपड़े के छांटने का झंझट नहीं रहती और व्यक्ति की पहचान दूर से ही हो जाती है। नागरी प्रचारिणी सभा में कार्य करते समय श्रद्धेय श्री गोविन्द वल्लभ पंत के सम्पर्क में आने के कारण वे खादी पहनने लगे थे।

उनके सम्पूर्ण जीवन पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि वे झूठे यश, प्रपंच और लंबी-चौड़ी निरर्थक बातों से सदा दूर रहे। आधुनिक नेताओं की जैसी विज्ञापनबाजी को उनके जीवन में कोई स्थान प्राप्त न था। ऐसा प्रतीत होता है कि अँग्रेजी कहावत 'Charity begins at home' का उनके मन पर

विशेष प्रभाव था। परिजन हितकारिता में उनका दृढ़ विश्वास था। अनेकों संबंधियों को योग्य बनाया और उनके विवाह आदि संस्कार किये। अपने छात्रों पर उन्हें परम स्नेह था। मैं तो छात्रावस्था से आरंभ कर उनके कुटुम्ब का सदस्य-सम ही बन गया।

जिन संस्थाओं को उनके सहयोग एवं सेवा का सुअवसर अथवा सौभाग्य प्राप्त हुआ उनमें प्रयाग की विज्ञान परिषद् का नाम उल्लेखनीय है। सन् १९३५ के लगभग जब परिषद् असह्य उतार-चढ़ाव एवं कठिनाइयों में था तभी डाक्टर साहब का आर्थिक एवं मानसिक सहयोग उसे प्राप्त हुआ। उनके प्रयत्नों से परिषद को एक नया जीवन प्राप्त हुआ और तभी से वह उत्तरोत्तर उन्नति पथ पर अग्रसर है।

उच्च नैतिकता, स्पष्टवादिता, अर्थ लोलुपविहीनता आदि सद्गुणों के कारण आप मित्रों, सहयोगियों, छात्रों एवं परिजनों आदि में सदैव समान स्नेह पाते रहे। झूठे यश अथवा पदोन्नति के लिए आप चाटुकारिता को घृणित एवं जघन्य अपराध मानते थे। आत्मसम्मान को कभी भी उन्होंने ठेस नहीं लगने दी। परोपकार का उनके जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था। गीता तथा रामचरित मानस उनके श्रद्धास्पद ग्रंथों में से थे। तुलसीदास जी तो सफल कवि होने के नाते भी उनके आदर्श थे। उनकी सफलता की कुंजी को वे अपनी गणित की पुस्तकों में भी प्रयुक्त करते थे। प्रत्येक हिंदू घर में रामचरितमानस की एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए—इस पर वे विशेष बल दिया करते थे। मानस के कितने ही दोहे तथा चौपाइयाँ उन्हें कंठस्थ थीं। गीता के निम्नलिखित श्लोक का अनुकरण करने में उनकी आस्था थी :

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा ये प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥

दूसरों को भी यही उपदेश देते कि गीता के इस श्लोक का अनुसरण करो तो चित्त को शांति प्राप्ति होगी।

जीवन पर्यन्त महान कार्यों को प्रतिपादित करते हुए इस महान् आत्मा ने इस संसार में परोपकार की उच्च भावना से प्रेरित होकर इस नाशवान् देह को अपने सेवक के प्राण बचाने में त्याग दिया। यद्यपि वे उसे न बचा सके पर उनका यह त्याग न जाने कब तक हम लोगों को इस उच्च आदर्श पर चलने को प्रेरित करता रहेगा। डाक्टर साहब आज हमारे मध्य नहीं हैं परन्तु अपने कार्यों के कारण वे मर कर भी अमर हैं। परोपकार में रत व्यक्ति सदैव ही मर कर भी अमर रहते हैं। हमें उन पर गर्व है।

डा० गोरख प्रसाद का कृतित्व

इस प्रकरण में स्वर्गीय डा० गोरखप्रसाद जी की वे रेडियो वार्ताएं प्रस्तुत की जारही हैं जो न तो 'विज्ञान' में और न दूसरी पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हो पायीं थी। हमारी इच्छा तो यह थी कि सूची में दी हुई समस्त रेडियो वार्ताएं संग्रहीत कर दीजाती परन्तु सब की सब वे रेडियो-स्टेशन से भी न उपलब्ध हो सकी।

जितनी भी वार्ताएं दी जा रही हैं उनके प्रस्तुत किये जाने में 'आकाशवाणी, इलाहाबाद' ने योग दिया है। एतदर्थ हम उसके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करते हैं।

— सम्पादक

आकाशवाणी, इलाहाबाद से प्रसारित डा० गोरखप्रसाद की उपलब्ध वार्ताओं की सूची

आकाशवाणी इलाहाबाद के सौजन्य से

	विषय	प्रसारण तिथि
१.	Barah Mihir	२८. ११. ५३
२.	तुम्हारे आस पास	२. १. ५७
३.	,, ,, ,,	७. ४. ५७
४.	,, ,, ,,	५. ५. ५७
५.	Why a new Calendar	११. ५. ५७
६.	Background of Science: the Postulates of Science	९. ७. ५७
७.	स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य	१६. ८. ५७
८.	एटम बम	१३. १०. ५७
९.	नकली चाँद	१०. ११. ५७
१०.	परमाणु भट्टियों का उपयोग एवं भविष्य	२२. ११. ५७
११.	विज्ञान के चमत्कार: दो सौ इंच की दूरबीन	८. १२. ५७
१२.	**भारतीय पंचांगों की परम्परा** १. सौर पंचांग	१०. २. ५८
१३.	,, ,, ,, ,, २. चंद्र पंचांग	२४. २. ५८
१४.	,, ,, ,, ,, ३. पंचांग शोधन	१०. ३. ५८
१५.	,, ,, ,, ,, ४. भारत का राष्ट्रीय पंचांग	२४. ३. ५८
१६.	झूठ सच परखने की मशीन	१२. १०. ५८
१७.	रडार	९. ११. ५८
१८.	हमारे सूर्य के ग्रह और उपग्रह	२. १. ५९
१९.	वैज्ञानिक क्रान्तियाँ: आकर्षण का सिद्धांत	५. २. ५९
२०.	राष्ट्रीय पंचांग की विशेषताएँ	२२. ३. ५९
२१.	ये नवीनतम आविष्कार	१९. ४. ५९
२२.	,, ,, ,,	१७. ५. ५९
२३.	,, ,, ,,	२१. ६. ५९
२४.	अणु विज्ञान की प्रगति	२५. ९. ५९
२५.	Unravelling the mystery of Life in the Cosmological Principle	२२. ३. ६०
२६.	विज्ञान की दुनिया	२४. ४. ६०
२७.	,, ,, ,,	१५. ५. ६०
२८.	,, ,, ,,	२६. ६. ६०
२९.	सुधाकर द्विवेदी	२८. ११. ६०
३०.	अंतरिक्ष के अद्भुत दृश्य	१५. ३. ६१

भारतीय पंचांगों की परंपरा

१. सौर पंचांग

समय नापने के लिये तीन प्रमुख इकाइयाँ हैं... दिन, महीना और वर्ष । ये इकाइयाँ हमको प्रकृति से मिली हैं, मनुष्य इनको छोटा बड़ा नहीं कर सकता । आदिम काल से ही मनुष्य ने दिन रात का नियमानुसार क्रम से आना, चंद्रमा का नियमानुसार घटना-बढ़ना और ऋतुओं का बार-बार एक ही क्रम में नियमित रूप से आना देखा होगा और इन्हीं प्राकृतिक घटनाओं से मनुष्य को दिन, मास और वर्ष की इकाइयाँ मिलीं । एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक एक दिन, एक पूर्णिमा से दूसरी पूर्णिमा तक एक मास और एक वर्षा ऋतु से दूसरी वर्षा ऋतु तक एक वर्ष होता है । ये स्थूल मान हैं । अधिक सूक्ष्म मान हमें तब मिलता है जब हम बहुत से दिनों, या बहुत से महीनों या बहुत से वर्षों का मध्यमान, अर्थात् औसत लेते हैं ।

परन्तु एक कठिनाई आरम्भ से ही पड़ी होगी । वह यह कि एक मास में पूरे-पूरे दिन नहीं होते, एक वर्ष में पूरे-पूरे महीने नहीं होते । गिनते रहने से आदिम मनुष्य को पता चला होगा कि एक महीने में लगभग तीस दिन होते हैं। मनुष्य के हाथों में दस अंगुलियाँ होती हैं। इसीसे जो संख्या दस का कोई गुणनफल होती है वह विशेष संतोषजनक जान पड़ती है । १०, २०, ३०, ४० इत्यादि ये संख्याएँ अवश्य बहुत सरल जान पड़ती हैं । इसलिये जब गिनने से पता चला होगा कि महीने में लगभग ३० दिन होते हैं तो स्वभावतः मान लिया गया होगा कि महीने में ठीक ३० दिन होते हैं । परन्तु ज्यों ही सभ्यता का इतना विकास हुआ होगा कि लोग लगातार कई महीनों तक दिनों का हिसाब रक्खें तो पता चला होगा कि महीने में बराबर ३० दिन मानते रहने से गड़बड़ी हो जाती है । यदि पूर्णिमा से महीने का आरम्भ समझा जाय तो देखा गया होगा कि प्रत्येक महीने में बराबर ३० दिन मानते रहने से २० महीने में लगभग ६ दिन का अन्तर पड़ जाता है । जिस गिनती के हिसाब से पूर्णिमा होनी चाहिये उसके ६ दिन पहले ही पूर्णिमा हो चुकी होती है । इसलिये बहुत जल्द ही लोगों ने कुछ उपाय सोच लिया होगा । उपाय अन्त में यही निकला कि किसी महीने में ३० दिन रक्खे जायँ, किसी में २९, और उनका क्रम ऐसा रक्खा जाय कि महीने का अन्त या आरम्भ तभी हो जब पूर्णिमा हो ।

हमारे देश के कुछ प्रान्तों में अथवा दूसरे देशों में पूर्णिमा के बदले अमावस्या से एक महीने का अन्त और दूसरे का आरम्भ माना जाता था और अब भी माना जाता है; परन्तु चाहे पूर्णिमा से मास का अन्त हो, चाहे अमावस्या से, कठिनाई एक समान रहती है और हल भी वही निकलता है, अर्थात् यह कि किसी महीने में तीस दिन रहें, और किसी में उनतिस दिन ।

हिन्दुओं ने महीनों की गणना के लिए ऐसे पक्के नियम बना लिए हैं कि उनको कभी दुविधा नहीं रहती कि महीना कब से आरम्भ होगा । परन्तु मुसलमान अधिक क्रियात्मक हैं । जब तक वे अपनी आँख से देख नहीं लेते कि अमावस्या के बाद चन्द्रमा फिर दिखायी देने लगा है तब तक वे महीने का आरम्भ निश्चित नहीं करते । कुछ लोग इसका यह अर्थ लगा सकते हैं कि वह लोग गणित में कच्चे हैं, परन्तु बात ऐसी नहीं है । हिन्दू लोग अपने गणित के भरोसे आँख मूँद कर वर्ष का आरम्भ ऐसे दिन से करते हैं जो अब लगभग २२ दिन

पिछड़ गया है। गणित में सुविधा है। वर्षों पहले से बताया जा सकता है कि अमुक तिथि कब पड़ेगी, परन्तु आँख से देखी घटनाएँ अधिक सच्ची उतरती हैं।

अभी तक तो हमने दिन और महीने के संबंध पर विचार किया है। अब वर्ष और महीने के संबंध पर विचार करना चाहिये। ध्यान देने पर आदिम लोगों को पता चला होगा कि एक वर्ष में १२ महीने से कुछ अधिक समय लगता है। परन्तु बरसात कभी जल्द शुरू हो जाती है कभी देर में शुरू होती है। इसलिए ठीक-ठीक पता सुगमता से नहीं चलता कि एक वर्ष में ठीक कितने दिन होते हैं। आधुनिक वेधों से हम जानते हैं कि एक वर्ष में लगभग तीन सौ पैंसठ दशमलव दो, चार, दो दो, दिन होते हैं, परन्तु प्राचीन समय में अधिकांश जातियाँ वर्ष को ३६० दिन का ही मानती थीं। इसका कारण यह था कि महीने में ३० दिन और वर्ष में १२ महीने मानने में विशेष सुविधा थी। न दशमलव को वे जानते थे, न भिन्नों को। जब सभ्यता का विकास इतना हो गया होगा कि वर्षों तक लगातार दिनों, महीनों और वर्षों का हिसाब रक्खे जाने की अवश्यकता पड़ी होगी तब वर्ष की लंबाई का अधिक सच्चा ज्ञान हुआ होगा।

भिन्नों और दशमलवों के प्रयोग में सबको कठिनाई पड़ती है इसलिए विविध देश के लोगों ने अपने अपने लिए सुविधाजनक नियम बना लिये हैं। यूरोप के लोग वर्ष में ठीक १२ महीने रखते हैं। वे इसकी चिन्ता नहीं करते कि महीना पूर्णिमा पर या अमावस्या पर अन्त हो। सभी लोग जानते हैं कि जनवरी, फरवरी आदि महीनों के अन्त तथा चन्द्रमा की कलाओं में कोई सम्बन्ध नहीं है।

मुसलमानों ने अपने धार्मिक कार्यों के लिए वर्ष और ऋतुओं के सम्बन्ध का परित्याग कर डाला है। वे अपने वर्ष में ठीक बारह चाँद मास रखते हैं और इसकी चिन्ता नहीं करते कि वर्ष का आरम्भ बराबर एक ही ऋतु में हुआ करे। उनके एक महीने का नाम मुहर्रम है। इसी महीने में मुहर्रम का त्योहार पड़ता है। सभी ने देखा होगा कि यह त्योहार एक वर्ष से कम समय में ही आ जाता है, और इसलिये यह कभी बरसात में, कभी गरमी में, कभी जाड़े में पड़ता है। कभी यह होली के आस-पास पड़ता है, कभी दशहरे में।

अधिकांश हिन्दुओं ने न महीने को छोड़ा, न वर्ष को। उनका महीना उत्तर प्रदेश में बराबर पूर्णिमा पर समाप्त होता है, उनका वर्ष सदा उस ऋतु में समाप्त होता है जो चैत के आरम्भ में इन दिनों रहती है। यह अवश्य सत्य है कि हिन्दुओं के पंचांगकार वर्ष की जिस लंबाई को अभी तक मानते आये हैं वह कुछ गलत है, परन्तु त्रुटि बहुत अधिक नहीं है। यदि सरकार द्वारा घोषित पंचांग-सुधार को लोग मान लेंगे तो यह दोष भी मिट जायगा।

वर्ष की औसत लम्बाई ठीक रखने के लिए एक वर्ष में हिन्दू कभी १२ महीने रखते हैं, कभी १३। इस फालतू महीने को मलमास कहते हैं। परन्तु वर्ष में एक फालतू महीने के आ जाने से असुविधा अवश्य होती है। नौकर को किसी वर्ष १२ बार वेतन देना पड़ता है, किसी वर्ष १३ बार। अन्य कठिनाइयाँ भी हैं। इन कठिनाइयों से बचने के लिये भारत के कुछ प्रान्तों में सौर पंचांग चलता है। इस पद्धति में सूर्य के आकाशीय मार्ग को ठीक १२ बराबर भागों में बाँट दिया गया है। जब तक सूर्य किसी एक मार्ग में रहता है तब तक महीना नहीं बदलता। जब वह एक भाग से दूसरे में जाता है तो महीना बदलता है। इस पद्धति में महीने के आरम्भ और चन्द्रमा की कला में कोई संबंध नहीं रहता, ठीक उसी तरह जैसे जनवरी, फरवरी आदि में।

परन्तु भारतीय सौर पंचांग अधिक वैज्ञानिक है, सूर्य की स्थिति से महीनों का नाम पड़ता है। यूरोपीय पद्धति में किसी महीने में ३०, किसी में ३१ और किसी में केवल २८ दिन मनमानी रीति से रख दिये गये हैं।

सभी विद्यार्थी जानते हैं कि एक चक्कर में ३६० डिगरी होती हैं। इसका बारहवाँ भाग हुआ ३० डिगरी। यदि सूर्य प्रत्येक ३० डिगरी एक ही समय में चलता तो सब सौर महीने बराबर होते, परन्तु सूर्य नियमानुसार कुछ समय तक धीरे चलता है, तब वेग बढ़ते-बढ़ते महत्तम तक पहुँचता है और फिर घटते-घटते पहले जैसा हो जाता है। इसलिये सौर मास छोटे-बड़े होते हैं। सौर पंचांग बंगाल, उड़ीसा और मद्रास में अधिक प्रचलित है।

प्रसारण तिथि १०-२-५८

२. चांद्र पंचांग

समय नापने की तीन प्रमुख इकाइयाँ हैं... दिन, महीना और वर्ष। इन तीनों के सम्बन्ध सरल नहीं हैं। प्रतिदिन के व्यवहार के लिये लोग इनके बीच कोई सरल संबंध स्थापित कर लेते हैं, परन्तु किसी देश में एक प्रकार का सम्बन्ध स्थापित होता है, किसी में दूसरे प्रकार का। इसीसे संसार में पंचांग की विविध प्रणालियाँ देखने में आती हैं। उदाहरणतः यूरोप के लोग केवल वर्ष को ठीक रखते हैं। महीनों के लिये कोई प्राकृतिक घटना का वे आश्रय नहीं लेते। उनका महीना न पूर्णिमा से आरम्भ होता है और न अमावस्या से। फिर उनके महीनों में दिनों की संख्या भी किसी प्राकृतिक घटना से सम्बंधित नहीं है।

मुसलमानों में, महीने चन्द्रमा पर आश्रित हैं। उनके महीने का आरम्भ, बराबर अमावस्या के बाद, चाँद के पहली बार दिखलायी देने पर निर्भर रहता है। उनका वर्ष ठीक १२ चांद्र मासों का होता है। इसलिये उनका पंचांग पूर्णतया चांद्र होता है। परन्तु उनका वर्ष, ऋतुओं के अनुसार नहीं चलता। उनका वर्ष ऋतुओं के अनुसार चलने वाले वर्ष से लगभग ग्यारह दिन छोटा होता है। इसका परिणाम यह होता है कि उनके वर्ष का आरम्भ कभी जाड़े में पड़ता है, कभी बरसात में, कभी गरमी में। उदाहरणतः यदि उनके वर्ष का आरम्भ संयोगवश कभी पहली जनवरी को पड़े तो आगामी वर्ष उनके वर्ष का आरम्भ ११ दिन पहले, अर्थात् लगभग २० दिसम्बर को पड़ेगा, उसके बाद वाले वर्ष का आरम्भ ९ दिसम्बर को पड़ेगा, इत्यादि।

मुसलमानों का यह धार्मिक वर्ष है। उनके त्योहार अवश्य इसी वर्ष के अनुसार रक्खे जाते हैं। परन्तु भारत के मुसलमान बादशाहों को भी लगान वसूल करने के लिये विवश होकर एक दूसरा वर्ष रखना पड़ा। इसका कारण यह है कि १२ चांद्र महीनों के वर्ष के अनुसार फसल तैयार नहीं होती। तीन ही वर्ष के भीतर एक महीने से अधिक का अन्तर पड़ जाता है। और यदि किसान से फसल तैयार होने के एक महीने पहले ही लगान माँगा जाय तो वह बेचारा कहाँ से देगा? इसलिए एक और वर्ष रखना ही पड़ा, जिसका नाम फसली वर्ष पड़ा, क्योंकि इसकी लम्बाई एक फसल से आगामी वर्ष की फसल तक की औसत लम्बाई होती है।

हिन्दुओं में दो प्रथाएँ चालू हैं। एक में महीनों का सम्बन्ध पूर्णिमा या अमावस्या से नहीं है। उसका सम्बन्ध सूर्य की चाल से है। जितने काल में सूर्य तारों के बीच एक चक्कर का बारहवाँ भाग चलता है, उतना

एक महीना माना जाता है। इस पद्धति को सौर पंचांग कहते हैं। दूसरी पद्धति में, पूर्णिमा से पूर्णिमा तक या अमावस्या से अमावस्या तक चलते हैं। उसे चांद्र पंचांग कहते हैं। परन्तु हिन्दुओं के चांद्र पंचांग में वर्ष का हिसाब भी ठीक रहता है। इसका कारण यह है कि हिन्दुओं के चांद्र पंचांग में एक वर्ष में कभी १२ महीने रक्खे जाते हैं और कभी १३। तेरह महीने वाले वर्ष को अधिवर्ष कहते हैं, और साधारण तथा अधिवर्षों का क्रम ऐसा रक्खा जाता है कि वर्षों का औसत ठीक वही हो जो ऋतुओं के अनुसार चलने वाले वर्ष का है।

कुछ लोगों की धारणा है कि वर्ष ठीक उतने समय को कहते हैं जितने में सूर्य तारों के हिसाब से एक चक्कर लगाता है। परन्तु वर्ष के नाम से ही स्पष्ट है कि वर्ष को ऋतुओं के हिसाब से चलना चाहिए। आप्टे के अंग्रेजी-संस्कृत कोष में वर्ष के लिए आठ शब्द दिये हैं: वर्ष, संवत्सर, वत्सर, अब्द, हायन, समा, शरद और संबत, और इन सब का सम्बंध ऋतुओं से है। वर्ष और वर्षा का सम्बंध स्पष्ट ही है। एक बरसात से दूसरी बरसात तक के औसत काल को लोग वर्ष कहते थे, या एक शरद ऋतु से दूसरी शरद ऋतु तक के काल को। संवत्सर का अर्थ है वह काल जिसमें सब ऋतुएँ एक बार आ जायँ। इसी प्रकार अन्य शब्दों के भी अर्थ हैं। परन्तु हमारे प्राचीनतम ज्योतिषी यह नहीं जानते थे कि तारों के हिसाब से सूर्य के एक चक्कर लगाने में और ऋतुओं के हिसाब से माने गये वर्ष में कोई अन्तर है, यह अन्तर बहुत सूक्ष्म है और इसका पता बहुत पीछे चला। परन्तु यह अन्तर जुड़ता चलता है और इससे हजार दो हजार वर्ष बीतने पर कई दिन का अन्तर पड़ जाता है। प्रधानतः इसी कारण से हिन्दू वर्ष का आरम्भ अब लगभग २२ दिन पिछड़ गया है।

इन बातों से स्पष्ट हो गया होगा कि हिन्दू चांद्र पंचांग वस्तुतः चन्द्रमा और सूर्य दोनों की गतियों पर निर्भर है। इसीलिये इसे यूरोपीय लोग luni-solar calendar अर्थात् चांद्र-सौर-पंचांग कहते हैं। इसमें महीने, चन्द्रमा की कला से, और वर्ष, सूर्य की स्थिति से, निर्धारित किये जाते हैं, और वर्ष में, कभी १२, कभी तेरह, महीने रहते हैं। इसी को लोग संक्षेप में चांद्र पंचांग कहते हैं।

पंचांग का अर्थ है वह जिस में पाँच अंग हों। यदि आप किसी पत्रे को देखेंगे तो उसमें आपको पंचांग के पाँचों अंग मिलेंगे। ये अंग हैं (१) वार, (२) तिथि, (३) नक्षत्र, (४) योग और (५) करण। वार यह बताता है कि आज कौन सा दिन है . . . रविवार, सोमवार, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, या शनिवार।

तिथियों से वही काम निकलता है जो अंग्रेजी तारीखों से। परन्तु तिथियों में एक विशेष कठिनाई यह है कि तिथियाँ सदा क्रम से नहीं आतीं। कभी-कभी एक तिथि छूट जाती है और कभी-कभी एक ही तिथि दो बार आ जाती है। उदाहरणार्थ, तृतीया, अर्थात् तीसरी तिथि, के बाद साधारणतः तो चतुर्थी आती है, परन्तु कभी कभी तृतीया के बाद पंचमी आ जाती है और कभी-कभी तृतीया के बाद फिर तृतीया ही पड़ती है। ज्योतिष न जानने वाले लोगों को यह सब बहुत आश्चर्यजनक लगता है। परन्तु कारण समझना, बहुत कठिन नहीं है। वह इस प्रकार है:

एक चांद्र मास में लगभग साढ़े उनतीस दिन होते हैं इसलिये महीने में तीस तिथियाँ रक्खी गयी हैं। चंद्रमा के आकाशीय मार्ग को जितना यह एक अमावस्या से आगामी अमावस्या तक चलता है, तीस बराबर भागों में बाँट दिया गया है और जब तक चन्द्रमा इनमें से किसी एक भाग में रहता है, एक तिथि रहती है, ज्योंही चन्द्रमा एक भाग से दूसरे में जाता है त्योंही ज्योतिष तिथि बदल जाती है, परन्तु प्रतिदिन के कार्य में

दिन या रात के बीच में तिथि बदलने से कठिनाई पड़ती है। इसलिये नियम यह माना गया है कि सूर्योदय के समय जो तिथि ज्योतिष के अनुसार रहे उसी तिथि को नागरिक कार्यो के लिये आगामी सूर्योदय तक माना जायगा। उदाहरणतः यदि आज सूर्योदय के समय तृतीया थी तो आज दिन भर और फिर रात भर साधारण कामकाज के लिये तृतीया ही मानी जायगी। यदि कल सूर्योदय के समय ज्योतिष के अनुसार चतुर्थी रहेगी तो कल दिन भर और रात भर साधारण कामकाज के लिये चतुर्थी मानी जायगी।

परन्तु चन्द्रमा आकाश में समान वेग से नहीं चलता। यह कभी मंद चाल से चलता है, कभी तीव्र गति से। इसलिये ज्योतिष तिथि कभी बड़ी, कभी छोटी होती है। यदि आज के सूर्योदय के बाद ज्योतिष तिथि तृतीया दसपाँच मिनट बाद ही समाप्त हो गयी और ज्योतिष चतुर्थी इतनी छोटी हुई कि वह आगामी सूर्योदय के पहले ही समाप्त हो गयी, तो स्वभावतः कल पंचमी होगी।

इसी प्रकार यदि आज के सूर्योदय के दसपाँच मिनट पहले ज्योतिष तृतीया का आरम्भ हुआ था, और चन्द्र की मन्द गति के कारण ज्योतिष तृतीया का अन्त कल के सूर्योदय के बाद होगा, तो स्वभावतः प्रतिदिन के काम काज के लिये कल तृतीया ही रहेगी।

नक्षत्र बताता है कि तारों के बीच चन्द्रमा कहाँ है, योग बताता है कि आकाश के एक विशेष बिन्दु से सूर्य और चन्द्रमा की दूरियों का योग, अर्थात् जोड़, कितना है, और करण बताता है कि तिथि का प्रथम आधा चालू है या दूसरा।

इस प्रकार पांच अंग बताने में लाभ यह है कि पीछे कोई तिथि बदल कर महत्त्वपूर्ण कागजों में गड़बड़ी आसानी से नहीं कर सकता। जब वह पाँच बातें बदलेगा तभी वह तिथि बदल पायेगा। जब सरकार किसी को पाँच सौ रुपये देती है तो पाँच सौ को एक बार अंकों में लिखती है और एक बार शब्दों में, और इतने ही को पर्याप्त न समझ कर लाल रंग में लिख देती है कि पाँच सौ एक रुपये से यह रकम कम है। हमारे पंचांग के पाँचों अंगों की आवश्यकता भी इसी प्रकार की है।

प्र० ति० २४-२-१९५८

३. पंचांग शोधन

पहले बताया जा चुका है कि समय की तीन प्राकृतिक इकाइयाँ हैं : दिन, चाँद्र मास : अर्थात् एक पूर्णिमा से दूसरी पूर्णिमा तक का औसत समय : और वर्ष : अर्थात् एक बरसात से दूसरी बरसात तक का औसत समय। पंचांग की कुल समस्या इन तीन प्राकृतिक इकाइयों में सुविधाजनक सम्बंध स्थापित करने की है। पंचांग में संशोधन करने की आवश्यकता या तो इसलिए पड़ती है कि प्रचलित पंचांग में दिन, मास और वर्ष का-विशेषकर दिन और वर्ष का-सम्बंध पर्याप्त शुद्धता से नहीं जोड़ा गया है, अथवा आवश्यकता इसलिये पड़ती है कि प्रचलित सम्बंध इतना सुविधाजनक नहीं है जितना हो सकता है और होना चाहिए।

सुविधा के लिये पंचांग संशोधन का न्यूनतम उदाहरण वह है जिसका प्रस्ताव हाल में संयुक्त राष्ट्र के सम्मुख उपस्थित किया गया था और जिसे अस्वीकार कर दिया गया। कुछ लोगों की शिकायत है कि वर्तमान यूरोपीय पद्धति में प्रत्येक वर्ष एक ही दिन से आरम्भ नहीं होता, कभी इसका आरम्भ रविवार से

होता है, कभी सोमवार से; कभी मंगल से, इत्यादि। फिर, वर्ष में या तो ३६५ दिन रक्खे जाते हैं या ३६६, और ये दोनों ही संख्याएँ ४ से पूरी-पूरी विभाजित नहीं होतीं। इसलिए जब वर्ष को चार टुकड़ों में बाँटा जाता है तो किसी एक टुकड़े में एक या दो दिन अधिक पड़ता है। इन असुविधाओं से बचने के लिये नये पंचांग का प्रस्ताव किया गया था। नये पंचांग में ३६४ काम करने के दिन थे और साधारण वर्षों में एक दिन तथा अधिवर्षों में (लीप ईयर्स) दो दिन बिना नाम के थे। प्रस्ताव के अनुसार प्रत्येक वर्ष रविवार से आरम्भ होता। जनवरी में ३१ दिन, फरवरी में सदा ३० दिन, मार्च में ३० दिन, अप्रैल में ३१ दिन, मई में ३० दिन और जून में ३० दिन रहते। इस प्रकार ३० जून सदा शनिवार को पड़ता। इसके बाद प्रचलित प्रथा के अनुसार रविवार आना चाहिये। परन्तु प्रस्ताव यह था कि ३० जून के बाद वाला दिन छुट्टी का दिन रहे। उसका नाम विश्ववार रख दिया जाय और सारे संसार में उस दिन छुट्टी मनायी जाय, परन्तु वह दिन न रविवार कहलाये, न सोमवार, न सप्ताह के प्रचलित सात दिनों में से अन्य कोई दिन। वह केवल विश्ववार कहलाये। विश्ववार के बाद पहली जुलाई रहे और वह रविवार का दिन माना जाय, फिर उसके बाद सोमवार, मंगल आदि नाम साधारण क्रम से चलें। इस प्रकार प्रस्ताव के अनुसार प्रत्येक वर्ष में केवल ३६४ दिन ऐसे थे जिन पर तारीखें पड़तीं और जिनको सप्ताह वाले दिनों के सात नाम क्रमानुसार दिये जाते। चूँकि ३६४ को ७ से भाग देने पर यह पूरा-पूरा विभाजित हो जाता है और कुछ शेष नहीं बचता, इसलिये प्रस्ताव के अनुसार वर्ष में पूरे-पूरे सप्ताह पड़ते और फलतः प्रत्येक वर्ष रविवार से ही आरम्भ होता। ३६४ की संख्या ४ से भी विभाजित हो जाती है। इसलिये वर्ष में ४ बराबर पाव, अर्थात चतुर्थांश, होते, अधिवर्षों में दिसम्बर के अन्त में एक द्वितीय विश्ववार होता।

इस प्रस्ताव ने अमरीका में सबसे अधिक बल प्राप्त किया। वहाँ पंचांग शोधन सभा स्थापित हो गयी और प्रस्ताव के समर्थन में एक मासिक पत्रिका भी निकलने लगी। परन्तु अधिकांश लोगों को प्रस्तावित सुधार में विशेष लाभ दिखायी नहीं पड़ा। बहुत से लोग तो इसके कट्टर विरोधी थे। उनका कहना था कि इससे पूजापाठ में गड़बड़ी पड़ जायगी। प्रत्येक सातवें दिन ईसाई लोग गिरजा घर जाते हैं और ईश्वर की विशेष पूजा करते हैं। बीच में विश्ववार आ जाने से एक रविवार के आठ दिन बाद दूसरा रविवार पड़ता। यह बहुतेरों को अनुचित जान पड़ता है। यहूदी लोग भी हर सातवें दिन को पूजापाठ में बिताते हैं, उस दिन संसारिक कार्यों से अपने को वे मुक्त रखते हैं। उन्होंने भी इसका घोर विरोध किया। भारत में मलमास और अतिरिक्त तिथि से लोग परिचित हैं ही, इसलिये यदि बीच में एक रविवार और आ जाय तो क्या बड़ी बात हुई? संभवतः इसी विचार से, या प्रस्तावित सुधार के प्रति उदासीन रहने के कारण, भारतवासियों की ओर से इसका विरोध नहीं हुआ। वस्तुतः स्वर्गीय डाक्टर मेघनाथ साहा ने इस प्रस्ताव को स्वीकृत कराने के लिये बहुत चेष्टा की, परन्तु विश्व सम्मति इसके विरुद्ध पायी गयी।

अब उन सुधारों पर हम विचार करेंगे जो वर्ष की नाप ठीक-ठीक ज्ञात न रहने से करनी पड़ती है। यूरोप के पंचांग के इतिहास से पंचांग की इस प्रकार की कठिनाइयों पर काफी प्रकाश पड़ता है। वहाँ पहले वर्ष में दिनों की संख्या निश्चित न थी। पुरोहितों की एक समिति निर्धारित करती थी कि नवीन वर्ष का आरम्भ कब से होगा। घोषित करने के लिये चिल्लाना पड़ता है और इस क्रिया के लिये जो रोमन शब्द था वह अंग्रेजी शब्द 'काल' से सम्बंधित है। 'काल' करने से सम्बन्ध रखने के कारण ही पंचांग का अंग्रेजी नाम कैलेंडर पड़ा।

आरम्भ में तो व्यवस्था ठीक थी, परन्तु पीछे भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया कि कभी-कभी प्रान्तीय शासक अनुचित दबाव डाल कर या घूस देकर वर्ष की लम्बाई को अपनी कार्यसिद्धि के अनुसार छोटा या बड़ा करवा लेते थे। इस भ्रष्टाचार को बन्द करने के लिये रोमन सम्राट जूलियस सीजर ने सन् ४६ ईस्वी पूर्व में आज्ञा दी कि तीन वर्ष तक लगातार वर्ष में ३६५ दिन रहा करेंगे और चौथे वर्ष ३६६ दिन। पिछले वर्षों में जो गड़बड़ी पड़ गई थी उसे मिटाने के लिये जूलियस सीजर ने प्रथम वर्ष में ३६५ से ८० दिन अधिक रख दिये।

जूलियस सीजर का नियम डेढ़ हजार वर्षों तक चलता रहा। परन्तु लोगों ने देखा कि क्रिस्तानी त्यौहार ऋतु के अनुसार नहीं पड़ रहे हैं। उदाहरणतः, क्रिसमस जाड़े में मनाया जाता था, यह त्यौहार धीरे धीरे गरमी की ओर खिसक रहा था। कारण यह था कि जूलियस सीजर की व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक वर्ष में औसतन ठीक तीन सौ सवा पैंसठ दिन पड़ रहे थे, परन्तु वास्तविक वर्ष में तीन सौ पैंसठ दशमलव दो, चार, दो, दो, दिन होते हैं, अर्थात् जूलियस सीजर का वर्ष प्राकृति वर्ष से लगभग ११ मिनट बड़ा था। यही अन्तर जुटते-जुटते सैकड़ों वर्षों में कई दिन के बराबर हो गया था। इसलिये तेरहवें पोप ग्रेगरी ने यह आज्ञा दी कि प्रत्येक साधारण वर्ष में ३६५ दिन होंगे, प्रत्येक चौथा वर्ष अधिवर्ष होगा, जिसमें एक दिन अधिक रहेगा, परन्तु यदि वर्ष संख्या के अन्त में दो शून्य रहें तो वह अधिवर्ष तभी होगा जब वर्ष संख्या ४०० से विभाजित हो सके। उदाहरणतः सन् १९०० जूलियस सीजर के अनुसार अधिवर्ष होता क्योंकि यह ४ से विभाजित हो सकता है, परन्तु ग्रेगरी पद्धति के अनुसार यह अधिवर्ष नहीं माना गया, क्योंकि यह ४०० से विभाजित नहीं होता। पोप ग्रेगरी ने यह भी आज्ञा दी कि जितने दिन जूलियन पद्धति के कारण बढ़ गये हैं वे छोड़ दिये जायँ। इंगलैंड ने ग्रेगरी पद्धति को तुरन्त नहीं अपनाया, और जब अपनाया तब १२ दिन छोड़ने की आवश्यकता पड़ गयी थी। इसलिये सन् १७५२ में इंगलैंड की सरकार की आज्ञा से वहाँ सितम्बर में दूसरी तारीख के बाद चौदहहीं तारीख मनायी गयी।

मुसलमानों के धार्मिक वर्ष में ठीक १२ चांद्रमास होते हैं। वे ऋतुओं की परवाह नहीं करते और त्यौहार गणना के अनुसार नहीं, चन्द्रमा को आँखों से देखकर, निर्धारित करते हैं। इसलिये उनको पंचांग शोधन की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

पंचांग के प्रश्न पर हिन्दुओं में एकता नहीं है। किसी पत्रे में कुछ वर्ष-मान अपनाया जाता है, किसी में कुछ। परन्तु अन्तर थोड़ा ही थोड़ा है, जिसका कारण यह है कि हमारे प्राचीन आचार्य पर्याप्त शुद्ध नियम बना गये थे। तो भी, भारत की एकता के लिए, यह आवश्यक है कि सारे देश में एक पंचांग अपनाया जाय। इसी उद्देश्य से भारत सरकार ने पंचांग संशोधन समिति बनायी थी और उसकी सिफारिशों को मान्यता दी है। इस प्रकार नवीन राष्ट्रीय पंचांग बना है जिसके सम्बन्ध में अगली वार्ता में आपको बताया जायगा।

प्र० ति० १०-३-५८

४. भारत का राष्ट्रीय पंचांग

पंचांग के संशोधन की आवश्यकता या तो अधिक सुविधा के लिए या अधिक शुद्धता के लिए की जाती है। इन दोनों बातों को ध्यान में रख कर ही भारत का राष्ट्रीय पंचांग चुना गया है। भारत में दुर्भाग्यवश

पंचांग की कई प्रणालियाँ हैं। सरकारी कामों के लिए यूरोपीय पद्धति चलती है, परन्तु धार्मिक कार्यों तथा देसी व्यापार में कोई चांद्र पंचांग मानता है तो कोई सौर। एक ही महीने को कहीं चैत माना जाता है, कहीं बैसाख, और इसी प्रकार शेष महीनों में भी एक महीने का अन्तर पड़ता है। चांद्र तिथियों में भी विभिन्न पत्रों में एक दिन का अन्तर पड़ जाया करता है। चांद्र पंचांगों में किन्हीं-किन्हीं वर्षों में एक महीना अधिक पड़ता है, इस पर चांद्र पंचांग मानने वालों में भी कभी-कभी इस पर मतभेद हो जाता है कि कौन-सा महीना मल-मास है, कौन-सा शुद्ध। फिर, चांद्र पंचांगों में कहीं अमावस्या पर महीने का अन्त होता है और कहीं पूर्णिमा पर। महत्त्वपूर्ण त्यौहार भी विभिन्न स्थानों में एक दो दिन आगे पीछे माने जाते हैं। संवत् कहीं विक्रमी संवत् चलता है, कहीं शक। वर्ष का आरंभ भी विभिन्न पद्धतियों में विभिन्न दिनों से होता है, ऐसी परिस्थिति में देश के नेताओं का इस सम्बंध में चिन्तित होना स्वाभाविक था। इसलिए हमारी सरकार ने सन् १९५२ में एक कमेटी स्थापित की जिसको यह काम सौंपा गया कि वह भारत में प्रचलित पद्धतियों की जाँच करे और कोई उपाय बताये जिससे देश में पंचांग संबंधी एकता आ जाय। इस समिति ने सब पद्धतियों की जाँच की। उन्होंने सरकार के सामने निम्न सुझाव रखे :

(१) शक संवत् का प्रयोग किया जाय। इसका कारण यह है कि सारे भारत में यह संवत् पहले से ही किसी न किसी रूप में चल रहा है। जहाँ इसको प्रमुख स्थान प्राप्त नहीं था वहाँ कम से कम गौण स्थान अवश्य प्राप्त था। यदि आप उत्तर भारत के रहने वाले हैं और समझते हैं कि इधर शक संवत् का चलन नहीं है तो आप अपनी जन्मपत्री खोल कर देखिये। आप को पता चलेगा कि विक्रमी संवत् से साथ-साथ शक संवत् भी उसमें दिया हुआ है। प्राचीन ज्योतिष ग्रंथों में शक संवत् ही मिलता है। सब बातों पर विचार करके कमेटी इस परिणाम पर पहुँची कि सारे भारत में शक संवत् ही मान्य हो सकता है। कुछ लोग आपत्ति करते हैं कि शक संवत् से यह ध्वनि निकलती है कि हमारी सभ्यता यूरोपीय सभ्यता से कम प्राचीन है, क्योंकि शक संवत् संख्या ईस्वी सन् संख्या से छोटी है। परन्तु इस बात में विशेष महत्व नहीं है। यदि हमें अपनी सभ्यता की प्राचीनता का दिग्दर्शन कराना है तो हमें सतयुग के प्रारंभ से गणना करनी चाहिए, तब संवत् का अंक लाखों में बताना पड़ेगा, या कम से कम कलियुग के आरंभ से गणना करनी चाहिए, जैसा सूर्य सिद्धान्त तथा कुछ अन्य ज्योतिष ग्रंथों में किया गया है। परन्तु नहीं, लम्बी-चौड़ी वर्ष-संख्या से हमारी सभ्यता अधिक आदरणीय न होगी। हम यदि स्वतंत्रता प्राप्ति से गणना आरंभ करें तो भी हमारी सभ्यता विद्वानों की दृष्टि में वैसी ही आदरणीय रहेगी जैसी यह सदा से रही है।

(२) वर्ष विषुव के क्षण के बाद वाले दिन से आरंभ हो। सौर पंचांग मानने वालों में पिछले डेढ़ हजार वर्षों में संचित त्रुटियों के कारण कहीं ७ दिन पीछे और कहीं २३ दिन आगे वर्ष का आरंभ माना जाता है।

(३) साधारण वर्षों में ३६५ दिन रहें और अधिवर्षों में ३६६ दिन। अधिवर्षों के लिये कमेटी ने नियम बना दिये हैं। संक्षेप में, जब फरवरी में एक दिन बढ़ेगा तब चैत में एक दिन बढ़ेगा।

(४) वर्ष का प्रथम महीना चैत कहलाये। यह प्रथा भारत के अधिकांश भागों में प्रचलित है। शेष महीने बैशाख, ज्येष्ठ, आसाढ़, आदि कहलायेंगे। वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, और भाद्र में से प्रत्येक में ३१ दिन रहेंगे। शेष महीनों में तीस-तीस दिन रहेंगे, परन्तु अधिवर्षों में चैत्र ३१ दिन का होगा। वर्त-

मान समय में सौर मास अट्ठाइस से लेकर बत्तीस दिन के होते हैं, क्योंकि महीने उतने समय के रक्खे जाते हैं जितने में सूर्य ३० अंश चलता हुआ दिखायी पड़ता है। सुविधा के लिए कमेटी ने महीनों में तीस और इकतीस ही दिन रक्खे हैं। अधिक छोटे-बड़े महीनों से बड़ी असुविधा होती है।

(५) चांद्र महीनों के नाम उसी नियम से रक्खे जायँ जो प्रचलित हैं। इस प्रकार उन त्यौहारों में कोई गड़बड़ी न पड़ेगी जो चंद्रमा की कला पर निर्भर हैं।

(६) चांद्र महीने अमावस्या से आरंभ हों। उत्तर भारत में वे पूर्णिमा से आरंभ होते हैं, परन्तु प्राचीन पद्धति अमांत ही थी, अर्थात महीनों का अंत और आरंभ अमावस्या पर होता था। अब भी उत्तर भारत में जब मलमास लगता है तो उसका आरंभ अमावस्या से होता है।

(७) नक्षत्रों की गणना यह मान कर की जाय कि वे तारों के हिसाब से अचल हैं। यह भी अधिकांश स्थानों में प्रचलित प्रथा है।

(८) दिन का आरंभ मध्य रात्रि से माना जाय। सूर्य सिद्धान्त तथा कुछ अन्य प्राचीन ग्रंथों में भी यही प्रथा है, परन्तु उत्तर भारत में धार्मिक कार्यों के लिये दिन सूर्योदय पर बदलता है। इसका परिणाम यह होता है कि यदि कोई बच्चा सोमवार के सूर्योदय के ५ मिनट पहले उत्पन्न हो तो सभी लोग कहेंगे कि उसका जन्म सोमवार को हुआ, परन्तु ज्योतिषी कहेगा कि उसका जन्म रविवार को हुआ। यह कठिनाई अर्धरात्रि से दिन आरंभ करने पर दूर हो जाती है।

(९) सूर्य और चंद्रमा की वास्तविक स्थिति के आधार पर दिनांक, तिथि, नक्षत्र आदि की गणना होनी चाहिए। इसके पहले कट्टरपंथियों में कोई सूर्य सिद्धांत को ठीक मानता था, कोई आर्य सिद्धांत को, कोई ब्रह्मसिद्धांत को, चाहे इन सिद्धांतों पर गणना करने से आँखों देखी बातें, जैसे ग्रहण आदि, के विरुद्ध ही परिणाम क्यों न निकले।

(१०) भारत सरकार एक पंचांग स्वयं प्रकाशित किया करे।

(११) सरकार कहीं ऐसी वेधशाला स्थापित करे जहाँ सूर्य, चंद्रमा और ग्रहों के स्थानों का वेध होता रहे।

हर्ष का विषय है कि सरकार ने कमेटी की सब सिफारिशों को मान लिया है और सरकार की ओर से राष्ट्रीय पंचांग कई भारतीय भाषाओं में छपने लगा है।

इन बातों से स्पष्ट है कि सरकार ने कमेटी की सिफारिशों के आधार पर जिस पंचांग की घोषणा की है वह वस्तुतः कोई नवीन पद्धति नहीं है, केवल थोड़ी बहुत परस्पर विभिन्न अनेक भारतीय पद्धतियों में से एक को प्रामाणिक मान लिया गया है। अवश्य ही लोगों को कहीं न कहीं अपनी वर्तमान प्रणाली में कुछ परिवर्तन करना पड़ेगा, परन्तु सुधार का अर्थ ही यही है कि कुछ परिवर्तन हो। जनता को विशेष नवीनता इसमें दिखायी पड़ती है कि अब शक संवत् का व्यवहार होगा, परन्तु ज्योतिष और विज्ञान की दृष्टि में यह बहुत छोटी बात है। चाहे किसी भी संवत् का प्रयोग हो, शक अथवा विक्रमी, अंग्रेजी अथवा कलयुगी, इस मौलिक समस्या पर कि वर्ष और ऋतु साथ-साथ चलेंगे या नहीं, कोई प्रभाव नहीं पड़ता। नवीन पंचांग के अनुसार

वर्ष प्राकृतिक वर्ष के अधिक निकट आ जायगा। अभी तक हमारे देशी पंचांग जो प्राचीन सिद्धांतों के आधार पर बनते थे इन सिद्धांतों में बताये मान का उपयोग करते थे। यह गौरव की बात है कि आज से डेढ़ हजार वर्ष पहले ही हमारे आचार्यों ने वर्ष का इतना शुद्ध मान निर्धारित किया था कि वह आज तक काम देता आया है, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि उनके वर्षमान में कुछ मिनटों की अशुद्धि थी। यह अशुद्धि जुड़ते-जुड़ते अब बाईस-तेईस दिन की हो गयी है। हमारी सरकार यदि पोप ग्रेगरी का अनुकरण करती तो आज्ञा कर देती कि २२ दिन छोड़ दिये जायँ। कमेटी ने २२ दिन छोड़ने की सिफारिश इसलिए नहीं की कि इससे बहुत उथल-पुथल हो जाती। परन्तु वर्षमान ठीक कर दिया गया है। इससे अब भविष्य में अन्तर न पड़ेगा। जो त्यौहार अब जिस ऋतु में पड़ता है भविष्य में भी उसी ऋतु में पड़ा करेगा। यदि यह सुधार न किया जाता तो आगामी दो तीन हजार वर्षों में, यदि बराबर सूर्य सिद्धांत आदि के आधार पर गणना होती चली जाती तो डेढ़-दो महीने का अन्तर और पड़ जाता, और तब सावन भादों का महीना उस ऋतु में पड़ने लगता जब खूब सरदी पड़ती है। इसलिए वर्षमान का सुधार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

वर्तमान युग गणतंत्र युग है। सरकार को जनमत का आदर करना पड़ता है, नहीं तो जूलियस सीजर की तरह आज्ञा निकाल कर या धर्मगुरु ग्रेगरी की तरह व्यवस्था देकर एक दिन में सब भारतीय पंचांग ठीक कर दिये जाते। अब हम लोगों का यह कर्तव्य हो जाता है कि नवीन राष्ट्रीय पंचांग के औचित्य को समझें और एकता के विचार से केवल इसी पंचांग को काम में लायें। कमेटी के सदस्यों में धर्मशास्त्री भी थे और उनके मत से राष्ट्रीय पंचांग पूर्णतया धर्मानुकूल है इसलिए धर्मभीरु लोगों को भी इसे अपनाना चाहिए।

प्र० ति० २४-३-५८

तुम्हारे आस पास

(१)

प्यारे बच्चो !

आकाश में तुमने बहुत से तारे देखे होंगे, परन्तु क्या तुमने इसे भी देखा है कि कोई-कोई तारा दूसरे तारों के हिसाब से अपना स्थान बदलता रहता है ? वह कभी किसी तारा के निकट रहता है, कभी उसी से दूर हो जाता है। यदि तुमने अभी तक इस पर ध्यान नहीं दिया है तो अब ध्यान दो। इन दिनों शाम को अंधेरा होते ही , पूरब की ओर, आकाश जहाँ भूमि से मिला हुआ दिखायी पड़ता है उससे काफी ऊँचाई पर एक बहुत ही चमकीला तारा दिखायी पड़ता है। वह इतना चमकीला है कि यदि तुम सारे आकाश को एक ओर देख लो तो इससे सबसे अधिक चमकीला मानने में तुम्हें कोई संदेह रह ही न जायगा। कारण यह है कि यह अन्य तारों से बहुत अधिक चमकीला है। परन्तु वास्तव में यह तारा नहीं है, यह ग्रह है। इसका नाम है बृहस्पति। देहाती भाई इसे बीफै या बिफैया कहते हैं।

तारे एक दूसरे के हिसाब से स्थिर रहते हैं । हाँ, वे सबके सब प्रत्येक रात्रि को पूरब से पच्छिम जाते रहते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे सूर्य पूरब से पच्छिम प्रतिदिन जाता है, या चन्द्रमा प्रतिदिन पूरब से पच्छिम जाता है। परन्तु ग्रह तारों के हिसाब से चलते रहते हैं। इन दिनों किसी भी शाम को, अंधेरा हो जाने के बाद, आकाश पर चारों ओर दृष्टि डाल कर तेज चमक के कारण बृहस्पति को तुम पहचान तो लोगे ही। तुम पास के तीन अन्य तारों को चुन कर उनके हिसाब से बृहस्पति का स्थान कुछ दिनों प्रति रात्रि देखते रहो। हो सके तो अपनी कापी में अपने चुने हुए तीन तारों और बृहस्पति का नक्शा बनाते जाओ, और नक्शे पर तारीख लिखते चलो। रोज नहीं, सप्ताह में एक रात या दो रात नक्शा बना लेना काफी होगा। कुछ सप्ताह बाद तुम्हें स्पष्ट पता चल जायगा कि बृहस्पति अपने स्थान से हट रहा है, या यों कहा जाय तो अधिक अच्छा होगा कि बृहस्पति तारों के हिसाब से चल रहा है ।

बात वैसी ही है जैसे रेल के डिब्बे में यात्री बैठे हों और उन यात्रियों के बीच एक बच्चा इधर से उधर चल रहा हो। यों तो सभी यात्री चल ही रहे हैं, न चलते तो वे इलाहाबाद से दिल्ली कैसे पहुँच सकते, परन्तु वे एक दूसरे के हिसाब से स्थिर हैं। वे डिब्बे के हिसाब से भी स्थिर हैं। हाँ, भूमि के हिसाब से वे चल रहे हैं। परन्तु बच्चा यात्रियों के हिसाब से भी चल रहा है, यों तो अन्य यात्रियों के साथ-साथ वह भी इलाहाबाद से दिल्ली या जहाँ कहीं भी गाड़ी जा रही हो, जा ही रहा है ।

तारों के हिसाब से चलने के कारण ग्रहों की पहचान बहुत पक्की रीति से होती है। बृहस्पति एक ग्रह है। दूसरे ग्रह भी हैं। वृहस्पति से बस एक ही ग्रह अधिक चमकदार है। उसका नाम शुक्र है। कभी वह भोर में पूरब की ओर दिखायी पड़ता है, कभी वह शाम के बाद पश्चिम में दिखायी पड़ता है, परन्तु आधी रात के समय वह कभी भी नहीं देखा जा सकता। जब वह भोर में दिखायी पड़ता है तो आधी रात को वह उगा ही नहीं रहता। जब वह शाम को पच्छिम में दिखायी पड़ता है तब वह आधी रात होने के पहले ही डूब जाता है। केवल भोर में या शाम को दिखायी पड़ने के कारण शुक्र को भोर का तारा या शाम का तारा भी कहते हैं ।

एक ग्रह और है जो कुछ अवसरों पर इतना चमकीला रहता है कि हमारा ध्यान बरबस उसकी ओर खिंच जाता है। उसका नाम मंगल है। अंगारे के समान लाल दिखायी पड़ने के कारण संस्कृत में उसे अंगारक भी कहते हैं।

शुक्र और मंगल से जान-पहचान तुम कभी पीछे कर लेना। आकाश स्वच्छ हो तो बृहस्पति को तुम आज ही रात को देखना। कई रातों तक इसकी स्थिति अन्य तारों के हिसाब से अवश्य अंकित करना। तब तुम अपनी आँखों से देखोगे कि दूसरे तारों के हिसाब से बृहस्पति चलता है।

यदि किसी से एक आँख वाली या दो आँख वाली दूरबीन तुम मँगनी माँग सको तो बृहस्पति को तुम अवश्य दूरबीन से देखो। बृहस्पति के चार चाँद ऐसे हैं जो छोटी दूरबीन से भी दिखायी पड़ते हैं। ये चाँद हमें तो केवल नन्हें-नन्हें तारे से दिखायी पड़ते हैं, परन्तु वस्तुतः इनमें से दो हमारे चाँद से बड़े हैं। संभव है तुम्हें चारों चाँद न दिखायी पड़ें, क्योंकि ऐसा हो सकता है कि जब तुम दूरबीन लगाओ तब एक या दो, या अधिक चांद संयोगवश बृहस्पति से सटे हुए रहें। ये चाँद बृहस्पति का चक्कर लगाते रहते हैं। इसलिए यदि तुम कई दिनों तक प्रति रात्रि बृहस्पति को दूरबीन से देखोगे तो किसी न किसी रात तुमको चारों चाँद दिखायी पड़ जाएँगे।

ज्योतिषियों ने बड़ी दूरबीनों से देखकर पता लगाया है कि बृहस्पति बहुत बड़ा है। वह हमारी पृथ्वी से हजार गुने से भी अधिक आयतन का है। परन्तु वह है बहुत ठंडा। पानी को कौन कहे, वहाँ अमोनिया गैस जम जायगी। वस्तुतः वहाँ अमोनिया गैस के जमे हुए बर्फ जैसे कणों का बादल ही हमें दिखायी पड़ता है। जब वहाँ धूप पड़ती है तब यह बादल चमकता है। इसी से बृहस्पति हमें खूब चमकीला दिखायी पड़ता है।

प्र० ति० ७-४-५७

(२)

प्यारे बच्चो !

गरमी के दिनों में बर्फ कैसी अच्छी लगती है, परंतु क्या तुमने कभी यह भी सोचा है कि बर्फ बनती कैसे है ? यदि कभी तुमने किसी बर्फ के कारखाने को देखा होगा तो तुमने इतना अवश्य देखा होगा कि वहाँ चिमनी लगी रहती है जिसमें से धुँआ निकला करता है; या वहाँ बिजली-कंपनी से बिजली तार द्वारा आती होगी परंतु कोयला जलाने से और बिजली से गरमी पैदा होती है उससे बर्फ कैसे बन पाती होगी ?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि कोयला जलाकर या मिट्टी का तेल जलाकर, इंजन चलाया जाता है, और उससे बर्फ की मशीन का पहिया घुमाया जाता है; या यह काम बिजली के मोटर से लिया जाता है।

बर्फ की मशीन का मुख्य भाग है एक कम्प्रेसर। कम्प्रेस करने का अर्थ है 'दबाकर छोटा कर देना।' जब तुम फुटबाल में, या साइकिल के पहिये में, हवा भरते हो तो तुम ठीक वही काम करते हो जो बर्फ की मशीन करती है, अर्थात् तुम हवा को कम्प्रेस करते हो, वायु को ठूँस-ठूँसकर छोटी-सी जगह में भरते हो।

तुम इस काम के लिए पम्प का इस्तेमाल करते हो और बर्फ की मशीन में बहुत बड़ा-सा पम्प लगा रहता है। इसी पम्प को कम्प्रेसर कहते हैं। यह पम्प इतना बड़ा होता है कि इसे हाथ से चलाना कठिन होता है। इसलिए इसे इंजन से, या बिजली की मोटर से, चलाया जाता है।

तुम सोचोगे कि हवा कम्प्रेस करने और बर्फ जमने या जमाने में क्या सम्बंध है? परंतु सम्बंध है, और गहरा सम्बंध है। जब हवा को कम्प्रेस किया जाता है तो हवा गर्म हो उठती है। यह तो तुमने स्वयं देखा होगा कि बाइसिकिल में जब हवा खूब भरी जाती है तो पम्प का निकला भाग गरम हो जाता है। तो इसी प्रकार बर्फ के कारखाने में जब हवा की तरह एक गैस खूब कम्प्रेस की जाती है तब वह बहुत गरम हो जाती है। फिर उसे पानी से ठंडा करते हैं। गैस तो ठंडी हो जाती है, परंतु पानी कुछ गरम हो जाता है। बार-बार नया ठंडा पानी लाने के बदले, गरम हो गये पानी को ही झींसी या फुहारे की तरह हवा में डालकर, उसे ठंडा कर लेते हैं, या उसे टीन या लकड़ी की पटरियों के ढेर पर, धीरे-धीरे ऊपर से नीचे बहाकर, ठंडा करते हैं। चाहे जिस रीति से पानी को ठंडा करें, मुख्य बात यह है कि कम्प्रेस की हुई गैस की गरमी ठंडे पानी से सब निकाल ली जाती है। गैस ऐसी चुनी जाती है जो खूब कम्प्रेस करके साधारण ठंडा करने पर पानी की तरह तरल हो जाय। तो समझ लो कि गैस अब पानी की तरह तरल हो गयी है।

अब तरल हो गयी गैस अपनी पतली नली से निकलकर बहुत मोटी नली में जाती है जहाँ उसे फैलने के लिये काफी स्थान रहता है। इतना स्थान मिलते ही तरल गैस शीघ्र ही पहले-जैसी गैस हो जाती है। परंतु तरल से गैस होने में बड़ी ठंढक उत्पन्न होती है। तुमने स्वयं देखा होगा कि यदि हाथ में पानी लगा हो तो जब हाथ सूखता है, यानी हाथ पर का पानी वाष्प अर्थात् गैस बन जाता है, तो हाथ अधिक ठंढा हो जाता है। ठीक इसी तरह मशीन की नली के भीतर बंद गैस जब तरल रूप से फिर गैस बनती है तो नली इतनी अधिक ठंढी हो जाती है कि जो कुछ भी बाहर से उसे छूता रहता है बहुत ठंढा हो जाता है। यदि उसे पानी में रक्खा रहे तो पानी जम जाय। परंतु सुविधा के लिए उस नली को नमक के घोल में रखते हैं और स्वच्छ पानी से भरा बरतन इस नमक के घोल में रख देते हैं। तब पहले नमक का घोल ठंढा होता है; फिर उस घोल से बरतन, और उसके भीतर का पानी; वस्तुतः इस प्रकार पानी इतना ठंढा हो जाता है कि जमकर वह बर्फ हो जाता है। बस, बर्फ बनाने का यही ढंग है।

बर्फ बनाने में गैस खराब नहीं होने पाती। तरल रूप से फिर गैस बन जाने पर वह कम्प्रेसर में जाती है। वहाँ कम्प्रेस होकर, यानी संकुचित होकर, वह गरम हो जाती है, तब उसे साधारण ठंढा किया जाता है, जिससे वह तरल हो जाती है, फिर गैस को फैलने दिया जाता है, जिससे वह बहुत-ही ठंढी हो जाती है और पानी को जमा देती है; अंत में गैस फिर कम्प्रेसर में पहुँचती है। यही क्रम जारी रहता है।

अब शीघ्र ही किसी बर्फ के कारखाने में जाना और मैनेजर साहब से कहना कि हम जानते हैं कि बर्फ कैसे जमती है; जरा अपनी मशीनें हमें दिखा दीजिये।

प्र० ति० ५-५-५७

हमारे सूर्य के ग्रह और उपग्रह

हम पृथ्वी पर रहते हैं। इसीलिए पृथ्वी हमें बहुत बड़ी जान पड़ती है और सूर्य बहुत छोटा, यद्यपि लम्बाई-चौड़ाई में सूर्य पृथ्वी से प्रत्येक दिशा में सौ गुना बड़ा है और इसलिए आयतन में पृथ्वी से सौ गुणित सौ गुणित सौ, अर्थात् दस लाख गुना बड़ा है। यह बात मोटे हिसाब से बतायी गयी है। वास्तव में सूर्य का आयतन पृथ्वी की अपेक्षा १३ लाख गुना अधिक है। सूर्य और पृथ्वी को सच्चे अनुपात में देख सकने के लिए हमें पृथ्वी से दूर जाना चाहिए। यह सच है कि अब वैज्ञानिक लोग चन्द्रमा तक ऐसा बाण भेजने की बात सोच रहे हैं जिसके भीतर मनुष्य बैठ सके, परंतु चंद्रमा पर पहुँचकर भी हम पृथ्वी और सूर्य को सच्चे अनुपात में न देख सकेंगे, क्योंकि चंद्रमा हमारे बहुत पास है और सूर्य बहुत दूर। वस्तुतः, चंद्रमा की अपेक्षा सूर्य ४०० गुनी दूरी पर है। काफी दूर उड़ सकने का प्रयत्न भी अभी वैज्ञानिक नहीं कर रहे हैं, तो भी आप कल्पना कीजिये कि आप और हम-दोनों ध्रुवतारे की दिशा में उड़कर इतनी दूर पहुँच जाते हैं कि हमसे पृथ्वी की दूरी, पृथ्वी से सूर्य की दूरी और सूर्य से हमारी दूरी; ये तीनों दूरियाँ बराबर हो जाती हैं। तब वहाँ से हम देखेंगे कि सूर्य उतना ही बड़ा लग रहा है जितना यह सदा पृथ्वी से दिखायी पड़ता था, परंतु पृथ्वी साधारण तारे के समान लग रही है। यदि हम अपने स्थान पर पर्याप्त समय तक टिके रहें तो देखेंगे कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगा रही है और उसे एक चक्कर लगाने में ठीक एक वर्ष लगता है। फिर, यदि हम वहीं बैठे-बैठे ध्यान से अन्य आकाशीय वस्तुओं को देखेंगे तो हमें पता चलेगा कि तारे के समान दिखायी पड़ने वाले कई एक अन्य पिंड भी हैं जो सूर्य का चक्कर लगाते रहते हैं। वह जो सूर्य के अधिकतम निकट है, और जिसका व्यास पृथ्वी के व्यास के आधे से भी कुछ कम ही है, बुध है। वह एक चक्कर केवल लगभग तीन महीने में लगा लेता है। उसके और पृथ्वी के बीच में जो पिंड है वह शुक्र है। वह लगभग पृथ्वी के ही बराबर है, परंतु पृथ्वी से अधिक चमकीला है और एक चक्कर कुल लगभग ७ महीने में लगा लेता है। फिर पृथ्वी है जिसे हम अच्छी तरह जानते हैं।

पृथ्वी की कक्षा के बाहर लाल-सा पिंड मंगल ग्रह है जिसका व्यास पृथ्वी के आधे से कुछ बड़ा है और जो एक चक्कर लगाने में पौने दो वर्ष से कुछ अधिक समय लेता है। पृथ्वी पर से जब मंगल अर्धरात्रि को सिर के ऊपर दिखायी पड़ता है तब वह बहुत अधिक चमकीला दिखायी पड़ता है। इसका कारण यह है कि जब सूर्य की प्रदक्षिणा करने में पृथ्वी और मंगल-दोनों सूर्य की एक ओर आ जाते हैं तभी मंगल अर्धरात्रि में सिर पर दिखायी पड़ता है। इस अवसर पर वह हमसे न्यूनतम दूरी पर रहता है और अंगारे के समान लाल और खूब चमकीला दिखायी पड़ता है। इसीलिए संस्कृत में मंगल को अंगारक भी कहते हैं।

मंगल के बाद बृहस्पति की पारी आती है। इसका व्यास पृथ्वी के व्यास का लगभग ११ गुना है। अवश्य ही यह सब से बड़ा ग्रह है। स्मरण रहे कि बुध, शुक्र, मंगल इत्यादि ये सभी पिंड जो सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं ग्रह कहलाते हैं। पृथ्वी भी वास्तव में एक ग्रह है, परंतु साधारण बोल-चाल में इसकी गिनती ग्रहों में नहीं की जाती। बृहस्पति को एक चक्कर लगाने में लगभग १२ वर्ष लगते हैं। ग्रहों में, चाहे हम उन्हें पृथ्वी पर से देखें, चाहे अंतरिक्ष वाले अपने अड्डे से, बृहस्पति ही सबसे चमकीला है। बृहस्पति के बाद शनि अर्थात् सनीचर है। यह बृहस्पति से कुछ छोटा है। दूर रहने के कारण इसको लम्बा चक्कर भी लगाना

पड़ता है और इसका वेग भी कम है। दोनों कारणों से एक चक्कर लगाने में इसे बहुत समय लगता है—लगभग तीस वर्ष। धीरे चलने के कारण ही इसका नाम शनैश्चर, अर्थात् शनैः शनैः—धीरे-धीरे चलने वाला पड़ा है। जिन लोगों को फलित ज्योतिष में विश्वास है वे समझते हैं कि जब शनि की बुरी निगाह किसी व्यक्ति पर पड़ती है तो चौथाई चक्कर तक वही दृष्टि बनी रहती है; इसीलिए कभी-कभी कहा जाता है कि अमुक पर साढ़े साती सनीचर सवार है, अर्थात् साढ़े सात वर्षों तक उसकी बुरी हालत रहेगी।

अंतरिक्ष से, जहाँ हम कल्पना-शक्ति से पहुँचे हैं, ऊपर गिनाये गये सब ग्रह कोरी आँख से, अर्थात् बिना दूरबीन की सहायता के ही, हमें दिखायी पड़ेंगे। पृथ्वी पर भी ये हमें कोरी आँख से दिखायी पड़ते हैं। परंतु शनि के बाहर पड़ने वाले ग्रह बिना दूरबीन के नहीं दिखायी पड़ते। प्राचीन लोगों को उनका पता न था। उनके नाम, दूरी के क्रम से, यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो हैं। ये क्रमानुसार ८४ वर्ष, १६५ वर्ष और २८४ वर्ष में एक चक्कर लगाते हैं। यूरेनस का पता आज से लगभग पौने दो सौ वर्ष पहले हरशेल को लगा, सो इसलिए कि दूरबीन से देखने पर वह बहुत बड़ा दिखायी देने लगा। चाहे दूरबीन ग्रहों को सौ गुना बड़ा दिखाये, चाहे लाख गुना बड़ा, दूरबीन से देखने पर तारे ज्यों के त्यों रह जाते हैं। कारण वही है जो संख्याओं के गुणन में लागू है। छोटी-सी संख्या को भी एक लाख से गुणा करने पर वह लाख गुनी बड़ी हो जायगी, परंतु शून्य को एक लाख से गुणा करने पर फल शून्य ही मिलता है। इसलिए जब हरशेल की दूरबीन संयोगवश यूरेनस पर सधी तो उसके प्रवर्द्धित हो जाने के कारण तुरंत पता चल गया कि वह तारा नहीं है। पीछे पता चला कि वह सूर्य की प्रदक्षिणा करता है और इसलिए ग्रह है। तब उसका नाम यूरेनस रक्खा गया।

नेपच्यून का पता गणित से लगा। सूक्ष्म नापों से पता चला कि यूरेनस ठीक से नहीं चल रहा है। कभी यह कुछ तेज हो जाता है, कभी मंद। तब हिसाब लगाया गया कि यदि वेग की विषमता किसी अज्ञात ग्रह के कारण हो तो वह कहाँ होगा, और उस दिशा में दूरबीन साधने से ग्रह मिल भी गया; इस ग्रह का नाम नेपच्यून रक्खा गया। फिर नेपच्यून की चाल में विषमता से प्लूटो का पता चला। दूरबीन से यह पहली बार सन् १९३० में देखा गया। कल्पना-शक्ति से अंतरिक्ष में पहुँचकर हम देखते हैं कि सब ग्रह सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं। सब लगभग गोल मार्ग में चलते हैं। सब अपनी धुरी पर भी घूमते हैं। इसके अतिरिक्त पृथ्वी के चारों ओर चंद्रमा घूमता रहता है, मंगल के चारों ओर दो पिंड घूमते रहते हैं, बृहस्पति के चारों ओर नौ, शनि के चारों ओर भी नौ, यूरेनस के चारों ओर और नेपच्यून के चारों ओर एक। ये सब पिंड जो ग्रह की प्रदक्षिणा करते हैं, उपग्रह कहलाते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि ग्रह और उपग्रह, एक-दो बहुत छोटे उपग्रहों को छोड़कर सब एक ही दिशा में प्रदक्षिणा करते हैं। फ्रेंच ज्योतिषी, **लाप्लास**, ने इसी के आधार पर यह सिद्धांत बनाया कि सब ग्रह और उपग्रह अपनी धुरी पर नाचते हुये किसी गैस-पिंड से बने हैं।

यद्यपि सब ग्रह सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं और बराबर एक ही दिशा में चलते रहते हैं, तो भी पृथ्वी से देखने पर आकाश में तारों के बीच ग्रह बराबर एक दिशा में नहीं चलते। प्राचीन ग्रंथ सूर्य-सिद्धांत के ग्रंथकार ने लिखा है कि—

'वक्रानुवक्रा कुटिला मंदा मंदतरा समा'

तथा

'शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः'

अर्थात् उलटी, टेढ़ी, बहुत, टेढ़ी, मंद, बहुत मंद, शीघ्र, बहुत शीघ्र, और साधारण—ग्रहों की गति आठ प्रकार की होती है। कारण यह है कि पृथ्वी भी चलती रहती है और ग्रह भी; और जैसे स्टेशन पर दूसरी गाड़ी की अपेक्षा अपनी गाड़ी के तेज चलने पर जान पड़ता है कि दूसरी गाड़ी पीछे जा रही है, इसी प्रकार उपयुक्त स्थितियों में ग्रह पीछे मुँह चलते दिखायी पड़ते हैं।

हिंदी में ग्रहों और उपग्रहों पर अच्छी सचित्र पुस्तकें उपलब्ध हैं। उन्हें पढ़ने से पाठक को कई एक रोचक बातों का पता चलेगा। यहाँ केवल यही बताकर वार्ता समाप्त करूँगा कि दूरबीन से देखने पर शनि की रचना विचित्र और सुन्दर लगती है। जान पड़ता है जैसे तश्तरी में गोल छेद करके उसमें नारंगी फंसा दी गयी है, जिससे आधी नारंगी ऊपर है, आधी नीचे। और मंगल पर रेखाएँ दिखाई पड़ने का आभास होता है, जिसे कुछ लोग नहर मानते हैं, और समझते हैं कि वहाँ भी नहर बनाने वाले बुद्धिमान प्राणी होंगे।

प्र० ति० २-१-१९५९

राष्ट्रीय पंचांग की विशेषताएँ

हमारा राष्ट्रीय पंचांग हजारों वर्षों से प्रचलित भारतीय पंचांग ही है, केवल इसका प्रमाणीकरण कर दिया गया है, जिसमें वे अंतर, जो भारत के विविध भागों में देश-काल की विभिन्नता से थोड़ा-बहुत आ गए हैं, मिट जायँ।

समय की तीन प्राकृतिक इकाइयाँ हैं : दिन, जो हमें पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमने से मिलती है, मास या महीना, जो पृथ्वी के परितः चंद्रमा की प्रदक्षिणा से मिलती है, और वर्ष जो सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के चक्कर लगाने से मिलती है। इन तीन इकाइयों में सम्बंध स्थापित करने की विविध रीतियों से ही विविध ढंग के पंचांग उत्पन्न होते हैं।

वर्ष की नाप में अशुद्धि होने से वर्ष का आरंभ सदा एक ही ऋतु में नहीं होता। यूरोप में भी पहले गड़बड़ी थी, परन्तु जूलियस सीजर और तेरहवें पोप ग्रेगरी के संशोधनों से वहाँ का वर्ष इतना सच्चा हो गया है कि अब लगभग दो हजार वर्षों में एक दिन की गड़बड़ी पड़ेगी। मुसलमानों ने अपने धार्मिक कामों के लिए १२ चांद्र मासों का वर्ष माना है जो ऋतु अनुसार चलने वाले वर्ष से लगभग ११ दिन छोटा है। इसलिए उनके महीनों और ऋतुओं में कोई सम्बंध नहीं रहता। उदाहरणतः, मुहर्रम का महीना कभी बरसात में पड़ता है, तब खिसकते-खिसकते कभी गरमी में पड़ता है और कुछ वर्ष बाद जाड़े में।

हिन्दुओं में कोई सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार गणना करता है कोई आर्य-सिद्धान्त या अन्य सिद्धान्त के अनुसार। यह प्रशंसा की बात है कि हमारे प्राचीन आचार्यों ने वर्ष का इतना सच्चा मान बताया था कि उसके अनुसार आज तक काम चलता आया है परन्तु उनके बताये मानों में त्रुटि है अवश्य, और अब, लगभग १४०० वर्ष बाद, २२-२३ दिन का अंतर पड़ गया है। यदि हम प्राचीन वर्षमान को दो-चार हजार वर्ष तक बिना बदले चलाते रहें तो सावन-भादों कहलाने वाले महीनों में उस समय कड़ाके का जाड़ा पड़ता रहेगा। इसीलिए राष्ट्रीय पंचांग में वर्षमान ठीक कर दिया गया है। संशोधन इतना सूक्ष्म है कि हम अपने जीवन-काल में प्राचीन पद्धति पर बने पंचांग पर और राष्ट्रीय पंचांग के अंतर को देख नहीं पाएँगे, पर राष्ट्रीय पंचांग का वर्षमान इतना सच्चा है कि इसे हजारों वर्ष तक बदलने की आवश्यकता न पड़ेगी।

अब रहा महीने का प्रश्न। यही सब से टेढ़ा है। यूरोपीय महीने किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त पर नहीं बने हैं। महीनों के नाम पहले वे नहीं थे जो आज हैं। जूलियस सीजर ने अपना नाम अमर करने के लिए एक महीने का नाम जुलाई रख दिया। कहा जाता है कि आगस्टस सीजर ने आगामी महीने का नाम अपने नाम पर अगस्ट कर दिया। परन्तु उस महीने में ३० ही दिन हुआ करते थे। इस विचार से कि जुलियस सीजर के महीने से उसका महीना छोटा न रहे उसने फरवरी से एक दिन काटकर अगस्त में डाल दिया। इसीलिए जुलाई और अगस्त इन दो क्रमागत महीनों में एकतीस-एकतीस दिन हैं।

मुसलमानों का महीना पूर्णतया वैज्ञानिक है। वह ठीक-ठीक चंद्रमा के अनुसार चलता है परन्तु इसके प्रयोग से वर्ष ठीक नहीं रह पाता।

हिन्दुओं में दो प्रकार के महीने चलते हैं, एक सौर अर्थात् सूर्य के हिसाब से, और दूसरा चांद्र अर्थात् चंद्रमा के हिसाब से; यद्यपि दोनों प्रकार के महीनों को बराबर-बराबर लोकप्रियता नहीं प्राप्त हो पाती।

बंगाल और दक्षिण में सौर मासों का प्रचलन है, परन्तु दशहरा, दीवाली वहाँ भी चांद्र महीनों के हिसाब से ही रक्खे जाते हैं। बंगाल को छोड़कर उत्तर भारत में चांद्र महीने ही अधिक प्रचलित हैं, यद्यपि मलमास की गणना सौर मासों से ही होती है सौर मकरसंक्रान्ति भी और मासों के अनुसार पड़ती है। असल बात यह है कि बिना सौर मासों को निर्धारित किये चांद्र मासों की गणना हो ही नहीं सकती।

यह गणना यों होती है : सूर्य हमको तारों के सापेक्ष चलता हुआ जान पड़ता है। जब वह एक विशेष स्थान पर आ जाता है तो उस समय दिन और रात ये दोनों बराबर होते हैं और ऋतु वसंत की रहती है। इस स्थान को वसंत-विषुव कहते हैं। वसंत-विषुव से चल कर आगामी बार उस विषुव पर पहुँचने में एक वर्ष लगता है। इस चक्कर को १२ बराबर भागों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक को एक राशि कहते हैं। आस-पास की दो राशियों की सीमा बताने वाले बिन्दु को संक्रान्ति कहते हैं। जब तक सूर्य एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक पहुँचता है तब तक एक सौर महीना रहता है। जब सूर्य किसी संक्रांन्ति को पार करता है तो सौर महीना बदलता है। इन महीनों का नाम भी चैत, बैशाख, आदि होता है। प्रत्येक संक्रान्ति एक विशेष महीने से सम्बंधित रहती है।

अब देखने की बात यह है पूर्णिमा से पूर्णिमा तक का काल एक सौर महीने से छोटा होता है। लगभग ३ वर्ष में ३७ चांद्र मास होते हैं, यद्यपि इतने ही समय में केवल ३६ सौर मास होते हैं। इस प्रकार से सौर मासों की अपेक्षा एक चांद्र मास अधिक होगा। इसीलिए लगभग तीन वर्षों में एक चांद्र मास दो बार आता है।

परन्तु प्रश्न उठता है कि कौन-सा चांद्र मास दो बार रक्खा जाय। इसका उत्तर संक्रान्तियों से मिलता है। ३६ सौर मासों की ३६ संक्रान्तियाँ होंगी। इसलिए ३७ चांद्र मासों में से केवल ३६ में ही संक्रान्तियाँ पड़ेंगी, एक में कोई संक्रान्ति न पड़ सकेगी। और जिस चांद्र मास में कोई संक्रान्ति नहीं पड़ती वही मलमास माना जाता है।

अब प्रश्न यह है कि राष्ट्रीय पंचांग में सौर मास अपनाया जाना उचित था या चांद्र मास। उत्तर इस बात पर निर्भर है कि यदि चांद्र मास अपनाया जाता तो मलमास वाले वर्षों में वेतन पाने वाले लोगों को तेरहवें महीने का वेतन देने के लिए रुपया कहां से आता। इसलिए सौर मासों के अपनाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग ही नहीं है। तब लोग प्रश्न करते हैं कि फिर अंग्रेजी महीने ही क्यों न चलाये जायँ? उत्तर यह है कि भारत में जब तक दीवाली, दशहरा मनाये जायँगे तब तक भारतीय पंचांग की आवश्यकता पड़ेगी ही, और ऐसी परिस्थितियों में राष्ट्रीय पंचांग क्यों न ऐसा हो जो सारे भारत में मान्य हो? किसी प्रदेश में दशहरा एक दिन पड़े, किसी में दूसरे दिन और किसी में तीसरे दिन, क्या यह उचित है? यह कल्पना के आधार पर गढ़ा हुआ प्रश्न नहीं है। अभी तक ऐसा होता रहा है।

बंगाल और दक्षिण की सौर गणनाओं में एक महीने का अंतर था। प्राचीन वर्षमान के कारण विषुव भी २३ दिन पीछे था। राष्ट्रीय पंचांग में ठीक वसंत-विषुव के अनुसार वर्ष का आरंभ होता है। इसको मानने से बंगाल के लोगों को ७ दिन बाद वर्षारंभ करना पड़ेगा और दक्षिण के लोगों को २३ दिन पहले। एक बार

गड़बड़ी अवश्य पड़ेगी। फिर दोनों प्रदेशों में एकता आ जाएगी और वर्षारंभ उसी समय होगा जब सूर्य-सिद्धान्त के कथन के अनुसार होना चाहिए।

चांद्रमासों की गणना में जान-बूझकर राष्ट्रीय पंचांग में कोई अंतर नहीं डाला गया है। २३ दिन का जो अंतर पड़ गया है वह बना रहेगा। ऐसा इसलिए किया गया है कि लोगों को असुविधा न हो। परन्तु भारत में कहीं अमावस्या पर चांद्र मास का अंत माना जाता था, कहीं पूर्णिमा पर। एकता लाने के लिए राष्ट्रीय पंचांग में अमांत पद्धति अपनायी गयी है अर्थात् मास का अंत अमावस्या पर होगा। ज्योतिष की पुस्तकों में यही रीति अपनायी गयी है। मलमास का महीना इसीलिए अमावस्या से अमावस्या तक चलता है।

लोग आपत्ति करते हैं कि शक संवत् क्यों अपनाया गया। इससे तो जान पड़ता है कि हमारी सभ्यता बहुत नयी है। उत्तर है कि हमारी सभ्यता तो सतयुग से चल रही है। सूर्य-सिद्धांत के अनुसार तब से लगभग पौने ५५ लाख वर्ष बीत चुके हैं। तो क्या वर्तमान वर्ष को ५४ लाख ७५ हजार ३४१ या इसी प्रकार की किसी संख्या से सूचित करना उचित होता? बात यह है कि शक संवत् का ही उल्लेख अधिकांश शिलालेखों और ताम्रपत्रों में मिलता है, यही संवत् देश के अधिक भागों में आज तक प्रचलित है, और ज्योतिष की गणनाओं में यही संवत् चलता है। ज्योतिष के कामों में, जिन प्रान्तों में विक्रम संवत् प्रचलित है वहां भी, शक संवत् अवश्य दिया जाता है। प्रमाण के लिए आप अपनी जन्मपत्री देख सकते हैं।

प्रत्येक सुधार में आरंभ में कुछ असुविधा होती है परन्तु असुविधा की परवाह न करके, राष्ट्रीय एकता के नाते, लोगों को राष्ट्रीय पंचांग अपनाना चाहिए।

प्र० ति० २२-३-५९

अणु-शक्ति के उपयोग तथा दुरुपयोग

जैसे कोई आदिम मनुष्य बादाम के फल के ऊपरी गूदे को ही खाकर संतोष कर ले और बीज के भीतर की गिरी का महत्त्व न जाने, उसी प्रकार परमाणु-युग के पहले हमारे वैज्ञानिक परमाणुओं के बाह्य आवरण से ही ऊर्जा, अर्थात् एनर्जी या शक्ति, प्राप्त कर पाते थे। उनकी कल्पना-शक्ति के बाहर यह बात थी कि परमाणु को तोड़कर उसके भीतर से भी ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। परमाणु का नाम अंग्रेजी में ऐटम है, जिसका अर्थ ही यह है 'जो तोड़ा न जा सके'। (ऐ) का अर्थ है (नहीं'); (टोमस) का अर्थ है (खंडित)। परंतु सिद्धांत से अब ज्ञात है कि एक माशा कोयले की सब पारमाणविक ऊर्जा निचोड़ लेने पर हमें उतनी ही ऊर्जा मिलेगी जितनी २ करोड़ टन कोयला जलाने से। परंतु खेद है कि अभी केवल एक-दो विशेष पदार्थों की ही पारमाणविक ऊर्जा हमारे वैज्ञानिक निकाल सकते हैं और सो भी पूरी नहीं; हजार भागों में केवल एक भाग ही हमारे हाथ लगता है, शेष ऊर्जा इधर-उधर निकल जाती है या बचे-खुचे पदार्थ में---जिसे हम राख कह सकते हैं---रह जाती है।

तो भी सेर, आध सेर, यूरेनियम नंबर २३५ से इतनी ऊर्जा प्राप्त होती है कि इससे एक बड़ा नगर विध्वंस हो जाय। जापान के हिरोशिमा तथा नागासाकी नामक नगरों के जलाने वाले कुख्यात ऐटम बम पारमाणविक ऊर्जा पर ही आश्रित थे। इस प्रकार, पारमाणविक ऊर्जा का श्रीगणेश दुरुपयोग से ही हुआ, परन्तु अब सब वैज्ञानिक इसके सदुपयोग की नयी-नयी रीतियाँ खोजने में लगे हैं। अगस्त १९५५ में, जिनेवा में, जो यूनाइटेड नेशन कानफरेन्स हुआ था उसमें इसी समस्या पर विचार किया गया था।

यदि हम एक टुकड़ा कोयला लें तो उसे सुलगाना कठिन होगा। इसी प्रकार थोड़े से रत्ती, दो रत्ती यूरेनियम में आँच नहीं उत्पन्न होती। परंतु यदि हम पर्याप्त यूरेनियम लें तो उसमें से अपने आप गरमी और रोशनी निकलने लगती है; कई प्रकार की किरणें और कण भी निकलने लगते हैं जो मनुष्य शरीर को नष्ट कर देते हैं। इसलिये यूरेनियम की ऊर्जा का उपयोग करने के लिये उसे मोटी दीवारों के भीतर बंद करना पड़ता है; इसकी आँच तेज या मंद करने के लिये नियंत्रक लगाने पड़ते हैं; आँच से भाप बनाकर इंजन चलाया जाता है; इंजन से डायनमो चलता है; डायनमों से बिजली उत्पन्न होती है और इस बिजली का उपयोग अनेक उद्योगों और घरेलू कार्यों में किया जाता है।

परंतु इस क्रिया में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है खर्च का। क्या पारमाणविक ऊर्जा से प्राप्त बिजली, कोयला जलाकर पुराने ढंग से उत्पन्न की गयी बिजली की अपेक्षा सस्ती पड़गी? यदि नहीं, तो पारमाणविक ऊर्जा हमारे लिए बेकार है; तब यह वैज्ञानिकों की प्रयोगशालाओं तक सीमित रह जायगी। परंतु स्मरण रखना चाहिए कि पारमाणविक ऊर्जा एक नयी वस्तु है। यदि अभी खर्च अधिक बैठ रहा है तो प्रयास से खर्च कम किया जा सकता है। इस समय पारमाणविक ऊर्जा, कोयला जलाकर प्राप्त ऊर्जा से विशेष अधिक मँहगी नहीं है, और शीघ्र ही उससे सस्ती हो जाने की आशा है। महँगी होने पर भी इसमें विशेष गुण हैं। उदाहरणतः, पनडुब्बी जहाज के लिए इसमें एक गुण यह है कि पारमाणविक भट्टी के लिए हवा की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसलिए पनडुब्बी बहुत समय तक पानी में डूबी रह सकती है। फिर, साधारण और सैनिक जहाजों के लिए पारमाणविक भट्टी इसलिए उपयोगी है कि ईंधन का भार नगण्य होता है और फलतः उपयोगी सामग्री या

यात्रियों तथा सैनिकों की संख्या उसी अनुपात में बढ़ायी जा सकती है। फिर, बार-बार ईंधन लादने में जो समय नष्ट होता है उसकी बचत होती है। सैनिक जहाजों में तो यह विशेष उपयोगी है। एक बार भट्टी चालू होने पर वह महीनों या वर्षों तक, बिना नवीन ईंधन पाये, चलती रहती है और इसलिए जहाज हजारों-लाखों मील बिना घर लौटे चलता रह सकता है।

उद्योग और वाणिज्य में पारमाणविक ऊर्जा का उपयोग दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। सभी देशों में बिजली उत्पन्न करने की पारमाणविक भट्टियाँ बैठायी जा रही हैं। भारत में भी ऐसी एक भट्टी बन रही है; एक छोटी भट्टी जिसका नाम अप्सरा रक्खा गया है, ट्राम्बे (बंबई) में चालू है और एक अन्य छोटी भट्टी शीघ्र ही तैयार हो जायगी। रूस, इंग्लैंड, और अमेरिका में भी बड़े-बड़े पारमाणविक ऊर्जा वाले विद्युत-यंत्र बने हैं और बन रहे हैं। हाल में समाचारपत्रों ने छापा था कि एक बड़ा जहाज जो पारमाणविक ऊर्जा से चालू होगा, इंग्लैंड में बन रहा है।

पारमाणविक भट्टी से केवल आँच ही नहीं निकलती। उससे न्यूट्रान नामक कण भी निकलते हैं जो मनुष्य-शरीर को जला देते हैं। इन्हीं से बचने के लिए भट्टी को मोटी दीवारों से घेरा जाता है, जैसा पहले बताया जा चुका है। अब, यदि भट्टी के भीतर कोई पदार्थ रख दिया जाय तो बहुधा उसमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन हो जाता है। कुछ में रेडियम-धर्मिता आ जाती है, अर्थात् उनमें से अपने आप रेडियम की तरह रश्मियाँ निकलने लगती हैं।

बहुतों ने सुना होगा कि कैंसर नामक रोग में रेडियम से चिकित्सा की जाती है। इस रोग में मांस, हड्डी या चर्बी अकारण ही बढ़ने लगती है। रेडियम से निकली रश्मियाँ बढ़े हुए मांस आदि को जला देती है। परंतु रेडियम बहुत कम मात्रा में और बहुत कठिनाई से तैयार हो पाता है और इसलिए इसका मूल्य बहुत होता है। एक माशा रेडियम का मूल्य लगभग ५ लाख रुपया होता है। परंतु वैज्ञानिकों ने अनुमान किया है कि निकट भविष्य में एक माशा रेडियम के बराबर ही काम करने वाली रेडियमधर्मी धातु दस-पाँच रुपये में बन सकेगी। इस समय शायद ही कहीं पूरा एक माशा रेडियम किसी अस्पताल में हो। परंतु आज अमेरिका के एक अस्पताल में इतना रेडियमधर्मी कोबाल्ट है कि उसकी किरणें सेर भर रेडियम की किरणों से कुछ अधिक ही बलशाली हैं और ध्यान रहे कि आरंभ से आज तक कुल दो सेर ही विशुद्ध रेडियम बन पाया है।

जब रेडियमधर्मी धातु पर्याप्त मात्रा में और सस्ती बनने लगेगी तो उनसे बहुत सा काम लिया जा सकेगा। एक्स-रे मशीनों के बदले रेडियमधर्मी सीज़ियम से काम लिया जा सकता है। अन्य अधिक सस्ती रेडियमधर्मी धातुओं से जीवाणुनाशक अर्थात् जर्म्स मारने का काम लिया जा सकता है। अभी तक अस्पतालों में रुई, पट्टी आदि को जर्म्सरहित करने के लिए उन्हें दबी हुई भाप द्वारा तप्त बरतनों में बीस-तीस मिनट या अधिक समय तक रक्खा जाता है। भविष्य में संभवतः उन्हें रेडियमधर्मी किसी धातु के साथ एक बक्स में कुछ समय तक बन्द रखना पर्याप्त होगा। इन दिनों पेनिसिलीन को जर्म्सरहित करने में बड़ी परेशानी उठानी पड़ती है, क्योंकि गरम करने से पेनिसिलीन स्वयं खराब हो जाती है। भविष्य में यह काम रेडियमधर्मी धातुओं की किरणों से सुगमता से हो सकेगा। अभी कठिनाई यही है कि यथेष्ठ पारमाणवीय भट्टियाँ नहीं हैं जो आवश्यक रेडियमधर्मी धातु दे सकें।

एक उपयोग रेडियमधर्मी पदार्थों का यह है कि उनसे पता लगाया जा रहा है कि प्राणियों का आहार या पौधों की खाद उनके शरीर में कैसे शोषित होती है। इसके लिए आहार या खाद में बहुत थोड़ी मात्रा में कोई रेडियमधर्मी आहार मिला दिया जाता है, इतनी कम मात्रा में कि उस प्राणी या पौधे पर इसके किरणों का कोई प्रभाव न पड़े, और तब विशेष यंत्रों से किरणों का पता लगाकर देख लिया जाता है कि वह पदार्थ कितनी देर में शरीर के किस स्थान पर पहुँचा। इससे अनेक उपयोगी बातों का पता चला है। उदाहरणतः देखा गया कि तंबाकू, रुई और मक्का में फासफेट केवल आरंभ में पचते हैं; पीछे वे भूमि में ही पड़े रह जाते हैं। इस जानकारी से अमेरिका में लाखों डालर की बचत हुई।

किस तेल के पड़े रहने से मशीन के पुरजे कम घिसते हैं—इसका पता पहले महीनों में लगता था। अब रेडियमधर्मी धातुओं के कारण मिनटों में ही पता चल जाता है कि किस दर से धातु घिसकर तेल में पहुँच रही है।

अवश्य ही पारमाणविक ऊर्जा के उपयोग निकट भविष्य में और भी विस्तृत तथा महत्त्वपूर्ण होंगे।

ः० ति० २५-९ ५९

विज्ञान की दुनिया

प्यारे बच्चो,

गरमी के दिनों में इस देश में कैसी भयानक गरमी रहती है। प्रति वर्ष कई व्यक्ति लू लगने से, अर्थात् गरम हवा लगने से, मर जाते हैं। बहुत से व्यक्ति कई दिनों तक खाट पकड़ लेते हैं। यदि गर्मी दुर्दशा न भी हुई तो सुस्ती तो आ ही जाती है। गरमी के दिनों में उतना काम नहीं हो पाता जितना जाड़े में। प्रश्न उठता है कि क्या विज्ञान हमारी कोई सहायता इस दशा में नहीं कर सकता? उत्तर है कि अवश्य, निश्चित रूप से विज्ञान हमारी सहायता कर सकता है।

तुमने देखा होगा कि जब गरमी के दिनों में पछुवा हवा चलती है तब सुराही का पानी ठंढा रहता है। क्यों? कारण यह है कि हवा सूखी रहती है और जहाँ कहीं भी उसको पानी मिलता है वहाँ-वहाँ से पानी को भाप या वाष्प बना कर हवा उसे सोखती रहती है। परन्तु पानी को वाष्प बनने के लिए उष्मा अर्थात् गरमी की आवश्यकता रहती है। वाष्प यह उष्मा बचे हुए पानी से ले लेता है। इसलिए सुराही का बचा हुआ जल ठंडा हो जाता है। धातु के घड़े की अपेक्षा सुराही का पानी बहुत अधिक ठंढा इसलिए होता है कि सुराही के रंध्रों (अर्थात् अति सूक्ष्म छेदों) से पानी बाहरी सतह तक पहुँचता रहता है और वहाँ वाष्प में परिवर्तित होता रहता है। धातु के घड़े में रक्खा पानी वायु तक नहीं पहुँच पाता।

वाष्प बनने से उत्पन्न ठंडक का उपयोग करके हम अपने मकानों को पर्याप्त ठंढा कर सकते हैं। खस के पर्दे का यही सिद्धांत है। यदि तुम अपनी कोठरी में पश्चिम के किसी जँगले या दरवाजे में खस का पर्दा लगा लो, हवा निकलने के लिए पूरब की ओर एक जँगला या दरवाजा खोल दो, अन्य सब जँगलों तथा दरवाजों को बंद कर दो और खस के परदे पर पानी छिड़क कर उसे बराबर तर रक्खो तो जब पछुवा हवा बहेगी तो वह बहुत ठंडी होकर भीतर जायेगी और उससे कोठरी बहुत ठंडी हो जायगी।

अब प्रश्न यह है कि सब लोगों की कोठरियाँ खस लगाने से क्यों नहीं काफी ठंडी होती? इसके कई कारण हैं: कुछ लोगों की कोठरियों में छत पर या किसी दीवार पर धूप पड़ती है। पश्चिम की ओर किसी दूसरे का मकान या कोई दूसरी कोठरी रहती है, इसलिए पछुवा हवा के आने का प्रबंध नहीं किया जा सकता, या उधर जँगला हुआ भी तो पूरब की ओर कोई जँगला या दरवाजा नहीं रहता कि हवा निकल सके। यदि हवा के निकलने का मार्ग न रहेगा तो खस में हवा घुसेगी ही नहीं। फिर, सब प्रबंध ठीक होने पर पानी छिड़कने का प्रबंध नहीं हो पाता। पानी छिड़कने वाला सो जाता है; वह भी आदमी ही है। और यदि पछुवा हवा के बदले पुरवा हवा बहने लगी तो कोठरी गरम और बाहर कुछ ठंडा होने लगता है। हाँ, यदि खस के परदे को पूरब लगाया जाय तो थोड़ी-बहुत ठंडक हो सकती है। परंतु पूरब से आयी हवा अधिकतर आर्द्र अर्थात् नम होती है, उसमें पानी का वाष्प पहले से बहुत रहता है और इसलिए वह नया वाष्प अधिक नहीं सोख सकती। परिणामस्वरूप छिड़के हुए पानी को वह थोड़ी ही मात्रा में सोख पाती है। पूरब से आयी हवा में नवीन जल सोखने की शक्ति कभी-कभी इतनी कम रहती है कि शरीर का पानी भी ठीक से नहीं सूख पाता। तब लोग कहते हैं कि सड़ी गरमी पड़ रही है; तब लोगों को बड़ी बेचैनी जान पड़ती है।

जब हवा बहती ही न हो तो खस के परदे से आराम नहीं मिलता, क्योंकि खस को पार करती हुई कोई हवा भीतर आती ही नहीं। इस दोष को दूर करने के लिए बिजली के पंखे का उपयोग किया जा सकता है। परंतु खस के परदे के पीछे पंखा रख देने से ही काम नहीं चलता, क्योंकि पंखे के चलने पर हवा खस के परदे से टकरा कर इधर-उधर निकल जाती है, खस को पार करके भीतर नहीं घुसती। इसके लिए चाहिए कि एक बक्स हो, सामने गोल छेद कटा हो जिसमें पंखे की पत्तियाँ (अर्थात् ब्लेड्स) नाचती रहें। यह छेद पत्तियों की नाप से नाममात्र ही बड़ा हो। पंखे के पीछे वाली दीवाल बक्स से निकाल दी जाय और उसके बदले खस का परदा लगा दिया जाय। बक्स के भीतर और कहीं से हवा के घुसने का मार्ग न हो। जब जब पंखा चलेगा तो खस द्वारा हवा खींचेगा और यदि खस के परदे को पानी से तर रक्खा जायगा तो पंखे से ठंडी हवा निकलेगी। कोई भी कारीगर बालक ऐसा बक्स स्वयं बना सकता है, परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि खस का परदा बहुत मोटा न हो। चौथाई इंच की मोटाई काफी है। मोटे परदे द्वारा पंखा हवा न खींच पायेगा। इस प्रकार के बने बनाये बक्स बाजार में बिकते भी हैं। इन्हें लोग **रूम-कूलर** कहते हैं जिसका अर्थ है 'कोठरी को ठंडा करने का यंत्र।' इनमें खस को तर करने के लिए एक छोटा पम्प लगा रहता है जो नीचे से पानी फेंक कर खस के परदे के माथे पर उसे गिराता रहता है। वही पानी नीचे से ऊपर, और ऊपर से नीचे होता रहता है। साधारण पंखों से हवा बहुत कम आती है, विशेषकर जब उसे हवा को खस द्वारा खींचना हो। इसलिए इसमें बहुधा तेज चलनेवाले और चौड़ी पत्तियों (अर्थात् ब्लेडों) के पंखे लगे रहते हैं, जिन्हें एग्जास्ट फैन कहते हैं। इससे भी अच्छा यंत्र वह होता है जिसमें सेंट्रीफुगल फैन लगा रहता है। यह पंखा बेलन के आकार का होता है और उस बेलन से चौकोर पत्तियाँ निकली रहती हैं। जब बेलन नाचता है तो पत्तियाँ उसी सिद्धांत पर हवा फेंकती हैं जैसे घरेलू आग धोंकने के चौकोर सपाट पंखे।

रूम-कूलर से कुछ आराम तो अवश्य मिलता है, परन्तु जब हवा में नमी रहती है तब विशेष लाभ नहीं होता। जब सड़ी गरमी पड़ती है तब तो रूम कूलर बेकार हो जाता है। विशेष लाभ नहीं होता। सदा सुख देनेवाले यंत्र वे हैं जो एयर-कंडीशनर कहलाते हैं। इनको हिन्दी में वायु अनुकूलक कह सकते हैं। ये वायु को ठंडा तो कर ही सकते हैं, सड़ी गरमी के दिनों में वायु की नमी को भी निचोड़ लेते हैं। अच्छे यंत्रों में वायु को इच्छानुसार कम या अधिक ठंडा किया जा सकता है।

इन मशीनों में बर्फ बनाने की मशीन की तरह का यंत्र रहता है। एक पम्प रहता है जो अमोनिया अथवा अन्य किसी इसी प्रकार की गैस को खूब दबा देता है। इस संपीडन अर्थात् दबने से गैस बहुत गरम हो जाती है। तब उस पर पंखे से हवा फेंककर या पानी डालकर ठंढा किया जाता है। इससे संपीड़ित गैस द्रव, अर्थात पानी की तरह, हो जाती है। फिर इस द्रव को ताँबे की नलियों में बहने दिया जाता है, जहाँ जगह अधिक मिलने के कारण दाब कम हो जाता है और द्रव फिर गैस हो जाता है; दूसरे शब्दों में द्रव पदार्थ वाष्प हो जाता है। इससे ताँबे की नलियाँ उसी प्रकार ठंढी हो जाती हैं जैसे सुराही का पानी। अंतर यही रहता है कि ठंढक बहुत अधिक उत्पन्न होती है और द्रव का वाष्प ताँबे की नली के भीतर ही रह जाता है। इसलिए उसे फिर संपीड़ित, ठंढा, द्रवित और प्रसारित किया जा सकता है। एक पंखे से वायु ताँबे की खूब ठंढी हुई नलियों पर फेंकी जाती है। यह वायु ठंढी होकर कोठरी में निकलती है। इस प्रकार कोठरी ठंढी होती रहती है। जाड़े

के दिनों में ठंढा करने वाली मशीन, जो बिजली से चलती है, बंद कर दी जाती है, और पंखे की हवा को बिजली से गरम किये तारों पर फेंका जाता है। इससे कमरा गरम रक्खा जा सकता है।

छोटी कोठरी में वायु-अनुकूलित करने की मशीन लगभग दो हजार रुपये में मिलती है। बड़ी मशीनें अधिक दाम की होती हैं। यदि तुम किसी बड़े शहर में रहते हो तो वहाँ कोई सिनेमाघर वायु-अनुकूलित होगा; मैनेजर से अनुमति लेकर मशीनों के काम करने के ढंग को देखो और समझो। या, यदि तुम्हारे घर बिजली का टेबुल फैन है तो स्वयं रूम-कूलर बनावो। पानी छिड़कने में आलस्य लगे तो छेदयुक्त पाइप को किसी टंकी की टोंटी से संयुक्त करो। बड़ा आनन्द आयेगा।

प्र० ति० २६-६-६०
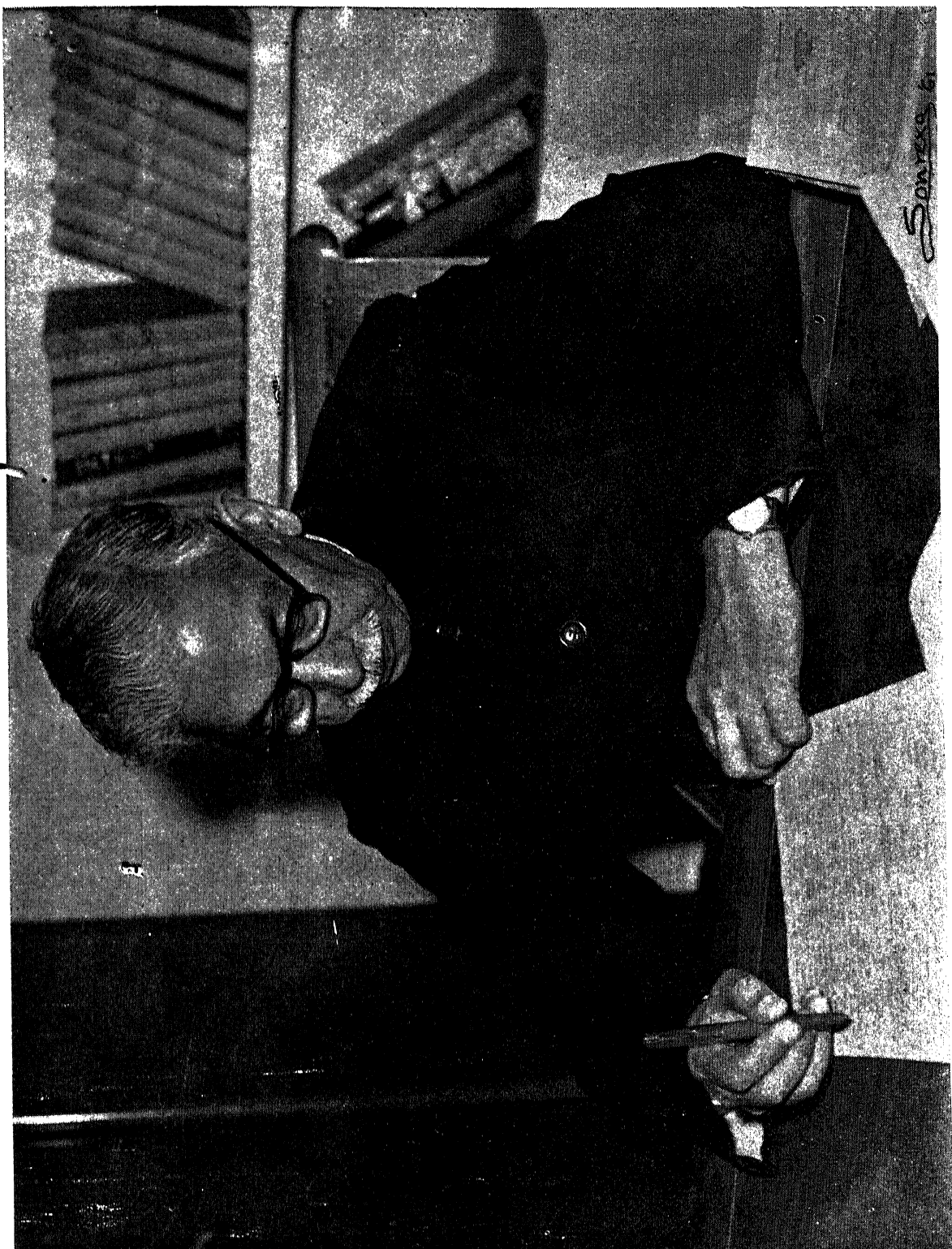
डा० गोरख प्रसाद—हिन्दी विश्वकोष का सम्पादन करते हुए

SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY IN HINDI*

Dr. Gorakh Prasad

A pamphlet entitled "The Problem of Scientific and Technical terminology in Indian Languages—a Draft Outline" by Dr. D. S. Kothari, Chairman of the Hindi Commission appointed by the Government of India, has recently been published by the Ministry of Education of the Central Government. It contains a clear and concise enunciation of the principles which should underline the policy governing the choice of Indian equivalents for scientific and technical words. In addition to the principles, certain recommendations have also been made, which unfortunately go against the principles in several ways.

The main principles are as follows:

1. "It is necessary to consider separately the requirements of advanced study and research, and those of school education and popularisation of science".

2. "In the case of school education, the terminology must be a part of the language in which school education is imparted, that is, the regional language."

3. "The medium for school education, for training of craftsmen and 'skilled workmen' and popularisation of science has to be the language of the region concerned."

4. "The immense practical advantage of acquiring knowledge, particularly at the school stage, in one's own language (mother tongue) cannot be gainsaid. It is difficult to grasp and remember technical terms if these are in a foreign language. It would result in parrot-like learning, mental strain and the stifling of intelligence....'.

5. "A large-scale 'popularisation of science' can be achieved only if done in the regional language. ......Popularisation of science is not only essential for the sake of adequate and wise support of science, but without it the average citizen would hardly have any real awareness of the 'New World' opening before us".

*डा० गोरखप्रसाद द्वारा लिखित यह लेख डा० कोठारी द्वारा प्रकाशित उस पुस्तिका का प्रत्युत्तर है जिसकी चर्चा प्रायः समस्त हिन्दी जगत में उन दिनों व्याप्त थी। सम्भवतः यह लेख डा० गोरखप्राद जी ने किसी अंग्रेजी पत्र में प्रकाशनार्थ प्रेषित करने के लिये लिखा था परन्तु नहीं भेज पाये और वह उसी प्रकार रह गया। अन्तिम कृति के रूप में होने के कारण इसे मूल रूप में (अंग्रेजी में) ही यहाँ मनोरंजनार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है। पाठक वृन्द, आशा है, 'विज्ञान' की नीति के विरुद्ध न मानकर इसे अन्तिम 'दस्तावेज' के रूप में स्वीकार करेगा।

—सम्पादक

Recommendations

After enunciating these principles the author of the Draft Outline makes the following recommendations:

(*a*) "In the Hindi terminology, as also in other languages, the 'International Terms' (e.g. names of elements, compounds, physical units and constants, and mathematical operations) should be adopted, transliterated wherever necessary to suit the grammar and structure of Hindi, in their current English form, unless there be compelling reasons to the contrary in the case of any particular term."

(*b*) "An 'International Term' written in *Devanagari* (or any other Indian script) should be invariably accompanied by the equivalent English term written in brackets".

(*c*) "Numerals, symbols, signs and formulae employed in mathematics and other sciences should be adopted in their 'international form' without modification. Letters used in geometrical figures and other diagrams, and in mathematical expressions should be, normally, in Roman alphabet (modern European alphabet). Greek letters may also be used, if necessary."

An Examinaton of the Recommendations

If recommendation (*a*) is to be followed with respect to the first item named, viz. elements, it would become necessary to abolish the words *chandi*, *sona*, *tamba*, *loha*, *para*, *jasta*, *ranga*, *sisa* and *gandhaka* from the Hindi language when employed for scientific writings, unless the Ministry of Education sees urgent reasons to exempt them.

If the same recommendation is to be followed with respect to the last item named, viz. mathematical operations, the Hindi words *jodo*, *ghatao*, *guna karo*, *bhag do*, *varga nikālo*, *vargamul nikālo*, *kshetraphala nikālo*, and a host of other similar words denoting mathematical operations will have to be abolished from the Hindi language unless exemption is obtained on the grounds of 'compelling reasons'.

Will not this recommendation thus go against principles Nos. 2, 3, 4 and 5 given above ? In my opinion, in literature meant for schools, craftsmen and the public, as few foreign words should be used as possible; exception should be made only in the case of such 'international words' for which an easy and meaningful equivalent cannot be found in Hindi.

Let us now consider recommendation (*b*). To take an example, in the article on Oxygen in the Hindi Encyclopaedia, which extends to less than a column and a half, the word oxygen occurs 32 times. The recommendation under consideration requires that the word Oxygen should be repeated, in Roman letters in brackets,

invariably, i.e., 32 times ! In my opinion mention of the English term once is enough. In a work like the Hindi Encyclopaedia this could most conveniently be given in the form of consolidated alphabetical glossary (Hindi-English and English-Hindi) at the end.

Let us now examine recommendation (*c*). When teaching fractions to small children, much before they learn English letters, it is customary to draw a square and divide it into four equal parts. Letters have to be used to denote the square and its parts. The recommendation under consideration requires that these letters should be Roman (modern European). It is true that the word 'normally' occurs in the sentence used by the author of the draft. But this word is elastic. I should think that in literature meant for school students, craftsmen and the general public the letters used must be Devanagari when the book is in Hindi, and not in Roman, otherwise such books cannot be popular and will not serve their purpose. In Hindi books meant for B.Sc. or M.Sc. students the letters may be in Roman if there are special reasons.

As regards numerals, they should be in the Devanagari if the regional language is written in the Devanagari. The Government has failed to popularise those Railway Time-Tables printed in Hindi which used English numerals, and that should be a lesson to us. Students can be forced to learn whatever the Government orders, but that part of the public which knows Hindi but not English, will not care to read books on popular science if the numerals are in English. My estimate is that about 80 per cent of the adult literate population in the Hindi speaking States does not know any English and cannot recognise English letters and numerals. This class of literate persons is not dying out, but on the otherhand would be increasing, because lacs of children read only up to the primary stage in their village homes (and primary education is proposed to be made compulsory in the near future) and even when these literate children would grow up, they are likely to remain ignorant of English letters and numerals.

As regards mathematical formulae, they can quite easily be written in Devanagari and are easier to remember. It has been recommended by the author of the Draft Outline himself that Hindi words should be used for velocity, space described, mass etc. The English books use *v*, *s*, *m* etc. for these. School students, craftsmen and the public will naturally find the initial letters of *vega*, *duri*, *dravyaman* etc. (*ve*, *du*, *dra* etc.) much more convenient. The English unrelated letters will be difficult to remember and would result in unnecessary mental strain.

I think Hindi should be allowed to progress unfettered. English letters and English formulae are advocated for the sake of those who go to higher studies and

research. But out of the two lacs of students who appear at the High School examination of the Board of High School and Intermediate Examination in Uttar Pradesh, hardly a few hundred go in for research and only a few thousands appear at the M.Sc. examinations, and I believe the same proportionality holds elsewhere also. Why put obstacles in the path of 98 per cent of the students to smoothen the path of the two per cent ? And this 2 per cent is, after all, going to learn English (and preferably also Russian according to the author of the Draft Outline) in order to be able to carry on research. Learning formulae in English and reading geometrical figures with English letters will be a few hours' work for them, because it will come to them when their minds are more mature.

As regards chemical formulae, when children will have learnt the names of elements, say hydrogen (हाइड्रोजन), oxygen (आक्सिजन), sodium (सोडियम), and chlorine (क्लोरीन)) written in Devanagari what would be more natural to them than हा, आक्सि, सो, and क्लो (*ha*, *oxy*, *so*, and *chlo* written in the Devanagari script) as their symbols ? Why should they be compelled to learn to denote them by H, O, Na and Cl and write them in English, even when they occur in the middle of a Hindi sentence ? Will not this be parrot-like and result in mental strain ? Will it help the popularisation of science among the Hindi knowing public ? Is it in accordance with the principles enumerated above ? Cannot students learn the English symbols of chemical elements when in the higher stages their medium of instruction becomes English instead of the regional language ?

Criticism of the Hindi Encyclopaedia

The draft goes on to say: "References in Hindi scientific literature to journal/book in English, or any other foreign language, should invariably, following the international practice, be given in the original language of the journal/book. Any deviation from this practice would be most confusing and should not be permitted. An unfortunate example of such a deviation is given at Appendix B."

Now this appendix is a reproduction of an article from the Hindi Encyclopaedia in which the references are given in the *language* of the original journals and books, but in the Devanagari *script*. So I think that the author of the Draft Outline means *script* when he talks of *language* in the above quotation. Why should the use of the Devanagari script be confusing (except perhaps to those who cannot read Devanagari fluently) ? Devanagari enables the reader who knows the language to see at once what is meant. It simplifies the printing. Where shall we get Greek or Russian types if the references are to be Greek or Russian books ? The author of the Draft Outline is wrong when he refers to 'the international practice'. English books and

journals always print references to Sanskrit books in their own script. For example, the Encyclopaedia Britannica has printed the names of all Sanskrit books in Roman letters. Why should we not print the names of English books in Devanagari letters when it is so convenient to us. As regards the names of persons, the English spelling may not be guessable from the Devanagari version; for this the Hindi Encyclopaedia proposes to give an alphabetical index at the end, where the Roman spelling will be given.

Another criticism

The above article from the Hindi Encyclopaedia has been quoted also as an example of scientific literature "which, in the name of indigenous terminology, uses words, symbols, mathematical signs, violating all rational considerations and in contradiction to the 'International Terminology'."

Here the author of the Draft Outline has surely been carried away by his sentiments; for the mathematical symbols are all without exception, the international ones. The technical words used in the Hindi Encyclopaedia are either those which have been approved by the Government of India's Expert Committee in Terminology in Physics, as far as words could be found in its publications, or have been coined according to the same principles, and the English words are given in the Devanagari script in brackets where necessary. Devanagari letters have been used for the various quantities and it has been explained what they stand for.

I fail to understand what 'rational considerations' have been violated.

As the author of the Draft himself has pointed out, English had to struggle against Latin to become a successful medium of expression in scientific writing. Similarly Russian had to struggle against French, German and English. Most Hindi writers believe that Hindi would be able to struggle successfully against English if writers are allowed to write in Hindi, but if the Government imposes a ban against formulae in Hindi and Devanagari, it would be a pity.

डा० गोरख प्रसाद के अनुसन्धान लेखों की सूची

संकलकर्त्ता—डा० चन्द्रिका प्रसाद

1. **"The effect of the Double Suspension Mirror on the Sensitiveness of the Balance"**
   प्रोसीडिंग्स ऑफ बनारस मैथमेटिकल सोसायटी, १९१९, १, ९ ।
2. **"On the expansion of the product of two parabolic cylinder functions in a series of parabolic cylinder functions"**
   वही, १९२०, २, १ ।
3. **"Parametric Equations of the Path of a Projectile in a resisting Medium"**
   वही, १९२१, ३, १ ।
4. **"Some New Properties of the Parabolic Cylinder Functions"**
   वही, १९२२, ४, २१ ।
5. **"On the Numerical Solution of Integral Equations"**
   प्रोसीडिंग्स ऑफ एडिनबरा मैथमेटिकल सोसायटी, १९२४, ४२, ४६ ।
6. **"Mean Absolute Magnitude of a Group of Stars. Note on a paper by Messers Young and Harper".**
   मन्थली नोटिसेज ऑफ रायल एस्ट्रानामिकल सोसायटी, १९२४, ८४, ४९३ ।
7. **"The Relation of Mean Parallax to Proper Motion and Apparent Magnitude"**
   वही, १९२४, ८५, १५७ ।
8. **"The Progression of Stellar Velocity with Absolute Magnitude"**
   वही, १९२५, २५, ४१७ ।
9. **"On the Parabolic Cylinder Functions"**
   प्रोसी० बनारस मैथ० सोसा०, १९२५-२६, ७-८, १ ।
10. **"The Numerical Solution of Partial Differential Equations"**
    फिलासोफिकल मैगजीन, १९३०, ९, १०७४ ।
11. **"Astronomical Evidence on the Age of the Vedas"**
    जर्नल ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, १९३५, २१, १ ।
12. **"On the Age of the Baudhayana Srauta Sutra"**
    जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी, १९३६, पृ० ४१७ ।
13. **"The Astronomy of the Vedanga Jyautisa"**
    गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीच्यूट जर्नल, १९४७, ४, २३९ ।

पत्रावली

पं० गोरख प्रसाद अपने पोतों या पोतियों के नाम जो पत्र लिखते थे वे अत्यन्त स्पष्ट अक्षरों में होते जिससे बच्चों को पढ़ने में कठिनाइयाँ न हों। इन पत्रों में बच्चों के स्वभाव के अनुरूप नाना प्रकार की बातें होतीं थीं।

अपने पुत्र के नाम जो पत्र लिखे हैं उनमें समय के अनुसार बातें मिलेंगी।

अन्त में दो पत्र और संग्रहीत हैं जिनकी चर्चा पृ० ६५-६६ पर आई है।

(१)

गोरख प्रसाद

प्रिय दिवाकर, नीरा और राशी, आशीर्वाद। बनारस में इन दिनों नानखताई बहुत बिकती है, गरमागरम! खाने ~~मैं~~ बहुत अच्छा लगता है, बिस-कुट से भी अच्छा। लेकिन बाजार की नानखताई में नकली घी पड़ा रहता है। इसलिये हमने कल घर पर असली घी से नानखताई बनाया

था। अशोक और हमने खूब खाया; बड़ा मज़ा आया। तुम लोग यहाँ होते तो खूब खिलाते। नानखताई सूखे मैदे, घी और चीनी से बनायी जाती है, परंतु उसे बिना उलटे ऊपर और नीचे दोनों ओर से सेंकना पड़ता है॥ तुम लोगों जल-पाईगुड़ी में अपनी मौसी का विवाह देखा होगा। मौसा जी तुमको पसंद आये कि नहीं? कोट पतलून पहनते हैं कि कुरता धोती? टोपी पहनते हैं या नहीं? उनकी मूँछ कितनी बड़ी है?

शुभचिंतक : बाबा

(२)

११

प्रिय नीरा और राशी, आशीर्वाद। तुम्हारा कार्ड मिला, परंतु तुम्हारी दादी इलाहबाद चली गयी हैं। तुम्हारे कार्ड को मैंने वहीं भेज दिया है। क्या तुम अपनी बहन सुधा को जानती हो? २० नवंबर को उनकी मँगनी हो गयी। दूल्हे का नाम मोती लाल गोविल है। वे अजमेर के सरकारी कालेज में पढाते हैं और ३२५ रुपया महीना पाते हैं शादी जनवरी या फरवरी में होगी। तुम्हारी दादी तो इन दिनों रोज बाजार जाती हैं :—

दादी जातीं रोज बजार,
चीज़ें लातीं एक हजार।
सुधा बहन की शादी होगी,
नीरा राशी तुम क्या लोगी?

तुम्हारे बाबा

प्रिय दिवाकर, आशीर्वाद। साथ में जरमन बच्चों का चित्र है। देखो उनको भी रेल से खेलना कितना अच्छा लगता है और यह तो देखो कि उनकी गाड़ी में कितने डब्बे हैं और इंजन कितना बड़ा है! तुम्हारे बाबा

(३)

दिवाकर, नीरा, राशी,

सब को आशीर्वाद।

यहाँ हम अच्छी तरह हैं। अपना अपना हाल लिखना। तुम लोगों की परीक्षाएँ कब समाप्त होंगी। तुम लोगों में से कोई बनारस आना चाहे तो लिखना- तुम्हारी दादी रुड़की पहुँच कर तुम्हें लिवा लायेंगी। यहाँ बनारस में रोज शाम को नाव की सैर होती है और नाव पर कहानी किस्सा सुनाया जाता है जो यहाँ आयेगा उसे हम तैरना भी सिखा देंगे। गंगा जी में नहाने और तैरने में बहुत आनंद आता है।

शुभचिंतक तुम्हारे बाबा

१५-१-१९५९

प्रिय दिवाकर,

आशीर्वाद। हम अच्छी तरह हैं। तुम लोग भी अच्छी तरह हो न ? मजबूत बनने के लिये तुम खूब दूध पीया करो और अंडा खाया करो। दवा खाने से मजबूती अच्छी नहीं आती।

नीरा और राशी को आशीर्वाद।

शुभचिंतक
बाबा

(५)

प्रिय दिवाकर

आशीर्वाद। राशी, नीरा, तुम्हारी माँ, तुम्हारी सब मौसी और मामा लोगों को भी आशीर्वाद। तुम बहुत बीमार पड़ गये थे यह जान कर दुख हुआ। अब भी कमजोर हो; इसलिये धूप और गरमी से बचना। खाना ऐसा खाना जो सुगमता से पचे। दूध अधिक पीना। फल खाना। तुम घूमने जाते हो यह बहुत अच्छा है। यहाँ इन दिनों तुम्हारी दादी आयी हैं

और उनके साथ तुम्हारी दुर्गा फूफ़ा भी आई हैं। साथ में उनके बच्चे सुधा, अतुल, अशोक, सरिता और सुनीता भी हैं। फिर तुम्हारी अनिल दीदी और अरविन्द भी हैं। यहाँ गरमी बहुत पड़ती है; परंतु हम लोग शाम को नाव पर सैर करते हैं और गंगा जी में खूब नहाते हैं। आज शाम को तुम्हारी दादी, सुधा, अनिल और अशोक रूड़की के साथ रुड़की जायेंगी और वहाँ से देहरादून जहाँ तुम्हारी किरण जीजी हैं न, और वहाँ गरमी नहीं पड़ती।

शुभचिंतक : बाबा।

पहला मोड़ First fold

(१)

(पत्र 1)

१०४ बाड़ा गंभीरसिंह
वाराणसी
१.७.१९६०

प्रिय डाक्टर शिवगोपाल मिश्र, सप्रेम
नमस्ते। आप के कार्ड मिले। खेद है
उत्तर न दे सका। परंतु एक छोटा
लेख विज्ञान के लिये मैंने लिख
लिया है। मैं ता: ३ को ४ बजे
संध्या तक इलाहाबाद रहूँगा। किसी
को भेज कर लेख मँगा लें। यदि
यह कार्ड आप को देर से मिले तो
अन्य किसी दिन किसी को भेज दीजियेगा
घर पर जो कोई होगा आप को लेख दे
देगा।

आप का
गोरख प्रसाद

प्रतिलिपि पत्र संख्या १ (देखिये पृ० ९५)

एक अन्य पत्र

टेकनिकल प्रेस के एक कर्मचारी (अन्सार अहमद) के विवाह के अवसर पर प्रेषित पत्र की प्रतिलिपि*

Beli Avenue
Allahabad
18-3-1955.

My dear Sheikh Saheb,

My blessing for the bride and bridegroom. May they live long and be always happy.

I regret I could not attend the dinner to which you so kindly invited me, because I got your invitation on the day of the dinner on my return after a long journey and was feeling out of sorts. I hope, therefore, to be kindly excused.

Yours sincerely,
GORAKH PRASAD.

To

Shri Sheikh Habibullah,
236 Katju Road,
Allahabad-3

*यह पत्र श्री शेख हबीबुल्ला के नाम है। उन्होंने इसमें नवदम्पति को अपना आशीर्वाद भेजा है। इस अवसर पर स्वयं उपस्थित न हो सकने पर उन्होंने जो क्षमायाचना की है वह उनकी सहृदयता एवं सरलता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

—सम्पादक

स्वर्गीय डा० गोरख प्रसाद द्वारा लिखित पुस्तकें

हाई स्कूल कक्षाओं तक के लिए

अंकगणित
नूतन बाल अंकगणित भाग १, २, ३
बाल अंकगणित
हाईस्कूल अंकगणित
हाईस्कूल बीजगणित
Vernacular Final Geometry Part I, II, III
High School Geometry

इंटरमीडिएट कक्षाओं के लिए

इंटरमीडिएट कैलक्युलस
निर्देशांक ज्यामिति
गति विज्ञान
स्थिति विज्ञान

बी० एस-सी० कक्षाओं के लिए

सरल गणित ज्योतिष
प्रारम्भिक अवकल समीकरण
Text-Book on Differential Calculus
Key to Text-Book on Differential Calculus
Text-Book on Integral Calculus
Key to Text-Book on Integral Calculus
Text-Book on Coordinate Geometry

एम० एस-सी० कक्षाओं के लिए

Text-Book on Spherical Astronomy
Key to Text-Book on Spherical Astronomy
Spherical Trigonometry
Key to Spherical Trigonometry

सर्व-साधारण के लिए

सरल विज्ञान सागर
सरल [illegible]
नीहारिकाएं
सौर परिवार
तैरना
सूर्य (अनुवाद)
सूर्य सिद्धान्त
फोटोग्राफी सिद्धांत और प्रयोग
फल संरक्षण
लकड़ी पर पालिश
सूर्य सारिणी
चन्द्र सारणी
आकाश की सैर
उपयोगी नुस्खे और हुनर
भारतीय ज्योतिष का इतिहास
Method of Least Squares.

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिगराम भार्गव	२५ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगाशंकर पचोली	२५ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रामेश वेदी	२ रु० ७५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकरराव जोशी	२५ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण—लेखक एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर	२ रुपया
१०—कलम पैबन्द—श्री शंकरराव जोशी	३ रुपया
११—जिल्दसाजी—श्री सत्यजीवन वर्मा	३ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद	१ रुपया
१३—वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० सन्त प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद, वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० नये पैसे
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपया
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपया
१९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
२०—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरख प्रसाद, डा० सत्य प्रकाश	३ रु० ५० नये पैसे
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकरराव जोशी	३ रु० ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनिया—श्री रामेश वेदी	४ रुपया
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्र नाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधानशालायें	२ रुपया
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
२६—रेल इंजन, परिचय और संचालन—श्री ओंकार नाथ शर्मा	६ रुपया
२७—भारतीय कृषि का विकास—डा० शिवगोपाल मिश्र	५ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञान जानेतानि जीवन्ति विज्ञान प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तै० उ० ।३।५।

भाग ९३ | २०१७ विक्र० श्रावण १८८२ शाकाब्द, अगस्त १९६१ | संख्या ५

प्राचीन भारतीय सृष्टि-विद्या

मायाप्रसाद त्रिपाठी

ज्योतिष-ग्रंथ

तृतीय तथा पंचम शताब्दी के सूर्य-सिद्धान्त के 'भूगोल वर्णनम्' नामक द्वादश अध्याय के आरंभिक छंदों में सृष्टि उत्पत्ति और भूगोल शास्त्र संबंधी बहु-संख्यक बातें दी हुई हैं । यह अध्याय इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि तत्कालीन लोगों के मतानुसार भी भूगोल का अर्थ और परिधि वही है जो आज के विद्वानों के अनुसार । उन लोगों ने भी सृष्टि-उत्पत्ति के विमर्श को भूगोल के अंतर्गत माना है ।

लगभग सभी ज्योतिष-ग्रंथों में, जिनमें गणित के साथ-साथ अन्य बातों का भी विवेचन है दो पृथक् खंड दृष्टिगोचर होते हैं—गणिताध्याय तथा गोला-ध्याय या गणितपाद एवं गोलपाद । साधारणतया ऐसे सभी ग्रंथों के गोलाध्यायों में सृष्टि-उत्पत्ति तथा सृष्टि-वर्णन के कुछ न कुछ तथ्य मिलते हैं ।

सूर्य सिद्धान्त के उपर्युक्त अध्याय के १२ से २८ तक के छंदों में सृष्टि-रचना का वर्णन आता है । इन छंदों का निष्कर्ष यह है कि आदि पुरुष से जल की उत्पत्ति हुई और जल में हिरण्यगर्भ उद्भूत हुआ । तदनंतर सर्वप्रथम सविता[६१] उत्पन्न हुआ । उसने काल और संवत्सर की रचना की। फिर उस भास्वर देवता ने सृष्टि के निमित्त ब्रह्मा को उत्पन्न किया । ब्रह्मा ने चन्द्रमा, सूर्य, आकाश, वायुमंडल, अग्नि, जल तथा पृथ्वी का क्रमशः निर्माण किया । तत्पश्चात् पंचभूत बने । उनके पश्चात् राशियों, नक्षत्रों, स्थावरों, जंगमों तथा देवों की सृष्टि हुई । इसके अनंतर ब्रह्मा ने तारों, ग्रहों, पृथ्वी, ब्रह्मांड, देवों, मानवों तथा सिद्धों का वर्गीकरण किया ।

आगे के छंदों में[६२] कहा गया है कि यह ब्रह्मांड पोला है और उसका तल वक्र एवं बहुत कुछ गोलक के

[६१] इसकी तुलना प्रश्न-उपनिषद् की एतद्विषयक भावनाओं से कीजिए,

[६२] १२. २९-३०-३१

धरातल जैसा है। उसके तल की तुलना कटाहद्वय से भी की जा सकती है। उसमें पृथ्वी, आकाश आदि सम्मिलित हैं। ब्रह्मांड के एक वृत्त को व्योम (ether) की कक्षा कहा जाता है; उसमें नक्षत्र भ्रमण करते हैं; फिर क्रम से एक के पश्चात् एक शनि, वृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध, तथा चन्द्र अपने मार्गों पर घूमते हैं। फिर एक के नीचे एक सिद्धों, विद्याधरों तथा मेघों के प्रदेश हैं।

इस संम्बंध में अन्य सिद्धान्तों में[63] भी जो बातें दी हुई हैं, वे सूर्य सिद्धान्त के वर्णन से बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं। वाराहमिहिर भी[64] इस प्राचीन परम्परा के अपवाद न थे।

इस प्रकार सिद्धान्त ग्रंथों में प्रतिपादित सृष्टि-उत्पत्ति तथा सृष्टि-विद्या की भावनाओं के वैज्ञानिक पर्यवेक्षण से विदित होता है कि वे पूर्ववर्ती वाङमय और पौराणिकों से संप्राप्त तत्संबंधी ज्ञान में कोई विशेष संशोधन या परिवर्धन न कर पाए। इसके फलस्वरूप पूर्णरूप से वैज्ञानिक ग्रंथों की कोटि में रक्खे जाने वाले सिद्धान्तों में भी हमें पर्याप्त उपख्यानात्मक और काल्पनिक बातें मिलती हैं। कम से कम उन्हें आधुनिक ज्ञान, सिद्धान्त तथा नियमों के मापदंड को ध्यान में रखते हुए वैसा कहना ही पड़ेगा।

वास्तु ग्रंथ

कुछ वास्तु वा शिल्प ग्रंथों में भी एक पृथक् अध्याय में सृष्टि-उत्पत्ति का वर्णन दिया हुआ है। इस प्रसंग में भोज-प्रणीत "समरांगणसूत्रधार"‡ (१००० ई०) विशेष उल्लेखनीय है। उसके महदादिसर्गाध्याय नामक चतुर्थ अध्याय में ब्रह्मांड, तारों, ग्रहों, पृथ्वी तथा द्यौर्लोक, भूमंडल एवं नरक के विविध प्रकार के प्राणियों के उद्भव का अच्छा वर्णन किया गया है।

कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति की चर्चा कर उपर्युक्त अध्याय में आगे कहा गया है कि सृष्टि-रचना का कार्य महत् से आरंभ हुआ था। इस कथन में भोज ने सांख्य-दर्शन का अनुसरण किया है। उसके प्रथम उक्त अध्याय में सृष्टि के पूर्व प्रलय की बात भी स्वीकार की गई है।

महत् और भूतों के निर्माण के पश्चात् क्रमशः देवों, दानवों, सूर्य, चन्द्र नक्षत्रों, तारों, ग्रहों, सर्पों, पृथ्वी, नरक एवं अंडज, पिंडज, उद्भिद् तथा स्वेदज चार प्रकार के प्राणियों का आविर्भाव हुआ।

समरांगण सूत्रधार में वर्णित सृष्टि-उत्पत्ति की भावनाओं की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे केवल एक प्राचीन परम्परा पर नहीं, प्रत्युत कई प्राचीन परम्पराओं पर आधारित हैं। कदाचित् भोज ने सर्वोत्तम तथ्यों के चयन की बात को दृष्टिकोण में रखा था। दूसरी बात यह है कि उन्होंने हिरण्यगर्भ का उल्लेख एकदम नहीं किया है। तीसरी बात, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अपने वर्णन में थोड़ी बहुत मौलिकता लाने की भी चेष्टा की है। इस सम्बंध में पृथ्वी के उद्भव और भू-विन्यासशास्त्र (geomorphology) के विषय में भी बातें दी हुई हैं उनमें ऐसी चेष्टा स्पष्ट दृष्टिगत होती है।

सातवीं वा आठवीं शती के योग वाशिष्ठ में भी सृष्टि-उत्पत्ति और सृष्टि-विद्या-सम्बंधी बहुसंख्यक सूचनाएँ उपलब्ध हैं, जो वैज्ञानिक दृष्टि से कम रोचक नहीं हैं। इस ग्रंथ में दर्शन और साहित्य दोनों का समन्वय दिखाई पड़ता है।

वह घोषित करता है कि अन्तरिक्ष में[64क] बहु-संख्यक ब्रह्मांड तथा सूर्य हैं। ब्रह्माण्डों का आकार

६३—सोमसिद्धान्त (५०० से ९०० ई०)—गोबाध्याय २५ तथा अन्य।

६४—वृहत्संहिता, अध्याय १, श्लोक ६।

‡ और दे० अपराजित पृच्छा सूत्र ३।

६४क—उत्पत्ति प्रकरण, सर्ग ३० तथा ८५।

बुल्बुलों जैसा है।[६४] विशाल कालोदधि में ये ब्रह्मांड रूपी बुलबुले प्रत्येक कल्प में उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं।[६५] ब्रह्मांड की आकृति को अखरोट की खोल ऐसा भी बताया गया है।[६६] अन्तिम और विशालतम ब्रह्मांड को भी गोलक की आकृति का बताया गया है। यह दो गोलार्द्धों में विभक्त है।[६७] समस्त अन्य लघु ब्रह्मांड इसी में समाविष्ट हैं। समस्त लघु ब्रह्मांड और अखिल वृहत्तम ब्रह्मांड अपने समग्र परिग्रहों (dimensions) में एक विद्युद्दृश्य है जो कालमेघ में तड़ित् की चमक के समान दृष्टिगोचर होता है।[६८]

ऋग्वेद के संबंध में इस भावना का पहले पर्याप्त विवेचन किया जा चुका है।

अभी तक सृष्टि-उत्पत्ति तथा सृष्टि विद्या की जिन भावनाओं का अनुशीलन उपस्थित किया गया है, वे ब्राह्मणिक शाखा या संस्कृत वाङमय के ग्रंथों पर आधृत थीं। आगे एतद्विषयक जैनों की धारणाओं एवं विचारणाओं का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

जैन वाङमय

जैनों के अनुसार ब्रह्मांड चिरंतन है और उसका अन्त नहीं होता अतएव जैन ग्रंथों में सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन एकदम नहीं आया है। जहाँ तक सृष्टि-विद्या का प्रश्न है, वह ब्राह्मणिक ग्रंथों तथा परम्पराओं के वर्णन से भिन्न है। जैनों के अनुसार ब्रह्मांड के दो भाग हैं—लोकाकाश तथा अलोकाकाश। लोका काश धर्म (आकाश तरंगात्मक) तथा अधर्म (पुद्गल या आत्मा और वस्तुओं) पदार्थों से व्याप्त है। पदार्थों की गत्यात्मक और स्थिर स्थिति का वह माध्यम है। अलोकाकाश पदार्थों का किसी प्रकार का माध्यम नहीं। आत्मा और पदार्थ उसकी सीमा-रेखा में किसी प्रकार पहुँच ही नहीं सकते। वह सर्वथा शून्य है। लोकाकाश की इयत्ता के परे वह अनंत अंतराल है।

जैन लोक को एक टेकुए के आकार का मानते हैं, जो एक दूसरे टेकुए के विन्यासार्द्ध पर स्थित है। उन्होंने विश्व को तीन चषकों जैसा बताया है, जिनमें सबसे निचला चषक औंधा रक्खा हुआ है और सब से ऊपर वाले चषक की परिधि मध्यस्थ चषक को छूती है। उनका यह भी कहना है कि लोक की आकृति एक महिला के अनुरूप है जो अपने हाथ अपने कटितट पर रक्खे हुए है।[६९] उनके अनुसार भूमंडल मध्य भाग में स्थित है, उसके नीचे नरक भूमियाँ तथा ऊपर ऊर्ध्व लोक है। ऊर्ध्व लोक, मध्यलोक तथा अधः लोक का वर्णन करते हुए उन्होंने उनकी आकृतियों की तुलना और भी अनेक वस्तुओं के विचित्र आकारों से की है।[७०]

उनकी सृष्टि-व्यवस्था में सारा लोक घनोदधिवातवलय (सान्द्र जलीय वायु के स्तर) पर आधृत है, तथा घनोदधिवातवलय घनवातवलय (सान्द्र वायु स्तर) के सहारे टिका हुआ है और अंततः घनवातवलय तनुवातवलय (विरल वायु स्तर) पर आधृत और उससे परिवेष्टित है।[७१] इनका रंग क्रम से नीला, हल्का नीलश्वेत तथा अवर्णनीय

६४ख—वही ३०.४।

६५—निर्वाण प्रकरण, पूर्वार्द्ध, ७.५८।

६६—उत्पत्ति प्रकरण २९-५६।

६७—निर्वाण-प्रकरण, उत्तरार्द्ध, १२७.२०

६८—... सन्तप्ता सृष्टि-विद्युतः।
कालमेघे स्फुरन्त्येताश्चित् प्रकाश-वनोपमाः॥
(निर्वाण प्रकरण, पूर्वार्द्ध ७.६०)

६९- Encyclopaedia of Religion and Ethics by J. A. Hastings, 1911, vol iv, cosmogony and cosmology (Jain)

७०. महेन्द्रकुमार जैन संपादित अकलंकदेव कृत तत्वार्थवार्तिक १.२० पृ० ३१७।

७१. वही तथा तत्वार्थाधिगमसूत्र, सूत्र १, अध्याय ३।

एवं अस्पष्ट है।[७२] अन्तरिक्ष सम्बंधी आधुनिक गवेषणाएं जैनों के इन मतों से बहुत कुछ मिलती हैं। इस सम्बंध में जैनों ने लम्बाई-चौड़ाई आदि के बहुत से आँकड़े भी दिए हैं।

जैन मनीषियों के अनुसार समस्त ब्रह्मांड का घनफल श्वेताम्बर मत से २३९ घन रज्जु तथा दिगम्बर मत से ३४७ घन रज्जु है। प्रो० जी० आर० जैन ने रज्जु की लम्बाई मीलों में निर्धारित की है और गणना करके यह दिखाने की चेष्टा की है कि जैनों के ये आँकड़े प्रो० आइन्स्टाइन द्वारा बताए हुए ब्रह्मांड के घनफल के आँकड़ों से बहुत कुछ मिलते हैं।[७२क]

सूर्य प्रज्ञप्तिकार को विदित था कि पृथ्वी और ब्रह्मांड दोनों मंडलाकार वा बहुत कुछ गोलकाकार हैं। टीकाकार कहता है, "तन्मतेन भूरियं गोलाकारा, लोकोऽपि च गोलाकार तथा व्यवस्थित:"—उसके अनुसार पृथ्वी और ब्रह्मांड मंडला-लोकोऽपि च गोलाकार नया व्यवस्थित:"—उसके अनुसार पृथ्वी और ब्रह्मांड मंडलाकार वा बहुत कुछ गोलकाकार हैं।[७३]

सूर्य-प्रज्ञप्ति एक और अत्यन्त वैज्ञानिक तथ्य के सम्बंध में सूचना देती है कि अंतरिक्ष में प्रतिक्षण बहुसंख्यक सूर्य, चन्द्र और विभिन्न तारों का नाश और उद्भव हुआ करता है।[७४] आधुनिक वैज्ञानिकों का एक वर्ग भी इस बात को स्वीकार करता है और साथ ही यह भी मानता है कि ब्रह्मांड का आदि-अंत नहीं होता।[७५]

---

७२. वही, सूत्र ७-८ तथा उनकी टीका।

७२क. Comology: Old and New by Prof. G. R. Jain. pp. 105, 117-18.

७३. प्राभृत २, प्राभृतप्राभृत १, पन्ना ४६ (कदाचित पूर्वपत्रका इतिवृत्त इसी पर आधृत है)।

७४. प्राभृत १७, च्यवनोपपातौ, सूत्र ८८।

७५. The Mysterious Universe, p. 191. जनवरी १९६० में मास्को प्लेनेटरियम के खगोल-विभाग के अध्यक्ष बी० मैक्सिमीचेवने ने भी ऐसा ही मत व्यक्त किया था।

बौद्ध स्त्रोत

सृष्टि-उत्पत्ति तथा सृष्टि-विद्या के सम्बंध में यद्यपि बौद्धों की अपनी धारणाएं थीं, किन्तु उन्होंने एतद्विषयक कुछ मूलभूत बातें प्राचीन भारतीय परम्पराओं एवं ब्राह्मणिक भौगोलिक विचारों से भी ली हैं; अथवा वे कम से कम उनसे प्रभावित हुए हैं।

अभिधर्म के अंतर्गत प्रज्ञप्ति-शास्त्र नाम का भी एक ग्रंथ आता है, जिसमें ज्ञान की उपर्युक्त दोनों शाखाओं का विशिष्ट विवेचन है। प्रज्ञप्ति शास्त्र के द्वितीय खंड में केवल सृष्टि-विद्या का ही निदर्शन है। यह खंड लोक-प्रज्ञप्ति कहलाता है। प्रज्ञप्ति-शास्त्र की रचना ५०० ई० पू० मौद्गल्यायन ने की थी।

बौद्धों का कथन है कि जब उल्का ज्वाला द्वारा सभी वस्तुओं के विध्वंस और प्रलय के पश्चात् नवीन सृष्टि-रचना का समय आता है तो सर्वप्रथम ब्रह्म-लोक का समुद्भव होता है और कुछ विशिष्ट देवता जन्म लेते हैं। तदनंतर कुछ देवलोकों की सृष्टि होती है। उनके बहुत नीचे अनंत परिधि वाले वायुमंडल की उत्पत्ति होती है। इस वायुमंडल पर सृष्टि के मेघ सुवर्ण-जलराशि की घनघोर वृष्टि करते हैं। वायुद्वारा उद्वेलित इस जलराशि से अतिशय गहरे अपमंडल का उद्भव होता है। साथ ही अत्यन्त मोटी कांचन भूमि भी उत्पन्न होती है।

तदनंतर उक्त मेघ कांचनभूमि पर सुवर्ण महार्घ रत्न, मृत्तिका, जल, लौहादि की वर्षा करते हैं, जिनसे समस्त नव-निर्माण के केन्द्र में भूमिभाग आरंभ होता है।[७६]

बौद्धों के अनुसार अंतरिक्ष अनंत है, और उसमें प्रत्येक दिशा में असंख्य चक्रवाल (chiliocosm) तथा ब्रह्मांड हैं। उनकी पारिभाषिक शब्दावली में एक और शब्द आता है "लोकधातु"। यह भी विशाल ब्रह्मांड का वाचक है। बहुसंख्यक लघु

---

७६. Encyclopaedia of Religions and Ethics. vol IV, p. 130.

विश्व मिलकर अनेक विश्व-समुच्चयों का निर्माण करते हैं। इनमें सहस्त्रों[75] वा करोड़ों[76] विश्व होते हैं।

विश्व-समुच्चयों की भावना चक्रवालों की धारणा से स्वतंत्र है तथा विविध बौद्ध ग्रंथों से प्रतीत होता है कि उसका आरंभ चक्रवालों की धारणा से पहले हो चुका था।[79] इस प्रसंग में यह भी कहा गया है कि सृष्टि-रचना के कार्य में असंख्य विश्व-बीज भाग लेते हैं। उनमें प्रत्येक से एक ब्रह्मांड (विशाल चक्रवाल) का उद्भव होता है।[80]

अंगुत्तरनिकाय और ललितविस्तार के अनुसार लघु तथा विशाल ब्रह्मांडों[81] (तारों तथा ग्रहों) पर सहस्त्रों, करोड़ों पर्वत, महाद्वीप, तथा समुद्र हैं। इस सम्बंध में एक बड़ा स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि क्या तत्कालीन बौद्ध यह जानते थे वा अनुमान लगाते थे कि आकाशस्थ पिण्डों पर भी हमारी पृथ्वी के सदृश्य भूआकृतियाँ (topographics) पाई जाती हैं।

महावस्तु में भी सृष्टि-उत्पत्ति का वर्णन है, किन्तु उसमें कोई विशेष या नई बात नहीं है।[82]

सृष्टि-उत्पत्ति तथा सृष्टि-विद्या के उपर्युक्त वर्णन के विश्लेषण से स्पष्ट विदित होता है कि उस इतिवृत्ति में अच्छी दार्शनिकता तथा विचार-गांभीर्य संनिहित है। प्रलय, नवीन सृष्टि तथा भूप्रकृति के उद्भव की रूपरेखा की भावनाएँ ब्राह्मांडिक ऐतिह्यों से ली गई हैं।

बौद्धों की ब्रह्मांड की अनेकता की भाव की तुलना पूर्ववर्ती पैंगी उपनिषद् तथा परवर्ती लिंग पुराण एवं योगवाशिष्ठ से की जा सकती है, जिनका अनुशीलन पहले प्रस्तुत किया जा चुका है।

ब्रह्मांण्ड की आकृति तथा विस्तार—पुरानी एवं नई भावनाओं की तुलना :

ब्रह्मांड की आकृति तथा विस्तार के प्रश्न पर अर्वाचीन वैज्ञानिक अनेक वर्गों में विभक्त हैं। प्राचीन भारत में भी ठीक यही दशा थी। किन्तु आगे का विवेचन परिलक्षित करता है कि साधारणतया प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों के अनेकानेक वर्गों की भावनाएँ आधुनिक वैज्ञानिकों के ही सादृश्य थीं।

शतपथ ब्राह्मण में दिये हुए ब्रह्मांड के वर्णन के पर्यालोचन में यह दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार उसकी भावनाओं में तथा सर जेम्स द्वारा प्रतिपादित साबुन के बुलबुले की भावना में पर्याप्त सादृश्य पाया जाता है। इसी प्रकार ब्रह्मपुराण, स्कन्द पुराण[83] तथा सूर्यसिद्धान्त में[84] ब्रह्मांड का जो स्वरूप वर्णित हुआ है तथा जहाँ ब्रह्मांड को गोलकाकार वा दो गोलार्द्धों के संयुक्त आकार का बताया गया है, उनमें जीन्स का पूर्वाभास भलीभाँति दृष्टिगोचर होता है। जैनों की सूर्य प्रज्ञप्ति[85] भी इसी परंपरा में आती है। ब्रह्मगुप्त (६२८ ई०), श्रीपति (सिद्धांत शेखर —१०३९ ई०) तथा भास्कराचार्य (११५० ई०)[86] प्रभृति परवर्ती ज्योतिषी भी इसी मत के पूर्णतया अनुयायी थे।

७६. पि० दे०

७७. अंगुत्तर निकाय, भाग १, पृ० २२७, भाग ५, पृ० ५९।

७८. ललितविस्तार, पृ० १४९-१५०

७९. दीघनिकाय, २, पृ० १३९ तथा विविध जातक (और दे० Encyclopaedia of Religion and Ethics, vol IV, P. 139)

८०. वही, Encyclopaedia, जिल्द ४, पृ० १३७।

८१. अंगुत्तर भाग १, पृ० २२७, भाग ५, पृ० ५९; ललितविस्तार, पृ० १४९।

८२. महावस्तु, जे०जे० जोन्स कृत आंग्लानुवाद, भाग १, पृ० २८५।

८३. दे० प्रस्तुत अध्याय के पूर्व पृष्ठ।

८४. वही।

८५. वही।

८६. तीनों के लिए दे० सिद्धान्त शिरोमणी, मध्यमाधिकार का कक्षाध्याय।

यह सचमुच बड़े विस्मय की बात है कि योग-वाशिष्ट में ब्रह्मांड के वर्णन में उसके आकार की तुलना बुलबुले से की गई है और वस्तुतः "बुलबुला" शब्द का प्रयोग भी किया गया है। इस ग्रंथ के मत में संपूर्ण ब्रह्मांड की आकृति अखरोट की खोल व छिलके के सदृश है।[८७]

परन्तु इस सम्बंध में एक बात अत्यन्त ध्यान देने योग्य है। जेम्स जीन्स ने साबुन के बुलबुले की जिस भावना का प्रतिपादन किया है, वह सापेक्षवाद सिद्धान्त को लेकर चली है। अतएव प्राचीन और नवीन विचारों की उपर्युक्त तुलना को बहुत पूर तक घसीटना उचित न होगा। यह तुलना इतिहास के बहुत पृथक दो युगों की दो भावनाओं के केवल अत्यन्त सामान्य साम्य को ही निर्दशित करती है। यदि यह स्वीकार भी कर लिया जाय कि प्राचीन भारतीय बहुत पहले ही सापेक्षवाद सिद्धान्त पर बहुत कुछ विमर्श कर चुके थे और उन्हें देशकाल की संततता तथा पारस्परिक घनिष्ठ सम्बंधों का पर्याप्त ज्ञान हो चुका था, तब भी इस बात का उपर्युक्त तुलना की सामान्यता और उथलेपन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

संस्कृत, जैन तथा बौद्ध ग्रंथों में बहुसंख्यक ब्रह्मांडों, विश्व-समुच्चयों एवं अंतरिक्ष में अनेक सूर्यों एवं चन्द्रों के जो उल्लेख वा वर्णन आए हैं, वे भी आधुनिक विज्ञान की भावनाओं से पूर्णतया मिलते हैं।

जहाँ तक ब्रह्मांड के विस्तार तथा परिणाह का संबंध है, आधुनिक वैज्ञानिक दो वर्गों में विभक्त हैं। एक वर्ग का कथन है कि ब्रह्मांड सीमित है, किन्तु उसका विस्तार होता जाता है। दूसरे के मत में (अंतरिक्ष सहित) ब्रह्मांड अनंत है।[८८]

भारतीय खगोलविदों ने भी ब्रह्मांड के विस्तार एवं परिग्रह के सम्बंध में बहुत ही वैज्ञानिक तथा तर्क सम्मत विमर्श प्रस्तुत किए हैं। ब्रह्मगुप्त[८९], श्रीपति[९०] तथा भास्कराचार्य ने[९१] ब्रह्मांड का व्यास १८७१२०६९२०००००००० योजन लिया है। यह दिखाता है कि वे ब्रह्मांड को संभवतया सीमित मानते थे।

किन्तु भास्कराचार्य आधुनिक विज्ञान के दोनों मतों के बीच इधर से उधर झूलते से दृष्टिगोचर होते हैं। वे कहते हैं[९२]

> ब्रह्माण्डमेतान्मितमस्तु नो वा
> कल्पे ग्रहः क्रामति योजनानि
> यावन्ति पूर्वैरिह तत्प्रमाणं
> प्रोक्तं खकक्षाख्यमिदं मतं नः ॥३॥

"मैं इस बात पर ध्यान नहीं देता कि यह ब्रह्मांड सीमित है या असीम। किन्तु मेरा यह मत है कि एक कल्प में[९३] ग्रह जितनी दूरी चलते हैं, उसी को पूर्ववर्तियों ने आकाश वा ब्रह्मांड की परिधि कहा है"।

यद्यपि अन्त में वे कहते हैं कि उन्होंने ब्रह्मांड का स्पष्ट परिणाह दो कारणों से नहीं दिया है—

> 'प्रमाणशून्यत्वात् प्रयोजनाभावाच्चास्माभि
> र्ब्रह्मांड मानं न कल्पितम्।'[९४]

पहला, क्योंकि वह परिणाह-शून्य है; दूसरा, उसकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। इससे यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि क्या उन्होंने अन्ततो-गत्वा ब्रह्मांड को असीम मान लिया था? और क्या

८७. दे० प्रस्तुत अध्याय के पूर्व पृष्ठ।

८८. The Mysterious Universe, p. 80, 168, 169.

८९. सिद्धान्तशिरोमणि, मध्यमाधिकार, कक्षाध्याय की तलटीप में उद्धृत।

९०. सिद्धान्तशेखर ८९५, (मध्यमाधिकार, वृत्त ६२)।

९१. सिद्धान्तशिरोणि, दे० उपर्युक्त तलटीप ८९।

९२. मध्यमाधिकार, कक्षाध्याय, श्लोक ३।

९३. कल्पकी माप के लिए पूर्व पृष्ठ देखिए।

९४. सिद्धांतशिरोमणि, भुवनकोश, गोलाध्याय।

ऊपर उद्धृत छंद ३ में आइन्स्टाइन की[९५] भावना का प्रतिपादन तो नहीं किया गया है जिसके अनुसार ब्रह्मांड सीमित है, किन्तु उसका विस्तार हो रहा है, क्योंकि हम जानते हैं कि "शाश्वत गति यंत्र असंभव हैं (purpetual motion machines are impossible)[९६]। यहाँ हमारे संमुख एक और प्रश्न आता है कि क्या प्राचीन भारतीय ब्रह्मांड को किसी प्रकार का "गतियंत्र" समझते थे वा मानते थे?

जैन ग्रंथों में अंतरिक्ष को सीमित[९७] माना गया है, और यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि बौद्ध ब्रह्मांड को अनंत मानते हैं।[९८]

भारतीय सृष्टि-उत्पत्ति तथा सृष्टिविद्या के भावनाओं के अनुशीलन में यह स्मरण रखना चाहिए कि प्राचीन वाङ्मय के (जिसमें विज्ञान भी सम्मिलित है) लेखकों ने उपर्युक्त दोनों विषयों के विवेचन में उपाख्यानात्मकता, अध्यात्म, दर्शन, खगोल तथा भूगोल को एकदम मिला दिया है। मूर्त वस्तुओं तथा प्रयोगात्मक जगत के वैज्ञानिक तथ्यों की इस विवेचन पद्धति में जब उनके ज्ञान और तर्क की सीमा

९५. The Mystrious Universe p. 81.
९६. वही, पृ० १८१।
९७. दे० प्रस्तुत अध्याय के पूर्व पृष्ठ।
९८. दे० प्रस्तुत अध्याय के पूर्व पृष्ठ।

आ जाती थी, तो वे स्वयमेव अनायास नाना प्रकार के विचारों तथा कल्पनाओं के लोक में निर्बंध उड़ने लगते थे। किन्तु कुछ भी हो, हम उन विचारों तथा वर्णनों में से अपने काम की बातें तो निकाल ही सकते हैं।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि सृष्टि-उत्पत्ति तथा सृष्टि-विद्या के वर्णन भूगोल के ग्रंथों में अवश्य समाविष्ठ किए जाते थे। अथवा जिन ग्रंथों में भूगोल वर्णन, भुवनकोश वा क्षितिनिवेश सम्बंधी एक भी खंड है, उनमें उपर्युक्त दोनों विषयों की कुछ न कुछ चर्चा प्रायः सदैव आई है। ये दोनों ही विषय पूर्वकथित तीनों शास्त्रों के अविच्छेद अंग माने जाते थे। आगे चलकर (१२वीं शती के पूर्व वा उसके लगभग) बहुत संभवतया इन दोनों विषयों पर भूगोल की विशिष्ट और आवश्यक शाखा के रूप में पृथक् ग्रंथ प्रणयन की परिपाटी सी स्थापित हो गई थी। भूगोलपुराणम् (१४वीं वा १५वीं शती), भूगोलवर्णनम् (१४वीं वा १५वीं शती), भूगोलोत्पत्ति तथा वसुधाजन्मकथनम् प्रगति हस्तलिखित ग्रंथ इस बात के निःसंदिग्ध प्रमाण हैं। प्रस्तुत लेखक ने अपने अनुसंधान के प्रसंग में विविध वैयक्तिक सरस्वती भाण्डागारों तथा पाण्डुलिपि-पुस्तकालयों में इन ग्रंथों का पर्यवेक्षण और अनुशीलन किया है।

मेरी प्रथम अन्तरिक्ष-यात्रा

एलन बी० शेपर्ड

मेरी अन्तरिक्ष की सफल उड़ान को अब कई सप्ताह व्यतीत हो चुके हैं और 'मरकरी-योजना' में पुनः सामान्य रूप से कार्य प्रारम्भ हो गया। 'योजना' से सम्बद्ध सभी व्यक्ति दूसरी समानव अन्तरिक्ष-यात्रा के लिए (यह यात्रा भी रेडस्टोन राकेट से ही की जाएगी) पूरे जोर-शोर से तैयारी कर रहे हैं। यद्यपि, ५ मई की सफलता से हम सभी प्रमुदित हैं, परन्तु यह हमारे अनेक लक्ष्यों में से केवल एक था। और हमारे पास इतना समय नहीं कि हम उसे व्यर्थ जाने दें।

जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मेरे लिए कोई चीज बदली नहीं है। अन्तर केवल इतना पड़ा है कि अब मैं अपना कुछ खाली समय संसार के सभी भागों से प्राप्त होने वाले हजारों बधाई-संदेशों का उत्तर देने में व्यतीत करने लगा हूँ।

जहाँ तक उड़ान का सम्बन्ध है, यह लगभग बिल्कुल ही त्रुटिरहित रही। एक प्रकार से, इस उड़ान में कोई विशेष घटना नहीं घटी। हमें कोई खतरे वाली विचित्र अथवा अप्रत्याशित स्थिति अथवा घटना का सामना नहीं करना पड़ा। मैं अनुभव करता हूँ कि इस सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस सफल उड़ान द्वारा हमने अन्तरिक्ष में प्रथम कदम रख दिया है, हमने अन्तरिक्ष में मनुष्य की कार्य करने विषयक क्षमता को सिद्ध कर दिखाया है और टैक्निकल दृष्टि से हम इस यात्रा को अत्यधिक उत्साहवर्धक परिणाम मानते हैं।

इस उड़ान के फलस्वरूप केवल कुछ एक साधारण हेर-फेर करने का निर्णय किया गया है। उदाहरणार्थ, अन्तरिक्ष-यान में दबाव नापने का यंत्र 'प्रैशर गाज' ऐसे स्थान पर फिट था, जो मुझे बड़ी ही कठिनाई से दृष्टिगोचर होता था। अब हम इसकी जगह को बदल रहे हैं। इसके अतिरिक्त अन्तरिक्ष-यान और भूमि के मध्य परस्पर बातचीत करने के लिए जो यांत्रिक-प्रणाली प्रयुक्त की गई थी, वह संतोषजनक नहीं सिद्ध हुई अतः इसमें भी सुधार किया जा रहा है।

सम्पूर्ण 'मरकरी-योजना' पूर्व आयोजित ढंग पर बराबर प्रगति कर रही है। अगली रेडस्टोन-उड़ान का संचालन उन ६ हवाबाजों में से कोई एक करेगा, जो पिछले २ वर्षों से मेरे साथ प्रशिक्षण ले रहे थे। इस प्रस्तावित अन्तरिक्ष-उड़ान के दौरान में केप-कैनेवेरल स्थित 'मरकरी नियंत्रण-कक्ष' में उपस्थित रह कर भावी अन्तरिक्ष-यात्री से सम्पर्क कायम रखूँगा और उसे अपने अनुभव से लाभान्वित करता रहूँगा। मेरी अन्तरिक्ष-उड़ान के समय यही कार्य हवाबाज डोनाल्ड स्लेटन ने सम्पन्न किया था, यद्यपि उन्हें अन्तरिक्ष-यात्रा का कोई अनुभव नहीं था।

'मरकरी-योजना' प्रारम्भ से ही बहुत सोच विचार कर और सावधानी से तैयार की गई है। इसका लक्ष्य बिल्कुल स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह लक्ष्य है मनुष्य को अन्तरिक्ष में भेजकर पुनः वापस लाना और भिन्न समय तक रहने वाली भारहीनता की स्थिति में मनुष्य की कार्य करने विषयक क्षमता की जाँच करना। अभी तक हमारी गोष्ठियों, विचार-विनिमयों और अध्ययन-क्रमों में दिलचस्पी का मुख्य विषय यही रहा है।

मेरी अन्तरिक्ष-यात्रा के पूर्व राकेटों और अन्तरिक्ष-यान की यांत्रिक प्रणालियों की विश्वसनीयता

की जाँच करने के सिलसिले में परीक्षणशालाओं में उनकी हर प्रकार से परीक्षा की गई। इन परीक्षणों के दौरान उपकरणों को भी कड़ी परीक्षा पार करनी पड़ी। उपकरणों और यान्त्रिक-प्रणालियों की त्रुटियों को दूर करने के प्रसंग में, उसमें सैकड़ों वैज्ञानिक और हम सातों हवाबाज संलग्न थे—हमने इन उपकरणों और प्रणालियों को, राकेटों के साथ सन्नद्ध कर अन्तरिक्ष में प्रक्षिप्त किया। इन परीक्षणों से हमें राकेट और अन्तरिक्ष-यान के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जानकारी और तथ्य प्रप्त हुए तथा अन्तरिक्ष-यान से बच निकलने तथा उड़ान के दौरान कार्य करने वाली जटिल और सूक्ष्म यांत्रिक और विद्युदणु प्रणालियों की विश्वसनीयता की जाँच कर देखने का मौका भी मिला।

फरवरी माह में हमने अन्तरिक्ष-यान का यथा-सम्भव कठिनतम परीक्षण किया। इस परीक्षण में अन्तरिक्ष-यान के सफल उतरने पर उसकी विश्वस-नीयता में हमारा भरोसा और भी बढ़ गया। इस परीक्षण में यह 'अन्तरिक्ष-यान' एटलस राकेट द्वारा (इस राकेट का उपयोग हम कक्षागत उड़ान के लिए करेंगे) अन्तरिक्ष में ऐसे मार्ग पर प्रक्षिप्त किया गया ताकि अन्तरिक्ष-यान लौटते हुए, सबसे प्रतिकूल कोण पर पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रविष्ट हो। इस परीक्षण में पृथ्वी की ओर वापस लौटते हुए उसे वायुमण्डल में जिस प्रबलतम धक्के और उग्र घर्षण का सामना करना पड़ा, उसे वह सफलतापूर्वक झेल गया।

दूसरा सन्तोषजनक परीक्षण **चिम्पांजी हैम** की अन्तरिक्ष-उड़ान थी। यह उड़ान लगभग उसी प्रकार की थी, जिस पर आगे मुझे उड़ना था। लेकिन इसमें कुछ गड़बड़ी हो गई। रेडस्टोन राकेट का ईंधन बहुत तेजी से जल उठा और इस प्रकार राकेट का पथ पूर्व निर्धारित मार्ग से भिन्न हो गया। फिर भी, यान से बच निकलने वाली यांत्रिक-प्रणाली ठीक प्रकार कार्य कर रही थी। ठोस ईंधन के राकेटों ने अपना कार्य ठीक प्रकार किया। 'हैम' की अन्तरिक्ष-यात्रा उससे कहीं अच्छी थी, जैसी कि हमें आशा थी। वह अधिक ऊँचाई तक और निर्धारित दूरी से लगभग १०० मील अधिक दूरी तक पहुँचा। इस यात्रा में उस पर क्या बीती, इसका सबसे बड़ा प्रमाण वह फोटो है, जिसमें चिम्पांजी हैम मुस्कराहटपूर्ण मुद्रा में सेब ग्रहण कर रहा है।

इस प्रकार मानव सहित अन्तरिक्ष उड़ान का समय निकट आता गया। सभी प्रकार की यांत्रिक-प्रणालियों की भली प्रकार और सावधानी से जाँच कर ली गई। अब अन्तरिक्ष-यात्रा के लिए हर चीज बिलकुल तैयार थी। निश्चय ही, जब रूसियों ने यह घोषणा की कि **मेजर गैगारिन** अन्तरिक्ष-यात्रा के बाद सकुशल धरती पर वापस आ गए हैं, तो हमें कुछ निराशा हुई। लेकिन साथ ही हमें यह जानकर प्रसन्नता भी हुई कि मनुष्य अन्तरिक्ष में जीवित रहने में समर्थ सिद्ध हुआ है।

हम सातों हवाबाजों ने प्रस्तावित अन्तरिक्ष-उड़ान के लिए काफी समय तक कठिन प्रशिक्षण प्राप्त किया था। हमें अन्तरिक्ष-यान और उसकी यांत्रिक प्रणालियों की इतनी अच्छी जानकारी हो गई थी कि हम अँधेरे में भी हाथ से छू कर अन्तरिक्ष-यान के लगभग १२७ बोर्डों, स्विचों और बटनों को आसानी से और बिना भूल किए पहचान सकते थे। हमने विशेष प्रकार की प्रशिक्षणात्मक मशीनों में कृत्रिम रूप से उत्पन्न परिस्थितियों में कृत्रिम अन्तरिक्ष उड़ान का अभ्यास किया था। यही नहीं, प्रैशर-सूट पहन कर हमने इन विशिष्ट प्रकार की मशीनों के अन्दर ही अत्यधिक ऊँचाई और उग्रतम तापमान वाली परि-स्थितियों में रहने का भी अभ्यास किया था।

प्रवेग और प्रतिवेग के फलस्वरूप उत्पन्न प्रचण्ड शक्ति से भी हम भली प्रकार परिचित हो गए थे। अन्तरिक्ष-यान में गति के बढ़ने और फिर एकदम घटने पर उत्पन्न होने वाली यह वही शक्ति है, जिसके प्रचण्ड दबाव से अन्तरिक्ष-यात्री अपने कोच में धंस जाता है। **प्रोफेसर आइंस्टीन** का कहना है कि इस

प्रकार उत्पन्न शक्ति और गुरुत्वाकर्षण शक्ति में अन्तर नहीं पहचाना जा सकता। मनुष्य के शरीर का जो सामान्य भार होता है, वह गुरुत्वाकर्षण के कारण होता है। अतएव, जब मनुष्य के शरीर पर गुरुत्वाकर्षण का और भारी दबाव पड़ता है, तो उसका भार पहले से कई गुना अधिक बढ़ जाता है। यह दबाव जितना ही बढ़ता जाता है, रक्त का प्रवाह मस्तिष्क की ओर उतना ही घटता जाता है। इसका प्रभाव यह पड़ता है कि पहले दृष्टि में धुँधलापन आता है और फिर मनुष्य बिलकुल संज्ञाशून्य हो जाता है। प्रशिक्षण-क्रम के दौरान में हमें एक विशालकाय यंत्र 'क्रीम सेपरेटर्स' में चक्कर खिलाकर इसी प्रकार की कृत्रिम गुरुत्वाकर्षण-शक्ति का निर्माण किया गया। इन यंत्रों में हमने न केवल इस शक्ति को अनुभव किया, बल्कि अपनी मांसपेशियों को उसे सहन करने और ऐसी स्थिति में कार्य करने और वार्तालाप करने का अभ्यास भी किया।

इस समस्त प्रशिक्षण के बाद केवल एक बात के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना शेष रह गया। यह बात ऐसी थी, जिसकी जानकारी वस्तुतः अन्तरिक्ष में पहुँचने पर ही प्राप्त हो सकती थी। यह बात थी भारहीनता की समस्या। प्रत्येक व्यक्ति इस समस्या के सम्बन्ध में अत्यधिक चिन्तित था। इसमें से किसी ने भी एक बार में एक मिनट से अधिक समय तक भारहीनता की स्थिति का अनुभव नहीं किया था। यह भारहीनता काफी ऊँचाई पर हवाई जहाज को ऐसे वक्राकार मार्ग पर उड़ाकर उत्पन्न की जाती थी, जिसके दौरान केन्द्रापसारी शक्ति और गुरुत्वाकर्षण शक्ति में कुछ क्षणों के लिए एक प्रकार का सन्तुलन उत्पन्न हो जाता था। इस प्रकार की अति संक्षिप्त भारहीनता में हमें जो अनुभव हुए, वह किसी प्रकार कष्टदायक नहीं प्रतीत हुए। यही नहीं, इस प्रकार की स्थिति में हमने काम करने को प्रयत्न भी किये। लेकिन यह अवधि इतनी कम थी कि इसमें भारहीनता के सम्बन्ध में प्रभावशाली ढंग से प्रशिक्षण दे पाना और मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों का पता लगा पाना बहुत कठिन कार्य था। मुझे जो उड़ान भरनी थी, उसमें लगभग ५ मिनट तक भारहीनता की स्थिति स्थिर रहनी थी। कक्षागत उड़ान में भारहीनता की यही अवधि सम्भवतः ४ घण्टे होगी।

जब अन्तरिक्ष-यान की उड़ान का दिन आया, तो पिछले कई सप्ताहों, वस्तुतः पिछले दो वर्षों से धीरे-धीरे बढ़ता हुआ तनाव अपने चरम बिन्दु पर पहुँच चुका था। हम सबको पूर्ण विश्वास था। फिर भी, मनुष्य स्वभाव को दृष्टि में रखते हुए, यह असम्भव था कि इस अवसर पर हमारे हृदयों में किसी प्रकार की आशंका न उठती।

मैंने अपने दूसरे साथी हवाबाज जॉन ग्लेन और अपने डाक्टर बिल डगलस के साथ नाश्ता किया। डाक्टरी जाँच-पड़ताल के उपरांत हृदयगति और साँस लेने की गति की माप करने वाले सूक्ष्म संवेदनशील उपकरण मेरे शरीर से चिपका दिए गए। इसके उपरान्त मैंने अन्तरिक्ष-सूट पहना और राकेट छोड़ने वाले मंच की ओर जाने के लिए गाड़ी पर सवार हो गया। इस समय सुबह के लगभग ४ बजे थे और बाहर अंधेरा था। राकेट-मंच बिजली के तेज प्रकाश से पूरी तरह प्रकाशित था और मैंने वहाँ खड़े होकर राकेट मंच पर खड़े हुए ईमान से पूरी तरह युक्त धवल रेड-स्टोन राकेट को एक बार दृष्टि भर कर देखा, क्योंकि मैं जानता था कि इसके उपरांत मैं उसे कभी नहीं देख सकूँगा।

इसके उपरांत मैंने रेडस्टोन राकेट की चोटी पर सन्नद्ध मरकरी अन्तरिक्ष-यान में प्रवेश किया। यहाँ पर कुछ सोचने विचारने का समय ही नहीं मिला, क्योंकि राकेट को दागने की गणना प्रारम्भ हो गई थी और इस गणना में मैं अपनी भूमिका का निर्वाह करने में पूरी तरह व्यस्त था। तीन बार—मौसम की जाँच करने, एक दोषपूर्ण उपकरण को बदलने तथा गणना सम्बन्धी एक उलझन को सुलझाने—गणना में बाधा पड़ी, जिसके कारण लगभग २ घंटे की देरी

हो गई। मेरा धैर्य घटता जा रहा था। अन्त में, ९·३४ मिनट पर राकेट दाग दिया गया।

मैं जानता था कि उर्ध्वगामी राकेट अपनी पूंछ से आग उगल रहा है। लेकिन यह आश्चर्य की बात थी कि राकेट के छूटने के प्रारंभिक चरण में मुझे किसी प्रकार की कोई असुविधा नहीं हुई। कम्पन और आवाज से भी किसी प्रकार की असुविधा या समस्या उत्पन्न नहीं हुई। यह अनुभव बहुत ही सुखद था। 'मरकरी नियंत्रण-कक्ष'' में उपस्थित डेरी सेटन को उड़ान सम्बन्धी सूचनाएँ देने में मुझे कोई कठिनाई नहीं अनुभव हुई। लगभग १ मिनट बाद मेरे अन्तरिक्ष यान को अप्रत्याशित रूप से भारी धक्के और कम्पन का सामना करना पड़ा। इस समय राकेट ध्वनि की गति से भी तेज गति से उड़ रहा था और तथाकथित ध्वनि की बाधा को पार करने के लिए अग्रसर था। यात्रा का यह ऐसा चरण था, जिसमें दबाव अपनी चरम सीमा पर था और जहां वायु के प्रचण्ड घर्षण और राकेट की प्रचण्ड गति के कारण हलचल कुछ अधिक बढ़ गई थी। हम जानते थे कि ऐसी स्थिति आएगी। लेकिन जैसा कि मैंने बताया है, इस चरण में मुझे अनुमान से कुछ अधिक कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा।

राकेट द्वारा प्रचण्ड गति प्राप्त करने पर मेरा भार सामान्य वजन से ६ गुना तक अधिक बढ़ गया। दूसरे शब्दों में इस स्थिति में १६० पौण्ड के बजाय मेरा वजन ९६० पौण्ड तक जा पहुँचा। यहाँ पर रेड-स्टोन राकेट जल कर अलग हो गया। इस समय हम ५१०० मील प्रति घण्टे की रफ्तार से जा रहे थे। इस समय 'एस्केप टावर' को, जिसकी अब कोई आवश्यकता नहीं थी, राकेट से अलग कर दिया गया और इस प्रकार मेरा अन्तरिक्ष यान रेडस्टोन राकेट की खोल से अलग हो गया। इस स्थिति में मैं सर्वथा भारहीन था। इस स्थिति में अन्तरिक्ष यान ने आधी कलैया खाई और उसका रुख कक्षागत हो गया। इस समय मेरा मुख उड़ान-मार्ग की तरफ हो गया।

इस समय तक समस्त कार्य स्वनियंत्रित और स्वचालित था। परन्तु इस अवसर पर मैंने अन्तरिक्ष यान पर नियंत्रण करने का भार संभाल लिया। नियंत्रण-हैण्डिल को घुमा कर मैंने अन्तरिक्ष-यान को कई प्रकार से घुमाया-फिराया। यह कार्य अन्तरिक्ष यान के बाहरी भाग में फिट 'हाइड्रोजन पैरा-आक्साइड जटों' को चलाकर और बन्द करके किया गया। यद्यपि मुझे मिलाकर अन्तरिक्ष यान का वजन लगभग १ टन से भी अधिक था, परन्तु शून्याकाश में हमें इधर-उधर चलाने के लिये ये 'हाइड्रोजन पैराआक्साइड जेट' ही काफी थे।

अन्तरिक्ष यान को इधर-उधर चलाने के बाद मैंने 'पेरिस्कोप' से बाहर की ओर देखा। बाहर के दृश्य को देखकर मैं ठगा सा रह गया। दृश्य बहुत ही सुन्दर था। लेकिन मैं एक मिनट से अधिक इस सुन्दर दृश्य का अवलोकन नहीं कर सकता था। मुझे पृथ्वी पर ही इस सम्बन्ध में जानकारी प्रदान कर दी गई थी कि उड़ान में अन्तरिक्ष यान द्वारा अपनी ऊँचाई के चरम बिन्दु (११५ मील) तक पहुँचने के दौरान मुझे कौन से भूमिखण्ड तथा बादल समूह इत्यादि दृष्टि-गोचर हो सकते हैं।

मैं विभिन्न आकार के भूखण्डों को पहचानने में भी समर्थ हो गया। फ्लोरिडा प्रायद्वीप, लेक ओकेचोबी, आण्ड्रस द्वीप, और बिमनी मुझे बिलकुल साफ दृष्टिगोचर हो रहे थे। यद्यपि बहामा द्वीपसमूह के ऊपर बादल छाए हुए थे, फिर भी उन्हें पहचान लेने में मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई। ६०० मील दूरी पर स्थित 'केप हैटरास' के ऊपर दुर्भाग्यवश घने बादल छाए हुए थे। ३० से ४० प्रतिशत तक बादल समूह होने का जो मैंने अनुमान लगाया था, उसकी पुष्टि होनी अभी शेष है।

नक्षत्रों की ओर देखने का मुझे बहुत कम अवसर मिला। मुझे कोई नक्षत्र दिखाई नहीं पड़ा। सम्भवतः इसलिए कि आँखों को स्थिर करने का अवसर ही नहीं

मिल सका। यदि हमारा राकेट पूर्व निर्धारित कार्य-क्रम के अनुसार ठीक ७ बजे प्रातःकाल दाग दिया जाता तो मैं अपनी बायीं ओर की खिड़की से दक्षिण पूर्व दिशा में चन्द्रमा, शुक्र और शनि ग्रहों को भली प्रकार देख सकता था। लेकिन, देरी होने के कारण जब तक मैं अपनी उड़ान के चरम बिन्दु तक पहुँचा, चन्द्रमा अस्त हो चुका था।

जैसी कि डेरी सेटन ने मेरे 'इयर फोन' में सूचना दी, अब हम पुनः पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करने के लिए तैयार थे। रेट्रो राकेटों को दागने के पूर्व में अन्तरिक्ष यान के मोथरे सिरे को क्षितिज से ३४ अंश ऊपर के कोण पर ले आया। वस्तुतः मेरा यह कार्य कोई आवश्यक नहीं था, क्योंकि मेरे ऐसा न करने पर भी अन्तरिक्ष यान वस्तुतः पृथ्वी के वायुमण्डल में पुनः प्रवेश कर जाता। लेकिन हम इन रेट्रो-राकेटों की परीक्षा करना चाहते थे, जिसकी आवश्यकता हमें अन्तरिक्ष यान को कक्षा से बाहर लाने के लिये पड़ेगी।

मैंने क्रम से रेट्रो राकेटों को दागा और ये तीनों राकेट एक के बाद एक चल पड़े। इसके बाद मैंने अन्तरिक्ष यान के मोथरे सिरे को नीचे की ओर कर वायुमण्डल में पुनः प्रवेश करने की दृष्टि से उचित कोण में ले आया और स्वनियंत्रित स्विच को चालू कर दिया। जब अन्तरिक्ष यान पृथ्वी के वायुमण्डल से आ कर टकराया तो उसका प्रतिवेग बढ़ गया। इस समय भी मैं नियंत्रण-कक्ष की परिस्थितियों की बराबर सूचना देता रहा। जैसे-जैसे ऊँचाई घटती गई, वायु अधिकाधिक सघन होती गई और घर्षण बराबर बढ़ता गया और आधे मिनट के अन्दर दबाव ११ गुना अधिक बढ़ गया। इस समय मेरा वजन १ टन तक जा पहुँचा। इस समय मेरी आवाज रुक-रुक कर निकल रही थी, परन्तु इतनी साफ थी कि आसानी से समझी जा सकती थी।

अन्त में, २१ हजार फुट की ऊँचाई पर अन्तरिक्ष यान को स्थिरता प्रदान करने वाला छोटा पैराशूट खुल गया। एक मील और नीचे उतरने पर एक वाल्व अपने आप खुल गया और ताजी हवा अन्दर आने लगी। १० हजार फुट की ऊंचाई पर नारंगी और सफेद रंग का बड़ा पैराशूट खुल गया। केपकेनेवरल में अपने मित्रों से विदा लेने के ठीक १५ मिनट बाद मैं राकेट प्रक्षेपण मंच से, जो अब भी गर्म था, ३०२ मील की दूरी पर समुद्र में सकुशल उतर गया।

कुछ ही मिनटों में एक हेलिकोप्टर उस स्थल पर पहुँच गया, जहां हमारा अन्तरिक्ष यान समुद्र में उतरा था। इस हेलिकोप्टर ने मुझे ऊपर खींच लिया। और 'फ्रीडम-सेविन' नामक अन्तरिक्ष यान को हुक में फँसा कर 'यू० एस० एस० लेक चेम्प्लेन' जहाज के डेक पर सकुशल उतार दिया। 'फ्रीडम सेविन' ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से मेरे सभी आदेशों का पालन किया था। ५ मिनट की भारहीनता ने मेरे किसी कार्य में बाधा नहीं डाली। केवल एक छोटी सी त्रुटि उत्पन्न हुई। रेट्रो-राकेटों के अलग होने के बाद मेरे कैबिन में जो हरी बत्ती जलनी थी, वह नहीं जली। यह ज्ञात करने के लिए कि रेट्रो राकेट अलग हो गए हैं, मैंने ऊपर लगा हुआ बटन दबाया। बटन के दबाते ही हरी बत्ती जल उठी।

यह उड़ान अन्तिम उड़ान नहीं थी। यह तो बोहनी है।

इसके उपरान्त जैसे-जैसे हम अधिकाधिक नयी जानकारी प्राप्त करते जाएंगे और अधिक विकसित उपकरण और यान बनाने में सफल होते जाएंगे, हम हवाबाजों को अकेले और तदुपरान्त टोलीबद्ध रूप में चन्द्रमा की परिक्रमा करने, चन्द्रमा के धरातल पर उतरने और अन्ततोगत्वा अन्य पड़ोसी ग्रहों की यात्राओं के लिए भेजेंगे इससे सौर-मण्डल सम्बन्धी हमारे ज्ञान में वृद्धि होगी। यह सब एक सुन्दर स्वप्न मात्र नहीं है, यद्यपि मैं यह आशा नहीं करता कि यह निकट भविष्य में साकार हो सकेगा।

अब मैं मरकरी-योजना के अन्तर्गत प्राप्त की गई दूसरी सफलता पर आता हूँ। यह है; बिना किसी प्रकार की गोपनीयता के सम्पूर्ण कार्यक्रम का संचालन। मैंने प्रचार के फलस्वरूप पड़ने वाले बोझ के बारे में कुछ शिकायत की है, क्योंकि कई प्रकार से इससे कार्यक्रम के व्यवस्थित संचालन में बाधा भी पहुँची है। यह स्वतन्त्र समाज का एक विशेष गुण है। यह समाज की एक शक्ति भी है।

मैं न तो कूटनीतिज्ञ हूँ और न राजनीतिज्ञ। मैं तो जनता का एक सेवक मात्र हूँ। मैं एक ऐसे कार्यक्रम को क्रियान्वित करने में संलग्न सैकड़ों व्यक्तियों में से एक हूँ, जो सार्वजनिक दिलचस्पी, नाटकीयता और महत्त्व की दृष्टि से इतिहास में सबसे अनूठा है।

विज्ञान के नित नए चरण—अमरत्व की ओर

डा० हीरालाल निगम

ज्ञान का रथ, खोज का पथ, रथी-विज्ञान अपनी जय-यात्रा में द्रुत गति से बढ़ता जा रहा है; लक्ष्य है जीवन के अन्तिम सत्य को ज्ञात करना, अमरता की कुंजी प्रकृति से प्राप्त करना। गत शताब्दियों में चाहे यह खोज कल्पना-मात्र या भ्रम-मूलक प्रतीत होती रही हो, किन्तु आज २०वीं शती के उत्तरार्ध में मानव इस दिशा में कितना सीख चुका है इसका अनुमान हाल ही हुए अनुसन्धानों की चर्चा से लगाया जा सकता है।

मृत्यु पर विजय

लेनिन पुरस्कार विजेता, रूस के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० निगोस्की की यह धारणा है कि वह दिन दूर नहीं जब मृत्यु का भी इलाज उसी प्रकार सम्भव होगा जैसे शीत, क्षय, वात आदि रोगों का। अकस्मात् मृत्यु-प्राप्त प्राणी पुनर्जीवित किया जा सकता है यदि हृदय की गति बन्द होने के ५-६ मिनट. के अन्दर ही नव अनुसंधित-यंत्रों द्वारा उसकी धमनियों में कृत्रिम रूप से रक्त संचार की व्यवस्था कर दी जाय और हृदय की विशिष्ट प्रकार की मालिश कर दी जाय जिससे उसमें पुनः गति आ जाय। कुत्तों को तो प्रत्यक्ष रूप से दो घंटे तक मृत अवस्था में रखना सम्भव हो सका है। एक प्रयोग में कुत्ते को वास्तव में असाधारण निम्न ताप में रखा गया, उसके शरीर का सारा खून लगभग २५ मिनट में निकाल लिया गया, प्रत्यक्ष रूप से उसकी मृत्यु हो गयी, शरीर का ताप कम होकर ११ सेन्टीग्रेड हो गया, हृदय की मालिश और कृत्रिम रूप से रक्त-संचार की व्यवस्था की गई, लगभग २५ मिनट में पुनः उसके हृदय में गति आ गई, कुछ ही मिनटों के अनन्तर हृदय अपनी सामान्य गति से चलने लगा, २४ घण्टे कुत्ते को भोजन दिया गया और २-३ दिन में वह अपने पैरों पर खड़ा भी हो गया।

इससे भी अधिक कारगर इलाज यह ज्ञात हुआ है कि बिजली की धारा से फिर हृदय को स्पन्दनशील किया जा सकता है अर्थात् बिजली की धारा कुछ समय तक हृदय के चालक यंत्र का काम कर सकती है। उद्दीप्त करने वाला एक ऐसा जेनरेटर जो हृदय में भेजी जाने वाली विद्युत धारा के स्पन्दनों की संख्या, प्रबलता और अवधि को नियंत्रित कर सके, सर्वप्रथम कुछ समय पूर्व मास्को-शल्य-चिकित्सा-प्रतिष्ठान के

अमरीका भू-उपग्रह अन्तरिक्ष में प्रक्षिप्त हुआ अब तक अमेरिका से पृथ्वी की परिक्रमा के लिए ३६ भू-उपग्रह और सूर्य की परिक्रमा के लिए दो उपग्रह तथा परिक्रमा न करने वाले दो शोधक राकेट प्रक्षिप्त किए जिन्हें वैनगार्ड, पायोनियर, इक्सप्लोरर आदि की संज्ञा मिली। इन उपग्रह यानों से विलक्षण ज्ञान प्राप्त हो सका है। थोड़े ही समय पूर्व तीसरे ल्यूनिक के स्वचालित उपकरणों से चन्द्रमा के पार्श्व भाग का चित्र लेना सम्भव हो गया। यह मानव शक्ति के बाहर माना जाता था क्योंकि चन्द्रमा का यह भाग कभी पृथ्वी के सामने ही नहीं आता। सोवियत संघ का चौथा उपग्रह गत ९ मार्च को कक्षा में पहुँचाया गया जिसमें प्रायोगिक पशु के रूप में चेर्नुश्का नामक कुत्ता बैठाया गया था, पूर्व निर्धारित अनुसन्धान-कार्यक्रम के पूर्ति के बाद उपग्रह यान पूर्व निश्चित क्षेत्र में निर्देशानुसार वापस आ गया। उतरे हुये यान में कुत्ता जीवित तथा प्रसन्न अवस्था में पाया गया। सोवियत संघ का एक उपग्रह जो वीनस की ओर जा रहा है गत २५ मार्च को १८,८९,००० किलोमीटर ऊँचाई तक पहुँच गया है। इन खोजों में चन्द्रलोक, मंगलग्रह, वीनसग्रह में जीवन के लक्षण मिलने का ज्ञान प्राप्त हुआ है। सम्भावना है कि मानव शीघ्र ही अन्य ग्रहों में जाकर जीवन के रहस्य पाने में सफल होगा।

इलेक्ट्रानिक मस्तिष्क

अमर-जीवन प्राप्त करने के सम्बन्ध में की जाने वाली खोजों को 'इलेक्ट्रानिक मस्तिष्क' के निर्माण से बड़ा बल प्राप्त हुआ है. आधुनिक विज्ञान की यही सम्भवतः सबसे आश्चर्यजनक देन है। 'सायबर्नेटिक्स' विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप आज ऐसे यंत्रों का प्रादुर्भाव हो रहा है जिससे गणना के साथ साथ सोचने का भी काम लिया जा सकता है। अमेरिका के प्रिंस्टन विश्वविद्यालय में निर्मित 'मैनियक', रैमिंग्स्टन का यूनीमैक ११०७, आदि ऐसे विलक्षण यंत्र हैं जिनके शक्ति भी है। स्मरण-शक्ति की व्यवस्था के लिए एक विशेष प्रकार के चुम्बकीय फीते का उपयोग किया जाता है। मानव-मस्तिष्क अपना ही प्रतिरूप बनाने में प्रयत्नशील है। मस्तिष्क में विचार-शक्ति का स्रोत क्या है, यह एक महान अज्ञात रहस्य है, किन्तु विचारणीय तो यह है कि यदि यह रहस्य ज्ञात भी हो जाय तो सोच सकने वाले यंत्रों के बनाने के लिए तो मानव मस्तिष्क की आवश्यकता पड़ेगी ही।

कुछ भी हो वैज्ञानिक प्रगति की नित नूतन सम्भावनाओं से हमारा भविष्य अत्यंत आकर्षक और आशाप्रद प्रतीत होता है।

—(आकाशवाणी, इलाहाबाद के सौजन्य से)

समुद्री जल में खारापन

राम बोध पाण्डेय

समुद्र के खारेपन का सम्बन्ध सामुद्रिक जल में विलेय सम्पूर्ण नमक की मात्रा से है। यह वास्तव में समुद्री जल में विलेय पदार्थ तथा समुद्री जल के भार का अनुपात है। समुद्री जल के भौतिक गुणों में उसके खारेपन का महत्त्वपूर्ण कार्य-क्षेत्र है। विभिन्न प्रकार के भौतिक तत्व जल में विलेय हैं और धरातलीय चट्टानों में बहुतायत में निहित हैं जिन पर से होकर वर्षा का जल एवं नदियाँ प्रवाहित होती हैं। अतएव चट्टानों के शिला-चूर्णो के साथ विभिन्न लवण-सम्बन्धी तत्व भी समुद्र तक बह आते हैं। परन्तु नदी द्वारा लाये गये लवणों से समुद्र में खारेपन की सृष्टि कुछ असम्भव-सी प्रतीत होती है। नदियाँ प्रतिवर्ष समुद्र के समूचे खनिज का औसतन ५·४ × १० अंश ही लाती हैं अथवा २/१,०००,००० भाग—जो प्राय: १६०,०००,००० टन अनुमानित है। नदियों के जल की रासायनिक संरचना खनिजों के अनुपात एवं मात्रा समुद्री जल से भिन्न है। समुद्र के जल में ७५ प्रतिशत क्लोराइड (सोडियम क्लोराइड) एवं ०.५ प्रतिशत कैलसियम का अंश होता है। नदी के जल में ६० प्रतिशत कैलसियम एवं २ प्रतिशत सोडियम क्लोराइड पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अधिकतर कार्बोनेट आदि होते हैं। समुद्र में कैलसियम की अधिकांश मात्रा चूना भक्षी जीव पचा लेते हैं। अतः कैलसियम की कमी हो जाती है और क्लोराइड की अधिकता हो जाती है। परन्तु केवल नदी द्वारा ही समुद्रों में खनिज की अधिकता नहीं मानी जा सकती; तट के निकट लहरों के क्षरण द्वारा भी धरातल का क्षय होता है और भौतिक तत्व समुद्री जल में घुल जाते हैं। ज्वालामुखी के उद्गार से भी विभिन्न खनिज मुख्यतः सलफेट प्राप्त होते हैं। वाष्पीकरण की क्रिया से शुद्ध जल वाष्प के रूप में उड़ जाता है किन्तु नानाविध खनिज-तत्व समुद्र में ही रह जाते हैं। इस प्रकार नदी के जल की अपेक्षा समुद्र का जल खारा होता है। यह क्रिया सहस्रों वर्षों से चली आ रही है और समुद्र का खारापन भी शतत् रूप से अभिवृद्ध होता गया है।

समुद्री जल की संरचना एवं विभिन्न खनिज तत्वः

समुद्री जल की संरचना प्रत्येक स्थान पर प्रायः समान ही पाई जाती है। इस प्रकार विभिन्न पदार्थों का पारस्परिक अनुपात समान ही रहता है, यद्यपि खनिज की मात्रा प्रत्येक स्थान पर भिन्न पाई जाती है। सर जॉन मरे के अनुसार पूरे ३२९,०००,००० घन मील समुद्री जल में ५,०००,०००,००० टन खनिज तत्व पाए जाते हैं। **क्लार्क** महोदय के अनुसार २,७००,०००,००० टन खनिजांश नदियों द्वारा लाया गया है। **जॉली** महोदय के अनुसार ५०,०००,०००,००० टन लवण अब भी समुद्र में वर्तमान है, जो सूख जाने पर ब्रह्मांड को १५० फीट मोटी परत से और महाद्वीप को ५०० फीट मोटी परत से ढँक सकता है। साधारणतया खनिज का भार १,००० ग्राम समुद्री जल में ३५.७५ ग्राम माना जाता है।

सन् १८८४ में **डिट्मार ने चैलेञ्जर खोज-यात्रा** द्वारा समुद्री जल में पाए जाने वाले ७७ लवणों के नमूने एकत्र किए। इनके पारस्परिक अनुपात सब स्थानों पर समान थे। प्रमुखता की दृष्टि से ७ खनिज उल्लेखनीय हैं।

सारणी १

समुद्री लवण	मात्रा (ग्राम में)	प्रतिशत (%)
१. सोडियम क्लोराइड (NaCl)	२७·२१३	७७
२. मैगनीसियम क्लोराइड ($MgCl_2$)	३·८०७	१०·९
३. मैगनीशियम सलफेट ($MgSO_4$)	१·६५८	४·७
४. कैलसियम सलफेट ($CaSO_4$)	१·२६०	३·६
५. पोटैशियम सलफेट (K_2SO_4)	०·८६३	२·५
६. कैलशियम कार्बोनेट ($CaCO_3$)	०·१२३	०·३
७. मैगनीसियम ब्रोमाइड ($MgBr_2$)	०·०६७	०·२
	३५,०००	१००

सारणी १ से यह स्पष्ट है कि समुद्र में प्रमुखतम लवण सोडियम क्लोराइड, मैगनीशियम क्लोराइड एवं मैगनीसियम सलफेट हैं।

विभिन्न सागरों के जल के नमूनों द्वारा विभिन्न लवणों का प्रतिशत देखा गया। यह लगभग समान ही प्राप्त हुआ। विभिन्न सागरों में नमक की मात्रा ३३ से ३७%० के बीच में रहती है। अपवाद-स्वरूप किसी-किसी स्थान पर यह मात्रा कम या अधिक भी हो सकती है।

खारेपन की मात्रा में विभिन्नता के कारण:

(क) स्वच्छ जल की मात्रा—समुद्र का खारापन स्वच्छ जल के संयोग से कम हो जाता है; क्योंकि इस प्रकार कम व लवणों वाला शुद्ध जल समुद्र में मिल कर आयतन बढ़ा देता है परन्तु लवण की मात्रा नहीं बढ़ पाती। अतः खारापन न्यून हो जाता है। यह स्वच्छ जल विभिन्न स्रोतों द्वारा प्राप्त होता है:

(i) **वर्षा का जल** : वर्षा द्वारा स्वच्छ जल जो प्रायः लवण-शून्य रहता है, समुद्री जल में मिल जाता है। अतएव अधिक वर्षा वाले समुद्री क्षेत्रों में खारापन मौलिक रूप से कम हो जाता है। भूमध्य रेखीय क्षेत्रों में ताप की अधिकता होने पर भी खारापन अधिक नहीं हो पाता। इसका कारण वर्षा का प्रचुर जल है। इसी प्रकार पछुवा हवा की पेटी में भी वर्षा का जल वर्ष भर मिलता रहता है। अतः खारापन कम हो जाता है।

संसार का सर्वोच्च खारापन व्यापारिक अक्षांशों के समुद्री क्षेत्रों में (३७ %०) पाया जाता है। यहाँ पश्चिमी क्षेत्रों में वर्षा कम है। इस प्रकार एक ही महाद्वीप के विभिन्न तटों पर वर्षा की भिन्नता से खारेपन की मात्रा भी भिन्न पाई जाती है। बंगाल की खाड़ी में अधिक वर्षा के कारण ३३-३५ प्रतिशत के बीच खारापन पाया जाता है।

(ii) **हिम का द्रवित होना** : ध्रुवीय अक्षांशों में वर्षा के रूप में ही प्राप्त होती है। हिमनद स्थल पर सक्रिय रहते हैं तथा हिम-खण्ड समुद्रों में तैरते दिखाई पड़ते हैं अतः उनके द्रवित होने से खारेपन की मौलिक मात्रा कम हो जाती है। ग्रीनलैण्ड के तट के निकट समुद्री भागों का खारापन अत्यन्त कम है। बेरिंग जलडमरूमध्य में यह २८%० एवं आर्कटिक समुद्र में ३०%० की मात्रा में पाया जाता है।

(iii) **नदियों का जल** : समुद्र में जिन तटों पर नदियाँ गिरती हैं, वहाँ स्वच्छ जल की अधिकता से खारापन कम हो जाता है। यह प्रभाव खुले तथा आंशिक परावृत सागरों में समान रूप से प्राप्त है। बाल्टिक समुद्र की बोथानिया की खाड़ी में अनेक नदियाँ स्वच्छ जल लाती हैं, अतः खारापन केवल ५%० पाया जाता है। दक्षिणी स्वेडेन में ११%० और बोर्न होम (Born halm) के निकट ८%० पाया जाता है। काले सागर में डेन्यूब नदी के सम्मुख १८ %० एवं कांगो, अमेजन, गंगा, मिसीसिपी आदि प्रमुख नदियों के सम्मुख ३२

से ३४%० के बीच पाया जाता है। आंशिक परावृत सागरों में नदियों के जल की मात्रा के अनुसार खारेपन की मात्रा भी बदल जाती है।

(ख) वाष्पीकरण की मात्रा : खारेपन को निर्धारित करने में सम्भवतः इसका अधिक योग-दान है। समुद्री जल से वाष्पीकरण की मात्रा ताप, वायु की गति एवं वायु की शुष्कता पर निर्भर है। वुस्ट महोदय के अनुसार सब समुद्रों से औसत वाष्पीकरण ३३४,००० किलो० प्रति वर्ष होता है। यह मात्रा विभिन्न सागरों में भिन्न है। भूमध्यरेखीय भागों में आर्द्रता एवं वर्षा की अधिकता के कारण ताप अधिक होने पर भी वाष्पीकरण कम होता है। इसके विपरीत कर्क वा मकर रेखाओं के आस-पास के क्षेत्रों में स्वच्छ-निरभ्र आकाश, तीव्रवाहिनी शुष्क हवाएँ और अधिक ताप से वाष्पीकरण की मात्रा में वृद्धि होती है। फलतः खारापन बढ़ जाता है।

महाद्वीपों के पूर्वी वा पश्चिमी तटों पर भी वाष्पीकरण की भिन्न मात्रा प्राप्त होती है। भूमध्य-रेखा से कर्क वा मकर रेखा के निकट तक वाष्पी-करण की क्रिया बढ़ती जाती है। इसके बाद वाष्पी-करण की मात्रा ताप के कम होने तथा नमी की अधिकता से कम होती जाती है और खारापन अयन रेखाओं के उत्तर एवं दक्षिण की ओर घटता जाता है।

आंशिक एवं पूर्ण परावृत समुद्रों में, जहाँ शुद्ध जल की मात्रा कम तथा वाष्पीकरण अधिक है, खारापन अधिक प्राप्त होता है। लाल सागर में यह ४१ %० एवं भूमध्यसागर में जिब्राल्टर के निकट ३९ %० की मात्रा में है।

(ग) हवाओं की गति तथा प्रवाह : उन समुद्री क्षेत्रों में जहाँ प्रतिचक्रवातीय हवाएँ ऊपर से नीचे उतरती हैं, आकाश स्वच्छ रहता है। हवाएँ गर्म तथा शुष्क पाई जाती हैं। फलस्वरूप वाष्पी-करण की मात्रा तथा खारेपन का अनुपात दोनों अधिक हैं। व्यापारिक हवाओं की पेटी में महाद्वीपों के पूर्वी तटों पर हवाएँ खारे समुद्री जल को तट की ओर लाती हैं, जहाँ समुद्र का खारापन अपेक्षाकृत बढ़ जाता है। इसी कारणवश, मेक्सिको की खाड़ी में ३६—३७%० के बीच खारापन पाया जाता है। परन्तु अमेरिका के कैलीफोर्निया तट पर व्यापारिक हवाएँ तट से होकर जल पर बहती हैं; इस प्रकार समुद्र का खारापन दूर बह जाता है। नीचे से ठंढा एवं कम खारा जल ऊपर सतह पर आ जाता है। इसी कारण, पश्चिमी तट पर व्यापारिक हवाओं की पेटी में ३२—३४ %० प्रति शत के बीच इसकी मात्रा पाई जाती है।

(घ) समुद्री धाराएँ : धाराएँ अपनी प्रकृति एवं गुणों के अनुसार खारेपन को प्रसारित करती हैं। भूमध्यरेखा के निकट पश्चिमी तटों का जल बहुत मात्रा में पूर्वी तटों पर पहुँचाया जाता है। पछुवा हवाओं की पेटी में अटलांटिक महासागर की गल्फ धारा मेक्सिको की खाड़ी से गर्म एवं खारा जल अपार राशि में बहाकर योरुप के पश्चिमी भाग में ले जाती है। अतः इन भागों का खारापन ३४%० —३६ %० के लगभग हो जाता है। पूर्वी तटों पर ठंडे प्रदेशों से लेब्रोडोर धारा अपेक्षाकृत कम खारा और ठंडा जल लाती है। आंशिक एवं पूर्ण परावृत सागरों में धाराएँ उतनी तीव्रता से अग्रसर नहीं हो सकतीं, अतः निम्न अक्षांशों में खुले समुद्री जल से न मिलने के कारण इनका खारापन अधिक होता है क्योंकि यहाँ पर खारेपन के लिए उपयुक्त अवस्थाएँ सुलभ हैं।

(ङ०) मौसम के अनुसार भी यह भिन्न हो जाता है। निम्न मध्य अक्षांशों में यह जून के महीने में अधिक वाष्पीकरण-क्रिया के कारण अधिक पाया जाता है और दिसम्बर में कम। नदियाँ जुलाई वा अगस्त में तटों पर सर्वाधिक जल लाती हैं। अतः इस महीने में सब से कम खारापन पाया जाता है।

खारेपन का वितरण : खारेपन का वितरण संसार के मानचित्र पर समलवण रेखाओं (Iso-halines) द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

(१) महासागर : सम-लवण रेखाएँ अक्षांशों के समानान्तर फैली हैं। परन्तु भूमध्य रेखा के निकट अधिक ताप होने पर भी सर्वाधिक खारापन नहीं पाया जाता। यहाँ पर औसत खारापन ३४%० है क्योंकि यहाँ वर्ष के अधिकांश महीनों में आकाश मेघाच्छन्न रहता है, अधिक नमी के साथ वाहनिक वर्षा भी घनघोर है। इन्हीं क्षेत्रों में संसार की सबसे बड़ी नदियाँ अमेजन, कांगो, नाइजर आदि विशाल स्वच्छ जल-राशि बहाकर लाती हैं। फलस्वरूप वाष्पीकरण कम होने से खारापन भी न्यून पाया जाता है। अमेजन के सम्मुख १५%०, कांगो के सम्मुख ३४%० और नाइजर के मुहाने पर २०%० खारापन पाया जाता है।

हिंद महासागर में भूमध्य रेखा के निकट खारापन विस्तृत क्षेत्र में कम पाया जाता है। यहाँ पर लगभग ३५.५%० है। उत्तरी भाग में अरब सागर एवं बंगाल की खाड़ी के स्थानीय भाग से घिरे रहने के कारण स्वच्छ जल की मात्रा अधिक पाई जाती है और खारापन कम हो जाता है। बंगाल की खाड़ी में ३२%०, गंगा के मुहाने पर ३०%० तथा ईरावदी के निकट २०%० खारापन पाया जाता है। प्रशान्त महासागर के पूर्व से पश्चिम तक विस्तृत क्षेत्र में फैले रहने के कारण वर्षा की मात्रा भी अधिक पाई जाती है और खारापन लगभग ३४.५%० की मात्रा में पाया जाता है। व्यापारिक हवाओं की पेटी में भी हवाओं की दिशा के कारण महाद्वीपों के तट पर अधिक एवं प० तट पर ठंडी धारा के प्रभाव से कम खारापन पाया जाता है। पछुवा हवा की पेटी में ४५° से ६०° अक्षांश तक खारापन कम है। उ० गोलार्द्ध में इन अक्षांशों का औसत खारापन ३१%० है परन्तु दक्षिणी गोलार्द्ध में ३३%०।

आर्कटिक सागर में ३२%० के निकट खारापन है। महासागरों में **जॉन्स्टन** के अनुसार विभिन्न अक्षांशों पर औसत खारापन भिन्न है (सारणी २)

सारणी २

अक्षांश	खारापन
७०° —५५° उ० अक्षांश	३०—३३
५४° —४०° ,, ,,	३३—३४
४०° —१५° ,, ,,	३५—३६
१५° उ०—१०° द० अक्षांश	३४.५—३५
१०° द०—३०° ,, ,,	३५—३६
३०° —५०° ,, ,,	३४—३५
५०° —७०° ,, ,,	३३—३४

साधारणतया यह देखा जाता है कि सम लवण रेखाएँ उ० गोलार्द्ध में अधिक विकृत हैं। द० गोलार्द्ध में स्थलीय भाग के अभाव में परस्पर समानांतर है। **चैलेंजर** की अन्वेषण-यात्रा द्वारा सब **महासागरों** का खारापन ३३.०१%०—३७.३७%० के मध्य में पाया गया। इनमें **अटलांटिक** का ३६.३१%० तथा हिंद महासागर का ३५.५३%०—३६.६८%० के बीच था।

(२) आंशिक परावृत समुद्र : इन समुद्रों एवं खाड़ियों में खारेपन की मात्रा अक्षांश के अनुसार नहीं घटती-बढ़ती। एक ही स्थान पर प्राप्त भूमध्य सागर और काले सागर के बीच भूमध्य सागर का खारापन अपेक्षाकृत अधिक है। इसका कारण काले सागर में बड़ी नदियों द्वारा लाए गए स्वच्छ जल की मात्रा तथा भूमध्य सागर में वाष्पीकरण की सक्रिय प्रणाली का प्राधान्य है। ऐसे समुद्रों के जल का खुले महासागर के जल के साथ स्वतंत्रतापूर्वक मिश्रण नहीं हो पाता। भूमण्डल के परावृत समुद्रों के अंतर्गत लाल सागर में इसके आकार, खुले समुद्रों से जल के कम संयोग, वर्षा की कमी एवं वाष्पीकरण की अधिकता से चैलेंजर के अनुसार ३९.७६%० औसत खारापन

है। लाल सागर के द० सिरे बाब-एल-मन्दब (Bab el-Mandab) पर ३६·५%० और स्वेज के निकट ४१%० खारापन पाया जाता है। भूमध्यसागर में ३८·९७%०० खारापन है। जिब्राल्टर के निकट ३६·५%० परन्तु मिश्र एवं सीरिया के तटों पर ३९%० हो जाता है। कैरेबियन एवं मेक्सिको की खाड़ी में यह साधारण मात्रा में है। उ० सागर में गर्म धारा के मिश्रण में खारापन ३४%० है परन्तु बाल्टिक में चैलेंजर के अनुसार ७·२१%० औसत खारापन है। स्वेडेन के पूर्वी भाग में ११%० और बोर्नहोम के निकट ८%० है।

जैनकिन्स महोदय के अनुसार ये परावृत सागर खारेपन के आधार पर तीन कोटियों में विभक्त हैं—साधारण, साधारण से उच्च तथा साधारण से नीचे खारेपन वाले, (सारिणी ३)।

साधारण से ऊँचा खारापन	साधारण	साधारण से नीचा खारापन
लाल सागर (३७–४१) फारस की खाड़ी (३७–३८) भूमध्यसागर (३७-३९)	कैरेबियन एवं मेक्सिको की खाड़ी (३५–३६) बास जलडमरूमध्य (३५.५) कैलिफोर्निया की खाड़ी (३५–३५.५)	**(अ) साधारण से थोड़ा नीचा** आर्कटिक सागर (२०–३५) उ० आस्ट्रेलिया समुद्र (३३–३४) बेरिंग समुद्र (२८–३३) ओखटस्क समुद्र (३०–३२') जापान समुद्र (३०–३४) चीन समुद्र (२५–३५) अण्डमन समुद्र (३०–३२) उत्तरी सागर (३१–३५) इंग्लिश चैनेल (३२–३५) सेंटलॉरेंस की खाड़ी (३०–३२) **(आ) साधारण से अधिक नीचा** बाल्टिक सागर (३–१५) हडसन की खाड़ी (२–८)

(३) **अन्तर्स्थलीय सागर एवं झीलें** भूखण्डों से पूर्ण परावृत सागरों एवं झीलों में खारापन ताप एवं वाष्पीकरण के अतिरिक्त एक और बात पर निर्भर है—यदि इनमें कई नदियाँ गिरती हों तब भी अधिक वाष्पीकरण के क्षेत्र में खारापन बढ़ सकता है। परन्तु यदि इनमें से कुछ नदियाँ निकलती हैं और कुछ इनमें गिरती हैं तो खारापन कम पाया जायगा। मृतक सागर (Dead sea) में नदियाँ नहीं गिरतीं, ताप एवं वाष्पीकरण की अधिकता से २४०%० खारापन पाया जाता है। यू-एस-ए यूटाह (Utah) प्रांत में स्थित ग्रेट साल्ट लेक २२०%०, एशिया-माइनर की लैक वैन में ३३०%० खारापन पाया जाता है। कैस्पियन में उत्तर की ओर १३%० तथा कारावेगाज खाड़ी में १७०%० खारापन है।

विज्ञान के विकास पर विहंगम दृष्टि

संतोष कुमार गुप्त

आज विज्ञान के युग में आवश्यक हो जाता है कि हम विज्ञान के विकास को समझने का प्रयत्न करें। यों तो विज्ञान के विकास की कोई निश्चित प्रक्रिया नहीं होती फिर भी वैज्ञानिक विकास को तीन अंगों में बाँटा जा सकता है—वैज्ञानिक कार्य का उद्देश्य, अनुसन्धान की पद्धति तथा वैज्ञानिक कार्यों का मूल्यांकन।

वैज्ञानिक कार्यों का उद्देश्य

मानव वैज्ञानिक विकास को बौद्धिक औत्सुक्य तथा सुसंस्कृत रुचि, उपयोगिता तथा मानवीय परिस्थितियों के सुधार अथवा व्यक्तिगत गुणों (जैसे महत्वकांक्षा तथा नवीन दैनिक उलझनों से पलायन) के उद्देश्य से करता है। बाढ़ के बाद खेतों की नष्ट हुई सीमाओं के पुनर्निधारण के प्रयत्न में बेबीलोन तथा मिस्र के निवासियों के द्वारा किये गये ज्यामिति के आविष्कार में उपयोगिता की भावना छिपी हुई थी। इसके विपरीत ग्रीक विज्ञान का विकास तात्विक दृष्टिकोण से हुआ परन्तु रोम के निवासियों के वैज्ञानिक अनुसंधान तांत्रिक (इंजीनियरिंग) के लिये हुए थे। भारत में भी पहले दिशाज्ञान के लिये आकाशीय अध्ययन के द्वारा ज्योतिषशास्त्र का जन्म हुआ किन्तु बाद में भास्कर, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त तथा वाराहमिहिर के ज्योतिषीय शोध कार्य ज्ञान-पिपासा से अनुप्राणित थे। अरबकाल में विज्ञान का विशेष विकास तो नहीं हुआ परन्तु यूरोपीय देशों में नवजागृति तथा औद्योगिक युग के साथ वैज्ञानिक विकास के उद्देश्यों में एक नया मोड़ आया। उद्योग में प्रयुक्त विज्ञान के विकास की आवश्यकता प्रतीत होने पर स्वतंत्र वैज्ञानिक अनुसंधान का महत्त्व समझा जाने लगा परंतु शुद्ध विज्ञान (प्योर साइंस) जिस पर प्रयुक्त विज्ञान (एप्लाइड विज्ञान) आधारित है, में अनुसंधान वैयक्तिक क्षेत्र तक ही सीमित रहा। मनोरंजन तथा ज्ञानाकांक्षा से अनुप्रेरित डा० गिल्बर्ट तथा कैवेण्डिश जैसे कुछ व्यक्ति वैज्ञानिक कोष को समृद्ध करने का प्रयत्न करते रहे।

प्राचीन वैज्ञानिक से भिन्न आज का वैज्ञानिक प्रतिस्पर्धा तथा विज्ञान की आकर्षक पद्धति से भी प्रभावित है। आज विज्ञान प्रगति के सूचक के रूप में मान्य है जिससे विभिन्न राष्ट्रों द्वारा वैज्ञानिक अनुसंधान के प्रोत्साहन द्वारा अनुसंधान पर देश और काल के प्रभाव को भी प्रदर्शित करना है।

अनुसन्धान की पद्धति

विज्ञान में प्रकृति के विभिन्न कार्यकलापों के विषय में मानवीय जिज्ञासाओं के उत्तर देने का प्रयत्न किया जाता है परन्तु विभिन्न तथ्यों तथा विचारों को सम्बंधित करने से तथा उनमें एकात्म लाने से विज्ञान में उन प्रश्नों की संख्या कम हो जाती है जिन का हल हम ढूँढ रहे हैं। न्यूटन के गतिविज्ञान में विभिन्न तथ्यों का सम्बंध स्थापित करके अनेक दूसरे प्रश्नों को भी हल कर दिया गया है। इसी प्रकार डार्विन के विकासवाद सिद्धान्त के लिये भी कहा जा सकता है।

अतः विज्ञान की मूल प्रवृत्ति प्रकृति के विषय में ज्ञान की वृद्धि तथा उस ज्ञान का सरलतम रूप प्राप्त करना है। **ओर्टेगा** के शब्दों में यह कहा जा सकता

है... "जीवनयापन बौद्धिकता, विज्ञान, संस्कृति के लिये नहीं करना है परंतु इसके विपरीत बौद्धिकता, विज्ञान, संस्कृति में सिवाय इसके कोई तथ्य नहीं है कि जीवन के लिये उपकरणमात्र हैं।"

प्रयुक्त विज्ञान के शुद्ध विज्ञान पर आधारित होने पर भी यह निश्चित नहीं है कि कौन-सा सिद्धान्त प्रयुक्त विज्ञान के कार्य के अनुरूप है। मानवीय परिस्थितियों तथा आर्थिक उद्देश्यों के कारण प्रयुक्त विज्ञान विकसित होता है अतः उद्योग ने मूलभूत अनुसंधान प्रवृत्ति को कोई ठोस आधार नहीं दिया है।

अवलोकनों तथा प्रयोगों द्वारा प्राप्त तथ्यों का साधारणीकरण वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रणाली है। कई बार विस्तृतीकरण के लिये अधिक अवलोकनों की आवश्यकता नहीं होती। उदाहरणार्थ—वैज्ञानिक **एनरिको फर्मी** ने बीटा कणों के 'एमिशन स्पेक्ट्रा' की व्याख्या करने के लिये न्यूट्रिनों की कल्पना की थी और प्रयोगों द्वारा उसकी पुष्टि बीस वर्ष बाद हुई।

इस प्रकार के तथ्यों की व्याख्या में कल्पनाएँ उन्हें सरलतम रूप में रखने की पद्धति पर निर्भर हैं। गंभीर अध्ययन तथा मनन इन कल्पनाओं के लिये सहायक होता है क्योंकि गंभीर अध्ययन से हम तथ्यों की गहराई को समझने लगते हैं। प्रत्येक महान् सिद्धान्त तथ्यों की गहराई को समझने पर आधारित है। प्रायः वैज्ञानिक एक क्रिया को देखकर दूसरी ज्ञात क्रिया से उसका साम्य स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। उदाहरणार्थ न्यूटन ने सेब को नीचे-गिरते देखकर यह अनुमान किया कि उसका नीचे गिरना तथा चन्द्रमा द्वारा पृथ्वी की परिक्रमा में एक ही प्रकार की प्रकृति वाले बल कार्य कर रहे हैं और इसके आधार पर उन्होंने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। मैक्सवेल द्वारा प्रकाश का विद्युत चुम्बकीय सिद्धान्त इसी प्रकार का एक दूसरा उदाहरण है।

जिस प्रकार एक ही दृश्य के विषय में दो चित्रकारों की अनुभूतियाँ विभिन्न चित्रों के रूप में अंकित होती हैं वैसे ही वैज्ञानिकों की कार्यशैली भी भिन्न-भिन्न होती है। तथ्यों का अध्ययन करने के बाद वैज्ञानिक अपनी कल्पनाओं द्वारा मॉडलों का निर्माण करते हैं। ये मॉडल यांत्रिक या गणितीय रचनाओं (स्ट्रक्चर्स) के आधार पर निर्मित होते हैं। "यदि मॉडल के आधार पर निकाले गये तथ्य सफल होते हैं तो वह मॉडल क्रिया का सही स्पष्टीकरण समझा जाता है।" (—बटलर)

व्हाइटहेड के द्वारा "मानव मस्तिष्क की मौलिक रचना है" शब्दों में व्यक्त गणित विज्ञान का सबल आधार और अंग है। संसार की हर क्रिया को गणितीय रचनाओं के रूप में रखा जा सकता है। यह विचारधारा विज्ञान में बहुत पहले से चली आ रही है। **पायथोगोरस** ने ईसा पूर्व प्रकृति की व्याख्या अंकों में करने का प्रयत्न किया और इसी प्रकार **केपलर** ने अपने सूत्रों द्वारा ग्रहों की गति की व्याख्या की। प्रसिद्ध वैज्ञानिक **स्क्रॉडिंजर** की अणुओं तथा परमाणुओं के **ऊर्जा-स्तर** का समीकरण आधुनिक विज्ञान में इसी परम्परा का ज्वलन्त प्रमाण है।

"छिपी हुई समानताओं में एकात्म स्थापित करने की खोज" (—ब्रोनोवस्की) तथा ... "रचनशील वैज्ञानिक अपना जीवन सही अनुमान लगाने में व्यतीत करते हैं" (—**पोल्यानी**) वैज्ञानिकों के तथ्यचयन के संकेत हैं। डेसकार्टेस द्वारा विश्लेषणात्मक ज्यामिति का निर्माण प्रथम संकेत का प्रमाण है। अनेक समस्याओं की ओर से वैज्ञानिक उनका महत्त्व देखकर, या समय और अवसर के अनुसार आकर्षित होते हैं।

वैज्ञानिक कार्यों का मूल्यांकन

वैज्ञानिक कार्यों का मूल्यांकन सदैव पूर्णतः निष्पक्ष भाव से होता है परंतु वैज्ञानिकों के मूल्यांकन को उनके व्यक्तित्व तथा दूसरे गुण प्रभावित कर देते हैं। ऐसा अधिकतर तब होता है जब दो वैज्ञानिक समकालीन हों। मूल्यांकन कार्यक्षेत्र व उपयोगिता पर भी आधारित होता है। वैसे तो कार्य का विस्तार, महत्त्व और समय की माँग भी मूल्यांकन पर थोड़ा बहुत प्रभाव डालते ही हैं।

ग्रामीणों द्वारा खाद देने का कार्य

शालिग्राम शर्मा

कृषि की भूमि को उर्वरा करने के लिए जो कूड़ा-करकट या पशुओं का गोबर इत्यादि उसमें डाला जाता है उसे **खाद** अथवा **पाँस** कहते हैं। खेत में खाद डालने को **खादब** या **पाँसब** कहते हैं। गाय-भैंस और बैल के मल को **गोबर** कहा जाता है। घोड़ी-घोड़े और गदहे के मल को **लीदि** कहते हैं। इसी तरह बकरी-भेंड़ और ऊँट के मल को **लेंड़ी** कहा जाता है। सुअर का मल **लेंड़** कहलाता है। इस प्रकार गोबर, लीद, लेंड़ी और लेंड़ ये सभी चीजें खेत की पैदावार बढ़ा देते हैं। पशुओं के गोबर से भी अधिक उनका **मूँत** (पेशाब) खेत का उपजाऊपन बढ़ाता है। यही कारण है कि **मुँतारी** (पशुओं या मनुष्यों के पेशाब करने के स्थान) के खेत अधिक उर्वर होते हैं।

खादें अनेक प्रकार की होती हैं और उनके देने के ढंग भी भिन्न-भिन्न हैं। नीचे प्रत्येक खाद के ऊपर विचार किया जाता है:—

कुछ लोग पशुओं के कच्चे गोबर को ही खेत में ले जाकर छिटका देते हैं। यह खाद खेत को कम लाभ करती है क्योंकि सूर्य की किरणों से इसके पोषक तत्व सूख जाते हैं। साथ ही इस गोबर को **भुरुहरा, भुरभुरा** या **गोबड़ौरा** नाम के कीड़े भी चाल कर (आटे की तरह बारीक कर डालना) खराब कर देते हैं।

खाद बनाने की एक प्रणाली यह भी है कि किसान अपने घर के **पिछवारे** (पिछवाड़े) या अन्यत्र कहीं एक गड्ढा खोद लेते हैं। उसी गड्ढे में किसान पशुओं का गोबर, घर और पशुशाला का कूड़ा-करकट एवं **बहारन-बटोरन** (बटोरा हुआ कूड़ा) डालता जाता है। खाद की इस संचित राशि को **घूर** कहते हैं। 'घूर' भर जाने तथा एक साल तक पक जाने के बाद खाद को उचित समय पर खेत में डाल दिया जाता है।

जिस घर में पशु बांधे जाते हैं उसमें उनके नीचे मूत्र और गोबर होता रहता है। गोबर को तो किसान उठा कर 'घूर' में डाल देते हैं किन्तु पशुओं के पेशाब से पशु-गृह में बड़ा **दहला, कचरा, बोदा** या **गीवा** (मूत्र और गीले गोबर का कीचड़) हो जाता है। इसलिए वहां **दमदम** (सूखा और गर्म) रखने के लिए दूसरे-तीसरे दिन **राखी** (राख), आम-महुए की सूखी पत्तियां, **करसा** (उपले का चूर्ण) और घर-द्वार की धूल इत्यादि डाली जाती है। यह सब जमा होते-होते सात-आठ महीने में वहां बहुत अच्छी खाद पड़ जाती है। इसी खाद को **कीटि, खवही, खतही** या **खड़ही** कहते हैं। गर्मी के दिनों में इसे **फरुहा** या **फरसा** (फावड़े) से खोद लिया जाता है। यह 'कीटि' बहुत कड़ी होती है, अतः इसके **चीपा** (बड़े-बड़े टुकड़े) को 'पिटना' से चूर्ण कर दिया जाता है। 'पिटना' से खाद चूर्ण करने को **मरियाउब** कहते हैं। 'मरियाने' के बाद यह खाद खेतों में डाल दी जाती है। 'कीटि' की जगह को कहीं-कहीं **मुँतावार** भी कहते हैं।

खँड़हर (पुराने गिरे हुये कच्चे मकान) की दीवारों की मिट्टी को **लोना, नोना** या **सोरा** कहा जाता है। दीवार में 'लोना' लग जाने को **लोनाब** कहते हैं। 'लोना' में क्षार या नमक का अंश अधिक होता है। 'लोना' भी एक तरह की खाद है। साग और तम्बाकू के लिए तो यह बहुत ही उपयोगी होता है। 'लोना' डालने से फसल की उपज बढ़ जाती है।

आजकल सहकारी बीज भण्डार और दूकानों में सफेद, नीले और काले रंग की खाद बिकती है। इस

'खाद' को साधारण जनता **बिलैतियवा खाद, जिराती खाद** या **हरसिंजी** कहती है। इन बिलायती खादों में सफेद रंग की एक खाद बहुत प्रसिद्ध है जिसे **'चान मारका'** कहा जाता है। बिलायती खाद दानेदार चूर्ण के रूप में होती है। इसे यदि एक बीघे में पचीस-तीस सेर भी छोड़ दिया जाय तो पैदावार बहुत बढ़ जाती है। यह खाद पौदों के कुछ बड़े हो जाने पर भी डाली जा सकती है।

खाद देने का एक ढंग यह भी है कि किसान खेत में रात भर गड़ेरियों की भेड़ें और बकरियाँ बिठवाते हैं। भेड़ें बिठवाने को **भेड़ी बैठाउब** या **भेड़ी रखराउब** कहते हैं। प्रति रात्रि भेड़ों की संख्या के अनुसार गड़ेरिये को पैसा या अनाज दिया जाता है। भेड़ें रात भर खेत में मल-मूत्र करती और लोटती रहती हैं। गड़ेरिया रात भर उनकी रखवाली करता है। भेड़ें आवश्यकतानुसार दो-चार रात तक बिठाई जा सकती हैं। भेड़ों के बिठाने से खेत बड़ा मजबूत हो जाता है।

बहुत से किसान खाद के लिए खेत में सनई बो देते हैं। सनई के पौदे जब डेढ़-दो हाथ के हो जाते हैं तो उन्हें जोतकर खेत में ही गिरा दिया जाता है। कुछ लोग जोतने के बाद पाटा भी फेर देते हैं। ऐसा करने से भी खेत की उपज में वृद्धि होती है। इस तरह की खाद को सनई की खाद, हरी खाद या **हरियरकी खाद** कहते हैं।

मनुष्य के मल को **मैला** या **गुह** कहा जाता है। यह 'गुह' भी खाद के रूप में बहुत उपयोगी होता है। जिन खेतों में 'गुह' अधिक किया जाता है उसे **गुदहरी** कहते हैं। यही कारण है कि बस्ती के आस-पास के खेत, जहाँ लोग टट्टी जाया करते हैं बहुत उर्वर होते हैं। शहर के भंगी टट्टी कमा कर ले जाते हैं और उसे किसानों के खेत के लिए बेंच देते हैं।

महुआ, नीम और रेंड़ी की खली भी खेत में पैदावार बढ़ाने के लिए डाली जाती है। यह भी एक तरह की खाद है। इसका प्रभाव खेतों पर बहुत शीघ्र पड़ता है।

शहर के गंदे नालों और नालियों का पानी यदि खेत में पहुँचाया जाता है तो वह भी भूमि की उर्वरा-शक्ति को बहुत बढ़ा देता है। यमुना के किनारे नैनी के कुछ खेतों की अच्छी पैदावार का कारण शहर के गंदे नाले का पानी ही है।

कुछ किसान अपने गाय-भैंस और बैलों को वर्षा तथा ग्रीष्म-ऋतु में किसी खुले खेत में बाँधते हैं। ऐसे स्थान को जहाँ पशु बाँधे जाते हैं **छनउर** कहा जाता है। 'छनउर' का खेत भी पशुओं के मल-मूत्र से उर्वर हो जाता है।

'घूर' से खेत तक खाद पहुँचाने के लिए अनेक साधनों का प्रयोग किया जाता है। उन साधनों में प्रत्येक का विवरण नीचे दिया जाता है :—

कुछ लोग **लढ़िया** से खाद ढोते हैं। 'लढ़िया' को **लढ़ा, लाढ़ा, कठलढ़ा** या **गाड़ा** कहते हैं। 'लढ़िया' को दो बैल खींचते हैं। 'लढ़िया' के निम्नलिखित अंग होते हैं :—

धुरी या धुरा—यह बबूल या नीम की गढ़ी हुई एक लकड़ी पहिये की सूराख के अनुसार मोटी और तीन हाथ की लम्बी होती है। इसी को 'धुरी' या 'धुरा' कहते हैं। धुरी के दोनों छोरों पर एक-एक बालिश्त की 'खढ़िया' छीलकर उसमें **पहिया** (चक्र) डाल दी जाती है। 'पहिया' के निकलने के बचाव के लिए बाहर की ओर 'धुरी' में छेद कर के एक **खूँटी** या **किल्ली** (कीली) लगा दी जाती है। कुछ लोग लोहे की भी 'धुरी' रखते हैं। लेकिन लोहे की धुरी बिना लकड़ी की 'धुरी' के मेल के काम नहीं दे सकती। यह लोहे की 'धुरी' जब लकड़ी की 'धुरी' में 'खढ़िया' काट कर बैठायी जाती है तब लकड़ी वाली 'धुरी' लोहे की 'धुरी' से छोटी रहती है और तार से बाँध दी जाती है। लोहे वाली धुरी में पहियों के डालने की जगह केवल लोहे का ही छड़ रहता है। शेष बीच में लकड़ी और लोहे के छड़ दोनों रहते हैं।

कुहिरा—यह पाँच-पाँच हाथ लम्बे बाँस के दो टुकड़े होते हैं जो 'धुरी' में सूराख करके दोनों तरफ से कीली द्वारा ठोंक कर जोड़े रहते हैं। दोनों बांसों के बीच में 'धुरी' से दो हाथ के ऊपर एक-एक छेद कर दिया जाता है जिसमें गढ़ कर डेढ़ बालिश्त की लकड़ी लगा दी जाती है। इस लकड़ी को कुछ लोग **सँटैला** भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त डेढ़-डेढ़ हाथ की तीन-चार लकड़ियाँ दोनों बाँसों के बीच में छेद करके लगा कर **जेवर** (रस्सी) से दोनों तरफ बाँध दी जाती हैं। इन लकड़ियों को **डाँड़ा** कहा जाता है। इन्हीं 'डाँड़ों' पर बड़ी **खाँची** (अरहर के डंठलों का बना हुआ बहुत चौड़े मुँह वाला एक खुला टोकरा) या **झौवा** (झाबा) रखकर खाद ले जाते हैं। झाबे के नीचे तिरछा करके **फट्टा** (चीरे हुए बाँस का टुकड़ा) बाँध दिया जाता है। 'फट्टा' बाँधने का उद्देश्य केवल यह है कि खाद को खेत को गिराते समय झाबे पर अधिक जोर न पड़े। 'कुहिरे' के दोनों बाँस एक ओर तो 'धुरा' में लगे रहते हैं और दूसरी ओर बाँयें और दायें बैलों के कंधे में पड़ी हुई जुआ से सम्बन्धित कर दिये जाते हैं।

'लढ़ा' नाध कर झाबे में खाद रख लेने के पश्चात् एक आदमी बैलों को हाँक कर खेत में ले जाता है। वहाँ झाबे से खाद गिरा कर फिर घूर के पास लौट आता है। इसी क्रम से 'लढ़ा' या 'लढ़िये' के साधन से खाद खेत में पहुँचाई जाती है।

खेत में खाद पहुँचाने का दूसरा साधन **ऊँट** या **ऊँटिनी** (मादा ऊँट) है। ऊँट की पीठ पर **काठी** (एक विशेष प्रकार की गढ़ी हुई लकड़ी की चीज) रखकर उसी पर **खुरदी** (एक झोल) रख दी जाती है। इसी 'खुरदी' में पन्द्रह बीस पलड़े, खाद भर कर ऊँट को उठा दिया जाता है। इसके बाद एक आदमी ऊँट को खेत में ले जाकर बैठा देता है। ऊँट के बैठ जाने पर खाद से भरी हुई 'खुरदी' 'काठी' पर से खेत में उलटकर खाली कर दी जाती है। खाली 'खुरदी' को फिर 'काठी' पर रख कर आदमी ऊँट पर बैठ जाता है। 'घूर' के पास जाने पर आदमी ऊँट को बैठा देता है और स्वयं उतर जाता है। तत्पश्चात् फिर वही क्रम 'खुरदी' में खाद भरने और खेत पर ले जाने का चलता है। ऊँट को बैठने के लिए **'बट बट'** शब्द का प्रयोग किया जाता है। ऊँट को संतुलित ढंग से बैठने के लिए **'समबैठ'** कहा जाता है। ऊँट की नाक में उसे नियंत्रित करने के लिए जो गढ़ी हुई बहुत पतली और छोटी लकड़ी डाली रहती है उसे **नकेल** या **नकेला** कहते हैं। इसी 'नकेल' में एक पतली लम्बी रस्सी लगी रहती है जिसे **डोर** कहते हैं। इसी 'डोर' को पकड़कर लोग ऊँट को जिधर चाहते हैं घुमाते और ले जाते हैं।

जो धोबी खेती करते हैं वे अपनी 'खाद' गधे पर ढोते हैं। गधे को देहात में **गदहा** कहते हैं। मादा गधे को **गदही** कहा जाता है। धोबी खाद को मोटे चादर या धोती में बांध गधे पर लाद देते हैं। गधे की पीठ पर लदे तथा खाद से भरे हुए कपड़े को **लाव** या **लावी** कहा जाता है।

कुछ लोग खाद को पलड़े में भर कर अपने सिर पर ही उसे खेत में ले जाते हैं। इस प्रकार सिर पर खाद का बोझा ढोने को **मुँड़बोझा** कहते हैं। पलड़े को किसान **पलरा** कहते हैं। छोटे पलड़े को **पलरी** कहा जाता है। झाबे को 'झौवा' या **गलौवा** कहा जाता है। 'गलौवा' पलड़े से कहीं अधिक बड़ा होता है। अपनी शारीरिक शक्ति के अनुसार आदमी 'पलरा', 'पलरी' या 'गलौवा' में खाद भर कर सिर पर ढोते हैं। एक बार 'घूर' से खेत तक बोझा ले जाने को एक **खेप** कहते हैं। 'पलरा' या 'गलौवा' कड़ा होता है। अतः इसे ढोते समय नंगे सिर पर नहीं रक्खा जाता। गड़ने के कष्ट को बचाने के लिए लोग सिर पर पुराने कपड़े की एक पगड़ी-सी बाँध लेते हैं जिसे **फेंटा** कहते हैं। जो लोग 'फेंटा' नहीं बाँधते वे पुराने बोरे के फटे टुकड़े से एक गोलाकार वस्तु बना कर सिर पर पतली रस्सी से बाँध लेते हैं। इस गोलाकार वस्तु

को **गुड़री** कहा जाता है। इससे भी पलड़ा या झाबा रखने से सिर की सुरक्षा रहती है।

पहले खेत में खाद के बड़े-बड़े ढेर लगा दिये जाते हैं। खाद के इन ढेरों को खाद का **घुमड़ा** या **पँसकुरा** कहते हैं। खेत बोने के कुछ दिनों पूर्व इन बड़े-बड़े ढेरों से पलड़े में खाद भरी जाती है। प्राय. चार-चार हाथ के फासले पर एक-एक पलड़ा खाद डाल दी जाती है। पलड़े में भर-भर कर खेत भर में खाद डालने को **परोसब,** खाद **बाँटब** , खाद **सबँजब** या खाद **खेपियाउब** कहते हैं। पलड़ों से खाद 'खेपियाते' समय जहाँ खेत में आवश्यकता से कहीं अधिक फासला हो जाता है उस स्थान को **भाँपत** कहते हैं। आनुपातिक दूरी पर पुनः खाद डाल कर उस 'भाँपत' स्थान की पूर्ति कर दी जाती है। पलड़े से खेत भर में खाद पहुँच जाने पर किसान प्रत्येक **कूरा** (छोटी राशि) को हाथ से छीट देता है। इस कार्य को 'खाद' **छीटब** कहते हैं। खाद छींटने में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि 'खाद' खेत में सब जगह बराबर परिमाण में पहुँच जाय। सावाँ या तम्बाकू आदि के पौदे के कुछ बड़े हो जाने पर यदि उनके खेत में 'देसी' खाद या लोना छीटे जाते हैं तो उसे **धुरियाउब** कहते हैं।

बोने के पूर्व खेत में खाद छीट देने के बाद तुरंत जुताई कर दी जाती है, नहीं तो पानी बरसने से उसे बह जाने का डर रहता है। खाद 'बाँटने' पर जो 'कूरे' छोटे रहते हैं उन्हें **कुरौंनी** कहा जाता है। 'कुरौंनी' प्रायः आधे या तीन-चौथाई पलड़े खाद की होती है। खाद या किसी बारीक वस्तु के एक स्थान पर इकट्ठा करने का **कुरियाउब** कहते हैं।

संक्षिप्त परिचय माला-२

प्रोफेसर मेघनाद साहा

अरुण कुमार सक्सेना

विज्ञान के पुजारी श्री मेघनाद साहा का जन्म छः अक्टूबर सन् १८९३ ई० में बंगाल के ढाका प्रान्त में, जो आजकल पूर्वी पाकिस्तान में है, हुआ था। आपका बचपन ढाका में ही बीता था। इसी शहर में आपकी प्रारम्भिक शिक्षा भी हुई थी। सन् १९११ में इन्होंने कलकत्ते में पदार्पण किया तथा कलकत्ते के सुविख्यात प्रेसीडेन्सी कालेज में नाम लिखाया। यहीं पर इनकी बुद्धि की तीव्रता तथा प्रतिभा देखकर प्रोफेसर बड़े आश्चर्यचकित हुये। आपको सभी प्रोफेसर बड़े प्रेम तथा चाव से पढ़ाते थे। बी० एस-सी० आनर्स के पश्चात् सन् १९१५ में इसी कालेज में एपलाइड मैथेमेटिक्स से आपने एम० एस-सी० किया और सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुये।

आपकी लगन तथा चाव को देखकर सर आशुतोष मुखर्जी ने सन् १९१६ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के गणित विभाग में आपकी नियुक्ति करा दी। किन्तु विज्ञान के इस कर्मठ पुजारी को विज्ञान के प्रेम ने भौतिक विज्ञान में जाने को बाध्य कर दिया। आप कलकत्ता विश्वविद्यालय में बड़े चाव से थरमोडायनिमिक्स तथा क्वांटम थेरी पढ़ाया करते थे। साथ ही साथ अपना बहुमूल्य समय ज्योति-भौतिकी (Astro-Physics) की सेवा में बिताया करते। आपने थरमोडायनिमिक्स के आधार पर ज्योति-भौतिकी पर विशेष महत्वपूर्ण कार्य किया। सन् १९१८ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हें डी० एस-सी० की डिग्री प्रदान कर सम्मानित किया।

आपके विद्वतापूर्ण एवं तारकीय वर्णक्रम के शोध निबन्ध से प्रभावित होकर सन् १९१९ ई० में आपको श्री प्रेमचन्द्र रामचन्द्र छात्रवृत्ति प्रदान की गई। इसी वर्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय ने आपको घोष छात्रवृत्ति, जिसने आपको योरोपीय देशों के भ्रमण का अवसर दिया, प्रदान किया। इस शुभ अवसर आपको लन्दन की विश्वविख्यात प्रयोगशाला, इम्पीरियल कालेज आफ साईंस एण्ड टेक्नोलोजी, में प्रोफेसर डा० फाऊलर की संरक्षता में शोध कार्य करने का अवसर दिया। आपने जर्मनी की बर्लिन स्थित विख्यात आधुनिक प्रयोगशाला, प्रोफेसर नर्स्ट लेबोरेटरी, में अपने तापीय आयनीकरण के सिद्धान्त को प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिखाया। इससे अन्य देशों के वैज्ञानिक भी आपकी धाक मानने लगे और इस कार्य ने आपकी प्रतिभा में चार चाँद लगाये। आप ही एक ऐसे वैज्ञानिक थे जिसने परमाणुओं तथा ग्रहों में सम्बन्ध स्थापित किया। आपके इस सिद्धान्त ने वैज्ञानिकों को ग्रहों के भौतिक गुणों को जानने के लिए एक अस्त्र प्रदान किया। आज की ज्योतिर्भौतिकी में अधिकतर आपके ही विचारों की प्रधानता है। ज्योतिर्भौतिकी के अतिरिक्त आपके सिद्धान्त के और भी बहुत से उपयोग हैं। विशेषकर आयनोस्फियर का बनना, लपटों की चालकता, तथा विस्फोटक समकिरणों के वर्णन में आपके सिद्धान्त व्यवहृत होते हैं।

सन् १९२१ ई० में आप स्वदेश लौटे और कलकत्ता विश्वविद्यालय में खैरा-प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुये। सन् १९२३ ई० में आपको प्रयाग विश्वविद्यालय ने भौतिक विज्ञान का प्रोफेसर पद प्रदत्त कर आपका सम्मान शिखर पर पहुँचा दिया। आपने भी अपने कर्तव्य को भली-भाँति निभाया और प्रयाग विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग को चमका दिया। यहीं पर प्राफेसर साहा को ३४ वर्ष की अल्पायु में "रॉयल सोसायटी" ने फेलोशिप प्रदान किया।

सन् १९३८ ई० में आपको कलकत्ता विश्वविद्यालय ने प्रोफेसर पद देकर फिर कलकत्ता वापस बुला लिया। कलकत्ता विश्वविद्यालय में आपने एक विशेष महत्वपूर्ण संस्था "इंस्टीट्यूट आफ न्यूक्लियर फिजिक्स" की स्थापना की और अपनी मृत्यु तक इसके अवैतनिक निर्देशक बने रहे। इसके अतिरिक्त आपने "इण्डियन एसोसियेशन फार दी कल्टीवेशन आफ साईंस" की कलकत्ते में पुर्नस्थापना की और इस संस्था के भी आजीवन निर्देशक रहे। यह संस्था अत्यन्त पुरानी थी किन्तु कुछ कारणों वश निष्क्रिय पड़ी हुई थी आपकी लगन तथा परिश्रम से यह फिर उन्नति के शिखर पर पहुँच गई और अपने कार्य के कारण यह विश्वविद्यालय में परिणत हो गई।

भारत सरकार ने प्रोफेसर मेघनाद साहा को 'इन्टरनेशनल वोल्टा कानफ्रेन्स" में १९२७ में भारत की ओर से प्रतिनिधित्व करने के लिये भेजा। आपने १९४५ में रूस की "एकेडेमी आफ साईन्सेज" की बैठक में भाग लिया था।

प्रोफेसर साहा भारत की वैज्ञानिक संस्थाओं के जन्मदाता कहे जा सकते हैं। उनके द्वारा एक और नई संस्था "नेशनल एकेडेमी आफ इण्डिया" की स्थापना १९३१ में हुई और इसके आप सर्वप्रथम सभापति भी हुये। आपके शोध निबन्धों में आपकी गहन विद्वता एवं अध्ययनशीलता की गहरी छाप प्रकट होती है। आपकी साहित्यिक प्रतिभा का मूर्त-रूप हमें आपके द्वारा सम्पादित मासिक पत्रिका "साईंस एण्ड कलचर" से प्राप्त होता है। यह पत्रिका आपके द्वारा स्थापित "इण्डिया साईंस न्यूज एसोसियेशन" से प्रकाशित होती है।

इन सब के अतिरिक्त प्रोफेसर साहा १९४८ में "युनिवर्सिटी एजूकेशन कमीशन" के सदस्य रहे। १९५१ से १९५६ तक आप लोकसभा के सक्रिय सदस्य भी रहे। आप "नेशनल प्लानिंग कमेटी, नदी घाटी योजना तथा नेशनल लैबोरेटरीज" के भी सदस्य

[शेष पृष्ठ १२७ पर]

१. अमेरिका द्वारा बीज-सुधार कार्यक्रम में भारत की सहायता

भारत में घटिया किस्म के बीज का विस्तृत प्रयोग होने के कारण कृषि पर अत्यन्त प्रतिकूल भाव पड़ रहा है। इस स्थिति को सुधारने के उद्देश्य से इस समय भारत सरकार अमेरिका की सरकारी और निजी संस्थाओं की सहायता से एक व्यापक कार्यक्रम तैयार कर रही है।

अमेरिका के एक बीज-सुधार विशेषज्ञ, श्री आल्टिस एस० कार्टर, मई में भारत आये। उनकी नियुक्ति तीन महीने के लिए हुई थी। वह एक बीज-नियन्त्रण कार्यक्रम को कार्यान्वित करने में भारतीय कृषि-अधिकारियों को सहायता करते रहे हैं।

प्रशिक्षण कार्यक्रम

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत, भारत के प्रत्येक राज्य में बीज-परीक्षण प्रयोग-शालाएँ स्थापित होंगी। किसानों को घटिया किस्म का बीज बेचने की रोक-थाम करने के लिए उपर्युक्त कानून बनाया जायेगा, और बीज-प्रयोगशालाओं में कार्य करने तथा क्षेत्रीय निरीक्षण सम्पन्न करने के लिए कृषि-स्नातकों को प्रशिक्षित किया जायेगा। इस सम्बन्ध में, पहला प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम ३ जुलाई को नई दिल्ली के भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में, जो पूसा संस्थान के नाम से विख्यात है, प्रारम्भ हुआ। यह पाठ्यक्रम ६ सप्ताह तक चलेगा। इस में भारत के विभिन्न राज्यों के प्रशिक्षणार्थी भाग लेंगे, जिनकी संख्या १० और १५ के बीच होगी।

भारत में अपने टेक्निकल सहयोग मिशन के माध्यम से अमेरिकी सरकार बीज-परीक्षण प्रयोग-शालाओं की स्थापना और प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के संचालन में भारत सरकार की सहायता करेगी। इनमें कुछ प्रयोगशालाओं को आवश्यक सुविधाओं से सुसज्जित करने में रोकफेलर प्रतिष्ठान तथा फोर्ड प्रतिष्ठान भी सहायता प्रदान कर रहे हैं। अमेरिकी विशेषज्ञ, श्री कार्टर, को अमेरिका के बीज-नियन्त्रण कानून का एक लम्बा अनुभव प्राप्त है। भारत के लिए उसी प्रकार के एक उपर्युक्त कानून का स्वरूप तैयार करने में भारतीय अधिकारी श्री कार्टर से भी परामर्श कर रहे हैं।

भारत में बीज-परीक्षण प्रयोगशालाएँ

भारत में दो बीज-परीक्षण प्रयोगशालाएँ पहले ही से संचालित हैं। इन में से एक नई दिल्ली में और दूसरी लुधियाना में स्थापित है। ये प्रयोगशालाएँ सभी आवश्यक सुविधाओं से भली भाँति सुसज्जित हैं। इनके अतिरिक्त, पटना, हैदराबाद और श्रीनगर में भी बीज-परीक्षण प्रयोगशालाएँ स्थापित हो रही हैं। आशा है कि निकट भविष्य में भारत के शेष राज्यों में भी उनकी अपनी-अपनी बीज-परीक्षण प्रयोगशालाएँ स्थापित हो जायेंगी।

नई दिल्ली में एक भेंट-वार्ता के सिलसिले में, श्री कार्टर ने भारत में कृषि-उत्पादन को सुधारने के

लिए अच्छी किस्म के उपयोग पर बल दिया और कहा कि "अन्य साधनों, जैसे उर्वरक, सिंचाई और पानी के बहाव की समुचित व्यवस्था, से तो केवल ऐसा उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करने में सहायता मिलती है, जिसके अन्तर्गत बीज श्रेष्ठतर फसलें उपजाने में समर्थ होता है।

भारत में बीज-सुधार का महत्व

पूसा संस्थान के एक अधिकारी ने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जिसमें इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि भारत बीज-सुधार को कितना अधिक महत्व प्रदान करता है। उसने कहा है, "भारत के विभिन्न भागों में बीज का विक्रय करने वाली संस्थाओं से साग-सब्जी वाली फसलों के २,००० से अधिक नमूने एकत्र करके उनका परीक्षण किया गया है। इससे यह पता चला कि शुद्धता और अंकुरण-क्षमता की दृष्टि से इन बीजों में अधिक भिन्नता विद्यमान है।" प्याज के बीज के नमूनों की अंकुरण-क्षमता १ से लेकर ८९ प्रतिशत तक पायी गयी, जब कि चुकन्दर की अंकुरण-क्षमता २ से लेकर ८४ प्रतिशत तक भिन्न-भिन्न थी।

भारत में बीज-सुधार की दिशा में प्रथम उल्लेखनीय कदम १९५५ में उठारया गया, जब नई दिल्ली में एक केन्द्रीय बीज-परीक्षण प्रयोगशाला स्थापित करने की स्वीकृति हुई। उस समय यह निर्णय भी किया गया कि देश के विभिन्न भागों में बहुत सी क्षेत्रीय बीज-परीक्षण और प्रमाणीकरण प्रयोगशालाएँ स्थापित की जायँ।

दो वर्ष हुए, जब भारत सरकार के अनुरोध पर अमेरिकी टेक्निकल सहयोग मिशन ने श्री कार्टर की सेवाएँ सुलभ कीं। श्री कार्टर की सेवाएँ भारत आ कर इस सम्बन्ध में सर्वेक्षण करने और अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए प्राप्त की गयीं।

कार्टर-रिपोर्ट

श्री कार्टर की आयु ६० वर्ष है। वह जन्म, प्रशिक्षण और पेशे से एक किसान हैं। वह पुर्डू विश्वविद्यालय के स्नातक हैं। उन्होंने इलिनोय विश्वविद्यालय से कृषि विषय में मास्टर की उपाधि प्राप्त की है। रिचलैण्ड, इण्डियाना, में १६० एकड़ का उनका अपना फार्म है, जिसका वह स्वयं संचालन करते हैं। वह इण्डियाना राज्य के कृषि-प्रयोग केन्द्र पर भी विभिन्न पदों पर २५ वर्ष से अधिक समय तक कार्य कर चुके हैं। इस समय वह लैफायत (इण्डियाना) स्थित पुर्डू विश्वविद्यालय में बीज-नियन्त्रण एवं राजकीय रासायनिक सेवा विभाग के निर्देशक हैं। इसके पूर्व उन्होंने इण्डियाना राज्य की तीन काउण्टियों में काउण्टी कृषि-एजेण्ट के पद पर कार्य किया था।

१९५९ में वह दो महीने के लिए भारत आये। भारत में अपने दो मास के इस निवास-काल में उन्होंने अनेक कृषि-क्षेत्रों का दौरा किया, और भारत के लिए बीज-सुधार कार्यक्रम सम्बन्धी अपनी रिपोर्ट सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। उस रिपोर्ट में, श्री कार्टर ने कहा था कि "खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि सुधरे बीजों का प्रयोग किया जाये।" उन्होंने कहा कि भारत में खाद्यान्न बढ़ाने का यह एकमात्र सब से लाभकर साधन है।

बीज-सुधार की आवश्यकता

एक विशेषज्ञ की हैसियत से श्री कार्टर अमेरिका में बीज-नियन्त्रण के लिए उपयुक्त कानून का प्रारूप तैयार करने में योग दे चुके हैं। उनका विचार है कि "एक अच्छी प्रमाणीकरण योजना के अन्तर्गत श्रेष्ठतर, किस्म के बीजों को बढ़ाने और वितरित करने की आवश्यकता भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।" अमेरिका में बीज-नियन्त्रण कानून के अन्तर्गत बीज के समस्त व्यवसायियों के लिए आवश्यक है कि वे केवल ऐसे ही बीज बेचें, जिनका परीक्षण हो चुका हो, और जो प्रमाणित हों। श्री कार्टर ने कहा, "जब भारत में भी सर्वत्र इसी प्रकार नियन्त्रण लागू हो जायेगा, तो भारतीय कृषि का उत्पादन बहुत बढ़ जायेगा।"

२. वैज्ञानिक कार्य में चीन की दो वर्ष की उपलब्धियां

दूसरे सभी समाजवादी उद्यमों की तरह, चीन में वैज्ञानिक कार्य में भी १९५८ से लम्बी छलांग के सभी लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे हैं। चीनी विज्ञान की पुरानी और पिछड़ी स्थिति में बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहा है और चीनी विज्ञान के टेक्नीकल स्तर तथा अत्यन्त उन्नत देशों के टेक्नीकल स्तर के बीच की खाई बहुत कम होती जा रही है। विज्ञान के सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व महान उपलब्धियाँ प्राप्त हो गयी हैं।

बहुत-से क्षेत्रों के वैज्ञानिक कार्यकर्त्ताओं ने पिछले दो वर्षों में प्राकृतिक साधनों और प्राकृतिक परिस्थितियों के आम सर्वेक्षण में हजारों मजदूरों, किसानों और विद्यार्थियों के साथ काम किया। मिसाल के लिए, चीनी विज्ञान अकादमी ने १९५९ में तीस लाख बर्ग किलोमीटर से अधिक क्षेत्र का आम सर्वेक्षण किया जो कि बर्तानिया के कुल क्षेत्र का १२ गुना होता है। इस सर्वेक्षण द्वारा अपने प्राकृतिक साधनों के भंडार का पता लगाने और उन्हें समझने की दिशा में एक और बड़ा कदम उठाया गया है। इससे हम विभिन्न प्रदेशों के लिए इंजीनियरिंग की व आर्थिक योजनाएँ तैयार करने और अपने साधनों से युक्ति-युक्त लाभ उठाने और काम लेने के सिलसिले में बहुत-से अच्छे सुझाव रख सके हैं। इसमें हमें अपने देश में प्रकृति के दीर्घकालीन रूपान्तरण के लिए—को दक्षिण से उत्तर चीन की ओर मोड़ना, रेगिस्तानों का कायपलट करना, पुंजीभूत हिम और बर्फ को जैसे कि पानी के रुख को काम में लाना और उत्तर-पश्चिम चीन की अनुपजाऊ परिस्थितियों को खत्म करना—प्रचुर और बहुमूल्य वैज्ञानिक सामग्री भी मिली है।

भूतत्वविद् और अनेकानेक अन्वेषक खनिजों की खोज के जन आन्दोलन में जुटे हैं, और लोहे व कोयले के जिन संग्रहों का पता लगाया गया है वे पहले पता चले कुल संग्रहों से परिमाण में दुगने हैं। जो प्रत्येक तेल और फासफोरस में बहुत समय से निर्धन समझे जाते थे, उनमें अब प्रचुर तेल क्षेत्र और फासफोरस के संग्रह पाये गये हैं। जहाँ तक दुर्लभ और अपकिरण तत्वों का सम्बन्ध है, गत दो वर्षों की खोजें उससे पहले की सात वर्षों की खोजों से बहुत आगे बढ़ गयी हैं।

हमारे समाजवादी वैज्ञानिक कार्य की एक विशेषता यह है कि साधनों के व्यापक उपयोग का बड़े पैमाने पर अध्ययन किया जा रहा है। पूरे देश में प्रान्तों, नगरपालिकाओं और स्वायत्त प्रदेशों के अन्दर ईंधनों के रासायनिक उपयोग की समस्याओं का अध्ययन किया गया है और इस प्रकार जो उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं वे तुरन्त व्यावहारिक उत्पादन में लागू की गयी हैं। इमारती लकड़ी और कृषि की ऊपर पैदावारों के व्यापक उपयोग में नये परिणाम प्राप्त हुए हैं। कृषि की ऊपरी पैदावारों के रासायनिक परिसंस्कार से कार्बनिक रसायन उद्योग को बहुत-सा आधारभूत कच्चा माल मिला है। कागज और रेयन के निर्माण में घासें और तिनके प्रयुक्त करने के टेक्नीकों में भी अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं। जन-साधारण को कार्य के लिए संगठित करने से, १९५९ में जंगली पौधों के एक लाख से अधिक नमूने इकट्ठे किये गये जिनमें से कोई दो हजार आर्थिक महत्व के निकले। इन जंगली पौधों के व्यापक उपयोग में अब तेजी से प्रगति हो रही है। मिट्टी खनिज संग्रह और समुद्र-जल के व्यापक उपयोग के सिलसिले में भी बहुत काम किया गया है।

विज्ञान द्वारा उद्योग की सेवा का एक महत्व पूर्ण पहलू यह तथ्य है कि उत्पादन के देसी या आधुनिक तरीकों को काम में लाने वाले छोटे उद्यमों द्वारा टेक्नीक के निरन्तर सुधार की राह निकालने में वैज्ञानिक कार्यकर्त्ताओं ने पिछले दो साल में लोगों के साथ मिलकर काम किया है। इस पद्धति की श्रेष्ठता लोहा, इस्पात और कोक उद्योगों में देखी गयी है जहाँ बहुत-सी उच्च कोटि की वैज्ञानिक टेक्नीकल

उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं। उदाहरण के लिए, लाल झंडा सरल कोक भट्टी द्वारा बहुत जल्दी कोक पैदा करने की प्रणाली से, कोक की तैयारी में लगने वाले समय की बहुत बचत हो गयी है। कुछ छोटी धमन भट्टियों से प्रचुर मात्रा में वायु के प्रयोग से उनका उपयोगिता अनुपात बड़ी-बड़ी आधुनिक भट्टियों के आम स्तर से भी बहुत बढ़ गया है।

विज्ञान द्वारा उद्योग की सेवा का एक और महत्वपूर्ण पहलू नवीन टेक्नीकों, नवीन प्रक्रियाओं और नवीन उत्पादनों का विकास है। एक मिश्र धातु व्यवस्था अस्थायी रूप से स्थापित कर दी गयी है जो चीन के प्राकृतिक साधनों की विशेषताओं के अनुरूप है। लोह-मिश्रित धातुओं को अत्यधिक गलाने और लोहरहित धातुओं को गलाने के लिए नये टेक्नीकों के अध्ययन में और उपलब्धियाँ प्राप्त की गयी हैं। चीन की धमन भट्टियों और खुले मुँह वाली भट्टियों के औसत उपयोगिता-अनुपात अमरीका के औसत, उपयोगिता-अनुपातों से बहुत आगे बढ़ गये हैं और विश्व के सर्वाधिक उन्नत स्तर पर पहुँच गये हैं। मशीन उद्योग में कई सौ महत्वपूर्ण नयी चीजें बनायी गयी हैं। लोह मिश्रित धातुओं की नयी परि-संस्कार पद्धतियों और विद्युत् मशीनों की नयी शीतीकरण पद्धति के अध्ययन में भी असाधारण परिणाम प्राप्त हुए हैं। खनन की नयी अभ्यास पद्धति कोयला खनन उद्योग में व्यापक रूप से लागू की गयी है और टेक्नीकल स्तर अनेक दृष्टि से विश्व में सर्वोच्च हो गया है। पैट्रोलियम उद्योग में, संश्लिष्ट द्रव ईंधन और टार के परिसंस्कार व सुधार की शोध के ऐसे परिणाम निकले हैं जिनकी सर्वोन्नत विश्व स्तरों में से तुलना की जा सकती है। रसायन उद्योग में विभिन्न उच्च अणु यौगिकों तथा दुर्लभ पृथ्वी-तत्वों के अध्ययन का बहुत विकास हुआ है। सूक्ष्म काम के चाक्षुष यंत्रों के अध्ययन में भी शानदार परिणाम रहे हैं। वृहत् जन भवन, पेकिंग रेलवे स्टेशन आदि भव्य इमारतों का डिजाइन बनाते हुए और निर्माण करते हुए, हमने अनेक वैज्ञानिक व टेक्नीकल समस्याओं, जैसे कि शैल संरचना और द्रुत निर्माण का समाधान खोज निकाला है। उन्नत घनाकार लोह-कंक्रीट नींव के टेक्नीक को और लोकप्रिय बनाया गया है तथा विकसित किया गया है, और इस तरह पानी के नीचे नींव के चट्टे बनाने की टेक्नीकल समस्याओं को सुलझाया गया है और पुल-निर्माण की गति बहुत तेज कर दी गयी है। आवास निर्माण में हमने गति बढ़ाने और बड़े पैमाने पर कंक्रीट डालने के लिए अनुदिश विस्फोट के प्रयोग में भी परिणाम प्राप्त किये हैं।

कृषि में, "आठ-सूत्री चार्टर" को केन्द्र मान कर अनेक प्रयोग और अध्ययन किये गये हैं। प्रान्तीय स्तर की तथा उससे ऊपर की वैज्ञानिक शोध संस्थाओं ने देश भर में सैकड़ों शोध केन्द्र कायम किये हैं जो लोक कम्यूनों के हजारों प्रयोग फार्मों और बहुत-से फार्म विशेषज्ञों के साथ गहरा सहयोग रखते हैं। उन्होंने विभिन्न पदार्थों की विभिन्न प्रदेशों में भरपूर फसलों के अनुभवों का, विशेष कर गहरी जुताई और सघन रोपाई के अनुभवों का सार निकाला है। गहरी जुताई, सघन रोपाई, खाद देना, मिट्टी का सुधार, सिंचाई, बाढ़ की रोक-थाम, पानी की निकासी और फसलों के रोगों की रोक-थाम जैसे पैदावार बढ़ाने के उपायों पर वैज्ञानिक आधार-सामग्री, प्रणालियाँ और व्यवस्थाएँ उपलब्ध की गयी हैं। यह सब कृषि की पैदावार को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा। मिट्टी के सामान्य अध्ययन में १९५९ के नौ महीनों में, ४,३०,००,००,००० मऊ जमीन पर मिट्टी का अध्ययन किया गया जिसमें से १,३०,००,००,००० मऊ काश्त की जमीन थी। इस बीच, खार वाली और लाल मिट्टी के सुधार और युक्तियुक्त उपयोग के अध्ययन में भी उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं। खेती के उपकरणों के सुधार ने एक जन आन्दोलन का रूप धारण कर लिया है और बहुत से नये कारगर व सरल उपकरण ईजाद किये गये हैं। धान की पौध लगाने वाले यंत्र का

सफल आविष्कार कृषि के यंत्रीकरण में एक महत्व पूर्ण योगदान है।

नये चीन में जनता के स्वास्थ्य की रक्षा और उसका विकास ही चिकित्सा, औषधि-विज्ञान और जीव-विज्ञान के कार्यकर्ताओं की समान आकांक्षा है। लम्बी छलांग के बाद से, हमने चार विनाशकारी कीटों (मच्छर, मक्खी, चूहे और खटमल) को नष्ट करने के सुगठित आन्दोलनों तथा व्यक्तिगत स्वास्थ्य-विज्ञान पर ध्यान देने के आधार पर पाँच प्रमुख परोपजीवी रोगों को नष्ट करने के तरीकों में दक्षता प्राप्त कर ली है। कैंसर तथा अतिउद्वेग की रोकथाम और उनके उपचार में, बड़े पैमाने पर व्यापक परीक्षण किये गये हैं तथा रोग की व्यापकता, उसके स्वरूप व निदान के अध्ययन और इस प्रकार के रोगों के सम्मिलित उपचार में नवीन प्रगति की गयी है। लोक कम्यूनों के लाखों सदस्यों की डाक्टरी परीक्षा की गयी है ताकि उन के भोजन और स्वास्थ्य सम्बन्धी परिस्थितियों का अध्ययन किया जा सके। हमारे देश की चिकित्सा सम्बन्धी परम्परा की संक्षेपावृत्ति तथा उसके और अधिक विकास का कार्य अब पूरे जोर-शोर से जारी है।

वास्तविक उत्पादन और प्रयोग के दौरान एकत्र विपुल सामग्री के आधार पर मूलभूत सिद्धान्तों के अध्ययन में भारी प्रगति की गयी है। उदाहरणार्थ, पौधों की दलबद्ध शारीरिकी घनी खेती के हमारे अनुभव का एक सीधा परिणाम है। धमन भट्टियों में कच्ची धातुओं को प्रगाढ़ रूप में से पिघलाने तथा ऊष्मसह सामग्रियों के अन्य प्रकार के द्रुत निर्माण दोनों से सम्बन्धित नये सिद्धान्तों ने पुराने सिद्धान्तों की सीमाओं को तोड़ डाला है। परमाणविक ढांचे, इन्सूलिन, न्यूक्लेइक एसिड तथा विद्युत् शारीरिकी के अध्ययन में भी अच्छी प्रगति की गयी है।

पिछले दो सालों में, अन्य शाखाओं की अपेक्षा विज्ञान की अत्यन्त विकसित शाखाओं में और भी अधिक प्रगति की गयी है। दो वर्षों के भारी प्रयासों के बाद उन शालाओं में एक अच्छे आधार की स्थापना की गयी है, जिनके बारे में एक लम्बे समय से यह माना जाता था कि वे चीन में बहुत कमजोर हैं या मौजूद ही नहीं हैं। उदाहरणार्थ, सोवियत वैज्ञानिकों की सहायता से, हम प्रति सेकंड १०,००० संक्रिया की गति वाले एक आम उपयोग के एलेक्ट्रानिक कम्प्यूटर का निर्माण करने में सफल हुए हैं, जिसने पिछले छः मास में वैज्ञानिक शोध तथा राष्ट्रीय आर्थिक निर्माण के लिए कई पेंचीदा समस्याओं को हल किया है। इस मशीन का कार्य अत्यन्त उल्लेखनीय है। धातविक अर्ध-कंडक्टरों के अध्ययन में कच्चे माल को निकालने से लेकर विभिन्न उपकरणों व यंत्रों के निर्माण तक की कई प्राविधिक समस्याएँ हल की गई हैं। सोवियत संघ की सहायता से एक प्रयोगात्मक आणविक संयंत्र का निर्माण किया गया है, जो दो साल से काम कर रहा है। हमने इसकी सहायता से कई प्रयोग और अध्ययन किये हैं।

उपरोक्त सफलताएँ चीन द्वारा लम्बी छलांग के दौरान वैज्ञानिक कार्य के विभिन्न क्षेत्रों में प्राप्त की गयी अनेक सफलताओं का एक अल्पांश मात्र हैं जो हमें गर्व और हर्ष प्रदान करने के लिए पर्याप्त है। फिर भी जो चीज इससे भी अधिक हर्षोत्पादक है वह अब तक प्राप्त विपुल परिणाम नहीं, बल्कि वैज्ञानिक कार्यकर्ताओं की संख्या का तीव्र विकास और उनका बदला हुआ मानसिक दृष्टिकोण है। वैज्ञानिकों की संख्या में होने वाली लगातार बढ़ोतरी और उनके स्तरों में होने वाले विकास से चीन में विज्ञान के महान भविष्य का पूर्वाभास होता है। हमें विश्वास है कि भविष्य और भी अधिक तथा श्रेष्ठ-तर सफलताएँ प्राप्त की जाएँगी।

ये सफलताएँ कैसे प्राप्त की गयी हैं? यह पार्टी की आम नीति की विजय है, हमारे वैज्ञानिक कार्य में आम नीति के दृढ़ कार्यान्वयन की विजय है।

१९५८ के बाद से, हमारे वैज्ञानिक कार्य ने तीव्र गति के विकास की एक नयी मंजिल में प्रवेश किया है।

स्कूलों, कारखानों और गाँवों में वैज्ञानिक शोध और प्रयोग किये गये हैं। मेहनतकश जनता ने जोश और बुद्धिमानी के साथ प्राविधिक नवीकरण और आविष्कार किये हैं, तथा विज्ञान व प्रविधि में एक के बाद एक चमत्कार प्रकट हुए हैं। हाल में ही, मशीनीकरण स्वचालन और अर्ध-स्वचालन को केन्द्र मानते हुए प्राविधिक नवीकरण आन्दोलन सभी व्यवसायों में फैल गया है, तथा असंख्य आविष्कारों की सूचना मिली है। जनता द्वारा किये जाने वाले आविष्कारों और नवीकरणों में ऐसा बहुत बड़ा सैद्धान्तिक ज्ञान जिसका एक लम्बे समय से उपयोग नहीं हुआ था, अब व्यावहारिक उत्पादन में लगाया गया है। इस प्रकार व्यवहार द्वारा वैज्ञानिक सिद्धान्तों की जांच की जाती है तथा व्यवहार के दौरान प्राप्त होने वाले नये अनुभव, नये ज्ञान ने, इसके बदले पुराने सिद्धान्तों को पुष्ट किया है और उनका विकास किया है। जनता के कुछ आविष्कारों ने पुराने सिद्धान्तों की सीमाओं को तोड़ डाला है, और इस प्रकार नये सिद्धान्तों का जन्म हुआ है। आम जनता में अनेक नयी प्रतिभाओं का भी पता चला है। जन आन्दोलन में प्रशिक्षित और सुदृढ़ हुए, इन लोगों का वैज्ञानिक और प्राविधिक स्तर दृढ़ता के साथ ऊँचा उठाया गया है। इससे नये चीन में वैज्ञानिक कार्य का एक अत्यन्त विश्वसनीय जन-आधार प्राप्त हो सकेगा।

वैज्ञानिक शोध संस्थाओं का तेजी से होने वाला विकास आम जनता के प्राविधिक नवीकरण और प्राविधिक क्रांति के आन्दोलन के समक्ष है। केन्द्रीय व स्थानीय संगठनों के साथ-साथ विकास की नीति के कार्यान्वियन के फलस्वरूप सभी विभागों और सभी स्थानीय क्षेत्रों की पहलकदमी को सक्रिय किया गया है। इससे चीनी विज्ञान अकादमी, केन्द्रीय सरकारी विभागों और कालेजों व विश्वविद्यालयों के शोध संस्थानों द्वारा किये जाने वाले शोध कार्य का ही विकास नहीं हुआ है, बल्कि इसने स्थानीय वैज्ञानिक उपक्रमों के अपूर्व विकास को भी प्रेरित किया है। बड़े नगरों और औद्योगिक कारखानों में ही इस प्रकार के वैज्ञानिक शोध संगठनों की स्थापना नहीं हुई है, बल्कि गांवों और पहाड़ी जिलों में भी हुई है जो आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से कुछ पिछड़े हुए हैं। समस्त राष्ट्र में वैज्ञानिक शोध संगठनों का एक जाल-सा बिछता जा रहा है।

पार्टी के नेतृत्व को मजबूत बनाने और जनता को सक्रिय करने के दौरान हमने मस्तिष्क की मुक्ति को और पुराने आदर्शों के उन्मूलन को प्रोत्साहित किया है, आयोजित ढंग से काम का वितरण किया है और व्यापक स्तर के कम्युनिस्ट शैली के सहयोग का संगठन किया है। इन सब कदमों ने सम्मिलित रूप से वैज्ञानिक कार्यकर्ताओं की एक विशाल सेना के निर्माण में मदद दी है, जिसमें विशेषज्ञ और जनता भी सम्मिलित हैं। विज्ञान को व्यापक रूप से लोकप्रिय बनाने के साथ ही स्तरों में भी लगातार विकास हुआ है। इस प्रकार, हमारी वैज्ञानिक संस्थाएँ निर्माण के अन्य सभी क्षेत्रों की भांति तीव्र गति की लम्बी छलांग लगाने में समर्थ हुई हैं।

इस बीच, इस पर ध्यान दिया जाना चाहिये कि लम्बी छलांग में प्राप्त की गयी समस्त सफलताओं का सोवियत संघ तथा अन्य बंधु देशों से अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक व प्राविधिक सहयोग के द्वारा उदारतापूर्वक प्राप्त होने वाली सहायता से अविभाज्य सम्बन्ध है। इसके बाद से, अपने निजी साधनों पर निर्भर करने के आधार पर, हम सोवियत संघ व अन्य बन्धु देशों की आगे बढ़ी हुई उपलब्धियों से सीखना और उनके साथ अपने सहयोग को मजबूत करना जारी रखेंगे। हम सभी मित्र राष्ट्रों के साथ वैज्ञानिक जानकारी के अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह और वैज्ञानिकों व विद्वानों के आदान-प्रदान को और भी आगे बढ़ायेंगे। हम अपने वैज्ञानिक कार्य को उससे भी अधिक तीव्र गति से विकसित करेंगे, जिस गति से हमने पिछले दो वर्षों में किया है, ताकि हम संसार में विज्ञान की चोटी पर पहुंच सकें।

कुजो शुई द्वारा लिखित

मालवाही ट्रकों को जल-निरुद्ध करने के लिए प्लास्टिक की परतों का उपयोग

अमेरिका में दूरस्थ स्थानों तक माल ढो कर पहुँचाने वाली ट्रकों की कम्पनियों के समक्ष बहुत दिनों से यह समस्या रही है कि वे अपनी विशाल मालवाही ट्रकों और ट्रेलरों के बगल वाले दरवाजों को जल-निरुद्ध किस प्रकार करें। बरसात और बर्फीली आंधियों के समय पर्याप्त सुरक्षा की व्यवस्था न होने पर, दरवाजे की दरारों से चू-चू कर आने वाली नमी और हवा के साथ आने वाले तुषार से काफी क्षति हो सकती है।

इस समस्या को हल करने के लिए सामान्यतया वाहन के दरवाजे के भीतरी भाग पर जल-निरोधक कागज की परत चढ़ा दी जाती है। इस विधि से असन्तुष्ट हो कर हाल में मालवाही ट्रकों की एक प्रमुख फर्म ने यह निश्चय किया कि वह किसी ऐसे पदार्थ का पता लगाने का प्रयत्न करेगी, जो अधिक सन्तोषप्रद सिद्ध हो सके। इस फर्म ने भिन्न-भिन्न पदार्थों के सम्बन्ध में प्रयोग किये और यह खोज की कि दो मिलीमीटर मोटी पोलीथाइलिन की परत या फिल्म अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। इस विधि को सरल बनाने और क्षतियों को रोकने के लिए, फिल्म को काट कर ट्रक या ट्रेलर के दरवाजे के बराबर की चद्दरें तैयार कर ली जाती हैं। इस चद्दर को लदे हुए माल के ऊपर मोड़ कर रख लिया जाता है और उसे सिरे तथा तले पर रस्सी से बांध कर सुरक्षित रखा जाता है। फर्म के अधिकारियों ने बताया कि पोलीथाइलिन की फिल्म अधिक प्रभावकारी अवरोधक सिद्ध होने के अतिरिक्त माल को ढोने-लादने के समय प्रयुक्त होने वाले श्रम के समय में तथा सामग्रियों के व्यय में बचत करती है। इसके अतिरिक्त, एक अन्य लाभ यह है कि पारदर्शक होने के कारण समय-समय पर, चद्दर को बिना हटाये ही, ढके हुए माल का निरीक्षण करना सम्भव है।

राकेट-चालित विमान एक्स-१५

अमेरिका के राकेट-चालित प्रयोगात्मक विमान 'एक्स-१५' ने, जिसने मार्च मास के प्रारम्भ में तीव्र गति से उड़ान का एक नवीन विश्व-कीर्त्तिमान स्थापित किया था, अब पुनः एक नवीन सफलता प्राप्त की है। इस बार ३० मील से भी अधिक अनुमानित ऊँचाई तक पहुँच कर इसने ऊँची उड़ान का नवीन विश्व-कीर्त्तिमान स्थापित किया है।

प्रयोगात्मक विमान, एक्स-१५, जिसे अन्तरिक्ष की सीमा तक पहुँचने की दिशा में प्रथम प्रयास कहा गया है, ३० मार्च को १,६५,००० फुट की ऊँचाई तक पहुँच गया। इसका संचालन एक सिविलियन चालक, जोजेफ ए० वाकर, ने किया, जो राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन के अन्तरिक्षीय उड़ान विषयक परीक्षण से सम्बद्ध चालक है।

इस के पूर्व ऊँची उड़ान का कीर्त्तिमान १,३६,००० फुट की ऊँचाई पर गत अगस्त में स्थापित हुआ था। उस समय एक्स-१५ को अपेक्षाकृत छोटे इंजिन से

चलाया गया था। उस उड़ान में इसका संचालन वायुसेना के मेजर रावर्ट एम० व्हाइट ने किया था।

राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन के अधिकारियों ने सम्वाददाताओं को बताया कि इस उड़ान का प्रमुख उद्देश्य ऊँचाई सम्बन्धी उड़ान का नया कीर्त्तिमान स्थापित करना नहीं था। उन्होंने बताया कि यह उड़ान अमेरिका के उस प्रयोगात्मक कार्यक्रम का द्वितीय कदम थी, जिसका उद्देश्य, अन्ततः, ५० मील की ऊँचाई तक मानव-चालक युक्त विमान को भेजना है।

एक्स-१५ को एक प्रधान वाहक विमान द्वारा ४५,००० फुट की ऊँचाई पर पहुँचाया गया, जहाँ उसे उस वाहक विमान से पृथक कर दिया गया। वाकर ने इसे लगभग १,००,००० फुट की ऊँचाई पर ले जा कर, वहाँ इंजिन को काट दिया। प्रवेग के फलस्वरूप यह विमान उससे आगे लगभग ६०,००० फुट की ऊँचाई तक और गया। अभी एक्स-१५ में लगे उपकरणों द्वारा प्रेषित आंकड़ों का विश्लेषण करना शेष है। विश्लेषण पूरा होने तक अधिकृत रूप से ऊँचाई के अनुमान की घोषणा नहीं की जा सकेगी। इस उड़ान को सम्पन्न करने में कुल १० मिनट लगे, और उड़ान के समय इसके इंजिन की टोंटी को अंशतः खोला गया।

इस परीक्षण में वाकर ने ९० सेकण्ड तक भार-हीनता का अनुभव किया। इससे पूर्व इतनी लम्बी अवधि तक भारहीनता का अनुभव किसी अन्य व्यक्ति ने नहीं किया था। अधिकारियों ने बताया कि वाकर पर इतनी देर तक भारहीनता का अनुभव करने के कारण कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ा।

७ मार्च को एक्स-१५ ने २,९०५ मील प्रति घण्टे उड़ान की गति का नया विश्वकीर्त्तिमान स्थापित किया था। एक्स-१५ का निर्माण ४,००० मील प्रति घण्टे की गति तथा २,५०,००० फुट से अधिक ऊँचाई तक उड़ान करने के उद्देश्य से किया गया है। ये परीक्षण इसी उद्देश्य को सिद्ध करने के सिलसिले में हो रहे हैं।

मूलभूत जीवन-प्रक्रिया के अवलोकन की नवीन विधि

एक अमेरिकी वैज्ञानिक ने एक प्रतिभाशाली जापानी अनुसन्धानकर्ता की खोज के आधार पर प्राणिशास्त्रीय अनुसन्धान के क्षेत्र में एक महान सफलता प्राप्त की है। उसने पहली बार एक ऐसी विधि विकसित की है, जिसके द्वारा एक प्रयोगात्मक नलिका में जीवन और विकास की प्रक्रिया को सक्रिय रूप में—सजीव प्राण कोषों से पृथक—देखा जा सकता है।

इस विधि के अन्तर्गत, प्राणकोषीय पदार्थ के चुने-चुनाये कणों को एक्स-विकिरण सक्रिय बना कर प्रोटीन विषयक समन्वयकरण को रोक दिया जाता है, और फिर, समन्वयकरण की प्रक्रिया पुनः जारी करने के लिए न्यूक्लिइक एसिड (डी० एन० ए०) को उसमें मिला दिया जाता है।

प्रोटीन समन्वयकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा जीवित प्राणकोष खाद्य-पदार्थ को जीवित तथा नवीन प्राणकोषीय पदार्थ में परिणत कर देते हैं। यह प्रक्रिया सभी प्राणकोषों में जीवन और विकास का समानार्थक है। अतः वैज्ञानिक ने एक प्रकार से प्रयोगात्मक नलिका के भीतर ही जीवन को बन्द और पुनः चालू करने में सफलता प्राप्त कर ली है।

इस खोज को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना जा रहा है, क्योंकि अन्ततः इसके द्वारा अनुसन्धान-कर्त्ताओं को प्रोटीन समन्वयकरण की प्रक्रिया सक्रिय रूप में देखने की विधि प्राप्त हो गयी है। इसके पूर्व यह सम्भव नहीं था, क्योंकि अध्ययन के उद्देश्य से जीवित प्राण-कोषों को खोलने की क्रिया से ही विनाश की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती थी। इससे प्रोटीन समन्वयकरण की प्रक्रिया उल्टी हो जाती थी और प्राणकोष मर जाता था।

अमेरिकी अणुशक्ति आयोग की ओकरिज प्रयोगशाला के प्रधान जीव-रसायनशास्त्री डा० जी० डेविड नौवेली ने कांग्रेस की अनुसन्धान विषयक संयुक्त अणुशक्ति उपसमिति के समक्ष अपने बयान में इन खोजों पर प्रकाश डाला। इस समिति के समक्ष एक सप्ताह से अधिक समय तक चिकित्सा, अनुसन्धान, कृषि और उद्योग में विकिरण और रेडियो आइसोटोप के नये उपयोगों के विषय में सुनवायी हुई।

डा० नौवेली ने ओकरिज प्रयोगशाला पर जापानी सरकार द्वारा भेजे गये तरुण रेडियो-जीव वैज्ञानिक, डा० टाडानौरी कामेयामा की खोज के महत्व पर प्रकाश डाला।

इन दोनों वैज्ञानिकों ने लगभग १ वर्ष पूर्व, यह खोज की थी कि सजीव प्राणकोषों को अतिकाशनीय किरणों के समक्ष रखने पर उनकी प्रोटीन-समन्वयकरण की क्षमता धीमी पड़ जाती है। किन्तु जब प्राणकोषों को श्वेत प्रकाश के सामने रखा जाता है, तो यह प्रक्रिया उल्टी हो जाती है। इस प्रक्रिया को 'फोटो रिएक्टाइवेशन' कहते हैं।

डा० कामेयामा जापान में 'नैशनल इन्स्टिट्यूट औव् रेडियोलौजिकल साइंसेज' में जीव-रसायन-शास्त्रियों की एक टोली के प्रधान हैं। जापान वापिस जाने पर उन्होंने देखा कि एक प्रयोग नलिका में प्राणकोषविहीन प्रणाली पर अतिकाशनी प्रकाश का प्रयोग करने से प्रोटीन समन्वयकरण की प्रक्रिया मन्द हो जाती है। उन्होंने इस बात की भी पुष्टि की कि डी० एन० ए० (डेसराइरिबो न्यूक्लिइक एसिड) मिला देने पर यह प्रक्रिया उलटी हो सकती है।

इसी बीच ओकरिज प्रयोगशाला में डा०नौवेली ने यह देखा कि प्राणकोषों को एक्स-रे सक्रिय बना देने से भी उसी प्रकार प्रोटीन का निर्माण रुक जाता है। फिर उन्होंने यह खोज की कि डी० एन० ए० के विशिष्ट कणों को —ऐसे कणों को, जिनमें उस प्रजननकारी पदार्थ का समावेश हो, जो विकास प्रक्रिया को पुनः चालू कर सकता है—पुनः मिला देने से प्रोटीन समन्वयकरण की प्रक्रिया पूर्णतया जारी हो सकती है।

अमरिका में समुद्र के खारे जल को लवणरहित करने की नवीन विधि विकसित

अमेरिका में समुद्र के खारे पानी को पीने योग्य मीठे पानी में परिवर्तित करने की एक सर्वथा नवीन विधि का सफल परीक्षण हुआ है। आशा है कि 'थिन फिल्म डिस्टिलेशन' नामक यह विधि लाभकर और क्षमतापूर्ण ढंग पर समुद्र के खारे पानी को लवणरहित करने की दिशा में महत्वपूर्ण योग प्रदान करेगी। इस विधि द्वारा जितने पानी को लवणरहित करने का प्रयोग किया जाता है, उस में लगभग आधा पीने योग्य ऐसे मीठे पानी में परिणत हो जाता है, जिस में केवल एक-दस लाखवां अंश ही लवण शेष रह जाता है। इस नवीन विधि द्वारा गन्दे पानी को भी शुद्ध पेय जल में परिणत किया जा सकता है। इस नवीन विधि से खारे पानी को लवणरहित करने के लिए जिस उपकरण की आवश्यकता होती है, उसका भार इस समय इस कार्य के लिए प्रयुक्त सर्वश्रेष्ठ उपकरण के लगभग आधे के ही बराबर है। उपकरण की उपयोगिता को देखते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि इस विधि का प्रयोग स्थल और समुद्र दोनों ही पर हो सकेगा।

खारे पानी के शुद्धीकरण की प्रक्रिया दो लम्बी गोलाकार नलिकाओं में सम्पन्न होती है, जिन में से एक दूसरे के भीतर होती है। भीतरी नलिका में इस विधि की प्रमुख विशेषता निहित होती है। वह विशेषता है चक्रवत घूमने वाले फलक जो उसी प्रकार चालू होते हैं, जैसे हवा हटाने वाले मोटर के पंखे। इस नलिका में नीचे से खारा पानी भरा जाता है। इस पानी को ये फलक एक झिल्लीनुमा पटल के रूप में फैला देते हैं, जो भीतरी नलिका के भीतरी भाग पर एक इंच के एक-हजारवें अंश

के बराबर मोटी हो कर फैल जाता है। फलक समुद्री पानी के सभी बुलबुलों को पृथक कर देते हैं जिससे विशुद्ध किये गये पानी में विकार उत्पन्न करने वाले धातु-कणों के अवशिष्ट रह जाने की सम्भावना नहीं रह जाती।

इस प्रक्रिया की सफलता के फलस्वरूप, खारे जल को उबाल कर शुद्ध करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। पानी को उबाल कर लवणरहित बनाने की प्रक्रिया के अन्तर्गत लवणरहित पानी की शुद्धता को भी क्षति पहुँचती है। नवीन विधि के अन्तर्गत, भीतरी नलिका की भीतरी सतह पर लगी पतली फिल्म का वाष्पीकरण करने के लिए नलिका की बाहरी सतह पर वाष्प द्वारा उष्मा उत्पन्न की जाती है। इस प्रकार दोनों नलिकाओं के बीच वाले भाग में ही भाप बन्द पड़ी रहती है, जिससे बहुत ही कम उष्मा नष्ट होने पाती है। अनुमान लगाया गया है, इस विधि के अन्तर्गत वाष्पीकरण नलिका में उष्मा के हस्तान्तरित होने की गति इस समय खारे पानी को लवणरहित करने के लिए प्रयुक्त हो रही किसी भी अन्य प्रणाली की अपेक्षा कम से कम चार गुनी अधिक है।

जब खारे पानीकी पतली झिल्ली पर उष्मा का प्रयोग किया जाता है, तब नलिकाओं में भाप उठने लगती है। इस भाप को बाहर खींच कर परम्परागत रीतियों द्वारा शुद्ध जल में परिणत कर लिया जाता है। वाष्पीकपण के वाद जो तलछट अवशिष्ट रह जाती है, उसे निकाल कर फेंक दिया जाता है।

'थिन फिल्म डिस्टिलेशन' विधि को अमेरिका की जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी ने विकसित किया है। उसकी योजना इस विधि द्वारा प्रतिदिन १,००० गैलन से लेकर १० लाख गैलन या उससे भी अधिक पानी को शुद्ध करने की है। यह विधि बहुत सस्ती है। उसे छोटे पैमाने पर कार्यान्वित करने में भी इस कार्य के लिए प्रयुक्त किसी अन्य प्रणाली की अपेक्षा अधिक लागत नहीं पड़ेगी। किन्तु यदि उसे बड़े पैमाने पर प्रयुक्त किया जाये, तो लागत निश्चय ही कम पड़ेगी और उपलब्ध पेय जल की मात्रा भी अधिक होगी।

मनुष्य की भांति सोचने-समझने वाले गणक-यंत्र

कैम्ब्रिज, मैसाचूसेट्स, स्थित मैसाचूसेट्स इन्स्टिट्यूट ऑव् टेक्नोलोजी में हाल में दिये गये एक भाषण में, कार्नेगी इन्स्टिट्यूट ऑव टेक्नालोजी के प्रोफेसर **हर्बर्ट ए० साइमन** ने कहा कि अब गणक-यन्त्रों अथवा विद्युदाणविक मस्तिष्कों का प्रयोग इस प्रकार करना सम्भव हो गया है, जिससे वे मूलतः उसी प्रकार समस्याएँ हल कर सकें, जिस प्रकार बच्चे बोलना सीखते हैं और व्यवसायी कोई निर्णय करते हैं।

उन्होंने घोषणा की कि अब ऐसे गणक कार्यक्रम लिखे जा सकते हैं, जिनमें कार्य सम्पन्न करने के लिए ऐसी विभिन्न प्रक्रियाओं का प्रयोग होता है जिसके सम्बन्ध में मनुष्य को सोचना-समझना या सीखना पड़ता है।

उन्होंने कहा कि लगभग १ दर्जन से अधिक ऐसे गणक-कार्यक्रम लिखे जा चुके हैं और उनका परीक्षण भी हो चुका है, जिनके द्वारा समस्याएँ सुलझाने का कार्य उसी प्रकार सम्पन्न होता है, जिस प्रकार मनुष्य के मस्तिष्क द्वारा। इन गणक यन्त्रों के सोचने-समझने का ढंग सामान्य रूप में मनुष्य की चिन्तन मनन की प्रक्रिया से मिलता-जुलता है।

८,००० वाट शक्ति का बल्ब

अमेरिका के ड्यूरो-टेस्ट कार्पोरेशन ने ८,००० वाट की विद्युत शक्ति का एक बल्ब विकसित किया है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि बिजली की रोशनी का यह बल्ब संसार का सबसे अधिक शक्ति वाला बल्ब है।

इस बल्ब में जेनान भरी हुई है, जो एक प्रकार की भारी रंगहीन गैस है। निर्माताओं का कहना

है कि इसकी रोशनी ५० मील से अधिक दूरी तक जा सकती है।

मौसम विषयक सूचनाओं के वितरण में शीघ्रता

अमेरिका में मौसम सम्बन्धी सूचनाओं को वितरित करने के लिए एक नवीन प्रणाली चालू की गई है, जो प्रति मिनट ८५० शब्दों की गति से मौसम विषयक नवीनतम सूचनायें प्रसारित करती है। इस प्रणाली का संचालन फेडरल एवियेशन एजेन्सी कर रही है। इसके अन्तर्गत एजेन्सी की नवीन स्वतः संचालित आंकड़ा हस्तान्तरण विधि, (आटोमैटिक डाटा इण्टचेंज सिस्टम — एडिस) का प्रयोग हो रहा है। एडिस अमेरिका में स्थापित पहला बहुमुखी तीव्र गति वाला, टेलिटाइप राइटर संजाल है। इसका प्रयोग देश के सभी भागों में हवाई-मार्गों और विमानों को सहायता प्रदान करने के लिए होता है।

अधिकांश मनुष्य जितनी तेजी से बोल सकते हैं, उसकी अपेक्षा ८ गुनी अधिक गति से संचालित यह प्रणाली अधिक शीघ्रता के साथ लगभग १,००० मौसम-केन्द्रों से मौसम विषयक सूचनाएं एकत्र करती हैं और इन सूचनाओं को ऐसे २,५०० स्थानों के बीच तत्काल वितरित कर देती है, जहाँ विमानों की सुरक्षित उड़ान सम्बन्धी आयोजन के लिए इन सूचनाओं की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। यह प्रणाली साल भर, दिन में २४ घंटे चालू रहती है।

शक्तिशाली रेडियो-संकेत सम्प्रेषित करने वाला नक्षत्र

कैलिफोर्निया इन्स्टिट्यूट ओव् टेकनोलोजी की ओवेन वैली, कैलिफोर्निया स्थित रेडियो-वेधशाला के खगोल शास्त्रियों ने एक ऐसे नक्षत्र की खोज की और उसके स्थान का ठीक-ठीक निर्धारण किया है, जो रेडियो संकेत बाहर भेजता है। यह इस प्रकार का एक मात्र पहला नक्षत्र है, जिसके विषय में जानकारी प्राप्त हुई है। इसके पूर्व जिन रेडियो संकेतों का पता लगाया गया था, वे किसी एक नक्षत्र से निस्सृत होने के बजाय आकाश के क्षेत्र विशेष से प्रादुर्भूत थे।

खगोलशास्त्रियों ने इस सितारे का नाम ३-सी-४८ रखा है। विश्वास किया जाता है कि इस सितारे से निकल कर बाहर जाने वाले रेडियो संकेत सूर्य में निस्सृत रेडियो संकेतों से १,००,००,००० गुने अधिक शक्तिशाली हैं। इस सितारे को केवल बड़े दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा ही देखा जा सकता है। यह ट्राएंगुलम नामक नक्षत्रावली में स्थित है, जो एण्ड्रोमेडा नामक नक्षत्रावली की विशाल निहारिका के निकट आकाश में स्थित है।

राकेटों के लिए घूर्णित कांच की ईंधन-टंकी

अमेरिका में राकेट इंजिनों की ईंधन वाली टंकी का निर्माण करने के लिए प्रयोगात्मक आधार पर घूर्णित कांच के धागों और लच्छों का प्रयोग हो रहा है। इन धागों का व्यास मनुष्य के बाल के दसवें अंश के बराबर हैं। इनका प्रयोग करने का मुख्य कारण यह है कि यह भार में हल्के हैं, और हलके निर्माण की लागत बहुत ही कम है।

इस प्रकार के धागे का निर्माण करने के लिए कांच के १८० रेशों को एक साथ काट कर बट दिया जाता है। उसके बाद जो धागा प्राप्त होता उसे एक ढांचे के चारों ओर लपेट कर प्लास्टिक के राल द्वारा जोड़ दिया जाता है। राल के सूख जाने पर ढांचे को पृथक कर लिया जाता है।

इस प्रकार के धागों से टंकियों का निर्माण बोइंग कम्पनी का एरो-स्पेस डिवीजन कर रहा है। इनकी लम्बाई २१ फुट है और इनमें ३,१०० गैलन ईंधन समा सकता है।

[पृष्ठ ११६ का शेषांश]

रहे। लोक सभा में आप सरकार की बुराइयों की निर्भीकता पूर्वक कटु अलोचना किया करते। आपने विज्ञान तथा वैज्ञानिक संस्थाओं की उन्नति में निरंतर परिश्रम किया। १९५६ की १६ फरवरी को आप नई दिल्ली के "प्लानिंग कमीशन" के दफ्तर की ओर जा रहे थे तो आप के हृदय की गति रुक गई। डा० साहा की मृत्यु से सारे विश्व को एक गहरा धक्का लगा है और वैज्ञानिक जगत की तो अपार क्षति हुई है जिसकी पूर्ति सम्भव नहीं। भारत ने अपने इस महान वैज्ञानिक के साथ एक अमूल्य हीरा खो दिया।

१. विज्ञान परिषद् का वार्षिक अधिवेशन

विज्ञान परिषद् का ४७ वाँ अधिवेशन गत २२ जुलाई को विज्ञान परिषद् भवन में सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन के अवसर पर हमारे प्रदेश के मुख्य मन्त्री श्री चन्द्रभानु गुप्त मुख्य अतिथि थे। यह पहला अवसर था जब श्री भ० ने० थधाणी को परिषद् भवन में उनकी कृति "निर्माण विज्ञान के सिद्धान्त" पर प्रदत्त २००० रुपये का पुरस्कार प्रदान किया गया। परिषद् के इस अधिवेशन में प्रयाग विश्वविद्यालय के अध्यापक, परिषद् के सभ्य एवं आजीवन स स्य तथा नगर के प्रमुख व्यक्ति आमन्त्रित थे। इस अवसर पर रसायन विभाग के प्राध्यापक डा० यमुना दत्त तिवारी ने एक सारगर्भित भाषण दिया, जिसमें भारत की प्राचीन वैज्ञानिक परम्परा का स्मरण दिलाते हुए उन्होंने यह खेद प्रकट किया कि आजकल हमारे नवयुवकों में विदेश जाकर कार्य सीखने की घातक प्रवृत्ति देखी जाती है। उन्होंने चीन तथा जापान के विज्ञान का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि हमारे नवयुवक वैज्ञानिक भी इसी प्रकार अपने देश में रहकर उत्तम कार्य करें। इसके पूर्व ही मन्त्री जी ने वार्षिक रिपोर्ट पढ़ी जिसमें सालभर के अन्तर्गत सम्पन्न कार्यों का विधिवत उल्लेख था।

मुख्यमन्त्री ने अन्त में भाषण देते हुए हिन्दी के सम्बन्ध में सरकारी नीति का उल्लेख किया और डा० तिवारी के भाषण में निहित तथ्यों की ओर श्रोताओं एवं आम जनता का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने परिषद् के द्वारा हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक क्षेत्र में किये गये कार्य की सराहना की और भविष्य में कार्य करते रहने के लिए आवश्यक धन की पूर्ति के लिए सरकारी सहायता का आश्वासन दिया। उन्होंने परिषद् के भवन को पूरा करने के लिए २० हजार रुपये का अनुदान भी घोषित किया।

यह परिषद् के लिए सौभाग्य की बात है कि सरकार उसकी गति विधियों के प्रति रुचि दिखा रही है। क्या ही अच्छा हो यदि प्रदेशीय सरकार परिषद् के आवर्तक अनुदान में प्रचुर वृद्धि करके उसकी उन्नति में सहायक बन जाय।

२. सोवियत संघ द्वारा द्वितीय अन्तरिक्ष विजय

६ अगस्त को मास्को समय के अनुसार ९ बजे सुबह सोवियत संघ ने मानव सहित एक नया अन्तरिक्ष यान वोस्तोक २ को पृथ्वी की परिक्रमा करने के लिए छोड़ा। इस यान में मेजर घर्मन स्तेपानोविच तितोव अन्तरिक्ष यात्री थे। २५ घंटा १८ मिनट में इन्होंने पृथ्वी के १७ चक्कर लगाये और पुनः पृथ्वी पर सकुशल लौट आये। मनुष्य की चन्द्रलोक की यात्रा की तैयारी में यह साहसिक प्रयास है। इसके द्वारा देर तक कक्षा में उड़ान भरने तथा पृथ्वी के सतह पर उतरने के प्रभाव का मानव शरीर पर अध्ययन सम्भव हो सकेगा। इससे भी अधिक प्रशंसा की बात है कि नवयुवक का ऐसी घातक यात्रा के लिए सहर्ष तैयार होना। ऐसे ही साहसिक प्रयासों के कारण रूस में वैज्ञानिक उन्नति शीर्ष पर है। सौभाग्यवश रूसी वैज्ञानिकों की अन्तरिक्ष यात्रा सम्बन्धी समस्त पूर्व-योजनायें सफल होती जा रही हैं जिससे यह विश्वास होने लगा है कि चन्द्रलोक में उतरने वाला प्रथम प्राणी रूस का ही होगा।

तितोव ने अपनी इस यात्रा में तीन बार भोजन किया और सदैव की भांति डटकर सोया। समय समय पर उसने अपने कार्य-कलापों की सूचना पृथ्वी पर स्थित अपने साथियों को भेजी। उसने ताप मान तथा आर्द्रता के आंकड़े भी प्रेषित किये उन सबसे यही प्रतीत होता है कि रूसी वैज्ञानिकों ने अन्तरीक्ष यात्रा की उन समस्त बाधाओं पर विजय सी प्राप्त कर ली है जिनकी कल्पना पहले से की जा चुकी है।

मानव द्वारा प्रकृति पर विजय प्राप्त करने में यह अभूतपूर्व कदम है।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानं जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तै० उ० ।३।५।

भाग ९४ | आश्विन २०१८ विक्र०, १८८३ शक अक्टूबर १९६१ ई० | संख्या १

सूक्ष्म तत्त्व एवं पौधे

रमेश चन्द्र तिवारी

पौधों के सामान्य विकास के लिए कुछ सूक्ष्म तत्व अत्यावश्यक हैं। ये सूक्ष्म तत्व न तो व्यापारिक उर्वरकों में उपलब्ध होते हैं और न तो चूना-युक्त पदार्थों में ही। ये पौधों के द्वारा सूक्ष्म मात्रा में ग्रहीत होते हैं। मुख्यतया निम्न पाँच तत्वों की कमी पौधों को नष्ट कर देती है :—(क) बोरन (ख) ताँबा, (ग) मैंगनीज (घ) मॉलिब्डनम (ङ) जस्ता (यशद)।

यद्यपि एल्यूमिनियम, सिलिका, सोडियम, इत्यादि भी पौधों की राख में पाये जाते हैं परन्तु पौधों की सामान्य वृद्धि पर इनकी कमी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

सूक्ष्म तत्व का यह अर्थ नहीं है कि ये पौधे के लिए बहुत आवश्यक नहीं हैं अपितु इसका अर्थ यह है कि पौधे इन तत्वों को बहुत सूक्ष्म मात्रा में ही, लगातार प्रयोग करते रहते हैं। भोज्य पदार्थों में इनकी कमी के फलस्वरूप पौधे तमाम न्यूनता रोगों के शिकार हो जाते हैं। सूक्ष्म तत्वों की उपलब्धता पर पी—एच, नमी एवं कार्बनिक पदार्थ की मात्रा इत्यादि का प्रभाव पड़ता है। चूना पदार्थों के प्रयोग के फलस्वरूप, सूक्ष्म तत्वों की पूर्ति में वृद्धि हो जाती है तथा नमी की औसत मात्रा सूक्ष्म तत्वों को प्राप्य बनाये रखने में सहायक होती है।

बोरन (B)

सूक्ष्म तत्व के रूप में बोरन का अध्ययन सर्वप्रथम १९०३ में आरम्भ हुआ और १९२६-२७ में **सोमर, लीपर, बरकेली,** एवं **वारिंगटन** ने इसी विषय पर एक लेख प्रकाशित किया।

पौधों में बोरन की आवश्यकता :—चुकन्दर, फूलगोभी, शलजम इत्यादि बोरन का अधिक उपयोग करते हैं जबकि गेहूँ, जौ तथा धान्य की अन्य फसलें उस मात्रा के १/१० भाग से ही अच्छी पैदावार देती हैं। सामान्य वृद्धि के लिए बोरन की आवश्यक मात्रा तथा बोरन की वह मात्रा जिससे विषालुता उत्पन्न हो जाती है, दोनों मात्राओं में बहुत कम अन्तर होता है। शुष्क भार के अनुसार अल्फा अल्फा में १० भाग/१० लाख बोरन होता

है, जबकि जौ और राई के पौधों में केवल ५ भाग/१० लाख बोरन पाया जाता है।

पौधों में बोरन की कमी के लक्षण :— इसकी कमी का प्रभाव सर्वप्रथम नवविकसित तन्तुओं पर पड़ता है। इसकी कमी के फलस्वरूप पौधों की जड़ों का विकास रुक जाता है। भूमि में पूर्ण रूप से बोरन की अनुपस्थिति के कारण पौधों की मृत्यु हो जाती है। इसकी न्यूनता के कारण पौधों में हर्ट राट, अल्फा-अल्फा का एलो टाप, आदि बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

मिट्टियों में बोरन की मात्रा :— आग्नेय चट्टानों में १० भाग/१० लाख बोरन, समुद्री जल में लगभग ४·५ भाग/१० लाख, मिट्टियों में न्यूनतम मात्रा २ भाग/१० लाख, औसत मात्रा ३०–४० भाग/१० लाख तथा अधिकतम मात्रा १०० भाग/१० लाख है।

ह्वीटस्टोन, राबिनसन और **बेयर** ने नम जलवायु तथा रेगिस्तानी मिट्टियों के ११८ नमूनों के अध्ययन के अनुसार यह घोषित किया कि इन मिट्टियों में बोरन की न्यूनतम मात्रा ४ भाग/१० लाख तथा अधिकतम मात्रा ११३ भाग/१० लाख है। इन विशेषज्ञों के अनुसार मिट्टियों में बोरन की उपस्थिति दो बातों पर निर्भर है :—

(१) पैतृक पदार्थ में बोरन की मात्रा

(२) चट्टानों के विच्छेदन की विधियाँ।

जलोढ़ मिट्टियों, चूने के पत्थर, ग्लेशियर द्वारा लाई गई मिट्टियों में बोरन की मात्रा अधिक होती है जबकि आग्नेय चट्टानों से प्राप्त मिट्टियों में इसकी कम मात्रा होती है। भस्मी-मिट्टी (पाड़जाल), मक, घास के मैदान (प्रेरी) एवं आरुणि (चेस्टनट) मिट्टियों में बोरन पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

अम्ल में घुलनशील बोरन की मात्रा में वृद्धि, पी–एच वृद्धि के साथ-साथ होती है। मिट्टी में उपस्थित समस्त बोरन पौधों के लिए पूर्णतया उपलब्ध नहीं होता। पौधों के लिए उपलब्ध बोरन की मात्रा का निर्धारण [illegible] किया जाता है। **बर्गर और ट्रूग** [illegible] प्रयोग में लाई जाती है। कुछ अन्वेषकों ने गरम जल में विलेय बोरन की ०·२५ भाग/१० लाख मात्रा को [illegible] सीमा बताया है। भूमि में इससे कम मात्रा पौधों को नष्ट कर देती है।

बोरन की उपलब्धि

(क) चूना की मात्रा :— भूमि के पी-एच को ६ तक बढ़ाने के लिए जब चूने का प्रयोग किया जाता है तो बोरन की उपलब्धता कम हो जाती है तथा पौधों में बोरन की कमी के लक्षण उपस्थित होने लगते हैं। इसके मुख्य दो कारण हैं :—

(१) चूने के प्रयोग से विलेय बोरन, अविलेय यौगिकों के रूप में स्थिर हो जाता है।

(२) चूने को भूमि में डालने पर पौधों तथा जीवाणुओं के विकास में वृद्धि हो जाती है जिससे भूमि में उपस्थित उपलब्ध बोरन की सीमित मात्रा शीघ्र ही समाप्त हो जाती है।

चूना देने से जल में विलेय बोरन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(ख) कार्बनिक पदार्थों की मात्रा :— कार्बनिक पदार्थ उपलब्ध बोरन को अविलेय रूप में परिवर्तित कर देते हैं। यह क्रिया तभी होती है जब भूमि के पी–एच को बढ़ाने के लिए चूने का प्रयोग किया जाता है। यहाँ कार्बनिक पदार्थ बोरन के स्थिरीकरण के लिए चूने के प्रयोग से सक्रिय हो जाता है। कार्बनिक पदार्थों की मात्रा में वृद्धि के फलस्वरूप, पौधों में [illegible] उत्पन्न करने के लिए बोरन की अधिकाधिक मात्रा की आवश्यकता होती है, इसका मुख्य कारण बोरन का कार्बनिक पदार्थों द्वारा स्थिरीकरण है। यह मुख्यतया पी–एच ८ पर होता है। इसके अतिरिक्त, नमी, भूमिताप आदि भी बोरन की उपलब्धता को प्रभावित करते हैं।

मिट्टियों में बोरन का प्रयोग :—सुहागा (बोरैक्स) एवं बोरिक अम्ल के विलयन को खड़ी फसल पर छिड़कने से पौधों में बोरन-न्यूनता के कारण उत्पन्न बीमारियों का निवारण किया जा सकता है। मिट्टियों में डाले जाने के लिए आवश्यक बोरन की मात्रा भूमि संरचना, भूमि में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ की मात्रा तथा भूमि के पी-एच पर निर्भर करती है।

बोरन-न्यून मिट्टियों में विभिन्न फसलों के लिये आवश्यक बोरैक्स की मात्रा

फसल का नाम	बोरन की मात्रा पौ० में/एकड़
मक्का	१०
बन्द गोभी	१०
फूल गोभी	१०-२५
आलू	१०-२५
तम्बाकू	०.५—१०·०
टमाटर	१०-२०

ताँबा (Cu)

सन् १९१२ के पूर्व पौधों की वृद्धि के लिये आवश्यक ताँबे पर कोई अध्ययन नहीं किया गया था परन्तु १९१२ में **ल्यूटमैन, स्टीवर्ट, फरेन्च** तथा **सीरीन** ने यह प्रदर्शित किया कि बोर्डो-मिश्रण को, घोल रूप में छिड़कने पर आलू की पैदावार में वृद्धि का श्रेय दिया जा सकता है। १९१७ में फलायड ने ताँबा की कमी के द्वारा जन्य "डाई-बैक" बीमारी के निवारणार्थ, ताम्र सल्फेट एवं बोर्डो मिश्रण का प्रयोग किया।

१९२७ में फ्लोरिडा और न्यूयार्क में **एलीसन** तथा **हन्टर** ने अनुर्वर भूमियों में ताम्र सल्फेट का प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि इसके डालने से प्याज तथा अन्य खाद्य फसलों की पैदावार में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। तत्पश्चात् १९३१ में **सोमर** ने कुछ आंकड़े प्रकाशित किये जिनसे यह स्पष्ट हो गया कि पौधों की सामान्य वृद्धि के लिये, ताँबा एक आवश्यक तत्व है।

पौधों को ताँबा की आवश्यकता :—बीसन के द्वारा किये गये पौधों के वैश्लेषिक अध्ययन के अनुसार पौधों में २५ भाग/१० लाख तांबा पाया गया है। **सोमर** द्वारा किये गये पौधों के शारीरिक-अध्ययन के अनुसार ताँबा एंजाइम (प्रकिण्व) का एक मुख्य अंग है। **नीश** के अनुसार पौधों की पत्तियों ७४.६% तक ताँबा पाया जाता है। ताँबा का मुख्य कार्य पर्णहरित का निर्णाण है।

पौधों में ताँबे की कमी के लक्षण :—पौधों में क्लोरोसिस (हरीतिमा का अभाव) उपस्थित हो जाता है, पत्तियों पर गाढ़ा हरा तथा अन्य रंग दिखाई पड़ने लगता है, नव-विकसित शाखायें सूख जाती हैं तथा उनके ठीक नीचे पत्तियों की एक झाड़ीदार वृद्धि होने लगती है तथा चकोतरे के पौधे में गोंद की थैली (गम पाकेट) का विकाश होने लगता है।

भूमि में ताँबा की मात्रा तथा उपलब्धि :— मिट्टियों में १ भाग/१० लाख से ५० भाग/१० लाख ताँबा पाया जाता है। सम्पूर्ण ताँबे का कुछ अंश ही पौधों द्वारा प्रयुक्त होता है। भूमि में उपलब्ध ताँबा की मात्रा पर प्रभाव डालने वाले कारकों में मुख्य भूमि का पी-एच है। अम्लीय मिट्टियों में यह धावित हो जाता है तथा क्षारीय भूमियों में यह अनुपलब्ध यौगिकों के रूप में स्थिर हो जाता है। इसके अतिरिक्त आर्द्रता, कार्बनिक पदार्थों की मात्रा, भूमि के रंग आदि का प्रभाव भी सम्भाव्य है।

पौधों एवं भूमि में ताँबे की न्यूनता का निवारण :— ताँबा की कमी का निवारण दो तरह से किया जा सकता है। सामान्य भूमि में ३० पौ० प्रति एकड़ तथा बलुई भूमि में ८-१० पौं० प्रति एकड़ ताम्र सल्फेट डालकर तथा बोर्डो मिश्रण को छिड़ककर।

मैंगनीज (Mn)

मैकहार्ग और उनके सहयोगियों के अन्वेषण के अनुसार १९१२ में पेड़ों के लिये मैंगनीज एक आवश्यक खाद्य तत्व घोषित किया गया तथा कई अन्वेषकों ने इस कथन का समर्थन किया।

सम्भवतया **स्जोलेमा** तथा **हडिंग** हालैंड की तमाम अनुत्पादक भूमियों को, मैंगनीज लवणों के प्रयोग से उत्पादनशील बनाने में प्रथम स्थान प्राप्त करते हैं। इन्होंने यह देखा कि जई को "ग्रे स्पेक" बीमारी से छुटकारा दिलाने के लिये भूमि में मैंगनीज लवणों का प्रयोग करना चाहिये, इसके देने से पौधों की शारीरिक क्रियायें सुचारु रूप से चलने लगती हैं। संसार के विभिन्न राष्ट्रों से प्राप्त सूचनाओं के अनुसार क्षारीय कार्बनिक भूमियों में मैंगनीज लवणों के प्रयोग से लाभदायक फल मिले हैं। सारांश यह है कि इन भूमियों की अनुत्पादकता का मुख्य कारण मैंगनीज की न्यूनता ही है। यद्यपि मैंगनीज की कमी मुख्तया कार्बनिक भूमियों में होती है परन्तु सामान्य अम्लीय भूमियों में चूने के प्रयोग के कारण इसकी उपलब्धता न्यूनतम अंश तक पहुँच जाती है।

पौधों को मैंगनीज की आवश्यकता :—पौधों में मैंगनीज न्यून मात्रा में पाया जाता है। विभिन्न पौधों तथा एक पौधे की विभिन्न प्रजातियों में मैंगनीज की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। मैकहार्ग के अनुसार द्वीदालीय पौधों में न्यूनतम एवं घासों में अधिकतम मैंगनीज पाया जाता है। बहुत से पौधों को १०० भाग/१० लाख मैंगनीज की आवश्यकता होती है। पौधों में मैंगनीज निम्न कार्य करता है :

लोहे के साथ मैंगनीज पर्णहरित के संश्लेषण में काम आता है। पौधों की आक्सीकरण-अपचयन क्रिया न्यूनाधिक रूप से मैंगनीज पर ही आश्रित है। लोहे की मात्रा कम होने के साथ-साथ मैंगनीज की विषालुता बढ़ने लगती है तथा लोहे की मात्रा में वृद्धि के साथ मैंगनीज की मात्रा घटती जाती है। मैंगनीज का एस्कार्बिक अम्ल के संश्लेषण पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है (रुड, शोमर और आमेन)।

पौधों में मैंगनीज की कमी के लक्षण :— (क) पत्तियों की शिराओं के मध्य भाग में क्लोरोटिक अवस्था का विकास तथा शिराओं का हरापन और बीमारी के लक्षणों के साथ-साथ पत्तियों का रंग हल्का हरा से पीला तक बदलता रहता है।

(ख) पौधे सूख जाते हैं।

(ग) दाना तथा भूसा की पैदावार में ह्रास हो जाता है।

भूमि में मैंगनीज की मात्रा तथा उपलब्धि :— साधारण मिट्टियों में मैंगनीज ०.०१ से ०.२ प्रतिशत तक पाया जाता है। भूमि में उपस्थित मैंगनीज की कुल मात्रा पौधों के लिये उपलब्ध नहीं होती। मैंगनीज उपलब्धता को मुख्य रूप से दो कारक प्रभावित करते हैं :—

(क) भूमि पी-एच :—पी-एच ६.५ के नीचे वाली मिट्टियों में मैंगनीज की कमी के लक्षण ज्ञात होने लगते हैं। पौधों द्वारा मैंगनीज सर्वदा अपचयित दशा में गृहीत होता है क्योंकि यह आक्सीकरण अपचयन प्रतिक्रिया का एक मुख्य अंग है। चूना देने से मैंगनीज का आक्सीकरण होने लगता है जिसके फलस्वरूप मैंगनस-मैंगनीज अनुपस्थित हो जाता है।

(ख) भूमि की अवात अवस्था :—भूमि में अवात अवस्था पैदा कर देने से मैंगनीज न्यून मिट्टियों में पौधों की उचित वृद्धि देखी गई है। भूमि में अवात अवस्था हल्की तथा लगातार वर्षा और भारी वर्षा से या बाढ़ से उपस्थित हो सकती है।

मैंगनीज न्यूनता का निवारण :—निम्न उपायों से मैंगनीज न्यूनता ठीक की जा सकती है :—

(क) भूमि में मैंगनीज-सल्फेट डालकर :— खनिज मिट्टियों में ५०-१०० पौं० प्रति एकड़ तथा क्षारीय भूमि में ४०० पौं० प्रति एकड़ मैंगनस सल्फेट

डालने से लाभप्रद फल प्राप्त हुआ है। मैंगनस सल्फेट की दुगुनी मात्रा में अमोनियम सल्फेट, अथवा बराबर मात्रा में गंधक के साथ मिश्रण भूमि में डालने के फलस्वरूप अत्यधिक पैदावार प्राप्त हुई है। जहाँ तक व्यापारिक विधि सम्बन्धित है मैंगनस सल्फेट के एक तनु विलयन को पौधों पर छिड़कने से दिन दूना रात चौगुना लाभ होता है।

(ख) भूमि की पानी से भराई :—ऐसा करने से भूमि में अवात-अवस्था उत्पन्न हो जाती है। जिसके कारण आक्सीकृत मैंगनीज अपचयित हो जाता है जो पौधों के द्वारा सुगमता से अवशोषित कर लिया जाता है। क्रियात्मक रूप से यह विधि वहीं सम्भव है जहाँ सिंचाई का उचित प्रबंध है।

मॉलिब्डनम (Mo)

टरम्यूलिन ने सर्वप्रथम पौधों तथा मिट्टियों में उपस्थित मालिब्डनम का अध्ययन किया। उन्होंने घोषित किया कि पौधों में ०·०१—१० भाग/१० लाख तक मॉलिब्डनम पाया जाता है। **आर्नन** तथा **स्टाउट** ने एक संवर्द्ध विलयन तैयार किया जिसमें मॉलिब्डनम के अतिरिक्त अन्य ११ आवश्यक भोज्य तत्व पर्याप्त मात्रा में वर्तमान थे। उसी विलयन में टमाटर उगाया गया। अंकुरित पौधों में मॉलिब्डनम के न्यूनता रोग प्रस्तुत होने लगे। आर्नन ने ही जौ के पौधों को बहुत थोड़ी मात्रा में मॉलिब्डनम दिया जिस के फलतः हृष्ट-पुष्ट तथा रोग-मुक्त पौधे प्राप्त हुये। अतः उपरोक्त प्रयोगों ने यह प्रमाणित कर दिया कि अन्य सूक्ष्म तत्वों की तरह पौधों के विकास के लिये मॉलिब्डनम भी अत्यन्त आवश्यक है।

पौधों में मॉलिब्डनम न्यूनता के लक्षण :—

(क) निचली पत्तियों में क्लोरोसिस (हरीतिमा-अभाव) उत्पन्न हो जाता है।

(ख) न्यूनता-रोग की पूर्वतम अवस्था में पत्तियों के किनारे मुड़ जाते हैं तथा सीमान्त- चेता रूजा उपस्थित हो जाती है।

(ग) कलियाँ बिना फल दिये ही गिर जाती हैं।

भूमि में मॉलिब्डनम की मात्रा :—उत्पादनशील मिट्टियों में ०·१—०·३ भाग/१० लाख तक मॉलिब्डनम देखा गया है। बलुई मिट्टियों में न्यूनतम मात्रा ०·००५ भाग/१० लाख है। पी-एच, नमी आदि भी मॉलिब्डनम की उपस्थिति तथा उपलब्धता पर प्रभाव डालते हैं।

मॉलिब्डनम के कुछ विशेष कार्य :—

(क) यह द्विदालों के नाइट्रोजन स्थिरीकरण में वृद्धि कर देता है।

(ख) ऐस्परजिलस फँफूदी, जो भूमि की तमाम रासायनिक क्रियाओं में भाग लेती है, बिना मॉलिब्डनम के वृद्धि नहीं करती है।

मॉलिब्डनम कमी का निवारण :—सोडियम मालिब्डेट अथवा अमोनियम मालिब्डेट को ०·५ पौ० प्रति एकड़ की दर से भूमि में डालने से न्यूनता रोग दूर होने लगते हैं। इसकी अधिक मात्रा देने से पौधों को पशुओं द्वारा उपयोग में लाये जाने के फलस्वरूप इनकी विषालुता के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। साथ ही साथ इसकी अधिक मात्रा से टमाटर एवं आलू के पौधे नष्ट हो जाते हैं।

जस्ता (Zn)

पौधों की वृद्धि पर जस्ते के लाभप्रद प्रभाव का अध्ययन सर्वप्रथम **रॉलिन** ने किया था। १८७० में इन्होंने यह बताया कि फंफूँदी के विकाश के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है। **जविलियर** ने जस्ता का प्रयोग उर्वरक के रूप में किया। १९२६ में **लीपर** तथा **सोमर** ने इसका आवश्यक तत्वों की श्रेणी में वर्गीकरण किया।

पौधों को जस्ते की आवश्यकता :—चकोतरे की पत्तियों में २५-५० भाग/१० लाख जस्ता पाया-जाता है। पौधों में जस्ते की औसत मात्रा ५० भाग/१० लाख पाई जाती है।

जस्ते के कुछ विशेष कार्य :—

(क) पौधों में आक्सिजन की संश्लेषण मात्रा जस्ते की मात्रा पर निर्भर है।

(ख) पौधों के तंतुओं में उपस्थित कैटालेज तथा परआक्सीडेज, एंजाइमों की उत्प्रेरण क्रिया जस्ता के द्वारा प्रेरित कर दी जाती है।

(ग) इसकी न्यूनता के फलस्वरूप उत्पन्न प्रोटीन तथा स्टार्च के संश्लेषण में कमी जस्ता देने से पूर्ण रूपेण नियमित हो जाती है।

(घ) पर्णहरित के निर्माण में जस्ता का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पौधों में जस्ता की कमी के लक्षण :—पत्तियों पर चेता-रूजा (न्यूरोसिस), नवविकसित पत्तियों का सूखना, रूप विकृति तथा पत्तियों का गिरना, आदि।

भूमि जस्ता की मात्रा तथा उपलब्धि :—जस्ता लगभग सभी मिट्टियों में पाया जाता है। इसकी मात्रा २/५० भाग/१० लाख तक पाई गई है। भूमि में जस्ता तीन रूपों में पाया जाता है :

(१) जलविलेय (२) विनिमेय (३) अविलेय

सूक्ष्म कणों वाली भूमि में जस्ता अधिक मात्रा में पाया जाता है जबकि बड़े कणों वाली भूमि में इसकी कम मात्रा मिलती है। पी-एच तथा कार्बनिक पदार्थों आदि जस्ता की उपलब्धि पर प्रभाव डालते हैं। थ्रेन के अनुसार पी-एच ६.० के ऊपर वाली भूमियों में [illegible] पर न्यूनता रोग होने लगता है। जस्ते की विलेयता पी-एच ७.० के ऊपर कम होने लगती है।

पौधों में जस्ता की कमी का निवारण :—भूमि में २०—३० पौं० प्रति एकड़ जस्ता सल्फेट डालने से भूमि को जस्ते की न्यूनता से छुटकारा दिलाया जा सकता है। खादों-मिश्रण के रूप में भी जस्ता दिया जाता है।

अन्य आवश्यक तत्वों के होते हुये भी भूमि में मैंगनीज, जस्ता, बोरन, मॉलिब्डनम तथा ताँबा की उपस्थिति नितान्त आवश्यक है। भूमि में उपरोक्त पाँच तत्वों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध होने से, स्वस्थ तथा सुरक्षित बीज, कृषि उत्पादन की अच्छी कीमत तथा एक सफल कृषि कर्म का आनन्द लिया जा सकता है। अतः सूक्ष्म तत्व अप्रत्यक्ष रूप से मानव तथा अन्य जीव जन्तुओं से घनिष्ठ संबंध रखते हैं।

अन्तरिक्ष उड़ान

प्रोफेसर ए० सी० बनर्जी

प्राचीन काल से ही प्रत्येक देश में दूरस्त ग्रहों की यात्रा एक स्वप्न रहा है। मानव-इतिहास के विभिन्न कालों में मनुष्य द्वारा आकाश में उड़ानें भरने, अन्य ग्रहों में भ्रमण करने तथा अन्य ग्रहों के निवासियों द्वारा हमारी पृथ्वी की यात्रा की कथाएँ प्राप्य हैं। हिन्दू पुराणों में विभिन्न ग्रहों के मध्य उड़ानें भरने की अनेकों कथाएँ वर्णित हैं। नारद मुनि एक लोक से दूसरे लोक की यात्रा किया करते थे। पौराणिक पक्षी "गरुड़" भगवान नारायण को विभिन्न लोकों में ले जाता था। रामायण में सम्राट रावण का "पुष्पक" रथ आकाश को चीरता हुआ उड़ता था। डेडेलियस (Daedalius) एवं इकेरस (Icarus) के बारे में एक ग्रीक पुराण कथा है। उन्होंने क्रीट के बन्दी ग्रह से निकल भागने के लिए पक्षियों के परों को मोम से चिपका कर अपने लिए डैने बनाए और सागर के ऊपर उड़े। अपनी उड़ान में इकेरस

सूर्य के अति-निकट जा पहुँचा जिसके कारण मोम पिघल गया। वह सागर में गिरा और डूब गया। प्रसिद्ध ग्रीक सम्राट एवं विजेता सिकन्दर महान के सम्बन्ध में भी एक मनोरंजक लोककथा प्रचलित है। उसने चीलों द्वारा चालित रथ से आकाश में यात्रा करनी चाही थी परन्तु उसे सफलता प्राप्त न हुई। एक चीनी लोककथा के अनुसार चीन देश के निवासी प्रारम्भ में चन्द्रलोक के वासी थे जो अब पृथ्वी पर आकर बस गए हैं।

समय के साथ-साथ जैसे-जैसे मनुष्य के ज्ञान में धीरे-धीरे विकास हुआ त्यों-त्यों लोककथाओं का स्थान वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित परिकल्पनाओं ने ले लिया। अंग्रेज वैज्ञानिक **जॉन विल्किन्स** ने मशीनों द्वारा आकाश की यात्रा का वर्णन किया है। फ्रान्सीसी लेखक **सिरानोद बर्जरक** (Cyrano de Bergerac) ने अन्तरिक्ष की यात्रा के हेतु राकेटों के प्रयोग की सम्भावना की ओर निर्देश किया है। उसने एक सरल प्रकार के राकेट-यान के विचार को जन्म दिया।

जूल्स वर्न ने १९वीं शती में सर्वप्रथम चन्द्रलोक की अंतरिक्ष उड़ानों पर एक वैज्ञानिक उपन्यास की रचना की। आधुनिक शताब्दी के प्रारम्भ में अंग्रेज उपन्यासकार **एच० जी० वैल्स** ने वैज्ञानिक गल्प पर आधारित अनेक अत्यन्त मनोरम पुस्तकें लिखीं, जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध "वार बिटवीन द टू वर्ल्ड्ज" है। इस में शुक्र लोक के निवासियों द्वारा पृथ्वी पर चढ़ाई करने का एवं अन्ततः जीवाणुओं द्वारा उनके नाश का वर्णन है। रूस में **ए० बी० बोगदानोव, ए० टाल्सटाय** एवं **ए० बैलयैव** ने अन्य लोकों के निवासियों के सम्बन्ध में प्रसिद्ध उपन्यासों की रचनायें कीं। **के० ई० सिओलकोव्सकी** (K. E. Tsiolkovsky) प्रभृति वैज्ञानिकों ने अन्तरिक्ष उड़ान से संबन्धित कहानियों की रचना की।

हमारे युग में अन्तरिक्ष उड़ान सम्बन्धी विज्ञान (ऐस्ट्रोनौटिक्स) या तारानाविकी की तीव्र प्रगति हुई है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कोपरनीकन साध्य एवं कैपलर व न्यूटन के नियम राकेटों एवं अन्तरिक्ष यानों के सम्बन्ध में प्राथमिक महत्व रखते हैं, वे उनका मार्गदर्शन करते हैं।

राकेट का इतिहास :—प्राचीन काल में चीन देश के निवासी त्योहारों के अवसर पर शक्ति द्वारा चालित राकेट छोड़ा करते थे। उन्होंने सन १२३२ ईसवी में कैफोंग के घेरे के अवसर पर राकेटों का प्रयोग आक्रामक अस्त्रों के रूप में किया था। भारत में ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक काल में जब अंग्रेजों ने मैसूर पर आक्रमण किया था तब टीपू सुलतान ने उनके विरुद्ध राकेटों का प्रयोग किया था। सोलहवीं शताब्दी के अन्त में पृथक विभागों से संयुक्त राकेटों के चित्र बनाए गए और उनका वर्णन भी किया गया। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में स्थिरता प्रदान करने वाले परों से युक्त राकेटों के चित्र बनाए गए।

१८८१ ईसवी में **एन० आई० किबालचिच** (N. I. Kibalchich) ने ईंधन द्वारा चालित राकेटों का वर्णन किया। महान रूसी गणितज्ञ **के० ई० त्सिओलकोव्सकी** (१८५७-१९३५) को आधुनिक एस्ट्रोनौटिक्स का जन्मदाता कहा जा सकता है। उन्होंने अन्तर-ग्रीहीत अन्तरिक्ष में उड़ान भरने वाले राकेटों के सिद्धान्त को बहु विकसित किया। वे द्रव ईंधन द्वारा चालित राकेटों का निर्माण करने वाले सर्वप्रथम व्यक्ति थे। वर्त्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक काल में फ्रान्स के **रौबर्ट ऐनाल्ट पेल्तरी** (Robert Esnault Pelteric), जर्मनी के **हर्मैन ओबर्थ** एवं **ई० एस० सैंगर** तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के **रौबर्ट एच० गौडार्ड ने** ऐस्ट्रोनौटिक्स -विज्ञान को अत्यधिक विकसित किया। १९२८ ईसवी में गौडार्ड ने द्रव ईंधन द्वारा चालित राकेट छोड़ा। बहु-मंचीय राकेट अधिक अच्छे परिणाम देते हैं और वे अधिक ऊँचाई तक जाते हैं। फ्रान्स के **ए० अनानोफ**, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के **ए० हैले,** स्विटजरलैंड के **वाइ० स्टैमर्स**, इंगलैंड के **ई०**

बर्गेस एवं **ए० क्लार्क** तथा जर्मनी के **एच० गार्टमैन** आदि ने ऐस्ट्रोनाटिक्स विज्ञान की अत्यधिक प्रसिद्ध बनाया।

४ अक्टूबर १९५७ ईसवी को रूस में मानव द्वारा निर्मित सर्वप्रथम उपग्रह, "स्पुत्निक," छोड़ा गया। उसके साथ ही विज्ञान एवं इंजीनियरी की प्रगति के इतिहास में एक नवीन युग का जन्म हुआ। यह है अर्न्तग्रहीय उडानों का युग जिसकी भविष्यवाणी त्सिओलकोव्सकी ने वर्त्तमान शताब्दी के प्रारम्भ में की थी। स्पुत्निक द्वितीय" ३ नवम्बर १९५७ को छोड़ा गया। कुतिया "लैका" को एक वायु-रुद्ध एवं वायु नियंत्रित कक्ष में रक्खा गया। दुर्भाग्यवश "लैका" को जीवित वापस न लाया जा सका। प्रथम अमेरिकी उपग्रह "एक्सप्लोरर प्रथम" ३१ जनवरी १९५८ को छोड़ा गया। अमेरिका ने अपना दूसरा उपग्रह "वानगार्ड प्रथम" १७ मार्च १९५८ को और तीसरा उपग्रह "ऐक्सप्लोरर द्वितीय" २६ मार्च १९५८ को छोड़ा। तृतीय रूसी उपग्रह "स्पुत्निक तृतीय" प्रथम दोनों से बहुत विकसित था। यह १५ मार्च १९५८ को छोड़ा गया। यह "स्पुत्निक प्रथम" से १६ गुना अधिक एवं "स्पुत्निक द्वितीय" से २½ गुना अधिक भारी था।

जनवरी १९५९ में सोवियत संघ द्वारा "लूनिक प्रथम" उपग्रह छोड़ा गया। यह पृथ्वी एवं चन्द्र-लोक के गुरुत्वाकर्षण मंडल से बाहर निकल गया और आजकल सूर्य के चारों ओर एक उपग्रह के रूप में एक कक्ष में परिक्रमा कर रहा है। "लूनिक द्वितीय" १२ सितम्बर १९५९ को छोड़ा गया और १४ सितम्बर को चन्द्रलोक पर जा पहुँचा। पृथ्वी के प्रथम कृत्रिम उपग्रह "स्पुत्निक प्रथम" के छोड़े जाने की दूसरी वर्षगाँठ के दिन ४ अक्टूबर १९५९ को सोवियत संघ द्वारा "लूनिक तृतीय" सफलता-पूर्वक छोड़ा गया। चन्द्रलोक के निकट पहुँचकर "लूनिक तृतीय" ने चन्द्रलोक के अदृश्य भाग की परिक्रमा की और पृथ्वी की ओर घूम पड़ा। इससे चन्द्रलोक के धरातल के अदृश्य भाग के चित्र उतारना संभव हो सका। वे चित्र पृथ्वी को टेलीविजन द्वारा भेजे गए। अन्तरिक्ष यान जब अन्तरिक्ष में यात्रा करते हैं, हमें वैज्ञानिक तथ्यों से परिपूर्ण समाचार भेजा करते हैं। उनमें अत्यधिक रोचक यह है कि पृथ्वी "एक विशाल गैसीय बादल" के समान है जिसकी तुलना में पृथ्वी का ठोस अंश छोटा सा है। ठोस अंश की आकृति नाशपाती जैसी है। पृथ्वी के चारों ओर आवेशयुक्त कणों के "विकिरण क्षेत्र" हैं। यह भी ज्ञात हुआ है कि पृथ्वी को चारों ओर से घेरने वाले इन आवेशयुक्त कणों के मध्य "विद्युतीय धाराएँ" बहती रहती हैं जिसके कारण पृथ्वी के चुम्बकत्व में काफी परिवर्तन होता रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक चुम्बकीय नक्षत्र के चारों ओर आवेशयुक्त कणों का एक प्रभामंडल (Corona) विद्यमान रहता है। अन्तरिक्ष-यान हमें पृथ्वी से बहुत दूर स्थित पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति के क्षेत्र की रचना के बारे में तथा अन्य चुम्बकीय क्षेत्रों के बारे में, जो संभवतः वहां वर्तमान हों, बता सकेंगे। लूनिकों द्वारा ज्ञात तथ्यों से पता चलता है कि चन्द्र-लोक में कोई नापने योग्य चुम्बकीय शक्ति का क्षेत्र विद्यमान नहीं है। चन्द्रलोक के चारों ओर किसी विकिरण-परत का ज्ञान भी नहीं हो पाया है। अतः कहा जा सकता है कि चन्द्रलोक की रचना पृथ्वी की रचना से सर्वथा भिन्न है, कारण कि चन्द्र-लोक में कोई पिघला हुआ अन्तंभाग नहीं है, जिसमें विद्युतीय धाराएँ उत्पन्न हो सकें और चुम्बकत्व को जन्म दे सकें। रेडियो द्वारा वैज्ञानिकों को अमूल्य सहायता प्राप्त हुई है। यह अन्तरिक्ष-यान द्वारा 'देखी और सुनी" जाने वाली प्रत्येक बात को पृथ्वी पर वापस भेजता रहता है।

अमेरिका द्वारा उपग्रह "ईको प्रथम" अगस्त १९६० में छोड़ा गया। इसका व्यास बहुत बड़ा है एवं धरातल चमकीला और परावर्तक है। इस

दोनों कारणों से अनुकूल परिस्थितियों में उपग्रह को आँखों से भी देखा जा सकता है।

अमेरिकन वैज्ञानिकों द्वारा १९५८ से छोड़े गए अनेक कृत्रिम ग्रहों ने सोवियत वैज्ञानिकों द्वारा प्राप्त परिणामों की पुष्टि एवं परिपूर्ति की है। विज्ञान एवं प्राविधिक विज्ञान ने धीरे-धीरे इतनी प्रगति कर ली है कि ऐसे मंडलीय अन्तरिक्ष-यानों का निर्माण संभव हो सका है जो पृथ्वी पर पूर्व निर्धारित स्थलों पर लौट आ सकें। मनुष्य को दूर अन्तरिक्ष में भेजने से पूर्व परीक्षण जन्तुओं से युक्त अन्तरिक्ष-यानों की अनेक सफल यात्राओं के प्रमाण देना परमावश्यक था। दुर्भाग्यवश प्रथम परीक्षण जन्तु कुतिया "लैका" जीवित वापस न लाई जा सकी। बाद में विकसित ज्ञान एवं प्रविधि से परीक्षण जन्तु, विशेषकर कुत्ते, अन्तरिक्ष उड़ानों के कष्ट सफलतापूर्वक सहन कर सके और कोई हानिकारक प्रभाव भी न पड़ा। जब अन्तरिक्ष उड़ानों की पूर्ण विश्वस्तता को प्रमाणित करने और पृथ्वी पर सुरक्षित पुनरागमन के पर्याप्त प्रमाण प्राप्त हो गए तब मानव द्वारा अन्तरिक्ष उड़ानों की स्वीकृति प्रदान की गई। अन्तरिक्ष-यात्री को पूर्ण सुरक्षा एवं यात्रा के समय सुख निश्चित होना आवश्यक समझा गया। यह भी परमावश्यक है कि भविष्य के अन्तरिक्ष यात्रीगण प्रबल एवं पर्याप्त शिक्षा प्राप्त करें जिससे वे न केवल अन्तरिक्ष उड़ानों के सामान्य संकटों के लिए तैयार रहें वरन् अनेक प्रकार के आश्चर्यों एवं अलौकिक संकटों का सामना करने की क्षमता रखें, जिनका सामना संभवतः उनको करना पड़े।

जब अन्तरिक्ष उड़ान प्रारम्भ होती है तो चालक राकेट अन्तरिक्ष यान को अत्यन्त तीव्र गति प्रदान करता है जिसके कारण प्रत्येक वस्तु को—यात्री को भी—भयंकर अधिक-भार का अनुभव होता है। अतएव यह आवश्यक है कि यात्रियों को इस प्रकार की स्थिति में रक्खा जाय कि वे न्यूनतम कष्ट सहन करें। इसके अतिरिक्त जहाँ तक संभव हो सके यात्री कक्ष कम्पनरहित एवं कोलाहल रहित हों।

अपनी उड़ान के मध्य जब अन्तरिक्ष-यान अपने परिक्रमापथ में पदार्पण करता है तब पृथ्वी का आकर्षण परिक्रमा पथीय गति उपन्न करने में कार्य आता है। अतः भार और बढ़े-भार की दशा उस अवस्था में नष्ट हो जाते हैं और भारहीनता की दशा प्रारम्भ हो जाती है। यह एक असमान्य अवस्था होती है जो जीवधारियों के लिए अनेक आश्चर्य उत्पन्न कर सकती है। परन्तु अनुभव से ज्ञात हो चुका है कि अल्प अवधि तक सीमित इस अवस्था के लिए मानव को किसी संकट का सामना नहीं करना पड़ता और वह सफलतापूर्वक इस दशा से उत्पन्न कठिनाइयों पर विजय पा सकता है। परिक्रमा पथीय गति के समय यान के इंजनों को बन्द कर दिया जाता है जिसके फलस्वरूप कम्पन एवं कोलाहल स्वयं बन्द हो जाते हैं। पृथ्वी की ओर अपने पुनरागमन के समय अन्तरिक्ष यान जब भयंकर गति से वायु की घनी परतों में पदार्पण करता है तब इंजनों को पुनः चालू कर दिया जाता है और गति को धीमा करने के हेतु ब्रेक लगाए जाते हैं। कोलाहल, कम्पन एवं अधिक-भार की अवस्था पुनः उत्पन्न हो जाती है। वे उपाय जो अन्तरिक्ष में ऊपरी उड़ान के समय किये जाते हैं, पृथ्वी की ओर वापसी उड़ान के समय अपने प्रभावों को रोकने के लिए पुनः लगाने पड़ते हैं।

१२ अप्रैल १९६१ को अरल सागर के पास त्यरातासू स्थान से सोवियत वैज्ञानिकों ने अपना प्रथम मानव अन्तरिक्ष में भेजा तथा उसे जीवित एवं स्वस्थ दशा में वापस भी बुलाया। अन्तर्ग्रहीय युग के ये कोलम्बस हैं **मेजर यूरी अलेक्सेयेविच गैगारिन** जिनकी उड़ान में पूरे १०८ मिनट का समय लगा। मास्को के समय के अनुसार ९ बजकर सात मिनट पर मेजर गैगारिन को लेकर अन्तरिक्षयान "वोस्तोक" सुदूर

अन्तरिक्ष में बहुत ऊँचे उड़ा। १७,००० मील प्रति घंटा की गति से यान ने परिक्रमा-पथ में पदार्पण किया। मेजर गैगारिन ने पृथ्वी के चारों ओर एक पूरे चक्कर से कुछ अधिक परिक्रमा की ओर सोवियत रूस में पूर्व निर्धारित स्थल पर १० बजकर ५५ मिनट पर (ग्रीनविच समय ७ बजकर ५५ मिनट) उतर आया। उपग्रह अन्तरिक्षयान "वोस्तोक' का परिभ्रमण काल ८९·१ मिनट था। पृथ्वी से न्यूनतम दूरी १७५ किलोमीटर एवं अधिकतम दूरी ३०२ किलोमीटर थी। भूमध्य रेखा से परिक्रमा पथ के तल का झुकाव-कोण ६५° एवं ४ मिनट था। अन्तरिक्ष यान का भार १०,४२४ पौंड था। रेडियो टेलीमीटर एवं टेलीविजन द्वारा मेजर गैगारिन की भौतिक अवस्था का निरीक्षण किया गया। मास्को समय ९ बजकर २२ मिनट पर मेजर गैगारिन ने सूचना दी "उड़ान सामान्य रूप से चल रही है। मैं स्वस्थ दशा में हूँ।" उतरने पर उन्होंने कहा, "मैं स्वस्थ रहा तथा मेरे कोई चोट आदि भी न लगी।" गैगारिन प्रथम मानव थे जिसने पृथ्वी को पृथ्वी के बाहर से देखा। उन्होंने आकाश को बहुत ही गाढ़ा काला एवं पृथ्वी को नीला रंग लिए देखा। ये प्रथम मानव थे, जिसने अपने शरीर का भार लगभग डेढ़ घंटे तक अनुभव नहीं किया। अन्तरिक्ष-यान का परिक्रमा-पथ पृथ्वी से बहुत ऊपर था परन्तु, अन्तरिक्ष यात्री का सम्बन्ध पृथ्वी से टूटने नहीं पाया। रूसी नगरों द्वारा सुदूर अन्तरिक्ष में संगीत प्रसारित किया जा रहा था, जिसका आनन्द मेजर गैगारिन ले सकते थे। मेजर गैगारिन अपने साथ साँस लेने के हेतु प्रचुर मात्रा में ऑक्सीजन एवं पूर्व-तैयार खाद्यपदार्थों की प्रर्याप्त मात्रा ले गए थे। उनको कार्बन-डाई-आक्साइड एवं अन्य त्यक्त पदार्थ हटाने एवं दूर करने के साधन भी प्रदान किए गए थे।

जौरडेल बैंक निरीक्षणशाला के प्रधान सर बर्नार्ड लौवेल का कथन है कि प्रथम अन्तरिक्षयात्री की उड़ान मानव-इतिहास की सर्वोत्तम घटना है। रूसी वैज्ञानिकों एवं आविष्कारकों का महान् श्रेय है कि उन्होंने सामूहिक अनुभव द्वारा आदर्श पद्धति खोज निकाली, अन्तरिक्ष यात्री को संपूर्ण प्रशिक्षण दिया तथा अन्तरिक्ष-यानों में कुत्तों को सफलता-पूर्वक छोड़ा। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि यूरी गैगारिन ने साहस एवं आत्मनियंत्रण के गुणों का अलौकिक प्रदर्शन किया।

आधुनिकतम सफलता न केवल राकेटों एवं अन्तरिक्ष-यानों पर कार्य करने वाले वैज्ञानिकों की व्यक्तिगत दक्षता एवं कार्यकुशलता पर निर्भर करती है वरन् सहयोग की भावना, केन्द्रीय संचालन तथा युक्तिपूर्ण योजना बनाने पर भी निर्भर है। गैगारिन को "सोवियत संघ का नायक" तथा "सोवियत सरकार कर्णधार अन्तरिक्ष" की उपाधियों से विभूषित किया गया। वैज्ञानिकों एवं प्रविधिवेत्ताओं, जिन्होंने अन्तरिक्ष-यान "वोस्तोक" का निर्माण किया तथा अन्तरिक्ष यात्री को अन्तरिक्ष में भेजना एवं उसे सकुशल जीवित लौटा लाना संभव कर दिखाया और प्रथम अन्तरिक्षी गैगारिन —सभी समान रूप से इस श्रेय के भागी हैं। इलेक्ट्रॉनिक विघ्नों द्वारा उत्पादित अत्यन्त शोर होने पर भी गैगारिन की वाणी साफ एवं ऊँचे स्वर में सुनाई पड़ती थी। "टेक आफ" के तुरन्त पश्चात् "उड़ान सुचारु एवं सामान्य गति से चल रही है। मैं प्रथम बार स्वयं अपने नेत्रों से पृथ्वी की गोलाकार आकृति देख रहा हूँ। पृथ्वी के प्रकाशमय धरातल से लेकर अन्धकारमय आकाश तक का विलक्षण परिवर्तन देखना संभव है। पृथ्वी पर की अपेक्षा सूर्य कई गुना अधिक उज्जवल है।" जब वे प्रशान्त महासागर के ऊपर थे, उन्होंने सूचना दी, "प्रत्येक वस्तु यथा क्रम कार्य कर रही है।" जब वे अफ्रीका के ऊपर थे उन्होंने बताया, "मैं भारहीनता की अवस्था को सकुशल सहन कर रहा हूँ। प्रत्येक कार्य करना अधिक सरल है। मेरी भुजाएँ एवं पैर भार-हीन ज्ञात होते हैं वस्तुएं केबिन में चलायमान

हैं। मैंने खाया और पिया। प्रत्येक बात पृथ्वी के समान ही है।" सत्य तो यह है कि गैगारिन को यदि कुर्सी पर तस्मों द्वारा बाँध न दिया गया होता तो वे भी कक्ष में तैरने लगते। परिक्रमा-पथ में पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए अन्तरिक्ष-यान को अपनी धुरी पर घुमाकर इससे उत्पन्न केन्द्रापसारी बल से आकर्षण-शक्ति का कार्य लेकर खगोलशास्त्रियों ने अन्तरिक्ष-यान के यात्रियों के लिए "संश्लेषित गुरुत्वाकर्षण शक्ति" उत्पन्न करने की योजना बनाई है। पृथ्वी पर उतरने के लगभग २५ मिनट पूर्व, जब गैगारिन अपनी मातृभूमि सोवियत संघ के ऊपर थे, उन्होंने सूचना दी, "दृष्टि सामान्य है। मैं प्रत्येक वस्तु देख रहा हूँ। कुछ क्षेत्र बादलों से ढँके हैं। मैं सामूहिक खेतों के विशाल क्षेत्र देख पा रहा हूँ। खेतीवाली भूमि एवं बंजर भूमि में अन्तर ज्ञात करना संभव है।" गैगारिन को असीम आनन्द की अनुभूति हुई जब उन्होंने निशा को पृथ्वी पर फैलते हुए उस समय देखा जब उनका यान सूर्य के प्रकाश में विहार कर रहा था। गैगारिन के शब्दों में—"अन्धकार से लेकर नीले रंग तक का परिवर्तन क्रमशः एवं मनमोहक था। उसको शब्दों में व्यक्त करना कठिन है।" जब यान पृथ्वी की प्रतिच्छाया के पीछे पहुँचा तब उन्होंने नक्षत्रों को "ज्योतिवान एवं स्पष्ट रूप से दृश्य" पाया।

"वोस्तोक" के नीचे की ओर वापसी यात्रा प्रारम्भ करने के तत्काल पूर्व यान की गति को १०,७०० मील प्रति घंटा तक गिराने के लिए विपरीत दिशा में कार्य करने वाले राकेट छोड़े गए। इन राकेटों को छोड़ने के कुछ पल पश्चात केबिन एवं यंत्र-कक्ष विस्फोटक ढेबरियों द्वारा अलग हो गए। घर्षण के कारण यंत्रकक्ष ऊपरी वायुमंडल में आकर जल गया। गैगारिन के केबिन ने पृथ्वी की ओर अपनी वापसी यात्रा प्रारम्भ की। अधिक घनेरे वायुमंडल में घर्षण अत्यन्त अधिक होने के कारण फौलाद-निर्मित केबिन के बाहरी खोल का तापमान २०००° फैरनहाइट तक पहुँच गया और वह तप्त लाल हो गया। समतल वायु-परों के कारण यान के उतरने की गति धीमी पड़ गई। और तब घनाकार भाग, जिसमें गैगारिन वर्त्तमान थे, बड़े बेलन से अलग हो गया। एक के पश्चात् एक करके दो पैराशूटों की छतरियाँ गैगारिन के उतरने वाले यान में खुल गईं। पहली ७०,००० फुट की ऊँचाई पर और दूसरी १०,००० पर। केबिन २० मील प्रति घंटा की गति से पृथ्वी पर आ टकराया। पृथ्वी पर उतरने के समय गैगारिन को कोई चोट न लगी।

चिकित्सासंबंधी समस्याएँ भी मनुष्य की अन्तरिक्ष यात्रा से सम्बन्धित हैं। विशेष प्रकार के अधिक-दबाव-विरोधक वस्त्र धारणकर, उचित प्रशिक्षण प्राप्तकर एवं राकेट के चढ़ाव के समय मनुष्य की स्थिति के उचित चुनाव द्वारा अधिक दबाव के विरुद्ध अवरोध १२ से १५ गुना तक बढ़ाया जा सकता है।

आरम्भ में जब यान की गति में बढ़ती होती है भार में स्पष्टतः महान वृद्धि हो जाती है। जब पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का ह्रास हो जाता है, जब राकेट परिक्रमापथ में परिक्रमा करने लगता है और राकेट के इंजन बन्द कर दिए जाते हैं, तब शक्तियुक्त भारहीनता का अनुभव होता है।

अन्तरिक्ष में ऊपर की ओर की अल्पकालीन उड़ानों के समय जन्तुओं की दैहिकी से संबन्धी आँकड़े प्राप्त किए गए हैं। उनसे पता चलता है कि चल भारहीनता की दशा के कारण हृदयेन्द्रियों अथवा श्वासेन्द्रियों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। आरम्भ में धमनियों के रक्त-दबाव में वृद्धि होती है एवं नाड़ी की गति तथा श्वास क्रिया में वृद्धि हो जाती है। भारहीनता की अवस्था में कई मिनट उड़ान करने के पश्चात् ये कार्य सामान्य हो जाते हैं।

शक्तिवान भारहीनता की दशा, अन्तरिक्ष विकिरण में अधिक समय तक रहने के फल एवं

अन्तरिक्ष उड़ान के अन्य प्रतिफल अभी तक ज्ञात न हो पाए हैं। यूरी गैगारिन ने लगभग डेढ़ घंटा भारहीनता की दशा में व्यतीत किया परन्तु उन्हें कोई भी हानि न पहुँची। अमेरिकी अन्तरिक्ष यात्री शेपर्ड का कथन है कि भारहीनता की अवस्था में उन्हें सुखकर चेतना की अनुभूति हुई। अन्तरिक्ष में, जहाँ कोई वायुमंडल उपस्थित नहीं है, अथवा पृथ्वी के वायुमंडल की ऊपरी परतों में, जो अत्यधिक विरल है, मनुष्य केवल ऐसे दृढ़तापूर्वक बन्द कक्षों में ही यात्रा कर सकता है जिसमें वायु प्रवेश न पा सके अर्थात् जो पूर्ण रूप से वायुरुद्ध हों और जिसमें वायुमंडल की सामान्य परिस्थितियाँ पुनः उत्पन्न करके मनुष्य के जीवित रहने की सामान्य दशाएँ काफी समय के लिए प्रतिपादित की जा सकें। टूटे नत्रों से कक्ष की रक्षा करने के लिए, जिससे कहीं वायु रुद्ध सीलिंग नष्ट न हो जाय, प्रत्येक अन्तरिक्ष यात्री को अन्तरिक्ष-सूट विशेषकर पहनना आवश्यक है। विशेषकर पेचीली समस्याएँ उपस्थित करने के कारण अन्तरिक्ष विकिरण का संभवतः प्रभाव अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है। यह आवश्यक है कि यात्री-कक्ष में एक विशेष दाब, ताप, आर्द्रता एवं वायु की संरचना को पूरी उड़ान भर दृढ़तापूर्वक स्थिर रक्खा जा सके। यह कार्य किसी विशेष कष्ट के बिना किया जा सकता है, यदि अन्तरिक्ष यान का परिक्रमापथ यथायोग्य प्राप्त किया जाय जिससे वह कभी भी पृथ्वी की प्रतिच्छाया में पदार्पण न करे और निरंतर सूर्य से ऊर्जा की प्राप्ति करता रहे। परन्तु पृथ्वी के वायुमंडल की घनी परतों में पदार्पण करते समय कक्ष का अत्यधिक गरम हो जाना एवं छिन्न-भिन्न होने से उसकी रक्षा करने में अत्यधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता है। यह कार्य है भी बड़ा ही कठिन।

राकेट को परिक्रमापथ से निकालने, गति धीमी करने एवं पूर्व निर्धारित स्थल में सुगमतापूर्वक उतरने के लिए आवश्यक यंत्रों की उचित क्रिया निश्चित हो चुकी है।

हमारी पृथ्वी अत्यधिक ऊर्जायुक्त कणों से चारों ओर से घिरी है तथा उनकी परतें भूमध्य-रेखा के धरातल के निकट अनेक सहस्र किलोमीटर की दूरी पर स्थित हैं। अन्तरिक्ष-यान के कक्ष की दीवारें यात्रियों की रक्षा इन प्राणघातक कणों से नहीं कर सकतीं। अतः मनुष्यों को ले जाने वाले यानों को इन परतों के निकट न जाना चाहिए, या तो उनको कम ऊँचाई पर उड़ना चाहिए अथवा यदि उनको अत्यधिक दूर जाना ही है तो उनको पृथ्वी की अक्षरेखा की दिशा का अनुगमन करना चाहिए। स्पष्ट है कि उड़ान आरम्भ करने के आदर्श स्थल आर्कटिक या अन्टार्कटिक क्षेत्र में होंगे। सौर क्रिया के चरम कालों में सूर्य द्वारा उत्पादित अत्यधिक ऊर्जायुक्त कणों की शक्तिशाली धाराओं से बचने के लिए मनुष्य को अन्तरिक्ष यात्रा मन्द सौर क्रियाशीलता वाले कालों में करनी चाहिए।

यूरी गैगारिन ने अन्तरिक्ष में देखे रंगों की तुलना रोरिक के चित्रों के रंगों से की है।

५ मई १९६१ को फ्लोरिडा आधार से ९ बजकर ३४ मिनट के १५ सेकंड पश्चात् अमेरिकी नौसेना के कमान्डर, ऐलन शेपर्ड एक टन भार वाले अन्तरिक्ष कैपस्यूल में, जिसका नाम, "फ्रीडम सप्तम" था और जो एक "रेड स्टोन" राकेट द्वारा आकाश में छोड़ा गया था, अन्तरिक्ष में ११५ मील ऊपर गए। नीचे की ओर लगे फूले उतरने वाले थैले को आधार बनाकर कैपस्यूल सागर में आकर गिरा। शेपर्ड बिना किसी की सहायता के कैपस्यूल से बाहर निकल आए और नौसेना के एक हेलीकाप्टर द्वारा सुरक्षास्थल ले जाए गए। गुरुत्वाकर्षण शक्ति के अत्यधिक दबाव की मात्रा पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का ११ गुना थी। शेपर्ड ने सफलतापूर्वक यंत्रों का संचालन किया और कैपस्यूल की गति धीमी करने के लिए उन्होंने

विरोधक-राकेट भी छोड़े। उड़ान के मध्य उन्होंने सूचना भेजी, "सब कुशल हैं"। सारी उड़ान भर उनकी दशा उत्तम जान पड़ती थी। उनको कोई व्याधि, संवेदना या किसी प्रकार की अस्वस्थता कुछ भी अनुभव न हुआ। यह भी ज्ञात हुआ कि अन्तरिक्ष-यात्री का कैपस्यूल अन्तरिक्ष यात्रा की अत्यधिक दबाव वताप बिना किसी प्रकार की हानि के सहन कर सकता है।

अब चन्द्रलोक तथा अन्य ग्रहों का मार्ग खुल गया है। राकेट में मनुष्यों को भेजने का अगला लक्ष्य चन्द्रलोक है। अन्तरिक्ष प्रविधि वेत्ताओं एवं वैज्ञानिकों ने चन्द्रलोक में एक मार्ग का निर्माण करने की योजनाएँ बनानी आरम्भ कर दी हैं। उसके ऊपर एक लटकती छत होगी, जैसी हम रेल के स्टेशन में देखते हैं, जिसका कार्य टूटे हुए नक्षत्रों से, जो मार्ग में चलते यान को हानि पहुँचा सकते हैं, उनकी रक्षा करना होगा।

आशा की जाती है कि मानव द्वारा चन्द्रलोक की उड़ान आगामी दस पाँच वर्षों के भीतर ही साकार हो जाएगी। अन्तरिक्ष-यान को चन्द्रलोक भेजने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी प्रारम्भिक गति ११ किलोमीटर प्रति सेकिंड से अधिक हो। यान प्रारम्भ में एक फैले हुए अंडवृत के परिपथ पर जाएगा और चन्द्रलोक के गुरुत्वाकर्षण शक्ति क्षेत्र में पदार्पण कर लगभग ५१ घंटे पश्चात् उसकी सतह पर उतरेगा। यदि यान को उचित अधिक गति प्रदान की जा सके तो चन्द्रलोक तक २४ घंटों के भीतर ही पहुँचना संभव हो सकेगा।

अन्तरिक्ष यात्री शुक्र ग्रह जाने की योजनाएँ बना रहे हैं। प्रस्ताव किया गया है कि १,७०० टन वाले १० अन्तरिक्ष यान एक उड़न-हवाई अड्डे पर पंक्तिबद्ध किए जाएँगे। आरम्भ में वे पृथ्वी के चारों ओर एक वृताकार पथ में परिक्रमा करेंगे, जहाँ से निकल कर वे एक अवस्थान परिक्रमापथ द्वारा अंडवृत्त के रूप का चक्कर लगाकर सूर्य के गुरुत्वाकर्षण मंडल के भीतर बिना ईंधन व्यय किए ही शुक्रग्रह की ओर बढ़ेंगे। यदि वे अपनी उड़ान उचित अवसर पर आरम्भ करें तो अन्तरिक्ष यान २५६ दिनों में शुक्रग्रह पहुँच जाएगा। वापसी यात्रा के लिए अन्तरिक्ष यात्रियों को शुक्रग्रह में उस समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जब तक शुक्र ग्रह और पृथ्वी वापसी उड़ान के लिए अनुकूल योग में न आ जायँ। इसके लिए अन्तरिक्ष यात्रियों को पृथ्वी के ४४० दिन प्रतीक्षा करनी होगी। अतएव पृथ्वी से शुक्रग्रह तक और वापसी की यात्रा में कुल ९५२ दिन अथवा लगभग ३ वर्ष लगेंगे। संभवतः शुक्रग्रह की यात्रा इस शताब्दी की समाप्ति के पूर्व ही संभव हो सके।

नाभिकीय प्रतिकारी

विष्णु कुमार श्रीवास्तव

मानव सभ्यता की उन्नति के साथ साथ शक्ति की आवश्यकता भी बढ़ती जा रही है। अब तक यह शक्ति हमें कोयले अथवा पेट्रोलियम से ही प्राप्त होती थी परन्तु प्रकृति में उपरोक्त ईंधन की सीमित मात्राएँ ही मिलती हैं जो भारी खपत के कारण कालान्तर में समाप्त हो जायँगी। अतः अन्य शक्तिस्रोतों की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान जाना स्वाभाविक था। यूरेनियम थोरियम आदि रेडियधर्मीपरमाणुओं के विखण्डन से प्रचुर उष्मा-शक्ति उत्पन्न होती है जो परमाणु-शक्ति कहलाती है। यह शक्ति वाष्प इंजनों अथवा टर्बाइनों की सहायता से यांत्रिक शक्ति में परिवर्तित कर ली जाती है जो डायनमों चला कर विद्युत शक्ति उत्पन्न करती है। परमाणु विखण्डन द्वारा विद्युत शक्ति उत्पन्न करने वाले यंत्र नाभिकीय प्रतिकारी अथवा न्यूक्लिअर रिएक्टर कहलाते हैं। प्रतिकारी तीन प्रकार के होते हैं—(१) शक्ति-प्रतिकारी—इनमें केवल उष्मा शक्ति का ही उत्पादन होता है जो विद्युत शक्ति में बदल जाती है, (२) ईंधनोत्पादक ब्रीडर प्रतिकारी—इन रिएक्टरों में भी यद्यपि शक्ति का उत्पादन होता है परन्तु इनका मुख्य उद्देश्य परमाणु-ईंधन उत्पन्न करना होता है। इस प्रकार के रिएक्टरों में खपत होने वाले ईंधन से भी अधिक मात्रा में तथा अधिक शक्तिशाली ईंधन प्राप्त होता है। (३) अनुसंधान प्रतिकारी—इन रिएक्टरों में भी शक्ति का उत्पादन होता है परन्तु अपेक्षाकृत बहुत कम; इनका मुख्य उद्देश्य न्यूट्रॉन उत्पादन होता है जो परमाणु शक्ति सम्बन्धी अनुसंधानों में कण-विकिरण की आवश्यकता पूरी करते हैं। नीचे कुछ शक्ति-प्रतिकारियों की विधि वर्णन की गई है। सभी प्रकार के प्रतिकारियों का मूल सिद्धान्त एक-सा है।

परमाणु के अवयव कण तीन प्रकार के होते हैं—(१) धनाणु—जिनकी संहति (Mass) हाइड्रोजन के समान होती है तथा ये इकाई धन विद्युत आवेश वाले होते हैं, (२) ऋणाणु—जो इकाई ऋण विद्युत आवेश युक्त होते हैं तथा इनकी संहति हाइड्रोजन के १/१८५० वें भाग के समान होती है (३) न्यूट्रान—जो आवेशहीन कण होते हैं जिनकी संहति हाइड्रोजन के बराबर होती है। परमाणु के मध्य भाग में धनाणु नाभिक न्यूक्लियस तथा न्यूट्रान से युक्त एक पिंड होता है जिसे नाभिक कहते हैं। परमाणु की समस्त संहति यहीं केंद्रित रहती है। ऋणाणु नाभिक के चारों ओर दीर्घ-वृत्तीय अक्षों में ऋणाणु चक्कर लगाया करते हैं। प्रत्येक परमाणु में ऋणाणु तथा धनाणु समान संख्या में होते हैं जिससे परमाणु आवेशहीन होते हैं। धनाणुओं के पारस्परिक प्रतिकर्षण के कारण न्यूक्लियस को स्वतः विच्छेदित हो जाना चाहिए परन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि न्यूक्लियस के कोणों में एक प्रकार की बन्धक ऊर्जा पायी जाती है जो न्यूक्लियस के कणों को बाँधे रखती है। जब कोई बड़ा परमाणु छोटे परमाणुओं में विच्छेदित होता है तो यही बन्धक ऊर्जा उष्मा के रूप में प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त परमाणु विखण्डन में कुछ द्रव्य की भी हानि होती है। यही खोया हुआ द्रव्य आइंसटाइन समीकरण ($E=mc^2$) के अनुसार ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है जो उष्मा के रूप में प्राप्त होती है। इस प्रकार परमाणु विखण्डन से प्रचुर मात्रा में उष्मा

के रूप में परमाणु शक्ति प्राप्त होती है। प्रश्न यह उठता है कि अदृश्य परमाणु तोड़े किस प्रकार जाते हैं?

एक न्यूट्रॉन के नाभिक से बाहर निकालने के लिए ५० लाख इलेक्ट्रान वोल्ट की ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अतः जब कोई न्यूट्रान किसी नाभिक के निकट पहुँचता है तो वह बन्धक ऊर्जा के प्रभाव से नाभिक की ओर खिंच जाता है तथा ५० लाख इलेक्ट्रान वोल्ट का ऊर्जा मुक्त करता है। यह ऊर्जा नाभिक के सभी कणों में समान रूप से गतिज ऊर्जा के रूप में विभाजित हो जाती है जो घर्षणहीन होने के कारण तीव्र गति (लगभग १०[२१] प्रति सेकंड) से कंपन करने लगते हैं और इस प्रकार उपरोक्त ऊर्जा गामा-रश्मियों के विकिरण द्वारा व्यय हो जाती है। नाभिक का संतुलन कुछ-कुछ पानी की बूँद के संतुलन से मिलता-जुलता है जिसमें पृष्ठ तनाव तथा गुरुत्वाकर्षण शक्ति क्रमशः नाभिक की बन्धक ऊर्जा तथा प्रतिकर्षण बलों की भाँति एक दूसरे को संतुलित रखते हैं। जल बूँदों की ही भाँति नाभिक भी निश्चित आकार के होते हैं और उस आकार को विकृत करने पर उनकी स्थिरता कम हो जाती है; यहाँ तक कि एक ऐसी अवस्था आती है कि उससे अधिक विकृत होने पर वे विच्छेदित हो जाते हैं। ऐसी विकृति चरम विकृति कहलाती है। न्यूक्लियस की विकृति के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो न्यूट्रान ग्रहण (Neutron capture) द्वारा प्राप्त होती है। न्यूट्रान ग्रहण द्वारा प्राप्त ऊर्जा न्यूट्रान की गतिज ऊर्जा तथा ५० लाख इलेक्ट्रान वोल्ट योग के बराबर होती है। अतः यदि न्यूट्रान स्वीकृति से प्राप्त ऊर्जा चरम विकृति के लिए आवश्यक ऊर्जा से अधिक होती है तो परमाणु विखण्डन हो जाता है और न्यूट्रान ग्राहक परमाणु लगभग अपने आधे परमाणु भार के दो टुकड़ों में टूट जाता है जो तीव्र वेग से अलग हो जाते हैं।

तो सभी तत्व न्यूट्रान ग्रहण द्वारा परमाणु भंजन करके परमाणु शक्ति क्यों नहीं मुक्त करते? जिस प्रकार बड़ी जलबूँदें छोटी बूँदों की अपेक्षा आसानी से टूट जाती हैं उसी प्रकार हल्के तत्वों के नाभिकों की विकृति के लिए भारी तत्वों की अपेक्षा अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। परन्तु नाभिक में ऊर्जा केवल न्यूट्रान-ग्रहण द्वारा ही उपलब्ध होती है। न्यूट्रान से अधिक ऊर्जा उपलब्ध होने के लिए उसमें अधिक गतिज ऊर्जा का होना आवश्यक है। परन्तु घर्षणहीन होने के कारण तीव्र वेग वाले न्यूट्रान बिना न्यूट्रान-ग्रहण के ही अपने निशाने अर्थात् नाभिक को भेद कर निकल जाते हैं। फलतः तीव्र वेग वाले न्यूट्रानों की ग्रहण प्रायः असंभव ही है और मन्द वेग के न्यूट्रान चरम विकृति के लिए आवश्यक ऊर्जा युक्त न होने के कारण हल्के परमाणुओं के भंजन के लिए सर्वथा अनुपयुक्त हैं ही। इस प्रकार हम देखते हैं कि यशद, सोडियम, लोहा, पारा आदि हल्के तत्वों का परमाणु भंजन होना असंभव है। प्रायः ९० से अधिक परमाणु-संख्या वाले तत्वों की चरम-विकृति के लिए बहुत कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो केवल तापज गति अर्थात् मन्द गति के न्यूट्रानों के ग्रहण द्वारा उपलब्ध को जाती है। इसीलिए यूरेनियम (U^{233} तथा U^{235}), प्लूटोनियम, तथा नैपच्यूनियम आदि भारी तत्वों में ही परमाणु-विखण्डन होता है क्योंकि इनकी चरम विकृति के लिए ५० लाख इलेक्ट्रान वोल्ट से कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है। किसी तत्व के परमाणु को विखण्डनशील होने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी चरम विकृति के लिए आवश्यक ऊर्जा ५० लाख इ० वो० से कम हो।

U^{239}, Th तथा Pa (प्रोतोऐक्टिनियम) की चरम विकृति के लिए आवश्यक ऊर्जा मन्द गति के न्यूट्रान -स्वीकृति द्वारा प्राप्त कंपन ऊर्जा से अधिक है; अतः ये तभी विच्छेदित होती जब तीव्र वेग वाले न्यूट्रानों द्वारा इन पर आघात होता है। अतः परमाणु-विखण्डन के लिए U^{233}, U^{235}, Pu तथा Np ही

प्रयुक्त किए जाते हैं। परमाणु विखण्डन से न्यूट्रान भी मुक्त होते हैं जो तीव्र वेग युक्त होने के कारण अन्य परमाणु के विखण्डन के लिए व्यर्थ होते हैं। अतः यह आवश्यक है कि इनकी गति कम कर दी जाय ताकि विखण्डन द्वारा उत्पन्न न्यूट्रान ही अन्य परमाणुओं का विखण्डन करते रहें और इस प्रकार जब तक ईंधन की पर्याप्त मात्रा रहे तब तक प्रतिक्रिया चलती रहे। गति-विज्ञान के अनुसार जब कोई वेगयुक्त पिंड अपने समान संहति वाले पिंड से टकराता है तब उसकी आधी गतिज ऊर्जा क्षय होती है। अतः यदि विखण्डन द्वारा उत्पादित तीव्र वेग युक्त न्यूट्रानों को किसी लगभग समान परमाणु भार वाले तत्व जैसे हाइड्रोजन से गुजारा जाय तो हाइड्रोजन के नाभिक से टकराकर वे अपनी गति ऊर्जा का बहुत-सा भाग खो देंगे तथा उनका वेग भी मन्द हो जायगा। ऐसे पदार्थ जो वेगयुक्त न्यूट्रानों की गति मन्द कर देते हैं मन्दक (मॉडरेटर) कहलाते हैं। यद्यपि हाइड्रोजन व जल अच्छे मॉडरेटर हैं तथापि इन में एक सबसे बड़ा दोष यह है कि ये न्यूट्रान शोषित करते हैं क्योंकि हाइड्रोजन न्यूट्रान शोषक है। अतः भारी जल भी काम में लाया जाता है। वैज्ञानिक फर्मी ने ज्ञात किया कि ग्रेफाइट के रूप में कार्बन, जिसे एक हल्का तत्व कहा जा सकता है, सबसे अच्छा मॉडरेटर होता है। हल्के तत्वों को मॉडरेटर के रूप में काम में लाने से एक लाभ यह भी है कि हल्के तत्व अधिकांशतः न्यूट्रान शोषित नहीं करते। न्यूट्रानों के शोषण होने से अन्य परमाणुओं के विखण्डन के लिए न्यूट्रान नहीं प्राप्त होते फलतः प्रतिक्रिया बन्द हो जाती है।

स्पष्ट है कि परमाणु विखण्डनशील तत्व के ढ़ेर में प्रत्येक परमाणु के विच्छेदित होने पर न्यूट्रान मुक्त होते हैं और वे उस तत्व के अन्य परमाणुओं को भी विच्छेदित करते हैं। अतः यह प्रतीत होता है प्रकृति में जितना भी परमाणु विखण्डनशील ईंधन है उसे विच्छेदित हो जाना चाहिए और यदि किसी विशेष विच्छेदन प्रतिक्रिया में विखण्डन करने में काम आए न्यूट्रानों से उत्पादित न्यूट्रानों की संख्या अधिक हो तो उस ईंधन की विखण्डन प्रतिक्रिया की गति को बहुत शीघ्र इतनी बढ़ जानी चाहिए कि विस्फोट के साथ वह समस्त तत्व के ढ़ेर का परमाणु विखण्डन कर दे क्योंकि विच्छेदन प्रारम्भ करने के लिए आवश्यक कतिपय न्यूट्रान तो आसपास के पदार्थों अथवा अन्तरिक्ष रश्मियों के विकिरण द्वारा ही प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु ऐसा नहीं होता क्योंकि प्रकृति में प्राप्त यूरेनियम में U^{238} तथा U^{235} की मात्रा में १४० और १ का अनुपात होता है। अतः U^{235} परमाणु के किसी आकस्मिक न्यूट्रान द्वारा विखण्डन होने से प्राप्त न्यूट्रान अधिकांशतः खुले में होने के कारण बिना किसी U^{235} परमाणु से टक्कर लिए ही वायुमंडल में विलीन हो जाते हैं और U^{238} से टकराने पर भी उसका विखण्डन नहीं होता। अब यह प्रश्न होता है कि क्या शुद्ध U^{235} स्वतः ही विस्फोट के साथ परमाणु-विखण्डन की प्रतिक्रिया द्वारा नष्ट हो जाता है? नहीं; ऐसा नहीं होता, क्योंकि लगातार प्रतिक्रिया होने के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादित न्यूट्रानों की संख्या विखण्डन के लिए आवश्यक न्यूट्रानों की संख्या से अधिक हो अर्थात् उत्पादित एवं प्रयुक्त न्यूट्रानों की संख्या का अनुपात जिसे गुणनांक कहते हैं एक से अधिक हो (क्योंकि बहुत से न्यूट्रान ईंधन में से निकल जाते हैं) ताकि जितने न्यूट्रान प्रयुक्त हों उतने ही फिर उत्पन्न हो जायें। उत्पादित न्यूट्रानों की संख्या ईंधन की मात्रा अर्थात् आयतन ($\frac{4}{3}\pi R^3$) पर निर्भर करती है अतः R^3 के समानुपाती होती है और ईंधन के क्षेत्रफल ($4\pi r^2$) पर निर्भर करती है, अतः R^2 के समानुपाती होती है। उत्पादित तथा काम में आए न्यूट्रानों की संख्या का अनुपात ईंधन के गोले की त्रिज्या r के समानुपाती होता है। अतः स्पष्ट है कि गोले की त्रिज्या

बढ़ने पर उत्पादित न्यूट्रानों की संख्या अर्थात् प्रतिक्रिया की गति बढ़ेगी तथा उत्पादित एवं प्रयुक्त न्यूट्रानों की संख्या को समान रखने के लिए एक निश्चित त्रिज्या अर्थात एक निश्चित आयतन के ईंधन का पिंड होना चाहिए ताकि प्रतिक्रिया समान गति से चलती रहे। इसी प्रकार अन्य आकृति के पिंडों का आयतन भी निश्चित होना चाहिए। ईंधन के पिंडों का वह आयतन जो परमाणु विखण्डन की प्रतिक्रिया को समान गति से चालू रखने के लिए पर्याप्त हो, चरम-आयतन कहलाता है। इस चरम आयतन से कम आयतन वाले परमाणु विखण्डन शील पिंडों में विखण्डन प्रतिक्रिया नहीं होती और इससे अधिक आयतन होने पर प्रतिक्रिया की गति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है और समुचित नियंत्रण न होने पर विस्फोट भी हो जाता है। चरम आयतन ईंधन की प्रकृति, आकृति तथा प्रतिक्रिया पात्र की विकिरण क्षमता पर निर्भर करता है। चरम आयतन के समान आयतन होते ही परमाणु विखण्डन शीलतत्वों में स्वतः प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। प्रतिक्रिया पर नियंत्रण रखने का अर्थ यह है कि उत्पादित न्यूट्रानों की संख्या इतनी रखी जाय कि प्रतिक्रिया इतनी तीव्र गति से न होने पाए कि विस्फोट हो जाय। प्रतिक्रिया पात्र में न्यूट्रान शोषक पदार्थों (जैसे कैडमियम) को डाल कर न्यूट्रानों की संख्या पर नियंत्रण किया जा सकता है।

उपरोक्त सिद्धान्तों के आधार पर नाभिकीय प्रतिकारी (न्यूक्लिअर रिएक्टर) कार्य करते हैं। चित्र १ में एक न्यूक्लिअर रिएक्टर की कार्यविधि समझायी गई है। एक ग्रेफाइट से भरे पात्र में लगभग शुद्ध U^{235} की छड़ें दूर-दूर रखी होती हैं ताकि U^{235} के परमाणुओं से टकराने के पहले न्यूट्रान ग्रेफाइट से गुजरें जिससे उनका वेग कम हो जाय। इसी पात्र में कैडमियम की छड़ें भी रहती हैं जो गाइगर के गणक यन्त्र द्वारा स्वतः प्रतिक्रिया
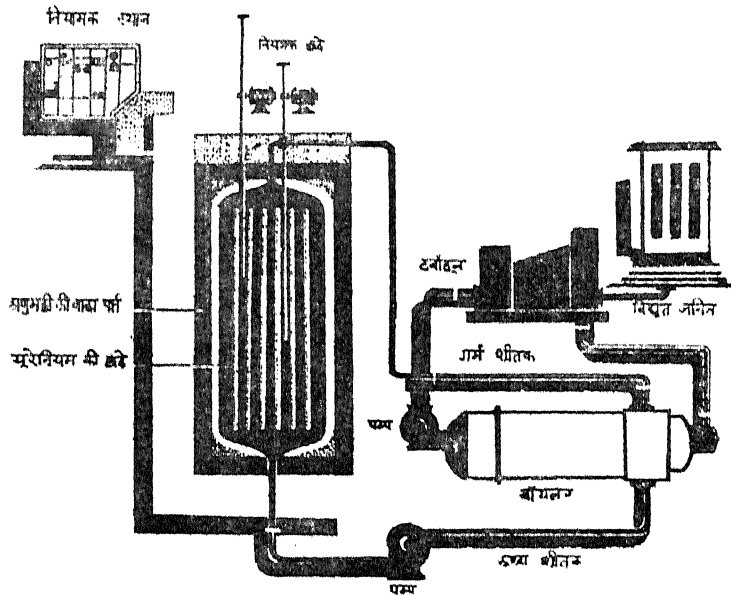
चित्र १ : न्यूक्लियर रिऐक्टर

को नियंत्रित रखती हैं। प्रतिक्रिया में U^{235} का परमाणु विच्छेदित होकर स्ट्रान्शियम, क्रिप्टन तथा न्यूट्रान उत्पन्न करता है। इस प्रतिक्रिया में बहुत उष्मा उत्पन्न होती है जो पात्र में से होकर प्रवाहित होने वाले किसी पदार्थ, जिसे शीतलक कहते हैं, के द्वारा बॉयलर तक पहुँचायी जाती है। शीतलक

बॉयलर के अन्दर रक्खी हुई कुण्डलियों से बह कर जल को तप्त करके वाष्प बनाते हैं जो टर्बाइन चलाती है जिससे विद्युत जनित्र द्वारा विद्युत शक्ति उत्पन्न होती है। रिएक्टर के समीप ही एक ऐसा यंत्र होता है जहाँ से मनुष्य द्वारा रिएक्टर में होने वाली क्रियाओं को नियंत्रित किया जाता है। यह स्थान **नियामक स्थान** कहलाता है।

उपरोक्त रिएक्टर बहुत भारी होते हैं तथा नियंत्रण आदि की कठिनाई के कारण पनडुब्बी आदि यंत्रों में प्रयुक्त करने योग्य नहीं होते हैं। चित्र २ में एक पनडुब्बी रिएक्टर की कार्य विधि समझाई गई है। अमेरिकन जल सेना ने सर्वप्रथम ऐसे रिएक्टर का पनडुब्बी में प्रयोग किया। शहरों में विद्युत वितरण के लिए भी उपरोक्त प्रकार के रिएक्टर प्रयोग किए जाते हैं। इनमें ऐसे यूरेनियम की छड़ें प्रयुक्त की जाती हैं जिनमें U^{235} की मात्रा प्रकृति में प्राप्त यूरेनियम की अपेक्षा कुछ अधिक होती है तथा इन छड़ों पर क्षयरोधक धातु की पर्त रहती है। इसमें १० टन से अधिक यूरेनियम लगता है। प्रतिक्रिया पात्र तथा उष्मा-विनिमय यंत्र एक गैस-रुद्ध पात्र में रखे होते हैं। अधिक दाब-युक्त प्रतिक्रिया पात्र एक कार्बन-इस्पात के ९ फीट व्यास वाले लगभग गोलाकार बर्तन में रखा होता है जो निष्कलंक इस्पात से ढका होता है। प्रतिक्रिया की गति बढ़ने पर जल के प्रसार के कारण अधिक न्यूट्रान बाहर निकल जाते हैं अतः यह रिएक्टर स्वतः नियंत्रित रहता है तथा इसमें नियंत्रक छड़ों की आवश्यकता नहीं होती।
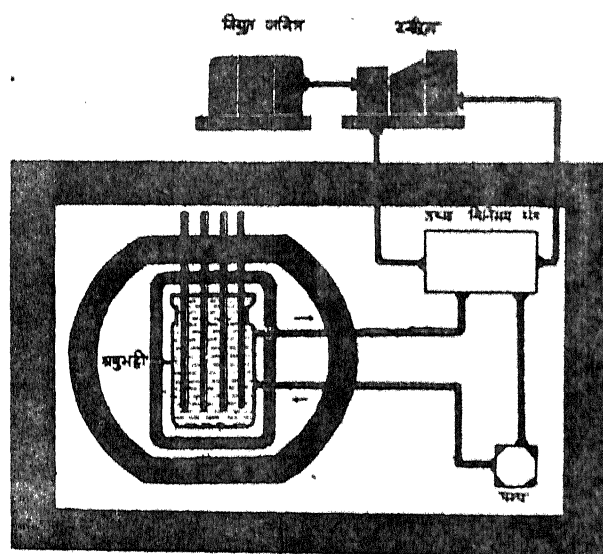
चित्र २ : पनडुब्बी का रिऐक्टर

इसमें प्रत्येक अधिक दाबयुक्त पात्र को मजबूत गैस-रुद्ध वर्तनों में रखा जाता है जिनमें अधिक दाब रहता है जिससे न्यूट्रान बाहर नहीं जाने पाते। इसमें जल को ही मन्दक तथा शीतलक के रूप में व्यवहृत किया जाता है। यह लगभग ५२५° फा० ताप पर कार्य करता है तथा ३००,००० किलोवाट उष्मा अथवा ६०,००० किलोवाट विद्युत शक्ति उत्पन्न करता है। इसमें उष्मा शक्ति को विद्युत शक्ति मेंपरिवर्तित करने की रीति पहले रिएक्टर की ही भाँति है। ऐसे रिएक्टर जिनमें प्रतिक्रिया पात्र में ही अधिक दाब (लगभग ६०० पाउन्ड प्रतिवर्ग इंच) पर जल रहता है दाबयुक्त-जल रिएक्टर (P. W. R.) कहलाते हैं। यद्यपि इस रिएक्टर से प्राप्त शक्ति मँहगी पड़ती है तथापि इसकी कार्य विधि अधिक विश्वसनीय है।

जैन-आगमोक्त ८८ ग्रह

अगरचंद नाहटा

भारत प्राचीन काल से विभिन्न संस्कृतियों का संगम रहा है। द्राविड़, वैदिक, और श्रमण संस्कृति तो विशेष रूप से उल्लेखनीय है। श्रमण संस्कृति के दो प्रधान भेद माने जाते हैं—जैन और बौद्ध। वैदिक संस्कृति तो अनेक भेदों में विभक्त है। दर्शन, धर्म, सम्प्रदाय भारत में अनेक हैं और उनका प्रभाव जन-मानस पर गहरा पड़ता है। इसलिए विचार और आचार में बहुत कुछ समानताएँ होने पर भी कुछ ऐसी असमानताएँ या विशेषताएँ होती हैं जो उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व की परिचायक हैं। वैदिक संस्कृति यज्ञप्रधान थी और श्रमण-संस्कृति निवृत्ति या त्यागप्रधान। जैन तीर्थंकरों ने इस भारतभूमि में ही जन्म लिया, यहीं महान् साधना करके कैवल्य-ज्ञान और मोक्ष प्राप्त किया। जैन-आगमादि ग्रन्थों के अनुसार श्रमण-संस्कृति भारत की प्राचीनतम संस्कृति है। भगवान ऋषभदेव, इस काल में इस संस्कृति के आदि पुरस्कर्ता माने गए हैं और उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम से ही इस देश का नाम 'भारत' पड़ा। वैसे जैन-ग्रंथों के अनुसार भरत क्षेत्र भी ५ हैं, उनमें से हमारा यह भारत जम्बू-द्वीप का दक्षिण भरत क्षेत्र है। ऋषभदेव के बाद २३ तीर्थंकर और हुए, उनमें अंतिम महावीर थे। पुराणों से यह समर्थित है।

पूर्ववर्ती २३ तीर्थंकरों की वाणी तो आज सुरक्षित नहीं है पर भगवान महावीर की वाणी जैन-आगमों में संकलित है। उसके अनुसार यह लोक तीन खंडों में विभक्त है। ऊर्ध्वखंड में देव रहते हैं, नीचे के खंड में नारकी और मध्य खंड में मनुष्य तथा पशु-पक्षी आदि तिर्यंच योनि के जीव। देव चार प्रकार के माने गए हैं—भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक। इनमें से ज्योतिष्क और वैमानिक तो ऊपर हैं, व्यंतर और भवनपति मध्यम और निम्नखंड के ऊपर में। ज्योतिष्क देवों के मुख्य ५ प्रकार हैं—चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा। और इन्हीं के आधार से ज्योतिर्विज्ञान का विकास हुआ है। जैन ग्रंथों के अनुसार चंद्र, सूर्य आदि सभी असंख्य हैं। उनमें कई चर हैं और कई स्थिर। इस जंबूद्वीप (भरत खंड) में दो चन्द्र और दो सूर्य परिभ्रमण करते रहते हैं। इन ज्योतिषी देवों के संबंध में जैन ग्रंथों में विस्तृत विवरण मिलता है पर यहाँ तो उनमें से केवल ग्रहों के संबंध में ही एक महत्त्वपूर्ण विवरण प्रकाशित किया जा रहा है।

साधारणतया ज्योतिष ग्रंथों में नव ग्रह प्रधान माने जाते हैं और उन्हीं पर फलादेश बतलाया जाता है पर प्राचीन जैनागम 'जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति-सूत्र' में ८८ ग्रहों के नाम मिलते हैं। समवायांग, स्थानांग आदि सूत्रों के अनुसार जम्बूद्वीप में दो चन्द्र हैं और प्रत्येक के ८८ ग्रह हैं। अतः १७६ ग्रह होते हैं। समभूतल पृथ्वी से ८८८ योजन ऊँचे ये ग्रह हैं और वहाँ से १२ योजन ऊँचाई तक फैले हुए हैं। 'शुक्र' महा ग्रह पश्चिम में उदय होता है और १९ नक्षत्रों के साथ भ्रमण करते हुए पश्चिम में ही अस्त हो जाता है। शुक्र महाग्रह की ९ वीथियाँ या क्षेत्र विभाग हैं—१. हयवीथि, २. गजवीथि, ३. नागवीथि, ४. वृषभवीथि, ५. गोवीथि, ६. उरगवीथि, ७. अजवीथि, ८. मृगवीथि और ९ वैश्वानरवीथि।

तारक-ग्रह ६ माने गए हैं—१ शुक्र, २ बुध, ३ वृहस्पति, ४ आंगारक (मंगल), ५ शनैश्चर, तथा ६केतु। टीकाकार ने लिखा है कि चंद्र, सूर्य और राहु को मिलाकर ९ ग्रह लोक में माने जाते हैं पर वे तीनों तारा के आकार के नहीं हैं इसलिए तारक ग्रह उनको छोड़कर ६ बतलाए गए हैं। आगे ८८ ग्रहों की नामावली दी जा रही है, उनके संबंध में जैनेतर ज्योतिष-ग्रंथों में कुछ विवरण प्राप्त हो, तो प्रकाश में लाना चाहिए। इन ८८ ग्रहों में से ३०वां ग्रह 'भस्मराशि' है जिसके संबंध में 'जैनागम कल्पसूत्र' में एक महत्वपूर्ण विवरण मिलता है। उसके अनुसार भगवान महावीर के निर्वाण के समय क्रूर स्वभाव वाला यह भस्मराशि नामक महाग्रह २००० वर्ष के लिए महावीर के जन्मनक्षत्र में संक्रान्त हुआ और उसके फलस्वरूप २००० वर्ष तक महावीर शासन की उन्नति में बाधा उपस्थित होगी। और उस ग्रह का प्रभाव समाप्त होने पर श्रमण निग्रंथ और निग्रंथियों का उदय पूजा-सत्कार होगा। 'कल्पसूत्र का वह उल्लेख नीचे दिया जा रहा है।

"जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं च णं खुद्दाए '**भासरासी**' नाम महागहे दो वास सहस्सट्ठिई समणस्स भगवओ महावीरस्स जम्मनक्खत्तं संकंते।

जप्पमिइं च णं से खुद्दाए **भासरासी**' महग्गहे **दो वाससहस्सा ट्ठई समणस्स भगवओ महावीरस्स जम्ननक्खत्तं संकते, तप्पमिइं च णं समणाणं निग्गं-थाणं निग्गंथीण य नो उदिए उदिए पूआसक्कारे पवत्तइ। जया णं से खुद्दाए जाव जम्मनक्खत्ताओ विइकंते भविस्सइ तया णं समणाणं निग्गंथाणं** निग्गंथीण य उदिए उदिए पूआ सक्कारे भविस्सइ।"

भस्मराशि जैसा महान् क्रूर ग्रह, जिसका प्रभाव २००० वर्षों तक भी रह सकता है, ऐसे ग्रह का भी ज्योतिष ग्रंथों का विशेष विवरण प्राप्त न हो तो यह आश्चर्य की ही बात होगी।

भारत में ज्योतिष-विद्या का विकास बहुत प्राचीन काल से है। वेदों के साथ भी इसका संबंध है, इसीलिए प्राचीन ज्योतिष-ग्रंथ का 'नाम वेदांग-ज्योतिष' मिलता है। पर समय-समय पर ज्योतिष-विषय मान्यताओं में अंतर आता गया। कुछ पुरानी परम्पराएँ लुप्त हो गईं और नए अनुसंधान एवं आविष्कार प्रकाश में आए। प्राचीन भारतीय ज्योतिष की जानकारी प्राप्त करने के लिए जैन-ग्रंथ बड़े ही महत्व के हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी-साहित्य की भूमिका' नामक ग्रंथ के के पृ० २५० में जैन साहित्य का परिचय देते हुए लिखा है कि "अंगों में साधारणतः जैनतत्त्वाचार, सिद्धान्त का संग्रह और जैन ऐतिहासिक कहानियाँ विवृत हैं। अनेकों में आचार-व्रत आदि का वर्णन है। उपांगों में से कई (नं० ५, ६, ७) बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। उनमें ज्योतिष, भूगोल, खगोल आदि का वर्णन है। **सूर्य-प्रज्ञप्ति और चन्द्र प्रज्ञप्ति (दोनों प्रायः समान वर्ण वाले हैं) संसार के ज्योतिषिक* साहित्य में अपना अद्वितीय सिद्धान्त उपस्थित करती हैं।** इनके अनुसार आकाश में दिखने वाले ज्योतिष्क पिंड दो-दो हैं, अर्थात् दो सूर्य, दो चन्द्र और दो-दो नक्षत्र। **वेदांग ज्योतिष की भांति ये दोनों ग्रंथ ख्रीष्ट पूर्व छठी शताब्दी के भारतीय ज्योतिष विज्ञान के रेकार्ड हैं।** सब मिलाकर जैन सिद्धान्त ग्रंथों में बहुत ज्ञातव्य और महत्त्व की सामग्री बिखरी पड़ी है। पर बौद्ध साहित्य की भांति इस साहित्य ने अब तक देश-विदेश के पंडितों का ध्यान आकृष्ट नहीं किया है।"

वर्तमान युग विज्ञान का है और जैन-ग्रंथों में 'परमाणु' आदि की बहुत-सी वैज्ञानिक सामग्री भरी पड़ी है। आजकल विज्ञान-जगत में ग्रहों और उपग्रहों की काफी चर्चा है। इसलिए जैन-आगमों

---

*ज्योतिषकरंड पयन्न भी महत्त्व का ग्रन्थ है

में जो ८ ग्रहों के नाम मिलते हैं उन्हें वैज्ञानिकों के सांमने उपस्थित किया जा रहा है, आशा है इस संबंध में कुछ ठोस अन्वेषण किया जायगा ।

८८ ग्रहों के नामों की गाथायें

गह णामाइं इमाहि (गाहा)

इंगालए बिआलए, लोहिअंके, सणिच्छरे, चेव ।
आहुणिए पाहुणियं कणग सणामायपंचेव ॥१॥
सोमे सहिए अस्सासणेय, कज्जोवएय कच्छूरए ।
अयकरए दुदुसए संखसणा भावि तिण्णेय ॥२॥
तिण्णेय कंसणामा, नीलरूप्पी हवंती चत्तारि ।
भासतिल पुप्फवण्णे, दगवण्णे काय बंभेय ॥३॥
इंदग्गि धूमकेऊ, हरि पिंगलए बुहेय ।
सुक्केय, विहस्सइ, राहु; अगत्थी, माण वगे कामफासेय ॥४॥

धुरए पमुहे वियडे, विसंधिकप्पे, तहा पयल्लेय ।
जडिआत्मए अरुणे, अगिले, काले महाकाले ॥५॥
सोत्थिय, सोवत्थियए; वद्धमाणग तहा, पलंबेय ।
निच्चालोए, णिच्चुज्जोए, सयपेहेचेव ओभासे ॥६॥
सेयकरे, खेमंकरे, आमंकरेय पभंकरेय ।
बोधव्वे अरए विरएय, तहा असोग, तहवी असोगेय ॥७॥
विमल वितत्त बिवच्छे, बिसाल तहसाल सुव्वएचेव ।
अनियट्टी एगजडी होइ विजडीय बोधव्वे ॥८॥
कर करिय राय अग्गल. बोधव्वे पुप्फ भावकेऊय ।
अट्ठासीइ गहा खलु णायव्वा आणुपुब्बीए ॥९॥

अट्ठासी ग्रहों के नाम—

१. अंगारक, २. विआलक, ३. लोहिताक्ष, ४. शनैश्चर, ५. आधुनिक, ६. प्राधुनिक, ७. कण, ८. कणक, ९. कणकणक, १०. कणविताणक, ११. कण-संतानिक, १२. सोम, १३. सहित, १४. अश्वासन, १५. कार्योपग, १६. कच्छुरक, १७. अजकरक, १८. दुंदभक, १९. शंख, २०. शंखनाभ, २१, शंखवर्णाभ, २२. कंश, २३, कंशनाभ, २४. कंशवर्णाभ, २५. नील, २६. नीलाभास, २७, रूप, २८. रूपावभास, २९. भस्म, ३०. भस्मराशी, ३१. तिल ३२. तिल पुष्पवर्ण, ३३. दक, ३४. दकवर्ण, ३५. काय, ३६. वंध्य' ३७. इन्द्राग्नि. ३८. धूमकेतु ३९. हरि, ४०. पिंगलक' ४१. बुध, ४२. शुक्र, ४३. वृहस्पति ४४. राहु, ४५. अगस्तिक, ४६. माणवक, ४७, काय स्पर्श, ४८. धूहक, ४९. प्रमुख, ५०. विकट, ५१. बिसन्धिकल्प, ५२. प्रकल्प, ५३. जटाल, ५४. अरुण, ५५. अगिल, ५६. काल, ५७. महाकाल, ५८. स्वस्तिक, ५९. सौवस्तिक, ६०. वर्द्धमानक, ६१. प्रलम्ब, ६३. नित्यलोक, ६३. नित्योद्योत, ६४. स्वयंप्रभ, ६५. अबभास, ६६. श्रेयस्कर, ६७. क्षेमंकर, ६८. आभंकर, ६९. प्रभंकर, ७०. अरजा, ७१. विरजा. ७२. अशोक, ७३. वितशोक, ७४. विमल. ७५. वितप्त, ७६. विवत्स, ७७. विशाल, ७८. शाल, ७९. सुव्रत, ८०. अनिवृंत्ति, ८१. एकजटि, ८२. द्विजटि, ८३. कर, ८४. करिक, ८५. राजा, ८६. अर्गल, ८७. पुष्पकेतु, ८८. भावकेतु ।

धातुओं की खोज में

डा० रमाशंकरराय

अतीत के गर्भ में छिपे हुए मानव-प्रयास के इतिहास का बोध उन बिखरे हुए ताम्र उपकरणों से होता है, जिनकी रचना वर्तमान लौह हथौड़ों से न होकर पाषाण खंडों से पीटकर की गई थी। नव-पाषाण कालीन सभ्यता की समाप्ति के साथ-साथ नगर सभ्यता का विकास हुआ। नदियों के तट पर अनेक नगर राज्यों की स्थापना हुई। राज्यों के उत्थान के साथ-साथ समृद्ध होने की लालसा से प्रेरित होकर मनुष्य ने प्रकृति से संघर्ष आरम्भ किया। प्राचीन परम्पराओं का द्रुत गति से परित्याग कर अभिनव प्रयोगों द्वारा प्रगति के पथ पर अग्रसर होकर मनुष्य ने धातुओं का उपयोग तथा उपभोग सीखा। वास्तव में वर्तमान सभ्यता की आधार-शिला उस समय रखी गई, जब धातु के बने पात्र, हथियार तथा अन्य उपकरणों का मानव-जीवन में समावेश हुआ। धातुओं की ओर मनुष्य का ध्यान उनकी उपादेयता, दीर्घ-कालीन नश्वरता तथा अन्य गुणों के कारण आकृष्ट हुआ। इन वैभवशाली नगरों के कारीगर धातुओं की खोज में भटकते रहे। इन पर्यटकों ने पारस्परिक विचार विनिमय द्वारा धातुकला का प्रसार किया।

आज से लगभग आठ सहस्र वर्ष पूर्व भूतल पर स्वच्छन्द रूप में पाई जाने वाली कतिपय धातुओं का ज्ञान हुआ। इस समय केवल सोना, चाँदी, ताँबा तथा उल्काओं से गिरे हुए लौह खंडों तक ही मनुष्य का ज्ञान सीमित था। लोग शुद्ध धातुओं तथा संकर धातुओं के भेद से अनभिज्ञ थे। प्राचीन परम्पराओं तथा पुरातत्व के साक्ष्य द्वारा यह प्रतीत होता है कि ईरान के उत्तरी-पूर्वी भाग में सर्व प्रथम धातु की बनी वस्तुएँ बनाई गईं। इस ज्ञान का प्रसार यहाँ से पश्चिमी एशिया के देशों में हुआ। खनिज पदार्थ तथा ईंधन दोनों ही कैस्पियन सागर के तटवर्ती प्रदेशों में अनेक स्थानों पर पाये गए। अतः इस क्षेत्र में धातुकला विकसित हुई और इसी केन्द्र से यह ज्ञान एशिया, अफ्रीका और यूरोप के अन्य देशों में फैला। कुछ विद्वानों का यह भी विचार है कि यह कला अन्य स्थानों पर स्वतंत्र रूप से विकसित हुई। भूतल पर शुद्ध धातु उपलब्ध होना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि अन्य तत्वों के साथ रासायनिक क्रिया द्वारा धातुओं के यौगिक बनते हैं। इन यौगिकों के साथ मिट्टी तथा अन्य पदार्थ भी मिले रहते हैं। इस मिश्रण को अयस्क कहते हैं। कैस्पियन सागर के तटवर्ती देशों में अयस्कों से शुद्ध धातु निकालने के लिए लकड़ी तथा लकड़ी का कोयला जलाया जाता था। इसके विपरीत पश्चिमी एशिया के देशों में लकड़ी का अभाव होने के कारण इस भूभाग में धातुएँ निकालने का कार्य नहीं होता था। यही कारण है कि नगर राज्यों की आवश्यकता-पूर्ति कैस्पियन सागर के पर्वतीय प्रदेशों में बनाई गई धातुओं के आयात द्वारा होती थी।

प्राकृतिक अवस्था में स्वतंत्र रूप में पाए गए ताँबे का रंग हरा बैंगनी या काला हरा होता था। सभ्यता के प्रारम्भ काल में मनुष्य इसी प्राकृतिक ताँबे का उपयोग करता रहा। इस घटना को घटे आज लगभग छः हजार वर्ष व्यतीत हो गए। इस समय पृथ्वी पर उपलब्ध ताम्र अयस्कों को पीटकर

हथियार बनाए गए। कालान्तर में ताँबे का यह प्राकृतिक भण्डार समाप्त हो गया, तथापि आज से पाँच सहस्राब्द पूर्व तक यह कला अविकसित बनी रही। फिर भी मानव अभियान चलता रहा। मनुष्य ने पृथ्वी पर उपलब्ध अयस्कों को पहचाना और उन्हें शुद्ध तथा परिष्कृत करने का प्रयास किया। आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व लकड़ी तथा लकड़ी के कोयले की आँच द्वारा ताँबे के आक्साइड को गलाया जाने लगा था। इस प्रकार गलाए गए ताँबे को ढालना भी प्रारम्भ हो गया था। लगभग इसी समय ताँबे के कार्बोनेट तथा आक्साइड अयस्कों से अथवा अशुद्ध ताँबे से कास्य-पात्र तथा अस्त्र भी बनने लगे। लकड़ी के कोयले के ढेर में रखकर तांबा गरम करने की विधि नितान्त दोषपूर्ण थी। इस विधि द्वारा निर्मित धातु में असंख्य छिद्र बन जाते थे। दूसरा दोष यह था कि समस्त धातु ताप की न्यूनता के कारण पिघल न पाती थी।

ताँबे के अस्त्रों के चिन्ह सर्व प्रथम मिश्र के पूर्व राज्यवंशीय काल में (३५०० ई० पू० से ३००० ई० पू०) मिलते हैं। इस प्रकार के हथियारों का निर्माण तीन विधियों से होता था—ताँबे के अयस्कों को अवकरित (Reduce) करके, गलाकर तथा हथौड़ों से पीटकर। तृतीय तथा द्वितीय सहस्राब्द ई० पू० के बीच में जिस ताँबे क निर्माण हुआ, उसमें सीसा, अंजन तथा टिन भी मिला रहता था। इन्हीं एक हजार वर्षों के अन्तगत ताप को तीव्र करने के लिए लकड़ी के कोयले का ईंधन धौंकनी द्वारा जलाया गया। प्राकृतिक वायु द्वारा धमन करके धातुएँ निकालने की विधि भी ज्ञात हो चुकी थी। आज से चार हजार वर्ष पूर्व ताँबे के सल्फाइड नामक अयस्क से ताँबा निकाला जाने लगा और एक हजार वर्षों के भीतर यह विधि इतनी व्याप्त हुई कि ताँबे के बने अस्त्रों का प्रचलन सर्व साधारण में भी हो गया। ताँबे के सल्फाइड नामक अयस्क से ताँबे को पृथक करने के लिए आँच में जलाया जाता था, और फिर इसे धमन क्रिया द्वारा उच्च ताप पर शुद्ध किया जाता था। पूर्वी यूरोप के अनेक स्थानों पर ताँबा शुद्ध करने के केन्द्रों की संस्थापना ईसा के जन्म से लगभग सत्तरह सौ वर्ष पूर्व हुई। शुद्ध ताँबा निकालने के लिए अयस्कों को ईंधन के साथ मिलाकर गरम किया जाता था। अग्नि शिखा में भस्म करने से अनेक अशुद्ध पदार्थ या तो नष्ट हो जाते थे, अथवा वाष्पीभूत या द्रवीभूत होकर निकल जाते थे। इसके उपरान्त इसे मिट्टी की बनी मूषा में कई बार गरम किया जाता था। इस प्रकार निकाले गए ताँबे में अशुद्धियों की मात्रा केवल पाँच प्रतिशत शेष रह जाती थी। कभी-कभी पिघले हुए ताँबे के ऊपर वायु का तीव्र झोंका प्रवाहित किया जाता था। इससे अशुद्धियाँ वायु की आक्सीजन के संसर्ग द्वारा धरातल पर तैरने लगती थीं। गरम करने पर ताँबा पहले की अपेक्षा मुलायम हो जाता है अतएव हथियार बनाने के लिए ताँबे को बिना गरम किए ही पीटा जाता था। गरम करके ताँबे के हथियार बनाने में और भी कठिनाइयाँ थीं। वायु की आक्सीजन के सम्पर्क से ताँबा आक्साइड में परिवर्तित हो जाता था, और इस प्रकार उसका कुछ भाग नष्ट हो जाता था। भंगुरता बढ़ जाने के कारण हथियार बनाने में यह अनुपयोगी सिद्ध हुआ।

ताँबे तथा टिन के मिश्रण को गलाने पर एक नवीन पदार्थ प्राप्त हुआ, जिसे कास्य की संज्ञा दी गई। यूरोप के कतिपय प्रागैतिहासिक स्थानों के उत्खनन से ज्ञात हुआ है कि एक साथ उपलब्ध होने वाले ताँबे तथा टिन को शुद्ध करने के प्रयास में कास्य का आविष्कार हुआ। ताँबे के साथ टिन मिलाकर पिघलाने पर ताँबे का कड़ापन बढ़ जाता है। साथ ही साथ ढालकर वस्तुएँ बनाने तथा पीटकर बढ़ाने में सरलता हो जाती है। इस नवीन आविष्कार के कारण इतिहास में कास्य काल का प्रारम्भ हुआ। कालान्तर में लोगों ने टिन का महत्त्व समझा और ताँबे तथा टिन के मिश्रण को गरम करके कास्य बनाने का वैज्ञानिक प्रयोग प्रारम्भ हुआ। प्राचीन

काल में टिन का उल्लेख बहुत ही कम मिलता है। आज से लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व पूर्वी एशिया में टिन के अयस्कों का पता चला, किन्तु न्यून मात्रा में उपलब्ध होने के कारण इसका आयात पश्चिम के देशों से होता था। यूरोप के देशों की ही भांति एशिया के देशों में ताँबे तथा टिन के मिश्रण का महत्त्व ज्ञात हुआ। इस मिश्रण को पिघला देने पर ताँबे की वस्तुओं की शक्ति और उपयोगिता दोनों ही बढ़ गई। इस संकर धातु को शुद्ध करने की भी आवश्यकता न थी। मेसोपोटामिया के उर नामक स्थान पर किए गए उत्खनन में कांस्य के पात्रों, अस्त्रों तथा अन्य वस्तुओं का उत्तम संग्रह मिला है। शनैः शनैः पूर्व के देशों का भण्डार समाप्त हो गया। यहाँ के व्यापारी टिन की खोज में पश्चिम की ओर गए, और डेन्यूब की घाटी में सुमेरियन परम्परा से मिलती-जुलती धातुओं का प्रसार हुआ। निरंतर प्रयोगों द्वारा आज से लगभग साढ़े तीन हजार वर्ष पूर्व यह अनुभव किया गया कि अधिक गुण वाले कांस्य के निर्माण के पहले टिन को अशुद्धियों से पृथक किया जाय और इसके उपरान्त इसकी तथा ताँबे की निश्चित मात्रा पिघलाई जाय। इस प्रकार के वैज्ञानिक प्रयोग द्वारा ऐसी संकर धातुएँ बनने लगीं, जिनसे हथियार, दर्पण, घंटे तथा अन्य सुन्दर वस्तुओं का निर्माण हुआ। हित्ती सभ्यता के इतिहास से यह पता चलता है कि यहाँ के निवासी साइप्रस से कांस्य का आयात करते थे।

अयस्कों से धातुएँ निकालने के लिए भट्ठी तथा धौंकनी की आवश्यकता होती थी। वायु के प्रवाह की तीव्र गति से अग्नि की ज्वाला का तापमान बढ़ जाता था। अयस्कों को ईंधन के साथ मिलाकर गरम किया जाता था। उसमें से जब अन्य अशुद्धियाँ निकल जाती थीं, तब धातु के ढेले निकाल लिए जाते थे। कांस्यकाल के समाप्त होने के कुछ पूर्व ही मिट्टी से ढंककर पत्थर से बनायी गई भट्ठियों का प्रचलन पूर्वी भूमध्यसागरीय देशों से यूरोप में फैल गया। प्राचीन कालीन भट्ठियाँ मिट्टी की बनी होती थीं, इनमें ताँबा पिघलाया जाता था। ताँबे का द्रवणांक १०८३ अंश सेन्टीग्रेड है। इतना उच्च ताप इन भट्ठियों में अवश्य ही रहा होगा। अयस्कों को गरम करके उनसे धातुएँ पृथक करना ही मुख्य ध्येय नहीं था, वरन् उन्हें पिघलाकर और ढालकर उपयोगी वस्तुएँ भी बनाना आवश्यक था। सुन्दर ढली हुई वस्तुएँ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि गलाते समय धातु को ईंधन से पृथक रखा जाय। अतएव अयस्कों को मिट्टी की बनी मूषा में रखा जाता था। कभी-कभी इसे मिट्टी तथा बालू से ढककर गरम किया जाता था। धातुओं को पिघलाने में प्रयुक्त इस प्रकार की मिट्टी की बनी मूषा मिश्र में पाई गई है, जिसका समय लगभग १३०० ई० पू० निश्चित किया गया है। ताँबा तथा अन्य धातुओं को गलाने के लिए उच्च ताप की आवश्यकता पड़ती है, अतएव भट्ठियों की अग्नि को प्रज्ज्वलित करने के लिए धौंकनी द्वारा नली से वायु प्रवाहित की जाती थी। वायु फूँकने की नलिकाओं के प्रमाण मिश्र में आज से लगभग साढ़े चार हजार वर्ष पूर्व पाए गए हैं। बेबीलोन तथा सुमेरियन सभ्यताओं भी धातु नलिकाओं के प्रमाण मिलते हैं। इनके द्वारा ईंधन और प्रज्ज्वलित हो उठता था, और ईंधन के सन्निकट रखी हुई मूषा का ताप बढ़ जाता था। मिश्र के थीब्स नामक स्थान पर एक मकबरे में आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व का एक चित्र उपलब्ध हुआ है जिसमें कांस्य से बने कपाटों की निर्माण विधि चित्रित की गई है। इस चित्र में यह भी दिखाया गया है कि कांस्य खुली मूषा में गलाया जाता था। आवश्यक ताप प्राप्त करने के लिए चार नलिकाओं द्वारा अग्नि प्रज्ज्वलित की जा रही है। इस प्रकार द्रवित कांस्य को सांचे में ढाला जाता था। उक्त सांचे में कई कीपे लगी रहतीं। मिश्र के सक्कारा नामक स्थान पर एक अन्य समकालीन मकबरे में दूसरा चित्र मिला है। इसमें यह दिखलाया गया है कि मिश्र के स्वर्णशिल्पी फूँकने के लिए नलियों का

उपयोग करते थे। इन नलियों के किनारों पर मिट्टी लगी रहती थी। पिघली हुई धातु को मूषाओं में स्थानान्तरित कर दिया जाता था। ठंडा हो जाने पर उसे पत्थर के हथौड़ों से पीटा जाता था। असीरियन तथा सुमेरियन सभ्यताओं में भी भट्ठियों के अवशेष पाए गए हैं। पिघलाने तथा ढालने का कार्य सर्व प्रथम मेसोपोटामिया में ही प्रारम्भ हुआ। आज से साढ़े पाँच हजार वर्ष पूर्व छोटी-छोटी वस्तुएँ खुले साँचों में ढाली जाती थीं। तांबा तथा कांस्य बनाने का कार्य साथ-साथ चलता रहा। ताँबे तथा कांस्य का निर्माण मिश्र के अतिरिक्त ,अन्यत्र भी प्रायः इसी समय प्रारम्भ हुआ। अतएव ताम्रकाल और कांस्य काल की संधि ज्ञात करना कठिन है। केवल मिश्र में इस नियम का अपवाद मिलता है क्योंकि यहाँ पर कांस्य का प्रचलन आज से लगभग चार सहस्राब्द पूर्व हुआ। ताँबे तथा टिन के मिश्रण से बनी हुई वस्तुओं में सीसा, ऐन्टीमनी, आर्सेनिक तथा जस्ता भी पाया जाता है। एशिया के पश्चिमी देशों में पाई गई इस संकर धातु में टिन की मात्रा अधिक होती थी। तथापि कतिपय वस्तुएँ ऐसी भी हैं, जिनमें आर्सेनिक तथा ऐन्टीमनी भी पाया जाता है। आर्सेनिक तथा ऐन्टीमनी मिला कांस्य मिश्र, सिन्ध घाटी , हंगरी तथा काकेशस प्रदेश में पाया गया है। आर्सेनिक की उपस्थिति के कारण कांस्य और भी कड़ा हो जाता था, ढालकर वस्तुएँ बनाने में सरलता होती थी, किन्तु धातु की भंगुरता बढ़ जाती थी। इस प्रकार के कांस्य का उपयोग अनजान में ही होने लगा , इसका न तो लोगों को ज्ञान ही था, और न तो इस लक्ष्य से इसका आविष्कार किया गया था।

शुद्ध टिन धातु का विवरण प्लिनी के लेखों में पाया जाता है। इसके काले रंग के अयस्क को कस्तीरा या केसीटराइट कहा जाता था। आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व यूरोप के कई स्थल टिन के निर्यात के लिए प्रसिद्ध थे। स्पेन में टिन का निर्यात अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होता था। एशिया के भूभागों की अधिकांश आवश्यकता स्पेन के टिन से ही पूरी होती थी। पहले टिन के अयस्कों को तोड़ा जाता था, फिर इसे कोयले के साथ मिलाकर गरम किया जाता था। इस प्रकार खुली भट्ठी में गरम करने पर कुछ टिन पिघलकर उड़ जाता था, और कुछ अन्य अशुद्धियों के साथ मिल कर बह जाता था। यही कारण है कि १५०० ई० पू० से पहले टिन का पृथक उत्पादन न हो सका, यद्यपि कांस्य बनाने में इसका उपयोग होता था। पूर्व के देशों की परम्परा पश्चिम के देशों से सर्वथा भिन्न रही है। यहाँ की विलक्षण प्रकृति सभ्यता की एकता और अनेकता की जन्मदात्री रही है। पूर्व के देशों में टिन के साथ सोना भी पाया जाता था। यहाँ के कुशल स्वर्णकारों ने इसे सोने से पृथक भी कर लिया, किन्तु उनकी धारणा थी कि यह नवीन धातु एक विशेष प्रकार का सीसा है। हित्ती सभ्यता के इतिहास से यह पता चलता है कि यहाँ के निवासी साइप्रस से टिन का आयात करते थे। मिश्र में टिन का प्रचलन लगभग एक हजार ई० पू० में हुआ। इस देश की ६०० ई० पू० की बनी कब्र से एक टिन की छड़ मिली है। असीरिया के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि टिन को 'श्वेत कांस्य' की संज्ञा दी गई थी।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि मिश्र तथा पश्चिमी ऐशिया के देशों में कांस्य के साथ आर्सेनिक तथा ऐन्टीमनी धातुएँ भी मिश्रित होती थीं। आर्सेनिक तथा ऐन्टीमनी के अयस्क रंग, अंजन तथा औषधि बनाने के लिए प्रयुक्त होते थे। शुद्ध ऐन्टीमनी धातु की बनी अनेक वस्तुएँ हंगरी में पाई गई हैं। इनके अतिरिक्त और भी वस्तुएँ ऐसी मिली हैं, जिनमें ऐन्टीमनी की मात्रा लगभग बीस प्रतिशत है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह धातु उन्हीं स्थानों पर शुद्ध की जाती थी, जहाँ ऐन्टीमनी और ताँबा साथ-साथ पाए जाते थे। इस प्रकार की मिश्रित धातु बनाने का न तो कोई उद्देश्य था , और न कोई नियोजित विधि ही ज्ञात थी। आगे चल कर ऐन्टीमनी को अलग करने की क्रिया ज्ञात हुई और इसका व्यापार

भी बढ़ा। मेसोपोटामिया में शुद्ध ऐन्टीमनी धातु की बनी अनेक वस्तुएँ पाई गई हैं। इन वस्तुओं को बनाने के लिए ऐन्टीमनी का अयस्क काकेशस पर्वत के निकटवर्ती प्रदेशों से लाया जाता था। यहाँ पर ऐन्टीमनी सल्फाइड अधिक मात्रा में मिलता था और इसे गरम करके ऐन्टीमनी धातु निकाली जाती थी। यद्यपि इस समय शुद्ध ऐन्टीमनी धातु का प्रचलन हो गया था, तथापि इसके गुणों से लोग अनभिज्ञ थे। इस कथन की पुष्टि प्लिनी तथा डायोस्कराइड्स के लेखों से होती है। इन इतिहासकारों ने व्यापारियों को चेतावनी दी कि ऐन्टीमनी के बने पात्रों में कतिपय प्रयोग न करें, अन्यथा भय है कि यह धातु सीसे में परिवर्तित हो जायगी।

तांबे को रसक (Calamine) के साथ गरम करके पीतल बनाया गया। रसक जस्ते का एक अयस्क है। प्राचीन काल में अधिक समय तक लोग जस्ते से अनभिज्ञ थे। उत्खनन से प्राप्त कतिपय अतीतकालीन पीतल के पात्रों का निर्माण केवल एक घटना मात्र थी। इनके बनाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया था। तांबे के अयस्कों के साथ प्राकृतिक अवस्था में मिश्रित जस्ते को गरम करने पर यह परिवर्तन हो गया। पीतल बनाने की कला बहुत पुरानी नहीं है, क्योंकि प्राचीन धातु शिल्पी इस प्रकार की धातु-निर्माण करना नहीं जानते थे।

भूलोक की कामधेनु—धरती

उमाशंकर सिंह

सुरलोक में देवताओं के पास कामधेनु है। उसी पर वहाँ का सम्पूर्ण सुख, समस्त वैभव आश्रित है। उसके अमृतोपम दुग्ध का पान कर देवतागण न जाने कब से प्रसन्न और प्रफुल्लित रहते हैं। वही देवों की सुसम्पन्नता, प्रसन्नता और सुख की धात्री है। प्रश्न उठता है क्या भूलोक में मनुष्य के पास भी ऐसी कामधेनु है! वह कहाँ है! नहीं-तो क्या देवता और मानव में भेदभाव रखा गया है!

स्रष्टा की समस्त सृष्टि में समता व्याप्त है। न कहीं विरोध है, न कहीं वैषम्य। यदि देवों को सर्व सुख प्रदान करने वाली काम धेनु मिली है तो मनुष्यों को कल्पवृक्ष के समान फल देने वाली धरती! मृत्युलोक की यह सर्वोत्कृष्ट विभूति और स्रष्टा की श्रेष्ठतम रचना क्या सुरलोक की कामधेनु से कम है! वह तो केवल देवों का ही उपकार करती है, पर भूलोक की यह कामधेनु आगणित प्राणियों का—चाहे पशु हों, अथवा पक्षी, कीट पतिंगें हों अथवा पेड़ पौधे, मानव अथवा दानव, सभी का समान पोषण करने वाली यह धरती क्या कम गौरवशालिनी है! इसकी श्रेष्ठता की सुरलोक की काम धेनु से तुलना ही क्या, जो देव और दानव में विभेद रखती है।

धरती क्या है ?

साधारण दृष्टि से पृथ्वी के सम्पूर्ण ऊपरी भाग को धरती कहते हैं पर कृषि विज्ञान की दृष्टि से यह ठीक नहीं ऊँचे नीचे टीले, चट्टानों के विशाल पर्वत भी तो पृथ्वी के ही ऊपरी भाग हैं ! पर क्या इन्हें धरती कहा जा सकता है ? नहीं, इनमें वे गुण नहीं जिसमें धरती सभी प्राणियों का पोषण करती है।

फिर धरती क्या है ? सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि युगों ने शिलाओं के क्रमिक विघटन द्वारा उत्पन्न कणों तथा जीवधारियों के सड़ने से उत्पन्न जीवांश द्वारा निर्मित भूतल की यह पतली तह जो वायु, जल और सूक्ष्म जीवाणुओं से मुक्त हो वनस्पतियों के अंकुरण , विकास और प्रजनन के लिये उपयुक्त वातावरण प्रदान करती है "धरती' है। साधारणतया इसमें ४०% खनिज अंश, १०% जीवांश, २५% जल और २५% वायु रहती है। (धरती को वैज्ञानिक शब्दावली में मिट्टी, मृत्तिका या भूमि कहना अधिक युक्ति संगत होगा) ।

निर्माण की कहानी

धरती के निर्णाण की कहानी बड़ी ही रोचक है। विद्वानों का मत है कि पृथ्वी सूर्य का एक अंश है। सूर्य पिण्ड के तीव्र गति से घूमने के कारण यह उससे अलग हो गई और धीरे-धीरे ठंढी होने लगी। जैसे गर्मी से पिघली हुई वस्तुयें ठंढी होने पर कठोर रूप धारण कर लेती हैं, उसी प्रकार यह पृथ्वी भी ठंडी होकर चट्टान के रूप में परिवर्तित हो गई। धीरे-धीरे ये चट्टानें भौतिक, रासायनिक और जैविक प्रभावों से विघटित हुई। उनसे छोटे छोटे कण निकले और धरती का निर्माण हुआ। इस धरती के निर्माण में विघटनात्मक और सृजनात्मक दोनों ही प्रकार की शक्तियों का योगदान है।

वैज्ञानिकों ने कार्य प्रणाली के आधार पर निर्माण-कारी साधनों को तीन वर्गों में विभाजित किया है; ये हैं—भौतिक, रासायनिक तथा जैविक। भौतिक साधनों में वायु, जल, भाप, हिम, ग्लेशियर, आदि का प्रमुख स्थान है। इनके प्रभाव से जिन चट्टानों का विघटन हुआ है उनके गुण ज्यों के त्यों निर्मित भूमि में पाये जाते हैं। जितने खनिज अंश जिस रूप में चट्टान में उपस्थित थे, सभी भूमि में भी पाये जाते हैं। इन विभिन्न भौतिक साधनों ने बड़ी-बड़ी शिलाओं को प्रभावित कर छोटे-छोटे कणों के रूप में परिवर्तित होने तथा भूमि के निर्माण में सहायक बनने में अपूर्व योग दिया है।

रासायनिक साधनों में आक्सीजन , हॉइड्रोजन, कार्बन डाइआक्साइड आदि का विशेष महत्त्व है। ये शिलाओं के खनिज अंशों के साथ मिलकर अथवा उनसे विलग होकर उन्हें विघटित होने में सहायक बने। जिस प्रकार पानी तथा वायु के प्रभाव से लोहा मोरचा में परिवर्तित हो कर धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है उसी प्रकार चट्टानों में उपस्थित लौह अंश पर प्रभाव पड़ने के कारण वे भी दुर्बल हो गई और धीरे-धीरे विघटित हो भूमि के रूप में परिणत हुई। इसी प्रकार प्रायः कार्बन , हाइड्रोजन आदि भी अपना प्रभाव डालते हैं। कार्बन डाइआक्साइड के पानी के साथ विलयित होने पर कार्बोनिक अम्ल बनता है जो शिलाओं के क्षारीय अंशों को विलेय करने में समर्थ होती है।

भौतिक और रासायनिक साधनों के अतिरिक्त जैविक साधनों का भूमि के निर्माण में कम महत्त्व नहीं है। विभिन्न जीवधारियों जैसे पेड़-पौधे, जीव जन्तु, आदि ने सामूहिक रूप से शिलाओं के विघटन तथा भूमि में उपस्थित जीवाशों की वृद्धि में सहयोग दिया है। भूमि में उपस्थित सम्पूर्ण जीवांश इन्हीं जैविक पदार्थों के अवशेष रूप में उपस्थित है।

जीवन दायिनी धरती

जन्म, विकास, प्रजनन और मरण यही जीवन के लक्षण हैं। किस प्रकार यह धरती जीवन के इन चार अनिवार्य अंगों को प्रभावित करती है, यह

विचारणीय विषय है। जीवन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत मतान्तर प्रचलित हैं। कहीं तो सृष्टि के आदि में एक कोष वाले जीव की उत्पत्ति, तदुपरान्त बहुकोषीय जीवों की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है, पर कहीं विभिन्न वर्गीय जीवों की स्वतंत्र उत्पत्ति का वर्णन है। चाहे जो भी हो, इतना निश्चित प्रतीत होता है कि उनकी उत्पत्ति इसी धरती पर हुई होगी और इसी ने उनका पोषण किया होगा।

समस्त जीवों का विकास धीरे-धीरे होता है। इनके विकास के लिये आहार की आवश्यकता पड़ती है। बिना आहार के न तो विकास सम्भव है और न जीवन। भूतल के समस्त जीव अपना आहार इस भूमि से ही प्राप्त करते हैं। सर्व प्रथम इस धरती से आहार ले, पौधे बढ़ते, फूलते और फलते हैं। वे भूमि से प्राप्त जल और विभिन्न तत्वों को ले अपनी पत्तियों में सूर्य रश्मियों से शक्ति प्राप्त कर हरित पदार्थ की सहायता से वायुमण्डलीय कार्बन डाई-ऑक्साइड से कार्बन ग्रहण कर संश्लेषण द्वारा कार्बो-हाइड्रेट का निर्माण करते हैं जिनसे उनका विकास होता है। भूमि से प्राप्त विभिन्न तत्वों के संयोग से ही अन्य पदार्थ जैसे प्रोटीन, वसा, विटामिन आदि का निर्माण भी पौधों से ही होता है, जिनसे पशु, पक्षियों, कीट-पतिंगों, तथा मनुष्यों का पोषण होता है।

मानव जीवन पोषण की अद्भुत शक्ति और अनुपम गुण के कारण ही धरती का गौरव युग-युग से सादर स्वीकृत है। सांसारिक भोगों में लिप्त मानव ही नहीं, साधु, सिद्ध, संत, मुनि, और योगी भी इसके दास हैं। यही सब की धात्री है। इसी के भरोसे जन्म, विकास, प्रजनन और मरण की शृंखला सदैव निर्बाध गति से चलती रहती है।

भय, चिंता और त्राहि आदि का कारण

समस्त विश्व की जन संख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। १९५१ के आंकड़ों के अनुसार भारतवर्ष की जन संख्या ३६ करोड़ थी। परन्तु आजकल ४३ करोड़ से ऊपर है और यदि यही गति बनी रही तो १९६६ तक यह ४८ करोड़ हो जायगी।

एक ओर तो जन संख्या वृद्धि की यह तीव्र गति और दूसरी ओर धरती के उत्पादन का क्रमिक ह्रास देखा जाता है। १९३६-३७ में यहाँ की धरती प्रति एकड़ ८२० पौ० चावल, ६३७ पौ० गेहूँ, ८१० पौ० जौ, ५८९ पौ० ज्वार, ३७८ पौ० बाजरा और ५६७ पौ० चना उत्पन्न करने की क्षमता रखती थी। १९५७-५८ तक घटते-घटते यह शक्ति इतनी क्षीण हो गई कि औसतन केवल ७०३ पौ० चावल, ५७८ पौ० गेहूँ, ६४७ पौ० जौ, ४३५ पौ० ज्वार, २९१ पौ० गेहूँ, ६४७ पौ० जौ, ४३५ पौ० ज्वार, २९१ पौ० बाजरा और ४७५ पौ० चना प्रति एकड़ पैदा होने लगा। इस प्रकार विगत बीस वर्षों में ही धरती की उर्वरता के ह्रास के कारण चावल, गेहूँ, जौ, ज्वार, बाजरा, चना आदि प्रमुख फसलों की उपज में क्रमशः १४.३, ९.३, २०.१, १८.९, २३.० और १६.२ प्रतिशत की कमी हुई है। यदि जन संख्या की वृद्धि और धरती की उर्वरता का ह्रास इसी प्रकार चलता रहा तो निश्चय ही निकट भविष्य में खाद्य संकट उत्पन्न हो सकता है। यही भावी संकट की कल्पना आज भय, चिन्ता और त्राहि त्राहि का कारण बन रही है।

संकट से बचने के उपाय

सम्भावित अन्न संकट से बचने का क्या कोई उपाय नहीं है? मानव जीवित रहने के लिये उत्पन्न हुआ है और उसके लिये उसे आवश्यक साधन भी उपलब्ध हैं। यदि धरती आज तक निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या का युगों से पोषण करती आई है तो आगे भी अवश्य करेगी। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि मनुष्य प्रकृति के नियमों में अवरोध उत्पन्न न करे। स्वार्थपरता से दूर हट, धरती के साथ अन्योन्याश्रय सम्बन्ध स्थापित कर इससे जो कुछ प्राप्त करता है, उसके बदले में उसे भी कुछ दे। उसके शोषण की ही रीति न अपनाये, वरन् उसे भी वह वस्तु दे जिससे वह सम्पन्न बन सके।

तभी कल्याण सम्भव है। धरती खनिज अंश, जीवांश, वायु और जल के संयोग से बनी हुई है। फिर उसके इन्हीं अंशों की उपयुक्त मात्रा में आवश्यकता होती है। खनिज अंश, वायु और जल तो प्रकृति में प्रचुर मात्रा में यों ही उपलब्ध हैं। उन्हें पहुँचाने की आवश्यकता नहीं! कृषक केवल जीवांश को पर्याप्त मात्रा में पहुँचाकर धरती की क्षतिपूर्ति कर सकता है। यही वह पदार्थ है जिसकी आवश्यकता भारतीय भूमियों को है। युगों से निरन्तर फसलें लेते रहने के कारण इसकी कमी हो गई है। वायु, जल और ताप के प्रचंड प्रहार से इसी अंश को अधिक क्षति पहुँची है! किसी ने ठीक लिखा है—

खाद पड़े तो होवे खेती,
नाहि तो रहे नदी की रेती।

भारतीय भूमि में जीवांश का नितांत अभाव है। उसे हमें अधिक उत्पादन के लिये जैविक खादों द्वारा अधिक से अधिक मात्रा में देना चाहिये। बड़े-बड़े कारखानों में निर्मित अनेक प्रकार की रासायनिक खादें, चाहे विभिन्न खाद्य तत्वों की पूर्ति भले ही कर दें पर वे धरती को जीवांश, जो उसे जीवन प्रदान करता है, नहीं पहुँचा सकती है। अतएव कृषक को अधिक से अधिक गोबर, कूड़ा-करकट, कम्पोस्ट, हरी खाद आदि का प्रयोग कर अपने खेतों में जीवांश की वृद्धि करनी चाहिये।

राष्ट्रीय बचत आन्दोलन
भारत के करोड़ों निवासियों
की सुख-समृद्धि के
प्रयत्नों को सफल बनाने का
साधन
राष्ट्रीय बचत सिक्योरटियों में रुपया
जमा कर
आप अपने बुढ़ापे और अपने बच्चों की
खुशहाली केलिए व्यवस्था करें
राष्ट्रीय बचत योजना
देश और व्यक्ति दोनों केलिए
कल्याणकारी है
रु-१
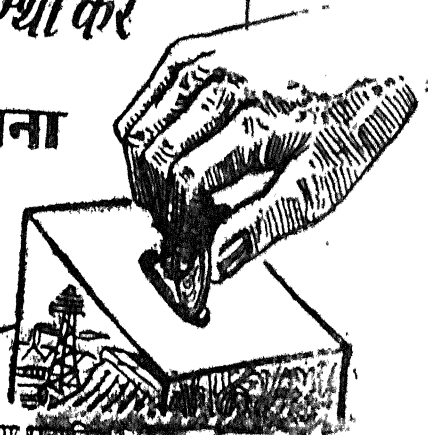
१. चाय से निर्मित औषधियाँ

अनजान व्यक्ति को चाय बागानों की काटी-छांटी चीजें, अर्थात् खुरदरी पत्तियों वाली टहनियाँ—और चाय तैयार करने तथा पैक करने वाले कारखानों में तलछट के रूप में बच रहने वाला चाय का बारीक चूरा सम्भवतः बेकार प्रतीत हो। किन्तु यह "बेकार" पदार्थ कैफीन नामक प्राकृतिक औषधि के निर्माण के लिए एक अत्युत्तम तथा सस्ता पदार्थ है। यह औषधि स्नायविक प्रणाली पर गुणकारी प्रभाव डालती है, बाह्य मस्तिष्क के उत्तेजनात्मक एवं निषेधात्मक केन्द्रों का नियमन करती है और श्वास-प्रक्रिया एवं हृदय के लिए उत्तम, उत्तेजक एवं शक्ति-वर्द्धक है।

कैफीन, थियालबीन, विटामिन :

कालासागर के तट पर स्थित बातूमी में चाय की काटी-छांटी, बची-खुची वस्तुओं से कैफीन तैयार करने का कारखाना है, जो यूरोप में अपने ढंग का एकमात्र संस्थान है। अभी कुछ ही दिन हुए वहाँ आधुनिकतम मशीनों से सज्जित एक नयी चार-मंजिला दूकान का निर्माण हुआ और उसने काम प्रारम्भ कर दिया है। तेल तथा चर्बी उद्योग में काम आने वाली मशीनें वहाँ पहली बार उपयोग में लाई गईं। फलस्वरूप उसी कच्चे माल से उपयोगी उत्पादन की उपलब्धि की मात्रा दुगुनी हो गई है।

कैफीन का उत्पादन निरंतर बढ़ रहा है। इस औषधि की सोवियत संघ में और उसके बाहर दोनों जगह भारी मांग है। यह फैक्टरी अपने तैयार माल को यूरोप के अनेक देशों को और भारत, संयुक्त अरब गणराज्य तथा क्यूबा को भेजती है। जार्जियाई वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि चाय की बची-खुची वस्तुओं से कैफीन के अतिरिक्त और भी उपयोगी पदार्थ प्राप्त किये जा सकते हैं। कैफीन निकालने के बाद बचे तरल पदार्थ में मूल्यवान टैनिन तथा अन्य उपयोगी पदार्थ रहते हैं। फैक्टरी के विशेषज्ञों ने वैज्ञानिकों के सहयोग से, इस तलछट से थियालबीन नामक एक नयी औषधि तैयार करने का तरीका खोज निकाला है। यह पदार्थ पेट व आंतों की बीमारियों के लिए अत्यन्त गुणकारी औषधि है।

सोवियत विज्ञान अकादमी के बायोकेमिस्ट्री इंस्टीच्यूट द्वारा किये गये अनुसन्धानों से पता चला कि चाय के टेनिनों में विटामनि पी का-सा प्रभाव है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि केश-वाहिनी नाड़ियों को सामान्य स्थिति में रखने के लिए यह विटामिन आवश्यक है। बायोकेमिस्टों ने चाय की पत्तियों से विटामिन पी निकालने की एक विधि प्रस्तुत की है। यह विधि बातूमी कैफीन फैक्टरी द्वारा अपना ली गई है। उसने इस हेतु एक संयंत्र का निर्माण किया है जहाँ केवल चाय की हरी पत्तियों से ही नहीं, बल्कि कैफीन तैयार किये जाने के बाद बचने वाले तरल पदार्थ से भी विटामिन पी तैयार किया जाता है।

बातूमी में विटामिन पी के उत्पादन की अत्यन्त बृहद् सम्भावनाएँ हैं क्योंकि इसके उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल की जार्जिया में बहुतायत है,

जिसका उपयोग फैक्टरी द्वारा अभी तक बहुत थोड़ी मात्रा में ही किया जा रहा है। नयी-नयी औषधियों के निर्माण में अपने जीवन के ४७ वर्ष बिताने वाले अकादमीशियन इयोवेल कुतातेलाद्ज़े का कहना है :

"यदि हम चाय की समस्त बची-खुची चीजों का पूरी तरह उपयोग करें तो हम समस्त संसार की थियालबीन और विटामिन पी की पूर्ति कर सकते हैं।"

न तो चाय की तलछट एकमात्र कच्चा माल है जो बातूमी कारखाना इस्तेमाल करता है, और न कैफीन अकेला तैयार माल है जिसका वह निर्माण करता है। विभिन्न पदार्थों के निर्माण के लिए यह कारखाना अन्य कच्चे माल भी प्रयोग करता है। ये कच्चे पदार्थ कारखाने को सोवियत संघीय सार्वजनिक स्वास्थ्य मंत्रालय के कोबुलेती औषधीय जड़ी-बूटी राज्य फार्म द्वारा सप्लाई किये जाते हैं। यह फार्म बातूमी से कोई १५ मील की दूरी पर स्थित है और सोवियत संघ तथा यूरोप में एकमात्र ऐसा संस्थान है जहाँ उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों के पौधे व्यावसायिक पैमाने पर उगाये जाते हैं, यद्यपि यहाँ का समशीतोष्ण कटिबन्ध संसार में सबसे शीतल है।

इन पौधों में एक है मुसब्बर, जो पेड़ जैसा एक सदाबहार पौधा है और जिसमें घनी, मांसल और नोकदार पत्तियाँ आती हैं। कोबुलेती के वैज्ञानिकों ने यह जानने के लिए कि व्यावसायिक रूप से उगाये जाने पर यह पौधा किस प्रकार विकसित होता है और यह कौन से उर्वरकों को अधिक पसंद करता है, इस पौधे का जैविक अध्ययन किया है। इस उष्ण कटिबन्धीय पौधों को स्थानीय जलवायु में खेतों में उगाने के लिए इसे वैज्ञानिकों ने एक वार्षिक पौधे में परिणित कर दिया है।

मुसब्बर को अनेक देशों में लोग पेट व आंतों के रोगों के इलाज के लिए, जख्मों के भरने के लिए एक कीटाणु-नाशक के रूप में और अन्य औषधीय उद्देश्यों के लिए प्राचीन काल से प्रयोग करते आये हैं। बातूमी कारखाना मुसब्बर से तीन चीजें तैयार करता है : मुसब्बर का रस, मुसब्बर का पायस और लौहयुक्त रस।

मुसब्बर के रस का प्रयोग जलने से उत्पन्न घावों, पीबमय घावों और पाचन प्रणाली के फोड़ों के इलाज के लिए किया जाता है। इसके प्रयोग से फोड़ों तथा घावों की शीघ्र सफाई हो जाती है। मुसब्बर का लौहयुक्त रस रक्त हीनता में गुणकारी है। यह रक्त में स्पष्ट रूप से सुधार एवं अभिवृद्धि करता है और रक्तकणों के जमाव के अनुपात में कमी लाता है। मुसब्बर का पायस त्वचा के विकारों के इलाज में अत्यन्त प्रभावशाली है।

इस कारखाने द्वारा निर्मित नयी औषधियों की सूची और भी बढ़ायी जा सकती है। उदाहरणार्थ, इनमें "पैसीफ्लोरा का तरल अर्क" शामिल है जो सुन्दर **ब्रजीलियन लियाना पैसीफ्लोरा इनकारनाटा** से प्राप्त किया जाता है। यह पौधा भी कोबुलेती राज्य फार्म द्वारा उगाया जाता है। शान्तिकारिणी औषधि के रूप में यह ब्रोमीन से अधिक प्रभावशाली है।

एक और औषधि है—**विचूर्णित प्लाटिफिलिन,** जो नेत्र रोगों के इलाज के लिए प्रयुक्त की जाती है। यह औषधि **प्राउंडसेल** की जड़ों से तैयार की जाती है जिसकी जार्जिया के पर्वतों में बहुतायत है। एक अन्य जंगली पौधे, रेस्ट-हैरो की जड़ें धमनियों के फूलने (खूनी बवासीर) के इलाज के लिए एक टिंक्चर तैयार करने के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। **एम्मी** जाति के एक पौधे के बीज **केलिन** प्रदान करते हैं, जो दमे को दूर करता है। इस समय यह कारखाना **लिलि मैगनोलिया** (कुमुदनी) के तरल अर्क के उत्पादन का आयोजन कर रहा है जो स्नायविक तनाव की आरम्भिक अवस्थाओं में गुणकारी है।

औषधीय मिट्टी

जार्जियाई वैज्ञानिकों ने औषधियों के निर्माण के लिये एक और कच्चे माल की स्वीकृति दी है—यह है मखाराद्ज़े जिले के अस्काना गाँव के निकट से

खोदी जाने वाली प्राकृतिक मिट्टी। अनुसन्धानों से पता चला है कि उचित शोधन के बाद यह मिट्टी जिंक, स्टैप्टोसाइड, आयोडीन, मर्क्यूरियल, आदि समस्त मलहमों के लिए आधार के रूप में इस्तेमाल की जा सकती है और इस प्रकार आयातित अरबी गोंद का स्थान ग्रहण कर सकती है। इसका सबसे बड़ा गुण यह है कि जिन मलहमों का यह आधार होती है, वे कभी खराब नहीं होते। अस्काना मिट्टी रेंडी के तेल के अप्रिय स्वाद एवं गन्ध को हर लेती है और इससे तैयार किया गया पायस अरबी गोंद को आधार बना कर तैयार किए गए पायसों की अपेक्षा रोगियों को अधिक रुचता है। बातूमी कारखाने ने इस मिट्टी से तैयार एक नयी औषधि "तिखा-अस्काने" का निर्माण शुरू कर दिया है।

बातूमी कैफीन कारखाने की विशद् सम्भावनाएँ हैं। इसका निर्माण इस प्रकार किया गया है कि यह अपने उत्पादन को काफी बढ़ा सकता है। यह कारखाना अब से कहीं अधिक मात्रा में कैफीन, थियालबीन, विटामिन पी, मुसब्बर का रस, प्लाटिफिलिन पैसीफ्लोरा का अर्क, मैगनोलिया का अर्क तथा अन्य पदार्थ तैयार करेगा। विटामिनों तथा एम्प्यूल-औषधियों के निर्माण के लिए दो और विशाल खाते निकट भविष्य में बनाये जाएँगे।

चाय तथा अन्य औषधीय कच्ची सामग्रियों में जार्जिया अत्यन्त समृद्ध है। जनतंत्र वैज्ञानिकों तथा विशेषज्ञों ने निश्चित किया है कि जार्जिया में एक और विशाल कैफीन फैक्टरी का निर्माण सर्वथा उपयुक्त होगा। यह फैक्टरी जार्जिया के एक अन्य स्वायत्त जनतंत्र अबखाजिया में खड़ी की जायगी जहाँ अनेक चाय बागान तथा चाय-कारखाने हैं।

२. भारतीय-कृषि समाचार

तीसरी योजना में कृषि उत्पादन के लक्ष्य

तीसरी पंचवर्षीय योजना में राज्यों और केन्द्र द्वारा शासित प्रदेशों में कृषि पर व्यय करने के लिए ·५८१ करोड़ रुपये रखे गये हैं जब कि दूसरी पंचवर्षीय योजना में इस पर केवल २५२ करोड़ रुपया खर्च होना था। इसके अतिरिक्त योजना काल में केंद्रीय योजनाओं पर पिछली योजना की तुलना में (१२३.५१ करोड़ रुपये) लगभग तिगुना रुपया व्यय किया जायगा। अनुमान लगाया गया है कि इस व्यय के फलस्वरूप तीसरी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक ३० करोड़ एकड़ धरती में खाद्यान्न, ३·७ करोड़ एकड़ में तिलहन, ५३ लाख एकड़ में गन्ना, २·२ करोड़ एकड़ में कपास और २२ लाख एकड़ में पटसन की खेती होने लगेगी, जिससे १९६५-६६ में १० करोड़ टन खाद्यान्न, ९८ लाख टन तिलहन, १ करोड़ टन गन्ना, ७० लाख कपास की गाँठें और ६२ लाख पटसन की गाँठें प्राप्त होने की (निर्धारित लक्ष्य) सम्भावना है। यदि इन आँकड़ों की १९६०-६१ के आँकड़ों से तुलना की जाय तो पता चलता है कि १९६५-६६ में १९६०-६१ की अपेक्षा खाद्यान्नों में ३० प्रतिशत से अधिक, तिलहन में ३३ प्रतिशत से अधिक, गन्ने में २५ प्रतिशत से अधिक, कपास में लगभग ४० प्रतिशत और पटसन में ५५ प्रतिशत अधिक उपज बढ़ जायगी।

किन्तु इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए व्यापक और सतत प्रयत्न करना होगा। यदि इसके लिए वैज्ञानिक विधियों और विशेष रूप से (१) पौधा संरक्षण (जिसमें हानिकर कीट और पशुओं की रोकथाम भी सम्मिलित है), (२) सुधरे बीज, (३) खाद और उर्वरकों का समुचित उपयोग और (४) कृषि के उन्नत औजार आदि के लिए आवश्यक कदम उठाये गये और छोटी बड़ी सिंचाई योजनाओं तथा अनुसंधान कार्यक्रम पर उचित ढंग से काम हुआ तो यह लक्ष्य निश्चित रूप से प्राप्त किया जा सकता है।

(१) पौधा संरक्षण: उपज बढ़ाने की दृष्टि से पौधा संरक्षण की समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि कृषि उत्पादन का १५ से २० प्रतिशत हानिकर

कीट, पशु और खरपतवारों के कारण नष्ट हो जाता है और जिसके कारण ग्रामीण जनता को अरबों रुपयों की प्रति वर्ष हानि उठानी पड़ती है। किन्तु अभी तक इस दिशा में कीटनाशक व खरपतवार नाशक औषधियाँ और उपकरणों के उपलब्ध न होने के कारण अधिक प्रगति नहीं की जा सकती है। प्रथम योजनाकाल से पूर्व भारत में केवल ३ कीट नाशक ही तैयार किये जाते थे। पर प्रथम योजना में स्ट्राइकनिन-हाइड्रोक्लोराइड, लाइम सल्फर तथा डी० डी० टी० भी तैयार किये जाने लगे। दूसरी योजना में बैन्जीन हैक्साक्लोराइड तथा अन्य कीट नाशकों का उत्पादन हुआ और आज कीट नाशक तैयार करने वाले कारखानों की कुल उत्पादन क्षमता ७० हजार टन प्रति वर्ष है। किन्तु यह हमारे देश की आवश्यकताओं को देखते हुए बहुत ही अपर्याप्त है। यही कारण है कि विदेशों से इनको बराबर मँगाया जा रहा है। पिछले ३ वर्षों में एक करोड़ ५ लाख रुपये के कीट नाशक आयात किये गये। १९६०-६१ में ३१३७·८ लाख रुपये की कीट नाशक और ७·१६ लाख रुपये के खरपतवार नाशक मंगाये गये। इन औषधियों को खेतों में प्रयोग करने के लिए विशेष उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है। एक तो ये उपकरण उपलब्ध ही नहीं हैं और जो हैं भी, वे इतने मँहगे हैं कि मामूली किसान की वश के बाहर है। इसलिए यह आवश्यक है कि इस प्रकार के उपकरण सरकार द्वारा जगह-जगह पर रखे जायें जहाँ से वे रियायती दरों पर खरीदे जा सकें या किराया देकर प्रयोग किये जा सकें।

रोगाणुनाशक (एन्टीबायोटिक्स) :— पौधों के रोगों की रोकथाम के लिए संसार में पिछले कुछ वर्षों में रोगाणु नाशकों का बड़े पैमाने पर उपयोग हो रहा है। यह देखा गया है कि कीट नाशकों की अपेक्षा ये कीट-व्याधियों को नष्ट करने में अधिक सक्रिय होते हैं और इनकी अल्प मात्रा ही काफी रहती है। ये पौधे को कम से कम नुकसान पहुँचाते हैं और पौधे के कोषों में भी प्रवेश करने की क्षमता रखते हैं, जहाँ पर ये इकट्ठे होकर विषाणुओं को नुकसान पहुँचा सकते हैं। जिन फसलों में रोग गहराई से घुस गया है, उनको नष्ट करने में ये विशेष उपयोगी पाये गये हैं। सबसे पहले १९४५ में संसार में रोगाणु नाशकों का विभिन्न पौधे के **क्राउनगाल** रोग के विरुद्ध प्रयोग किया गया था। **स्टेप्टोमाइसीन** नाम का रोगाणु नाशक औषधि को अनेक रोगाणु, आक्रमण और फफूंदी रोगों की रोकथाम में सफल पाया गया है। ये पौधों के विषाणु-रोगों के नियंत्रण में भी उपयोगी सिद्ध हुए हैं। हमारे देश में बल्बी फारमीन नामक कीटाणु-नाशक भारतीय कृषि अनुसंधानशाला में विकसित किया गया है। पता चला है कि यह पौधे के अनेक रोगाणुओं को प्रभावित कर सकता है। इसको मिट्टी द्वारा निर्माण करने की संभावनाओं पर काम किया गया है और उसमें कुछ सीमा तक सफलता भी मिली है। आशा की जाती है कि पौधों के संरक्षण के लिए यह नया पदार्थ बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा।

२. **उन्नत बीज** :—यह सुझाव दिया गया है कि इस प्रकार की समितियां नियुक्त की जायें जो विभिन्न क्षेत्रों के लिए वैज्ञानिक आधार पर उपयुक्त बीजों का चुनाव करें और जिससे इन बीजों के प्रसारित करने में और सबसे अच्छे बीज चुनने के सम्बन्ध में आवश्यक कदम उठाये जा सकें। योजना को सफल बनाने के लिए न केवल इससे सम्बंधित प्रशासन को पूर्णरूप से सक्रिय और जागरूक होना पड़ेगा वरन् इसके लिए हमें बीज सम्बंधी कानून बनाने होंगे, बीज परख प्रयोगशालायें स्थापित करनी होंगी और बीज उगाने वाले रजिस्टर्ड किसानों और उन पर नियंत्रण आदि की भी आवश्यकता पड़ेगी। सरकार ने एक बीज कारपोरेशन स्थापित करने का फैसला किया है जो प्रारम्भ में संकर मक्का और संकर ज्वार के ऐसे बीजों को प्रसारित करने का काम करेगी जिनकी तीन उपयुक्त नसलें विकसित

की जा चुकीं हैं। तीसरी पंचवर्षी योजना के अंत तक देश के सम्पूर्ण मक्का क्षेत्रफल के चौथाई भाग में इन संकर नस्लों की खेती फैलाई जा सके, यह लक्ष्य रखा गया है। यदि ऐसा हो गया तो देश को ७ करोड़ रुपये मूल्य की २ लाख टन मक्का की अतिरिक्त उपज प्राप्त होने लगेगी। ज्वार के संबंध में संकर नस्लों को १० लाख एकड़ में फैलाने का लक्ष्य रखा गया है इसके लिए कारपोरेशन को अपने आश्रित विभिन्न एजेन्सियाँ तथा संस्थायें स्थापित करने का अधिकार दिया गया है। उन्नत बीजों पर सतत अनुसंधान के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान शाला में एक बीज परख प्रयोगशाला स्थापित की जायेगी और इसी प्रकार की प्रयोग-शालायें आन्ध्र प्रदेश, बिहार और पंजाब में प्रारम्भ की जायेगी।

३. **उर्वरक :**—आशा है कि उर्वरकों के क्षेत्र में तीसरी पंचवर्षीय योजना में अधिक प्रगति होगी। अब तक अनेक कारणों से राज्यों को चाय, काफी और पटसन आदि क्षेत्रों के लिए अधिक उर्वरकों की बांच्छित मात्रा नहीं मिलती थी, पर आशा है कि तीसरी योजना में इन मांगों का ६० से ७० प्रतिशत तक भाग पूरा किया जा सकेगा। किन्तु उर्वरकों को प्रयोग करने में वैज्ञानिक दृष्टि-भूमि, फसलों, सिंचाई साधनों और जलवायु सम्बंधी दशाओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। अब तक हमारी भूमियों का अध्ययन अपर्याप्त है और हम अभी इस दिशा में ही परीक्षण कर रहे हैं कि विभिन्न फसलों को उर्वरक देने के लिए नाइट्रोजन, फास्फेट या पोटाशधारी अंशों में से किसकी कमी है। इन आँकड़ों के अभाव में उर्वरकों को अधिक मात्रा में देना हानिकर भी हो सकता है और अनेक फसलों में त्रुटिपूर्ण भी। इसलिए इस विषय में आवश्यक सावधानी बरतनी होगी। फिर भी यह आवश्यक है कि प्रत्येक राज्य के किसानों में उर्वरकों के उपयोग के बारे में जागरूकता फैले।

४. **उन्नत औजार :**—द्वितीय पंचवर्षीय योजना में बैलों और हाथ से चलने वाले कृषि औजारों के लिए ४ क्षेत्रीय अनुसंधान परख-केन्द्रों, (उत्तरी क्षेत्र के लिए, भारतीय कृषि अनुसंधान शाला, नयी दिल्ली, दक्षिणी क्षेत्र के लिए कोयम्बटूर, पश्चिमी क्षेत्र के लिए पूना, और पूर्वी क्षेत्र के लिए वर्धमान) की स्थापना की गई थी। तीसरी पंचवर्षीय योजना में इस काम के लिए २० करोड़ रुपये की योजना बनायी गई है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक राज्य और हिमांचल प्रदेश में एक-एक अनुसंधान परीक्षा केन्द्र खोला जायगा। उन्नत कृषि औजारों के उपयोग को प्रदर्शित करने के लिए विशेष कर्मचारी रक्खे जायेंगे जो किसानों के खेतों पर जाकर इनके प्रदर्शन करेंगे। जिला कृषि अधिकारियों के साथ भी एक विशेष विभाग इस काम के लिए बनाया जायगा। इस काम में ग्राम-सेवकों और कारीगरों को प्रशिक्षण देने की भी व्यवस्था की गई है। जिन प्रसार प्रशिक्षित केन्द्रों में कारखाने नहीं हैं वहाँ औजारों को सुधारने और मरम्मत करने के कारखाने भी खोले जायेंगे। प्रत्येक राज्य में औजारों के उत्पादन के लिए एक-एक कारखाना खोला जायेगा। प्रत्येक जिले में इन औजारों को बेचने और किराये पर देने के लिए भंडार खोले जायेंगे। छोटे पैमाने पर औजार बनाने वाले किसानों को औजार खरीदने और राज्य सरकारों को भारी और मध्यम प्रकार के ट्रेक्टर खरीदने के लिए केन्द्र से ऋण मिलने की व्यवस्था भी की जायेगी।

विज्ञान वार्ता

१. खसरे का प्रभावशाली टीका

अमेरिका में खसरे पर प्रभावशाली नियंत्रण पाने वाले एक नए टीके की खोज कर ली गई है। प्रारम्भिक परीक्षणों में यह टीका अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। इसकी सफलता से यह आशा बंध गई है कि यह उन देशों के लिए एक वरदान सिद्ध होगा, जहाँ खसरे से मानव-स्वास्थ्य के लिए गम्भीर खतरा उत्पन्न हो गया है।

फिलाडेल्फिया के ३१८ बालकों पर किए गए परीक्षण में यह टीका शत प्रतिशत कारगर सिद्ध हुआ है। सार्वजनिक उपयोग के लिए इसे सुलभ किए जाने के हेतु सरकारी स्वीकृति की प्रतीक्षा की जा रही है। बालकों के अस्पतालों में कार्य करने वाले डाक्टरों का कथन है कि टीके की सफलता से ऐसा लगता है कि पिछले २०० वर्षों से खसरे पर पूर्ण नियंत्रण पाने के लिए जो अनुसंधान हो रहा था, वह सफल हो गया है।

२. अणु को मिलाने वाले नए कणों की खोज

तीन अमेरिकी अनुसन्धानकर्ताओं और अतिथि यूगोस्लाव वैज्ञानिक ने मिलकर एक ऐसे नए मूल कण को खोज निकाला है, जो अणुकणों को एक साथ रखने वाले पदार्थ (ग्लू) का अंश है। इस नए मूल कण को 'ओमेगा मेसन' का नाम प्रदान किया गया है। अणु के दो आधारभूत तत्वों-प्रोटॉन और न्यूट्रॉन—को एक साथ बाँध कर रखने में यह महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। इस खोज की सूचना कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय की लारेंस विकिरण परीक्षणशाला के दो वज्ञानिकों और डा० बी० सी० मैगलिक (यूगोस्लाविया) ने दी है। वैज्ञानिकों के अनुसार नया कण मेसन के उन घने बादल-समूह में से एक है, जो न्यष्टि को चारों तरफ से घेरे रहता है। बीवाट्रोन यन्त्र में अणुकणों के पारस्परिक टकराव से हुए विस्फोट की प्रक्रिया में ही इस नए कण 'ओमेगा' की प्राप्ति हुई। 'बबल चेम्बर' से होकर जब यह कण गुजरा तो इसके पथ का चित्र भी खींच लिया गया। इस कण की जीवन-अवधि बहुत ही संक्षिप्त थी और इसमें कोई विद्युत प्रवाह भी नहीं था। वैज्ञानिकों ने लगभग ३० हजार चित्रों का विश्लेषण किया जिनमें से केवल ९० चित्रों में वे इस कण को देख सके।

३. हवा की गद्दी पर चलने वाला जहाज

'अमेरिकी मैरिटाइम एडमिनिस्ट्रेशन' ने एक ऐसा जहाज बनाने की योजना बनाई है, जो १०० नाट की गति से अपने तल और जल की सतह के बीच उत्पन्न हवा की गद्दी पर फिसलता हुआ चलेगा। 'प्रशासन' के अधिकारी टामस ई० स्टेकन ने यह घोषणा की है कि प्रशासन 'सरफेस एफेक्ट' का डिजाइन तैयार करने के लिए वे हफिल रिसर्च कार्पोरेशन को ठेका देने के बारे में गम्भीरता पूर्वक विचार कर रहा है।

४. इंजेक्शन देने के लिए ध्वनि तरंगों का प्रयोग

फिलाडेल्फिया के एक डाक्टर ने एक ऐसी नई विधि खोज निकाली है, जिसके द्वारा शरीर के अन्दर बिना सुई के द्वारा भी दवा प्रविष्ट की जा सकेगी। इस कार्य के लिए उसने अत्यधिक शक्तिशाली ध्वनि तरंगों का उपयोग किया है। यह विधि अभी परीक्षण

अवस्था में है और यह हो सकता है कि भविष्य में इंजेक्शन देने के लिए सुई की आवश्यकता ही न रह जाए।

पेन्सल्वेनिया यूनिवर्सिटी के मेडिकल स्कूल के डा० जेम्स ई० ग्रिफिन ने बताया है कि उन्होंने इस विधि द्वारा एक पशु की मांस-पेशी में काफी गहराई तक एक प्रकार का मलहम सफलतापूर्वक पहुँचाया है। ध्वनि-तरंगों के दबाव के कारण खाल पर माल हुआ मलहम सूक्ष्म-तन्तुओं को भेद कर काफी गहराई तक पहुँच गया।

५. शक्तिशाली रेडियो प्रसारण

जनरल डायनमिक कार्पोरेशन के वैज्ञानिकों ने रेडियो सम्वाद प्रेषण की एक नई और विकसित विधि खोज निकाली है, जिसके द्वारा एक मिनट में १५ हजार से भी अधिक शब्द प्रेषित किए जा सकेंगे। इसके लिए उन्होंने विद्युदणु गणकयंत्रों और 'मोड्-युलेशन' विधियों का उपयोग किया है। फर्म का कहना है कि इस सम्वाद प्रेषण प्रणाली में १५० भिन्न टेलिटाइपराइटरों द्वारा संदेश एक साथ भेजे जा सकते हैं। यह प्रणाली सम्वाद ग्रहण-स्थल पर उनको अलग-अलग छांटने और १५० भिन्न टेली-टाइपराइटरों पर उन्हें स्वतः भेज देने में समर्थ है।

६. हृदय की धड़कनों का विश्लेषण करने वाला यंत्र

'टेलिकमप्यूटिंग कार्पोरेशन' ने एक ऐसी हल्की फुल्की विद्युदणु प्रणाली का विकास किया है, जो हृदय के सम्बन्ध में १० प्रकार की विभिन्न सूचनाएँ एक साथ रिकार्ड कर सकती है और हृदय को क्षति पहुँचने से पूर्व हृदय में उत्पन्न होने वाले दोष का पता लगा सकती है।

इस विद्युदणु यांत्रिक प्रणाली का नाम **'हार्ट एनालाइजर'** रखा गया है और इसे छोटी सी पहिए-दार गाड़ी पर रख कर मरीज के बिस्तर तक पहुँचाया जा सकता है। यह नवीन यंत्र हृदय की धड़कन और नाड़ी के दबाव के सम्बन्ध में सूचना रिकार्ड करता है तथा हृदय की यांत्रिक-क्रिया का विश्लेषण भी करता है। रिपोर्टों के अनुसार हृदय रोगों का निदान करने में यह विद्युदणु प्रणाली कार्डियोग्राम की तुलना में २२ प्रतिशत अधिक सही प्रमाणित हुई है।

७. कृत्रिम हीरा

अमेरिका के एक वैज्ञानिक को कृत्रिम हीरे बनाने की एक उन्नत विधि के लिए पेटेन्ट दिया गया। इस विधि द्वारा बनाये गये हीरे किस्म और घनत्व में बिल्कुल असली हीरे प्रतीत होते हैं। इस दृष्टि से ये सभी प्रकार की कसौटियों पर खरे उतरे हैं।

इस विधि के अन्तर्गत, कार्बन के हीराविहीन पदार्थों, जैसे ग्रेफाइट तथा विभिन्न धात्विक घोलों के तत्वों को एक दूसरे के ऊपर एक विशेष प्रकार के प्रतिक्रिया कक्ष में रखा जाता है। उसके बाद उन पर तीव्र दबाव और ताप का प्रयोग किया जाता है। फलस्वरूप कार्बन हीरे में परिणत हो जाता हैं। इस विधि के आविष्कर्ता, हरोल्ड पी० वोवेनकर्क का कहना है कि उनकी विधि कृत्रिम हीरे बनाने की अन्य विधियों से कहीं अधिक श्रेष्ठतर है।

८. दिन के प्रकाश में नक्षत्रों का चित्र

अमेरिका में,हाल में वृहस्पति और शुक्र ग्रहों के चित्र दिन की रोशनी में लिये गये। जिस कैमरे से ये चित्र खींचे गये, वह अद्भुत किस्म का है।

इस कैमरे द्वारा सितारों, भू-उपग्रहों और प्रक्षेपणास्त्रों के भी चित्र खींचे गये हैं। यह ५ इंच व्यास वाले १९ टेलिस्कोपों द्वारा ऐसा करने में समर्थ है।

९. मिट्टी के तेल से रेडियो संचालन :

राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाल के भारतीय वैज्ञा-निक डा० वी० आर० मराठे एक ऐसी शोध कर रहे हैं जिससे शीघ्र ही मिट्टी तेल के दीपक से रेडियो

चलाना संभव हो जावेगा । रेडियो सेट के एरियल में जो तरंगे पहुँचती हैं वे इतनी क्षीण होती हैं कि उनका संवर्द्धन एवं प्रसारण आवश्यक होता है। यह काम थर्मियानिक वाल्व से लिया जाता है। यह विधि ट्रांजिस्टर कहलाती है। ऐसे ट्रांजिस्टर रेडियो को संचालित करने के लिये जितनी शक्ति की आवश्यकता होती है वह मिट्टी के तेल के दीपक से सरलता से उपलब्ध हो सकती है। इस शोध के द्वारा गाँवों में ट्रांजिस्टर युक्त रेडियो का प्रचार सरलता से हो सकेगा ।

१०. इंजीनियरी की परीक्षाएँ :

केन्द्रीय सरकार ने इलेक्ट्रानिक्स और बेतार इंजीनियरी की विभिन्न परीक्षाओं को मान्यता देने के विषय में शिल्प शिक्षा मंडल की सिफारिशें स्वीकार कर ली हैं। विभिन्न शिक्षा संस्थाओं में इन विषयों के दो पाठ्यक्रम चालू हैं। पहला इंजीनियरी का है जिसमें विद्युत के द्वारा संकेत और समाचार प्रेषण के इंजीनियरी पक्ष पर बल दिया जाता है। इसके लिये दूर संचार और विद्युत संचार इंजीनियरी की डिग्री या समकक्ष डिप्लोमा दिया जाता है। यह पाठ्यक्रम इंटरमीडियेट विज्ञान के पश्चात् चार साल या हायर सेकण्डरी के पश्चात् पाँच साल का होता है। बंगलोर की भारतीय विज्ञान संस्था तथा क्रामपेट के मद्रास इंस्टीट्यूट आफ टेकनालाजी में तीन साल का पाठ्यक्रम है जिसमें बी० एस-सी० उत्तीर्ण छात्र ही लिये जाते हैं ।

११. वैज्ञानिक उपकरण उद्योग को सहायता :

वैज्ञानिक उपकरण निर्माण उद्योग को सहायता पहुँचाने की दृष्टि से कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च के केन्द्रीय वैज्ञानिक उपकरण संगठन ने एक योजना बनाई है जिसके अन्तर्गत इस उद्योग के विकास केन्द्र स्थापित करने के लिये सहायता दी जावेगी। ऐसे उत्पादक जिनके पास संगठित कार्यशालाओं एवं शिल्पियों की सुविधा है उन्हें ५०% तक आवर्तक एवं अनावर्तक अनुदान दिया जायगा। विस्तृत जानकारी के लिये सेन्ट्रल साइंटिफिक इन्स्ट्रूमेंट आर्गनाइजेशन, सी० एस० आई० आर०, रफी मार्ग, नई दिल्ली-१ से सम्पर्क स्थापित करें।

१. रूस द्वारा ५० मेगाटन बम के परीक्षण को घोषणा

सोवियत संघ के प्रधान मंत्री निकिता ख्रुश्चेव ने सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के २२ वें महाधिवेशन के अवसर पर यह घोषणा की है कि अक्टूबर मास के अन्त तक रूस ५० मेगाटन बम का विस्फोट करेगा। यह परीक्षण अब तक हुये समस्त परमाणु-परीक्षणों में सबसे बड़ा होगा और इसके द्वारा होने वाली विध्वंस लीला अवर्णनीय। प्रथम दृष्टि पर ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसी घोषणा का उद्देश्य अमेरिका को चिन्ता युक्त करना मात्र है परन्तु नहीं, यह सूचना प्राप्त हुई है कि यह परीक्षण सम्पादित भी हो चुका है।

जैसे ही ख्रुश्चेव द्वारा इस अपूर्व परीक्षण की घोषणा की गई विश्व के विभिन्न भागों से इसके विरोध में प्रदर्शन प्रारम्भ हो गये। अमेरिकी वैज्ञानिकों का कथन है कि यह विस्फोट इतना विराट होगा कि उससे डेढ़ मील चौड़ी और चार सौ फुट गहरी खड्ड बन जावेगी। यही नहीं, ७ मील के व्यास में कोई प्राणी जीवित नहीं बच सकेगा। यदि यह विस्फोट ह्वाइट हाउस पर हो तो समस्त सरकारी इमारतें क्षण भर में मलवे में बदल जावेंगी। पूरे वाशिंगटन के मकान धराशायी हो जावेंगे, दस मील परिधि के सारे पक्के मकान गिर जावेंगे और पाँच-छह मील के भीतर जितनी भी इमारतें एवं कंकरीट की इमारतें होंगी, ढह जावेंगी। इस बम के विस्फोट द्वारा काँच और पत्थर उड़ उड़कर ३० मील की परिधि तक के लोगों को क्षत-विक्षत कर सकते हैं। इस बम विस्फोट से जो ज्वाला निकलेगी वह सात मील के व्यास में फैली होगी। इसके द्वारा १०-२० हजार वर्ग मील क्षेत्र रेडियसक्रिय हो जावेगा और वे भूमिगत आश्रम जो विस्फोट स्थल से साढे तीन मील दूर होंगे, सुरक्षित कहे जा सकेंगे। यही नहीं, विस्फोट के पूर्व रूस को दस लाख वर्ग मील क्षेत्र की जनता को चेतावनी देनी पड़ेगी; विस्फोट को धरती से १०० मील ऊपर करना होगा नहीं तो समस्त फसलें जल कर क्षार हो जावेंगी। यदि यह परीक्षण उत्तरी ध्रुव में किया गया तो वहाँ की बरफ पिघल जावेगी।

रूस के द्वारा प्रस्तावित यह मेगाटन बम परीक्षण ५ करोड़ टन टी० एन० टी० विनाश शक्ति रखेगा। जनता को क्षति पहुँचाने की दृष्टि से चाहे ५ करोड़ टन वाला बम हो या उससे भारी, विस्फोट के पश्चात् विस्तृत रेडियसक्रिय धूलि एक जटिल समस्या बन जावेगी। सन् १९४५ में हिरोशिमा में जो परमाणु बम गिराया गया था, उससे यह ढाई हजार गुना अधिक शक्तिशाली है। इस मेगाटन बम परीक्षण के द्वारा सर्वाधिक दूषित प्रभाव दूध पर पड़ेगा क्योंकि रेडियसक्रिय धूल घासों पर एकत्र हो जावेगी।

समस्त विश्व के वैज्ञानिक एवं सामान्य नागरिक ऐसे बम परीक्षण की भर्त्सना करेंगे, इसमें सन्देह नहीं। भले ही राजनैतिक नेता इसे महास्त्र समझ कर क्षणिक मनस्तुष्टि कर लें। आवश्यक है हम ऐसे समस्त परीक्षणों के विरोध में अपना स्वर ऊँचा करें और मानवता की रक्षा करें।

उक्त घोषणा के साथ ही अमेरिका ने अन्तरिक्ष में ताम्र सूचिकाओं के एक पटल को स्थापित करके विश्व भर में दूसरी खलबली मचा दी है। अमेरिकी 'मिडास' राकेट ने २२ अक्टूबर को ३५ करोड़ केशिका सूचिकायें अन्तरिक्ष में प्रेषित की हैं जो ५ मील लम्बे एक पट्टीनुमे परदे का निर्माण करेंगी जो रेडियो द्वारा प्रेषित संकेतों को परावर्तित किया करेगा।

अमेरिका के इस कार्य का विरोध हालैंड तथा ब्रिटेन के वैज्ञानिकों ने किया है। रूस, डेनमार्क तथा आस्ट्रेलिया के वैज्ञानिक भी ऐसे परीक्षण की भर्त्सना करते हैं। इस सूचिका पटल निर्माण के द्वारा ज्योतिष, अन्तरिक्ष यात्रा तथा आकाश अध्ययन में भारी अवरोध की सम्भावना है।

राजनीति के ये सजग प्रहरी-रूस तथा अमेरिका-अपनी शक्ति तौलने की दृष्टि से विनाशकारी लीलाएँ करने पर तुल गये हैं। इन्हें हम वैज्ञानिक उपलब्धियों की संज्ञा न देकर मानवता के ह्रास एवं लय की विभीषिकायें कह सकते हैं। अब भी समय है कि ये दोनों राष्ट्र मानवता को अपने से उच्च समझ कर ऐसे परीक्षणों को सदा के लिये त्याग दें।

२. निराला जी का निधन :

१५ अक्टूबर को प्रातः ९ बजकर २० मिनट पर हिन्दी के युगप्रवर्तक कवि पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का देहान्त प्रयाग में हो गया। उनकी आयु ६५ वर्ष की थी। इधर वे एक वर्ष से जलोदर रोग से पीड़ित थे। अन्तिम समय उनकी आँत उतर [illegible] थी।

निराला जी के निधन से हिन्दी की अपार क्षति हुई है। हम 'विज्ञान' परिवार की ओर से महाकवि के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उनकी आत्मा को शांति प्रदान करे और उनके संतप्त परिवार को धैर्य दे।

विज्ञान—अक्टूबर १९६१ पंजीकृत संख्या A-372

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्रप्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

क्षमा याचना

ग्राहकों को सूचित किया जाता है कि 'विज्ञान' का जून-जुलाई अंक, जो **डा० गोरख प्रसाद स्मृति अंक** के रूप में प्रकाशित हो रहा है, शीघ्र ही प्राप्त हो सकेगा। हम क्षमा प्रार्थी हैं कि सामग्री के समय से उपलब्ध न होने के कारण उक्त अंक के प्रकाशन में अति विलम्ब हुआ।

अब ग्राहक उक्त संयुक्त अंक के लिए कार्यालय से पत्र व्यवहार न करें।

सम्पादक
'विज्ञान'

प्रकाशक—डा० आर० सी० कपूर, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।
मुद्रक—टेकनिकल प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद। [illegible]

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ९४ | कार्तिक अग्रहायण २०१८ विक्र०, १८८३ शक नवम्बर-दिसम्बर १९६१ ई० | संख्या २-३

प्रबल विष-पोटेसियम सायनाइड

हरिहर मिश्र

पोटेसियम सायनाइड एक रासायनिक यौगिक है जो अनेक प्रकारों से प्रयोग किया जाता है—उदाहरणतः चाँदी एवं सोने के निष्कर्षण में और विद्युत्लेपन में। यह एक प्राणघातक विष भी है परन्तु इसके प्राणघातक गुण के बारे में जन-साधारण की धारणा बड़ी ही भ्रमपूर्ण है। तरह-तरह की भ्रामक कथाएँ इसके विषैले प्रभाव के बारे में प्रचलित हैं। अधिकतर लोगों की धारणा है कि पोटेसियम सायनाइड सर्वाधिक तीव्र विष है जिसके प्रभाव से मृत्यु इतनी शीघ्रता से हो जाती है कि आज तक *इसके स्वाद का ज्ञान वैज्ञानिकों को नहीं हो पाया है।

पोटेसियम सायनाइड सर्वाधिक तीव्र विष नहीं:—

यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि पोटेसियम सायनाइड वास्तव में अतितीक्ष्ण विष के रूप में कार्य करता है परन्तु यह सर्वाधिक तीव्र विष नहीं है। इससे भी प्रबल विष संसार में विद्यमान हैं। यह भी सत्य है कि पोटेसियम सायनाइड के प्रयोग से व्यक्ति की मृत्यु दो से लेकर दस मिनट के बीच में ही हो जाती है, परन्तु कुछ ऐसे भी उदाहरण डाक्टरी पुस्तकों में मिलते हैं जिनमें पीड़ित व्यक्ति २४ घंटे तक जीवित रहा। पोटेसियम सायनाइड की अपेक्षा हाइड्रोजन सायनाइड अधिक प्रबल विष है। इसके बारे में कहा जाता है कि यह अन्य सभी विषों से अधिक प्रभावशाली है।

पोटेसियम सायनाइड की प्राणघातक न्यूनतम मात्राः—

विशेषज्ञों के मतानुसार पोटेसियम सायनाइड की न्यूनतम मात्रा जो मनुष्य का अन्त कर सकती है २½ ग्रेन है। साधारणतः ५ ग्रेन की मात्रा सांघातिक मानी जाती है। विष की प्राणघातक मात्रा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए अलग-अलग हो सकती है। डाक्टरी साहित्य में ऐसे भी उदाहरण प्राप्त होते हैं जिनमें व्यक्तियों ने साधारणतः सांघातिक मानी जाने वाली मात्रा से कई गुना अधिक (६० ग्रेन तक) पोटेसियम सायनाइड खाया परन्तु भाग्यशाली होने के कारण वे मृत्यु से बच गए।

*कुछ दिन पूर्व दिल्ली के एक शोधछात्र श्री गंभीरा सिंह ने इस प्रबल विष का स्वाद जानने के लिये अपने शरीर पर परीक्षण किया और आश्चर्य कि वे कई मिनट जीवित रहे। उन्होंने अपने कुछ अनुभवों को लिपिवद्ध भी किया था—सम्पादक

पोटेसियम सायनाइड के रसायनिक गुणः—

पोटेसियम सायनाइड, प्रबल विद्युद्धनी भाग पोटेसियम, और निर्बल विद्युतऋणी भाग सायनाइड से मिलकर बना है। अतएव यह एक अत्यन्त शक्तिशाली क्षारीय पदार्थ है। प्रायः इसमें पोटेसियम कार्बोनेट—जो स्वयं एक तीव्र क्षार है—अशुद्धि के रूप में मिश्रित रहता है। इसी कारण पोटेसियम सायनाइड के सभी नमूनों में क्षार का प्रभाव देखने को अवश्य मिलता है।

पोटेसियम सायनाइड के विष-प्रभाव के लक्षणः—

उपरिवर्णित प्रभाव सदैव ही शरीर के उन सभी स्थानों पर देखने को मिलता है जहाँ से होकर पोटेसियम साइनाइड पेट में पहुँचता है। उदाहरणतः मुख में, गले में और पेट में। इन सब स्थानों को पोटेसियम सायनाइड काटता जाता है। मुख से सफेद झाग निकलने लगता है और होठों के आसपास एकत्र हो जाता है। नेत्रों की पुतलियाँ फैल जाती हैं। नाड़ी की गति मन्द पड़ जाती है और धीरे-धीरे लुप्त हो जाती है। साँस लेने की गति भी मन्द पड़ जाती है। शीघ्र ही रोगी को उलटी होना आरम्भ हो जाता है। चेहरा, गर्दन और हाथ स्यानोसिस (cyanosis) के कारण नीले पड़ जाते हैं। मूत्राशय की पेशियों पर रोगी का नियंत्रण नहीं रहता जिसके फलस्वरूप पेशाब बहना आरम्भ हो जाता है। मूर्छा (coma) आती है और अन्त में रोगी की मृत्यु हो जाती है।

पोटेसियम सायनाइड के विषैले प्रभाव से बचने के उपायः—

इसके विष-प्रयोग में अधिकतर उपचार करने का समय ठीक से प्राप्त ही नहीं होता। परन्तु यदि भाग्य साथ दे तो सर्वप्रथम रोगी के पेट की धुलाई करनी चाहिए। इसके लिए हाइड्रोजन-पर-आक्साइड अथवा पोटेसियम-पर-मैंगनेट (लाल दवा) का तनु घोल प्रयोग में लाना चाहिए। कुछेक विशेषज्ञों के अनुसार थोड़ा सा सिरका मिला लेना भी लाभप्रद होता है। यदि पेट की धुलाई सुगमता से न हो सके तो उल्टी कराने के प्रयत्न करके रोगी को तुरन्त उल्टी कराना चाहिए। तत्पश्चात् रोगी को मेथिल थायोनीन क्लोराइड, जिसका प्रचलित नाम मेथिलीन ब्लू है, का नसों के भीतर इन्जेक्शन देना चाहिए। मेथिलीन ब्लू पोटेसियम सायनाइड के विष-प्रभाव के लिए विष-नाशक का कार्य करता है।

सोडियम-थायो-सल्फेट और एमिल नाइट्राइट के घोलों का प्रयोग भी लाभदायक होता है।

पोटेसियम सायनाइड से मृत्यु :—

अधिकांश विशेषज्ञों के मतानुसार पोटेसियम सायनाइड के विष-पान में मृत्यु का कारण रोगी की श्वसन क्रिया का रुक जाना है परन्तु कुछेक महारथियों के विचारानुसार पोटेसियम सायनाइड का प्रभाव सीधे लाल रक्त कणों पर पड़ता है जो रक्त के हीमोग्लोबिन से संयोग करके स्यान-मेट-हीमोग्लोबिन बना देता है जिसके फलस्वरूप हीमोग्लोबिन अपना कार्य कर सकने के अनुपयुक्त हो जाते हैं और यही रोगी की मृत्यु हो जाती है।

विषनाशक मेथिलीन ब्लू, उनकी धारणा के अनुसार, रक्त के हीमोग्लोबिन से रासायनिक क्रिया करके मेट-हीमोग्लोबिन बना देता है जो स्वतन्त्र सायनाइड से क्रिया करके उसको क्रिया-क्षेत्र से हटा देता है।

पोटेसियम सायनाइड के विष-पान से मृत्यु के उदाहरण साधारणतः कम ही मिलते हैं। फलस्वरूप इसके विषय में जानकारी प्राप्त होते हुए भी उसे सर्वथा पूर्ण नहीं माना जा सकता। हाँ, एक बात तो निश्चित है ही, पोटेसियम सायनाइड वास्तव में अत्यन्त तीव्र और शीघ्रतापूर्वक प्रभाव दिखाने वाला विष है जिसके कारण इसका पान करने के पश्चात् व्यक्ति विशेष के जीवित रहने की संभावना प्रायः शून्य के बराबर हो जाती है। इसका प्रयोग करते समय इस बात को सदैव ध्यान में रखना चाहिए।

उपयोगी अल्गी उद्भिद

कुमारी ऊषा कुमारी माथुर

आज के वैज्ञानिक युग में किसी वस्तु को व्यर्थ नहीं समझा जाता है। जिसे साधारण जनता निरर्थक कह कर फेंक देती है, वैज्ञानिक उसमें भी अनेक गुण बताते हैं। अल्गी उद्भिदों को बनस्पति-शास्त्रवेत्ता निम्न कोटि के पौधे बताते हैं परन्तु इससे आश्चर्य-चकित होने की आवश्यकता नहीं है। ये मनुष्य के लिए बहुत ही उपयोगी हैं। और अल्गी उद्भिद सब जगह पाये जाते हैं।

मुख्यत: तीन कोणों से वस्तु के उपयोग देखे जाते हैं: प्रथम—भोजन, द्वितीय—दवा तथा तृतीय अन्य लाभ। इन दृष्टिकोणों को रखते हुए यदि अल्गी उद्भिदों को देखें तो हमें ज्ञात होगा कि प्राचीन काल से चीन और जापान के लोग इसका खाद्य पदार्थ के रूप में प्रयोग करते आ रहे हैं और उसकी खेती भी करते हैं।

श्रीमती हिरोशी तामिया ने **क्लोरेला** नामक अल्गी से भोजन पदार्थ तैयार किया है। स्काटलैंड में **लेमोनोरिया सेकेरीना** की तरकारी बनाई जाती है और **अल्वा** नामक पौधा सलाद के साथ खाया जाता है।
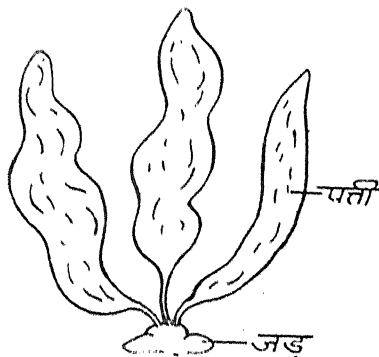
लेमोनेरिया (LAMINARIA)

जर्मनी और नार्वे में इससे रोटी तैयार की जाती है। **डल्स** या **वाटर-लीफ** को स्काटलैंड वासी दूध के साथ खाते हैं।

उत्तरी अमरीका वासी अल्गी उद्भिदों से जैम जेली बनाते हैं। दक्षिणी वेल्स, डेवोन और कार्नवाल के लोग **पोरफाईरा** से बहुत स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ तैयार करते हैं। जापान में इसकी खेती होती है।
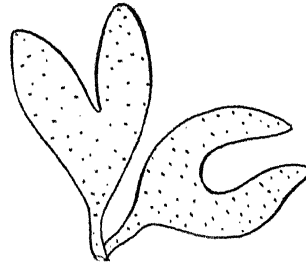
डल्स (DULSE-RHODYMENIA-PALMATA)

लोरेनशिया पिन्नेटीफिडा और **आईरीडी इडयूलिस** अल्गी उद्भिदों का उपयोग खाद्य पदार्थ बनाने के लिए होता है। भारतवासी **स्पाईरोगाईरा** और **उडोगोनियम** की तरकारी बनाते हैं। इसको सुखाकर बाजार में भी बेचते हैं। कुछ अल्गी उद्भिदों का स्वाद मांस के समान होता है और आजकल इनका उपयोग मांस की जगह किया भी जाने लगा है। अत: इसका नाम शाकाहारी मांस (वेजीटेबिल-मीट) पड़ गया है।

न केवल मनुष्य ही अल्गी उद्भिदों को खाते हैं पर जानवरों के लिए भी यह बहुत अच्छा चारा है। समुद्र के किनारे की भूमि जहाँ उद्भिद बहुतायत से पाये जाते हैं, चरागाह के लिए उपयोग में लाये जाते हैं, विशेषत: आइसलैंड, नार्वे, स्काटलैंड, फ्रांस, अमरीका और न्यूजीलैंड में। अल्गी उद्भिद के चारे से दूध की मात्रा बढ़ जाती है अत: दुग्धधारी जानवरों के लिए यह बहुत अच्छा चारा है और उनके चारे का यह एक मुख्य भाग भी बन गया है।

जानवर ही नहीं, मछलियों के लिए भी यह एक अच्छा चारा है। **डायटम** अल्गी जीवितावस्था में मछलियों के चारे के लिए उपयोग में लाई जाती है। यह बहुत सूक्ष्म अल्गी है। देखने में बहुत सुन्दर एवं मोहक होती है। रेत के चिपकने से यह चमकती है। जब डायेटम अल्गीउद्भिद मर जाते हैं तब इनकी तह जमीन में दब जाती है। इस प्रकार की खानों से, जिसमें डायटम अल्गीउद्भिद अधिकता से हों, विस्फोटक पदार्थ—नाइट्रोग्लीसिरीन और डाइनामाइट-तैयार किये जाते हैं।
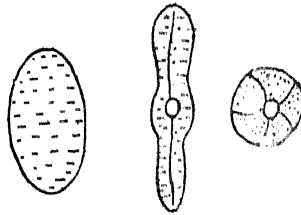
डायेटम (DIATOM)

इसके अतिरिक्त डायेटम अल्गी से पेट्रोलियम भी तैयार किया जाता है। वास्तव में बात यह है कि इसके प्रत्येक कोष में वसा की कुछ मात्रा पाई जाती है। जब यह मर जाते हैं तो वसा पेट्रोलियम में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार पेट्रोलियम का उत्पादन होता है।

अल्गी में अत्याधिक मात्रा में नाइट्रोजन पाया जाता है विशेषतः अल्वा में जिसके फलस्वरूप यह खाद बनाने के काम में भी लाया जाता है। चावल की खेती के लिए अल्गी की खाद उत्तम खाद है क्योंकि इसकी खाद से चावल का उत्पादन बढ़ जाता है। प्रायः नीलहरित अल्गी में वायु के नाइट्रोजन स्थिर करने की शक्ति होती है। **एन्टिरोमोर्फा इन्टेस्टीनेलिस , सोलीरिया कौर्डोलिस** आदि अल्गी मुख्यतः खाद बनाने के काम में आते हैं।

फ्यूकस और **लेमीनेरिया** से दवायें तैयार की जाती हैं। इनमें आयोडीन तत्व बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है। रूस में बहुत-सी भूरी अल्गी उद्भिदों की राख से आयोडीन निकाला जाता है। उत्तरी अमरीका में **मैक्रोसिस्टिस, निरियोसिस्टिस एलेरिया** से आयोडीन निकालते हैं। पहले इससे सोडा बनाया जाता था।
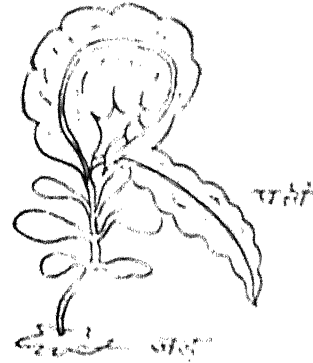
एलेरिया (ALARIA)

अल्सीडियम हेल्मिनथोकोर्टन से कीटनाशक औषधि तैयार की जाती है। बहुत सी समुद्री अल्गी उद्भिदों से फेफड़े और गण्डमाला रोगों की दवायें बनाई जाती हैं। एगर-एगर लाल अल्गी उद्भिदों से तैयार होता है, जो दवा बनाने के काम में आता है। यह लचीला होता है। इसका उपयोग न केवल दवा के लिए ही पर फफूंद और बेक्टीरिया के उगाने और वृद्धि करने के भी काम में आता है।

कुछ लाल अल्गी उद्भिद जैसे **ग्रेसीलेरिया जिलीडियम , जाईजरटीना, पेट्रोक्लेडिया** आदि से एगर-एगर तैयार किया जाता है। एगर-एगर डबल रोटी , बिस्कुट, बेकरी मिठाई व मुरब्बा बनाने के भी काम में आता है। साथ ही साथ स्नो-क्रीम आदि कांतिवर्धक औषधियाँ भी बनाई जाती हैं।

भूरी अल्गी उद्भिदों में एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ पाया जाता है जिसे **एल्गिन** कहते हैं। कपड़े के व्यवसाय में कई प्रकार से एल्गिन अम्ल लवण का प्रयोग किया जाता है। इसके उपयोग से कपड़े में सुन्दरता और चमक आती है। एल्गिन-क्षार-लवण कपड़ा रंगने, छापने, धागों को मजबूत व

कड़ा बनाने के, और आपस में चिपकाने के काम में लाये जाते हैं। चिपकाने और भरने का गुण होने के कारण इसका उपयोग कागज और कार्ड-बोर्ड बनाने में भी होता है। अविलेय एल्गिन लवण जलरुद्ध कपड़ा, प्लास्टिक, बल्केनाइट, लिनोलियम और नकली चमड़ा बनाने के काम में आता है क्योंकि यह लचीला और मुलायम होता है। रबर और आईसक्रीम जमाने के लिए भी काम में लाया जाता है।

अल्गी उद्भिदों में अनेक गुण पाये जाते हैं जिसके कारण इनकी उपयोगिता दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। इन गुणों के आगे उसके समस्त दोष एवं हानियाँ नगण्य हैं। अपने इन्हीं गुणों से, यह छोटे अल्गी उद्भिद अत्यधिक उपयोगी एवं लाभदायक हैं।

धातुओं की खोज में (२)

डा० रमाशंकर राय

आज से छ: हजार वर्ष पूर्व पृथ्वी के धरातल पर उपलब्ध सोने तथा आकाशपिण्डों से गिरे हुए लोहे का ज्ञान हुआ। सोने के ढेर अरब, ईरान, काकेशस, एशिया माइनर तथा भारतवर्ष में पाये जाते थे। मिश्र में सोना निकालने का कार्य पूर्वराज्यवंशीय काल में प्रारम्भ हुआ और शनै: शनै: इतना विकसित हुआ कि खानों से अधिक मात्रा में सोना निकाला जाने लगा। मिश्र के नबिया नामक रेगिस्तान में सैकड़ों खानों के अवशेष पाए गए हैं और डायोडोरस सिसलस ने भी इस बात की पुष्टि की है। मिश्र में पेपिरस पर १३०० ई० पू० बना हुआ एक चित्र मिला है। इस चित्र में वादी हम्मानत की खानों से सोना निकालने के मार्गों का विस्तृत विवरण प्रदर्शित किया गया है। मिश्र में सोना निकालने के लिए सुवर्णमय चट्टानों को हथौड़ों से पीट कर तोड़ा जाता था, फिर इसे खरल में कूट कर मटर के बराबर टुकड़ों में परिवर्तित कर दिया जाता था। इस चूर्ण को लकड़ी की बनी मेजों पर रखकर पानी की धारा से धोया जाता था और अवशेष सोने को स्पांज के ऊपर संग्रह किया जाता था। मिश्र की कतिपय खानों से धोने में प्रयुक्त मेजें भी मिली हैं। डायोडोरस ने लिखा है कि काकेशस प्रदेश में सोना निकालने के लिए लकड़ी की मेज के स्थान पर भेड़ की खाल का उपयोग होता था। मिश्र में खानों से सोना निकालने का कार्य अपराधियों तथा युद्धबंदियों से लिया जाता था। इनके निरीक्षण के लिए सैनिकों का प्रबंध किया जाता था। मिश्र में स्वर्णकारों की नियुक्ति राज्यसत्ता द्वारा होती थी। कभी-कभी मन्दिरों के नियंत्रण में भी उन्हें कार्य करना पड़ता था।

प्रारम्भ में पाए जाने वाले सोने में ताँबा, चाँदी तथा लोहे का भी अंश उपस्थित रहता था। इस मिश्रण के कारण भिन्न-भिन्न रंग का सोना पाया जाता था। रंग परिवर्तन के लिए कभी-कभी अन्य धातुएँ भी सोने में मिला दी जाती थीं। सोना प्राप्त करने के लिए सोने तथा सीसे के मिश्रण को एक साथ खर्पर में पिघलाया जाता था। इस कार्य में प्रयुक्त होने वाली मूषाएँ अथवा खर्पर रन्ध्रमय मिट्टी के बने होते थे। वायु के तीव्र झोंकों द्वारा सीसा तथा अन्य धातुएँ अवकरित हो जाती थीं और पिघला हुआ सीसा लिथार्ज में परिवर्तित हो जाता था। इसका कुछ भाग वायु द्वारा उड़ा दिया जाता था और कुछ खर्पर की दीवालों में अवशोषित हो जाता था। सोना शुद्ध करने के लिए कभी-कभी जौ का पलाल,

नमक तथा टिन भी मिला दिया जाता था। इस मिश्रण को बन्द मूषा में पाँच दिन गरम किया जाता था। जौ का पलाल अवकारक का कार्य करता था और नमक से चाँदी अघुलनशील सिल्वरक्लोराइड में परिवर्तित हो जाती थी। इसके उपरान्त जौ की भूसी वायु के प्रवेश द्वारा जलाई जाती थी। अन्य धातुएँ खर्पर पर अवशोषित हो जाती थीं और शुद्ध सोना खर्पर में बच जाता था। सोने तथा चाँदी के मिश्रण में से सोना निकालने के लिए अंजन तथा कोयला मिला कर गरम किया जाता था। इस प्रकार गरम करने से चाँदी सिल्वरसल्फाइड में परिवर्तित हो जाती थी और इसे खर्पर विधि द्वारा पृथक कर लिया जाता था। रोम में सोना शुद्ध करने के लिए सोने के घोल को पारे में डाला जाता था और पारे को वाष्पीभूत करके अलग कर दिया जाता था। यही कारण है कि बाइबिल में पारे को 'पृथक जल' कहा गया है। मिश्र के पिरामिड कालीन तथा असीरिया की उर कालीन स्वर्ण वस्तुओं का सौंदर्य इतना निराला है कि उन्हें देख कर सोने की धातुकला के सौष्ठव का अनुमान लगाया जा सकता है।

चाँदी की बनी हुई वस्तुओं के चिह्न आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व में पाए गए हैं। मेसोपोटामिया में उर तथा लागाश नामक प्राचीन नगरों के उत्खनन में चाँदी की बनी अनेक वस्तुएँ पाई गई हैं। चाँदी की बनी वस्तुओं का प्रचलन मिश्र में राज्यवंशों की संस्थापना के पूर्व हो गया था। क्रीट की मध्य मिनोअन कालीन सभ्यता में (२०००-१६०० ई० पू०) भी चाँदी तथा सीसा दोनों ही पाए गए हैं। फिलिस्तीन में चाँदी का प्रचलन आज से ३५०० वर्ष पूर्व हुआ। पुरातत्व से उपलब्ध प्रमाणों तथा प्राचीन परम्पराओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि चाँदी निकालने का कार्य सर्वप्रथम एशियामाइनर में प्रारम्भ हुआ। इस कला का केन्द्र हित्ती राज्य की राजधानी में था। सुमेरिया तथा असीरिया के बड़े-बड़े नगरों के व्यापारी चाँदी तथा सीसा खरीदने यहाँ आया करते थे। सरगों महान का सैन्य अभियान आर्मिनिया के 'रजत पर्वतों' से इन धातुओं को प्राप्त करने के लिए होता था। कप्पादोसिया नामक स्थान पर मिली हुई एक तख्ती से यह पता चलता है कि उस समय मेसोपो-टामिया के व्यापारी स्थायी रूप से हित्ती राज्य में रहते थे। यह लोग कई प्रकार की अशुद्ध तथा परिष्कृत चाँदी और शुद्ध तथा मिश्रित सीसा भी खरीदते थे। चाँदी के उत्पादन की यह कला हित्ती राज्य से पश्चिम की ओर एजियन सागर के तटवर्ती प्रदेशों, क्रीट तथा तथा यूरोप में फैली और इसका प्रसार पूर्व में उत्तरी मेसोपोटामिया, एलाम, कार्मीनिया और बैक्ट्रिया में हुआ। इस प्रकार आज से तीन हजार वर्ष पूर्व चाँदी तथा सीसे का प्रचलन सर्व-साधारण में हो गया। ऐतिहासिक लेखों से ज्ञात होता है कि असीरिया के राजा तुकुल्ती निनर्ता द्वितीय ने ८८९ ई० पूर्व में उत्तरी पहाड़ों पर आक्रमण किया था और इस आक्रमण द्वारा उसे लूट में ५ मन चाँदी मिली थी। मिश्र में पारसीक आक्रमण के समय सोने तथा चाँदी के भावों में एक-दो का अनुपात था। धीरे-धीरे यूनान के उत्कर्ष के समय तक सोने तथा चाँदी के भाव में १ : १३ का अनुपात था।

गैलीना नामक अयस्क से चाँदी निकाली जाती थी। इस अयस्क को पहले आग में जलाया जाता था। इस प्रकार इस में गन्धक की मात्रा कम हो जाती थी। इसके उपरान्त इसे अवकारक द्वारा शुद्ध करते थे। ईंधन तथा अयस्क के मिश्रण को एक साथ आग में रखा जाता था। यह आग वायु के तीव्र झोकों से प्रज्ज्वलित की जाती थी। यथेष्ट मात्रा में गंधक निकल जाने पर ज्वाला का ताप बढ़ा दिया जाता और सीसा पिघल कर तल पर इकट्ठा हो जाता था। इस सीसे में प्रायः चाँदी का तृतीयांश निकल जाता था। फिर भी खर्पर विधि द्वारा शुद्ध चाँदी निकाल ली जाती थी। मल में चाँदी के अतिरिक्त ताँबा, आर्सेनिक, एन्टीमनी, टिन तथा सीसा मिला रहता था। चाँदी निकालने की इस

प्राचीन विधि में वर्तमान जारण तथा अवकरित करने की क्रिया संयुक्त रूप से प्रयुक्त होती थी। कभी कभी चांदी प्राप्त करने के लिए चाँदी तथा ताँबे के मिश्रित अयस्क में सीसा मिला कर धीरे-धीरे पिघलाया जाता था। सीसा इन मूल्यवान धातुओं को लेकर बह जाता था और इसमें खर्पर विधि द्वारा चाँदी निकाल ली जाती थी।

धातुओं के निकालने का इतिहास यद्यपि छः हजार वर्ष पुराना है फिर भी लोहे का ज्ञान कुछ विलम्ब से हुआ। वास्तव में लौह युग का प्रारम्भ १२०० ई० पू० के लगभग हुआ। इसी समय संसार में जातियों का स्थान परिवर्तन बड़े ही वेग से हुआ। इस समय तक यद्यपि कांस्य के उपकरणों का प्रचलन था फिर भी लोहे के हथियारों ने उनका स्थान ग्रहण कर लिया। सस्ते तथा उपयोगी होने के कारण लोहे के हथियार अधिक व्यापक हो गए। प्राकृतिक शक्तियों पर विजय पाने का अभियान प्रारम्भ हुआ। इन हथियारों से बड़े-बड़े वन काटे गए। पानी निकालने के लिए नहरें बनाई गईं और कृषि का विकास हुआ। यद्यपि लोहे के अयस्कों का ज्ञान गैरिक तथा अन्य रूपों में बहुत प्राचीन काल से था किन्तु मिश्र और नविया के निवासी लोहा निकालने की कला से अनभिज्ञ थे। इसके विपरीत क्रीट के निवासी बहुत पहले से इसका उपयोग कर रहे थे किन्तु उत्तरी ईरान, एशियामाइनर, आर्मीनिया तथा काकेशस क्षेत्र से एशिया की सम्पूर्ण लोहे की माँग की पूर्ति होती थी। यद्यपि लोहे तथा ताँबे के ओषिदों को अवकरित करने के ताप में कोई विशेष अंतर नहीं है, फिर भी लोहे का उत्पादन ताँबे के बहुत बाद हुआ। इसका कारण यह है कि लगभग दो हजार वर्षों तक रंगीन प्रस्तरों को गरम करके पिघलाने का प्रयत्न किया गया और इस प्रकार गरम करने पर धातुएँ पिघलकर बहने लगती थीं। किन्तु लोहे के अयस्कों में इस प्रकार की क्रिया दृष्टिगोचर न हुई। कांस्य निर्माण करने वाले शिल्पियों ने पर्यवेक्षण किया कि लोहे के अयस्कों को यदि गरम किया जाय तो वायु के प्रविष्ट होने के कारण धातु के ढेलों में अनेक छिद्र बन जाते थे। यही कारण था कि धातुशिल्पी एक लम्बी अवधि तक इसके प्रति उदासीन रहे। लोहा निकालने में दूसरी कठिनाई यह थी कि पिघलने पर धातु की छोटी-छोटी गोलियाँ मल में राख में चली जाती थीं और सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जाता था। कभी-कभी इस मल को गरम करके हथौड़ों से पीटा जाता था और राख के ढेर में से लोहे के टुकड़े निकल आते थे।

आज से लगभग साढ़े चार हजार पूर्व मेसोपोटामिया के तलअस्मर, चगरबाजार और मारी नामक स्थानों पर तथा एशियामाइनर के अलका नामक स्थान पर मानव निर्मित लौह खंडों के चिह्न पाए गए हैं। सुमेरियन सभ्यता में लोहे को 'स्वर्गीय धातु' कहा जाता था और मिश्र में इसे 'स्वर्गीय श्याम ताम्र' की संज्ञा दी गई थी। यह नामकरण इसलिए किया गया कि प्रारम्भ में आकाशीय पिण्डों के टूटने पर लोहा मिलता था। इस लोहे में निकेल धातु मिली रहती थी अतएव इसमें इस्पात के गुण विद्यमान रहते थे। अधिक समय तक लोहे की धातुकला के अविकसित रहने का कारण उच्चताप देने वाली भट्ठियों का अभाव था। प्रारम्भ में शिल्पियों का ध्यान केवल लोहे के साधारण अयस्कों की ओर गया। सोने के साथ-साथ कुछ लोहा भी बन जाता था और यह मूषा के ऊपरी भाग में इकट्ठा हो जाता था। प्रारम्भ में लोहा निकालने में अनेक कठिनाइयाँ थीं क्योंकि अधिक मात्रा में ईंधन व्यय होने के उपरान्त भी पीटने पर तीव्र धारवाली वस्तुओं का निर्माण न हो सका। कुछ समय के उपरान्त यह पता चला कि गरम करके पीटने पर और ठंडे पानी में डालने पर लोहा गुणों में कांस्य से भी बढ़ जाता था। आज से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व आकाशीय पिण्डों से गिरे हुए लोहे और मानव निर्मित लोहे की पारस्परिक सभ्यता का ज्ञान हुआ। बार-बार गरम करके पीटने से लोहे में कोयले का

विसरण (diffusion) होता था और कच्चा लौह फौलाद में बदल जाता था।

लोहे को कड़ा बनाने के लिए उसे गरम करके ठंडा किया जाता था। इस कड़े लोहे को कोयले के चूर्ण में गरम करने पर लोहे का तल इस्पात में बदल जाता था। इस आविष्कार का श्रेय हित्ती राज्य के चलेबीज (chalybes) निवासियों को है। लगभग १२०० ई० पूर्व तक इन लोगों का लौह उत्पादन पर एकाधिपत्य रहा। आज से लगभग ३५०० वर्ष पूर्व लोहे के आभूषण तथा उपासना के हथियारों का प्रचलन हो गया था। धीरे-धीरे इस कला का प्रसार निकटपूर्व में हुआ और यह इटली तथा मिश्र तक फैल गया। तथापि हित्तीराजा हत्तूलिसस तृतीय के १२८१ ई० पू० के इस लेख से पता चलता है कि उस समय लौह-उत्पादन बहुत ही कम मात्रा में होता था। प्रायः सारा उत्पादन आर्मीनिया के पर्वतीय प्रदेशों में होता था।

थ्रैको फ्रिजियन जाति के (एशियामाइनर के आक्रमण तथा हित्ती साम्राज्य के विनाश के कारण यह एकाधिकार समाप्त हो गया और लौह उत्पादन कला का द्रुतगति से विकास हुआ। इस व्यवसाय में निपुण अनेक जातियाँ आर्मीनिया के पहाड़ों से हटकर पूर्व या पच्छिम से चली गईं। इस प्रकार १२०० से १००० ई० पू० के बीच में ईरान में देशी कारीगरों द्वारा लौह उत्पादन प्रारम्भ हुआ। लगभग इसी समय सीरिया, फिलिस्तीन, साइप्रस, काकेशिया तथा क्रीट में भी लौह उत्पादन होने लगा और इतने अल्पकाल में यह कला इतनी शीघ्रता से चारों ओर फैल गई। यूरोप के निवासियों ने एशियामाइनर के आक्रमण-कारियों तथा इटली के कारीगरों के सम्पर्क से इस कला का ज्ञान प्राप्त किया। यूनान से बल्कान प्रदेश होती हुई यह कला पूर्वी आल्पस पर्वत के नारिकम प्रदेश में फैल गई। इस स्थान पर उपलब्ध लौह अयस्क में गन्धक तथा फास्फोरस का अभाव था किन्तु इसमें प्रचुर मात्रा में मैंगनीज पाया जाता था अतएव एक नवीन संकर धातु का निर्माण हुआ जो केवल गुणों में उत्तम न थी वरन् सरलता से पीट कर बढ़ाई जा सकती थी। इस प्रकार आज से ३ हजार वर्ष पूर्व नारिकम की गणना संसार के महान लौह उत्पादन केन्द्रों में होने लगी थी। आगामी कई शताब्दियों के उपरान्त मध्य यूरोप की जर्मन जाति तथा फ्रांस की सेल्टिक जाति ने लौह उत्पादन की कला नारिकम प्रदेश से सीखी।

लोहे का प्रचलन भारत में एक हजार से पाँच सौ ई० पू० के अन्तर्गत हुआ, जबकि प्रायः सभी स्थानों पर लोहे की बनी वस्तुओं का उपयोग होने लगा था। इस काल में स्पंज विधि द्वारा धातु के अयस्क साफ किए गए और अधिक मात्रा में लौह-उत्पादन सम्भव हुआ। इस समय भट्ठियों की रचना तथा उपादेयता में सुधार किया गया। कारीगरों का प्राविधिक ज्ञान बढ़ा और हथियारों का अधिक मात्रा में निर्माण हुआ। पहले लोहे को कोयले के संसर्ग में रखकर बार-बार गरम किया जाता था और गरम दशा में उसे पीटा जाता था। इसके उपरान्त लाल तप्त लोहे को एकदम ठंडा किया जाता था। अन्ततोगत्वा इसे कुछ समय तक निम्न ताप पर गरम करके धीरे-धीरे ठंडा किया जाता। धातु विधियों की सफलता इन तीन विधियों के सुनियन्त्रण और पारस्परिक सामंजस्य पर निर्भर थी क्योंकि ऊष्मा नियंत्रित करने तथा ताप नापने के यंत्रों से वह सर्वथा अनभिज्ञ थे। इन तीन विधियों के पारस्परिक संतुलन तथा विकास के साथ-साथ एक महान प्राविधिक परिवर्तन का सूत्रपात हुआ। संकर धातुओं की प्रधानता का स्थान और उनके मिश्रण की रचना के अनुसंधान के स्थान पर उच्च ताप का उत्पादन, शीघ्र ठंडा करने के ढंग, शनैः शनैः ठंडा करने के समय तथा ताप की ओर कारीगरों का ध्यान गया।

प्राचीनकालीन लौह वस्तुओं के रासायनिक विश्लेषण से पता चला है कि मिश्र में इस्पात का निर्माण १२०० ई० पू० से होने लगा था और ८०० ई०

पू० में यहाँ के कारीगर लाल गरम लोहे को शीघ्र ठंडा करने की कला में निपुण हो गए थे। रोमन साम्राज्य के उत्थान के समय तक सामान्य ताप पर गरम करके धीरे-धीरे ठंडा करने की विधि ज्ञात हुई। यद्यपि मिश्र में २००० ई० पू० की लौह निर्मित वस्तुएँ पाई गई हैं तथापि इस धातु के निकालने का सुव्यस्थित ज्ञान लगभग ६०० ई० पू० प्राप्त हुआ। लौह प्राप्त करने की कला मिश्र के नबिया रेगिस्तान से सुडान होती हुई अफ्रीका के अन्य भागों में फैली। फिलिस्तीन में जेरर नामक स्थान पर लोहा निकालने का कार्य होता था। इस देश के प्राचीनतम लौह उपकरणों का समय १०८० ई० पू० निर्धारित किया गया है। बाइबिल के अनुसार राजा साल के समय तक फिलिस्तीन निवासी लौह उत्पादन कार्य में निपुण हो गए थे, तथापि हथियार और अन्य वस्तुएँ बनाने के लिए उत्तर से लोहे का आयात होता था।

मूषा द्वारा बनाए गए इस्पात का प्रारम्भ सर्वप्रथम भारत में हुआ और कालान्तर में पार्थिया निवासियों ने इस कला का ज्ञान प्राप्त किया। सेरिक नामक इस्पात का उद्गम भारतीय था। कतिपय विद्वानों की यह भ्रांत धारणा है कि इसकी रचना चीन में हुई। किन्तु तथ्य यह है कि न केवल भारत में इसका उद्गम ही था, बल्कि बुद्ध के जन्म के पूर्व अत्यंत उत्तम इस्पात भारत में बनाया जाता था। यही कारण है कि महान योद्धा पुरु ने विजेता सिकन्दर के लिए केवल बीस सेर भारतीय इस्पात ही उचित उपहार समझा।

लौह युग का प्रारम्भ असीरिया में ८८५ ई० पू० में हुआ, जब इस प्रदेश में तुकुल्ती निनुर्ता द्वितीय शासन करता था। इस समय की ऐतिहासिक सामग्रियों के आधार पर इस बात की पुष्टि होती है कि सरगों द्वितीय ने ७२२ ई० पू० में विशेष रूप से लोहे का उपयोग किया। इसके लेखों में 'भट्ठियाँ चलाने वालों' का उल्लेख पाया जाता है। कहा जाता है कि इसके महल में चार हजार मन लोहा पाया गया था। असीरिया के निवासी प्राकृतिक उद्गमों से लोहा निकालना नहीं जानते थे। इनके हथियार तथा अन्य वस्तुएँ आयात किए गए लोहे से बनती थीं। लोहा खरीदने का कार्य राज्य द्वारा होता था। राजकीय कर्मचारी एशियामाइनर तथा सीरिया से लोहा खरीदते थे। कभी-कभी लोहे के लिए युद्ध भी करना पड़ता था। इस प्रकार खरीदे गए अथवा जीते गए लोहे का वितरण राज्य द्वारा होता था।

आज से लगभग चार हजार वर्ष प्राचीन कतिपय ऐतिहासिक स्थलों के उत्खनन द्वारा प्राप्त वस्तुओं के पर्यवेक्षण द्वारा एशियामाइनर के लोहे का अनुमान लगाया जा सकता है। अक्काद भाषा में प्रयुक्त नाम किसी अन्य भाषा से लिया गया है। ऐसा भी सम्भव है कि यह नाम हित्ती राज्य की किसी भाषा से लिया गया हो। लोहे की प्राचीनतम वस्तुएँ कांस्य के सदृश हैं। कांसे की वस्तुओं की मरम्मत के लिए, लोहा तथा लोहे की वस्तुओं को सजाने के लिए कांस्य का उपयोग होता था। उत्तरी सीरिया के दोलिच नामक नगर के आस-पास बड़े पैमाने पर लोहे का उत्पादन होता था। यूनान तथा मेसीडोनिया में केवल छोटे-छोटे लोहे के कुटीर उद्योग स्थापित थे। यूरोप की सारी आवश्यकता नारिकम प्रदेश से पूरी होती थी और इस कारण यूरोप में लोहा शुद्ध करने का कार्य ३०० ई० पू० के लगभग प्रारम्भ हुआ।

रामेश वेदी

चरक ने घियातोरी को धामार्गव लिखा है परन्तु नरहरि पंडित ने धारतोरी को धामार्गव नाम दिया है। इसी तरह भावमिश्र ने घियातोरी के नाम कृत वेधन और राजिमाफला लिख दिये हैं जबकि अन्य लेखकों के अनुसार ये नाम धारतोरी के होने चाहिये। नरहरि ने धारतोरी के नाम गिनाते हुए एकदम गड़बड़ घुटाला कर दिया है। चरक ने घियातोरी को धामार्गव, कर्कोटकी लिखा था, नरहरि ने धारतोरी के ये नाम दे दिये। धन्वन्तरि, कैयदेव तथा भावमिश्र ने घियातोरी को पीतपुष्पा और मदनपाल ने कपीतक लिखा है परन्तु नरहरि ने इन सबके विपरीत धारतोरी को पीतपुष्पा लिखा है। संस्कृत के नामों में इस प्रकार बहुत गड़बड़ दीखती है।

भेद:—

फलों के रूपरंग, आकार प्रकार और स्वाद के आधार पर तोरी के कई भेद होते हैं। सब भेदों के फल लम्बे होते हैं। धारतोरी में फल की ऊपरी सतह पर दस धारियाँ उभरी रहती हैं जो फल की सारी लम्बाई में गई होती हैं। इन धारियों के कारण इसे धारतोरी कहते हैं। संस्कृत में इस का नाम धारा कोशातकी है। मृदंग जैसे लम्बे फल के ऊपर उभरी हुई यह धारियाँ मृदंग की रस्सियों सरीखी दीखती हैं। इस प्रतिरूप के कारण संस्कृत में इसका मृदंगफला नाम बिलकुल ठीक है। फलों का रंग यद्यपि सफेदी लिये हरा होता है परन्तु लोक में इसे काली तोरी कहते हैं।

घियातोरी—जिस भेद का ऊपरला पृष्ठ घिये की तरह चिकना और सम होता है उसका नाम घियातोरी या रामतोरी है। संस्कृत में इसके लिये धामार्गव, राजकोशातकी आदि शब्द हैं। इसके बाल फलों का रंग एक समान श्याम हरित होता है। ज्यों-ज्यों फल बड़े होते जाते हैं उनके ऊपर सफेद से धब्बे पड़ते जाते हैं। सफेदी के इस अंश के कारण इसे सफेदी तोरी भी कह देते हैं। कैयदेव ने इसे श्वेतघोषा नाम दिया है। इसके ऊपर भी दस रेखाएँ फल की सारी लम्बाई में गई होती हैं परन्तु ये उभरी हुई नहीं होतीं।

वैज्ञानिक जगत में दोनों जातियों की भेदक पहिचान में सम्मतियों की भिन्नता है। वनस्पतिशास्त्र के भारतीय विद्वान् मुख्य भेद पुंकेसरों का बताते हैं। घियातोरी (Luffacylind ica (linn.) M. Roem) में इनकी संख्या पांच बताई जाती है और धारतोरी। (Luffa acutangula (linn.) Roub.) में तीन।

चरक ने तोरी की यही दो जातियां लिखी हैं—घियातोरी और धारतोरी।

गुण:—

"इकोनोमिक बॉटनी" के अनुसार दोनों जातियों के बीजों से एक जैसा ही तेल निकलता है जो नीरोग, निर्गन्ध और स्वादरहित है। यह जैतून तेल के प्रतिनिधि रूप में बरता जा सकता है। इसमें ६७.५% से ७०% तालिक अम्ल (पामीटिक एसिड) और ३०-३२.५% वसिक अम्ल (स्टीरिक एसिड) होता है। मधुरेय (ग्लिसराइड्स) के रूप में जातिक अम्ल (myristic acid) भी होता है।

चिकित्सा में उपयोग:—

मीठे फल खाने के काम आते हैं और कड़वे चिकित्सा में। चरक, सुश्रुत आदि ने विविध रोगों के पथ्यों में तथा आहार सम्बन्धी प्रकरणों में और चिकित्सा सम्बन्धी मृदु कार्यों के प्रसंग में जहाँ तोरी (धामार्गव या कृतवेधन) लेने को लिखा है वहाँ

मीठे फलों का प्रयोग करना चाहिये । शोधन कर्मों में वमन, विरेचन आदि के लिये तथा अन्य तीव्र कर्मों में कड़वी किस्मों को लेना अभीष्ट होगा ।

संस्कृत लेखकों ने नामों और गुणों में प्राय: एक भेद को दूसरे के साथ मिला कर वर्णन किया है जिससे प्रतीत होता है कि चिकित्सा की दृष्टि से इनमें विशेष अन्तर नहीं है। दोनों भेद एक दूसरे के स्थान पर बरते जा सकते हैं। इस लेख में भी हमने जहाँ केवल तोरी लिखा है वहाँ घियातोरी या धारतोरी दोनों में से जो चाहें बरत सकते हैं। इसी तरह भोजन सम्बन्धी उपयोगों के लिये जहाँ तोरी लिखा गया है वहाँ मीठी तोरी को ही ग्रहण करें।

(क) शोधन के लिये :—

सुश्रुत के अधोभाग हर गण में धारतोरी का पाठ है।

छह सौ विरेचन भोगों में चरक ने धामार्गव और कृतवेधन का पाठ किया है।[१] धारतोरी को अन्य द्रव्यों के साथ पका कर बनाया एक तेल वे विरेचन के लिये देते हैं।[२] कड़वी तुम्बी के एक अवलेह में वे घियातोरी और धारतोरी दोनों को डालते हैं।[३]

मध्यम आकार की एक कड़वी तोरी को दौरी डण्डे में कुचल कर पानी में रात भर भीगा रहने दें। सुबह मल छान कर पिलाने से दस्त हो जाता है। किसी-किसी की आंतो पर इससे रेचन प्रभाव तो होता नहीं, केवल मरोड़ ही पैदा होते हैं। मध्यम मात्रा से सामान्यतया साफ दस्त आ जाता है। बड़ी मात्रा में देने से पानी जैसे दस्त होते हैं।

जड़ भी अनुलोमक समझी जाती है। कोबर्ट (१९०६) कहते हैं कि धारतोरी की जड़ रूस में विरेचन के लिये बरती जाती है।

वमन द्रव्यों में चरक ने घियातोरी और धारतोरी के फल तथा घियातोरी के पत्ते और फल गिनाये हैं।[१] चरक कहते हैं कि धारतोरी और घियातोरी को कफ और पित्त के वमनोन्मुख होने पर, रोग के आमाशय में आश्रित होने पर वैद्य शरीर को हानि पहुँचाए बिना उलटियां लाने के लिये प्रयोग करे।[२] मांसरस, दूध, यवाग्र आदि से तृप्त होकर रोगी घियातोरी के चूर्णों से बार-बार भावित किये नीलोफर आयदि को सूंघ कर सुखपूर्वक वमन करता है।[३] चूर्ण की हुई घियातोरी की बेर बराबर गोली बनाकर सोलह तोले गाय के गोबर या घोड़े की लीद के रस में घोल कर वे रोगी को पिलाते हैं।[४] इसी प्रकार पीतल, कस्तूरी

---

१. देखें—च०, क०,१, ६।

२. ......एतेनैव च पाकविधिना सर्पपातसी-
करंजकोषातकी स्नेहानुपकल्प्य पाचयेत्
सर्वविशेषानवेक्षमाणः।
तेनागदो भवति ॥ च०, वि० ७, २६।

३. महाजालिनीजीभूत कृतवैधन वत्सकान्।
तं लेहं साधभेद् दव्यो घट्टयन् मृदुनाग्निना ॥
च०, क० ३, १७।

---

१. यानि तु खलु वमनादिषु भेषजद्रव्याण्युप-
योगं गच्छन्ति तान्यनुव्याख्यास्यामः। तद्-
यथा-फलजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गव कुटज-
कृतवेधन फलानि, फलजीमूतकेक्ष्वाकुधा-
मार्गव पत्र पुष्पाणि,.....भक्ष्य प्रकारान्
विविधाननुविधाय यथार्हं वमनार्हाय दद्याद्
विधिवद् वमनम्। च०, वि० ८, १३५।

२. ....कृतवेधनम्।
......................धामार्गवाणि च ॥
उपस्थिते श्लेषपित्ते व्याधावामाशयाश्रये।
वमनार्थं प्रयुंजीत भिषग्देहमदूषयन् ॥
च०, सू० २, ७-८

३. चूर्णं वाप्युतपलादीनी भावितानि प्रभूतशः।
रसक्षीरयवाग्वादितृप्तो घ्रात्वा वमेत्सुखम् ॥
च०, क० ४, १०।

४. चूर्णीकृतस्थ वर्ति वा कृत्वा बदरसंमिताम्।
विनीयांजलिमात्रे तु पिबेद् गो श्वशकृद्रसे ॥
च०, क०, ४,११।

मृग, काला हिरण, हाथी, ऊँट, खच्चर, भेड़, हिरना, मूसा, गधा और गेंडा—इनके मल रसों में इस गोली को पीना होता है।[5] घियातोरी के फल के साथ दूध को पका कर उसमें से घी निकाल लें। इस घोल को मेन फल आदि के काढ़ों से पका कर रोगी को वमन के लिये देते हैं।[6]

पके बीजों के चूर्ण की फक्की या काढ़ा पिलाने से उलटियाँ और दस्त आते हैं। दस से अठारह रत्ती तक पके और सूखे बीजों का चूर्ण खिलाने से सामान्यतया ठीक तरह विरेचन और वमन हो जाता है। कई लोगों पर इसका रेचक कार्य प्रकट नहीं होता और कोमल प्रकृति के कुछ लोगों को बीजों के इसी परिमाण से घण्टों उलटियाँ आती रहती हैं। पांच से आठ रत्ती तक की मात्रा अधिकांश लोगों में केवल मतली ही पैदा करती है।

उलटियाँ लाकर और वस्तिकर्म (एनीमे) द्वारा शुद्धि करने वाली इक्कीस फलवती औषधियों में चरक ने घियातोरी और धारतोरी को गिनाया है।[7] पक्वाशय को शुद्ध करने वाली चार वस्तियों में चरक ने घियातोरी का प्रयोग किया है। गोमूत्र में पका कर इसकी वस्ति (एनीमा) देते हैं।[8]

(ख) सर्वश्रेष्ठ शोधन द्रव्य

शरीर का शोधन करने के लिये सर्वश्रेष्ठ औषध कौन-सी है? यह निश्चय करने के लिये बहुत से चिकित्सक एक सम्मेलन में विचार कर रहे थे। यह बात कोई दो हजार साल पहले की है। इस सम्मेलन में हुए विवाद का रोचक वृत्तान्त चरक ने संगृहीत किया है। विमर्श में भाग लेने वाले एक विद्वान् गौतम ने धामार्गव (घियातोरी) को श्रेष्ठ बताया क्योंकि यह कफ तथा पित्त को अत्यन्त नष्ट करने वाला द्रव्य है।[9] बडिश इससे सहमत नहीं थे। उन्होंने इसके दोषों की ओर ध्यान खींचा कि यह वातकारक और ग्लानि कारक है, साथ ही इसके प्रयोग से निर्बलता भी पैदा हो जाती है। इसलिये वे कुटज को अधिक अच्छा मानते थे।[10] काप्य ने कुटज के दोषों की ओर ध्यान दिलाते हुए धारतोरी की श्रेष्ठता बतलाई और कहा कि यह वायुकारक तो है परन्तु पित्त तथा कफ को प्रबल रूप से हरने वाला है।[11] भद्रशौनक इस बात से सर्वथा असहमत थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से विरोध प्रकट करते हुए कहा कि धारतोरी कटु है और अत्यन्त निर्बलता पैदा करती है इसलिये काप्य के विचार ठीक नहीं है।[12] इन सब विविध विचार सरणियों का समन्वय करते हुए आत्रेय ने विचार को समाप्त किया। उन्होंने बताया कि गुण दोष तो प्रत्येक पदार्थ में कुछ न कुछ होते ही हैं इसलिये द्रव्यों में विद्यमान प्रधान गुणों

---

५. पृषतष्य कुरंगाह्वगजोष्ट्राश्वतराविके।
श्वदंष्ट्रखरखंगानां चैव पेया शकृद्रसे॥
च०, क० ४, १२।

६. तच्छृतक्षी रजं सर्पिः साधितं वा फलादिभिः॥
च०, क० ४, १८।

७. धामार्गवमथेक्ष्वाकु जीमूतं कृतवेधनम्॥
मदनं कुटजं चैव त्रपुषं हस्तिपर्णिनी।
एतानि वमने चैव योज्यान्यास्थापनेषु च॥
च०, सू० १, ८३-८४

८. फलजीमूतकेक्ष्वाकु धामार्गवकवत्सकाः।
चत्वारो मूत्रसिद्धास्ते पक्वाशय विशोधनाः।
च०, सि० १०, २५, २७।

९. ....गौतमो ब्रवीत्॥
कफपित्तनिबर्हणं परं स च धामार्गव
मित्यमन्यत। च०, सि० ११, ६-७

१०. तदमन्यत वातलं पुनर्बडिशो ग्लानिकरं
बलापहम्॥ च०, सि० ११, ७।

११. ....काप्य आह तत्॥
कृतवेधनमाह वातलं कफपित्ते प्रबलं हरे-
दिति। च०, सि० ११, ८-९।

१२. तदसाध्विति भद्रशौनकः कटुकं जातिबल-
घ्नमित्यपि॥ च०, सि० ११, ९।

के अनुसार उनका प्रयोग करना चाहिये। उनकी सम्मति में खून की कमी वाले रोगों में घियातोरी का प्रयोग श्रेष्ठ है और पेट के रोगों में धारतोरी अधिक लाभदायक सिद्ध होती है।" सूखी तोरी में से बीज निकाल कर रातभर मुलेठी के काढ़े में तथा कचनार आदि के काढ़े में गुड़ सहित रात भर पड़ा रहने दें। सुबह मल छान कर वायु गोला, पेट के रोग और कफ के अन्य रोगों में दें। उलटियों को रोकने और हृदय के रोगों को शान्ति के लिये इसे भोजन के साथ देना चाहिये।

(ग) दस्त और पेचिस

आमातिसार में बीज दिये जाते हैं। मोहिदीन शरीफ ने पेचिस (प्रवाहिका) में इपिकाकुना के प्रतिनिधि रूप में बीजों को अत्यन्त उपयोगी बताया है। गिरियों को पानी के साथ खरल कर लेई सी (इमल्शन) बना कर देना अच्छा रहता है। प्रनिलम्ब (इमलशन) का रंग हरा सा सफेद होता है।

डा० बा० ग० देसाई ने दिखाया है कि तोरी को अल्प प्रमाण में देने से भूख लगती है, मल साफ होता है और पेट के अवयवों की क्रिया सुधरती है।

(घ) पेशाब के रोग

उपवृक्क (adrenal) सम्बन्धी मधुमेह में गरम की हुई तोरी का रस अच्छा होता है।

ताजी बेल और पत्तों का फाण्ट खूब पेशाब लाता है। मीनोट (बुलेटीन इकोनो इण्डोचीन, १९२९, पृ० २५६) धारतोरी को प्रयोग करने की एक प्रसिद्ध कम्बोडियन विधि इस प्रकार बताते हैं—पूरा बड़ा फल लेकर उसका एक सिरा काट दें। इसके अन्दर एक औंस यवक्षार (दहातु भूमीय nitrate of potash) भर दें। सिरे को बन्द करके दहकते कोयलों पर स्विन्न कर लें। दिन में इस गूदे को डेढ़-दो छटांक खा लें। यह मूत्रल का काम करता है। जावा में धारतोरी के पत्तों का काढ़ा रक्तता (यूरीमिया) में दिया जाता है।

(ङ) जिगर और तिल्ली के रोग

पत्तों के कल्क में शहद मिला कर तिल्ली में देना लाभकारी समझा जाता है। बीजों को अथवा पत्तों को पीस कर गरम लेप करने से तिल्ली की सूजन मिटती है। बीज समेत फल को पानी में पका कर बनाये काढ़े को एक तोला सुबह और एक तोला शाम को पन्द्रह-बीस दिन लगातार पिलाने से जिगर और तिल्ली के विकारों में तथा जलोदर में बड़ा लाभ पहुँचता है। यकृछाल्युदर, प्लीहोदर और यकृत की विकृति से उत्पन्न जलोदर में तोरी का निष्कर्ष (टिंक्चर) लाभदायक होता है। पहले बड़ी मात्रा में देना चाहिये और फिर मल तथा मूत्र के परिमाण का ध्यान करते हुए मात्रा को घटाया या बढ़ाया जा सकता है। श्वपथु (dropsy) में जड़ का प्रयोग किया जाता है।

पीलिया (कामला, जोण्डिस) में सूखे फल की नुस्वार दी जाती है।[1]

(च) खांसी

गिरियों में क्योंकि श्विति (एल्ब्युमिन) और तेल होता है इसलिये थोड़ी मात्राओं में ये कफ निस्सारक समझी जाती हैं। क्षुब्ध श्वास प्रणालियों पर इनका शामक प्रभाव होता है। इनके सेवन से सूखी खांसी भी मिटती है। खांसी में गिरियों का चूर्ण सामान्यतया ढाई से पांच रत्ती की मात्राओं में दिया

१३. ....प्रवंर कोठफलं च पाण्डुषु ॥
उदरे कृतवेधनं हितं............ .... ।
च०, सि० ११, १२-१३ ।
.....जीर्णशुष्काणामतः कल्पः प्रवक्ष्यते ॥
मधुकस्य कषायेण बीजकण्ठोद्धृतं फलम् ।
सगुडं व्युषितं रात्रि कोविदारदिभिस्तथा ॥
दद्याद् गुल्मोदरातेभ्यो ये चाप्यन्ये कफामयाः ।
दद्यादन्नेन संयुक्तं छर्दिहृद्रोगशान्तये ॥
च०, क० ४, ७-९ ।

१. घेयं वा जालिनी फलम् ।

जाता है। गन्ने के रस के साथ धारतोरी को पका कर चरक खांसी में पिलाते हैं।[1] जीवक, ऋषभक, शतावरी, कौंच के बीज, शतावर, काकोली, बड़ी मुण्डी, मेदा महामेदा और मधूलिका—इनमें से एक-एक को घियातोरी के साथ चूर्ण करके शर्करा और शहद मिला कर तैयार किए हुए इनके अवलेह हृद्दाह वाले खांसी के रोगियों को चटाने चाहिये। पित्त की गरमी से युक्त कफ में थोड़े गरम जल के अनुमान से देने चाहिये।[2]

(छ) मानसिक रोगों में

जाति, चमेली, हल्दी, चोरक, सफेद पुनर्नवा, महासहा, क्षुद्रसहा, हैमवती, कन्दूरी, पुनर्नवा और कसौंदी के पृथक् पृथक् काढ़े में घियातोरी के एक या दो फलों को मल कर छान लें। मानसिक रोगों में उलटियां लाने के लिये इस श्रेष्ठ वामक को पीना चाहिये।[3] सुश्रुत ने ऊर्ध्वभाग हर द्रव्यों में धारतोरी का पाठ किया है। कच्ची कड़वी तोरी को सेक कर उसका रस निकाल कर कनपटी पर लगाने से सिर की पीड़ा मिटती है। आधा सीसी में भूने हुए फल की नुस्वार देने से द्रव का प्रवाह जारी हो जाता है और सिर दर्द को आराम मिलता है।

(ज) स्त्रियों के लिये

बच्चा होने के बाद जेर को गिराने के उद्देश्य से चरक घियातोरी और धारतोरी से पकाये तेल का एनीमा देते हैं। यह एनीमा वायु की गति-रोध को करता है और वायु, मूत्र तथा मल के साथ लगी हुई जेर को बाहिर लाता है क्योंकि वायु, मूत्र और मल तथा अन्य भी बाहर निकलने वाले पदार्थ जेर के अन्दर के भाग में लगे हुए रहते हैं।[3]

तोरी के स्वरस को दही के पानी के साथ पीने से और बेल की नाड़ियों का धुआं देने से योनिकन्द नष्ट हो जाता है।[4] उत्पादक अंगों पर उगे बालों को उखाड़ कर बीजों के तेल में मिला हुआ काला सुरमा लगा दें तो दुबारा बाल नहीं उगते।[5]

(झ) बवासीर

पत्तों के कल्क में शहद मिलाकर खाना बवासीर में लाभकारी है। सूखी तोरी के चूर्ण को अवधूलन करते रहने से बवासीर के मस्से गिर जाते हैं।[6] हल्दी के साथ तोरी को पीस कर बवासीर पर लेप करते हैं।

---

१. क्ष्वेडं कासीपिबेत् सिद्धं मिश्रमिक्षुरसेन च ॥ च०, क० ६, १२।

२. जीवर्कर्षभकौ वीरामात्मगुप्तां शतावरीम्। काकोली श्रावणी मेदां महामेदां मधूलिकाम् ॥ एकैकशो मिसंचूर्ण सह धामार्गवेण ते। शर्करामधुसंयुक्ता लेहा हृद्दाहकसिनाम् ॥ सुखोदकानुपानाः स्युः पित्तोक्ष्मसहिते कफे। च०, क० ४, १३-१४

३. जात्याः सौमनसायिन्या रजन्याश्चोरकस्य च। वृश्चीरस्य महाक्षुद्सहाहैमवतस्य च ॥ च०, क० ४, १६।

३. एभिरेव चास्थापनैः फलजीमूतेक्ष्वाकु धामार्गव कुटजकृतवेधन हस्तिपिप्पल्युपहितै रास्थापयेत्। तदा स्थापनमस्याः सह वातमूत्रपुरीषैर्निर्हरत्यपरामासक्तां वायोरेवा प्रतिलोमगत्वात्। अपरां हि वातमूत्रपुरीषाण्यन्यानि चान्त बंहिर्मार्गाणि सज्जन्ति ॥ च०, शा० ८, ४१।

४. घोषकः स्वरसः पीतो मस्तुना च समन्वितः। योनिकन्दं निहन्त्याशु तन्नाडी चैव धूपितः ॥ बंगसेन

५. उत्पाट्य गुह्यप्रभवाणि रोमाण्यभ्यंजनं तत्र ततोविधेयम्। कोशातकी बीज समुद्भवेन तैलेन लोम्नामपुनर्भवाय ॥ राजमार्तण्ड

६. कोशातकी रजोर्भ्रपाश्निपतन्ति गुदोद्भवाः। चक्र०, अर्शचि०

कड़वी तोरी की बेल को जड़ समेत उखाड़ कर सुखा लें। जब फल भी ठीक प्रकार सूख जाये तो बेल को सर्वांश में जला दें। भस्म जब ठण्डी हो जाय तो छः गुने पानी में घोल कर इक्कीस बार छान लें। इस जल में बैंगन को उबाल कर घी में भून कर गुड़ के साथ बवासीर का रोगी तृप्त होकर खाये। साथ में लस्सी पीये। सात दिन तक ऐसा करने से बहुत बड़े हुए और ऐसे बहुत पुराने मस्से भी ठीक हो जाते हैं जो कि रोगी का अंग जैसे बन चुके हों।[1]

कड़वी तुरई को सुखा कर कूट लें और कपड़े में छान लें। थोड़े से पुराने गुड़ के साथ इसे मिलाकर जरा कूट लें तो यह एकजान हो जायगा। हथेली पर बट कर इसकी बत्ती बना लें। गुदा में यह बत्ती रखने से बादी (श्लैष्मिक) बवासीर ठीक हो जाती है।[2]

कड़वी तोरी की बेल की जड़ को घिस कर लेप करने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।[3] बीजों का ठण्डा लेप भी खूनी बवासीर में करते हैं।

लिंगार्श में कड़वी तोरी के बीज, महाबोधि प्रदेश में पैदा हुई हरड़ और समुद्रफेन को जल में पीस कर लेप करने से निस्सन्देह लाभ होता है।[4]

१. स्विन्नं वार्त्ताकुफलं घोषायाः क्षारजेन सलिलेन।
तद्घृतभृष्टं युक्तं गुडेनातृप्तलोयोत्ति॥
पिबति च नूनं तक्रं तस्याश्वैवातिवृद्ध गुद-जानि।
यान्ति विनाशं पुंसां सहजान्यपि सप्तरात्रेण
॥ मे० र०, अर्शो रोगा०, ३०।

२. अर्शोघ्नी गुदगा वर्त्तिर्गुडघोषाफलोद्भवा। मे० र०, अर्शो रोगाधि०, ८।

३क. ज्योत्स्निकामूलकल्केन लेपो रक्तमार्शसां हितः। मे० र०, अर्शोरोगाधि०, ८।

ख. भोज्यं रक्तार्शसेस्तद्वज्ज्योत्स्निकामल-लेपनम्॥ चक्र०, अर्शचि०,

४. महाबोधिप्रदेशस्य पथ्या कोशातकीरजः।
सफेनंलेपतो हन्ति लिंगवर्तिमसंशयम्॥
मे० र०, अर्शोरोगाधि०, १६

(अ) त्वचा के रोग

तोरी का पूर्ण विकसित फल लें। फल सूखा हुआ न हो। एक सिरे से छेद कर पानी भर दें। रातभर रखा हुआ यह बासी पानी एक तोला रोज पीने से त्वचा के सब प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं।[5] कोमल पत्तों को, सिल-बट्टे पर रगड़ कर शहद मिलाकर त्वचा के रोगों में खिलाया जाता है। चरक ने तोरी के तेल को त्वचा के रोगों में उपयोगी पाया है।[6] बीजों को पीस कर बनाया शीतल लेप भी खाल के रोगों में किया जाता है।

जिन व्रणों के तन्तु सड़ रहे हों उन्हें तोरी के शीत कषाय द्वारा धोने से बहुत लाभ होता है। इससे व्रणों की शुद्धि होती है और वे जल्दी भर जाते हैं।

कड़वी तुरई के बीज, कड़वी तुम्बी के बीज और सोंठ प्रत्येक इक्कीस तोले लेकर पानी की सहायता से सिलबट्टे पर चटनी की तरह पीस लें। इसे दो प्रस्थ तिल तेल और आठ प्रस्थ पानी में हलकी आँच पर जलीय भाग उड़ जाने तक पका लें। यह तेल अनेक प्रकार के बुरे जख्मों पर लगाया जाता है। गोविन्ददास ने इस तेल को उपदंश और फिरंग रोगों की चिकित्सा के प्रकरण में पढ़ा है।[7] पत्तों को पीस कर लगाने से चौपायों के घाव भर जाते हैं।

५. कोशातकी फले न्यस्तं जलं पर्युषितं निशि।
कर्षमात्रन्तु तत्पीतं सर्वकुष्ठहरं परम्॥
शोढल

६. सर्षपकरंजकोशातकीनां तैलान्यथेंगुदीनां च।
कुष्ठेषु हितान्याहुस्तैलं यच्चापि खदिरसा-रस्य॥ च०, चि० ७, ११९।

७. तिलकोशातक्यलाब्वोर्बीजं नागरसाधितम्।
तैलं हन्त्यविशेषेण व्रणं दुष्टमनेकधः॥ भै. र., उपदंश फिरंगाधिकार., २७।

गले की क्षयी ग्रन्थियों (गण्डमाला) की चिकित्सा में चक्रपाणिदत्त तोरी के रस में पिप्पली घिस कर नाक के अन्दर एक बूंद टपकाते हैं।[1]

(ट) विषों में

जीव जन्तुओं के विषों को उतारने के लिये तोरी का बहुत व्यवहार होता है। वैद्यों का विश्वास है कि बेल के विविध भाग जब खिलाये या पिलाये जाते हैं तो बार-बार आने वाली उलटियों और दस्तों के साथ-साथ विष भी निकल जाता है। इस उद्देश्य से ताजे फल के रस में या सूखे फल के काढ़े में शहद मिला कर अथवा गिरियों को पानी में पीस कर पिलाते हैं। शोठल ने लिखा है कि तोरी का काढ़ा पीने से चूहे का समस्त विष नष्ट हो जाता है।[2] कुत्ते के विष को उतारने के लिए गिरियों को पानी में रगड़ कर पिलाते हैं। देहातों में सर्प दंश में भी यह प्रयोग में है। भूण्ड, मधुमक्खी आदि कई प्रकार के विषैले जन्तुओं के डंक मारने पर फल के स्वरस को या गूदे को लगाते हैं।

(ठ) आँख के रोग

पत्तों का ताजा रस बच्चों की आँखों में डालने से दुखती आँख ठीक हो जाती है, कुकरों के कारण अक्षिपटल पर शोथ है तो वह उतर जाती है। जिन लोगों की आँखों में गोंद अधिक आती है पत्तों का ताजा रस डालने से उन्हें लाभ होगा, आँख चिपकना भी बन्द हो जायगी। पुजाकोप (कन्जन्विट वाइटिस) में धारतोरी के पत्तों का रस आँख में डालते हैं।

(ड) दांत के रोग

गिरी को मीठे तेल में घिस कर आँजन से आँख का फूला दूर होता है।

अपक्षत (decayed) या अक्षित (carious) दाँतों के लिये फल या बीजों की बनाई सिगरेट पीते हैं।

---

१. कोशातकीनां स्वरसेन नस्यं पिपली संपुटेन। ॥
चक्र,. गलगण्ड चि.

२. अखिलमाखुविषं निहन्यात्।
कोशातकीबवयनमापिबतोथवापि ॥ शोठल

निर्देश

राजनिघण्टु, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, १९२५।
धन्वन्तरि निघण्टु, ,, ,, ,, ।
कैयदेव निघण्टु, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, १९२८।
भावप्रकाश निघण्टु, चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, १९४०।
अनुभूत चिकित्सा सागर, गंगाप्रसाद दाधीच, १९०८।
द्रव्यगुणविज्ञानम्, यादव जी त्रीकम जी, संवत् २००७।
नाद कर्णी, ए. के. १९५४, इण्डियन मैटीरिया मैडिका।
चोपड़ा, आर० एन०, १९३३ इण्डिजिनस ड्रग्स ऑफ इण्डिया।
बर्किल, आई० एच० १९३५ ए डिक्शनरी ऑफ दि इकोनोमिक प्रोडक्ट्स आफ दि मलय पेनिनसुला, गिर।
बसु, बी० डी०, कीर्तिकर, के० आर० इण्डियन मेडिसिनल प्लान्ट्स, दूसरा संस्करण, जि० २।
चोपड़ा, रा० ना०, बदनागर, पोयजनस प्लान्ट्स आफ इण्डिया।
रा० ला०, गोप, सुधामयी १९५१ इकानामिक बाटनी जिल्द ५, सं. १, जनवरी-मार्च।
फडनीस, के० डी०, रेगे ए० वी०, पिशविकर १९४८ जर्नल यूनिवर्सिटी बम्बई, सं. २८।
डी० जी० और शाह एस० बी० १९४४ प्रोसीडिंग्स ऑफ दि थर्टी-फर्स्ट इण्डियन साइन्स कांग्रेस, दिल्ली, भाग ३।
इण्डियन जर्नल ऑफ मेडिकल रिसर्च, १९४३, ३१।

मानवता के लिए अन्तरिक्ष-अनुसन्धान सम्बन्धी लाभ

(संकलित)

अन्तरिक्ष-युग के २३ वर्षों में, अमेरिका ने संचार, मौसम विषयक पर्यवेक्षण और नौकानयन सम्बन्ध में कई प्रयोगात्मक भू-उपग्रह प्रक्षिप्त किये और उनकी सम्भावनाओं के विषय में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। अन्तरिक्ष-अनुसन्धान के हजार व्यावहारिक उपोत्पाद हैं, जिनका प्रादुर्भाव हो चुका है या होने वाला है। इन उपोत्पादों के विषय में लोगों को अपेक्षाकृत कम जानकारी प्राप्त है।

व्यावहारिक लाभ :

आजकल भोजन पकाने के लिए नवीनतम किस्म के जिन बर्तनों और तवों का प्रयोग किया जा रहा है, वे 'पाइरोसेरम' के बने होते हैं। यह एक ऐसा पदार्थ है, जिससे ही प्रारम्भ में भू-उपग्रहों के शंकु भागों (नोज कोन्स) का निर्माण करने की बात सोची गयी थी। पाइरोसेरम से बने बर्तनों को फ्रीजर (ठण्डा करने वाले उपकरण) से निकाल कर तत्काल आग की उष्णतम लपट पर रखने से भी उन्हें कोई क्षति नहीं पहुँच सकती। इसी प्रकार, राकेट विषयक अनुसन्धान के परिणामस्वरूप, एल्यूमिनियम के एक भाररहित द्रव मिश्रण का पता लगाया गया है, जिसका प्रयोग घरेलू नालियों, धातु द्वारा जल-निरोधित छतों, बर्तनों और बिजली के जोड़ों की मरम्मत के लिए किया जा सकता है।

अन्तरिक्षीय उड़ान के लिए मानव-प्राणी को जिस प्रकार के भोजन की आवश्यकता हो सकती है, उसके सम्बन्ध में होने वाले अनुसन्धान से पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों के भोजन के पोषक तत्वों में सुधार हो सकता है। विश्व की बढ़ती हुई जन-संख्या के लिए खाद्य पदार्थों की मांग बढ़ जाने पर कृत्रिम या नये प्रकार के खाद्य-पदार्थों से खाद्य समस्या हल करने में बहुमूल्य सहायता प्राप्त हो सकती है। अन्तरिक्षीय अनुसन्धान के फलस्वरूप, खाद्य और कृषि उद्योग के लिए विशिष्ट प्रकार के नवीन उपकरणों की व्यवस्था हो रही है। उदाहरण के लिए, डिब्बों में बन्द करने या शीतित करने के निमित्त खाद्य पदार्थ तैयार करने में श्वेतीकरण की लघु-लाल (इन्फ्रा रेड) विधि बहुत प्रभावकारी सिद्ध हुई है।

अन्तरिक्ष-यान में उड़ान करते समय प्रयुक्त जल को पुनः प्रयुक्त करने योग्य बनाने की विधि के सम्बंध में जो अनुसन्धान हो रहा है, उससे विश्व के अनेक भागों में, जहाँ पीने योग्य पानी का अभाव है, जलाभाव की समस्या हल करने में सहायता मिल सकती है। इसी प्रकार, जल के पुनश्चक्रण के सम्बन्ध में जो अन्तरिक्षीय अनुसन्धान हो रहा है, उससे लाभकर ढंग पर समुद्र के खारे पानी को मीठे पानी में परिणत करने में भी सहायता प्राप्त हो सकती है।

अन्तरिक्ष यान को पृथ्वी पर वापिस लाने के लिए प्रयुक्त हवाई छतरी के लिए स्टेनलेस स्टील के जिस बारीक वस्त्र का नमूना तैयार किया गया है, उसका फुलाये जा सकने वाले भवनों के निर्माण में प्रयोग औद्योगिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। यह वस्त्र स्टेनलेस स्टील के ऐसे मजबूत और बारीक तारों से बुना होता है, जिस पर रासायनिक विकार और अत्यधिक तापमान का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

सौर ऊर्जा का संग्रह करने तथा भू-उपग्रह के उपकरणों को संचालित रखने के लिए, निकल-कैडमियम की जिस छोटी विद्युत-उत्पादक बैटरी का निर्माण किया गया है, उसमें केवल प्लग लगा कर बैटरी-चालित रेडियो और फ्लैशलाइट में पुनः विद्युत्शक्ति का संचार किया जा सकता है।

चिकित्सा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में:—

औषधियों और स्वास्थ्य के क्षेत्र में ठोस परिणाम प्राप्त किये जा चुके हैं। इनके अन्तर्गत राकेट प्रोपेलेण्ट से विकसित औषधि, जिसका प्रयोग मानसिक रोगों के उपचार में हो सकता है, तथा शल्य-चिकित्सा के समय रक्त के तापमान को शीघ्रता से कम करने की एक विधि सम्मिलित है।

कुछ प्रकार के हृदय-विकार वाले मनुष्य अब एक ऐसा स्पन्दन-नियन्त्रक यन्त्र धारण करके सामान्य रूप से जीवित रह सकते हैं, जो उनके हृदय की गति को सन्तुलित रख सकता है। अन्तरिक्ष-वैज्ञानिकों द्वारा अत्यन्त लघु आकार में निर्मित यह यन्त्र पारे की अत्यन्त लघु बैटरी द्वारा संचालित होता है, और इसे हृदय रोग से पीड़ित व्यक्ति के शरीर में टांका लगा कर सिला जा सकता है।

अन्तरिक्ष यानों के लिए एक विद्युत-स्थैतिक केमरा तैयार किया गया है, जो बिना सफाई-धुलाई के चलचित्र या स्थिर 'तात्कालिक चित्र' तैयार कर सकता है। यह कैमरा रोगी की दशा को अंकित करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। यदि किसी रोगी की दशा अत्यन्त चिन्ताजनक हो, तो इसके द्वारा उसका तत्काल चित्र लेकर डाक्टर को दिखलाया जा सकता है।

पारा-चालित बैटरियों का प्रयोग एक कृत्रिम कण्ठनलिका में किया जा रहा है, जिसके द्वारा मूक व्यक्ति बोल सकते हैं।

यातायात के क्षेत्र में :—

विशेषज्ञों का कहना है कि ध्वनि की गति से भी अधिक तेज चाल से उड़ने वाले (सुपरसानिक) नवीन यातायाती विमान, जिनकी कल्पना अंशतः अमेरिका के राकेट-चालित अनुसन्धानात्मक विमान, एक्स-१५, के परिणामों के आधार पर की गयी है, लगभग २ घण्टे में अतलान्तक के पार जा सकेंगे।

इन विमानों में अन्तरिक्ष-यान की कुछ विशेषताओं का समावेश होगा। वे प्रतिघण्टे १,५०० मील की गति से ५०,००० फुट की ऊँचाई पर उड़ेंगे। राकेट द्वारा प्रक्षिप्त उच्च गति वाले यातायाती विमानों के कारण माल और सामान के आवागमन में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने की सम्भावना है।

उद्योगों के लिये नवीन पदार्थ :—

अन्तरिक्ष अनुसन्धान के फलस्वरूप नये नये पदार्थ—धातुएँ, मिश्रित धातुएँ, [illegible] और प्लास्टिक—उत्पन्न होने लगे हैं, जिनका उपयोग उद्योगों पर किया जा सकता है। इनमें से कितने ही पदार्थ इस समय प्रयुक्त पदार्थों की अपेक्षा अधिक टिकाऊ और मजबूत हैं और उनमें तीव्र ताप को सहन करने की अधिक क्षमता पायी जाती है। उदाहरण के लिए, नयी किस्म के काँच बनाये जाने लगे हैं, जिनके द्वारा तीव्र प्रकाश स्वतः छन सकता है। इसी प्रकार, घरेलू प्रयोग के लिए नये प्रकार के टिकाऊ प्लास्टिक के सामान बनाये जा रहे हैं।

अन्तरिक्ष यानों के लिए जिन विद्युत् स्रोतों को विकसित किया जा रहा है, जिनसे खनिज तेल और कोयले के अभाव के कारण उत्पन्न कठिनाई दूर की जा सकती है। इन विद्युत् स्रोतों में सौर बैटरियाँ, गैस वाले फ्यूल सेल तथा कम भार वाले नाभिकीय प्रतिक्रियावाहक विशेष उल्लेखनीय हैं।

फ्यूल सेल एक ऐसा उपकरण है, जिसमें किसी यन्त्र की सहायता के बिना ही ईंधन और आक्सीजन की रासायनिक प्रतिक्रिया सीधे विद्युत्शक्ति उत्पन्न करती है। अमेरिकी स्थल और जल सेना को ३० वाट बिजली उत्पन्न करने वाला एक ३० सेल का वहनीय विद्युत-संयन्त्र दिया जा चुका है। इसके अतिरिक्त, एक १,००० यूनिट सेल विकसित किया गया है, जो १५ किलोवाट बिजली उत्पन्न करता है और ट्रैक्टर को संचालित कर सकता है।

भू-उपग्रहों में प्रयुक्त सौर विद्युत में सूर्य का विकिरण सीधे विद्युत् में परिणत हो जाता है। यद्यपि इस प्रकार के यन्त्रों की क्षमता कम होती है, फिर भी सूर्य विद्युत शक्ति का एक ऐसा स्रोत है, जो कभी समाप्त नहीं हो सकता। इस प्रकार की

विद्युत् शक्ति से संचालित भू-उपग्रह 'वैनगार्ड-१' लगभग तीन वर्ष पूर्व कक्षा में स्थापित हुआ था और वह आज भी पृथ्वी पर रेडियो-संकेत प्रेषित कर रहा है। उसका रेडियो सौर-विद्युत् द्वारा संचालित है।

अणुशक्ति के क्षेत्र में :—

अन्तरिक्ष अनुसन्धान के प्रसंग में आणविक बिजली के क्षेत्र में जो अनुसन्धान हुए हैं, उनके फलस्वरूप 'एस० एन० ए०' (अन्तरिक्ष-आणविक सहायक) नामक थर्मोयोनिक कनवर्टर का आविष्कार हुआ है। आणविक यन्त्रों की एक विशेषता यह है कि इनमें न तो संग्रह-उपकरणों और न ही ताप-स्रोतों की आवश्यकता होती है। ये सामान्य प्रकार के विद्युत-उत्पादक यन्त्रों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय प्रतीत होते हैं। हो सकता है कि इससे आणविक बिजली उत्पन्न करने वाले बड़े कारखानों की लागत कम हो जाय, जिससे किसी दिन संसार के उन नव-विकासोन्मुख क्षेत्रों की बिजली के अभाव की समस्या हल हो जाय, जिनके पास ईंधन के स्रोत अत्यन्त सीमित हैं।

एक अन्य सम्भाव्यतापूर्ण विद्युत स्रोत है प्लाज्मा विद्युत, जो तप्त अयनीकृत गैसों का प्रयोग करने से उत्पन्न होती है। यह गैस विद्युद्वह का कार्य करती है और इसका प्रयोग अनेक प्रकार के कार्यों में हो सकता है। यह सरल और सक्षम है। अमेरिका के १० नगरों में इस स्रोत द्वारा विद्युत की पूर्ति करने की तैयारी हो रही है।

खनिजों के विकास में योग :—

अभी तक जिन टैकोनाइट (अत्यन्त कड़ी लोहे की चट्टानों) की खुदाई करना अलाभकर था, उनको खोद कर निकालने में 'जेट-खनन' (चट्टानों को गलाने वाला गुप्त राकेट) अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो रहा है। विशेषज्ञों का कहना है कि २० वर्ष से भी कम समय में अमेरिका अपनी कड़ी लौह चट्टानों से अपना दो-तिहाई लोहा प्राप्त करने लगेगा।

इस समय अमेरिका में ५,००० से अधिक कम्पनियाँ या अनुसन्धान संस्थाएँ राकेट-आन्तरिक्ष अनुसन्धान के कार्य में संलग्न हैं। अभी तक इन अनुसन्धान कार्यों के फलस्वरूप ३,२०० से अधिक विभिन्न प्रकार के अन्तरिक्ष-सम्बद्ध उपोत्पादों की कल्पना की जा चुकी है, या उन्हें विकसित किया जा चुका है। अन्तरिक्ष-अनुसन्धान क्षेत्र में रूस अमेरिका से भी आगे है।

किन्तु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सम्भावना है कि अन्तरिक्ष अभियान की सफलता से युद्ध का भय समाप्त हो जायेगा। अन्तरिक्ष अनुसन्धान में शक्ति, साधन, कल्पना और पहल के संलग्न हो जाने से शान्ति को बनाये रखने में प्रभावकारी योग प्राप्त हो सकता है। अनेक समाज-वैज्ञानिकों और इतिहासकारों का सुझाव है कि कालान्तर में अन्तरिक्षीय प्रयास उन शक्तियों का स्थान ग्रहण कर लेंगे, जिन्होंने इतिहास में अनेक बार राष्ट्रों को युद्ध के लिए प्रेरित किया है।

डा० विलियम शोकली

ट्रांजिस्टर के जन्मदाता, डा० विलियम शोकली एक बड़े ही अनूठे वैज्ञानिक हैं। वे सदैव अपने अनुसंधान-कार्य को व्यावहारिक कार्यों में प्रयोग में लाने में गहरी रुचि लेते रहे हैं। १९३६ में मेसाचूसेट्स इन्स्टिट्यूट औव् टेक्नोलौजी से स्नातकीय उपाधि प्राप्त करने के तुरन्त पश्चात्, उन्होंने अमेरिकन टेलिफोन एण्ड टैलिग्राफ कम्पनी की अनुसंधान एवं विकास शाखा, वैल टेलिफोन लेबोरेटरीज् में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। वे इस अनुसंधान दल के नेता थे जिसने ट्रांजिस्टर नामक उस यन्त्र का आविष्कार किया है, जिसने अनेक इलैक्ट्रोनिक उपकरणों में वैक्युम ट्यूब का स्थान ले लिया है। जब १९४८ में ट्रांजिस्टर के आविष्कार की घोषणा की गयी तब इसका वैज्ञानिक जगत में बड़ा ही स्वागत हुआ था।

आकार में लगभग मटर के दाने के बराबर ट्रांजिस्टर, संकेतों को १ लाख गुना तक बढ़ा सकते हैं। ट्रांजिस्टर के आविष्कार से अनेक उपकरणों ट्रांसमिशन, सुनने सम्बन्धी उपकरणों, रेडियो, टेलिविजन, गणना सम्बन्धी यन्त्रों तथा अन्य उपकरणों में अनेक प्रकार के सुधार सम्भव हुए हैं।

डा० शोकली ने वास्तव में अकेले ट्रांजिस्टर का आविष्कार नहीं किया है। उन्होंने उस सिद्धांत का विकास किया है जिसके आधार पर ट्रांजिस्टर का निर्माण आधारित है। उन्हीं के नेतृत्व में उनके अनुसन्धान दल के दो मेधावी सदस्यों, डा० जान बारडीन तथा डा० वाल्टर एच० ब्राटेन ने प्रथम ट्रांजिस्टरों का विकास किया था। इन तीनों वैज्ञानिकों को अपनी उत्कृष्ट सफलताओं के लिए १९५६ का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था।

ट्रांजिस्टर के सबसे महत्वपूर्ण भाग जर्मेनियम नामक उस धातु के छोटे-छोटे कण है, जो जर्मेनियम अथवा सिलिकोन में पाये जाते हैं। शोकली तथा उनके सहयोगियों द्वारा विकसित विधियों से इन कणों में इलैक्ट्रोनों को नियन्त्रित किया जाता है। वे वैसा ही कार्य करते हैं जैसा कि वैक्युम ट्यूब द्वारा सम्पन्न किया जाता है। वे वैक्युम ट्यूबों के समान रेडियो तथा टेलिविजन सेटों में इलैक्ट्रोनिक संकेतों का विस्तार कर देते हैं, किन्तु उन्हें ऐसा करने के लिए कम विद्युत की आवश्यकता होती है और वे कम ताप उत्पन्न करते हैं। अपने छोटे आकार के कारण ट्रांजिस्टरों ने सभी प्रकार के छोटे विद्युतीय यन्त्रों का निर्माण सम्भव बना दिया है। छोटे आकार के ट्रांजिस्टर रेडियो तथा सुनने के छोटे यन्त्र इसके दो उदाहरण हैं।

१९१० में विलियम शोकली का लन्दन में जन्म हुआ था। उनके माता-पिता अमेरिकी थे। वे कैलिफोर्निया में बड़े हुए और वहीं से उन्होंने १९३२ में कैलिफोर्निया इन्स्टिट्यूट औव् टैक्नोलौजी से विज्ञान में स्नातकीय उपाधि प्राप्त की। उसके बाद वे मेसाचूसेट्स इन्स्टिट्यूट औव् टैक्नोलौजी में नियुक्त हो गये। वहाँ उन्होंने भौतिक-विज्ञान में डाक्टर औव् फिलासोफी की उपाधि प्राप्ति करने के लिए कार्य किया। १९३६ में यह उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् वे टैक्निकल स्टाफ के एक सदस्य के रूप में वैल टेलिफोन लेबोरेटरीज में कार्य करने लगे।

अन्य लोगों के समान वे उस समय यह जानते थे कि वैक्युम ट्यूब में पर्याप्त सुधार किया जा सकता था। निःसन्देह उसमें अनेक त्रुटियाँ थी। इन त्रुटियों से

[शेष पृष्ठ ६७ पर]

१. हजार समस्याओं का हल एक सेकेण्ड में

सन् १९१८ में सोवियत वैज्ञानिक बोंच-ब्रुएविच ने जब अपने तेजी से काम करने वाले इलेक्ट्रान-ट्यूब रिले, अर्थात् 'ट्रिगर' या 'फ्लिप-फ्लाप' सर्किट का आविष्कार किया होगा उस समय उन्हें यह क्या पता होगा कि उनका यह आविष्कार भविष्य में क्या-क्या कर दिखाएगा। लेकिन, आज उनका फ्लिप-फ्लाप सर्किट बिजली से चलने वाली हिसाब लगाने की मशीन (इलेक्ट्रानिक कम्प्यूटर) का बड़े ही महत्त्व-पूर्ण पुर्जे का काम करता है और यदि वह न होता तो मानवीय मस्तिष्क की इस अपूर्व कृति की कल्पना ही नहीं की जा सकती थी।

फ्लिप-फ्लाप सर्किट बड़ा ही सुगम है: उसमें दो इलेक्ट्रान ट्यूब, कई कैपेसिटर्स और रेजिस्टर ऐसे तालमेल से जोड़े जाते हैं कि सर्किट की दो सुस्थित अवस्थाएं बन जाती हैं जिनमें एक ट्यूब के काम करते रहने पर दूसरे ट्यूब से संवाहन आप से आप कट जाता है।

अन्य सर्किटों की तरह फ्लिप-फ्लाप सर्किट में भी एक 'इनपुट' और एक 'आउटपुट' होता है। 'इनपुट' का स्विच खोलते ही एक सुस्थित अवस्था वाला सर्किट बन्द होकर दूसरा सर्किट खुल जाता है जिससे पहले ट्यूब का संवाहन कट जाता है और दूसरे का संवाहन शुरू हो जाता है। 'इनपुट' के झटके की क्रिया मात्र से एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जा सकने की फ्लिप-फ्लाप सर्किट की इस क्षमता को ही स्वयं इन झटकों की गिनती करने के लिए हिसाब लगाने वाली मशीनों में काम में लाया गया है।

अधिकतर लोग दस अंकों से ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९—अथवा दाशमिक अंकगणित से गिनती करते हैं।

परन्तु बिजली से चलने वाली हिसाब लगाने की मशीन में दाशमिक प्रणाली को नहीं अपनाया जा सका है। इसमें मुख्य बात यह है कि ऐसी हिसाब लगाने वाली मशीन बनाना कठिन है जो दस भिन्न-भिन्न संख्याओं को अलग-अलग पहचान सके। यहीं दो अंकों वाली पद्धति की जरूरत पड़ती है। इस पद्धति में केवल दो प्रतीक होते हैं ० और १, लेकिन यही दोनों बड़ी से बड़ी संख्या बता सकते हैं। यह तो आपको याद ही होगा कि शतरंज के खेल का आविष्कार करने वाले ने उसके लिए एक भारतीय राजा से जितने गेहूँ के दाने माँगे थे उनकी गिनती करने पर वह संख्या कितनी बड़ी हो गयी थी। और उसने $२^{६४}$ दाने माँगे थे।

इस मशीन को इन दोनों प्रतीकों की गिनती करने और उनमें भेद करने में आसानी होती है क्योंकि ऐसा लगता है कि यह व्यवस्था पूर्णरूपेण प्राकृतिक है। जो भी हो, यह विचार कर देखिए कि ऐसी कितनी वस्तुएँ हैं जिनकी दो स्थायी आवस्थाएँ हैं जिनमें से एक को तो परम्परागत रूप से इकाई माना जाता है और दूसरे को शून्य। ये सामान्य बिजली के स्विच भी हो सकते हैं जिन्हें खोला या बन्द किया जा सकता है, लोहे के टुकड़े भी हो सकते हैं जिन्हें चुम्बकीय गुण प्रदान किया जा सकता है और उस चुम्बकीय गुण का अन्त भी किया जा सकता है या ये ऐसे इलैक्ट्रान ट्यूब हो सकते हैं जिन्हें संवाही अथवा विसंवाही बनाया जा सकता है। और फ्लिप-फ्लाप सर्किट पर यह बात पूर्णतः लागू होती है। यह मान लिया गया है कि झटका मौजूद रहने को १ माना जाय और झटका न रहने पर उसे शून्य माना जाय। इसी प्रकार फ्लिप-फ्लाप सर्किट झटकों की गिनती रखता है।

मान लीजिए कि फ्लिप-फ्लाप सर्किट इस समय शून्य वाली अवस्था में है। सर्किट के इनपुट में खटके (ट्रिगर) से एक झटका (स्पन्दन) पहुँचाते ही वह सर्किट को १ संख्या वाली स्थिति में पहुँचा देगा और दूसरा झटका उसको पुनः शून्य वाली स्थिति में ले जाएगा, परन्तु आउटपुट के स्थान पर एक और खटका जुड़ा रहता है जो और भी ऊँचे झटकों को जोड़ने वाले एक और फ्लिप-फ्लाप सर्किट में इनपुट की ओर से झटके पहुँचाने में काम आता है। इसी प्रकार दाश-मिक अंकगणित में ७ और ३ को जोड़ने से भी इकाई वाला क्रम पूरा हो जाता है और उनका जोड़ १० आता है। यह भी एक इकाई ही है परन्तु इसका कक्ष कुछ ऊँचा है।

जिन समस्याओं का हल निकालना होता है, उनको हिसाब करने वाली मशीन की "स्मृति" में उपयुक्त रूप में लिख दिया जाता है। उसके साथ ही उसका कार्यक्रम भी निर्धारित कर दिया जाता है कि किसके बाद कौन सा कार्य किया जाएगा।

हिसाब लगाने वाली मशीन जोड़-बाकी, गुणा-भाग करने के अतिरिक्त अन्तरीय समीकरण व एकीकृत समीकरण के भी कई तरह के हिसाब निकाल सकती है। यह मशीन किसी बड़े कारखाने का हिसाब रख सकती है, डिस्पैचर का काम कर सकती है, शतरंज के जटिल खेल की सबसे अच्छी चालों का पता लगा सकती है, विज्ञान सम्बन्धी अथवा टेकनिकल पुस्तकों का एक से दूसरी भाषा में अनुवाद कर सकती है अथवा सन्देशों को ऐसी संकेत लिपि में बाँध सकती है जिनका अर्थ मालूम करना किसी अन्य के लिए असम्भव होगा।

हिसाब लगाने वाली कुछ आधुनिक मशीनों की काम करने की गति इतनी तेज होती है कि वे एक सेकेण्ड में कई लाख अंकगणित आदि की क्रियाएँ पूरी कर लेती हैं। यदि मशीन की "स्मृति" में अनेक कार्यक्रम भर दिये जाएँ तो वह कई-कई जटिल समस्याएँ एक ही सेकेण्ड में हल कर सकती है।

कुछ समस्याएँ अवश्य ऐसी होती हैं जिनका हल निकालने में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। माया पाण्डुलिपि का अर्थ निकालने की समस्या इसी प्रकार की थी। वास्तव में, यह मशीन इनसे मामले में बड़ी ही कुशल संकेत-लिपि का अर्थ करने वाली सिद्ध हुई। उसने विभिन्न अक्षरों और उनसे बनने वाले शब्दों की गिनती करके, जितनी बार वे आते हों उनके आधार पर उनका वर्गीकरण करने और पाण्डुलिपियों का अर्थ करने से सम्बन्धित अनेक तार्किक समस्याओं का हल निकालने में भाषा शास्त्रियों की बड़ी मदद की है।

२. पढ़ने वाले स्वचालित यन्त्र का आविष्कार

गत वर्षों में विज्ञान के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त की गयी हैं। आजकल भी नित नये अद्भुत आविष्कार सुनने में आते हैं। अभी हाल में एक बड़े सन्दूक के सदृश विलक्षण यन्त्र ने एक ऐसा विचित्र कार्य सम्पन्न किया है, जिसे केवल मनुष्य ही कर सकते हैं। इस यन्त्र ने एक प्रकाशित पृष्ठ को पढ़ कर अपनी स्मृति में बैठा लिया।

वाशिंगटन में अमेरिकी सरकार के पर्यवेक्षकों तथा अन्य औद्योगिक पर्यवेक्षकों से भरे हुए एक भवन में इस यन्त्र के कार्य का प्रदर्शन किया गया। इसके आविष्कर्त्ता ने बताया है कि व्यापार के तौर पर उपलब्ध विश्व का यह प्रथम यन्त्र है, जो टाइप किये गये पृष्ठ को पढ़ सकता है।

संक्षेप में यह मशीन २४० अक्षर प्रति घण्टा के हिसाब से हमारी भाषा का मशीनी भाषा में अनुवाद करती है अर्थात् यह विचित्र यन्त्र तेज गति से कार्य करने वाले कम्प्यूटर तथा अन्य यन्त्रों में प्रयोग में लाने के लिये सूचनाएँ तैयार करता है।

शीघ्र ही अनेक इन्शोरेंस कम्पनियों, प्रकाशन-संस्थाओं, बिजली तथा पेट्रोल कम्पनियों में इस अद्भुत यन्त्र का प्रयोग होने लगेगा। ये समूची कम्पनियाँ लाखों ग्राहकों तथा कर्मचारियों के लिये बहुत भारी संख्या में बिलों तथा चेकों के विषय में

कार्यवाहियाँ करते हैं। इस समय तक मशीनों द्वारा कार्य करने के लिए मनुष्यों द्वारा विविध प्रकार की सूचनाओं का वर्गीकरण किया जाता था। पृष्ठ पढ़ने वाला यह यन्त्र बहुत अधिक गति से ठीक-ठीक वर्गीकरण कर सकता है।

१० वर्ष पूर्व नीढमहाइट्स (मेसाचूसेट्स) की फारिंगटन मेन्युफेक्चरिंग कम्पनी के उपाध्यक्ष, डेविड एच० शेपार्ड द्वारा पृष्ठ पढ़ने वाले ऐसे प्रथम यन्त्र का आविष्कार किया गया था। वही कम्पनी यह नया यन्त्र तैयार कर रही है। इससे पहले यन्त्र, जिनमें से कुछ गत ५ वर्षों से प्रयोग में आ रहे हैं, टाइप की केवल एक पंक्ति पढ़ सकते थे। वे सामान्यतः किसी एक पृष्ठ पर अंक पढ़ सकते हैं। यह नया यन्त्र समस्त पृष्ठों की सभी पंक्तियों के अक्षर तथा अंक पढ़ लेता है।

प्रदर्शन के समय, इस यन्त्र का चमकीला 'नेत्र' कार्य करता दिखाई पड़ा। उसने टाइप किये हुए पृष्ठ पर तीव्र प्रकाश की किरण फेंकी। टाइप किए हुए पृष्ठ की प्रत्येक पंक्ति पर फैलते हुए, उस प्रकाश किरण ने प्रत्येक अक्षर, अंक तथा विराम चिन्हों को पहिचान और तत्काल उन्हें इलेक्ट्रोनिक प्रकम्पनों में परिणत कर दिया। मशीन के दूसरे सिरे पर, शहद की मक्खियों की भिनभिनाहट के समान शब्द के साथ एक छोटे से छिद्र से एक फीता निकल आया, जिसमें छिद्र अंकित थे।

इस यन्त्र में एक यह त्रुटि है कि यह इस समय एक शैली के अक्षर ही पढ़ सकता है। इसका विकास करने वालों का विश्वास है कि विभिन्न टाइपों के अक्षरों को पढ़ने के लिए इसमें सुधार किया जा सकता है। उनका विचार है कि यह यन्त्र उस टाइप के अक्षरों को भी पढ़ सकेगा, जिन अक्षरों में पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं। पुस्तकों के विषय में एक विशेष कठिनाई आती है। उनके पृष्ठ दोनों ओर प्रकाशित होते हैं। फारिंग्टन कम्पनी के अधिकारियों को पूर्ण विश्वास है कि यह कठिनाई भी दूर की जा सकेगी। वे यह भी अनुभव करते हैं कि आगे चल कर यह यन्त्र हाथ द्वारा लिख कर किये जाने वाले परिवर्तनों को भी पढ़ सकेगा।

फेरिंग्टन कम्पनी के कर्मचारियों के मतानुसार यह यन्त्र अत्यन्त कुशल है। ऐसी मशीनों का भी निर्माण हो रहा है, जो मैग्नेटिक टेपों का प्रयोग कर के एक सेकण्ड में ३४० अक्षर, वर्तमान मशीन से १०० अक्षर अधिक, तेज गति से पढ़ सकेगी। वे अनुवाद करने वाली मशीनों के लिए विदेशी भाषाओं को भी पढ़ सकेंगी।

अमेरिकी डाक विभाग द्वारा इस प्रकार के एक यन्त्र की जाँच की जा चुकी है। अब वह यन्त्र पते पढ़ने के अलावा डाक छाँटने का कार्य भी करता है। फारिंग्टन कम्पनी अब एक ऐसे यन्त्र का विकास कर रही है, जो १०,००० लिफाफे प्रति घण्टा के हिसाब से विभिन्न ४० स्थानों के लिए डाक छाँटने की व्यवस्था कर सकेगा।

३. लाइनोटाइप का आविष्कार

१८८६ में, अमेरिकी में एक ऐसे मुद्रण-सहायक यन्त्र का आविष्कार हुआ, जिसने विश्व भर में लोकतन्त्र और भावाभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के विकास में उल्लेखनीय योग प्रदान किया। यह क्रान्तिकारी यन्त्र था लाइनोटाइप। इसके प्रयोग से मुद्रण की लागत इतनी घट गयी कि एक ही पीढ़ी में अकेले अमेरिका में दैनिक समाचारपत्रों की ग्राहक संख्या लगभग ३० लाख से बढ़कर ३ करोड़ ३ लाख हो गयी।

यह उपयोगी आविष्कार **ओट्टमर मर्गन्थेलर** नामक एक प्रतिभाशाली यन्त्र-विद् की अध्यवसायी प्रतिभा का परिणाम था, जो १८७२ में अमेरिका में प्रवासी बन कर आया और वहाँ का नागरिक बन गया। मर्गेन्थेलर को अमेरिका में अपनी प्रतिभा विकसित करने का अवसर और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। इसके बदले उसने एक ऐसा योगदान किया, जिसने समस्त मानवता के उत्थान और ज्ञानवर्द्धन

में अत्यधिक बहुमूल्य योग प्रदान किया। मर्गन्थेलर का जन्म १८५४ में जर्मनी में हुआ था। १८ वर्ष की आयु में, जब वह अमेरिका गया, वह एक घड़ीसाज के यहाँ काम सीखते हुए नौकरी कर रहा था। अमेरिका आने पर उसने पहली नौकरी वाशिंगटन में अमेरिकी सरकार की की। वहाँ वह सरकारी भवनों में लगी दीवार-घड़ियों और बिजली की घण्टियों को ठीक-ठाक करके उन्हें चालू हालत में रखता था। उसने अमेरिकी सिगनल सर्विस में भी नौकरी की और कई तरह के काम किये। वाशिंगटन में उन दिनों बहुत से आविष्कर्ता आकर रह रहे थे। उसे उनके सम्पर्क में आने और उनके साथ समय व्यतीत करने का भी अवसर प्राप्त हुआ।

१८७६ में मर्गेन्थेलर मेरीलैण्ड राज्य के बाल्टीमोर नामक स्थान पर, जो वाशिंगटन से ४० मील दूर स्थित है, अपने एक चाचा की मशीनों की दूकान में काम करने के लिए चला गया। वाशिंगटन के वैज्ञानिक और आविष्कर्ता प्रायः अपने विशेष आदेशों और नमूनों के अनुसार अपनी मशीनें और उपकरण निर्मित कराने के लिए उस दूकान पर आते रहते थे। युवक मर्गेन्थेलर उनके विचारों और खाकों को तत्काल समझ जाता था। यही नहीं, वह उनकी डिजाइनों में सुधार करने में भी योग देता था।

उस दूकान पर अपनी नयी सूझ और नये विचारों को मूर्त्त रूप देने के लिए जो लोग आया करते थे, उनमें **जेम्स क्लीफेन** भी एक था। वह वाशिंगटन की एक अदालत में स्टेनोग्राफर था, और सदैव ऐसा साधन खोज निकालने के चक्कर में रहता था, जिसके द्वारा वह अपने बढ़ते हुए काम के भार को कम कर सके। यह वही क्लीफेन था, जिसने टाइपराइटर के आविष्कार को बढ़ावा देने में योग दिया था, और अब एक ऐसी मशीन का आविष्कार करने के चक्कर में था, जो मुद्रण की प्रक्रिया में तीव्रता ला सके। मुद्रण उद्योग के समक्ष एक प्रोद्यौगिक कठिनाई उत्पन्न हो चुकी थी, जिसे दूर करने के लिए इस प्रकार की मशीन की अत्यधिक आवश्यकता थी। जहाँ बड़े-बड़े प्रेस एक बार टाइप के सेट हो जाने पर प्रति घण्टे हजारों समाचारपत्र छाप सकते थे, वहाँ वे लोग जो शब्दों को टाइप में परिणत करते थे, अभी भी एक-एक अक्षर हाथ से जोड़ कर टाइप बनाने की पुरानी, महँगी और श्रमसाध्य विधि में उलझे हुए थे। ऐसी हालत में केवल बड़े-बड़े शहरों में ही अखबार चल सकते थे और वे भी बहुत ही कम और बुरी तरह छपे पृष्ठों के। इस कारण पत्रिकाएँ और पुस्तकें इतनी महँगी थीं कि औसत व्यक्ति उन्हें खरीद नहीं सकता था।

१८७६ में क्लीफेन ने मर्गेन्थेलर को सुझाव दिया कि वह एक ऐसी मशीन बना सकता है, जो एक विशाल टाइप राइटर जैसी होगी। यह एक मशीनी सांचे में अक्षर की छाप डालेगी, जिसमें गली हुई धातु का घोल उड़ेल कर मुद्रक के लिए टाइप तैयार की जा सकेगी। यह सूझ मूर्त रूप धारण नहीं कर सकी। किन्तु मर्गेन्थेलर, जिसकी मुद्रण सम्बन्धी जानकारी नगण्य थी, इस समस्या में रुचि लेने लगा। उसकी रुचि बढ़ती गयी और वह इस दिशा में प्रयोग करता रहा। उसने क्लीफेन के सुझाव वाले पेपियर मशीनी सांचे के बजाय, टाइप में गले धात्विक घोल को बनाने के लिए एक बड़ी धातु के सांचे का उपयोग किया। उसने कम्पोज की हुई टाइप की पंक्ति को वहन करने के लिए एक ही धातु के छड़ का प्रयोग करने का भी विचार किया। अक्षरों के सांचों के लिए उसने पहले क्रमबद्ध धात्विक छड़ों का प्रयोग किया, जिसमें से प्रत्येक एक पूरी वर्णमाला वहन करता था। उसके बाद उसके मस्तिष्क में अलग-अलग ऐसी मैट्रिसों का प्रयोग करने का विचार उठा, जिन्हें मशीन में से होकर चारों ओर घुमाया जा सके। क्लीफेन को इस बात का पक्का विश्वास हो गया कि मर्गेन्थेलर शीघ्र ही इस समस्या को सुलझा लेगा और इस लिए इसने बहुत से मित्रों से धन एकत्र करके मर्गेन्थेलर को उसके प्रयोग में सहायता पहुँचायी।

कई वर्ष तक मर्गेन्थेलर श्रम के साथ प्रयोग और और प्रयत्न करता रहा। अन्त में १८८६ में उसे अपने कार्य में इतनी सफलता मिल चुकी थी कि वह अपने प्रयोग को सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित करने के लिए तैयार हो गया। उसने यह प्रदर्शन ३ जुलाई को 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' के कम्पोजिंग कक्ष में किया, जब उसने अपनी मशीन चलाई और उसमें से कम्पोज किए हुए अक्षरों की पंक्ति ढल कर निकलने लगी, तो कितने ही मित्र आगे बढ़े। उन्होंने देखा कि ढले अक्षरों और शब्दों की सुगठित और कड़ी पंक्ति बाहर आ गयी है। 'ट्रिब्यून' के प्रकाशक ह्वाइट ला रीड ने उस धातु के टुकड़े को हाथ में ले उठाया और खुशी से विह्वल होकर चिल्ला उठा, ओट्टोमर, तुम सफल रहे। यह तो टाइप की एक पंक्ति (**लाइनओ' टाइप**) है। अतः इसे **लाइनोटाइप** कहा गया।

प्रारम्भ में टाइप सेट करने वालों को यह अशंका हुई कि इस मशीन के बन जाने पर उनका रोजगार उनसे छिन जायगा। किन्तु शीघ्र ही हजारों प्रेसमैनों की नियुक्ति कम समय के लिए अधिक मजदूरी की दरों पर नयी मशीन चलाने के हेतु होने लगी। लाइनो-टाइप से मुद्रण की लागत कम करने में अत्यधिक सहायता मिली। किन्तु लाइनोटाइप मशीन उस समय इतनी महँगी थी कि उसका प्रयोग केवल बड़े-बड़े प्रकाशक ही कर सकते थे। अतः शीघ्र ही ऐसी व्यवस्था की गयी, जिससे छोटे-छोटे प्रकाशक भी सस्ती किस्तों पर उसे प्राप्त कर सकें। प्रारम्भ में यह परिवर्तन अमेरिका में हुआ और बाद में सारे विश्व में इसका प्रसार होता गया।

आजकल ब्रुकलाइन 'न्यूयार्क' में मर्गेन्थेलर कार-खाना लगभग १,००० भाषाओं में मेट्रिस और बोर्ड तैयार कर रहा है। इस यन्त्र का आविष्कार करने और इसे सुधारने में मर्गेन्थेलर इतना व्यस्त और तल्लीन हो गया कि उसने अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान ही नहीं दिया। फलस्वरूप १८९९ में केवल ४५ वर्ष की ही आयु में इस प्रतिभाशाली आविष्कर्त्ता का देहान्त हो गया।

४. अन्तरिक्षीय प्राणिविज्ञान

सोवियत विज्ञान अकादमी के प्राणिविज्ञान विभाग की एक तीन-दिवसीय सामान्य बैठक अभी हाल में मास्को में सम्पन्न हुई। इस बैठक में अन्तरिक्षीय प्राणिविज्ञान के क्षेत्र में अनुसन्धानों के कुछ परिणामों और सम्भावनाओं पर विचार किया गया। बैठक में उपस्थित लगभग ५०० वैज्ञानिकों ने ३० से ऊपर निबन्ध सुने जिनका एक ही उद्देश्य था—आगामी दीर्घकालिक अन्तरिक्ष यात्राओं में अन्तरिक्ष यात्रियों के शारीरिक क्रियाकलाप को किस प्रकार सुनिश्चित बनाया जाय।

अन्तरिक्ष की राह बाधाओं और कठिनाइयों से भरी हुई है। इनमें से कुछ हमें मालूम हैं। १५,००० मीटर की ऊँचाई पर सांस लेना असम्भव है, ४,००० मीटर और ऊपर उठने पर जीवित प्राणियों की शिराओं में प्रवाहित तरल पदार्थ खौलने लगता है और कृत्रिम वातावरणयुक्त दबावमय कक्ष जरूरी हो जाता है। ३६,००० मीटर की ऊँचाई से ब्रह्माण्ड किरणों का प्रभाव शुरू हो जाता है, उसके बाद अल्ट्रा-बायलेट किरणों का प्रभाव आरम्भ होता है, और ज्यों-ज्यों हम बाह्य अवकाश में ऊपर उठते जाते हैं, त्यों-त्यों अन्तरिक्ष यात्री के लिए 'असामान्य' अवस्थाएँ समग्रतः अधिकाधिक पेचीदा होती जाती हैं। इन तमाम तत्वों के विरुद्ध रक्षा के मूलभूत तरीकों की सविस्तार पूरी तैयारी प्राकृतिक विज्ञान की इस नयी शाखा—अर्थात् अन्तरिक्षीय प्राणिविज्ञान—के सामने प्रस्तुत एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है।

६,४०० किलोमीटर की ऊँचाई पर (जो कि पृथ्वी के अर्द्धव्यास के बराबर की दूरी है) समस्त पदार्थों का भार पृथ्वी पर की तुलना में एक-चौथाई रह जाता है, १२,८०० किलोमीटर पर नवाँ भाग, ५७,६०० किलोमीटर पर सौवाँ भाग, इत्यादि।

किन्तु एक अन्तरिक्ष यान में भारहीनता की अवस्था उसकी गति में नियमों के अनुसार उत्पन्न होगी। उपर्यक्त बैठक में भारहीनता की अवस्था में शरीर के क्रियाकलाप के बारे में विशेष ध्यान दिया गया।

वैज्ञानिकों के एक दल ने जीवित प्राणियों पर अन्तरिक्ष यात्रा के तत्वों की प्रक्रिया विषय पर एक रिपोर्ट पेश की। इस रिपोर्ट को अधिक स्पष्ट रूप से समझाने के लिए 'राकेटों में जैविक अनुसन्धान' और 'ग्रहपथीय अन्तरिक्ष यानों में जैविक अनुसन्धान' नामक दो विशेष फिल्में भी दिखलायी गयीं। चोल्का और ओत्वाझनाया, दाम्का, बेल्का कऔर स्त्रैल्का, आदि, अनेक अन्तरिक्ष यात्रियों की फिल्में राकेट के छूटने के क्षण और भारहीनता की स्थिति में, बेहोशी की औषधियों के प्रभाव के अन्तर्गत उड़ान भरते हुए और यात्रा की समाप्ति पर पृथ्वी पर उतरने के समय उतारी गयी थीं। इन प्रयोगों के फलस्वरूप प्रथम मानवसहित अन्तरिक्ष उड़ान सम्भव हुई।

अन्तरिक्षीय प्राणिशास्त्री के सामने एक मुख्य समस्या है विकिरण (अर्थात् रेडियम किरणों) से अन्तरिक्ष यात्री की रक्षा करने की। इस समस्या का हल केवल प्राणिशास्त्रियों पर ही नहीं निर्भर करता, बल्कि भौतिक विज्ञानशास्त्रियों पर भी निर्भर करता है, और इस कारण उन्होंने भी उपर्युक्त बैठक के कार्य में भाग लिया था। उन्होंने विश्व का प्रथम विस्तृत तथा सही 'रेडिएशन चार्ट' तैयार किया। इस कृति का वर्णन वी० वाई० नेस्तेरोव, एन० एफ० पिसारेंको, आई० ए० सावेंको और पी० आई० शाबरिन ने एक निबन्ध में किया और बाह्य अन्तरिक्ष में रेडिएशन की अवस्थाओं का एक मनोरंजक ब्योरा प्रस्तुत किया जिनसे होकर एक अन्तरिक्ष यान को प्राणियों को लेकर गुजरना होता है।

अन्तरिक्ष उड़ानों की सुरक्षा की समस्या पर ए० वी० लेबेदिंस्की और वाई० जी० नेफेदोव नामक प्राणिशास्त्रियों ने अपने निबन्ध में प्रकाश डाला। उन्होंने इस बारे में एक समीक्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया कि उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार अन्तरिक्ष यात्री को किस हद तक और किन मात्राओं में विकिरण का सामना करना पड़ सकता है, और इस विकिरण की सम्भावित जैविक प्रक्रिया के बारे में अपनी राय बतलायी। उन्होंने आधुनिक विज्ञान के पास वर्तमान सुरक्षा के सम्भावित उपायों के बारे में रिपोर्ट प्रस्तुत की। उन्होंने विशेष औषधीय रोगनिरोधक तैयारियों द्वारा शारीरिक सुरक्षा की सम्भावना को बढ़ाने पर बल दिया।

अनेक निबन्ध ऐसे पौदों के शरीर रचना सम्बन्धी अनुसन्धानों पर प्रस्तुत किये गये जो अन्तरिक्ष यात्री के लिए रासायनिक कच्ची सामग्री और खाद्य पदार्थ का काम देंगे और अन्तरिक्षयान में 'ऑक्सीजन फैक्टरी' की भूमिका अदा करेंगे। ये पौदे किस प्रकार के होंगे, उनके लिए विकास की क्या व्यवस्था की जानी है और वे अपने कामों को किस प्रकार पूरा करेंगे, ये सब प्रश्न अभी हल किये जाने हैं।

सैकड़ों जातियों के पौदों पर हजारों प्रयोग इस बात का पता लगाने के उद्देश्य से किये जा चुके हैं कि उनमें से किसमें प्रकाश-संश्लेषण की सर्वाधिक सम्भव शक्ति है। ये प्रयोग कोला प्रायद्वीप के पर्वतीय टुंड्रा प्रदेश में, कजाखस्तान और ताजिकिस्तान के मरुस्थलों में, काकेशस में और पामीर पर्वतों में किये गये हैं। इनके फलस्वरूप वैज्ञानिकों को अत्यन्त मूल्यवान जानकारी प्राप्त हुई है। इनके बारे में लेनिनग्राद के वैज्ञानिक ओ० वी० जालेंस्की ने बैठक को बतलाया।

एक विशेष बैठक बायोटेकनॉलॉजी के प्रश्न पर, विशेषकर अन्तरिक्ष यात्री और पृथ्वी के बीच अबाध संचार-सम्पर्क बनाये रखने के नवीनतम साधनों पर विचार करने के लिए हुई।

तीन-दिवसीय विचार-विमर्श के परिणामों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हुए अकादमीशियन

न० एम० सिमावयान ने अन्तरिक्षीय प्राणिशास्त्र में अनुसन्धानों की व्यापक प्रकृति की अब तक की सफलताओं के महत्त्व की चर्चा की। बैठक ने दिखलाया कि व्यापक प्रयोगात्मक सामग्री का साधारणीकरण करने और अन्तरिक्षीय प्राणिशास्त्र के एक नियमित सिद्धान्त के प्रतिपादन का समय आ गया है।

अन्तरिक्षीय प्राणिशास्त्र की महत्त्वपूर्ण समस्याओं की इस व्यापक चर्चा ने यह सिद्ध कर दिया है कि बाह्य अवकाश की विजय की कोख से उत्पन्न विज्ञान का यह किशोर क्षेत्र तेजी से विकसित हो रहा है और शक्ति संचय कर रहा है। यह अन्तरिक्ष यात्रियों की केवल तात्कालिक समस्याओं को ही नहीं हल कर रहा है, बल्कि भविष्य के गर्भ में भी इसकी दृष्टि पहुँच रही है जबकि मानव सौर-मण्डल के अन्य ग्रहों पर पदार्पण करेगा।

—— ——

[६०वें पृष्ठ का शेषांश]

वैक्युम ट्यूब की अल्प आयु, बिजली की अधिक खपत, तथा विस्तृत आकार आदि त्रुटियाँ सम्मिलित थीं। शोकली ने वैक्युम ट्यूब के स्थान पर प्रयोग करने के लिए एक अर्द्धसंचालक (सेमिकण्डक्टर) उपकरण का विकास करने का निश्चय किया। यह कार्य १९३९ में प्रारम्भ हुआ। जब डा० शोकली द्वितीय विश्वयुद्ध में भाग लेने के बाद वापस लौट आये, तब वह कार्य पुनः प्रारम्भ हो गया। राडार के सम्बन्ध में अनुसन्धान करते समय प्रथम ट्रांजिस्टर का विकास करने में सफलता प्राप्त हुई।

नये-नये प्रकार के छोटे ट्रांजिस्टरों के विकास के फलस्वरूप सभी प्रकार के विद्युदणु उपकरणों के लिए छोटे पुर्जों के लिए निर्माण करने के सम्बन्ध में नया क्षेत्र खुल गया है। पहले गणना सम्बन्धी जिन यंत्रों में वैक्युम ट्यूबों का प्रयोग किया जाता था, वे पूरा कमरा घेर लेते थे। ट्रांजिस्टरों के प्रयोग से अब वे बहुत छोटे आकार के बनने लगे हैं। इसके अलावा, अब अनेक टेलिविजनों, रेडियो सेटों, राडार तथा अनेक प्रकार के अन्य विद्युदणु उपकरणों में वैक्युम ट्यूबों के स्थान पर जिस्टरों का प्रयोग होने लगा है। उनकी सहायता द्वारा ऐसे छोटे रेडियो ट्रांसमिटर बनाना सम्भव हो गया है जिनकी सहायता से भू-उपग्रह पृथ्वी पर वैज्ञानिक सूचनाएँ देते हैं। ये इस अद्भुत वैज्ञानिक युग की हुत ही क्रान्तिकारी सफलताएँ समझी जाती हैं।

१. नयी टेलीफोन एक्सचेंज प्रणाली

इलिनोय के मौरिस नगर में बेल टेलिफोन प्रयोगशाला की ओर से नमूने के तौर पर टेलिफोन पर सम्वाद के आदान-प्रदान की एक नवीन प्रणाली का परीक्षण हो रहा है। यह नवीन विद्युदाणविक टेलिफोन प्रणाली सरकिट के टूट जाने पर उसकी मरम्मत अपने आप कर लेती है, अथवा सहायता के लिये टेलिटाइप द्वारा किसी मनुष्य को बुला लेती है।

यह २ करोड़ ५० लाख डालर के व्यय से ५० वर्ष के गहन अनुसन्धान का परिणाम है। कार्यक्रम के अनुसार यह प्रणाली १९६५ के प्रारम्भ में अमेरिका के सभी केन्द्रीय टेलिफोन एक्सचेंजों पर लगा दी जायेगी।

इस प्रणाली का मूल भाग, जो इस समय प्रयुक्त डायल टेलिफोनों की अपेक्षा १,००० गुनी तीव्र गति से कार्य करता है, ८,००० जन-संख्या वाले मौरिस नगर के इलेक्ट्रोनिक सेण्ट्रल टेलिफोन एक्सचेंज में रखी गयी भूरी पिटारियों की अनेक पंक्तियों के भीतर स्थापित है।

इन पिटारियों में छोटे-छोटे १२,००० ट्रांजिस्टर हैं, जो असंख्य लघु यन्त्रों से होकर प्रवाहित विद्युत धारा को नियन्त्रित या प्रसारित करते हैं। जिन यंत्रों से यह विद्युत धारा प्रवाहित होती है, उनमें १०,५०० डायोड और २३,००० नलिकाएँ सम्मिलित हैं। जब ये यन्त्र एक सेकण्ड के एक-दस लाखवें भाग के भीतर एक टेलिफोन को दूसरे टेलिफोन से सम्बद्ध करते हैं, तो उनसे एक नारंगी रंग की रोशनी उत्पन्न होती है।

बातचीत के लिए जब किसी टेलिफोन रिसीवर को उठाया जाता है, तो तत्काल 'स्कैनर' नामक पुर्जे सक्रिय हो उठते हैं, और एक फोटोग्राफिक उपकरण को चालू कर देते हैं, जो काले और सफेद धब्बों के रूप में २२,५०,००० सूचनाएँ संचित कर रखने में समर्थ होता है।

यह प्रणाली एक प्रकार का गणक यन्त्र है। यह अपनी सरकिट की बराबर जाँच करता रहता है, और यदि उसमें कोई दोष उत्पन्न हो जाय, तो उस की मरम्मत आप कर सकता है। यदि वह मरम्मत करने में असमर्थ होता है, तो किसी आदमी को इस के लिए बुला लेता है और संकेत द्वारा उसे बता देता है कि वह दोष कहाँ है, और क्या है।

नवीन प्रणाली के अन्तर्गत प्रयुक्त टेलिफोन ७ अंकों के बजाय दो अंकों को घुमा कर बार-बार माँगे गये नम्बरों को प्राप्त कर सकता है। अगर पहली लाइन व्यस्त हो तो वह बाहर से आने वाले सम्वादों को दूसरे टेलिफोनों पर भेज सकता है। वह सम्वादों को किसी दूसरे नम्बर पर हस्तान्तरित भी कर सकता है।

प्रारम्भिक परीक्षण में टेलिफोन का प्रयोग करने वाले इस नगर के ४,५०० व्यक्तियों में से केवल १० प्रतिशत ही इस परीक्षण में भाग ले रहे हैं। आगे चल कर अन्य व्यक्तियों को भी इस परीक्षण में शामिल कर लिया जायेगा।

बेल टेलिफोन प्रयोगशाला अमेरिकन टेलिफोन एण्ड टेलिग्राफ कम्पनी की अनुसन्धानशाखा है। इसे बेल टेलिफोन प्रणाली भी कहते हैं। नवीन विद्युदाणविक स्विचिंग प्रणाली का निर्माण वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कम्पनी में होगा, जो अमेरिकन एण्ड टेलिग्राफ कम्पनी की उत्पादन-शाखा है। आशा है कि मध्य १९६५ में प्रथम उत्पादन-माडेल का कार्य प्रारम्भ हो जायेगा।

२ रोगाणुओं का पता लगाने की विधि

अमेरिका के वाल्टर रीड अनुसन्धान संस्थान ने मलेरिया तथा अन्य रोगों के परांगजीवी विषाणुओं का तत्काल पता लगाने के लिए एक सरल और विश्वसनीय विधि विकसित की है। इस विधि के अन्तर्गत रोग का सन्देह होने पर सम्भाव्य रोगी के रक्त के नमूने को एक विशेष रंग से रँग दिया जाता है। ऐसा करने पर मलेरिया के रोगाणुओं को सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र से देखा जा सकता है। इसका प्रयोग प्रयोगशाला का एक साधारण टेक्निशियन भी कर सकता है, और इसके लिए मंहगे उपकरणों की भी आवश्यकता नहीं होती। इस कारण विश्व के मलेरिया वाले क्षेत्रों के लिए इस विधि का विशेष महत्त्व है।

३. जीव-कोषीय आवरण

शिकागो विश्वविद्यालय के एक अनुसन्धानकर्ता ने अपनी रिपोर्ट में बतलाया है कि इस बात के बहुत से प्रमाण उपलब्ध हुए हैं कि प्रत्येक जीव-कोष के ऊपर चीनी का एक पतला आवरण होता है। यदि जाँच द्वारा यह निष्कर्ष सत्य सिद्ध हुआ, तो यह सिद्धान्त जीव-विज्ञान और वनस्पति विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा। इन विज्ञानों के अन्तर्गत, 'प्लाज्मा' स्नायुओं को परम्परा से एक जीव-कोषीय दीवार माना जाता रहा है। डा० एच० स्टैनली बनैट का कहना है कि यह आवरण चीनी का एक मिश्रित घोल है। उन्होंने बताया कि वैज्ञानिक पर्यवेक्षण के अंतर्गत यह बात मेढकों के सम्बन्ध में सत्य पायी गयी है।

४. वैज्ञानिक बुध ग्रह के रेडियो-संकेत सुनने में सफल

अन्तर्राष्ट्रीय खगोल वैज्ञानिक संघ की हाल की एक बैठक में यह बताया गया कि खगोलशास्त्रियों ने एक रेडियो दूरवीक्षण-यन्त्र का प्रयोग करके बुध ग्रह से निस्सृत रेडियो-संकेतों को ग्रहण करने में सफलता प्राप्त कर ली है।

बुध वह पाँचवाँ ग्रह है, जिसके रेडियो संकेतों को पृथ्वी पर खगोलशास्त्रियों ने सुना है। अनेक वेधशालाओं पर खगोलशास्त्रियों ने मंगल, शुक्र, बृहस्पति और शनि ग्रहों के रेडियो-संकेतों को सुना है। किन्तु अभी भी रेनस, नेपच्यून तथा प्लूटो ग्रहों के रेडियो-संकेत सुनने में सफलता नहीं मिल सकी है। इनमें भी प्लूटो इतनी दूरी पर स्थित है और इतना ठण्डा है कि इसके रेडियो-संकेत सुनने में शायद ही कभी सफलता प्राप्त हो सके।

बुध ग्रह के रेडियो संकेत मिशिगन विश्वविद्यालय की रेडियो-खगोल विज्ञान वेधशाला के खगोल-शास्त्रियों ने ग्रहण किये हैं। यह कार्य वस्तुतः अत्यन्त कठिन था, क्योंकि बुध ग्रह के रेडियो-संकेतों को सूर्य के रेडियो संकेतों से पृथक करना अत्यन्त दुरूह होता है। सूर्य के रेडियो-संकेत बुध के रेडियो-संकेतों से ३५,००,००० गुने अधिक शक्तिशाली होते हैं।

५. कृषि सम्बन्धी तथ्य

१९५९ में की गयी कृषि विषयक गणना से पता चला कि अमेरिका में ३७ लाख फार्म हैं, जिनका क्षेत्रफल १ अरब १० करोड़ एकड़ है। ५ में से ४ किसानों के पास समूची अपनी भूमि है अथवा उसका कुछ भाग अपना है। औसत फार्म ३०० एकड़ का है और औसत फार्म का मूल्य ३३,००० डालर से अधिक है। ७५ प्रतिशत किसानों के पास अपनी मोटरगाड़ियाँ तथा ट्रैक्टर मौजूद हैं। तीन में से दो के पास टेलिफोन है और आधे से अधिक के पास मोटर ट्रक तथा भोजन सम्बन्धी शीतकारी यन्त्र हैं। २० करोड़ से अधिक फार्मों में से प्रत्येक फार्म से २,५०० डालर या इससे अधिक मूल्य की वस्तुएँ बेची गयी हैं।

पुस्तक समीक्षा

१. चाय उद्योग: कौंसिल आफ साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली, १९६१ पृष्ठ सं० ११६. मूल्य ६·५० रुपये

चाय उत्पादन में भारत का प्रमुख स्थान है। आज जब सारे विश्व में चाय का प्रयोग नित्य प्रति पेय पदार्थ के रूप में होने लगा है, यह आवश्यक है कि जनसाधारण को चाय उद्योग सम्बन्धी तथ्यों से परिचित कराया जाय एवं चाय सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसन्धानों के प्रति उनकी रुचि को जागृत किया जाय। कौंसिल ने इस पुस्तिका के माध्यम से उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति अत्यन्त सफलतापूर्वक की है।

प्रस्तुत पुस्तिका में अत्यन्त सरल एवं रोचक शैली में लिखे गये ८ अध्यायों के अतिरिक्त अन्त में सन्दर्भ सूची भी उपलब्ध है। चाय की किस्में, चाय की खेती, चाय निर्माण, रचना और उपयोग, चाय अनुसन्धान, उत्पादन बिक्री और व्यापार तथा भविष्य की सम्भावनायें —ये प्रमुख शीर्षक हैं जिनके अन्तर्गत इतने तथ्य हैं कि सामान्य से सामान्य पाठक भी चाय के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी एक स्थान पर प्राप्त कर लेगा।

पुस्तिका की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए इसके खरीदने में व्यय धन, जो निश्चित रूप से अधिक है, सार्थक प्रतीत होगा।

भाषा सम्बन्धी अनेक त्रुटियों की ओर हम यहाँ पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं और आशा रखते हैं कि कौंसिल अगले संस्करण में इन सुझावों पर अमल करेगी। पृष्ठ ८ पर चाय के पौधे के साथ निवासी एवं देशज के प्रयोग शोच्य हैं:

चाय का पौधा असम और उससे मिले हुए बर्मा क्षेत्र का **निवासी समझा जाता है**। कुछ लोग इसे दक्षिणी यूनान और हिन्दी चीन के उपरले भाग का **देशज** भी कहते हैं।

पृष्ठ ८ पर आबादी या बस्ती के स्थान पर **'बसावट'** का प्रयोग कम खटकने वाला नहीं:

इन क्षेत्रों में **बसावट** नहीं थी इसलिये दूर दूर से मजदूर लाकर यहाँ बसाये गये।

इसी पृष्ठ पर "आज तो चाय के बगीचों ने बहुत बड़ा क्षेत्र घेरा हुआ है" वाक्य का संगठन हिन्दी के अनुरूप न होकर अंग्रेजी वाक्य का शाब्दिक अनुवाद है। "घेरा हुआ है" के स्थान पर "घेर रखा है" कितना उपयुक्त होता।

पृष्ठ १२ पर एक पारिभाषिक शब्द का प्रयोग सर्वथा अनुपयुक्त एवं हेय रूप में हुआ है। अंग्रेजी acidity के लिये 'अम्लता' या 'अम्लीयता' शब्द स्वीकृत है परन्तु प्रस्तुत पुस्तक में 'तेजाबियत' प्रयुक्त हुआ है।

अगले पृष्ठ पर एक ही तत्व को दो रूपों में लिखा गया है—कारबन तथा कार्बन। भले ही ऐसे प्रयोग सामान्य दृष्टि से कम महत्व के लगें परन्तु क्या यह सच नहीं है कि अंग्रेजी में ऐसी वर्तनी की भूलें भयानक समझी जाती हैं? इसी प्रकार पृ० ४२ पर पोटेशियम

कम खर्ची से आपको कोई परेशानी न होगी।

यदि आप नियमित रूप से थोड़ी बचत करते रहे तो इससे आपको कोई परेशानी नहीं होगी। इसके विपरीत ऐसा करने से आपको अपनी कठिनाइयों पर विजय पाने में सफलता मिलेगी। सच पूछिये तो आपकी 'वचत' आर्थिक तंगी के विरुद्ध एक बचाव है जो न केवल आपकी वल्कि आपके बच्चों की जीवन संबंधी जरूरतों को पूरा करने की गारंटी है।

उदाहरण के लिये, सावधिक बढ़ने वाली बचत योजना के अन्तर्गत जमा किया गया आपका धन, शुरू में बहुत कम हो सकता है, किन्तु धीरे-धीरे वह इतनी बड़ी राशि हो जा सकती है कि उसे देखकर आप के आनन्द की सीमा न रहे। राष्ट्रीय बचत योजना के अन्तर्गत धन जमा करने में आपको कोई त्याग नहीं करना पड़ता किन्तु फायदे हजार हैं।

वचत योजना के लिए ऐजेन्ट चाहिये, कृपया जिला संघटनकर्ता से सम्पर्क स्थापित करें।

राष्ट्रीय वचत विभाग के लिए, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश

द्वारा प्रसारित

तथा पोटाशियम के प्रयोग हुये हैं। पृष्ठ १६ पर 'पानी का सोत' अंग्रेजी के water table का अनुवाद प्रतीत होता है परन्तु अपने स्थान पर यह अत्यन्त भ्रामक है।

पृष्ठ २० की अंतिम पंक्ति पृ० २७ पर तथा पृष्ठ ३५ के मध्य में "समझा जाता है" से वाक्य प्रारम्भ हुए हैं जो हिन्दी के व्याकरण से सम्मत नहीं।

पृ० २९ पर एंजाइम के लिए किण्वज पदार्थ प्रयुक्त हुआ है जबकि स्वीकृत शब्दावली में प्रकिण्व या एंजाइम है।

पृ० ३० पर एक ऐसा वाक्य है जिससे कुछ भी अर्थ नहीं निकलता :—

पत्तियों का रस **हवा की आक्सीकृत** से संयोग करके आक्सीकृत होने लगता है।

निश्चित रूप से **हवा की आक्सीकृत** से के स्थान पर हवा की आक्सीजन से होना चाहिये था।

पृष्ठ ३१ तथा ३३ पर "गुणता" शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसके लिये 'गुणधर्म' उपयुक्त शब्द होता।

पुस्तक में छापे की भी भूलें हैं। यथा पृष्ठ ३५ पर "हुँये" (हुये) तथा पृ० ३५ पर "स्कीजा" (स्कीजी)।

२. विज्ञान प्रगति : अक्टूबर नवम्बर १९६१

प्रस्तुत अंक में "संरक्षण के लिये सब्जियों के कुछ वांछनीय लक्षण" शीर्षक लेख सामान्य ज्ञान एवं व्यवहार की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। डिब्बा-बन्दी के पूर्व जिन बातों पर ध्यान रखना चाहिये उनका इस लेख में भलीभाँति वर्णन किया गया है।

सूचना समाचारों के अन्तर्गत "चीनी का कृमि नाशक" गुण ध्यान देने योग्य है।

पृ० २९३ पर "एगजास्ट गैस शोधक" यन्त्र का वर्णन है। क्या ही अच्छा होता यदि एगजास्ट का हिन्दी रूपान्तर रखा गया होता।

पृ० २८९ पर बनाने के स्थान पर नाने ही छपा है।

[पृष्ठ ७४ का शेषांश]

जितनी कि अंग्रेजी अतः इन विदेशी भाषाओं के पढ़ाये जाने का सम्यक प्रबन्ध भी सरकार को करना चाहिये। केवल अंग्रेजी पर बल देने का अर्थ यही होता है कि हम अपनी पुरानी अंग्रेजी-दासता को नहीं भूल पाये और मोहवश अंग्रेजी को ही हम अन्तर्राष्ट्रीय भाषा कह कर पुकार रहे हैं जबकि वास्तविक बात इसके बिल्कुल विपरीत है।

सम्पादकीय

१. परिषद् के भूतपूर्व सभापति का स्वागत :

११ नवम्बर को विज्ञान परिषद् के भूतपूर्व सभापति, केन्द्रीय तेल तथा खनिज मन्त्री पं० केशवदेव मालवीय, ने विज्ञान परिषद् में पधारने का कष्ट किया। उन्होंने कार्यकारिणी के सदस्यों तथा नगर के प्रमुख व्यक्तियों के मध्य अपने विचार प्रकट करते हुए सरकार द्वारा परिषद् को अधिकाधिक आर्थिक सहयोग मिलने का आश्वासन दिया।

उन्होंने पारिभाषिक शब्दावली के सम्बन्ध में भी अपना मत व्यक्त किया और परिषद् के कार्यकर्ताओं को सरल एवं सुबोध हिन्दी शब्दावली के प्रयोग की राय दी। उन्होंने एक उदाहरण प्रस्तुत करते हुये यह स्वीकार किया कि अभी हिन्दी में वैसे शब्द निर्माण की क्षमता नहीं आ पाई जैसे अंग्रेजी में है। यथा पेट्रोल के लिये अंग्रेजी में "liuqid gold" रूपक के रूप में प्रयुक्त मिलता है परन्तु हिन्दी में उसके समतुल्य शब्द को प्रयुक्त करते हुए यह भय बना रहता है कि कहीं अनर्थ न हो जाय।

इसी अवसर पर प्रयाग के नागरिकों ने मालवीय जी से प्रयाग से नेशनल बोटैनिकल गार्डेन के न हटाये जाने की माँग की। उन्होंने यहाँ के नागरिक के नाते उक्त उद्यान के हटाये जाने पर क्षोभ प्रकट किया।

सचमुच ही प्रयाग नगर की शोभा बढ़ाने वाले इस राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान के यहाँ से अन्यत्र स्थानान्तरण का हम सबों को खुल कर विरोध करना चाहिये।

२. इण्डियन प्रेस द्वारा वैज्ञानिक उन्नयन की योजन.

प्राय: एक वर्ष पूर्व से इण्डियन प्रेस प्रयाग द्वारा एक वैज्ञानिक मासिक पत्र की योजना का प्रचार होता रहा है। तब से हम अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक उसकी प्रतीक्षा करते रहे हैं परन्तु आजतक कार्य रूप में परिणत होकर एक अंक भी सामने नहीं आ पाया।

अखबारों में एक अन्य योजना भी दिखाई पड़ी है। अब **विज्ञान जगत** (साइंस डाइजेस्ट) नामक एक अन्य पत्रिका के प्रकाशन का विज्ञापन देखकर जहाँ उल्लास हो रहा है वहीं यह भय भी है कि कहीं पूर्व योजना की भाँति यह भी ठप न हो जाय। सम्पादक श्री विद्यार्थी जी अत्यन्त व्यवहार कुशल व्यक्ति हैं। विज्ञान सम्बन्धी उनकी रुचि उन्हें इस दिशा में सफलता लावेगी। परन्तु जो सम्पादक मण्डल उन्होंने घोषित किया है उसके आधार पर वे **विज्ञान जगत** को अंग्रेजी पत्रिकाओं के समकक्ष ला पावेंगे, हमें सन्देह है।

हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक क्षेत्र में जितने भी प्रयास किये जावेंगे वे सदैव असफल होते रहेंगे जब तक कि उसी दिशा में कार्य करने वाली मातृ-संस्थाओं से सहयोग की अपेक्षा नहीं रखी जावेगी।

३. गागरिन की भारत यात्रा :

कुछ कारणों से रूस के प्रथम अन्तरिक्ष यात्री गगारिन को अपनी भारत यात्रा स्थगित कर देनी पड़ी थी जिसके कारण लोगों में यह भावना घर कर गई कि सम्भवत: अमेरिका में गगारिन ने कुछ ऐसे उद्गार

प्रकट किये थे जिनके कारण रूसी सरकार ने उन्हें भारत-यात्रा के लिये रोक दिया है । परन्तु अब जब यह रूसी अन्तरिक्ष यात्री हमारे देश में आया हुआ है तो लोगों की उपरोक्त धारणा निर्मूल सिद्ध हो गई है । भारत के विभिन्न नगरों में आयोजित स्वागत समारोहों में गगारिन ने खुले हृदय से अपने अन्तरिक्ष यात्रा के अनुभवों को समक्ष रखते हुये हमारे देशवासियों को उक्त प्रकार की यात्रा में सम्मिलित होने का आह्वान किया है ।

गगारिन का विश्वास है कि अगले कुछ वर्षों में मंगल ग्रह की यात्रा में मानव प्रयास सफल हो सकेंगे । सचमुच ही अन्तरिक्ष विज्ञान के इस अग्रदूत से हमारे देश के युवकों को प्रेरणा ग्रहण करके इस दिशा में आगे बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिये ।

४. प्राथमिक पाठशालाओं में अंग्रेजी

कुछ दिनों से समाचार पत्रों में बच्चों को तीसरी श्रेणी से ही अनैच्छिक विषय के रूप में अंग्रेजी पढ़ाये जाने के समाचार प्रकाशित हो रहे हैं । इस प्रसंग में दो वक्तव्य हमारे देखने में आये हैं—उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री चन्द्रभान गुप्त तथा मध्य प्रदेश के गवर्नर श्री पातस्कर के भाषण । दोनों ही वक्तव्यों में जिस मुख्य तर्क को प्रस्तुत किया गया है वह यह है कि स्वतंत्र भारत में अंग्रेजी पर जोर देने का अभिप्राय यही है कि हम शिक्षा के ह्रासोन्मुख स्तर को ऊपर उठा सकेंगे । साथ ही लोगों को यह सोचना चाहिये कि अंग्रेजी को हम स्वेच्छया प्रारम्भिक अवस्था से पढ़ना पढ़ाना चाहते हैं, यह हमारे ऊपर लादी नहीं जा रही । चूँकि अंग्रेजी का पठन-पाठन राष्ट्र के हित साधन में है अतः स्थिर चित्त हो अंग्रेजी को अपने बच्चों द्वारा सीखे जाने में कोई बाधा न उत्पन्न करें ।

राजनीतिक स्तर पर यह तर्क भले ही पुष्ट एवं स्वयंसिद्ध प्रतीत हो परन्तु राष्ट्रदृष्टि से यह अत्यन्त घातक सिद्ध होगा । एक बार जब हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार किया जा चुका है तो अन्य किसी विदेशी भाषा को प्रारम्भिक अवस्था से प्रविष्ट कराने या उसे मान्यता दिलाने में हम आदर्शों से नीचे गिर जाते हैं । यह सम्भव नहीं कि राष्ट्रभाषा की पढ़ाई को हानि पहुंचाये बिना हम अंग्रेजी का समुचित अध्यापन करा सकें । निश्चित रूप से स्वतन्त्रता प्राप्ति के १४ वर्ष बाद ऐसे प्रस्ताव का पुनः स्वीकृत होना कि अंग्रेजी प्रारम्भिक अवस्था से पुनः पढ़ाई जाय अंग्रेजी शासन को स्वीकार करना होगा । राष्ट्रीय मुक्ति का मूलाधार राष्ट्रभाषा की उन्नति है ।

विज्ञान के पठन-पाठन को लेकर अंग्रेजी पढ़ाये जाने पर विशेष जोर दिया जाता है । परन्तु क्या यह सत्य नहीं है कि अब इंटरमीडियट कक्षाओं तक विज्ञान की पूरी पढ़ाई हिन्दी माध्यम से सम्पन्न होती है । आवश्यकता तो इस बात की थी कि हम विश्वविद्यालयों में भी विज्ञान की पढ़ाई हिन्दी के माध्यम से प्रारम्भ करते परन्तु ऐसा न होने से उस वर्ग को बल मिल रहा है जो सदा से हिन्दी के विरुद्ध रहकर अंग्रेजी की सर्वजनीनता एवं सर्वाधिक उपादेयता पर बल देता रहा है । यदि ठीक से पता लगाया जाय तो पता चलेगा कि इस समय विश्वविद्यालयों के शिक्षकों में से अधिकांश का अंग्रेजी ज्ञान सुदृढ़ नहीं अतः वे अपने अन्तरतम से हिन्दी द्वारा शिक्षण के पक्ष में हैं परन्तु सरकार द्वारा बारम्बार हस्तक्षेप किये जाने के कारण यह निश्चित है कि उत्तरी भारत में न तो हिन्दी की जड़ें मजबूत होंगी और न अंग्रेजी की स्थापना हो सकेगी ।

इस सम्बन्ध में उत्तर प्रदेशीय सरकार को और अधिक संयम बरतने की आवश्यकता है । यदि हमारी सरकार यह अनुभव करती है कि अंग्रेजी के बिना वैज्ञानिक क्षेत्र में समुचित उन्नति नहीं हो सकेगी तो उसे चाहिये कि वह इण्टरमीडियेट अवस्था से आगे विज्ञान के छात्रों के लिये अंग्रेजी को अनिवार्य बना दे जिसमें छात्रों को छः वर्षों में अधिकतम अंग्रेजी ज्ञान उपलब्ध हो सके । शोध में रत छात्रों के लिये रूसी, जर्मन तथा फ्रेंच भाषायें भी उतनी ही आवश्यक हैं

शेष पृष्ठ ९२ पर